हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

सातवाँ भाग

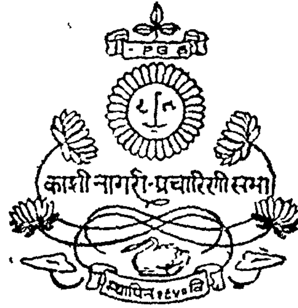
['फ' से 'मध्वृच' तक, शब्दसंख्या–१९,०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

कमलापति त्रिपाठी	धीरेंद्र वर्मा
नगेंद्र	हरवंशलाल शर्मा
रामधन शर्मा	शिवनंदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' (सहसंयो०)	सुधाकर पांडेय

करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

विश्वनाथ त्रिपाठी

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८९२ सं० २०२७ वि० १९७० ई०

ों दस भागों का २००)

शंभुनाथ वाजपेयी
द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी-जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी-जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है।...हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् सस्करण निकालने की आवश्यकता है।...आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार म बहुत बातो में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन.संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ।४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध मे देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का सयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुन संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी दो खंडों तक भारत सरकार ने वहन किया है, इसी लिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षामंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के समुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमे अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रथो के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव मे वैसा कर सकना संभव नही हुआ। फिर भी यह कहने मे हमे सकोच नही कि अद्यतन प्रकाशित कोशों मे शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओ के कोशो मे अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले प्राय. सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते है कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये कोशशिल्प सबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस सशोधित प्रवर्धित रूप मे शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दो की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित सस्करण कुल दस खडो मे पूरा होगा। इसका पहला खड पौष, संवत् २०२२ वि० मे छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग मे ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पंडाल मे काशी, प्रयाग एवं अन्यान्य स्थानो के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियो, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति मे सपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री पं० सुमित्रानदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस सशोधित संवर्धित सस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य मे इसके समस्त सपादको को एक एक फाउंटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने सक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियो की चर्चा की और कहा: 'सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नही की। भिन्न भिन्न विषयो पर जो पुस्तके इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ मे लिए है जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत सातवें खंड मे 'फ' से लेकर 'मव्यूव' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से सवलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६,००० है। अपने मूल रूप मे यह अश कुल ३६० पृष्ठो मे था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित सशोधित संस्करण में लगभग ५२० पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। स्व० श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा मे पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते थे और पं० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन मे प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते है। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहे क्योकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नही, सनातन है।

अंत मे शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के सस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते है कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी :
निर्जला एकादशी, २०२७ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं।]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अखिलेश (शब्द०)	अखिलेश कवि
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अधखिला (शब्द०)	अधखिला फूल (उपन्यास), अयोध्यासिंह उपाध्याय
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनुराग बाग (शब्द०)	अनुराग बाग
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अमिट०	अमिट स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०

अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोग संहिता
अष्टांग०	अष्टांगयोग संहिता
आँधी	आँधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आत्रेय अनुक्रमणिका (शब्द०)	आत्रेय अनुक्रमणिका
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यो०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
इति०	इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह

इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं०
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इनशा (शब्द०)	इनशा अल्ला खाँ
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु०पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०
कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी मे कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् १९०८
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविंद (शब्द०)	कविंद कवि
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कादंबरी (शब्द०)	कादंबरी ग्रंथ
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य०	काव्यशास्त्र
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य : यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
काष्ठजिह्वा (शब्द०)	काष्ठजिह्वा स्वामी
कासीराम (शब्द०)	कासीराम कवि
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूंट
कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
खुसरो (शब्द०)	अमीर खुसरो
खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०

गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गदाधर सिंह (शब्द०)	गदाधर सिंह
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
गर्ग संहिता (शब्द०)	गर्ग संहिता
गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
गि० दा०, गि० दास गिरिधरदास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंधर (शब्द०)	गुंधर कवि
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
गुलाल०	गुलाल बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोकुल (शब्द०)	कवि गोकुल
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोपालभट्ट (शब्द०)	गोपालभट्ट, वाल्मीकि रामायण के अनुवादक
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि
चंद०	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०

चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरण (शब्द०)	चरणदास
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति
चाणक्य (शब्द०)	चाणक्य नीति दर्पण
चिंता	चिंता, अज्ञेय सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंदःप्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरौली, प्र० सं०, संवत् २०१२
जंतुप्रबंध (शब्द०)	जंतुप्रबंध ग्रंथ
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जगन्नाथ (शब्द०)	जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
जनमेजय०	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर 'प्रसाद' भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, पंचम सं०
जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती

	भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० ० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ स०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, १० सं०
ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तिथितत्व (शब्द०)	तिथितत्व निर्णय
तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब (हाथरसवाले) की शब्दावली बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९,१९११
तेग० (शब्द०) तेगबहादुर (शब्द०)	गुरु तेगबहादुर
तेज०	तेजविंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद
दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, संपा० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश
दास (शब्द०)	कवि भिखारीदास
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयाल (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ 'अश्क,' नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दुर्गाप्रसाद (शब्द०)	दुर्गाप्रसाद कवि
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र०सं०
देव (शब्द०)	देव कवि
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
देवदत्त (शब्द०)	देवदत्त कवि
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	दैनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरोली, प्रथम सं०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०

द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विज (शब्द०)	द्विज कवि
द्विजदेव (शब्द०)	अयोध्यानरेश महाराजा मानसिंह 'द्विजदेव'
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बानी	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली
धीर (शब्द०)	'धीर' कवि
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
ध्रुव०	ध्रुवस्वामिनी, प्रसाद
नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० ब्रजरत्नदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि
नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
नानक (शब्द०)	संत नानक गुरु
नाभादास (शब्द०)	नाभादास संत
नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
निश्चलदास (शब्द०)	संत निश्चलदास जी
नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नृपशंभु (शब्द०)	शिवाजी के पुत्र महाराज संभाजी
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
परमानंद०	परमानंदसागर
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू सहब की बानी [१-३ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
पारिजात०	पारिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पूर्ण (शब्द०)	पूर्ण कवि
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्र० सा०	प्रगतिशील (वादी) साहित्य।

प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी के रचयिता प्रताप कवि
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला,' सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रागेय राघव, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १९५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बलबीर (शब्द०)	बलबीर कवि
बलभद्र (शब्द०)	बलभद्र कवि
बाँकी० ग्रं०, बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बापू	बापू, कवितासंग्रह
बालकृष्ण (शब्द०)	बालकृष्ण
बिरहा (शब्द०)	प्रचलित बिरहा गीत
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिसराम (शब्द०)	बिसराम कवि
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, संपा० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
बैताल (शब्द०)	बैताल कवि
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
ब्रह्म (शब्द०)	ब्रह्म कवि (बीरबल)
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक
भट्ट (शब्द०)	बालकृष्ण भट्ट
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०

भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम सं०
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं०, १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषाशिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्रं०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
भीखा श०,	भीखा शब्दावली प्र० सं०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि
भूधर (शब्द०)	भूधर कवि
भूषण ग्रं०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र०सं०
मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णविहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महावीरप्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप ग्रंथ
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९१ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव	मानव, कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
मीरा (शब्द०)	भक्त मीरा बाई
मीर हसन (शब्द०)	मीर हसन
मुंशी अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
मुरारिदान (शब्द०)	कवि मुरारीदान
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगलेश (शब्द०)	कवि युगलेश
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
योग०	योगवाशिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण, बंबई, सं० १९६७ वि०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०

रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांगे, संपा० महतावचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रघु० दा०, रघुनाथदास (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज, रघुराज सिंह (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रत्नावली (शब्द०)	रत्नावली नाटिका
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, संपा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० स०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसखान
रस र०, रसरतन	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रसिया (शब्द०)	रसिया कवि ? रसिया गीत ?
रहिमन (शब्द०)	रहीम कवि
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
रहीम०	रहीम रत्नावली
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
राम०	रामचरितमानस, संपा० विजयानंद त्रिपाठी, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७३ वि०
रामकवि (शब्द०)	राम कवि
राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्मसंग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामसहाय (शब्द०)	रामसहाय कवि कृत सतसई
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, श्रृंगार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लूलाल
लवकुश चरित्र (शब्द०)	लवकुश चरित्र
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्ण०, वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
विश्वास (शब्द०)	विश्वास ?
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ	व्यंग्यार्थ कौमुदी प्रताप कवि कृत, बाबू राम-

	कृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १६५७ ।
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
व्रज (शब्द०)	व्रज (शब्द०)
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शकर (शब्द०)	शकर कवि
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एँड संस, आगरा, प्र० सं०
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शाहजहाँनामा (शब्द०)	शाहजहाँनामा
शार्ङ्गधर सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १६७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १६८५
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर
शेखर (शब्द०)	शेखर कवि
शेर०	शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
शैली	शैली, पं० करुणापति त्रिपाठी
श्यामबिहारी (शब्द०)	श्यामबिहारी कवि
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद
श्रीधर (शब्द०)	श्रीधर कवि
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीपति (शब्द०)	श्रीपति कवि
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
संचिता	संचिता (कवितासंग्रह),
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ।
सं० दरिया, संत० दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०

सं० दा० (शब्द०)	संगीत दामोदर
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ, हरिद्वार, प्र० सं०
संतवाणी०, संत०सार०	संतवाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान [महाभारत]
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
सरस्वती (शब्द०)	सरस्वती, मासिक पत्रिका
सर्पाघातचिकित्सा (शब्द०)	सर्पाघात चिकित्सा
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १६०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी	साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन, श्री श्यामसुंदर दास, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
सिद्धांतसंग्रह (शब्द०)	सिद्धांतसंग्रह
सीतल (शब्द०)	कवि सीतल
सीताराम (शब्द०)	सीताराम कवि
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा०

	हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
सुंदरीसिंदूर (शब्द०)	सुंदरी सिंदूर कवितासंग्रह
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुखदेव (शब्द०)	कवि 'सुखदेव'
सुधाकर (शब्द०)	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना०प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर० (राधा०)	सूरसागर, संपा० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सौ अजान० (शब्द०)	सौ अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वाधीनता (शब्द०)	स्वाधीनता
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमन्नाटक (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हनुमान, हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग
ह० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार, प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हिंदी का०	हिंदी काव्य की अंतश्चेतना
हिं० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिं० ना०	हिंदी के नाटक
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमगाथा०	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हित हरिवंश (शब्द०)	वैष्णव संत हित हरिवंश
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायूं०	हुमायूंनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न
हृदयराम (शब्द०)	कवि हृदयराम

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अक० रूप	अकर्मक रूप
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अनु० मू०	अनुकरणार्थमुलक
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप
अप०	अपभ्रंश
अर्घ मा०	अर्धमागधी
अल्पा०	अल्पार्थक
अव०	अवधी
अव्य०	अव्यय
इता०	इटालियन
इब०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उड़ि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभय०	उभयलिंग
एकव०	एकवचन
कनाड़ी	कन्नड़ भाषा
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश
कोंक०	कोंकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत	लोकगीत
गुज०	गुजराती
ची०	चीनी भाषा
छं०	छंद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवनचरित
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
ति०	तिब्बती भाषा
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
नामिक धातु	नामिक धातु
ने०	नेपाली
न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
पं०	पंजाबी
परि०	परिशिष्ट
पा०	पाली
पुं०	पुंलिंग
पुर्त०	पुर्तगाली
पु० हिं०	पुरानी हिंदी
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
पृ०	पृष्ठ
प्रत्य०	प्रत्यय
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्रा०	प्राकृत
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
फ०	फराँसीसी भाषा
फकीर०	फकीरों की बोली
फा०	फारसी
बँग०	बँगला भाषा
बरमी०	बरमी भाषा

बहुव०	बहुवचन	वै०	वैदिक
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली	व्या०	व्याकरण
बुंदेल०	,, ,,	(शब्द०)	हिंदी शब्दसागर प्र० सं०
बोल०	बोलचाल	सं०	संस्कृत
भाव०	भाववाचक संज्ञा	संयो०	संयोजक अव्यय
भू०	भूमिका	संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
भू० कृ०	भूत कृदंत	स०	सकर्मक
मरा०	मराठी	सक० रूप	सकर्मक रूप
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा	सघु०	सघुक्कड़ी भाषा
मला०	मलायलम भाषा	सर्व०	सर्वनाम
मि०	मिलाइए	सिंहली	सिंहली भाषा
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त	स्पे०	स्पेनी भाषा
मुहा०	मुहावरा	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
यू०	यूनानी	स्त्री०	स्त्रीलिंग
यौ०	यौगिक	हिं०	हिंदी
राज०	राजस्थानी	Ⓟ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
लश०	लशकरी	>	व्युत्पन्न
ला०	लाक्षणिक	†	प्रांतीय प्रयोग
लै०	लैटिन	‡	ग्राम्य प्रयोग
व० कृ०	वर्तमान कृदंत	√	धातुचिह्न
वर्ण वि०	वर्णविपर्यय	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
वि०	विशेषण	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक		

हिंदी शब्दसागर

फ

फ—हिंदी वर्णमाला में बाईसवाँ व्यंजन और पवर्ग का दूसरा वर्ण। इसके उच्चारण का स्थान ओष्ठ है और इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न होता है। इसे उच्चारण करने में जीभ का अगला भाग होठों से लगता है। इसलिये इसे स्पर्श वर्ण कहते हैं। इसके बाह्य प्रयत्न, सवार, श्वास और अघोष हैं। इसकी गिनती महाप्राण में होती है। प, ब, भ और म इसके सवर्ण हैं।

फंक†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँक] दे० 'फाँक'। उ०—सिद्ध सो समृद्ध पाय सिद्ध से अघाय रहे केते परसिद्ध सब अगन को करै फंक।—गोपाल (शब्द०)।

फंका—संज्ञा पुं० [हिं० फाँकना, फाँक] [स्त्री० फकी] १. सूखे दाने या बुकनी की उतनी मात्रा जितनी एक बार मुँह में फाँकी जा सके।

मुहा०—फंका करना = नाश करना। नष्ट करना। फंका मारना = मुँह में फंका डालना।

२. कतरा। टुकड़ा। खंड। उ०—केते घर घर के आयुध करके केते सरके संक भरे। तेहिं सूरज बंका दै रन हंका करि अरि फका दूरि करे।—सूदन (शब्द०)।

फंकी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फंका] १. चूर्ण आदि की पुड़िया जो सूखी फाँकी जाय। फाँकने की दवा। २. उतनी दवा जितनी एक बार में फाँकी जाय।

फंकी‡[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँक] छोटी फाँक। छोटा टुकड़ा।

फंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध या पञ्ज] १. बंधन। फंदा। उ०—(क) जाहु चली मैं जानी तोकों। आजुहि पढ़ि लीनी चतुराई कहा दुरावति मोकों। एही ब्रज तुम हम नँदनंदन दूरि कतहुँ नहि जैहो। मेरे फंग कबहुँ तो परिहौ मुजरा तबही दैहो।—सूर (शब्द०)। (ख) शोभा सिंधु संभव से नीके नीके नग हैं मातु पितु भाग बस गए परि फंग हैं।—तुलसी (शब्द०)। २. राग। अनुराग। उ०—सुनत सखी तेंह बौरी गई। सुने श्याम सुखमा के आए धाई तरुणि नई। कोउ निरखति मुख कोउ निरखति अंग कोउ निरखति रँग और। रैनि फंग कहुँ पगे कन्हाई कहति सबै करि रौर।—सूर (शब्द०)।

फंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० फञ्जिका] १. भारंगी या ब्राह्मण यष्टिका नाम का क्षुप। २. देवताड़। ३. जवासा। हिंगुवा। ४. दंती वृक्ष।

फंजिपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० फञ्जिपत्रिका] मूसाकानी।

फंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० फञ्जिन्] १. भारंगी या ब्रह्मनेष्टि नामक क्षुप। २. मजीठ। ३. दंती वृक्ष।

फंट‡—संज्ञा पुं० [देशज] दे० 'फणी'।

फंड[1]—संज्ञा पुं० [अं०] वह धन या संपत्ति जो किसी नियत काम में लगाने के लिये एकत्र की जाय। कोश।

फंड[2]—संज्ञा पुं० [सं० फण, प्रा० फड] साँप का फण।

फंड[3]—संज्ञा पुं० [सं० फण्ड] पेडू। पेटी। पेट [को०]।

फंद—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध, हिं० फंदा] १. बंध। बंधन। उ०—(क) जा का गुरु है अंधरा चेला खरा निरंध। अंधे को अंधा मिला परा काल के फंद।—कबीर (शब्द०)। (ख) सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिशय दयाल भागे जंजाल विपुल दुख कदंम टारे। त्यागे भ्रम फंद द्वंद निरखि के मुखारविंद सूरदास अति अनंद मेटे मद भारे।—सूर (शब्द०)। २. रस्सी या बाल आदि का फंदा। जाल। फाँस। उ०—(क) यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहँसि उठी मति मंद। भूषन सजति बिलोकि मृग मनहु किरातिनि फंद।—तुलसी (शब्द०) (ख) हरि पद कमल को मकरंद। मलिन मति मन मधुप परि हरि विषय नर रस फंद।—(शब्द०)। ३. छल। धोखा। उ०—हनिहौ निशाचर वृंद। बचिहैं न करि बहु फंद।—रघुराज (शब्द०)। ४. रहस्य। मर्म। उ०—पंडित केरी पोथियाँ ज्यों तीतर को ज्ञान। औरन शकुन बतावहीं अपना फंद न जान।—कबीर (शब्द०)। ५. दुःख। कष्ट। उ०—शिव शिव जपत मन आनंद। जाहि सुमिरे विघन विनशत कटत जम को फंद (शब्द०)। ६. नथ की काँटी फँसाने का फंदा। गूँज। उ०—मदमाती मनोज के आसव सों अंग जासु मनों रँग केसरि को। सहजे नथ नाक ते खोलि धरी कह्यो कौन धों फंद या बेसरि को।—कमलापति (शब्द०)।

फंदना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० बन्धन वा हिं० फंदा] फंदे में पड़ना। फँसना। उ०—(क) आस आस जग फंदियो रहै उरध लपटाय। राम आस पूरन करे सकल आस मिट जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) मोको निंदि पर्वतहि बंदत। चारौ कपट पंछि ज्यों फंदत।—सूर (शब्द०)।

फंदना[2]—क्रि० स० [हिं० फाँदना] फाँदना। लाँघना। उल्लंघन करना।

फंदरा—संज्ञा पुं० [हिं० फंद + रा (स्वा० प्रत्य०)] दे० 'फंदा'।

फंदवार—वि० [हिं० फंदा] जो फंदा लगावे। फंदा लगानेवाला।

फंदा—संज्ञा पुं० [सं० पाश वा बन्ध] १. रस्सी या बाल आदि की बनी हुई फाँस। रस्सी, तागे आदि का घेरा जो किसी को फँसाने के लिये बनाया गया हो। फनी। फाँद।

मुहा०—फंदा देना या लगाना = गाँठ लगाकर फदा तैयार करना।

यौ०—फंदादार = एक प्रकार की बेल जो गलीचे और कसीदे आदि मे बुनी या काढ़ी जाती है।

२. पाश। फाँस। जाल। उ०—(क) अक्षर आस ते फंदा परे। अक्षर लखे तो फंदा टरे।—कबीर (शब्द०)। (ख) ठगति फिरति ठगिनी तुम नारि।···फँसिहारिनि, बटपारिनि हम भई आपुन भए सुधर्मा भारि। फंदा फाँस कमान बान सों, काहूँ देख्यौ डारत मारि।—सूर०, १०।१५८१।

मुहा०—किसी पर फंदा पड़ना = जाल पड़ना। फँसना। फंदा लगना = (१) जाल फैलना। (२) ढंग लगना। धोखा चल जाना। जैसे,—इनपर तुम्हारा फंदा नहीं लगेगा। फंदा लगाना = (१) जाल फैलाना। किसी को फँसाने के लिये जाल लगाना। (२) किसी को अपनी चाल में लाने का प्रयत्न करना। धोखा देना। फंदे में पड़ना = (१) धोखे में पड़ना। जाल में फँसना। (२) वशीभूत होना। किसी के वश में होना।

३. बंधन। दुःख। कष्ट। उ०—परिवा छट्ठ एकादस नंदा। दुइज सत्तिमी द्वादस फंदा।—जायसी (शब्द०)।

फंदावली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० फंदा + अवली] जाल। फंदा। उ०—सुनहु धर्मनि काल बाजी करहि बड़ फंदावली।—कबीर सा०, पृ० २०४।

फंदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फंद] दे० 'फंदा' उ०—सुनहु काल ज्ञान की संधी। छोरो जीव सकल की फंदी।—कबीर सा०, पृ० ८०७।

फंध(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० फंद या फंदा] दे० 'फंद'। उ०—कबीर माया पापणी फंध ले बैठी हाटि। सब जग तौ फंधै पड़्या गया कबीरा काटि।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२।

फंधा†—संज्ञा पुं० [हिं० फंदा] दे० 'फंदा'। उ०—(क) पुनि और अनेक सुगंधा। ये सकल जीव को फंधा।—सुंदर ग्रं०, भाग० १, पृ० १२८। (ख) सब जग परचो काल के फधा। बहु विधि तिनको बाँधे बंधा।—कबीर सा०, पृ० ४५६।

फंध्या†—संज्ञा पुं० [हिं० फंदा] दे० 'फंदा'। उ०—यही वचन में सब जग बंध्या। नाम बिना नहिं छूटत फंध्या।—कबीर सा०, पृ० १०१३।

फंफाना(पु)—क्रि० अ० [प्रा० फंफ (= उछलना)] फों फो करना फुंकारना। फुफकारना। उ०—अवलंबने गोरी तोरए जाए, कर कंकन फनि उठ फंफाए।—विद्यापति, पृ० ५१३।

फंसई†—संज्ञा पुं० [देश० या सं० पाश] शाखा। टहनी। उ०—पश्चिम की ओर मार्ग दो फँसों में फूटा है।—झाँसी०, पृ० १५९।

फँकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँकना] वह दवा आदि जो फाँककर खाई जाय। चूर्ण। फंकी।

क्रि० प्र०—फाँकना।

फँग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध] फंग। बंधन। फंदा। उ०—जमुना चली राधिका गोरी। युवति वृंद बिच चतुर नागरी देखे नंदसुअन तेहि हेरी। व्याकुल दशा जानि मोहन की मन ही मन डरपी उनको री। चतुर काम फँग परे कन्हाई अब धौ इनहिं बुझावै को री।—सूर (शब्द०)।

फँद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० फंद] दे० 'फंद'। उ०—जनु अकुलात कमल मडल में फँदे फँदन जुग खंजन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८४।

फँदना(पु)¹—क्रि० अ० [सं० बन्धन या हिं० फंदा] फंदे या बंधन मे पड़ना। फँसना। उ०—(क) प्रान पखेरू परे तलफै लखि रूप चुगो सु फँदे गुन गाथन।—आनंदघन (शब्द०)। (ख) दुहुँ ओर सो फाग मड़ी उमड़ी जहाँ श्री चढ़ी भीर ते भारी भिरी। धधकी दें गुलाल की धुंधुर मे धरी गोरी लला मुख मीडि सिरी। कुच कचुकी कोर छुए छरकै पजनेस फँदी फरकै ज्यो चिरी। झरपै झपै कौध कढ़ै तरिता तरपै मनो लाल घटा मे घिरी।—पजनेस०, पृ० १६।

फँदना(पु)²—क्रि० स० [हिं० फाँदना] फाँदना। लाँघना। उल्लंघन करना। उ०—बढचो वीर राजा करे जोर हल्ला। फँद्यो धाय खाई करचो लोग हल्ला।—सूदन (शब्द०)।

फँदवार(पु)—वि० [हिं० फंद + वार] जो फंद या फंदा लगाए। फंदा लगानेवाला। उ०—(क) पायन धरा ललाट तिन बिनय सुनहु हो राय। अलक परी फँदवार है कैसहि तजै न पाय।—जायसी (शब्द०)। (ख) अस फँदवार केस वै परा सीस के फाँद। अष्टाकुली नाग सब उरझे केस के बाँद।—जायसी (शब्द०)।

फँदवारि(पु)—वि० स्त्री० [हिं० फंद + वारी] फंदा लगानेवाली। फंदा डालनेवाली। उ०—परम प्रेम फँदवारि है प्यारिनि गहि आन।—घनानंद, पृ० ४५५।

फँदाना¹—क्रि० स० [हिं० फंदना] फंदे में लाना। जाल में फँसाना। उ०—(क) लसत ललित कर कमलमाल पहिरावत। काम फंद जनु चंदहि बनज फँदावत।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरे माई लोभी नैन भए। कहा करों ये कह्यो न मानत बरजत ही जु गए। रहत न घूँघट ओट भवन में पलक कपाट दए। लए फँदाइ विहंगम मानों मदन ब्याध बिधए।—सूर०, १०।२२६८। (ग) अलक डोर मुख छबि नदी बेसर बंसी लाइ। दै चारा मुकतानि को मो चित चखी फँदाइ।—मुबारक (शब्द०)। (घ) जीवहिं राखे फंद फँदाई। शब्द बान महँ मारो जाई।—कबीर सा०, पृ० ८६१।

फँदाना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० फंदना] फँसना। फंदे मे आना।

उ०—(क) पाप पुन्य महँ सबै फँदाना। यहि विधि जीव सबै उरझाना।—कबीर सा०, पृ० ४५। (ख) फंद अनेकन सकल फँदाना। मूरख जीव शब्द नहिं माना।—कबीर सा०, पृ० २७३।

फँदाना[3]—क्रि० स० [सं० स्पन्दन, फन्दन] उछालना। कुदाना। फाँदने का काम दूसरे से कराना। उ०—उनके पीछे रथों के ताँते दृष्टि आते थे, उनकी पीठ पर घुड़चढ़ों के यूथ के यूथ वर्ण वर्ण के घोड़े गोटे पट्टे वाले गजगान पाखर डाले, जमाते ठहराते नचाते कुदाते, फँदाते चले जाते थे।—लल्लू (शब्द०)।

फँदाना⑤†[4]—क्रि० स० [हिं० फानना का प्रे० रूप] तैयार कराना। सजवाना। उ०—(क) जल्दी से डोलिया फँदाय माँगे बलम्।—कबीर० श०, भा० २ पृ० १०४। (ख) राँध परोसिनि भेंटहूँ न पायों, डोलिया फँदाए लिए जात हो।—धरनी०, पृ० ३४। (ग) सत गुरु डोलिया फँदावल लगें चार कहार हो।—धरनी०, पृ० ४७।

फँदैत†—संज्ञा पुं० [हिं० फँदा + ऐत (प्रत्य०)] वह सिखाया हुआ पशु या पक्षी जो किसी प्रकार अपनी जाति के अन्य पशुओं या पक्षियों आदि को मालिक के जाल या फंदे में फँसाता हो।

फँधना⑤—क्रि० अ० [हिं० फंदना] दे० 'फँदना'। उ०—कृपन जु गृह ममता करि बंधे। चलि न सकत दृढ़ फंदनि फँधे।—नंद० ग्रं०, पृ० २४४।

फँफाना†—क्रि० अ० [अनु०] १. शब्द उच्चारण के समय जिह्वा का काँपना। हकलाना। उ०—झोला बाइ सों फँफात। बोला काल ज्यों हँकात।—सूदन (शब्द०)। २ आग पर खौलते दूध का फेन छोड़कर ऊपर उठना।

फँसड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँस+ड़ी (प्रत्य०)] फाँस। बंधन। फंदा। उ०—ऋणी हो जाने से किसान के गले की फँसड़ी महाजन के हाथ हो जाती है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६७।

फँसना—क्रि० स० [सं० पाश, हिं० फाँस] १. बंधन में पड़ना। पकड़ा जाना। फंदे में पड़ना। उ०—हाय, संसार छोड़ा भी नहीं जाता। सब दुःख सहती हूँ पर इसी में फँसी पड़ी हूँ।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. अटकना। उलझना। जैसे, काँटे में फँसना, दलदल में फँसना, काम में फँसना। उ०—(क) यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फँसी है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। (ख) ऐसी दशा रघुनाथ लखे यहि आचरजै मति मेरी फँसे।—रघुनाथ (शब्द०)।

मुहा०—किसी से फँसना = किसी से प्रेम होना। किसी से अनुचित संबंध होना। बुरा फँसना = आपत्ति में पड़ना। विपत्ति में पड़ना। उ०—हा! मेरी सखी बुरी फँसी।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

फँसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फँसना] एक प्रकार की हथौड़ी जिससे कसेरे लोटे गगरे आदि का गला बनाते हैं।

फँसरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँस + री (प्रत्य०)] १. फंदा। २. फाँसी।

फँसाऊ—वि० [हिं० फँसाना + आऊ (प्रत्य०)] फँसानेवाला। उ०—आँख उठाकर भी फँसाऊ और बतोलिये उपदेशक की ओर नहीं।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० २७५।

फँसान—संज्ञा स्त्री० [हिं० फँसना + आन (प्रत्य०)] दे० 'फँसाव'।

फँसाना—क्रि० स० [हिं० फँसना] १. फंदे में लाना या अटकाना। बझाना। उ०—और जो कदाचि काहू देवता को होय छल तौ तो ताहि नीके ब्रह्म फाँस सों फँसाइयो।—हनुमान (शब्द०)। २. वशीभूत करना। अपने जाल या वश में लाना। जैसे,—इन्होंने एक मालदार असामी को फँसाया है। ३. अटकाना। बझाना। उ०—गायगो री मोहनी सुराग बाँसुरी के बीच कानन सुहाय मार मंत्र को सुनायगो। नायगो री नेह डोरी मेरे गर मे फँसाय हृदय थली बीच चाय बेलि को बँधायगो।—दीनदयाल गिरि (शब्द०)।

फँसाव—संज्ञा पुं० [हिं० फँसना + आव (प्रत्य०)] फँसने का भाव या स्थिति। फँसना। २. ऐसी बात या स्थिति जिससे बचा न जा सके। ३. अवकाश या फुरसत न होना। अति व्यस्तता।

फँसावा—संज्ञा पुं० [हिं० फसना+आवा (प्रत्य०)] दे० 'फँसाव'।

फँसिहारा⑤— वि० [हिं० फाँस + हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० फँसिहारिन] फँसानेवाला। उ०—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी। जोइ आवति सोइ सोइ कहि डारति जाति जनावति दै दै गारी। फँसिहारिनि बटपारिनि हम भईं आपुन भए सुधर्मा भारी। फंदा फाँसि कमान बान सों काहू देख्यो डारत मारी। जाके मन जैसोई बरतै मुखबानी कहि देत उघारी। सुनहु सूर प्रभु नीके जान्यो ब्रज युवती तुम सब बटपारी।—सूर (शब्द०)।

फँसौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँसना + औरी (प्रत्य०)] फंदा। पाश। उ०—नच काँच लखि मन नाच सिखि जनु पाँवसर सु फँसौरि।—तुलसी (शब्द०)।

फ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटु वाक्य। रूखा वचन। २. फुक्कार। फुफकार। ३. निष्फल भाषण। ४. यक्षसाधन। ५. अंधड़। ६. जम्हाई। ७. स्फुट। ८. फललाभ। ९. वृद्धि। विस्तार। वर्धन (को०)।

फ[2]—वि० सुस्पष्ट। प्रकट। व्यक्त। प्रत्यक्ष [को०]।

फउज‡—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ौज] सेना। उ०—मारे गोला नाम के सब फउज पराई।—धरनी० श०, पृ० ६।

फउजदार†—संज्ञा पुं० [हिं० फउज + दार] दे० 'फौजदार'।

फउदार⑤†—संज्ञा पुं० [अ० फ़ौज+फ़ा० दार] सेनापति। फौजदार। उ०—पाँच पचीस नगर के बासी मनुवाँ है फउदार।—गुलाल० बानी, पृ० १५।

फक[1]—वि० [सं० स्फटिक] १. स्वच्छ। सफेद। २. बदरंग।

मुहा०—रंग फक हो जाना या फक पड़ जाना = हक्का बक्का हो जाना। घबरा जाना। चेहरे का रंग फीका पड़ जाना। जैसे,—हमें देखते ही उनके चेहरे का रंग फक हो जाता है।

फक[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़क, फ़क्क] १. दो मिली हुई चीजों

का अलग अलग होना। मोक्ष। छूटना। २. जबड़ा (को०)। ३. खोलना।

मुहा०—फक रेहन=बंधन से मुक्त होना। फक कराना=छुडाना।

फकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फक्कड़+ई (प्रत्य०)] दुर्दशा। दुर्गति। उ०—खूबों में अगर जावें तो होती यह फकड़ी। खेंचे है कोई हाथ कोई छीने है लकड़ी।—नजीर (शब्द०)।

फकत—वि० [अ० फ़क़त] १. बस। अलम्। पर्याप्त। २. केवल। सिर्फ। उ०—एक औरत ने फकत कहा है कि नाक कान काट लूंगी और तुम यहाँ दौड़े आए। तुम्हें शरम नहीं आती।—दुर्गाप्रसाद (शब्द०)।

फकर¹—संज्ञा पुं० [अ० फकीर] दे० 'फकीर'। उ०—दुइ पातसाही फकर की इक दुनियाँ इक दीन।—पलटू०, भा० १, पृ० ६३।

फकर²—संज्ञा पुं० [अ० फक्र] निर्धनता। गरीबी। दरिद्रता। उ०—कबही फाका फकर है कबही लाख करोर।—पलटू०, भा० १, पृ० १४।

फका(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० फाँक] फाँक। टुकड़ा।

फकिरवा†—संज्ञा पुं० [हिं० फकीर+वा (प्रत्य०)] दे० 'फकीर'। उ०—तोहिं मोरि लगन लगाए रे फकिरवा।—कबीर श०, भा०२, पृ० ४५।

फकीर—संज्ञा पुं० [अ० फ़क़ीर] [स्त्री० फकीरन, फकीरनी] १. भीख माँगनेवाला। भिखमंगा। भिक्षुक। उ०—साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूट लिए हैं। भूषन ते बिनु दौलत ह्वै के फकीर ह्वै देस बिदेस गए हैं।—भूषण (शब्द०)। २. साधु। संसारत्यागी। उ०—उदर समाता अन्न ले तनहिं समाता चीर। अधिकहिं संग्रह ना करै तिसका नाम फकीर।—कबीर (शब्द०)। ३. निर्धन मनुष्य। वह जिसके पास कुछ न हो।

मुहा०—फकीर का घर बड़ा है=फकीर को अपनी फकीरी की शक्ति से सब कुछ प्राप्त है। फकीर की सदा=माँगने के लिये फकीर की आवाज या पुकार।

फकीराना(पु)—वि० [अ० फ़क़ीरानह] फकीर जैसा। फकीरों की तरह। साधुओं के समान।

फकीरी—संज्ञा स्त्री० [अ० फकीरी, हिं० फ़कीर+ई] १. भिखमंगापन। २. साधुता। उ०—मन लागो मेरो यार फकीरी मे। जो सुख पावो नाम भजन में, जो सुख नाहिं अमीरी में।—कबीर श०, भा०१, पृ० ७०। ३. निर्धनता। ४. एक प्रकार का अंगूर।

फकीरी लटका—संज्ञा पुं० [हिं० फकीरी+लटका] फकीर की दी हुई या कही हुई दवा या जड़ी बूटी।

फकीह—संज्ञा पुं० [अ० फ़क़ीह] धर्मशास्त्र का ज्ञाता। मुसलिम धर्मशास्त्र का विद्वान् [को०]।

फक्क¹—संज्ञा पुं० [सं०] पंगु या विकलांग व्यक्ति। अंगहीन [को०]।

फक्क²—संज्ञा पुं० [अ० फ़क्क] मोचन। खोलना। संयुक्त वस्तुओं को अलगाना या पृथक् करना।

फक्कड़¹—संज्ञा पुं० [सं० फक्किका] गालीगलौज। कुवाच्य।

क्रि० प्र०—बकना।

मुहा०—फक्कड़ तौलना=गालीगुफ्ता बकना। कुवाच्य कहना।

फक्कड़²—वि० १. जो अपने पास कुछ भी न रखता हो, सब कुछ उड़ा डालता हो। मस्त मौला। २. उच्छृंखल। उद्धत। ३. फकीर। भिखमंगा।

फक्कड़बाज—वि० [हिं० फक्कड़+फ़ा० बाज़] १. गाली बकनेवाला। २. निर्धन या कंगाल।

फक्कड़बाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फक्कड़+फ़ा० बाजी] १. गालियाँ बकना। गाली गलौज करना। २. निर्धनता।

फक्कर†—संज्ञा पुं० [अ० फ़िक्र, हिं० फिकर] दे० 'फिक्र'। उ०—पर इसकी क्या चिंता फक्कर तो होना ही था, जप न हो सकी।—श्यामा०, पृ० १११।

फक्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रंथ का वह अंश जो शास्त्रार्थ, गूढ व्याख्या मे दुरूह स्थल को स्पष्ट करने के लिये कहा जाय। कूट प्रश्न। २. अनुचित व्यवहार। ३. धोखेबाजी।

फक्कीर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फकीर'। उ०—दास पलटू कहे यार फक्कीर को।—पलटू०, भा०२, पृ० १०।

फक्कुल रिहन, फक्के रिहन—संज्ञा पुं० [अ०] गिरवी या बंधक रखी चीज को छुड़ाना।

फक्रोफाका—संज्ञा पुं० [अ० फ़क्र व फ़ाक़ह्] निर्धनता और भूख। गरीबी और उपवास। उ०—कहाँ तक मैं अब फक्रोफाका सहूँ, नहीं मुज में बर्दाश्त ता चुप रहूँ।—दक्खिनी०, पृ० २११।

फखर—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ाखर या फख्र] गौरव। गर्व। अभिमान। जैसे,—आपको अपने इल्म का बहुत फखर है।

फखीर—वि० [फ़ा० फ़ख़ीर] अभिमानी। घमंडी।

फख्र—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ख्र] गर्व। अभिमान। दे० 'फखर'। उ०—मिश्र जी भी चलते चलते अपनी ढाई चावलों की खिचड़ी पकाते रहे। वह सरकार के आदमी हैं, इसपर उनको फख्र भी है।—काले०, पृ० ४२।

फख्रिया—क्रि० वि० [फ़ा० फ़ख्रियह्] सगर्व। गर्वपूर्वक। साभिमान। अभिमान सहित।

फग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० फंग] दे० 'फंग'। उ०—आँधरो अधम जड़ जाजरो जराजवन सूकर के सावक ढका ढकेलो मग मे। गिरो हिए हहरि हराम हो हराम हन्यो हाय हाय करत परीगो काल फग में। तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति लोक गयो नाम को प्रताप बात बिदित है जग में। सोई राम नाम जो सनेह सो जपत जन ताकी महिमा क्यों कही है जात अग में।—तुलसी ग्रं०, पृ० २१५।

फग़फ़ूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ग़्फ़ूर] चीन के बादशाहों की उपाधि।

उ०—(क) ओ फगफूर की बारगाह बीच था ।—दक्खिनी०, पृ० २७० । (ख) खिदमत में है सारे मेरे फगफूर के आगे ।—कबीर मं०, पृ० ४६६ ।

फगुआ—संज्ञा पुं० [हिं० फागुन] १. होली । होलिकोत्सव का दिन । २. फाल्गुन के महीने में लोगों का वह आमोद प्रमोद जो वसंत ऋतु के आगमन के उपलक्ष मे माना जाता है। इसमें लोग परस्पर एक दूसरे पर रंग कीच आदि डालते हैं और अनेक प्रकार के विशेषतः अश्लील गीत गाते हैं । फाग । उ०—दीन्हें मारि असुर हरि ने तब दीन्हों देवन राज । एकन को फगुआ इंद्रासन इक पताल को साज ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—फगुआ खेलना = होली के उत्सव में रंग गुलाल आदि एक दूसरे पर डालना । उ०—बन घन फूले टेसुआ बगियन वेलि । चले बिदेस पियरवा फगुआ खेलि । —रहीम (शब्द०) । फगुआ मानना = फागुन में स्त्री पुरुषों का परस्पर मिलकर रंग खेलना और गुलाल मलना आदि । उ०—खेलत बसंत राजाधिराज । देखत नभ कौतुक सुर समाज । नूपुर किंकिन पुनि अति सुहाइ । ललनागन जब गहि धरहिं धाइ । लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ । छाड़हिं नचाइ हा हा कराइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

३. फाल्गुन के महीने में गाए जानेवाले गीत, विशेषत: अश्लील गीत । ४. वह वस्तु जो किसी को फाग के उपलक्ष्य में दी जाय । फगुआ खेलने के उपलक्ष में दिया जानेवाला उपहार । उ०—(क) ज्यों ज्यों पट झटकति हटति हँसति नचावति नैन । त्यों त्यों निपट उदार हूँ फगुआ देत बनैन ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) कहैं कबीर ये हरि के दास । फगुआ माँगैं बैकुंठवास ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—माँगना ।

फगुआना‡—क्रि० स० [हिं० फगुआ] किसी के ऊपर फागुन के महीने में रंग छोड़ना या उसे सुनाकर अश्लील गीत गाना ।

फगुन—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

फगुनहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० फागुन + हट (प्रत्य०)] १. फागुन में चलनेवाली तेज हवा जिसके साथ बहुत सी धूल और वृक्षों की पत्तियाँ आदि भी मिली रहती हैं । २. फागुन में होनेवाली वर्षा ।

फगुनियाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० फागुन+इयाँ (प्रत्य०)] त्रिसंधि नामक फूल ।

फगुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० फाग] दे० 'फगुआ' । उ०—जो पै फगुवा देत बनै नहिं, राधा पाँइन लागु ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८४ ।

फगुहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० फगुआ] दे० 'फगुहारा' ।

फगुहार⑤†—संज्ञा पुं० [हिं० फगुआ+हार (प्रत्य०)] फाग खेलनेवाला । उ०—बाहर सों फगुहार जुरे जुव जन रस राते ।—प्रेमघन, भा०१, पृ० ३८३ ।

फगुहारा†—संज्ञा पुं० [हिं० फगुआ+हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० फगुहारी, फगुहारिन] १. वह जो फाग खेलने के लिये होली में किसी के यहाँ जाय । उ०—मुँद्यो ब्रजमंडल मदन सुख सदन में नंद को नंदन चित चोरन डरत है । अंबर में राधा मुख चंद्र उयो चाहै तौ लौं फगुहारे चाहरुनि सोर सरसत हैं ।—देव (शब्द०) । २. फगुआ गानेवाला पुरुष ।

फजर—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रातःकाल । सवेरा । उ०—(क) मुझे आया जानै, जाया मानै तौ ठिकाने रहि, फजर की गजर बजाऊँ तेरे पास मैं ।—सूदन (शब्द०) । (ख) फजर उठि रैन की जागी । चलन दर मंजल को लागी । —घट०, पृ० ३३४ ।

फजिर⑤—संज्ञा स्त्री० [अ० फजर] दे० 'फजर' । उ०—फजरि आनि हाजरि भयो, सुरजब करी सलाम ।—ह० रासो, पृ० ११४ ।

फजल[1]—संज्ञा पुं० [अ०] अनुग्रह । कृपा । मेहरबानी । उ०—दिया जिवजान जो पिया पहिचान ले । राह से रोशनी फजल आवै ।—तुरसी० श०, पृ० २० ।

फजल†[2]—संज्ञा पुं० [अ० फ़ज्र] दे० 'फजर' ।

फजिर†—संज्ञा स्त्री० [अ० फजर] दे० 'फजर' ।

फजिल†—संज्ञा पुं० [अ० फज्ल] दे० 'फजल' ।

फजिहत†—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ज़ीहत] अप्रतिष्ठा । फजीहत ।

फजिहतिताई⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० फजीहति+ताई (प्रत्य०)] फजीहत होने का भाव । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती । उ०—काके ढिग जाई काहि कबित सुनाई भाई अब कविताई रही फजिहतिताई है ।—कविता कौ०, भा० १, पृ० ३६१ ।

फजीत⑤—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ज़ीहत] दे० 'फजीहत' । उ०—रसियो नागी राँड़ सूँ, फसियो होग्ग फजीत ।—बाँकी० ग्रं०, भा०२, पृ० २ ।

फजीता⑤†—संज्ञा पुं० [अ० फ़ज़ीहत] दे० 'फजीहत' ।

फजीती†—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ज़ीहत] दे० 'फजीहत' ।

फजीलत—संज्ञा स्त्री० [अ०] उत्कृष्टता । श्रेष्ठता ।

मुहा०—फजीलत की पगड़ी = विद्वत्तासूचक पदक वा चिह्न । उ०—जिन्हें इस हुनर में फजीलत की पगड़ी हासिल है वे क्या नहीं कर सकते ।—भट्ट (शब्द०) ।

विशेष—मुसलमानों में यह चाल है कि जब कोई पूर्ण विद्वान् होता है और विद्वानों की सभा में अपनी विद्वत्ता को प्रमाणित करता है तब सब विद्वान् वा प्रधान उसके सिर पर पगड़ी बाँधते हैं जिसे फजीलत की पगड़ी कहते हैं । इस पगड़ी को बाँधकर वह जिस सभा मे जाता है लोग उसका आदर और प्रतिष्ठा करते हैं ।

फजीहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दुर्दशा । दुर्गति । अपमान । बदनामी । उ०—(क) तुलसी परिहरि हरिहरहिं पाँवर पूजहिं भूत । अंत फजीहत होहिंगे गनिका के से पूत ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) साईं नदी समुद्र को मिली बड़प्पन जानि । जाति नसायो मिलत ही मान महत की हानि । मान महत की हानि, कहो

अब कैसे कीजै। जल खारी ह्वै गयो ताहि कहो कैसे पीजै। कह गिरधर कविराय कच्छ औ मच्छ सकुचाई। बड़ी फजीहत होय तवौ नदियन की साईं।—गिरधर (शब्द०)।

फजीहतिⓊ—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़जीहत] फजीहत। दुर्दशा। उ०—जब डायन की सुधि चीन्ही। तब पकरि फजीहति कीन्ही।—सुंदर० ग्रं०, भा०१, पृ० १३९।

फजीहती—संज्ञा स्त्री० [हिं० फजीहत] दे० 'फजीहत'।

फजूल—वि० [अ० फ़ुजूल] जो किसी काम का न हो। व्यर्थ। निरर्थक। जैसे,—(क) वहाँ आने जाने मे फजूल १०) खर्च हो गए। (ख) तुम तो दिन भर फजूल बातें किया करते हो।

फजूलखर्च—वि० [फ़ा० फ़ुजूलखर्च] अपव्ययी। बहुत खर्च करनेवाला।

फजूलखर्ची—संज्ञा स्त्री० [फा० फ़ुजूलखर्ची] व्यर्थ व्यय करना। अपव्यय।

फज्जरⓊ—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़जर] दे० 'फजर'। उ०—फाजल सेख खुलती फज्जर। असुर धसे लागौ अति आतुर।—रा० रू०, पृ० २५७।

फज्ल—संज्ञा पुं० [अ० फ़ज्ल] दे० 'फजल'।

फझियतⓊ†—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़जीहत] दे० 'फजीहत'। उ०—फबत फाग फझियत बड़ी चलन चहत चदुराइ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३६।

फट्—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. एक अनुकरण शब्द। २. एक तांत्रिक मंत्र जिसे अस्त्रमंत्र भी कहते हैं और जिसका प्रयोग पात्रादि प्रक्षालन, अघमर्षण, प्रक्षेपन, अतरिक्ष विघ्नोत्सादन, करांगन्यास, अग्न्यावाहन आदि में होता है।

फट[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी फैले तल की हलकी पतली चीज के हिलने या गिरने पड़ने का शब्द। जैसे, कुत्ते का कान फट फट करना, सूप फट फट करना।

यौ०—फट फट

मुहा०—फट से = तुरंत। झट।

फट†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पट] १. चटाई या टाट का टुकड़ा जो गाड़ी के नीचे रखा जाता है। फट्ट (बुंदेलखंड)। २. दुतकार। फटकार।

फटक[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्फटिक, पा० फटिक] बिल्लौर पत्थर। स्फटिक। उ०—(क) सेत फटक जस लागै गढ़ा। बाँध उठाय चहूँ गढ़ मढ़ा।—जायसी (शब्द०)। (ख) सेत फटक मनि हीरै बीधा। इहि परमारथ श्री गोरष सीधा।—गोरख०, पृ० १७०।

फटक[2]—क्रि० वि० तत्क्षण। झट। उ०—कह गिरिधर कविराय सुनो हो मेरे नोखे। गयो फटक ही टूटि चोंच दाड़िम के धोखे।—गिरधर राय (शब्द०)।

फटक[3]—संज्ञा पुं० [हिं० फटकना] छटकने या पछोरने की वस्तु। सूप। छाज। उ०—मूँग मसूर उरद चनदारी। कनक फटक धरि फटकि पछारी।—सूर०, १०।३६६।

फटकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० फटकना] वह भूसी या दूसरे निरर्थक पदार्थ जो किसी अन्न आदि को फटकने पर निकलकर बाहर या अलग गिरते हैं। वह जो फटककर निकाला जाय।

फटकना[1]—क्रि० स० [अनु० फट, फटक] १. हिलाकर फट फट शब्द करना। फटफटाना। उ०—देखे नंद चले घर आवत।...फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर गररी करति लराई। माथे पर ह्वै काग उड़ान्यो कुसगुन बहुतक पाई।—सूर०, १०।५४१। २. पटकना। झटकना। फेंकना। उ०—पान लै चल्यो नृप आन कीन्हो।...नेकु फटक्यो लात सबद भयो आघात, गिरयो भहरात सकटा सँहारयो। सूर प्रभु नंदलाल मारयो दनुज ख्याल, मेटि जंजाल ब्रज जन उबारयो।—सूर०, १०।६२। ३. फेंकना। चलाना। मारना। उ०—(क) असुर गजरूढ़ ह्वै गदा मारै फटकि स्याम अंग लागि सो गिरे ऐसे। बाल के हाथ ते कमल अमल नालयुत लागि गजराज तन गिरत जैसे।—सूर (शब्द०)। (ख) राम हल मारि सो वृक्ष भुरकुट कियो द्विविद शिर फटि गयो लगत ताके। बहुरि तरु तोरि पाषाण फटकन लग्यो हल मुसल करन परहार बाँके।—सूर (शब्द०)। ४. सूप पर अन्न आदि को हिलाकर साफ करना। अन्न आदि का कूड़ा कर्कट निकालना। उ०—(क) सत संगति है सूप ज्यों त्यागै फटकि असार। कहै कबीर हरि नाम लै परसै नाहिं विकार।—कबीर (शब्द०)। (ख) पहले फटकै छाज कै थोथा सब उड़ि जाय। उत्तम भाँड़े पाइयै फटकंता ठहराय।—कबीर (शब्द०)। (ग) थोथी कथनी काम न आवै। थोथा फटकै उड़ि उड़ि जावै।—चरण० बानी, पृ० २१५।

मुहा०—फटकना पछारना = दे० 'फटकना पछोरना'। उ०—मूँग मसूर उरद चनदारी। कनक फटक धरि फटकि पछारी।—सूर०, १०।३६६। फटकना पछोरना = (१) सूप या छाज पर हिलाकर साफ करना। उ०—कन थोरे काँकर घने देखा फटक पछोर।—मलूक० बानी, पृ० ४०। (२) अच्छी तरह जाँच पड़ताल करना। ठोंकना बजाना। जाँचना। परखना। उ०—(क) देश देश हम बागिया ग्राम ग्राम की खोरि। ऐसा जियरा ना मिला जो लेइ फटकि पछोरि।—कबीर (शब्द०)। तुम मधुकर निर्गुन निजु नीके, देखे फटकि पछोरे। सूरदास कारेन की संगति को जावै अब गोरे।—सूर०, १०।४३८१।

५. रूई आदि को फटके से धुनना।

फटकना[2]—क्रि० अ० [अनु०] १. जाना। पहुँचना। उ०—कृष्ण हैं, उद्धव हैं, पर ब्रजवासी उनके निकट फटकने नहीं पाते।—प्रेमसागर (शब्द०)। २. दूर होना। अलग होना। उ०—(क) एकहि परनि परे खग ज्यो हरि रूप माँझ लटके। मिले जाइ हरदी चूना ज्यों फिर न सूर फटके।—सूर०, १० २३८६। (ख) ललित त्रिभंगी छवि पर अँटके फटके मो सों तोरि। सूर दसा यह मेरी कीन्ही आपुनि हरि सों जोरि।—सूर०, १०।२२४७। ३. तड़फड़ाना। हाथ पैर पटकना। ४. श्रम करना। हाथ पैर हिलाना।

फटकना[२]—संज्ञा पुं० गुलेल का फीता जिसमें गुलता रखकर फेंकते हैं।

फटकरना[१]—क्रि० अ० [हिं० फटकारना] फटकारा जाना।

फटकरना[२]—क्रि० स० [हिं० फटकना] फटकना। उ०—खोट रतन सोई फटकरै। केहि घर रतन जो दारिद हरै।—जायसी (शब्द०)।

फटका[१]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. धुनिए की धुनकी जिससे वह रूई आदि धुनता है। २. वह लकड़ी जो फले हुए पेड़ों मे इसलिये बाँधी जाती है कि रस्सी के हिलने से वह उठकर गिरे और फट फट का शब्द हो जिससे फल खानेवाली चिड़ियाँ उड़ जायँ अथवा पेड़ के पास न आएँ। ३. कोरी तुकबंदी। रस और गुण से हीन कविता।

क्रि॰ प्र०—जोड़ना।

४. तड़फड़ाहट।

मुहा०—फटका खाना = तड़फना। तड़फड़ाना।

फटका[२]—संज्ञा पुं० [हिं० फाटक] दे० 'फाटक'।

फटका[३]—संज्ञा पुं० [हिं० फटकन] एक प्रकार की बलुई भूमि जिसमें पत्थर के टुकड़े भी होते हैं और जो उपजाऊ नहीं होती।

फटका[४]—संज्ञा पुं० [हिं० फटकना] फटकने, पछोरने या धुननेवाली गालीगलौज भरी कजली। उ०—इन कजलियों को वे लोग 'फटका' के नाम से पुकारते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४५।

फटकाना[१]—क्रि० स० [हिं० फटकना] १. अलग करना। २. फेंकना। उ०—(क) आपुन चढ़े कदम पर धाई।···जाइ कही मैया के आगे लेहु सबै मिलि मोहि बँधाई। मोको जुरि मारन जब धाईं तब दीन्ही गेंड़ुरि फटकाई।—सूर०, १०। १४१८। (ख) काहू की गगरी ढरकावै। काहू की इँडुरी फटकावै।—सूर०, १०।१३६६।

फटकाना[२]—क्रि० स० [हिं० फटकना का प्रेरणार्थक रूप] फटकने का काम दूसरे से कराना।

फटकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० फटकारना] १. फटकारने की क्रिया या भाव। झिड़की। दुतकार। जैसे,—दो चार फटकार सुनाओ तब वह मानेगा।

क्रि० प्र०—सुनाना।—बताना।

२. शाप। दे० 'फिटकार'।

फटकारना—क्रि० स० [अनु०] १. (शस्त्र आदि) मारना। चलाना। उ०—(क) खटपट चोट गदा फटकारी। लागत शब्द कुलाहल भारी।—लल्लू (शब्द०)। (ख) अर्जुन अग्नि बान फटकारा। सब घर करे निमिष महँ छारा।—सबल० (शब्द०)। २. एक में मिली हुई बहुत सी चीजों को एक साथ हिलाना या झटका मारना जिसमें वे छितरा जायँ। जैसे, दाढ़ी फटकारना, चुटिया फटकारना। उ०—धायन के धमकै उठे दियरे डमरु हरि डार। नचे जटा फटकारि कै भुज पसारि तत्कार।—लाल (शब्द०)। ३. प्राप्ति करना। लेना। लाभ उठाना। जैसे,—आज कल तो वे रोज कचहरी से पाँच सात रुपए फटकार लाते हैं। ४. कपड़े को पत्थर आदि पर पटक-कर साफ करना। अच्छी तरह पटक पटककर धोना। ५. झटका देकर दूर फेंकना। उ०—(क) नीकें देहु न मेरी गिडुरी।···काहूँ नही डरात कन्हाई बाट घाट तुम करत अचगरी। जमुना दह गिडुरी फटकारी फोरी सब मटकी अरु गगरी।—सूर०, १०।१४१६। (ख) ब्रज गौंडे कोउ चलन न पावत।···काहू की इँडुरी फटकारत काहू की गगरी ढरकावत।—सूर०, १०।१४३४। ६. दूर करना। अलग करना। हटाना। ७. क्रुद्ध होकर किसी से ऐसी कड़ी बातें कहना जिससे वह चुप या लज्जित हो जाय। खरी और कड़ी बात कहकर चुप करना। जैसे,—आप उन्हें जब तक फटकारेंगे नहीं तब तक वे नहीं मानेंगे।

संयो० क्रि०—देना।

फटकिया—संज्ञा पुं० [देश०] मीठा नामक विष के एक भेद का नाम यह गोबरिया से कम विषैला होता है और उससे छोटा भी होता है।

फटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फटक] १. टोकरी के आकार का छोटे मुँह का पिंजड़ा जिसमें चिड़ीमार चिड़ियों को पकड़कर रखते हैं। २. दे० 'फटका'।

फटना—क्रि० अ० [हिं० फाड़ना का अक० रूप] १. आघात लगने के कारण अथवा यों ही किसी पोली चीज का इस प्रकार टूटना या खंडित होना अथवा उसमें दरार पड़ जाना जिसमें भीतर की चीजें बाहर निकल पड़ें अथवा दिखाई देने लगें। जैसे, दीवार फटना, जमीन फटना, सिर फटना, जूता फटना। उ०—लागत सीस बीच ते फटें। टूटहि जाँघ भुजा धर कटें।—लल्लू (शब्द०)।

मुहा०—छाती फटना = असह्य दुःख होना। मानसिक वेदना होना। बहुत अधिक दुःख पहुँचना। उ०—(क) तुम बिन छिन छिन कैसे कटे। पलक ओट में छाती फटे।—लल्लू (शब्द०)। (ख) न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जा रहा है।—भारतेंदु ग्र०, भा०१, पृ० ३१०। (किसी से) मन या चित्त फटना = विरक्ति होना। संबंध रखने को जी न चाहना। तबीयत हट जाना। जैसे,—अब की बार के उसके व्यवहार से हमारा मन फट गया।

२. झटका लगने के कारण वा और किसी प्रकार किसी वस्तु का कोई भाग अलग हो जाना। जैसे, कपड़ा फटना, किताब फटना। ३. किसी पदार्थ का बीच से कटकर छिन्न भिन्न हो जाना। जैसे, काई फटना, बादल फटना। ४. अलग हो जाना। पृथक् हो जाना। ५. किसी गाढे द्रव पदार्थ में कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे उसका पानी और सार भाग दोनों अलग अलग हो जायँ। जैसे, दूध फटना, खून फटना।

संयो० क्रि०—जाना ।

६. किसी बात का बहुत अधिक होना । बहुत ज्यादा होना ।

विशेष—इस अर्थ में प्रायः यह संयो० क्रि० 'पड़ना' के साथ बोला जाता है । जैसे, रूप फटा पड़ना, आफत का फट पड़ना ।

मुहा०—फट पड़ना = अचानक आ पहुँचना । सहसा आ पड़ना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. असह्य वेदना होना । बहुत अधिक पीड़ा होना । जैसे,—मारे दर्द के सिर फट रहा है ।

मुहा०—फटा जाना या पड़ना = बहुत अधिक पीड़ा होना । बहुत तेज दर्द होना । जैसे,—ऐसी पीड़ा है कि हाथ फटा जा रहा है ।

फटफट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. फट फट शब्द होना । २. बकवाद । व्यर्थ की बात ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—फटफट होना = तकरार होना । कहा सुनी होना ।

३. जूते आदि के पटकने का शब्द ।

फटफटाना[1]—क्रि० स० [अनु०] १. व्यर्थ बकवाद करना । २. हिलाकर फट फट शब्द करना । फड़फड़ाना। जैसे, कबूतर का पर फटफटाना, कुत्ते का कान फटफटाना । उ०—हरुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि के नर नारी । फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी । —भारतेंदु ग्रं०, भा०१, पृ० २६८ । ३. हाथ पैर मारना । प्रयास करना । इधर उधर फिरना । टक्कर मारना ।

फटफटाना[2]—क्रि० अ० फटफट शब्द होना ।

फटहा‡—वि० [हिं० फटना] १. फटा हुआ । २. अंड बंड बकनेवाला । गाली गलौज करनेवाला ।

फटा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साँप का फन । २. घमंड । शेखी । गरूर । ३. दाँत (को०) । ४. छल । धोखा ।

फटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० फटना] छिद्र । छेद । दरार ।

मुहा०—किसी के फटे में पाँव देना = झगड़े के बीच में पड़ना । दूसरे की आपत्ति को अपने ऊपर लेना ।

फटा[3]—वि० १. फटा हुआ । जो फट गया हो । २. बेकार का ।

फटाका†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. 'फट' की तेज या ऊँची आवाज । २. पटाखा ।

फटाटोप—संज्ञा पुं० [सं०] साँप के फन का फैलाव या विस्तार [को०] ।

फटाटोपी—संज्ञा पुं० [सं० फटाटोपिन्] साँप । सर्प ।

फटाव—संज्ञा पु० [हिं० फटना + आव (प्रत्य०)] १. फटने की क्रिया या स्थिति । २. दरार । शिगाफ । फटन ।

फटिक—संज्ञा पुं० [सं० स्फटिक, पा० फटिक] १. काँच की तरह सफेद रंग का पारदर्शक पत्थर । बिल्लौर । विशेष—दे० 'स्फटिक' । उ०—(क) सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ऐसे कहत गए अपने पुर सबहि विलक्षण देख्यो । मणिमय महल फटिक गोपुर लखि, कनक भूमि अवरेख्यो ।—सूर (शब्द०) । २. मरमर पत्थर । संग मरमर ।

यौ०—फटिकशिला, फटिकसिला = स्फटिक की शिला । उ०—(क) जों गज फटिकशिला मे देखत दसनन जाय अरत । जो तू सूर सुखहि चाहत है तो क्यों विषय परत ।—सूर (शब्द०) । (ख) फटिकसिला बैठे द्वौ भाई ।—मानस, ४।२६ ।

फटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्फटिक (= फटिक)] एक प्रकार की शराब जो जौ आदि से खमीर उठाकर बिना खीचे बनाई जाती है ।

फट्ठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० फटना] [स्त्री० फट्ठी] चीरी हुई बाँस की छड़ । बाँस को बीच से फाड़ या चीरकर बनाया हुआ लट्ठा । फलटा ।

फट्ठा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पट] टाट ।

मुहा०—फट्ठा लौटना या उलटना = दिवाला निकालना । टाट उलटना ।

फट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फट्टा] बाँस की चीरी हुई पतली छड़ ।

फड़[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पण] १. दाँव । जुए का दाँव जिसपर जुआरी बाजी लगाकर जूआ खेलते हैं । २. वह स्थान जहाँ जुआरी एकत्र होकर जूआ खेलते हों । जूआखाना । जूए का अड्डा । ३. वह स्थान जहाँ दूकानदार बैठकर माल खरीदता या बेचता हो । ४. पक्ष । दल । उ०—हटकि हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की कीन्ही तब नौरंग ने भेंट सिवराज की ।—भूषण (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

फड़[2]—संज्ञा पुं० [सं० पटल वा फल] १. गाड़ी का हरसा । २. वह गाड़ी जिसपर तोप चढ़ाई जाती है । चरख ।

फड़[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फर'

फड़[4]—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'फट' ।

फड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] फड़कने की क्रिया या भाव ।

फड़कन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़कना] १. फड़कने की क्रिया या भाव । फड़फड़ाहट । २. धड़कन । ३. उत्सुकता । लालसा ।

फड़कन[2]†—वि० १. भड़कने या फड़कनेवाला । जैसे, फड़कन बैल । २. तेज । चंचल ।

फड़कना—क्रि० अ० [अनु०] १. फड़ फड़ करना । फड़फड़ाना । उछलना । बार बार नीचे ऊपर या इधर उधर हिलना । उ०—जिन तन पै जवानी की पड़ीं फड़कैं थी बोटी । उस तन को न कपड़ा है न उस पेट को रोटी ।—नजीर (शब्द०) ।

मुहा०—फड़क उठना = उमंग मे होना । आनंदित होना । प्रसन्न होना । फड़क जाना = मुग्ध होना ।

२. किसी अंग या शरीर के किसी स्थान मे अचानक स्फुरण होना । किसी अंग में गति उत्पन्न होना । उ०—इतनी बात

सुनते ही रूक्मिणी जी की छाती से दूध की धार बह निकली और बाईं बाँह फड़कने लगी।—लल्लू (शब्द०)।

विशेष—लोगों को विश्वास है कि भिन्न भिन्न अंगों के फड़कने का शुभ या अशुभ परिणाम होता है।

३. हिलना डोलना। गति होना।

मुहा०—बोटी फड़कना = अत्यंत चंचलता होना।

४. तड़फड़ाना। घबड़ाना। स्थिर न रहना। चंचल होना। क्रिया के लिये उद्यत होना। ५. पक्षियों का पर हिलना।

फड़काना—क्रि० स० [हिं० फड़कना का प्रे० रूप] १. दूसरे को फड़कने में प्रवृत्त करना। २. उमंग दिलाना। उत्सुक बनाना। ३. हिलाना। विचलित करना।

मुहा०—फड़का देना = मन में उमंग ला देना। तबियत फड़क जाना। उ०—मगर वाह रे मौलवी, ऐसा गर्मागर्म फिकरा चुस्त किया कि फड़का दिया। इस सूझ बूझ के कुरबान।—सैर कु०, पृ० २६।

फड़कापेलन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बैल जिसका एक सींग तो सीधा ऊपर को होता है और दूसरा नीचे को झुका होता है।

फड़नवीस—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़र्दनवीस] मराठों के राजत्वकाल का एक राजपद।

विशेष—पहले यह पद केवल उन्हीं लोगों का माना जाता था जो राजसभा में रहकर साधारण लेखकों का काम करते थे। पर पीछे यह पद उन लोगों का माना जाने लगा जो दीवानी या माल विभाग के प्रधान कर्मचारी होते थे। ये लोग लगान वसूल करनेवालों का हिसाब जाँचा और लिया करते थे। बड़े बड़े इनाम या जागीरें देने की व्यवस्था भी ये ही लोग किया करते थे।

फड़ना(पु)†—क्रि० स० [सं० फएड (= पेडू। पेट)] फाँड़ बाँधना। काछना। पहनना। उ०—फड़ि कचोठा हर इसर बोलावेट, मगन जना सबे कोटि कोटि पावे।—विद्यापति, पृ० ५१५।

फड़ फड़—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] 'फड़ फड' की आवाज होना। कागज या चिड़ियों के पंखों के बार बार उड़ने या हिलने से उत्पन्न ध्वनि या आवाज। उ०—फड़ फड़ करने लगे जाग पेड़ों पर पक्षी।—साकेत, पृ० ४०३।

फड़फड़ाना[1]—क्रि० स० [अनु०] १. फड़फड़ शब्द उत्पन्न करना। हिलाना। जैसे, पर फड़फड़ाना। २. दे० 'फटफटाना'।

फड़फड़ाना[2]—क्रि० अ० १. फड़ फड शब्द होना। २. घबराना। ३. तड़फड़ाना। ४. उत्सुक होना।

फड़बाज—संज्ञा पुं० [हिं० फड़ + फा० बाज़ (प्रत्य०)] वह जिसके यहाँ जुए का फड बिछता हो। अपने यहाँ लोगों को जूआ खेलानेवाला व्यक्ति।

फड़बाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़बाज + ई (प्रत्य०)] १. फड़बाज का भाव। २. अपने यहाँ दूसरों को जूआ खेलाने की क्रिया।

फड़वाना—क्रि० स० [हिं० फाड़ना का प्रेरणार्थक] किसी अन्य से फाड़ने का काम कराना।

फड़िंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० फड़िङ्ग] १. फतिंगा। फनिगा। २. झींगुर [को०]।

फड़िका(पु)—संज्ञा पुं० [सं० फलक, हिं० फरका] दे० 'फरका'। उ०—आपण ही टाटी फड़िका आपण ही बंध। आपण ही मृतक आपण ही कंध।—गोरख०, पृ० १३६।

फड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० फड़ (= दुकान) + इया (प्रत्य०)] १. वह बनिया जो फुटकर अन्न बेचता हो। २. वह पुरुष जो जूआ खेलाने का व्यापार करता हो। जुए के फड़ का मालिक।

फड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़] एक गज चौड़ी, एक गज ऊँची और तीस गज लंबी पत्थरों या ईंटों आदि की ढेरी।

फड़ुआ‡—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० फड़ुई] दे० 'फावड़ा'।

फड़ुई[1]‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़ वा भाड़] लाई। फरवी।

फड़ुई†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़ुआ या फड़ुहा] १. छोटा फावड़ा। २. एक प्रकार का लकड़ी का कड़छा जिससे नील का माठ मथा जाता है।

फड़ुहा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० फड़ुही] फावड़ा।

फड़ुही‡[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़ या भाड़] लाई। फरवी।

फड़ुही‡[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फड़ुहा] दे० 'फड़ुई[2]'।

फड़ोलना†—क्रि० स० [सं० स्फुरण] किसी चीज को उलटना। इधर उधर या ऊपर नीचे करना।

फण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० फणा] १. साँप का सिर उस समय जब वह अपनी गर्दन के दोनों ओर की नलियों में वायु भर कर उसे फैलाकर छत्राकार बना लेता है। फन। उ०—फण न बढ़ावत नागहू जो छेड़यो नहि होइ।—शकुंतला, पृ० १२६।

पर्या०—फणा। फटा। फट। स्फट। दर्वी। भोग। स्फुट।

विशेष—इस शब्द के अंत में धर, कर, धृत्, वत् शब्द लगाकर बनाया हुआ समस्त पद साँप का बोधक बनता है।

२. रस्सी का फंदा। मुद्धी। फौआरी। ३. नाव में ऊपर के तख्ते की वह जगह जो सामने मुँह के पास होती है। नाव का ऊपरी अगला भाग।

फणकर—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

फणधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप। २. शिव [को०]।

फणभर—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

फणभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्प। साँप। २. नौ की संख्या। ३. आठ की संख्या [को०]।

फणमंडल—संज्ञा सं० [सं० फणमण्डल] साँप का गोलाकार फण। कुंडलित फण [को०]।

फणमणि—संज्ञा पुं० [सं०] साँप के फण पर की मणि।

फणवान्—संज्ञा पुं० [सं० फणवत्] सर्प।

फणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'फण'।

यौ०—फणाकर=साँप। फणाधर=(१) सर्प। (२) शिव। फणाफलक=साँप के फण का आभोग या विस्तार। फणाभर, फणाभृत्=सर्प।

फणाल (पु)—वि० [सं० फण+हिं० आल (प्रत्य०)] फणवाला। उ०—सहस फणालइ काल भूयंग, जीमण थी उतरउ वामेइ अंग।—बी० रासो, पृ० ५६।

फणावान्—संज्ञा पुं० [सं० फणावत्] साँप [को०]।

फणिक—संज्ञा पुं० [सं० फणि+हिं० क (प्रत्य०)] साँप। नाग। उ०—सखी री नंदनदन देखु। धूरि धूसरि जटा जुटली हरि किए हर भेखु। नीलपाट पिरोइ मणि गर फणिक धोखे जाय। खुन खुना कर हँसत मोहन नचत डौंरु बजाय।—सूर (शब्द०)।

फणिकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागकन्या। नाग की कन्या [को०]।

फणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] काले गूलर का पेड़।

फणिकार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जो वृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण में था।

फणिकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

फणिकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

फणिखेल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी का नाम [को०]।

फणिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार नाड़ीचक्र का नाम।

विशेष—यह एक सर्पाकार चक्र होता है जिसमें भिन्न भिन्न स्थानो पर नक्षत्रों के नाम लिखे रहते हैं। इस चक्र से विवाह के समय वर और कन्या की नाड़ी का मिलान किया जाता है; पर यदि वर और कन्या दोनों एक ही राशि के हों तो इस चक्र का मिलान नहीं होता।

फणिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की तुलसी, जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं।

फणिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाशतावरी। बड़ी सतावर। २. कँगहिया नामक ओषधि। महासमंगा।

फणिजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'फणिजिह्वा'।

फणिज्झ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'फणिज्झक'।

फणिज्झक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटे पत्ते की तुलसी। फणिजा। २. श्यामा तुलसी। ३. नीबू।

फणित—वि० [सं०] १. गत। गया हुआ। २. द्रवित। तरल किया हुआ [को०]।

फणितल्प—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प की शय्या [को०]।

फणितल्पग—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

फणिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० फणिन्] १. साँपिन। २. एक ओषधि। सर्पिणी [को०]।

फणिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'फणींद्र'।

फणिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

फणिफेन—संज्ञा पुं० [सं०] अफीम। अहिफेन।

फणिभाषित—वि० [सं०] पतंजलि द्वारा उक्त या कथित [को०]।

फणिभाष्य—संज्ञा पुं० [सं०] पतजलि रचित व्याकरण ग्रंथ। महाभाष्य [को०]।

फणिभुज्—संज्ञा पुं० [सं० फणिभुक्] १. गरुड़। २. मोर (को०)।

फणिमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप की मणि।

फणिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का चोरों का एक प्रकार का औजार।

विशेष—इससे वे सेंध लगाने के समय मिट्टी खोदकर फेंकते थे।

फणिलता, फणिवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

फणिहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० फणिहन्त्री] गंधनाकुली। नेउरकंद। रास्ना।

फणींद्र—संज्ञा पुं० [सं० फणीन्द्र] १. शेषनाग। २. वासुकी। ३. महर्षि पतंजलि। ४. बड़ा साँप।

फणी—संज्ञा पुं० [सं० फणिन्] १. साँप। उ०—काल फणी की मणि पर जिसने फैलाया है अपना हाथ। —साकेत, पृ० ३८६। २. केतु नामक ग्रह। ३. सीसा। ४. मरुवा। ५. महाभाष्यकार पतंजलि का नाम (को०)। ६. सर्पिणी नामक ओषधि।

फणीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शेष। २. महर्षि पतंजलि। ३. वासुकि। ४. बड़ा साँप।

फणीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'फणीश' [को०]।

फणीश्वर चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र।

विशेष—इसके द्वारा शनि ग्रह की नक्षत्रस्थिति से सप्त द्वीपों के शुभ अशुभ फल का कथन होता है।

फतवा—संज्ञा पुं० [अ० फ़त्वा] मुसलमानों के धर्मशास्त्रानुसार (जिसे शरअ कहते हैं) व्यवस्था जो उस धर्म के आचार्य या मौलवी आदि किसी कर्म के अनुकूल वा प्रतिकूल होने के विषय में देते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

फतह—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़त्ह] १. विजय। जीत। उ०—(क) दास तुलसी गई फतह कर अगम को। सुरत सज मिली जहाँ प्रीतम प्यारा।—तुरसी० श०, पृ० २१। (ख) कभी उस बेईमान के सामने लड़कर फतह नही मिलती है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२१।

२. सफलता। कृतकार्यता।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—मिलना।—होना।

यौ०—फतहनामा=वह कविता या लेख जो किसी के विजयोपलक्ष्य में लिखा जाय। फतहमद। फतहयाब=विजेता। जिसने विजय पाई हो। फतहयाबी=विजयप्राप्ति। जीत होना।

फतहमंद—वि० [अ० फ़त्ह+फ़ा० मंद] जिसे फतह मिली हो। जिसकी जीत हुई हो। विजयी।

फतात—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़तात] युवती । तरुणी । जवान औरत [को०] ।

फतिंगा—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्ग] [स्त्री० फतिंगी] किसी प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा, विशेषतः वह कीड़ा जो बरसात के दिनों में अग्नि या प्रकाश के आसपास मँडराता हुआ अंत में उसी में गिर पड़ता है । पतिंगा । पतंग । उ०—जो हमें मेली दिए जैसा मिले । हो फतिंगे के मिलन साजो मिलन । —चुभते०, पृ० ६५ ।

फतील—संज्ञा पुं० [अ० फ़तील] दे० 'फतीला' ।

फतीलसोज—संज्ञा पुं० [अ० फ़तील + फ़ा० सोज़] १. पीतल या और किसी धातु की दीवट जिसमें एक वा अनेक दिए ऊपर नीचे बने होते हैं । चौमुखा ।

विशेष—इनमें तेल भरकर बत्तियाँ जलाई जाती है । उन दीपों में किसी में एक, किसी में दो और किसी में चार बत्तियाँ जलती हैं ।

२. कोई साधारण दीवट । चिरागदान ।

फतीला—संज्ञा पुं० [अ० फ़तीलह्] १. बत्ती के आकार में लपेटा कागज जिसपर यंत्र लिखा हो । पलीता । उ०—तावीज फतीला फाल फिसू और जादू मंतर लाना है ।—राम० धर्म०, पृ० ९२ । २. वह बत्ती जिससे रंजक में आग लगाई जाती है । ३. दीपवर्तिका । दीए की बत्ती । ४. जरदोजी का काम करनेवालों की लकड़ी की वह तीली जिसपर बेल बूटा और फूलों की डालियाँ बनाने के लिये कारीगर तार को लपेटते हैं ।

यौ०—फतीलासोज=दे० 'फतीलसोज' ।

फतुही†—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़तूही] दे० 'फतूही' । उ०—अँगले के बजाय वे बटन की फतुही पहने ।—अभिशप्त, पृ० १३८ ।

फतूर—संज्ञा पुं० [अ० फ़ुतूर] १. विकार । दोष ।

क्रि० प्र०—आना ।

२. हानि । नुकसान । ३. विघ्न । बाधा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।

४. उपद्रव । खुराफात ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—खड़ा करना ।

फतूरिया—वि० [अ० फ़ुतूर, हिं० फतूर+इया (प्रत्य०)] जो किसी प्रकार का फतूर या उत्पात करे । खुराफात करनेवाला । उपद्रवी ।

फतूह—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ुतूह 'फ़तह' का बहुवचन] १. विजय । जीत । जय । उ०—(क) सुनत फतूह शाह सुख पायो । बढि नवाब को मन सब धायो ।—लाल (शब्द०) । (ख) दबटचो जोर सुभट समूह । वह बलिराम लेत फतूह ।—सूदन (शब्द०) । (ग) पुहुमि को पुरहूत शत्रुशाल को सपूत संगर फतूहैं सदा जासों अनुरागती ।—मतिराम (शब्द०) । २. विजय में प्राप्त धन आदि । वह धन जो लड़ाई जीतने पर मिला हो । ३. लूट का माल ।

फतूही—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ुतूही] १. एक प्रकार की पहनने की कुरती जो कमर तक होती है और जिसके सामने बटन या घुंडी लगाई जाती है । इसमें आस्तीन नहीं होती । सदरी । उ०—फतूही को वेस्ट कोट पुकारती ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५९ । २. बहँकटी । सलूका । ३. विजय या लूट का धन । लड़ाई या लूट मे मिला हुआ माल ।

क्रि० प्र०—मारना ।

फतेⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़त्ह] दे० 'फतह' । उ०—(क) रणथ-भवँर की फते दे, कदमु आऊँ चाह ।—ह० रासो, पृ० ८४ । (ख) सामाँ सैन सयान की सबै साहि के साथ । बाहु बली जयसाहि जू फते तिहारे हाथ ।—बिहारी (शब्द०) । (ग) फिरचो सुफेरि साथ कों । फते निसान गाथ कों ।—सूदन (शब्द०) ।

फतेह—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़त्ह] विजय । जीत । जय । उ०—भौसिला अभंग तू तो जुरत जहाँई जंग तेरी एक फतेह होत मानो सदा संग री ।—भूषण (शब्द०) ।

फतैⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़त्ह] दे० 'फतह' । उ०—जीत लीधी जमी कठैंयी जेणरी; पराजै हुई नँह फतै पाई ।—रघु० रू०, पृ० ३१ ।

फत्कारी—संज्ञा पुं० [सं० फत्कारिन्] पक्षी [को०] ।

फत्ह—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़त्ह] दे० 'फतह' । उ०—आज यह फत्ह का दरबार मुबारक होए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२ ।

फत्थरⓅ‡—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तर, प्रा०, हिं० पत्थर] दे० 'पत्थर' । उ०—तू नादिर हुनर हुनर सूँ करेगा अगर । फत्थर कूँ सोना होर सोने कूँ फत्थर ।—दक्खिनी०, पृ० ३४९ ।

फदकना—क्रि० अ० [अनु०] १. फद फद शब्द करना । भात, रस आदि का पकने समय फद फद शब्द करके उछलना । खदबद करना । २. दे० 'फुदकना' । उ०—फूने फदकत लै फरी पल कटाछ करवार । करत बचावत बिय नयन पायक घाव हजार ।—बिहारी (शब्द०) । ३. स्पंदित होना । लहराना । तरंगित होना । छलकना । उ०—गऊ पद माँहीं पहौकर फदके, दादर भरंच भिलारे । चात्रिग में चौमासो बोलै, ऐसा समा हमारे ।—गोरख०, पृ० २११ ।

फदका†—संज्ञा पुं० [हिं० फदकना] गुड़ का वह पाग जो बहुत अधिक गाढ़ा न हो गया हो ।

फदाना†—क्रि० अ० [हिं० फँदाना] फँसना । ग्रस्त होना । फंदे में होना । उ०—दुनिया माया मोह फदाना । राग रंग निशिवासर साना ।—कबीर सा०, पृ० २७० ।

फदफदाना—क्रि० अ० [अनु०] १. शरीर में बहुत सी फुंसियाँ या गरमी के दाने निकल आना । २. वृक्षों में बहुत सी शाखाएँ निकलना ।† ३. दे० 'फदकना'—१ ।

फदिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फरिया[१]' ।

फनंकनाⓅ—क्रि० अ० [अनु०] फन् फन् शब्द करना । फनकना ।

उ०—फनंकत सायक चारिहु ओर। भनंकत गोलिन की घनघोर।—सूदन (शब्द०)।

फन[1]—संज्ञा पुं० [सं० फण] १. साँप का सिर उस समय जब वह अपनी गर्दन के दोनों ओर की नलियों में वायु भरकर उसे फैलाकर छत्र के आकार का बना लेता है। फण। उ०—शेषनाग के सहस फन जामें जिह्वा दोय। नर के एकै जीभ है ताही में रह सोय।—कबीर (शब्द०)। २. बाल। ३. भटवाँस। ४. नाँव के डाँड़ का वह अगला और चौड़ा भाग जिससे पानी काटा जाता है। पत्ता। (लश०)। ५. अगला सिरा। अग्रभाग। उ०—थल बेत छुट्टी फनं बेत उट्टी। पृ० रा०, १२।८३।

फन[2]—संज्ञा पुं० [सं० फणी] दे० 'फणी'।

फन[3]—संज्ञा पुं० [अ० फ़न] १. गुण। खूबी। २. विद्या। ३. दस्तकारी। ४. बाजीगरी। इंद्रजाल (को०)। ५. छलने का ढंग। मकर। उ०—नागिन के तो एक फन नारी के फन बीस। जाको डस्यो न फिरि जिऐ मरिहै बिस्वा बीस।—कबीर (शब्द०)।

फनफना—क्रि० अ० [अनु०] हवा में सन् सन् करते हुए हिलना, डोलना या चलना। फन् फन् शब्द करना। फनफनाना।

फनकार[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] फन फन होने का शब्द। वैसा शब्द जैसा साँप के फूँकने या बैल आदि के साँस लेने से होता है।

फनकार[2]—संज्ञा पुं० [अ० फ़न+फ़ा० कार] कलावंत। गुणवाला विद्वान् (को०)।

फनगना†—क्रि० अ० [सं० स्फुटन; हिं० फुनगी] नए नए अंकुरों का निकलना। कल्ला फूटना। पनपना।

फनगा†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० फनगना] १. नई और कोमल डाली। कल्ला। २. बाँस आदि की तीली।

फनगा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्ग] फतिंगा। उ०—पाँखी और फनगे इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३।

फनना†—क्रि० अ० [हिं० फानना] काम का आरंभ होना। काम हाथ में लिया जाना। काम में हाथ लगाया जाना।

फनपतिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० फणिपति] सर्पों का राजा। शेष या वासुकि। उ०—फनपति बीरन देख के, राखे फनहि सकोर।—कबीर सा०, पृ० ८६४।

फनफन—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] १. बार बार फन फन शब्द होना। २. नाक से जोर से मल बाहर निकालना।

फनफनाना—क्रि० अ० [अनु०] १. हवा छोड़कर या चीरकर फन फन शब्द उत्पन्न करना। जैसे, साँप का फनफनाना। २. चपलता के कारण हिलना या इधर उधर करना। उ०—छनछनत तुरंगम तरह हार। फनफनत वदन उच्छलत वार।—सूदन (शब्द०)।

फनस—संज्ञा पुं० [सं० पनस, प्रा० फनस] कटहल।

फना—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ना] १. विनाश। नाश। बरबादी। २. मृत्यु। मौत। उ०—(क) फना को करै कबूल सोई वह काबा पावै।—पलटू०, भा० १, पृ० ७६। ३. लुप्त। गायब। अंतर्धान। उ०—मेरी तो इन हथकंडों से रूह फना होती है।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ६६२।

मुहा०—दम फना होना = मारे भय के जान सूखना। बहुत अधिक भयभीत होना। जैसे,—तुम्हें देखते ही लड़के का दम फना हो जाता है।

फनाना†—क्रि० स० [हिं० फानना] १. प्रारंभ करना। शुरू करना। २. तैयार करना।

फनालीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० फणावली] फनों की पंक्ति। फनों की अवली। उ०—जनम को चाली एरी अद्भुत त्यायाली आजु काली की फनाली पै नचत बनमाली है।—पद्माकर ग्रं०, २३१।

फनाहⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० फना] दे० 'फना'। उ०—भयो तो दिली को पति देखत फनाह आज।—हम्मीर०, पृ० ३७।

फनिंग—संज्ञा पुं० [सं० फणीन्द्र, हिं० फन+इंग (प्रत्य०)] साँप। उ०—दान लेहो सब अंगनि को। अति मद गलित ताल फल ते गुरु इन जुग उरोज उतंगनि को।...कोकिल कीर कपोत किसलता हाटक हंस फनिंगन को।—सूर (शब्द०)।

फनिंदⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० फणीन्द्र] सर्प। फणींद्र। उ०—फैले वृंद फनिंद के गैल छैल नहिं भूल। मेघ पुंज तम कुंज को चली अली अनुकूल।—स० सप्तक, पृ० ३६१।

फनिंदीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० फनिंद + ई (प्रत्य०)] सर्पिणी। नागिन। उ०—नाथि फनिंदहि तोपि फनिंदी प्रगट भयो द्रुत मध्य कलिंदी।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २६८।

फनिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० फण] १. दे० 'फणी'। उ०—स्वाति बूँद बरसै फनि ऊपर सीस विषै होई जाई। वही बूँद के मोती निपजै संगत की अधिकाई।—रैदास बानी, पृ० ७२। २. दे० 'फण'।

फनिकⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फणिक'। उ०—गइ मनि मनहु फनिक फिरि पाई।—मानस, २।४४।

फनिगⓅ[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फणिक'।

फनिग[2]—संज्ञा पुं० [हिं० फतिंगा] फतिंगा। फनगा। उ०—सबद एक उन्ह कहा अकेला। गुरु जस भिंग फनिग जस चेला।—जायसी (शब्द०)।

फनिधर—संज्ञा पुं० [सं० फणिधर] साँप।

फनिपति—संज्ञा पुं० [सं० फणिपति] दे० 'फणिपति'।

फनियाला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० देश०] गज डेढ़ गज लंबी करघे की एक लकड़ी जिसपर तानी लपेटी जाती है और जिसके दोनों सिरों पर दो चूलें और चार छेद होते हैं। लपेटन। तुर।

फनियाला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० फन+इयाला (प्रत्य०)] साँप।

फनिराज—संज्ञा पुं० [सं० फणिराज] फणींद्र।

फनीⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० फणी] दे० 'फणी'।

फनो²—संज्ञा स्त्री० दे० 'फण'।

फनीक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] फनिक। सर्प। उ०—तरिवर हीन भयो बिनु पल्लौ सो मनि बिनु कवन जो कहत फनीका। —सं० दरिया, पृ० ६३।

फनीपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० फणिपति] दे० फणिपति'। उ०— दलके चढ़त फनमंडल फनीपति को।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३६४।

फनूस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फानूस'। उ०—हबसी गुलाम भए देखि कारे केस तेरे, चीनी लिख गालन को फोरत फनूस हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८६४।

फनेस(पु)—संज्ञा पु० [सं० फणीश; हिं० फन+ईस] फनों का स्वामी। वह जिसके अनेक फण हो। शेषनाग। उ०—दास जू बादि जनेस मनेस धनेस फनेस गनेस कहैवो।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३८।

फन्न—संज्ञा पुं० [अ० फ़न्न] दे० 'फन'²।

फन्नी¹—संज्ञा स्त्री० [स० फण] १. लकड़ी आदि का वह टुकड़ा जो किसी ढीली चीज की जड़ में उसे कसने या दृढ़ करने के लिये ठोंका जाता है। पच्चर। २. कंघी की तरह का जुलाहों का एक औजार जो बाँस की तीलियों का बना हुआ होता है और जिससे दबाकर बुना हुआ बाना ठीक किया जाता है।

फन्नी²—वि० [अ० फ़न्नी] फन संबंधी। कला संबंधी [को०]।

फफक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बढ़ती। बाढ़।

फफकना—क्रि० अ० [हिं०] १. बढ़ना। २. दे० 'फफकना'।

फफ्फस—वि० [अनु०] जिसका शरीर बादी आदि के कारण बहुत फूल गया हो। मोटा और भद्दा।

फफकना—क्रि० अ० [अनु०] १. रुक रुककर रोना। २. भभकना जैसे, दिए का।

फफका†—संज्ञा पुं० [अनु०] फफोला। छाला।

फफदना†—क्रि० अ० [सं० प्रपतन या अनु०] १. किसी गीले पदार्थ का बढ़कर फैलना। जैसे, गोबर का फफदना। २. फैलना। बढ़ना (चर्मरोग या घाव आदि के संबंध में)। जैसे, दाद का फफदना। घाव का फफदना।

फफसा†¹—संज्ञा पुं० [सं० फुप्फुस] फुप्फुस। फेफड़ा।

फफसा²—वि० [अनु०] १. फूला हुआ और अंदर से खाली। पोला। २. (फल) जिसका स्वाद बिगड़ गया हो। बुरे स्वाद-वाला। ३. स्वादहीन। फीका।

फफूँद—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाहा या अनु०] दे० 'फफूँदी²'।

फफूँदी(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुबती] स्त्रियों के साड़ी का बंधन। नीवी। उ०—लीन्ही उसास मलीन भई दुति दीन्ही फुँदी फफूँदी की छपाय कै।—देव (शब्द०)।

फफूँदी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० (रूई का) फाहा] काई की तरह की पर सफेद तह जो बरसात के दिनों में फल, लकड़ी आदि पर लग जाती है। भुकड़ी।

विशेष—यह वास्तव में खुमी या कुकुरमुत्ते की जाति के अत्यंत सूक्ष्म उद्भिद है जो जतुओं या पेड़ पौधों, मृत या जीवित शरीर पर ही पल सकते हैं। और उद्भिदों के समान मिट्टी आदि द्रव्यों को शरीरद्रव्य मे परिणत करने की शक्ति इनमें नहीं होती।

फफोर—संज्ञा पु० [सं० ? या देश०] एक प्रकार का जंगली प्याज।

विशेष—यह हिमालय में छह हजार फुट की ऊँचाई तक होता है और प्रायः प्याज की जगह काम में आता है।

फफोला—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्फोट] आग में जलने से चमड़े पर का पोला उभार जिसके भीतर पानी भरा रहता है। छाला। झलका। उ०—कँवल चरन मँह परे फफोला। प्यास से जीभ भई जस ओला।—हिंदी प्रेम गाथा०, पृ० २३६।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

मुहा०—दिल के फफोले फोड़ना = अपने दिल की जलन या क्रोध प्रकट करना। बुखार निकालना। दिल के फफोले फूटना = दिल की जलन या क्रोध प्रकट होना।

फबकना—क्रि० अ० [हिं० फफदना] १. दे० 'फफदना'। २. मोटा होना।

फबड़ा‡—संज्ञा पु० [देश० ?] एक प्रकार की घास। उ०—एक दिवस कृष्ण की संतान मद पीकर मस्त होकर लड़ी और उसने फबड़े उखाड़ उखाड़कर एक दूसरे को मार मारकर सबके सब मर गए।—कबीर मं० पृ० २४५।

फबती—संज्ञा स्त्री० [हिं० फबना] १. वह बात जो समय के अनुकूल हो। देशकालानुसार सूक्ति। २. हँसी की बात जो किसी पर घटती हो। व्यंग्य। चुटकी।

मुहा०—फबती उड़ाना = हँसी उड़ाना। फबती कसना = फबती कहना या उड़ाना। उ०—जमीदार पर फबती कसता, बाम्हन ठाकुर पर है हँसता।—ग्राम्या, पृ० ४५। फबती कहना = चुभती हुई पर हँसी की बात कहना। हँसी उड़ाते हुए चुटकी लेना। हास्यपूर्ण व्यंग्य करना। फबतियाँ होना = चुभती या लगती बातें होना। उ०—हजरत की किता शरीफ देखकर हँस पड़े, फबतियाँ होने लगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २५।

फबन—संज्ञा स्त्री० [हिं० फबना] फबने का भाव। शोभा। छवि। सुंदरता।

फबना—क्रि० अ० [सं० प्रभवन, प्रा० पभवन] शोभा देना। सुंदर या भला जान पड़ना। खिलना। सोहना। उ०—(क) मान राखिबो माँगिबो पिय सो नित नव नेह। तुलसी तीनिउ तब फबै ज्यों चातक मति लेहु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) फबि रही मोर चंद्रिका माथे छबि की उठत तरंग। मनहु अमर पति धनुष बिराजत नव जलधर के संग।—सूर (शब्द०)।

फबाना—क्रि० स० [हिं० फबना का सक० रूप] उपयुक्त स्थान में लगाना। उचित स्थान पर रखना। ऐसी जगह लगाना या

रखना जहाँ भला जान पड़े। उ०—कहाँ साँच मैं खोवत करते झूठे कहाँ फबावत। सूर श्याम नागर नागरि वह हम तुम्हरे मन आवत।—सूर (शब्द०)।

फबि⑨†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फबना] फबने का भाव। फबन। छवि। शोभा। उ०—त्रिवली तटनी तट की पुलिनाई, काऊ बहि जाय कवो फबि में।—(शब्द०)।

फबीला—वि० [हिं० फबि+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० फबीली] जो फबता या भला जान पड़ता हो। शोभा देनेवाला। सुंदर। उ०—जैसे ही पोहि धरचो ठकुराइन मोती के ये गजरा चटकीले। वैसेइ आय गए रघुनाथ कह्यो हँसि कौन कहैं ये फबीले। नाव तिहारो हियो कहि मैं तो उठाय लिए सुख पाय ह्वै ढीले। आखि सो लाय रहे पल एक रहे पल छाती सों छुवाय छबीले।—रघुनाथ (शब्द०)।

फरकना⑨—क्रि० अ० [हिं०] फलाँगना। फाँद जाना। लाँघ जाना। उ०—बूड़े थे परि ऊबरे गुर की लहरि चमंकि। भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि।—कबीर ग्रं०, पृ० ३।

फरग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'फिरग'।

फरंज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'फिरंग'।

फर⑨‡¹—संज्ञा पुं० [सं० फल] १. दे० 'फल'। उ०—सास ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिय सम कंद मूल फर।—मानस, २।१४०।

यौ०—फर फूल=फल और फूल। उ—(क) फर फूलन कै इंछा बारी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४६। (ख) शाखा पत्र और फर फूला।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १११।

२. दे० 'फड'। ३. सामना। मुकाबिला। रण। युद्ध। उ०—भगे बलीमुख महाबली लखि फिरैं न फर पर भेरे। अंगद अरु हनुमंत धाय द्रुत बार बार अस टेरे।—रघुराज (शब्द०)। ४. बिछावन। बिछौना। उ०—सूल से फूलन के फर पै तिय फूल छरी सी परी मुरझानी।—(शब्द०)। ५. बाण का अगला नोकदार हिस्सा। फल। उ०—बिनु फर बान राम तेहि मारा।—मानस, १।२१०।

फर²—संज्ञा पुं० [सं०] ढाल [को०]।

फरक¹—क्रि० वि० [सं० पराक्] दूर। अलग। परे। उ०—कोउ पत्र पवन तें बाजै। मृग चौंकि फरक ह्वै भाजै।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १४१।

फरक²—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरकना] १. फरकने का भाव। २. फरकने की क्रिया। ३. फुरती से उछलने कूदने की चेष्टा। चंचलता। फड़क। उ०—मृगनैनी दृग की फरक, उर उछाह, तन फूल। बिनही पिय आगम उमगि पलटन लगी दुकूल।—बिहारी र०, दो० २२२।

फरक³—संज्ञा पुं० [अ० फ़र्क़] १. पार्थक्य। पृथक्त्व। अलगाव। २. दो वस्तुओं के बीच का अंतर। दूरी।

मुहा०—फरक फरक होना='दूर हो' या 'राह छोड़ो' की आवाज होना। 'हटो बचो' होना। उ०—चल्यो राजमंदिर की ओरा। फरक फरक माच्यो मग सोरा।—रघुराज (शब्द०)।

३. भेद। अंतर। जैसे,—(क) इसमें और उसमें बड़ा फरक है। (ख) बात में फरक न पड़ने पावे। (ग) उन्हें अपने और पराए का फरक नहीं मालूम है। ४. दुराव। परायापन। अन्यता। ५. कमी। कसर। जैसे,—(क) उसकी तौल में फरक नहीं है। (ख) घोड़े की असलियत में फरक मालूम होता है।

फरकन—संज्ञा पुं० [हिं० फरकना] १. फड़कने का भाव। दे० 'फड़क'। उ०—अंग फरकन अरु अयनई इत्यादिक अनुभाव। गर्व असूया उग्रता तहँ संचारी नाव।—पद्माकर (शब्द०)। २. फरकने की क्रिया। फड़क। उ०—एरे वाम नैन मेरे एरे भुज वाम आज रौरे फरकन ते जो बालम निहारिहौं।—मतिराम (शब्द०)।

फरकना⑨†¹—क्रि० अ० [सं० स्फुरण] १. शरीर के किसी अवयव में अचानक फरफराहट या स्फुरण होना। फड़कना। उड़ना। फटफड़ाना। दे० 'फड़कना'। उ०—(क) सुनु मंथरा बात फुर तोरी। दहिन आँखि नित फरकति मोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कुच भुज अधर नयन फरकत हैं बिनहि बात अंचल ध्वज डोली। सोच निवारि करो मन आनंद मानों भाग्य दशा विधि खोली।—सूर (शब्द०)। (ग) सुमिरन ऐसा कीजिए दूजा लखे न कोय। ओठ न फरकत देखिए प्रेम राखिए गोय।—संतवाणी०, पृ० १००। २. आपसे आप निकलना या बाहर आना। स्फुरित होना। उमड़ना। उ०—(क) मीठी अनूठी कढैं बतियाँ सुनि सौतिनि का छतियाँ दरकी परैं। कोकिल कूकनि की का चली, कलहंसनहूँ के हिए धरकी परैं। प्यारी के आनन तेरो कहैं तेहि की उपमा द्विज को फरकी परैं। धार सुधार सुधारस की सुमनों बसुधा ढरकी परैं।—द्विज (शब्द०)। (ख) लरिबे को दोऊ भुजा, फरकैं अति सिहरायँ। कहत बात कासों लरैं, कापै अब चढ़ि जायँ।—लल्लू (शब्द०)। ३. उड़ना। उ०—ध्वजा फरक्कै शून्य में बाजै अनहद तूर। तकिया है मैदान में पहुँचैगा कोई सूर।—कबीर (शब्द०)।

फरकना†²—क्रि० अ० [अ० फ़रक (=अंतर)] १. अलग होना। दूर होना। २. फटकर पृथक् हो जाना।

फरका¹—संज्ञा पुं० [सं० फलक] १. छप्पर जो अलग छाकर बँडेर पर चढ़ाया जाता है। उ०—ताको पूत कहावत हौ जो चोरी करत उघारत फरको। सूर श्याम कितनो तुम खैहो दधि माखन मेरे जहँ तहँ ढरको। २. बँडेर के एक ओर की छाजन। पल्ला। ३. आवरण। रोक। आच्छादन। उ०—सुंदर जो बिभचारिनी, फरका दीयौ डारि। लाज सरम वाकै नहीं, डोलै घर घर बारि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६२। ४. टट्टर जो द्वार पर लगाया जाता है।

फरका²—संज्ञा पुं० [अ० फ़िरका] दे० 'फिर्क़ा'।

फरकानाⓅ¹—क्रि० स० [हिं० फरकना] १. फरकने का सकर्मक रूप। हिलाना। संचालित करना। उ० (क) तू काहैं नहिं वेगहिं आवै तोको कान्ह बुलावै। कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।—सूर०, १०।४३। (ख) सखी रोक ! यह फिर कहने की उत्सुकता दिखलाता है। देख, अधर अपना ऊपर का बार बार फरकाता है।—द्विवेदी (शब्द०)। २. फड़फड़ाना। वार बार हिलाना। उ०—आगम भो तरुनापन को विसराम भई कछु चंचल आँखैं। खंजन के युग सावक ज्यों उड़ि आवत ना फरकावत पाँखें।—विसराम (शब्द०)।

फरकाना²—क्रि० स० [हिं० फरक (= अलग)] विलग करना। अलगाना। अलग करना।

फरकिल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० फार + कील] वह खूँटा जो गाड़ी में हरसे के बाहर पटरी में लगाया जाता है और जिसपर लकड़ी, बाँस या वल्ले रखकर रस्सियों से कसकर ढाँचा बनाया जाता है।

फरकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरक] १ वाँस की पतली तीली जिसमें लासा लगाकर चिड़ीमार चिड़ियाँ फँसाते है। २. वह बड़ा पत्थर जो दीवारों की चुनाई में दूर दूर पर खड़े बल में लगाया जाता है।

फरकीला†¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फरकिल्ला।'

फरकीला²—वि० [हिं० फडक, फरक + ईला (प्रत्य०)] दे० 'फरकौहाँ।'

फरकें†—क्रि० वि० [सं० पराक्] दूर। अलग। परे। फरक। उ०—और फिकिर करि फरकें, जिकिर लगाउ रे।—जग० बानी, पृ० ४६।

फरकौहाँⓅ†—वि० [हिं० फरक + औहाँ (प्रत्य०)] फड़कनेवाला। स्पंदनशील। उ०—मदनातुर चातुर पियै पेखि भयौ चित लोल। पुनि पट सरकौहैं भए फरकौहैं सुकपोल।—स० सप्तक, पृ० २३६।

फरक्क‡¹—संज्ञा पुं० [अ० फ़रक़] दे० 'फरक'।

फरक्क‡²—क्रि० वि० [सं० पराक्, फरक, हिं० फरके] दूर। अलग। परे। उ०—वेड़ा देखा झाँझरा, ऊतरि भया फरक्क।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २।

फरगट†—वि० [सं० प्रकट, हिं० प्रगट, परगट] दे० 'प्रकट' उ०—फरगट मारे फूटरा, कर सूँ सरगट काढ़। सठ दाखै भालो सरस, गिनकावालो गाढ़।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २।

फरच, फरचा†—वि० [सं० स्पृश्य, प्रा० फरस्स] १. जो जूठा न हो। शुद्ध। पवित्र। २. साफ। सुथरा। उ०—घासहरे को कुँवर भी फरचा कर आया। खबर पाइ मनसूर भी खुसियों से छाया।—सुजान०, पृ० १४६।

फरचई, फरचाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरचा + ई (प्रत्य०)] १. शुद्धता। पवित्रता। २. सफाई।

फरचाना†—क्रि० स० [हिं० फरचा] १. बरतन आदि को धोकर साफ करना। २. पवित्र या शुद्ध करना। ३. हुक्म देना। आज्ञा देना।

फरजंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रज़ंद] पुत्र। लड़का। बेटा। उ०—(क) फेर कूच करि दूसरा रविजा तट आया। तहँ फरजंद वजीर संग मिलना ठहराया।—सूदन (शब्द०)। (ख) कहैं रघुराज मुनिराज हमसे कहो, कौन के फबे फरजंद दिलरुब हैं। रघुराज (शब्द०)।

फरजंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० फ़र्ज़ंदी] पिता-पुत्र-संबंध।

फरज¹—संज्ञा स्त्री० [अ० फरज़] दरार।

फरज²—संज्ञा पुं० [अ० फर्ज़] दे० 'फर्ज।'

फरजानगी—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़र्ज़] बुद्धिमत्ता।

फरजाना—वि० [फ़ा० फ़रज़ानह्] बुद्धिमान्।

फरजिंद†—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रज़ंद] दे० 'फरजंद'।

फरजी—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रज़ी] शतरंज का एक मोहरा जिसे रानी या वजीर भी कहते हैं। वजीर। उ०—(क) घड़ो बड़ाई ना तजै छोटो वहू इतराय। ज्यों प्यादा फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय।—रहीम (शब्द०)। (ख) पहले हम जाय दियो कर में, तिय खेलत ही घर में फरजी। बधुवंत इकंत पढ़ो, तबही रतिकंत के बानन लै बरजी। बिलखी हमें और सुनाइबे को कहि तोष लख्यो सिगरी अरजी। गरजी ह्वै दियो उन पान हमें पढ़ि साँवरे रावरे की अरजी।—तोष (शब्द०)।

विशेष—यह मोहरा खेल भर में बड़ा उपयोगी माना जाता है। शतरंज के किसी किसी खेल में यह टेढ़ा चलता है और शेष में प्रायः यह सीधा और टेढ़ा दोनों प्रकार की चाल आगे और पीछे दोनों ओर चलता है।

फरजी²—वि० जो असली न हो बल्कि मान लिया गया हो। नकली। बनावटी। जैसे,—वे अपना एक फरजी नाम रखकर दरबार में पहुँचे।

फरजीबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रजीबंद] शतरंज के खेल में एक योग जिसमें फरजी किसी प्यादे के जोर पर बादशाह को ऐसी शह देता है जिससे विपक्ष की हार होती है।

फरजीबँदⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० फरजीबंद] दे० फरजीबंद'। उ०—घोड़ा दै फरजीबँद लावा। जेहि मुहरा रुख चहै सो पावा। —जायसी (शब्द०)।

फरद¹—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़र्द] १. लेखा या वस्तुओं की सूची आदि जो स्मरणार्थ किसी कागज पर अलग लिखी गई हो। जैसे,—घर के सब समान की एक फरद तैयार कर लो। दे० 'फर्द'। उ०—फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ खाता खत जान दे बही को बहि जान दे।—पद्माकर (शब्द०)। २. एक ही तरह के, एक साथ बननेवाले अथवा एक साथ काम में आनेवाले कपड़ों के जोड़ में से एक कपड़ा। पल्ला। जैसे, एक फरद धोती, एक फरद चादर, एक फरद शाल। ३. रजाई या दुलाई का ऊपरी पल्ला। उ०—कहै पद्माकर जु

कैधौ काम कारीगर नुकता दियो है हेम फरद सोहाई में ।—पद्माकर (शब्द०) । ४. एक पक्षी का नाम जो बरफीले पहाड़ो पर होता है और जिसके विषय में वैसी ही बातें प्रसिद्ध हैं जैसी चकवा और चकई के विषय में । ५. एक प्रकार का लक्का कबूतर जिसके सिर पर टीका होता है । ६. दो पदों की कविता ।

फरद[२]—वि० जिसकी बराबरी करनेवाला कोई न हो । अनुपम । बेजोड़ । जैसे,—आप भी बातें बनाने में फरद हैं । (बोलचाल) । उ०—चल्यो दरद जेहि रच्यो फरद विधि मित्र दरद हर । —गोपाल (शब्द०) ।

फरना ⓟ‡—क्रि० अ० [सं० फलन] १. फलना । उ०—(क) गुलगुल तुरँग सदा फर फरे । नारँग अति राते रस भरे । —जायसी (शब्द०) । (ख) धनुषयज्ञ कमनीय अवनितल कौतुक ही भए आय खरे री । छवि सुर सभा मनहुँ मनसिज के कलित कलपतरु रूख फरे री । —तुलसी (शब्द०) । २. फलित करना । अर्थयुक्त करना । उ०—आरति इस्क इमाने धरई । अल्लह अगुने बानी फरई ।—गुलाल० बानी पृ० १२६ । ३. फोड़े फुंसियाँ या छोटे छोटे दोनों का अधिकता से होना । जैसे,—दाढ़ी फरना, देह फरना ।

मुहा०—फरना फूलना=दे० 'फलना' । उ०—गोंद फली सम बिगसी ऋतु बसंत और फाग । फूलहु फरहु सदा सुख सफल सुहाग ।—जायसी (शब्द०) ।

फरनीचर—संज्ञा पुं० [अं०] साज सजावट का सामान जिसमें कुर्सी मेज, आलमारी सजावट के सामान आदि की गणना है । उ०—एक दिन बहुत लाचार होकर राबिन का स्वामी अपना तमाम फरनीचर···बेच शहर छोड़कर चला गया ।—तारिका, पृ० २ ।

फरप्फर ⓟ—क्रि० वि० [सं० परस्पर] परस्पर में । आपस में । उ०—फरप्फर फौज तरप्फर मार ।—पृ० रासो, पृ० ४२ ।

फरफंद—संज्ञा पुं० [हिं० फर अनु०, फंद (=फंदा, जाल)] १. दाँव पेंच । छल कपट । माया । उ०—(क) उनको नहिं दोस परोस तज्यो कहि को फरफंद पराये परे ।—बेनी (शब्द०) । (ख) चल दूर हो, दुष्ट कहीं का, मैं तुझे और तेरे फरफंदों को भली भाँति जानता हूँ ।—अयोध्यासिंह (शब्द०) । (ग) छाँड सब दीन फरफंदा, भए अब साध के बंदा । —तुरसी० श०, पृ० ५१ ।

क्रि० प्र०—करना ।—रचना ।

२. नखरा । चोचला ।

क्रि० प्र०—करना ।—खेलना ।—दिखाना ।

फरफंदी—वि० [अनु० फर+हिं० फंदा] १. फरफंद करनेवाला । छल कपट या दाँव पेंच करनेवाला । धूर्त । चालबाज । २. नखरेबाज । ३. धूर्तता या छल से भरा हुआ । उ०—खेलन खेल मेल फरफदी, बूंदी तन रुचिर सुहाई ।—घट०, पृ० २७९ ।

फरफर[१]—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी पदार्थ के उड़ने या फड़कने से उत्पन्न शब्द । उ०—(क) लग्गिय तुरंगनि थरथरा । नयुनान लग्गिय फरफरा । —सूदन (शब्द०) । (ख) फहर रहे थे केतु उच्च अट्टों पर फर फर ।—साकेत, पृ० ४१० ।

फरफर[२]—क्रि० वि० [अनु०ध्व०] बिना रुके हुए । तेजी से । बिना बाधा के । उ०—(क) देवता शुद्ध हिंदी फरफर बोल रहा था ।—किन्नर०, पृ० १०६ । (ख) मेरे जैसे वेशभूषा के आदमी को फरफर ल्हासा की नागरिक भाषा में बात करते देखकर पहले आश्चर्य हुआ ।—किन्नर०, पृ० ४० ।

फरफराना[१]—क्रि० अ० [अनु० फरफर] 'फर फर' शब्द उत्पन्न होना । फड़फड़ाना । उ०—फरफरात फर में घर लागे । सेख मुनीर मानि भय भागे । —लाल (शब्द०) ।

फरफराना[२]—क्रि० स० १. फरफर शब्द उत्पन्न करना । २. दे० 'फड़फड़ाना' ।

फरफुंदा ⓟ†—संज्ञा पुं० [अनु० फरफर] उड़नेवाला कीड़ा । फतिंगा । उ०—गहि फरफुंदा तेहि गुद माहीं । डारी सींक दया भय नाही ।—रघुराज (शब्द०) ।

फरमंडल ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० फर+सं० मण्डल] रणक्षेत्र । युद्ध का मैदान । उ०—(क) हुंकरत हींसत फबत फुंकरत, फरमंडल मझार दल दीरघ दलत हैं ।—हम्मीर०, पृ० ४ । (ख) कीनौ घमसान समसान फरमंडल मैं धाइनु अघाइ अघवाए बीर बास मैं ।—सुजान०, पृ० २३ ।

फरमाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रमाँ] दे० 'फरमान ।'

फरमाँबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रमाँबरदार] आज्ञाकारी । आज्ञानुयायी ।

फरमा[१]—संज्ञा पुं० [अं० फ्रेम] १. ढाँचा । डौल । २. लकड़ी आदि का बना हुआ ढाँचा या साँचा जिसपर रखकर चमार जूता बनाते हैं । कालबूत । ३. किसी प्रकार का साँचा जिसमें कोई चीज ढाली जाय । ४. कंपोज करके चेस में कसा हुआ मैटर जो छपने के लिये तैयार हो ।

फरमा[२]—संज्ञा पुं० [अं० फार्म] कागज का पूरा तखता जो एक बार में प्रेस में छापा जाता है । जुज । दे० 'फार्म' ।

फरमाइश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़रमाइश] आज्ञा, विशेषतः वह आज्ञा जो कोई चीज लाने या बनाने आदि के लिये दी जाय । जैसे,—(क) यह आलमारी फरमाइश देकर बनवाई गई है । (ख) उन्होंने मुझसे कुछ किताबों की फरमाइश की थी ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पूरी करना ।

फरमाइशी—वि० [फा० फ़रमाइशी] जो फरमाइश करके बनवाया या मँगाया गया हो । विशेष रूप से आज्ञा देकर मँगाया या तैयार कराया हुआ । (ऐसा पदार्थ प्रायः अच्छा और बढ़िया समझा जाता है ।) जैसे, फरमाइशी जूता । फरमाइशी थान ।

फरमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० फरमान; मि० सं० प्रमाण, पु०हिं० परमान, पुरमान] राजकीय आज्ञापत्र । वह आज्ञापत्र जो

राजा या राज्य की ओर से किसी को लिखा गया हो। अनुशासनपत्र। उ०—(क) मुल्ला तुझे करीम का अब आया फरमान। घट फोरा घर घर किया साहेब का नीसान।—कबीर (शब्द०)। (ख) आमिल ह्वै छिन पौन प्रवीन लै नाफरमा फरमानु पठायो।—गुमान (शब्द०)। (ग) वार पार मथुरा तलक हूग्रा फरमाना। बकसी की जागीर दै बकसी मैं ठाना।—सूदन (शब्द०)। (घ) फरमान मेल कनोए चाहि, तिरहुति लेलि जन्हि साहि।—कीर्ति०, पृ० ५८।

यौ० —फरमाँबरदार। फरमाँबरदारी = आज्ञाकारी होना। फरमाँबरदार होना।

फरमाना—क्रि० स० [फ़ा० फरमान] आज्ञा देना। कहना। उ०—(क) सोयो बादशाह निसि आय कै सपन दियो कियो वाको इष्ट वेप कही प्यास लागी है। पीयो जल जाय आवखाने लै बखाने तब अति ही रिसाने को पियावै कोउ रागी है। फिरि मारचो लात अरे सुनी नही बात मेरी, आप फरमावो जो पियावे बड़ भागी है। सो तौ तै लै कैद करचो सुनि अवरेउ डरचो भरचो हिय भाव मति सोवत से जागी है।—प्रियादास (शब्द०)। (ख) अब जो रोस साह उर आवै। तो हम पे फौजैं फरमावै।—लाल (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय: बड़ों के संबंध में उनके प्रति आदर सूचित करने के लिये होता है। जैसे,—यही बात मौलवी साहब भी फरमाते थे।

फरमायश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़रमाइश] दे० 'फरमाइश' उ०—लाला मदनमोहन ने फरमायश की।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८२।

फरमूद—वि० [फ़ा० फ़रमूदह्] फरमाया हुआ। कहा हुआ। उ०—उसकूँ छोड़ राह विचार शरियत जिसकूँ कहना। इंसाफ उपर सभी काम फरमूद कै सूँ रहना।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

फरमोसⓅ—वि० [फ़ा फ़रामोश] विस्मृत। भूला या भुलाया हुआ। उ०—भीखा का मन कपट कुचाली दिन दिन होइ फरमोस।—भीखा० श०, पृ० २८।

फरयाद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़र्याद] दे० 'फरियाद'।

फरयारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाल] हल के जाँघे में लगी हुई वह लकड़ी जिसमें फाल (फल) लगा रहता है। खोंपी।

फरराना†[1]—क्रि० अ० [हिं० फहराना] दे० 'फहराना'। उ०—है गै गैवर सघन घन, छत्र धजा फरराइ। ता सुख पै भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५३।

फरराना[2]—क्रि० स० दे० 'फहराना'।

फरलांग—संज्ञा पु० [अं०] भूमि की लंबाई की एक अँगरेजी माप।

विशेष—यह एक मील का आठवाँ भाग होता है और चालीस राड या पोल (लट्ठे) के बराबर होता है।

फरलो—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की छुट्टी जो सरकारी नौकरों को आधे वेतन पर मिलती है।

फरवरी—संज्ञा पु० [अं० फ़ेब्रुअरी] अँगरेजी सन् का दूसरा महीना जो प्रायः अट्ठाइस दिन का होता है।

विशेष—जब सन् ईसवी ४ से पूरा पूरा विभक्त हो जाता है उस वर्ष यह मास २६ दिन का होता है। परंतु जब सन् में एकाई और दहाई दोनों अंकों के स्थान में शून्य होता है, उस अवस्था में यह तबतक २६ दिन का नहीं होता जबतक सैकड़े और हजार का अंक ४ से पूरा पूरा विभाजित न हो। जिस वर्ष यह महीना २६ दिन का होता है उस वर्ष इसे अँगरेजी हिसाब से लौंद का महीना कहते हैं।

फरवार†—संज्ञा पुं० [सं० फल, हिं० फर+वार (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ किसान अपने खेत की उपज रखते हैं और जहाँ उसे दाँते और पीटते हैं। खलिहान। उ०—कटत धान अरु दाँय जात जब फरवारन महँ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४४।

फरवारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरवार+ई (प्रत्य०)] अन्न का वह भाग जो किसान अपने खलिहान में से राशि उठाने के समय बढ़ई, धोबी, नाई, ब्राह्मण आदि को निकालकर देते हैं।

फरवी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्फुरण] एक प्रकार का भुना हुआ चावल जो भुनने पर भीतर से पोला हो जाता है। मुरमुरा। लाई।

फरवी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फावड़ा अथवा देश०] दे० 'फरुही[1]।'

फरश—संज्ञा पुं० [अ० फ़र्श] १. बैठने के लिये बिछाने का वस्त्र। बिछावन। २. बराबर भूमि जिसपर लोग बैठते हैं। धरातल। समतल भूमि। ३. घर या कोठरी के भीतर की वह समतल भूमि जो पत्थर या ईंटें बिछाकर या चूने गारे से बराबर की गई हो। बनी हुई जमीन। गच।

फरशबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़र्शबंद] वह ऊँचा और समतल स्थान जहाँ फरश बना हो।

फरशा†—वि० [बँग०, मि० हिं० फरचा] गोरा। साफ। उ०—फरशा फरशा गामेर रंग।—भस्मावृत०, पृ० ७२।

फरशी[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० फ़र्शी] १. फूल, पीतल आदि का बना हुआ बरतन जिसका मुँह पतला और तंग होता है और जिस पर नैचा, सटक आदि लगाकर लोग तमाकू पीते हैं। गुड़गुड़ी। २. वह हुक्का जो उक्त बरतन पर नैचा आदि लगाकर बनाया गया हो।

फरशी[2]—वि० फर्श से संबंधित या फर्श पर रखा या बिछाया जानेवाला।

फरसंग—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रसंग] ४००० गज की दूरी। प्राय: सवा दो मील। उ०—तख्त कई फरसंग का हाजिर हुआ, हुक्म सूँ उनके मित बर हवा।—दक्खिनी०, पृ० १०४।

फरसⓅ[1]—संज्ञा पुं० [अं० फ़र्श] दे० 'फरश'। उ० —बैठी जसन

जलूस करि फरस फबी मुखदान । पानदान तें लै दऐ पान पान प्रति पान ।—स० दरश्न, पृ० ३६४ ।

यौ०—फरसबंद = दे० 'फर्शबंद' । उ०—कहै पद्माकर फराकत फरसबंद फहरि फुहारन की फरस फबी है फाब ।—पद्माकर (शब्द०) ।

फरस⁽³⁾—संज्ञा पुं० [सं० परशु] दे० 'फरसा' ।

यौ०—फरसराम = परशुराम । उ०—फरसराम फरसी गही लग्यो पत्रियन काल ।—पृ० रा०, २।२५६ ।

फरसा—संज्ञा पुं० [सं० परशु (= फरशु)] १. पैनी और चौड़ी धार की एक प्रकार की कुल्हाड़ी । यह प्राचीन काल में युद्ध में काम आती थी । उ०—काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए ।—तुलसी (शब्द०) । २. फावड़ा ।

फरसी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फर्शी] दे० 'फरशी' ।

फरसी⁽²⁾—संज्ञा स्त्री० [सं० परशु] दे० 'फरसा' । उ०—फरसराम फरसी ग्रही लग्यो पत्रियन काल । —पृ० रा०, २।२५६ ।

फरसूदा—वि० [फ़ा० फ़र्सूदह्] १. जीर्णशीर्ण । जर्जर । २. पुराना (को०) ।

फरस्सी⁽⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरसा] एक प्रकार की चौड़ी और पैनी धार की कुल्हाड़ी । दे० 'फरसा' । उ०—तबै फर्सरामं फरस्सी उभारी । पृ० रा०, २।२५३ ।

फरहंग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कोष । शब्दसंग्रह । जैसे, फरहंग ए आसफिया । २. विवेक । ३. व्याख्या (को०) ।

फरह—संज्ञा पुं० [अ० फ़रह] हर्ष । आनंद ।

फरहटा†—संज्ञा पुं० [हिं० फाल] चौड़ी और पतली पटरियाँ जो चरखी आदि के बीच की नाभि से बाँधकर या गाड़कर खड़े बल में लगाई जाती हैं । फरेहा ।

फरहत—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़र्हत] १. आनंद । प्रसन्नता । उ०—नजर करती है बस तुम्हारा जमाल । मेरे दिल को हासिल है फरहत कमाल ।—दक्खिनी०, पृ० २१७ । २. मनःशुद्धि ।

फरहद—संज्ञा पुं० [सं० पारिभद्र, पा० पारिभद्द प्रा० पारिहद्द] एक पेड़ का नाम जो बंगाल में समुद्र के किनारे बहुत होता है । वहाँ के लोग इसे 'पालिते मंदार' कहते हैं ।

विशेष—यह पेड़ थोड़े दिनों में बढ़कर तैयार हो जाता है और न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा, मध्यम आकार का होता है । इसमें पहले काँटे होते हैं; पर बड़े होने पर छिलका उतरता है और स्कंध चिकना हो जाता है । किंतु डालियों में फिर भी छोटे छोटे काँटे रह जाते हैं । ढाक की पत्तियों के समान इसमें भी एक नाल में तीन तीन पत्तियाँ होती हैं । फूल लाल और सुंदर होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर फलियाँ लगती हैं । फूलों से लाल रंग निकलता है । छाल से भी रंग निकाला जाता है और उसे कूटकर रस्सी भी बटी जाती है । इसकी लकड़ी नरम और साफ होती है और धूप में फटती या चिटकती नहीं । इसके खिलौने आदि बनाए जाते हैं क्योंकि इसपर वार्निश अच्छी खिलती है । पान के भीटों पर इसे छाया के लिये लोग लगाते हैं । पुराणों में इसे पंच देवतरु में माना है । इसे 'नहनुत' भी कहते हैं । वैद्यक में इसका स्वाद कटु, प्रकृति उष्ण और गुण अरुचि, कफ, कृमि और प्रमेह नाशक लिखा गया है । इसका फूल पित्तरोग और कर्णरोग का नाशक माना जाता है ।

पर्या०—पारिभद्र । भद्रक । प्रमंदार । कंटकिंशुक । निंबतरु ।

फरहर—वि० [सं० स्फार, प्रा० फार (= अलग अलग), अथवा फरहरा] १. जो एक में लिपटा या मिला हुआ न हो, अलग अलग हो । जैसे, फरहर भात । २. साफ । स्पष्ट । ३. शुद्ध । निर्मल । ४. जो कुछ दूर दूर पर हो । ५. जो उदास न हो । खिला हुआ । प्रसन्न । हरा भरा । ६. तेज । चालाक ।

फरहरन⁽⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरहरना] फरहराने का स्थिति । उ०—लखि निरखि भई मति पंगु, पीतांबर फरहरन में । —नंद० ग्रं०, पृ० ३८५ ।

फरहरना†—क्रि० अ० [अनु० फरफर] १. फरफराना । फरकना । उ०—भीमसेन फरके भुजदंडा । अधर फरहरत रोस प्रचंडा । —सबलसिंह (शब्द०) । २. उड़ना । फहराना । उ०—सिर केतु सुहावन फरहरै । जेहि लखि परदल थरहरै ।—गोपाल (शब्द०) ।

फरहरनि⁽⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फरहराने का कार्य या स्थिति ।

फरहरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० फहराना] १. पताका । झंडा । उ०—जो शरीर आगू चलत चपल प्रान तुहि जात । मनो वातबस फरहरा पाछे ही फहरात ।—श्यामा०, पृ० ६६ । २. कपड़े आदि का वह तिकोना या चौकोना टुकड़ा जिसे छड़ या डंडे के सिरे पर लगाकर झंडा बनाते हैं और जो हवा के झोंके से उड़ता रहता है ।

फरहरा²—वि० [हिं० फरहर] १. अलग अलग । स्पष्ट । २. शुद्ध । निर्मल । ३. खिला हुआ । प्रसन्न ।

फरहारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फल या फर+हरा (प्रत्य०)] फल । उ०—सुत कुरियार फरहरी खाना । विष भा दवहि विग्राध तुलाना ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७ ।

फरहा†—संज्ञा पुं० [हिं० फल] धुनियों की कमान का वह भाग जो चौड़ा होता है और जिसपर से होकर ताँत दूसरी छोर तक जाती है । यह बेने के आकार का होता है और धुनते समय आगे पड़ता है ।

फरहार†—संज्ञा पुं० [सं० फलाहार] दे० 'फलाहार' । उ०—पूजि पितर सुर अतिथि गुरु करन लगे फरहार ।—मानस, २।२७८ ।

फरही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरहा] लकड़ी का वह चौड़ा टुकड़ा जिसपर ठठेरे बरतन रखकर रेती से रेतते हैं ।

फरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का व्यंजन । फारा ।

विशेष—इसके बनाने के लिये पहले चावल के आटे को गरम पानी में गूँधकर उसकी पतली पतली बत्तियाँ बटते हैं और फिर उन बत्तियों को उबलते हुए पानी की भाप में पकाते हैं ।

फराक⑤[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़राख़] मैदान। आयत स्थान। उ०—उठाय बाग उप्परयो सु विप्फरयो फराक में। महा अराक अड्डियो घमाक धुंधराक में।—सूदन (शब्द०)।

फराक[2]—वि० लंबा चौड़ा। विस्तृत। आयत। उ०—दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा।—तुलसी (शब्द०)।

फराक†[3]—संज्ञा पुं० [अं० फ्राक] एक प्रकार का छोटी आस्तीन का ढीला कुरता जिसे लड़कियाँ पहनती हैं।

फराकत[1]—वि० [फ़ा० फ़राख] आयत। विस्तृत। लंबा चौड़ा और समतल। उ०—कहै पद्माकर फराकत फरसबंद फहरि फुहारन की फरस फबी है फाब।—पद्माकर (शब्द०)।

फराकत[2]—वि० [अ० फ़रागत] दे० 'फरागत'।

फराकत[3]—संज्ञा पुं० दे० 'फरागत'।

फराख—वि० [फ़ा० फ़राख़] विस्तृत। लंबा चौड़ा। आयत। उ०—करो फराख दिल फहम टुक कीजिए, फरक संसार से पीठ फेरी।—पलटू० बानी, भा०२, पृ० ३७।

यौ०—**फराखदस्त**=(१) उदार। (२) धनी। **फराखदामन**=दे० 'फराखदस्त'। **फराखहौसला**=(१) हिम्मती। (२) धैर्यशाली। धीर।

फराखी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़राख़ी] १. चौड़ाई। विस्तार। फैलाव। २. आढ्यता। संपन्नता। ३. घोड़े का तंग।

विशेष—यह घोड़े की पीठ पर कंबल, गरदनी आदि डालकर उसपर लगाया जाता है। यह चौड़ा तसमा या फीता होता है और इसके दोनों सिरों पर कड़े लगे रहते हैं।

फरागत—संज्ञा स्त्री० [अ० फरागत] १. छुटकारा। छुट्टी। मुक्ति।

मुहा०—**फरागत करना**=समाप्त करना। पूरा करना। उ०—इतना काम फरागत करके तब उठना। **फरागत पाना या होना**=छुटकारा पाना। निश्चित होना।

२. निश्चितता। बेफिक्री। ३. मलत्याग। पाखाना फिरना।

यौ०—**फरागतखाना**=शौचालय।

मुहा०—**फरागत जाना**=पाखाने जाना। टट्टी जाना।

फराज—वि० [फ़ा० फ़राज़] ऊँचा।

यौ०—**नशेबफराज**=(१) ऊँचा नीचा। (२) भला बुरा।

फराजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़राज़ी] ऊँचाई। बलंदी।

फराना⑤†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फहराना'। उ०—सुंन गगन में धजा फराई पुछो सबद भयो प्रकासा।—रामानंद०, पृ० ४६।

फरामोश[1]—वि० [फ़ा० फ़रामोश] भुला हुआ। विस्तृत। चित्त से उतरा हुआ। उ०—क्या शेख व क्या बरहमन जब आशिकी में आवे। तसबी करे फरामोश जुन्नार भूल जावे।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १५।

फरामोश[2]—संज्ञा पुं० लड़कों का एक खेल जिसमें वे आपस मे कुछ समय के लिये यह बद लेते हैं कि यदि एक दूसरे को कोई चीज दे तो वह तुरंत 'फरामोश' कह दे। यदि चीज पाने पर पानेवाला 'फरामोश' न कहे तो वह हार जाता है।

क्रि० प्र०—बदना।

फरामोस⑤—वि० [फ़ा० फ़रामोश] दे० 'फरामोश'। उ०—फरामोस कर फिकर फैल बद, फहम करै दिल माहीं।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २८।

फरार[1]—वि० [अ० फ़रार] भागा हुआ। जो भाग गया हो। जैसे, फरार कैदी।

फरार[2]—संज्ञा पु० भागना। पलायन।

फरार[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फैलाव] दे० 'फराल'।

फरार[4]—संज्ञा पु० [हिं० फरहार] दे० 'फलाहार'।

फरारी—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़रार+फ़ा०ई (प्रत्य०)। भागा हुआ। पलायित।

फराल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फैलाव] १, फैलाव। विस्तार २. तखता।

फरालना‡—क्रि० स० [हिं० फैलाना] फैलाना। पसारना।

फराश—संज्ञा पुं० [देश०] झाऊ की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

विशेष—यह पंजाब, सिंध, अफगानिस्तान और फारस में अधिकता से पाया जाता है। यह गरमी के दिनों में फूलता है। खारी भूमि में यह अच्छी तरह बढ़ता है।

फरास†[1]—संज्ञा पु० [सं० पलाश] दे० 'पलाश'।

फरास†[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़र्राश] दे० 'फर्राश'। उ०—रूप चाँदनी की गढ़ो स्वच्छ राखिबे हेत। दग फरास हाजिर खड़े बरुनि बहारू देत।—स० सप्तक, पृ० १८२।

फरासीस—संज्ञा पु० [फ़ा०] १. फ्रांस देश। २. फ्रांस का रहनेवाला व्यक्ति। उ०—फरासीस कोम को फिरंगी एक नामी। जंगी हज्जार बीस फोज का कमामी।—शिखर०, पृ० १००। ३. एक प्रकार की छींट।

विशेष—इसका रंग लाल होता है और जिसमें पीली या सफेद बूटियाँ अथवा बूटे बने हुए होते हैं। यह पहले फ्रांस देश से आया करती थी।

फरासीसी—वि० [हिं० फरासीस] १. फ्रास का रहनेवाला। उ०—काव्यसमीक्षा मे फरासीसियों की प्रधानता के कारण इस शब्द को इसी अर्थ में ग्रहण करने से योरप में काव्यदृष्टि इधर कितनी संकुचित हो गई।—रस०, पृ० ५८। २. फ्रांस का बना हुआ। ३. फ्रास देश में उत्पन्न। फ्रांस का।

फराहम—वि० [फा० फ़राहम] इकट्ठा किया हुआ। संचित।

फराहमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़राहमी] संचय करना या इकठ्ठा करना। एकत्र करना।

फरिआ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरना] ओढ़नी। उ०—सासु ननँद के लेहँगा फारे, बड़ी जिठानी की फरिआ, जच्चा मेरी लड़नों न जाने रे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१५।

फरिका‡—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'फरका'। २. द्वार पर का टट्टर। दरवाजे के किवाड़। उ०—सुनत मुरली अलिन धीर धरिकै। चली पितु मातु अपमान करिकै। लरत निकसी सबै तोरि फरि कै। भई आतुर बदन दरश हरि कै।—सूर (शब्द०)।

फरिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० फरना] १. वह लहँगा जो सामने की ओर सिला नहीं रहता। उ०—औचक ही देखे तहँ राधा नयन विशाल भाल दिए रोरी। नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठ रुचिर झकझोरी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह कपड़े का चौकोर टुकड़ा होता है जिसको एक किनारे की ओर चुन लेते हैं। इसे स्त्रियाँ वा लड़कियाँ अपनी कमर मे बाँध लेती हैं।

२. ओढ़नी। फरिया।

फरिया²—संज्ञा पुं० [हिं० फरना] रहट के चरखे वा चक्कर मे लगी हुई वे लकड़ियाँ जिनपर मिट्टी की हँड़ियों की माला लटकती रहती है।

फरिया³—संज्ञा पुं० [हिं० परी (=मिट्टी का कटोरा)] मिट्टी की नाँद जो चीनी के कारखानों मे इसलिये रखी जाती है कि उसमें पाग छोड़कर चीनी बनाई जाय। हौद।

फरियाद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़रियाद] १. दुःखित या पीड़ित प्राणियों का अपने परित्राण के लिये चिल्लाना। दुःख से बचाए जाने के लिये पुकार। शिकायत। नालिश। जैसे, नौकर का अपने मालिक से फरियाद करना, विद्यार्थी का अपने शिक्षक से फरियाद करना। उ०—(क) कबिरा दर दीवान में क्योंकर पावै दाद। पहिले बुरा कमाइ के पीछे कर फरियाद।—कबीर (शब्द०)। (ख) था इरादा तेरी फरियाद करूँ हाकिम से। वह भी कमबख्त तेरा चाहनेवाला निकला।—नजीर (शब्द०)। २. विनती। प्रार्थना।

यौ०—फरियादरस=पीड़ित को न्याय देने या दिलानेवाला। फरियादरसी=न्याय। इंसाफ।

फरियादी—वि० [फा० फ़रियादी] फरियाद करनेवाला। नालिश करनेवाला। अपने दुःख के परिहार के लिये प्रार्थना करनेवाला। उ०—तब ते काशीराज पहँ फरियादी मे आय। निज निज हीसा देन कहि लाए ताहि बढ़ाय।—रघुनाथदास (शब्द०)।

फरियाना¹—क्रि० स० [सं० फलीकरण (=फटकना)] १. छाँटकर अलग करना। भूसी आदि अलग करके साफ करना। २. साफ करना। ३. पक्षनिर्णय करना। निपटाना। तै करना।

फरियाना²—क्रि० अ० १. छँटकर अलग होना। २. साफ होना। ३. तै होना। निर्णय होना। निबटना। ४. समझ पड़ना। सूझ पड़ना। साफ साफ दिखाई पड़ना।

फरिश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रिश्तह्] १. मुसलमानी धर्मग्रंथों के अनुसार ईश्वर का वह दूत जो उसकी आज्ञा के अनुसार कोई काम करता हो। जैसे, मौत का फरिश्ता, नेकी बदी की खबर लेनेवाला फरिश्ता। २. देवता। ३. सरल स्वभाव का बहुत ही सज्जन व्यक्ति (को०)।

फरिश्ताखू—वि० [फ़ा० फ़िरिश्तह् ख़ू] फरिश्तों की तरह नेक या अच्छी प्रकृतिवाला। उ०—अथी इस ठार एक जाहिद कूँ बेटी, फरिश्ताखु था तिस आबिद कूँ बेटी।—दक्खिनी०, पृ० २७९।

फरिस्ता—संज्ञा पुं० [फा० फरिश्तह्] दे० 'फरिश्ता।' उ०—कजा सिर पर खड़ी द्वारे। फरिस्ते तीर तक मारे।—तुरसी० श०, पृ० ३०।

फरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० फल, फलक] १. फाल। कुशी। २. गाड़ी का हरसा। फड़। ३. चमड़े की बनी हुई गोल छोटी ढाल जिसे गतके के साथ उसकी मार को रोकने के लिये लेकर खेलते हैं। ३. ढाल। उ०—(क) तब तो वह अति झुँझलाय फरी खाँड़ा उठाय रथ से कूद श्रीकृष्ण चंद्र की ओर झपटा।—लल्लू (शब्द०)। (ख) फूलै फदकत लै फरी फल कटाच्छ कर बार। करत बचावत बिय नयन पायक घाय हजार।—बिहारी (शब्द०)। ४. दे० 'फली'।

फरीक—संज्ञा पुं० [अ० फरीक़] १. मुकाबला करनेवाला। प्रतिद्वंद्वी। विरोधी। विपक्षी। दूसरे पक्ष का। २. दो पक्षो में से किसी पक्ष का मनुष्य। दो परस्पर विरुद्ध व्यक्तियों मे से कोई एक। ३. पक्ष का मनुष्य। तरफदार।

यौ०—फरीकसानी=प्रतिवादी। (कानून)।

फरीकैन—संज्ञा पुं० [अ० फ़रीक़ का बहुवचन] दोनों या सब फरीक या पक्ष। जैसे—उस मुकदमे मे फरीकैन में सुलह हो गई है।

फरीदबूटी—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़रीद + हिं० बूटी] एक वनस्पति का नाम जिसकी पत्तियाँ बरियारे के आकार की छोटी छोटी होती हैं।

विशेष—इन पत्तियों को पानी में डालकर मलने से लबाब निकलता है। यह ठंढी होती है और गर्मी शांत करने के लिये पी जाती है।

फरुआ‡—संज्ञा पुं० [हिं० फाड़ना, फाड़ा हुआ] लकड़ी का वह बरतन जिसे लेकर भिक्षुक भीख माँगते हैं।

फरुई—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'फरुही'

फरुवक—संज्ञा पुं० [सं०] पीकदानी।

फरुसा‡—संज्ञा पुं० [सं० परशु] दे० 'फरसा'।

फरुहा†—संज्ञा पुं० [सं० परशु, हिं० फरसा] दे० 'फावड़ा'।

फरुही†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० फावड़ा] १. छोटा फावड़ा। २. फावड़े के आकार का लकड़ी का बना हुआ एक औजार।

विशेष—इससे क्यारी बनाने के लिये खेत की मिट्टी अथवा घोड़े की लीद हटाई जाती है और इसी प्रकार के दूसरे भी काम लिए जाते हैं।

३. मथानी।

फरुही²—संज्ञा स्त्री० [सं० स्फुरण, हिं० फुरना] एक प्रकार का भूना हुआ चावल जो भुनने पर फूलकर भीतर से खोखला हो जाता है। फरवी। मुरमुरा। लाई।

फरुहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुरहरी' या 'फुरेरी'।

फरूकना⁺†—क्रि० अ० [सं० स्फुरण, प्रा० फुरण; राज० फरुक्क, फरुक्क] दे० 'फरकना ।' (क) आज फरूकइ आंखियाँ, नाभि भुजा अहराँह । सही न छोड़ा सज्जणाँ, साम्हाँ किया घराँह । —ढोला०, दू० ५१६ । (ख) उ०—म्हारी ऑख फरूके वाई । म्हानै साधु मिलै कै साँईं ।—राम० धर्म०, पृ० ३१ ।

फरेंद, फरेंदा†—संज्ञा पुं० [सं० फलेन्द्र, प्रा० फलेंद] [स्त्री० फरेंदी] जामुन की एक जाति का नाम ।

विशेष—इसके फल बहुत बड़े बड़े और गूदेदार होते हैं । इसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों से अधिक चौड़ी और बड़ी होती हैं । फल आषाढ़ में पकते हैं और खाने में मीठे होते हैं । यह पाचक होता है । विशेष दे० 'जामुन' ।

फरेफ्ता—वि० [फ़ा० फ़रेफ्तह्] लुभाया हुआ । आसक्त । आशिक ।

फरेब—संज्ञा पुं० [फ़ा फ़रेब] छल । कपट । धोखा । जाल ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

यौ०—फरेबकार = धोखेबाज । फरेबखुर्दा = वंचित । ठगा हुआ । फरेबदिहिंदा = छली । धोखेबाज ।

फरेबिया†—वि० [हिं० फरेब + इया (प्रत्य०)] दे० फरेबी' ।

फरेबी—वि० [फ़ा० फ़रेबी] फरेब या छल कपट करनेवाला । धोखेबाज । कपटी ।

फरेरा†—संज्ञा पुं० [हिं० फरहरा] दे० 'फरहरा' ।

फरेरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फलहरी या फल = रा (प्रत्य०)] जंगल के फल । जंगली मेवा । उ०—मुख कुरवार फरेरी खाना । वहु विषभा जब व्याध तुलाना ।—जायसी (शब्द०) ।

फरैदा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० परिंदह्, हिं० परिंदा] एक प्रकार का तोता ।

फरो—वि० [फ़ा०] दबा हुआ । तिरोहित । जैसे, झगड़ा फरो करना ।

फरोख्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़रोख्त] बेचने या बिकने की क्रिया या भाव । विक्रय । बिक्री ।

फरोख्ता—वि० [फ़ा० फ़रोख्तह्] विक्रीत । बेचा हुआ ।

फरोग—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रोग़] १. प्रकाश । रोशनी । २. शोभा । ३. प्रसिद्धि ।

फरोगुजाश्त—संज्ञा पुं० [फा० फ़िरोगुज़ाश्त, उर्दू फरोगुज़ाश्त (= गफलत, कोताही)] छोड़ देना । उपेक्षित करना । भूल जाना । उ०—जाने का ख्याल बिलकुल फरोगुजाश्त कर चुके हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३५ ।

फरोदस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का संकर राग जो गौरी, कान्हड़ा और पूरबी के मेल से बना होता है । कहते हैं, यह राग अमीर खुसरो ने निकाला था ।

२. एक ताल जो १४ मात्राओं का होता है और जिसमें ५ आघात और २ खाली होते हैं । इसके तबले के बोल इस प्रकार हैं— घिन[1], धिन[2], धाकेटे[3], ताग घिन धा गदे ता, तेटेकता, गदिघेन । धा ।

फरोश—वि० [फ़ा० फ़रोश] बेचनेवाला । जैसे, मेवाफरोश, दवाफरोश ।

विशेष—यह समास के अंत में आता है ।

फरोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फरोश] बिक्री । बेचना । उ०—बात-फरोशी हाय हाय । वह लस्सानी हाय हाय ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६७८ ।

फर्क—संज्ञा पुं० [अ० फ़र्क़] दे० 'फरक' ।

फर्च—वि० [हिं०] दे० 'फरच' ।

फर्चा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फरचा' ।

फर्जंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० फर्ज़ंद] दे० 'फरजंद' ।

फर्ज—संज्ञा पुं० [अ० फ़र्ज़] १. मुसलमानी धर्मानुसार विधिविहित कर्म जिसके न करने से मनुष्य को प्रायश्चित्त करना पड़ता है । धार्मिक कृत्य । २. कर्तव्य कर्म । जैसे,—उनसे माफी माँगना आपका फर्ज है । ३. उत्तरदायित्व । ४. कल्पना । मान लेना । जैसे,—फर्ज कीजिए कि वे खुद आए, तब आप क्या करेंगे ?

यौ०—फर्जमुहाल = असंभव को संभव समझना या मानना ।

मुहा०—फर्ज अदा करना = कर्तव्य का निर्वाह करना । फर्ज करना = मान लेना । कल्पना करना । फर्ज होना = अवश्य कर्तव्य होना ।

फर्जानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़र्ज़ानगी] योग्यता । बुद्धिमत्ता । अक्लमंदी । उ०—ऐ खिरदमदो मुबारक हो तुम्हे फर्जानगी । हम हों औ सहरा हो औ वहशत हो औ दीवानगी ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४३ ।

फर्जी[1]—वि० [फा० फ़र्ज़ी] १. कल्पित । माना हुआ । २. नाम मात्र का । सत्ताहीन ।

फर्जी[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़र्ज़ी] दे० 'फरजी' ।

फर्त—संज्ञा पुं० [अ० फ़र्त] अधिकता । बहुतायत ।

फर्द[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़र्द] १. कागज या कपड़े आदि का टुकड़ा जो किसी के साथ जुड़ा वा लगा न हो । २. कागज का टुकड़ा जिसपर किसी वस्तु का विवरण, लेखा, सूची वा सूचना आदि लिखी गई हों या लिखी जाय ।

यौ०—फर्द करारदाद जुर्म = फौजदारी की अदालत की कार्रवाई में वह लेख जिसके द्वारा न्यायाधीश वा मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति को किसी अपराध का अपराधी ठहराकर उससे उत्तर माँगता है । फर्दतालिका = वस्तुओं की वह सूची जो कुरकी करनेवाले को अदालत में देनी पड़ती है । फर्द सजा = फौजदारी के विभाग में वह कागज जिसपर अपराधी के दंड का विवरण वा व्यवस्था होती है । फर्दहकूक = बंदोबस्त में वह कागज जिसमें किसी गाँव के स्वत्वाधिकारियों के स्वत्व का विवरण लिखा रहता है । फर्दहिसाब = हिसाब का लेखा या चिट्ठा ।

३. रजाई, शाल आदि का ऊपरी पल्ला जो अलग बनता और बिकता है । चद्दर । पल्ला । दे० 'फरद' । ४. वह पशु या

पक्षी जो जोड़े के साथ न रहकर अलग और अकेला रहता है। ५. परग।

फर्द²—वि० एक। अकेला। अद्वितीय। दे० 'फरद'। उ०—वह भी गाने में सारे रतनपुर की तवायफों मे फर्द थी।—शराबी, पृ० १६।

फर्फरीक—संज्ञा पुं० [सं०] फैलाई हुई उँगलियों सहित हथेली। २. कोमलता। मृदुता। ३. कल्ला या नई टहनी [को०]।

फर्फरीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपानह। जूता। पदत्राण [को०]।

फर्म—संज्ञा पुं० [अं०] १. व्यापारी या महाजनी कोठी। साझे का कारबार। जैसे—कलकत्ते मे व्यापारियो के कितने ही फर्म हैं। २. वह नाम जिससे कोई कंपनी या कोठी कारबार करती है। जैसे—बलदेवदास युगलकिशोर; ह्वाइटवे लेडला ऐंड कंपनी।

फर्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़र्मा] आज्ञा। फरमान।

फर्मांबरदार—वि० [फ़ा० फ़र्मांबरदार] आज्ञापालक। सेवक। उ०—नजरों में सारा जहाँ फर्मांबरदार।—कुकुर०, पृ० १६।

फर्मांबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फर्मांबरदारी] आज्ञापालन। उ०—यमुनाप्रसाद ढीले हुए भी, सरकार की फर्मांबरदारी के बल से कड़े रहे।—काले०, पृ० ५७।

फर्माना—क्रि० स० [हिं० फरमाना] दे० 'फरमाना'।

फर्याद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़रियाद] दे० 'फरियाद'।

फर्र¹—संज्ञा पुं० [अ० फ़र्र] १. प्रकाश। ज्योति। २. शान शौकत। ३. दबदबा। रोब। प्रताप।

फर्र²—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. फर्र की सी आवाज। २. फर्र की सी आवाज करते हुए उड़ जाना।

फर्रा¹—संज्ञा पुं० [अनु०] गेहूँ या धान की फसल का एक रोग।

विशेष—यह रोग उस अवस्था में उत्पन्न होता है जब फूलने के समय तेज हवा बहती है। इसमे फूल गिर जाने से बालों मे दाने नहीं पड़ते।

फर्रा²—संज्ञा पुं० [देश०] मोटी ईंट।

फर्राटा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वेग। तेजी। शीघ्रता। जैसे, फर्राटे से सबक सुनाना। उ०—फर्राटे से तर्जुमा करते चले जाइए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३१।

मुहा०—फर्राटा मारना या भरना = वेग से दौड़ना। तेजी से दौड़ना।

२. दे० 'खर्राटा'।

फर्राश—संज्ञा पुं० [अ० फ़र्राश] [वि० स्त्री० फर्राशन, फर्राशिन] १. वह नौकर जिसका काम डेरा गाड़ना, सफाई करना, फर्श बिछाना, दीपक जलाना और इसी प्रकार के और दूसरे काम करना होता है। २. नौकर। खिदमतगार। उ०—छिड़काव हुआ हो पानी का और खूब पलँग भी हो भीगा। हाथों में प्याला शरबत का हो, आगे हो फर्राश खड़ा।—नजीर (शब्द०)।

यौ०—फर्राशखाना = खेमा या खेमे का सामान रखने का कमरा।

फर्राशी¹—वि० [फा० फ़र्राशी] फर्श या फर्राश के कामों से संबंध रखनेवाला।

यौ०—फर्राशी पंखा = बड़ा पंखा जिससे पूरे फर्श पर हवा की जा सकती हो। उ०—फर्राशी पंखा झलता हो तब देख बहारें जाड़े की।—नजीर (शब्द०)।

फर्राशी²—संज्ञा स्त्री० १. फर्राश का काम। २. फर्राश का पद।

फर्राहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० फर्र + आहट (प्रत्य०)] फरफराना। फड़कना। उ०—उनके व्यक्तित्व की शुभ्रता, उनकी गठन और ओज, मुख की मुस्कराहट और मूछों की फर्राहट ये सभी पुकार पुकार कर कहते हैं कि यहाँ जनता का एक जन्मजात नेता मौजूद है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ६३। २. फरफराने या फड़फड़ाने की आवाज। उ०—ताशों के पत्तों की फर्राहट।—भस्मावृत०, पृ० ३७।

फर्लो—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'फरलो'।

फर्श—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़र्श] १. बिछावन। बिछाने का कपड़ा। २. दे० 'फरश'।

यौ०—फर्शखाक = पृथ्वी। जमीन।

मुहा०—फर्श से अर्श तक = पृथ्वी से आकाश पर्यंत। फर्शे जमीं होना = दफन होना। मर जाना।

फर्शी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़र्शी] एक प्रकार का बड़ा हुक्का जिसमें तमाकू पीने के लिये बड़ी लचीली नली लगी होती है।

फर्शी²—वि० फर्श संबंधी। फर्श का।

यौ०—फर्शी झाड़ = वह झाड़ जिसे फर्श पर रोशन किया जाय। फर्शी सलाम = बहुत झुककर या फर्श तक झुककर किया जानेवाला सलाम। फर्शी हुक्का = फरशी। फर्शी।

फर्स(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परशु(= फरशु), हिं० फरसा] दे० 'फरसा'। उ०—दियो रिष्प बरदान जा जुद्ध कज्जं, जबै दिष्षियं पिष्षियं फर्श भज्जं।—पृ० रा०, २।२५५।

यौ०—फर्सराम = परशुराम। उ०—तबै फर्सरामं फरस्सी उभारी।—पृ० रा०, २।२५३।

फर्सी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० फर्स या फरसा] दे० 'फरस्सी'। उ०—करी पैज सैसार्जुनं कामधेनं, चल्यो राम फर्सी धरै गज्जि गेनं।—पृ० रा०, २।२५५।

फर्स्ट—वि० [अं० फ़र्स्ट] गिनती में सबसे आरंभ में पड़नेवाला। पहला। अव्वल। जैसे—फर्स्ट क्लास का डब्बा। फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट।

फलंक(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्ग, हिं० फलाँग] दे० 'फलाँग'।

फलंक²—संज्ञा पुं० [फ़ा० फलक] आकाश। अंतरिक्ष। उ०—सो है अन्न ओढ़े जे न छोड़े सीस संगर की, लंगर लँगूर उच्च ओज के अतंका में। कहै पद्माकर त्यौं हुंकरत फुंकरत, फैलत फलात फाल बाँधत फलंका में। आगे रघुबीर के समीर के तनय के संग, तारी दै तड़ाके तड़ा तड़के तमंका में। संका दै

दसानन को, हुंका दै सुबंका वीर, डंका दै विजय को कपि कूद परयो लंका में।—पद्माकर (शब्द०)।

फलंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्ग] छलाँग। फलाँग। उ०—(क) बाग लेत अति लेत फलंगनि, जिमि हनुमत किय समुद उलंघनि।—हिम्मत०, पृ० ७। (ख) सटा नमावै बाय में फलँग अटा गरकाव।—बाँकी० ग्रं०, भाग १, पृ० २६।

फल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वनस्पति में होनेवाला वह बीज अथवा पोषक द्रव्य या गूदे से परिपूर्ण बीजकोश जो किसी विशिष्ट ऋतु में फूलों के आने के बाद उत्पन्न होता है।

विशेष—वैज्ञानिक दृष्टि से बीज (दाने, अनाज आदि) और बीजकोश (साधारण बोलचालवाले अर्थ में फल) में कोई अंतर नहीं माना जाता, परंतु व्यवहार में यह अंतर बहुत ही प्रत्यक्ष है। यद्यपि गेहूँ, चना, जौ, मटर, आम, कटहल, अंगूर, अनार, सेव, बादाम, किशमिश आदि सभी वैज्ञानिक दृष्टि से फल हैं, पर व्यवहार में लोग गेहूँ, चने, जौ, मटर आदि की गिनती बीज या अनाज में और आम, कटहल, अनार, सेव आदि की गिनती फलों में करते हैं। फल प्रायः मनुष्यों और पशुपक्षियों आदि के खाने के काम में आते हैं। इनके अनेक भेद भी होते हैं। कुछ में केवल एक ही बीज या गुठली रहती है, कुछ में अनेक। इसी प्रकार कुछ के ऊपर बहुत ही मुलायम और हलका आवरण या छिलका रहता है, कुछ के ऊपर बहुत कड़ा या काँटेदार रहता है।

२. लाभ। उ०—फल कारण सेवा करै निशदिन जाँचे राम। कहै कबीर सेवक नहीं चहै चौगुनो दाम।—कबीर (शब्द०)। ३. प्रयत्न वा क्रिया का परिणाम। नतीजा। उ०—(क) सुनहु सभासद सकल सुनिंदा। कही सुनी जिन संकर निंदा। सो फल तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताब पिताहू।—तुलसी (शब्द०) (ख) तब हरि कह्यो कोऊ जनि डरियो अबहिं तुरत मैं जैहौं। बालक ध्रुव बन करत गहन तप ताहि तुरत फल दैहौं।—सूर (शब्द०)। ४. धर्म या परलोक की दृष्टि से कर्म का परिणाम जो सुख और दुख है। कर्मभोग। उ०—(क) कोउ कह जो भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिय उचित फलदाता।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सो फल मोहि बिधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सो कीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। ५. गुण। प्रभाव। उ०—(क) नाम प्रभाव जानु सिव नीके। कालकूट फल दीन्ह अमी के।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होंहि पिक बकउ मराला।—तुलसी (शब्द०)। ६. शुभ कर्मों के परिणाम जो संख्या में चार माने जाते हैं और जिनके नाम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। उ०—(क) सेवत तोहि सुलभ फल चारी बरदायिनि त्रिपुरारि पियारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आनंद महँ आनँद अवध आनँद बधावन होइ। उपमा कहौ चारि फल की, मोको भलो न कहैगो कवि कोइ।—तुलसी (शब्द०)। (ग) होइ अटल जगदीश भजन में सेवा तासु चारि फल पावै। कहूँ ठौर नहिं कमल चरण बिनु भृंगी ज्यों दसहूँ दिसि धावै।—सूर (शब्द०)। ७. प्रतिफल। बदला। प्रतिकार। उ०—एक बार जो मन देइ सेवा। सेवहि फल प्रसन्न होइ देवा।—जायसी (शब्द०)। ८. बाण, भाले, छुरी, कटारी, तलवार आदि का वह तेज अगला भाग जो लोहे का बना होता है और जिससे आघात किया जाता है। जैसे, तीर की गाँसी, भाले की अनी, इत्यादि, सब फल कहलाती है। ९. हल की फाल। १०. फलक। ११. ढाल। १२. उद्देश्य की सिद्धि। उ०—मति रामहिं सों गति रामहिं सो रति राम सों रामहिं को बलु है। सबकी न कहै तुलसी के मते इतनो जगजीवन को फलु है।—तुलसी (शब्द०)। १३. पासे पर की बिंदी या चिह्न। १४. न्याय शास्त्र के अनुसार वह अर्थ जो प्रवृत्ति और दोष से उत्पन्न होता है। इसे भी गौतम जी ने अपने प्रमेय के अंतर्गत लिया है। १५. गणित की किसी क्रिया का परिणाम। जैसे योगफल, गुणनफल इत्यादि। १६. त्रैराशिक की तीसरी राशि वा निष्पत्ति में प्रथम निष्पत्ति का द्वितीय पद। १७. क्षेत्रफल। १८. फलित ज्योतिष में ग्रहों के योग का परिणाम जो सुख दुःख आदि के रूप में होता है। १९. मूल का ब्याज वा वृद्धि। सूद। २०. मुनाफा। लाभ (को०)। २१. हानि। नुकसान (को०)। २२. आर्तव। रज (को०) २४. त्रिफला (को०)। २५. प्रयोजन। २६. जायफल। २७. कंकोल। २८. कोरैया का पेड़।

फलकंटक—संज्ञा पुं० [सं० फलकण्टक] १. कटहल। २. खेत पापड़ा।

फलकंटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० फलकण्टकी] इंदीवरा।

फलक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटल। तखता। पट्टी। २. चादर। ३. वरक। तबक। ४. पत्र। वरक। पृष्ठ। ५. हथेली। ६. फल। परिणाम। ७. मेज। चौकी। ८. खाट की बुनन जिसपर लोग लेटते हैं। ९. नितंब (को०)। १०. लाभ (को०) ११. आर्तव (को०)। १२. कमल का बीजकोश (को०)। १३. मस्तक की अस्थि (को०)। १४. ढाल (को०)। १५. धोबी का पाटा या पाट (को०)। १६. बाण की गाँसी (को०)। १७. बृहत्संहिता के अनुसार पाँच लड़ी के हार का नाम।

फलक[2]—संज्ञा पुं० [अ० फ़लक] १. आकाश। जैसे,—आजकल उनका दिमाग फलक पर है। २. स्वर्ग। उ०—बहुदिन सुफल कियो महि कारज। फलक जाहु तुम यदुकुल आरज।—गिरधरदास (शब्द०)।

यौ०—फलकजदा = अत्यंत पीड़ित। फटेहाल। निर्धन। फलकपरवाज = आकाश तक पहुँचनेवाला। फलकमर्तबा, फलकरुतबा = उच्चपदस्थ। फलकसैर = (१) वायु जैसे वेगवाला (घोड़ा)। (२) भंग। भाँग। फलक के पीर = बूढ़ा।

मुहा०—फलक टूटना = आसमान टूटना। फलक पर चढ़ना = आसमान पर चढ़ना। फलक पर चढ़ाना = आसमान पर या बहुत ऊँचे चढ़ाना। फलक याद आना = कालचक्र याद आना। उलटफेर याद आना।

फलकक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक यक्ष का नाम।

फलकना—क्रि० अ० [अनु०] १. छलकना । उमगना । उ०—कैकेयी अपने करमन को सुमिरत हिय में दलकि उठी । सब देवन की मानि मनौती पूरन होइ कै फलकि उठी ।—देवस्वामी (शब्द०) । २. दे० 'फरकना' ।

फलकयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० फलकयन्त्र] ज्योतिष संबंधी एक प्रकार का यंत्र जिसके अनुसार ज्या आदि का निर्णय किया जाता है ।

फलकर—संज्ञा पुं० [हिं० फल + कर] वह कर जो वृक्षों के फल पर लगाया जाय । फलों पर लगनेवाला महसूल ।

फलकर्कशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली बेर । झड़बेरी ।

फलका[1]—संज्ञा पुं० [अ० फलक] नाव या जहाज की पाटन में वह दरवाजा जिसमें से होकर नीचे से लोग ऊपर जाते और ऊपर से नीचे उतरते हैं । (लश०) ।

फलका[2]—संज्ञा पुं० [सं० स्फोटक, प्रा० फोड़ओ, हिं० फोला] फफोला । छाला । झलका । उ०—कोमल बदन परे बहु फलके । कमल दलन पर जनु कन जल के ।—पद्माकर (शब्द०) ।

फलका‡[3]—संज्ञा पुं० [हिं० फूलना, फुलका] दे० 'फुलका' । उ०—षाटो बीच फलका मास बाटी दाल ध्यारी ।—शिखर०, पृ० ५२ ।

फलकाम—वि० [सं०] जो कर्म के फल की कामना करता हो । जो निष्काम होकर काम न करे बल्कि सकाम होकर करे ।

फलकारनाⓅ—क्रि० स० [हिं०] ललकारना । बढ़ावा देना । उ०—तरकि तरकि अति बज्र से डारै । मदमत इंद्र ठढौ फलकारै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १९२ ।

फलकाल—संज्ञा पुं० [सं०] फल लगने का समय या मौसम [को०] ।

फलका वन—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित वन का नाम जिसके संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वह सरस्वती को बहुत प्रिय है ।

फलकी[1]—वि० [सं० फलकिन्] १. फलक द्वारा निर्मित । काष्ठ के तख्ते का बना हुआ । २. ढाल से सज्जित [को०] ।

फलकी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की मछली जिसे चीतल कहते हैं । इसे फलि और फलकी भी कहते हैं । २. चंदन (को०) । ३. काठ की चौकी (को०) ।

फलकी वन—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक वन का नाम जो किसी समय तीर्थ माना जाता था ।

फलकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृच्छ्र व्रत जिसमें बेल आदि फलों के क्वाथ को पीकर एक मास तक रहना पड़ता है ।

फलकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल आँवला । २. करंज का पेड़ ।

फलकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का वृक्ष ।

फलकोश, फलकोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरुष की इंद्रिय । लिंग । २. अंडकोष ।

फलखंडन—संज्ञा पुं० [सं० फलखण्डन] फल की प्राप्ति न होना । निराशा [को०] ।

फलग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] फल ग्रहण करना । लाभ लेना [को०] ।

फलग्रहि—वि० [सं०] फलयुक्त या समय पर फलनेवाला [को०] ।

फलग्रहिष्णु—वि० [सं०] फलयुक्त [को०] ।

फलग्राही—संज्ञा पुं० [सं० फलग्राहिन्] वृक्ष । पेड़ ।

फलचमस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुराना व्यंजन ।

विशेष—श्राद्धतत्व के अनुसार यह बड़ की छाल को कूटकर उसके चूर्ण को दही में मिलाकर बनाया जाता था ।

फलचारक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध मत के अनुसार प्राचीन काल के एक कर्मचारी के पद का नाम ।

फलचोरक—संज्ञा पुं० [सं०] चोरक या चोर नाम का गंधद्रव्य ।

फलछदन—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी के तख्ते या फलक का बना घर [को०] ।

फलड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० फल + ड़ा (प्रत्य०)] (हथियार आदि के) फल का अल्पार्थक रूप । जैसे, चाकू का फलड़ा ।

फलतः—क्रि० वि० [सं० फलतस्] फलस्वरूप । परिणामतः । इसलिये । जैसे,—लोगों ने धन देना बंद कर दिया और फलतः चिकित्सालय बंद हो गया ।

फलत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फलना] फलने की क्रिया या भाव । जैसे,—इस साल सभी जगह आम की फलत बहुत अच्छी हुई है ।

फलत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्राक्षा, परुष और काश्मीरी, ये तीनों फल । २. हड़, बहेड़ा और आँवला इन तीनों का समूह । त्रिफला ।

फलत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भावप्रकाश के अनुसार त्रिफला । हड़, बहेड़ा और आँवला । २. अमरकोश के अनुसार सोंठ, पीपल और काली मिर्च ।

फलद[1]—वि० [सं०] फल देनेवाला । जो फल दे । उ०—चूक समै न विचारि तू, बादि करै अफसोस । अपने करम फलद चितै, हरि को देइ न दोस ।—स० सप्तक, पृ० २५८ ।

फलद[2]—संज्ञा पुं० वृक्ष । पेड़ ।

फलदाइकⓅ—वि० [सं० फल + दायक] दे० 'फलदायक' । उ०—जो तुम कहहु तुमहु सब लाइक । जगनाइक अरु सब फलदाइक ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६ ।

फलदाता—वि० [सं० फलदातृ] १. फल देनेवाला । २. फलित होनेवाला । ३. लाभदायक [को०] ।

फलदान—संज्ञा पुं० [हिं० फल + दान] १. हिंदुओं की एक रीति जो विवाह होने के पहले उस समय होती है जब कोई व्यक्ति अपनी कन्या का विवाह किसी के लड़के के साथ करना निश्चित करता है ।

विशेष—इसमें कन्या का पिता रुपए, मिठाई, अक्षत, फूल आदि वस्तुएँ लोकप्रथा के अनुसार शुभ मुहूर्त में वर के घर भेजता है । उस समय विवाह निश्चित मान लिया जाता है । इसे बरच्छा भी कहते हैं ।

२. विवाह संबंधी टीके की रसम ।

फलदार—वि० [हिं० फल + दार (फा० प्रत्य०)] १. फलवाला। जिसमें फल लगे हों। २. जो फले। जिसमें फल लगें।

फलद्रु—संज्ञा पुं० [सं० फलद्रुम] एक वृक्ष का नाम जिसे धौबी भी कहते हैं। दे० 'धौबी'।

फलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलयुक्त होना। फलना। २. परिणाम या फल देना [को०]।

फलना[1]—क्रि० अ० [हिं० फल वा सं० फलन] १. फल से युक्त होना। फल लाना। उ०—वन उपवन फूलते फलते है उससे सब जीव जंतु, पशु पक्षी आनंद में रहते हैं।—लल्लू (शब्द०)। २. फल देना। लाभदायक होना। परिणाम निकलना। उ०—जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहि जब करिय दुराऊ।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—फलना फूलना = (१) सफल मनोरथ होना। उ०—फूलै फलैं, फलै, खल, सीदै साधु पल पल, वानी दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं।—तुलसी (शब्द०)। २. विकसित होना। विकास करना। उ०—राजनीतिक परिस्थितियों में उसकी छत्रछाया के नीचे साहित्य फलता फूलता रहा।—अकबरी०, पृ० १०।

३. शरीर के किसी भाग पर बहुत से छोटे छोटे दानों का एक साथ निकल आना जिससे पीड़ा होती है।

फलना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० फाल वा पहल] एक प्रकार की छेनी जिससे चितेरे और संगतराश सादी पत्तियाँ बनाते हैं।

फलनिर्वृत्ति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फलनिष्पत्ति। फलोदय २. अंतिम परिणाम [को०]।

फलनिर्वृत्ति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] फल का होना [को०]।

फलनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलोदय। फल की उत्पत्ति [को०]।

फलपरिणति—संज्ञा स्त्री० [सं०] फल का पूरा पूरा पक जाना [को०]।

फलपरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'फलपरिणति' [को०]।

फलपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. करौंदा। २. जलआँवला।

फलपाकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० फलपाकान्ता] फल पकने के बाद नष्ट हो जानेवाला पौधा [को०]।

फलपाकावसाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलने के बाद समाप्त होनेवाला क पौधा। एकवार्षिक पौधा [को०]।

फलपाकी—संज्ञा पुं० [सं० फलपाकिन्] गर्दभांड का पेड़।

फलपातन—संज्ञा पुं० [सं०] बटोरने के लिये फल गिराना [को०]।

फलपिता—संज्ञा पुं० [सं० फल+पिता] फल का पिता अर्थात् फूल। —अनेकार्थ०, पृ० ६०।

फलपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] वह वनस्पति जिसकी जड़ में गाँठ पड़ती है। जैसे, प्याज, शलजम इत्यादि।

फलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० फलपुष्पा] वह वनस्पति जिसमें फल और पुष्प दोनों हों।

फलपुष्पा, फलपुष्पी—संज्ञा पुं० [सं०] पिंड खजूर।

फलपूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाड़िम। अनार। २. बिजौरा नीबू [को०]।

फलपूरक—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू [को०]।

फलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'फलदान' [को०]।

फलप्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] फललाभ। सफलता [को०]।

फलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] द्रोण काक। डोम कौवा।

फलप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु।

फलफंद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फरफंद'।

फलफलारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० फल+हिं० फलहरी, फलारी] फल मूल। फल मेवा आदि। उ०—पाछें वैष्णव ने फलफलारी मेवा सामग्री सिद्ध करि न्हाय कैं श्रीठाकुर जी के उत्थापन कराए।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ११०।

फलफूल—संज्ञा पुं० [सं० फल+हिं० फूल] फल और फूल।

फलबंधी—वि० [सं० फलबन्धिन्] जिसमें फल आ रहे हों [को०]।

फलभर—संज्ञा पुं० [सं०] फलों का भार या बोझ। उ०—फलभर नम्र बिटप सब रहे भूमि नियराइ।—मानस, ३।३४।

फलभरता—संज्ञा स्त्री० [सं० फलभर + ता (प्रत्य०)] फलों से भरा होना। फलों के भार या बोझ से पूर्ण होने की स्थिति। उ०—पुलकित कदंब की माला सी पहना देती हो अंतर में, झुक जाती है मन की डाली अपनी फलभरता के डर में।—कामायनी, पृ० १८।

फलभाक्, फलभागी—वि० [सं० फलभाज्, फलभागिन्] फल पानेवाला या भोगनेवाला [को०]।

फलभुक्[1]—संज्ञा पुं० [सं० फलभुज्] कपि। बंदर [को०]।

फलभुक्[2]—वि० फल खानेवाला। फलभोगी [को०]।

फलभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ कर्मों के फल का भोग करना पड़ता हो।

फलभृत्—वि० [सं०] फलित। फलयुक्त। जिसमें फल आए या लगे हों [को०]।

फलभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म के फल का भोग। २. लाभ का अधिकार [को०]।

फलभोजी—वि० [सं० फलभोजिन्] फल खानेवाला [को०]।

फलमत्स्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घीकुँवार। घृतकुमारी।

फलमुंड—संज्ञा पुं० [सं० फलमुण्ड] नारियल का वृक्ष।

फलमुख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा। अजवायन।

फलमुद्गरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।

फलमूल—संज्ञा पुं० [सं०] फल और कंद या मूल। उ०—(क) लिए फलमूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरषु अपारा। —मानस, २।८८। (ख) सुचि फलमूल मधुर मृदु जानी। —मानस, २।८६।

फलयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक में वह स्थान जिसमें फल की

प्राप्ति या उसके नायक के उद्देश्य की सिद्धि हो। २. फल मिलना। फल की प्राप्ति (को०)। ३. वेतन। मजूरी (को०)।

फलराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. तरबूज। २. खरबूजा।

फलरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० फलेरुहा] पाढर।—अनेकार्थ०, पृ० ५४।

फललक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा। विशेष—दे० 'लक्षणा'।

फलवंध्य—संज्ञा पुं० [सं०] न फलनेवाला वृक्ष। निष्फल वृक्ष वह वृक्ष जो फल न दे [को०]।

फलवर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलों का अवलेह या मुरब्बा। फलों की जेली [को०]।

फलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु का पौधा [को०]।

फलवर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०, मि० अ० फतीलह्] मोटी बत्ती जो घाव में रखी जाती है।

फलवर्तुल—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हड़ा।

फलवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वस्तिकर्म जिसमें अँगूठे के बरावर मोटी और बारह अंगुल लंबी पिचकारी गुदा में दी जाती है।

फलवान्—वि० [सं० फलवत्] [वि० स्त्री० फलवती] फलयुक्त। फलित। जिसमें फल लगा हो।

फलविक्रयी—संज्ञा पुं० [सं० फलविक्रयिन्] फल बेचनेवाला व्यक्ति या दुकानदार। मेवाफरोश [को०]।

फलविप—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जिसके फल विषैले होते हैं। जैसे, करंभ इत्यादि।

विशेष—सुश्रुत में कुमुदुनी, टेलुका, करंभ, महाकरंभ, कर्कोटक, रेणुक, खद्योतक, चर्मरी, इभगंधा, सर्पघाती, नंदन और सरपाक के फल विष कहे गए हैं।

फलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] फल का पेड़ [को०]।

फलवृक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल।

फलश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल [को०]।

फलश[2]—संज्ञा पुं० दे० 'फलशाक'।

फलशाक—संज्ञा पुं० [सं०] वह फल जिसकी तरकारी बनाकर खाई जा सकती हो।

फलशाडव—संज्ञा पुं० [सं०] अनार। दाडिम।

फलशाली—वि० [सं० फलशालिन्] १. फलयुक्त। २. फल देनेवाला [को०]।

फलशैशिर—संज्ञा पुं० [सं०] बेर का पेड़।

फलश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अर्थवाद। वह वाक्य जिसमें किसी कर्म के फल का वर्णन होता है और जिसे सुनकर लोगों की वह कर्म करने की प्रवृत्ति होती है। जैसे, अमुक यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, दान करने से अक्षय पुण्य होता है, आदि। २. ऐसे वाक्य सुनना।

फलश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] आम।

फलसंपत्—संज्ञा स्त्री० [सं० फलसम्पत्] १. फल की अधिकता। २. सफलता [को०]।

फलसंबद्ध—संज्ञा पुं० [सं० फलसम्बद्ध] गूलर।

फलसंभारा—संज्ञा स्त्री० [सं० फलसम्भारा] कृष्णोदुंबरी। कठूमर।

फलसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश के किसी ग्रह के केंद्र का समीकरण या मंदफल निरूपण।

फलसंस्थ—वि० [सं०] फलोत्पादक। फल उत्पन्न करनेवाला [को०]।

फलस—संज्ञा पुं० [सं०] पनस। कटहल [को०]।

फलसा—संज्ञा पुं० [देश०] १. दरवाजा। द्वार। २. गाँव की सीमा। उ०—जैसो आँगि फलसा कोटड़ी काँ नै खुलाया। हेलो देर सारा कोटडी काँ नै जगाया।—शिखर०, पृ० ३८।

फलसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] इष्टप्राप्ति का उपाय या साधन [को०]।

फलसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फल की प्राप्ति। सफलता [को०]।

फलस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] फलीकरण या सीमंतोन्नयन नामक संस्कार।

विशेष—हिंदुओं के दस प्रकार के संस्कारों में यह तीसरा संस्कार है।

फलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट।

फलहक—संज्ञा पुं० [सं०] काष्ठफलक। तख्ता [को०]।

फलहरी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फल+हरी (प्रत्य०)] १. वन के वृक्षों के फल। मेवा। वनफल। २. फल। मेवा। जैसे,—कुछ फलहरी ले आओ।

फलहरी[2]—वि० [हिं० फलहार + ई (प्रत्य०)] दे० 'फलहारी'।

फलहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फलाहार'।

फलहारी[1]—वि० [हिं फलहार + ई (प्रत्य०) <सं० फलाहारीय] जिसमें अन्न न पड़ा हो अथवा जो अन्न से न बना हो। जैसे, फलहारी मिठाई, फलहारी जलेबी, फलहारी पूरी।

फलहारी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका देवी का नाम।

फलेही—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपास का पौधा। २. झिल्ली। भृंगारी [को०]।

फलहीन—वि० [सं०] १. निष्फल। २. फलरहित। जैसे, वृक्ष [को०]।

फलहेतु—वि० [सं०] फल के लिये काम करनेवाला [को०]।

फलांत—संज्ञा पुं० [सं० फलान्त] बाँस।

फलांश—संज्ञा पुं० [सं०] तात्पर्य। सारांश। फलितांश। असल मतलब।

फलाँ[1]—वि० [फ़ा० फ़लाँ] अमुक। कोई अनिश्चित।

फलाँ[2]—संज्ञा पुं० लिंग। पुरुषेंद्रिय।

फलाँग—संज्ञा स्त्री० [सं० प्लवन या प्रलङ्घन] १. एक स्थान से उछलकर दूसरे स्थान पर जाने की क्रिया या उसका भाव। कुदान। चौकड़ी। उ०—सुनी सिंह भय मानि अवाज। मारि फलाँग चली वह भाज।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

२. वह दूरी जो फलाँग से तै की जाय। उ०—बानर सुभाव बाल केलि भूमि भानु लगि फलँगु फलाँग हूँ ते घाटि नभ तल भो।—तुलसी (शब्द०)। ३. मालखभ की एक कसरत। उलटना। कलाबाजी।

विशेष—यह एक प्रकार की उड़ान है जिसमें एक हाथ वा दोनों हाथों को जमीन पर टेककर पैरों को उठाकर चक्कर लगाते हुए दूसरी ओर भूमि पर गिरते हैं।

फलाँगना—क्रि० अ० [हिं० फलाँग + ना (प्रत्य०)] एक स्थान से उछलकर दूसरे स्थान पर जाना या गिरना। कूदना। फाँदना।

फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शमी। २. प्रियंगु। ३. भिंभिरीय।

फलाकना†—क्रि० अ० [हिं० फलाँग] लाँघना। छलाँग मारकर पार करना।

फलाकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० फलाकाङ्क्षा] फलप्राप्ति की कामना या इच्छा [को०]।

फलागम—संज्ञा पुं० [सं०] १. फल आना। फल लगना। २. फल आने का काल। फल आने की ऋतु या मौसम। ३. शरद ऋतु। ४. नाटक मे फलार्थी व्यक्ति द्वारा आरब्ध कार्य की पाँचवी अवस्था जिसमें आरंभ किए कार्य का फल प्राप्त होना दिखाया जाय। जैसे रत्नावली नाटिका मे चक्रवर्तित्व के साथ रत्नावली का लाभ।

विशेष—अन्य चार अवस्थाएँ क्रमशः आरंभ, यत्न, प्रात्याशा और नियताप्ति हैं।

फलाढ्य—वि० [सं०] फलयुक्त। फल से भरा हुआ। [को०]।

फलाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठकेला। जंगली केला।

फलातूँ†—संज्ञा पुं० [यूनानी प्लातोन, फ़ा० अफ़लातून, फ़लातून] यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक जो अरस्तू का गुरु और सुकरात का शिष्य था। अफलातून। उ०—मेढ़क एक बोलता था ज्यों सुकरात, फलातूँ सा दूसरा सुनता बात।—कुकुर०, पृ० ४०।

फलात्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

फलादन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो फल खाता हो। २. तोता।

फलादेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी बात का फल या परिणाम बतलाना। फल कहना। २. जन्मकुंडली आदि देखकर या और किसी प्रकार से ग्रहों आदि का फल कहना (ज्योतिष)।

फलाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. खिरनी का पेड़। २. फल देनेवाला, ईश्वर। ३. वह जो फलों का मालिक हो।

फलाना[1]—संज्ञा पुं० [अ० फला+ना (प्रत्य०) या फ़ा० फ़लाँ] [स्त्री० फलानी] अमुक। कोई अनिश्चित। उ०—उन कह्यो घन हम देख्यो है फलानी ठौर, मनन करत भयो कब घरि धानिए।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२६।

फलाना[2]—क्रि० स० [हिं० फलना का प्रे० रूप] किसी को फलने में प्रवृत्त करना। फलने का काम करना।

फलानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] भग।

फलानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० फलानुबन्ध] फल की परंपरा। परिणाम का अनुक्रम [को०]।

फलानुमेय—वि० [सं०] फल द्वारा अनुमेय या जानने योग्य। [को०]।

फलानेजीब—संज्ञा पुं० [अं० फ्लाइंग जीब] जहाज का एक तिकोना पाल जो आगे की ओर होता है।

फलान्वेषी—वि० [स० फलान्वेषिन्] [वि० स्त्री० फलान्वेषिणी] फल की इच्छा रखनेवाला। फल खोजनेवाला [को०]।

फलापेक्षा—संज्ञा स्त्री० [स०] फल की अपेक्षा या आकांक्षा [को०]।

फलापेक्षी—वि० [सं० फलापेक्षिन्] फल की अपेक्षा करनेवाला।

फलापेत—वि० [सं०] फलशून्य। निष्फल। २. अनुत्पादक [को०]।

फलाफल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कर्म का शुभ अशुभ या इष्ट अनिष्ट फल। उ०—ज्ञानोज्वल जिनका अंतस्तल उनको क्या सुख दुःख, फलाफल,।—मधुज्वाल, पृ० १४।

फलाफूला—वि० [हिं० फलना+फूलना] १. फल और फूलों से युक्त। २. विकसित। भरापूरा (ला०)।

फलाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. विषावली। विषाविल। २. अम्लवेत। ३. वह फल जिसका रस खट्टा हो। खट्टा फल।

फलाम्लपंचक—संज्ञा पुं० [सं० फलाम्लपञ्चक] बेर, अनार, विषाविल, अम्लवेत और बिजौरा ये पाँच खट्टे फल।

फलाम्लिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की इमली की चटनी।

फलाम्लिक[2]—वि० अम्ल या खट्टे फल का बना हुआ [को०]।

फलायोपित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली। झींगुर [को०]।

फलारी†—संज्ञा पुं० [सं० फल + आहार = फलाहार] [स्त्री० फलारी] दे० 'फलाहार'।

फलाराम—संज्ञा पुं० [स०] फलों का उपवन [को०]।

फलारिष्ट—संज्ञा पुं० [स०] चरक के अनुसार एक प्रकार का अरिष्ट (अर्क या काढ़ा) जो बवासीर के रोगी को दिया जाता है।

फलार्थी—संज्ञा पुं० [स० फलार्थिन्] [स्त्री० फलार्थिनी] वह जो फल की कामना करे। फलकामी।

फलालीन, फलालेन, फलालैन—संज्ञा पुं० [अं० फ्लैनेल] एक प्रकार का ऊनी वस्त्र जो बहुत कोमल और ढीली ढाली, बुनावट का होता है।

फलाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो फल खाता हो। फल खानेवाला। २. शुक। तोता।

फलासंग—संज्ञा पुं० [सं० फलासङ्ग] वह आसक्ति जो किसी कार्य के फल पर हो।

फलासक्त—वि० [सं०] फल के प्रति आसक्ति रखनेवाला [को०]।

फलासव—संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार दाख, खजूर आदि फलों के आसव जो २६ प्रकार के होते हैं।

फलास्थि—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का पेड़।

फलाहार—संज्ञा पुं० [सं०] फलों का आहार। केवल फल खाना। फलभोजन। उ०—अपने प्रभु के लिये पुजारिन फलाहार सज लाई थी।—साकेत, पृ० ३६८।

फलाहारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० फलाहारिन्] [स्त्री० फलाहारिणी] फल खानेवाला। वह जो फल खाकर निर्वाह करता हो।

फलाहारी[2]—वि० [हिं० फलाहार+ई (प्रत्य०)] फलाहार संबंधी। जिसमे अन्न न पड़ा हो। जो केवल फलों से बना हो।

फलि(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फली'। उ०—फैलि परी हित की फलि, अंतरसूल गई। भागनि वल यह सुभ घरी विधि बनाय दई।—घनानद, पृ० ५५६।

फलि[2]—पुं० [सं०] १. एक प्रकार की मछली जिसका मांस भारी, चिकना, बलकारक और स्वादिष्ट होता है। २. शराव। पात्र। भाजन (को०)।

फलिक[1]—वि० [सं०] फल का भोग करनेवाला।

फलिक[2]—संज्ञा पुं० पहाड़। पर्वत [को०]।

फलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की निष्पावी (सेम) जो हरे रंग की होती है। हरे रंग की सेम। २. सरपत आदि के आगे का नुकीला भाग।

फलित[1]—वि० [सं०] १. फला हुआ। २. संपन्न। पूर्ण।

यौ०—फलित ज्योतिष=ज्योतिष का वह अंग जिसमें ग्रहों के योग से शुभाशुभ फल का निरूपण किया जाता है। विशेष—दे० 'ज्योतिष'।

फलित[2]—संज्ञा पुं० १. वृक्ष। पेड़। २. पत्थरफूल। शैलेय। छरीला।

फलितव्य—वि० [सं०] जो फलने के योग्य हो। फलने लायक।

फलिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री। ऋतुमती स्त्री [को०]।

फलितार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] साराश। तात्पर्यार्थ [को०]।

फलिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वृक्ष जिसमें फल लगते हो। २. कटहल। ३. श्योनाक वृक्ष। ४. रीठा।

फलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रियंगु। २. अग्निशिखा वृक्ष। ३. मूसली। ४. इलायची। ५. मेंहदी। नखकरंज। ६. श्योनाक। ७. त्रायमाणा लता। ८. जलपीपल। ९. दुधिया। दूधी। १०. दाख का बना हुआ आसव।

फली[1]—संज्ञा पुं० [सं० फलिन्] १. श्योनाक। २. कटहल। ३. वह वृक्ष जिसमे फल लगते हों।

फली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रियंगुलता।

विशेष—कवियों ने इसे आम की पत्नी कहा है। देखिए रघुवंश के अष्टम सर्ग का ६१ वाँ श्लोक।

२. मूसली। ३. अमड़ा। ४. एक छोटी मछली। फलि (को०)।

फली[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फल+ई (प्रत्य०)] छोटे छोटे पौधों में लगनेवाले वे लवे और चिपटे फल जिनमें गूदा नही होता बल्कि उसके स्थान पर एक पंक्ति में कई छोटे छोटे बीज होते है।

विशेष—ये फल खाए नहीं जाते बल्कि कच्चे ही तरकारी आदि के काम मे आते हैं। प्रायः सभी फलियाँ खाने में बहुत पौष्टिक होती हैं और सूख जाने पर पशुओं के भी खाने के काम में आती हैं। जैसे, मटर की फली, सेम की फली।

फलीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] भूसे या भूसी से अनाज को अलगाना [को०]।

फलीकृत—वि० [सं०] १. माँड़ा या दाँया हुआ। २. कूटा हुआ। ३. फटककर साफ किया हुआ [को०]।

फलीता—संज्ञा पुं० [अ० फ़तीलह्] १. बड़ आदि के बररोह या छाल आदि के रेशों से बटी हुई रस्सी का टुकड़ा जिसमें तोड़ेदार बंदूक दागने के लिये आग लगाकर रखी जाती है। पलीता। २. बत्ती। ३. पत्ती डोर जो गोट लगाते समय सुंदरता के लिये कपड़े के भीतर किनारा छोड़कर ऊपर से बखिया की जाती है। ४. प्रेतबधित को बाधाशांति के लिये धूनी देनेवाली तावीज की बत्ती।

मुहा०—फलीता दिखाना=(१) आग लगाना। (२) तोप या बंदूक को दागना। फलीता सुँघाना=तावीज या जंतर की धूनी देना।

फलीभूत—वि० [सं०] लाभदायक। फलदायक। जिसका फल या परिणाम निकले। जैसे, परिश्रम फलीभूत होना।

फलुई—संज्ञा स्त्री० [सं० ?] एक मछली का नाम।

फलूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक लता [को०]।

फलेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० फलेन्द्र] फलेंदा। बड़ा जामुन।

फलेंदा—संज्ञा पुं० [सं० फलेन्द्र] एक प्रकार का जामुन जिसका फल बड़ा, गूदेदार और मीठा होता है। इसके पेड़ और पत्ते भी जामुन से बड़े होते है। फरेंदा।

पर्या०—नद। राजजंबू। महाफला। सुरभिपत्रा। महाजंबू।

फलेपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधमुस्ता।

फलेपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गूमा।

फलेरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटलि या पाड़र का वृक्ष।

फलोच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] फल का ढेर।

फलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काकली दाख। २. दुग्धिका। दुधिया। ३. त्रिफला।

फलोत्पत्ति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

फलोत्पत्ति[2]—संज्ञा स्त्री० १. फल आना या लगना। फल की उत्पत्ति २. लाभ [को०]।

फलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।

फलोदय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाभ। २. हर्ष। ३. देवलोक। ४. निग्रह। प्रतीकार (को०)। ५. परिणाम या फल की उत्पति (को०)।

फलोद्भव—वि० [सं०] जो फल से उत्पन्न हुआ हो।

फलोपजीवी—वि० [सं० फलोपजीविन्] फल बेचकर जीविका चलानेवाला [को०]।

फलोपेत—वि० [सं०] फलयुक्त। फलवाला [को०]।

फल्क—संज्ञा पुं० [सं०] विसारितांग। फैले हुए अंगवाला।

फल्गु¹—वि० [स०] १. असार। जिसमें कुछ तत्व न हो। २. निरर्थक। व्यर्थ। ३. क्षुद्र। छोटा। ४. सामान्य। साधारण। ५. कमजोर। अशक्त। उ०—उस समय उनके कल्पना के नेत्रों के समुख तपस्विनियों के जराजीर्ण, फल्गु मात्र अरुचिकर शरीर नाच रहे थे।—ज्ञानदान, पृ० १९। ६. असत्य (को०)। ७. सुंदर। रम्य। रमणीय (को०)।

फल्गु²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वसंत ऋतु (को०)। २. अबीर। गुलाल (को०)। ३. कठूमर। जंगली गूलर (को०)। ४. असत्य कथन। झूठ वचन (को०)। ५. ज्योतिष में पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र (को०)। ६. बिहार की एक नदी का नाम। गया तीर्थ इसी नदी के किनारे है।

यौ०—फल्गुदा = फल्गुनदी।

फल्गुद—वि० [सं०] लोभी। कृपण। कंजूस [को०]।

फल्गुन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्जुन। २. इंद्र (को०)। ३. फाल्गुन मास।

फल्गुन²—वि० १. फाल्गुनी नक्षत्र संबंधी। २. लाल (को०)।

फल्गुनक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक जाति का नाम।

फल्गुनाल—संज्ञा पु० [सं०] फाल्गुन मास।

फल्गुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'फाल्गुनी'।

फल्गुनीभव—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति का नाम।

फल्गुलुक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश।

फल्गुलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार वायु कोण की एक नदी का नाम।

फल्गुवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर।

फल्गुवृंत, फल्गुवृंताक—संज्ञा पु० [सं० फल्गुवृन्त, फल्गुवृन्ताक] एक प्रकार का श्योनाक।

फल्गूत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] होली। वसंतोत्सव [को०]।

फल्य—संज्ञा पुं० [सं०] फूल।

फल्लकी—संज्ञा पुं० [सं० फल्लकिन्] एक प्रकार की मछली जिसे फलुई कहते हैं।

फल्लफल—संज्ञा पुं० [सं०] सूप के फटकने से होनेवाली हवा [को०]।

फल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो बंगाल के रामपुर हाट नामक स्थान से आता है।

विशेष—इसका रंग पीलापन लिए सफेद होता है और यह तंदूरी से कुछ घटिया होता है।

फसकड़ा†—संज्ञा पुं० [अनु०] पालथी। पलथी। जैसे,—जहाँ देखो वहीं फसकड़ा मारकर बैठ जाते हैं।

क्रि० प्र०—मारना।

फसकना†¹—क्रि० अ० [अनु०] १. कपड़े का मसकना या दबने आदि के कारण कुछ फट जाना। मसकना। २. अंदर को बैठना। धँसना। ३. फस फस या फुसफुस की आवाज करते हुए बात करना। ४. कोई लगती बात मंद स्वर मे बोल देना। ५. फटना। तड़कना। जैसे,—अधिक पूर देने के कारण पेड़ा फसक गया।

फसकना²—वि० १. जो जल्दी मसक या फट जाय। २. जो जल्दी धँसे या बैठ जाय।

फसकना†³—क्रि० अ० [सं० भक्षण > भचण] अस्पष्ट आवाज के साथ कुछ खाना। भसकना।

फसकाना†—क्रि० अ० [अनु०] १. कपड़े को मसकाना या दबा कर कुछ फाड़ना। २. धँसाना। बैठाना।

फसड्डी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'फिसड्डी'।

फसल—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़स्ल] १. ऋतु। मौसम। २. समय। काल। जैसे, बोने की फसल, काटने की फसल। ३. शस्य। खेत की उपज। अन्न। जैसे, खेत की फसल। ४. वह अन्न की उपज जो वर्ष के प्रत्येक अयन में होती है।

विशेष—अन्न के लिये वर्ष के दो अयन माने गए हैं, खरीफ और रबी। सावन से पूस तक में उत्पन्न होनेवाले अन्नों को खरीफ की फसल कहते हैं और माघ से आषाढ़ तक में उपजनेवाले को रबी की फसल।

फसली¹—वि० [अ० फ़स्ल + फ़ा० ई (प्रत्य०)] मौसिमी। ऋतु का। जैसे, फसली बुखार।

फसली²—संज्ञा पु० १. एक प्रकार का संवत्।

विशेष—इसे दिल्ली के सम्राट् अकबर ने हिजरी संवत् को, जिसका प्रचार मुसलमानों में था और जिसमें चांद्रमास की रीति से वर्ष की गणना थी, बदलकर सौर मास में परिवर्तन करके चलाया था। अब ईसवी संवत् से यह ५८३ वर्ष कम होता है। इसका प्रचार उत्तरीय भारत में फसल या खेती बारी आदि के कामों में होता है।

२. हैजा। ३. बुखार। मियादी बुखार।

फसली कौवा—संज्ञा पुं० [अ० फ़स्ल + फ़ा० ई (प्रत्य०) + हिं० कौवा] १. पहाड़ी कौवा जो शीत ऋतु में पहाड़ से उतरकर मैदान में चला आता है। २. वह जो केवल अच्छे समय मे अपना स्वार्थ साधन करने के लिये किसी के साथ रहे और उसकी विपत्ति के समय काम न आवे। स्वार्थी। मतलबी।

फसलीगुलाब—संज्ञा सं० [हिं० फसली + फ़ा० गुलाब] चैती गुलाब।

फसली बुखार—संज्ञा पुं० [अ० फ़स्ल + फ़ा० ई (प्रत्य०) + बुखार] १. वह ज्वर जो किसी एक ऋतु की समाप्ति और दूसरी ऋतु के आरंभ के समय होता है। २. जाड़ा देकर आनेवाला वह बुखार जो प्रायः बरसात मे होता है। जूड़ी। मलेरिया।

फसली सन्, फसली साल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फसली²'—१।

फसाद—संज्ञा पुं० [अ० फ़साद] [वि० फसादी] १. बिगाड़। विकार। २. बलवा। विद्रोह। ३. ऊधम। उपद्रव। ४. झगड़ा। लड़ाई। ५. विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—उठाना।—खड़ा करना।—दबना।—दबाना।—मचना।—मचाना।

मुहा०—फसाद का घर=झगड़ालु। फसादी। फसाद की जड़=झगड़े का मूल कारण।

फसादी—वि० [फा०] १. फसाद खड़ा करनेवाला। उपद्रवी। २. झगड़ालू। लड़ाका। ३. नटखट। पाजी।

फसाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़सानह्] आख्यान। कहानी। किस्सा।

यौ०—फसानानवीस, फसानानिगार=कहानी लेखक।

फसाहत—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़साहत] किसी विषय का साधु और मार्जित वर्णन करना। भाषा का प्रसाद गुण। उ०—'रसा' महवे फसाहत दोस्त क्या दुश्मन भी है सारे। जमाने मे तेरे तर्जे सखुन की यादगारी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८।

फसिल†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फसल'।

फसील—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़सील] १. भित्ति। दीवार। २. प्राचीर। परकोटा।

फसीह—वि० [अ० फ़सीह] प्रसाद गुणवाली भाषा लिखने या बोलनेवाला। उ०—श्री जहूरबख्श विशुद्ध संस्कृतमयी शैली मे भी लिख सकते हैं और फसीह उर्दू में भी।—शुक्ल अभि० ग्रं० (साहित्य), पृ० ९२।

फस्त—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़स्द] दे० 'फस्द'।

फस्द—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़स्द] नस को छेदकर शरीर का दूषित रक्त निकालने की क्रिया। उ०—फस्द देते हुए फस्साद को रोकें।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १९३।

मुहा०—फस्द खोलना=नस या धमनी को छेदकर रक्त निकालना। फस्द खुलवाना=(१) शरीर का दूषित रक्त निकालना। (२) पागलपन की चिकित्सा कराना। होश की दवा कराना। फस्द लेना=(१) शरीर का दूषित रक्त निकलवाना। (२) पागलपन की चिकित्सा कराना।

फस्ल—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़स्ल] १. दे० 'फसल'। २. अंतर। पार्थक्य। ३. आवरण। पट। परदा। ४. किसी ग्रंथ का अध्याय या परिच्छेद।

यौ०—फस्ले गुल, फस्ले बहार=फूलों का मौसम। वसंत ऋतु।

फस्ली—वि०, संज्ञा पुं० [अ० फ़स्ल+फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'फसली'।

फस्साद—संज्ञा पुं० [अ० फ़स्साद] फस्द खोलनेवाला। दूषित रक्त निकालनेवाला। उ०—फस्द देते हुए फस्साद को रोकें।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १९३।

फहमंदⓅ—वि० [अ० फ़ह्म, हिं० फहम] जानकार। भेदी। उ०—के फहमंदा भजन को दिव्य दृष्टि को जाय।—भीखा० श०, पृ० ८९।

फहम—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ह्म] ज्ञान। समझ। विवेक। उ०—(क) फहमै आगे फहमै पाछे फहमै दहिने डेरी। फहमै पर जो फहम करत है सोई फहम है मेरी।—कबीर (शब्द०)। (ख) कलि कुचालि संतन कही सोइ सही, मोहिं कछु फहम न तरनि तमी को।—तुलसी (शब्द०)। (ग) आए सुक सारन बोलाए ते कहन लागे, पुलके सरीर सेना करत फहम हीं।—तुलसी (शब्द०)।

फहमाइस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़हमाइश] १. शिक्षा। सीख। २. आज्ञा। हुकुम।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

फहरना—क्रि० अ० [सं० प्रसरण] फहराना का अकर्मक रूप। वायु में उड़ना। फड़फड़ाना। उ०—(क) सदिन बीच नागरीं विराजति भई प्रीति उर हरि के। मंद मंद गति चलत अधिक छवि अंचल रहेउ फहरि के।—सूर (शब्द०)। (ख) फहरैं फुहारे नीर नहरैं नदी सी बहै, छहरैं छबीन छाम छीटन की छाटी है।—पद्माकर (शब्द०)।

फहरान—संज्ञा स्त्री० [हिं० फहराना] फहरने या फहराने का भाव या क्रिया।

फहराना¹—क्रि० स० [सं० प्रसारण] उड़ाना। कोई चीज इस प्रकार खुली छोड़ देना जिसमें वह हवा मे हिलने और उड़ने लगे। जैसे, हवा मे दुपट्टा फहराना, झंडा फहराना।

फहराना²—क्रि० अ० फहरना। वायु मे पसरना। हवा में रह रहकर हिलना या उड़ना। उ०—(क) काया देवल मन ध्वजा विषय लहर फहराय। मन चलता देवल चले ताको सरवस जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरब करहिं पायक फहराही।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चारिहुँ ओर ते पौन झकोर झकोरनि घोर घटा घहरानी। ऐसे समय पद्माकर काहु के आवत पीत पटी फहरानी।—पद्माकर (शब्द०)।

फहरानिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फहरान'। उ०—(क) वा पट पीत की फहरानि। कर धरि चक्र चरण की धावनि नहिं बिसरति वह बानि।—सूर (शब्द०)। (ख) अंचर की फहरानि हिए घहरानि उरोजन पीन तटी की।—देव (शब्द०)।

फहरिस्त—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फेहरिस्त'।

फहश—वि० [अ० फ़ह्श] फूहड़। अश्लील।

फांट¹—संज्ञा पुं० [सं० फाण्ट] थोड़े आयास द्वारा बननेवाला काढ़ा। औषधिचूर्ण को गर्म पानी मे डालकर छानने से बना हुआ काढ़ा। २. मंथन से निकलनेवाले मक्खन के कण (को०)।

फांट²—वि० अनायास तैयार होनेवाला। आसानी से तैयार किया हुआ। ३. आलसी। सुस्त (को०)।

फांटक¹—संज्ञा पुं० [सं० फाण्टक] काढ़ा। क्वाथ (को०)।

फांटक²—वि० दे० 'फाट²' (को०)।

फांड—संज्ञा पुं० [सं० फाण्ड] पेट। उदर (को०)।

फाँक¹—संज्ञा स्त्री० [सं० फलक या देश०] १. किसी गोल या पिंडाकार वस्तु का काटा या चीरा हुआ टुकड़ा। गोल मटोल वस्तु का वह खंड जो किसी सीध मे बराबर काटने से अलग हो। छुरी, आरी आदि से अलग किया हुआ टुकड़ा। उ०—छोरी बदि

बिदा करि राजा राजा होय कि राँको। जरासंध को जोर उधेरयो फारि कियो द्वै फाँको।—गोपाल (शब्द०)। २. किसी फल का एक सिरे से दूसरे तक काटकर अलग किया हुआ टुकड़ा। जैसे, नीबू, आम, अमरूद, खरबूजे आदि की फाँक। ३. खंड। टुकड़ा। उ०—टघरि टघरि चामीकर के कंगूर गिरै फटकि फरस फूटि फूटि फाँके फहराहिं।—(शब्द०)।

विशेष—टूट टूटकर अलग होनेवाले टुकड़े के लिये इस शब्द का व्यवहार बहुत कम मिलता है।

४. लकीरें जिनसे कोई गोल या पिंडाकार वस्तु सीधे टुकड़ों में में बँटी दिखाई दे। जैसे, खरबूजे की फाँकें। ५. छिद्र। दरार। शिगाफ। संधि। जैसे, दरवाजे की फाँक।

फाँकड़ा—वि० [हिं० फाँक+देश० ड़ा (प्रत्य०)] १. बाँका। तिरछा। २. हृष्टपुष्ट। तगड़ा। मुस्टंडा। मजबूत।

फाँकना—क्रि० स० [हिं० फाँका] चूर, दाने या बुकनी के रूप की वस्तु को दूर से मुँह में डालना। कण या चूर्ण को दूर से मुँह में फेंककर खाना। जैसे, चीनी फाँकना। उ०—लपसी लौंग गनै इक सारा। खाँड़ परिहरि फाँकै छारा।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—धूल फाँकना=(१) खाने को न पाना। (२) ऐसे स्थान में जाना या रहना जहाँ बहुत गर्द हो। (३) दुर्दशा भोगना।

फाँका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० फेंकना] १. किसी वस्तु को दूर से फेंककर मुँह में डालने की क्रिया या भाव। फंका।

मुहा०—फाँका मारना=किसी वस्तु को फाँकना।

२. उतनी वस्तु जो एक बार में फाँकी जाय।

फाँका(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँक] दे० 'फाँक'।

मुहा०—फाँका देना=अंतर करना।

फाँका†[3]—संज्ञा पुं० [अ० फ़ाक़ह्] दे० 'फाका'।

यौ०—फाँकामस्त, फाँकेमस्त=दे० 'फाकामस्त'। उ०—जुरि आए फाँकेमस्त होली होइ रही।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३९६।

फाँकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फाँक'।

फाँग, फाँगी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का साग। उ०—(क) रुचि तल जानि लोनिका फाँगी। कढ़ी कृपालु दूसरे माँगी।—सूर (शब्द०)। (ख) पोई परवर फाँग फरी चुनि। टेंटी टेंट सो छोलि कियो पुनि।—सूर (शब्द०)।

फाँट†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाटना, फटना वा सं० पट्ट] १. यथाक्रम कई भागों में बाँटने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

२. क्रम से बाँटा हुआ भाग। अलग अलग किए हुए कई भागों में से एक भाग। ३. दर या पड़ता जिसके अनुसार कोई वस्तु बाँटी जाय।

यौ०—फाँटबंदी।

फाँट[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० फाण्ड] १. औषधि को गरम पानी में औटाना। काढ़ा बनाने की क्रिया या भाव। २. क्वाथ। काढ़ा।

फाँट†[3]—संज्ञा पुं० [सं० फाण्ड (=पेट, उदर)] दे० 'फाँड़ा'। उ०—बसन एक इसहाक सोहावा। बाँधहिं फाँट सो लीन्ह कढ़ावा।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २३५।

फाँटना—क्रि० स० [हिं० फाट] १. किसी वस्तु को कई भागों में बाँटना। विभाग करना। २. जड़ी बूटी आदि को पानी में औटाना। काढ़ा करना।

फाँटबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँट+फ़ा० बंदी] वह कागज जिसमें किसी गाँव में नामुकम्मल पट्टीदारों के हिस्सों के अनुसार उस गाँव की आमदनी आदि की बाँट लिखी रहती है।

फाँटा—संज्ञा पुं० [हिं० फाटना] लोहे वा लकड़ी का वह झुका हुआ या कोणयुक्त टुकड़ा जो मिलकर कोण बनाती हुई दो वस्तुओं को परस्पर जकड़े रखने के लिये जोड़ पर जड़ दिया जाता है। कोनिया।

फाँड़—संज्ञा पुं० [सं० फाण्ड] दे० 'फाँड़ा'।

फाँड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० फाण्ड (=पेट)] दुपट्टे या धोती का कमर में बँधा हुआ हिस्सा।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।

मुहा०—फाँड़ा बाँधना या कसना=किसी काम के लिये मुस्तैद होना। कटिबद्ध होना। कमर कसना। फाँड़ा पकड़ना=(१) इस प्रकार पकड़ना जिसमें कोई मनुष्य भागने न पावे। (२) स्त्री का किसी पुरुष को अपने भरण पोषण आदि के लिये जिम्मेदार ठहराना।

फाँद[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फाँदना] उछाल। उछलने का भाव। कूदकर जाने की क्रिया या भाव।

फाँद[2]—संज्ञा स्त्री०, पुं० [हिं० फंदा] रस्सी, बाल, सूत आदि का घेरा जिसमें पड़कर कोई वस्तु बँध जाय। फंदा। पाश। उ०—पवन पानि होइ होइ सब गिरई। पेम के फाँद कोउ जनि परई।—जायसी ग्रं०, पृ० २६४। २. चिड़िया आदि फँसाने का फंदा या जाल। उ०—(क) तीतर गीव जो फाँद है निर्वहि पुकारै दोष।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रेम फाँद जो परा न छूटा। जीव दीन्ह पर फाँद न टूटा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—कवियों ने इस शब्द को प्रायः पुलिंग ही माना है।

फाँदना[1]—क्रि० अ० [सं० फण्न, हिं० फानना] झोंक के साथ शरीर को ऊपर उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा पड़ना। कूदना। उछलना। उ०—दग मृगनैननि के कहूँ फाँद न पावे जान। जुलुफ फँदा मुख भूमि पै रोपे बधिक सुजान।—रसनिधि (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

फाँदना[2]—क्रि० स० १. उछलकर पार करना। कूदकर लाँघना।

शरीर उछालकर किसी वस्तु के आगे जा पड़ना। डाँकना। जैसे, नाली फाँदना, गड्ढा फाँदना। २. नर (पशु) का मादा पर जोड़ा खाने के लिये जाना।

फाँदना[३]—क्रि० स० [हिं० फंदा] फंदे में डालना। फँसाना। उ०—कुटिल अलक सुभाय हरि के भुवनि पै रहे आय। मनो मन्मथ फाँदि फंदन मीन बिधि लटकाय।—सूर (शब्द०)।

फाँदना†[४]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'फानना'।

फाँदा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फंदा'। उ०—गुरु मुख सती महा परसादा। बावत मेटै करम कर फाँदा।—कबीर सा०, पृ० ४११।

फाँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फंदा] १. वह रस्सी जिससे कई वस्तुओं को एक साथ रखकर बाँधते हैं। गट्ठा बाँधने की रस्सी। २. गन्नों का गट्ठा। एक में बँधे हुए बहुत से गन्नों का बोझ।

फाँफट†—संज्ञा पुं० [हिं० पटपट] १. कूड़ा करकट। धूल धक्कड़। २. असत्य। झूठ। मिथ्या (लाक्ष०)। उ०—चोरी करि चपरावत सौंहनि काहे कौं इतनो फाँफट फाँकत।—घनानंद०, पृ० ३३६।

फाँफी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्पटी] १. बहुत महीन झिल्ली। बहुत बारीक तह। २. दूध के ऊपर पड़ी हुई मलाई की पतली तह। ३. पतली सफेद झिल्ली जो आँख की पुतली पर पड़ जाती है। माँड़ा। जाला।

फाँवरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रावार, हिं० पामरी, पाँवड़ी + इया (प्रत्य०) या हिं० फरिया] ओढ़नी। पट। उ०—दिखण दिसा री मँगाय फाँवरिया अपणे हाथ ओढ़ाऊ।—राम० धर्म०, पृ० १।

फाँस[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० पाश] १. पाश। बंधन। फंदा। उ०—माया मोह लोभ अरु मान। ए सब त्रय गुण फाँस समान।—सूर (शब्द०)। २. वह रस्सी जिसका फंदा डालकर शिकारी पशु पक्षी फँसाते हैं। उ०—(क) रुष्ठि रही ठगलाड़, अलक फाँस पड़ गीव। जहाँ भिखारि न बाँचइ तहाँ बँचइ को जीव?—जायसी (शब्द०)। (ख) वरुण फाँस ब्रजपतिहिं छिन माहिं छुड़ावै। दुखित गयंदहि जानि कै आपुन उठि धावै।—सूर (शब्द०)।

फाँस[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० पनस] १. बाँस, सूखी लकड़ी आदि का कड़ा तंतु जो शरीर में चुभ जाता है। बाँस या काठ का कड़ा रेशा जिसकी नोक काँटे की तरह हो जाती है। महीन काँटा। उ०—(क) करकि करेजे गड़ि रही वचन वृक्ष की फाँस। निकसाए नकसै नहीं रही सो काहू गाँस।—कबीर (शब्द०) (ख) नस पानन की काढ़ै हेरी। अधर न गड़ै फाँस तेहि केरी।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—गड़ना।—चुभना।—निकलना।—निकालना।—लगना।

२. बाँस, बेंत आदि को चीरकर बनाई हुई पतली तीली। पतली कमाची। उ०—अमृत ऐसे बचन में रहिमन रस की गाँस। जैसे मिसिरिहु में मिली निरस बाँस की फाँस।—रहीम (शब्द०)।

मुहा०—फाँस चुभना = जी में खटकनेवाली बात होना। कसकनेवाली बात होना।—ऐसी बात होना जिससे चित्त को दुःख पहुँचे। फाँस निकलना = कंटक दूर होना। ऐसी वस्तु या व्यक्ति का न रह जाना जिससे दुःख या खटका हो। कष्ट पहुँचानेवाली वस्तु का हटना। फाँस निकालना = कंटक दूर करना। ऐसी वस्तु या व्यक्ति को दूर करना जिससे कुछ कष्ट या बात का खटका हो।

फाँसना—क्रि० स० [सं० पाश, प्रा० फाँस] १. बंधन में डालना। पकड़ना। पाश में बाँधना। जाल में फँसाना। उ०—निरखि यदुवंश को रहस मन में भयो देखि अनिरुद्ध सों युद्ध माँड्यो। सूर प्रभु ठटी ज्यों भयो चाहै सो त्यों फाँसि करि कुँअर अनिरुद्ध बाँध्यो। २. धोखे में डालना। धोखा देकर अपने अधिकार में करना। वशीभूत करना। ३. किसी पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह वश में होकर कुछ करने के लिये तैयार हो जाय। जैसे,—किसी बड़े आदमी को फाँसो तब रुपया मिलेगा।

संयो० क्रि०—फूँसना = फँसाना। उ०—मनबोध हुजूर लाला कल्लू को फाँसफूँस कि ले गए हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५००।—लाना।—लेना।

फाँसरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फंदा। फँसरी। पाश। उ०—भली भई जो पिउ मुआ, नित उठि करता रार। छूटी गल की फाँसरी, सोऊँ पाँव पसार।—कबीर सा० सं०, पृ० ४७।

फाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० पाशी] १. फँसाने का फंदा। पाश। उ०—लालन बाल के द्वै ही दिना ते परी मन आय सनेह की फाँसी।—मतिराम (शब्द०)। २. वह रस्सी या रेशम का फंदा जिसमें फँसने से गला घुट जाता है और फँसनेवाला मर जाता है।

क्रि० प्र०—लगना।

३. रेशम या रस्सी का फंदा जो दो ऊँचे खंभे गाड़कर ऊपर से लटकाया जाता है और जिसे गले में डालकर अपराधियों को प्राणदंड दिया जाता है।

मुहा०—फाँसी खड़ी होना = (१) फाँसी के खंभे इत्यादि गड़ना। फाँसी दिए जाने की तैयारी होना। (२) प्राण जाने का डर होना। डर की बड़ी भारी बात होना। जैसे,—जाते क्यों नहीं, क्या वहाँ फाँसी खड़ी है? फाँसी चढ़ना = पाश द्वारा प्राणदंड पाना। फाँसी चढ़ाना = गले में फंदा डालकर प्राण दंड देना।

४. वह दंड जो अपराधी को फंदे के द्वारा मारकर दिया जाय। पाश द्वारा प्राणदंड। मौत की सजा जो गले में फंदा डालकर दी जाय।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—फाँसी देना = पाश द्वारा प्राणदंड देना। गले में फंदा

डालकर मार डालना। फाँसी पाना = पाश द्वारा प्राणदंड पाना। किसी अपराध मे गले में फंदा डालकर मार डाला जाना।

फाइदा—संज्ञा पुं० [अ० फ़ाइदह्] दे० 'फायदा'। उ०—जिस तरह हो सके हम अपनी जन्मभूमि को कुछ फाइदा पहुँचा सकें।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ७८।

फाइन[1]—संज्ञा पुं० [अं० फ़ाइन] जुर्माना। अर्थदंड। जैसे,—उसपर १००) फाइन हुआ।

फाइन[2]—वि० [अं० फ़ाइन] सुंदर। अच्छा। बढ़िया।

फाइनल—वि० [अं० फ़ाइनल] आखिरी। अंतिम। जैसे, फाइनल परीक्षा।

फाइनांस—संज्ञा पुं० [अं० फ़ाइनान्स] सार्वजनिक राजस्व और उसके आयव्यय की पद्धति। अर्थव्यवस्था।

फाइनानशल—वि० [अं० फ़ाइनान्शल] १. सार्वजनिक राजस्व या अर्थव्यवस्था संबंधी। मालगुजारी के मुताल्लिक। माली। जैसे, फाइनानशल कमिश्नर। २. आर्थिक। अर्थ संबंधी। माली।

फाइनानशल कमिश्नर—संज्ञा पुं० [अं० फ़ाइनान्शल कमिश्नर] वह सरकारी अफसर जिसके अधीन किसी प्रदेश का राजस्व विभाग या माल का महकमा हो।

फाइल—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़ाइल] १. मिसिल। नत्थी। २. लोहे का तार जिसमें कागज या चिट्ठियाँ नत्थी की जाती है। ३. सामयिक पत्रों आदि के कुछ पूरे अंकों का समूह।

फाइलेरिया—संज्ञा पुं० [अं फ़ाइलेरिया] श्लीपद रोग।

फाउटेन—संज्ञा पुं० [अं० फ़ाउन्टेन] १. निर्झर। सोता। चश्मा। स्याही रखने का पात्र।

यौ०—फाउन्टेन पेन = लेखनी जिसमें स्याही भरकर लिखा जाता है जिससे बार बार उसे दावात मे डुबाने की जरूरत नही होती।

फाउंड्री—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़ाउन्ड्री] वह कल या कारखाना जहाँ धातु की चीजें ढाली जाती हो। ढालने का कारखाना। जैसे, टाइप फाउंड्री।

फाउड़ि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँवड़ी] दे० 'पावँड़ी'। उ०—तजो कहरि नजिर भभूत, बटवा फाउड़ि जिनि लेउ हाथ। एता आरंभ परिहरो सिद्धो, यो कथत जती गोरखनाथ।—गोरख०, पृ० २३८।

फाका—संज्ञा पुं० [अ० फ़ाकह्] उपवास। निराहार रहना। उ०—फे फाके का गुन यही राजिक करे यादा।—चरण० बानी, पृ० ११२।

यौ०—फाकाकशी। फाकेमस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—फाका पड़ना = उपवास होना। फाकों का मारा = भोजन न मिलने से अत्यंत शिथिल। भूख से मरता हुआ। फाकों मरना = भूखों मरना। उपवास का कष्ट सहना।

फाकामस्त, फाकेमस्त—वि० [अ० फ़ाकह् (प) + फा० मस्त, हिं० फाके + फ़ा० मस्त] जो खाने पीने का कष्ट उठाकर भी कुछ चिंता न करता हो। जो पैसा पास न रखकर भी बेपरवा रहता हो।

फाखतई[1]—वि० [अ० फ़ाखतह् + फ़ा० ई (प्रत्य०) या फ़ाख्तह् + ई (प्रत्य०)] पंडुक के रंग का। भूरापन लिए हुए लाल।

फाखतई[2]—संज्ञा पुं० एक रंग का नाम।

विशेष—यह रंग ललाई लिए भूरा होता है। आठ माशे वायोलेट को आध सेर मजीठ के काढे में मिलाकर इसे बनाते हैं।

फाखता—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ाख्तह्] [वि० फाखतई] पंडुक। धवँरखा।

मुहा०—फाख्ता उड़ जाना = (१) घबरा जाना। व्याकुल होना। (२) बेहोश होना।

फाग—संज्ञा पुं० [हिं० फागुन] १. फागुन के महीने में होनेवाला उत्सव जिसमें लोग एक दूसरे पर रंग या गुलाल डालते और वसंत ऋतु के गीत गाते हैं। उ०—तेहि सिर फूल चढ़हिंवे जेहि माथे मन भाग। आछेंद सदा सुगंध वह जनु बसंत औ फाग।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खेलना। उ०—निकस्यो मोहन साँवरो हो फागु खेलन ब्रज माँझ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८२।

२. वह गीत जो फाग के उत्सव में गाया जाता है।

फागुन—संज्ञा पुं० [स० फाल्गुन] शिशिर ऋतु का दूसरा महीना। माघ के बाद का महीना। फाल्गुन। उ०—ऋतु फागुन नियरानी, कोई पिया से मिलावे।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६८।

विशेष—यद्यपि इस महीने की गिनती पतझड़ या शिशिर में है, तथापि वसंत का आभास इसमे दिखाई देने लगता है। जैसे, नई पत्तियाँ निकलना आरंभ होना, आमों में मंजरी लगना, टेसू फूलना इत्यादि। इस महीने की पूर्णिमा को होलिका० दहन होता है। यह आनंद का महीना माना जाता है। इस महीने में जो गीत गाए जाते हैं उन्हें फाग कहते हैं।

फागुनी—वि० [हिं० फागुन + ई (प्रत्य०)] फागुन संबंधी। फागुन का।

फाजिर—वि० [अ० फ़ाजिर] [वि० स्त्री० फाजिरा] दुष्कर्मी। दुराचारी।

फाजिल—वि० [अ० फ़ाज़िल] १. अधिक। आवश्यकता से अधिक। जरूरत से ज्यादा। खर्च या काम से बचा हुआ।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—होना।

२. विद्वान्। गुणी। उ०—(क) सो है फाजिल संत महरमी पूरन ब्रह्म समावै।—भीखा श०, पृ० २५। (ख) बहुत ही

आला दर्जे के फाजिल और उस्ताद हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६० ।

फाजिल बाकी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० फाजिल बाकी] हिसाब की कमी या बेशी । हिसाब में का लेना देना ।

क्रि० प्र०—निकालना ।

फाजिल बाकी[2]—वि० हिसाब में बाकी निकला हुआ । बचा हुआ । अवशिष्ट । जैसे,—तुम्हारे जिम्मे १००) फाजिल बाकी है ।

फाटक[1]—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] १. बड़ा द्वार । बड़ा दरवाजा । तोरण । उ०—चारों ओर ताँबे का कोट और पक्की चुगान चौड़ी खाई स्फटिक के चार फाटक तिनमें अष्टधाती किवाँड़ लगे हुए··· ···। —लल्लू (शब्द०) । २. दरवाजे पर की बैठक । ‡३. मवेशीखाना । कांजी हौस ।

फाटक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० फटकना] फटकन । पछोड़न । भूसी जो अनाज फटकने से बची हो । उ०—फाटक दै कर, हाटक माँगत भोरी निपटहि जानि ।—सूर (शब्द०) ।

फाटका—संज्ञा पुं० [हिं०] सट्टा । सट्टे का जुआ । उ०—सट्टे या फाटके का सौदा भी किया जाता था ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २६६ ।

यौ०—फाटकेबाज=सट्टे का जुआ खेलनेवाला । सट्टेबाज । सटोरिया ।

फाटकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकिरी [को०] ।

फाटना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फटना' । उ०—(क) धरती भार न अँगवै पाँव धरत उठ हाल । कर्म कूट भुइँ फाटी तिन हस्तिन की चाल ।—जायसी (शब्द०) । (ख) दूध फाटि घृत दूधे मिला नाद जो (मिला) अकास । तन छूटे मन तहँ गया जहाँ धरी मन आस ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—फाट पड़ना†=टूट पड़ना । उ०—दूर दूर से मरभूखे फाट पड़े । —प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७४ ।

फाड़खाऊ†—वि० [हिं० फाड+खाना] १. फाड़ खानेवाला । कटखन्ना । २. क्रोधी । बिगड़ैल । चिड़चिड़ा । ३. भयानक । घातक ।

फाड़न—संज्ञा स्त्री०, पुं० [हिं० फाड़ना] १. कागज, कपड़े आदि का टुकड़ा जो फाड़ने से निकले । २. दही के ताजे मक्खन की छाँछ जो आग पर तपाने से निकले ।

फाड़ना—क्रि० स० [सं० स्फाटन, प्रा० फाडण, हिं० फाटना] १. किसी पैनी या नुकीली चीज को किसी सतह पर इस प्रकार मारना या खींचना कि सतह का कुछ भाग हट जाय या उसमें दरार पड़ जायँ । चीरना । विदीर्ण करना । जैसे, नाखून से कपड़े फाड़ना, पेट फाड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—फाड़ खाना=क्रोध से झल्लाना । बिगड़ना । चिड़चिड़ाना ।

२. झटके से किसी परत होनेवाली वस्तु का कुछ भाग अलग कर देना । टुकड़े करना । खंड करना । जैसे, थान में से कपड़ा फाड़ना, कागज फाड़ना । ३. धज्जियाँ उड़ाना । जैसे, हवा का बादल फाड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

३. जुड़ी या मिली हुई वस्तुओं के मिले हुए किनारों को अलग अलग कर देना । संधि या जोड़ फैलाकर खोलना । जैसे, आँख फाड़ना, मुँह फाड़ना । ४. किसी गाढ़े द्रव पदार्थ को इस प्रकार करना कि पानी और सार पदार्थ अलग हो जायँ । जैसे,—(क) खटाई डालकर दूध फाड़ना । (ख) चोट पर लगाने से फिटकरी खून फाड़ देती है ।

फाणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुड़ । भेली । २. दही में साना हुआ सत्तू [को०] ।

फाणित—संज्ञा पुं० [सं०] १. राब । २. शीरा ।

फातिमा—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ातिमह्] पैगंबर मुहमद की पुत्री जो अली की पत्नी और हसन हुसैन की जननी थी ।

फातिहा—संज्ञा पुं० [अ० फ़ातिहह्] १. प्रार्थना । उ०—कबीर काली सुंदरी होइ बैठी अल्लाह । पढ़ै फातिहा गैब का हाजिर को कहै नाहि ।—कबीर (शब्द०) । २. वह चढ़ावा जो मरे हुए लोगों के नाम पर दिया जाय । जैसे,—हलवाई की दुकान और दादे का फातिहा ।

यौ०—फातिहाख्वानी=फातिहा पढ़ने की रस्म ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।

फादर—संज्ञा पुं० [अं० फ़ादर तुल० सं० पितर] १. पिता । बाप । २. पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि । जैसे, फादर जोन्स । उ०—मैं अभी आप दोनों को गिर्जे में फादर के पास ले जाती हूँ । —जिप्सी, पृ० १६५ ।

फानना[1]—क्रि० स० [सं० फाण्ट या स्फालन] धुनना । रूई को फटकना ।

फानना†[2]—क्रि० स० [सं० उपायन] किसी काम को आरंभ करना । अनुष्ठान करना । कोई काम हाथ में लेना । किसी काम में हाथ लगा देना ।

फानी—वि० [अ० फ़ानी] नश्वर । नष्ट होनेवाला । उ०—रंगीन दलों पर जो कुछ था, तसवीर एक वह फानी थी । —द्वंद्व०, पृ० ५२ ।

फानूस[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ानूस] १. एक प्रकार का दीपाधार जिसके चारों ओर महीन कपड़े या कागज का मंडप सा होता है । कपड़े या कागज से मढ़ा हुआ पिंजरे की शकल का चिरागदान । एक प्रकार की बड़ी कंदील । उ०—लाल छबीली तियन में बैठी आप छिपाइ । अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—यह लकड़ी का एक चौकोर या अठपहल ढाँचा होता था जिसपर पतला कपड़ा मढ़ा रहता था । इसके भीतर

पहले चिरागदान पर चिराग रखकर लोग फरश पर रखते थे।

२. शीशे की मृदगी, कमल वा गिलास आदि जिसमें बत्तियाँ जलाई जाती हैं। ३. समुद्र के किनारे का वह ऊँचा स्थान जहाँ रात को इसलिये प्रकाश जलाया जाता है कि जहाज उसे देखकर बंदर जान जाय। कंदीलिया।

फानूस[२]—संज्ञा पुं० [अं० फरनेस] ईंटों आदि की भट्ठी जिसमें आग सुलगाई जाती है और जिसके ताप से अनेक प्रकार के काम लिए जाते हैं। जैसे, लोहा, ताँबा, गंधक आदि गलाना।

फाफड़, फाफड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० पर्पट] कूटू। कूटू। दे० 'कूटू'। उ०—और उस जगह फाफड़ा बोया।—किन्नर०, पृ० ६४।

फाफर—संज्ञा पुं० [सं० पर्पट] कूटू। कूटू। दे० 'कूटू'।

फाफा—संज्ञा स्त्री० [अनु० या सं० फार (=निरर्थक)] दाँत गिर जाने से 'फा फा' करके बोलनेवाली बुढ़िया। पोपली बुढ़िया।

मुहा०—फाफा कुटनी = इधर उधर करनेवाली स्त्री। बुढ़िया जो कुटनपन करती वा इधर उधर करती हो। फाफी उड़ानी = दे० 'फाफाकुटनी'। व्यर्थ बकबक करनेवाली। उ०—झूठ पछी रे फाफी उड़ानी का झगरा करिए।—सं० दरिया, पृ० १३७।

फाफुंदा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्ग, हिं० फतिंगा, फतंगा] शलभ। पतंगा। टिड्डी।

फाब(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभा, प्रा० पभा (=विपर्यय) या हिं० फबना ?] शोभा। फबन। छवि। उ०—कहै पद्माकर फराकत फरसबंद, फहरि फुहारन की फरस फबी है फाब।—पद्माकर (शब्द०)।

फाबना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फबना'। उ०—तत करिअ जात फाबए चोरि। परसन रस लए न रहिअ अगोरि।—विद्यापति, पृ० ३३२।

फायदा—संज्ञा पुं० [अ० फ़ाइदह्, फ़ायदह्] १. लाभ। नफा। प्राप्ति। आय। जैसे,—इस रोजगार मे बड़ा फायदा है। २. प्रयोजनसिद्धि। मतलब पूरा होना। जैसे,—उससे पूछने से कुछ फायदा नहीं, वह न बतावेगा। ३. अच्छा फल। अच्छा नतीजा। भला परिणाम। जैसे,—महात्माओं का उपदेश सुनने से बहुत फायदा होता है। ४. उत्तम प्रभाव। अच्छा असर। बुरी से अच्छी दशा में लाने का गुण। जैसे,—इस दवा ने बहुत फायदा किया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—फायदे का = फायदा पहुँचानेवाला। लाभदायक।

फायदेमंद—वि० [फ़ा०] लाभदायक। उपकारक।

फायर—संज्ञा पुं० [अं० फ़ायर] १. आग। २. दे० 'फैर'।

यौ०—फायर आर्म्स = आग्नेयास्त्र। जैसे, बंदूक, पिस्तौल, रिवाल्वर आदि। फायर इंजन, फायर एंजिन = आग बुझाने की कल। वि० दे० 'दमकल'। उ०—बारे फायर इंजन समय पर आ पहुँचा और अग्नि का वेग कम हुआ।—काया०, पृ० ३३४। फायर ब्रिगेड। फायर मैन।

फायर ब्रिगेड—संज्ञा पुं० [अं० फ़ायर+ब्रिगेड] आग बुझानेवाले कर्मचारियों का दल।

फायर मैन—संज्ञा पुं० [अं० फ़ायरमेन] वह कर्मचारी जो इंजन में कोयला झोंकने का काम करता है।

फाया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फाहा'।

फार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० फारना] १. फार। फाल। खंड। उ०—चमकहि बीज होई उजियारा। जेहि सिर परे होइ दुइ फारा।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'फाल'।

फारकती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ारिग+खत+फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'फारखती'। उ०—करै बिसास न लेखा लेइ। सब कों फारकती लिखि देइ।—अर्ध०, पृ० ६।

फारखती—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ारिग+ख़ती] वह लेख या कागज जिसके द्वारा किसी मनुष्य को उसके दायित्व से मुक्त किया जाय। वह कागज या लेख जो इस बात का सबूत हो कि किसी के जिम्मे जो कुछ था, वह अदा हो गया। चुक्ती। बेबाकी।

क्रि० प्र०—लिखना।

फारना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'फाड़ना'। उ०—पेट फारि हरनाकुस मारयो जय नरहरि भगवान्।—सूर (शब्द०)।

फारम—संज्ञा पुं० [अं० फ़ार्म] १. दरखास्त, बहीखाते, रसीद आदि के नमूने जिनमें यह दिखाया रहता है कि कहाँ क्या क्या बात लिखनी चाहिए। २. छपाई में एक पूरा तख्ता जो एक बार एक साथ छापा जाता हो। ३. छापने के लिये बैठाए हुए उतने अक्षर जितने एक तख्ता छापने के लिये पूरे हों। ४. वह कृषि भूमि जिसका रकबा बड़ा हो और जिसमें वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाय।

फारमूला—संज्ञा पुं० [अं० फ़ार्मूला] १. संकेत। सिद्धांत। सूत्र। २. विधि। कायदा। ३. नुसखा।

फारस—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ारस] दे० 'पारस'।

फारसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़ारसी] फारस देश की भाषा। उ०—टोडर सुकवि ऐसे हठी तें न टारयो टरै भावै कहो सूधी बात भावै कहो फारसी।—अकबरी०, पृ० ५२।

फारा†—संज्ञा पुं० [सं० फाल] १. फाल। कतरा। कटी हुई फाँक। उ०—रींधे ठाढ़ सेब के फारे। छौकि साग पुनि सौंधि उतारे।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'फाल'। ३. दे० 'फरा'।

फारिक(पु)—वि० [अ० फ़ारिग] मुक्त। बेबाक। उ०—मूल ब्याज दै फारिक भए। तब सु नरोत्तम के घर गए।—अर्ध०, पृ० ३७।

फारिखती†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फारखती'। उ०—रसीद, फारिखती देने में भी बहुत कुछ टालटूल किया करते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८०।

फारिग—वि० [अ० फ़ारिग] १. काम से छुट्टी पाया हुआ। जो

अपना काम कर चुका हो। जैसे,—अब वह शादी के काम से फारिग हो गए। २ निश्चित। बेफिक्र। ३ छूटा हुआ। मुक्त।

फारिग उल बाल—वि० [फ़ारिग उल् बाल] १. जिसके पास निर्वाह के लिये यथेष्ट धन संपत्ति हो। सपन्न। २ जो सब प्रकार से निश्चित हो। जिसे किसी बात की चिंता न हो। निश्चित।

फारिग उल बाली—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ारिग उल् बाल + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. संपन्नता। अमीरी। २. निश्चितता। बेफिक्री।

फारिस—संज्ञा पुं० [फा० फ़ारस] दे० 'फारस' उ०—फारिस से मँगाए थे गुलाब।—कुकुर०, पृ० १।

फारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार का वस्त्र या कपड़ा। उ०—चदनौटा खीरोदक फारी। बाँसपोर झिलमिल की सारी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४४।

फारेन—वि० [अं०] दूसरे देश या राष्ट्र का। विदेश या परराष्ट्र संबंधी। वैदेशिक। परराष्ट्रीय। जैसे, फारेन डिपार्टमेंट, फारेन सेक्रेटरी।

फारेनहाइट—संज्ञा पुं० [अं० फारेनहाइट (जर्मन)] फारेनहाइट थर्मामीटर का आविष्कारक जर्मन वैज्ञानिक।

यौ०—फारेनहाइट थर्मामीटर = एक प्रकार का थर्मामीटर जिसमे हिमांक ३२° पर और क्वथनांक २१२° पर होता है।

फार्म—संज्ञा पुं० [अं० फ़ार्म] दे० 'फारम'।

फाल¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे की चौकोर लंबी छड़ जिसका सिरा नुकीला और पैना होता है और जो हल की अँकड़ी के नीचे लगा रहता है। जमीन इसी से खुदती है। कुस। कुसी।

विशेष—संस्कृत मे यह शब्द पुं० है।

फाल²—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। २. बलदेव। ३. फावड़ा। ४. नौ प्रकार की दैवी परीक्षाओं या दिव्यों मे से एक जिसमें लोहे की तपाई हुई फाल अपराधी को चटाते थे और जीभ के जलने पर उसे दोषी और न जलने पर निर्दोष समझते थे।

फाल³—संज्ञा स्त्री० [सं० फलक या हिं० फाड़ना] १. किसी ठोस चीज का काटा या कतरा हुआ पतले दल का टुकड़ा। जैसे, सुपारी की फाल। २. कटी सुपारी। छालिया।

फाल⁴—संज्ञा पुं० [सं० प्लव] चलने या कूदने में एक स्थान से उठकर आगे के स्थान में पैर डालना। डग। फलाँग। उ०—(क) धनि बाल सुचाल सो फाल भरे लौ मही रँग लाल में बोरति है।—सेवक (शब्द०)। (ख) सौ जोजन मरजाद सिंध के करते एकै फाल।—धरम० श०, पृ० ८४।

मुहा०—फाल भरना = कदम रखना। डग भरना। फाल बाँधना = फलाँग मारना। कूद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना = उछलकर लाँघना। उ०—कहै पद्माकर त्यों हुकरत फुकरत, फैलत फलात, फाल बाँधत फलका मैं।—पद्माकर (शब्द०)।

२. चलने या कूदने मे उस स्थान से लेकर जहाँ से पैर उठाया जाय उस स्थान तक का अंतर जहाँ पैर पड़े। कदम भर का फासला। पैंड़। उ०—(क) तीन फाल बसुधा सब कीनी सोइ बामन भगवान।—सूर (शब्द०)। (ख) धरती करते एक पग, दरिया करते फाल। हाथन परबत तोलते तेऊ खाए काल।—कबीर (शब्द०)।

फाल⁵—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ाल] सगुन। शकुन [को०]।

यौ०—फालगो = सगुन विचारनेवाला।

फालकृष्ट—वि० [सं०] १. हल से जोता हुआ। जैसे, फालकृष्ट भूमि। २. जो हल से जोते हुए खेत में उत्पन्न हो।

विशेष—बहुत से व्रतों में फालकृष्ट पदार्थ नहीं खाए जाते।

फालखेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी [को०]।

फालतू—वि० [हिं० फाल (= टुकड़ा) + तू (प्रत्य०)] १. जो काम में आने से बच रहे। आवश्यकता से अधिक। जरूरत से ज्यादा। अतिरिक्त। बढ़ती। जैसे,—इतना कपड़ा फालतू है तुम ले जाओ। २. जो किसी काम के लायक न हो। निकम्मा। जैसे,—क्या हमी फालतू आदमी हैं जो इतनी दूर दौड़े जायँ।

फालसई—वि० [फा० फ़ालसह्, हिं० फालसा + ई (प्रत्य०)] फालसे के रंग का। ललाई लिए हुए हलका ऊदा।

विशेष—इस रग के लिये कपड़े को तीन बोर देने पडते हैं। पहले तो कपड़े को नील में रँगते हैं, फिर कुसुम के पहले उतार के रंग में रँगते हैं, जो जेठा रग होता है। फिर फिटकरी या खटाई मिले पानी में बोरकर निखार देने से रंग साफ निकल आता है।

फालसा¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० फालसह् तुल० सं० परूपक, परुष, प्रा० फरूस] एक छोटा पेड़।

विशेष—इसका धड ऊपर नही जाता और इसमे छड़ी के आकार की सीधी सीधी डालियाँ चारों ओर निकलती हैं। डालियो के दोनो ओर सात आठ अगुल लबे चौड़े गोल पत्ते लगते हैं जिनपर महीन रोइयाँ सी होती हैं। पत्ते की ऊपरी सतह की अपेक्षा पीछे की सतह का रग हलका होता है। डालियों मे यहाँ से वहाँ तक पीले फूल गुच्छों में लगते हैं जिनके झड़ जाने पर मोती के दाने के बराबर छोटे छोटे फल लगते हैं। पकने पर फलों का रंग ललाई लिए ऊदा और स्वाद खटमीठा होता है। बीज एक या दो होते हैं। फालसा बहुत ठढा समझा जाता है, इससे गरमी के दिनो में लोग इसका शरबत बनाकर पीते हैं। वैद्यक में कच्चे फल को वातघ्न और पित्तकारक तथा पक्के फल को रुचिकारक, पित्तघ्न और शोथनाशक लिखा है।

पर्या०—परूपक। गिरिपिलु। शेपरा। पारावत।

फालसा²—संज्ञा पुं० [?] शिकारियों की बोली में वह जंगली जानवर जो जंगल से निकलकर मैदान मे चरने आए।

फालसाई—वि० [हिं० फालसा + ई (प्रत्य०)] दे० 'फालसई'।

फालाहत—वि० [सं०] दे० 'फालकृष्ट' [को०]।

फालिज—संज्ञा पुं० [अ० फालिज] एक रोग जिसमें प्राणी का आधा अंग सुन्न या बेकार हो जाता है। अर्धांग। अधरंग। पक्षाघात।

विशेष—इसमें शरीर के संवेदन सूत्र या गतिवाहक सूत्र निष्क्रिय हो जाते हैं। संवेदन सूत्रों के निष्क्रिय होने से अंग सुन्न हो जाता है, उसमें संवेदना नहीं रह जाती और गतिवाहक सूत्रों के निष्क्रिय होने से अंग का हिलना डोलना बंद हो जाता है।

यौ०—फालिजजदा = फालिज या लकवे का बीमार।

मुहा०—फालिज गिरना = अधरंग रोग होना। अंग सुन्न पड जाना। फालिज मारना = दे० 'फालिज गिरना'।

फालूदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ालूदह्] शर्बत के साथ पीने के लिये बनाई हुई एक चीज जिसका व्यवहार प्रायः मुसलमान करते हैं।

विशेष—गेहूँ के सत्तू से बने हुए नाश्ते को बारीक काटकर शरबत मे मिलाकर रखते है और ठढा हो जाने पर पीते हैं। यह गरमी के दिनों मे पिया जाता है।

फालेज—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ालेज] खरबूजे और ककड़ी का खेत।

फालोवर—वि० [अं० फ़ालोवर] अनुगामी। शिष्य। पीछा करनेवाला। उ०—बहार उसके पीछे ज्यों गुबखड़ फालोवर।—कुकुर०, पृ० २४।

फाल्गुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूर्वा नामक सोमलता।

विशेष—शतपथ ब्राह्मण मे इसे दो प्रकार का लिखा है, एक लोहितपुष्प, दूसरा चारुपुष्प।

२. एक चांद्र मास का नाम जिसमें पूर्णमासी के दिन चंद्रमा का उदय पूर्वा फाल्गुनी वा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र मे होता है।

विशेष—यह महीना माघ के समाप्त हो जाने पर प्रारंभ होता है। इसी महीने की पूर्णिमा की रात को होलिका दहन होता है। दे० 'फागुन'।

३. अर्जुन का नाम। उ०—नयनन मिलत लई कर गहि कै फाल्गुन चले पराय। सुनि बलदेव क्रोध अति बाढ़ेउ कृष्ण शांत किय आय।—सूर (शब्द०)। ४. अर्जुन नामक वृक्ष। ५. एक तीर्थ का नाम। ६. वृहस्पति का एक वर्ष जिसमें उसका उदय फाल्गुनी नक्षत्र में होता है।

फाल्गुनानुज—संज्ञा [सं०] १. चैत्र। २. वसंत ऋतु। ३. नकुल और सहदेव [को०]।

फाल्गुनाल—संज्ञा पुं० [सं०] फागुन का महीना [को०]।

फाल्गुनि—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन।

फाल्गुनिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] फागुन का महीना [को०]।

फाल्गुनिक[2]—वि० १. फाल्गुनी नक्षत्र से संबंध रखनेवाला। २. फाल्गुनी पूर्णमासी संबंधी [को०]।

फाल्गुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फाल्गुन मास की पूर्णिमा। २. पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र।

यौ०—फाल्गुनीभव = वृहस्पति।

फाल्तू—वि० [हिं०] दे० 'फालतू'। उ०—खजांची ने पूछा तुम्हारे धनुष की फाल्तू प्रत्यंचा कहाँ हैं'।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २२४।

फावड़ा—संज्ञा पुं० [सं० फाल, प्रा० फाड] मिट्टी खोदने और टालने का चौड़े फल का लोहे का एक औजार जिसमें डडे की तरह का लंबा बेंट लगा रहता है। फरसा। कस्सी।

क्रि० प्र०—चलाना।

मुहा०—फावड़ा चलाना = खेत में काम करना। फावड़ा बजना = खुदाई होना। खुदना। खुदकर गिरना। ध्वस्त होना। फावड़ा बजाना = खोदना। खोदकर ढाना या गिराना। जैसे,—वह जरा चूँ करे तो मकान पर फावड़ा बजा दूँ।

फावड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फावड़ा] १. छोटा फावड़ा। २. फावड़े के आकार की काठ की एक वस्तु जिसमें घोड़ों के नीचे की घास, लीद आदि हटाई जाती है या मैला आदि हटाया जाता है।

फाश—वि० [फ़ा० फ़ाश] खुला। प्रकट। ज्ञात। उ०—छिपा न उसका इश्क राज आखिर को सब कुछ फाश हुआ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६४।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—परदा फाश करना = छिपी हुई बात खोलना। भेद या रहस्य प्रकट करना।

फासफरस—संज्ञा पुं० [यूना० अं० फ़ासफ़रस] पाश्चात्य रासायनिकों के द्वारा जाना हुआ एक अत्यंत ज्वलनशील मूल द्रव्य जिसमें धातु का कोई गुण नहीं होता और जो अपने विशुद्ध रूप में कहीं नही मिलता—आक्सीजन, कैलसियम और मैगनेशियम के साथ मिला हुआ पाया जाता है।

विशेष—इसका प्रसार संसार मे बहुत अधिक है क्योंकि यह सृष्टि के सारे सजीव पदार्थों के अंगविधान मे पाया जाता है। वनस्पतियों, प्राणियों के हड्डियों, रक्त, मूत्र, लोम आदि में यह व्याप्त रहता है। बहुत थोड़ी गरमी या रगड़ पाकर यह जलता है। हवा में खुला रखने से यह धीरे धीरे जलता है और लहसुन की सी गंधभरी भाप छोड़ता है। अँधेरे में देखने से उसमे सफेद लपट दिखाई पड़ती है। यदि गरमी अधिक न हो तो यह मोम की तरह जमा रहता है और छुरी से काटा या खुरचा जा सकता है, पर १०८ मात्रा का ताप पाकर यह पिघलने लगता है और ५५० मात्रा के ताप में भाप बनकर उड़ जाता है। यह बहुत सी धातुओं के साथ मिल जाता है और उनका रूपांतर करता है। इसे तेल या चरबी में घोलने पर ऐसा तेल तैयार हो जाता है जो अँधेरे में चमकता है। दियासलाई बनाने में इसका बहुत प्रयोग होता है। और भी कई चीजें बनाने में यह काम आता है। औषध के रूप में भी यह बहुत दिया जाता है क्योंकि डाक्टर लोग इसे बुद्धि का उद्दीपक और पुष्ट मानते हैं। ताप के मात्राभेद से फासफरस का गहरा रूपांतर भी हो जाता है। जैसे, बहुत

देर तक २१२ मात्रा की गरमी से कुछ कम गरमी में रखने से यह लाल फासफरस के रूप मे हो जाता है। तब यह इतना ज्वलनशील और विषैला नही रह जाता और हाथ मे अच्छी तरह लिया जा सकता है।

फासफूस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० फास+फूस] घास फूस। तुच्छ वस्तु। उ०—नाम बिना सब संचय झूठा फासफूस हो जाय रे।—राम० धर्म०, पृ० २१६।

फासला—संज्ञा पुं० [अ० फ़ासलह्] दूरी। अंतर।

फासिज्म—संज्ञा पुं० [इता० फास + अं० इज्म] फासीवाद। अधिनायक तंत्र। इटली की फासिस्ट पार्टी का मूल दर्शन या सिद्धांत।

फासिस्ट—वि० [अं०] अधिनायक तंत्र को माननेवाला या अनुयायी।

फासिटीवाद—संज्ञा पुं० [अं० फासिटी+सं० वाद] फासिज्म। अधिनायकवाद।

फासिद—वि० [अ० फ़ासिद] फसादी। खोटा। बुरा।

फासिल—वि० [अ० फासिल] अंतर डालनेवाला। पृथक् या अलग करनेवाला।

फासिला—संज्ञा पुं० [अ० फ़ासलह्] दे० 'फासला'।

फास्ट—वि० [अं० फ़ास्ट] १. तेज। २. शीघ्र चलनेवाला। शीघ्रगामी। वेगवान्। जैसे, फास्ट पैसिंजर।

विशेष—जब घड़ी की चाल बहुत तेज होती है, तब उसे फास्ट कहते हैं।

फाहशा—वि० [अ० फाहशह्] छिनाल। पुंश्चली। उ०—फाहशा का पति कहलाने से यो गम खाना ही क्या बेहतर नही।—भस्मावृत०, पृ० ४०।

फाहा—संज्ञा पुं० [सं० फाल (=रूई का) वा सं० पोत (=कपड़ा), प्रा० पोय, हिं० फोया] १. तेल, घी, इत्र आदि चिकनाई में तर की हुई कपड़े की पट्टी वा रुई का लच्छा। फाया। साया। २. मरहम से तर पट्टी जो घाव, फोड़े आदि पर रखी जाती है।

फाहिशा—वि० [अ० फाहिशह्] छिनाल। पुंश्चली।

फिंगक—संज्ञा पुं० [सं० फिङ्गक] फिंगा नामक पक्षी।

फिंगा—संज्ञा पुं० [सं० फिङ्गक] एक प्रकार का पक्षी जिसके पर भूरे, चोंच पीली और पंजे लाल होते हैं। फेंगा।

विशेष—यह सिंध से आसाम तक ऐसे बड़े बड़े मैदानो मे जहाँ हरी घास अधिकता से होती है, छोटे छोटे झुंडो में पाया जाता है। इसके झुंड में से जहाँ एक पक्षी उड़ता है, वहाँ बाकी सब भी उसी का अनुकरण करते हैं। इसकी लंबाई प्रायः डेढ़ बालिश्त होती है और यह वर्षा ऋतु मे तीन अंडे देता है।

फिंकरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फेंकरना'।

फिँकवाना—क्रि० स० [हिं० फेँकना का प्रेर० रूप] फेंकने का काम कराना। फेंकने के लिये प्रेरित करना।

फिकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] चेने की तरह का एक मोटा अन्न जो बुंदेलखंड में होता है।

फिकना—क्रि० स० [हिं०] फेंका जाना। दे० 'फेंकना'। उ०—माताओ के हाथो पथ में शिशुओ को फिकते देखो।—हस०, पृ० ३३।

फिकर‡—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़िक्र] दे० 'फिक्र'।

फिकरा—संज्ञा पुं० [अ० फिक़रह्] १. शब्दों का सार्थक समूह। वाक्य। जुमला। २. झाँसापट्टी। दमबुत्ता।

यौ०—फिकरेबाज।

मुहा०—फिकरा चलाना = धोखा देने के लिये कोई बात बनाकर कहना। जैसे,—आप भी बैठे बैठे फिकरा चलाया करते हैं। फिकरा चलना = धोखा देने के लिये कही हुई बात का अभीष्ट फल होना। जैसे,—अगर आपका फिकरा चल गया तो रुपए मिल ही जायँगे। फिकरा देना या बताना = झाँसा देना। दम बुत्ता देना। फिकरा बनाना या तराशना = धोखा देने के लिये कोई बात गढ़कर कहना। फिकरे सुनाना, ढालना या कहना = व्यंगपूर्ण बात कहना। बोली बोलना। आवाज कसना।

फिकरेबाज—संज्ञा पुं० [अ० फ़िक़रह् + फा० बाज़] वह जो लोगो को धोखा देने के लिये बातें गढ़ गढ़कर कहता हो। झाँसापट्टी देनेवाला।

फिकरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़िक़रह् + फ़ा० बाज़ी] धोखा देने के लिये तरह तरह की बातें कहना। झाँसापट्टी देना। दमबाजी। उ०—कांग्रेस प्रदर्शनी की सैर भी साथ ही हुई और पग पग पर फिकरेबाजियाँ रही।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ८।

फिकवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'फिकवाना'।

फिकार—संज्ञा पुं० [देश०] चेने की तरह एक मोटा अन्न। फिकई।

फिकाह—संज्ञा पुं० [अ० फिकाह] इस्लाम का धर्मशास्त्र।

फिकिर‡—संज्ञा स्त्री० [अ० फिक] दे० 'फिक्र'।

फिकैत—संज्ञा पुं० [हिं० फेँकना + ऐत (प्रत्य०)] वह जो फरीगदका या पटाबनेठी चलाता हो।

यौ०—फिकैतबाज = फिकैती का काम जाननेवाला।

फिकैती—संज्ञा स्त्री० [हिं० फिकैत + ई (प्रत्य०)] पटाबनेठी चलाने का काम या विद्या।

फिक्र—संज्ञा स्त्री० [अ० फिक्र] १. चिंता। सोच। खटका। दुःखपूर्ण ध्यान। उदास करनेवाली भावना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. ध्यान। विचार। चित्त अस्थिर करनेवाली भावना। जैसे,—काम के आगे उसे खाने पीने की भी फिक्र नही रहती।

मुहा०—फिक्र लगना = ऐसा ध्यान बना रहना कि चित्त अस्थिर रहे। ख्याल या खटका बना रहना।

३. उपाय की उद्भावना। उपाय का विचार। यत्न। तदबीर। जैसे,—अब तुम अपनी फिक्र करो, हम तुम्हारी मदद नहीं कर सकते।

फिक्रमंद—वि० [अ० फिक्र+फा० मंद] चिंताग्रस्त ।

फिगार—वि० [फा० फ़िगार] घायल । जैसे, दिलफिगार, सीना-फिगार । उ०—हरजा बिहिश्त बाग में देखो तो नौ बहार । और जा बजा में बैठे हैं सदहा जो दिल फिगार ।—कबीर मं०, पृ० ३२३ ।

फिचकुर—संज्ञा पुं० [सं० पिछ (= लार)] फेन जो मूर्छा या बेहोशी । आने पर मुँह निकलता है ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—बहना ।

फिजूलखर्ची—वि० [अ० फ़ुजूल+फा० खर्ची] दे० 'फजूलखर्ची' । उ०—परोपकार की इच्छा ही अत्यंत उपकारी है परंतु हद से आगे बढ़ने पर वह भी फिजूलखर्ची समझी जायगी ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८९ ।

फिट[1]—अव्य० [अनु०] धिक् । छी । थुड़ी (धिक्कारने का शब्द) ।

यौ०—फिट फिट—धिक्कार है, धिक्कार । थुड़ी है । छी छी । लानत है ।

फिट[2]—वि० [अं० फ़िट्] १. उपयुक्त । ठीक । २. जिसके कल पुरजे आदि ठीक हों । जैसे —यह मशीन बिलकुल फिट है ।

मुहा०—फिट करना = मशीन के पुरजे आदि यथास्थान बैठाकर उसे चलने के योग्य बनाना ।

३. जो अपने स्थान पर ठीक बैठता हो । जैसे,—(क) यह कोट बिलकुल फिट है। (ख) यह आलमारी यहाँ बिलकुल फिट है ।

फिट[3]—संज्ञा पुं० मिरगी आदि रोगों का वह दौरा जिसमें आदमी बेहोश हो जाता है और उसके मुँह से झाग आदि निकलने लगती है ।

मुहा०—फिट आना = मिरगी का दौरा होना । बेहोशी आना । फिट का रोग = मिरगी या मूर्छा का रोग ।

फिटकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फिटकिरी' ।

फिटकार—संज्ञा पुं० [हिं० फिट+कार] १. धिक्कार । लानत । उ०—काफिरों को सदा फिटकार मुबारक होए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।

मुहा०—मुँह पर फिटकार बरसना = फिट्टा मुँह होना । चेहरा फीका या उतरा हुआ होना । मुख मलिन होना । मुख की कांति न रहना । श्रीहत होना ।

२. शाप । कोसना । बददुआ ।

मुहा०—फिटकार लगना = शाप लगना । शाप ठीक उतरना ।

३. हलकी मिलावट । बास । भावना । जैसे,—इसमें केवड़े की फिटकार है ।

फिटकारना‡—क्रि० स० [हिं० फिटकार + ना (प्रत्य०)] १. शाप देना । कोसना । २. दे० 'फटकारना' ।

फिटकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्फटिका, स्फटिकारि, फाटकी] एक मिश्र खनिज पदार्थ जो सलफेट आफ पोटाश और सलफेट आफ अलुमीनियम के मिलकर पानी में जमने से बनता है ।

विशेष—यह स्वच्छ दशा में स्फटिक के समान श्वेत होता है, इसी से इसे स्फटिका या फिटकिरी कहते हैं । मैल के योग से फिटकिरी लाल, पीली और काली भी होती है । यह पानी में घुल जाती है और इसका स्वाद मिठाई लिए हुए बहुत ही कसैला होता है । हिंदुस्तान मे बिहार, सिंध, कच्छ और पंजाब में फिटकिरी पाई जाती है । सिंधु नदी के किनारे 'कालाबाग' और छिछली घाटी के पास 'कोटकिल' फिटकिरी निकलने के प्रसिद्ध स्थान हैं । फिटकिरी मिट्टी के साथ मिली रहती है । मिट्टी को लाकर छिछले हौजों में बिछा देते हैं और ऊपर से पानी डाल देते हैं । 'अलमीनियम सलफेट' पानी में घुलकर नीचे बैठ जाता है जिसे फिटकिरी का बीज कहते हैं । इस बीज (अलुमीनम सलफेट) को गरम पानी में घोलकर ६ भाग 'सलफेट आफ पोटाश' मिला देते हैं । फिर दोनों को आग पर गरम करके गाढ़ा करते हैं । पाँच छह दिन में फिटकिरी जम जाती है ।

फिटकिरी का व्यवहार बहुत कामों में होता है । कसाव के कारण इसमें संकोचन का गुण बहुत अधिक है । शरीर में पड़ते ही यह तंतुओं और रक्त की नलियों को सिकोड़ देती है जिससे रक्तस्राव आदि कम या बंद हो जाता है । फिटकिरी के पानी से धोने से आई हुई आँख भी अच्छी होती है । वैद्यक में फिटकिरी गरम, कसैली, झिल्लियों को संकुचित करनेवाली तथा वात, पित्त, कफ, व्रण और कुष्ठ को दूर करनेवाली मानी जाती हैं । प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, वमन, शोथ, त्रिदोष और प्रमेह में भी वैद्य इसे देते हैं । कपड़े की रँगाई में तो यह बड़े ही काम की चीज है । इससे कपड़े पर रंग अच्छी तरह चढ जाता है । इसीसे कपड़े को रँगने के पहले फिटकिरी के पानी में बोर देते हैं जिसे जमीन या अस्तर देना कहते हैं । रंगने के पीछे भी कभी कभी रंग निखारने और बराबर करने के लिये कपड़े फिटकिरी के पानी में बोरे जाते हैं ।

फिटकी[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. छींटा । २. सूत के छोटे छोटे फुचरे जो कपड़े की बुनावट में निकले रहते हैं ।

फिटकीⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फिटकिरी' ।

फिटन—संज्ञा स्त्री० [अं०] चार पहिए की एक प्रकार की खुली गाड़ी जिसे एक या दो घोड़े खींचते हैं ।

फिटरा†—वि० [अ० फितरह् (= धूर्त)] फितरा । फितरती । उ०—जो फिटरे ! तैं मोकों अबताई क्यो न जनाई ।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १३६ ।

फिटसन—संज्ञा पुं० [देश०] कठसेमल नाम का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती है । वि० दे० 'कठसेमल' ।

फिटानाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] हटाना । भगाना । उ०—नैक न उसास लेत फौज में फिटाइ देत, पेत नहिं छाड़ै मारि करै चकचूर है ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४८६ ।

फिट्टा—वि॰ [हिं॰ फिट] फटकार खाया हुआ। अपमानित। उतरा हुआ। श्रीहत। उ॰—आपसे तो सकत नहीं, फिर ऐसे राजा का, फिट्टे मुँह। हम कहाँ तक आपको सताया करेंगे।—इनशा॰ (शब्द॰)।

मुहा॰—फिट्टा मुँह, फिट्टे मुँह = उतरा या फीका पड़ा हुआ चेहरा।

फितना—संज्ञा पुं॰ [अ॰ फ़ितनह्] १. वह उपद्रव जो अचानक किसी कारण से उठ खड़ा हो। झगड़ा। दंगा फसाद। २. विद्रोह। बगावत (को॰)।

क्रि॰ प्र॰—उठना।—उठाना।

३. मिथुन (को॰)। ४. एक फूल का नाम। ५. एक प्रकार का इत्र।

फितनेपर्दाज—वि॰ [अ॰ + फ़ितनह् + पर्दाज] उपद्रव खड़ा करनेवाला। उ॰—परसों भव को फितनेपर्दाज के फरेब में आकर हजरत ने मुझसे चक्कर लाए थे। —श्रीनिवास ग्र॰, पृ॰ ११६।

फितरत—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ितरत] १. प्रकृति। २. आदत। स्वभाव। ३. उत्पत्ति। पैदाइश। ४. धूर्तता। चालाकी। शरारत [को॰]।

फितरती—वि॰ [अ॰ फ़ितरत + फ़ा॰ ई (प्रत्य॰)] १. चालाक। चतुर। २. फितूरी। मायावी। धोखेबाज।

फितूर—संज्ञा पुं॰ [अ॰ फ़ुतूर] [वि॰ फितूरी] १. न्यूनता। घाटा। कमी।

क्रि॰ प्र॰—आना।—पड़ना।

२. विकार। विपर्यय। खराबी।

क्रि॰ प्र॰—आना।—उठना।—पड़ना।

३. झगड़ा। बखेड़ा। दगा फसाद। उपद्रव।

क्रि॰ प्र॰—उठना।—करना।—पड़ना।—मचाना।

फितूरिया†—वि॰ [हिं॰ फितूर + इया (प्रत्य॰)] फितूर करनेवाला। फितूरी।

फितूरी—वि॰ [हिं॰ फितूर] १. झगड़ालू। लड़ाका। २. उपद्रवी। फसादी।

फिदवी[1]—वि॰ [अ॰ फ़िदाई से फ़ा॰ फ़िदवी] स्वामिभक्त। आज्ञाकारी।

फिदवी[2]—संज्ञा पुं॰ [स्त्री॰ फिदविया] दास।

फिदा—वि॰ [अ॰ फ़िदह्] मुग्ध। मोहित। किसी पर आसक्त।

फिदाई—वि॰ [फा॰ फ़िदाई] मुग्ध या मोहित होनेवाला।

मुहा॰—फिदाई होना = प्रेमी होना। किसी पर मुग्ध होना।

फिद्दा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'पिद्दा'।

फिना(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ फ़ना] दे॰ 'फना'।

फिनाइल—संज्ञा पुं॰ [अं॰ फिनाइल] कीटाणुनाशक एक द्रव पदार्थ जो मोरी पनालो में सफाई के लिये डाला जाता है। यह कोलतार या अलकतरे से निकलता है।

फिनिया—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक गहना जो कान में पहना जाता है। उ॰—छोटी छोटी ताजे शीश राजे ग्रहराजे सम, छोटी छोटी फिनियाँ फबी हैं छोटे कान में।—रघुराज (शब्द॰)।

फिनीज—संज्ञा स्त्री॰ [स्पे॰ पिनज] एक छोटी नाव जिसपर दो मस्तूल होते हैं और जो डाँड़े से चलाई जाती है।

फिफरी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ फेफरी] दे॰ 'फेफड़ी'।

फियाँ‡—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्लीहा] प्लीहा। तिल्ली।

फिरंग—संज्ञा पुं॰ [अ॰ फ़्रांक] १. यूरोप का देश। गोरों का मुल्क। फिरंगिस्तान।

विशेष—फ्रांक नाम का जरमन जातियों का एक जत्था था जो ईसा की तीसरी शताब्दी में तीन दलों मे विभक्त हुआ। इनमें से एक दल दक्षिण की ओर बढ़ा और गाल (फ्रांस का पुराना नाम) से रोमन राज्य उठाकर उसने वहाँ अपना अधिकार जमाया। तभी से फ्रांस नाम पड़ा। सन् १०९६ और १२५० ई॰ के बीच यूरोप के ईसाइयों ने ईसा की जन्मभूमि को तुर्कों के हाथ से निकालने के लिये कई चढ़ाइयाँ की। फ्रांक शब्द का परिचय तभी से तुर्कों को हुआ और वे यूरोप से आनेवालों को फिरंगी कहने लगे। धीरे धीरे यह शब्द अरब, फारस आदि होता हुआ हिंदुस्तान में आया। हिंदुस्तान में पहले पुर्तगाली दिखाई पड़े इससे इस शब्द का प्रयोग बहुत दिनों तक उन्हीं के लिये होता रहा। फिर यूरोपियन मात्र को फिरंगी कहने लगे।

२. भावप्रकाश के अनुसार एक रोग। गरमी। आतशक।

विशेष—पहले पहल भावप्रकाश में ही इस रोग का उल्लेख दिखाई पड़ता है और किसी प्राचीन वैद्यक ग्रंथ में नहीं है। भावप्रकाश में लिखा है कि फिरंग नाम के देश में यह रोग बहुत होता है इससे इसका नाम 'फिरंग' है। यह भी स्पष्ट कहा गया है कि फिरंग रोग फिरंगी स्त्री के साथ संभोग करने से हो जाता है। इस रोग के तीन भेद किए हैं—बाह्य फिरंग, आभ्यंतर फिरंग और बहिरंतर्भव फिरंग। बाह्य फिरंग विस्फोटक के समान शरीर में फूट फूटकर निकलता है और घाव या व्रण हो जाते हैं। यह सुखसाध्य है। आभ्यंतर फिरंग में संधि स्थानों में आमवात के समान शोथ और वेदना होती है। यह कष्टसाध्य है। बहिरंतर्भव फिरंग एक प्रकार से असाध्य है।

फिरंग वात—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ फिरंग + सं॰ वात] वातज फिरंग। दे॰ 'फिरंग—२'।

फिरंगिस्तान[1]—संज्ञा पुं॰ [अं॰ फ्रांक + फ़ा॰ स्तान] फिरंगियों के रहने का देश। गोरों का देश। यूरोप। फिरंग। वि॰ दे॰ 'फिरंग'—१।

फिरंगी[1]—वि॰ [हिं॰ फिरंग] १. फिरंग देश में उत्पन्न। २. फिरंग देश में रहनेवाला। गोरा। ३. फिरंग देश का।

फिरंगी[2]—संज्ञा पुं॰ [स्त्री॰ फिरंगिन] फिरंग देशवासी। यूरोपियन। उ॰—हबशी रूमी और फिरंगी। बड़ बड़ गुनी और तेहि संगी।—जायसी (शब्द॰)।

फिरंगी[3]—संज्ञा स्त्री० विलायती तलवार। यूरोप देश की बनी तलवार। उ०—चमकती चपला न, फेरत फिरंगै भट, इंद्र को चाप रूप बैरख समाज को।—भूषण (शब्द०)।

फिरंट—वि० [हिं० फिरना] १. फिरा हुआ। विरुद्ध। खिलाफ। उ०—जिन लोगों से इकरार करके गए थे वह सब फिरंट हो गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३४। २. बिगड़ा हुआ। विरोध या लड़ाई पर उद्यत। जैसे,—बात ही बात में वह मुझसे फिरंट हो गया।

क्रि० प्र०—होना।

फिरंदर—वि० [हिं० फिरना] घूमनेवाला। घुमंतू। खानाबदोश। यायावर। उ०—अथर्ववेद में मगध के निवासियों को व्रात्य कहा गया है, जो अंत्यज और फिरंदर समझे जाते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ९६।

फिर—क्रि० वि० [हिं० फिरना] १. जैसा एक समय हो चुका है वैसा ही दूसरे समय भी। एक बार और। दोबारा। पुन.। जैसे,—इस बार तो छोड़ देता हूँ, फिर ऐसा काम न करना। उ०—नैन नचाय कही मुसकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी।—पद्माकर (शब्द०)।

यौ०—फिर फिर = बार बार। कई दफा। उ०—फिर फिर बूझति, कहि कहा, कह्यो साँवरे गात। कहा करत देखे कहा अली! चली क्यों जात?—बिहारी (शब्द०)।

२. आगे किसी दूसरे वक्त। भविष्य में किसी समय। और वक्त। जैसे,—इस समय नहीं है फिर ले जाना। ३. कोई बात हो चुकने पर। पीछे। अनंतर। उपरांत। बाद में। जैसे,—(क) फिर क्या हुआ? (ख) लखनऊ से फिर कहाँ जाओगे? उ०—मेरा मारा फिर जिऐ तो हाथ न गहौं कमान।—कबीर (शब्द०)। ४. तब। उस अवस्था में। उस हालत में। जैसे,—(क) जरा उसे छेड़ दो फिर कैसा झल्लाता है। (ख) उसका काम निकल जायगा फिर तो वह किसी से बात न करेगा। उ०—(क) सुनतै धुनि धीर छुटै छन में फिर नेकहु राखत चेत नहीं।—हनुमान (शब्द०)। (ख) तुम पितु ससुर सरिस हितकारी। उतर देउँ फिर अनुचित भारी।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—फिर क्या है? = तब क्या पूछना है। तब तो किसी बात की कसर ही नहीं है। तब तो कोई अड़चन ही नहीं है। तब तो सब बात बनी बनाई है।

५. देश संबंध में आगे बढ़कर। और चलकर। आगे और दूरी पर। जैसे,—उस बाग के आगे फिर क्या है? ६. इसके अतिरिक्त। इसके सिवाय। जैसे,—वहाँ जाकर उसे किसी बात का पता न लगेगा, फिर यह भी तो है कि वह जाय या न जाय।

फिरऊन—संज्ञा पु० [अ० फ़िरऔन] मिस्र के बादशाहों की उपाधि जो अपने आपको ईश्वर कहा करते थे। उ०—यह समस्त संसार हिरण्यकशिपु और फिरऊन इत्यादि के सदृश अंधा और अज्ञानी है।—कबीर मं०, पृ० २२२।

फिरऔन[1]—संज्ञा पुं० [अ० फ़िरऔन] प्राचीन मिस्र के बादशाहों की उपाधि।

फिरऔन[2]—वि० अभिमानी। अहंमन्य [को०]।

फिरक—संज्ञा स्त्री० [हिं० फिरना] एक प्रकार की छोटी गाड़ी जिसपर गाँव के लोग चीजों को लादकर इधर उधर ले जाते हैं। (रुहेलखंड)।

फिरकना—क्रि० अ० [हिं० फिरना] १. थिरकना। नाचना। २. किसी गोल वस्तु का एक ही स्थान पर घूमना। लट्टू की तरह घूमना या चक्कर खाना।

फिरकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फिरना] दे० 'फिरकी'। उ०—दूर दूर फिरती रहती थी, जैसे फिरती गिरे फिरकनी।—मिट्टी०, पृ० ११०।

फिरका—संज्ञा पुं० [अ० फ़िरक़ह्] १. जाति। २. जत्था। झुंड। ३. पंथ। संप्रदाय।

यौ०—फिरकापरस्त = सांप्रदायिक। फिरकापरस्ती = सांप्रदायिकता। फिरकाबंदी = जमात या गिरोह बनाना। गुटबंदी। फिरकावार = संप्रदायानुसार।

फिरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फिरकना] १. वह गोल या चक्राकार पदार्थ जो बीच की कीली को एक स्थान पर टिकाकर घूमता हो। २. लड़कों का एक खिलौना जिसे वे नचाते हैं। फिरहरी। ३. चकई नाम का खिलौना। उ०—नई लगनि कुल की सकुचि बिकल भई अकुलाय। दुहूँ ओर ऐंची फिरै फिरकी लौं दिन जाय।—बिहारी (शब्द०)। ४. चमड़े का गोल टुकड़ा जो तकवे में अपाकर चरखे में लगाया जाता है। चरखे में जब सूत कातते हैं तब उसके लच्छे को इसी के दूसरे पार लपेटते हैं। ५. लकड़ी, धातु या कद्दू के छिलके आदि का गोल टुकड़ा जो तागा बटने के तकवे के नीचे लगा रहता है। ६. मालखंभ की एक कसरत जिसमें जिधर के हाथ से मालखंभ लपेटते हैं उसी ओर गर्दन झुकाकर फुरती से दूसरे हाथ के कंधे पर मालखंभ को लेते हुए उड़ान करते हैं।

यौ०—फिरकी का नक्कीकस = मालखंभ की एक कसरत। (इसमें एक हाथ अपनी कमर के पास से उलटा ले जाते हैं और दूसरे हाथ से बगल में मालखंभ दबाते हैं और फिर दोनों हाथों की उँगलियों को बाँट लेते हैं। इसके पीछे जिधर का हाथ कमर पर होता है उसी ओर सिर और सब धड़ को घुमाकर सिर को नीचे की ओर झुकाते हुए मालखंभ में लगाकर दंडवत् करते हैं)। फिरकी दंड = एक प्रकार का कसरत या दंड जिसमें दंड करते समय दोनों हाथों को जमाकर दोनों हाथों के बीच में से सिर देकर कमान के समान हाथ उठाए बिना चक्कर मारकर जिस स्थान से चलते हैं फिर वहीं आ जाते हैं।

७. कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब जोड के दोनों हाथ गर्दन पर हों अथवा एक हाथ गर्दन पर और एक भुजदंड पर हो तब एक हाथ जोड़ की गर्दन पर रखकर दूसरे हाथ से उसके लँगोटे को पकड़े और उसे सामने झोंका देते हुए बाहरी टाँग मारकर गिरा दे।

फिरकैयाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० फिरकी] चक्कर।

फिरता[1]—संज्ञा पुं० [हिं० फिरना] [स्त्री० फिरती] १. वापसी। २. अस्वीकार। जैसे, हुंडी की फिरती।

फिरता[2]—वि० वापस। लौटाया हुआ। जैसे,—लिया हुआ माल कहीं फिरता होता है ?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

फिरदोस(पु)—संज्ञा पुं० [अ० फिरदौस] दे० 'फिरदौस'। उ०—जो रखो फिरदोस पर टुक इक नजर। गैब के हातिफ ने यूँ लाया खबर।—दक्खिनी०, पृ० १७८।

फिरदौस—संज्ञा पुं० [अ० फ़िरदौस] स्वर्ग। उ०—आज वह फिरदौस सुनसान है पड़ा।—अनामिका, पृ० ६२।

फिरदौसी—संज्ञा पुं० [अ० फ़िरदौसी] ईरान का एक प्राचीन कवि जिसका नाम अबुल कासिम तूसी था और जिसने फारसी का प्रख्यात महाकाव्य 'शाहनामा' लिखा था।

फिरना—क्रि० अ० [हिं० फेरना का अक० रूप] १. इधर उधर चलना। कभी इस ओर कभी उस ओर गमन करना। इधर उधर डोलना। ऐसा चलना जिसकी कोई एक निश्चित दिशा न रहे। भ्रमण करना। जैसे,—(क) वह धूप में दिन भर फिरा करता है। (ख) वह चंदा इकट्ठा करने के लिये फिर रहा है। उ०—(क) खेह उड़ानी जाहि घर हेरत फिरत सो खेह। जायसी (शब्द०)। (ख) फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) फिरत सनेह मगन सुख अपने।—तुलसी (शब्द०)। २. टहलना। विचरना। सैर करना। जैसे,—संध्या को इधर उधर फिर आया करो।

यौ०—घूमना फिरना।

३. चक्कर लगाना। बार बार फेरे खाना। लट्टू की तरह एक ही स्थान पर घूमना अथवा मंडल बाँधकर परिधि के किनारे घूमना। नाचना या परिक्रमण करना। जैसे, लट्टू का फिरना, घर के चारों ओर फिरना। उ०—(क) फिरत नीर जोजन लख बाका। जैसे फिरै कुम्हार के चाका।—जायसी (शब्द०)। (ख) फिरै पाँच कोतवाल सो फेरी। काँपै पाँव चपत वह पौरी।—जायसी (शब्द०)। ४. ऐंठा जाना। मरोड़ा जाना। जैसे,—ताली किसी ओर को फिरती ही नहीं है। ५. लौटना। पलटना। वापस होना। जहाँ से चले थे उसी ओर को चलना। प्रत्यावर्तित होना। जैसे,—(क) वे घर पर मिले, नहीं मैं तुरंत फिरा। (ख) आगे मत जाओ, घर फिर जाओ। उ०—(क) आय जनमपत्री जो लिखी। देय असीस फिरे ज्योतिषी।—जायसी (शब्द०)। (ख) पुनि पुनि विनय करहिं कर जोरी। जो यहि मारग फिरिय बहोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) अपने धाम फिरे तब दोऊ जानि भई कछु साँझ। करि दंडवत परसि पद ऋषि के बैठे उपवन माँझ।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।—पड़ना।

६. किसी मोल ली हुई वस्तु का अस्वीकृत होकर बेचनेवाले को फिर दे दिया जाना। वापस होना। जैसे,—जब सौदा हो गया तब चीज नहीं फिर सकती।

संयो० क्रि०—जाना।

७. एक ही स्थान पर रहकर स्थिति बदलना। सामना दूसरी तरफ हो जाना। जैसे,—धक्का लगने से मूर्ति का मुँह उधर फिर गया।

संयो० क्रि०—जाना।

८. किसी ओर जाते हुए दूसरी ओर चल पड़ना। मुड़ना। घूमना। चलने में रुख बदलना। जैसे,—कुछ दूर सीधी गली में जाकर मंदिर की ओर फिर जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—किसी ओर फिरना = प्रवृत्त होना। झुकना। मायल होना। जैसे,—उसका क्या, जिधर फेरो उधर फिर जाता है। उ०—तसि मति फिरी अहइ जसि भावी।—तुलसी (शब्द०) जी फिरना = चित्त न प्रवृत्त रहना। उचट जाना। हट जाना। विरक्त हो जाना।

९. विरुद्ध हो पड़ना। खिलाफ हो जाना। विरोध पर उद्यत होना। लड़ने या मुकाबला करने के लिये तैयार हो जाना। जैसे,—बात ही बात में वह मुझसे फिर गया।

मुहा०—(किसी पर) फिर पड़ना = विरुद्ध होना। क्रुद्ध होना। बिगड़ना।

१०. और का और होना। परिवर्तित होना। बदल जाना। उलटा होना। विपरीत होना। जैसे, मति फिरना। उ०—काल पाइ फिरति दसा, दयालु ! सब ही की, तोहि बिनु मोहिं कबहूँ न कोउ चहैगो।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—सिर फिरना = बुद्धि भ्रष्ट होना। उन्माद होना।

११. बात पर दृढ़ न रहना। प्रतिज्ञा आदि से विचलित होना। हटना। जैसे, वचन से फिरना, कौल से फिरना।

संयो० क्रि०—जाना।

१२. सीधी वस्तु का किसी ओर मुड़ना। झुकना। टेढ़ा होना। जैसे,—इस फावड़े की धार फिर गई है।

संयो० क्रि०—जाना।

१३. चारो ओर प्रचारित होना। घोषित होना। जारी होना। सबके पास पहुँचाया जाना। जैसे, गश्ती चिट्ठी फिरना, दुहाई फिरना। उ०—(क) नगर फिरी रघुबीर दुहाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भइ ज्योनार फिरी खँड़वानी।—जायसी (शब्द०)। १४. किसी वस्तु के ऊपर पोता जाना। लीप या पोतकर फैलाया जाना। चढ़ाया जाना। जैसे, दीवार पर रंग फिरना, जूते पर स्याही फिरना। १५. यहाँ से वहाँ तक स्पर्श करते हुए जाना। रखा जाना।

फिरनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़िरनी] एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो

चावलों को पीसकर और दूध में पकाकर तैयार किया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः पश्चिम में और विशेषतः मुसलमानों में होता है।

फिरवा—संज्ञा पुं० [हिं० फिरना] १. सोने का एक आभूषण जो गले में पहना जाता है। २. सोने की अँगूठी जो तार को कई फेरे लपेटकर बनाई गई हो।

फिरवाना¹—क्रि० स० [हिं० फेरना का प्रेर० रूप] फेरने का काम कराना।

फिरवाना²—क्रि० स० [हिं० फिराना का प्रे० रूप] फिराने का काम कराना।

फिराऊ—वि० [हिं० फिरना] १. फिरता हुआ। वापस लौटता हुआ। २. (माल) जो फिरा या फेरा जा सके। जाकड़।

फिराक¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. चिंता। सोच। खटका। २. टोह। खोज।

मुहा०—फिराक में रहना = खोज में रहना। फिक्र या तलाश में रहना।

फिराक²—संज्ञा पुं० [अ० फ़िराक़] १. अलगाव। पृथक्ता। २. वियोग। विछोह। ३. धुन। ध्यान।

यौ०—फिराके यार=प्रिय का विरह।

फिराकिया—वि० [अ० फ़िराक़+फ़ा० इयह् (प्रत्य०)] वियोगात्मक। विरह संबंधी।

यौ०—फिराकिया नज्म = विरह काव्य।

फिराद(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़रियाद] दे० 'फरियाद'। उ०—कवि ठाकुर कीजे फिराद कहा यह लाज हमारी तुही लहिया। ठाकुर०, पृ० २६।

फिरादि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फरियाद'।

फिराना—क्रि० स० [हिं० फिरना] १. इधर उधर चलाना। कभी इस ओर कभी उस ओर ले जाना। इधर उधर डुलाना। ऐसा चलाना कि कोई एक निश्चित दिशा न रहे। २. टहलाना। सैर कराना। जैसे,—जाओ, इसे बाहर फिरा लाओ। ३. चक्कर देना। बार बार फेरे खिलाना। लट्टू की तरह एक ही स्थान पर घुमाना अथवा मंडल या परिधि के किनारे घुमाना। नचाना या परिक्रमण कराना। जैसे, लट्टू फिराना, मंदिर के चारों ओर फिराना। उ०—(क) फिरै लाग बोहित तहँ आई। जस कुम्हार घरि चाक फिराई।—जायसी (शब्द०)। (ख) हस्ति पाँच जो आगे आए। ते अंगद धरि सूँड़ फिराए।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

४. ऐंठना। मरोड़ना। जैसे,—ताली उधर को फिराओ। उ०—मद गजराज द्वार पर ठाढ़ो हरि कह्यो नेकु बचाय। उन नहिं मान्यो सँमुख आयो पकरयो पूँछ फिराय।—सूर (शब्द०)। ५. लौटाना। पलटाना। उ०—तुम नारायण भक्त कहावत। काहे को तुम मोहिं फिरावत।—सूर (शब्द०)। ६. एक ही स्थान पर रखकर स्थिति बदलना। सामना एक ओर से दूसरी ओर करना। दे० 'फेरना'। उ०—मुख फिराय मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

७. किसी ओर जाते हुए को दूसरी ओर चला देना। घुमाना। दे० 'फेरना'। ८. और का और करना। परिवर्तन करना। बदल देना। दे० 'फेरना'। ९. बात पर दृढ़ न रहने देना। विचलित करना। दे० 'फेरना'।

फिरार—संज्ञा पुं० [अ० फ़िरार] [वि० फिरारी] भागना। भाग जाना।

मुहा०—फिरार होना = भागना। चल देना।

फिरारी¹—वि० [अ० फ़िरार+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. भागनेवाला। भगेडू। भगोड़ा। २. वह अपराधी जो दंड पाने के भय से भागता फिरता हो। उ०—फिरारी सुराजी को पकड़नेवालों को सरकार बहादुर की ओर से इनाम मिलता है।—मैला०, पृ० ३।

फिरारी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताश के खेल में उतनी जीत जितनी एक हाथ चलने मे होती है। एक चाल की जीत।

फिरि(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'फिर'। उ०—नागमती चितउर पथ हेरा। पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५२।

फिरिकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० फिरकी'।

फिरियाद, फिरियादि(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [अ० फरियाद] १. वेदनासूचक शब्द। ओह। हाय। २. दुहाई। आवेदन। पुकार। उ०—सुख में सुमिरन ना किया दुख में कीनी याद। कहै कबीर ता दास की कैसे लगे फिरियाद।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।—लाना।—लगना।

फिरियादी(पु)†—वि० [फ़ा० फरियादी] १. फरियाद करनेवाला। अपना दुखड़ा सुनाने के लिये पुकार करनेवाला। २. आवेदन करनेवाला। नालिश करनेवाला।

फिरिश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़िरिश्तह्] दे० 'फरिश्ता'।

यौ०—फिरिश्ताखसलत, फिरिश्ताखू = भला। दे० 'फरिश्ता खू'। फिरिश्तासूरत = देवरूप।

मुहा०—फिरिश्ते की गुजर न होना, या दाल न गलना = किसी का बस न होना। किसी की पहुँच न होना। फिरिश्ते दिखाई देना, या नजर आना = मौत करीब या नजदीक होना। फिरिश्तों को खबर न होना = अत्यंत गूढ़ या गोपनीय होना।

फिरिहरा—संज्ञा पु० [हिं० फिरना] एक पक्षी का नाम जिसकी छाती लाल और पीठ काले रंग की होती है।

फिरिहरी, फिरिहिरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फिरना+हारा (प्रत्य०)] फिरकी नाम का खिलौना जिसे बच्चे नचाते हैं।

फिरोही—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह धन जो दूकानदार माल खरीदनेवाले के नौकर को देता है। दस्तूरी। नौकराना।

फिर्का—संज्ञा पुं० [अ० फ़िर्क़ह्] दे० 'फिरका'

फिलफिल—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़िलफ़िल] मरिच । मिर्च [को०] ।

फिलफौर—क्रि० [अ० फ़िलफ़ौर] १. तत्काल । उसी क्षण । २ ईश्वरेच्छया । उ०—गुरु शब्द से फिलफौर रंग पलट हो जावे ।—कबीर म०, पृ० ३६२ ।

फिलहाल—क्रि० वि० [अं० फ़िलहाल] अभी । इस समय । संप्रति ।

फिलासफर—संज्ञा पु० [अं० फ़िलासफर] दार्शनिक । उ०—फिलासफर का जोड़ फिलासफर से ही हो सकता है ।—गोदान, पृ० १२६ ।

फिलासफी—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़िलासफ़ी] १. दर्शन शास्त्र । २. सिद्धांत या तत्व की बात । गूढ़ बात । जैसे,—कहने सुनने को तो यह साधारण सी बात है, पर इसमे बड़ी भारी फिलासफी है ।

फिल्म—संज्ञा पु० [अं० फ़िल्म] १. छाया ग्रहण करनेवाला लेप जो सैल्युलाइड आदि के फीते या प्लेट पर रहता है । २. चित्र या चित्रफलक । ३. सिनेमा संबंधी चित्र । छायाचित्र । उ०—यह फिल्म तुम्हे बहुत बुरी लगती है ।—सुनीता, पृ० १३२ ।

फिल्माना—क्रि० स० [अं० फ़िल्म से नाम०] सिनेमा बनाना । छाया चित्र तैयार करना । उ०—कुछ निर्माताओं ने मुंशी प्रेमचंद जी की अन्य रचनाओं को फिल्माने की घोषणा भी की ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २५६ ।

फिल्लाह—वि० [अ० फिल्लाह] समाप्त । नष्ट । बर्बाद ।

यौ०—फनाफिल्लाह = अस्तित्व न रहना । ब्रह्मलीन । उ०—तब फनाफिल्लाह होवै, मारफत मकान ठहराइ के जी । —पलटू० बानी, पृ० ६० ।

फिल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लोहे के छड का एक टुकड़ा जो जुलाहों के करघे में तूर में लगाया जाता है । †२. पिंडली ।

फिश्—अव्य [अनु०] धिक् । फिट् । घृणासूचक अव्यय ।

फिस—वि० [अनु०] कुछ नही ।

विशेष—जब कोई आदमी बड़ी तैयारी या मुस्तैदी से कोई काम करने चलता है और उससे नहीं हो सकता तब तिरस्कार रूप में यह शब्द कहा जाता है । जैसे,—बहुत कहते थे कि यह करेंगे पर सब फिस ।

मुहा०—टाँय टाँय फिस = थी तो बड़ी धूम पर हुआ कुछ नहीं । फिस हो जाना = हवा हो जाना । न रह जाना । जैसे, इरादा फिस होना, मामला फिस होना ।

फिसकाना(पु)—क्रि० अ० [अनु० फिस ?] श्रीहीन होना । पश्चात्पद होना । फिस हो जाना । फिसफिसाना । उ०—सुंदर दोऊ दल जुरे अरु बाजे सहनाइ, सूरा कै मुख श्री चढ़ै काइर दे फिसकाइ ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३६ ।

फिसड्डी—वि० [अनु० फिस] १. जिससे कुछ करते धरते न बने । जिसका कुछ किया न हो । जो काम हाथ में लेकर उसे पूरा न कर सके । २. जो काम मे पीछे रहे । जो किसी बात में बढ़ न सके ।

फिसफिसाना—क्रि० अ० [अनु० फिस] १. फिस होना । २. ढीला पड़ना । शिथिल होना । जोर के साथ न चलना ।

फिसलन—संज्ञा स्त्री० [हिं० फ़िसलना] १. फिसलने की क्रिया या भाव । चिकनाई के कारण न जमने या ठहरने की क्रिया या भाव । रपटन । २. ऐसा स्थान जहाँ चिकनाई के कारण पैर या और कोई वस्तु न जम सके । चिकनी जगह जहाँ पड़ने से कोई वस्तु न ठहरे, सरक जाय ।

फिसलना[1]—क्रि० अ० [सं० प्र + सरण] १. चिकनाहट और गीलेपन के कारण पैर आदि का न जमना । चिकनाई के कारण पैर आदि का न ठहर सकना । सरक जाना । रपटना । खिसलना । जैसे, कीचड़ में पैर फिसलना, पत्थर पर जमी काई पर शरीर फिसलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. प्रवृत्त होना । झुकना । जैसे,—जिधर अपना लाभ देखते हो उसी ओर फिसल जाते हो ।

मुहा०—जी फिसलना = मन प्रवृत्त या मोहित होना ।

फिसलना[2]—वि० जिसपर फिसल जायँ । रपटीला । बहुत चिकना । जैसे, फिसलना पत्थर ।

फिसलाना—क्रि० स० [हिं० फिसलना] किसी को ऐसा करना कि वह फिसल जाय ।

फिसाद—संज्ञा पुं० [अ० फ़साद] दे० 'फसाद' । उ०—आप लोगो ने जो काँटे बोए हैं उन्ही का फल है । शहर में फिसाद हो गया है ।—काया०, पृ० ३८ ।

फिसाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़सानह्] कथा । कहानी । उ०—(क) वे जहाँ एक ओर करुण चित्रों के आकलन में सिद्धहस्त हैं वहाँ पुरमजाक, फब्ती भरे, गुदगुदा देनेवाले फिसाने लिखने में भी ।—शुक्ल अभि० ग्रं० (साहित्य), पृ० ९२ । (ख) मिस्ले मजनूँ हाल मेरा भी फिसाना हो गया ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५० ।

फिहरिस्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़िहरिस्त] सूची । सूचीपत्र । बीजक ।

फींचना‡—क्रि० स० [अनु० फिच् फिच्] पछारना । कपडे को पटककर साफ करना । धोना । उ०—दिल लेकर फिरे कपड़े सा फीचा ।—कुकुर०, पृ० ३० ।

फी—अव्य० [अ० फ़ी] १. प्रति एक । हर एक । जैसे,—(क) फी आदमी दो आने लगेंगे । (ख) फी रुपया दो आना सूद मिलता है । २. से । ३. में । बीच ।

यौ०—फी कस = प्रति व्यक्ति । फी जमाना = आजकल । इन । दिनों । उ०—फी जमाना अरबी और फारसी में वह सानी नही रखते ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९० । फी साल = प्रतिवर्ष । फी सैकड़ा = प्रति शत । सैकड़ा पीछे ।

फीका†—वि० [हिं० फीका] १. अरुचिकर । फीका । २. धूमला । मलिन । उ०—चलब नीति मग राम पग नेह निबाहब नीक । तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक ।—तुलसी (शब्द०) ।

फीकरिया(पु)†—वि० [हिं० फीका] [वि० स्त्री० फीकी] नीरस । रसहीन । फीका । उ०—बालूँ बाबा देसड़उ जहाँ फीकरिया लोग । एक न दीसइ गोरियाँ, घरि घरि दीसइ सोग । —ढोला०, दू० ६६५ ।

फीका—वि० [सं० अपक्व, प्रा० अपिक्क] १. स्वादहीन । सीठा ।

नीरस। बेजायका। जो चखने में अच्छा न लगे। अरुचिकर। उ०—(क) माया तरवर त्रिविध का साख विषय संताप। शीतलता सपने नही फल फीका तन ताप।—कबीर (शब्द०)। (ख) जे जल दीखा सोई फीका। ताकर काह् सराहे नीका।—जायसी (शब्द०)। (ग) प्रभु पद प्रीति न सामझ नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागहि फीकी।—तुलसी (शब्द०)। (घ) देह गेह सनेह अर्पण कमल लोचन ध्यान। सूर उनको भजन देखत फीको लागत ज्ञान।—सूर (शब्द०)। २. जो चटकीला न हो। जो शोख न हो। धूमला। मलिन। उ०—चटक न छाड़त घटत हूँ सज्जन नेह गंभरि। फीको परे न बरु फटै रँग्यो चोल रँग चोर।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—पकड़ना।—होना।

३. बिना तेज का। कांतिहीन। प्रभाहीन। बे रौनक। मंद। जैसे, चेहरा फीका पड़ना। उ०—दुलहा दुलहिन मिलि गए फीकी परी बरात।—कबीर (शब्द०)। ४. प्रभावहीन। व्यर्थ। निष्फल। उ०—(क) प्रभु सों कहत सकुचात हौं परो जिनि फिरि फीको। निकट बोलि बलि बरजिए परिहरि ख्याल अब तुलसीदास जड़ जी को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नीकी दई अनाकनी फीकी पड़ी गुहारि। मनो तज्यो तारन बिरद बारिक बारन तारि।—बिहारी (शब्द०)।

फीटना(पु)†—क्रि० स० [प्रा० फिट्ट (= ध्वस्त होना), हिं० फटना] १. फटना। अलग होना। दूर होना। हटना। उ०—फीटी तिमिर मान तब ऊग्यो अंतर भयो प्रकासा रे।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १७। २. नष्ट होना। उ०—सहज सुभाव मेरी तृष्ना फीटी, सीगी नाद संगि मेला।—गोरख०, पृ० २०७।

फीटिक†—संज्ञा पुं० [सं० स्फटिक, प्रा० फटिक] दे० 'फटिक', 'स्फटिक'।

यौ०—फीटिकसीला† = स्फटिक का प्रस्तरखंड या शिला। फीटिकसिला। उ०—फीटिक सील्या दरस देखे जहाँ जाए गयंद दसन भरे।—सं० दरिया, पृ० ६६।

फीता—संज्ञा पुं० [पुर्त०] १. नेवार की पतली धज्जी, सूत, आदि जो किसी वस्तु को लपेटने या बाँधने के काम मे आता है। उ०—खेलत चंग से चित्त चली ज्यों बँधी रघुराज के प्रेम के फीता।—रघुराज (शब्द०)। २. पतला किनारा। पतली कोर।

फीफरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फेफरी'।

फीफसु†—संज्ञा पुं० [सं० फुफ्फुस] दे० 'फुपफुस'। उ०—सुरखी फीफसु पित बिचि कीन्हा।—प्राण०, पृ० १६।

फीरनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़िरनी] एक प्रकार की खीर जो दूध में चावल का बारीक आटा पकाकर बनाई जाती है। इसे मुसलमान अधिक खाते हैं।

फीरोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा०; मि० सं० परेज, पेरोज] एक प्रकार का नग या बहुमूल्य पत्थर जो हरापन लिए नीले रंग का होता है।

विशेष—इसमें अलमीनियम फासफेट और कुछ लोहे और ताँबे का योग होता है। अच्छा फीरोजा फारस की पहाड़ियों में होता है जहाँ से रोम होता हुआ यह यूरोप गया। अमेरिका से भी फीरोजा बहुत आता है। इसकी गिनती रत्नों में है और यह आभूषणों में जड़ा जाता है। हलके मोल के पत्थर पच्चीकारी मे भी काम आते हैं। वैद्य लोग इसका व्यवहार औषध के रूप में भी करते हैं। यह कसैला, मीठा और दीपन कहा गया है।

पर्या०—हरिताश्म भस्मांग। पेरोज।

फीरोजी—वि० [फ़ा० फ़ीरोज़ी] फीरोजे के रंग का। हरापन लिए नीला।

विशेष—इस रंग में कपड़ा इस प्रकार रँगा जाता है। पहले कपड़े को तूतिये के पानी में रँगते हैं, फिर तूतिये से चौगुना चूना मिले पानी में उसे बोर देते हैं और फिर पानी में निथारते हैं। यह क्रिया तीन बार करते हैं।

फील—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ील] हाथी। उ०—झालरि झुकत झलकत झपे फीलन पै अली अकबर खाँ के सुभट सराह के। अरि उर रोर सोर परत संसार घोर बाजत नगारे नरवर नाह के।—गुमान (शब्द०)।

यौ०—फीलपाँव = श्लीपद। दे० 'फीलपा'।

फीलखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ीलख़ानह्] हथिसार। हस्तिशाला। वह घर जहाँ हाथी बाँधा जाता हो।

फीलपा—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ीलपा] एक रोग जिसमे पैर फूलकर हाथी के पैर की तरह हो जाता है। यह रोग शरीर के दूसरे अंगों पर भी आक्रमण करता है।

फीलपाया—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ीलपायह्] १. ईंटे का बना हुआ मोटा खंभा जिसपर छत ठहराई जाती है। इसे फीलपावा भी कहते हैं। २. दे० 'फीलपा'।

फीलवान—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ीलवान] हाथीवान।

फीली—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्ड] पिंडली। घुटने के नीचे एँड़ी तक का भाग। उ०—सिंह की चाल चलै डग ढीली। रोवाँ बहुत जाँघ औ फीली।—जायसी (शब्द०)।

फील्ड—संज्ञा पुं० [अं० फील्ड] १. खेत। मैदान। २. गेंद खेलने का मैदान।

फील्ड ऐंबुलेन्स—संज्ञा पुं० [अं० फ़ील्ड ऐम्बुलेन्स] दे० 'एम्बुलेन्स'।

फीवर—संज्ञा पुं० [अं० फ़ीवर] ज्वर। बुखार।

फीस—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़ीस] १. कर। शुल्क। २. मेहनताना। उजरत। जैसे, डाक्टर की फीस, स्कूल की फीस।

क्रि० प्र०—लगना।

फुंकरना—क्रि० अ० [हिं० फुंकार] फूत्कार छोड़ना। उ०—(क) तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर त्यों हुंकरत फुंकरत, फैलत फलात फाल बाँधत फलंका मे।—पद्माकर (शब्द०)।

फुंकार—संज्ञा पुं० [अनु०] फूत्कार। दे० 'फुंकार'। उ०—तब धाइ धायो जाइ जगायो मानो छूटी हाथियाँ। सहस फन फुंकार छाड़े जाई काली नाथियाँ।—सूर (शब्द०)।

फुंसी—संज्ञा स्त्री० [सं० पनसिका, पा० फनस] छोटी फोड़िया ।

यौ०—फोड़ा फुंसी ।

फुँकना[1]—क्रि० स० [हिं० फूँकना] १. फूँकने का अकर्मक रूप । २. जलना । भस्म होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. नष्ट होना । बरबाद होना । व्यर्थ खर्च होना । जैसे,—इतना रुपया फुँक गया । ४. मुँह की हवा भरकर निकाला जाना ।

फुँकना[2]—संज्ञा पुं० १. बाँस, पीतल आदि की नली जिसमें मुँह की भरकर आग पर छोड़ते हैं । फुँकनी । २. प्राणियों के शरीर का वह अवयव जिसमें मूत्र रहता है । यह पेड़ू के पास होता है ।

फुँकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूँकना] १. नली जिसमें मुँह की हवा भरकर आग पर इसलिये छोड़ते हैं जिसमें वह दहक जाय । २. भाथी ।

फुँकरना—क्रि० अ० [सं० फूत्कार, हिं० फुंकार] फूत्कार छोड़ना । फूँ फूँ शब्द करना । मुँह से हवा छोड़ना ।

फुँकवाना—क्रि० स० [हिं० फूँकना का प्रे० रूप] १. फूँकने का काम कराना । २. मुँह से हवा का झोंका निकलवाना । ३. जलवाना । भस्म करवाना ।

फुँकाना—क्रि० स० [हिं० फूँकना का प्रे० रूप] फूँकने का काम कराना ।

फुँकार—संज्ञा पुं० [अनु०] साँप बैल आदि के मुँह वा नाक के नथनों से बलपूर्वक वायु के बाहर निकालने से उत्पन्न शब्द । फूत्कार ।

फुँदना—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + फंद ? या देश०] १. फूल के आकार की गाँठ जो बद, इजारबंद, चोटी बाँधने या धोती कसने की डोरी, झालर आदि के छोर पर शोभा के लिये बनाते हैं । फुलरा । झब्बा । उ०—उठी सो धूम नयन गरुवानी । लागी परै आँसु बहिरानी । भीनै लागि चुए कठमुंदन । भीजे भँवर कमल सिर फुंदन ।—जायसी (शब्द०) । २. तराजू की डंडी के बीच की रस्सी की गाँठ । ३. कोड़े की डोरी के छोर पर की गाँठ । ४. सूत आदि का बँधा हुआ गुच्छा या फूल जो शोभा के लिये डोरियों आदि में लटकता रहता है । झब्बर ।

फुँदिया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुँदना] १. झब्बा । फूलरा । फुँदना । २. दे० 'फुँदना' । उ०—फुँदिया और कसनिया राती । छायल-बँद लाए गुजराती ।—जायसी (शब्द०) ।

फुँदी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फंदा सं० बन्ध ?] फंदा । गाँठ । उ०—लीन्ही उसास मलीन भई दुति दीन्ही फुँदी फुफुदी की छिपाइ कैं ।—देव (शब्द०) ।

फुँदी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिंदी] बिंदी । टीका । उ०—सारी लटकति पाट की, बिलसति फुँदी लिलाट ।—मति० ग्रं०, पृ० ४५२ ।

फु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंत्र पढ़कर फूँकने की ध्वनि । मंत्र पढ़कर फूँकने का शब्द । २. मामूली बात । तुच्छ या छोटी बात [को०] ।

फुआ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पितृष्वसा] पिता की बहन । बुआ ।

फुआरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुहारा' ।

फुक—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी । चिड़िया [को०] ।

फुकना[1]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फुँकना[1]' ।

फुकना[2]—संज्ञा पुं० दे० 'फुँकना[2]' ।

फुकनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुँकनी' ।

फुकली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फोकला । छिलका ।

फुकाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'फुँकाना' ।

फुगाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ुगाँ] आर्तनाद । दुहाई । उ०—(क) जबाँ भी खैंच लेना तुम, अगर मुँह से फुगाँ निकले ।—श्यामा० (भू०), पृ० १४ । (ख) तड़पते हैं फुगाँ करते हैं और करवट बदलते हैं ।—भारतेंदु० ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८ ।

फुचड़ा—संज्ञा पुं० [देश० या अ० फ़ुज़लह् (= बचा हुआ, फालतू)] कपड़े, दरी, कालीन, चटाई आदि बुनी हुई वस्तुओं में बाहर निकला हुआ सूत या रेशा । जैसे,—थान में जो जगह जगह फुचड़े निकले हैं उन्हें कैंची से काट दो ।

क्रि० प्र०—निकलना ।

फुजला—संज्ञा पुं० [अ० फ़ाज़िल का बहु० फ़ुज़्लह्] १. अतिरिक्त या शेष भाग । फालतू अंश । २. सीठी । ३. मैल ।

फुजूल—वि० [अ० फ़ुज़ूल] दे० 'फजूल' ।

यौ०—फुजूलखर्च = अपव्ययी । फुजूलखर्ची = अपव्यय ।

फुट[1]—वि० [सं० स्फुट] १. जिसका जोड़ा न हो । अयुग्म । समूह या अवयवी से फूटा । अलग जा पड़ा हुआ । एकाकी । अकेला । २ जो लगाव में न हो जो किसी सिलसिले में न हो । जिसका संबंध किसी क्रम या परंपरा से न हो । पृथक् । अलग ।

यौ०—फुटमत ।

फुट[2]—संज्ञा पुं० [अं० फुट] आयत विस्तार का एक अंग्रेजी मान । लंबाई, चौड़ाई मापने की एक माप जो १२ इंच या ३६ जौ के बराबर होती है ।

फुट[3]—संज्ञा पुं० [सं०] साँप का फन [को०] ।

फुटकर[1]—वि० [सं० स्फुट + कर = (प्रत्य०)] १. अयुग्म । विषम । फुट । जिसका जोड़ा न हो । एकाकी । अकेला । २. अलग । पृथक् । जो लगाव में न हो । जिसका कोई सिलसिला न हो । जैसे, फुटकर कविता । ३. भिन्न भिन्न । कई प्रकार का । कई मेल का । ४. खंड खंड । थोड़ा थोड़ा । इकट्ठा नहीं । थोक का उलटा । जैसे,—(क) वह फुटकर सौदा नहीं बेचता । (ख) चीज इकट्ठा लिया करो फुटकर लेने में ठीक नहीं पड़ता ।

फुटकर[2]—संज्ञा पुं० खुदरा । रेजगारी ।

फुटकल—वि० [हिं०] दे० 'फुटकर' ।

फुटका[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्फोटक] १. फफोला । छाला । आबला ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

२. धान, मक्के, ज्वार आदि का लावा ।

फुटका[२]—संज्ञा पुं० [देश०] वह कड़ाह जिसमे गन्ने का रस पकता है ।

फुटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटक] १. किसी वस्तु के छोटे लच्छे, या जमे हुए कण जो पानी, दूध आदि में अलग अलग दिखाई पड़ते हैं । बहुत छोटी छोटी गाँठी । जैसे,—(क) दूध फट गया है, उसमें फुटकियाँ सी दिखाई पड़ती हैं । (ख) घुले हुए बेसन की फुटकियाँ । २. खून, पीब आदि का छीटा जो किसी वस्तु (जैसे मल, थूक आदि) में दिखाई दे । ३. एक प्रकार की छोटी चिड़िया । फुदकी ।

फुटना[१]—वि० [हिं०] जो फूट जाय । भग्न होनेवाला । फूटा हुआ । भग्न ।

फुटना(पु)[२]—क्रि० अ० दे० 'फूटना'—१ । उ०—यह तन काचा कुंभ है लिये फिरै था साथ । ठपका लागा फुटि गया कछू न आया हाथ ।—कबीर (शब्द०) ।

फुटनोट—संज्ञा स्त्री० [अं० फुटनोट] वह टिप्पणी जो किसी लेख या पुस्तक के पृष्ठ मे नीचे की ओर दी जाती है । पादटिप्पणी ।

फुटपाथ—संज्ञा पुं० [अं० फुटपाथ] १. शहरों में सड़क की पटरी पर का वह मार्ग जिसपर मनुष्य पैदल चलते हैं । २. पगडंडी ।

फुटबाल—संज्ञा पुं० [अं०] १. चमड़े का बना हुआ बड़ा गेंद जिसके अंदर रबर की थैली में हवा भरी जाती है और जिसे पैर की ठोकर से उछालकर खेलते हैं ।

फुटमत†—संज्ञा पुं० [हिं० फूट + सं० मत] मतभेद । विरोध ।

फुटानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुट+आनी (प्रत्य०) या देश०] चुभने या लगनेवाली बात । व्यंग्यात्मक बड़ी चढ़ी या बेलगाम बात । उ०—बीच में फुटानी छाँठकर सब गड़बड़ा दिया ।—मैला०, पृ० २६३ ।

फुटेरा†—वि० [हिं० फूटना + ऐरा (प्रत्य०)] अभागा । फूटे भाग्य का । फुट्टैल । उ०—स्वारथ सब इंद्रिय समूह पर विरहा धीर धरत । सूरदास घर घर की फुटेरी कैसे धीर धरत ।—सूर (शब्द०) ।

फुटेहरा—संज्ञा पुं० [हिं० फूटना + हरा (=फल)] १. मटर या चने का दाना जो भूनने से ऐसा खिल गया हो कि छिलका फट गया हो । २. चने का भुना हुआ चबेन ।

फुटैल—वि० [हिं० फुट + ऐल (प्रत्य०)] दे० 'फुट्टैल' ।

फुट्ट—वि० [हिं०] दे० 'फुट' ।

फुट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र [को०] ।

फुट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बुना हुआ वस्त्र [को०] ।

फुट्टैल[१]—वि० [सं० स्फुट, पा० फुट + ऐल (प्रत्य०)] १. झुंड या समूह से अलग । अकेला रहनेवाला । जिसका जोड़ा न हो । जो जोड़े से अलग हो । (विशेषतः जानवरों के लिये) ।

फुट्टैल[२]—वि० [हिं० फूटना] फूटे भाग्य का । अभागा ।

फुड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० फोड़ा का अल्पा०] छोटा फोड़ा या फुंसी । उ०—जब बालक फुड़िया दुख माई । माता वहै नीक होइ जाई ।—घट०, पृ० २४० ।

फुतकार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० फुत्कार] दे० 'फूत्कार' । उ०—जिन फन फुतकार उड़त पहार भारे ।—भूषण ग्रं०, पृ० ९७ ।

फुतूर—संज्ञा पुं० [अ० फ़ुतूर] दे० फतूर' ।

फुतूरिया, फुतूरी—वि० [हिं०] दे० 'फतूरिया' ।

फुत्कर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

फुत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'फूत्कार' [को०] ।

फुत्कृत[१]—वि० [सं०] १. फूँका हुआ । २. चिल्लाया हुआ [को०] ।

फुत्कृत[२]—संज्ञा पुं० १. फूँकने से बजनेवाले बाजे की ध्वनि । २. चीत्कार । ३. दे० फूत्कृति' [को०] ।

फुत्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'फूत्कृति' [को०] ।

फुदंग—संज्ञा पुं० [देश०] नेपाल के लिंबू जाति में प्रचलित एक वैवाहिक प्रथा ।

विशेष—जहाँ वर वधू में कोई पूर्व परिचय नहीं होता वहाँ वर अपने किसी निकट संबंधी द्वारा वधू के पिता पास एक मारा हुआ सूअर भेजता है । इस प्रथा को लिंबू लोग 'फुदंग' कहते हैं ।

फुदकना—क्रि० अ० [अनु०] १. उछल उछलकर कूदना । उछलना । २. हर्ष से फूल जाना । उमंग मे आना । फूले न समाना ।

फुदकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुदकना] एक छोटी चिड़िया जो उछल उछल कर कूदती हुई चलती है ।

फुनंग—संज्ञा स्त्री० [सं० पुलक] वृक्ष या शाखा का अग्रभाग या अंकुर । जैसे,—अगर कोई दरख्त की फुनंग पर जा चढ़े तो भी काल नहीं छोड़ता ।

फुन—अव्य० [सं० पुन.] फिर । पुनः ।

फुनकार†—संज्ञा पुं० [सं० फुत्कार] दे० 'फुंकार' ।

फुनग—संज्ञा पुं० [सं० पन्नग. प्रा० पण्णग] शेषनाग । उ०—मोहे इंद्र फुनग फुनि मोहे, मुनि मोहे तेरी करत सेवा ।—दादू० बानी, पृ० ५०८ ।

फुनगी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुलक या देश०] वृक्ष और वृक्ष की शाखाओं का अग्रभाग । फुनंग । अंकुर । उ०—वह अपनी ऊँची फुनगियों को वायु के झोंके से न हिलने दें और न पत्तों की खड़खड़ाहट का शब्द होने दें ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६२५ ।

फुनना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुँदना' ।

फुनसली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुन्सी] छोटी फुंसी । उ०—सुंदर कबहूँ फुनसली कबहूँ फोरा होइ । ऐसी याही देह मैं क्यों सुख पावै कोइ ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७२२ ।

फुनिग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पन्नग] नाग । सर्प । उ०—ज्यू फुनिग चंदनि रहै, परिमल रहै लुभाए रे । त्यूँ मन मेरा राम सों अबकी बेर अघाए रे ।—दादू० बानी, पृ० ६८१ ।

फुनिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० फणीन्द्र] दे० 'फणींद्र' । उ०—अगेव

मनी लब्भी फुनिद, अग्गेव सरद निसि उग्गि चंद।—पृ० रा०, १।६२२।

फुनि(पु)‡—अव्य० [सं० पुनः, हिं० फुन] दे० 'पुनि'। उ०—फुनि मालमीक रामावतार। शत कोटि ग्रंथ कथि तत्त सार।—पृ० रा०, १।२७।

फुफ्फुकारक—वि० [सं०] हाँफनेवाला [को०]।

फुफ्फुस—संज्ञा पुं० [सं०] फेफड़ा।

फुफँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल+फंद] लहँगे के इजारबंद या स्त्रियों की धोती कसने की डोरी की गाँठ जो कमर पर सामने की ओर रहती है और जिसके खींचने से लहँगा या धोती खुल जाती है। नीवी। उ०—आँगी कसी उकसी कुच ऊँचे हँसी हुलसे फुफँदीन की फूँदे।—देव (शब्द०)।

फुफकाना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'फुफकारना'। उ०—कोप करि जो लौं एक फन फुफकावे काली, तौ लौं बनमाली सोऊ फन पै फिरत है।—पद्माकर (शब्द०)।

फुफकार—संज्ञा पुं० [अनु०] फूक जो साँप मुँह से निकालता है। साँप के मुहँ से निकली हुई हवा का शब्द। फुँकार। फूत्कार।

फुफकारना—क्रि० अ० [हिं० फुफकार] साँप का मुँह से फूँक निकालना। मुहँ से हवा निकालकर शब्द करना। फूत्कार करना। जैसे, साँप का फुफकारना।

फुफाना(पु)†—क्रि० अ० [अनु०] फू फू करना। फुंकारना। फुफकारना। उ०—इक सत फननि फुफात सु तातौ। द्वै सत लोचन अनल चुचातौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८३।

फुफो(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फूफी'।

फुफुँदी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुँफदी'। उ०—(क) लीन्ही उसास मलीन भई दुति दीन्ही फुँदी फुफुदी की छिपाई कै।—देव (शब्द०)। (ख) विवेक घँघरा तत्त सारी फुफुदी हैं विस्वासनं। साधु सेवा अंग अँगिया रहनी बाजू बंदनं।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ६४।

फुफुनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुफँदी'।

फुफू(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फूफी'।

फुफेरा—वि० [हिं० फूफा+एरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० फुफेरी] फूफा से उत्पन्न। जैसे, फुफेरा भाई, फुफेरी बहन।

फुबती†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुफँदी'।

फुर†[1]—वि० [हिं० फुरना] सत्य। सच्चा। उ०—(क) वह सँदेस फुर मानि कै लीन्हो शीश चढ़ाय। संतो है सतोष सुख रहहु तो हृदय जुड़ाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) सुदिन सुमगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई।—तुलसी (शब्द०)।

फुर[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] उड़ने में परों का शब्द। पंख फड़फड़ाने की आवाज। जैसे,—चिड़िया फुर से उड़ गई।

विशेष—'चट' 'पट' आदि अनु० शब्दों के समान यह भी 'से' विभक्ति के साथ ही आता है।

फुरकत—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ुरक़त] बिछुड़ने का भाव। जुदाई। वियोग।

फुरकना[1]—क्रि० स० [अनु०] जुलाहों की बोली में किसी वस्तु को मुँह में चबाकर साँस के जोर से थूकना।

फुरकना(पु)[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फड़कना'। उ०—दुतियं उपमा कविता सुर कै। मनो पूर नदी हय ज्यों फुरकै।—पृ० रा०, २४।१६२।

फुरकाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'फड़काना'।

फुरति(पु), फुरती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्फूर्ति (=फुरति)] शीघ्रता। तेजी। उ०—लरयो बलराम यह सुभट यह है कोऊ हुव मुसल अस्त्र अपनो सँभारयो। द्विविद लै शाल को वृक्ष संमुख भयो फुरति करि राम तनु फेंकि मारयो।—सूर (शब्द०)।

फुरतीला—वि० [हिं० फुरती+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० फुरतीली] जिसमें फुरती हो। जो सुस्त न हो। जो काम में ढिलाई न करे। तेज।

फुरना—क्रि० अ० [सं० स्फुरण, प्रा० फुरण] १. स्फुटित होना। निकलना। उद्भूत होना। प्रकट होना। उदय होना। उ०—(क) लोग जानै बौरो भयो गयो यह काशी पुरी फुरी मति अति आयो जहाँ हरि गाइए।—प्रिया० (शब्द०)। (ख) नील नलिन श्याम, शोभा अगनित काम, पावन हृदय जेहि उर फुरति।—तुलसी (शब्द०)। २. प्रकाशित होना। चमक उठना। झलक पड़ना। उ०—आधी रात बीती सब सोए जिय जान आन राक्षसी प्रभंजनी प्रभाव सो जनायो है। बीजरी सी फुरी भाँति बुरी हाथ छुरी लोह पुरी दीठि जुरी देखि अंगद लजायो है।—हनुमान (शब्द०)। ३. फड़कना। फड़फड़ाना। हिलना। उ०—(क) उग्यो न अनु जनु वीर विगत महि किधौं बहु सुभट दुरे। रोषे लखन विकट भृकुटी करि भुज अरु अधर फुरे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अजहूँ अपराध न जानकी की भुज बाम फुरे मिलि लोचन सों। हनुमान (शब्द०)। ४. स्फुटित होना। उच्चरित होना। मुँह से शब्द निकलना। उ०—(क) सूर सोच सुख करि भरि लोचन अंतर प्रीति न थोरी। सिथिल गात मुख बचन फुरति नहिं ह्वै जो गई मति भोरी।—सूर (शब्द०)। (ख) उठि के मिले तंदुल हरि लीन्हे मोहन बचन फुरे। सूरदास स्वामी की महिमा टारी नाहिं टरे।—सूर (शब्द०)। ५. पूरा उतरना। सत्य ठहरना। ठीक निकलना। जैसे सोचा समझा या कहा गया था वैसा ही होना। उ०—फुरी तुम्हारी बात कही जो मो सो रही कन्हाई।—सूर (शब्द०)। ६. प्रभाव उत्पन्न करना। असर करना। लगना। उ०—(क) फुरै न यंत्र मंत्र नहिं लागे चले गुणी गुण हारे। प्रेम प्रीति की व्यथा तप्त तनु सो मोहिं डारति मारे।—सूर (शब्द०)। (ख) यंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत प्रीति सिराना जाति।—सूर (शब्द०) ७. सफल होना। सोचा हुआ परिणाम उत्पन्न करना। उ०—फुरै न कछु उद्योग जहँ उपजै अति मन सोच।—पद्माकर (शब्द०)।

फुरफुर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. उड़ने में परों की फरफराहट से उत्पन्न शब्द। डैनों का शब्द। २. पर आदि की रगड़ से उत्पन्न शब्द।

फुरफुराना¹—क्रि० अ० [अनु० फुरफुर] १. फुरफुर करना। उड़कर परों का शब्द करना। जैसे, चिड़ियों या फतिगों का फुरफुराना। २. किसी हलकी छोटी वस्तु (जैसे, रोएँ, बाल आदि) का हवा में इधर उधर हिलना। हलकी वस्तु का लहराना।

फुरफुराना²—क्रि० स० १. पर या और कोई हलकी वस्तु हिलाना जिससे फुर फुर शब्द हो। जैसे, पर फुरफुराना। २ कान में रूई की फुरेरी फिराना। जैसे,—कान में खुलजी है तो फुरेरी डालकर फुरफुराओ।

फुरफुराहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] फुरफुर शब्द होने का भाव। पंख फड़फड़ाने का भाव।

फुरफुरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] 'फुरफुर' शब्द होने का भाव। पंख फड़फड़ाने का भाव। उ०—राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरफुरी ली।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मुहा०—फुरफुरी लेना=उड़ने के लिये पंख हिलाना।

फुरमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़रमान] १. राजाज्ञा। अनुशासनपत्र। २. मानपत्र। सनद। ३. आज्ञा। आदेश। उ०—मंगल उत्पति आदि का सुनियो संत सुजान। कहे कबीर गुरु जाग्रत समरथ का फुरमान।—कबीर (शब्द०)।

फुरमाना†—क्रि० स० [फा० फ़रमान] कहना। आज्ञा देना। दे० 'फरमाना'। उ०—तब नहि होते गाय कसाई। कहु बिसमिल्लह किन फुरमाई।—कबीर (शब्द०)।

फुरसत—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ुरसत] १. अवसर। समय। २. पास में कोई काम न होने की स्थिति। किसी कार्य में न लगे रहने की अवस्था। काम से निबटने या खाली होने की हालत। अवकाश। निवृत्ति। छुट्टी। जैसे,—इस वक्त फुरसत नहीं है, दूसरे वक्त आना।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

मुहा०—फुरसत पाना=नौकरी से छूटना। बरखास्त होना। (लश०)। फुरसत से=खाली वक्त में। धीरे धीरे। बिना उतावली के। जैसे,—यह काम दे जाओ, मैं फुरसत से करूँगा। ३. बीमारी से छुटकारा। रोग से मुक्ति। आराम।

फुरहरना‡—क्रि० अ० [सं० प्रस्फुरण] १. स्फुरित होना। निकलना। प्रादुर्भूत होना। उ०—छप्पन कोटि बसंदर बरा। सवा लाख पर्वत फुरहुरा।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'फरहरना'।

फुरहरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पर को फुलाकर फड़फड़ाना। उ०—सबै उड़ान फुरहरी खाई। जो भा पंख पाँख तन आई।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खाना।—लेना।

२. फड़फड़ाहट। फड़कने का भाव। फड़कना। उ०—फरकि फरकि बाम बाहु फुरहरी लेत खरकि, खरकि खुलै मैन सर खोजहु।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खाना।—लेना।

३. कपड़े आदि के हवा में हिलने की क्रिया या शब्द। फरफराहट। ४. कँपकँपी। फुरेरी। कंप और रोमांच। दे० 'फुरेरी' उ०—नहि अन्हाय नहि जाय घर चित चिहुट्यो तकि तीर। परसि फुरहरी लै फिरति बिहँसति धँसति न नीर।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—फुरहरी लेना=(१) काँपना। थरथराना। (२) फड़फड़ाना। फड़कना। (३) होशियार होना।

५. दे० 'फुरेरी'।

फुरहरू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुरहरी'—४। उ०—सरित तीर सीतहि निरखि हरपि हरपि हँसि देत। नीर तरफ तकि तकि रहत, फेर फुरहरू लेत।—स० सप्तक, पृ० ३७९।

फुराना¹—क्रि० स० [हिं० फुर से नाम०] १. सच्चा ठहराना। ठीक उतारना। २. प्रमाणित करना।

फुराना²—क्रि० अ० दे० 'फुरना'।

फुरुहुरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] फरहरा। झंडा। उ०—विचित्रांबरक फुरुहुरा कइसन देपुजनि कांचन गिरिकाँ शृंग मयूर नचइतें अछ।—वर्ण०, पृ० ७।

फुरेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुरफुराना] १. सींक जिसके सिरे पर हलकी रुई लपेटी हो और जो तेल, इत्र, दवा आदि में डुबोकर काम में लाई जाय। २. सरदी, भय आदि के कारण थरथराहट होना और रोंगटे खड़े होना। रोमांचयुक्त कंप। उ०—रह रहकर शरीर पर फुरेरी दौड़ जाती थी।—फूलो०, पृ० १६।

मुहा०—फुरेरी आना=फुरफुरी होना। सरदी, डर आदि के कारण कँपकँपी होना। फुरेरी लेना=(१) सरदी, भय आदि के कारण काँपना। कँपकँपी के साथ रोंगटे खड़े करना। थरथराना। (२) फड़फड़ाना। फड़कना। हिलना। (३) होशियार होना। चौंकना। एकबारगी सँभल जाना।

फुर्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्फूर्ति] दे० 'फुरती'।

फुर्माना†—क्रि० स० [हिं० फरमाना, फुरमाना] दे० 'फरमाना'। उ०—अन्नदाता जी! या बात आपका फुर्मावा लायक नहीं है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६।

फुर्सत—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ुरसत] दे० 'फुरसत'।

फुलंगो‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुल ? या देश०] पहाड़ो में होनेवाली जंगली भाँग का वह पौधा जिसमें बीज बिलकुल नहीं लगते। कलगो का उलटा।

फुलंदर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० फूल+इंदर या नर (प्रत्य०)] पुष्पों में इंद्र—कमल। उ०—मनसा फूल फुलंदर लागी। वाड़ी इस विधि सींचो माली।—रामानंद०, पृ० १४।

फुलका—संज्ञा पुं० [हिं० फूलना] १. फफोला । छाला । उ०—तब तिय कर फुलका करि आयो । कछु दिन मे ताते सुत जायो ।—रघुराज (शब्द०) । २. [स्त्री० फुलकी] हलकी और पतली रोटियाँ । चपाती । ३. एक छोटा कड़ाह जो चीनी के कारखाने में काम आता है ।

फुलकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + कारी (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का कपड़ा जिसमें मामूली मलमल आदि पर रंगीन रेशम से बूटियाँ आदि काढ़ी हुई होती हैं । उ०—मरना तो था ही, दस रोज पहले ही मरती । नसीबन सुहागन तो मरती । यर्थी पर फुलकारी पड़ जाती ।—अभिशप्त, पृ० १०१ । २ कसीदाकारी । गुलकारी ।

फुलचुही—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + चूसना] नीलापन लिए काले रंग की एक चमकती चिड़िया जो फूलों पर उड़ती फिरती है । इसकी चोंच पतली और कुछ लंबी होती है जिससे वह फूलों का रस चूसती है । फुलसुंघी । उ०—रायमुनी तुम औरत-मुही । अलिमुख लागि भई फुलचुही ।—जायसी (शब्द०) ।

फुलझड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + झड़ना] १. एक प्रकार की आतशबाजी जिससे फूल की सी चिनगारियाँ निकलती हैं । उ०—हँसी तेरी पियारे फुलझड़ी है । यही गुंचा के दिल में गुलझड़ी है ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २० ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

२. कही हुई ऐसी बात जिसमें कुछ आदमियों में झगड़ा, विवाद या और कोई उपद्रव हो जाय । आग लगानेवाली बात ।

क्रि० प्र०—छूटना ।—छोड़ना ।

फुलझरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुलझड़ी' । उ०—बिहँसी शशि वरई जनु फरी । कैधौं रैन छुटै फुलझरी ।—जायसी (शब्द०) ।

फुलडासⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + डास] फूल का बिछौना । उ०—भा निरमर सब धरनि अकासू । सेज सँवारि कीन्ह फुलडासू ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५० ।

फुलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूलना] एक बारहमासी घास जो प्रायः ऊसर भूमि में होती है ।

फुलफुल, फुलफुला—वि० [हिं० फूलना] फूला हुआ जैसा ।

फुलवारीⓅ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + बारी < सं० वाटिका, वाटी] दे० 'फुलवारी' । उ०—मोहित होत मनुज मन लखि लीला फुलवारी ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३३४ ।

फुलरा†—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + रा (प्रत्य०)] फुँदना ।

फुलरी—सं० स्त्री० [हिं० फूल + री (प्रत्य०)] फूल । बेलबूटे । उ०—जैसे बुनत महीर मैं, फुलरी परती जाहिं । ऐसे सुंदर ब्रह्म से जगत भिन्न कछु नाहिं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८०४ ।

फुलवनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० फूलना का सक० रूप] दे० 'फुलाना' । उ०—बलुआ के घरुआ मैं बसते, फुलवत देह अयाने ।—कबीर ग्रं०, पृ० २७६ ।

फुलवर—संज्ञा पुं० [हिं० फूल+बार] एक कपड़ा जिसपर रेशम के बेल बूटे बुने या कढ़े होते हैं । उ०—स्त्रीजन पहनी छीटें, फुलवर साटन ।—ग्राम्या, पृ० ३६ ।

फुलवाईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पवाटी] दे० 'फुलवाड़ी' । उ०—(क) एक सखी सिय संग बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) एक दिन शुक्रसुता मन आई । देखौं जाय फूल फुलवाई ।—सूर (शब्द०) ।

फुलवा घास—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तृण । दे० 'फुलनी' ।

फुलवाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पवाटी] दे० 'फुलवारी' । उ०—इस फुलवाड़ी के दक्खिन ओर क्या आलाप सा सुनाई देता है ।—शकुंतला, पृ० १३ ।

फुलवारⓅ†—वि० [सं० फुल्ल] प्रफुल्ल । प्रसन्न । उ०—जानहुँ जरन आगि जल परा । होइ फुलवार रहस हिय भरा ।—जायसी (शब्द०) ।

फुलवारी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्प या फुल्ल, हिं० फूल + सं० वाटी, हिं० बारी] १. पुष्पवाटिका । उद्यान । बगीचा । उ०—(क) आपुहि मूल फूल फुलवारी आपुहि चुनि चुनि खाई । कहैं कबीर तेई जन उबरे जेहि गुरु लियो जगाई ।—कबीर (शब्द०) । (ख) पुनि फुलवारि लागि चहुँ पासा । वृक्ष बेधि चंदन भइ बासा ।—जायसी (शब्द०) । २. कागज के बने हुए फूल और वृक्षादि जो ठाट पर लगाकर विवाह में बरात के साथ निकाले जाते हैं ।

फुलवारी²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घोड़ा । उ०—हरे हरदिया इस खिंग गर्रा फुलवारो ।—सुजान०, पृ० ८ ।

फुलसरा—संज्ञा पुं० [हिं० फूल+सार] काले रंग की एक चिड़िया जिसके सिर पर सफेद छींटे होते हैं ।

फुलसुंघी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + सूँघना] एक चिड़िया । फुलचुही ।

फुलसुँघी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + सूँघना] दे० 'फुलसुंघी' ।

फुलहाराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० फूल+हारा] [स्त्री० फुलहारी] माली । उ०—जैसे फूल बैठे फुलहारी । पान अपूरब धरे सँवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

फुलांग—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + अंग] एक प्रकार की भाँग ।

फुलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूलना] १. दे० 'सरफुलाई' । २. खुखंडी ३. एक प्रकार का बबूल । फुलाह ।

विशेष—यह पंजाब में सिंधु और सतलज नदियों के बीच की पहाड़ियों पर होता है । इसके पेड़ बहुत ऊँचे नहीं होते और विशेषकर खेतों की बाड़ों पर लगाए जाते हैं । इसकी लकड़ी मजबूत और ठोस होती है तथा कोल्हू की जाठ और गाड़ियों के पहिए आदि बनाने के काम में आती है । इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है जो औषध में काम आता है और अमृत-सर का गोंद कहलाता है ।

फुलाना¹—क्रि० स० [हिं० फूलना] १. किसी वस्तु के विस्तार या फैलाव को उसके भीतर वायु आदि का दबाव पहुँचाकर बढ़ाना । भीतर के दबाव से बाहर की ओर फैलाना । उ०—हरखित खगपति पंख फुलाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—मुँह फुलाना या गाल फुलाना = मान करना। रिसाना। रूठना।

२. किसी को पुलकित या आनंदित कर देना। किसी में इतना आनंद उत्पन्न करना कि वह आपे के बाहर हो जाय। उ०—तुलसी भनित भली भामिन उर सो पहिराइ फुलावौं।—तुलसी (शब्द०)। ३. किसी में गर्व उत्पन्न करना। गर्वित करना। घमंड बढ़ाना। जैसे,—तुम्हीं ने तो तारीफ कर करके उसे और फुला दिया है। ४. कुसुमित करना। फूलो से युक्त करना। उ०—चावर ह्वै गेहूँ रहे कवौ उरद ह्वै आय। कबहूँ मुदगर चिबुक तिल सरसों देत फुलाय।—मुबारक (शब्द०)।

फुलाना³—क्रि० अ० दे० 'फूलना'।

फुलाना⑤³—वि० [हिं० फुलना] फूला हुआ। उ०—गगन मँदिल मे फूल फुलाना उहाँ भँवर रस पीवै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २३।

फुलायल⑤—संज्ञा पुं० [हिं० फूल] दे० 'फुलेल'। उ०—(क) मुहमद बाजी पेम कै ज्यों भावै त्यों खेल। तिल फूलहि के संग ज्यों होइ फुलायल तेल।—जायसी (शब्द०)। (ख) छोरहु जटा, फुलायल लेहू। झारहु केस, मुकुट सिर देहू।—जायसी (शब्द०)।

फुलाव—संज्ञा पुं० [हिं० फूलना] फूलने की क्रिया या भाव। फूलने की अवस्था। उभार या सूजन।

फुलावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूलना] फूलने की क्रिया या भाव। उभार या सूजन।

फुलावा—संज्ञा पुं० [हिं० फूल] स्त्रियों के सिर के बालो को गूँथने की डोरी जिसमे फूल या फुँदने लगे रहते हैं। खजुरा।

फुलिंग⑤—संज्ञा पुं० [सं० स्फुलिङ्ग, प्रा० फुलिंग] चिनगारी। उ०—जोन्ह लगै अब पावक पुंज औ कुंज कै फूल फुलिंग ज्यों लागे।—(शब्द०)।

फुलिया—संज्ञा स्त्री [हिं० फूल] १. किसी कील या छड़ के आकार की वस्तु का फूल की तरह उभरा और फैला हुआ गोल सिरा। २. कील या काँटा जिसका सिरा फूल की तरह फैला हुआ, गोल और मोटा हो। ३. एक प्रकार की लौंग (गहना) जो कान में पहनी जाती है।

फुलिसकेप—संज्ञा पुं० [अं० फूल्स + कैप] एक प्रकार का लिखने या छापने का कागज।

विशेष—पहले इसके तख्ते में मनुष्य के सिर का चित्र बना रहता था जिसपर नोकदार टोपी होती थी। इसी कारण इसे 'फूल्स कैप' कहने लगे जिसका अर्थ बेवकूफ की टोपी होता है। अब इस कागज मे अनेक चिह्न बनाए जाते हैं। इस कागज की माप १३½ × १७ इंच होती है।

फुलुरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े का एक टुकड़ा जो छोटे बच्चों के चूतड़ के नीचे इसलिये बिछाया या रखा जाता है कि उनका मल दूसरी जगह न लगे। गेंदतरा।

फुलेरा—संज्ञा पुं० [हिं० फूल ऐरा + (प्रत्य०)] फूल की बनी हुई छतरी जो देवताओं के ऊपर लगाई जाती है।

फुलेल—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + तेल] १. फूलो की महक से बासा हुआ तेल जो सिर में लगाने के काम में आता है। सुगंधयुक्त तेल। उ०—(क) उर धारी लटैं छूटी आनन पै, भीजी फुलेलन सों, आली हरि संग केलि।—सूर (शब्द०)। (ख) रे गंधी, मतिमंद तू अतर दिखावत काहि। करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—फुलेल बनाने के लिये तिल को धोकर छिलका अलग कर देते हैं। ताजे फूलों की कलियाँ चुनकर बिछा दी जाती हैं और उनके ऊपर तिल छितरा दिए जाते हैं। तिलों के ऊपर फिर फूलो की कलियाँ बिछाई जाती हैं। कलियो के खिलने पर फूलो की महक तिलो मे आ जाती है। इस प्रकार कई बार तिलों को फूलो की तह पर फैलाते हैं। तिल फूलों में जितना ही अधिक बासा जाता है उतनी ही अधिक सुगंध उसके तेल में होती है। इस प्रकार बासे हुए तिलों को पेलकर कई प्रकार के तेल तैयार होते हैं, जैसे, चमेली का तेल, बेले का तेल। गुलाब के तेल को गुलरोगन कहते हैं।

२. एक पेड़ जो हिमालय पर कुमाऊँ से दारजिलिंग तक होता है।

विशेष—इसके फल की गिरी खाई जाती है और उससे तेल भी निकलता है जो साबुन और मोमबत्ती बनाने के काम में आता है। इसकी लकड़ी हलके भूरे रंग की होती है जिसकी मेज, कुरसी आदि बनती है।

फुलेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुलेल] काँच आदि का वह बड़ा बरतन जिसमें फुलेल रखा जाता है।

फुलेहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + हार] सूत, रेशम आदि के बने हुए झब्बेदार वंदनवार जो उत्सवों में द्वार पर लगाए जाते हैं। उ०—प्रदीप पाँति भावती सुमंगलानि गावती। सुदाम दाम पावती फुलेहरानि लावती।—रघुराज (शब्द०)।

फुलौरा—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + बरा] बड़ी फुलौरी। पकौड़ा।

फुलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + बरी] चने या मटर आदि के बेसन की बरी। बेसन की पकौड़ी। उ०—पापर, बरी, फुलौरि, मिथौरी। कूरबरी, कचरी, पीठौरी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—बेसन को पानी मे खूब फेटकर उसे खौलते हुए घी या तेल में थोड़ा थोड़ा करके डालते हैं जिसमें वह फूल और पककर गोल गोल बरी बन जाती है।

फुल्ल¹—संज्ञा पुं० [सं०] फूल।

फुल्ल²—वि० १. फूला हुआ। विकसित। उ०—शिशिर के धुले फुल्ल मुख को उठाकर वे तकते रह जाते हैं।—अनामिका, पृ० १०३। २. प्रसन्न। प्रमुदित।

यौ०—फुल्लतुवरी। फुल्लदाम। फुल्लनयन, फुल्लनेत्र = जिसकी आँखें प्रसन्नता से विकसित हों। फुल्ललोचन = (१) एक प्रकार का मृग। (२) दे० 'फुल्लनयन'। फुल्लवदन = प्रसन्नमुख।

फुल्लतुवरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फाटिका । फिटकिरी [को०] ।

फुल्लदाम—संज्ञा पुं० [सं० फुल्लदामन्] उन्नीस वर्णों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण मे ६, ७ ८ ९, १०, ११ और १७ वाँ वर्ण लघु होता है ।

फुल्लन—संज्ञा पुं० [सं०] वायु से फुलाने का कार्य या स्थिति [को०] ।

फुल्लना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फूलना'। उ०—रस रंग सरोज सु फुल्लि रहै। रासो, पृ० २१ ।

फुल्लफाल—संज्ञा पुं० [सं०] पछोरने के समय सूप या छाज से उत्पन्न वायु [को०] ।

फुल्लरीक—संज्ञा पुं० [सं०] जिला । शहर । भूमिभाग । २. साँप । सर्प [को०] ।

फुल्ला†—संज्ञा पुं० [हिं० फूलना] १ मक्के या चावल आदि की भुनी हुई खील । लावा । २. दे० 'फूली' ।

फुल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलना । खिलना [को०] ।

फल्लित—वि० [सं० प्रफुल्लित] प्रफुल्लित । प्रसन्न । उ०—सहजो गुरु किरपा करी कहा कहूँ मैं खोल । रोम रोम फुल्लित भई मुखै न आवै बोल ।—सहजो० बानी, पृ० ११ ।

फुल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल] १. फुलिया । २. फूल के आकार का कोई आभूषण या उसका कोई भाग ।

फुवारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुहारा' ।

फुस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो मुँह से साफ फूटकर न निकले । बहुत धीमी आवाज ।

यौ०—फुस फुस = (१) फेफड़ा । फुप्फुस । (२) साफ साफ न सुनाई पड़नेवाली धीमी आवाज ।

मुहा०—फुस फुस करना = बहुत मंद स्वर में बात करना । फुसफुसाना । उ०—मृतक के कान में भी थोड़ी देर फुस फुस करें, तो वह भी उठकर नाचने लगे ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८० । फुस से = बहुत धीरे से । अत्यत मंद स्वर से । जैसे.—जो बात होती है वह उसके पास जाकर फुस से कह आता है ।

फुसकारना(पु)†—क्रि० अ० [अनु०] फूँक मारना । फूत्कार छोड़ना । उ०—ऐसो फैल परत फुसकारत मही मे मानों तारन को वृंद फूतकारत गिरत है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

फुसकी†—संज्ञा स्त्री० [फुस से अनु०] अपान वायु । पाद । गोज ।

फुसड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुचडा' ।

फुसफुसा—वि० [हिं० फूस, अनु० फुस] १. जो दबाने मे बहुत जल्दी चूर चूर हो जाय । जो कड़ा या करारा न हो । नरम । ढीला । २. फुस से टूट जानेवाला । कमजोर । ३. जो तीक्ष्ण न हो । मदा । मद्धिम । जैसे, फुसफुसा तंबाकू ।

फुसफुसाना—क्रि० स० [अनु०] फुस फुस करना । इतना धीरे कहना कि शब्द व्यक्त न हो । बहुत ही दबे हुए स्वर से बोलना या कुछ कहना ।

फुसलाना—क्रि० स० [हिं० फिसलाना या देश०] १. बच्चों को शांत रखने के लिये किसी प्रकार उनका ध्यान दूसरी ओर ले जाना। भुलाकर शांत और चुप रखना । बहलाना । जैसे,—बच्चों को फुसलाना सब नहीं जानते । २. अनुकूल करने के लिये मीठी मीठी बातें कहना । किसी बात के पक्ष में या किसी ओर प्रवृत्त करने के लिये इधर उधर की बातें करना । भुलावे की बातें करना । चकमा दना । झाँसा देना । बहकाना । उ०—बुद्धि की निकाई कछु जाति है न गाई लाल ऐसी फुसलाई है, मिलाई लाल उर सो ।—रघुनाथ (शब्द०) । ३. मीठी मीठी बातें करके किसी ओर प्रवृत्त करना । भुलावा देकर अपने मतलब पर लाना । जैसे,—(क) वह हमारे नौकर को फुसला ले गया । (ख) दूसरे फरीक ने गवाहों को फुसला लिया ।

संयो० क्रि०—लेना ।

४. मनाना । संतुष्ट करने के लिये प्रिय और विनीत वचन कहना । उ०—राजा ने उन ब्राह्मणो के पाँव पड़ पड़ अनेक भाँति फुसलाया समझाया, पर उन तामसी ब्राह्मणो ने राजा का कहना न माना ।—लल्लू (शब्द०) ।

फुहकार(पु)†—संज्ञा पुं० [अनुध्व० या सं० फूत्कार, हिं० फुफकार] उपेक्षा । फटकार । उ०—ग्रान सुने फुहकार करत है झूठी बातन ज्ञाता ।—सं० दरिया, पृ० १३८ ।

फुहर(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] फूहड़ । बेशऊर ।

फुहरिया(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० फूहड़, फूहर + इया (प्रत्य०)] फूहड़ । बेशऊर । उ०—नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो ससुरे में भई फुहरिया हो । अपने मन की बड़ी कुलवंती छुए न पावैं गगरिया हो ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ३८ ।

फुहस†—संज्ञा पुं० [अ० फह्श या फ़ाहिश ?] अश्लील या अशिष्ट । उ०—सत्त सो एक अवलब करु आपनो, तजो बकवाद बहु फुहस कहना ।—भीखा० श०, पृ० ६४ ।

फुहार—संज्ञा पुं० [सं० फूत्कार (= फूँक से उठा हुआ पानी का छींटा या बुलबुला) या अनु० मू० देश०] १. पानी का महीन बारि फुहार भरे बदरा छीटा । जलकण । २. महीन बूँदों की झड़ी । झींसी । उ०—सोह सोहते कुंजर से मतवारे । —श्रीधर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

फुहारा—संज्ञा पुं० [हिं० फुहार] १. जल का महीन छींटा । २. जल की वह टोंटी जिसमें से दबाव के कारण जल की महीन धार या छीटे वेग से ऊपर की ओर उठकर गिरा करते हैं । जल के छीटे देनेवाला यंत्र । जलयंत्र । उ०—फहरैं फुहारे, नीर नहरैं नदी सी बहैं, छहरैं छबीली छाम छीटिन की छीटी है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

फुहिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुही] दे० 'फुही' ।

फुही—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुहार] १. पानी का महीन छींटा । सूक्ष्म जलकण । २. महीन महीन बूँदों की झड़ी । झींसी । उ०—(क) सुर बरसत सुदेश मानो मेघ फुही । मुख मंडित रोरी

रंग सेंदुर माँग छुही।—सूर (शब्द०)। (ख) फूलि भरे ग्रंग पूरे पराग, परे रसरूप की चारु फुही सी।—(शब्द०)।

फूँक—संज्ञा स्त्री० [ग्रनु० फू फू] १. मुँह को वटोरकर वेग के साथ छोड़ी हुई हवा। वह हवा जो ओठों को चारों ओर से दबाकर झोंक से निकाली जाय। जैसे,—वह इतना दुबला पतला है कि फूँक से उड़ सकता है।

मुहा०—**फूँक मारना** = जोर से मुँह की हवा छोडना। जैसे, ग्राग दहकाने या दिया बुझाने के लिये।

२. साँस। मुँह की हवा। उ०—कुँवर ग्रोर उमराव बने बिगरे कछु नाही। फूँक माहिं वे बनत फूँक ही सो मिटि जाहीं।—श्रीधर (शब्द०)।

मुहा०—फूँक निकल जाना = दम निकल जाना। प्राण निकल जाना।

३. मंत्र पढ़कर मुँह से छोड़ी हुई वायु जो उस मनुष्य की ग्रोर छोड़ी जाती है जिसपर मंत्र का प्रभाव डालना। होता है। उ०—परम परब पाय, हाय जमुना के नीर पूरि कै पराग ग्रंगराग के ग्रगर तें। द्विजदेव की सौं द्विजराज ग्रंजली के काज जो लौं चहै पानिप उठाय कंज कर तें। तौ लौं बन जाय मनमोहन मिलापी कहूँ, फूँक सी चलाई फूँकि बाँसुरी ग्रधर तें। स्वासा काढो नासा तें, बासा तें भुजाएँ काढो ग्रंजसी न ग्रंजली तें, ग्राखरौ न गर तें। —द्विजदेव (शब्द०)।

यौ०—झाडफूँक = मंत्र यंत्र का उपचार।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।

४. गाँजा, तंबाकू ग्रादि का कश।

फूँकना—क्रि० स० [हिं० फूँक] १. मुँह को वटोरकर वेग के साथ हवा छोड़ना। ग्रोठों को चारों ग्रोर से दबाकर झोंक से हवा निकलना। जैसे,—(क) यह बाजा फूँकने से बजता है। (ख) फूँक दो तो कोयला दहक जाय। (ग) उसे फूँक दो तो उड़ जाय। उ०—पुनि पुनि मोहिं दिखाइ कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—जिसपर वायु छोड़ी जाती है वह इस क्रिया का कर्म होता है, जैसे,—गर्द फूँक दो, उड़ जाय।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—फूँक फूँककर पैर रखना या चलना = (१) बचा बचाकर चलना। पैर रखने के पहले जगह को फूँक लेना जिसमें चींटी ग्रादि जीव हट जायँ, पैर के नीचे दबकर न मरने पाएँ। (२) बहुत बचाकर कोई काम करना। बहुत सावधानी से कोई काम करना। कोई बात फूँकना = कान में धीरे से कोई बात कहना। बहकाना। कान भरना।

२. मंत्र ग्रादि पढ़कर किसी पर फूँक मारना।

यौ०—झाड़ना फूँकना।

३. शंख, बाँसुरी ग्रादि मुँह से बजाए जानेवाले बाजों को फूँककर बजाना। जैसे, शंख फूँकना। ४. मुँह की हवा छोड़कर दहकाना। फूँककर प्रज्वलित करना। जैसे, ग्राग फूँकना। ५. जलाना। भस्म करना। उ०—या पयाल को फूँकिए तनियक लाई ग्राग। लहना पाया ढूँढ़ता धन्य हमारा भाग।—कबीर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना। उ०—ताको जननी की गति दीनी परम कृपाल गोपाल। दीन्हौं फूँकि कंठ तन वाको मिलि कै सकल गुवाल।—सूर (शब्द०)।

६. धातुग्रों को रसायन की रीति से जड़ी बूटियों की सहायता से भस्म करना। जैसे, सोना फूँकना, पारा फूँकना। ७. नष्ट करना। बरबाद करना। व्यर्थ व्यय कर देना। फजूल खर्च कर देना। उडाना। जैसे, धन फूँकना, रुपए पैसे फूँकना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—फूँकना तापना = व्यर्थ खर्च कर देना। उड़ाना।

८. जलाना। सताना। दुःख देना। ९. चारों ग्रोर फैला देना। प्रकाशित कर देना। जैसे, खबर फूँक देना।

फूँका—संज्ञा पुं० [हिं० फूँक] १. भाथी वा नली से ग्राग पर फूँक मारना। फूँक मारने की क्रिया। २. बाँस की नली में जलन पैदा करनेवाली ग्रोषधियाँ भरकर ग्रौर उन्हें स्तन में लगाकर फूँकना जिससे गाएँ स्तन में दूध चुरा न सकें ग्रौर उनका सारा दूध बाहर निकल ग्राए।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

३. बाँस ग्रादि की नली जिससे फूँका मारा जाता है। ४. फोड़ा। फफोला।

फूँकारना†—क्रि० ग्र० [हिं० फुंकार से नाम०] दे० 'फुंकारना'। उ०—काले नाग फन फैलाए फूँकारते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३।

फूँद—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + फंद] फुँदना। फुलरा। झब्बा। उ०—ग्राँगी कसै, उकसै कुच ऊँचे हँसे हुलसैं फुफुंदीन की फूँदैं।—देव (शब्द०)।

फूँदा⑨†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'फुंदना'। उ०—(क) रत्न जटित गजरा बाजूबंद शोभा भुजन ग्रपार। फूँदा सुभग फूल फूले मनो मदन विटप की डार।—सूर (शब्द०)। (ख) मोहन मोहनी ग्रंग सिंगारत। बेनी ललित ललित कर गूँथत निरखत सुंदर। माँग सँवारत सीसफूल धरि पारि पोछत फूँदन झब्बा निहारत।—सूर (शब्द०)।

यौ०—फूँदफुँदारा = फूँदनेवाला। फुलरेवाला। उ०—हाथ हरी हरी छाजै छरी ग्ररु जूती चढ़ी पग फूँदफुँदौरी।—देव (शब्द०)।

२. फुफूँदी। भुकड़ी।

फू—संज्ञा स्त्री० [ग्रनु०] फूँकने की ध्वनि या ग्रावाज।

फूग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० पितृष्वसा] पिता की बहिन। बूग्रा।

फूई—संज्ञा स्त्री० [हिं० फुही] १. घी का फूल या बुलबुलों का समूह जो तपाते समय ऊपर ग्रा जाता है। २. फफूँदी। भुकड़ी।

फूट—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूटना] १. फूटने की क्रिया या भाव । २. वैर । विरोध । बिगाड़ । अनबन । उ०—अँगरेजी में एक कहावत है कि फूट उपजाओ और शासन करो ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४४ ।

क्रि० प्र०—कराना ।—होना ।

यौ०- फूट फटक = अनबन । बिगाड़ ।

मुहा०—फूट डालना = भेद डालना । भेदभाव या विरोध उत्पन्न करना । झगड़ा डालना । उ०—नारद हैं ये बड़े सयाने घर घर डारत फूट ।—सूर (शब्द०) ।

३ एक प्रकार की बड़ी ककड़ी जो खेतों में होती है और पकने पर फट जाती है ।

मुहा०— फूट सा खिलना = पककर या खस्ता होकर दरकना ।

फूटक—वि० [हिं० फूट+क (प्रत्य०) अथवा हिं० फुटकर] फुटकर । मुक्तक । उ०—अध्यात्म बत्तीसिका पयडी फाग धमाल । कीनी सिंधु चतुर्दशी फूटक कवित रसाल । —अर्ध० पृ० ५७ ।

फूटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूटना] १. टुकड़ा जो फूटकर अलग हो गया हो । २. शरीर के जोड़ों में होनेवाली पीड़ा । जैसे, हड़फूटन ।

फूटना—क्रि० अ० [सं० स्फुटन, प्रा० फुडन; या सं० स्फुट>हिं० फट+ना (प्रत्य०)] १. खरी या करारी वस्तुओं का दबाव या आघात पाकर टूटना । खरी वस्तुओं का खंड खंड होना । भग्न होना । करकना । दरकना । जैसे, घड़ा फूटना, चिमनी फूटना, रेवड़ी फूटना, बताशा फूटना, पत्थर फूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—उँगलियाँ फूटना = खीचने या मोड़ने से उँगलियों के जोड़ का खट् खट् बोलना । उँगलियाँ चटकाना ।

विशेष इस क्रिया का प्रयोग खरी या करारी वस्तुओं के लिये होता है । चमड़े, लकड़ी आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये नहीं होता ।

२. ऐसी वस्तुओं का फटना जिनके ऊपर छिलका या आवरण हो अथवा मुलायम या पतली चीज भरी हो । जैसे, कटहल फूटना, सिर फूटना, फोड़ा फूटना । ३. नष्ट होना । बिगड़ना । जैसे, आँख फूटना, भाग्य फूटना । ४. भेदकर निकलना । भीतर से झोंक के साथ बाहर आना । जैसे सोता फूटना, धार फूटना । ५. शरीर पर दाने या घाव के रूप में प्रकट होना । फोड़े आदि की तरह निकलना जैसे, दाने फूटना, कोढ़ फूटना, गरमी फूटना । ६. कली का खिलना । प्रस्फुटित होना । ७. जुड़ी हुई वस्तु के रूप में निकलना । अवयव, जोड़ या वृद्धि के रूप में प्रकट होना । अंकुर, शाखा आदि का निकलना । जैसे, कल्ला फूटना, शाखा फूटना । उ०—बिरवा एक सकल संसारा । पेड़ एक फूटी बहु डारा ।—कबीर (शब्द०) । ८. अंकुरित होना । फटकर अँखुवा निकलना । जैसे, बीज फूटना । ९. शाखा के रूप में अलग होकर किसी सीध में जाना । जैसे,—थोड़ी दूर पर सड़क से एक ओर रास्ता फूटा है । १०. बिखरना । फैलना । व्याप्त होना । उ०—(क) दिसन दिसन सो किरनै फूटहिं । सब जग जानु फुलझरी छूटहिं ।—जायसी (शब्द०) । (ख) रेंडा रूख भया मलयागिरि चहुँ दिसि फूटी बास ।—कबीर (शब्द०) । ११. निकलकर पृथक् होना । संग या समूह से अलग होना । साथ छोड़ना । जैसे, गोल से फूटना । १२. पक्ष छोड़ना । दूसरे पक्ष में हो जाना । जैसे, गवाह फूटना । १३. अलग अलग होना । विलग होना । संयुक्त न रहना । मिलाप की दशा में न रहना । जैसे, जोड़ा फूटना, संग फूटना । उ०—(क) जिनके पद केशव पानि हिए सुख मानि सबै दुख दूर किए । तिनको सँग फूटत ही फिट रे फटि कोटिक टूक भयो न हिए ।—केशव (शब्द०) । (ख) तू जुग फूटे न मेरी भटू यह काहू कह्यो मखिया सखियान तें । कंज से पानि से पाँसे परे अँसुपा गिरे खंजन सी अँखियान तें ।—नृपशंभु (शब्द०) । १४. शब्द का मुँह से निकलना । जैसे, मुँह से बात फूटना ।

मुहा०—फूट फूटकर रोना = बिलख बिलखकर रोना । बहुत विलाप करना । फूट पड़ना = रो पड़ना ।

१५. बोलना । मुँह से शब्द निकलना । जैसे, कछु तो फूटो । (स्त्रि०) । १६. व्यक्त होना । प्रकट होना । प्रकाशित होना । उ०—अंग अंग छवि फूटि कढ़ति सब निरखत पुर नर नारी ।—सूर (शब्द०) । १७. पानी का इतना खौल जाना कि उसमें छोटे छोटे बुलबुलों के समूह दिखाई देने लगें । पानी का खदखदाने लगना । १८. किसी भेद का खुल जाना । जैसे,—कहीं बात फूट गई तो बड़ी मुश्किल होगी । उ०—संतन सग बैठि बैठि लोकलाज खोई । अब तो बात फूटि गई जानत सब कोई ।—मीरा (शब्द०) । १९. रोक या परदे का दबाव के कारण हट जाना । बाँध, मेड़ आदि का टूट जाना । जैसे, बाँध फूटना । २०. पानी या और किसी पतली चीज का रसकर इस पार से उस पार निकल जाना । जैसे, यह कागज अच्छा नहीं है, इसपर स्याही फूटती है । २१. जोड़ों में दर्द होना ।

फूटरा†—संज्ञा पु० [देश०] कटाक्ष । इशारेबाजी । आँख मारना । उ०—फरगट मारे फूटरा, कर सूँ सरगट काढ़ । सठ दाखै भालो सरस, गिनका वालो गाढ़ ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २ ।

फूटा¹—वि० [हिं० फूटना] [वि० स्त्री० फूटी] भग्न । टूटा हुआ । फूटा हुआ । जैसे, फूटी कौड़ी । फूटी आँख । उ०—कबिरा राम रिझाइ ले मुख अमरित गुन गाइ । फूटा नग ज्यों जोरि मन संधिहि संधि मिलाइ ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—फूटी आँख का तारा = कई बेटों में बचा हुआ एक बेटा । बहुत प्यारा लड़का । फूटी आँखों न भाना =

तनिक भी न सुहाना। बहुत बुरा लगना। अत्यंत अप्रिय लगना। जैसे,—अपनी चाल से वह फूटी आँखों नहीं भाता। (स्त्रि०)। फूटी आँखों न देख सकना = बुरा मानना। जलना। कुढ़ना। जैसे,—वह मेरे लड़के को फूटी आँखों नहीं देख सकती। (स्त्रि०)। पास में फूटी कौड़ी न होना = पास में कुछ भी न होना। अकिंचन होना। फूटे मुँह से न बोलना = दो बात भी न करना। अत्यंत उपेक्षा करना।

फूटा²—संज्ञा पुं० १. वह बालें जो टूटकर खेतों में गिर पड़ती हैं। २. जोड़ों का दर्द।

फूत्कार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० फूत्कार] दे० 'फूत्कार'। उ०—जैसे प्रलै काल में फनी के फनामडल तें, फैले फूनकारनि फुलिंगै सरसत हैं।—हम्मीर०, पृ० ३१।

फूत्कार—संज्ञा पु० [सं०] १. मुँह से हवा छोड़ने का शब्द। फूँक। फुफकार। जैसे, सर्प का फूत्कार। २. साँप की फूँक या फुफकार (को०)। ३. चीख। चीत्कार (को०)। ४. सिसकना। सिसकी भरना (को०)।

फूत्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'फूत्कार' (को०)।

फूफा—संज्ञा पु० [हिं० फूफी] फूफी का पति। बाप का बहनोई।

फूफी—संज्ञा स्त्री० [अनु० अथवा सं० पितृस्वसा, पा० पितुच्छा, प्रा० पिउच्चा, पिउच्छा; बंग० पिसी, या देशी] बाप की बहन। बूआ।

फूफू—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फूफी'।

फूर—वि० [हिं० फुरना] सत्य। सच। उ०—(क) कह गुलाल सो दिसे हुजूर। को मानै यह बचन फूर।—गुलाल० बानी, पृ० ६१। (ख) चारि अवस्था सपने कहई। झूठो फूरो मानत रहई।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० १०८।

फूरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] फूलना। स्फुरित होना। उ०—धावन प्रबल दल धूजत धरनि फन, फुंकरत फूरत फनीस लरजत हैं।—हम्मीर०, पृ० २५।

फूल¹- संज्ञा पुं० [सं० फुल्ल] १. गर्भाधानवाले पौधों में वह ग्रंथि जिसमें फल उत्पन्न करने की शक्ति होती है और जिसे उद्भिदों की जननेंद्रिय कह सकते हैं। पुष्प। कुसुम। सुमन।

विशेष—बड़े फूलों के पाँच भाग होते हैं—कटोरी, हरा पुट, दल (पंखड़ी), गर्भकेसर और परागकेसर। नाल का वह चौड़ा छोर, जिसपर फूल का सारा ढाँचा रहता है, कटोरी कहलाता है। इसी के चारों ओर जो हरी पत्तियाँ सी होती हैं उनके पुट के भीतर कली की दशा मे फूल बंद रहता है। ये आवरणपत्र भिन्न भिन्न पौधों मे भिन्न भिन्न आकार प्रकार के होते हैं। घुंडी के आकार का जो मध्य भाग होता है उसके चारों ओर रंग बिरंग के दल निकले होते हैं जिन्हे पंखड़ी कहते हैं। फूलो की शोभा बहुत कुछ इन्ही रँगीली पंखड़ियों के कारण होती है। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि फूल में प्रधान वस्तु बीच की घुंडी ही है जिसपर परागकेसर और गर्भकेसर होते हैं। क्षुद्र कोटि के पौधो में पुट, पंखड़ी आदि कुछ भी नही होती, केवल खुली घुंडी होती है। वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से तो घुंडी ही वास्तव में फूल है और बाकी तो उसकी रक्षा या शोभा के लिये हैं। दोनों प्रकार के केसर पतले सूत के आकार के होते हैं। परागकेसर के सिरे पर एक छोटी टिकिया सी होती है जिसमें पराग या धूल रहती है। यह परागकेसर पुं० जननेंद्रिय है। गर्भकेसर बिलकुल बीच में होते हैं जिनका निचला भाग या आधार कोश के आकार का होता है। जिसके भीतर गर्भांड बंद रहते हैं और ऊपर का छोर या मुँह कुछ चौड़ा सा होता है। जब परागकेसर का पराग झड़कर गर्भकेसर के इस मुँह पर पड़ता है तब भीतर ही भीतर गर्भ कोश में जाकर गर्भांट को गर्भित करता है, जिससे धीरे धीरे वह बीज के रूप में परिणत होता है और फल की उत्पत्ति होती है।

गर्भाधान के विचार से पौधे कई प्रकार के होते हैं—एक तो वे जिनमें एक ही पेड़ में स्त्री०फूल और पुं० फूल अलग अलग होते हैं। जैसे, कुम्हड़ा, कद्दू, तुरई, ककड़ी इत्यादि। इनमें कुछ फूलों में केवल गर्भकेसर होते हैं और कुछ फूलों में केवल परागकेसर। ऐसे पौधों में गर्भकोश के बीच पराग या तो हवा से उड़कर पहुँचता है या कीड़ों द्वारा पहुँचाया जाता है। मक्के के पौधे में पु० फूल ऊपर ठहनी के सिरे पर मंजरी के रूप में लगते हैं और जीरे कहलाते हैं और स्त्री० फूल पौधे के बीचोबीच इधर उधर लगते हैं और पुष्ट होकर बाल के रूप में होते हैं। ऐसे पौधे भी होते हैं जिनमें नर और मादा अलग अलग होते हैं। नर पौधे में पराग केसरवाले फूल लगते हैं और मादा पौधे में गर्भकेसरवाले। बहुत से पौधों में गर्भकेसर और परागकेसर एक ही फूल में होते हैं। किसी एक सामान्य जाति के अंतर्गत संकरजाति के पौधे भी उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे किसी एक प्रकार के नीबू का पराग दूसरे प्रकार के नीबू के गर्भकोश में जा पड़े तो उससे एक दोगला नीबू उत्पन्न हो सकता है। पर ऐसा एक ही जाति के पौधो के बीच हो सकता है। फूल अनेक आकार प्रकार के होते हैं। कुछ फूल बहुत सूक्ष्म होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। जैसे, आम के नीम के, तुलसी के। ऐसे फूलों को मंजरी कहते हैं। फूलों का उपयोग बहुत प्राचीन काल से सजावट और सुगंध के लिये होता आया है। अबतक संसार में बहुत सा सुगंध द्रव्य (तेल, इत्र आदि) फूलों ही से तैयार होता है। सुकुमारता, कोमलता और सौंदर्य के लिये फूल सब देश के कवियो में प्रसिद्ध रहा है।

मुहा०—फूल आना = फूल लगना। फूल उतारना = फूल तोड़ना। फूल चुनना = फूल तोड़कर इकट्ठा करना। फूल झड़ना = मुँह से प्रिय और मधुर बातें निकलना। उ०—झरत फूल मुँह ते बहि केरी।—जायसी (शब्द०)। क्या फूल झड़ जायँगे? = क्या ऐसा सुकुमार है कि अमुक काम करने के योग्य नही है? फूल तोड़ना = फूल चुनना। फूल सा = अत्यंत सुकुमार, हलका या सुंदर। फूल सूँघकर रहना = बहुत कम खाना। जैसे,—वह खाती नहीं तो क्या फूल सूँघकर रहती है? (स्त्री० व्यंग्य में)। फूलों का गहना = (१)

फूलों की माला, हार आदि सिंगार या सजावट का सामान। (२) ऐसी नाजुक और कमजोर चीज जो थोड़ी देर की शोभा के लिये हो। फूलों की छड़ी = वह छड़ी जिसमें फूलों की माला लपेटी रहती है और जिससे चौथी खेलते हैं। फूलों की सेज=वह पलंग या शय्या जिसपर सजावट और कोमलता के लिये फूलों की पँखड़ियाँ बिछी हों। आनंद की सेज। (शृंगार की एक सामग्री)। पान फूल सा = अत्यंत सुकुमार सा।

२. फूल के आकार के बेल बूटे या नक्काशी। उ०—मनि फूल रचित मखतूल की झूलन जाके तूल न कोउ।—गोपाल (शब्द०)। ३. फूल के आकार का गहना जिसे स्त्रियाँ कई अंगों में पहनती हैं। जैसे, करनफूल, नकफूल, सीसफूल। उ०—(क) कानन कनक फूल छबि देही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पुनि नासिक भल फूल अमोला।—जायसी (शब्द०)। (ग) पायल औ पगपान सुनूपुर। चुटकी फूल अनौट सुभूपुर।—सूदन (शब्द०)। ४. चिराग की जलती बत्ती पर पड़े हुए गोल दमकते दाने जो उभरे हुए मालूम होते हैं। गुल।

मुहा०—फूल पड़ना = बत्ती में गोल दाने दिखाई पड़ना। फूल करना = बुझना (चिराग का)।

५. आग की चिनगारी। स्फुलिंग।

क्रि० प्र०—पड़ना।

६. पीतल आदि की गोल गाँठ या घुंडी जिसे शोभा के लिये छड़ी, किवाड़ के जोड़ आदि पर जड़ते हैं। फुलिया। ७. सफेद या लाल धब्बा जो कुष्ठ रोग के कारण शरीर पर जगह जगह पड़ जाता है। सफेद दाग। श्वेत कुष्ठ।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८. सत्त। सार। जैसे, अजवायन का फूल।

क्रि० प्र०—निकालना।—उतारना।

९. वह मद्य जो पहली बार का उतरा हो। कड़ी देशी शराब। उ०—थोड़ो ही सो चाखिया भौंड़ा पीया धोय। फूल पियाला जिन पिया रहे कलाली सोय।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—यह शराब बहुत साफ होती है और जलाने से जल उठती है। इसी को फिर खींचकर दोआतशा बनाते हैं।

१०. आटे चीनी आदि का उत्तम भेद। ११. स्त्रियों का वह रक्त जो मासिक धर्म में निकलता है। रज। पुष्प।

क्रि० प्र०—आना।

१२ गर्भाशय। १३. घुटने या पैर की गोल हड्डी। चक्की। टिकिया। १४ वह हड्डी जो शव जलाने के पीछे बच रहती है और जिसे हिंदू किसी तीर्थस्थान या गंगा में छोड़ने के लिये ले जाते हैं।

क्रि० प्र०—चुनना।

१५. सूखे हुए साग या भाँग की पत्तियाँ (बोलचाल)। जैसे,—मेथी के दो फूल दे देना। १६. किसी पतले या द्रव पदार्थ को सुखाकर जमाया हुआ पत्तर या वरक। जैसे, स्याही के फूल। १७. मथानी के आगे का हिस्सा जो फूल के आकार का होता है। १८ एक मिश्र या मिलीजुली धातु जो ताँबे और राँगे के मेल से बनती है।

विशेष—यह धातु उजली और स्वच्छ चाँदी के रंग की होती है और इसमें रखने से दही या और खट्टी चीजें नहीं बिगड़तीं। अच्छा फूल 'बेधा' कहलाता है। साधारण फूल में चार भाग ताँबा और एक भाग राँगा होता है पर बेधा फूल में १०० भाग ताँबा और २७ भाग राँगा होता है और कुछ चाँदी भी पड़ती है। यह धातु बहुत खरी होती है और आघात लगने पर चट टूट जाती है। इसके लोटे, कटोरे, गिलास, आबखोरे आदि बनते हैं। फूल काँसे से बहुत मिलता जुलता है पर काँसे से इसमें यह भेद है काँसे में ताँबे के साथ जस्ते का मेल रहता है और उसमें खट्टी चीजें बिगड़ जाती हैं।

फूल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूलना] १. फूलने की क्रिया या भाव। प्रफुल्ल होने का भाव। उत्साह। उमंग। उ०—(क) फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत। मोहत महा मोद उपजावत।—केशव (शब्द०)। (ख) फरक्यो चंपतराय को दच्छिन भुज अनुकूल। बड़ी फौज उमड़ी सुनि भई जुद्ध की फूल।—लाल (शब्द०)। २. आनंद। प्रसन्नता। उ०—(क) करिए अरज कबूल। जो चित्त चाहत फूल।—सूदन (शब्द०)। (ख) फूल श्याम के उर लगे फूल श्याम उर आय।—रहीम (शब्द०)।

फूलकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल+फ़ा० कारी] बेल बूटे बनाने का काम।

फूलगोभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + गोभी] गोभी की एक जाति जिसमें मंजरियों का बँधा हुआ ठोस पिंड होता है जो तरकारी के काम में आता है।

विशेष—इसके बीज असाढ़ से कुआर तक बोए जाते हैं। इसके बीज की पहले पनीरी तैयार करते हैं। फिर पौधों को उखाड़ उखाड़कर क्यारियों में लगाते हैं। कहीं कहीं पौधे कई बार एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान में लगाए जाते हैं। दो ढाई महीने पीछे फूलों की घुंडियाँ दिखाई देती हैं। उस समय कीड़ों से बचाने के लिये पौधों पर राख छितराई जाती है। कलियों के फूटकर अलग होने के पहले ही पौधे काट लिए जाते हैं।

फूलझरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुलझड़ी'।

फूलडोल—संज्ञा पुं० [फूल + डोल] एक उत्सव जो चैत्र शुक्ल एकादशी के दिन मनाया जाता है।

विशेष—इस दिन भगवान् कृष्णचंद्र के लिये फूलों का डोल वा झूला सजाया जाता है। मथुरा और उसके आसपास के स्थानों में यह उत्सव मनाया जाता है।

फूलढोंक—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति की मछली जो भारत के सभी प्रांतों में पाई जाती है और हाथ भर तक लंबी होती है।

फूलदान—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + फा० दान (प्रत्य०)] १. पीतल आदि का बना हुआ बरतन जिसमें फूल सजाकर

देवताओं के सामने रखा जाता है। २. गुलदस्ता रखने का काँच, पीतल, चीनी मिट्टी आदि का गिलास के आकार का बरतन।

फूलदार—वि० [हिं० फूल + फा० दार (प्रत्य०)] जिसपर फूल पत्ते और वेल बूटे काढ़कर, बुनकर, छापकर वा खोदकर बनाए गए हों। २. फूल रखनेवाला। फूलोंवाला।

फूलना—क्रि० अ० [हिं० फूल + ना (प्रत्य०)] १. फूलों से युक्त होना। पुष्पित होना। फूल लाना। जैसे,—यह पौधा वसंत में फूलेगा। उ०—(क) फूलै फरै न बेत जदपि सुधा बरसहिं जलद।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तरुवर फूलै फलै परिहरै अपनो कालहि पाइ।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।—आना।

मुहा०—फूलना फरना = धन धान्य, संतति आदि से पूर्ण और प्रसन्न रहना। सुखी और संपन्न होना। बढ़ना और आनंद से रहना। उन्नति करना। उ०—फूलौ फरौ रहौ जहँ चाहौ यहै असीस हमारी।—सूर (शब्द०)। फूलना फलना = (१) प्रफुल्ल होना। उल्लास में रहना। प्रसन्न होना। (२) दे० 'फूलना फरना'। फूली फाली = प्रफुल्लित प्रसन्न वदन। उ०—फूली फाली फूल सी फिरती विमल विकास। भोर तरैयाँ होयँगी चलत तोहि पिय पास।—बिहारी (शब्द०)।

२. फूल का संपुट खुलना जिससे उसकी पंखड़ियाँ फैल जायँ। विकसित होना। खिलना। उ०—(क) फूले कुमुद केति उजियारे।—जायसी (शब्द०)। (ख) फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन, कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे।—रघुनाथ (शब्द०)। ३. भीतर किसी वस्तु के भर जाने या अधिक होने के कारण अधिक फैल या बढ़ जाना। डील डौल या पिंड का पसरना। जैसे, हवा भरने से गेंद फूलना, गाल फूलना, भिगोया हुआ चना फूलना, पानी पड़ने से मिट्टी फूलना, कड़ाह में कचौरी फूलना। ४. सतह का उभरना। आसपास की सतह से उठा हुआ होना। ५. सूजना। शरीर के किसी भाग का आसपास की सतह से उभरा हुआ होना। जैसे,—जहाँ चोट लगी वहाँ फूला हुआ है और दर्द भी है।

संयो० क्रि०—आना।

६. मोटा होना। स्थूल होना। जैसे,—उसका बदन बादी से फूला है। ७. गर्व करना। घमंड करना। इतराना। जैसे,—जरा तुम्हारी तारीफ कर दी बस तुम फूल गए। उ०—कबहुँक वैठ्यो रहसि रहसि के ढोटा गोद खेलायो। कबहुँक फूलि सभा में वैठ्यो मुछनि ताव दिखायो।—सूर (शब्द०)। (ख) बैठि जाइ सिंहासन फूली। अति अभियान त्रास सब भूली।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—फूले फिरना = गर्व करते हुए घूमना। घमंड में रहना। उ०—मनवा तो फूला फिरै कहै जो करता धर्म। कोटि करम सिर पर चढ़े चेति न देखै मर्म।—कबीर (शब्द०)। फूलकर कुप्पा होना = (१) अत्यधिक आनंद, गर्व या हर्ष युक्त होना। (२) अत्यंत स्थूल होना।

८. प्रफुल्ल होना। आनंदित होना। उल्लास में होना। बहुत खुश होना। मगन होना। उ०—(क) परमानंद प्रेम सुख फूले। वीथिन फिरै मगन मन भूले।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अति फूले दशरथ मन ही मन कौशल्या सुख पायो। सौमित्रा कैकयि मन आनँद यह सब ही सुत जायो।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—फूला फिरना या फूला फूला फिरना = प्रसन्न घूमना। आनंद में रहना। उ०—(क) फूली फिरति रोहिणी मैया नखसिख किए सिंगार।—सूर (शब्द०)। (ख) फूले फिरत अयोध्यावासी गनत न त्यागत पीर। परिरंभन हँसि देत परस्पर आनंद नैनन नीर।—सूर (शब्द०)। (ग) फूले फूले फिरत हैं आज हमारो ब्याह।—(प्रचलित)। फूले अँग अँग वपु न समाना = आनंद का इतना अधिक उद्वेग होना कि बिना प्रकट किए रहा न जाय। अत्यंत आनंदित होना। उ०—(क) उठा फूलि अँग नाहिं समाना। कंथा टूक टूक भहराना।—जायसी (शब्द०)। अति आनंद कोलाहल घर घर फूले अँग न समात।—सूर (शब्द०)। (ग) चेरी चंदन हाथ कै रीझि चढ़ायो गात। विह्वल छिति धर डिंभ शिशु फूले वपु न समात।—केशव (शब्द०)। फूले फरकना(पु) = प्रफुल्ल होकर घूमना। फूले फरकत लै फरी पल कटाच्छ करवार। करत, बचावत पिय नयन पायक घाय हजार।—बिहारी (शब्द०)। फूले न समाना = दे० 'फूले अंग न समाना'। उ०—आधुनिक मत की प्रशंसा में फूले नहीं समाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०८।

९. मुँह फुलाना। रूठना। मान करना। जैसे,—वह तो वहाँ फूलकर बैठा है।

फूलनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूलना] फूलने की क्रिया या भाव। विकास। प्रस्फुटन। उ०—इत यह ललित लतनि की फूलनि फूलि फूलि जमुना जल झूलनि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१९।

फूलपान—वि० [हिं० फूल + पान] (फूल या पान के समान) बहुत ही कोमल। नाजुक (लाक्ष०)।

फूलविरंज—संज्ञा पुं० [हिं० फूल + विरंज] एक प्रकार का धान जिसका चावल अच्छा होता है।

विशेष—यह भादों उतरते कुआर के आरंभ में पककर काटने योग्य हो जाता है।

फूलभाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + भाँग] हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भाँग का नर पेड़ जिसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

फूलमंडनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल + सं० मण्डन + हिं० ई (प्रत्य०)] पुष्पोत्सव। वह केलि जिसमें सब कुछ पुष्पमय होता है।

उ०—नंदनंदन वृषभानु नंदिनी बैठे फूलमंडनी राजें।—छीत०, पृ० २७।

फूलमती—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल+मत (प्रत्य०)] एक देवी का नाम।

विशेष—शीतला रोग के एक भेद की यह अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है। इसकी उपासना नीच जाति के लोग करते हैं। यह राजा वेणु की कन्या कही जाती है।

फूलवारा—संज्ञा पुं० [देश०] चिउली नाम का पेड़।

फूलवाला—संज्ञा पुं० [हिं० फूल+वाला] [स्त्री० फूलवाली] माली।

फूलसँपेल—वि० [हिं० फूल+साँप] (बैल या गाय) जिसका एक सींग दाहिनी ओर दूसरा बाईं ओर को गया हो।

फूलसुँघनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल+सुँघनी] दे० 'फुलसुँघी'। उ०—सुनाती हैं बोली नहीं फूलसुँघनी।—हरी घास०, पृ० ३६।

फूलसुँघी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल+सुँघी] दे० 'फुलसुँघी'। उ०—उहूँ, यह फूलसुँघी है, पींजरे में जी नहीं सकती।—आकाश०, पृ० ११७।

फूला—संज्ञा पुं० [हिं० फूलना] १ खीला। लावा। २. वह कड़ाह जिसमें गन्ने का रस पकाया या उबाला जाता है। ३. एक रोग जो प्रायः पक्षियों को होता है। (इससे पक्षी फूल जाता है और उसके मुँह में काँटे निकल आते हैं जिससे वह मर जाता है)। ४. आँख का एक रोग जिसमें काली पुतली पर सफेद दाग या छोटा सा पड़ जाता है। फूली।

फूली—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल] १. सफेद दाग जो आँख की पुतली पर पड़ जाता है।

विशेष—इससे मनुष्य की आँख की दृष्टि कुछ कम हो जाती है और यदि वह सारी पुतली भर पर या उसके तिल पर होता है तो दृष्टि बिलकुल मारी जाती है।

२. एक प्रकार की सब्जी। ३. एक प्रकार की रूई जो मथुरा के आसपास होती है।

फूवा[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फूफी'।

फूवा[२]—संज्ञा पुं० तृण। फूस। तुष।

फूस—संज्ञा पुं० [सं० तुष, पा० भूस, फुस] १. सूखी हुई लंबी घास जो छप्पर आदि छाने के काम में आए। उ०—(क) कायर का घर फूस का भभकी चहूँ पछीत। शूरा के कछु डर नहीं गचगीरी की भीत।—कबीर (शब्द०)। (ख) कबीर प्रगटहि राम कहि छानै राम न गाय। फूस क जोड़ा दूर करु बहुरि न लागै लाय।—कबीर (शब्द०)। २. सूखा तृण। खर। तिनका। ३. जीर्ण शीर्ण वस्तु।

फूसि(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] झूठी बात। निराधार बात। उ०—सपथ सपथ कए कहकत फूसि, सब मोहें तखने रहत रूसि।—विद्यापति, पृ० १६६।

फूहड़—वि० [सं० पव (=गोबर)+घट (=गढना) अथवा देश०] १. जिसकी चालढाल बेढंगी हो। जिसका ढंग भद्दा हो। जो किसी कार्य को सुचारु रूप से न कर सके। जिसे कुछ करने का ढंग न हो। बेशऊर। (इस शब्द का प्रयोग अधिकतर स्त्रियों के लिये होता है)। उ०—लुगरा गँधात रबड़ी चीकट सी गातमुख धोवै न अन्हात प्यारी फूहड़ बहार देति।—कविता कौ०, भा० २, पृ० १०१। २. जो देखने में बेढंगा लगे। भद्दा।

फूहड़पन—संज्ञा पुं० [हिं० फूहड़+पन (प्रत्य०)] भद्दापन। गंदगी। बेढंगापन।

फूहर†—वि० [हिं०] दे० 'फूहड'। उ०—फूहर वही सराहिए परसत टपकै लार।—गिरधर (शब्द०)। (ख) जीभ का फूहरा, पंथ का चूहरा, तेज तमा धरै आप खोवै।—कबीर रे०, पृ० ३२।

फूहरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूहर+ई (प्रत्य०)] फूहर का काम। फूहड़पन। उ०—पातरी फूहरी अधम का काम है; राँड का रोवना भाँड गावै।—कबीर रे०, पृ० ३२।

फूहा—संज्ञा पुं० [देश०] रूई का गाला।

फूही—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १, पानी की महीन बूँद। २. महीन बूँदों की झड़ी। उ०—अंत न पार कल्पना तेरी ज्यो बरिखा ऋतु फूही।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८४०।

फेंसी—वि० [अं० फैन्सी] दे० फैंसी'।

फेँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेंकना] फेंकने की क्रिया या भाव।

फेँकना—क्रि० स० [सं० प्रेषण, प्रा० पेखण अथवा सं० क्षेपण, (खेपन, फेंकना)] १. झोंके के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर डालना। इस प्रकार गति देना कि दूर जा गिरे। अपने से दूर गिराना। जैसे, तीर फेंकना, ढेला फेंकना, पत्थर फेंकना। उ०—बलराम जी ने उसकी दोनों पिछली टाँगें पकड़ फिरायकर ऊँचे पेड़ पर फेंका।—लल्लू (शब्द०)।

मुहा०—घोड़ा फेंकना = घोड़ा दौड़ाना।

२. कुश्ती आदि में पटकना। दूर चित गिराना। ३. एक स्थान से ले जाकर और स्थान पर डालना। जैसे,—(क) यहाँ बहुत सा कूड़ा पड़ा है, फेंक दो। (ख) जो सड़े आम हों उन्हें फेंक दो।

संयो० क्रि०—देना।

४. असावधानी से इधर उधर छोड़ना या रखना। बेपरवाही से डाल देना। जैसे—(क) किताबें इधर उधर फेंकी हुई हैं सजाकर रख दो। (ख) कपड़े यों ही फेंककर चले जाते हो, कोई उठा ले जायगा। ५. बेपरवाही से कोई काम दूसरे के ऊपर डालना। खुद कुछ न करके दूसरे के सुपुर्द करना। अपना पीछा छुड़ाकर दूसरे पर भार डाल देना। जैसे,—वह सब काम मेरे ऊपर फेंककर चला जाता है। ६. भूल से कहीं गिराना या छोड़ना। भूलकर पास से अलग कर देना। गँवाना। खोना। जैसे,—बच्चे के हाथ से अँगूठी ले लो, कहीं फेंक देगा।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

७. जुए आदि के खेल में कौड़ी, पाँसा गोटी आदि आदि का हाथ में लेकर इसलिये जमीन पर डालना कि उनकी स्थिति के

अनुसार हार जीत का निर्णय हो। जैसे, पाँसा फेंकना, कौड़ी फेंकना। ८. तिरस्कार के साथ त्यागना। ग्रहण न करना। छोड़ना। परित्याग करना। उ०—कंचन फेंकि काँच कर राख्यो। अमरित छाँड़ि मूढ़ विष चाख्यो।—लल्लू (शब्द०) ९. अपव्यय करना। फजूल खर्च करना। जैसे,—ऐसे काम में क्यों व्यर्थ रुपया फेंकते हो? १०. उछालना। ऊपर नीचे हिलाना डुलाना। झटकना पटकना। जैसे, (क) बच्चे का हाथ पैर फेंकना। (ख) मिरगी में हाथ पैर फेंकना। ११. (पटा) चलाना। (पटा) लेकर घुमाना या हिलाना डुलाना।

फँकरना(पु)†—क्रि० अ० [अनु० फें फें + करना] १. गीदड़ का रोना या बोलना। उ०—फटु कुठायँ करटा रटहिं फेंकरहिं फेरु कुभाँति। नीच निसाचर मीचु बस अनी मोह मद माति।—तुलसी (शब्द०)। २. फूट फूटकर रोना। चिल्ला चिल्लाकर रोना।

फँकाना[1]—क्रि स० [हिं० फेंकना, का प्रे० रूप] फेंकने का काम कराना।

फँकाना[2]—क्रि० अ० फेंक दिया जाना। झटके से बिना किसी कारण के या अकस्मात् गिर पड़ना।

फँकैत—संज्ञा पुं० [हिं० फिकैत] फेकैत। पटेबाज। उ०—रसिकों के हासविलास, गुंडों के रूप रंग और फेंकैतों के दावघात का मेरी दृष्टि में रत्ती भर भी मूल्य नहीं।—मान०, भा० ५, पृ० ७४।

फँगा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फिंगा'।

फँट[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेट या पेटी, अथवा देश०] १. कमर का घेरा। कटि का मडल। उ०—फेंट पीतपट, साँवरे कर पलास के पात। हँसत परस्पर ग्वाल सब बिमल बिमल दधि खात।—सूर (शब्द०)। २. धोती का वह भाग जो कमर में लपेटकर बाँधा गया हो। कमर में बाँधा हुआ कोई कपड़ा। पटुका। कमरबंद। उ०—(क) खायबे को कछु भाभी दीनी श्रीपति मुख तें बोले। फेंट उपर ते अंजुलि तंदुल बल करि हरि जू खोले।—सूर (शब्द०)। (ख) लाल की फेंट सों लैकै गुलाल लपेटि गई अब लाल के गाल सों।—रघुनाथ (शब्द०)।

मुहा०—फेंट गहना, धरना या पकड़ना = जाने न देना। रोकना। इस प्रकार पकड़ना कि भागने न पाए। उ०—(क) श्याम सखा को गेंद चलाई। धाय गह्यो तब फेंट श्याम की देहु न मेरी गेंद मँगाई।—सूर (शब्द०)। (ख) अब लौं तो तुम विरद बुलायो भई न मोसों भेंट। तजौ विरद कै मोहि उबारो सूर गही कसि फेंट।—सूर (शब्द०)। (ख) जो तु राम नाम चित धरतो। सूरदास बैकुंठ पैठ में कोउ न फेंट पकरतो।—सूर (शब्द०)। फेंट कसना या बाँधना = कटिबद्ध होना। कमर कसकर तैयार होना। सन्नद्ध होना। उ०—(क) ढोल बजावती गावती गीत मचावती धूँधुर धूरि के धारन। फेंट फवे की कसे द्विजदेव जू चंचलता बस अंचल तारन।—द्विजदेव (शब्द०)। (ख) पाग पेंच खैंच दै, लपेटि पट फेंट बाँधि, ऐंड़े ऐंड़े आवैं पैने टूटे डीम डीम ते।—हनुमान (शब्द०)।

३. फेरा। लपेट। घुमाव।

फँट[2]—संज्ञा स्त्री० [फेंटना] फेंटने की क्रिया या भाव।

फँटना—क्रि० स० [सं० पिष्ट, प्रा० पिट्ठ + ना (प्रत्य०) या हिं० फेंट से नामिक धातु] १. गाढ़े द्रव पदार्थ को उँगली घुमा घुमाकर हिलाना। लेप या लेई की तरह चीज को हाथ या उँगली से मथना। जैसे, पीठी फेंटना, बेसन फेंटना, तेल फेंटना।

संयो० क्रि०—देना.—लेना।

२. उँगली से हिलाकर खूब मिलाना। जैसे,—इस बुकनी को शहद में फेंटकर चाट जाओ। ३. गड्डी के तासों को उलट पलटकर अच्छी तरह मिलाना। जैसे, ताश फेंटना।

फँटा—संज्ञा पुं० [हिं० फेंट] १. कमर का घेरा। २. धोती का वह भाग जो कमर मे लपेटकर बाँधा गया हो। ३. पटुका। कमरबंद। उ०—अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल। माया को कटि फेंटा बाँध्यो लोभ तिलक दियो भाल।—सूर (शब्द०)। ४. वह वस्त्र जो सिर पर लपेटकर बाँधा जाता है। छोटी पगड़ी। ५. अटेरन पर लपेटा हुआ सूत। सूत की बड़ी अटी।

फँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेंट] सूत का गोला। अटेरन पर लपेटा हुआ सूत।

फेकरना[1]—क्रि० अ० [हिं० फेकारना] (सिर का) खुलना। (सिर का) आच्छादनरहित होना। नंगा होना। उ०—फेकरे मुँड़ चँवर जनु लाए। निकसि दाँत मुँह बाहर आए।—जायसी (शब्द०)।

फेकरना[2]—क्रि० अ० दे० 'फेंकरना'।

फेकारना†—क्रि० स० [सं० अप्रखर (=बिना मूल का?)] (सिर) खोलना या नंगा करना।

फेकैत—संज्ञा पु० [हिं० फेंकना] लाठी से प्रहार करने मे कुशल। पटेबाज। लाठी फेंकने में कुशल। उ०—पक्का फेकैत है।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ५२४।

फेट—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेटना] फेंटने की क्रिया या भाव। लपेट। चक्कर। उ०—उर अँधारो जहँ नरा सतगुर कूँ नहिं भेट। आए थे हरि मिलन कूँ लगी और ही फेट।—राम० धर्म०, पृ० ७१।

फेड़(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० पोंड, पेड़]। उ०—हीरा मध्य फेड़ विस्तारा।—दरिया० बानी, पृ० १६।

फेण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'फेन'।

फेणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेन। २. एक प्रकार की मिठाई जिसे फेनी, बतासफेनी भी कहते हैं [को०]।

फेत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़ का 'हुआँ हुआँ' करना। उ०—चोर क व्यापार शिवा क फेत्कार।—वर्ण०, पृ० १७।

फेदा‡—संज्ञा पुं० [देश०] घुँइया। अरुई।

फेन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० फेनिल] १. महीन महीन बुलबुलो का वह गठा हुआ समूह जो पानी या और किसी द्रव पदार्थ के खूब हिलने, सड़ने या खौलने से ऊपर दिखाई पड़ता है। झाग। बुदबुद्संघात।

यौ०—फेनदुग्धा। फेनधर्मा = क्षणभंगुर। फेनपिंड = (१) बुलबुला। बुद्बुद्। (२) निरर्थक विचार। सारहीन बात। फेनवाही = (१) फेन की तरह शुभ्र वस्त्र। (२) छनना। छानने का कपड़ा।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

२. मुख से निकला हुआ झाग या फेन (को०)। ३. लार। लाला (को०)। ४ रेंट। नाक का मल।

फेनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेन। झाग। २. टिकिया के आकार का एक पकवान या मिठाई। बतासफेनी। ३. शरीर धोने या मलने की एक क्रिया (संभवतः रीठी आदि के फेन से धोना जिस प्रकार आजकल साबुन मलते हैं)। ३. साबुन।

फेनका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी मे पका हुआ चावल का चूर। फेनी।

फेनदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूधफेनी नाम का पौधा जो दवा के काम मे आता है। यह एक प्रकार की दुधिया घास है।

फेनना†—क्रि० स० [हिं० फेन] किसी तरल वस्तु को उँगली घुमाते हुए इस प्रकार हिलाना कि उसमें से झाग उठने लगे।

फेनप—संज्ञा पुं० [सं०] वे ऋषि जो वनों में स्वयं गिरे हुए फल या फेन आदि खाते थे [को०]।

फेनमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मेह। (इसमे वीर्य फेन की भाँति थोड़ा थोड़ा गिरता है। यह श्लेष्मज माना जाता है।)

फेनल—वि० [सं०] फेनयुक्त। फेनिल।

फेनाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्बुद्। बुलबुला।

फेनाशनि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

फेनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फेनी नाम की मिठाई। फेनका।

फेनिल[1]—वि० [सं०] फेनयुक्त। जिसमें फेन हो। फेनवाला।

फेनिल[2]—संज्ञा पुं० रीठा। रीठी।

फेनी—संज्ञा स्त्री० [सं० फेनिका या फेणी] लपेटे हुए सूत के लच्छे के आकार की एक मिठाई। उ०—(क) फेनी पापर भूजे भए अनेक प्रकार। भइ जाउर भिजियाउर सीझी सब जेवनार।—जायसी (शब्द०)। (ख) घेवर फेनी और सुहारी। खोवा सहित खाव बलिहारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—ढीले गुँधे हुए मैदे को थाली में रखकर घी के साथ चारो ओर गोल बढ़ाते हैं। फिर उसे कई बार उँगलियों पर लपेटकर बढ़ाते हैं। इस प्रकार बढ़ाते और लपेटते जाते हैं। अंत में घी में तलकर चाशनी में पागते या यों ही काम मे लाते हैं। यह मिठाई दूध में भिगोकर खाई जाती है।

फेफड़ा—संज्ञा पुं० [सं० फुप्फुस + हिं० ड़ा (प्रत्य०)] शरीर के भीतर थैली के आकार का वह अवयव जिसकी क्रिया से जीव साँस लेते हैं। वक्षआशय के भीतर श्वास प्रश्वास-का विधान करनेवाला कोश। साँस की थैली जो छाती के नीचे होती है। फुप्फुस।

विशेष—वक्षआशय के भीतर वायुनाल में थोडी दूर नीचे जाकर इधर उधर दो कनखे फूटे रहते हैं जिनसे लगा हुआ मांस का एक एक लोथडा दोनो ओर रहता है। थैली के रूप के ये ही दोनो छिद्रमय लोथड़े दाहिने और बाएँ फेफड़े कहलाते हैं। दहिना फेफडा बाएँ फेफड़े की अपेक्षा चौड़ा और भारी होता है। फेफड़े का आकार बीच से कटी हुई नारंगी की फाँक का सा होता है जिसका नुकीला सिरा ऊपर की ओर होता है। फेफडे का निचला चौडा भाग उस परदे पर रखा रहता है जो उदराशय को वक्षआशय से अलग करता है। दाहिने फेफडे मे दो दरारें होती हैं जिनके कारण वह तीन भागो मे विभक्त दिखाई पडता है, पर बाएँ मे एक ही दरार होती है जिससे वह दो ही भागों में बँटा दिखाई पड़ता है। फेफडे चिकने और चमकीले होते हैं और उनपर कुछ चित्तियाँ सी पड़ी होती हैं। प्रौढ़ मनुष्य के फेफडे का रंग कुछ नीलापन लिए भूरा होता है। गर्भस्थ शिशु के फेफड़े का रंग गहरा लाल होता है जो जन्म के उपरात गुलाबी रहता है। दोनों फेफड़ो का वजन सवा सेर के लगभग होता है। स्वस्थ मनुष्य के फेफड़े वायु से भरे रहने के कारण जल से हलके होते हैं और पानी मे नही डूबते। परतु जिन्हे न्यूमोनिया, क्षय आदि बीमारियाँ होती हैं उनके फेफड़े का रुग्ण भाग ठोस हो जाता है और पानी में डालने से डूब जाता है। गर्भ के भीतर बच्चा साँस नही लेता इससे उसका फेफड़ा पानी में डूब जायगा, पर जो बच्चा पैदा होकर कुछ भी जिया है उसका फेफडा पानी में नही डूबेगा।

जीव साँस द्वारा जो हवा खीचते हैं वह श्वासनाल द्वारा फेफडे में पहुँचती है। इस टेंटुवे के नीचे थोड़ी दूर जाकर श्वासनाल के इधर उधर दो कनखे फूटे रहते है जिन्हे दाहनी और बाईं वायुप्रणालियाँ कहते हैं। फेफड़े के भीतर घुसते ही ये वायुप्रणालियाँ उत्तरोत्तर बहुत सी शाखाओं में विभक्त होती जाती हैं। फेफड़े मे पहुँचने के पहले वायुप्रणाली लचीली हड्डी के छल्लो के रूप में रहती है पर भीतर जाकर ज्यों ज्यों शाखाओं में विभक्त होती जाती है त्यों त्यों शाखाएँ पतली और सूत रूप में होती जाती हैं, यहाँ तक कि ये शाखाएँ फेफड़े के सब भागों में जाल की तरह फैली रहती हैं। इन्ही के द्वारा साँस से खींची हुई वायु फेफड़े के सब भागों में पहुँचती है।

फेफड़े के बहुत से छोटे छोटे विभाग होते हैं। प्रत्येक विभाग को सूक्ष्म आकार का फेफड़ा ही समझिए जिसमें कई घर होते है। ये घर वायुमंदिर कहलाते हैं और कोठों में बँटे होते हैं। इन कोठों के बीच सूक्ष्म वायुप्रणालियाँ होती हैं। नाक से खींची हुई वायु जो भीतर जाती है, उसे श्वास कहते हैं। जो वाय नाक से बाहर निकाली जाती है उसे प्रश्वास कहते

हैं। भीतर जो साँस खींची जाती है उसमें कारबन, जलवाष्प तथा अन्य हानिकारक पदार्थ बहुत कम मात्रा में होते हैं और आक्सीजन गैस, जो प्राणियों के लिये आवश्यक है, अधिक मात्रा में होती है पर, भीतर से जो साँस बाहर आती है उसमें कारबन या अंगारक वायु अधिक और आक्सीजन कम रहती है। शरीर के भीतर जो अनेक रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं उनके कारण जहरीली कारबन गैस बनती रहती है। इस गैस के कारण रक्त का रंग कालापन लिए हो जाता है। यह काला रक्त शरीर के सब भागों से इकट्ठा होकर दो महाशिराओं के द्वारा हृदय के दाहने कोठे मे पहुँचता है। हृदय से यह दूषित रक्त फुप्फुसीय धमनी (दे० 'नाडी') द्वारा दोनों फेफड़ो में आ जाता है। वहाँ रक्त की बहुत सी कारबन गैस बाहर निकल जाती है और उसकी जगह आक्सिजन आ जाता है, इस प्रकार फेफड़ो में जाकर रक्त शुद्ध हो जाता है। लाल शुद्ध होकर फिर वह हृदय मे पहुँचता है और वहाँ से धमनियो द्वारा सारे शरीर में फैलकर शरीर को स्वस्थ रखता है।

फेफड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पपड़ी] गरमी या खुश्की से ओठों के ऊपर चमड़े की सुखी तह। प्यास या गरमी से सूखे ओठ का चमड़ा।

मुहा०—फेफड़ी बाँधना या पड़ना = ओठ सूखना।

फेफड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेफड़ा] चौपायों का एक रोग जिसमे उनके फेफड़े सूज जाते हैं और उनका रक्त सूख जाता है।

फेफरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फेफड़ी'। उ०—मथुरापुर में शोर परयो। गर्जत कंस वेस सव साजे मुख को नीर हरयो। पीरो भयो, फेफरी अधरन हिरदय अतिहि डरयो।—सूर (शब्द०)।

फेरंड—संज्ञा पुं० [सं० फेरण्ड] गीदड़। सियार।

फेर[1]—संज्ञा पुं० [हिं० फेरना] १. चक्कर। घुमाव। घूमने की क्रिया दशा या भाव। उ०—(क) ओहि क खंड जस परबत मेरू। मेरुहि लागि होइ अति फेरू।—जायसी (शब्द०)। (ख) फेर सों काहे को प्राण निकासत सूबेहि क्यों नहिं लेत निकारी।—हनुमान (शब्द०)।

मुहा०—फेर खाना = घुमाव का रास्ता तय करना। सीधा न जाकर इधर उधर घूमकर अधिक चलना। जैसे,—मैं तो इसी रास्ते जाऊँगा, उधर उतना फेर खाने कौन जाय? फेर पड़ना = घुमाव का रास्ता पड़ना। सीधा न पड़ना। जैसे,—उधर से मत जाओ बहुत फेर पड़ेगा, मैं सीधा रास्ता बताता हूँ। फेर बँधना = क्रम या तार बँधना। सिलसिला लगना। फेर बाँधना = सिलसिला डालना। तार बांधना। फेर की बात = घुमाव की बात। बात जो सीधी सादी न हो।

२. मोड़। झुकाव।

मुहा०—फेर देना = घुमाना। मोड़ना। रुख बदलना।

३. परिवर्तन। उलट पलट। रद बदल। कुछ से कुछ होना।

यौ०—उलट फेर।

मुहा०—दिनों का फेर = समय का परिवर्तन। जमाने का बदलना। एक दशा से दूसरी दशा की प्राप्ति (विशेषत अच्छी से बुरी दशा की)। उ०—(क) दिनन को फेर होत मेरु होत माटी को।—(शब्द०)। (ख) हंस बगा के पाहुना कोइ दिनन का फेर। बगुना कहा गरबिया बैठा पंख बिखेर।—कबीर (शब्द०)। समय का फेर = दे० 'दिनों का फेर'। उ०—भरत प्यास पिंजरा परचो सुआ समय के फेर। आदर दै दै बोलियत बायस बलि की बेर।—बिहारी (शब्द०)। कुफेर = (१) बुरे दिन। बुरी दशा। (२) बुरा अवसर। बुरा दाँव। सुफेर = (१) अच्छे दिन। अच्छी दशा। (२) अच्छा अवसर। अच्छा मौका। उ०—पेट न फूलत बिनु कहे कहत न लागत बेर। सुमति बिचारे बोलिए समुझि कुफेर सुफेर।—तुलसी (शब्द०)।

४. बल। अंतर। फर्क। भेद। जैसे—यह उनकी समझ का फेर है। उ०—(क) कबिरा मन दीया नहीं तन करि डारा जेर। अंतर्यामी लखि गया बात कहन का फेर।—कबीर (शब्द०)। (ख) नदिया एक घाट बहुतेरा। कहैं कबीर कि मन का फेरा।—कबीर (शब्द०)। (ग) मीता! तू या बात को हिये गौर करि हेर। दरदवंत बेदरद को निसि बासर को फेर।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—फेर पड़ना = अंतर या फर्क होना। भेद पड़ जाना। उ०—दरजी चाहत थान को कतरन लेहुँ चुराय। प्रीति ब्योंत में, भावते! बड़ो फेर परि जाय।—रसनिधि (शब्द०)।

यौ०—हेर फेर।

५. असमंजस। उलझन। दुबधा। अनिश्चय की दशा। कर्तव्य स्थिर करने की कठिनता। जैसे,—वह बड़े फेर मे पड़ गया है कि क्या करे। उ०—घट मँह वकत चकतभा मेरू। मिलहिं न मिलहि परा तस फेरू।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—फेर में पड़ना = असमंजस में होना। कठिनाई में पड़ना। फेर में डालना = असमजस मे डालना। अनिश्चय की कठिनता सामने लाना। किंकर्तव्यविमूढ़ करना। जैसे—तुमने तो उसे बड़े फेर में डाल दिया।

६. भ्रम। संशय। धोखा। जैसे,—इस फेर में न रहना कि रुपया हजम कर लेंगे। उ०—माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर। कर का मनका छोड़ के मन का मनका फेर।—कबीर (शब्द०)। ७. चाल का चक्कर। षट्चक्र। चालबाजी। जैसे—तुम उसके फेर में मत पड़ना, वह बड़ा धूर्त है।

मुहा०—फेर में आना या पड़ना = धोखा खाना। फेर फार की बात = चालाकी की बात।

८. उलझाव। बखेड़ा। झंझट। जंजाल। प्रपंच। जैसे,—(क) रुपए का फेर बड़ा गहरा होता है। (ख) तुम किस फेर में पड़े हो, जाओ अपना काम देखो।

मुहा०—निन्नानबे का फेर = सौ रुपए पूरे करने की धुन। रुपया बढ़ाने का चसका।

विशेष—इसपर यह कहानी है कि दो भाई थे, जिनमें एक दरिद्र और दूसरा धनी था। पहला भाई दरिद्र होने पर भी बड़े सुख चैन से रहता था। उसकी निश्चितता देख बड़े भाई को ईर्षा हुई। उसने एक दिन धीरे से अपने दरिद्र भाई के घर में निन्नानवे रुपये की पोटली डाल दी। दरिद्र रुपए पाकर बहुत प्रसन्न हुआ, पर गिनने पर उसे मालुम हुआ कि सौ में एक कम है। तभी से वह सौ रुपए पूरे करने की चिंता में रहने लगा और पहले से भी अधिक कष्ट से जीवन बिताने लगा।

९. युक्ति। उपाय। ढंग। कौशल रचना। तदबीर। डौल। उ०—(क) फेर कछू करि पौरि तें फिरि चितई मुसकाय। आई जामन लेन को नेहै चली जमाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) आज तो तिहारे कूल वसे रहें रूख मूल, सोई सूल कीबो पैड़ों रात ही बनायबो। बात है न पारस की रति न सियारस की, लाख फेर एक बार तेरे पार जायबो। —हनुमान (शब्द०)।

यौ०—फेरफार।

मुहा०—फेर लगाना=उपाय का ढंग रचना। युक्ति लगाना।

१०. अदला बदला। एवज। कुछ लेना और कुछ देना।

यौ०—हेर फेर=लेन देन। व्यवसाय। जैसे,—वहाँ लाखों का हेर फेर होता है।

११. हानि। टोटा। घाटा। जैसे,—उसकी बातों में आकर मैं हजारों के फेर में पड़ गया।

मुहा०—फेर में पड़ना=हानि उठाना। घाटा सहना।

१२. भूत प्रेत का प्रभाव। जैसे,—कुछ फेर है इसी से वह अच्छा नहीं हो रहा है।

फेर(पु)२—संज्ञा पुं० [हिं०] ओर। दिशा। पार्श्व। तरफ। उ०—सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।—तुलसी (शब्द०)।

फेर३(पु)—अव्य० [हिं०] फिर। पुनः। एक बार और। उ०—(क) सुनि रवि नाउ रतन भा राता। पंडित फेर उहै कहु बाता।—जायसी (शब्द०)। (ख) ऐहै न फेर गई जो निशा तन यौवन है धन की परछाहीं।—पद्माकर (शब्द०)।

फेर४—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़।

फेरक(पु)†—संज्ञा पु० [हिं० फेरा] फेरा। घेरा। उ०—बन काटो अज्ञा दइ एता। फेरक पाँच कोस मे जेता। —चरण० बानी, भा० २, पृ० २०८।

फेरना—क्रि० स० [सं० प्रेरण, प्रा० पेरन; अथवा हिं० 'फिर' से व्युत्पन्न नामिक धातु] १. एक ओर से दूसरी ओर ले जाना। भिन्न दिशा में प्रवृत्त करना। गति बदलना। घुमाना। मोड़ना। जैसे,—गाड़ी पश्चिम जा रही थी उसने उसे दक्खिन की ओर फेर दिया। उ०—(क) मैं ममता मन मारि ले घट ही माहीं घेर। जब ही चाले पीठ दै आँकुस दै दै फेर।—कबीर (शब्द०)। (ख) तिन्हहिं मिले मन भयो कुपथ रत फिरै तिहारे फेरे।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सुर तरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ।—तुलसी (शब्द०)।

संयो क्रि०—देना।—लेना।

२. पीछे चलाना। जिधर से आता हो उसी ओर भेजना या चलाना। लौटाना। वापस करना। पलटाना। जैसे,—वह तुम्हारे यहाँ जा रहा था, मैंने रास्ते ही से फेर दिया। उ०—जे जे आए हुते यज्ञ में परिहै तिनको फेरन।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

३. जिसके पास से (कोई पदार्थ) आया हो उसी के पास पुनः भेजना। जिसने दिया हो उसी को फिर देना। लौटाना। वापस करना। जैसे,—(क) जो कुछ मैंने तुम से लिया है सब फेर दूँगा। (ख) यह कपड़ा अच्छा नहीं है, दूकान पर फेर आओ। (ग) उनके यहाँ से जो न्योता आवेगा वह फेर दिया जायगा। उ०—दियो सो सीस चढाय ले आछी भाँति अएरि। जापै चाहत सुख लयो ताके दुखहिं न फेरि।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

४. जिसे दिया था उससे फिर ले लेना। एक बार देकर फिर अपने पास रख लेना। वापस लेना। लौटा लेना। जैसे,—(क) अब दूकानदार कपड़ा नहीं फेरेगा। (ख) एक बार चीज देकर फेरते हो।

संयो० क्रि०—लेना।

५. चारों ओर चलाना। मंडलाकार गति देना। चक्कर देना। घुमाना। भ्रमण कराना। जैसे, मुगदर फेरना, पटा फेरना, बनेठी फेरना।

मुहा०—माला फेरना=(१) एक एक गुरिया या दाना हाथ से खिसकाते हुए माला को चारों ओर घुमाना। माला जपना। (एक एक दाने पर हाथ रखते हुए ईश्वर या किसी देवता का नाम या मंत्र कहते जाते हैं जिससे नाम या मंत्र की संख्या निर्दिष्ट होती जाती है)। उ०—कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर। माला फेरो साँस की जामें गाँठ न मेर। —कबीर (शब्द०)। (२) बार बार नाम लेना। रट लगाना। धुन लगाना। जैसे,—दिन रात इसी की माला फेरा करो।

६. ऐंठना। मरोड़ना। जैसे,—पेंच को उधर फेरो। ७. यहाँ से वहाँ तक स्पर्श कराना। किसी वस्तु पर धीरे से रखकर इधर उधर ले जाना। छुलाना या रखना। जैसे,—घोड़े की पीठ पर हाथ फेरना। उ०—अवनि कुरंग, विहग द्रुम डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत। मगन न डरत निरखि कर कमलन सुभग सरासन सायक फेरत।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—हाथ फेरना=(१) स्पर्श करना। इधर उधर छूना। (२) प्यार से हाथ रखना। सहलाना। जैसे, पीठ पर हाथ फेरना। (३) हथियाना। ले लेना। हजम करना। उड़ा लेना। जैसे, पराए माल पर हाथ फेरना।

८. पोतना । तह चढ़ाना । लेप करना । जैसे, कलई फेरना, रंग फेरना, चूना फेरना ।

मुहा०—पानी फेरना = धो देना । रंग बिगाड़ना । नष्ट करना ।

९. एक ही स्थान पर स्थिति बदलना । सामना दूसरी तरफ करना । पार्श्व परिवर्तित करना । जैसे,—(क) उसे उस करवट फेर दो । (ख) वह मुझे देखते ही मुँह फेर लेता है ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

१०. स्थान वा क्रम बदलना । उलट पलट या इधर उधर करना । नीचे का ऊपर या इधर का उधर करना । जैसे, पान फेरना । ११. पलटना । और का और करना । बदलना । भिन्न करना । विपरीत करना । विरुद्ध करना । जैसे, मति फेरना, चित्त फेरना । उ०—(क) फेरे भेख रहै भा तपा । धूरि लपेटे मानिक छपा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) सारद प्रेरि तासु मति फेरी । माँगेसि नीद मास षट केरी ।—तुलसी (शब्द०) । १२. माँजना । बार बार दोहराना । अभ्यस्त करना । उद्धरणी करना । जैसे, पाठ फेरना । १३. चारों ओर सब के सामने ले जाना । सब के सामने ले जाकर रखना । घुमाना । जैसे, जनवासे में पान फेरना । उ०—फेरे पान फिरा सब कोई । लागा ब्याहचार सब होई ।—जायसी (शब्द०) । १४. प्रचारित करना । घोषित करना । जैसे, डौंड़ी फेरना । १५. चलाकर चाल ठीक करना । घोड़े आदि को ठीक चलने की शिक्षा देना । चाल चलाना । निकालना । जैसे,—वह सवार बहुत अच्छा घोड़ा फेरता है । उ०—फेरहिं चतुर तुरंग गति नाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

फेरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेरना] फेरने का कार्य या स्थिति । उ०—आनँद घन सम सुंदर हेरनि । इत उत वह हेरनि, पट फेरनि ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७६ ।

फेर पलटा—संज्ञा पुं० [हिं० फेर + पलटा] गौना । द्विरागमन ।

फेरफार—संज्ञा पुं० [हिं० फेर] १. परिवर्तन । उलट फेर । उलट पलट । जैसे,—इसमें इधर बहुत फेरफार हुआ है । २. अंतर । बीच । फर्क । ३. टालमटूल । बहाना । उ०—भानु सो पढ़न हनुमान गयो भानु मन अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो ।—तुलसी (शब्द०) । ४. घुमाव फिराव । पेंच । चक्कर जैसे, फेरफार की बात ।

फेर बदल—संज्ञा पुं० [हिं० फेर + अ० बदल] परिवर्तन ।

फेरव[1]—वि० [सं०] १. धूर्त । कपटी । चालबाज । २. हिंस्र । दुःख पहुँचानेवाला ।

फेरव[2]—संज्ञा पुं० १. शृगाल । गीदड़ । २. राक्षस ।

फेरवट—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेरना] १. फिरने का भाव । २. लपेटने में एक एक वार का घुमाव । फेरा । ३. घुमाव फिराव । पेच । चक्कर जैसे, फेरवट की बात । ४. फेरफार । अंतर । फर्क ।† ५. दे० 'फेरौरी' ।

फेरवा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० फेरना] सोने का वह छल्ला जो तार को दो तीन बार लपेटकर बनाया जाता है । लपेटुआ ।

फेरवा[2]—संज्ञा पुं० दे० 'फेरा'

फेरा—संज्ञा पुं० [हिं० फेरना] १. किसी स्थान या वस्तु के चारों ओर गमन । परिक्रमण । चक्कर । जैसे,—वह ताल के चारो ओर फेरा लगा रहा है । उ०—चारि खान में भरमता कबहुँ न लगता पार । सो फेरा सब मिट गया सतगुरु के उपकार ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

२. लपेटने में एक बार का घुमाव । लपेट । मोड़ । बल । जैसे,—कई फेरे देकर तागा लपेटा गया है ।

क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—लगाना ।

४. इधर उधर से आगमन । घूमते फिरते आ जाना या जा पहुँचना । जैसे,—वे कभी तो मेरे यहाँ फेरा करेंगे । उ०—(क) पींजर महँ जो परेवा घेरा । आप मजार कीन्ह तहँ फेरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहु करत न फेरो ।—तुलसी (शब्द०) । ५. लौटकर फिर आना । पलटकर आना । जैसे,—इस समय तो जा रहा हूँ, फिर कभी फेरा करूँगा । उ०—कहा भयो जो देश द्वारका कीन्हों जाय बसेरो । आपुन ही या ब्रज के कारन करिहैं फिरि फिरि फेरो ।—सूर (शब्द०) । ६. आवर्त । घेरा । मंडल । †७. भिक्षा माँगना ।

फेराफेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेरना] हेराफेरी । इधर का उधर । क्रमपरिवर्तन । उलट ।

फेरि(पु)‡—अव्य० [हिं० फिर] । पुनः । दुबारा ।—उ०—दास इते पर फेरि बुलावत यों अब आवत मेरी बलैया ।—दास (शब्द०) ।

मुहा०—फेरि फेरि = बार बार । उ०—हरे हरे हेरि हेरि हँसि हँसि फेरि फेरि कहत कहा नीकी लगत ।—देव (शब्द०) ।

फेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेरना] १. दे० 'फेरा' । २. दे० 'फेर' । ३. परिक्रमा । प्रदक्षिणा । भाँवरी । जैसे—सोमवती की फेरी ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।—देना ।

मुहा०—फेरी पड़ना = भाँवर होना । विवाह के समय वर कन्या का साथ साथ मंडपस्तंभ, अग्नि की परिक्रमा करना ।

४. योगी या फकीर का किसी बस्ती में भिक्षा के लिये बराबर आना । उ०—(क) आशा को ईंधन करूँ मनसा करूँ भभूत । जोगी फिरि फेरी करूँ यों बनि आवै सूत ।—कबीर (शब्द०) । (ख) रूप नगर दृग जोगिया फिरत सो फेरी देत । छवि मनि पावत हैं जहाँ पल झोरी भरि लेत ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

५. कई बार आना जाना । चक्कर । उ०—न्योते गए नँदलाल कहूँ सुनि बाल बिहाल वियोग की घेरी । कतर कौनहूँ कै

पद्माकर दै फिरि कुंजगलीन मे फेरी।—पद्माकर (शब्द०)। ६. किसी वस्तु को बेचने के लिये उसे लादकर गाँव गाँव गली गली घूमना। भाँवरी। ७. वह चरखी जिसपर रस्सी पर ऍंठन चढ़ाई जाती है।

फेरीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० फेरी+वाला] घूम घूमकर सौदा बेचनेवाला व्यापारी।

फेरु—संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़।

फेरुआ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फेरवा'।

फेरौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेरना] टूटे फूटे खपरैलों को छाजन से निकालकर उनके स्थान में नए नए खपरैल रखने की क्रिया।

फेल¹—संज्ञा पुं० [अ० फ़ेल] कर्म। काम। कार्य। जैसे, बदफेल, बुरा फेल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

फेल²—वि० [अं० फ़ेल] अकृतकार्य। जिसे कार्य में सफलता न हुई हो। असफल। जैसे, इम्तहान में फेल होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

फेल³—संज्ञा पुं० [सं०] जूठा अन्न। उच्छिष्ट [को०]।

फेल⁴—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे बेपार भी कहते हैं। वि० दे० 'बेपार'।

फेलक—संज्ञा पुं० [सं०] खाकर छोड़ा हुआ अन्न आदि। उच्छिष्ट [को०]।

फेला, फेलि, फेलिका, फेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'फेलक' [को०]।

फेलुक—संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोष। वृषण। मुष्क [को०]।

फेलो—संज्ञा पुं० [अं० फ़ेलो] सभासद। सभ्य। जैसे, विश्वविद्यालय का फेलो।

फेल्ट—संज्ञा पुं० [अं० फ़ेल्ट] नमदा। जमाया हुआ ऊन। जैसे, फेल्ट की टोपी।

फेस—संज्ञा पुं० [अं० फ़ेस] १. चेहरा। मुँह। २. सामना। ३. टाइप का वह ऊपरी भाग जो छपने पर उभरता है। ४. घड़ी का सामने का भाग जिसपर सूई और अंक रहते हैं।

फेसना(पु)†—क्रि० स० [सं० पेषण] दे० 'पीसना'। उ०—सुलेमान जमसेद मूँ, फेस गयो जम फाक।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४४।

फेहरिस्त—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़िहरिस्त] दे० 'फिहरिस्त'।

फैंसी—वि० [अं० फैन्सी] १. देखने में सुंदर। अच्छी काट छाँट या रंगढंग का। रूपरंग में मनोहर। जैसे, फैंसी छाता, फैंसी धोती। २. दिखाऊ। जो ऊपर से देखने में सुंदर पर टिकाऊ न हो। तड़क भड़क का।

फैंट, फैंटा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फेंटा'। उ०—(क) आतुर न होहु हाहा नेकु फैंट छोरि बैठो मोहि वा बिसासी को है ब्योरो बूझिबो घनो।—रसखान, पृ० ४६। (ख) कठ फूल बागो, फैंटा फूल फूल गाछी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७६।

फैकल्टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] विश्वविद्यालय के अंतर्गत किसी विद्या या शास्त्र के पंडितों और आचार्यों का समाज या मंडल। विद्वत्समिति। विद्वन्मंडल। जैसे, फैकल्टी आफ ला। फैकल्टी आफ मेडिसिन, फैकल्टी आफ सायन्स।

फैक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़ैक्टरी] कारखाना।

फैज—संज्ञा पुं० [अ० फ़ैज़] १. वृद्धि। लाभ। २. फल। परिणाम।

मुहा०—अपने फैज को पहुँचना = अपने कर्म का उचित फल पाना।

फैदम—संज्ञा पुं० [अं० फ़ैदम] गहराई की एक नाप जो छह फुट की होती है। पुरसा।

फैन¹—संज्ञा पुं० [अं० फ़ैन] पंखा। जैसे, इलेक्ट्रिक फैन।

फैन†²—संज्ञा पुं० [सं० फण] दे० 'फण'। उ०—सो अपने बिले तें वह बाहिर निकरि के फैन नँवाय कै श्री गुसाईं जी को दंडवत कियो।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० २६५।

फैन(पु)†³—संज्ञा पुं० [सं० फेन] दे० 'फेन'। उ०—दुग्ध फैन सम सैन रमा मनो ऐन सुहाई।—नंद ग्रं०, पृ० २०४।

फैमिली—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़ैमिली] परिवार। उ०—फैमिली के साथ होंगे?—संन्यासी, पृ० १७२।

फैयाज—वि० [अ० फ़ैयाज़] उदार।

फैयाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ैयाज़+फ़ा० ई (प्रत्य०)] उदारता उ०—यह क्षण हमें मिला है नहीं नगर सेठों की फैयाजी से।—हरी घास०, पृ० ६२।

फैर†—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़ायर] बंदूक, तोप आदि हथियारों का दगना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

फैल(पु)¹†—संज्ञा पुं० [अ० फ़ेल] काम। कार्य। उ०—शैल तजि बैल तजि फैन तजि गैलन में, हेरत उमा को यों उमापति हितै रहे।—पद्माकर (शब्द०)। २. क्रीड़ा। खेल। ३. नखरा। मकर।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

फैल(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसृत, वा प्रहित, प्रा० पयल्ल] १. फैला हुआ। २. विस्तृत। लंबा चौड़ा। ३. फैलाव। विस्तार।

फैलाना—क्रि० अ० [सं० प्रहित वा प्रसृत, प्रा० पयल्ल+हिं० ना (प्रत्य०)] १. लगातार स्थान घेरना। यहाँ से वहाँ तक बराबर रहना। जैसे,—जंगल नदी के किनारे से पहाड़ तक फैला है।

संयो० क्रि०—जाना।

२. अधिक स्थान छेंकना। ज्यादा जगह घेरना। अधिक व्यापक होना। विस्तृत होना। पसरना। संकुचित या थोड़े स्थान में न रहना। अधिक बड़ा या लंबा चौड़ा होना। इधर उधर बढ़ जाना। जैसे—(क) खूब फैलकर बैठना। (ख) गरमी पाकर लोहा फैल जाता है। उ०—पाँव धरै जित ही

वह बाल तही रँग लाल गुलाल सो फैलै ।—शंभु (शब्द०) ३. मोटा होना । स्थूल होना । मोटाना । जैसे,—उसका बदन फैल रहा है । ४. आवृत करना । छाना । व्यापक होना । भरना । व्यापना । दूर तक रखा या पड़ा रहना । जैसे, धूल फैलना, जाल फैलना । उ०—फूलि रहे, फलि रहे, फैलि रहे, फबि रहे, झपि रहे, झलि रहे, झुकि रहे, झूमि रहे ।—पद्माकर (शब्द०) । ५. संख्या बढ़ना । बढती होना । वृद्धि होना । जैसे, कारबार फैलना । उ०—फले फूले फेले खल, सीदे साधु पल पल, बाती दीप मालिका ठठाइयत सूप है —तुलसी (शब्द०) । ६. इकट्ठा न रहना । छितराना । बिखरना । अलग अलग दूर तक इधर उधर पड़ा रहना । जैसे, —(क) हाथ से गिरते ही माला के दाने इधर उधर फैल गए । (ख) सिपाहियों को देखते ही डाकू इधर उधर फैल गए । ७. किसी छेद या गड्ढे का और बड़ा हो जाना या बढ जाना । अधिक खुलना । जैसे, मुँह फैलना । ८. मुड़ा न रहना । पूरा तनकर किसी ओर बढ़ना । जैसे,—फाड़े के तनाव से हाथ फैलता नहीं है । ६. प्रचार पाना । चारो ओर पाया जाना या होना । क्रमशः बहुत से स्थानों में विद्यमान होना या मिलना । बहुतायत से मिलना । जैसे,—आंदोलन फैलना, बीमारी फैलना, प्लेग फैलना । गोभी अभी फैली नहीं है । १०. इधर उधर दूर तक पहुँचना । जैसे, सुगंध फैलना, स्याही फैलना, खबर फैलना । ११. प्रसिद्ध होना । बहुत दूर तक ज्ञात या विदित होना । मशहूर होना । जैसे, यश फैलना, नाम फैलना, बात फैलना । उ०—(क) राव रतनसेन के कुमार को सुजस फैलि रह्यो पुहुमी मे ज्यों प्रवाह गंगा पथ को ।—मतिराम (शब्द०) । (ख) अब तो बात फैलि गई जानत सब कोई ।—गीत (शब्द०) । १२. आग्रह करना । हठ करना । जिद करना । १३. भाग का ठीक ठीक लग जाना । तकसीम दुरुस्त उतरना ।

फ़ैलसूफ—संज्ञा पुं० [यू० फिलसफ (=दार्शनिक)] १. फिजूल खर्च । २. ज्ञानी । विद्वान् । ३. धूर्त । मक्कार (को०) ।

फ़ैलसूफी—संज्ञा स्त्री [हिं० फ़ैलसूफ] १. फिजूल खर्ची । २. ज्ञान । विद्वत्ता (को०) । ३. धूर्तता । मक्कारी (को०) ।

फैलाना—क्रि० स० [हिं० फैलना] १. लगातार स्थान घिरवाना । यहाँ से वहाँ तक बराबर बिछाना, रखना या ले जाना । जैसे,—उसने अपना हाता नदी के किनारे तक फैला लिया है ।

संयो० क्रि०—देना । डालना ।—लेना ।

२. अधिक स्थान घिरवाना । विस्तृत करना । पसारना । विस्तार बढ़ाना । अधिक बड़ा या लंबा चौड़ा करना । इधर उधर बढ़ाना । जैसे, तार फैलाना, आटे की लोई फैलाना । ३. संकुचित न रखना । सिमटा हुआ, लपेटा हुआ या तह किया हुआ न रखना । पसारना । जैसे, सूखने के लिये कपड़ा फैलाना । उड़ने के लिये पर फैलाना । ४. व्यापक करना । छा देना । भर देना । दूर तक रखना या स्थापित करना । जैसे,—(क) यहाँ क्यों कूड़ा फैला रखा है । (ख) चिड़ियों को फँसाने के लिये जाल फैलाना । ५. इकट्ठा न रहने देना । बिखेरना । अलग अलग दूर तक कर देना । जैसे,—बच्चे के हाथ में बताशे मत दो, इधर उधर फैलाएगा । ६. बढाना । बढ़ती करना । वृद्धि करना । जैसे, कारबार फैलाना । ७. किसी छेद या गड्ढे को और बडा करना या बढाना । अधिक खोलना । जैसे, मुँह फैलाना, छेद फैलाना । ८. मुड़ा न रखना । पूरा तानकर किसी ओर बढ़ाना । जैसे,—(क) हाथ फैलाओ तो दें । (ख) पैर फैलाकर सोना । ६ प्रचलित करना । किसी वस्तु या बात को इस स्थिति में करना कि वह जनता के बीच पाई जाय । इधर उधर विद्यमान करना । जारी करना । जैसे, विद्रोह फैलाना, बीमारी फैलाना । उ०—राज काज दरबार में फैलावहु यह रत्न ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । १०. इधर उधर दूर तक पहुँचाना । जैसे,—सुगंध फैलाना, स्याही फैलाना । ११. प्रसिद्ध करना । बहुत दूर तक ज्ञात या विदित कराना । चारो ओर प्रकट करना । जैसे, यश फैलाना, नाम फैलाना । १२. आयोजन करना । विस्तृत विधान करना । धूमधाम से कोई बात खड़ी करना । जैसे ढग फैलाना, ढोंग फैलाना, आडंबर फैलाना । १३. गणित की क्रिया का विस्तार करना । १४. हिसाब किताब करना । लेखा लगाना । विधि लगाना । जैसे, ब्याज फैलाना, हिसाब फैलाना, पड़ता फैलाना । १५. गुणा भाग के ठीक होने की परीक्षा करना । वह क्रिया करना जिससे गुणा या भाग के ठीक होने या न ठीक होने का पता चल जाय ।

फैलाव—संज्ञा स्त्री० [हिं० फैलाना] १. विस्तार । प्रसार । २. लबाई चौड़ाई । ३. प्रचार ।

फैलावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० फैला+वट (प्रत्य०)] दे० 'फैलाव' । उ०—देखती हूँ कि सामने सिर्फ फैलावट है, फैलावट । —सुखदा, पृ० १० ।

फैशन—संज्ञा पुं० [अं० फ़ेशन] १. ढंग । धज । तर्ज । वजह् । चाल । उ०—(क) फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि बंटाधार कर दिया ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७६ । २. रीति । प्रथा । चलन । उ०—केवल प्रेम और भ्रातृभाव के प्रदर्शन और आचरण में ही काव्य का उत्कर्ष मानने का जो एक नया फैशन टालसटाय के समय से चला है वह एकदेशीय है ।—रस०, पृ० ६४ ।

यौ०—फैशनपरस्त । फैशनपरस्ती । फैशनबाज । फैशनबाजी ।

फैसल—संज्ञा पुं० [अ० फ़ैसल] दे० 'फैसला' ।

फैसला—संज्ञा पुं० [अ० फ़ैसलह्] १. वादी प्रतिवादी के बीच उपस्थित विवाद का निर्णय । दो पक्षों में किसकी बात ठीक है इसका निबटेरा । २. किसी व्यवहार या अभियोग के संबंध में न्यायालय की व्यवस्था । किसी मुकदमे में अदालत की आखिरी राय ।

क्रि० प्र०—करना ।—सुनाना ।—होना ।

फैसिज्म—संज्ञा पुं० [अं० फासिज्म] दे० 'फासिज्म'।

फोँक[1]—संज्ञा पुं० [सं० पुङ्ख] तीर के पीछे की नोक जिसके पास पर लगाए जाते हैं और जिसे रोदे पर चढ़ाकर चलाते हैं। इस नोक पर गड्ढा या खड्डी बनी रहती है जिसमें धनुष की डोरी बैठ जाती है। उ०—(क) परिमल लुब्ध मधुप जहँ बैठत उड़ि न सकत तेहि ठाँते। मनहुँ मदन के हैं शर पाए फाँक बाहरी घातें।—सूर (शब्द०)। (ख) शोभन सिंगार रस की सी छीट सोहे फाँक कामशर की सी कहो युगतिनि जोरि जोरि।—केशव (शब्द०)। (ग) समर मे अरि गज-कुभन मे हनो तीर फोक लो समात वीर ऐसो तेजधारी है।—गुमान (शब्द०)। (घ) वान करोर एक मुँह छूटहि। बाजहि जहाँ फोक लहि फूटहि।—जायसी (शब्द०)।

फोँक[2]— वि० [देश०] दलालो की बोली में 'चार'।

फोँकलाय—वि० [देश०] चौदह। (दलाल)।

फोँका—संज्ञा पुं० [सं० पुङ्ख या हिं० फुँकना] १. लंबा और पोला चोंगा। फोफी। २. मटर आदि पोली डंठलवाले शस्यों की फुनगी। ३. दे० 'फुका'।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।—देना।—करना।—

४. दे० 'सरफोका'

फोँका गोला—संज्ञा पुं० [हिं० फोंक+गोला] तोप का लंबा गोला।

फोँदना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० फुँदना] फुँदना। उ०—ता पर कलसा फूलनि के फोदना विराजें।—छीत०, पृ० २७।

फोँदा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुँदना', 'फूँदना'। गावत मलार सुराग रागिनी गिरिधरन लाल छवि सोहनो। पंच रँग बरन बरन पाटहि पवित्रा विच विच फोंदा गोहनो।—सूर (शब्द०)।

फोँफर†—वि० [अनु०] १. पोला। सावकाश। २. फोक। नि.सार। खोख।

फोँफी†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. गोल लंबी नली। छोटा चोगा। २. बाँस की नली जिससे सोनार, लोहार आदि आग धौकते हैं। ३. नाक में पहनने की पोली कील। छुँदी।

फोँक[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्फोट वा सं० वल्कल, हिं० बोकला, फोकला] १. सार निकल जाने पर बचा हुआ अंश। वह वस्तु जिसका रस या सत निकाल लिया गया हो। सीठी। २. भूसी। तुष। वह वस्तु जिसमें छिलका ही छिलका रह गया हो, असल चीज निकल गई हो। ३. बिना स्वाद की वस्तु। फीकी या नीरस चीज।

फोक[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक तृण जिसका साग बनाकर लोग खाते हैं। सूक्ष्मपुष्पी।

विशेष—यह मारवाड की ओर होता है तथा रेचक और ठंढा माना जाता है। वैद्यक मे यह रक्तपित्त और कफ का नाशक कहा गया है।

फोकट—वि० [हिं० फोक] तुच्छ। जिसका कुछ मूल्य न हो। निःसार। व्यर्थ। उ०—(क) खल प्रबोध जग सोध मन को निरोध कुल सोध। करहि ते फोकट पचि मरहिं सपनेहु सुख न सुबोध।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ सब लागत फोकट झूँठ जटो।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जोरत ये नाते नेह फोकट फीको। देह के दाहक गाहक जी को।—तुलसी (शब्द०)। (घ) करम कलाप परिताप पाप साने सब ज्यों सुफूल फले रूख फोकट फरनि। दंभ लोभ लालच उपासना बिनासिनी के सुगति साधन भई उदर भरनि।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—फोकट का=(१) बिना परिश्रम का। (२) बिना मूल्य का। मुफ्त। जैसे,—क्या यह फोकट का है जो यों ही दे दें। फोकट मे=बिना श्रम और और व्यय के। मुफ्त में। यों ही।

फोकरा(पु)—वि० [हिं० फोक] बेकार। निस्सार। तुच्छ। उ०—जो कोई गाहक लेत प्यार नीं ताको भागे सोकरा। सुंदर वस्तु सत्य यह यों ही और बात सब फोकरा।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१४।

फोकला†—संज्ञा पुं० [सं० वल्कल, हिं० बोकला] [स्त्री० फोकलाई] किसी फल आदि के ऊपर का छिलका।

फोकलाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्कल, हिं० फोकला] छिलका या निस्सार वस्तु। उ०—जैसी भाँति काठ घुन लागै बहुरी रहै फोकलाई।—मलूक० बानी, पृ० १६।

फोकस—संज्ञा पुं० [अं० फोकस] १. वह बिंदु जहाँपर प्रकाश की छितराई हुई किरनें एकत्र हों। इस बिंदु पर ताप और प्रकाश की मात्रा अधिक हो जाती है जैसे उन्नतोदर वा आतशी शीशे में दिखाई पड़ता है। २. फोटो लेने के लिये लेंस द्वारा उस वस्तु की छाया को, जिसका छायाचित्र लेना है, नियत स्थान पर स्थित रूप से लाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—लेना।

फोग(पु)—संज्ञा, पुं० [देश०] एक प्रकार का क्षुप। एक पौधा। दे० 'फोक[2]'। उ०—(क) करहा नीरूँ जउ चरइ, कटालउ नइ फोग। नागर वेलि किहाँ लहइ, थारा थोबड़ जोग।—ढोला०, दू० ४२८। (ख) फोग केर काचर फली, पापड़ गेघर पात।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६७।

फोगट(पु)—वि० [हिं० फोकट] दे० 'फोकट'। उ०—घडियंक करे प्रभु दिस घूम लिखमण दिस घरे। फोगट दुहुँ घोड़ा फेर चकी जिम फिरे।—रघु० रू०, पृ० १२८।

फोट—संज्ञा पुं० [सं० स्फोट] दे० 'स्फोट'।

फोटक—वि० [हिं०] दे० 'फोकट'।

फोटा†—संज्ञा पुं० [?] टीका। बिंदी।

फोटो—संज्ञा पुं० [अं० फ़ोटो] फोटोग्राफी के यंत्र द्वारा उतारा हुआ चित्र। छायाचित्र। प्रतिबिंब।

क्रि० प्र०—उतारना।—खींचना।

मुहा०—फोटो लेना = फोटोग्राफी के यंत्र द्वारा किसी का फोटो या छायाचित्र खीचना।

फोटोग्राफ—संज्ञा पुं० [अ० फोटोग्राफ़] फोटो। छायाचित्र। दे० 'फोटो'।

फोटोग्राफर—संज्ञा पुं० [अं० फोटोग्राफर] फोटोग्राफी का काम करनेवाला।

फोटोग्राफी—संज्ञा स्त्री० [अं० फ़ोटोग्राफ़ी] प्रकाश की किरनों द्वारा रासायनिक पदार्थों में उत्पन्न कुछ परिवर्तनों के सहारे वस्तुओं की आकृति या प्रतिकृति उतारने की क्रिया। प्रकाश की सहायता से चित्र उतारने की कला या युक्ति।

विशेष—यह काम संदूक के आकार के एक यंत्र के सहारे से किया जाता है जिसे 'कैमरा' कहते हैं। इसके आगे की ओर बीच में गोल लंबा चोंगा सा निकला रहता है जिसमें एक गोल उन्नतोदर शीशा लगा रहता है जिसे लेंस कहते हैं। दूसरी ओर एक शीशा और एक किवाड़ होता है जो खटके से खुलता और वंद होता है। केमरे के बीच का भाग भाथी की तरह होता है जो यथेच्छ घटाया और बढ़ाया जा सकता है। लेंस के सामने चोंगे के वंद करने का ढक्कन होता है। केमरे के भीतर अँधेरा रहता है और उसमे सिवाय आगे के लेंस की ओर से और किसी ओर से प्रकाश आने का मार्ग नहीं होता है। जिस वस्तु की प्रतिकृति लेनी होती है वह सामने ऐसे स्थान पर होती है जहाँ उसपर सूर्य का प्रकाश अच्छे प्रकार पड़ता हो। उसके सामने कुछ दूर पर केमरे का मुँह उसकी ओर करके रखते हैं। फिर लेंस का ढक्कन खोलकर चित्र लेनेवाला दूसरी ओर के द्वार को खोलकर सिर पर काला कपड़ा (जिसमें कहीं से प्रकाश न आवे) डालकर देखता है कि उस वस्तु की प्रतिकृति ठीक दिखाई देती है कि नहीं। इसे फोकस लेना कहते हैं। इसके वाद लेंस के सामने के ढक्कन को फिर वंद कर देते हैं और दूसरी ओर लकड़ी के वंद चौकठे में रखे प्लेट को, जिसमें रासायनिक पदार्थ लगे रहते हैं, बड़ी सावधानी से, जिसमें प्रकाश उसे स्पर्श न करने पाए लगा देते हैं, फिर लेंस के मुँह को थोड़ी देर के लिये खोल देते हैं जिसमे प्लेट पर उस पदार्थ की छाया अंकित हो जाय। ढक्कन फिर वद कर दिया जाता है और अंकित प्लेट बड़ी सावधानी से वद चौखटे मे बद करके रख दिया जाता है। उस प्लेट को अँधेरी कोठरी मे ले जाकर लाल लालटेन के प्रकाश में रासायनिक मिश्रणों मे कई बार डुबाते हैं और अंत में फिटकरी के पानी मे डालकर ठंढे पानी की धार उसपर गिराते हैं। इस क्रिया से प्लेट काले रंग का हो जाता है और उसपर पदार्थ अंकित दिखाई पड़ने लगता है, इसे निगेटिव कहते हैं। इसी निगेटिव पर रासायनिक पदार्थ लगे हुए कागज के टुकड़ों को अँधेरी कोठरी के भीतर सटाकर प्रकाश दिखाते और रासायनिक मिश्रणों में धोते हैं। इस प्रकार कागज पर प्रतिकृति अंकित हो जाती है। इसी को फोटो कहते हैं।

प्रकाश के प्रभाव से वस्तुओं के रंगों में परिवर्तन होता है। इस बात का कुछ कुछ ज्ञान लोगों को पहले से था। चमड़ा सिझाते समय सूर्य का प्रकाश पाकर चमड़े का रंग वदलता हुआ बहुत से लोग देखते थे। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इटली के एक मनुष्य को, जिसका नाम पोर्टो था, वृक्ष के सघन पत्तों में से होकर सूर्य की किरणों का प्रकाश छनते देखकर उत्सुकता हुई। उसने अपने घर की कोठरी की दीवार मे एक छोटा सा छेद किया। फिर बाहर की ओर दीपक जलाकर दूसरी ओर एक पदार्थ टाँगकर परीक्षा करने लगा। दीपशिखा उसे पर्दे पर उलटी लटकी दिखाई पड़ी। वह इस प्रकार दूसरे पदार्थों की प्रतिकृतियाँ भी पर्दे पर लाने का यत्न करने लगा। सुबीते के लिये उसने एक नतोदर शीशा उस छेद मे लगा दिया। उसी समय फ्रांस देश के एक और वैज्ञानिक ने परीक्षा करके नाइट्रेट आफ सिलवर नामक रासायनिक मिश्रण बनाया जो यद्यपि सफेद होता है तथापि सूर्य की किरन पड़ते ही धीरे धीरे काला होने लगता है। सन् १७२० मे स्विट्जरलैंड के एक विद्वान् चार्ल्स ने अँधेरी कोठरी में नाइट्रेट आफ सिलवर के सहारे से चित्र बनाने की चेष्टा की। चित्र तो खिंच गया पर स्थायी न हो सका। बहुत से वैज्ञानिक चित्र को स्थायी करने की चेष्टा करते रहे। अंत को सौ वरस पीछे, एमन्योपस नामक एक वैज्ञानिक की सहायता से डगर साहेब ने पारे के रासायनिक मिश्रण द्वारा चित्र को स्थायी करने में सफलता प्राप्त की। डगर ने चित्र को पहले 'पोटास ब्रोमाइड' मे ?बा डुबाकर देखा पर अंत में उसे 'हाइपो सल्फाइट सोडा' द्वारा पूरी सफलता हुई। इसी समय एक अंग्रेज ने गैलिक एसिड और नाइट्रेट आफ सिलवर की सहायता से कागज पर चित्र छापने की विधि निकाली। धीरे धीरे यह विद्या उन्नति करती गई और सन् १८५० में प्लेट पर चित्र लिए जाने लगे। १८७२ में डा० मैडाक्स ने जेलेटीन की सहायता से प्लेट बनाने की प्रथा जारी की जो उत्तरोत्तर उन्नत होकर अबतक प्रचलित है। अब आर्द्र प्लेट का बहुत कम व्यवहार होता है, प्रायः सब जगह शुष्क प्लेट काम में लाया जाता है।

फोड़ना—क्रि० स० [सं० स्फोटन, प्रा० फोडन] १. खरी या करारी वस्तुओं को दबाव या आघात द्वारा तोड़ना। खरी वस्तुओं को खंड खंड करना। दरकाना। भग्न करना। विदीर्ण करना। जैसे, (क) घड़ा फोड़ना, चने फोड़ना, बरतन फोड़ना, चिमनी फोड़ना, पत्थर फोड़ना। (ख) अकेला चना भाड नहीं फोड़ सकता।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—तोड़ना फोड़ना।

मुहा०—उँगलियाँ फोड़ना = उँगलियों को खींच या मोड़कर उनके जोड़ों को खटखट बुलाना। उँगलियाँ चटकाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग खरी या करारी वस्तुओं के लिये होता है, चमड़े, लकड़ी आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये नहीं।

२. ऐसी वस्तुओं को आघात या दबाव से विदीर्ण करना जिनके भीतर या तो पोला हो अथवा मुलायम या पतली चीज भरी

हो। जैसे, कटहल फोड़ना, फोड़ा फोडना, सिर फोड़ना। उ०—सूर रहै रस अधिक कहे नहिं गूलर को सो फल फोरे। —सूर (शब्द०)।

मुहा०—आँख फोड़ना = आँख नष्ट करना। आँख को ऐसा कर डालना कि उससे दिखाई न दे।

३. केवल आघात या दबाव से भेदन करना। धक्के से दरार डालकर उस पार निकल जाना। जैसे,—(क) पानी बाँध फोड़कर निकल गया। (ख) गोली दीवार फोड़कर निकल गई। उ०—(क) पाहन फोरि गंग इक निकली चहुँ दिसि पानी पानी। तेहि पानी दुइ परवत बूड़े दरिया लहर समानी —कबीर (शब्द०)। (ख) ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो बिलोकि जाय। गेह चूरि ज्यों चकोर चंद्र में मिल्यो उड़ाय। —केशव (शब्द०)।

विशेष—किसी धारदार वस्तु (तलवार, तीर, भाला) के चुभ या धँसकर उस पार होने को फोड़ना नहीं कहेंगे।

४. शरीर में ऐसा विकार या दोष उत्पन्न करना जिससे स्थान स्थान पर घाव या फोड़े हो जायँ। जैसे,—पारा कभी मत खाना, शरीर फोड़ देगा। ५. जुड़ी हुई वस्तु के रूप में निकालना। अवयव, जोड़ या वृद्धि के रूप में प्रकट करना। अंकुर, कनखे, शाखा आदि निकालना। जैसे, पौधे का कनखे या शाखा फोड़ना। ६. शाखा के रूप में अलग होकर किसी सीध में जाना। जैसे,—नदी कई शाखाएँ फोड़कर समुद्र में मिली है। ७. पक्ष छुड़ाना। एक पक्ष से अलग करके दूसरे पक्ष में कर लेना। जैसे,—उसने हमारे दो गवाह फोड़ लिए। ८. साथ छुड़ाना। संग में न रहने देना। जैसे,—हम लोग साथ ही साथ चले थे तुम इन्हें कहाँ फोड़कर ले चले? ९. भेदभाव उत्पन्न करना। मैत्री या मेल जोल से अलग कर देना। फूट डालकर अलग करना। १०. गुप्त बात सहसा प्रकट कर देना। एकबारगी भेद खोलना। जैसे, बात फोड़ना, भंडा फोड़ना।

फोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्फोटक वा पिडिका, प्रा० फोड] [स्त्री० फोड़िया] एक प्रकार का शोथ या उभार जो शरीर में कहीं पर कोई दोष संचित होने से उत्पन्न होता है तथा जिसमें जलन और पीड़ा होती है तथा रक्त सड़कर पीब के रूप में हो जाता है। व्रण। आपसे आप होनेवाला उभरा हुआ घाव।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार व्रण या घाव दो प्रकार के होते हैं—शारीर और आगंतुक। चरक संहिता में भी निज और आगंतुक ये दो भेद कहे गए हैं। शारीर वा निज व्रण वह घाव है जो शरीर में आपसे आप भीतरी दोष के कारण उत्पन्न होता है। इसी को फोड़ा कहते हैं। वैद्यक के अनुसार वात, पित्त, कफ या सन्निपात के दोष से ही शरीर के किसी स्थान पर शारीर व्रण या फोड़ा होता है। दोषों के अनुसार व्रण के भी वातज, पित्तज, कफज तीन भेद किए गए हैं। वातज व्रण कड़ा या खुरखुरा, कृष्णवर्ण, अल्पस्रावयुक्त होता है और उसमें सूई चुभने की पीड़ा होती है। पित्तज व्रण बहुत दुर्गंधयुक्त होता है और उसमें दाह, प्यास और पसीने के साथ ज्वर भी होता है। कफज व्रण पीलापन लिए गीला, चिपचिपा और कम पीडावाला होता है।

फोड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० फोड़ा, वा सं० पीडिका] छोटा फोड़ा। फुनसी।

फोत†—वि० [अ० फ़ौत] खतम। समाप्त। उ०—इन लोगों की दिल्लगी में मेरा मतलब फोत हुआ जाता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ४७।

फोता—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ोतह्] १. पटुका। कमरबंद। २. पगड़ी। सिरबंद। ३. वह रुपया जो प्रजा उस भूमि या वित्त के लिये जो उसके अधिकार या जोत में हो, राजा या जिमीदार को दे। पोत। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै। मन्मथ करै कैद अपनी में जान जहतिया लावै। माँड़ि माँड़ि खलिहान क्रोध को फोता भजन भरावै।—सूर (शब्द०)। ४. थैली। कोष। थैला। ५. अंडकोश।

फोतेदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ोतह् दार] १. खजाची। कोषाध्यक्ष। २. तहबीलदार। रोकड़िया।

फोन—संज्ञा पुं० [अं० टेलिफ़ोन का संक्षिप्त रूप] दे० 'टेलिफोन'। उ०—रेडियो, तार औ फोन, वाष्प, जल, वायुयान। मिट गया दिशावधि का जिनसे व्यवधान मान।—ग्राम्या, पृ० ८८।

फोनोग्राफ—संज्ञा पुं० [अं० फ़ोनोग्राफ़] एक यंत्र जिसमें पूर्व में गाए हुए राग, कही हुई बातें और बजाए हुए बाजों के स्वर आदि चूड़ियों में भरे रहते हैं और ज्यों के त्यों सुनाई पड़ते हैं।

विशेष—यह संदूक के आकार का होता है। इसके भीतर चक्कर लगे रहते हैं जो चाबी देने से आपसे आप घूमने लगते हैं। इसके बीच में एक खूँटी या धुरी होती है जिसकी एक नोक संदूक के ऊपर बीच में निकली रहती है। यंत्र के दूसरे ओर किनारे पर एक परदा होता है जिसके छोर पर सूई लगी रहती है। इसी परदे पर बजाते समय एक चोंगा लगा दिया जाता है।

चूड़ियाँ जिनपर गीत, राग या कही हुई बातें अंकित रहती हैं रोटी के आकार की होती हैं। उनपर मध्य से आरंभ करके परिधि तक गई हुई महीन रेखाओं की कुंडलियाँ होती हैं। इन चूड़ियों में आवाज इस प्रकार अंकित की जाती या भरी जाती है—एक यंत्र होता है जिसके एक सिरे पर चोंगा और दूसरे सिरे पर सूई लगी रहती है। गाने, बजाने या बोलनेवाला चोंगे की ओर बैठकर गाता बजाता, या बोलता है। उस शब्द से वायु में लहरियाँ उत्पन्न होकर चोंगे के दूसरे सिरे पर की सूई को संचालित करती हैं। इसी समय चूड़ी भी घुमाई जाती है और उसपर बोले हुए शब्द, गाए हुए राग या बाजे की ध्वनि के कंपनचिह्न सूई द्वारा अंकित होते जाते हैं। जब फिर उसी प्रकार का शब्द सुनना होता है तब वही चूड़ी फोनोग्राफ में संदूक के बीच में निकली हुई कील में लगा दी जाती है और किनारे के परदे में लगी सूई चूड़ी की पहली या आरंभ की

रेखा पर लगा दी जाती है। कुंजी देने से भीतर के चक्कर घूमने लगते हैं जिससे चूड़ी कील के सहारे नाचती है और सूई लकीरों पर घूमकर चोंगे में उसी प्रकार के वायुतरंग उत्पन्न करती है जिस प्रकार कि चूड़ी में अंकित हुए थे। ये ही वायुतरंग उस कल में लगे हुए पुर्जों को हिलाते हैं जिससे चोंगे में से होकर चूड़ी में भरे हुए शब्दों या स्वरों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। यह ध्वनि कुछ धीमी होती है और धातु की झनझनाहट और सूई की खरखराहट के कारण कुछ दूषित हो जाती है। फिर भी सुननेवाले को पूर्व के शब्दों और स्वरों का बोध पूरा पूरा होता है। फोनोग्राफ में स्वरों का उच्चारण व्यंजनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है और व्यंजनों में 'स' और 'ज' का उच्चारण इतना अस्पष्ट होता है कि उनमे कम भेद जान पड़ता है। शेष व्यंजन कुछ स्पष्ट होने पर भी अपना बोध कराने के लिये पर्याप्त होते हैं। इस यंत्र के आविष्कारक अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ऐडिसन साहब थे।

फोनोटोग्राफ—संज्ञा पुं० [अं० फ़ोनोटोग्राफ़] एक यंत्र जिसके द्वारा बोलनेवाले के शब्दों से उत्पन्न वायुतरंगो का अंकन होता है।

विशेष—यह यंत्र एक पीपे के आकार का होता है। पीपे का एक मुँह तो बिलकुल खुला रहता है और दूसरी ओर कुछ यंत्र लगे रहते हैं। यंत्र में एक पतला परदा होता है जिसपर एक पतली सूई लगी रहती है। इसी सूई से शब्द द्वारा उत्पन्न वायुतरंगें चूड़ी पर अंकित होती हैं। वि० दे० 'फोनोग्राफ'।

फोपल—वि० [हिं० पोपला] जिस वस्तु का भीतरी हिस्सा बिलकुल खाली हो। जैसे, फोपला बाँस। उ०—केवल फोपल नाम बज्यो कछु बासहु नाही।—दीन० ग्रं०, पृ० ४६।

फोया—संज्ञा पुं० [सं० फाल (=रूई का)] फोह। फाहा। रूई का गाले का टुकड़ा। रूई का एक लच्छा।

फोरना(पु)†[1]—क्रि० स० [हिं० दे० 'फोड़ना']।

विशेष—इस शब्द के अन्य अर्थ और उदाहरण के लिये देखिए 'फोड़ना' शब्द।

फोरना(पु)[2]—क्रि० स० [सं० स्फुरण ?] हिलाना डुलाना। मथना। उ०—सुर असुर मिलि जल फोरयं। जै चवत चंद कविदयं।—पृ० रा०, २।१०६।

फोरमैन—संज्ञा पुं० [अं० फ़ोरमैन] कारखानों मे कारीगरों और काम करनेवालों का सरदार वा जमादार। जैसे, प्रेस का फोरमैन, लोहारखाने का फोरमैन।

फोर्ट—संज्ञा पुं० [अं० फ़ोर्ट] किला। दुर्ग।

फोलियो—संज्ञा पुं० [सं० फ़ोलियो] कागज के तख्ते का आधा भाग।

फोहरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फुहार'। उ०—हमरे देसवा बादर उमड़े, नान्ही परै फोहरिया।—धरम० श०, पृ० ३५।

फोहा—संज्ञा पुं० [सं० फाल (=रूई का)] रुई के गाले का छोटा टुकड़ा। फाहा।

फोहार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'फुहार] दे० 'फुहार'। उ०—जहँ फूलन की लागी फोहार। जहँ अनहद बाजै बहु प्रकार।—भक्ति प०, पृ० ४११।

फोहारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुहारा', 'फुहार'।

फौंदा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० फुंदा] फुँदना। उ०—फूलन के आभूषन, फूलन के बसन बिराजत, फूलन के फौंदा, फूलन के उरहार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८०।

फौआरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फुहारा'।

फौक(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० फोक] दे० 'फोक'[1]। उ०—नख फौकै मनि गन कलित ललित अँगुरी तीर। तो कर सोभा के सदन मानो मदन तुनीर।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

फौकना‡—क्रि० अ० [अनु०] डींग मारना। बढ़ चढ़कर बातें करना।

फौज—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ौज] १. झुंड। जत्था। २. सेना। लशकर। उ०—(क) सार वहै लोहा झरै टूटै जिरह जंजीर। अविनाशी की फौज मे माडी दास कबीर।—(शब्द०)। (ख) सुनि बल मोहन बैठि रहसि में कीनो कछू विचार। मागध मगध देश ते आयो साजे फौज अपार।—सूर (शब्द०)। (ग) हीं मारिहउँ भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेगाई।—तुलसी (शब्द०)।

फौजदार—संज्ञा पुं० [अ० फ़ौज + फ़ा० दार (प्रत्य०)] १. सेना का प्रधान। सेनापति। २. सेना का छोटा अफसर।

फौजदारी—संज्ञा स्त्री० [अ०फ़ौज + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] १. लड़ाई झगड़ा। मारपीट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. वह अदालत या न्यायालय जहाँ ऐसे मुकदमों का निर्णय होता है जिनमें अपराधी को दंड मिलता है। कंटकशोधन दंडनियम।

विशेष—कौटिल्य के अर्थशास्त्र में न्यायशासन के दो विभाग दिखाई पड़ते हैं—धर्मस्थीय और कंटकशोधन। कंटकशोधन अधिकरण में आजकल के फौजदारी के मामलों का विवरण है और धर्मस्थीय में दीवानी के। स्मृतियों में दंड और व्यवहार ये दो शब्द मिलते हैं।

फौजी—वि० [अ० फ़ौज + फ़ा० ई (प्रत्य०)] फौज संबंधी। सैनिक। जैसे, फौजी आदमी, फौजी कानून।

फौत—वि० [अ० फ़ौत] नष्ट। मृत। गत।

मुहा०—मतलब फौत होना=कार्य नष्ट होना।

फौती[1]—वि० [अ० फ़ौत] १. मृत्यु संबंधी। मृत्यु का। जैसे,—फौती रजिस्टर। २. मरा हुआ। मृत।

फौती[2]—संज्ञा स्त्री० १. मरने की क्रिया। मृत्यु। २. किसी के मरने की सूचना जो म्युनिसिपैल्टी आदि की चौकी पर लिखाई जाती है।

फौतीनामा—संज्ञा पुं० [अ० फ़ौत + फ़ा० नामह्] १. मृत व्यक्तियों के नाम और पते की सूची जो म्यूनिसिपैल्टियों आदि की चौकी पर तैयार की जाती है और म्यूनिसिपैल्टी

के प्रधान कार्यालय में भेजी जाती है। २. मृत सिपाही की मृत्यु की वह सूचना जो सेनाविभाग की ओर से उसके घर के लोगों के पास भेजी जाती है।

फौद—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ौज] दे० 'फौज'। उ०—(क) निस्सरिग्र फौद अणवरत, कत तत परिगणना पारके।—कीर्ति०, पृ० ८८। (ख) असी हजार फौद चलि आई। गढ़ि ढहाए सभ गर्द मिलाई।—संत० दरिया, पृ० ११।

फौरन—क्रि० वि० [अ० फ़ौरन्] तुरंत। तत्काल। चटपट।

फौरी—वि० [अ० फ़ौरी] तात्कालिक। जल्दी का [को०]।

फौलाद—संज्ञा पुं० [फ़ा० पोलाद] एक प्रकार का कड़ा और अच्छा लोहा जिसके हथियार बनाए जाते हैं। खेड़ी।

फौलादी[1]—वि० [फ़ा० फौलादी] १. फौलाद का बना हुआ। जैसे, फौलादी जिरह। २. दृढ। कठिन। मजबूत। जैसे, फौलादी बदन।

फौलादी[2]—संज्ञा स्त्री० वल्लम की छड़। भाले की लकड़ी।

फौवारा—संज्ञा पुं० [अ० फौआरह्] दे० 'फुहारा'।

फ्याहुर—संज्ञा पुं० [सं० फेरु] गीदड़। शृगाल।

फ्यूज—संज्ञा पुं० [अं० फ्यूज़] प्रचड ताप से गल या पिघल जाना।

फ्युडेटरी चीफ—संज्ञा पुं० [अं० फ्युडेटरी चीफ] वह राजा जो किसी बड़े राजा या राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राजा। सामंत राजा। माडलिक।

फ्युडेटरी स्टेट—संज्ञा पुं० [अं० फ्युडेटरी स्टेट] वह छोटा राज्य जो किसी बड़े राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राज्य।

फ्रंट—संज्ञा पुं० [अं० फ्रंट] युद्धक्षेत्र। लड़ाई का मैदान। मोर्चा।

फ्रांक—संज्ञा पुं० [अं० फ्रांक] फ्रांस का एक चाँदी का सिक्का। जो प्रायः अँगरेजी ९॥ पेनी मूल्य का होता है। एक पेनी प्रायः तीन पैसो के बराबर मूल्य की होती है।

फ्रांटियर—संज्ञा पुं० [अं० फ्रंटियर] सरहद। सीमांत। जैसे,— फ्रांटियर प्राविन्स।

फ्रांस—संज्ञा पुं० [अं० फ्रांस] योरप का एक प्रसिद्ध देश जो स्पेन के उत्तर में है।

फ्रांसीसी—वि० [अं० फ्रांस] १. फ्रांस देश का। फ्रांस देश में उत्पन्न। २. फ्रास देश मे रहनेवाला। फ्रांस देशवासी।

फ्राक—संज्ञा पुं० [अं० फ्राक] लंबी आस्तीन का ढीला ढाला कुरता जिसे प्रायः बच्चो को पहनाते हैं।

यौ०—गंजी फ्राक = बनियान।

फ्रिस्केट—संज्ञा स्त्री० [अं० फ्रिस्केट] लोहे की चद्दर का बना हुआ चौखटा जो हाथ से चलाए जानेवाले प्रेस के डाले में जड़ा रहता है।

विशेष—छापने के समय कागज के तख्ते को डाले पर रखकर इसी चौखटे से ऊपर से बंद कर देते हैं, फिर डाले को गिराकर प्रेस मे दबाते हैं। कागज के तख्ते पर उन जगहों पर जो फ्रिस्केट के छेद से खुली रहती हैं मैटर छप जाता है और शेष अंश ढँके रहने से सादा रहता है।

फ्री—वि० [अं० फ्री] १. स्वतंत्र। जिसपर किसी की दाब न हो। २. कर या महसूल से मुक्त। मुक्त। जैसे, फ्री स्कूल, फ्री पढ़ना।

फ्री ट्रेड—संज्ञा पुं० [अं० फ्रीट्रेड] वह वाणिज्य जिसमें माल के आने जाने पर किसी प्रकार का कर या महसूल न लिया जाय।

फ्रीमेसन—संज्ञा पुं० [अं० फ्रीमेसन] फ्रीमेसनरी नाम के गुप्त संघों का सभ्य।

फ्रीमेसनरी—संज्ञा स्त्री० [अं० फ्रीमेसनरी] एक प्रकार का गुप्त सघ या सभा जिसकी शाखा प्रशाखाएँ यूरप, अमेरिका तथा संसार के उन सब स्थानों मे है जहाँ यूरोपियन हैं। यह भारत मे भी है।

विशेष—इस सभा का उद्देश्य समाज की रक्षा करनेवाले सत्य, दान, औदार्य, भ्रातृभाव आदि का प्रचार कहा जाता है। फ्रीमेसनों की सभाएँ गुप्त हुआ करती हैं और उनके बीच कुछ ऐसे संकेत होते हैं जिनसे वे अपने संघ के अनुयायियों को पहचान लेते हैं। ये संकेत,कोनिया, परकार, आदि राजगीरो के कुछ औजार के चिह्न कहे जाते हैं। प्राचीन काल में यूरोप में उन कारीगरों या राजगीरों की इसी नाम की एक संस्था थी जो बड़े बड़े गिरजे बनाया करते थे। इन्हीं संकेतों के कारण.जो असली कारीगर होते थे वे ही भरती हो पाते थे। इसी आदर्श पर सन् १७१७ ई० में फ्रीमेसन सस्थाएँ स्थापित हुईं जिनका उद्देश्य अधिक व्यापक रखा गया।

फ्रेंच[1]—वि० [अं० फ्रेंच] फ्रास देश का।

फ्रेंच[2]—संज्ञा स्त्री० फ्रांस की भाषा।

फ्रेंच[3]—संज्ञा पुं० फ्रास का निवासी।

फ्रेंच पेपर—संज्ञा पुं० [अं० फ्रेंच पेपर] एक प्रकार का हलका पतला और चिकना कागज।

फ्रेम—संज्ञा पुं० [अं० फ्रेम] चौकठा।

फ्लाईब्वाय—संज्ञा पुं० [अं० फ़्लाईब्वाय] प्रेस में वह लड़का जो प्रेस पर से छपे हुए कागज जल्दी से झपटकर उतारता है और उनपर आँख दौड़ाकर छपाई की त्रुटि की सूचना प्रेसमैन को देता है।

फ्लूट—संज्ञा पुं० [अं० फ़्लूट] बंसी की तरह का एक अँगरेजी बाजा जो फूँककर बजाया जाता है।

फ्लैग—संज्ञा पुं० [अं० फ्लैग] झंडा। पताका।

फ्लैट—संज्ञा पुं० [अं० फ्लैट] किसी बड़ी इमारत का एक भाग।

व

व—हिंदी का तेईसवाँ व्यंजन और पवर्ग का तीसरा वर्ण। यह ओष्ठ्य वर्ण है और दोनों होठों के मिलाने से इसका उच्चारण होता है। इसलिये इसे स्पर्श वर्ण कहते हैं। यह अल्पप्राण है और इसके उच्चारण में संवार, नाद और घोष नामक वाह्य प्रयत्न होते हैं।

वं—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] 'बं' की ध्वनि।

मुहा०—वं बोलना = केवल ध्वनि करना। हिम्मत छोड़ बैठना। उ०—शिमला छाँड़ि बिलायत भागे लाट लिटिन व वोल।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६१।

बंक¹—वि० [सं० वक्र, वङ्क] १. टेढा। तिरछा। उ०—कोउ भिझकारें कोउन, बक जुग भौह मरोरें।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० १०। २. पुरुषार्थी। विक्रमशाली। ३. दुर्गम। जिस तक पहुँच न हो सके। उ०—(क) जो वंक गढ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लंक से बंक महागढ दुर्गम ढाहिवे दाहिवे को कहरी है।—तुलसी (शब्द०)।

बंक²—संज्ञा पुं० [अं० बैंक] वह कार्यालय या संस्था जो लोगों का रुपया सूद देकर अपने यहाँ जमा करती अथवा सूद लेकर लोगों को ऋण देती है। लोगों की हुंडियाँ लेती और भेजती है तथा इसी प्रकार के दूसरे महाजनी के कार्य करती है।

बंकट(पु)¹—वि० [सं० वङ्क, प्रा० वंकुड] १. वक्र। टेढा। उ०—(क) ठठकति चलै मटकि मुँह मोरै बंकट भौह मरोरै।—सूर (शब्द०)। (ख) भृकुटि वकट चारु लोचन रही युवती देखि।—सूर (शब्द०) २. तिरछा। बाँका। उ०—निपट बंकट छबि अटके मेरे नैना।—संतवाणी०, भाग २, पृ० ७६। ३. विकट। दुर्गम। उ०—ज तुम बंकट ठौर।—पृ० रा०, ६।१७३।

बंकट²—संज्ञा पुं० [?] हनुमान। (डिं०)।

वंकनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंक+नाल] सुनारों की एक नली जो बहुत बारीक टुकड़ों की जुडाई करने के समय चिराग की लौ फूँकने के काम आती है। बगनहा। २. शरीर की एक नाड़ी। सुपुम्ना। उ०—बंकनाल की औघट घाटी, तहाँ न पग ठहराई।—कबीर० श०, भा० ३ पृ० ७८।

वकनालि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बकनाल'—२। उ०—मूल सहस्र पवनाँ बहै। बंकनालि तब बहुत रहै।—गोरख०, पृ० १८१।

वंकवला†—संज्ञा पुं० [हिं०] बाँह पर का एक आभूषण। उ०—वाहन में बाजू बँद बाँधे वंकवला बाँहन पर साधे।—भक्ति०, पृ० ६।

वंकम—संज्ञा पुं० [सं० वङ्किम] कष्ट। दुःख। घुमाव। मोड़। उ०—जहँ जहँ सुदेव बंकम परिय करिय अभय तुम देव तब।—पृ० रा०, ६।६२।

वंकराज—संज्ञा पुं० [सं० वङ्क + राज] एक प्रकार का सर्प। उ०—पातराज, दूधराज, वंकराज, शंकरचूर और मणिचूर आदि साँप बड़े फनवाले हैं।—सर्पाघात चिकित्सा (शब्द०)।

वंकवा†—संज्ञा पुं० [सं० वङ्क] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है।

वंकसाल—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज का वह बड़ा कमरा जिसमें मस्तूलों पर चढानेवाली रस्सियाँ या जंजीरें आदि तैयार या ठीक करके रखी जाती हैं।

वँका¹—वि० [सं० वङ्क] [स्त्री० वंकी] १. टेढ़ा। तिरछा। उ०—गढ़ वंका वको सुघर।—ह० रासो, पृ० ५०। २. बाँका। ३. पराक्रमी। बलशाली। उ०—वंका राव हमीर।—ह० रासो, पृ० ५०।

वंका²—संज्ञा पुं० [देश०] हरे रंग का एक कीड़ा जो धान के पौधों को हानि पहुँचाता है।

वंकाई—संज्ञा स्त्री० [सं० वक + आई (प्रत्य०)] टेढ़ापन। तिरछापन। वक्रता।

वंकिम—वि० [सं० वङ्किम] टेढा। तिरछा। उ०—उर उर में बंकिम धनु दग दग में फूलों के कुटिल विशिख।—द्वंद्व०, पृ० २३। (ख) गीड़ वंकिम किए, निश्चल किंतु लोलुप, वन्य बिलार।—हिं० का० प्र०, पृ० २५८।

वंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाँक'।

वंकुड़ा—वि० [सं० वक्र, प्रा० वंकुड़] उ०—घर में सब कोई वंकुड़ा मारहिं गाल अनेक। सुंदर रण मैं ठाहरै सूर धीर को एक।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३८।

वंकुर†—वि० [सं० वक्र, प्रा० वक्रुड] दे० वंक'¹।

वकुरता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वक्रता अथवा सं० वक्र, प्रा० वंकुड़, हिं० वंकुर+ता (प्रत्य०)] टेढ़ाई। टेढ़ापन। तिरछापन। वक्रता। उ०—आनन में मुसकानि सुहावनि, वंकुरता अँखियान छई हैं।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १३।

वंकुस—वि० [सं० वक्र, हिं० वंकुर] वक्र। टेढ़ा। तिरछा। उ०—चढ्यो घन मत्त हाथी, पवन, महावत साथी, चपला को अंकुस दै वंकुस चलाए।—नंद ग्रं०, पृ० ३७३।

वंग¹—संज्ञा पुं० [सं० वङ्ग] दे० 'वंग'।

वग²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बाँग] अजान की आवाज। उ०—(क) मुसलमान कलमा पढ़ै तीस रोजा रहै, बंग निमाज धुनि करत गाढ़ी।—कबीर० रे०, पृ० १६। (ख) एकादशी न व्रतहिं विचारों। रोजा धरौ न वंग पुकारौ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०४।

वंग³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० । तुल० हिं० भग] भाँग। विजया। एक मादक बूटी।

यौ०—वंगनोश = भाँग पीनेवाला। भँगेड़ी। बगफरोश = भाँग बेचनेवाला दूकानदार। भाँग का ठेकेदार।

वंगई—संज्ञा स्त्री० [सं० वङ्ग] एक प्रकार की बढिया कपास जो सिलहट मे बहुत पैदा होती है।

वंगड़—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'वंगर'। उ०—कूँभाथल मोताहलाँ भरिया वप गिर माँत। चंद्रवदन गज रतन में बंगड़ वणिया दाँत।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७१।

वंगनापाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक देशी मुसलमानी रियासत।

वंगर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वक्र, हिं० वंकुर या देश०] हाथी के दाँतों पर जड़ा हुआ आभूषण। हाथी के दाँतों पर जड़े जानेवाले चाँदी, सोने, पीतल आदि के बंद। उ०—सिर दिघ्घ दिघ्घ दंतह सुभग, जरजराइ बंगरि जरिय। लष लष्ष दाम पावहि पटै कनक साज हाजरु करिय।—पृ० रा०, ६। १५५।

बगलिया—संज्ञा पुं० [हिं० वंगाल] १. एक प्रकार का धान। २. एक प्रकार का मटर।

वंगली—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा (डिं०)।

वंगसार—संज्ञा पुं० [देश०] पुल की तरह बना वह चबूतरा जो दूर तक समुद्र में चला जाता है और जिसपर से लोग जहाज पर चढते या उतरते हैं। वनसार।

वंगा†—वि० [सं० वङ्क] १. टेढ़ा। २. मूर्ख। बेवकूफ। उ०—राम मनुज कस रे सठ वंगा।—मानस, ६।२६। ३. लड़ाई झगड़ा करनेवाला। उद्दंड।

वगारी—संज्ञा पुं० [सं० वङ्गारि] हरताल (डिं०)।

वंगाल—संज्ञा पुं० [सं० वङ्ग] १. वंग देश जो भारत का पूर्वी भाग है। २. एक राग का नाम जिसे कुछ लोग मेघराग का और कुछ भैरव राग का पुत्र मानते हैं।

वंगाला[1]—संज्ञा पुं० [सं० वग] वंगाल देश।

वगाला(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० वंगालिका नाम की रागिनी।

बंगालिका—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागनी जिसे कुछ लोग मेघ राग की स्त्री मानते हैं।

वंगाली[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बगाल + ई (प्रत्य०)] १. बंगाल देश का निवासी। २. संपूर्ण जाति का एक राग।

वंगाली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० वग] वंग देश की भाषा। बँगला।

वंगू—संज्ञा पुं० [देश०] १. प्रकार की मछली जो प्रायः दक्षिण तथा बंगाल की नदियो मे होती है। २. भौंरा या जंगी नामक खिलौना जिसे बालक नचाते हैं।

वंगोमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कछुआ जो गंगा और सिंधु में होता है। इसका मांस खाने योग्य होता है।

वंचक[1]—संज्ञा पुं० [सं० वञ्चक] धूर्त। पाखंडी। ठगनेवाला। उ०—वंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।—मानस, १।१२।

वंचक[2]—संज्ञा पुं० [देश०] जीरे के रूप रंग तथा आकार प्रकार की एक घास का दाना जो पहाड़ी देशों में पैदा होता है और जीरे मे मिलाकर बेचा जाता है।

वंचकता—संज्ञा स्त्री० [सं० वञ्चकता] छल। धूर्तता। चालबाजी।

वंचकताई—संज्ञा स्त्री० [सं० वञ्चकता + ई (प्रत्य०)] दे० 'वचकता'।

वंचन—संज्ञा पुं० [सं० वञ्चन] छल। ठगपना।

वंचनता—संज्ञा स्त्री० [सं० वञ्चनता] ठगी। छल। उ०—दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर वंचनताति घनी।—तुलसी (शब्द०)।

वंचना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वञ्चना] ठगी। धूर्तता।

वंचना(पु)†[2]—क्रि० स० [सं० वञ्चन] ठगना। छलना। उ०—वंचेहु मोहि जौन धरि देहा। सोइ तनु धरहु साप मम एहा।—तुलसी (शब्द०)।

वंचना(पु)[3]—क्रि० स० [सं० वाचन] बाँचना। पढ़ना।

वंचर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'वनचर'।

वंचित—वि० [सं० वञ्चित] दे० 'वंचित'।

वंछना(पु)—क्रि० स० [सं० वाञ्छन] अभिलाषा करना। इच्छा करना। चाहना। उ०—कहढी हुसेन तुम देस अंत। बंछो जो पेम मानो सुमंत।—पृ० रा०, ६।३२।

वंछनीय(पु)—वि० [सं० वाञ्छनीय] दे० 'वांछनीय'।

वंछा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छा] इच्छा। वांछा। चाह। उ०—न तहाँ प्रकृति पुरुष नहिं इच्छा। न तहाँ काल कार्य नहिं वंछा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ११३।

वंछित(पु)—वि० [सं० वाञ्छित] दे० 'वांछित'।

वंज[1]—संज्ञा पुं० [हिं० वनिज] दे० 'वनिज'।

वंज[2]—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय प्रदेश का एक प्रकार का बलूत का पेड़ जिसकी लकड़ी का रंग खाकी होता है। इसको सिल और मारू भी कहते हैं।

वंजर—संज्ञा पुं० [सं० वन + ऊजड़] वह भूमि जिसमे कुछ उत्पन्न न हो सके। ऊसर। उ०—ज्ञान कुदार ले वंजर गोड़ै।—कबीर० श०, भा० १, पृ० १३६।

वंजा(पु)—वि० [सं० वन्ध्या, हिं० बाँझ] वंध्या। बाँझ। उ०—ब्यावर की पीर कूँ वंजा करे क्या ज्ञान कूँ गंजा।—राम० धर्म०, पृ० ३७।

वंजारा—संज्ञा पुं० [हिं० बनज + आरा (प्रत्य०)] दे० 'वनजारा'।

वंजुल—संज्ञा पुं० [सं० वञ्जुल] अशोक का पेड़। उ०—मंजुल वंजुल मंजरी दरसाईं चदुराय। पीर भई ही सुधि गई तई मरोरे खाय।—स० सप्तक, पृ० २७५।

वंजुलक—संज्ञा पुं० [सं० वञ्जुलक] दे० 'वंजुल'।

वंझा[1]—वि० [सं० वन्ध्या] (वह स्त्री) जिसके संतान न हो। बाँझ।

वझा[2]—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसके संतान पैदा करने की शक्ति न हो बाँझ औरत।

वंटना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बाँटना'। उ०—मंस अंस तुट्टई बीर वंटई जु राज्यो।—पृ० रा०, १२।१०७।

वंटा[1]—संज्ञा पुं० [सं० वटक, हिं०, बटा (= गोला)] [स्त्री०

अल्पा० बंटी] गोल अथवा चौकोर कुछ छोटा डब्बा। जैसे, पान का बंटा ठाकुर जी के भोग का बटा। उ०—(क) कोऊ बंटा कोऊ चादर लिए ठाढ़े हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३। (ख) बंटा जमल जोत के मानहु।—इंद्रा०, पृ० ६१।

बंटा²—वि० छोटे कद का। छोटे आकारवाला।

बंटा³—संज्ञा पुं० [हिं० बट्टा] दाग। ऐब। कलंक। दोष। उ०—जो भौतिक वस्तुओं में तो बंटा लगा ही चुका है।—कंकाल, पृ० ७७।

बंटी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] हिरन आदि पशुओं को फँसाने का जाल या फंदा।

बंटी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अंटी। दे० 'बंटा'। उ०—तब रेडा ने श्री ठाकुर जी को अपनी स्त्री के माथे पधराय के माला बंटी में करि कै दियो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७३।

बंडा—वि० [हिं० बाँड़ा] दुमकटा। पुच्छहीन। बाँडा।

बंडल—संज्ञा पुं० [अं०] कागज या कपड़े में बँधी हुई छोटी गठरी। पुलिंदा। जैसे, अखबारों का बंडल, किताबों का बंडल, कपड़ों का बंडल।

बंडा¹—संज्ञा पुं० [हिं० बंटा] एक प्रकार का कच्चू या अरुई जो आकार मे गोल, गाँठदार और कुछ लंबोतरी होती है।

बंडा²—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध] छोटी दीवार से घिरा हुआ वह स्थान जिसमें अन्न भरा जाता है। बडी बखारी।

बंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँडा (=कटा हुआ)] १. बिना आस्तीन की मिरजई। फतुही। कुरती। २. बगल बंदी नामक पहनने का वस्त्र।

बंडैला†—संज्ञा पुं० [हिं० बंडा+ऐला (प्रत्य०) या हिं० बनैला] जंगली सूअर। उ०—खुदा की कसम आपके काले कपड़ों से मैं समझा कि बंडैला कुसुम के खेत से निकल पड़ा।—फिसाना०, भा० १, पृ० २।

बंद—संज्ञा पुं० [फा०, तुल० सं० बन्ध] १. वह पदार्थ जिससे कोई वस्तु बाँधी जाय बंधन। उ०—चौरासी को बंद छुडावन आए सतगुर आप री। कबीर श०, पृ० ८६। २. पानी रोकने का धुस्स। रोक। पुश्ता। मेड। बाँध। विशेष—दे० 'बाँध'। ३. शरीर के अंगों का कोई जोड़।

क्रि० प्र०—जकड़ जाना।—ढीले होना।

४ वह पतला सिला हुआ कपड़े का फीता जिससे अँगरखे, चोली आदि के पल्ले बाँधे जाते हैं। तनी। ५. कागज का लंबा और बहुत कम चौड़ा टुकडा। ६. उर्दू कविता का टुकडा या पद जो पाँच या छह चरणों का होता है। ७. बंधन। कैद। ८. चौसर में के वे घर जिनमे पहुँचने पर गोटियाँ मारी नहीं जाती।

बंद²—वि० १. जिसके चारो ओर कोई अवरोध हो। जो किसी ओर से खुला न हो। जैसे—(क) जो पानी बंद रहता है, वह सड़ जाता है। (ख) चारो ओर से बंद मकान में प्रकाश या हवा नहीं पहुँचती। २. जो इस प्रकार घिरा हो कि उसके अंदर कोई जा न सके। ३. जिसके मुँह अथवा मार्ग पर दरवाजा, ढकना या ताला आदि लगा हो। जैसे, बंद संदूक, बंद कमरा, बंद दुकान। ४. जो खुला न हो। जैसे, बद ताला। ५. जिसका मुँह या आगे का मार्ग खुला न हो। जैसे,—(क) कमल रात को बंद हो जाता है। (ख) शीशी बंद करके रख दो। ६. (किवाड़, ढकना, पल्ला आदि) जो ऐसी स्थिति में हो जिससे कोई वस्तु भीतर से बाहर न जा सके और बाहर की चीज अंदर न आ सके। जैसे,—(क) किवाड़ आप से आप बंद हो गए। (ख) इसका ढकना बंद कर दो। ७. जिसका कार्य रुका हुआ या स्थगित हो। जैसे,—कल दफ्तर बंद था। ८. जो चला न चलता हो। जो गति या व्यापार युक्त न हो। रुका हुआ। थमा हुआ। जैसे, मेह बंद होना, घड़ी बंद होना, लड़ाई बंद होना। ९. जिसका प्रचार, प्रकाशन या कार्य आदि रुक गया हो। जो जारी न हो। जिसका सिलसिला जारी न हो। जैसे,—(क) इस महीने मे कई समाचारपत्र बंद हो गए। (ख) घाटा होने के कारण उन्होंने अपना सब कारबार बंद कर दिया। १०. जो किसी तरह की कैद में हो।

बंद³—प्रत्य० १. बँधा हुआ। जैसे, पाबंद। २. जोड़ने या बाँधनेवाला। जैसे, नाल बंद [को०]।

बंद⁴—वि० [सं० बन्ध] दे० 'बंध'।

बंदगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. भक्तिपूर्वक ईश्वर की वंदना। ईश्वराराधन। २. सेवा। खिदमत। ३. आदाब। प्रणाम। सलाम। ४. नम्रता। विनम्रता (को०)।

बंदगोभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंद+गोभी] करमकल्ला। पात गोभी।

बंदन¹—संज्ञा पुं० [सं० वन्दनी (गोरोचन)] १. रोचन। रोली। उ०—अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन।—राम चं०, पृ० ५। २. ईंगुर। सिंदुर। सेंदुर। उ०—बंदन भाल नयन बिच काजर।—गीत (शब्द०)। ३. बंदनार।

बंदन²—संज्ञा पुं० [सं० वन्दन] दे० 'वंदन'। उ०—कियो रणथंभहि बंदन धीर।—ह० रासो, पृ० ६३।

बंदनता—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्दनता] बंदनीयता। आदर या बंदना किए जाने की योग्यता। उ०—चंद्रहि बंदत हैं सब केशव ईश ते बंदनता अति पाई।—केशव (शब्द०)।

बंदनमाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वन्दनमाल] [स्त्री० बंदनमाला] दे० 'बंदनवार'। उ०—(क) मुक्ता बंदनमाल जु लसै। जनु आनंद भरे घर हँसैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २३५। (ख) मालनि सी जहँ लछिमी लोलै। बंदनमाला बाँधति डोलै।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१।

बंदनवार—संज्ञा पु० [सं० वन्दनमाल या वन्दन+द्वार (प्रा० वार)] फूल, पत्ते, दूब इत्यादि की बनी हुई वह माला जो

मंगल कार्यों के समय द्वार आदि पर लटकाई जाती है। फूलों या पत्तों की झालर जो मंगल के सूचनार्थ द्वार पर या खंभों और दिवारों आदि पर बाँधी जाती है। तोरण। उ०—गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न वंदनवार।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १७६।

वंदना¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्दना] दे० 'वंदना'।

वंदना²—क्रि० स० [सं० वन्दन] प्रणाम करना। नमस्कार करना। वंदना करना। उ०—(क) बंदउ सबहिं धरणि धरि माथा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सिव सिव सुत हिमिगिरि सुता, विसुन दिवाकर बंद।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १६।

वंदना(पु)—क्रि० स० [सं० बन्धन] बाँधना। उ०—उद्दार चित्त दातार अति, तेग एक बंदे विसव।—पृ० रा०, १।२।

वंदनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्दनी (=माथे पर बनाया हुआ चिह्न)] स्त्रियों का एक भूषण जो आगे की ओर से सिर पर पहना जाता है। इसे बंदी या सिरबंदी भी कहा जाता है।

वंदनी²—वि० [सं० वन्दनीय] दे० 'वंदनीय'। उ०—गौरीसम जग वंदनी, नारि सिरोमणि आप।—रघुराज (शब्द०)।

वंदनीमाल—संज्ञा० स्त्री० [सं० वन्दनीमाल] वह लंबी माला जो गले से पैरों तक लटकती हो। उ०—अंजन होइ न लसत तौ ढिग इन नैन बिसाल। पहिराई जनु मदन गुहि श्याम वंदनी-माल।—स० सप्तक०, पृ० १६१।

वंद वंद—संज्ञा पुं० [फा०] शरीर का एक एक जोड़

वंदर—संज्ञा पुं० [सं० वानर] एक प्रसिद्ध स्तनपायी चौपाया जो अनेक बातों में मनुष्य से बहुत कुछ मिलता जुलता होता है।

पर्या०—कपि। मर्कट। वलीमुख। शाखामृग।

विशेष—इसकी प्रायः पैंतीस जातियाँ होती है जिनमें से कुछ एशिया और योरप और अधिकांश उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका मे पाई जाती हैं। इनमें से कुछ जातियाँ तो बहुत ही छोटी होती हैं। इतनी छोटी कि जेब तक में आ सकती हैं। कुछ इतनी बड़ी होती हैं कि उनका आकार आदि मनुष्य के आकार तक पहुँच जाता है। छोटी जातियों के बदर चारो हाथो पैरों और बड़ी जातियों के दोनों पैरों से चलते हैं। प्रायः सभी जातियाँ पेड़ों पर रहती हैं। पर कुछ ऐसी भी होती हैं जो वृक्षो के नीचे किसी प्रकार की छाया आदि का प्रबंध करके रहती और जंगलों आदि में घूमती हैं। प्रायः सभी जातियों के बंदरों की शारीरिक गठन आदि मनुष्यों की सी होती है। इसलिये ये वानर (आधे मनुष्य) कहे जाते हैं। ये केवल फल और अन्न आदि ही खाते हैं। मांस बिल्कुल नहीं खाते। कुछ जातियों के बंदरों के मुख में ३२ और कुछ के मुँह में ३६ दाँत होते हैं। इनमें बहुत कुछ बुद्धि भी होती है और ये सहज में पाले तथा सिखाए जा सकते हैं। प्रायः सभी जातियों के बंदर झुंडो में रहते हैं, अकेले नही। ये एक बार में केवल एक ही बच्चा देते हैं। इनमें शक्ति भी अपेक्षाकृत बहुत होती है। चिंपैंजी, ओरंगउटँग, गिबन, लंगूर आदि सब इसी जाति के हैं।

यौ०—बंदर की दोस्ती=ऐसी दोस्ती जिसमें हरदम होशियार रहना पड़े। उ०—जिससे बिगड़े उसको तबाह कर डाला। उनकी दोस्ती बंदर की दोस्ती थी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८०। बंदरखत या बदरघाव=घाव या चोट जो कभी न सूखे (बंदरों का घाव कभी नही सूखता क्योंकि वे उसे बराबर खुजलाते रहते हैं)। बंदरघुड़की=ऐसी धमकी या डाँट डपट जो केवल डराने या धमकाने के लिये ही हो। ऐसी धमकी जो दृढ़ या बलिष्ठ से काम पड़ने पर कुछ भी प्रभाव न रख सकती हो। बंदरबाँट=किसी वस्तु को आपस में छीन झपटकर बाँट लेना।

वंदर²—संज्ञा पुं० [फा०] समुद्र के किनारे जहाजों के ठहरने के लिये बना हुआ स्थान। बंदरगाह।

वंदरगाह—संज्ञा पु० [फा०] समुद्र के किनारे का वह स्थान जहाँ जहाज ठहराते हैं।

वंदरवार(पु)—संज्ञा० पुं० [हिं बदरवार] दे० 'वंदनवार'। उ०—बिराजत मुचिन बदरवार। मनों भुम्र आँन मयूष प्रचार।—पृ० रा०, २१। ३८।

वंदरकी, वंदरी—संज्ञा स्त्री० [फा वंदर(=समुद्रतट)] एक प्रकार की तलवार। उ०—(क) बिज्जुल सी चमकै घाइन धमकै तीखन तमकै वंदरकी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७। (ख) वंदरी सुखग्गै जगमग जग्गै लपकत लग्गै नहिं बरकी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७।

बदली—संज्ञा पुं० [देश०] रुहेलखंड में पैदा होनेवाला एक प्रकार का धान जिसे रायमुनिया और तिलोकचंदन भी कहते हैं।

बदवान—संज्ञा पुं० [सं०वन्दी+वान] बंदीगृह का रक्षक। कैदखाने का अफसर।

बदसाल†—संज्ञा पु० [स० वन्दिशाल] वव स्थान जहाँ कैदी रखे जाते हो। बंदीगृह। कैदखाना। जेल।

बदा¹—संज्ञा पु० [फ़ा० वंदह्] १. सेवक। दास। जैसे ये सब खुदा के बंदे हैं। २. शिष्ट या विनीत भाषा में उत्तम पुरुष, पुंलिग 'मैं' के स्थान पर आनेवाला शब्द। जैसे,—बंदा हाजिर है, कहिए क्या हुकुम है?

बदा²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वन्दी] बंदी। कैदी। बँधुआ। उ०—छदहि छंद भएउ सो बंदा। छन एक माँहि हँसी रोवँदा। जायसी (शब्द०)।

वंदाजादा—संज्ञा पु० [फ़ा वंदाज़ादह्] [स्त्री० बंदाजादी] सेवक-पुत्र। दासपुत्र। गुलामजादा। उ०—खड़ा हूँ दरबार तुम्हारे ज्यों घर का वंदाजादा।—मलूक०, पृ० ६।

वंदानिवाज—वि० [फा० वंदानिवाज] सेवकों पर कृपा करनेवाला।

वंदानिवाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० वंदानिवाज़ी] कृपा। अनुग्रह। दया।

बंदानी—संज्ञा पुं० [देश०] १. गोलंदाज। तोप चलानेवाला। (लश्करी)। २. एक प्रकार का गुलाबी रंग जो पियाजी रंग से कुछ गहरा और असली गुलाबी रंग से बहुत हलका होता है।

बंदापरवर—वि० [फ़ा० बंदापर्वर] दीनबंधु।

बंदापरवरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बंदापर्वरी] दे० 'बंदानिवाजी'। उ०—टुक वली को सनम गले से लगा। तुझको है बंदापरवरी की कसम।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५।

बंदारु¹—वि० [सं० वन्दारु] १. वंदनीय। वंदन करने योग्य। २. पूजनीय। आदरणीय। उ०—देव ! बहुल वृंदारका वृंद बंदारु पद बंदि मंदार मालोरधारी।—तुलसी (शब्द०)।

बंदारु²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बंदाल'।

बंदालू—संज्ञा पुं० [देश०] देवदाली। घघरबेल।

बंदि¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्दि] १. कैद। कारानिवास। उ०—बेद लोक सबै साखी, काहू की रती न राखी, रावन की बंदि लागे अमर मरन।—तुलसी (शब्द०)। २. कैदी। बंधुआ।

बंदि(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० वन्दिन्] भाट। चारण। उ०—बंदि मागधन्हि गुन गन गाए।—मानस, १।३५८।

बंदि³—संज्ञा पुं० [फ़ा० बंदी] बंदी। कैदी।

यौ०—बँदिखाना = बंदीखाना। कैदखाना। उ०—पाँचि जने परबल परपंची उलटि परे बँदिखाने।—संतवाणी०, भा० २, पृ० १२८। बँदिगृह = बंदीखाना। उ०—भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम क नेव।—मानस, २।१६। बंदिछोर = दे० 'बंदिछोर'। उ०—उथपे थपन थपे उथपन पन विबुध वृंद बंदिछोर को।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४००।

बंदिग्राह—संज्ञा पुं० [सं० वंदिग्राह] सेंध मारनेवाला चोर। लुटेरा [को०]।

बंदित्व—संज्ञा पुं० [सं० बन्दित्व] कैद होने की स्थिति। बंधन में होना। उ०—न हृष है, हे केवल शक्तिनाशक श्रम। बंदित्व है।—गोदान, पृ० ४।

बंदिपाल—संज्ञा पुं० [सं० बन्दिपाल] कारागार का अधिकारी। जेलर [को०]।

बंदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंदिनी] बंदी नामक भूषण जो स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं। उ०—हाथ गहे गहिहौ हठ साथ जराय की बंदिया वेष दुसाला।—(शब्द०)।

बंदिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बाँधने की क्रिया या भाव। २. प्रबंध रचना। योजना। जैसे,—शब्दों की कैसी अच्छी बंदिश है। ३. षड्यंत्र। साजिश। ४. रुकावट। रोक (को०)। ५. ग्रंथि। गाँठ (को०)।

क्रि० प्र०—बाँधना। जैसे,—उन्हें फँसाने के लिये बड़ी बड़ी बंदिशें बाँधी गई हैं।

बंदी¹—संज्ञा पुं० [सं० बन्दिन्] १. चारणों की एक जाति जो प्राचीन काल में राजाओं का कीर्तिगान किया करती थी। भाट। चारण।

बंदी²—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्दी (= कैदी)] बंदी होने की दशा। कैद।

बंदी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंदिनी] एक प्रकार का आभूषण जिसे स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं। दे० 'बंदनी'। उ०—चटकीले चेहरे पर बंदी छवि दे दी त्यों।—नट०, पृ० ११०।

बंदी⁴—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बंद+हिं० ई (प्रत्य०)] दुकान आदि बंद होने, काम काज स्थगित होने या किसी कार्य के रुक जाने की स्थिति।

बंदी⁵—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कैदी।

यौ०—बंदीघर। बंदीखाना। बंदीछोर।

बंदी⁶—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [बंदा का स्त्री०] दासी। चेरी।

बंदीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० बंदीखानह्] कैदखाना। जेलखाना।

बंदीघर—संज्ञा पुं० [सं० बन्दीगृह] कैदखाना। जेलखाना।

बंदीछोर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० बन्दी+हिं० छोर] १. कैद से छुड़ानेवाला। २. बंधन से मुक्त करानेवाला। उ०—(क) विनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदीछोर हैं।—कबीर सा० सं०, पृ० १२। (ख) वेद जस गावत विबुध बंदीछोर को।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४८।

बंदीजन—संज्ञा पुं० [सं० वन्दी+जन] बंदी। चारण। उ०—प्रथम विधाता ते प्रकट भये बंदीजन।—अकबरी०, पृ० ११४।

बंदीवान—संज्ञा पुं० [सं० वन्दि+वान्] कैदी। उ०—(क) मुआ को क्या रोइए जो अपने घर जाय। रोइय बंदीवान को जो हाटै हाट बिकाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) दादू बंदीवान है, बंदीछोर दिवान।—दादू (शब्द०)।

बंदुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बँधुआ'। उ०—तब वीरा ने विनती करि कै श्री सस्या जी सों कही, जो महाराज ये राजद्वार के बंदुवा है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२६।

बंदूक—संज्ञा पुं० [अ० बंदूक़] नली के रूप का एक प्रसिद्ध अस्त्र जो धातु का बना होता है। एक आग्नेय अस्त्र।

विशेष—इसमें लकड़ी के कुंदे में लोहे की एक लंबी नली लगी रहती है। इसके पीछे की ओर थोड़ा सा स्थान बना होता है जिसमें गोली रखकर बारूद या इसी प्रकार के किसी और विस्फोटक पदार्थ की सहायता से चलाई जाती है। इसमें से गोली निकलती है जो अपने निशाने पर जोर से जा लगती है। इसका उपयोग मनुष्यों को और दूसरे जीवों को मार डालने अथवा घायल करने के लिये होता है। आजकल साधारणतः सैनिकों को युद्ध में लड़ने के लिये यही दी जाती हैं। यह कई प्रकार की होती है। जैसे, कड़ाबीन, राइफल, गन, मशीनगन, (यंत्रचालित), स्वचालित, आटोमेटिक गन, स्टेनगन, आदि।

क्रि० प्र०—चलाना।—छोड़ना।—दागना।—भरना।

मुहा०—बंदूक भरना = बंदूक चलाने के लिये उसमें गोली

रखना। बंदूक चलाना, छोड़ना, मारना या लगाना = बंदूक मे गोली भरकर उसका घोड़ा दबाना जिससे गोली निकलकर निशाने पर जा लगे। बंदूक छतियाना = (१) बंदूक को छाती के साथ लगाकर उसका निशाना ठीक करना। बंदूक को ऐसी स्थिति में करना जिससे गोली अपने ठीक निशाने पर जा लगे। (२) बंदूक चलाने के लिये तैयार होना।

बंदूकची—संज्ञा पुं० [फ़ा० बंदूकची] बंदूक चलानेवाला सिपाही।

बंदूखां†—संज्ञा स्त्री० [बंदूक] दे० 'बंदूक'।

बंदूवा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बँधुआ'। उ०—तासों नारायणदास ने सगरे बंदूवा छोरि दिए हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२८।

बंदेरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बंद + ऐरी (प्रत्य०)] दासी। चेरी।

बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. प्रबंध। इंतिजाम। २. खेती के लिये भूमि को नापकर उसका राज्यकर निर्धारित करने का काम।

यौ०—बंदोबस्त इस्तमरारी = भूमि संबंधी वह करनिर्धारण जिसमें फिर कोई कमी, बेशी न हो सके। मालगुजारी का इस प्रकार ठहराया जाना कि वह फिर घट बढ़ न सके।

३. वह महकमा या विभाग जिसके सुपुर्द खेतों आदि को नापकर उनका कर निश्चित करने का काम हो। ४. लगान तय करके किसी को जोतने बोने के लिये खेत देना।

बंध—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध] १. बंधन। उ०—तासु दूत कि बंध तर आवा। प्रभु कारज लगि आपु बँधावा।—तुलसी (शब्द०)। २. गाँठ। गिरह। उ०—जेतोई मजबूत कै हित बंध बाँधो जाय। तेतोई तामें सरस भरत प्रेम रस आय।—रसनिधि (शब्द०)। ३. कैद। उ०—कृपा कोप बध बंध गोसाईं। मोपर करिय दास की नाईं।—तुलसी (शब्द०)। ४. ४. पानी रोकने का धुस्स। बाँध। ५. कोकशास्त्र के अनुसार रति के मुख्य सोलह आसनों मे से कोई आसन। उ०—परिरंभन सुख रास हास मृदु सुरति केलि सुख साजे। नाना बंध विविध रस क्रीड़ा खेलत स्याम अपार।—सूर (शब्द०)।

विशेष—मुख्य सोलह आसन ये हैं—(१) पद्मासन। (२) नागपाद। (३) लतावेष्ट। (४) अर्धसंपुट। (५) कुलिश। (६) सुंदर। (७) केशर। (८) हिल्लोल। (९) नरसिंह। (१०) विपरीत। (११) क्षुब्धक। (१२) धेनुक। (१३) उत्कंठ। (१४) सिंहासन। (१५) रतिनाग। (१६) विद्याधर। रतिमंजरी में सोलह आसनों का उल्लेख किया गया है। पर अन्य लोग इसकी संख्या ८४ तक ले जाते हैं।

६. योगशास्त्र के अनुसार योगसाधन की कोई मुद्रा। जैसे, उड्डियानबंध, मूलबंध, जालंधरबंध, इत्यादि। ७. निबंध-रचना। गद्य या पद्य लेख तैयार करना। उ०—ताते तुलसी कृत कथा रचित महर्षि प्रबंध। विरचौं उभय मिलाय कै राम स्वयंवर बंध।—रघुराज (शब्द०)। ८. चित्र-काव्य में छंद की ऐसी रचना जिससे किसी विशेष प्रकार की आकृति या चित्र बन जाय। जैसे, छत्रबंध, कमलबंध खड्गबंध, चमरबंध इत्यादि। ९. जिससे कोई वस्तु बाँधी जाय। बंधन जैसे, रस्सी, फीता इत्यादि। १०. लगाव। फँसाव। उ०—बेधि रही जग बासना निरमल मेद सुगंध। तेहि अरघान भँवर सब लुबुधे तजहिं न बंध।—जायसी (शब्द०)। ११. शरीर। १२. बननेवाले मकान की लंबाई और चौड़ाई का योग। १३. गिरवी रखा हुआ धन। १४. बंधन (मोक्ष का उलटा)। १५. पट्टी किनारा (को०)। १६. परिणाम। फल (को०)। १७. एक नेत्ररोग (को०)। १८. केश बाँधने का फीता (को०)। १९. प्रदर्शन (को०)। २१. पकड़ना। बंधन मे डालना (को०)। २२. स्नायु (को०)। २१. शरीर की स्थिति। अंगन्यास (को०)। २४. पुल (को०)।

बंधक¹—संज्ञा पुं० [सं० बन्धक] १. वह वस्तु जो लिए हुए ऋण के बदले मे धनी के यहाँ रख दी जाय। रेहन।

विशेष—ऐसी वस्तु ऋण चुकाने पर वापस हो जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—धरना।

२. विनमय। बदला। परिवर्तन। ३. वह जो बाँधता हो। बाँधनेवाला। ४. बंधन (को०)। ५. पानी रोकने का धुस्स। बाँध (को०)। ६. वादा (को०)। ७. अंगों की स्थिति। अंगन्यास (को०)।

बंधक²—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध] कोकशास्त्र के अनुसार स्त्रीसंभोग का कोई आसन। दे० 'बंध'—५। उ०—चौरासी आसन पर जोगी। खटरस बंधक चतुर सो भोगी।—जायसी (शब्द०)।

बंधकरण—संज्ञा पुं० [सं० बन्धकरण] बाँधना। बंधन में करना (को०)।

बंधकिपोषक—संज्ञा पुं० [सं०] रंडियों का दलाल।

विशेष—चाणक्य के समय में इनपर भी भिन्न भिन्न कर लगाते थे।

बंधकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्यभिचारिणी स्त्री। बदचलन औरत। २. वेश्या या रंडी। ३. हस्तिनी। हथिनी (को०)। ४. बाँझ औरत। बंध्या (को०)।

बंधतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० बन्धतन्त्र] पूरी चतुरंगिणी सेना (को०)।

बंधन¹—संज्ञा पुं० [सं० बन्धन] १. बाँधने की क्रिया। २. वह जिससे कोई चीज बाँधी जाय। जैसे,—इसका बंधन ढीला हो गया है। ३. वह जो किसी की स्वतंत्रता आदि में बाधक हो। प्रतिबंध। फँसा रखनेवाली वस्तु। जैसे,—संसार मे बाल बच्चों का भी बड़ा भारी बंधन होता है। ४. वध। हत्या। ५. हिंसा। ६. रस्सी। ७. वह स्थान जहाँ कोई बाँध कर रखा जाय। कारागार। कैदखाना। ८. शिव। महादेव। ९. शरीर का संधिस्थान। जोड़।

मुहा०—बंधन ढीला करना = बहुत अधिक मारना पीटना।

१०. पकड़ना। वशीभूत करना (को०)। ११. निर्माण। बनाना (को०)। १२. पुल (को०)। १३. संयोग (को०)। १४. स्नायु (को०)। १५. वृंत या डंठल (को०)। १६. जंजीर। सिकड़ी (को०)।

बंधन[२]—वि० १. बांधनेवाला। २. जांचनेवाला या रोकनेवाला। ३. (किसी पर) अवलंबित या निर्भर (समासांत मे)।

बंधनकारी—वि० [सं० बन्धनकारिन्] १. बांधनेवाला। २. भुजपाश मे लेनेवाला (को०)।

बंधनग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धनग्रन्थि] १. शरीर में वह हड्डी जो किसी जोड पर हो। २. पट्टी की गाँठ या गिरह (को०)। ३. जानवरो को बांधने की रस्सी (को०)। ४. फांस (को०)।

बंधनपालक—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनपालक] वह जो कारागार का रक्षक हो।

बंधनरक्षी—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनरक्षिन्] जेलर (को०)।

बंधनवेश्म—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनवेश्मन्] कारागार। जेल (को०)।

बंधनस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनस्तम्भ] जानवरो (विशेषतः) हाथी के बांधने का खूंटा (को०)।

बंधनस्थान—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनस्थान] घुड़साल। वाजिशाला। अस्तवल (को०)।

बंधनागार, बंधनालय—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनागार, बन्धनालय] कारागार। जेलखाना (को०)।

बंधनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धनी] बांधने या फंसानेवाली वस्तु।

बंधनिक—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनिक] बंधनरक्षी। जेलर (को०)।

बंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धनी] १. शरीर के अंदर की वे मोटी नसें जो संधिस्थान पर होती हैं और जिनके कारण दो अवयव आपस मे जुड़े रहते हैं। शरीर का बंधन। २. वह जिससे कोई चीज बांधी जाय। जैसे, रस्सी, सिक्कड़ आदि।

बंधनीय[१]—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनीय] सेतु। पुल।

बंधनीय[२]—वि० जो बांधने योग्य हो।

बंधनृत्य—संज्ञा पुं० [सं० बन्धनृत्य] नृत्य का एक प्रकार (को०)।

बंधमोचनिका, बंधमोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धमोचनिका, बन्धमोचनी] एक योगिनी का नाम।

बंधयिता—संज्ञा पुं० [सं० बन्धयितृ] बंधन या कैद मे डालनेवाला व्यक्ति (को०)।

बंधव—संज्ञा पुं० [सं० बान्धव, प्रा० बंधव] बांधव। उ०—मात-पिता बंधव दौलत मद, सुत त्रिय जोड़ सँधाणो।—रघु० रू०, पृ० १६।

बंधा—संज्ञा पुं० [सं० बन्धक] पानी रोकने का धुस्स। बांध।

बंधाकि—संज्ञा पुं० [सं० बन्धाकि] पर्वत। भूधर (को०)।

बंधान—संज्ञा पुं० [हिं० बँधना] १. किसी कार्य के होने अथवा किसी पदार्थ के लेने देने आदि के संबंध में बहुत दिनों से चला आया हुआ निश्चित क्रम या नियम। लेन देन आदि के संबंध की नियत परिपाटी। जैसे,—यहाँ फी रुपया एक पैसा आढ़त लेने का बंधान है। २. वह पदार्थ या धन जो इस परिपाटी के अनुसार दिया या लिया जाता है। ३. पानी रोकने का धुस्स। बांध। ४. ताल का सम (संगीत)। उ०—उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। सुनि किन्नर गंधर्व सराहत विथके हैं विबुध विमान।—तुलसी (शब्द०)।

बंधाल—संज्ञा पुं० [हिं० बँधान] नाव या जहाज में वह स्थान जिसमे रसकर या छेदो में से आया हुआ पानी जमा होता है और जो पीछे उलीचकर बाहर फेंक दिया जाता है। गमतखाना। गमतरी।

बंधिका—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बधिका'।

बंधित[१]—वि० [सं० बन्ध्या] बंध्या। बाँझ। (डिं०)।

बंधित[२]—वि० [सं० बन्धित] १ बँधा हुआ। आबद्ध। २. बंधनग्रस्त। कैद किया हुआ (को०)।

बंधित्र—संज्ञा पुं० [सं० बन्धित्र] १. कामदेव। अनंग। २. चमड़े का पंखा। चर्मव्यजन। ३ शरीर पर का तिल या चिह्न (को०)।

बंधी[१]—संज्ञा पुं० [सं० बन्धिन्] वह जो बँधा हुआ हो। जिसमें किसी प्रकार का बंधन हो।

बंधी[२]—वि० बांधनेवाला। पकडनेवाला (को०)।

बंधी†[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बँधना (= नियत होना)] बँधा हुआ क्रम। वह कार्यक्रम जिसका नित्य होना निश्चित हो। बंधेज। जैसे,—(क) उनके यहाँ रोज सेर भर बंधी का दूध आता है। (ख) आप भी बंधी लगा लीजिए तो रोज की झंझट से छूट जाइएगा।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

बंधी(पु)[४]—संज्ञा पुं० [देशी बंध (= नौकर)] भृत्य। नौकर। दास। उ०—धरी एक बंधी सुनी पै मुक्कलि प्रथिराज।—पृ० रा०, २६।५१।

बंधु—संज्ञा पुं० [सं० बन्धु] १. भाई। भ्राता। २. वह जो सदा साथ रहे या सहायता करे। सहायक। ३. मित्र। दोस्त। ४. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे तीन भगण और दो गुरु होते हैं। इसे दोधक भी कहते है। जैसे,—बाण न बात तुम्हैं कहि आवे। सोई कहौ जिय तोहि जो भावे। का करिहौ हम यो हि वरैंगे। हैहयराज करी सु करैंगे।—केशव (शब्द०)। ५. पिता। ६. बंधूक पुष्प। ७. पति। स्वामी (को०)। ८. शासक। नियंता।

यौ०—बंधुकाम = भाई बंधुओ से प्रेम रखनेवाला। बंधुकृत्य = स्वजनो का कर्तव्य। बंधुदग्ध = संबंधियों द्वारा त्यक्त। बंधुदायाद, बंधुवांधव, बंधुवर्ग = भाईबंधु। बंधुभाव = बंधुता। बंधुहीन = असहाय।

बंधुक—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुक] १. दुपहरिया का फूल जो लाल रंग का होता है। २. दुपहरिया फूल का पौधा। ३. अवैध। जारज (को०)।

बंधुका, बंधुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धुका, बन्धुकी] पुंश्चली। स्वैरिणी। बंधकी (को०)।

बंधुजन—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुजन] स्वजन। आत्मीय (को०)।

बंधुजीव, बंधुजीवक—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुजीव, बन्धुजीवक] १. गुलदुपहरिया का पौधा। २. दुपहरिया का फूल। उ०—बंधुजीव लागै मलिन भागै बिंब प्रवाल। बाल अधर कों लाल लखि नलिन कुसित कुस लाल।—स० सप्तक, पृ० २७०।

बंधुजीवी—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुजीविन्] एक प्रकार का माणिक [को०]।

बंधुता—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धुता] १. बंधु होने का भाव। २. भाईचारा। ३. मित्रता। दोस्ती।

बंधुत्व—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुत्व] १. बंधु होने का भाव। बंधुता। २. भाईचारा। ३. मित्रता। दोस्ती।

बंधुदत्त—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुदत्त] वह धन जो कन्या को विवाह के समय माता पिता या भाइयों से मिलता है। स्त्रीधन।

बंधुदा—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धुदा] १. दुराचारिणी स्त्री। बदचलन औरत। २. वेश्या। रंडी।

बंधुमान्—वि० [सं० बन्धुमत्] भाई बंधुओंवाला। जो बंधुहीन न हो [को०]।

बंधुर—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुर] १. मुकुट। २. दुपहरिया का फूल। ३. बहरा मनुष्य। ४. हंस। ५. विडंग। ६. काकड़ासिंगी। ७. बक। बगला नामक पक्षी। ८. पक्षी। ९. भग (को०)। १०. खली (को०)।

बंधुर²—वि० १. रम्य। मनोहर। सुंदर। उ०—विधु बंधुर मुख भा बड़ी बारिज नैन प्रभाति। भौंह तिरीछी छबि गही रहति हिये दिन राति।—स० सप्तक, पृ० २३३। २. नम्र। ३. वक्र। टेढ़ा। ४. ऊबड़खाबड़। ऊँचा नीचा। उ०—विकट मेरी दूर मंजिल, राह बंधुर, निपट पंकिल। —अपलक, पृ० ४। ५. हानिकारक (को०)।

बंधुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धुरा] पुंश्चली। कुलटा [को०]।

बंधुरित—वि० [सं० बन्धुरित] झुका हुआ। नम्र [को०]।

बंधुल¹—संज्ञा पुं० [सं० बन्धुल] १. दुराचारिणी स्त्री से उत्पन्न पुरुष। बदचलन औरत का पुत्र। अवैध संतान। २. वेश्यापुत्र। रंडी का लड़का। ३. वेश्या का परिचारक या सेवक (को०)।

बंधुल²—वि० १. सुंदर। खूबसूरत। २. नम्र। झुका हुआ।

बंधूक—संज्ञा पुं० [पुं० बन्धूक] १. दे० 'बंधुक'। उ०—फूल उठे हैं कमल, अधर से ये बंधूक सुहाये।—साकेत, २७९। २. दोधक नामक वृत्त का एक नाम। इसे 'बंधु' भी कहते हैं। दे० 'बंधु'।

बंधूर¹—संज्ञा पुं० [सं० बन्धूर] विवर। छिद्र [को०]।

बंधूर²—वि० दे० 'बंधुर'।

बंधूलि—संज्ञा पुं० [सं० बन्धूलि] बंधुजीव। बंधुक [को०]।

बंधेज—संज्ञा पुं० [हिं० बँधना + एज (प्रत्य०)] १. नियत समय पर और नियत रूप से मिलने या दिया जानेवाला पदार्थ या द्रव्य। २. नियत समय पर या नियत रूप से कुछ देने की क्रिया या भाव। ३. किसी वस्तु को रोकने या बाँधने की क्रिया या युक्ति। ४. रुकावट। प्रतिबंध। उ०—सावंतन सह छिद्र करि नार कनैरा आय। बिरसिंघ दे बंधेज करि गढ़ गौंजर मह जाय। —प० रासो, पृ० १३९। ५. नियंत्रण। बंधन। मर्यादा। उ०—वर्णाश्रम बंधेज करि अपने अपने धर्म।—सुंदर० ग्रं०, भा० १. पृ० १६८। ६. वीर्य को जल्दी स्खलित न होने देने की युक्ति। बाजीकरण।

बंध्य¹—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध्य] ऐसा पुल जिसके नीचे से पानी न बहता हो। पानी रोकने के लिये बनाया हुआ धुस्स। बाँध।

बंध्य²—वि० १. बाँधने योग्य। २. जोड़ने योग्य। ३. बंध में आया हुआ। ४. व्यर्थ। बेकार। ५. न फलनेवाला (वृक्षादि)। ६. बाँझ [को०]।

यौ०—बंध्यफल = फलयुक्त न होनेवाला। न फलनेवाला।

बंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्ध्या] १. वह स्त्री जो संतान न पैदा कर सके। बाँझ।

यौ०—बंध्यातनय = बंध्यापुत्र। बंध्यादुहिता। बंध्यासुत। बंध्यासुता।

२. गाय जो बाँझ हो (को०)। ३. एक सुगंधि द्रव्य (को०)। ४. योनि का एक रोग (को०)।

बंध्याकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्ध्याकर्कटी] कड़वी या तिक्त ककड़ी [को०]।

बंध्यापन—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध्या + हिं० पन]। दे० 'बाँझपन'।

बंध्यापुत्र—संज्ञा पुं० [सं० बन्ध्यापुत्र] कोई ऐसा भाव या पदार्थ जिसका अस्तित्व ही असंभव हो। ठीक वैसा ही असंभव भाव या पदार्थ जैसे बंध्या का पुत्र। कभी न होनेवाली चीज। अनहोनी बात।

बंपुलिस—संज्ञा स्त्री० [बं ? + अं० पुलिस] मलत्याग के लिये म्यूनिसिपैलटी आदि का बनवाया हुआ वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण बिना रोक टोक जा सकें।

बंब—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बं बं शब्द। बं, शिव शिव, हर हर, इत्यादि शब्दों की ऊँची ध्वनि जो शैव लोग भक्ति की उमंग में आकर किया करते हैं। २. युद्धारंभ में वीरों का उत्साहवर्धक नाद। रणनाद। हल्ला। उ०—कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत धावत दिखावत हैं लाघो राघो बान के।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बोलना।—देना। उ०—ठिल्यो बुंदेला बंब दै बासा घेर्यो जाय। —लाल (शब्द०)।

३. नगारा। दुंदुभी। डंका। उ०—(क) कब नारद बंदूक चलाया। व्यासदेव कब बंब बजाया।—कबीर (शब्द०)। (ख) त्यों बहलोलखान रिस कीन्ही। तुरतहिं बंब कूच को दीन्ही।—लाल (शब्द०)।

बंबा—संज्ञा पुं० [अ० मंबा] १. जलकल। पानी की कल। पंप। २. सोता। स्रोत। ३. पानी बहाने का नल।

बंबार¹—संज्ञा पुं० [अं० बाम्ब] बम की वर्षा करनेवाले विमान। बमवर्षक यान। उ०—लाखों घर टैंकों बंबारों के हो गए हवाले।—हंस०, पृ० ४१।

बंबार²—वि० [सं० बर्बर, प्रा० बब्बर] बर्बर। क्रूर। उ०—सीस लगिग असमान खिज्यौ लंगा बंबारौ।—पृ० रा०, ७।३।

बंबी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नक्कारा। उ०—बज तबल तूर निघोष बंबी, सर्रा सोक असंक।—रघु० रू०, पृ० २२१।

बंबुर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बबूल'।

बंबू—संज्ञा पुं० [मलाया० बम्बू (=बाँस)] चंडू पीने की बाँस की छोटी पतली नली।

क्रि० प्र०—पीना।

बंभ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म, प्रा० बंभ] ब्रह्मा। उ०—चवं वेद बंभं हरी किती भाखी। जिनै ध्रम्म साध्रम्म संसार राखी।—पृ० रा०, १।५।

बंभण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण, प्रा० बंभण] विप्र। ब्राह्मण। उ०—बंभण भाट तेड़ावीया। दीधा साजी उतिम ठाई।—बी० रासो०, पृ० २५।

बंभणी—संज्ञा स्त्री० [देशी] हालाहल। विष [को०]।

बंभर—संज्ञा पुं० [सं० बम्भर] भ्रमर। भौंरा [को०]।

बंभराली—संज्ञा स्त्री० [सं० बम्भराली] मक्खी। मक्षिका [को०]।

बंस—संज्ञा पुं० [सं० वंश] १. कुल। खानदान। उ०—(क) सोइ सुनो स्रवण तिहि बंस जाम।—ह० रासो, पृ० ६६। (ख) मालूम होता है, छत्री वंस है।—मान०, भा० ५, पृ० ६।

मुहा०—वंस के बाने बजाना = वंश या कुल, खानदान की मर्यादा का निर्वाह करना। उ०—दारुन तेज दिलीस कै बीरनि काहू न वंस के बाने बजाए। छोड़ि हथ्यारनि हाथनि जोरि तहाँ सब ही मिलि मूँड़ मुड़ाए।—मति० ग्रं०, पृ० ४०५।

२. बाँस। उ०—मिश्री माँहैं मेल करि मोल विकाना बंस। यौं दादू महिगा भया पारब्रह्म मिलि हंस।—दादू०, पृ० ११६। दे० वंश।

बंसकार—संज्ञा पुं० [सं० वंश] [स्त्री० बंसकारी] बाँसुरी। उ०—सिंह संख डफ बाजन बाजे। बंसकार महुअरि सुर साजे।—जायसी (शब्द०)।

बंसरी—संज्ञा स्त्री० [सं० वंश + हिं० री (प्रत्य०)] दे० 'बंसी'।

बंसलोचन—संज्ञा पुं० [सं० वंशलोचन] बाँस का सार भाग जो उसके जल जाने के बाद सफेद रंग के छोटे छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है।

विशेष—यह रंगपूर, सिलहट और मुरशिदाबाद में लंबी पोर-वाले बाँसों की गाँठों में से उनको जलाने पर निकलता है। इसे बसकपूर भी कहते हैं।

बंसार—संज्ञा पुं० [देश०] बंगसाल। भंडार। (लश्करी)।

बंसावरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वंशावलि] दे० 'वंशावली'। उ०—बंसावरि बरनत सु सुनि, तँवर राज मति धीर।—प० रासो, पृ० ३४।

बंसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वंशी] १. बाँस की नली का बना हुआ एक प्रकार का बाजा। बाँसुरी। वंशी। मुरली।

विशेष—यह बालिश्त सवा बालिश्त लंबा होता है और इसमें सात स्वरों के लिये सात छेद होते हैं। यह बाजा मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

२. मछली फँसाने का एक औजार। उ०—ज्यों बंसी गहि मीन लीन भे मारि काल ले खाई।—जग० श०, पृ० ११६।

विशेष—एक लंबी पतली छड़ी के एक सिरे पर डोरी बँधी होती है और दूसरे सिरे पर अंकुश के आकार की लोहे की एक कँटिया बँधी रहती है। इसी कँटिया में चारा लपेट-कर डोरी को जल में फेंकते हैं और छड़ी को शिकारी पकड़े रहता है। जब मछली वह चारा खाने लगती है तब वह कँटिया उसके गले में फँस जाती है और वह खींचकर निकाली जाती है।

३. मागधी मान में ३० परमाणु की तौल। त्रसरेणु। ४. विष्णु, कृष्ण और राम जी के चरणों का रेखाचिह्न। ५. एक प्रकार का तृण।

विशेष—यह धान के खेतों में पैदा होता है। इसको 'बाँसी' भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ बाँस की पत्तियों के आकार की होती हैं। इससे धान को बड़ी हानि होती है।

बंसी²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ।

बंसीधर—संज्ञा पुं० [सं० वंशीधर] श्रीकृष्ण।

बंहिमा—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० बंहिमन्] अधिकता। प्राचुर्य [को०]।

बंहिष्ठ—वि० [सं०] १. अत्यधिक। बहुत ज्यादा। २. अत्यंत गहरा या नीचा [को०]।

बंहीय—वि० [सं० बंहीयस्] १. अत्यधिक। बहुत। बहुल। २. अत्यधिक तगड़ा या मोटा [को०]।

बँउखा‡—संज्ञा पुं० [सं० बाहुक या हिं० बहूँटा] काले धागे का एक बंध जिसमें झब्बे लगे रहते हैं और जिसे स्त्रियाँ बाँह में कोहनी के ऊपर बाँधती हैं।

बँकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंक + आई (प्रत्य०)] वक्रता। तिरछापन। उ०—(क) गढरचना बरुनी अलक चितवन भौंह कमान। आघु बँकाई ही बढ़ै तरुनि तुरगम तान।—बिहारी र०, दो० ३१६। (ख) कुंजर हंस सौं छीनि लई गति भौंह कमान सौं लीन्ह बँकाई।—मोहन०, पृ० ६७।

बँकार†—वि० [सं० वक्र] वक्र। तिरछा। उ०—नासा मोती जगमग जोती लोचन बंक बँकार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५१।

बँकैत—वि०[सं० वङ्क + हिं० ऐत (प्रत्य०)][वि० स्त्री० बँकैती] बाँका। तिरछा। उ०—कामिनी को नीको विधुवदन बँकैत, कैधौं मैनसर काटे नैन पलक बँकैती सो।—पजनेस०, पृ० १०।

बँकैती—संज्ञा स्त्री० बाँकापन।

बँकैयाँ—क्रि० वि० [सं० वक्र ?] घुटनों के बल।

बँगरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक आभूषण। दे० 'बँगली'। उ०—मोरी बँगरी मुरकाइ डारी झट पकर निडर नटवर।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३८।

बँगला¹—वि० [हिं० बंगाल] बंगाल देश का। बंगाल संबंधी जसे, बँगला मिठाई, बँगला चूड़ा।

बँगला[२]—संज्ञा पुं० १. एकतला कच्चा मकान जिसपर फूस और खपड़ों का छप्पर पडा हो। २. वह छोटा हवादार और चारो ओर से खुला हुआ एक मंजिल का मकान जिसके चारों ओर बरामदे हो।

विशेष—पहले इस प्रकार के मकान बंगाल में अधिकता से होते थे। उन्ही की देखादेखी अंग्रेज भी अपने रहने के मकान बनाने और उन्हे बँगला कहने लगे।

३. वह छोटा हवादार कमरा जो प्राय: मकानो की सबसे ऊपरवाली छत पर बनाया जाता है। उ०—बैठे दोउ उसीर बँगला में ग्रीषम सुख विलसत दंपति वर।—व्रजनिधि० ग्रं०, पृ० १५६। ४. बंगाल देश का पान।

बँगला[३]—संज्ञा स्त्री० बंगाल देश की भाषा। बंगभाषा।

बँगली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंगला] स्त्रियो का एक आभूषण जो हाथो में चूडियों के साथ पहना जाता है। उ०—सदा सुहागिनि पहिरे चूरी। सुबक पछेली बँगली रूरी।—व्रज० वर्णन, पृ० ६।

बँगुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बँगली'।

बंचना(पु)†—क्रि० स० [हिं० बाँचना] बाँच लेना। पढ लेना। समझ जाना। उ०—ननदी ढिग आय नचाय कै नैन कछू कहि बैन भुवै कसि गी। बँचिगी सब मैं विपरीत कथा नटनागर फदन मैं फँसिगी।—नट०, पृ० ६१।

बँचवाना—क्रि० स० [हिं० बाँचना] पढवाना। दूसरे को पढ़ने में प्रवृत्त करना। दूसरे से पढ़वाना।

बँचुई—संज्ञा स्त्री० [देश०] सालपान नाम की झाडी जो भारत के प्राय: सभी गरम प्रदेशों मे होती है और वर्षा ऋतु मे फूलती है।

बँटना[१]—क्रि० अ० [सं० वण्टन या वर्तन] १. विभाग होना। अलग अलग हिस्सा होना। जैसे,—यह प्रदेश तीन भागो में बँटा है। २ कई व्यक्तियो को अलग अलग दिया जाना। कई प्राणियों के बीच सबको प्रदान किया जाना। जैसे,—(क) वहाँ गरीबों को कपडा बँटना है। (ख) अब तो सब आम बँट गए, तुम्हारे लिये एक भी न बचा।

संयो० क्रि०—जाना।

बँटना[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बटना'।

बँटवाई[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० √बाँट+वाई (प्रत्य०)] बाँटने की मजदूरी।

बँटवाई[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाटना] पिसवाने की मजदूरी।

बँटवाना[१]—क्रि० स० [सं० वण्टन या वितरण] बाँटने का काम दूसरे से कराना। सबको अलग अलग करके दिलवाना। वितरण कराना।

बँटवाना[२]—क्रि० स० [सं० वर्तन (=पेषण पीसना)] पिसवाना।

बँटवारा—संज्ञा पुं० [हिं० बाँट+वारा (प्रत्य०)] १. बाँटने या भाग करने की क्रिया। किसी वस्तु के दो या अधिक भाग या हिस्से करना। विभाग। तकसीम। २. अलग अलग होना। अलगौझा।

बँटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँट+आई (प्रत्य०)] १. बाँटने का काम। वितरण करना। २. बाँटने की मजदूरी। ३. बाँटने का भाव। ४. दूसरे को खेत देने का वह प्रकार जिसमे खेत जोतनेवाले से मालिक को लगान के रूप मे धन नही मिलता बल्कि उपज का कुछ अंश मिलता है। जैसे,—अब की बार सब खेत बँटाई पर उठा दो।

बँटाना—क्रि० स० [हिं० बाँटना] १. भाग करा लेना। हिस्सा कराकर अपना अश ले लेना। २. किसी काम मे हिस्सेदार होने के लिये या दूसरे का बोझ हलका करने के लिये शामिल होना। जैसे, दु:ख बँटाना।

मुहा०—हाथ बँटाना = दे० 'हाथ' के मुहा०।

बँटावन(पु)†—वि० [हिं० √बँट+आवन (प्रत्य०)] बँटानेवाला। हिस्सा करानेवाला। बोझ हलका करानेवाला। उ०—बोलत नही मौन कह साधी बिपति बटावन वीर।—सूर (शब्द०)।

बँटैया‡—संज्ञा पुं० [हिं० √बँट+ऐया (प्रत्य०)] बँटा लेनेवाला। बँटानेवाला। हिस्सा लेनेवाला।

बँड़वा‡—वि० [हिं०] दे० 'बाँडा'।

बँडेर, बँडेरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बँड़ेरी'।

बँड़ेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरेंडा (=बड़ा) या सं० वरदण्ड] वह लकड़ी जो खपरैल की छाजन में मँगरे पर लगती है। यह दोपलिया छाजन में बीचोबीच लंबाई में लगाई जाती है। उ०—मोरी का पानी बँड़ेरी जाय। कडा डूबे सिल उतराय।—कबीर (शब्द०)।

बँदरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बनरा'।

बँदरिया†, बँदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वानर की मादा।

बँदूख(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बंदूक'। उ०—चले तीर नेजा बँदूखै बरच्छी।—प० रासो०, पृ० १८४।

बँदेरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बन्दी या हिं० बद+एरी (प्रत्य०)] [स्त्री० बँदेरी] बंदी। कैदी। बँधुआ। उ०—परा हाथ दसकंदर बैरी। सो कित छाड़ि कै भई बँदेरी।—जायसी (शब्द०)।

बँधना[१]—क्रि० अ० [सं० बन्धन] १. बंधन मे आना। डोरी तागे आदि से घिरकर इस प्रकार कसा जाना कि खुल या बिखर न सके या अलग न हो सके। बद्ध होना। छूटा हुआ न रहना। बाँधा जाना। २. रस्सी आदि द्वारा किसी वस्तु के साथ इस प्रकार संबद्ध होना कि कही जा न सके। जैसे, घोड़ा बँधना, गाय बँधना।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग अन्यान्य अनेक क्रियाओ की भाँति उस चीज के लिये भी होता है जो बाँधी जाती है और उसके लिये भी जिससे बाँधते हैं। जैसे,—सामान बँधना, गठरी बँधना, रस्सी बँधना।

३. कैद होना। बदी होना।

मुहा०—बँधे चले आना = चुपचाप कैदियों की तरह या स्वामिभक्त सेवक की तरह जिधर लाया जाय उधर आना। उ०—

अगर यही हथकंडे हैं तो दस पाँच दिन में जवानाने तुर्क बँधे चले जाएँगे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६२।

४. स्वच्छंद न रहना। ऐसी स्थिति में रहना जिसमें इच्छानुसार कहीं आ जा न सकें या कुछ कर न सकें। प्रतिबंध रहना। फँसना। अटकना। ५. प्रतिज्ञा या वचन आदि से बद्ध होना। शर्त वग़ैरह का पाबंद होना। ६. गँठना। ठीक होना। दुरुस्त होना। जैसे, मजमून बँधना। ७. क्रम निर्धारित होना। कोई बात इस प्रकार चली चले, यह स्थिर होना। चला चलनेवाला कायदा ठहराना। जैसे, नियम बँधना, बारी बँधना। उ०—तीनहूँ लोकन की तरुणीन की बारी बँधी हुती दंड दुहू की।—केशव (शब्द०)। ८. प्रेमपाश में बद्ध होना। मुग्ध होना। उ०—अली कली ही तें बँध्यो आगे कौन हवाल।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—दे० 'बाँधना'।

बँधना[२]—संज्ञा पुं० [सं० बन्धन] १. वह वस्तु (कपड़ा या रस्सी आदि) जिससे किसी चीज को बाँधें। बाँधने का साधन। २. वह थैली जिसमें स्त्रियाँ सीने पिरोने का सामान रखती हैं।

बँधनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० बन्धन, हिं० बँधना] १. बंधन। जिसमें कोई चीज बँधी हुई हो। २. जो किसी चीज की स्वतंत्रता आदि में बाधक हो। उलझाने या फँसानेवाली चीज। उ०—मीता मन वा बँधनि ते कौन सके अब छोरि।—रसनिधि (शब्द०)।

बँधवाना—क्रि० स० [हिं० बाँधना प्रे० रूप०] १. बाँधने का काम दूसरे से करवाना। दूसरे को बाँधने में प्रवृत्त करना। २. देना आदि नियत कराना। मुकर्रर कराना। ३. कैद कराना। ४. तालाब, कुआँ, पुल आदि बनवाना। तैयार कराना।

बँधान(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बंधान'। उ०—(क) नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान।—मानस, १।३०२। (ख) मिथिलापुर के नर्तक नाना। नाचै डगै न ताल बँधाना।—रघुराज (शब्द०)।

बँधाना—क्रि० स० [हिं० बाँधना का प्रे० रूप] १. बाँधने के लिये प्रेरणा करना। बाँधने का काम दूसरे से कराना। बँधवाना। २. धारण कराना। जैसे, धीरज बँधाना, हिम्मत बँधाना। ३. कैद कराना। दे० 'बँधवाना'। ४. स्वयं किसी का जान बूझकर बधन में पड़ जाना।

बँधिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० बधन] वह डोरी जिससे ताने की साँची बाँधी जाती है। (जुलाहा)।

बँधुआ—संज्ञा पुं० [हिं० बँधना + उआ (प्रत्य०)] कैदी। बंदी। उ०—बँधुआ को जैसे लखत कोइ कोइ मनुष सुतंत।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

बँधुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बँधुआ'।

बँबाना†—क्रि० अ० [अनुध्व०] गौ आदि पशुओं का बाँ बाँ शब्द करना। रँभाना।

बँभनई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बँभनाई'।

बँभनाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्राह्मण, प्रा० बंभण, + हिं० आई (प्रत्य०)] १. ब्राह्मणत्व। ब्राह्मणपन। २. हठ। जिद्द। दुराग्रह (व्यं०)।

बँसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंसरी] १. बंसी। कँटिया। उ०—जनु पीतम मन मीन गहन कों बँसरी दई लटकाय।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।२. । दे० बाँसुरी'।

बँसवरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० वंश (= बाँस) + अवलि + हिं० या (प्रत्य०)] वह जगह जहाँ अनेक बाँस उगे हों।

बँसुरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँसुरी + या (स्वा० प्रत्य०)] दे० 'बाँसुरी'। उ०—बिच बिच बजत बँसुरिया सबको नेह पाग बस कीने।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८८।

बँसुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बंसी', 'बाँसुरी'। उ०—मोहन बँसुरी लेत है बजि कै बसुरी जीत।—स० सप्तक, पृ० १८७।

बँसोर†—संज्ञा पुं० [सं० वंश, हिं० बाँस + ओर (प्रत्य०)] बाँस के डाले आदि बनानेवाला निम्न जाति का व्यक्ति। उ०—होरी ने देखा, दमरी बँसोर सामने खड़ा है।—गोदान, पृ० ३४।

बँहगी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाह + अङ्गिका] भार ढोने का एक उपकरण। काँवर।

विशेष—एक लबे बाँस के टुकड़े के दोनों सिरों पर रस्सियों के बड़े बड़े छीके लटका दिए जाते हैं। इन्ही छीकों में बोझ रख देते हैं और लकड़ी को बीच में से कंधे पर रखकर ले चलते हैं।

क्रि० प्र०—उठाना।—ढोना।

ब[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. सिंधु। ३. भग। ४. जल। ५. सुगंधि। ६. वयन। बुनना। ७ ताना। ८. कुंभ। ९. दे० 'गंधन'।

ब[२]—प्रत्य० [फ़ा०] १. से। साथ। जैसे, बखुद, बखुदी। २. वास्ते। लिये। जैसे, बखुदा। ३. पर। जैसे, दिन ब दिन।

बइट्ठना(पु)‡—क्रि० [सं० √विश् या √ उपविश्, प्रा० बइट्ठ] दे० 'बैठना'। उ०—दरबार बइट्ठे दिवस भइट्ठे।—कीर्ति०, पृ० ४६।

बइर(पु)†[१]—संज्ञा पुं० [सं० वैर, प्रा० वइर] शत्रुता। दुश्मनी। वैर।

बइर†[२]—संज्ञा पुं० [सं० वदर, शौ०प्रा० बउर] बेर। बदरीफल।

बइर‡[३]—वि० [सं० बधिर, प्रा० बहिर] बहरा। बधिर।

बइरी†—संज्ञा पुं० [सं० वैरी] शत्रु। दुश्मन।

बइरीसाल(पु)—संज्ञा पुं० [देश० ?] एक किस्म का घोड़ा। घोड़े की एक नस्ल का नाम। उ०—बइरीसाल दीयो अषहँराज।—बी० रासो, पृ० ५७।

बइसना†[१]—संज्ञा पुं० [सं० उप √ विश्; प्रा० बेस, अप० धात्वा०

बइस; गुज० बेसवुँ] बैठना। उ०—(क) खेलाँ मेल्ह्या माँडली बइस सभा माँहि मोहेउ छइ राइ।—बी० रासो, पृ० ३। (ख) वन खंड काली कोईली। बइसती अंब कइ चंप की डालि।—बी० रासो, पृ० ६५।

बइसना†[2]—संज्ञा पुं० बैठने की क्रिया। उपवेशन। बैठना।

बइसाना, बइसारना—क्रि० स० [अप० बइसारण] दे० 'बैसारना उ०—आँवलो गेहती बइसाड़ी छइ आँण।—बी० रासो, पृ० ४५।

बइसुरी†—संज्ञा पुं० [देश०] खर पतवार।

बइहनड़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० भगिनी, प्रा० वहिणिश्रा] भगिनी। बहन। उ०—भूली है बइहनडी इणी बीसास।—बी० रासो, पृ० ७६।

बईठनाⓅ†—क्रि० अ० [अप० बइट्ठ] दे० 'बैठना'। उ०—सखी सरेखी साथ बईठी। तपै सूर ससि आव न दीठी।—जायसी (शब्द०)।

बउरⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'बौर' वा 'मौर'।

बउराⓅ†—वि० [हिं० सं० बातुल] दे० 'बावला'।

बउरानाⓅ†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बौराना'।

बउलानाⓅ†—क्रि० स० [प्रा० बोल्ल, बुल्ल] बुलाना। उ०—मान पथिक तिहा आपीयो। कुंवर बउलावी बीसलराइ।—बी० रासो, पृ० १०७।

बउहारी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'बुहारी'।

बऊ†—संज्ञा स्त्री० [सं० बधू, प्रा० बहु, बहू बँग० बऊ] वधू। वहू। पत्नी। उ०—पंजाबी बऊ के लिये आगुन (=पजाबी बहू को ले आइए)।—भस्मावृत०, पृ० ७१।

बएसⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वयस] उम्र। अवस्था। उ०—बारि बएस गो प्रीति न जानी। तरुनी भइ मैमंत भुलानी। जायसी० ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२५।

बक[1]—संज्ञा पुं० [सं० वक] १. बगला। २. अगस्त नामक पुष्प का वृक्ष। ३. कुबेर। ४. बकासुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। ५. एक राक्षस जिसे भीम ने मारा था। ६ एक ऋषि का नाम। ७. धोखा। छल। फरेब (को०)। ८. दे० 'बकयंत्र'।

बक[2]—वि० बगले सा सफेद। उ०—अहहिं जो केश भँवर जेहि बसा। पुनि बक होहिं जगत सब हँसा।—जायसी। (को०)।

बक[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० वच, हिं० बकना] घबड़ाहट। प्रलाप। बकवाद।

क्रि० प्र०—लगना।

यौ०—बकबक वा बकझक = बकवाद। प्रलाप। व्यर्थ वाद। उ०—ऐसे बकझक खिझलायकर सुरपति ने मेघपति को बुलाय भेजा।—लल्लू (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

बकचंदन—संज्ञा पुं० [सं० बकचन्दन] एक वृक्ष का नाम जिसकी पत्तियाँ गोल और बड़ी होती हैं।

विशेष—इसका पेड़ ऊंचा और लकड़ी दृढ़ होती है। इसका फल लंबा और पतला होता है जिसमें छह से आठ नौ अंगुल लंबे तीन चार दल होते हैं। यह ऊपर कुछ ललाई लिए और भीतर पीलापन लिए भूरे रंग का होता है। फल सिर के दाद में पीसकर लगाए जाते हैं। इसे भकचंदन भी कहते हैं।

बकचकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वक्र + चक्र ?] एक प्रकार का शस्त्र। उ०—बकचक्र चलावै दुहूँ दिसि धावै हयन कुदावै फूल भरे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

बकचन—संज्ञा पुं० [सं० बकचन्दन] दे० 'बकचंदन'।

बकचर—संज्ञा दे० [सं०] ढोंगी व्यक्ति। वह जो बक की सी वृत्ति-वाला हो [को०]।

बकचा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकुचा'।

बकचिंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० बकचिञ्चिका] एक प्रकार की मछली। इस मछली के मुँह की जगह लंबी चोंच सी होती है। कौवा मछली।

बकची—संज्ञा स्त्री० [सं० बकाची] १. एक प्रकार की मछली। २. दे० 'बकुची'।

बकचुन—संज्ञा पुं० [सं० बाकुची] एक प्रकार का फूलनेवाला पौधा। उ०—जाही जूही बकचुन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सोहावा।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० ३५।

बकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण। २. भीम [को०]।

बकठाना†—क्रि० स० [सं० विकुण्ठन] किसी बहुत कसैली चीज, जैसे कटहल के फूल या तेंदू आदि के फल, खाने से मुँह का सूख जाना, उसका स्वाद बिगड़ जाना और जीभ का सुकड़ जाना।

बकतर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का जिरह या कवच जिसे योद्धा लड़ाई मे पहनते हैं। उ०—कबिरा लोहा एक है गढने मे है फेर। ताही का बकतर बना, ताही का शमशेर।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—यह लोहे की कड़ियों का बना हुआ जाल होता है तथा इससे गोली और तलवार से वक्षस्थल की रक्षा होती है।

यौ०—बकतरपोश = कवचधारी।

बकताⓅ—वि० [सं० वक्तृ, वक्ता] दे० 'वक्ता'। उ०—(क) श्रोता बकता ज्ञाननिधि कथा राम कै गूढ़।—मानस, १।३०। (क) कथता बकता मरि गया, मूरख मूढ़ अजान।—कबीर सा० सं०, पृ० ८८।

बकताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकता + ई (प्रत्य०)] वक्तृता। बकवाद। बकवास। ऊलजलूल बातें। उ०—नाम नाहिं उत्तर मँह चीन्है, बहुत कहै बकताई।—जग० श०, भा० २, पृ० ६०।

बकतिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तर प्रदेश, बंगाल और आसाम की नदियों मे होती है।

बकधूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धूप या सुगंधित द्रव्य [को०]।

बकध्यान—संज्ञा पुं० [सं० बकध्यान] ऐसी चेष्टा या मुद्रा या ढंग

जो देखने में तो बहुत साधु और उत्तम जान पड़े, पर जिसका वास्तविक उद्देश्य बहुत ही दुष्ट और अनुचित हो। उस बगले की सी मुद्रा जो मछली पकड़ने के लिये बहुत ही सीधा सादा बनकर ताल के किनारे खड़ा रहता है। पाखंडपूर्ण मुद्रा। बनावटी साधुभाव। उ०—रण ते भागि निलज गृह आवा। इहाँ आइ बकध्यान लगावा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग ऐसे समय होता है जब कोई व्यक्ति अपना बुरा उद्देश्य सिद्ध करने के लिये अथवा झूठ मुठ लोगों पर अपनी साधुता प्रकट करने के लिये बहुत सीधा सादा बन जाता है।

बकध्यानी—वि० [सं० बक+ध्यानिन्] बगले की तरह बनावटी ध्यान करनेवाला। जो देखने में सीधा सादा पर वास्तव मे दुष्ट और कपटी हो। वंचक भक्त। बगला भगत।

बकनख—संज्ञा पुं० [सं० बकनख] महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

बकना—क्रि० स० [सं० वचन] १. ऊटपटाँग बात कहना। अयुक्त बात बोलना। व्यर्थ बहुत बोलना। उ०—(क) जेहि धरि सखी उठावहिं सीस विकल नहिं डोल। घर कोइ जीव न जानइ मुखरे बकत कुबोल।—जायसी (शब्द०)। (ख) बाद ही बाढ़ नदी के बकै मति बोर दे बज विषय विष ही को।—पद्माकर (शब्द०)। २. प्रलाप करना। बड़बड़ाना। उ०—(क) काजी तुम कौन किताब बखाना। झंखत बकत रह्यो निशि बासर मत एकौ नहिं जाना।—कबीर (शब्द०)। (ख) नाहिन केशव साख जिन्हैं बकि के तिनसो दुखवै मुख कोरो।—केशव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—चलना।—जाना।—डालना।

मुहा०—बकना झकना=बड़बड़ाना। बिगड़कर व्यर्थ की बातें करना।

†३. कहना। वर्णन करना। उ०—बकूँ जिका ज्यारी विगत, अवर न कोय उपाय।—रघु० रू०, पृ० १३।

बकनिषूदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण। २. भीष्म (को०)।

बकनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकना] बकवास। उ०—सूरत मिली जाय ब्रह्म सो, दे मन बुध को पूठ। जन दरिया जहँ देखिए कथनी बकनी झूठ।—दरिया० बानी, पृ० २०।

बकपंचक—संज्ञा पुं० [सं० बकपञ्चक] कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की एकादशी से पूर्णमासी तक का समय जिसमे मास, मछली आदि खाना बिल्कुल मना है।

बकबक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकना] बकने की क्रिया या भाव। व्यर्थ की बहुत अधिक बातें। जैसे,—तुम जहाँ बैठते हो वहीं बकबक करते हो।

मुहा०—बकबक झकझक=बकवाद। प्रलाप। उ०—इस खुशगपी ने आज सितम ढाया, लेक्चर सुनने में न आया, मुफ्त की बकबक झकझक।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७।

बकम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'बक्कम'।

बकमौन[1]—संज्ञा पुं० [सं० बक+मौन] अपना दुष्ट उद्देश्य सिद्ध करने के लिये बगले की तरह सीधे बनकर चुपचाप रहने की क्रिया या भाव।

बकमौन[2]—वि० चुपचाप अपना काम साधनेवाला। उ०—मुख मे, कर में काख में हिय में चोर बकमौन। कहै कबीर पुकारि के पंडित चीन्हो कौन।—कबीर (शब्द०)।

बकयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० बकयन्त्र] वैद्यक में एक यंत्र का नाम।

विशेष—यह काँच की एक शीशी होती है जिसका गला लंबा होता है और सामने बगले के गले की तरह झुका होता है। इस यंत्र से काम लेने के समय शीशी को आग पर रख देते हैं और झुके हुए गले के सिरे पर दूसरी शीशी अलग लगा देते हैं जिसमें तेल या अरक आदि जाकर गिरता है।

बकर[1]—संज्ञा पुं० [अ०] गाय या बैल (को०)।

यौ०—बकर ईद=मुसलमानों का एक त्योहार जिसे बकरीद कहते हैं।

बकर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] समस्त शब्दों मे बकरा का रूप। जैसे, बकरकसाई, बकरकसाव।

बकरकसाई—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकरकसाव।'

बकरकसाव—संज्ञा पुं० [हिं० बकरी+प्रा० कस्साव (=कसाई)] [स्त्री० बकरकसाविन] बकरों का मांस बेचनेवाला पुरुष। चिक।

बकरदाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकर+दाढ़ी] बकरे की तरह दाढ़ी। केवल ठुड्डी पर उगी दाढ़ी। उ०—अपनी बकरदाढ़ी को थामे दरोगा साहब प्रकट में ध्यान से मेरी बात सुन रहे थे।—अभिशप्त, पृ० १०३।

बकरना—क्रि० स० [हिं० बकार अथवा बकना] १. आपसे आप बकना। बड़बड़ाना। उ०—दही मथत मुख ते कछु बकरति गारी दै दै नाम। घर घर डोलत माखन चोरत षटरस मेरे धाम।—सूर (शब्द०)। २. अपना दोष या करतूत आपसे आप कहना। कबूल करना। जैसे,—जब मंत्र पढ़ा जायगा तब जो चोर होगा वह आपसे आप बकरेगा।

बकर बकर—वि० [अनुध्व०] आश्चर्यचकित। उ०—ऐसे अवसरों पर पडिताइन गम खा जातीं, बकर बकर ताकती रह जातीं अपने पतिपरमेश्वर की ओर।—नई०, पृ० ५।

बकरा—संज्ञा पुं० [सं० बर्कर] [स्त्री० बकरी] एक प्रसिद्ध चतुष्पाद पशु। उ०—बकरी खाती घास है ताकी काढ़ी खाल। जो नर बकरी खात हैं तिनको कवन हवाल।—कबीर (शब्द०)।

पर्या०—अज। छाग। बकर।

मुहा०—बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी=दोषी या अपराधी कब तक छिपा रह पाएगा। उ०—बस आगे यह डोंगा चलता नजर नहीं आता। बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी।—मान०, भा० १, पृ० ६।

विशेष—इस पशु के सींग तिकोने, गठीले और ऐंठनदार तथा पीठ की ओर झुके हुए होते हैं, पूँछ छोटी होती है, शरीर से एक प्रकार की गंध आती है और खुर फटे होते हैं। यह जुगाली करके खाता है। कुछ बकरों की ठोडी के नीचे लंबी दाढी भी होती है और कुछ जातियों के बकरे बिना सींग के भी होते हैं। कुछ बकरों के गले मे नीचे या दोनों ओर स्तन की भाँति चार चार अंगुल लंबी और पतली थैली होती है जिसे गलस्तन या गलथन कहते हैं। बकरों की अनेक जातियाँ होती हैं। कोई छोटी, कोई बडी, कोई जंगली, कोई पालतू, किसी के बाल छोटे और किसी के लंबे और बडे होते हैं। आर्य जाति को बकरों का ज्ञान बहुत प्राचीन काल से है। वेदों में 'अज' शब्द गो के साथ ही साथ कई जगह आया है। बकरे की चर्बी से देवताओं को आहुति देने का विधान अनेक स्थलों में है। वैदिक काल से लेकर स्मृति काल तक और प्रायः आज तक अनेक स्थानों में, भारतवर्ष में, यह प्रथा थी कि जब किसी के यहाँ कोई प्रतिष्ठित अतिथि आता था तो उसके सत्कार के लिये गृहपति बड़े बकरे को मारकर उसके मांस से अतिथि का आतिथ्य सत्कार करता था। बकरे के मास, दूध और यहाँ तक कि बकरे के सग रहने को भी वैद्यक में यक्ष्मा रोग का नाशक माना है। बकरी का दूध मीठा और सुपाच्य तथा लाभदायक होता है पर उसमे से एक प्रकार की गंध आती है जिससे लोग उसके पीने में हिचकते हैं। वेदों में 'आज्य' शब्द घी के लिये आता है जिससे जान पड़ता है, आर्यों ने पहले पहले बकरी के दूध से ही घी निकालना प्रारंभ किया था। यद्यपि सब जाति की बकरियाँ दुधार नहीं होती, फिर भी कितनी ऐसी जातियाँ भी हैं जो एक सेर से पाँच सेर तक दूध देती हैं। बकरियों के अयन मे दो थन होते हैं और वे छह महीने मे एक से चार तक बच्चे जनती हैं। बच्चों के मुँह मे पहले चौभर को छोड़कर नीचे के दाँत नही होते पर छठे महीने दाँत निकल आते हैं। ये दाँत प्रतिवर्ष दो दो करके टूट जाते हैं। उनके स्थान पर नए दाँत जमते जाते हैं और पाँचवे वर्ष सब दाँत बराबर हो जाते हैं। यही अवस्था बकरे की मध्य आयु की है। बकरो की आयु प्रायः १३ वर्ष की होती है, पर कभी कभी वे इससे अधिक भी जीते हैं। इनके खुर छोटे और कड़े होते हैं और बीहड़ स्थानो मे, जहाँ दूसरे पशु आदि नहीं जा सकते, बकरा अपना पैर जमाता हुआ मजे में चला जाता है। हिमालय में तिब्बती बकरियों पर ही लोग माल लादकर सुख से तिब्बत से भारत की तराई मे लाते और यहाँ से तिब्बत ले जाते हैं। अगूरा, कश्मीरी आदि जाति की बकरियों के बाल लबे, अत्यंत कोमल और बहुमूल्य होते हैं और उनसे पश्मीने, शाल, दुशाले आदि बनाए जाते हैं। बकरा बहुत गरीब पशु होता है और कड़वे, मीठे, कटीले सब प्रकार के पेड़ो की पत्तियाँ खाता है। यह भेड़ की भाँति डरपोक और निर्बुद्धि नहीं होता बल्कि साहसी और चालाक होता है। बधिया करने पर बकरे बहुत बढ़ते और हृष्टपुष्ट होते हैं। उनका मांस भी अधिक अच्छा होता है।

बकरम—संज्ञा पुं० [अ० बक्रम] एक प्रकार का कड़ा किया हुआ वस्त्र जो आस्तीन, कालर आदि में कड़ाई के लिये लगाया जाता है।

बकरवाना—क्रि० स० [हिं० बकरना का प्रेरणार्थक] किसी से अपराध कबुलवाना। बकराना।

बकराना—क्रि० सं० [हिं० बकरना] दोष या करतूत कहलाना। कबूल करना।

बकरिपु—संज्ञा पुं० [सं० बकरिपु] भीमसेन का एक नाम।

बकरीद—संज्ञा स्त्री० [अ० बकर+ईद] मुसलमानों का एक त्योहार।

बकल—संज्ञा पु० [सं० वल्कल] दे० 'बकला'। उ०—बकल बसन, फल असन करि, करिहौं बन बिस्राम। —अ० ग्र०, पृ० ११८।

बकलस—संज्ञा पु० [अं० बकल्स] एक प्रकार की चौकोर या लबोतरी विलायती अँकुसी या चौकोर छल्ला जो किसी बंधन के दो छोरों को मिलाए रखने या कसने के काम मे आता है। बकसुआ।

विशेष—यह लोहे, पीतल या जर्मन सिल्वर आदि का बनता है और विलायती बिस्तरबंद या वेस्टकोट आदि के पिछले भाग अथवा पतलून की गेलिस आदि में लगाया जाता है। कहीं कही, जैसे जूतों पर, इसे केवल शोभा के लिये भी लगाते हैं।

बकला—पुं० [स० वल्कल] १. पेड़ की छाल। २. फल के ऊपर का छिलका। उ०—निगम कल्पतरु को सुफल, बीज न बकला जाहि। कहन लगे रस रँगमगे, सुंदर श्री सुक ताहि।—नंद० ग्रं०, पृ० २२०।

बकलो[1]—संज्ञा स्त्री० [कों०] एक वृक्ष जो लंबा और देखने में बहुत सुंदर होता है। गुलरा। धबरा खरधवा।

विशेष—इसकी छाल सफेद और चिकनी होती है। इसकी लकड़ी चमकीली और अत्यत दृढ होती है। यह वृक्ष बीजो से उगता है तथा इसके पेड़ मध्य भारत और हिमालय पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक होते हैं। इसकी लकड़ी से आरायशी और खेती के सामान बनाए जाते हैं तथा इसके लट्ठे रेल की सड़क पर पटरी के नीचे बिछाए जाते हैं। इसका कोयला भी अच्छा होता है और पत्ते चमड़ा सिझाने के काम आते हैं। इस पेड़ से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो कपड़े छापने के काम मे आता है। इसे धावा, धव, आदि भी कहते हैं।

२. फल आदि का पतला छिलका।

बकलो[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] अघोरी नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी से हल और नावें बनती हैं। वि० दे० 'अघोरी'।

बकवती—संज्ञा स्त्री० [सं० बकवती] एक नदी का प्राचीन नाम।

बकवाद—संज्ञा स्त्री० [हिं० बक+वाद] व्यर्थ की बात। बकवक। सारहीन वार्ता। उ०—(क) खलक मिला खाली रहा बहुत

लिया बकवाद। बाँभ झुलावे पालना तामे कौन सवाद।—कबीर (शब्द०)। (ख) कहि कहि कपट सँदेसन मधुकर कत बकवाद बढ़ावत। कारो कुटिल निठुर चित अंतर सूरदास कवि गावत।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

बकवादी—वि० [हिं० बकवाद + ई (प्रत्य०)] बकवाद करनेवाला। बक बक करनेवाला। बहुत बात करनेवाला। बक्की।

बकवाना—क्रि० स० [हिं० बकना का प्रेरणार्थ रू०] बकने के लिये प्रेरणा करना। किसी से बकवाद कराना।

बकवास—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकना + वास (प्रत्य०)] १. बकवाद। व्यर्थ की बातचीत। बकबक।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

२. बक बक करने की लत। बकवाद मचाने का स्वभाव। ३. बकवाद करने की इच्छा।

क्रि० प्र०—लगना।

बकवृत्ति[1]—संज्ञा पुं० [सं० बकवृत्ति] वह पुरुष जो नीचे ताकनेवाला, शठ और स्वार्थ साधने में तत्पर तथा कपटयुक्त हो। बकध्यान लगानेवाला मनुष्य।

बकवृत्ति[2]—वि० कपटी। धोखेबाज।

बकव्रती—वि० [सं० बकव्रतिन्] बकवृत्तिवाला। कपटी।

बकस—संज्ञा पुं० [अं० बॉक्स] १. कपड़े आदि रखने के लिये बना हुआ चौकोर संदूक। २. घड़ी, गहने आदि रखने के लिये छोटा डिब्बा। खाना। जैसे, घड़ी का बक्स, गले के हार का बक्स।

बकसनहारⓟ—वि० [हिं० बकसना + हार (प्रत्य०)] क्षमा करनेवाला। उ०—बदा भूला बदगी, तुम बकसनहार।—धरनी० श०, पृ० २३।

बकसनाⓟ—क्रि० स० [फ़ा० बख्श + हिं० ना (प्रत्य०)] १. कृपापूर्वक देना। प्रदान करना। उ०—(क) प्रभु बकसत गज वाजि बसन मनि जय धुनि गगन निसान हये।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नासिक ना यह सुक है ब्याह अनंग। बेसर को छवि बकसत मुकुतन संग।—रहीम (शब्द०)। २. छोड़ देना। क्षमा करना। माफ करना। उ०—(क) तब देवकी अधीन कह्यो यह मैं नहिं बालक जायो। यह कन्या मोहि बकस वीर तू कीजै मो मन भायो।—सूर (शब्द०)। (ख) पूत सपूत भयो कुल मेरे अब मैं जानी बात। सूरश्याम अब लौं तोहि बकस्यो तेरी जानी घात।—सूर (शब्द०)।

बकसवाना†—क्रि० स० [हिं० बकसना का प्रेरणार्थ रू०] दे० 'बकसाना'।

बकसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी में या जलाशयों के किनारे होती है। चौपाए इसे बड़े चाव से खाते हैं।

बकसानाⓟ†—क्रि० स० [हिं० बकसना] 'बकसना' का प्रेरणार्थक रूप। क्षमा कराना। माफ कराना। उ०—(क) चूक परी मोतें मैं जानी मिलें श्याम बकसाऊँ री। हा हा करि दसनन तृण धरि धरि लोचन जलनि ढराऊँ री।—सूर (शब्द०)। (ख) पूजि उठे जब ही शिव को तब ही विधि शुक्र बृहस्पति आए। कै बिनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाए।—केशव (शब्द०)।

बकसी—संज्ञा पुं० [फ़ा० बख्शी] दे० 'बख्शी'। उ०—अरु बकसी के वचन सुनि साह कियौ अति सोच।—ह० रासो, पृ० ८६।

बकसीला†—वि० [हिं० बकठाना] जिसके खाने में मुँह का स्वाद बिगड़ जाय और जीभ ऐंठने लगे।

बकसीसⓟ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बख़्शिश] १. दान। उ०—प्रेम समेत राय सब लीन्हा। भइ बकसीस जाचकन्ह दीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। २. इनाम। पारितोषिक। उ०—(क) केशोदास तेहि काल करोई है आयो काल सुनत श्रवण बकसीस एक देश की।—केशव (शब्द०)। (ख) निबले असीस दै दै के लै बकसीसैं देव अंग के बसन मीन मोती मिले मेले ली।—देव (शब्द०)। ३. प्रदान। देना। उ०—पिछले निमक की दोस्ती, करी जान बकसीस—ह० रासो, पृ० ११३।

बकसुआ, बकसुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकलस'।

बकसैयाⓟ—वि० [हिं० बकसना + ऐया (प्रत्य०)] बख्शनेवाला। देनेवाला। उ०—समर के सिंह सत्रुसाल के सपूत, सहजहि बकसैया सदसिंधुर मदध के।—मति० ग्रं० पृ० ३६६।

बका—संज्ञा स्त्री० [अ० बका] अस्तित्व। अनश्वरता। जिंदगी। उ०—नहिं काम आएगा यह हिर्स आखिर, बका जान फानी तेरा यो समझ घर।—दक्खिनी०, पृ० २५५।

बकाइन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकायन'।

बकाउⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बकावली'। उ०—सुनु बकाउ तजि चाहु न जूही।—जायसी (शब्द०)।

बकाउरⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बकावली'।

बकाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

बकाना—क्रि० स० [हिं० बकना का प्रेरणार्थक रूप] १. बक बक करने पर उद्यत करना। बक बक कराना। २. कहलाना। रटाना। उ०—बार बार बकि श्याम सो कछु बोल बकावत। दुहुँघा द्वै दँतुली भई अति मुख छवि पावत।—सूर (शब्द०)।

बकायन—संज्ञा पुं० [हिं० बड़का + नीम ?] नीम की जाति के एक पेड़ का नाम जिसकी पत्तियाँ नीम की पत्तियों के सदृश पर उनसे कुछ बड़ी होती हैं।

पर्या०—महानिंब। द्रेका। कार्मुक। कैटर्य्य। केशमुष्टिक। पवनेष्ट। रम्यकक्षीर। काकेड़। पार्वत। महातिक्त।

विशेष—इसका पेड़ भी नीम के पेड़ से बड़ा होता है। फल नीम की तरह पर नीलापन लिए होता है। इसकी लकड़ी हलकी और सफेद रंग की होती है। इससे घर के संगहे और मेज

कुरसी आदि बनाई जाती है। इसपर बारनिश और रंग अच्छा खिलता है। लकड़ी नीम की तरह कड़ुई होती है। इससे उसमे दीमक घुन आदि नही लगते। वैद्यक में इसे कफ, पित्त और कृमि का नाशक लिखा है और वमन आदि को दूर करनेवाला तथा रक्तशोधक माना है। इसके फूल, फल, छाल और पत्तियाँ औषध के काम आती हैं। बीजों का तेल मलहम में पड़ता है। इसके पेड़ समस्त भारत में और पहाड़ों के ऊपर तक होते हैं। यह बीज से उगता है।

बकाया—संज्ञा पुं० [अ० वक़ायह्] १. बचा हुआ। बाकी। शेष। २. बचत।

बकार¹—संज्ञा पुं० [अ० वक़ार] अक्ष। धुरी। केंद्र। उ०—अगर आप हिंदू जजबात का लिहाज करके किसी दूसरी जगह कुरबानी करें तो यकीनन इसलाम के वकार में फर्क न आएगा।—काया०, पृ० ४७।

बकार†²—संज्ञा पुं० [हिं० बकारी] बकारी। आवाज। शब्द।

बकारना(पु)—क्रि० स० [हिं० बकार+ना (प्रत्य०)] आवाज देना। बुलाना।

बकारि—संज्ञा पुं० [सं० बकारि] १. बकासुर को मारनेवाले, श्रीकृष्ण। २. भीमसेन।

बकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० 'ब' कार या वाक्य] वह शब्द जो मुँह से प्रस्फुटित हो। मुँह से निकलनेवाला शब्द।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—बकारी फूटना=मुँह से शब्द वा वर्णों का उच्चारण होना। शब्द निकलना। बात निकलना।

बकावर, बकावरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गुलबकावली'। उ०—तुम जो बकावरि तुम्ह सों भर ना। बकुचन गहै चहै जो करना।—जायसी (शब्द०)।

बकावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकपंक्ति।

बकावली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गुलबकावली'।

बकासुर—संज्ञा पुं० [सं० बकासुर] एक दैत्य का नाम जिसे कृष्ण ने मारा था।

बकी—संज्ञा स्त्री० [सं० बकी] बकासुर की बहन पूतना का एक नाम जो अपने स्तन मे विष लगाकर कृष्ण को मारने के लिये गई थी। कृष्ण ने उसका दूध पीते समय ही उसे मार डाला था। उ०—बकी कपट करि मारन आई। सो हरि जू बैकुंठ पठाई।—सूर०, १।३।

बकीया—वि० [अ० बक़ीयह्] बाकी। शेष। अवशिष्ट [को०]।

बकुचन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विकुञ्चन या हिं० बकुचा] १. हाथ जोड़ने की अवस्था। बद्धांजलि। उ०—बकुचन विनवौं रोस न मोही। सुनु बकाउ तजि चाहु न जूही।—जायसी(शब्द०) २. हाथ या मुट्ठी से पकड़ने की क्रिया। उ०—तुम्ह जो बकावरि तुम्ह सों भर ना। बकुचन गहै चहै जो करना।—जायसी (शब्द०)। ३. गुच्छा। गुच्छ। स्तवक।

बकुचना(पु)—क्रि० अ० [हिं० बकुचा< सं० विकुञ्चन] सिमटना। सुकड़ना। संकुचित होना। उ०—लाज के भार लची तरुनी बकुची बरुनी सकुची सतरानी।—देव (शब्द०)।

बकुचा—संज्ञा पुं० [हिं० बकुचना] [स्त्री० बकुची] छोटी गठरी। बकचा। उ०—(क) कमरी थोरे दाम की आवै बहुतै काम। खासा मखमल बाफता उनकर राखै मान। उनकर राखै मान बुंद जँह आड़े आवै। बकुचा बाँधै मोट राति को झारि बिछावै।—गिरधरराय (शब्द०)।

बकुचाना†—क्रि० स० [हिं० बकुचा+ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु को बकुचे में बाँधकर कंधे पर लटकाना या पीछे पीठ पर बाँधना।

बकुची¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वाकुची] औषध के काम मे प्रयुक्त होनेवाले एक पौधे का नाम।

पर्या०—सोमराजी। कृष्णफल। वाकुची। पूतिफला। बेजानी। कालमेषिका। अवल्गुजा। ऐंदवी। शूलोत्था। कांबोजी। सुपर्णिका।

विशेष—यह पौधा हाथ, सवा हाथ ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ एक अंगुल चौड़ी होती हैं और डालियाँ पृथ्वी से अधिक ऊँची नही होती तथा इधर उधर दूर तक फैलती हैं। इसका फूल गुलाबी रंग का होता है। फूलों के झड़ने पर छोटी छोटी फलियाँ घौद मे लगती हैं जिनमें दो से चार तक गोल गोल चौड़े और कुछ लबाई लिए दाने निकलते हैं। दानों का छिलका काले रंग का, मोटा और ऊपर से खुरदरा होता है। छिलके के भीतर सफेद रंग की दो दालें होती हैं जो बहुत कड़ी होती हैं और बड़ी कठिनाई से टूटती हैं। बीज से एक प्रकार की सुगंध भी आती है। यह औषध में काम आता है। वैद्यक मे इसका स्वाद मीठापन और चरपरापन लिए कड़ुवा बताया गया है और इसे ठंडा, रुचिकर, सारक, त्रिदोषघ्न और रसायन माना है। इसे कुष्टनाशक और त्वग्रोग की औषधि भी बतलाया है। कहीं कहीं काले फूल की भी बकुची होती है।

बकुची²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकुचा] छोटी गठरी। उ०—देवी ने कपड़ों की एक छोटी सी बकुची बाँधी।—मान०, भा० ५, पृ० १३६।

मुहा०—बकुची बाँधना या मारना=हाथ पैर समेटकर गठरी के आकार का बन जाना। जैसे,—वह बकुची मारकर कूदा।

बकुचौहाँ‡—वि० [हिं० बकुचा+औहाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० बकुचौहीं] बकुचे की भाँति। बकुचे के समान। उ०—राखो सचि कूबरी पीठि पै ये बातें बकुचौही। स्याम सो गाहक पाय सयानी खोलि देखाइहै गौंही—तुलसी (शब्द०)।

बकुर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भास्कर। सूर्य। २. तूर्य वाद्य। तुरही। ३. बिजली।

बकुर²—वि० भयदायक। भयावना [को०]।

बकुर†³—संज्ञा पुं० [सं० √वच्, वक्+हिं० वार (प्रत्य०)] बोल।

दे० 'बकारी' या 'बक्कुर'। उ०—दुहूँ हाथ गहि सीस उठावा। पूँछत बात बकुर नहिं यावा।—चित्रा०, पृ० ६४।

बकुरना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बकरना'।

बकुराना‡—क्रि० सं० [हिं० बकुरना का प्रेरणार्थक रूप] कबूल कराना। मंजूर कराना। कहलाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय: ऐसी अवस्था में होता है जब किसी को भूत लगा होता है। लोग उससे भूत का नाम पता आदि कहलाने के लिये प्रयोगादि द्वारा बाध्य करते हैं और उससे नाम पता आदि कहलवाते है।

बकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मौलसिरी। उ०—देखो पवन के झोंकों से बकुल के पत्ते कैसे हिलते हैं।—शकुंतला, पृ० १५। २. शिव। महादेव। ३. एक प्राचीन देश का नाम। ४. एक प्रकार की ओषधि (को०)।

बकुलटरर—संज्ञा पुं० [हिं० बकुला + अनुध्व० टरर] बगला। पानी की एक चिड़िया जिसका रंग सफेद होता है और जो डील डौल में आदमी के बराबर ऊँची होती है।

बकुला†—संज्ञा पुं० [हिं० बगला] दे० 'बगला'।

बकुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ओषधि [को०]।

बकुल—संज्ञा पुं० [सं०] मौलसिरी का पेड़ [को०]।

बकेन, बकेना†—संज्ञा स्त्री० [सं० बष्कयणी] वह गाय या भैंस जिसे बच्चा दिए साल भर से अधिक हो गया हो और जो बरदाई न हो और दूध देती हो। ऐसी गाय का दूध अधिक गाढा और मीठा होता है। लवाई का उलटा।

बकेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा बक पक्षी। २. वायु से झुकी वृक्ष की शाखा [को०]।

बकेल‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकला] पलास की जड़ जिसे कूटकर रस्सी बनाते हैं।

बकैयाँ—संज्ञा पुं० [सं० बक्र+हिं० ऐयाँ (प्रत्य)] बच्चों के चलने का वह ढंग जिसमें वे पशुओं के समान अपने दोनों हाथ और दोनो पैर जमीन पर टेककर चलते हैं। घुटनों के बल चलना।

बकोट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बक नाम का पक्षी। बगुला उ०—लाजालु गुल चिमन में, खगकुल माँह बकोट। मावाडिया मिनखाँ मही याँ तीनो में खोट।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १७।

बकोट[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकोष्ठ, पा० पक्कोट्ठ या सं० अभिकोष्ठ] १. पंजे की वह स्थिति जो किसी वस्तु को ग्रहण करने या नोचने आदि के समय होती है। हाथ की अंगुलियों की संपुटाकार मुद्रा। किसी पदार्थ की उतनी मात्रा जो एक बार चंगुल में पकड़ी जा सके। जैसे, एक बकोट आँटा। ३. बकोटने या नोचने की क्रिया या भाव।

बकोटना—क्रि० सं० [हिं० बकोट+ना (प्रत्य०)] बकोट से किसी को नोचना। नाखूनों से नोचना। पंजा मारना। निखोटना। उ०—होती जु पै कुबरी ह्याँ सखी, मारि लातन मूका बकोटती केती।—रसखान०, पृ० २७।

बकोटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकोट'।

बकोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकावर] दे० 'गुलबकावली'। उ०—कोई सो बोलसर पुहुप बकोरी। कोई रूपमंजरी गोरी।—जायसी (शब्द०)।

बकौंड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बक्कल] पलाश की कूटी हुई जड़ जिससे रस्सी बटी जाती है।

बकौंड़ा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकौरा'।

बकौरा‡—संज्ञा पुं०[हिं० बाँका अथवा सं० वङ्क + हिं० औरा (प्रत्य०)] वह टेढ़ी लकड़ी जो बैलगाड़ी के दोनों और पहिए के ऊपर लगाई जाती है। इसी के बीच में छेद करके धुरी लगाई जाती है और दोनों छोर पहिए के दोनों ओर की पटरी में साले या बैठाए हुए होते हैं। पैगनी। पैजनी।

बकौरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गुलबकावली'। उ०—सुरंग गुलाल कदम औ कूजा। सुगंध बकौरी गंध्रब पूजा।—जायसी (शब्द०)।

बक्कम—संज्ञा पुं० [अ० बकम] एक वृक्ष। पतंग।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष में मद्रास और मध्यप्रदेश में तथा बर्मा में उत्पन्न होता है। इसका पेड़ छोटा और कँटीला होता है। लकडी काले रंग की तथा दृढ और टिकाऊ होती है। यह फटती या टेढी नहीं होती। इससे मेज, कुर्सी आदि बन सकती है। रंग और रोगन से इसपर अच्छी चमक आती है। इसकी लकडी, छिलके और फलों से लाल रंग निकलता है जिससे सूत और ऊन के कपड़े रँगे जाते हैं और जो छीट की छपाई में भी काम आता है। इसके बीज बरसात में बोए जाते है।

बक्कर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बर्कर, प्रा० बक्कर] बकरा। छाग। उ०—(क) पद्र सेर रइभोग एक सीरावन बक्कर।—पृ० रा०, ६४।२२०। (ख) बक्कर का हलाली खाण सूकर कोन खाणाँ।—शिखर०, पृ० ३।

बक्कल—संज्ञा पुं० [सं० वल्कल, पा० प्रा० बक्कल] १. छिलका। बोकला। २. छाल।

बक्का†—संज्ञा पुं० [देशज] सफेद या खाकी रंग के एक प्रकार के छोटे छोटे कीड़े जो धान की फसल में लगते हैं और उसके पत्ते और बालों को खाकर उसे निर्जीव कर देते हैं। ये कीड़े जहाँ चाटते हैं वहाँ सफेद हो जाता है।

बक्कारना(पु)—क्रि० स० [हिं० बकार या बकारी] पुकारना। आवाज देना। ललकारना। उ०—वर कन्ह बीर सोमेस पहु चाहुआन बक्कारिऐ।—पृ० रा०, ७।३२।

बक्काल—संज्ञा पुं० [अ०] वह जो आटा, दाल, चावल या और चीजें बेचता हो। वणिक्। बनिया। उ०—न जर्फो मतवर के दुकाँ न गल्ल वो बक्काल।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २१।

यौ०—बनिया बक्काल।

वक्की[1]—वि० [हिं० बकना] बकवाद करनेवाला। बहुत बोलनेवाला या बकबक करनेवाला।

वक्की[2]—संज्ञा स्त्री० [देशी] एक प्रकार का धान जो भादों के महीने के अंत में पकता है। इसके धान की भूसी काले रंग की होती है और चावल लाल होता है। यह मोटा धान माना जाता है।

वक्कुर†—संज्ञा पुं० [सं० वाक्य] मुँह से निकला हुआ शब्द। बोल। वचन।

क्रि० प्र०—फूटना।—निकलना।

वक्खर[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] १. एक प्रकार की घास। दे० 'बाखर'। २. पशुबंधन का स्थान।

वक्खर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कई प्रकार के पौधों की पत्तियों और जड़ों को कूटकर तैयार किया हुआ वह खमीर जो दूसरे पदार्थों में खमीर उठाने के लिये डाला जाता है। यह प्रायः खोए आदि में डाला जाता है। बंगाल में इसका प्रयोग अधिक होता है।

बक्तर—संज्ञा पुं० [फा० बकतर] दे० 'बकतर'। उ०—कबीर दादू घने, पहिर बक्तर बने, कामदेव सारिखे बहुत कूदे।—चरण० बानी, पृ० ९३।

वक्र[1]—वि० [सं० वक्र] टेढ़ा। तिरछा। उ०—वक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू।—मानस, १।२८१।

वक्रⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० वक्रत्व] वक्रता। टेढ़ापन। उ०—कलि कुचालि सुभमति हरनि सरलै दंडै चक्र। तुलसी यह निश्चय भई, बाढ़ि लेति नव वक्र।—तुलसी० ग्रं०, पृ० १४९।

वक्राव‡—संज्ञा पुं० [?] एक पक्षीविशेष। उ०—परंतु साधु गृद्ध, गरुड़, वक्राव आदि पक्षी केवल मुरदे जीवों के मांस से अपनी उदरपूर्ति करते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१।

वक्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० वक्रिमा] वक्रता। टेढ़ापन। बाँकपन। उ०—गति न मंद कछु भई सुहाई। नैनन नहिंन बक्रिमा आई।—नंद० ग्रं०, पृ० १५७।

वक्षी—संज्ञा पुं० [फ़ा० बख्शी] सेनापति। उ०—सेना का सेनापति किलेदार या वक्षी कहलाता था।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ५४।

वक्षीस—संज्ञा पुं० [फ़ा० बख्शिश] दे० 'बकसीस'। उ०—काजी मुल्ला विनती फर्माय; बक्षीस हिंदू मैं तेरी गाय।—दक्खिनी०, पृ० ३१।

वक्षोजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वक्षोज] स्तन। उरोज।

वक्स—संज्ञा पुं० [अं० बॉक्स] १. दे० 'बकस'। २. थियेटर, सिनेमा आदि मे अलग घिरा हुआ स्थान जिसमें तीन चार व्यक्तियो के बैठने की व्यवस्था रहती है।

वक्सना†—क्रि० स० [फ़ा० बख्श] दे० 'बख्शना'। उ०—साहब कबीर बक्स जब दीन्हा। सुर नर मुनि सब गुदरी लीना।—कबीर मं०, पृ० ३९१।

बखत[1]—संज्ञा पुं० [अ० वक्त] समय। मौका। अवसर। उ०—हर बखत रोजा निमाज और बाँग दे। खुदा दीदार नहिं खोज पाई।—तुलसी० श०, पृ० १९।

बखत[2]—संज्ञा पुं० [अ० बख्त] दे० 'बख्त'।

बखतर—संज्ञा पुं० [फ़ा० बकतर] दे० 'बकतर'। उ०—बखतर पहिरे प्रेम का घोडा है गुरु ज्ञान। पलटू सुरति कमान ले जीत चले मैदान।—पलटू०, भा० ३, पृ० १०४।

बखतावरⓅ—वि० [फ़ा० बख्तावर] [वि० स्त्री० बखतावरि] दे० 'बख्तावर'। उ०—माइ बाप तजि धी उमदानी हरखत चली खसम के पास। वह बिचारी बड़ बखतावरि जाके कहै चलत है सास।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५४१।

बखर—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'बाखर'। २ दे० 'बक्खर'। ३. † एक प्रकार की चौड़ी जुताई करनेवाला हल जिसका फाल चौड़ा होता है।

बखरा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बखरह्] १ भाग। हिस्सा। बाँट। दे० 'बाखर'।

यौ०—बाँट बखरा।

बखराⓅ[2]—संज्ञा पुं० [देश०] घोडे की पीठ पर पलान आदि के नीचे रखने के लिये फाल या सूखी घास आदि का दोहरा किया हुआ वह मुठ्ठा जिसपर टाट आदि लपेटा रहता है। यह घोड़े की पीठ पर इसलिये रखा जा जाता है जिसमें घाव न हो जाय। बाखर। सुडकी।

बखराⓅ[3]—संज्ञा पुं० [हिं० बखार] पशुबंधन का स्थान। ठाँव। ठिकाना। उ०—अति गति पग डारनि हुंकारनि। सींचत धरनि दूध की धारनि। बखरे बछरनि पै चलि आई। मिली धाइ, कछु नहिं कहि आई।—नंद० ग्रं०, पृ० २६१।

बखरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बखार का स्त्री० अल्पा०] एक कुटुंब के रहने योग्य बना हुआ मिट्टी या ईंटों आदि का अच्छा मकान। (गाँव)।

बखरैत‡—वि० [हिं० बखरा + ऐत (प्रत्य०)] हिस्सेदार साझीदार।

बखशिंदाⓅ—वि० [फ़ा० बख्शिंदह्] १. देनेवाला। २. कृपा करनेवाला। ३. मुक्ति देनेवाला। उ०—वही बंदा आसी का बखशिंदा है।—कबीर मं०, पृ० ३८६।

बखसानाⓅ—क्रि० स० [हिं० बख्शना] माफ कराना। दे० 'बकसाना'। उ०—हुइए दीन अधीन चूक बखसाइए।—कबीर श०, पृ० ४१।

बखसीसⓅ†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बख्शिश] दे० 'बकसीस'। उ०—नाचै फूल्यो अँगनाई, सूर बखसीस पाई, माथे को चढ़ाइ लीनो लाल को बगा।—सूर (शब्द०)।

बखसीसनाⓅ‡—क्रि० स० [फ़ा० बख्शोश + हिं० ना (प्रत्य०)] देना। बख्शना। उ०—त्यों वे सब वेदना खेद पीड़ा दुखदाई।

जिन बखसीसति सदा घमंडहि मूरखताई।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

बखाँन‡—संज्ञा पुं० [सं० विषाण] सींग। शृंग। सेंगी। उ०—बंसी बेत बखाँन बन गेंद हींगुरी जोरि।—पृ० रा०, २५५०।

बखान—संज्ञा पुं० [सं० व्याख्यान, पा० बक्खान] १. वर्णन। कथन। उ०—बपु जगत काको नाउँ लीजै हो जदु जाति गोत न जानिए। गुणरूप कछु अनुहार नहिं कहि का बखान बखानिए।—सूर (शब्द०)। २. प्रशंसा। गुणकीर्तन। स्तुति। बड़ाई। उ०—(क) तेहि रावन कँह लघु कहसि, नर कर करसि बखान। रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दिन दस आदर पाय कै करि ले आपु बखान।—बिहारी (शब्द०)।

बखानना—क्रि० स० [हिं० बखान+ना (प्रत्य०)] १. वर्णन करना। कहना। उ०—(क) ताते मैं अति अल्प बखाने। थोरहि मँह जानिहैं सयाने।—तुलसी (शब्द०)। (ख) यहि प्रकार सुक कथा बखानी। राजा सो बोले मृदु बानी।—(शब्द०)। २. प्रशंसा करना। सराहना। तारीफ करना। उ०—(क) नागमती पद्मावति रानी। दोऊ महा सतसती बखानी।—जायसी (शब्द०)। (ख) ते भरतहिं भेंटत सनमाने। राज सभा रघुबीर बखाने।—तुलसी (शब्द०)। ३. गाली गलौज देना। बुरा भला कहना। जैसे,—बात छिड़ते ही उसने उसके सात पुरखा बखानकर रख दिए।

बखार†—संज्ञा पुं० [सं० प्राकार] [स्त्री० अल्पा० बखारी] दीवार या टट्टी आदि से घेरकर बनाया हुआ गोल और विस्तृत घेरा जिसमें गावों में अन्न रखा जाता है। यह कोठिले के आकार का होता है पर इसके ऊपर पाट नहीं होता और यह बिलकुल खुले मुँह का होता है।

बखारी†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बखार] छोटा बखार।

बखारी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की रागिनी जिसे कुछ लोग मालकोस राग की रागिनी मानते हैं।

बखिया—संज्ञा पुं० [फा० बख्यह्] एक प्रकार की महीन और मजबूत सिलाई।

विशेष—इसमें सुई को पहले कपड़े में से टाँका लगाकर आगे निकालते हैं, फिर पीछे लौटाकर आगे की ओर टोक मारते है जिससे सुई पहले स्थान से कुछ आगे बढ़कर निकलती है। इसी प्रकार बार बार सीते हैं। बखिया दो प्रकार का होता है—(१) उस्तादाना या गाँठी जिसमें ऊपर की लौट सिलाई के टाँके एक दूसरे से मिले हुए दानेदार होते हैं और (२) दौड़ या बया जिसमें दो चार दानेदार उस्तादी बखिया के अनंतर कुछ थोड़ा अवकाश रहता है।

मुहा०—बखिया उधेरना = भेद खोलना। कलई खोलना। भंडा फोड़ना। बखिए उखेड़ना = दे० 'बखिया उधेड़ना'। उ०—हम बड़े ही बखेड़िए होवें। आप यों मत उखेड़िए बखिए।—चुभते०, पृ० २।

यौ०—बखियागर = बखिया करनेवाला।

बखियाना—क्रि० स० [हिं० बखिया + ना (प्रत्य०)] किसी चीज पर बखिया की सिलाई करना। बखिया करना।

बखीर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खीर का अनु०] वह खीर जिसमें दूध के स्थान पर गुड़ या चीनी या ईख का रस डाला गया हो। मीठे रस में उबाला हुआ चावल।

बखील—वि० [अ० बखील] [संज्ञा बखीली] कृपण। सूम। कंजूस। उ०—कै बदा है जिस दर का हातिम सखी। बखीलों को जग से किया है नफी।—दक्खिनी०, पृ० २१२।

बखुदा—क्रि० वि० [फ़ा० बखुदा] १. ईश्वर के लिये। २. खुदा की सौगंध।

बखुशी—क्रि० वि० [फा० बखुशी] खुशी से। प्रसन्नतापूर्वक।

बखूबी—क्रि० वि० [फ़ा० बखूबी] अच्छे प्रकार से। भली भाँति। अच्छी तरह से। जैसे,—कागज भेजने के पहले आप उसे बखूबी देख लिया करें। २. पूर्ण रूप से। पूर्णतया। पूरी तरह से। जैसे,—यह दावात बखूबी भरी हुई है।

बखेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० बखेरना] १. उलझाव। झंझट। उलझन। जैसे,—इस काम में बहुत बखेड़ा होगा। २. झगड़ा। टंटा। विवाद। जैसे,—अब उन लोगों में भारी बखेड़ खड़ा होगा। ३. कठिनता। मुशकिल। ४. व्यर्थ विस्तार। आडंबर। भारी आयोजन।

क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।—मचाना।—होना।

बखेड़िया—वि० [हिं० बखेड़ा+इया (प्रत्य०)] बखेड़ा करनेवाला। जो बखेड़ा या झगड़ा खड़ा करे। झगड़ालू। उ०—हम बड़े ही बखेड़िए होवें। आप मत यों उखेड़िए बखिए।—चुभते०, पृ० २।

बखेरना—क्रि० स० [सं० विकिरण] चीजों को इधर उधर या दूर दूर रखना। फैलाना। छितराना। जैसे, खेत में बीज बखेरना। उ०—(क) कहो दससीस भुज बीसन बखेरों आगे कहो जाय घेरो गढ़ विनती पतीजिए।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। (ख) काटि दस सीस भुज बीस सीस धरि राम यश दसो दिसि सौगुनों बखेरिहै।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। (ग) तमाशा है मजा है सैर है क्या क्या अहा! हा! हा! मसव्विर ने अजब कुछ रंग कुदरत का बखेरा है।—नजीर (शब्द०)।

बखेरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटे कद का एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जिसके फल रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आते हैं। यह पूर्वीय बंगाल, आसाम और बर्मा आदि में होता है। इसे कुंती भी कहते हैं।

बखोरना‡—क्रि० स० [हिं० बक्कुर] टोकना। छेड़ना। उ०—

साँकरी खोरि बखोरि हमैं किन खोरि लगाय खिसैबो करो कोई।—देव (शब्द०)।

बख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] भाग्य। किस्मत। तकदीर। उ०—बड़े बख्त महाराज राजै तुम्हारो।—प० रासो०, पृ० ८५।

यौ०—बदबख्त। कंबख्त।

बख्तर—संज्ञा पुं० [फ़ा० बक्तर] लोहे के जाल का बना हुआ कवच। सन्नाह। बकतर। उ०—चारि मास घन बरसिया, अति अपूर्व झर नीर। पहिरे जड़तर बख्तर चुभै न एको तीर।—कबीर (शब्द०)।

बख्तरी—वि० [हिं० बख्तर+ई (प्रत्य०)] कवचधारी। जो बख्तर पहने हुए हो। उ०—ऐसी मुहकम बख्तरी लगा न एको तीर।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १०२।

बख्तवार—वि० [फा० बख्तयार या फा० बख्त+हिं० वार (= वाला)] भाग्यवान। खुशनसीब। उ०—उत्तम भाग का भोगनी बख्तवार, घर उसका सो था बंदर के सार।—दक्खिनी०, पृ० ७७।

बख्तावर—वि० [फ़ा० बख्तावर] भाग्यवान। बख्तवार [को०]।

बख्श[1]—प्रत्य० [फ़ा० बख्श] १. देनेवाला। २. क्षमा करनेवाला।

बख्श[2]—संज्ञा पुं० १. अंश। खंड। २. हिस्सा। विभाग [को०]।

बख्शना—क्रि० स० [फ़ा० बख्श+हिं० ना (प्रत्य०)] १. देना। प्रदान करना। २. त्यागना। छोड़ना। जाने देना। क्षमा करना। माफ करना। उ०—कामी कबहूँ न हरि भजै मिटै न संशय मूल। और गुनह सब बख्शिहै। कामी डाल न भूल।—कबीर (शब्द०)।

बख्शवाना, बख्शाना—क्रि० स० [हिं० बख्शना का प्रेरणार्थक] बख्शने का प्रेरणार्थक रूप। किसी को बख्शने में प्रवृत्त करना।

बख्शिश—संज्ञा स्त्री०, [फा० बख्शिश] १. उदारता। दानशीलता। २. दान। ३. क्षमा। ४. पुरस्कार। इनाम (को०)।

यौ०—बख्शिशनामा, बख्शीशनामा = दानपत्र।

बख्शी—संज्ञा पुं० [फा० बख्शी] १. वेतन बाँटनेवाला कर्मचारी। खजांची। २. कर वसूल करनेवाला। मुंशी [को०]।

बख्शीस—संज्ञा पुं० [फ़ा० बख्शिश] दे० 'बख्शिश'।

बग†—संज्ञा पुं० [सं० बक] बगुला। उ०—उज्वल देखि न धीजिए, बग ज्यों माँड़े ध्यान। धोरे बैठि चपेटसी, यो लै बूड़े ज्ञान।—कबीर (शब्द०)। (ख) बग उलूक झगरत गए, अवध जहाँ रघुराउ। नीक सगुन निबरहि झगर, होइहि धरम निआउ।—तुलसी (शब्द०)।

बगई‡—संज्ञा स्त्री० [देशज] १. एक प्रकार की मक्खी जो कुत्तों पर बहुत बैठती है। कुकुरमाछी। २. एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ बहुत पतली और लंबी होती है।

विशेष—यह बाध बटने के काम में आती है और सूखने पर पंसारियों की पुड़ियाँ आदि बाँधने के काम आती है। कहीं कहीं लोग इसे भाँग के साथ पीस कर पीते हैं जिससे उसका नशा बहुत बढ़ जाता है।

बगछुट, बगटुट—क्रि० वि० [हिं० बाग+छूटना या टूटना] सरपट। बेतहाशा। बड़े वेग से। जैसे, बगछुट भगाना या भागना। उ०—(क) वहाँ जो मेरे सामने एक हिरनी कनौतियाँ उठाए गई थी, उसके पीछे मैंने घोड़ा बगछुट फेंका था।—इंशा (शब्द०)। (ख) इस वक्त आप ऐसे बदहवास कहाँ बगटुट भागे जाते थे, सच कहिएगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० २।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा घोड़ों की चाल के संबंध में ही होता है। पर कभी कभी हास्य या व्यंग्य में लोग मनुष्यों के संबंध में भी बोल देते हैं।

बगड़†—संज्ञा पुं० [राज० बागड़ या गुज० बगड़ (= बदमाश)] बिना बस्ती का देश, मरुभूमि आदि जहाँ लुटेरे रहते हों। उ०—मारू तड़ाँ संदेसड़ा, बगड़ बिचाहू साइ।—ढोला०, पृ० ८२।

बगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बगिया।

बगतर(पु), बगत्तर†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बक्तर] दे० 'बख्तर'। उ०—(क) बगतर पक्खर टोप सु सज्जिय।—ह० रासो, पृ० ८१। (ख) हुअत खड खंड घाउ सुभ्भरं बगत्तरं।—पृ० रा०, ५८।२४४।

बगदई(पु)‡[1]—वि० [हिं० बगदना+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० बगदई] दे० 'बगदहा'। उ०—घेरे न घिरत तुम बिनु माधो जू मिलत नहीं बगदई। बिडरत फिरत सकल बन महियाँ एकइ एक गई।—सूर (शब्द०)।

बगदई‡[2]—संज्ञा स्त्री० बगदने की स्थिति, भाव, क्रिया।

बगदना†—क्रि० अ० [सं० विकृत, गुज० बगड़ (= बदमाश), हिं० बिगड़ना] १. बिगड़ना। क्रुद्ध होना। २. नष्ट होना। खराब होना। ३. बहकना। भूलना। ४. च्युत होना। ठीक रास्ते से हट जाना। ५. लौटना। वापस होना। उ०—(क) आगे करि दै गोधन वृंद। बदन चूमि व्रज बगदे नंद।—नंद० ग्रं०, पृ० २७५। (ख) कछु दिन रहैं बगदि ब्रज आवनि। ब्रज पर आनंदघन बरसावनि।—घनानंद, पृ० ३१७।

बगदर‡—संज्ञा पुं० [देशज] मच्छर।

बगदवाना†—क्रि० स० [बगदना का प्रे० रूप] १. बिगड़वाना। २. खराब कराना। ३. भुलवाना। भ्रम में डालना। ४. लुढ़काना। गिरा देना। ५. प्रतिज्ञा भंग कराना। अपने वचन से हटाना।

बगदहा(पु)†—वि० [हिं० बगदना + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० बगदही] चौकने या बिगड़नेवाला। बिगड़ैल।

बगदाना†—क्रि० स० [हिं० बगदना] १. बिगड़वाना। क्रुद्ध कराना। २. खराब करना। बिगाड़ना। ३. च्युत करना।

ठीक रास्ते से हटाना। ४. भुलाना। भटकाना। उ०—पाप कै मोटरी बाम्हन भाई। इन सबही जग को बगदाई। —पलटू०, भा० ३, पृ० ९१।

बगनाⓤ†—क्रि० अ० [सं० वक् (= गति)] घूमना फिरना। उ०—नंद र यशोदा के लड़ाइते कुँअर हिय, हेरे ग्वार गोरिन कि खोरिन बगे रहैं। चैन न परत देव देखे बिनु बैन सुने मिलत बनै न तव नैन उमगे रहैं।—देव (शब्द०)।

बगनी[1]—संज्ञा स्त्री० [देशज] एक प्रकार की घास जिसे कहीं कहीं लोग भाँग के साथ पीते हैं। इससे उसका नशा बहुत बढ़ जाता है। दे० 'बगई'। उ०—(क) बगनी भंगा खाइ कर मतवाले माजी।—दादू (शब्द०)। (ख) जी भाँग भुजाना बगनी छाना भए दिवाना सैताना। —सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३७।

बगनी‡[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्धन, वर्धनी, हिं० बधना] दे० 'बधना'[2]। उ०—दोड़ सीताब बगनी भरि लाव। —बी० रासो, पृ० १७।

बगमेल[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बाग + मेल] १. दूसरे के घोड़े के साथ बाग मिलाकर चलना। पाँत बाँधकर चलना। बराबर बराबर चलना। उ०—जो गज मेलि हौद: सँग लागे। तो बगमेल करहु सँग लागे।—जायसी (शब्द०)। २. बराबरी। समानता। तुलना। उ०—भूधर भनत ताकी बास पाय सोर करि कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में।—भूधर (शब्द०)।

बगमेल[2]—क्रि० वि० पंक्तिबद्ध। बाग मिलाए हुए। साथ साथ। उ०—(क) आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट। तुलसी—(शब्द०)। (ख) हरखि परस्पर मिलन हित कछुक चले बगमेल। जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत विहाइ सुबेल।—तुलसी (शब्द०)।

बगरⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० प्रघण, पा० पघण] १. महल। प्रासाद। २. बड़ा मकान। घर। उ०—(क) आस पास वा बगर के जहँ बिहरत पशु छद। ब्रज बड़े गोप परजन्य सुत नीके श्री नव नंद।—नाभा (शब्द०)। (ख) गोपिन के अँसुवन भरी सदा उसोस अपार। डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार।—बिहारी (शब्द०)। ३. घर। कोठरी। उ०—(क) टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जगर जगर दुति दूनी केलि मंदिर में, बगर बगर धूप अगर बगारे तू। —पद्माकर (शब्द०)। ४. द्वार के सामने का सहन। आँगन। उ०—(क) नंद महर के बगर तन अब मेरे को जाय। नाहक कहुँ गड़ि जायगो हित काँटो मन पाय।—रसखान (शब्द०)। (ख) राम डर रावन के नगर डगर घर बगर बगर आजु कथा भाजि जानकी।—हनुमान (शब्द०)। ५. वह स्थान जहाँ गाएँ बाँधी जाती हैं। बगार। घाटी। उ०—(क) नगर बसे नगरे लगे सुनिए नागर नारि। पगरे रगरे सुमन के डारे बगर बहारि।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) भोर उठि नित्य प्रति मोंसों करत है झगरो। ग्वाल बाल संग लिए सब घेरि रहे बगरो। —सूर (शब्द०)। ‡ ६. पशुसमूह। पशुओं का झुंड।

बगर[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'बगल'। उ०—ससवा की सरिया में सोने के किनरिया उजरिया करत मुख जोति। अगर बगर जरतरवा लगल बाड़े जगर मगर दुति होति।—बिरहा (शब्द०)।

बगरनाⓤ†—क्रि० अ० [सं० विकिरण] १. फैलना। बिखरना। छितराना। उ०—(क) तनपोषक नारि नरा सिगरे। परनिंदक ते जग मो बगरे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रीझे श्याम नागरी रूप। तैसी ये लट बगरी ऊपर स्वत नीर अनूप।—सूर (शब्द०)। (ग) बीथिन मे, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में, बनन में, बागन में बगरो बसंत है। —पद्माकर (शब्द०)। २. घूमना फिरना। परिभ्रमण करना। उ०—कबीर देश देश हम बगरिया ग्राम ग्राम सब खोर।—कबीर मं०, पृ० ३२४।

बगरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली जो संयुक्त प्रांत और बंगाल में होती है।

विशेष—यह छह सात अंगुल लंबी होती है और जमीन पर उछलती या उड़ान भरती है। यह खाने में स्वादिष्ट होती है। इसे सुआ भी कहते हैं।

बगराना[1]†—क्रि० सं० [हिं० बगरना का सक० रूप] फैलाना। छितराना। छिटकाना। उ०—(क) ते दिन बिसरि गए ह्याँ आए। अति उन्मत्त मोह मद छाए फिरत केश बगराए।—सूर (शब्द०)। (ख) जानिए न आली यह छोहरा जसोमति को बाँसुरी बजाइगो कि बिष बगराइगो।—रसखानि (शब्द०)। (ग) सजनी इहि गोकुल में विष सो बगरायो है नंद के सावरियाँ।—रसखान (शब्द०)।

बगराना[2]—क्रि० अ० बगरना। फैलना। बिखरना। उ०—कहाँ लौ बरनौ सुंदरताई। अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन मोहन मुख बगराई।—सूर (शब्द०)।

बगरिया—संज्ञा स्त्री० [देशज] एक प्रकार की कपास जो कच्छ और काठियावाड़ में पैदा होती है।

बगरी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बगरना] एक प्रकार का धान जो भादों के अंत में पकता है।

विशेष—यह काले रंग का होता है। इसका चावल लाल और मोटा होता है। इसे तैयार करने मे विशेष परिश्रम नहीं करना होता, केवल बीज बिखेरकर छोड़ दिए जाते हैं।

बगरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बगर] बखरी। घर। मकान। उ०—घाट बाट सब देखत आवत युवती डरन मरति हैं सिगरी। सूर श्याम तेहि गारी दीनो जो कोई आवै तुमरी बगरी।—सूर (शब्द०)।

बगरूरा—संज्ञा पुं० [सं० वातघूर्ण, वायुघूर्ण, हिं० बघूरा, अथवा हिं०

बाद + गोला] बवंडर । बगूला । उ०—चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माँहि, शंबर छड़ाइ लई कामिनी कै काम की । —केशव (शब्द०) ।

बगल—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढा । काँख । उ०—उसके अस्तबल का दरोगा एक हबशी गुलाम था । वही उसको बगल में हाथ देकर घोड़े पर सवार कराता था ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

यौ०—बगलगंध

२ छाती के दोनों किनारों का भाग जो बाँह गिरने पर उसके नीचे पड़ता है । पार्श्व । उ०—जोकन बीस दिनदुधे थावधि, बगल के गोटी दिवस गमावधि ।—कीर्ति०, पृ० ६० ।

यौ०—बगलबंदी ।

मुहा०—बगल गरम करना = सहवास करना । प्रसंग करना । बगल में दबाना = (१) किसी चीज को बाहु के नीचे छाती के किनारे रखना या लेना । (२) धोखा देकर या बलात् किसी वस्तु को अपने अधिकार में लाना । अधिकार करना । ले लेना । उ०—लैगे अनूप रूप संपति बगल दाबि उचिके अघान कुन कंचन पहार से ।—देव (शब्द०) । बगल में धरना = (१) बगल में छिपाना । बगल मे दबाना । उ०—बूँदे सुहावनी री लागत मत भीजै तेरी चूनरी । मोहिं दे उतारि धर राखौं बगल मे तू न री ।—हरिदास (शब्द०) । (२) अधिकार में लाना । छीन लेना । बगलें बजाना = बहुत प्रसन्नता प्रकट करना । खूब खुशी मनाना ।

३. सामने और पीछे को छोड़कर इधर उधर का भाग । किनारे का हिस्सा ।

मुहा०—बगलें झाँकना = इधर उधर भागने का यत्न करना । बचाव का रास्ता ढूँढना । उ०—थोड़ी देर में उनका दम टूट गया अब आजाद बगलें झाँकने लगे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२७ ।

४. कपड़े का वह टुकड़ा जो अँगरखे या कुरते आदि की आस्तीन में कंधे के जोड़ के नीचे लगाया जाता है । यह टुकड़ा प्रायः तीन चार अंगुल का और तिकोना या चौकोना होता है । ५. समीप का स्थान । पास की जगह । जैसे,—सड़क की बगल मे ही वह नया मकान बना है ।

बगलगंध—संज्ञा पुं० [हिं० बगल + गंध] १. वह फोड़ा जो बगल मे होता है । कँखवार । २. एक प्रकार का रोग जिसमें बगल से बहुत बदबूदार पसीना निकलता है ।

बगलगीर—वि० [फ़ा०] १. पार्श्ववर्ती । सहचरी । २. प्रेमपात्र । प्रेमिका ।

क्रि० प्र०—करना ।—बनाना ।—होना ।

बगलबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बगल + फा० बंद] एक प्रकार की मिरजई जिसके बंद बगल के नीचे लगते हैं ।

बगला¹—संज्ञा पुं० [सं० बक, प्रा० बग + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० बगली] । सफेद रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी । उ०—(क) बगली नीर बिटालिया सायर चढ़ा कलंक । और पखेरू पीविया हंस न बोरे चंच ।—कबीर (शब्द०) । (ख) बद्दलनि बुन्द बिलोकी बगलान बाग बंगलान बेलिन बहार बरसा की है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

विशेष—इस पक्षी की टाँगें, चोंच और गला लंबा और पूँछ नाम मात्र की, बहुत छोटी होती है । इसके गले पर के पर अत्यंत कोमल होते हैं और किसी किसी के सिर पर चोटी भी होती है । यह पक्षी झुंड मे या अलग अलग दिन भर पानी के किनारे मछली, केकड़े आदि पकड़ने की ताक में खड़ा रहता है । इसकी कई जातियाँ होती हैं । जिनके वर्ण और आकार भिन्न भिन्न होते हैं ।—(क) अंजन नारी या सेन जिसका रंग नीलापन लिए होता है । (ख) बगली, खोच बगला या गड़हबगलिया जो छोटी और मटमैले रंग की होती है और धान के खेतो, तालों और गड़हियो आदि में रहती है । (ग) गैबगला या सुरखिया बगला जो ढंगरों के झुंड के साथ तालो में रहता है और उनके ऊपर के छोटे छोटे कीड़ो को खाता है । (घ) राजबगला जो तालो और झीलो मे रहता है और जिसका रंग अत्यंत उज्वल होता है । यह बड़ा भी होता है और इस जाति के तीन वर्ष से अधिक अवस्था के पक्षियो के सिर पर चोटी होती है । बगलो का शिकार प्रायः उनके कोमल परो के लिये किया जाता है । वैद्यक में इसका मांस, मधुर, स्निग्ध, गुरु और अग्निप्रकोपक तथा श्लेष्मवर्धक माना गया है ।

मुहा०—बगला भगत = (१) धर्मध्वजी । वंचक भगत । (२) कपटी । धोखेबाज ।

बगला²—संज्ञा पुं० [हिं० बगल] थाली की बाढ़ । औंवठ ।

बगला³—संज्ञा पुं० [देश०] एक झाड़ीदार पौधा जो गमलों में शोभा के लिये लगाया जाता है ।

बगला⁴—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी । दे० 'बगलामुखी' ।

बगलामुखी—संज्ञा पुं० [सं०] तान्त्रिकों के अनुसार एक देवी जिसकी आराधना करने से आराधक अपने विरोधी की वाक्शक्ति को स्थगित, स्तंभित या बंद कर सकता है ।

बगलियाना¹—क्रि० अ० [हिं० बगल + इयाना (प्रत्य०)] बगल से होकर जाना । राह काटकर निकालना । अलग हट कर चलना या निकलना ।

बगलियाना²—क्रि० स० १. अलग करना । पृथक् निकालना । २. बगल में लाना या करना ।

बगली¹—वि० [हिं० बगल + ई (प्रत्य०)] बगल से संबंध रखनेवाला । बगल का ।

मुहा०—बगली घूँसा = वह घूँसा जो बगल में होकर मारा जाय । वह वार जो आड़ मे छिपकर या धोखे से किया जाय ।

बगली²—संज्ञा स्त्री० १. ऊँटों का एक दोष जिसमें चलते समय उनकी जाँघ की रग पेट में लगती है । २. मुगदर हिलाने का एक ढंग ।

विशेष—इस पद्धति में पहले मुगदर को ऊपर उठाते हैं, फिर उसे कंधे पर इस प्रकार रखते हैं कि हाथ मुठिया को पकड़े नीचे को सीधा होता है और मुगदर का दूसरा सिरा कंधे पर होता है। फिर एक हाथ को ऊपर ले जाकर मुगदर को पीछे सरकाते जाते हैं यहाँ तक कि वह पीठ पर लटक जाता है। इसी बीच में दूसरे हाथ के मुगदर को उसी प्रकार ले जाते हैं जिस प्रकार पहले हाथ के मुगदर को पीठ पर झुलाया था और तब फिर पहले हाथ का मुगदर, हाथ नीचे ले जाकर, कंधे पर इस प्रकार लाते हैं कि उसका दूसरा सिरा फिर कंधे पर आ जाता है। इसी प्रकार बराबर करते रहते हैं।

३. वह थैली जिसमें दर्जी सुई, तागा रखते हैं और जिसको वे चलते समय कंधे पर लटका लेते हैं। तिलादानी।

विशेष—यह चौकोर कपड़े की होती है जिसके तीन पाट दोहर दोहरकर सी दिए जाते हैं और चौथे में एक डोरी लगा दी जाती है जिसे थैली पर लपेटकर बाँधते हैं। यह थैली चौकोर होती है और इसके दो ओर एक फीता वा डोरी के दोनो सिरे टँके रहते हैं जिसे बगल में लटकाते समय जनेऊ की तरह गले में पहन लेते हैं।

४. वह सेंध जो किवाड़ की बगल में सिटकिनी की सीध में चोर इसलिये खोदते हैं कि उसमें से हाथ डालकर सिटकिनी खसकाकर किवाड़ खोल लें।

क्रि० प्र०—काटना।—मारना

५. वह लकड़ी जिसमें हुक्केवाले गड़गड़े को अटकाकर उनमें छेद करते हैं। ६. अंगे, कुरते आदि में कपड़े का वह टुकड़ा जो आस्तीन के साथ कंधे के नीचे लगाया जाता है। बगल।

बगली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बगला] स्त्री बक। बगला नामक पक्षी की मादा।

बगलीटाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० बगली + टाँग] कुश्ती का एक पेच जिसमें प्रतिपक्षी के सामने आते ही उसे अपनी बगल में लाकर और उसकी टाँग पर अपना पैर मारकर उसे गिरा देते हैं।

बगलीबाँह—संज्ञा स्त्री० [हिं० बगली + बाँह] एक प्रकार की कसरत जिसमें दो आदमी बराबर बराबर खड़े होकर अपनी बाँह से दूसरे की बाँह पर धक्का देते हैं।

बगलीलँगोट—संज्ञा पुं० [हिं० बगली + लँगोट] कुश्ती का एक पेच।

बगलेदीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० बगली] ताल की चिड़िया। उ०—बोलहिं सोन ढेक बगलेदी। रही अबोल मीन जलभेदी।—जायसी ग्रं०, पृ० १३।

बगलौहाँ†—वि० [हिं० बगल + औहाँ] [स्त्री० बगलौहीं] बगल की ओर झुका हुआ। तिरछा। उ०—सकुचीली कजरारिन की पुरुपन पै बगलौही। चाह भरी देर लौं चाह चितवन तिरछौही।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

बगसनाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बख्शना'। उ०—(क) बगसि वितुंड दिए सुंडन के झुंड रिपु मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) बिलहान कन्ह चहुआन को बगसि भट्ट सिर नाइ चढि।—पृ० रा०, ६१।१६०१।

बगसीसⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बख़शीश, हिं० बकसीस] दे० 'बकसीस'। उ०—सिंगारि पील नरिंद, बगसीस कीन सु चंद।—प० रासो, पृ० ५७।

बगाⓅ†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बागा] जामा। बाना। उ०—नद उदौ सुनि आयो हो वृषभानु को जगा। नाखै फूल्यो आँगनाई सूर बखसीस पाई माथे को चढ़ाइ लीनो लाल वो बगा। सूर (शब्द०)।

बगाⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० बक] बगला। उ०—सूरा थोरा ही भला, सत का रोपै पगा। घना मिला केहि काम का, सावन का सा बगा।—कबीर (शब्द०)।

बगानाⓅ[1]‡—क्रि० स० [हिं० बगना का प्रे० रूप] १. टहलाना। सैर कराना। घुमाना। फिराना। उ०—लघु लघु कंचन के हय हाथी स्यदन सुभग बनाई। तिन महँ धाय चढ़ाय कुमारन लावहिं अजिर बगाई।—रघुराज (शब्द०)। २. फैलाना। बिखेरना। छितरा देना। उ—(क) टूटि तार अगार बगावै। काममूल जनु मोहि छरावै।—नंद० ग्रं०, पृ० १३४। (ख) चोरि चोरि दधि माखन खाइ। जो हम देहिं तौ देइ बगाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६।

बगानाⓅ[2]—क्रि० अ० भागना। जल्दी जल्दी जाना। उ०—बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि, हूँकरत बाघ विरुझानों रस रेला में। 'भूधर' भनत ताकी बास पाय सोर करि कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला मे।—भूधर (शब्द०)।

बगार—संज्ञा पुं० [देश०] वह स्थान जहाँ गाएँ बाँधी जाती हैं। घाटी।

बगारना—क्रि० स० [सं० विकिरण, हिं० बगरना] फैलाना। छिटकाना। पसारना। बिखेरना। उ०—(क) चौक मे चौकी जराय जरी तेहि पै खरी बार बगारत सौंधे।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) गौने की चुनरी वैसिय है, दुलही अबही से ढिठाई बगारी।—मति० ग्रं०, पृ० २६६।

बगारोⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० बगरना] फैलाव। विस्तार। प्रचार। प्रसार। उ०—बाल बिहाल परी कब की दबकी यह प्रीति की रीति निहारो। त्यौं पद्माकर है न तुम्हे सुधि कीनो जो वैरी बसंत बगारो।—पद्माकर (शब्द०)।

बगावत—संज्ञा स्त्री० [अ० बग़ावत] १. बागी होने का भाव। बलवा। विद्रोह। २. राजद्रोह।

बगियाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बाग़ + हिं० इया (प्रत्य०)] बागीचा। उपवन। छोटा बाग। उ०—(क) बन घन फूलहिं टेसुवा बगियन बेलि। चले बिदेस पियरवा फगुवा खेलि।—रहीम (शब्द०)। (ख) हँसी खुसी गोइयाँ मोरी

बगिया पधरी तन जोतिया बरत महताब। देखतै गोरी क मुँह रँगवा उढल बलविखा के हथवा गुलाब।—बिरहा (शब्द०)।

बगीचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाग़चह्] [स्त्री० अल्पा० बगीची] बाटिका। उपवन। छोटा बाग। उ०—(क) लैके सब सचित रतन मंथन को भय मानि। मनों बगीचा बीच गृह बस्यो छीरनिधि आनि।—गुमान (शब्द०)। (ख) शिरोमणि बागन, बगीचन बनन बीच हुते रखवारे तहाँ पंछी को न गति है।—हनुमान (शब्द०)।

बगीछाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० बगीचा] दे० 'बगीचा'। उ०—बलसी रस बस जाय बगीछा राधाजनक तणा ब्रजराज।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १२२।

बगुचा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुगचा, हिं० बकुचा] दे० 'बकुचा'। उ०—कौडी लभे देनचा बगुचा धाऊ धप्प।—संतवानी०, भा० १, पृ० १५४।

बगुरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वग्गुरा, प्रा० वग्गुरा] जाल। फंदा। उ०—बगुर घेर बिप्पंन अप्प मूलन में मंडिय।—पृ० रा०, ६।६७।

बगुरदा—संज्ञा पुं० [सं० वल्गुल या वागुरा] एक शस्त्र। उ०—गुरदा, बगुरदा, छुरी, जमधर, दम तमंचे कटि कसे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६।

बगुला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बगला'।
यौ०—बगुलाभगत = बगला भगत। वचक भगत।

बगूराⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वायु+हिं० गँडूरा] दे० 'बगूला'। उ०—अगर के धूप धूम उठत जहाँई तहाँ उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।—भूषण ग्रं०, पृ० ५४।

बगूला—संज्ञा पुं० [हिं० बाउ + गोला] वह वायु जो गरमी के दिनों मे कभी कभी एक ही स्थान पर भँवर सी घूमती हुई दिखाई देती है और जिससे गर्द का एक खंभा सा बन जाता है। बवंडर। वातचक्र।

विशेष—यह वायुस्तंभ आगे को बढता जाता है। इसका व्यास और ऊँचाई कभी कम और कभी अधिक होती है। इसे गवाँर लोग 'भवानी का रथ' कहते हैं। कभी कभी बड़े व्यासवाले बगूले में पड़कर बड़े बड़े पेड़ और मकान तक उखड़कर उड़ जाते हैं। यह बगूला जब समुद्र या नदियों में होता है तब उसे 'सूंडी' कहते हैं। इससे पानी नल की भाँति ऊपर खिंच जाता है।

बगेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक चिड़िया। दे० 'बगेरी'। उ०—घरी परेवा पाँडुक हारी। केहा कदरी अउर बगेरी।—जायसी (शब्द०)।

बगेदना†—क्रि० स० [अनु० देश०] धक्का देकर दूर करना। भगा देना।

बगेरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] सारे भारत में पाई जानेवाली खाकी रंग की एक छोटी चिड़िया। बगौधा। बघेरी। भरुही।

विशेष—यह डीलडौल में गौरैया के समान होती है और मैदानों में जलाशयों के पास पाई जाती है। यह जमीन के साथ इस तरह चिमट जाती है कि सहज में दिखाई नही देती। यह झुंडो में रहती है। इसे संस्कृत में भरद्वाज कहते हैं। इसे कहीं कहीं उसरबगेरी भी कहा जाता है।

बगैचा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बगीचा'।

बगैर—अव्य० [अ० बग़ैर] बिना। सिवा।

बगौधा‡—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० बगौधी] बगेरी नाम की चिड़िया।

बग्गⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० वक, प्रा० बग] दे० 'वक'। उ०—भेष दरियाव में हंस भी होते हैं, भेष दरियाव में बग्ग होई।—कबीर० रे०, पृ० ९।

बग्गⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्गा, प्रा० वग्ग] बाग। लगाम। उ०—गहि वग्ग हथ्थ फेरत तुरंत, नट नृत्य निपुन धावत कुरंग।—पृ० रा०, १।७२३।

बग्ग[3]—संज्ञा पुं० [फा० बाग़] बगीचा। बाग। उ०—बग्ग मग्ग गोपिक गमन। —पृ० रा०, २।३५४।

बग्गड़†—वि० [प्रा०, गुज० बगड़] शरारती। चिलबिला। बंगड़। बिगड़ा हुआ। बदमाश। उ०—ऐसे बग्गड का क्या ठिकाना। जो आदमी स्त्री का न हुआ, वह दूसरे का क्या होगा।—मान०, भा० ५, पृ० ९३।

बग्गनाⓅ—क्रि० अ० [सं० √वच्, प्रा० बग्ग] शब्द करना। बजना। उ०—बग्गि आनंद निसान।—पृ० रा०, ७।१८१।

बग्गानाⓅ—क्रि० स० [सं० वल्गन, प्रा० वग्गण] बाँ बाँ करना। रँभाना। चिल्ला उठना। उ०—बाठ छता के छेरि गाय ब्यानी बग्गानिय।—पृ० रा०, १३।२८।

बग्गी—संज्ञा स्त्री० [अं० बोगी] चार पहिए की पाटनदार गाड़ी जिसे एक वा दो घोड़े खीचते हैं।

बग्गुⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बल्गा। लगाम।

बग्गुरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वागुरा, प्रा० वग्गुर, वग्गुरा] जाल। फंदा। उ०—वग्गुर अगिनत परत कितिक फदन पग विद्दवत।—पृ० रा०, ६।१०४।

बग्घी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बग्गी'।

बघंबर—संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्राम्बर] १. बाघ की खाल जिसपर साधू लोग बैठकर ध्यान लगाते हैं। उ०—(क) बरुनी बघंबर में गूदरी पलक दोऊ कोए राते बसन भगोहैं भेष रखियाँ।—देव (शब्द०)। (ख) सार की सारी सो भारी लगै धरिबे कहु सीस बघम्बर पैया। हाँसी सो दासी सिखाइ लई हैं बेई जो बेई रसखानि कन्हैया।—रसखान (शब्द०)। २. बाघ की खाल की तरह बना हुआ कबल।

बघंमरिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्राम्बर] दे० 'बघंबर'। उ०—कहिं खाकिया खाक बघमरि है कहि पाँव उलटि के रोवता है।—संत० दरिया, पृ० ६६।

बघⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] बाघ का समास में प्रयुक्त रूप। जैसे, बघनखा।

यौ०—बघछाल, बघछाला = व्याघ्रचर्म। बाघ की खाल। उ०—कर उदपान काँध बघछाला।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०५। बघनखना = बाघ के नख का आभूषण। उ०—कंठ कठुला सोहै औ बघनखना।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४०। बघनखा = दे० 'बघनहाँ'। बघनहा = व्याघ्रनख का आभूषण। उ०—एक बघनहा इसके गले मे पड़ा रहे तो अच्छा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ५७२।

बघनहाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० बाघ + नहँ (= नाखून) [स्त्री० अल्पा० बघनहीं] १. एक प्रकार का हथियार जिसमें बाघ के नहँ के समान चिपटे टेढ़े काँटे निकले रहते हैं। यह उँगलियों में पहना जाता है और इससे हाथापाई होने पर शत्रु को नोच लेते हैं। शेरपंजा। २. एक आभूषण जिसमें बाघ के नाखून चाँदी या सोने में मढ़े होते हैं। यह गले मे तागे में गूँथकर पहना जाता है। उ०—कँठुला कंठ बघनहाँ नीके। नयन सरोज मयन सरसी के।—तुलसी (शब्द०)।

बघनहियाँⓅ—[हिं० बाघ + नह + इया (प्रत्य०)] बघनहाँ आभूषण। उ०—बड़े बड़े मोतिन की माला बड़े बड़े नैन नान्ही नान्ही भृकुटी कुटिल बघनहियाँ।—केशव (शब्द०)।

बघनाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० बघनहाँ] बघनहाँ आभूषण। उ०—सीप जैमाल श्याम उर सोहै बिच बघना छवि पावै री। मानो द्विज शशि नखत सहित है उपमा कहत न आवै री।—सूर (शब्द०)।

बघरूरा†—संज्ञा पुं० [हिं० वायु + गँहूरा] बगूला। चक्रवात। ववंडर। उ०—चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बघरूरे माँह धांवर छोड़ाय लई कामिनी की काम की।—केशव (शब्द०)।

बघार—संज्ञा पुं० [अनु० हिं० बघारना] १. वह मसाला जो बघारते समय घी में डाला जाय। तड़का। छौंक।

क्रि० प्र०—देना।

२. बघारने की महँक।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।

बघारना—क्रि० स० [सं० अवधारण (= वघारण) या हिं० अनु०] १. कलछी या चम्मच में घी को आग पर तपाकर और उसमें हींग, जीरा आदि सुगंधित मसाले छोड़कर उसे दाल आदि की बटलोई मे मुँह ढाँककर छोड़ना जिसमें वह दाल आदि भी सुगंधित हो जाय। छौंकना। दागना। तड़का देना। २. अपनी योग्यता से अधिक, विना मौके या आवश्यकता से अधिक चर्चा करना। जैसे, वेदांत बघारना। अँग्रेजी बघारना।

मुहा०—शेखी बघारना = बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना। शेखी हाँकना।

बघुरा, बघूराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० वायु + गँहूरा] बगूला। बवंडर। उ०—(क) बघुरे को पात ज्यौं जमीन आसमान को।—ब्रज० ग्रं० पृ० १३४ (ख) वायु बघूरा पुनि ध्वजा यथा चक्र को फेर।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७२८। (ग) मेरो मन भवै भट्ठ पात ह्वै बघरे को।—घनानंद, पृ० ६३।

बघूला‡—संज्ञा पुं० [हिं०] 'बगूला'। उ०—जित जित फिरै भटकतो यों ही जैसे बायु बघूल्यों रे।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१०।

बघूली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बघनखा। उ०—जटित बघूली छतियन लसै। द्वै द्वै चंद कननि कहुँ हँसै।—नंद० ग्रं०, २४५।

बघेर, बघेरा—संज्ञा पुं० [हिं० बाघ+एर (प्रत्य०)] लकड़बग्घा।

बघेल—संज्ञा पुं० [?] राजपूतों की एक शाखा का नाम।

बघेलखंड—संज्ञा पुं० [हिं० बघेल (जाति) + खंड] मध्य भारत में एक प्रदेश जिसमें किसी समय बघेल राजपूतों का राज्य था। अंग्रेजी शासन में यह प्रदेश मध्य भारत की एजेंसी के अंतर्गत रहा। अब इसका नाम मध्य प्रदेश है और इसमें रीवाँ, नागोर, मैहर इत्यादि राज्य अंतर्भूत हैं।

बघेलखंडी—संज्ञा स्त्री० [बघेलखंड + ई, (प्रत्य०)] १. बघेलखंड से संबंधित व्यक्ति या वस्तु। २. बघेलखंड की भाषा।

बघेली‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाघ + एली (प्रत्य०)] बरतन खरादनेवालों का वह खूँटा जिसका ऊपरी सिरा आगे की ओर कुछ बढ़ा होता है। इस सिरे को घाई या नाक कहते हैं और इसी पर रखकर बरतन खरादा या कूना जाता है।

बघैरा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बगेरी'।

बघ्घⓅ—संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्र प्रा० वग्घ] बाघ। व्याघ्र। उ०—तहाँ सिंह बघ्घानहू ने ग्रसे हैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०।

बचⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वचस्] वचन। वाक्य। बात। उ०—(क) जौं मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पदकमल अमाया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जइओ समीर सीतल वहु सजनी मन बच उड़ल सरीर।—विद्यापति, पृ० ५०८। (ग) नैनन ही विहँसि विहँसि कौलों बोलिहौ जू बच हूँ तो बोलिए विहँसि मुख बाल सों।—केशव (शब्द०)।

यौ०—बचपालन = वचन पालना। कही बात पर दृढ़ रहना। उ०—द्विज सनमान दान वचपालन दृढ़ व्रत को हठि नाहिं टरै।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ४६५।

बच²—संज्ञा स्त्री० [सं० वचा] एक प्रकार का पौधा जो ओषधि के काम मे आता है।

पर्या०—उग्रगधा। षड्ग्रंथा। गोलोमी। शतपर्विका। मगल्या। जटिला। तीक्ष्णा। लोमशा। भद्रा। क्षांगा।

विशेष—यह पौधा काश्मीर से आसाम तक तथा मनीपुर और वर्मा मे दो हजार से छह हजार फुट तक ऊँचे पहाड़ों पर पानी के किनारे होता है। इसकी पत्ती सोसन की पत्ती के आकार की पर उससे कुछ बड़ी होती है। इसके फूल नरगिस के फूल की तरह पीले होते हैं। पत्तियों की नाल लंबी होती है। पत्तियों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो खुला रहने से उड़ जाता है। इसकी जल लाली लिए सफेद रंग की होती है जिसमें अनेक गाँठें होती हैं। पत्तियाँ खाने में कड़वी, चर्परी और गरम होती हैं और उनमे से तेज गंध निकलती है। वैद्यक में इसे वमनकारक, दीपन, मल और

मूत्रशोधक और कंठ को हितकर माना है, तथा शूल, शोथ, वातज्वर, कफ, मृगी और उन्माद का नाशक लिखा है। यह गठिया मे ऊपर से लगाई भी जाती है। भावप्रकाश में वच तीन प्रकार की लिखी गई है—(१) वच, (२) खुरासानी वच और (३) महाभरी वच। खुरासानी बच सफेद होती है। इसे मीठी बच भी कहते हैं। यह मति और मेधावर्धक तथा आयुवर्धक होती है। महाभरी को कुलीजन भी कहते हैं। यह कफ और खाँसी को दूर करती है, गले को साफ करती है, रुचि को बढाती तथा मुख को शुद्ध करती है।

वचका(पु)‡—संज्ञा पु० [देशज] १. एक प्रकार का पकवान जो किसी प्रकार के साग या पत्तो आदि को बेसन में लपेटकर और घी या तेल में छानकर बनाया जाता है। २. एक प्रकार का पकवान जो बेसन और मैदे को एक में मिलाकर और जलेबी की तरह टपकाकर घी में छाना जाता है तब दूध में भिगोकर खाया जाता है। उ०-खँडरा बचका औ डुभकौरी। बरी एकोतर सौ कोंहड़ौरी।—जायसी (शब्द०)।

वचकाना‡—वि० [हिं० बच्चा + काना (प्रत्य०)] [स्त्री० बचकानी] १. बच्चों के योग्य। बच्चो के लायक। जैसे, बचकाना जूता। २. बच्चों का सा। थोड़ी अवस्था का।

वचत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बचना] १. बचने का भाव। बचाव। रक्षा। उ०—होती जो पै बचत कहुँ, धीरज ढालन ओट। चतुरन हिये न लागती नैन बान की चोट।—रसनिधि (शब्द०)। २. बचा हुआ अंश। वह भाग जो व्यय होने से बच रहे। शेष। ३. लाभ। मुनाफा।

वचन(पु)†—संज्ञा पु० [सं० वचन] १. वाणी। वाक्। उ०—तुलसी सुनत एक एकनि सों जो चलत विलोकि निहारे। मूकनि वचन लाहु मानो अंधन गहे हैं विलोचन तारे।—तुलसी (शब्द०)। २. वचन। मुँह से निकला हुआ सार्थक शब्द। उ०—(क) रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहु बरु वचन न जाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कत कहियत दुख देन को, रचि रचि वचन अलीक। सबै कहाउर हैं लखे, लाल महाउर लीक।—विहारी (शब्द०)।

मुहा०—बचन डालना = माँगना। याचना करना। वचन तोड़ना वा छोडना = प्रतिज्ञा से विचलित होना। कहकर न करना। प्रतिज्ञा भंग करना। बचन देना = प्रतिज्ञा करना। वात हारना। उ०—निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा कि तेरा वालक मैं रखूँगी। —लल्लू (शब्द०)। वचन पालना वा निभाना = प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करना। जो कुछ कहना वह करना। वचन बँधाना = प्रतिज्ञा कराना। वचनबद्ध करना। उ०—नद यशोदा वचन बँधायो। ता कारण देही धरि आयो।– सूर (शब्द०)। बचन लेना = प्रतिज्ञा कराना। वचन हारना = प्रतिज्ञाबद्ध होना। वात हारना।

वचनविदग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० वचनविदग्धा] एक प्रकार की नायिका। दे० 'वचनविदग्धा'।

वचना¹—क्रि० अ० [सं० वञ्चन (= न पाना)] १. कष्ट या विपत्ति आदि से अलग रहना। रक्षित रहना। संभावना होने पर भी किसी बुरी या दुःखद स्थिति में न पड़ना। जैसे, शेर से बचना, गिरने से बचना, दंड से बचना। उ०—(क) अक्षर त्रास सबन को होई। साधक सिद्ध बचै नहि कोई।—कबीर (शब्द०)। (ख) घन घहराय घरी घरी जब करिहै झरनीर। चहूँ दिसि चमकै चंचला क्यो बचिहै बलवीर।—शृं० सत० (शब्द०)। २. किसी बुरी आदत से अलग रहना। जैसे, बुरी संगत से बचना। ३. किसी के अंतर्गत न आना। छूट जाना। रह जाना। जैसे,—वहाँ कोई नही बचा जिसे रंग न पड़ा हो। ४. खरचने या काम में आने पर शेष रह जाना। बाकी रहना। उ०—मीत न नीत गलीत यह जो धरिए धन जोरि। खाए खरचे जो बचे तो जोरिए करोरि।—बिहारी (शब्द०)। ५. अलग रहना। दूर रहना। परहेज करना। जैसे,—तुम्हें तो इन बातों से बहुत बचना चाहिए। ६. पीछे या अलग होना। हटना। जैसे, गाड़ी से बचना।

बचना(पु)²—क्रि० स० [सं० वचन] कहना। उ०—अबल प्रहलाद बल देत मुख ही बचत दास ध्रुव चरण चित्त सीस नायो। पाडु सुत विपतमोचन महादास लखि द्रौपदी चीर नाना बढ़ायो।—सूर (शब्द०)।

वचन्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वचन] दे० 'वचन'। उ०—येह वचन्न प्रभु उच्चरे; भए सु अंतरध्यान।—प० रासो, पृ० १०।

बचपन, बचपना†—संज्ञा पु० [हिं० बच्चा + पन (प्रत्य०)] १. लड़कपन। बाल्यावस्था। २. बच्चा होने का भाव।

बचवा†—संज्ञा पुं० [हिं० बच्चा + वा (प्रत्य०)] १. प्यार से छोटे बच्चे का संबोधन। २. पुत्र के लिये प्रयुक्त। वत्स। पुत्र। उ०—बचवा का व्याह तो अबके साल न होगा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८६।

बचवैया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० बचाना + वैया (प्रत्य०)] बचानेवाला। रक्षक।

बचा(पु)—संज्ञा पुं० [फा० बचह्, तुल० सं० वत्स, प्रा० वच्छ, हिं० बच्चा] [स्त्री० बची] लडका। वालक। उ०—(क) तुलसी सूर सराहत हैं जग में बलसालि है बालि बचा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दस पान और तुम दक्खिले, मे चंद बचा तुम ते डरों।—पृ०, रा०, ६४।१४०। (ग) मारू देस उपन्नियाँ तिहाँ का दंत सुसेत। कूझ बची गोरंगियाँ खजर जहा नेत।—ढोला०, दू० ६६६। २. लघुत्व एवं उपेक्षासूचक संबोधन। उ०—क्रुद्धित हों तो कह दें कि बचा तुम जानते नही।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७९।

बचाउ(पु)†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'बचाव'। उ०—द्रुम लतानि तर ठाढे, भयो है बचाउ पातनि में।—छीत०, पृ० २९।

बचाना—क्रि० स० [हिं० बचना] १. आपत्ति या कष्ट में न पडने देना। रक्षा करना। उ०—(क) बिन गुरु अक्षर कौन छुड़ावै, अक्षर जाल ते कौन बचावै।—कबीर (शब्द०)। (ख) लाठी मे गुण बहुत है सदा राखिए संग। गहरी नदि नारा जहाँ तहाँ बचावे अंग।—गिरधर (शब्द०)। (ग) चहूँ ओर अवनीस

घने घेरे छवि छावै। महाराज को शुत्रुघात से सजग बचावै। —गोपाल (शब्द०)। २. प्रभावित न होने देना। अलग रखना। ३. व्यय न होने देना। खर्च न होने देना। खर्च करके कुछ रख छोड़ना। ४. छिपाना। चुराना। जैसे, आँख बचाना। उ०—पीठि दै लुगाइन की डीठहि बचाय, ठकुराइन सुनाइन के पायन परति है।—व्यंग्यार्थ०, पृ० १०। ५. किसी बुरी बात से अलग रखना। दूर रखना। जैसे,—बच्चों को सिगरेट, तंबाकू आदि से बचाना चाहिए। ६. ऐसे रोग से मुक्त करना जिसमें मरने की आशंका हो। ७. पीछे करना। हटाना।

बचाव—संज्ञा पुं० [हिं० बचाना] १. बचने या बचाने का भाव। २. रक्षा। त्राण। उ०—कहा कहति तू भई बावरी। ऐसे कैसे होय सखी री घर पुनि मेरो है बचाव री।—सूर (शब्द०)। ३. वाद मे सफाई। सफाई पक्ष।

बचिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० बच्चा (=छोटा)] कसीदे के काम में छोटी छोटी बूटियाँ।

बचीता—संज्ञा पुं० [देश०] दो तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी।

विशेष—इसके तने और टहनियों पर बहुत अधिक रोएँ होते हैं। यह गरम प्रदेशों की पड़ती भूमि में अधिकता से पाई जाती है। इसमें चमकीले पीले रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं जो बीच में काले होते हैं। इसके तने से एक प्रकार का मजबूत रेशा निकलता है।

बचुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह सिंध, उडीसा, बंगाल और आसाम की नदियों में होती है। साधारणतः यह बालिश्त भर लंबी होती है पर इस जाति की कोई कोई बड़ी मछली हाथ डेढ हाथ तक भी लंबी होती है।

बचून†—संज्ञा पुं० [हिं० बच्चा] भालू का बच्चा। (कलंदर)।

बचो—संज्ञा सं० [देश०] एक बारहमासी लता।

विशेष—यह लता काश्मीर, सिंध और काबुल में होती है। इसकी जड़ से मजीठ की तरह का रंग निकलता है। यह बीज और जड़ दोनों से उत्पन्न होती है। तीन वर्ष से लेकर पाँच वर्ष तक मे इसकी जड पककर तैयार होती है। इसकी पत्तियाँ पशु और विशेषत: ऊँट बड़े चाव से खाते हैं।

बच्चा¹—संज्ञा पुं० [फा० बच्चह्, तुल० सं० वत्स, प्रा० बच्छ] [स्त्री० बच्ची] १. किसी प्राणी का नवजात और असहाय शिशु। जैसे, गाय का बच्चा, हाथी का बच्चा, मुर्गी का बच्चा इत्यादि।

मुहा०—बच्चा देना = प्रसव करना। गर्भ से उत्पन्न करना।

२. लड़का। बालक।

मुहा०—बच्चों का खेल = बहुत सुगम कार्य। सहज काम।

३. बेटा। पुत्र। उ०—चंगाह चंद बच्चा वचन इह सलाम करि कथ्थिया।—पृ० रा०, ६४।१५४।

यौ०—बच्चे कच्चे = बाल बच्चे। बड़े छोटे लड़के लड़कियाँ। बच्चेबाज = समलैंगिक मैथुन करनेवाला।

बच्चा²—वि० अज्ञान। अनजान। जैसे,—अभी तुम इस कार्य में बच्चे हो।

बच्चाकश—वि० [फा० बच्चह्कश] (स्त्री) बहुत बच्चे जननेवाली। (विनोद में)।

बच्चादान—संज्ञा पुं० [फा० बच्चह्दान] गर्भाशय। कोख।

बच्चो—संज्ञा स्त्री० [हिं० बच्चा + ई (प्रत्य०) १. वह छोटी घोडिया जो छत या छाजन में बड़ी घोडिया के नीचे लगाई जाती है। २. वह बाल जो होंठ के नीचे बीच में जमता है। ३. दे० 'बच्चा'।

बच्चेदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बच्चादान] गर्भाशय।

बच्छ—संज्ञा पुं० [सं० वत्स, प्रा० बच्छ] [संज्ञा स्त्री० बच्छी] १. बच्चा। बेटा। उ०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। कबहिं बोलाइ लगाइ हिय हरषि निरखिहउँ गात।—तुलसी (शब्द०)। २. गाय का बच्चा। बछड़ा। उ०—(क) राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बच्छ पुच्छ लै दियो हाथ पर मंगल गीत गवायो। जसुमति रानी कोख सिरानी मोहन गोद खेलायो।—सूर (शब्द०)।

बच्छनाग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बछनाग'।

बच्छल(पु)—वि० [सं० वत्सल, प्रा० बच्छल] माता पिता के समान प्यार करनेवाला। वत्सल। उ०—सुनि प्रभु वचन हरखि हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना।—तुलसी (शब्द०)।

बच्छलता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वत्सलता] वात्सल्य भाव। उ०—निपट अमित जननी कहूँ जानि। निरवधि बच्छलता पहिचानि।—नंद० ग्रं०, पृ० २५०।

बच्छस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वक्षस्] छाती। वक्षस्थल। उ०—जानत सुभाव ना प्रभाव भुजदडन को, खंडन को छत्रिन के बच्छस कपाट को।—तुलसी (शब्द०)।

बच्छा†—संज्ञा पुं० [सं० वत्सक, प्रा० बच्छ] [स्त्री० बछिया] १. गाय का बच्चा। बछड़ा। बछवा। २. किसी जानवर का बच्चा। (क्व०)।

बछ(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० वत्स, प्रा० बच्छ] गाय का बच्चा। बछड़ा। उ०—बाल बिलख मुख गौ न चरति तृण बछ पय पियन न धावै। देखत अपनी अँखियन ऊधो हम कहि कहा जनावै।—सूर (शब्द०)। (ख) राक्षस तहाँ धेन बछ भष्षं।—पृ० रा०, ६१। १७६६।

यौ०—बछपाल = वत्सल। बच्छल। उ०—बरषि कदम्म सुब्रन्न चढि, लज्जित बहु वर बाल। हथ्थ जोरि सम सो भई, प्रभु वुल्ले बछपाल।—पृ० रा०, २। ३७७।

बछ²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बच'।

बछ³—संज्ञा पुं० [सं० वक्षस् प्रा० बच्छ] छाती। वक्ष।

यौ०—बछस्थल = हृदय। वक्ष। उ०—जदपि बछस्थल रमति रमा रमनी बर कामिनि।—नंद०, ग्रं०, पृ० ४७।

बछड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० बच्छ + ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० बछड़ी, बछिया] गाय का बच्चा। उ०—माँ, मैं बछड़े चराने जाऊँगा।—लल्लू (शब्द०)।

बछनाग—संज्ञा पुं० [सं० वत्सनाभ] एक स्थावर विष।

पर्या०—काकोला। गरल। विष। दारद।

विशेष—यह नेपाल के पहाड़ों में होनेवाले पौधे की जड है। इसे सींगिया, तेलिया और मीठा विष भी कहते हैं। यह देखने में हिरन की सींग के आकार का होता है। इसका रंग कड़ुवे तेल की तरह कालापन लिए पीला होता है और स्वाद मीठा होता है। इसकी जड़ के रेशों के बीच मे गोंद की तरह गूदा होता है, जो गीला रहने पर तो नरम रहता है पर सूखने पर बहुत कड़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त एक प्रकार का और बछनाग होता है जो काला और इससे बडा होता है और जिसके ऊपर छोटे छोटे दाग होते हैं जो गाँठ की तरह मालूम पड़ते हैं। इसे काला बछनाग या कालकूट कहते हैं। यह शिकम (सिक्किम) की पहाड़ियों में होता है। ये दोनों ही विष हैं और दोनों के खाने से प्राणियों की मृत्यु होती है। वैद्यक में बछनाग का स्वाद मीठा, प्रकृति गरम और गुण वात एवं कफनाशक तथा कंठरोग और सन्निपात को दूर करनेवाला बतलाया गया है। इसका प्रयोग औषधों में होता है। निघंटु में इसके वत्सनाभ, हारिद्र, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रक, शृंगक, कालकूट और ब्रह्मपुत्र, ये नौ भेद बतलाए गए हैं।

बछरा⁽प⁾—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बछड़ा'। उ०—(क) कब की हौ हेरति न हेरे हरि पावति हौ बछरा हिरानो सो हिराय नैक दीजिए।—मति० ग्रं०, पृ० २८७।

बछरुआ, बछरुवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बछड़ा'। उ०—(क) ब्रह्मा बाल बछरुआ हरि गयो सो ततछन सारिखे सवाँरी।—सूर०, १ ३९। (ख) असमैं देह बछरुवनि छोरि। ठाढ़ी हँसै खरिक की खोरि।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६।

बछरू†—संज्ञा पुं० [सं० वत्सरूप, प्रा० वच्छ + रूअ] बछड़ा। गाय का बच्चा। उ०—(क) भोजन करत सखा इक बोल्यो बछरू कतहूँ दूरि गए। यदुपति कह्यो घेरि हौं आनौ तुम जेंवहु निश्चित भए।—सूर (शब्द०)। (ख) हंसा संशय छूटी कहिया। गैया पियै बछरू को दुहिया।—कबीर (शब्द०)।

बछल⁽प⁾†—वि० [सं० वत्सल] दे० 'वत्सल'। उ०—भगत बछल कृपाल रघुराई।—मानस, ७।११।

बछलता⁽प⁾—संज्ञा स्त्री० [सं० वत्सलता, प्रा० वच्छलता]। वात्सल्य। उ०—भगत बछलता प्रभु कै देखी।—मानस ७।८३।

बछवा†—संज्ञा पुं० [हिं० बच्छ] [स्त्री० बछिया] बछेड़ा। गाय का बच्चा। उ०—(क) बैल बियाय गाय भइ बाँझा। बछवै दुहिया तिन तिन साँझा।—कबीर (शब्द०)। (ख) जब छोटे छोटे बछड़ों और बछियाओं की पूँछें पकड़कर उठे और गिर पड़े।—लल्लू (शब्द०)।

मुहा०—बछिया का बाबा या ताऊ = मूर्ख। अज्ञान। निर्बुद्धि बेवकूफ। उ०—आपके नवाब भी बछिया के ताऊ हैं।—सैर०, पृ० ४२।

बछा†—संज्ञा पुं० [सं० वत्सक] दे० 'बच्छा'।

बछेड़ा—संज्ञा पुं० [सं० वत्स, प्रा० वच्छ, पु० हिं० बच्छ, बछ + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० बछेड़ी]। घोड़े का बच्चा।

बछेरा⁽प⁾—संज्ञा पुं० [हिं० बछेरा] दे० 'बछेरा'। उ०—सुरँग बछेरे नैन तुव जद्यपि हैं नारंद। मन सौदागर ने कह्यो हैं बहुतहि परसंद।—रसनिधि (शब्द०)।

बछेरू⁽प⁾—संज्ञा पुं० [हिं० बछरा] दे० 'बछड़ा'।

बछौटा†—संज्ञा पुं० [हिं० बाछ + औटा (प्रत्य०)] वह चंदा जो हिस्से के मुताबिक लगाया या लिया जाय।

बजंत्री—संज्ञा पुं० [हिं० बाजा] १. बाजा बजानेवाला। बजनियाँ। उ०—बजंत्री बजाने लगे।—लल्लू (शब्द०)। २. मुसलमानी राज्यकाल का एक प्रकार का कर जो गाने बजाने का पेशा करनेवालों से लिया जाता था।

बजकंद—संज्ञा पुं० [सं० वज्रकन्द] एक बड़ी लता जो भारत के जंगलों मे पैदा होती है। इसकी जड़ विषैली और मादक होती है परंतु उबालने से खाने योग्य हो सकती है।

बजकना†—क्रि० अ० [अनुध्व०] किसी तरल पदार्थ का सड़कर या बहुत गंदा होकर बुलबुले फेंकना। बजबजाना।

बजका†—संज्ञा पुं० [हिं० बजकना] १. चने की दाल या बेसन की बनी हुई बड़ी बड़ी पकौड़ियाँ जो पानी में भिगोकर दही में डाली जाती है। २. दे० 'बचका'।

बजट—संज्ञा स्त्री० [अं०] आगामी वर्ष या मास आदि के लिये भिन्न भिन्न विभागों में होनेवाले आय और व्यय का लेखा जो पहले से तैयार करके मंजूर कराया जाता है। भविष्य मे होनेवाली आय और व्यय का अनुमित लेखा। आयव्ययक।

बजड़ना†—क्रि० स० [?] १. टकराना। २. पहुँचना।

बजड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'बजरा'। २. दे० 'बाजड़ा'।

बजनक—संज्ञा पुं० [पश्तो] पिस्ते का फूल जो रेशम रँगने के काम आता है।

बजना¹—क्रि० अ० [हिं० बाजा] १. किसी प्रकार के आघात या हवा के जोर से बाजे आदि में से शब्द उत्पन्न होना। बोलना। जैसे, डंका बजना, बाँसुरी बजना। उ०—(क) परी मेरी ब्रजरानी तेरी बर बानी किधौं बानी ही की बीणा सुख मुख मे बजत है।—केशव (शब्द०)। (ख) मोहन तू या बात को, अपने हिये बिचार। बजत तँबूरा कहुँ सुने, गाँठ गठीले तार।—रसनिधि (शब्द०)। २. किसी वस्तु का दूसरी वस्तु पर इस प्रकार पड़ना कि शब्द उत्पन्न हो। आघात पड़ना। प्रहार होना। जैसे, सिर पर डंडा या जूता बजना। उ०—लोलुप भ्रमत गृहप ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्राण

बजै। तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै।—तुलसी (शब्द०)। ३. शस्त्रों का चलना। जैसे, लाठी बजना, तलवार बजना। ४. अड़ना। हठ करना। जिद करना। उ०—(क) प्रीति करी तुमसों बजि के सुबिसारि करी तुम प्रीति घने की।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) घरी बजी घरियार सुनि, बजि के कहत बजाइ बहुरि न पैहै यह घरी, हरि चरनन चित लाइ। —रसनिधि (शब्द०)। ५. प्रख्याति पाना। प्रसिद्ध होना। कहलाना। उ०—गुन प्रभुता पदवी जहाँ तहाँ बनै सब कार। मिलै न कछु फल आक ते बजै नाम मंदार।—दीनदयाल (शब्द०)।

बजना²—संज्ञा पुं० [सं० वादन, वा हिं० बाजा] १. वह जो बजता हो। बजनेवाला बाजा। २. रुपया। (दलाल)।

बजना†³—वि० [हिं० बजाना] बजनेवाला। जैसे, बजना बाजा।

बजनियाँ†—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं० बजना+इया (प्रत्य०) बाजा बजानेवाला। उ०—सेवक सकल बजनियाँ नाना। पूरन किए दान सनमाना।—तुलसी (शब्द०)।

बजनिहाँ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बजनियाँ'।

बजनी¹—वि० [हिं० बजना] बजनेवाला। जो बजता हो। उ०—घुघरू बजनी, रजनी उजियारी।—(शब्द०)।

बजनी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बजना] लड़ाई। झगडा। संघर्ष। उ०—कहै सहेलिन सों हो सजनी। रजनी बीच करत दुख बजनी।—इंद्रा०, पृ० १४७।

बजनूं‡—वि० [हिं० बजना] बजनेवाला। जो बजता हो।

बजबजाना†—क्रि० अ० [अनु०] किसी तरल पदार्थ का सड़ने या गंदा होने के कारण बुलबुले छोड़ना।

बजमारा(पु)†—वि० [हिं० बज्र+मारा] [स्त्री० बजमारी] वज्र से मारा हुआ। जिसपर वज्र पड़ा हो। उ०—(क) दान लेहु देहु जान काहे को कान्ह देत हो गारी। जो कोऊ कह्यो करै रीहठ याही मारग आवै बजमारी।—सूर (शब्द०)। (ख) ये अलि इकंत पाइ पायन परे हैं आय हौं न तब हेरी या गुमान बजमारे सों। —पद्माकर (शब्द०)। (ग) जा बजमारे अब मैं तो सों भूलि कछू नहिं कहिहौं।—अयोध्या० (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः स्त्रियाँ गाली या शाप के रूप में करती हैं।

बजरंग¹(पु)—वि० [सं० वज्राङ्ग] वज्र के समान दृढ़ शरीरवाला। उ०—सजि बुघुव पायक संग। रन मध्य मह बजरंग।—प० रासो, पृ० १३४।

बजरंग²—संज्ञा पुं० हनुमान।

बजरंगवली—संज्ञा पुं० [सं० वज्राङ्ग+बली] हनुमान। महावीर।

बजरंगी—वि० [सं० वज्राङ्गिन्] वज्र की तरह शरीरवाला। उ०—पवमनंद परचंड जीत दारुण खल जंगी। अजर अमर अणभंग बजर आयुध बजरंगी।—रघु० रू०, पृ० ३।

बजरंगी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बजरंग+बैठक] एक प्रकार की बैठक। कसरत।

बजर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० बज्र, हिं० बज्र] दे० 'वज्र'। उ०—(क) गोट गोट सखी सब गेलि बहराय। बजर किवाड़ पहु देलन्हि लगाय।—विद्यापति०, पृ० २०४। (ख) अजर अमर अणभंग बजर आयुध बजरंगी।—रघु० रू०, पृ० ३।

बजरबट्टू—संज्ञा पुं० [हिं० वज्र+बट्टा] एक वृक्ष के फल का दाना या बीज जो काले रंग का होता है और जिसकी माला लोग बच्चों को नजर से बचाने के लिये पहनाते है। उ०—माजूफल शंख रुद्राक्ष त्यो बजरबट्टू, तुलसी की गुलिका सुधारे छबि छाजे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इसका पेड़ ताड़ की जाति का है और मलाबार में समुद्र के किनारे तथा लंका में उत्पन्न होता है। बंगाल और बरमा में भी इसे लोग बोते और लगाते हैं। इसकी पत्तियाँ बहुत बड़ी और तीन साढ़े तीन हाथ व्यास की होती हैं और पंखे, चटाई, छाते आदि बनाने के काम में आती हैं। योरप में इसकी नरम और कोमल पत्तियों से अनेक प्रकार के कटावदार फीते बनाए जाते हैं तथा इसके रेशे से बुरुश बनाए और जाल बुने जाते हैं। इसकी रस्सियाँ भी बटी जा सकती हैं। इसके फल बहुत कड़े होते हैं और योरप में उनसे बटन, माला के दाने और छोटे छोटे पात्र बनाए जाते हैं। मलाबार में इसके पेड़ों को लोग समुद्र के किनारे बागों में लगाते हैं। यह पेड़ चालीस बयालीस वर्ष तक रहता है और अंत में पुराना होकर गिर पड़ता है। इसे नजरबट्टू और नजरबटा भी कहते हैं।

बजरबोंग†—संज्ञा पुं० [हिं० वज्र+बोंग (अनु०)] १. एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में पककर तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। २. बाँस का मोटा और भारी डंडा।

बजरहड्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं० वज्र+हड्डी] घोड़े का एक रोग जो उसके पैरों की गाँठो मे होता है।

विशेष—इसमें पहले एक फोड़ा होता है जो पककर फूट जाता है और गाँठ की हड्डी फूल आती है। इससे घोड़ा बेकाम हो जाता है। यह रोग बड़ी कठिनाई से अच्छा होता है।

बजरा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की बड़ी और पटी हुई नाव जिसमें नीचे की ओर एक छोटी कोठरी और एक बड़ा कमरा होता है और ऊपर खुली छत होती है। २. दे० 'बाजरा'।

बजराग, बजरागी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वज्राग्नि] दे० 'बजरागी'। उ०—विरह बड़ो बजराग, जकि उर ऊपर परे।—नट०, पृ० १०४।

बजरागी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वज्राग्नि] वज्र की अग्नि। बिजली। उ०—पानी माँझ उठै बजरागी। कहाँ से लौकि बीजु भुइँ लागी।—जायसी (शब्द०)।

बजरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बजार+इया (प्रत्य०)] दे० 'बाजार'। उ०—मुँसी है कुतवाल ज्ञान को, चहुँ दिस लगी बजरिया।—कबीर० श०, पृ० ५५।

वजरी†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वज्र] १. कंकड़ के छोटे छोटे टुकड़े जो छत के ऊपर पीटकर बैठाए जाते हैं और जिनपर सुरखी और चूना डालकर पलस्तर किया जाता है। ककड़ी। २. ओला। वर्षोपल। बनौरी। ३. छोटा नुमाइशी कँगूरा जो किले आदि की दीवारों के ऊपरी भाग में बराबर थोड़े थोड़े अंतर पर बनाया जाता है और जिसकी बगल में गोलियाँ चलाने के लिये कुछ अवकाश रहता है। उ०—है जो मेघगढ़ लाग अकासा। बजरी कटी कोट चहुँ पासा।—जायसी (शब्द०)। ४. दे० 'बाजरा'।

वजरी†²—संज्ञा स्त्री० [सं० वज्रोली] वज्रोली नामक मुद्रा। दे० 'वज्रोली'। उ०—वजरी करता अमरी राषै अमरि करंता बाई। भोग करता जो व्यद राखै ते गोरख का गुरभाई।—गोरख०, पृ० ४६।

वजवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बजवाना + ई (प्रत्य०)] वह पुरस्कार जो बाजा आदि बजाने के बदले में दिया जाता है। बजाने की मजदूरी।

वजवाना—क्रि० स० [हिं० बजाना का प्रे० रूप] बजाने के लिये किसी को प्रेरणा करना। किसी को बजाने में प्रवृत्त करना। उ०—जहाँ भूप उतरत गतशंका। तहाँ प्रथम बजवावत डंका।—गोपाल (शब्द०)।

वजवैया†—वि० [हिं० बजाना + वैया (प्रत्य०)] बजानेवाला। जो बजाता हो। उ०—बंसी हूँ मैं आप ही सप्त सुरन में आपु। बजवैया पुनि आपु ही रिझवैया पुनि आपु।—रसनिधि (शब्द०)।

वजहा†—वि० [हिं० बजना (= लड़ाई होना) + हा (प्रत्य०)] झगड़ालू।

वजहाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बजहा + ई (प्रत्य०)] वादविवाद। झगड़ा। उ०—तुलह न तोली गजह न मापी, पहजन सेर अढ़ाई। अढाई में जे पाव घटे तो, करवस करे बजहाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३।

वजा—वि० [फ़ा०] उचित। वाजिब। जैसे,—आपका फरमाना बिल्कुल बजा है। उ०—शीशा उसी के आगे बजा है कि रख मेती। प्याले को जब ले हाथ में रश्के परी करे।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २४।

मुहा०—बजा लाना = (१) पूरा करना। पालन करना। जैसे, हुकुम बजा लाना। (२) करना। जैसे, आदाब बजा लाना।

वजागि, वजागीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बज्र + अग्नि] वज्र की आग। विद्युत्। बिजली। उ०—(क) आगि लगै तेरे फाल के सीस परो हर जाय बजागि परो जू। आजु मिलौ तो मिलौ ब्रजराजहिं नाहिं तो नीके ह्वै राज करो जू।—केशव (शब्द०)। (ख) बिरह आगि पर मेले आगी। बिरह घाव पर घाउ बजागी।—पदमावत, पृ० २८६।

वजाज—संज्ञा पुं० [अ० बज्जाज, बज्ज़ाज़] [स्त्री० बजाजिन] कपड़े का व्यापारी। कपड़ा बेचनेवाला। उ०—(क) बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अपने गोपाल लाल के मैं बागे रचि लेऊँ। बजाजिन ह्वै जाऊँ निरखि नैनन सुख देऊँ।—सूर (शब्द०)।

वजाजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बज्ज़ाज़ह्] बजाजों का बाजार। वह स्थान जहाँ बजाजों की दूकानें हों। कपड़े बिकने का स्थान।

वजाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० बज्ज़ाज़ी] १. कपड़ा बेचने का व्यापार। बजाज का काम। २. बजाज की दूकान का सामान। बिक्री के लिये खरीदा हुआ कपड़ा (वस्त्र०)।

वजाना¹—क्रि० स० [हिं० बाजा] १. किसी बाजे आदि पर आघात पहुँचाकर अथवा हवा का जोर पहुँचाकर उससे शब्द उत्पन्न करना। जैसे, तबला बजाना, बाँसुरी बजाना, सीटी बजाना, हारमोनियम बजाना, आदि। उ०—(क) मुरली बजाई तान गाई मुसकाइ मंद, लटकि लटकि माई नृत्य में निरत है।—पद्माकर (शब्द०)। २. किसी प्रकार के आघात से शब्द उत्पन्न करना। चोट पहुँचाकर आवाज निकालना। जैसे, ताली बजाना।

मुहा०—बजाकर = डंका पीटकर। खुल्लम खुल्ला। उ०—(क) सुदिन सोधि सब साज सजाई। देउ भरत कहुँ राज बजाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सूरदास प्रभु के अधिकारी एही भए बजाइ। —सूर (शब्द०)। ठोंकना बजाना = अच्छी प्रकार परीक्षा करना। देख भालकर भली भाँति जाँचना।

विशेष—यह मुहाविरा मिट्टी के बरतन के ठोंकने बजाने से लिया गया है। जब लोग मिट्टी के बरतन लेते हैं तब हाथ में लेकर ठोककर और बजाकर उसके शब्द से फूटे टूटे या साबित होने का पता लगाते हैं।

३. किसी चीज से मारना। आघात पहुँचाना। चलाना। जैसे, लाठी बजाना, तलवार बजाना, गोली बजाना। उ०—हरी भूमि गहि लेइ दुवन सिर खड़ग बजावै। पर उपकारज करै पुरुष में शोभा पावै।—गिरधर (शब्द०)।

वजाना²—क्रि० स० [फ़ा० बजा + हिं० ना (प्रत्य०)] पूरा करना। जैसे, हुकुम बजाना।

वजाय—अव्य० [फ़ा०] स्थान पर। जगह पर। बदले में। जैसे,—अगर आपके बजाय मैं वहाँपर होता तो कभी यह बात न होने पाती।

वजारⓅ†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाजार] वह स्थान जहाँ बिक्री के लिये दुकानों में पदार्थ रखे हों। हाट। पैठ। बाजार। उ०—(क) हीरा परा बजार में रहा छार लपटाय। बहुतक मूरख चलि गए पारखि लिया उठाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) छूटे दृग गज मीत के बिच यह प्रेम बजार। दीजै नैन दुकान के मुहकम पलक केवार।—रसनिधि (शब्द०)।

वजारी—वि० [हिं० बजार + ई (प्रत्य०)] १. बाजार से संबंध रखनेवाला। बजारू। २. साधारण। सामान्य। उ०—कीर्ति बड़ी करतूति बड़ी जन बात बड़ी सो बड़ोई बजारी।—तुलसी (शब्द०)। ३. दे० 'बाजारी'।

बजारु, बजारू—वि० [हिं० बजार+ऊ (प्रत्य०)] दे० 'बाजारू'।

बजावनहार†—वि० [हिं० बजाना+हार (प्रत्य०)] बजानेवाला। बजवैया। उ०—यत्र बजावत हो सुना टूटि गए सब तार। यंत्र बिचारा क्या करै गया बजावनहार।—कबीर (शब्द०)।

बजुआ—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'बाजू'।

बजुज—अव्य० [फा० बजुज़] सिवा। अतिरिक्त। जैसे,—बजुज आपके और कोई वहाँ न जा सकेगा।

बजुल्ला—संज्ञा पु० [फ़ा० बाजू+उल्ला (प्रत्य०)] बाँह पर पहनने का बिजायठ नाम का आभूषण।

बजूखा—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'बिजूखा'।

बज्जनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बजना'।

बज्जरⓅ†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'वज्र'। उ०—तेहि वज्रागि जरे हौं लागा। बज्जर अग जरत उठि भागा।—जायसी ग्रं०, पृ० २४६।

बज्जात†—वि० [फ़ा० बदज़ात] दुष्ट। बदमाश। पाजी।

बज्जाती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदज़ाती] दुष्टता। बदमाशी। पाजीपन।

बज्रंगीⓅ—वि० [सं० वज्राङ्गिन्] वज्र के समान अंगवाला। उ०—उदित अक दिसि पुव्व पहुँ जगे सेन दोइ जग। अश्व अप्प बल बड्डए बल बज्रंगी अग।—पृ० रा०, २४। १२४।

बज्र—संज्ञा पुं० [सं० वज्र] दे० 'वज्र'।

बज्रागिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० वज्राग्नि] दे० 'बजरागि'। उ०—परि है बज्रागि ताके ऊपर अचानचक धूरि उड़ि जाइ कहूँ ठोहर न पाइहै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५००।

बज्री—संज्ञा पुं० [सं० वज्रिन्] इंद्र।

बझनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० बद्ध, प्रा० बज्झ+हिं० ना (प्रत्य०)] १. बंधन में पड़ना। बँधना। उ०—जीव परयो या ख्याल मे अरु गए दसा दस। बझे जाय खगवृंद ज्यों प्रिय छवि लटकनि लस।—सूर (शब्द०)। (ख) सुने नाना पुरान मिटत नहिं अज्ञान पढ़े न समुझै जिमि खग कीर। बझत बिनहि पास सेमर सुमन आस करत चरत तेऊ फल बिनु हीं।—तुलसी (शब्द०)। २. अटकना। उलझना। फँसना। जैसे, काम में बझना। ३. हठ करना। टेक करना। उ०—उपरोहित निमिवश को शतानंद मुनिराय। लियो नेग बझि राम सों, मम हिय बसो सदाय।—रघुराज (शब्द०)।

बझवट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँझ+वट (प्रत्य०)] १. बाँझ स्त्री। २. गाय, भैंस या कोई मादा पशु जो बाँझ हो। ३. अन्न के पौधों के डठल जिनसे बालें तोड़ ली गई हों।

बझाउⓅ†—संज्ञा पु० [हिं० बझना] दे० 'बझाव'।

बझान—संज्ञा स्त्री० [हिं० बझना] बझने की क्रिया या भाव। बझाव।

बझानाⓅ‡—क्रि० स० [हिं० बझना का सकर्मक रूप] बधन में लाना। उलझाना। फँसाना। उ०—(क) नाथ सो कौन विनती कहि सुनावौं। नाम लगि लाय लासा ललित वचन कहि व्याध ज्यों विषय विहँगन बझावौं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जनु गति नील अलकिया बंसी लाय। यो मन बार बघुअवा मीन बझाय।—रहीम (शब्द०)।

बझाव—संज्ञा पुं० [हिं बझाना] १. बझने का भाव। फँसने की क्रिया या भाव। २. उलझाव। अटकाव। उ०—काँट कुरोय लपेटनि लोटनि ठाँवहि ठाँव बझाव रे। जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेट लगाव रे।—तुलसी (शब्द०)।

बझावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बझना+आवट (प्रत्य०)] १. बझने की क्रिया या भाव। २. उलझाव। अटकाव।

बझावनाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बझाना'। उ०—रूप प्रवाह नदी तट खेलत मैन सिकारी बझावत मीन है।—प्रवीन (शब्द०)।

बट¹—संज्ञा पु० [सं० वट] १. दे० 'वट' (वृक्ष)। उ०—वट पीपर पाकरी रसाला।—मानस, ७।५६। २. बड़ा नाम का पकवान। बरा। उ०—तिमि बतासफेनी वासौंधी। विविध बटी टट मांड़ी औधी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) पायस चद्र किरन सम सोहे। चंद्राकार विविध वट जोहे।—रघुराज (शब्द०)। ३. गोला। गोल वस्तु। उ०—नट बट तेरे दगन को कौन सकत है पाय।—रसनिधि (शब्द०)। ४. बट्टा। लोढ़िया। ५. बाट। बटखरा। ६. बखरा। हिस्सा। बाँट।

बट²—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्त] रस्सी की ऐंठन। बटाई। बल।

बट³—संज्ञा पु० [सं० वर्त्म, प्रा० वट्ट, हिं० बाट] मार्ग। रास्ता। उ०—छूटो घुँघरारी लट, लूटी हैं वधूटी वट, टूटी चट लाज तें न जूटी परी कहरै।—दीनदयाल (शब्द०)।

बटई—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्त्तक] बटेर नाम की चिड़िया। उ०—तीतर बटई लवा न बाँची। सारस कूँज पुछार जो नाची।—जायसी (शब्द०)।

बटखर—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'बटखरा'।

बटखरा—संज्ञा पु० [सं० वटक] नियत गुरुत्व का पत्थर, लोहे आदि का टुकड़ा जो वस्तुओं की तौल निश्चित करने के काम में आता है। तौलने का मान। बाट। जैसे, सेर भर का बटखरा। उ०—ज्ञान बटखरा चढ़ाइ कै पूरा करु भाई।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ६१

बटन¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटना] रस्सी आदि बटने या ऐंठने की क्रिया या भाव। ऐंठन। बल। बट।

बटन²—संज्ञा पु० [अं०] १. चिपटे आकार की कड़ी गोल घुंडी जो कुरते, कोट, अगे आदि मे टँकी रहती है और जिसे छेद मे डाल देने से खुली जगह बंद हो जाती है और कपड़ा बदन को पूरी तरह ढँक लेता है। बुताम। २. एक प्रकार का बादले का तार। ३. बिजली, मशीन, आदि का स्विच या घुंडी।

बटनरोज—संज्ञा पुं० [अं०] गुलाब की जाति का एक छोटा फूल जो कोट के बटन के आकार का होता है। उ०—बटनरोज बहु लाल, ताम्र, माखनी रंग के कोमल।—ग्राम्या, पृ० ७६।

बटना¹—क्रि० स० [सं० वट (=बटना)] कई तंतुओं, तागों या तारों को एक साथ मिलाकर इस प्रकार एठना या घुमाना कि वे सब मिलकर एक ही जाँय। ऐंठन देकर मिलाना।

जैसे, तागा बटना। रस्सी बटना। उ०—लेकर बट के भाँज भाँज के बरतै रसरा।—पलटू० बानी, पृ० ६२। २. उमेठना। ऐंठना। उ०—सुन देख हुई विभोर मैं, बटती थी परिधान छोर मैं।—साकेत, पृ० ३५७।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।—लेना।

बटना²—संज्ञा पुं० रस्सी बटने का औजार।

बटना³—क्रिया अ० [हिं० बट्टा (=पीसने का पत्थर)] १. सिल पर रखकर पीसा जाना। पिसना। उ०—हिकमत जो जानो चहौ सीखौ याके पास। बटै कुटै न तनै तऊ केसर रंग सुवास।—रसनिधि (शब्द०)। २. बहक जाना। बँट जाना। ३. खत्म होना। चुक जाना। खलास होना।

संयो क्रि०—जाना।

बटना⁴—संज्ञा पु० [स० उद्वर्तन, प्रा० उव्वटन] उबटन। सरसो, चिरौजी आदि का का लेप जो शरीर की मैल छुड़ाने के लिये मला जाता है।

बटपरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बटपार'। उ०—(क) चित वित वचन न हरत हठि लालन दग बरजोर। सावधान के बटपरा वे जागत के चोर।—बिहारी (शब्द०)। (ख) नेह नगर मैं कहु तुही कौन बसै सुख चैन। मनधन लुटत सहज मैं लाल बटपरा नैन।—स० सप्तक, पृ० १६१।

बटपार—संज्ञा पुं० [हिं० बाट+पड़ना] [स्त्री० बटपारिन] राह, बाट में डाका डालनेवाला। डाकू। लुटेरा। उ०—छबि मुकता लूटन बगे आय जरा बटपार। बैठि बिसूरै सहर के वासी कर कटतार।—रसनिधि (शब्द०)।

बटपारा—संज्ञा पुं० [हिं० बाट+पड़ना] दे० 'बटपार'। उ०—(क) मैं एक अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिच बिच नदी खोह और नारा। ठाँवहि ठाँवै बैठ बटपारा।—जायसी (शब्द०)।

बटपारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटपार] बटपार का काम। डकैती। ठगी। लूट।

बटपारी†²—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'बटपार'।

बटम—संज्ञा पु० [देश०] पत्थर गढ़नेवाले का एक औजार जिससे कोना साधते हैं। कोनिया।

बटमार—संज्ञा पुं० [हिं० बाट+मारना] मार्ग में मारकर छीन लेनेवाला। ठग। डाकू। लुटेरा।

बटमारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटमार+ई (प्रत्य०)] दे० 'बटपारी'। उ०—एकहि नगर बसु माधव हे जनु कर बटमारी।—विद्यापति, पृ० २६२।

बटला—संज्ञा पुं० [सं० वर्तुल, प्रा० वट्टुल] चावल, दाल आदि पकाने का चौड़े मुँह का गोल बरतन। बड़ी बटलोई। देग। देगचा। उ०—तँबिया कलसा कूँड़ि ततहरा बटली बटला। ढुकरा और परात डिबा पीतर के चकला।—सूदन (शब्द०)।

बटली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटला] बटलोई।

बटलोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटला] दाल, चावल आदि पकाने का चौड़े मुँह का गोल बरतन। देग। देगची। पतीली।

बटवा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० बटुवा] दे० 'बटुवा'। उ०—झोली पत्र विभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै। माँगि न खाइ न भूखा सोवै घर अँगना फिरि आवै।—कबीर ग्रं०, पृ० १५८।

बटवाना—क्रि० स० [हिं० बाँट] दे० 'बँटवाना'।

बटवायक—संज्ञा पु० [हिं० बाट + पायक] रास्ते मे पहरा देनेवाला। चौकीदार। (पुराना)।

बटवार¹—संज्ञा पुं० [हिं० बाट + सं० पाल, या हिं० वार, वाला] १. राह बाट की चौकसी रखनेवाला कर्मचारी। पहरेदार। २. रास्ते का कर उगाहनेवाला।

बटवार²—संज्ञा पुं० [हिं० बटपार] बटपार। बटमार। उ०—इश्क प्रेम पथ बड़ कठिनाई। ठग बटवार लगै बहु भाई।—संत० दरिया, पृ० ३३।

बटा¹—संज्ञा पुं० [सं० वटक] [स्त्री० अल्पा० बटिया] १. गोल। वर्तुलाकार वस्तु। २. गेंद। कंदुक। उ०—(क) झटकि चढ़ति उतरति अटा नेकु न थाकति देह। भई रहति नट को बटा अटकी नागरि नेह।—बिहारी (शब्द०)। (ख) लै चौगान बटा कर आगे प्रभु आए जब बाहर।—सूर (शब्द०)। ३. ढोंका। रोड़ा। ढेला। उ०—तैं बटपार बटा करयो बाट को बाट में प्यारे की बाट बिलोको।—देव (शब्द०)। ४. बटाऊ। बटोही। पथिक। राही। उ०—लै नग मोर समुद भा बटा। गाढ़ परै तो लै परगटा।—जायसी (शब्द०)।

बटा²—वि० [हिं० बँटना] विभक्त। बटा हुआ।

बटा³—संज्ञा पुं० विभाग सूचित करनेवाला शब्द। अंशद्योतक शब्द और चिह्नविशेष। (विशेषतः गणित में प्रयुक्त)। जैसे, चार बटे पाँच ४/५ का अर्थ है किसी वस्तु के पाँच बराबर भाग मे बाँटने पर चार भाग या अंश। उ०—पूरा कब है जब लगा बटा। रुपया न रहा तो आने क्या?—आराधना, पृ० ३०।

बटाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटना] १. बटने या ऐंठन डालने का काम। बटने की मजदूरी।

बटाई†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँटना] दूसरे को खेत देने का एक प्रकार जिसमें मालिक को उपज का कुछ अंश मिलता है। दे० 'बँटाई'। उ०—सारे खेत बटाई पर लगे हुए थे।—रति०, पृ० ३१।

बटाऊ¹—संज्ञा पु० [हिं० बाट (=रास्ता)+आऊ (प्रत्य०)] बाट चलनेवाला। बटोही। पथिक। मुसाफिर। राही। उ०—(क) राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बीर बटाऊ पंथी हो तुम कौन देस तें आए। यह पाती हमरी लै दीजै जहाँ साँवरे छाए।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—बटाऊ होना=राही होना। चलता होना। चल देना।

उ०—भए बटाऊ नेह तजि बाद बकति बेकाज । अब अलि देत उराहनो उर उपजति अति लाज ।—बिहारी (शब्द०) ।

बटाऊ[२]—संज्ञा पुं० [हिं० बाँटना] बँटानेवाला । भाग लेनेवाला । हिस्सा लेनेवाला ।

बटाक‌Ⓟ‡—वि० [हिं० बड़ाक] बड़ा । ऊँचा । उ०—कौन बड़ी बात भयी ताप के हरनहार राम के कटाक्ष ते बटाक पद पायो है ।—हनुमान (शब्द०) ।

बटाना†—क्रि० अ० [पूर्हिं० पटाना (=बंद होना)] बंद हो जाना । जारी न रहना । उ०—सात दिवस जल बरषि बटान्यो आवत चल्यो व्रजहि अन्रावत ।—सूर (शब्द०) ।

बटालनाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बिटारना' ।

बटालियन—संज्ञा स्त्री० [अं०] पैदल सेना का एक दल जिसमें १००० जवान होते हैं ।

बटाली—संज्ञा स्त्री० [लश०] बढ़इयों का एक औजार । रुखानी ।

बटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० वटिका] दे० 'वटी[१]' ।

बटिया[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटा (=गोला)] १. छोटा गोला । गोल मटोल टुकड़ा । जैसे, शालग्राम की बटिया । २. कोई वस्तु सिल पर रखकर रगड़ने या पीसने के लिये पत्थर का लंबोतरा गोल टुकड़ा । छोटा बट्टा । लोढ़िया ।

बटिया†[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाट का अल्पा०] पगडंडी । पतला रास्ता । उ०—(क) बटिया न चलत उबट देत पाँय तजि अमृत विष ही फल खाय ।—गुलाल०, पृ० २० । (ख) सिर-धरे कलेऊ की रोटी ले कर में मट्ठा की मटकी । घर से जंगल की ओर चली होगी बटिया पर पग धरती ।—मिट्टी०, पृ० ४४ ।

बटिया†[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँट+इया (प्रत्य०)] दे० 'बँटाई' ।

बटी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० वटी] १. गोली । २. बड़ी नाम का पकवान । उ०—ओदन दुदल बटी बट व्यंजन पय पकवान अपारा ।—रघुराज (शब्द०) ।

बटीⓅ[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० वाटी] वाटिका । उपवन । बगीचा । उ०—सूर्पनखा नाक कटी रामपद चिह्न पटी सोहै बैकुंठ की बटी सी पंचवटी है ।—रघुराज (शब्द०) ।

बटु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वटु' । उ०—(क) मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे ।—मानस, २।१०९ । (ख) धरि बटु रूप देखु तैं जाई ।—मानस, ४।१ ।

बटुआ[१]—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'बटुवा' । उ०—सिंगी सेल्ही भभूत और बटुआ साईं स्वाँग से न्यारा हो ।—कबीर० श०, पृ० १६ ।

बटुआ[२]—वि० [हिं० बटना] बटा हुआ । जैसे,—बटुआ सूत, बटुआ रस्सा ।

बटुआ[३]—वि० [हिं० बाँटना] सिल आदि पर पीसा हुआ । उ०—कटुआ बटुआ मिला सुबासू । सीका अनवन भाँति गरासू ।—जायसी (शब्द०) ।

बटुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वटुक' । उ०—हा ! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने करुणा-भरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अबतक नहीं भूलती । —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६४। २. बदमाश व्यक्ति (को०) ।

बटुकभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] भैरव का एक स्वरूप ।

बटुरना†—क्रि० अ० [सं० वर्तुल, प्रा० बट्टुल, बट्टुड़+हिं० ना (प्रत्य०)] १. सिमटना । फैला हुआ न रहना । सरककर थोड़े स्थान में होना । २. इकट्ठा होना । एकत्र होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

बटुरा†—संज्ञा पुं० [देशज] दे० 'बटुरी' । उ०—मूँग मोठ बटुरा बहु ल्यावहु । राजमाष औ माष मँगावहु ।—प० रासो, पृ० १७ ।

बटुरी—संज्ञा स्त्री० [देशज] एक कदन्न । खेसारी । मोट ।

बटुला†—संज्ञा पुं० [सं० वर्तुल, प्रा० बट्टुल] [स्त्री० बटुली] चावल दाल पकाने का चौड़े मुँह का बरतन । बड़ी बटलोई ।

बटुवा—संज्ञा पुं० [सं० वर्तुल] १. एक प्रकार की गोली थैली जिसके भीतर कई खाने होते हैं ।

विशेष—यह कपड़े या चमड़े की होती है और इसके मुँह पर डोरे पिरोए रहते हैं जिन्हें खींचने से मुह खुलता और बंद हो जाता है । इसे यात्रा में प्रायः साथ रखते हैं । क्योंकि इसके भीतर बहुत सी फुटकर चीजें (पान का सामान, मसाला आदि आ जाती हैं ।

२. बड़ी बटलोई या देग । ३. दे० 'बटुआ' ।

बटेर—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तक, प्रा० बट्टा] तीतर या लावा की तरह की एक छोटी चिड़िया ।

विशेष—इसका रंग तीतर का सा होता है पर यह उससे छोटी होती है । इसका माँस बहुत पुष्ट समझा जाता है इससे लोग इसका शिकार करते हैं । लड़ाने के लिये शौकीन लोग इसे पालते भी हैं । यह चिड़िया हिंदुस्तान से लेकर अफगानिस्तान, फारस और अरब तक पाई जाती है । ऋतु के अनुसार यह स्थान भी बदलती है और प्रायः झुंड में पाई जाती है । यह धूप में रहना नहीं पसंद नहीं करती, छाया ढूँढ़ती है ।

मुहा०—बटेर का जगाना=रात को बटेर के कान में आवाज देना । (बटेरबाज) । बटेर का बह जाना=दाना न मिलने के कारण बटेर का दुबला हो जाना । बटेरों की पाली= बटेरों की लड़ाई । उ०—परसों तो नवाब साहब के यहाँ बटेरों की पाली है, महीनों से बटेर तैयार किए हैं । दो दो पजे तो कसा लें ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३ ।

बटेरबाज—संज्ञा पुं० [हिं० बटेर+फा० बाज] बटेर पालने या लड़ानेवाला ।

बटेरबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटेर+फ़ा० बाजी] बटेर पालने या लड़ाने का काम ।

बटेरा†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० बटा] कटोरा ।

बटेरा[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटेर] तीतर पक्षी । उ०—गेहूँ में एक बटेरा, फर उठता है विट विट वी ।—दीप०, पृ० १२७ ।

बटोई†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बटोही'।

बटोर—संज्ञा पुं० [हिं० बटोरना] बहुत से आदमियों का इकट्ठा होना। जमावड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. वस्तुओं का ढेर जो इधर उधर से बटोरकर या इकट्ठा करके लगाया गया हो। ३. कूड़े करकट का ढेर। (पालकी के कहार)।

बटोरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटोरना] वस्तुओं का ढेर जो इधर उधर से झाड़ बटोरकर लगाया गया हो। २. कूड़े करकट का ढेर। ३. खेत में पड़ा हुआ अन्न का दाना जो बटोरकर इकट्ठा किया जाय।

बटोरना—क्रि० स० [हिं० बटुरना] १. फैली या बिखरी हुई वस्तुओं को समेटकर एक स्थान पर करना। जैसे, गिरे हुए दाने बटोरना, कूड़ा बटोरना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. दूर तक गई वस्तुओं को समेटकर थोड़े स्थान में करना। समेटना। फैला न रहने देना। जैसे,—अपनी चद्दर बटोर लो। ३. इधर उधर पड़ी चीजों को बिन बिनकर इकट्ठा करना। चुनकर एकत्र करना। जैसे, सड़क पर दाने बटोरना। ४. इकट्ठा करना। एकत्र करना। जुटाना। जैसे, रुपया बटोरना, पंचायत के लिये आदमी बटोरना।

बटोहिया‡—संज्ञा पुं० [हिं० बटोही = इया (प्रत्य०)] दे० 'बटोही'। उ०—बाट रे बटोहिया कि तुहु मोरा भाई, हमरो समाद नैहर लेने जाउ।—विद्यापति, पृ० ३६४।

बटोही—संज्ञा पुं० [हिं० बाट+वाह (प्रत्य०)] रास्ता चलनेवाला। पथिक। राही। मुसाफिर—उ० (क) ए पथ देखल कहूँ बूढ बटोही।—विद्यापति, पृ० ५१४। (ख) लिए चोरि चित राम बटोही।—मानस, २।१२३।

बट्ट‡—संज्ञा पुं० [हिं० बटा] १. बटा। गोला। २. गेंद। उ०—प्रेम रग लट्टपट्ट आवै जोय झट्टपट्ट देव वृंद देखे परे मानो नट्ट बट्ट हैं।—रघुराज (शब्द०)। ३. ऐंठन। मरोड़। बटाई। ४. बल। शिकन। ५. बाट। बटखरा।

बट्टलोहक—संज्ञा पुं० [सं०] दमिश्क का जौहरदार फौलाद। दमिश्क का सा पानीदार या जड़ाऊ फौलाद (को०)।

बट्टⓟ[2]—संज्ञा पुं० [सं० वर्त्म, प्रा० वट्ट, बट्ट] बाट। रास्ता। उ०—तव प्रथिराज विचार कार चप आरोह्यो पट्ट। बहुरि कोइ भर भोरही धरत परै इहू बट्ट।—पृ० रा०, ५।५५।

बट्टन—संज्ञा पुं० [हिं० बटना] बादले से भी पतला तार जो एक तोले में ८०० या ९०० गज होता है।

बट्टा—संज्ञा पुं० [सं० वार्त, प्रा० वाट्ट (= बनियाई)] १. कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य मे हो जाती है। दलाली। दस्तूरी। डिसकाउंट। जैसे,—माल बिक जाने पर बट्टा काटकर आपको दाम दे दिया जायगा। उ०—बट्टा काटि कसूर भरम को फेरन लै लै डारै।—सूर (शब्द०)।

यौ०—ब्याज बट्टा।

मुहा०—बट्टा काटना = दस्तूरी आदि निकाल लेना।

२. पूरे मूल्य में वह कमी जो किसी सिक्के आदि को बदलने या तुड़ाने में हो। वह घाटा जो सिक्के के बदले में उसी सिक्के की धातु अथवा छोटा या बड़ा सिक्का लेने में सहना पड़े। वह अधिक द्रव्य जो सिक्का भुनाने या उसी सिक्के की धातु लेने में देना पड़े। भाँज। जैसे,—(क) रुपया तुड़ाने में यहाँ एक पैसा बट्टा लगेगा। (ख) आज कल चाँदी लेने में दो आना बट्टा लगेगा।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।—लेना।

३. खोटे सिक्के धातु आदि के बदलने या बेचने में वह कमी जो उसके पूरे मूल्य में हो जाती है। जैसे,—रुपया खोटा है इसमें दो आना बट्टा लगेगा।

मुहा०—बट्टा लगाना = दाग लगाना। कलंक लगना। ऐब हो जाना। त्रुटि या कसर हो जाना। जैसे, इज्जत या नाम में बट्टा लगना, माल में बट्टा लगना। बट्टा लगाना = कलंक लगाना। ऐब लगना। दूषित करना। बदनाम करना। जैसे, बड़ों के नाम पर बट्टा लगाना।

४. टोटा। घाटा। नुकसान। हानि।

बट्टा[2]—संज्ञा पुं० [सं० वटक, हिं० बटा (= गोला)] [स्त्री० अल्पा० बट्टी, बटिया] १. पत्थर का गोल टुकड़ा जो किसी वस्तु को कूटने या पीसने के काम में आवे। कूटने या पीसने का पत्थर। लोढ़ा।

यौ०—सिलबट्टा।

२. पत्थर आदि का गोल टुकड़ा। ३. गोल डिब्बा जिसमे पान या जवाहिरात रखते हैं। ४. कटोरा या प्याला जिसे औंधा रखकर बाजीगर यह दिखाते हैं कि उसमें कोई वस्तु आ गई या उसमे से कोई वस्तु निकल गई।

यौ०—बट्टेबाज।

५. एक प्रकार की उबाली हुई सुपारी।

बट्टाखाता—संज्ञा पुं० [हिं० बट्टा+खाता] वह बही या लेखा जिसमें नुकसान लिखा जाय। डूबी हुई रकम का लेखा या बही।

मुहा०—बट्टेखाते लिखना = नुकसान के लेखे में डालना। घाटा या नुकसान मान लेना। गया हुआ समझना। जैसे,—अब यह दो रुपए बट्टेखाते लिखिए।

बट्टाढाल—वि० [हिं० बट्टा+ढालना] इतना चौरस और चिकना कि उसपर कोई गोला लुढ़काया जाय तो लुढ़कता जाय। खूब समतल और चिकना। उ०—यह भी जानना आवश्यक है कि जमीन अर्थात् थल सभी जगह बराबर एक सी बट्टाढाल मैदान

नहीं है, किसी जगह बहुत ऊँची हो गई है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

बट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बट्टा] १. छोटा बट्टा। पत्थर आदि का गोल छोटा टुकड़ा। २. कूटने, पीसने का पत्थर। लोढ़िया। ३. समडौल कटा हुआ टुकड़ा। बड़ी टिकिया। जैसे,—साबुन की बट्टी, नील की बट्टी। ४. (गुड़ की) भेली।

बट्टू[1]—संज्ञा पुं० [देशज] १. धारीदार चारखाना। २. ताली। बजरबट्टू। एक प्रकार का ताड़ जो सिंहल में और मलाबार के तट पर होता है।

बट्टू[2]—संज्ञा पुं० [सं० वर्वट] बजरबट्टू। बोड़ा। लोबिया।

बट्टेबाज—वि० [हिं० बट्टा+फ़ा बाज़] १. नजरबंद का खेल करनेवाला। जादूगर। २. धूर्त। चालाक।

बठाना‡—क्रि० सं० [हिं० बैठाना] दे० 'बैठाना'। उ०—कोसाँ कोस ऊपरि डाकछानै से बठाया।—शिखर०, पृ० १४।

बठिया†—संज्ञा स्त्री० [देशज] पाथे हुए सूखे कंडों का ढेर। उपलों का ढेर।

बठूचना—क्रि० अ० [हिं० बैठना] बैठना। (दलाल)।

बठूसना—क्रि० अ० [हिं० बैठना] बैठना। (दलाल)।

बड़ंगा—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+अंग] लंबा बल्ला जो छाजन के बीचोबीच लंबाई के बल आधार रूप में रहता है। बँड़ेरी।

बड़ंगी† —संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+अंग] घोड़ा। (डिं०)।

बड़ंगू—संज्ञा पुं० [देशज] दक्षिण का एक जंगली पेड़।

विशेष—यह पेड़ कोंकन, मलाबार, त्रावकोर आदि की ओर बहुत होता है। इसमें से एक प्रकार का तेल निकलता है।

बड़[1]—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० बड़ बड़] बकवाद। प्रलाप। जैसे, पागलों की बड़।

बड़†[2]—संज्ञा पुं० [सं० बट] बरगद का पेड़।

यौ०—बड़कौला। बड़बट्टा।

बड़†[3]—वि० [हिं०] दे० 'बड़ा'। उ०—को बड़ छोट कहत अपराधू।—मानस।

बड़कघो—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी+कंघी ?] दो तीन हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है।

विशेष—इसकी टहनियों पर सफेद रंग के लंबे रोएँ होते हैं। इसके पौधे में से कड़ी दुर्गंध आती है। इसके तने से एक प्रकार का रेशा निकलता है और जड़, पत्तियाँ तथा बीज औषधि रूप मे काम में आते हैं।

बड़का†—वि० [हिं० बड़+का (प्रत्य०)] [स्त्री० बड़की] दे० 'बड़ा'। उ०—ले जाती है मटका बड़का।—कुकुर०, पृ० ३२।

बड़कुइयाँ—संज्ञा पुं० [देशज] कच्चा कुआँ।

बड़कौला—संज्ञा पुं० [हिं० बड़+कोपल] बरगद का फल।

बड़गुल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ + बगुला] एक प्रकार का बगला।

बड़त्तनु(पु)—संज्ञा पुं० [वै० बृहत्वन्] दे० 'बड़प्पन'। उ०—सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़त्तनु पावा।—मानस, १।१०।

बड़दंता—वि० [हिं० बड़ा + दाँत] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

बड़दुमा—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+फ़ा० दुम] वह हाथी जिसकी पूँछ की कँगनी पाँव तक हो। लंबी दुम का हाथी।

बड़प्पन—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा + पन] बड़ाई। श्रेष्ठ या बड़ा होने का भाव। महत्व। गौरव। जैसे,—तुम्हारा बड़प्पन इसी में है कि तुम कुछ मत बोलो।

विशेष—वस्तुओं के विस्तार के संबंध में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता। इससे केवल पद, मर्यादा, अवस्था आदि की श्रेष्ठता समझी जाती है।

बड़फन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ा+फन्नी] बहुत चौड़ी मठिया।

बड़बट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० बड+बट्टा] बरगद का फल।

बड़बड़—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] बकवाद। व्यर्थ का बोलना। फिजूल की बातचीत। प्रलाप।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—लगाना।

बड़बड़ाना—क्रि० अ० [अनुध्व० बड़बड़] १. बक बक करना। बकवाद करना। व्यर्थ बोलना। प्रलाप करना। २. डींग हाँकना। शेखी बघारना। ३. कोई बात बुरी लगने पर मुँह में ही कुछ बोलना। खुलकर अपनी अरुचि या क्रोध न प्रकट करके कुछ अस्फुट शब्द मुँह से निकालना। बुड़बुड़ाना। जैसे,—मेरे कहने पर गया तो, पर कुछ बड़बड़ाता हुआ।

बड़बड़िया—वि० [अनुध्व० बड़बड़] बड़बड़ानेवाला। बकवादी।

बड़बेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी + बेरी] जंगली बेर। झड़बेरी। उ०—जो कटहर बड़हर बड़बेरी। तोहि अस नाहीं कोकाबेरी।—जायसी (शब्द०)।

बड़बोल—वि० [हिं० बड़ा+बोल] १. बहुत बोलनेवाला। अनर्गल प्रलाप करनेवाला। बोलने में उचित अनुचित का ध्यान न रखनेवाला। उ०—का वह पखि कूट मुँह फोटे। अस बड़बोल जीभ मुख छोटे।—जायसी (शब्द०)। २. बढ़ बढ़कर बोलनेवाला। शेखी हाँकनेवाला। सीटनेवाला।

बड़बोला—वि० [हिं० बड़ा+बोल] बड़ी बड़ी बातें करनेवाला। बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला। लंबी चौड़ी हाँकनेवाला। सीटनेवाला। शेखी बघारनेवाला। उ०—उनका तो ख्याल है कि मैं बड़बोला और काहिल हूँ।—वो दुनियाँ, पृ० १५८।

बड़भाग—वि० [हिं०] दे० 'बड़भागी'। उ०—अहो अमरवर हो बड़भाग। मैं मेटचो जु रावरी जाग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१३।

बड़भागी—वि० [हिं० बड़ा+भागी<सं० भागिन्] [स्त्री० बड़भागिन, बड़भागिनि] बड़े भाग्यवाला। भाग्यवान्। उ०—अहह तात लछिमन बड़भागी। राम पदारविंद अनुरागी।—तुलसी (शब्द०)।

बड़म†—वि० [हिं०] बड़ा। श्रेष्ठ। उ०—(क) तेजवंत उद्दार बड़म विवहार ग्रंथ भर।—पृ० रा०, १४।७८। (ख) बड़म बिदेह री जी वेल कुशलात पूछी वेस।—रघु० रू०, पृ० ८१।

बड़रा—वि० [हिं० बड़ा + रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० बड़री] बड़ा। उ०—फेरि चली बड़री अँखियान ते छूटि बड़ी बड़ी आँसू की बूँदै।—रघुनाथ (शब्द०)।

बड़राना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'बर्राना'।

बड़लाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० राई] राई नाम का पौधा या उसके बीज।

बड़वा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० बडवा] १. घोड़ी। उ०—अस्मदान जी नैं फेरि बड़वा भी न दीनीं।—शिखर०, पृ० ६७। २. अश्विनी रूपधारिणी। सूर्य की पत्नी संज्ञा। ३. अश्विनी नक्षत्र। ४. दासी। ५. नारीविशेष। ६. वासुदेव की एक परिचारिका। ७. एक नदी। ८. वड़वाग्नि।

बड़वा[2]—संज्ञा पुं० [देशज] १. एक प्रकार का धान जो भादों के अंत में और कुआर के आरंभ में हो जाता है।

बड़वाकृत—संज्ञा पुं० [सं० बडवाकृत] वह व्यक्ति जो दासी से विवाह करने के कारण दास बना हो [को०]।

बड़वाग, बड़वागि—संज्ञा स्त्री० [सं० बडवाग्नि] दे० 'बडवाग्नि'। उ०—(क) सोहै फिर सामुद्र में ज्वालवती बड़वाग।—रा० रू०, पृ० ३१। (ख) वै ठाढे उमदाहु उत, जल न बुझै बड़वागि। जाही सों लाग्यो हियो ताही कैं हिय लागि।—बिहारी (शब्द०)।

बड़वाग्नि—संज्ञा पुं० [सं० बडवाग्नि] समुद्राग्नि। समुद्र के भीतर की आग या ताप।

विशेष—भूगर्भ के भीतर जो अग्नि है उसी का ताप कहीं कहीं समुद्र के जल को भी खौलाता है। कालिका पुराण में लिखा है कि काम को भस्म करने के लिये शिव ने जो क्रोधानल उत्पन्न किया था उसे ब्रह्मा ने बडवा या घोडी के रूप में करके समुद्र के हवाले कर दिया जिसमें लोक की रक्षा रहे। पर वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि वड़वाग्नि और्व ऋषि का क्रोधरूपी तेज है जो कल्पांत में फैलकर संसार को भस्म करेगा।

बड़वानल—संज्ञा पुं० [सं० बडवानल] दे० 'बडवाग्नि'।

बड़वानलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० बडवानलचूर्ण] वैद्यक में एक चूर्ण जिसके सेवन से अजीर्ण का नाश और क्षुधा की वृद्धि होती है।

बड़वानल रस—संज्ञा पुं० [सं० बडवानल रस] १. बडवाग्नि। २. एक रसौषध जो कई धातुओं के भस्म के योग से बनती है। इसका मधु के साथ सेवन करने से मेद रोग जाता रहता है।

बड़वामुख—संज्ञा पुं० [सं० बडवामुख] १. बड़वाग्नि। २. शिव का मुख। ३. कूर्म के दक्षिण कुक्षि में स्थित एक जनपद। ४. एक विशेष समुद्र। ५. एक रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, तांबा, अभ्रक, सोहागा, कचिया लवण, जवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, सोंठ, अपामार्ग, पलाश, और वरुणक्षार सम भाग लेकर और अम्लवर्ग के रस में बार बार सौंदकर लघुपुट पाक द्वारा तैयार करे। इसके सेवन से ज्वर और संग्रहणी रोग दूर होते हैं।

बड़वार—वि० [हिं० बड़ + वार] दे० 'बड़ा'। उ०—सकल बरातिन बसन अपारा। रह्यो जौन जस लघु बड़वारा।—रघुराज (शब्द०)।

बड़वारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़वार + ई (प्रत्य०)] १. बड़प्पन। महत्व। २. बड़ाई। प्रशंसा।

बड़वाल—संज्ञा स्त्री० [देशज] हिमालय के उस पार की तराई की भेड़ों की एक जाति।

बड़वासुत—संज्ञा पुं० [सं० बडवासुत] अश्विनीकुमार।

बड़वाहृत—संज्ञा पुं० [सं० बडवाहृत] स्मृति के अनुसार पंद्रह प्रकार के दासों में से एक। वह जो किसी दासी से विवाह करके दास हुआ हो। बड़वाकृत।

बड़हंस—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा + हंस] एक राग जो मेघराग का पुत्र माना जाता है।

विशेष—कुछ लोग इसे संकर राग मानते हैं जो रुद्राणी, जयंती, मारू, दुर्गा और धनाश्री के मेल से बनता है। कहीं कहीं यह मधुमाधव, शुद्ध हम्मीर और नरनारायण के मेल से बना कहा गया है।

बड़हंससारंग—संज्ञा पुं० [हिं० बड़हंस + सारंग] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

बड़हंसिका—संज्ञा स्त्री० [सं० बडहंसिका] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से मेघराग की स्त्री कही गई है।

बड़हन—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ + धान] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन, बड़हन, जड़हन मिला। औ संसार तिलक खँडविला।—जायसी (शब्द०)।

बड़हर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बडहल'।

बड़हल—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा + फल] एक बड़ा पेड़ और उसका फल।

विशेष—यह वृक्ष संयुक्त प्रदेश, पश्चिमी घाट, पूर्व बंगाल और कुमाऊँ की तराई में बहुत होता है। इसके पत्ते छह सात अंगुल लंबे और पाँच छह अंगुल चौड़े और कर्कश होते हैं। फूल बेसन की पकौड़ी के समान पीले पीले गोल गोल होते हैं। उनमें पंखड़ियाँ नहीं होतीं। फल पकने पर पीले और छोटे शरीफे के बराबर पर बड़े बेडौल होते हैं। वे गोल गोल उभार के कारण बट्टों से मिलकर बने मालूम होते हैं। खाने में खटमीठे लगते हैं। पके गूदे का रंग पीलापन लिए लाल होता है। इसके फूल और कच्चे फल अचार और तरकारी के काम आते हैं। बड़हल के हीर की लकड़ी कड़ी और पीली होती है और नाव तथा सजावट के सामान बनाने के काम की होती है। आसाम में इसकी छाल से दाँत साफ करते हैं। वैद्य लोग इसके फल को बहुत बादी मानते हैं।

बड़हार—संज्ञा पुं० [हिं० बर + आहार] विवाह हो जाने के पीछे वर और बरातियों की ज्योनार।

बड़ा—वि० [सं० वृद्ध, प्रा० वड्ड, वड्डुन या वड्ड] [स्त्री० बड़ी] १. खूब लंबा चौड़ा। अधिक विस्तार का। जिसका परिमाण

अधिक हो। दीर्घ। विशाल। बृहत्। महान्। जैसे, बड़ा मकान, बड़ा खेत, बड़ा पहाड़, बड़ी नदी, बड़ा घोड़ा, बड़ा डील, बड़ा गोला।

मुहा०—दीया बड़ा करना = दीया बुझाना। (बुझना शब्द अमंगलसूचक है इससे उसके स्थान पर बड़ा करना या बढ़ाना बोलते हैं)। बड़ा घर=कैद खाना। कारागार। (व्यंग)।

२. अवस्था में अधिक। जिसकी उम्र ज्यादा हो। अधिक वयस् का। जैसे,—दोनों भाइयों मे कौन बड़ा है? बड़ा बेटा। ३. परिमाण, विस्तार या अवस्था का। मान, माप या वयस् का। जैसे,—(क) वह घर कितना बड़ा है? (ख) वह लड़का कितना बड़ा होगा? ४. पद, शक्ति, अधिकार, मान मर्यादा, विद्या, बुद्धि आदि में अधिक। गुरु। श्रेष्ठ। बुजुर्ग। जैसे,—(क) बडे लोगों के सामने नम्र रहना चाहिए। (ख) बड़े अफसरों के सामने वह कुछ नही बोल सकता। (ग) बड़ी अदालत।

मुहा०—बड़ा घर = प्रतिष्ठित और धनी घराना।

५. गुण, प्रभाव आदि में अधिक या उत्तम। जिसका असर या नतीजा ज्यादा हो। महत्व का। भारी। जैसे,—(क) अपनी जिंदगी मे उन्होने बड़े बड़े काम किए हैं। (ख) यह बड़ी भारी बात हुई। (ग) साहित्य में उनका बड़ा नाम है। (घ) यह तुमने बड़ा अपराध किया।

मुहा०—बड़ा आदमी = (१) धनी मनुष्य। (२) ऊँचे पद या अधिकार का आदमी। प्रसिद्ध मनुष्य।

६. किसी बात में अधिक। बढ़कर। ज्यादा। जैसे, बड़ा कारखाना, बड़ा बेवकूफ।

मुहा०—बड़ी बड़ी बातें करना = डींग हांकना। शेखी बघारना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विवाद या झगड़े में लोग व्यंग से भी बहुत करते हैं। जैसे,—(क) बड़े बोलनेवाले बने हो। (ख) बड़े धन्नासेठ आए हैं। मात्रा या संख्या मे अधिक के लिये भी इस शब्द का प्रयोग 'बहुत' के स्थान पर कर देते हैं। जैसे,—वहाँ बडी भेंटें इकट्ठी हैं। (ख) उसके पास बड़ा रुपया है।

बड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० वटक, प्रा० वडग, वडअ, हिं० बटा] [स्त्री० अल्पा० बड़ी] १. एक पकवान जो मसाला मिली हुई उर्द की पीठी की गोल चक्राकार टिकियों को घी या तेल में तलकर बनता है। २. एक बरसाती घास जो उत्तरीय भारत के पटपरो में सर्वत्र होती है। इसे सुखाकर घोड़ों और चौपायों को खिलाते हैं।

बड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ा+ई (प्रत्य०)] १. बड़े होने का भाव। परिमाण या विस्तार का आधिक्य। घेरे, डील डौल, फैलाव, वगैरह की ज्यादती। २. पद, मान मर्यादा, वयस्, विद्या, बुद्धि आदि का आधिक्य। इज्जत, दरजा, उम्र वगैरह की ज्यादती। बड़प्पन। श्रेष्ठता। बुजुर्गी। जैसे,—(क) छोटाई बड़ाई का ध्यान रखकर बातचीत करना चाहिए। (ख) अपनी बड़ाई अपने हाथ है। ३. परिमाण या विस्तार। घेरा, फैलाव, डील डौल आदि। जैसे, जितना बड़ा कमरा हो उतनी बड़ी चटाई बनाओ। ४. महिमा। प्रशंसा। तारीफ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—बड़ाई देना = आदर करना। प्रतिष्ठा प्रदान करना। इज्जत बख्शना। उ०—यहि बिधि प्रभु मोहिं दीन बड़ाई।—तुलसी (शब्द०)। बड़ाई मारना = शेखी हाँकना। झूठी तारीफ करना।

बड़ाकुँवार—संज्ञा पुं० [हिं० बाँस+कुवार] केवड़े के आकार का एक पेड़ जिसके पत्ते किरिच की तरह बहुत लंबे लंबे निकले होते हैं।

बडाकुलंजन—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+कुलंजन] मोथा कुलंजन। बृहत्कुलंज।

बड़ादिन—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+दिन] १. वह दिन जिसका मान बड़ा हो। २. पचीस दिसंबर का दिन जो ईसाइयों के त्योहार का दिन है। इस दिन ईसा के जन्म का उत्सव मनाया जाता है।

बड़ापीलू—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+पीलू] एक प्रकार के रेशम का कीड़ा।

बड़ाबोल—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+बोल] अहंकार का शब्द। घमंड की बात।

बड़ारा†—वि० [हिं०] अवस्था आदि में अधिक। बड़ा। दे० 'बड़ेरा'।

बड़ालⓅ**†**—वि० [फा० बड्डाल] बड़ा। श्रेष्ठ। उ०—बीर बड़ाल वरुण रचै वरमाला रभा।—रघु० रू०, पृ० ४७।

बड़ासबरा—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा + सबरी] वह औजार जिससे कसेरे टाँका लगाते हैं। बरतन में जोड़ लगाने का औजार।

बड़िसⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बडिश, प्रा० बडिस] बंसी। कटिया। अनेकार्थ०, पृ० ६२।

बडिश—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० बडिशा, बडिशी] १. मछली पकड़ने की कँटिया। बंसी। २. शल्य चिकित्सा का एक औजार (को०)।

बड़ी[1]—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'बड़ा'।

बड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वटी, हिं० बड़ा] १. आलू, पेठा आदि मिली हुई पीठी की छोटी छोटी सुखाई हुई टिकिया जिसे तलकर खाते हैं। बरी। कुम्हड़ौरी। २. मांस की बोटी। (डिं०)।

बड़ीइलायची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इलायची'।

बड़ीकटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी+कटाई] बड़ी जाति की भटकटैया। वनभंटा। बड़ी कंटकारी।

बड़ीगोटी—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] चौपायों की एक बीमारी।

बड़ीदाख—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी+दाख] बड़ी जाति का अंगूर

जिसमें बीज होते हैं और जिसे सुखाकर मुनक्का बनाते हैं। दे० 'अंगूर'।

बड़ीमाता—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी+माता] शीतला। चेचक।

बड़ीमैल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो बिलकुल खाकी रंग की होती है।

बड़ीमौसली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी + मौसली] थाली में नक्काशी बनाने के लिये लोहे का एक ठप्पा जिससे तीसी के आगे नक्काशी बनाते हैं।

बड़ीराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी+राई] एक प्रकार की सरसों जो लाल रंग की होती है। लाही।

बडूजाⓊ†—संज्ञा पुं० [सं० बिडौजा] दे० 'बिडौजा'।

बड़ेमोती का फूल—संज्ञा पुं० [हिं०] थाली में नक्काशी करने का लोहे का ठप्पा जिसे ठोककर तीसी के आगे नक्काशी बनाते हैं।

बड़ेरर—संज्ञा पुं० [देशज] बवंडर। चक्रवात। वेग से घूमती हुई वायु। उ०—जब चेटकी कुटी नियरायो। तब एक घोर बड़ेरर आयो। —रघुराज (शब्द०)।

बड़ेराⓊ[1]—वि० [हिं० बड़ा+रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० बड़ेरी] १ बड़ा। उ०—छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे-सब।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७२। २. श्रेष्ठ। बृहत्। महान्। उ०—सबहि कहत हरि कृपा बड़ेरी अब ही परिहि लखाई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५८०। ३. प्रधान। मुख्य। ४. प्रधान पुरुष। मुखिया।

बड़ेरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० बडभि, प्रा०, बडहि+रा] [स्त्री० अल्पा० बड़ेरी] १. छाजन में बीच की लकड़ी जो लंबाई के बल होती है और जिसपर सारा ठाट होता है। २. कुएँ पर दो खंभों के ऊपर ठहराई हुई वह लकड़ी जिसमें घिरनी लगी रहती है।

बड़े लाट—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा+अं० लार्ड] हिंदुस्तान में अंग्रेजी शासन कालीन साम्राज्य का प्रधान शासक।

बड़ौखा—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा + ऊख] एक प्रकार का गन्ना जो बहुत लंबा और नरम होता है।

बड़ौना†—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ापन] बड़ाई। महिमा। प्रशंसा। तारीफ। उ०—सुनि तुम्हार संसार बडौना। योग लीन्ह तन कीन्ह गड़ौना।—जायसी (शब्द०)।

बड्डⓊ—वि० [प्रा० वड्ड] दे० 'बड़ा'।

बड्डाⓊ—वि० [सं० वर्ध, प्रा० वड्ड वा देशी] [वि० स्त्री० बड्डो] दे० 'बड़ा' उ०—(क) निपट अटपटो चटपटो ब्रज को प्रेम वियोग। सुरझाए सुरझे नहीं, अरुझे बड्डे लोग।—नंद० ग्रं०, पृ० १६४। (ख) बड्डो रैनि तनक से दिना। क्यों भरिए पिय प्यारे बिना।—नंद० ग्रं०, पृ० १३५।

बड्ढना—क्रि० अ० [सं० वर्धन, प्रा० बड्ढण] दे० 'बढना'। उ०—अरु कहो साहि हम्मीर बैर। किंहि भाँति कंक बड्ढयो सु फेर। —ह० रासो, पृ० ३।

बढ़ंती†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बढती'।

बढ़[1]—वि० [हिं० बढ़ना] बढा हुआ। अधिक। ज्यादा।

यौ०—घटबढ़ = छोटा बड़ा।

बढ़[2]—संज्ञा स्त्री० बढती। ज्यादती।

यौ—घटबढ़।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता है।

बढ़ई—संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धकि, प्रा० वड्ढइ] काठ को छीलकर और गढ़कर अनेक प्रकार के सामान बनानेवाला। लकड़ी का काम करनेवाला।

बढ़ईगिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढ़ई+फा गिर+ई] बढ़ई का पेशा।

बढ़ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढ़ना+ती (प्रत्य०)] १. तोल या गिनती में अधिकता। मान या संख्या में वृद्धि। मात्रा का आधिक्य। जैसे, अनाज की बढती, रुपए पैसे की बढती।

विशेष—विस्तार की वृद्धि के लिये अधिकतर 'बाढ' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे, पौधे की बाढ़, आदमी की बाढ, नदी की बाढ़ आदि।

२. धन धान्य की वृद्धि। धन संपत्ति आदि का बढना। उन्नति। जैसे,—दाता, तुम्हारी बढती हो।

मुहा०—बढ़ती का पहरा = निरंतर उन्नति होना। अनवरत समृद्धि के दिन।

बढ़दार†—संज्ञा स्त्री० [देशज] टाँकी। पत्थर काटने का औजार।

बढ़न†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढना] वृद्धि। बाढ़। आधिक्य।

बढ़ना—क्रि० अ० [सं० वर्द्धन, प्रा० बड्ढन] १. विस्तार या परिमाण में अधिक होना। डील डौल या लंबाई चौड़ाई आदि में ज्यादा होना। वर्धित होना। वृद्धि को प्राप्त होना। जैसे, पौधे का बढ़ना, बच्चे का बढ़ना, दीवार का बढ़ना, खेत का बढना, नदी बढना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—बात बढ़ना = (१) विवाद होना। झगड़ा होना। (२) मामला टेढा होना।

२. परिमाण या संख्या मे अधिक होना। गिनती या नाप तौल में ज्यादा होना। जैसे, धन धान्य का बढना, रुपए पैसे का बढना, आमदनी बढ़ना, खर्च बढ़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. अधिक व्यापक, प्रबल या तीव्र होना। बल, प्रभाव, गुण आदि में अधिक होना। असर या खासियत वगैरह में ज्यादा होना। जैसे, रोग बढ़ना, पीड़ा बढना, प्रताप बढना, यश बढना, कीर्ति बढना, लालच बढना। ४. पद, मर्यादा, अधिकार, विद्या बुद्धि, सुख संपत्ति आदि मे अधिक होना। दौलत रुतबे या इख्तियार में ज्यादा होना। उन्नति करना। तरक्की करना। जैसे,—(क) पहले उन्होंने बीस रुपए की नौकरी की थी, धीरे धीरे इतने बढ गए। (ख) आजकल सब देश भारतवर्ष से बढ़े हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—बढ़कर चलना = इतराना। घमंड करना। बढ़ बढ़कर बातें बनाना = डीग मारना। शेखी बघारना। गुस्ताखी करना। उ०—जरा शेख जी बढ़ बढ़कर बातें न बनाया कीजिए।—फ़िसाना०, भा०, १, पृ० १०। बढ़कर बोलना या बढ़ बढ़कर बोलना = दे० 'बढ़ बढ़कर बातें बनाना'।

यौ०—बढ़ा बढ़ी = बढ़ बढ़कर बातें करना। अपनी सीमा भूलकर कुछ कहना या करना। गुस्ताखी करना। उ०—यह तुम्हारी बढ़ा बढ़ी मैं सहन नहीं कर सकता।—अजात०, पृ० २४।

५. किसी स्थान से आगे जाना। स्थान छोड़कर आगे गमन करना। अग्रसर होना। चलना। जैसे,—(क) तुम बढ़ो तब तो पीछे के लोग चलें। (ख) बढ़े आओ, बढ़े आओ।

सयो० क्रि०—आना—जाना।

मुहा०—पतंग बढ़ना = पतंग का और ऊँचाई पर जाना।

६. चलने में किसी से आगे निकल जाना। जैसे,—दौड़ने मे वह तुमसे बढ़ जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

७. किसी से किसी बात मे अधिक हो जाना। जैसे,—पढ़ने मे वह तुमसे बढ़ जाएगा।

यौ०—बढ़ चढ़कर, या बढ़ा चढ़ा = अधिक उन्नत। विशेषतर।

८. भाव का बढ़ना। खरीदने में ज्यादा मिलना। सस्ता होना। जैसे,—आजकल अनाज बढ़ गया है।

संयो० क्रि०—जाना।

९. लाभ होना। मुनाफे में मिलना। जैसे,—कहो, क्या बढ़ा। १०. दुकान आदि का समेटा जाना। बंद होना। जैसे, पुजापा बढ़ना, दुकान बढ़ना।

विशेष—'बंद होना' अमंगलसूचक समझकर लोग इस क्रिया का व्यवहार करने लगे हैं।

११. दीपक का निर्वापित होना। चिराग का बुझना। उ०—ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कुपूत गति सोय। बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय।—रहीम (शब्द०)।

बढ़नी†—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्द्धनी, प्रा० बड्ढनी] १. झाड़ू। बुहारी। कूचा। मार्जनी। २. पेशगी अनाज या रुपया जो खेती या और किसी काम के लिये दिया जाता है।

बढ़वनⓅ†—वि० [हिं० बढ़ना] बढ़ानेवाला। उ०—सुनि देसांतरा बिरह बिनोद। रसिक जनम मन बढ़वन मोद।—नंद० ग्रं०, पृ० १६३।

बढ़वारि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढ़+वारि (प्रत्य०)] दे० 'बढ़ती'। उ०—मोहन मोहे मोहनी, भई नेह बढ़वारि।—ब्रज० ग्रं० पृ० ६।

बढ़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढ़ना] बढ़ने का भाव। वृद्धि। बढ़ती। उ०—शास्त्र की लंबाई की कटान या बढ़ान कला की ऊँचाई निचाई पर निर्भर है।—काव्य०, पृ० ६।

बढ़ाना[1]—क्रि० स० [हिं० बढ़ना का सकर्मक अथवा प्रेर०] १. विस्तार या परिमाण में अधिक करना। विस्तृत करना। डीलडौल, आकार या लंबाई चौड़ाई में ज्यादा करना। वर्धित करना। जैसे, दीवार बढ़ाना, मकान बढ़ाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—बात बढ़ाना = झगड़ा करना। बात बढ़ाकर कहना = अत्युक्ति करना।

२. परिमाण, संख्या या मात्रा में अधिक करना। गिनती, नाप तौल आदि में ज्यादा करना। जैसे आदमी बढ़ाना, खर्च बढ़ाना, खुराक बढ़ाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. फैलाना। लंबा करना। जैसे, तार बढ़ाना। ४. बल, प्रभाव गुण आदि में अधिक करना। असर या खासियत वगैरह में ज्यादा करना। अधिक व्यापक, प्रबल या तीव्र करना। जैसे दु.ख बढ़ाना, क्लेश बढ़ाना, यश बढ़ाना, लालच बढ़ाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

५. पद, मर्यादा, अधिकार, विद्या, बुद्धि, सुखसंपत्ति आदि में अधिक करना। दौलत या रुतबे वगैरह का ज्यादा करना। उन्नत करना। तरक्की देना। जैसे,—राजा साहब ने उन्हें खूब बढ़ाया। ६. किसी स्थान से आगे ले जाना। आगे गमन कराना। अग्रसर करना। चलाना। जैसे, घोड़ा बढ़ाना, भीड़ बढ़ाना।

मुहा०—पतंग बढ़ाना = पतंग और ऊँचे उड़ाना।

७. चलने में किसी से आगे निकाल देना। ८. किसी बात में किसी से अधिक कर देना। ऊँचा या उन्नत कर देना। ९. भाव अधिक कर देना। सस्ता बेचना। जैसे,—बनिए गेहूँ नहीं बढ़ा रहे हैं। १०. विस्तार करना। फैलाना। जैसे, कारबार बढ़ाना। ११. दूकान आदि समेटना। नित्य का व्यवहार समाप्त करना। कार्यालय बंद करना। जैसे, दुकान बढ़ाना, काम बढ़ाना। १२. दीपक निर्वापित करना। चिराग बुझाना। उ०—अंग अंग नग जगमगत, दीपसिखा सी देह। दिया बढ़ाए हू रहै बड़ो उजेरो गेह।—बिहारी (शब्द०)।

बढ़ाना[2]—क्रि० अ० चुकना। समाप्त होना। बाकी न रह जाना। खतम होना। उ०—(क) मेघ सबै जल बरखि बढ़ाने बिबि गुन गए सिराई। वैसोई गिरिवर ब्रजवासी दूनो हरख बढ़ाई। सूर (शब्द०)। (ख) राम मातु उर लियो लगाई। सो सुख कैसे बरनि बढ़ाई।—रघुराज (शब्द०)। (ग) गिनति न मेरे अघन की गिनती नहीं बढ़ाइ। असरन सरन कहाइ प्रभु मत मोहि सरन छुड़ाइ।—स० सप्तक, पृ० २२६।

बढ़ाली†—संज्ञा स्त्री० [देश० बड्डाली] कटारी। कटार।

बढाव—संज्ञा पुं० [हिं० बढ़ना+आव (प्रत्य०)] बढ़ने की क्रिया या भाव। २. फैलाव। विस्तार। आधिक्य। अधिकता। ज्यादती। ३. उन्नति। वृद्धि। तरक्की।

बढ़ावन—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढ़ावना] १. गोबर की टिकिया जो बच्चों की नजर झाड़ने मे काम आती है। २. खलिहान में

अन्न की राशि पर रखी जानेवाली गोमय की पिंडिका जो वृद्धिजनक मानी जाती है।

बढ़ावना†—क्रि० स० [हिं० बढ़ाव] दे० 'बढ़ाना'। उ०—मल मूत्र भरे लहू मांस भरे आप अपना अंस बढावता है।—कबीर० रे०, पृ० ३६।

बढ़ावा—संज्ञा पुं० [हिं० बढ़ाव] १. किसी काम की ओर मन बढ़ानेवाली बात। हौसला पैदा करनेवाली बात जिसे सुनकर किसी को काम करने की प्रबल इच्छा हो। प्रोत्साहन। उत्तेजना। जैसे,—पहले तो लोगों ने बढावा देकर उन्हें इस काम में आगे कर दिया, पर पीछे सब किनारे हो गए।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—बढ़ावे में आना = उत्साह देने से किसी टेढे काम में प्रवृत्त हो जाना।

२. साहस या हिम्मत दिलानेवाली बात। ऐसे शब्द जिनसे कोई कठिन काम करने में प्रवृत्त हो। जैसे,—तुम उनके बढावे में मत आना।

बढ़िया¹—वि० [हिं० बढ़ना या देश०] उत्तम। अच्छा। उम्दा।

बढ़िया²—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का कोल्हू। २. एक तौल जो डेढ़ सेर की होती है। ३. गन्ने, अनाज आदि की फसल का एक रोग जिससे कनखे नहीं निकलते और दाव बंद हो जाती है।

बढ़िया³—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की दाल।

बढिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाढ़+इया (प्रत्य०)] दे० 'बाढ़'।

बढ़ेल—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिमालय पर की एक भेड़ जिससे ऊन निकलता है।

बढ़ेला—संज्ञा पुं० [सं० वराह] बनैला सूअर। जंगली सुअर।

बढ़ैया†¹—वि० [हिं० बढ़ाना, बढ़ना] १. बढ़ानेवाला। उन्नति करानेवाला। २. बढनेवाला।

बढ़ैया²†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बढ़ई'। उ०—अति सुंदर पालनो गढ़ि ल्याव, रे बढैया।—सूर (शब्द०)।

बढ़ोतरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाढ़+उत्तर] १. उत्तरोत्तर वृद्धि। बढती। २. उन्नति। ३. बढाया हुआ अंश या भाग।

बढ़ढाली(पु)—वि० [देश०] दे० 'बढाली'। उ०—उम्भारे विम्भार बीर बाहे बढ्ढाली।—पृ० रा०, ७।१४२।

बणज†—संज्ञा पुं० [सं० वाणिज्य] दे० 'बनिज'। उ०—(क) अब के चिट्ठी आई कि तूं घबरा मत मैं जरूर आऊँगा और लाहौर में बणज करूंगा।—पिंजरे०, पृ० ६३। (ख) तहँ पोथी पाठ न पूजा अरचा। तँह खेती बणजु नहीं को परचा।—प्राण०, पृ० १८६।

बणि†—संज्ञा स्त्री० [?] रुई का झाड़। कपास का पेड़।

बणिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वणिक्] दे० 'वणिक्'—२। उ०—शाकवणिक मणिगुण गण जैसे।—तुलसी (शब्द०)।

वणिक्, वणिग्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वाणिज्य करनेवाला। व्यापार व्यवसाय करनेवाला। बनियाँ। सौदागर। २. बेचनेवाला। विक्रेता। ३. ज्योतिष में छठा करण।

यौ०—वणिक्कटक = व्यापारियों का दल। कारवाँ। वणिग्ग्राम = व्यापारियों का समूह या मंडल। वणिक्पथ। वणिग्वीथी। वणिग्वृत्ति = व्यापार। वणिक् का काम। वणिक् सार्थ = दे० 'वणिक्कटक'।

वणिक्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] वाणिज्य। व्यापार की चीजों की आमदनी रफतनी। २. व्यापारी। सौदागर। ३. दूकान (को०)। ४. तुलाराशि (को०)।

वणिग्बंधु—संज्ञा पुं० [सं० वणिग्बन्धु] नील का पौधा।

वणिग्वह—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

वणिग्वीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाजार। हाट (को०)।

वणिज्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वणिक्'।

बत¹—अव्य० [सं०] शब्दों पर, विचारों पर जोर देने के लिये प्रयुक्त शब्द।

विशेष—संस्कृत में इसका प्रयोग दुःख, पीडा, दया, कृपा, आह्वान, आनंद, आश्चर्य, प्रतिबंध और सत्यार्थप्रतिपादन में होता है। हिंदी में इसका प्रयोग नहीं मिलता। हिंदी का 'तो' अव्यय इसके स्थान पर कहीं कहीं दो एक अर्थों में प्रयुक्त मिलता है।

बत²—अव्य० [हिं०] कि। पर।

बत³—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'बात' का संक्षिप्त रूप] बात। वार्ता।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों में ही होता है। जैसे, बतकही, बतबढाव, बतरस।

बत⁴—संज्ञा स्त्री० [अ०] बतख।

बतक—संज्ञा स्त्री० [अ० बतख] दे० 'बतख'।

बतकहा†—वि० [हिं० बात+कहना] [वि० स्त्री० बतकही] बातें करनेवाला। बड़बड़िया। उ०—रूपवादी बहुत कुछ उस बतकहे की तरह हैं।—इति०, पृ० १८।

बतकहाव—संज्ञा पुं० [हिं० बात+कहाव] १. बातचीत। २. कहासुनी। विवाद। बातों का झगड़ा।

बतकही—संज्ञा स्त्री० [हिं० बात+कही] बातचीत। वार्तालाप। उ०—(क) करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लुभान। मुखसरोज मकरंद छवि करत मधुप इव पान।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मनहु हर उर युगल मारध्वज के मकर लागि स्रवननि करत मेरु की बतकही।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०८।

बतख—संज्ञा स्त्री० [अ० बत] हंस की जाति की पानी की एक चिड़िया।

विशेष—इसका रंग सफेद, पंजे झिल्लीदार और चोंच आगे की ओर चिपटी होती है। चोंच और पंजे का रंग पीलापन लिए हुए लाल होता है। यह चिड़िया पानी में तैरती है और जमीन पर भी अच्छी तरह चलती है। इसका डीलडौल भारी

होता है, इससे यह न तेज दौड़ सकती है, न उड सकती है। तालों और जलाशयों में यह मछली आदि पकडकर खाती है। शहरों मे भी इसे लोग पालते हैं। वहाँ नालियों के कीड़े आदि चुगती यह प्रायः दिखाई पड़ती है।

बतचल—वि० [हिं० बात+चलाना] बकवादी। बक्की। उ०—जानी जात सूर हम इनकी बतचल चंचल लोल।—सूर (शब्द०)।

बतछुट†—वि० [हिं० बात+छूटना] १. बकवादी। अपने को समझकर बोलनेवाला। २. अविश्वसनीय। विश्वास के अयोग्य।

बतबढ़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० बात+बढ़ाव] बात का विस्तार। व्यर्थ बात बढाना। झगड़ा बखेडा बढ़ाना। विवाद। उ०—अब जनि बतबढ़ाव खल करई। सुनि मम बचन मान परिहरई।—तुलसी (शब्द०)।

बतर(पु)—वि० [अ० बद+तर] दे० बदतर'।

बतरस—संज्ञा पुं० [सं० वार्ता+रस, हिं० बात+रस] बातचीत का आनंद। बातों का मजा। उ०—(क) बतरस लालच लाल की वसी धरी लुकाइ। सौह करै भौंहन हसै दैन कहै नटि जाइ।—बिहारी र०, दो० ४७२। (ख) कनरस बतरस और सबै रस झूंठहि मूड डोलैहै।—रै० बानी, पु० ७०।

बतरान†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बतराना] बातचीत।

बतराना¹—क्रि० अ० [हिं० बात+आना (प्रत्य०)] बातचीत करना। उ०—छिनक छबीले लाल वह जौ लगि नहि बतराय। ऊख महूख पियूख की तौ लगि भूख न जाय।—बिहारी (शब्द०)।

बतराना(पु)²—क्रि० स० बतलाना। बताना।

बतरावना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बतराना'। उ०—सुरति न टरै बतरावत सबसे।—धर्म० श०, पृ० ७४।

बतरौहाँ(पु)†—वि० [हिं० बात, बतर+औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० बतरौहीं] बातचीत की ओर प्रवृत्त। वार्तालाप का इच्छुक।

बतलाना¹—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बताना'।

बतलाना†²—क्रि० अ० बातचीत करना।

बतवन्हा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की नाव। इस नाव मे लोहे के काँटे नही लगाए जाते। यह केवल बेंत से बाँधी जाती है। यह नाव चटगाँव की ओर चलाई जाती है।

बताऊँ—संज्ञा पु० [सं० वार्ताक, वृन्ताक, गुज० वंताक] बैंगन। भटा।

बताना¹—क्रि० स० [हिं० बात+ना (प्रत्य०) या सं० वदन (=कहना)] १. कहना। कहकर जानकार करना। जानकारी कराना। अभिज्ञ करना। जताना। कथन द्वारा सूचित करना। जैसे,—(क) रखी हुई वस्तु बताना, भेद बताना, युक्ति बताना, कोई बात बताना। (ख) बताओ तो मेरे हाथ मे क्या है।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी की बुद्धि में लाना। समझाना। बुझाना। हृदयंगम कराना। जैसे, अर्थ बताना, हिसाब बताना, अक्षर बताना।

संयो० क्रि०—देना।

३. किसी प्रकार सूचित कराना। जताना। निर्देश करना। दिखाना। प्रदर्शित करना। जैसे,—(क) उँगली से बताना, हाथ उठाकर रास्ता बताना। (ख) सूखा नाला यह बता रहा है कि पानी इधर नहीं बरसा है।

संयो० क्रि०—देना।

४. कोई काम करने के लिये कहना। किसी कार्य में नियुक्त करना। कोई कार्य निर्दिष्ट करना। कोई काम धधा निकालना। जैसे,—मुझे भी कोई काम बताओ, आजकल खाली बैठा हूँ। ५. नाचने गाने में हाथ उठाकर भाव प्रकट करना। भाव बताना। उ०—कभी नाचना और गाना कभी। रिझाना कभी और बताना कभी।—मीर हसन (शब्द०)। ६. दड देकर ठीक रास्ते पर लाना। ठीक करना। मार पीटकर दुरुस्त करना। जैसे,—बड़ी नटखटी कर रहे हो आता हूँ तो बताता हूँ। उ०—कोई बराबर का मर्द होता तो इस वक्त बता देता।—गैर०, पृ० १४।

मुहा०—अब बताओ =(१) अब कहो, क्या करोगे? अब क्या उपाय है? जैसे,—पानी तो आ गया, अब बताओ? (२) अब तो मेरे वश में हो, अब क्या कर सकते हो? अब तो फँस गए हो, अब क्या कर सकते हो? जैसे,—वहाँ तो बहुत बढ़ बढकर बोलते थे, अब बताओ।

बताना²—संज्ञा पुं० [सं० वर्त्तक (=एक धातु)] हाथ का कड़ा। कड़े का ढाँचा।

बताना³—संज्ञा पु० [हिं० बरतना] फटी पुरानी पगड़ी जो नीचे रहती है और जिसके ऊपर अच्छी पगड़ी बाँधी जाती है।

बताशा—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'बतासा'।

बतास‡—संज्ञा स्त्री० [सं० वातसह] १. वात का रोग। गठिया।

क्रि० प्र०—धरना।—पकड़ना।

२. वायु। हवा। उ०—केवल आह की बतास मात्र भर गई।—श्यामा०, पृ० १३७।

बतासफेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बतासा+फेनी] टिकिया के आकार की एक मिठाई।

बतासा—संज्ञा पुं० [हिं० बतास(=हवा)] १. एक प्रकार की मिठाई। उ०—कच्चे घड़े ज्यों नीर, पानी के बीच बतासा।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० २२।

विशेष—यह चीनी की चाशनी को टपकाकर बनाई जाती है। टपकने पर पानी के वायुभरे बुलबुले से बन जाते हैं जो जमने पर खोखले और हलके होते हैं और पानी में बहुत जल्दी घुलते हैं।

मुहा०—बतासे सा घुलना =(१) शीघ्र नष्ट होना। (शाप)। (२) क्षीण और दुबला होना।

२. एक प्रकार की आतशबाजी जो अनार की तरह छूटती है और जिसमें बड़े बड़े फूल से गिरते हैं। ३. बुलबुला। बुद्बुद। बुल्ला।

बतिया[1]—संज्ञा पुं० [सं० वर्तिका, प्रा० वतिया (=बत्ती)] थोड़े दिनों का लगा हुआ कच्चा छोटा फल। छोटा, कोमल और कच्चा फल। उ०—इहाँ कुम्हँड़ बतिया कोउ नाही। जो तर्जनि देखत मरि जाही।—तुलसी (शब्द०)।

बतिया‡[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बात+इया] दे० 'बात'। उ०—कहो उस देश की बतिया जहाँ नहिं होत दिन रतिया।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ७।

बतियाना—क्रि० अ० [हिं० बात से नामिक धातु] बातचीत करना।

बतियार—संज्ञा स्त्री [हिं० बात+यार (स्वा०)] बातचीत। उ०—सतसंगन की बतियारा। सो करत फिरत हुसियारा।—विश्राम (शब्द०)।

बतीसा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बत्तीसा'।

बतीसी†—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'बत्तीसी'। उ०—तोरे दँतवा कै बतिसिया जियरा मारै गोदना।—प्रमघन०, भा० २, पृ० ३५६।

बतू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कलाबत्तू'। उ०—चोली चुनावट चिन्ह चुभैं चपि होत उजागर चिन्ह बतू के।—घनानंद (शब्द०)।

बतोला†—संज्ञा पुं० [सं० वार्तालु, हिं० बातुल अथवा बात+ओला] बतंगड। बकवास। उ०—कब नही बूझ से गए तोले। हैं बतोले बहुत बुरे लगते।—चोखे०, पृ० ५८।

बतोलिया—वि० [हिं० बात+औलिया] बात बनानेवाला। बातूनी। उ०—फँसाऊ और बतोलिये उपदेशक की ओर। प्रेमघन० भा० २, पृ० २७५।

बतौत कुंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० बात] कान में बातचीत करने की नकल जो बंदर करते हैं। (कलंदर)।

बतौर[1]—क्रि० वि० [अ०] १. तरह पर। रीति से। तरीके पर। जैसे,—बतौर सलाह के यह बात मैंने कही थी। २ सदृश। समान। मानिंद।

बतौर[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बात, पुं० हिं० बतउर] बातचीत उ०—जामैं सुख रंच है बिसाल जाल दुख ही को लूटि ज्यों बतौरन की बरछी की हूल है।—दीन० ग्र०, पृ० १४०।

बतौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० वात+हिं० औरी (प्रत्य०)] एक प्रकार का रोग।

विशेष—इसमें शरीर के ऊपर गोलाकार उभार हो आता है। इस रोग में प्रायः चमड़े के नीचे एक गाँठ सी हो आती है जिसमे प्राय. मज्जा भरी रहती है। यह गाँठ बढ़ती रहती है, पर इसमे पीड़ा नही होती।

बत्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वार्ता, प्रा० बत्त] दे० 'बात'। उ०—(क) रज्जि मत्ति नादान कन्ह उच्चरिय बत्त इह।—पृ० रा०, ४। २। (ख) उच्चरिय बत्त इमि मच्चि करि।—पृ० रा०, ४। १।

बत्तड़ो(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] वार्ता। उ०—डेरां डेरां बत्तड़ी, डेरां डेरां जोस।—रा० रू०, पृ० ७४।

बत्तरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० बत्तड़ी] वार्ता। बात। उ०—रही जुगें जुग बत्तरिय।—पृ० रा०, १।६८८।

बत्तक—संज्ञा पुं० [हिं० बतक] दे० 'बतख'।

बत्तर‡—वि० [हिं०] दे० 'बदतर'।

बत्तिस—वि० [हिं०] दे० 'बत्तीस'।

बत्ती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ति वर्तिका, प्रा० वत्ति] १. सूत, रुई, कपड़े आदि की पतली छड़। सलाई या चौड़े फीते के आकार का टुकड़ा जो बट या बुनकर बनाया जाता है और जिसे तेल में डालकर दीप जलाते हैं। चिराग जलाने के लिये रुई या सूत का बटा हुआ लच्छा।

यौ०—अगरबत्ती। धूपबत्ती। मोमबत्ती।

मुहा०—बत्ती लगाना=जलती हुई बत्ती छुला देना। जलाना। आग लगाना। भस्म करना। संझाबत्ती=संध्या के समय दीपक जलाना।

२. मोमबत्ती।

मुहा०—बत्ती चढ़ाना=शमादान मे मोमबत्ती लगाना।

३. दीपक। चिराग। रोशनी। प्रकाश।

मुहा०—बत्ती दिखाना=उजाला करना। सामने प्रकाश दिखाना।

यौ०—दियाबत्ती।

४. लपेटा हुआ चीथड़ा जो किसी वस्तु में आग लगाने के लिये काम में लाया जाय। फलीता। पलीता। ५. पतली छड़ या सलाई के आकार में लाई हुई कोई वस्तु। बत्ती की शकल की कोई चीज। जैसे, लाह की बत्ती, मुलेठी के सत की बत्ती, लपेटे हुए कागज की बत्ती। ६. फूस का पूला जिसे मोटी बत्ती के आकार में बाँधकर छाजन में लगाते हैं। मूठा। उ०—अचरज बँगला एक बनाया। ऊपर नीव, तले घर छाया। बाँस न बत्ती बंधन घने। कहो सखी! घर कैसे बने।—(शब्द०)। ७. कपड़े की वह लबी धज्जी जो घाव मे मवाद साफ करने के लिये भरते हैं।

क्रि० प्र०—देना।

८. पगड़ी या चीरे का ऐंठा हुआ कपड़ा। ९. कपड़े के किनारे का वह भाग जो सीने के लिये मरोड़कर पकड़ा जाता है।

बत्ती(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वार्ता, प्रा० वत्त] दे० 'बात'। उ०—सुनि बत्ती नृप भर किलकान। राका चद उदधि परमानं।—पृ० रा०, १८।३३।

बत्तीस[1]—वि० [सं० द्वात्रिंशत्, प्रा० बत्तीसा] तीस से दो अधिक। जो गिनती मे तीस से दो ज्यादा हो।

बत्तीस[2]—संज्ञा पुं० १. तीस से दो अधिक की संख्या। २. उक्त संख्या का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३२।

बत्तीसा—संज्ञा पुं० [हिं० बत्तीस] एक प्रकार का लड्डू जिसमें पुष्टई के बत्तीस मसाले पडते हैं। यह लड्डू विशेषतः नव-प्रसूता को खिलाया जाता है।

बत्तीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बत्तीस] १. बत्तीस का समूह। २. मनुष्य के नीचे ऊपर के दाँतों की पंक्ति (जिनकी पूरी संख्या बत्तीस होती है)।

मुहा०—बत्तीसी खिलना=प्रसन्नता से हँस पड़ना। बत्तीसी झड़ पड़ना=दाँत गिर पडना। बत्तीसी दिखाना=दाँत दिखाना। हँसना। बत्तीसी बजना=जाड़े के कारण दाँतो का कँपना। गहरा जाड़ा लगना।

बत्थ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वक्ष या वस्ति] दे० 'बाथ'। उ०—देह

समरथ बगावियो, वाघ डाच जम बरथ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २६।

बथान†—संज्ञा पुं० [सं० वत्स+स्थान, गु०हि० बच्छथान] गो-गृह। गायों के रहने का स्थान।

बथुआ—संज्ञा पुं० [सं० वास्तुक, प्रा० वात्थुअ] एक छोटा पौधा जो जौ, गेहूँ आदि के खेतों में उपजता है और जिसका लोग साग बनाकर खाते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और फूल घुंडी के आकार के होते हैं जिनमें काले दाने के समान बीज पड़ते हैं। वैद्यक मे बथुआ जठराग्निजनक, मधुर, पित्तनाशक, अर्श और कृमिनाशक, नेत्रहितकारी, स्निग्ध, मलमूत्रशोधक और कफ के रोगियों को हितकारी माना गया है।

बथुवा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वास्तुक] दे० 'बथुआ'। उ०—कोस पचीस इक बथुवा नीचे जड़ से खोद बहावै।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० १३६।

बथूआ—संज्ञा पुं० [सं० वास्तूक] रिड्डा या रिड्डक छंद का एक भेद जिसमें ६७ मात्राएँ होती हैं और अंत में दोहा रहता है।—पृ० रा० १।२ (टिप्प०), पृ० ८।

बथ्थ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वस्थि या वक्ष] वक्षस्थल। उ०—(क) मिल्यौ बत्थ आनं दुअं मल्ल जानं।—पृ० रा०, १।६४५। (ख) छाके बाँके वीर हथ्थ वथ्थन भरि जुट्टे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २०।

बदंमली—संज्ञा स्त्री० [फा० बद+अमली] दे० 'बद अमली'।

बद¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ध्म (=गिलटी)] गरमी की बीमारी के कारण या यों ही सूजी हुई जाँघ पर की गिलटी। गोहिया। बाघी।

क्रि० प्र०—निकलना।

२. चौपायों का एक छूत का रोग जिसमें उनके मुँह से लार बहती है, उनके खुर और मुँह में दाने पड़ जाते हैं और सींग से लेकर सारा शरीर गरम हो जाता है।

बद²—वि० [फ़ा०] १. बुरा। खराब। २. अधम। निकृष्ट।

यौ०—बदअमली। बदइंतजामी। बदकार। बदकिस्मत। बदखत। बदख्वाह। बदगुमान। बदगोई। बदचलन। बदजबान। बदजात। बदतमीज। बददुआ। बदनसीब। बदनाम। बदनीयत। बदनुमा। बदपरहेज। बदवख्त। बदबू। बदमजा। बदमस्त। बदमाश। बदमिजाज। बदरंग। बदलगाम। बदशक्ल। बदसूरत। बदहजमी। बदहवास।

३. बुरे आचरण का (मनुष्य)। दुष्ट। खल। नीच। जैसे, बद अच्छा, बदनाम बुरा।

बद³—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्त (=पलटा, बदला)] पलटा। बदला। एवज। उ०—तब इक मित्रहि कह्यो बुझाई। तुम हमरी बद पहरे जाई।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—बद में=एवज में। बदले में। स्थान पर। उ०—गुरु गृह जब हम बन को जात। तुरत हमारे बद में लकरी लावत सहि दुख गात।—सूर (शब्द०)।

बदअमली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बद+अ० अमल] राज्य का कुप्रबंध। अशांति। हलचल।

क्रि० प्र०—फैलाना।—मचना।

बदइंतजामी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदइंतजामी] कुप्रबंध। अव्यवस्था।

बदकार—वि० [फ़ा०] १. बुरे काम करनेवाला। कुकर्मी। २. व्यभिचारी। परस्त्री या परपुरुष में रत। जैसे, बदकार आदमी, बदकार औरत।

बदकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. कुकर्म। व्यभिचार।

बदकिस्मत—वि० [फ़ा० बद+अ० क़िस्मत] बुरी किस्मत का। मदभाग्य। अभागा।

बदखत¹—वि० पुं० [फ़ा० बदख़त] बुरा लेख। बुरी लिपि बुरे अक्षर।

बदखत²—वि० बुरा लिखनेवाला। वह जिसका लिखने में हाथ न बैठा हो।

बदख्वाह—वि० [फ़ा० बदख़्वाह] बुरा चाहनेवाला। अनिष्ट चाहनेवाला। खैरख्वाह का उलटा।

बदगुमान—वि० [फ़ा०] बुरा संदेह करनेवाला। संदेह की दृष्टि से देखनेवाला।

बदगुमानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी के ऊपर मिथ्या संदेह। झूठा शुबहा। उ०—आखिर बदगुमानी की भी एक हद है।—वो दुनिया, पृ० २५।

बदगो—वि० [फ़ा०] निंदक। चुगलखोर।

बदगोई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. किसी के संबंध में बुरी बात कहना। निंदा। २. चुगली।

बदचलन—वि० [फा०] कुमार्गी। बदराह। बुरे चाल चलन का। लंपट।

बदचलनी—संज्ञा संज्ञा [फ़ा०] १, बदचलन होने की क्रिया या भाव। दुश्चरित्रता। २. व्यभिचार।

बदजबान—वि० [फा० बदज़बान] १. बुरा बोलनेवाला। गाली गलौज करनेवाला। २. कटुभाषी।

बदजात—वि० [फ़ा० बद+अ० ज़ात] १. बुरी असलियत या खासियत का। २. खोटा। ओछा। नीच।

बदजायका—वि० [फ़ा० बद+अ० ज़ायक़ह्] बुरे स्वाद का। उ०—एक एक बीड़े बजाय बदजायका पान के लीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५४।

बदतमोज—वि० [फ़ा० बदतमीज़] १. जिसे अच्छी बुरी चाल की पहचान न हो। जो शिष्टाचार न जानता हो। २. गँवार। बेहूदा।

बदतर—वि० [फ़ा०] और भी बुरा। किसी की अपेक्षा बुरा। जैसे,—यह तो उससे भी बदतर है।

बददुआ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बद+अ० दुआ] शाप। अहितकामना जो शब्दों द्वारा प्रकट की जाय।

क्रि० प्र०—देना।

बदन—संज्ञा पुं० [फा०] शरीर। देह।

यौ०—तन बदन।

मुहा०—तन बदन की सुध न रहना = (१) अचेत रहना। बेहोश रहना। (२) किसी ध्यान में इतना लीन होना कि किसी बात की खबर न रहे। बदन टूटना = शरीर की हड्डियों में पीड़ा होना। जोड़ों में दर्द होना जिससे अंगों को तानने और खींचने की इच्छा हो। बदन तोड़ना = पीड़ा के कारण अंगों को तानना और खींचना।

बदन[2]—संज्ञा पुं० [स० वदन] मुख। चेहरा। दे० 'वदन'।

बदनसीब—वि० [फा०] अभागा। जिसका भाग्य बुरा हो।

बदनसीबी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दुर्भाग्य।

बदनतौल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदन+हिं० तौल] मलखंभ की एक कसरत जिसमें हत्थी करते समय मलखंभ को एक हाथ से लपेटकर उसी के सहारे सारा बदन ठहराते या तौलते हैं। इसमें सिर नीचे और पैर सीधे ऊपर की ओर रहते हैं।

बदननिकाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० बदन + हिं० निकालना] मलखंभ की एक कसरत जिसमें मलखंभ के पास खड़े होकर दोनों हाथों की कैंची बाँधते हैं। इसमें खेलाड़ी का मुँह नीचे, कमर मलखंभ से सटी हुई और पैर ऊपर को होता है।

बदना(पु)—क्रि० स० [सं० √वद् (= कहना)] कहना। वर्णन करना। उ०—(क) विष्णु शिवलोक सोपान सम सर्वदा दास तुलसी वदत विमल बानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पानि जोरि कैमास बदै तव राज प्रति। उर अवलोकित उलसत सामंत राज अति।—पृ० रा०, ६।२४०। २. मान लेना। स्वीकार करना। सकारना। जैसे, किसी को साखी बदना, गवाह बदना। उ०—हाथ छुड़ाए जात हो निबल जानि कै मोहिं। हिरदय में से जाइयो मर्द बदौंगी तोहि।—(शब्द०)। ३. नियत करना। ठहराना। पहले से स्थिर करना। ठीक करना। निश्चित करना। कहकर पक्का कर लेना। जैसे, कुश्ती का मुकाम बदना, दाँव बदना। उ०—(क) श्याम गए बदि अवधि सखी री।—सूर (शब्द०)। (ख) दूती सों संकेत बदि लेन पठाई आप।—केशव (शब्द०)।

मुहा०—बदा होना = भाग्य में बदा होना। भाग्य में लिखा होना। प्रारब्ध में होना। जैसे,—अब तो चलते हैं, जो बदा होगा सो होगा। बदकर (कोई काम करना) = जान बूझकर। पूरी दृढ़ता के साथ। पूरे हठ के साथ। टेक पकड़कर। जैसे,—जिस काम को मना करते हैं वह बदकर करता है। (२) बेधड़क। ललकारकर। छेड़कर। आप अग्रसर होकर। जैसे,—न जाने क्यों वह मुझसे बदकर झगड़ा करता है। बदकर कहना = रटना के साथ कहना। पूरे निश्चय के साथ कहना। जैसे,—हम बदकर कहते हैं कि तुम्हारा यह काम हो जायगा।

४. सफलता पर जीत और असफलता पर हार मानने की शर्त पर कोई बात ठहराना। बाजी लगाना। होड़ लगाना। शर्त लगाना। जैसे,—आज उस मैदान में दोनों पहलवानों की कुश्ती बदी है। (ग) हम उससे कुश्ती बदेंगे। ५. गिनती में लाना। लेखे में लाना। कुछ समझना। कुछ ख्याल करना। बड़ा या महत्व का मानना। जैसे,—यह लड़का इतना धृष्ट हो गया है कि किसी को कुछ नहीं बदता। उ०—(क) बदत काहू नहीं निधरक निदरि मोहिं न गनत। बार बार बुझाय हारी भौंह मो पै तनत।—सूर (शब्द०)। (ख) जोबन दान लेऊँगी तुम सों। जाके बल तुम बदति न काहूहि कहा दुरावति मों सो।—सूर (शब्द०)। (ग) तो बदिहौं जो राखिहौ हाथनि लखि मन हाथ।—बिहारी (शब्द०)।

बदनाम—वि० [फ़ा०] जिसका बुरा नाम फैला हो। जिसकी कुख्याति फैली हो। जिसकी निंदा हो रही हो। कलंकित। जैसे,—बद अच्छा, बदनाम बुरा।

बदनामी—संज्ञा स्त्री० [फा०] अपकीर्ति। लोकनिंदा। कलंक।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बदनीयत—वि० [फ़ा० बद+अ० नीयत] १. जिसकी नीयत बुरी हो। जिसका अभिप्राय दुष्ट हो। नीचाशय। २. जिसके मन में धोखा आदि देने की इच्छा हो। बेईमान।

बदनीयती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेईमानी। दगाबाजी।

बदनुमा—वि० [फ़ा०] जो देखने में बुरा लगे। कुरूप। भद्दा। भोंडा।

बदपरहेज—वि० [फा० बदपरहेज] कुपथ्य करनेवाला। जो खाने पीने आदि का संयम न रखता हो।

बदपरहेजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदपरहेजी] कुपथ्य। खाने पीने आदि में असंयम।

बदफैल[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बदफ़ेल] बुरा काम। कुकर्म। उ०—(क) उसे करोगे बदफैल बुरी होयगी नक्कल।—दक्खिनी०, पृ० ४७। (ख) करि बदफैल सो गए बदी में सभ मिलि बदन निहारा।—संत० दरिया, पृ० १५३।

बदफैली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदफ़ेली] कुकर्म। बुरा काम। उ०—जोबन धन मिच न आखीए बदफैली क्या हाल।—प्राण०, पृ० २५५।

बदबखत(पु)—वि० [फ़ा० बदबख्त] अभागा। उ०—बेअदब बदबखत बौरा बेअकल बदकार।—रै० बानी, पृ० २०।

बदबख्त—वि० [फ़ा० बदबख्त] [संज्ञा स्त्री० बदबख्ती] बदकिस्मत। अभागा। उ०—दरवाजे से आज ये बदबख्त मायूस होकर जायगी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ४७।

बदबाछा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बद + हिं० बाछ] वह हिस्सा जो बेईमानी करने से मिला हो।

बदबू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दुर्गंध। बुरी बास।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—फैलना।

बदबूदार—वि० [फ़ा०] दुर्गंधयुक्त। बुरी गंधवाला। जिसमें से बुरी वास आती हो।

बदबोय†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदबू] दे० 'बदबू'। उ०—खुदी खुद खोय बदबोय रूह ना रखो।—तुलसी० श०, पृ० १६।

बदबोह†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदबू] दुर्गंध। बदबू। उ०—काँटा सूँ भूँडो कपरा, वय अपजस बदबोह।—बाँकी, ग्रं० भा० ३, पृ० ४८।

बदमजा—वि० [फ़ा० बदमज़ह्] [संज्ञा बदमज़गी] १. दुःस्वाद। बुरे स्वाद का। खराब जायके का। २. आनंदरहित। जैसे,—तबीयत बदमजा होना।

बदमस्त—वि० [फ़ा०] १. नशे में चूर। अति उन्मत्त। नशे में बावला। उ०—जहाँ श्रो कारो जहाँ से हूँ बेखबर बदमस्त। किधर जमी है जिधर आसमाँ नहीं मालूम।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३८०। २. कामोन्मत्त। लंपट।

बदमस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मतवालापन। उन्मत्तता। २. कामोन्मत्तता। कामुकता। लंपटता।

बदमाश—वि० [फ़ा० बद+अ० मआश (=जीविका)] १. बुरे कर्म से जीविका करनेवाला। दुर्वृत्त। २. खोटा। दुष्ट। पाजी। लुच्चा। नटखट। ३. दुराचारी। बदचलन।

बदमाशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बद+अ० मआश] १. बुरी वृत्ति। जघन्य वृत्ति। दुष्कर्म। खोटाई। २. नीचता। दुष्टता। पाजीपन। नटखटी। शरारत। ३. व्यभिचार। लंपटता।

बदमिजाज—वि० [फ़ा० बदमिज़ाज] दुःस्वभाव। बुरे स्वभाव का। जो जल्दी अप्रसन्न हो जाय। चिड़चिड़ा।

बदमिजाजी—स्त्री० [फ़ा० बदमिज़ाजी] बुरा स्वभाव। चिड़चिड़ापन।

बदरंग[1]—वि० [फ़ा०] १. बुरे रंग का। जिसका रंग अच्छा न हो। भद्दे रंग का। २. जिसका रंग बिगड़ गया हो। विवर्ण। उ०—ललार की खाल सिकुड़ गई थी। दाँत ओठ दोनों बदरंग पड़ गए थे।—श्यामा०, पृ० १४५।

बदरंग[2]—संज्ञा पुं० ताश के खेल में जो रंग दाव पर गिरना चाहिए उससे भिन्न रंग। २. चौसर के खेल में एक एक खिलाड़ी की दो गोटियों में वह गोटी जो रंग न हो।

बदरंगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रंग का फीकापन या भद्दापन।

बदर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेर का पेड़ या फल। २. कपास। ३. कपास का बीज। बिनौला।

यौ०—बदरकुण = बेर के फल के पकने का समय।

बदर[2]—क्रि० वि० [फ़ा०] बाहर। जैसे, शहर बदर करना।

मुहा०—बदर निकालना = जिम्मे रकम निकालना। किसी के नाम हिसाब में बाकी बताना।

बदर[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बद्र] चंद्रमा।

यौ०—बदरे मुनीर = प्रकाशमान चंद्रमा। उ०—बदरे मुनीर बेनजीर सीरी खुसरू में।—नट०, पृ० ७८।

बदरनवीसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [संज्ञा बदरनवीस] १. हिसाब किताब की जाँच। २. हिसाब में गड़बड़ रकम अलग करना।

बदरा‡[1]—संज्ञा पुं० [सं० वारिद, प्रा० बद्दल, हिं० बादल, बादर] बादल। मेघ। उ०—कौन सुनै कासों कहौं सुरति बिसारी नाह। बदाबदी जिय लेत हैं ये बदरा बदराह।—बिहारी (शब्द०)।

बदरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बराहक्रांती का पौधा।

बदरामलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा। पानी आमला।

विशेष—इसके पौधे जलाशयों के पास होते हैं। पत्ते लंबे लंबे और फल लाल लाल बेर के समान होते हैं। टहनियों में छोटे छोटे काँटे भी होते हैं।

बदराह—वि० [फ़ा०] १. कुमार्गी। कुमार्गगामी। बुरी राह पर चलनेवाला। २. दुष्ट। बुरा। उ०—बदाबदी जिय लेत हैं ये बदरा बदराह।—बिहारी (शब्द०)।

बदरि—संज्ञा पुं० [सं०] बेर का पौधा या फल। उ०—जिनहि बिश्व कर बदरि समाना।—तुलसी (शब्द०)।

बदरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेर का पेड़। २. बेर का फल। ३. गंगा के उद्गम स्थानों में से एक और उनके समीप का आश्रम (को०)।

बदरिकाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थविशेष जो हिमालय पर है। यहाँ नर नारायण तथा व्यास का आश्रम है।

विशेष—यह तीर्थ श्रीनगर (गढ़वाल) के पास अलकनंदा नदी के पश्चिमी किनारे पर है। कहते हैं, भृगुतुंग नामक शृंग के ऊपर एक बदरी वृक्ष के कारण बदरिकाश्रम नाम पड़ा। महाभारत मे लिखा है, पहले यहाँ गंगा की गरम और ठंढी दो धाराएँ थीं, और रेत सोने की थी। यहाँ पर देवताओं ने तप करके विष्णु को प्राप्त किया था। गंधमादन, बदरी, नरनारायण और कुबेरशृंग इसी तीर्थ के अंतर्गत हैं। नर-नारायण अर्जुन ने यहाँ बड़ा तप किया था। पांडव महाप्रस्थान के लिये इसी स्थान पर गए थे। पद्मपुराण में वैष्णवों के सब तीर्थों मे बदरिकाश्रम श्रेष्ठ कहा गया है।

बदरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बदरी[2]', 'बदली[1]'।

बदरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेर का पेड़ या फल। २. कपास का पौधा (को०)।

बदरी(पु)[2]संज्ञा स्त्री० [हिं० बादली] दे० 'बदली'।

बदरीच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का बेर। २. एक सुगंध द्रव्य जो शायद किसी समुद्री जंतु का सूखा मांस हो।

बदरीछद—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधद्रव्य। बदरीच्छदा।

बदरीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] बदरिकाश्रम नाम का तीर्थ।

बदरीनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदरिकाश्रम के प्रधान देवता। २. नारायण की मूर्ति जो बदरिकाश्रम में है।

बदरीपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य।

बदरीफल—संज्ञा पुं० [सं०] बेर का फल।

बदरीफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील शेफालिका का पौधा।

बदरीवन—संज्ञा पुं० [सं० बदरीवन] १. बेर का जंगल। २. बदरिकाश्रम। उ०—बदरीवन कहुँ सो गई, प्रभु आज्ञा धरि सीस।—मानस, ४।२५।

बदरीवासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम (को०)।

बदरून—संज्ञा पुं० [? या देशज] पत्थर की जाली की एक प्रकार की नक्काशी जिसमे बहुत से कोने होते हैं।

बदरौंहा[1]—वि० [फ़ा० बद+रौ (= चाल)] कुमार्गी। बदचलन उ०—इद्री उदर बड़ाई कारन होत जात बदरौंहा।—देव स्वामी (शब्द०)।

बदरौंहा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बादर+औंह (प्रत्य०)] बदली का आभास।

बदल—संज्ञा पुं० [अ०] १. एक के स्थान पर दूसरा होना। परिवर्तन। हेर फेर।

यौ०—अदल बदल। रदबदल।

२. पलटा। एवज। प्रतिकार।

बदलगाम—वि० [फ़ा० बद+लगाम] १. जिसे भला बुरा मुँह से निकालते संकोच न हो। बदजबान। २. सरकश। उद्दंड। मुँहजोर (अश्व)।

बदलना[1]—क्रि० अ० [अ० बदल+हिं० ना (प्रत्य०)] १. और का और होना। जैसा रहा हो उससे भिन्न हो जाना। परिवर्तन होना। जैसे,—(क) इतने ही दिनों में उसकी शकल बदल गई। (ख) इसका रंग बदल गया।

संयो० क्रि०—जाना।

२. एक स्थान पर दूसरा हो जाना। जहाँ जो वस्तु रही हो वहाँ वह न रहकर दूसरी वस्तु आ जाना। जैसे,—(क) मेरा छाता बदल गया। (ख) फाटक पर पहरा बदल गया।

मुहा०—किसी से बदल जाना = किसी के पास अपनी चीज चली जाना और अपने पास उसकी चीज आ जाना। जैसे,—यह मेरा छाता नहीं है, किसी से बदल गया है। (वास्तव में 'किसी' से अभिप्राय किसी की वस्तु से है)।

३. एक स्थान से दूसरे स्थान पर नियुक्त होना। एक जगह से दूसरी जगह तैनात होना। जैसे,—वह कलक्टर यहाँ से बदल गया।

संयो० क्रि०—जाना।

बदलना[2]—क्रि० स० १. और का और करना। जैसा रहा हो उससे भिन्न करना। परिवर्तन करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

२. एक के स्थान पर दूसरा करना। जिस स्थान पर या जिस व्यवहार में जो वस्तु रही हो उसे न रखकर दूसरी रखना या उपस्थित करना। एक वस्तु के स्थान की पूर्ति दूसरी वस्तु से करना। जैसे, घर बदलना, कपड़ा बदलना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—बात बदलना = पहले एक बात कहकर फिर उसके विरुद्ध दूसरी बात कहना।

३. एक वस्तु देकर दूसरी वस्तु लेना या एक वस्तु लेकर दूसरी वस्तु देना। विनिमय करना। जैसे—(क) खोटा रुपया बदलना। (ख) चाँदी बदलकर सोना लेना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

बदलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बदलाई'।

बदलवाना—क्रि० स० [हिं० बदलना का प्रे०रूप] बदलने का काम कराना।

बदला—संज्ञा पुं० [अ० बदल, हिं० बदलना] १. एक वस्तु देकर दूसरी वस्तु लिया जाना या एक वस्तु लेकर दूसरी वस्तु दिया जाना। परस्पर लेने और देने का व्यवहार। विनिमय।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. एक पक्ष की वस्तु के स्थान पर दूसरे पक्ष की वस्तु जो उपस्थित की जाय। एक की वस्तु के स्थान पर दूसरा जो दूसरी वस्तु दे। एक वस्तु की हानि या स्थान की पूर्ति के लिये उपस्थित की हुई दूसरी वस्तु। जैसे,—चीज खो गई तो खो गई उसका बदला लेकर क्या आए हो? ३. किसी वस्तु के स्थान की दूसरी वस्तु से पूर्ति। किसी चीज की कमी या नुकसान दूसरी चीज से पूरा करना या भरना। पलटा। एवज। जैसे,—दूसरे की चीज है, खो जायगी तो बदला देना पड़ेगा।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—बदले = (१) बदले मे। स्थान की पूर्ति में। जगह पर। एवज में। जैसे,—इस तिपाई को हटाकर इसके बदले एक कुरसी रखो। (२) हानि की पूर्ति के लिये। नुकसान भरने के लिये। जैसे—घड़ी खो जायगी तो इसके बदले दूसरी घड़ी देनी होगी।

४. एक पक्ष के किसी व्यवहार के उत्तर मे दूसरे पक्ष का वैसा ही व्यवहार। एक दूसरे के साथ जैसी बात करे दूसरे का उसके साथ वैसी ही बात करना। पलटा। एवज। प्रतीकार। जैसे,—(क) बुराई का बदला भलाई से देना चाहिए। (ख) मैंने तुम्हारे साथ जो इतनी भलाई की उसका क्या यही बदला है।

मुहा०—बदला देना = उपकार के पलटे में उपकार करना। प्रत्युपकार करना। किसी से कुछ लाभ उठाकर उसे लाभ पहुँचाना। बदला लेना = अपकार के पलटे में अपकार करना। किसी के बुराई करने पर उसके साथ बुराई करना। जैसे,—तुमने आज उसे मारा है, इसका बदला वह जरूर लेगा।

५. किसी कर्म का परिणाम जो भोगना पड़े। प्रतिफल। नतीजा। जैसे,—तुम्हें इसका बदला ईश्वर के यहाँ मिलेगा।

बदलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बदला + ई या आई (प्रत्य०)] बदलने की क्रिया। परिवर्तन। उ०—भारतमाता! क्यों हो इतनी घबराई। की है उसने केवल कर की बदलाई।—सूत०, पृ० ३७।

बदलाना—क्रि० स० [बदलना का प्रे० रूप] बदलवाना।

बदली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बादल का अल्पा०] फैलकर छाया हुआ बादल। घनविस्तार। जैसे,—आज बदली का दिन है।

बदली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बदलना] १. एक स्थान पर दूसरी वस्तु की उपस्थिति।

यौ०—अदला बदली।

२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर नियुक्ति। तबदीली। तबादला। जैसे,—यहाँ से उसकी बदली दूसरे जिले मे हो गई। ३. एक के स्थान पर दूसरे की तैनाती। जैसे,—अभी पहरे की बदली नही हुई है।

बदलौवल‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बदलना] अदल बदल। हेर फेर। परिवर्तन।

बदशकल—वि० [फ़ा०] कुरूप। बेडौल। भद्दी सूरत का।

बदशगून—वि० [फ़ा०] अशुभ। मनहूस।

बदशगूनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अमंगल। बदकिस्मती। उ०—न जाने लोगों को अपनी नाक काटकर औरों की बदशगूनी करने में क्या मजा आता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७४।

बदसलूकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बद + अ० सलूक] १. बुरा व्यवहार। अशिष्ट व्यवहार। २. अपकार। बुराई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बदसूरत—वि० [फ़ा० बद + सूरत] [संज्ञा बदसूरती] कुरूप। भद्दी सूरतवाला। बेडौल।

बदस्तूर—क्रि० वि० [फ़ा०] मामूली तौर पर। जैसा था या रहता है वैसा ही। जैसे का तैसा। ज्यों का त्यों। बिना फेरफार। जैसे,—जो बातें पहले थी अब भी बदस्तूर कायम हैं।

बदहजमी—स्त्री० [फ़ा० बदहज़मी] अपच। अजीर्ण।

बदहवास—वि० [फ़ा०] [संज्ञा बदहवासी] १. बेहोश। अचेत। २. व्याकुल। विकल। उद्विग्न। ३. श्रांत। शिथिल। पस्त।

बदहाल—वि० [फ़ा०] बुरी हालत का। दुर्दशाग्रस्त।

बदहाली—संज्ञा स्त्री० [फा०] तंगी। गरीबी। उ०—भूख और बदहाली ने उनकी आत्मा को कुचल दिया है।—गोदान, पृ० ३।

बदा—संज्ञा पु० [हिं० बदना] वह जो कुछ भाग्य में लिखा हो। नियत। विपाक। जैसे,—वह तो अपना अपना बदा है।

बदाऊँ†—वि० [फ़ा० बद + आहू (= ऐब, दोष)]। ठग। बटमार। लुटेरा। उ०—साहू थे सो हुए बदाऊँ लूटन लगे घर बारा।—कबीर० श०, पृ० ५७।

बदान—संज्ञा स्त्री० [हिं० बदना] बदे जाने की क्रिया या भाव। प्रतिज्ञापूर्वक पहले से किसी बात का स्थिर किया जाना। किसी बात के होने का पक्का। जैसे,—आज कुश्ती की बदान है।

बदाबदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बदना] दो पक्षों की एक दूसरे के विरुद्ध प्रतिज्ञा या हठ। लाग डाट। होड़ा होड़ी। होड़। उ०—कौन सुनै कासों कहौं सुरति बिसारी नाह। बदाबदी जिय लेत हैं ये बदरा बदराह।—बिहारी (शब्द०)।

बदाम—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादाम] दे० 'बादाम'।

बदामी[1]—वि० [फ़ा० बादामी] दे० 'बादामी'।

बदामी[2]—संज्ञा पुं० कौड़ियाले की जाति का एक पक्षी। एक प्रकार का किलकिला।

बदि(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्त (= पलटा)] बदला। एवज। स्थानापन्न करने या होने का भाव।

बदि[2]—अव्य० १. बदले में। एवज में। पलटे में। उ०—(क) एक कौर लीजै पितु की बदि एक कौर बदि मोरा। एक कौर कैकेयी की, बदि एक सुमित्रा कोरा।—रघुराज (शब्द०)। (ख) बोले कुरुपति वचन सुहाए। हम नरेश सबकी बदि आए।—रघुराज (शब्द०)। २. लिये। वास्ते। खातिर। उ०—इनकी बदि हम सहत यातना। हरिपार्षद अब आन बात ना।—रघुराज (शब्द०)।

बदि(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बदी[1]'। उ०—बदि भादों आठैं दिना, अरध निसा बुध बार।—नंद ग्रं०, पृ० ३३६।

बदी[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बद (= बुरा, खराब)] कृष्ण पक्ष। अंधेरा पाख। सुदी का उलटा। जैसे, सावन बदी तीज।

बदी[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बुराई। अपकार। अहित। जैसे,—नेकी बदी साथ जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बदीत(पु)—वि० [सं० व्यतीत] व्यतीत। बीता हुआ। बीता। उ०—वर्ष बदीत भए कलिकाल के जैसे चमालीस चार हजारा।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १२९।

बदूख(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बदूक'।

बदे†—अव्य [सं० वर्त (= पलटा)] १. वास्ते। लिये। खातिर। अर्थ। उ०—तुम्हारे बदे तो नरक बना है अग्निकुंड में डारी।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३४। २. दलाली समेत दाम। (दलाल)।

बदौलत—क्रि० वि० [फ़ा०] १. आसरे से। द्वारा। अवलंब से। कृपा से। जैसे,—जिसकी बदौलत रोटी खाते हो, उसी के साथ ऐसा। २. कारण से। सबब से। वजह से। जैसे,—तुम्हारी बदौलत यह सुनना पड़ता है।

बद्दर(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बादल'। उ०—बद्दर की छाही, वैसो जीवन जग माही।—(शब्द०)।

बद्दल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वारिद, प्रा० बद्दल] दे० 'बादल'। उ०—बढ़ि बढ़ि घनं घट सीस जरै। जनु बद्दल बद्दल बीज भरै।—पृ० रा०, २४। १९०। (ख) बद्दल समान मुगलद्दल उड़े फिरैं।—भूषण (शब्द०)।

बद्दुआ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बद्दुआ] दे० 'बददुआ'।

बद्दू[1]—संज्ञा पुं० [देशज] अरब की एक असभ्य जाति जो प्राय: लूट पाट किया करती है।

बद्दू[2]—वि० बदनाम।

बद्ध—वि० [सं०] १. बँधा हुआ। जो या जिससे बाँधा गया हो। बंधन में पड़ा हुआ या बाँधने में काम आया हुआ।

यौ०—बद्धपरिकर। बद्धशिख।

२. अज्ञान में फँसा हुआ। संसार के बंधन में पड़ा हुआ। जो मुक्त न हो। जैसे, बद्ध जीव। ३. जिसपर किसी प्रकार का प्रतिबंध हो। जिसके लिये कोई रोक हो। ४. जिसकी गति, क्रिया, व्यवहार आदि परिमित और व्यवस्थित हो। जो किसी हद हिसाब के भीतर रखा गया हो। जैसे, नियमबद्ध, मर्यादाबद्ध। ५. निर्धारित। निर्दिष्ट। स्थिर। ठहराया हुआ। ६. बैठा हुआ। जमा हुआ।

यौ०—बद्धमूल।

७. सटा हुआ। जुड़ा हुआ। एक दूसरे से लगा हुआ।

यौ०—बद्धांजलि।

बद्धक—संज्ञा पुं० [सं०] बँधुआ। कैदी।

बद्धकक्ष—वि० [सं०] दे० 'बद्धपरिकर' [को०]।

बद्धकोप—वि० [सं०] १. क्रोध को रोकनेवाला। २. क्रोध पालनेवाला। क्रोधी [को०]।

बद्धकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] मल अच्छी तरह न निकलने की अवस्था या रोग। पेट का साफ न होना। कब्ज। कब्जियत।

बद्धगुदोदर—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का एक रोग जिसमें हृदय और नाभि के बीच पेट कुछ बढ़ आता है और मल रुक रुककर थोड़ा थोड़ा निकलता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार जब अँतड़ियों में अन्न, मिट्टी, बालू आदि जमते जमते बहुत सी इकट्ठी हो जाती हैं तब मल बहुत कष्ट से थोड़ा थोड़ा निकलता है। चिकनी, चिपचिपी चीजें अधिक खाने से यह रोग प्राय: हो जाता है और इसमें वमन मे मल की सी दुर्गंध आती है। इसे बद्धगुद भी कहते हैं।

बद्धदृष्टि—वि० [सं०] लगातार या टकटकी लगाए हुए [को०]।

बद्धना(पु)—क्रि० अ० [सं० वर्द्धन, प्रा० बद्धन, बड्ढण, हिं० बढना] दे० बढ़ना'। उ०—(क) बरष बधै बिय बाल पिथ्थ बद्धै इक मासह।—पृ० रा०, १।७१७। (ख) क्रम क्रम फल गुन बद्धइय, बेली नर्म सुतेम।—पृ० रा०, ११।३१।

बद्धनिश्चय—वि० [सं०] दृढ़निश्चय। दृढ़प्रतिज्ञ [को०]।

बद्धपरिकर—वि० [सं०] कमर बाँधे हुए। तैयार। उ०—जिनकी दशा के सुधार के अर्थ वह बद्धपरिकर हुई है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७०।

बद्धपुरीष—वि० [सं०] कब्ज का रोगी [को०]।

बद्धप्रतिज्ञ—वि० [सं०] वचनबद्ध [को०]।

बद्धफल—संज्ञा पुं० [सं०] करंज का फल [को०]।

बद्धभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नीचे की जमीन या फर्श। २. मकान के लिये तैयार की हुई भूमि। ३. गच। कुट्टिम। पक्की जमीन [को०]।

बद्धमुष्टि—वि० [सं०] १. जिसकी मुट्ठी बँधी हो अर्थात् देने के लिये न खुलती हो। कृपण। कजूस। २. बँधी मुट्ठीवाला।

बद्धमूल—वि० [सं०] जिसने जड़ पकड़ ली हो। जो दृढ़ और अटल हो गया हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बद्धमौन—वि० [सं०] चुप्पी साधे हुए। मौन [को०]।

बद्धयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (संगीत में) बंशी बजाने में उसके छिद्रों पर से उँगली हटाकर उसे खोलने की क्रिया।

बद्धरसाल—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम जाति का एक प्रकार का आम।

बद्धराग—वि० [सं०] दृढ़ प्रेमवाला। दृढ़ अनुरागयुक्त। आसक्त [को०]।

बद्धराज्य—वि० [सं०] जिसे राज्य मिला हो। राज्यारूढ [को०]।

बद्धवर्चस—वि० [सं०] मलरोधक।

बद्धवैर—वि० [सं०] किसी से शत्रुता साधे हुए [को०]।

बद्धशिख[1]—वि० [सं०] जिसकी शिखा या चोटी बँधी हो।

विशेष—बिना शिखा बाँधे जो कुछ धर्म कार्य किया जाता है वह निष्फल होता है।

बद्धशिख[2]—संज्ञा पुं० शिशु। बच्चा।

बद्धशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्चटा। भूम्यामलकी।

बद्धसूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बद्धसूतक'।

बद्धसूतक—संज्ञा पुं० [सं०] रसेश्वरदर्शन के अनुसार बद्ध रस या पारा।

विशेष—यह अक्षत, लघुद्रावी, तेजोविशिष्ट, निर्मल और गुरु कहा गया है। रसेश्वरदर्शन में देह को स्थिर या अमर करने पर मुक्ति कही गई है। यह स्थिरता रस या पारे की सिद्धि द्वारा प्राप्त होती है।

बद्धस्नेह—वि० [सं०] आसक्त। अनुरक्त [को०]।

बद्धांजलि—वि० [सं० बद्धाञ्जलि] करबद्ध। अंजलिबद्ध। उ०—बोले गुरु से प्रभु साश्रुवदन, बद्धांजलि।—साकेत, पृ० २२३।

बद्धानंद—वि० [सं० बद्धानन्द] आनंदयुक्त [को०]।

बद्धानुराग—वि० [सं०] आसक्त। बद्धराग [को०]।

बद्धायुध—वि० [सं०] शस्त्रसज्ज। शस्त्रास्त्रयुक्त [को०]।

बद्धाशंक—वि० [सं० बद्धाशङ्क] आशंकायुक्त। आशंकित। शंकायुक्त [को०]।

बद्धाश—वि० [सं०] आशान्वित। आशायुक्त [को०]।

बद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं० बद्ध] १. वह वस्तु जिससे कुछ कसें या बाँधें। डोरी। रस्सी। तसमा। जैसे, तबले की बद्धी उ०—माथो पर उलटा हल रक्खा, बद्धी हाथ, अधेड़ पिता जी, माता जी, सिर गट्ठल पकड़ा।—आराधना, पृ० ७४। २. माला या सिकड़ी के आकार का चार लड़ों का एक गहना जिसकी दो लड़ें दोनों कंधों पर से होती हुई जनेऊ की तरह छाती और पीठ तक गई रहती हैं।

बद्धोत्सव—वि० [सं०] उत्सव में संलग्न। उत्सव का आनंद लेनेवाला [को०]।

बद्धोदर—संज्ञा पुं० [सं०] बद्धगुदोदर रोग।

बद्धोद्यम—वि० [सं०] प्रयत्नशील। चेष्टारत [को०]।

बध—संज्ञा पुं० [सं० वध] वह व्यापार जिसका फल प्राणवियोग हो। मार डालना। हनन। हत्या। दे० 'वध'।

बधक—वि० [सं०] वध करनेवाला।

बधगराड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाध + गराड़ी] रस्सी बटने का औजार।

बधत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र।

बधना[1]—क्रि० स० [सं० बध+हिं० ना (प्रत्य०)] मार डालना। वध करना। हत्या करना। उ०—(क) खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा।—मानस, ३।२२। (ख) ताहि बधे कछु पाप न होई।—मानस, ४।६।

बधना[2]—क्रि० अ० [सं० वर्द्धन, प्रा० वद्धण] दे० 'बढना'। उ०—(क) बरष बर्ध बिय बाल पिथ्थ बद्धै इक मासह।—पृ० रा०, १।७१७। (ख) मत्र जंत्र धारंत मन, आकरषे जब चंद। प्रगट दरस दीने सबन, कवि उर बध्यो अनंद।—पृ० रा०, ६।३३। (ग) दया धर्म का रूंखड़ा, सतसों बधता जाइ।—दादू० बा०, पृ० ४६२।

बधना[3]—संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धन (= मिट्टी का गडुवा)] १. मिट्टी या धातु का टोंटीदार लोटा जिसका व्यवहार अधिकतर मुसलमान करते हैं। २. चूड़ीवालों का औजार।

बधभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ अपराधियों को प्राणदंड दिया जाता है।

बधाई—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्द्धापन, हिं० बढ़ना बढ़ती, बढ़ाई] १. वृद्धि। बढती। २. पुत्रजन्म पर होनेवाला आनंद मंगल। बेटा होने का उत्सव या खुशी। ३. मंगल अवसर का गाना बजाना। मंगलाचार। उ०—नंद घर बजति अनंद बधाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बजना।

४. आनंद। मंगल। उत्सव। खुशी। चहल पहल। ५. किसी संबंधी, इष्ट मित्र आदि के यहाँ पुत्र होने पर आनंद प्रकट करनेवाला वचन या संदेसा। मुबारकबाद।

क्रि० प्र०—देना।

६. इष्ट मित्र के शुभ, आनंद या सफलता के अवसर पर आनंद प्रकट करनेवाला वचन या संदेसा। मुबारकबाद। जैसे, (क) जीत होने की बधाई। (ख) तुम्हें इसकी बधाई।

क्रि० प्र०—देना।

७. उपहार जो मंगल या शुभ अवसर पर दिया जाय।

मुहा०—बधाई या बधाय बँटना = परस्पर खुशी में एक दूसरे को बधाई देना। उ०—बँटि बधाय दिल्ली सहर जीते आवत राज। द्रव्य पटंबर विविध दिय बज्जा जीत सु बाज।—पृ० रा०,१६।२५०।

बधाईदार—वि० [हिं० बधाई + फा० दार] मुबारकबादी देनेवाला। बधाई देनेवाला। उ०—तूरा मेले माया नगर, दोड बधाईदार।—रघु० रू० पृ०, ६२।

बधाना—क्रि० स० [हिं० बधना का प्रे० रूप] बध कराना। दूसरे से मरवाना।

बधाया—संज्ञा पुं० [हिं० बधाई] बधाई। बधावा। उ०—जबते राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाये।—तुलसी (शब्द०)।

बधाव(पु)—संज्ञा पुं० [पा० वद्धव, प्रा० बद्धाव] दे० 'बधावा'। उ०—अवध बधाव बिलोकि सुर बरसत सुमन सुगंध।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८२।

मुहा०—बधाव बजना = पुत्रजन्म आदि मांगलिक और प्रसन्नता के समय शहनाई आदि बाजों का बजना। उ०—गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुखमाकंद।—मानस, १।१९४।

बधावन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धापन, प्रा० वद्धावण] दे० 'बधावा'। उ०—गावहिं गीत सुवासिनि, बाज बधावन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६।

बधावना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बधावा'।—उ०—गगन दमामा वाजिया, हनहुनिया केकान। सूरा घरै बधावना, कायर तज परान।—कबीर० सा० सं०, भा० १, पृ० २३।

बधावरा—संज्ञा पुं० [हिं० बधाव] दे० बधावा'। उ०—सहित बधावर नगर घर्हं, आए दोऊ भूप।—इंद्रा०, पृ० १४५। (ख) आजु मेरे मंगल बधावर आरति करवो।—गुलाल०, पृ० १२१।

बधावा—संज्ञा पुं० [हिं० बधाई] १. बधाई। २. आनंद मंगल के अवसर का गाना बजाना। मंगलाचार। उ०—(क) तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा।—मानस, २।११। (ख) गरीबों के घर में बधावा बजने लगता है।—रिन्नर०, पृ० ७०३।

क्रि० प्र०—बजना।

३. उपहार (मिठाई, फल, कपड़े गहने आदि) जो संबंधियों या इष्ट मित्रों के यहाँ से पुत्रजन्म, विवाह, आदि मंगल अवसरों पर आता है।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—भेजना।

बधिक—संज्ञा पुं० [सं० वधक] १. वध करनेवाला। मारनेवाला।

हत्यारा। २. प्राणदंड पाए हुए का प्राण निकालनेवाला। जल्लाद। ३ व्याध। बहेलिया।

बधिया—संज्ञा पुं० [हिं० बध (=मारना)+इया (प्रत्य०)] १. वह बैल या और कोई पशु जो अंडकोश कुचल या निकालकर 'षंढ' कर दिया गया हो। नपुंसक किया हुआ चौपाया। खस्सी। आख्ता। चौपाया जो आँडू न हो। उ०—दौलत दुनिया माल खजाने बधिया बैल चराई।—कबीर० श०, पृ० १५।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—बधिया बैठना=(१) घाटा होना। टोटा होना। दिवाला निकलना। (लश०)। (२) हिम्मत पस्त होना। कमर टूटना। उ०—ईश्वर न करें कि रोज आएँ, यहाँ तो एक ही दिन में बधिया बैठ गई।—मान०, भा० ५, पृ० १६२।

२. एक प्रकार का मीठा गन्ना।

बधियाना†—क्रि० स० [हिं० बधिया+ना (प्रत्य०)] बधिया करना। बधिया बनाना।

बधिर—संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें श्रवण शक्ति न हो। जिसमें सुनने की शक्ति न हो। बहरा।

बधिरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रवण शक्ति का अभाव। बहरापन।

बधिरित—वि० [सं०] जिसे बहरा किया या बनाया गया हो [को०]।

बधिरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'बधिरता' [को०]।

बधू—संज्ञा स्त्री० [सं० बधू] दे० 'वधू'।

बधूक—संज्ञा पुं० [सं० बन्धूक] दे० 'बंधूक'।

बधूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० वधूटी] १. पुत्र की स्त्री। पतोहू। २. सुवासिनी। सुहागिन स्त्री। सौभाग्यवती स्त्री। उ०—भई मगन सब गाम बधूटी।—मानस, २।११७। ३. नई आई हुई बहू।

बधूरा—संज्ञा पुं० [हिं० बहु+धूर] अंधड़। बगूला। बवंडर। चक्रवात। उ०—(क) ज्यों बधूरा बाव मध्य मध्य बधूरा बाव। त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है ब्रह्म मध्ये जगत सुभाव।—कबीर (शब्द०)। (ख) चढ़े बघूरे चंग ज्यों ज्ञान ज्यों सोक समाज। करम धरम सुख संपदा, त्यों जानिबे कुराज।—तुलसी (शब्द०)।

बधैया‡[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बधाई'।

बधैया†[2]—वि० [हिं० बधाई] बधाई देनेवाला। बधाईदार। उ०—तब पहिले ही नारायणदास के पास श्री गुसाईं जी को बधैया आयो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ १०१।

बध्य—वि० [सं०] मारने के योग्य। बध के योग्य।

बनक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वणिक्] दे० वणिक्। उ०—बंभन बनंक कायथ्थ संग, पसवान लोग जे रपिक अंग।—पृ० रा०, १४।१२६।

बन—संज्ञा पुं० [सं० वन] १. जंगल। कानन। अरण्य। २. समूह। ३. जल। पानी। उ०—बाँध्यो बननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु वारीश।—तुलसी (शब्द०)। ४. बगीचा। बाग। उ०—वासव वरुण विधि बन ते सोहावनो, दसानन को कानन बसंत को सिगार सो।—तुलसी (शब्द०)। ५. निराने या नींदने की मजदूरी। निरौनी। निंदाई। ६. वह अन्न जो किसान लोग मजदूरों को खेत काटने की मजदूरी के रूप में देते हैं। ७. कपास का पेड़। कपास का पौधा। उ०—सन सूख्यो बीत्यो बनो ऊखो लई उखार। अरी हरी अरहर अजौं धर धरहर जियनार।—बिहारी (शब्द०)। ८. वह भेंट जो किसान लोग अपने जमींदार को किसी उत्सव के उपलक्ष में देते हैं। शादियाना। ९. दे० 'वन'।

बनआलू-संज्ञा पुं० [हिं० बन+आलू] पिंडालू और जमीकंद आदि की जाति का एक प्रकार का पौधा जो नेपाल, सिकिम, बंगाल, बरमा और दक्षिण भारत में होता है। यह प्रायः जंगली होता है और बोया नहीं जाता इसकी जड़ प्रायः जंगली या देहाती लोग अकाल के समय खाते हैं।

बनउर†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'बिनौला'। २. दे० 'ओला'।

बनकंडा—संज्ञा पुं० [हिं० बन+कंडा] वह कंडा जो वन में पशुओं के मल के आपसे आप सूखने से तैयार होता है। अरना कंडा।

बनक(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनना] १. बनावट। सजावट। सज-धज। उ०—द्विजदेव की सौं ऐसी बनक निकाई देखि, राम की दुहाई मन होत है निहाल मम।—द्विजदेव (शब्द०)। २. बाना। वेष। भेस। उ०—अरुन नील पियरे लसत अंकन सुमन समाज। अरी आज रितुराज की बनक बनै ब्रजराज।—स० सप्तक, पृ० ३७५। ३. मित्रता। दोस्ती। उ०—जासों अनबन मोहिं, तासों बनक बनी तुम्हे।—घनानंद पृ० २०६।

बनक[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वन+क (प्रत्य०)] वन की उपज। जंगल की पैदावार। जैसे, गोंद, लकड़ी, शहद आदि।

बनक(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० वर्णक] वर्ण। रंग। उ०—कैसरि कनक कहा. चंपक बनक कहा? दामिनी यों दुरि जात देह की दमक तै।—मति० ग्रं०, पृ० ३०७।

बनककड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+ककड़ी] पापड़े का पेड़।

विशेष—यह सिकिम से लेकर शिमले तक पाया जाता है। इस पौधे से एक प्रकार का गोंद और एक प्रकार का रंग भी निकाला जाता है। इसका गोंद दवा के काम आता है।

बनकचूर—संज्ञा पुं० [हिं० बन+कचूर] एक पौधा। दे० 'कचूर'।

बनकटी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जिससे पहाड़ी लोग टोकरे बनाते हैं।

बनकटी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+काटना] जंगल काटकर उसे आबाद करने का स्वत्व वा अधिकार जो जमींदार या मालिक की ओर से किसानों आदि को मिलता है।

बनकठा†—वि० [हिं० बन+काठ] जंगली लकड़ी।

वन कपास—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+कपास] पटसन की जाति का एक प्रकार का लंबा पौधा।

विशेष—यह बुंदेलखंड, अवध और राजपूताने में अधिकता से होती है। इसमें बहुत अधिक टहनियाँ होती हैं। कहीं कहीं इसमें काँटे भी पाए जाते हैं। इससे सफेद रंग का मजबूत रेशा निकलता है।

वन कपासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+कपास] एक प्रकार का पौधा जो साल के जंगलों में अधिकता से पाया जाता है। इसके रेशों से लकड़ी के गट्ठे बाँधने की रस्सियाँ बनती हैं।

बनकर—संज्ञा पुं० [सं० वनकर] १. एक प्रकार का अस्त्रसंहार। शत्रु के चलाए हुए हथियार को निष्फल करने की युक्ति। २. जंगल में होनेवाले पदार्थों अर्थात् लकड़ी, घास आदि की आमदनी। ३. सूर्य (डिं०)।

वनकल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० बन+कल्ला] एक प्रकार का जंगली पेड़।

बनकस, बनकुस—संज्ञा पुं० [हिं० बन+कुश] एक प्रकार की घास जिसे बनकुस, बँभनी, मोय और बाभर भी कहते हैं। इससे रस्सियाँ बनाई जाती हैं।

बनकोरा—संज्ञा पुं० [देश०] लोनिया का साग। लोनी।

बनखंड—संज्ञा पुं० [सं० वनखण्ड] जंगल का कोई भाग। जंगली प्रदेश। उ०—आगे सड़क रक्षित बनखंड में घुसी।—किन्नर०, पृ० ५१।

बनखंडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+खंड (=टुकड़ा)] बन का कोई भाग। २. छोटा सा वन।

बनखडी[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रसिद्ध महात्मा जो श्रीचंद जी के अनुयायी थे। सक्खर में 'साधुबेला' नामक इनका स्थान प्रसिद्ध है। २. वह जो वन में रहता हो। वन में रहनेवाला। जंगल में रहनेवाला व्यक्ति। उ०—उसी व्यथा से है परिपीड़ित यह बनखंडी आप।—(शब्द०)।

बनखरा—संज्ञा पुं० [हिं० बन+खरा (<संभवतः सं० खण्ड से ?)] वह भूमि जिसमें पिछली फसल में कपास बोई गई हो।

बनखोर—संज्ञा पुं० [देश०] कौर नामक वृक्ष। विशेष दे० 'कौर'।

बनगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक मछली जिसे बाँगुर और बँगुरी भी कहते हैं।

बनगाय—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+गाय] जंगली गाय। नीलगाय। गवय।

बनगाव—संज्ञा पुं० [हिं० बन+फ़ा० गाव, हिं० गौ] १. एक प्रकार का बड़ा हिरन जिसे रोझ भी कहते हैं। २. एक प्रकार का तेंदू वृक्ष।

बनघास—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+घास] जंगली घास। नामरहित घास या तृण। उ०—केहि गिनती महँ गिनती जस बनघास। राम जपत भए तुलसी तुलसीदास।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४।

बनचर—संज्ञा पुं० [सं० वनचर] १. जंगल में रहनेवाले पशु। वन्य पशु। २. वन में रहनेवाला मनुष्य। जंगली आदमी। उ०—राम सकल बनचर तब तोषे।—मानस, २।१३७। ३. जल में रहनेवाले जीव। जैसे, मछली, मगर आदि।

बनचरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली घास जिसकी पत्तियाँ ग्वार की पत्तियों की तरह होती हैं। वरो।

बनचरी[2]—संज्ञा पुं० जंगली पशु।

बनचारी—संज्ञा पुं० [सं० वनचारिन्] १. बन में घूमनेवाला। उ०—हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४२। २. वन में रहनेवाला व्यक्ति। ३. जंगली जानवर। ४. मछली, मगर, घड़ियाल, कछुवा आदि जल मे रहनेवाले जतु।

बनचौंर, बनचौंरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+सं० चमरी] नेपाल के पहाड़ों मे रहनेवाली एक प्रकार की जगली गाय जिसकी पूँछ की चँवर बनाई जाती है। सुरा गाय। सुरभी।

बनज[1]—संज्ञा पुं० [सं० वनज] १. कमल। उ०—जय रघुबंश बनज बन भानू।—तुलसी (शब्द०)। २. जल में होनेवाले पदार्थ। जैसे, शंख, कमल, मछली आदि।

यौ०—बनजबन=कमलवन। कमलसमूह। उ०—नृप समाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३।

बनज[2]—संज्ञा पुं० [सं० वाणिज्य, प्रा० वणिज्ज] वाणिज्य। व्यापार। व्यवसाय। रोजगार।

यौ०—बनज ब्योपार=व्यापार। उ०—हमारे श्री ठाकुर जी बनज ब्योपार करत नाहीं हैं, जो ऐसे लोगन को दिखाइए। दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१६।

बनजना(पु)—क्रि० स० [हिं० बनज+ना (प्रत्य०)] खरीदना। खरीद करना। उ०—कलाकंद तजि बनजी खारी। अइया मनुषहुँ बूझि तुम्हारी।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३२०।

बनजर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बंजर'।

बनजरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनजर+इया (प्रत्य०)] बंजरभूमि। उ०—वह तो न जाने कब से कृष्णार्पण लगी हुई बनजरिया है।—तितली, पृ० ३७।

बनजात—संज्ञा पुं० [सं० वनजात] कमल। उ०—बरन बरन बिकसे बनजाता।—तुलसी (शब्द०)।

बनजारा—संज्ञा पुं० [हिं० वनिज+हारा] [स्त्री० बनजारन, बनजारी] १. वह व्यक्ति जो बैलो पर अन्न लादकर बेचने के लिये एक देश से दूसरे देश को जाता है। टाँड़ा लादनेवाला व्यक्ति। टँडैया। टँड़वरिया। बंजारा। उ०—सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगे बनजारा।—नजीर (शब्द०)। २. बनिया। व्यापारी। सौदागर। उ०—(क) चितउर गढ़ कर इक बनजारा। सिंहलदीप चला बैपारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) हठी मरहठी तामें राख्यो ना मवास कोऊ, छीने हथियार सबै डोलै बनजारे से।—भूषण (शब्द०)।

बनजी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वाणिज्य] १. व्यापार। रोजगार। २. व्यापारी। रोजगार करनेवाला।

बनजोटा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० बनज+ओटा (प्रत्य०)] व्यापारी। उ०—साह गुरु सुकदेव बिराजे चरनदास बनजोटा।—चरण० बानी, पृ० ६६।

बनज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० बन+ज्योत्स्ना] माधवी लता।

बनडरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनड़ा] एक राग। उ०—गावहिं बनडरी बन नहि सूझै देहि सभनि कहँ दीक्षा।—संत० दरिया, पृ० १०६।

बनड़ा(पु)‡[1]—संज्ञा पुं० [देश०] बनरा। बना। दूल्हा। उ०—बनड़ा नूँ सूँपे बनी, हतलेवे मिल हाथ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८।

बनड़ा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] बिलावल राग का एक भेद। यह राग झूमड़ा ताल पर गाया जाता है।

बनड़ा जैत—संज्ञा पुं० [देश०] एक शालक राग जो रूपक ताल पर बजता है।

बनड़ा देवगरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक शालक राग जो एकताले पर बजाया जाता है।

बनत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनना+त (प्रत्य०)] १. रचना। बनावट। २. अनुकूलता। सामंजस्य। मेल। ३. मखमल वा किसी रेशमी कपड़े पर सलमे सितारे की बनी हुई बेल जिसके दोनों ओर हाशिया होता है। जिस बेल के एक ही ओर हाशिया होता है उसे चपरास कहते हैं।

बनता†—संज्ञा स्त्री० [सं० वनिता] दे० 'वनिता'। उ०—बनता हरण चलै बनवासी, लंका वणी लड़ाई।—रघु० रू०, पृ० १६१।

बनताई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+ताई (प्रत्य०)] बन की सघनता। बन की भयंकरता।

बनतुरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन+तुरई] बंबाल।

बनतुलसा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बनतुलसी'। उ०—घाट की सीढी तोड़ फोड़कर बनतुलसा उग आई।—ठंडा०, पृ० २०।

बनतुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं० वन+तुलसी] बबई नाम का पौधा जिसकी पत्ती और मंजरी तुलसी की सी होती है। बर्बरी।

बनद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वनद] बादल। मेघ।

बनदाम—संज्ञा स्त्री० [सं० वनदाम] वनमाला।

बनदेव—संज्ञा पुं० [सं० वनदेव] बन के अधिष्ठाता देवता। उ०—बनदेवी बनदेव उदारा।—मानस, २।६६।

बनदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं० वनदेवी] किसी वन की अधिष्ठात्री देवी।

बनधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] गेरू या और कोई रंगीन मिट्टी। उ०—बका बिदारि चले ब्रज को हरि। सखा संग आनंद करत सब अंग अंग बनधातु चित्र करि।—सूर (शब्द०)।

बनना—क्रि० अ० [सं० वर्णन, प्रा० वण्णन (=चित्रित होना, रचा जाना)] १. सामग्री की उचित योजना द्वारा प्रस्तुत होना। तैयार होना। रचा जाना। जैसे, सड़क बनना, मकान बनना, संदूक बनना।

मुहा०—बना रहना = (१) जीता रहना। संसार में जीवित रहना। जैसे,—ईश्वर करे यह बालक बना रहे। (२) उपस्थित रहना। मौजूद रहना। ठहरा रहना। जैसे,—यह तो आपका घर ही है, जबतक चाहें आप बने रहें।

२. किसी पदार्थ का ऐसे रूप मे आना जिसमें वह व्यवहार में आ सके। काम में आने योग्य होना। जसे,—रसोई बनना, रोटी बनना। ३. ठीक दशा या रूप में आना। जैसा चाहिए वैसा होना। जैसे, अनाज बनना, हजामत बनना। ४. किसी एक पदार्थ का रूप परिवर्तित करके दूसरा पदार्थ हो जाना। फेरफार या और वस्तुओं के मेल से एक वस्तु का दूसरी वस्तु के रूप में हो जाना। जैसे, चीनी से शर्बत बनना। ५. किसी दूसरे प्रकार का भाव या संबंध रखनेवाला हो जाना। जैसे, शत्रु का मित्र बनना। ६. कोई विशेष पद, मर्यादा या अधिकार प्राप्त करना। जैसे अध्यक्ष बनना, मंत्री बनना, निरीक्षक बनना। ७ अच्छी या उन्नत दशा में पहुँचना। धनीमानी हो जाना। जैसे, वे देखते देखते बन गए। ८. वसूल होना। प्राप्त होना। मिलना। जैसे,—अब इस आलमारी के पाँच रुपए बन जायँगे। ९. समाप्त होना। पूरा होना। जैसे,—अब यह तसवीर बन गई। १०. आविष्कार होना। ईजाद होना। निकलना। जैसे,—आजकल कई नई तरह के टाइपराइटर बने हैं। ११. मरम्मत होना। दुरुस्त होना। जैसे,—उनके यहाँ घड़ियाँ भी बनती हैं और बाइसिकलें भी। १२. संभव होना। हो सकना। जैसे,—जिस तरह बने, यह काम आज ही कर डालो। उ०—बनै न बरनत बनी बराता।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—प्राणों पर या जान पर आ बनना = ऐसा संकट या कठिनता पड़ना जिसमें प्राण जाने का भय हो।

१३ आपस में निभना। पटना। मित्रभाव होना। जैसे—आजकल उन लोगों में खूब बनती है। १४. अच्छा, सुंदर या स्वादिष्ट होना। जैसे—रँगने से यह मकान बन गया। १५. सुयोग मिलना। सुअवसर मिलना। जैसे—जब दो आदमियों में लड़ाई होती है, तब तीसरे की ही बनती है।

संयो० क्रि०—आना।—पड़ना।

१६. स्वरूप धारण करना। जैसे,—थिएटर में वह बहुत अच्छा अफीमची बनता है। १७. मूर्ख ठहरना। उपहासास्पद होना। जैसे,—आज तो तुम खूब बने। १८. अपने आपको अधिक योग्य, गंभीर अथवा उच्च प्रमाणित करना। महत्व की ऐसी मुद्रा धारण करना जो वास्तविक न हो। जैसे,—वह छोकरा हम लोगो के सामने भी बनता है।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—बनकर = अच्छी तरह। भली भाँति। पूर्ण रूप से। उ०—मनमोहन सों बिछुरे इतही बनिकै न अबै दिन द्वै गए हैं। सखि वे हम वे तुम वेई बनो पै कछू के कछू मन ह्वै गए हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

१६. खूब सिंगार करना। सजना। सजावट करना।

यौ०—बनना सँवरना, बनना ठनना, = खूब अच्छी तरह अपनी सजावट करना। खूब शृंगार करना।

बननि㉁—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनना] १. बनावट। सजावट। २. बनाव सिंगार।

बननिधि—संज्ञा पुं० [सं० वननिधि] समुद्र। उ०—बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।—मानस, ६।५।

बननीबू—संज्ञा पुं० [हिं० बन + नीबू] एक प्रकार का सदाबहार क्षुप।

विशेष—यह क्षुप प्रायः सारे भारत मे और हिमालय मे ७००० फुट तक की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी टहनियाँ दतुग्रन के काम में आती हैं और इसके फल खाए जाते हैं।

बनपट㉁—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षों की छाल आदि से बनाया हुआ कपड़ा।

बनपति—संज्ञा पुं० [सं० वनपति] सिंह। शेर।

बनपथ—संज्ञा पुं० [सं० वनपथ] १. समुद्र। २. वह रास्ता जिसमें जल बहुत पड़ता है। ३. वह रास्ता जिसमें जंगल बहुत पड़ता हो।

बनपाट—संज्ञा सं० [हिं० बन + पाट] जंगली सन। जंगली पटुआ।

बनपाती㉁—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति या हिं० बन+पत्ती] वनस्पति।

बनपाल—संज्ञा पुं० [सं० वनपाल] वन या बाग का रक्षक। माली। बाग का रखवाला।

बनपिंडालू—संज्ञा पु० [हिं० बन + पिंडालू] एक जंगली वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष बहुत बड़ा नही होता। इसकी लकड़ी जर्दी लिए भूरे रग की और कंघी, कलमदान या नक्काशीदार चीजें बनाने के काम आती है। यह पेड़ मध्य देश, बंगाल और मद्रास मे होता है।

बनप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० वनप्रिय] कोयल। कोकिल।

बनप्सा†—संज्ञा पुं० [बनफ्शह्] दे० 'बनफशा'।

बनफती†—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति, प्रा० वणफ्फइ] दे० 'वनस्पति'। उ०—सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरहिं सँवरि मालती।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६०।

बनफल—संज्ञा पुं० [हिं० बन + फल] जगली मेवा।

बनफशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बनफ्शह्] दे० 'बनफ्शा'। उ०—नील नयन में फँसा रहा मन, फूल बनफशा जो चिर सुंदर।—मधुज्वाल, पृ० २६।

बनफशई—वि० [फ़ा० बनफ्शह् + ई] बनफशे के रंग का।

बनफशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बनफ़्शह्] एक प्रकार की प्रसिद्ध वनस्पति।

विशेष—यह वनस्पति नेपाल, काश्मीर और हिमालय पर्वत के दूसरे स्थानों में ५००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इसका पौधा बहुत छोटा होता है जिसमें बहुत पतली और छोटी शाखाएँ निकलती हैं जिनके सिरे पर बैगनी या नीले रंग के खुशबूदार फूल होते हैं। इसकी पत्तियाँ पनार की पत्तियों से कुछ मिलती जुलती हैं। इसकी जड़, फूल और पत्तियाँ तीनों ही ओषधि के काम आते हैं। साधारणतः फूल और पत्तियों का व्यवहार जुकाम और ज्वर आदि में होता है और जड़ दस्तावर दवाओं के साथ मिलाकर दी जाती है। फूलों और जड़ का व्यवहार वमन कराने के लिये भी होता है और खाली फूल पेशाब लानेवाले माने जाते हैं।

बनबकरा—संज्ञा पुं० [हिं० बन + बकरा] एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—काश्मीर और भूटान आदि ठढे देशों में यह पक्षी पाया जाता है। यह रंग में भूरा और लंबाई में लगभग एक फुट के होता है। यह घास और पत्तियों से भूमि पर या नीची झाड़ियों में घोंसला बनाता है। अप्रैल से जून तक इसके अंडे देने का समय है। यह एक बार में तीन चार अंडे देता है।

बनबह्नि㉁—संज्ञा स्त्री० [सं० वनवह्नि] दावानल। वनाग्नि। उ०—उठिहै निसि बनवह्नि प्रचान। पानी लौं हरि करिहैं पान।—नंद० ग्रं०, पृ० २०२।

बनबरै—संज्ञा पुं० [हिं०] जंगली कुसुम। खारेजा।

बनबारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन + बारी] १. वनकन्या। वन में रहनेवाली बालिका। २. उद्यान। पुष्पवाटिका।

बनबास—संज्ञा पुं० [सं० वनवास] १. वन में बसने की क्रिया या अवस्था। २. प्राचीन काल का देश निकाले का दंड। जलावतनी।

बनबासी—संज्ञा पुं० [सं० वनवासिन्] [स्त्री० वनवासिनी] १. वन में रहनेवाला। वह जो वन मे बसे। २. जगली।

बनबाहन㉁—संज्ञा पुं० [सं० वनवाहन] जलयान। नाव। नौका। उ०—जब पाहन भे बनबाहन से उतरे बनरा जय राम रढ़ै।—तुलसी (शब्द०)।

बनबिलार—संज्ञा पुं० [सं० वन + विडाल] दे० 'बनबिलाव'। उ०—तब वे बूढ़े बनबिलारों के समान घूरते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६४।

बनबिलाव—संज्ञा पुं० [हिं० बन + बिलाव (= बिल्ली)] उत्तर भारत, बंगाल और उड़ीसा में मिलनेवाला बिल्ली की जाति का और उससे बहुत ही मिलता जुलता एक जंगली जतु जिसे लोग प्रायः बिल्ली ही मानते हैं।

विशेष—यह बिल्ली से कुछ बड़ा होता है और इसके हाथ पैर कुछ छोटे तथा दृढ़ होते हैं। इसका रंग मटमैला भूरा होता है और इसके शरीर पर काले लंबे दाग और पूँछ पर काले छल्ले होते हैं। यह प्रायः दलदलों में रहता है और वहाँ मछली पकड़कर खाता है। यह कुछ अधिक भीषण होता है और कभी कभी कुत्तों या बछड़ों पर भी आक्रमण कर बैठता है।

बनबेला—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का पुष्प। कुटज। कोरैया।

कुरैया। उ०—बनबेले ने फूलकर बाग के बेलों को सजाया।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० १२।

बनमानुष—संज्ञा पुं० [हिं० बन + मानुष] १. बंदरों से कुछ उन्नत और मनुष्य से मिलता जुलता कोई जंगली जंतु। जैसे गोरिल्ला, चिंपैंजी, आदि। २. बिल्कुल जंगली आदमी (परिहास)।

बनमाल—संज्ञा स्त्री० [सं० वनमाल] दे० 'बनमाला'। उ०—हैं बनमाल हिए लगिए अरु ह्वैं मुरली अधरा रस पीवैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १३९।

बनमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० वनमाला] तुलसी, कुंद, मंदार, परजाता और कमल इन पाँच चीजों की बनी हुई माला।

विशेष—ऐसी माला का वर्णन हमारे यहाँ के प्राचीन साहित्य में विष्णु, कृष्ण, राम आदि देवताओं के संबंध में बहुत आता है। कहा है, यह माला गले से पैरों तक लंबी होनी चाहिए।

बनमाली—संज्ञा पुं० [सं० वनमालिन्] १. वनमाला धारण करनेवाला। २. कृष्ण। ३. विष्णु। नारायण। ४. मेघ। बादल। उ०—बनमाली ब्रज पर बरसत बनमाली बनमाली दूर दुख केशव कैसे सहौं।—केशव (शब्द०)। ५. वन से घिरा हुआ देश। जिस प्रदेश में घने वन हों। उ०—बनमाली ब्रज पर बरसत बनमाली बनमाली दूर दुख केशव कैसे सहौं।—केशव (शब्द०)।

बनमुर्गा—संज्ञा पुं० [हिं० बन + फ़ा० मुर्ग़ा] जंगली मुरगा।

बनमुर्गिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन + फा० मुर्ग़ी + हिं० इया (प्रत्य०)] हिमालय की तराई में रहनेवाला एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—इस पक्षी का गला और सीना सफेद सारा शरीर आसमानी रंग का और चोंच जंगली रंग की होती है। यह पक्षी भूमि पर भी चलता और पानी में भी तैर सकता है। इसका मांस खाया जाता है।

बनमूँग—संज्ञा पुं० [सं० वनमुद्ग] मुँगवन या मोठ नाम का कदन्न।

बनर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—तिमि विभूति अरु बनर कह्यो युग तैसहि बन कर बीरा। कामरूप मोहन आवरणहु छउँ काम रुचि बीरा।—रघुराज (शब्द०)।

बनरखता—संज्ञा पुं० [हिं० बंदर + खत < सं० क्षत] बंदर का घाव या क्षत जिसे वे बराबर कुरेदते रहते हैं और इससे वह ठीक नहीं हो पाता।

बनरखना—संज्ञा पुं० [हिं० बन + रखना] वन का रक्षक। बनरखा।

बनरखा—संज्ञा पुं० [हिं० बन + रखना (= रक्षा करना)] १. जंगल की रक्षा करनेवाला। वन का रक्षक। २. बहेलियों तथा जंगल में रहनेवालों की एक जाति।

विशेष—इस जाति के लोग प्रायः राजा महाराजाओं को शिकार के संबंध में सूचनाएँ देते हैं। और शिकार के समय जंगली जानवरों को घेरकर सामने लाते हैं और उनका शिकार कराते हैं।

बनरा(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० बनरी, बनरिया] दे० 'बंदर'। उ०—जब पाहन भे बनबाहन से उतरे बनरा जय राम रढै।—तुलसी (शब्द०)।

बनरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बनना] १. वर। दूल्हा। २. विवाह समय का एक प्रकार का मंगलगीत। उ०—गावैं विबुध बरन कहि बनरा दुलहिन फेर।—रघुनाथदास (शब्द०)।

बनराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वनराजि, प्रा० वणराइ] दे० 'वनराजि'। उ०—दादू सबही गुरु किए, पसु पंखी बनराइ। तीनि लोक गुण पंचसौं, सबही माँहि खुदाइ।—दादू०, पृ० ३१।

बनराज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वनराज] १. वन का राजा। सिंह। शेर। २. बहुत बड़ा पेड़।

बनराजि, बनराजी—संज्ञा स्त्री० [सं० वनराजि] वृक्षसमूह। वृक्षावली। तरुपंक्ति। उ०—कुसुमित बनराजी अति राजी।—नंद० ग्रं०, पृ० २२७। (ख) झरना दल अंचल पसार कर बनराजी माँगती है।—लहर, पृ० ७६।

बनराय—संज्ञा पुं० [सं० वनराज, प्रा० वणराय] १. दे० 'बनराज'। २. दे० 'वनराजी'। उ०—सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय। सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २।

बनरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनरा का स्त्री०] नववधू। नई ब्याही हुई वधू। उ०—चली लगु सिय बनरी घर आई। परिछन करि सब सासु उतारी पुनि पुनि लेत बलाई।—रघुराज (शब्द०)।

बनरीठा—संज्ञा पुं० [हिं० बन + रीठा] एक प्रकार का जंगली रीठा जिसकी फलियों से लोग सिर के बाल साफ करते हैं। रुना।

विशेष—इसका पेड़ कँटीला होता है और सारे भारत में पाया जाता है। इसके पत्ते खट्टे होते हैं, इसलिये कहीं कहीं लोग उसकी तरकारी बनाकर भी खाते हैं।

बनरीहा—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन + रीहा (रीस) या सं० रुह (= पौधा)] एक प्रकार की घास जिसकी छाल से सुतली या सूत बनाया जाता है।

विशेष—यह घास खसिया पहाड़ी पर बहुतायत से होती है। इसे रीसा या बनकटरा भी कहते हैं। कुछ लोग इसी को बनरीठा भी कहते हैं परंतु वह इससे भिन्न है।

बनरुह—संज्ञा पुं० [सं० वनरुह] १. जंगल में आपसे आप होनेवाला वृक्ष या पौधा। जंगली पेड़। २. कमल। उ०—रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित फेरत चाप विशिष बनरुह कर।—तुलसी (शब्द०)।

बनरुहिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनरुह + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार की कपास।

बनवध—संज्ञा पुं० [हिं० बनना] एक प्राचीन प्रांत।

विशेष—इस प्रांत में जौनपुर, आजमगढ़, बनारस और अवध का पश्चिमी भाग संमिलित था। कुछ लोग इसका विस्तार बैसवाड़े से विजयपुर तक और गोरखपुर से भोजपुर तक भी मानते हैं। इस प्रांत के बारह राजाओं अर्थात् (१) विजयपुर के गहरवार, (२) बछगोती के खानजादे, (३) बैसवाड़े के बिसेन, (४) गोरखपुर के श्रीनेत, (५) हरदी के हैहयवंशी। (६) डुमराँव के उजैनी, (७) त्योरी भगवानपुर के राजकुमार, (८) अँगोरी के चंदेल, (९) सरवर के कलहस, (१०) नगर के गौतम, (११) कुड़वार के हिंदू बछगोती और (१२) मझौली के बिसेन ने मिलकर एक संघ बनाया था और निश्चय किया था कि हमलोग सदा परस्पर सहायता करते रहेंगे। ये लोग 'बारहो बनवध' कहलाते थे।

बनवना‡Ⓟ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बनाना'। उ०—बनवत पहिनत पहिनावत अतिसय प्रसन्न मन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४२।

बनवर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिनौला'।

बनवसनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बन + वसन] वृक्षों की छाल का बना हुआ कपड़ा।

बनवा¹—संज्ञा पुं० [सं० बन (=जल)+हिं० वा (प्रत्य०)] पनडुब्बी नामक जलपक्षी।

बनवा²—संज्ञा पुं० [सं० बन (=जंगल)] एक प्रकार का बछनाग।

बनवाना—क्रि० स० [हिं० बनाना का प्रे० रूप] दूसरे को बनाने में प्रवृत्त करना। बनाने का काम दूसरे से कराना। उ०—कोऊ रसोई बनवत अरु कोऊ बनवावत।—प्रेमघन०, पृ० २७।

बनवारी—संज्ञा पुं० [सं० बनमाली] श्रीकृष्ण का एक नाम।

बनवासी—संज्ञा पुं० [सं० वनवासिन्] वन का निवासी। जंगल में रहनेवाला।

बनवैया—संज्ञा पुं० [हिं० बनाना + वैया (प्रत्य०)] बनानेवाला।

बनसपति, बनसपती—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति] दे० 'वनस्पति'। उ०—फरहिं बनसपति हिए हुलासू।—जायसी ग्रं०, पृ० १५५।

बनसार—संज्ञा पुं० [सं० वन (=जल) + सार ?] जहाज पर चढ़ने और उतरने का स्थान। बगसार। (लश०)।

बनसी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'वंशी'।

बनसी²—संज्ञा स्त्री० [सं० बडिश] मछली फँसाने की कँटिया। दे० 'बंसी'। उ०—इक धीवर बुद्धि उपाई। बनसी का साज बनाई।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १२९।

बनस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्थली] जंगल का कोई भाग। वनखंड।

बनस्पति—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति] दे० 'वनस्पति'।

बनस्पति विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति विद्या] दे० 'वनस्पति शास्त्र'।

बनहटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी नाव जो डाँड़ से खेई जाती है।

बनहरदी—संज्ञा स्त्री० [सं० वनहरिद्रा] दारु हल्दी। दारु हरिद्रा।

बनांतर—संज्ञा पुं० [सं० वनान्तर] दूसरा वन। दूसरा भाग। उ०—बिहरत अति आसक्त जु भए। गोधन निकसि बनांतर गए।—नंद० ग्रं०, पृ० २८७।

बना¹—संज्ञा पुं० [हिं० बनना] [स्त्री० बनी] बर। दूल्हा। उ०—बानी सी बानी सुनी, बानी बारह देह। बनी बनी सी पै बनी, नजर बना की नेह।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५६।

बना²—संज्ञा पुं० [?] एक छंद का नाम जिसमें १०, ८ और १४ के विश्राम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसका दूसरा और प्रसिद्ध नाम 'दंडकला' है।

बनाइⓅ—क्रि० वि० [हिं० बनाकर (=अच्छी तरह)] १. बिल्कुल। निपट। अत्यंत। नितांत। उ०—(क) देखि घोर तप शक्र उर कंपित भयो बनाइ। मनमथ सकल समाज जुत आदर कीन्ह बुलाइ।—(शब्द०)। (ख) हरि तासों कियो युद्ध बनाई। सब सुर मन मे गए डराई।—सूर (शब्द०)। २. भली भाँति। अच्छी तरह। उ०—सुर गुरु महिसुर संत की सेवा करह बनाइ।—(शब्द०)।

बनाउⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बनाव'। उ०—(क) सात दिवस भए साजत सकल बनाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०। (ख) मो मन सुक तौ उड़ि गयो, अब क्यौं हूँ न परयाय। बसि मोहन बनमाल मैं रहो बनाउ बनाय।—मति० ग्रं०, पृ० ३५४।

बनाउरिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० बाणावलि] दे० 'बाणावली'।

बनागिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० वनाग्नि, प्रा० वणग्गि] दे० 'बनाग्नि'।

बनाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं० वनाग्नि] दावानल। दवारि।

बनात—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाना] एक प्रकार का बढ़िया ऊनी कपड़ा जो कई रंगो का होता है। उ०—लाल बनात का कनटोप दिए ⋯ उन्हीं के पीछे खड़ा था।—श्यामा०, पृ० १४५।

बनाती—वि० [हिं० बनात + ई (प्रत्य०)] १. बनात संबंधी। २. बनात का बना हुआ।

बनानⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० बनाना] दे० 'बनाव'। उ०—बहु बनान वे नाहर गढ़े।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १४७।

बनाना—क्रि० स० [हिं० बनना का सक० रूप] रूप या अस्तित्व देना। सृष्टि करना। प्रस्तुत करना। रचना। तैयार करना। जैसे,—(क) यह सारी सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई है। (ख) अभी हाल में कुछ नए कानून बनाए गए हैं। (ग) वे आजकल एक महाकाव्य बना रहे हैं। (घ) इस सड़क पर एक अस्पताल बन रहा है।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

यौ०—बनाना बिगाड़ना।

मुहा०—बनाकर = खूब अच्छी तरह। भली भाँति। पूर्ण रूप से।

जैसे,—आज यह लड़का, खूब बनाकर पीटा गया है। बनाए नहीं बनना=सँवारे न सँवरना। उ०—कुछ बनाए नही बनी अबतक।—चुभते०, पृ० २। बनाए रखना=जीवित रखना। जीता रहने देना। जैसे,—ईश्वर आपको बनाए रखें। (आशीर्वाद)।

२. किसी पदार्थ को काट छाँटकर, गढ़कर, सँवारकर, पकाकर या और किसी प्रकार तैयार करना। ऐसे रूप में लाना जिसमें वह व्यवहार में आ सके। रूप परिवर्तित करके काम में आने लायक करना। जैसे, कलम बनाना, भोजन बनाना, कुरता बनाना। ३. ठीक दशा या रूप में लाना। जैसा होना चाहिए वैसा करना। जैसे,—अनाज बनाना, हजामत बनाना, बाल बनाना (=कंघी से सवाँरना), तरकारी बनाना (=छील या काटकर ठीक करना या पकाना)। ४. एक पदार्थ के रूप को बदलकर दूसरे पदार्थ तैयार करना। जैसे, गुड़ से चीनी बनाना, मक्खन से घी बनाना,। ५. दूसरे प्रकार का भाव या संबंध रखनेवाला कर देना। जैसे, दुश्मन को दोस्त बनाना, सबंधी बनाना। ६. कोई विशेष पद, मर्यादा या शक्ति प्रदान करना। जैसे, सभापति बनाना, मैनेजर बनाना, तहसीलदार बनाना, नेता बनाना। ७. अच्छी या उन्नत दशा मे पहुँचाना। जैसे,—उन्होने अपने आपको कुछ बना लिया। ८. उपार्जित करना। वसूल करना। प्राप्त करना। जैसे,—उसने बहुत रुपया बनाया। ९. समाप्त करना। पूरा करना। जैसे,—अभी तस्वीर नही बनाई। १०. आविष्कार करना। ईजाद करना। निकालना। जैसे,—उन्होंने एक नई तरह की बाइसिकिल बनाई है जो पानी पर भी चलती है और जमीन पर भी। ११. मरम्मत करना। दोष दूर करके ठीक करना। जैसे, घड़ी बनाना, बाइसिकिल बनाना। १२. मूर्ख ठहराना। उपाहासास्पद करना। जैसे,—आज वहाँ सब लोगो ने मिलकर इन्हें खूब बनाया।

बनाफतिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति, प्रा० वणप्फइ] दे० 'वनस्पति'।

बनाफर—संज्ञा पुं० [सं० वन्यफल ?] क्षत्रियों की एक जाति। (आल्हा ऊदल इसी जाति के क्षत्रिय थे।)

बनावतⓅ, **बनावनत**Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० बनना+अवनना] विवाह करने के विचार से किसी लड़के और लड़की की जन्मपत्रियों का मिलान। इसे 'बनताबनत' भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—बनना।—मिलना।

बनाम—अव्य० [फ़ा०] नाम पर। नाम से। किसी के प्रति।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा अदालती कारवाइयों में वादी और प्रतिवादी के नामों के बीच में होता है। यह वादी के नाम के पीछे और प्रतिवादी के नाम के पहले रखा जाता है। जैसे, रामनाथ (वादी) बनाम हरदेव (प्रतिवादी)।

बनाय†[1]—क्रि० वि० [हिं० बनाकर (=अच्छी तरह)] १. बिलकुल। पूर्णतया। उ०—पवन सुवन लंकेश हू खोजत खोजत जाय। जामवंत कहँ लखत भे धार जर्जरित बनाय।—रघुराज (शब्द०)। २. अच्छी तरह से। उ०—लाग्यो पुनि सेवा करन नृप सेवन की भाय। कनक थार सातहुन के धोए चरन बनाय।—रघुनाथ (शब्द०)।

बनायⓅ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बनाव] बनावट। शृंगार। उ०—आई झूलन सबै ब्रजवधु सबै एक बनाय की।—नंद०, ग्रं०, पृ० ३७५।

बनार—संज्ञा पुं० [?] १. चाकसू नामक ओषधि का वृक्ष। २. कासमर्द। काला कसौंदा। ३. एक प्राचीन राज्य जो वर्तमान काशी की उत्तर सीमा पर था। कहते हैं, 'बनारस' का नाम इसी राज्य के नाम पर पड़ा।

बनारस—संज्ञा पुं० [सं० वाराणसी] काशी। वाराणसी।

बनारसी[1]—वि० [हिं० बनारस+ई (प्रत्य०)] १. काशी संबंधी। काशी का। जैसे, बनारसी दुपट्टा, बनारसी जरी। २. काशी-निवासी। बनारस का रहनेवाला।

बनारसीⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वाराणसी, प्रा० वाणारसि] दे० 'वाराणसी'। उ०—जो गुरु बसै बनारसी सिष्य समुंदर तीर। एक पलक बिसरै नही जो गुन होय सरीर।—कबीर सा० भा० १, पृ० २।

बनारी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रणाली] एक बालिश्त लंबी और छह अंगुल चौड़ी लकड़ी जो कोल्हू की खुदी हुई कमर में कुछ नीचे लगी रहती है और जिससे नीचे नाद में रस गिरता है।

बनाल, बनाला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बंदाल'।

बनाव[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बनना+आव (प्रत्य०)] १. बनावट। रचना। २. शृंगार। सजावट।

यौ०—बनाव चुनाव, बनाव सिंगार=शृंगाररचना। साज करके सज्जा। सजना सँवरना। उ०—आज तो ऐसा बनाव चुनाव आई हो कि बस कुछ न पूछो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३३४। ३. तरकीब। युक्ति। तदबीर। उ०—जो नहिं जाऊँ रहइ पछितावा। करत बिचार न बनइ बनावा।—तुलसी (शब्द०)।

बनावⓅ†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बनना] बनने या पटने की स्थिति। मेल। उ०—सखि मोरा तोरा बनेला बनाव बहुरि नहिं आइब हे।—संत० दरिया, पृ० १७०।

बनावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनाना+वट (प्रत्य०)] १. बनने या बनाने का भाव। रचना। गढ़न। जैसे,—इन दोनो कुरसियों की बनावट में बहुत अंतर है। २. ऊपरी दिखावा। आडंबर। जैसे,—जिन आदमियों में बनावट होती है वे शीघ्र ही लोगों की निगाह से गिर जाते हैं।

बनावटी—वि० [हिं० बनावट] बनाया हुआ। नकली। कृत्रिम। जैसे, बनावटी हीरा।

बनावन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बनाना] कंकड़ियाँ, मिट्टी, छिलके और

दूसरे फालतू पदार्थ जो अन्न आदि को साफ करने पर निकलें। जैसे,—इस गेहूँ में बनावन कम निकलेगा।

बनावन[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बनवध'।

बनावनहारा—संज्ञा पुं० [हिं० बनाना + हारा (प्रत्य०)] १. बनानेवाला। वह जिसने बनाया हो। रचयिता। २. सुधार करनेवाला। वह जो बिगड़े हुए को बनाए।

बनावनाⓅ—क्रि० स० [हिं० बनाव + ना (प्रत्य०)] दे० 'बनाना'। उ०—कोक विशाल मृणाल के केयूर वलय बनावते।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११३।

बनावरिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० बाणावलि] दे० 'बाणावली'। उ०—बारहि पार बनावरि साँधी। जासों हेर लाग विष बाँधी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १८६।

बनास—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजपूताने की एक नदी का नाम जो आरावली पर्वत से निकलकर चंबल में मिलती है।

बनासपती—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति] १. जड़ी, बूटी, पत्र, पुष्प इत्यादि। पौधों, पेड़ों वा लताओं के पंचाग में से कोई अंग। फल, फूल, पत्ता आदि। उ०—आनि बनासपती बन ते सब तीरथ के जल कुंभ भरे हैं। आम को मौर धरौ तेहि ऊपर केसर सों लिखि पीत करे हैं।—हनुमान (शब्द०)। २. घास, साग, पात इत्यादि।

बनासपाती—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति] घास, साग पात आदि वनस्पतियाँ। दे० 'बनासपती'। उ०—ऐसी परीं नरम हरम पातसाहन की, नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं।—भूषण (शब्द०)।

बनिⓅ[1]—वि० [हिं० बनना] पूर्ण। समस्त। सब। उ०—अमित काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी।—तुलसी (शब्द०)।

बनि[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह मजदूरी जो अन्न आदि के रूप में दी जाय। बनी। उ०—खेती, बनि, विद्या, बनिज, सेवा सिलिपि सुकाज। तुलसी सुरतरु सरिस सब सुफल राम के राज।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११८।

बनिक—संज्ञा पुं० [सं० वणिक्] दे० 'वणिक'। उ०—बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहु कुबेर ते।—मानस, ७।२८।

बनिज—संज्ञा पुं० [सं० वाणिज्य] १. व्यापार। वस्तुओं का क्रय-विक्रय। रोजगार। उ०—बनिजा कयल लाभ नहि पाओल अलप निकट भेल थोर।—विद्यापति, पृ० ४०३। २. व्यापार की वस्तु। सौदा। उ०—(क) कलियुग बर बिपुल बनिज नाम नगर खपत।—तुलसी (शब्द०)। ३. मालदार मुसाफिर। धनी यात्री। (ठग)।

बनिजनाⓅ†—क्रि० स० [सं० वाणिज्य, हिं० बनिज+ना (प्रत्य०)] १. व्यापार करना। लेन देन करना। खरीदना और बेचना उ०—(क) जो जस बनिजए लाभ तस पावए सुपुरुस मरहि गमार।—विद्यापति, ४०३। (ख) यह बनिजति वृषभान सुता तुम हम सो बैर बढ़ावति।—सूर (शब्द०)। (ग) इनपर घर उत है घरा बनिजन आए हाट। करम करीना बेचि कै उठि कै चालो बाट।—कबीर (शब्द०)। २. मोल ले लेना। अपने अधीन कर लेना। उ०—(क) गातन ही दिखराइ बटोहिन बातन ही बनिजै अनिजारी।—देव (शब्द०)। (ख) थापन पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर। कबीर हीरा बनिजिया, मानसरोवर तीर।—कबीर० सा० स०, पृ० ५।

बनिजार, बनिजारा—संज्ञा पुं० [हिं०] सौदागर। दे० 'बनजारा' या 'बंजारा'। उ०—(क) हमें जिवे अँगिरल जम बनिजार। विद्यापति०, ३५६। (ख) हहु बनिजार त बनिज बेसाहहु। भरि बैपार लेहु जो चाहहु।—जायसी ग्रं०, पृ० २६७।

बनिजारिन, बनिजारीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बंजारा] बनजारा जाति की स्त्री। उ०—(क) लीन्हे फिरति रूप त्रिभुवन को ए नोखी बनिजारिन।—सूर (शब्द०) (ख) गातन ही दिखराय बटोहिन, बातन ही बनिजै बनिजारी।—देव (शब्द०)।

बनितⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनना] बानक। वेश। साज बाज। उ०—चढ़ि यदुनंदन बनिय बनाय कै। साजि बरात चलै यादव चाय कै।—सूर (शब्द)।

बनिता—संज्ञा स्त्री० [सं० वनिता] १. स्त्री। औरत। २. भार्या पत्नी।

बनियऊँ†—वि० [हिं० बनिया + ऊ (प्रत्य०)] वणिक संबंधी। बनियों की तरह। वणिक के समान। उ०—उपदेश करने के लिये और बनियऊँ भाँव भाँव दिखलाने के लिये बनाया है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६।

बनिया—संज्ञा पुं० [सं० वणिक] [स्त्री० बनियाइन] १. व्यापार करनेवाला व्यक्ति। व्यापारी। वैश्य। २. आटा, दाल, चावल आदि बेचनेवाला मोदी।

बनियाइन—संज्ञा स्त्री० [अं० बेनियन] जुर्राबी बुनावट की कुरती या बंडी जो शरीर से चिपकी रहती है। गंजी।

बनिस्बत—अव्य० [फ़ा०] अपेक्षा। मुकाबले में। जैसे,—उस कपड़े की बनिस्बत यह कपड़ा कहीं अच्छा है।

बनिहार—संज्ञा पुं० [हिं० बन + हार (प्रत्य०) अथवा हिं० बन्नी] वह आदमी जो कुछ वेतन अथवा उपज का अंश देने के वादे पर जमीन जोतने, बोने, फसल आदि काटने और खेत की रखवाली करने के लिये रखा जाय।

बनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वनी] १. वनस्थली। वन का एक टुकड़ा। २. वाटिका। बाग। जैसे, अशोक वनी। उ०—अति चंचल जहँ चलदलै बिधवा बनी न नारि। मन मोह्यो ऋषिराज को अद्भुत नगर निहारि।—केशव (शब्द०)।

बनी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'बना' का स्त्री लिं० या सं० वनिता, प्रा० बनिआ, हिं० बनी] १. नववधू। दुलहिन। २. स्त्री। नायिका। उ०—अँगिया की तनी खुलि जात घनी सु बनी फिरि बाँधति है कसिकै।—देव (शब्द०)।

बनी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बन] दक्षिण देश में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की कपास।

वनी४—संज्ञा पुं० [सं० वणिक्] वनिया। उ०—वनी को जैसो मोल है।—घनानंद (शब्द०)।

वनीनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० वनी + ईनी (प्रत्य०)] वैश्य जाति की स्त्री। वनिए की स्त्री। उ०—नव जोवनी की जोवनी की जोति जीति रही, कैंधी वनी नीकी वनीनी की छवि छाती में।—देव (शब्द०)।

वनीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वानीर] वेत।

वनूख(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० बन्धूक] दे० 'बंधूक'। उ०—सुनत वचन वे पषर सोहाए। ऊव, विपूख वनूख सुखाए।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २५४।

बनेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० वन + सं० यष्टि] वह लंबी लाठी जिसके दोनो सिरो पर गोल लट्टू लगे रहते हैं। इसका व्यवहार पटेबाजी के अभ्यास और खेलों आदि में होता है।

यौ०—पटा बनेठो।

बनेला —संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम का कीडा।

वनैत(पु)—वि० [हिं०] वानैत। तीरंदाज। उ०—बदर बनैत चहूँ दिस धाए।—नंद० ग्रं०, पृ० १६६।

वनैला—वि० [हिं० बन + ऐला (प्रत्य०)] जंगली। वन्य। जैसे, बनैला सूअर।

वनोक†—संज्ञा पुं० [सं० वनौकस्] वनौकस। वंदर। उ०—नाचै लाज निवार नित बाँका छाए वनोक।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६०।

वनोवस्त†—संज्ञा पुं० [फ़ा० वंदोवस्त] दे० 'वंदोबस्त'। उ०—थोडा खर्च रो बनोवस्त कर दियो होतो।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ५७।

वनोवास(पु)†—संज्ञा पु० [सं० वनवास] दे० 'वनवास'। उ०—धनुष भग के और राम के वनोवास के।—अपरा, पृ० १६६।

वनौकस—वि० [सं० वनौकस्] वनवासी। जंगल निवासी। उ०—निरखि बनौकस प्रमुदित भए।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।

वनौट—संज्ञा स्त्री० [हिं० वनावट] वनावट। आडंबर। उ०—उस अदा मे अपने शहर के माशूको की तरह वनौट का नाम न था।—सैर०, पृ० १३१।

वनौटा—वि० [हिं० वनावट] बनाया हुआ। प्रतिपालित। निर्मित। उ०—हमरै साहु रमाइया मोटा, हम ताके आहि बनौटा।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ८८८।

वनौटी—वि० [हिं० वन + औटी (प्रत्य०)] कपास के फून का सा। कपासी। उ०—देखी सोनजुही फिरत सोनजुही से अंग। दुति लपटनि पट सेतहू करति वनौटी रंग।—विहारी (शब्द०)।

वनौधा—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'बनवध'।

वनौरी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० वन (=जल) + ओला] वर्षा के साथ गिरनेवाला ओला। पत्थर। हिमोपल।

वनौवा—वि० [हिं० बनाना + औवा (प्रत्य०)] बनावटी। कृत्रिम। नकली। उ०—तब उस बनौवा शुक्र ने वारंबार मिथ्या भाषण करके धोखा दिया।—कबीर मं०, पृ० २२८।

बन्नर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वानर, हिं० वंदर] दे० 'बदर'। उ०—रिन रचो कुंभकन्न परचो मूषो वैसन्नर। घर वंदर धक धाह दंत करि चढ्ढे बन्नर।—पृ० रा०, २।२८६।

बन्ना†—संज्ञा पुं० [हिं० बना] दूल्हा। उ०—बन्ना वनि आयो नँद-नंदन मोहन कोटिक काम।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४४।

बन्नात—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बनात'।

बन्नो—संज्ञा स्त्री० [देश०] अन्न का तिहाई अथवा और कोई भाग जो खेत में काम करनेवालों को काम करने के वदले में दिया जाता है।

बन्नो†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बनो'।

वन्हि—संज्ञा स्त्री० [सं० वह्नि, प्रा० वह्नि] दे० 'वह्नि'। उ०—उठिहै निसि वन वन्हि प्रचान।—नंद० ग्रं०, पृ० २०२।

वपंस†—संज्ञा पुं० [हिं० बाप + सं० अंश] पिता से मिला हुआ अंश। बपौती। दाय।

वप(पु)†१—संज्ञा पुं० [सं० वप्र] वाप। पिता।

यौ०—बपमार = पिता को मारनेवाला। पितृघातक।

वप(पु)२—संज्ञा पुं० [सं० वपु] वपु। शरीर। उ०—त्रप रूप ओप नवघन वरण, हरण पाप त्रय ताप हरि।—रा० रू०, पृ० २।

बपमार—वि० [हिं० बाप + मारना] १. पिता का घातक। वह जो अपने पिता की हत्या करे। २. सबके साथ धोखा और अन्याय करनेवाला।

बपतिस्मा—संज्ञा पुं० [अं०] ईसाई संप्रदाय का एक मुख्य संस्कार जो किसी व्यक्ति को ईसाई बनाने के समय किया जाता है।

विशेष—इसमें पादरी हाथ में जल लेकर अभिमंत्रित करता और ईसाई होनेवाले व्यक्ति पर छिड़कता है। यह संस्कार विधर्मियों को ईसाई बनाने के समय भी होता है और ईसाइयों के घर जन्मे हुए बालकों का भी होता है। इस सस्कार के समय संस्कृत होनेवाले का एक अलग नाम भी रखा जाता है जो उसके कुल नाम के साथ जोड़ दिया जाता है। संस्कार के समय का यह नाम उनमें से कोई होता है जो इंजील में आए हैं।

बपना(पु)†—क्रि० स० [सं० वपन] (बीज) बोना। उ०—(क) कहु को लहै फल रसाल बबुर बीज बपत।—तुलसी (शब्द०)।

बपु—संज्ञा पुं० [सं० वपु] १. शरीर। देह। २. अवतार। ३. रूप।

बपुख—संज्ञा पुं० [सं० वपुष्] शरीर। देह। उ०—दूरि के कलंक भव सीस सिस सम राखत है केशोदास के वपुख को।—केशव (शब्द०)।

बपुरा—वि० [सं० वराक अथवा देशी वप्पुड (= दीन)] [वि० स्त्री० बपुरी] बेचारा। अशक्त। गरीब। अनाथ। उ०—(क)

सिव बिरंचि कहँ मोहँ को है बपुरा ग्रान।—मानस, ७।६२। (ख) कहा करै बपुरी ब्रज अबला गरब गाँठि गहि खोलै।—घनानंद, पृ० ४७५।

वपौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाप + ग्रौती (प्रत्य०)] बाप से पाई हुई जायदाद। पिता से मिली हुई संपत्ति।

वप्तिस्मा—संज्ञा पुं० [ग्रं० बपतिसमा] दे० 'बपतिसमा'। उ०—मैं ग्रभी ग्राप दोनों को गिर्जे में फादर के पास ले जाती हूँ, ग्राज ही वप्तिस्मा हो जायगा।—जिप्सी, पृ० १६५।

वप्पड़ा(पु)—वि० [देशी वप्पुड राज० बप्पड़ा, बापड़] दे० 'बापुरा'। उ०—(क) बगही भला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ।—ढोला०, दू० २५७। (ख) ग्रजइ कुग्रारउ बप्पड़ा, नही ज कामणि मोह।—ढोला०, दू० ३२२।

वप्पा†—संज्ञा पुं० [सं० वप्ता, प्रा० वप्पा, हिं० बाप] पिता। बाप।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कुछ प्रांतों में प्रायः संबोधन रूप मे होता है। जैसे, ग्ररे बप्पा! ग्ररे मैया!

वफरना†—क्रि० ग्र० [सं० विस्फुरण] बढ बढ़कर बातें करना दे० 'विफरना'। उ० (क) संध्या समय घर ग्राया, तो वफरने लगा। ग्रब देखता हूँ कौन माई का लाल इनकी हिमायत करता है।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ५८७। (ख) हरनाथ कुशल योद्धा की भाँति शत्रु को पीछे हटता देखकर, बफरकर बोला।—मान०, भा० ५, पृ० १६३।

वफर स्टेट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह मध्यवर्ती छोटा राज्य जो दो बड़े राज्यों को एक दूसरे पर ग्राक्रमण करने से रोकने का काम करे। संघर्षनिवारक राज्य। ग्रंतधि।

विशेष—दो बड़े राज्यों के एक दूसरे पर ग्राक्रमण करने के मार्ग में जो छोटा सा राज्य होता है, उसे 'बफर स्टेट' कहते हैं। जैसे, हिंदुस्तान ग्रौर रूस के बीच ग्रफ़गानिस्तान, फ्रांस तथा जर्मनी के बीच वेलजियम हैं। यदि ये छोटे राज्य तटस्थ या निरपेक्ष रहें तो इनमें से होकर कोई राज्य दूसरे राज्य पर ग्राक्रमण नही कर सकता। इस प्रकार ये संघर्ष रोकने का कारण होते हैं। ऐसे छोटे राज्यों का बड़ा महत्व है। संधि न होने की ग्रवस्था में इधर उधर के प्रतिद्वंद्वी राज्य इनसे सदा सशंक रहते हैं कि न जाने ये कब किसके पक्ष में हो जायँ ग्रौर उसके ग्राक्रमण का मार्ग प्रशस्त कर दें। गत प्रथम महासमर में जर्मनी ने वेलजियम की तटस्थता भंग कर उसमे से होकर फ्रांस पर चढ़ाई की थी। साथ ही साथ यह भी होता है कि जब दो प्रतिद्वंद्वी राज्य 'बफर स्टेट' की तटस्थता भग करके भिड़ जाते हैं, तब बफर स्टेट को, बीच में होने के कारण भीषण हानि होती है।

वफारा—संज्ञा पुं० [सं० वाष्प, हिं० बाफ, भाप + ग्रारा (प्रत्य०)] १. ग्रोपधिमिश्रित जल को ग्रौटाकर उसकी भाप से शरीर के किसी रोगी ग्रंग को सेंकने का काम। उ०—ग्राय सकारे हिय सकुचि, पाय पधारे ऐन। तिय नागरि तिय नैन तकि, लगी बफारे दैन।—स० सप्तक, पृ० २४७।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

२. वह ग्रोषधि जिसकी भाप से इस प्रकार का सेंक किया जाय।

३. वाष्प। भाप।

वफुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सदाबहार छोटा पौधा जो प्रायः सभी गरम देशों में ग्रौर विशेषतः रेतीली जमीनों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ ऊँटों के चारे के काम में ग्राती हैं।

वफौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाप + ग्रौरी (प्रत्य०)] भाप से पकाई हुई बरी।

विशेष—बटलोई में ग्रदहन चढ़ाकर उसके मुँह पर बारीक कपड़ा बाँध देते हैं। जब पानी खूब उबलने लगता है तब कपड़े पर बेसन या उर्द की पकौड़ी छोड़ते हैं जो भाप से ही पकती है। इन्ही पकौड़ियों को बफौरी कहते हैं।

वबकना—क्रि० ग्र० [ग्रनुध्व०] १. उत्तेजित होकर जोर से बोलना। बमकना। २. ग्रावेश में उछलना कूदना।

वबर—संज्ञा पुं० [फा०] १. बर्बरी देश का शेर। बडा शेर। सिंह। २. एक प्रकार का मोटा कंबल जिसमें शेर की खाल की सी धारियाँ बनी होती हैं।

वबा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाबा'।

वबुग्रा†—संज्ञा पुं० [हिं० बाबू] १. बेटे या दामाद के लिये प्यार का संबोधनात्मक शब्द। (पूरब)। २. जमींदार। रईस। (पूरब)।

वबुई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाबू का स्त्री०] १. बेटी। कन्या। उ०—बाबा घर रहलों बबुई कहोलों सैयाँ ग्रर चतुर सयान, चेतव घरवा ग्रापन रे।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ३८। २. छोटी ननद। पति की छोटी बहन। ३. किसी ठाकुर, सरदार या बाबू की बेटी।

वबुर, वबूर—संज्ञा पुं० [सं० बब्बूर] दे० 'बबूल'। उ०—गुरु के पास दाख रस रसा। वैरि बबूर मारि मन कसा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३४।

ववूल—संज्ञा पुं० [सं० वब्बुल, बब्बूल, प्रा० बबूल] मझोले कद का एक प्रसिद्ध काँटेदार पेड़। कीकर।

विशेष—यह वृक्ष भारत के प्रायः सभी प्रांतों में जंगली ग्रवस्था मे ग्रधिकता से पाया जाता है। गरम प्रदेश ग्रौर रेतीली जमीन में यह बहुत ग्रच्छी तरह ग्रौर ग्रधिकता से होता है। कहीं कही यह वृक्ष सौ सौ वर्ष तक रहता है। इसमें छोटी छोटी पत्तियाँ, सुई के बराबर काँटे ग्रौर पीले रंग के छोटे छोटे फूल होते हैं। इसके ग्रनेक भेद होते हैं जिनमें कुछ तो छोटी छोटी कँटीली बेलें हैं ग्रौर बाकी बड़े बड़े वृक्ष। कुछ जातियों के बबूल तो बागों ग्रादि में शोभा के लिये लगाए जाते हैं। पर ग्रधिकांश से इमारत ग्रौर खेती के कामों के लिये बहुत ग्रच्छी लकड़ी निकलती है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत ग्रौर भारी होती है ग्रौर यदि कुछ दिनों तक किसी

खुले स्थान पर पड़ी रहे तो प्रायः लोहे के समान हो जाती है। इसकी लकड़ी ऊपर से सफेद और अंदर से कुछ कालापन लिए हुए लाल रंग की होती है। इससे खेती के सामान, नावें, गाड़ियों और एक्कों के धुरे तथा पहिए आदि अधिकता से बनाए जाते हैं। जलाने के लिये भी यह लकड़ी बहुत अच्छी होती है, क्योंकि इसकी आँच बहुत तेज होती है और इसलिये इसके कोयले भी बनाए जाते हैं। इसकी पतली पतली टहनियाँ, इस देश में, दातुन के काम में आती हैं और दाँतो के लिये बहुत अच्छी मानी जाती हैं। इसकी जड़, छाल, सूखे बीज और पत्तियाँ औषधि के काम में भी आती हैं। छाल का प्रयोग चमड़ा सिझाने और रँगने में भी होता है। पत्तियाँ और कच्ची फलियाँ पशुओं के लिये चारे का काम देती हैं और सूखी टहनियों से लोग खेतों आदि में बाड़ लगाते हैं। सूखी फलियों से पक्की स्याही भी बनती है और फूलों से शहद की मक्खियाँ शहद भी निकालती हैं। इसमे गोंद भी होता है जो और गोंदों से बहुत अच्छा समझा जाता है। कुछ प्रांतों में इसपर लाख के कीड़े रखकर लाख भी पैदा की जाती है। रामबबूल, खैर, फुलाई, करील, बनरीठा, सोनकीकर आदि इसी की जाति के वृक्ष हैं।

बबूला[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'बगूला'। २. दे० 'बुलबुला'। ३. दे० 'पस्सी बबूल'।

बबूला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] हाथियों के पाँव में होनेवाला एक एक प्रकार का फोड़ा।

बबेक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विवेक] यथार्थ ज्ञान। उ०—साधि जोग अरु भक्ति पुनि सबद ब्रह्म संयुक्ति है। कहि बालकराम बबेक बिधि देखै जीवन मुक्ति है।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ११०।

बब्बर(पु)[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बबर] शेर। केसरी। उ०—बाहे बब्बर बीच हुँ, द्वै टुक निनारे।—पृ० रा०, २४।३४९।

बब्बर(पु)[2]—वि० [सं० बर्बर, प्रा० बब्बर] बलशाली। क्रूरकर्मा। उ०—बब्बर दौरहि बीर तुरंत करै गिर भूम भयानक रंत।—प० रासो, पृ० १४३।

बब्बू‡[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाबू'।

बब्बू[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का उल्लू।

बभना†—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण, प्रा० बंभन, हिं० बाभन] ब्राह्मण। द्विज। उ०—चाकी परै बभना, मैं काकी लागौं तोर रे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४०।

बभनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्राह्मणी] १. एक प्रकार का कीड़ा। एक सरीसृप।

विशेष—यह कीड़ा बनावट में छिपकली के समान पर जोंक सा पतला होता है। इसके शरीर पर लंबी सुंदर धारियाँ होती हैं जिनके कारण वह बहुत सुंदर जान पड़ता है।

२. कुश की जाति का एक तृण जिसे बनकुस भी कहते हैं। ३. ब्राह्मणों से संबद्ध या ब्राह्मणों की लिपि। देवनागरी। उ०—जैसे कि देवनागरी बभनी कहलाती थी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३९२।

बभूत—संज्ञा स्त्री० [सं० विभूति] दे० 'भभूत' या 'विभूति'।

बभ्रवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

बभ्रि—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र। विद्युत् [को०]।

बभ्रु[1]—वि० [सं०] १. लालिमायुक्त भूरे रंग का। गहरे पिंगल वर्ण का। २. गंजा। खल्वाट [को०]।

बभ्रु[2]—संज्ञा पुं० १. अग्नि। २. नेवला। ३. भूरा या पिंगल वर्ण। ४. भूरे वर्ण के केशवाला व्यक्ति। ५. शिव। ६. विष्णु। ७. चातक। ८. भूरे रंग की कोई वस्तु। ९. सफाई करनेवाला व्यक्ति [को०]।

यौ०—बभ्रुकेश, बभ्रुलोमा = भूरे या पिंगल केशवाला।

बभ्रुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नक्षत्र का नाम। २ नेवला [को०]।

बभ्रुधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ण। सोना। २. गैरिक। गेरू। [को०]।

बभ्रुव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बभ्रु] नेवला। उ०—बभ्रुव बाल पालिए आखु। इतने जीव दुर्ग महँ राखु।—प० रासो, पृ० १८।

बभ्रुवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का एक पुत्र जिसकी माता चित्रांगदा थी। यह मणिपुर का नरेश था।

बम[1]—संज्ञा पुं० [अं० बॉम्ब] विस्फोटक पदार्थों से भरा हुआ लोहे का बना हुआ वह गोला जो शत्रुओं की सेना अथवा किले आदि पर फेंकने के लिये बनाया जाता है और गिरते ही फटकर आस पास के मनुष्यों और पदार्थों को भारी हानि पहुँचाता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—गिराना।—चलना।—चलाना।—फेंकना।—मारना।

यौ०—बमवर्षक = एक प्रकार का हवाई जहाज। वह वायुयान जो बम गिराता है। बमबारी = बम की वर्षा। विस्फोटक बमों का लगातार गिरना।

बम[2]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. शिव के उपासकों का वह 'बम, बम' शब्द जिसके विषय में यह माना जाता है कि इसके उच्चारण से शिव जी प्रसन्न होते हैं।

विशेष—कहा जाता है, शिव जी ने कुपित होकर जब दक्ष का सिर काट लिया तब बकरे का सिर जोड़ा गया जिससे वे बकरे की तरह बोलने लगे। इससे जब लोग गाल बजाते हुए 'बम, बम' करते हैं तब शिव जी प्रसन्न होते हैं।

मुहा०—बम बोलना या बोल जाना = शक्ति, धन, आदि की समाप्ति हो जाना। कुछ न रह जाना। खाली हो जाना। दिवाला हो जाना।

२. शहनाई बजानेवालों का वह छोटा नगाड़ा जो बजाते समय बाईं ओर रहता है। मादा नगाड़ा। नगड़िया।

बम[3]—संज्ञा पुं० [कनाड़ी बंबू, बॉस] १. बग्गी, फिटन आदि में आगे की ओर लगा हुआ वह लंबा बाँस जिसके दोनों ओर घोड़े जोते जाते हैं। २. एक्के, गाड़ियों आदि में आगे की ओर

लगा हुआ लकड़ियों का वह जोड़ा जिसके बीच में घोड़ा खड़ा करके जोता जाता है।

बमकना†—क्रि० अ० [अनु०] १. आवेश में आकर लंबी चौड़ी बातें करना। शेखी बघारना। डींग हाँकना। २. उछलना कूदना। ३. फूट जाना।

बमकाना—क्रि० सं० [हिं० बमकना] किसी को बमकने में प्रवृत्त करना। बढ़कर बोलने के लिये आवेश दिलाना।

बमचख—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० बम + हिं० चीखना] १. शोर गुल। २. लड़ाई झगड़ा। विवाद।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

बमनाⓅ†—क्रि० स० [सं० वमन] १. मुँह से उगलना। वमन करना। कै करना। उ०—मुष्टिक एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।—तुलसी (शब्द०)। २. उगलता हुआ। वर्षण करता हुआ। उ०—विकट बदन अरु बड्डे दंत। विकट भृकुटि दृग अग्नि बमंत।—नंद० ग्रं०, पृ० २८६।

बमनी†—वि० स्त्री० [सं० वामन] लघु। छोटी। स्वल्प। उ०—अंदर की प्रभु सब जानत थो काह मौज मेरी बमनी।—भीखा० श०, पृ० १०।

बमपुलिस—संज्ञा पुं० [अं० बम (=धड़ाका)+प्लेस (=स्थान)] राहचलतों और मुसाफिरों के लिये बस्ती से दूर बना हुआ पाखाना।

विशेष—इस शब्द के प्रचार के संबंध में एक मनोरंजक बात सुनने में आई है। कहते हैं, हिंदुस्थान में पलटन के अशिक्षित गोरे पाखाने को 'बम प्लेस' अर्थात् धड़ाका करने का स्थान कहा करते थे। इसी 'बम प्लेस' से विगड़कर 'बमपुलिस' बन गया।

बमलाना†—क्रि० सं० [हिं० बमकाना] बढ़ावा देना। प्रोत्साहित करना।

बमालन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता। मकोह।

विशेष—यह उत्तर भारत में पंजाब से आसाम तक और दक्षिण में लंका तक पाई जाती है। यह गरमी में फूलती और बरसात के दिनों में फलती है। इसके फल खाए जाते हैं।

बमीठा—संज्ञा पुं० [हिं० बाँबी+ईठा (प्रत्य०)] बाँबी। वल्मीक।

बमुकाबला—क्रि० वि० [फ़ा० बमुकाबलह्] १. मुकाबले में। समक्ष। सामने। २. मुकाबले पर। विरुद्ध। विरोध में।

बमूजब—क्रि० वि० [फ़ा० बमूजिब] दे० 'बमूजिब'। उ०—हमारी मर्जी बमूजब तो इनका सत्कार यहाँ कहाँ बन पड़ेगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६।

बमूजिब—क्रि० वि० [फ़ा० बमूजिब] अनुसार। मुताबिक। जैसे, हुकुम के बमूजिब।

बमेक†—संज्ञा पुं० [सं० विवेक] दे० 'विवेक'। उ०—रज्जब बचन बमेक धन, लहिए बारंबार।—रज्जब०, पृ० १०।

बमेकी—वि० [सं० विवेकी] विवेकवाला। विवेकी। विवेकशील। उ०—दूजा कहीं और को अँधा, गुरु अंजन करि सूझै। दादू मोटे भाग हमारे, दास बमेकी बूझै।—दादू०, पृ० ५४४।

बमेला†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

बमोट†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बमीठा'।

बम्मन, बम्हन†—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण, प्रा० अप० बम्हण, बभंन, द० हिं० बम्मन] दे० 'ब्राह्मण'। उ०—नामा प्यारा है भगत, उसे जानत है जगत। बम्मन आया धूँड़त धूँड़त लगत आया गाँव मों।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

बम्हनपियाव‡—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण + हिं० पिलाना] ऊख को पहले पहल पेरने के समय उसका कुछ रस ब्राह्मणों को पिलाना जो आवश्यक और शुभ माना जाता है।

बम्हनरसियाव‡—संज्ञा पुं० [हिं० बम्हन+रसियाव] दे० 'बम्हनपियाव'।

बम्हनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्राह्मणी, अप० बम्हनी] १. छिपकली की तरह का एक पतला कीड़ा। बमनी।

विशेष—आकार में यह प्रायः छिपकली से आधा होता है। इसकी पीठ काली, दुम और मुँह लाल चमकीले रंग का होता है। इसकी पीठ पर चमकीली धारियाँ होती हैं।

२. आँख का रोग जिसमें पलक पर एक छोटी फुंसी निकल आती है। बिलनी। गुहांजनी। ३. वह गाय जिसकी आँख की बरौनी झड़ गई हो। ४. हाथी का एक रोग जिसमें उसकी दुम सड़कर गिर जाती है। ५. एक प्रकार का रोग जो ऊख को बहुत हानि पहुँचाता है। ६. लाल रंग की भूमि।

बयंड†—संज्ञा पुं० [हिं० गयद < सं० गजेन्द्र या सं० वनेन्द्र अथवा देश०] हाथी। (डिं०)।

बयंडा†—वि० [सं० वात + काण्ड अथवा विहिण्डन] आवारा।

बय—संज्ञा स्त्री० [सं० वय] दे० 'वय'। उ०—बय बपु बरन रूप सोइ आली।—मानस, २।२२१।

बयकुंठⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० वैकुण्ठ] दे० 'वैकुंठ'। उ०—छाँड्यो बयकुंठ धाम कियो ब्रज बिसराम।—ब्रज० ग्रं० पृ० १४२।

बयनⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० वचन, प्रा० वयण] वाणी। बोली। बात। उ०—रूखे रुख मुख प्रिय बयन नयन चुराई दीठि। दीठि तियहि पिय पीठि दी ईठि भई सुबसीठि।—स० सप्तक, पृ० १४२। २. बदन। मुख।

बयनाⓅ†[1]—क्रि० स० [सं० वपन, प्रा० वयन] बोना। बीज जमाना या लगाना। उ०—(क) सूर सुरपति सुन्यो बयो जैसो लुन्यो प्रभु कह गुन्यो गिरि सहित बैहै।—सूर (शब्द०)। (ख) सींचे सीय सरोज कर बए विटप बर बेलि। समय सुकालु किसान हित सगुन सुमंगल केलि।—तुलसी (शब्द०)।

बयना[2]—क्रि० स० [सं० वचन, प्रा० वयण, हिं० बैन या सं० वर्णन] वर्णन करना। कहना। उ०—दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन भरि भरि थार लए। गावत चली भीर भइ बीथिन बंदिन बाँकुरे बिरद बए।—तुलसी (शब्द०)।

बयना[3]—संज्ञा पुं० [सं० वायन] दे० 'बैना'।

बयनी⑤—वि० [हिं० बयन] बोलनेवाली। जो बोलती हो। जैसे, कोकिलबयनी। उ०—करहि गान कल कोकिल-बयनी।—मानस, १।२८६।

बयपार†—संज्ञा पु० [सं० व्यापार] दे० 'व्यापार'। उ०—जानो बहु बयपार पारख हथ्यार, मार जानो गिरि दीनद्याल, ठोटें सब पाठ कों।—दीन० ग्रं०, पृ० ३५७।

बयर‡—संज्ञा पुं० [सं० वैर, प्रा० वइर, बयर] दे० 'वैर'। उ०—दक्ष सकल निज सुता बुलाई। हमरे बयर तुम्हौं बिसराई।—मानस, १।६२।

बयल—संज्ञा पुं० [डिं०] सूर्य।

बयस[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वयस्] दे० 'वय'।

बयस[2]—संज्ञा पुं० [सं० वायन] दे० 'बायन', 'बैना'।

बयसर—संज्ञा स्त्री० [देश०] कमखाब बुननेवालों की वह लकड़ी जो उनके करघे में गुल्ले के ऊपर नीचे लगती है।

बयसवाला⑤†—वि० [सं० वयस् + हिं० वाला] [स्त्री० वि० वयसवाली] युवक। जवान।

बयससिरोमनि†—संज्ञा पु० [सं० वयस् + शिरोमणि] युवावस्था। जवानी। यौवन। उ०—वय किसोर सरियार मनोहर वयस-सिरोमनि होने।—तुलसी (शब्द०)।

बयसा—संज्ञा स्त्री० [सं० वयस्या] सखी। वयस्या।—अनेकार्थ०, पृ० ६३।

बयसु†—संज्ञा पुं० [सं० वैश्य] वाणिज्य कर्म करनेवाला। वैश्य। उ०—सोचिय बयसु कृपन धनवानू।—मानस, २।१७२।

बयाँगा†—संज्ञा पुं० [देश०] झूला।

बयाँवार—क्रि वि० [अ० बयान] सिलसिलेवार। उ०—सुनो अब नए तौर की और बात। बयाँवार कहता हूँ खूबी के साथ—दक्खिनी०, पृ० ३००।

बया[1]—संज्ञा पुं० [सं० वयन (= बुनना)] गौरेया के आकार और पीले रंग का प्रसिद्ध पक्षी।

विशेष—इसका माथा बहुत चमकदार पीला होता है। यह पाला जाता है और सिखाने से, संकेत करने पर, हलकी चीजें जैसे, कौड़ी, पत्ती आदि, किसी स्थान से ले आता है। यह अपना घोसला सूखे तृणों से बहुत ही कारीगरी के साथ और इस प्रकार बुनकर बनाता है कि उसके तृण बुने हुए मालूम होते हैं।

बया[2]—संज्ञा पुं० [अ० बयाह् (= बेचनेवाला)] वह जो अनाज तौलने का काम करता है। अनाज तौलनेवाला। तौलैया। उ०—(क) प्रेमनगर मैं दग बया नोखे प्रगटे आई। दो मन को कर एक मन भाव दियो, ठहराइ।—सप्तक, पृ० १९९ (ख) एक एक बया, दलाल भी सौ सौ, दो दो सौ इसमें फूँक तापते थे।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३३०।

बयाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बया + आई (प्रत्य०)] अन्न आदि तौलने की मजदूरी। तौलाई।

बयान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. बखान। वर्णन। जिक्र। चर्चा। २. हाल। विवरण। वृत्तांत। ३. वक्तव्य।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—देना।

बयाना[1]—संज्ञा पु० [अ० बै + फा० आना (प्रत्य०)] वह धन जो कोई चीज खरीदने के समय अथवा किसी प्रकार का ठेका आदि देने के समय उसकी बातचीत पक्की करने के लिये बेचनेवाले अथवा ठेका लेनेवाले को दिया जाय। किसी काम के लिये दिए जानेवाले पुरस्कार का कुछ अंश जो बातचीत पक्की करने के लिये दिया जाय। पेशगी। अगाऊ।

विशेष—बयाना देने के उपरांत देने और लेनेवाले दोनों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे उस निश्चय की पाबंदी करें जिसके लिये बयाना दिया जाता है। बयाने की रकम पीछे से दाम या पुरस्कार देते समय काट ली जाती है।

बयाना[2]—क्रि० अ० [सं० वचन, प्रा० वयन] सोने की अवस्था में बड़बड़ाना। बर्राना।

बयाबान—संज्ञा पु० [फ़ा० बियाबान] १. जंगल। उजाड़। उ०—कोई सीस्तान और बलूचिस्तान के बयाबानों को।—किन्नर०, पृ० १०।

बयार, बयारि†⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु] हवा। पवन। उ०—(क) देखि तरु सब अति डराने हैं बड़े बिस्तार। गिरे कैसे बड़ो अचरज नेकु नहीं बयार।—सूर (शब्द०)। (ख) तिनुका बयारि के बस, ज्यों भावै त्यों उड़ाइ लै जाइ आपने रस।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

मुहा०—बयार करना = ऊपर पंखा हिलाना जिससे हवा लगे। उ०—भोजन करत कनक की थारी। द्रुपदसुता तहँ करति बयारी।—(शब्द०)।

बयारा†—संज्ञा पुं० [हिं० बयार] १. हवा का झोंका। २. तूफान।

बयारी[1]—संज्ञा स्त्री० [देशी बिआलिअ] दे० 'बियारी', 'ब्यालू'।

बयारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बयार'। उ०—आवत देखहि बिषय बयारी।—मानस, ७।११८।

बयाला†—संज्ञा पु० [सं० बाह्य + हिं० आला] १. दीवार मे का वह छेद जिससे झाँककर बाहर की वस्तु देखी जा सके। २. ताख। आला। ३. पटाव के नीचे की खाली जगह। ४. किलों या गढ़ों में वह स्थान जहाँ तोपें लगी रहती हैं। ५. कोट की दीवार में वह छोटा छेद या अवकाश जिसमें से तोप का गोला पार करके जाता है। उ०—तिमि घरनाल और करनालैं सुतरनाल जंजालैं। गुर गुराब रहँकले भले तहँ लागे बिपुल बयालैं।—रघुराज (शब्द०)।

बयालिस[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्विचत्वारिंशत्, प्रा० बिचात्तालीसा, बायालीसा, बियालस] १. चालीस और दो की संख्या। इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४२।

बयालिस[2]—वि० जो गिनती में चालीस से दो अधिक हो।

बयालिसवाँ—वि० [हिं० बयालिस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में बयालिस के स्थान पर हो। इकतालिसवें के बाद का।

बयासी¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्वा, द्वि+अशीति, प्रा॰ विअसी] १. अस्सी और दो की संख्या। २. इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८२।

बयासी²—वि॰ जो संख्या में अस्सी और दो हो।

बयोरो(पु)‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] वृत्तांत। ब्योरा। उ॰—राम सो घन ताके कहा बयोरो। अष्ट सिद्धि नव निधि करत निहोरो।—दक्खिनी॰, पृ॰ २८।

बरंग—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. मध्यप्रदेश में होनेवाला छोटे कद का एक पेड़। पोला।

विशेष—इसकी लकड़ी सफेद और मुलायम होती है और इमारत तथा खेती के औजार बनाने के काम में आती है। इसकी छाल के रेशों से रस्से भी बनते हैं। इसे पोला भी कहते हैं।

२. बख्तर। कवच।—(डिं॰)।

बरगा¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. छत पाटने की पत्थर की छोटी पटिया जो प्रायः डेढ़ हाथ लंबी और एक बित्ता चौड़ी होती है। २. वे छोटी छोटी लकड़ियाँ जो छत पाटते समय धरनों के बीचवाला अंतर पाटने को लगाई जाती हैं। उ॰—बरंगा बरंगी करी या जरी हैं। मनो ज्वाल ने बाहु लच्छी करी हैं।—सूदन (शब्द॰)।

बरंगा†²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ वराङ्गना] अप्सरा।—उ॰—बरंगा राख वरमाल सूरा वरै। त्रिपत पंखाल दिल खुले ताला।—रघु॰ रू॰, पृ॰ ३०।

बर¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वर] १. वह जिसका विवाह होता हो। दूल्हा। दे॰ 'वर'। उ॰—(क) जद्यपि बर अनेक जग माँहीं। एहि कँह सिव तजि दूसर नाहीं।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) बर अस बधू आप जब जाने रुक्मिनि करत बधाई।—सूर (शब्द॰)।

मुहा॰—बर का पानी=विवाह से पहले नहछू के समय का बर का स्नान किया हुआ पानी जो एक पात्र में एकत्र करके कन्या के घर भेजा जाता है और जिससे फिर कन्या नहलाई जाती है। जिस पात्र में वह जल जाता है वह पात्र चीनी, खाँड़ आदि से भरकर लड़केवाले के घर लौटा दिया जाता है।

२. वह आशीर्वाद सूचक वचन जो किसी की प्रार्थना पूरी करने के लिये कहा जाय। दे॰ 'वर'। उ॰—यह बर माँग्यो दियो न काहू। तुम मम मन ते कहूँ न जाहू।—केशव (शब्द॰)।

बर²—वि॰ १. श्रेष्ठ। अच्छा। उत्तम। २. सुंदर।—अनेकार्थ॰, पृ॰ १४२।

मुहा॰—बर परना=बढ़ निकलना। श्रेष्ठ होना। उ॰—अर ते टरत न बर परे दई मरकि मनु मैन। होड़ाहोड़ी बढ़ि चले चित चतुराई नैन।—बिहारी (शब्द॰)।

बर(पु)³—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वट] वट वृक्ष। बरगद। उ॰—कौन सुभाव री तेरो परयो बर पूजत काहे हिए सकुचाती।—प्रताप (शब्द॰)।

बर(पु)⁴—संज्ञा पुं॰ [सं॰ बल] बल। शक्ति। उ॰—(क) परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) खीन लंक टूटी दुख भरी। बिन रावन केहि बर होय खरी।—जायसी (शब्द॰)। (ग) देख्यौ मैं राजकुमारन के बर।—केशव (शब्द॰)।

बर⁵—अव्य॰ [फ़ा॰] १. बाहर। २. ऊपर। पर।

मुहा॰—बर आना या पाना=बढ़कर निकलना। मुकाबले में अच्छा ठहरना। जैसे,—झूठ बोलने में तुमसे कोई बर नहीं पा सकता। (या आ सकता)।

बर⁶—वि॰ १. बढ़ा चढ़ा। श्रेष्ठ। २. पूरा। पूर्ण। (आज्ञा या कामना आदि के लिये) जैसे, मुराद बर आना।

बर⁷—पुं॰ १. शरीर। देह। २. गोद। क्रोड़। (को॰)। ३. फल।

यौ॰—बरे अवा=आम की फसल की आय या मालगुजारी।

बर⁸—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बल (=सिकुड़न) रेखा। लकीर।

मुहा॰—बर खाँचना या खींचना=(१) किसी बात के संबंध में दृढ़ता सूचित करने के लिये लकीर खींचना। (प्रायः लोग दृढ़ता दिखाने के लिये कहते हैं कि मै बर (लकीर) खींचकर यह बात कहता हूँ।) उ॰—तेहि ऊपर राघव बर खाँचा। दुइज आजु तो पंडित साँचा।—जायसी (शब्द॰)। २. हठ दिखलाना। अड़ना। जिद करना। उ॰—हिंदू देव काहु बर खाँचा। सरगहु अब न सुर सों बाँचा।—जायसी (शब्द॰)। बर बाँधना=प्रतिज्ञा करना। उ॰—लँधउर धरा देव जस आदी। और को बर बाँधे को बादी।—जायसी (शब्द॰)।

बर⁹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का कीड़ा जिसे खाने से पशु मर जाते हैं।

बर¹⁰—अव्य॰ [सं॰ वरम्, हिं॰ बरु] वरन्। बल्कि उ॰—सुनि रोवत सब हाय बिरह ते मरन भलो बर।—व्यास (शब्द॰)।

बर¹¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] बाल या बार का समस्त शब्दों में प्रयुक्त रूप जैसे, बरटुट। बरतोर।

बरअंग†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ वराङ्ग] योनि। (डिं॰)।

बरई‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बाड़ (=क्यारी)] [स्त्री॰ बरइन] १. एक जाति जिसका काम पान पैदा करना या बेचना होता है। २. इस जाति का कोई आदमी। तमोली।

बरकंदाज—संज्ञा पुं॰ [फ़ा बरकंदाज] १. वह सिपाही या चौकीदार आदि जिसके पास बड़ी लाठी रहती हो। २. तोड़ेदार बंदूक रखनेवाला सिपाही। ३. चौकीदार। रक्षक।

बरक¹—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ बर्क़] बिजली। उ॰—तन दुख नीर तड़ाग, रोग बिहंगम रूखड़ो। बिसन सखीमुख बाग, जरा बरक ऊतर जबल।—बाँकी॰ ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ४१।

बरक²—संज्ञा पु॰ [अ॰ वरक़] दे॰ 'वरक'। उ॰—कै वरक तिल्लई पै सीतल ए खेंच दई तहरीरें हैं।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ३६३।

बरकत—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] १. किसी पदार्थ की अधिकता। बढ़ती। ज्यादती। बहुतायत। कमी न पड़ना। पूरा पड़ना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग साधारणतः यह दिखलाने के लिये होता है कि वस्तु आवश्यकतानुसार पूरी है और उसमें सहसा कमी नहीं हो सकती। जैसे,—(क) इकट्ठी खरीदी हुई चीज में बड़ी बरकत होती है। (ख) जिस चीज में तुम हाथ लगा दोगे, उसकी बरकत जाती रहेगी।

मुहा०—बरकत उठना = (१) बरकत न रह जाना। पूरा न पड़ना। (२) वैभव आदि की समाप्ति या अंत आने लगना। ह्रास का आरंभ होना। जैसे, अब तो उनके घर से बरकत उठ चली। बरकत होना = (१) अधिकता होना। वृद्धि होना। (२) उन्नति होना।

२. लाभ। फायदा। जैसे,—(क) जैसी नीयत वैसी बरकत। (ख) इस रोजगार में बरकत नहीं है। ३. वह बचा हुआ पदार्थ या धन आदि जो इस विचार से पीछे छोड़ दिया जाता है कि इसमें और वृद्धि हो। जैसे,—(क) थैली बिल्कुल खाली मत कर दो, बरकत का एक रुपया तो छोड़ दो। (ख) अब इस घड़े में है ही क्या, खाली, बरकत बरकत है। ४. समाप्ति। अंत। (साधारणतः गृहस्थी में लोग यह कहना कुछ अशुभ समझते हैं कि अमुक वस्तु समाप्त हो गई; और उसके स्थान पर इस शब्द का प्रयोग करते हैं। जैसे,—आजकल घर में अनाज की बरकत है।) ५. एक की संख्या। (साधारणतः लोग गिनती के आरंभ में एक के स्थान में शुभ या वृद्धि की कामना से इस शब्द का प्रयोग करते हैं)। जैसे, बरकत, दो, तीन, चार, पाँच आदि। ६. धनदौलत। (क्व०)। ७. प्रसाद। कृपा। जैसे,—यह सब आपके कदमों की बरकत है कि आपके आते ही रोगी अच्छा हो गया। (कभी कभी यह शब्द व्यंग्य रूप से भी बोला जाता है)। जैसे,—यह आपके कदमों की ही बरकत है कि आपके आते ही सब लोग उठ खड़े हुए)।

बरकती—वि० [अ० बरकत + ई (प्रत्य०)] १. बरकतवाला। जिसमें बरकत हो। जैसे,—जरा अपना बरकती हाथ उधर ही रखना। (व्यंग्य)। २. बरकत संबंधी। बरकत का। जैसे, बरकती रुपया।

बरकदम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बरक़दम] एक प्रकार की चटनी।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले कच्चे आम को भूनकर उसका पना निकाल लेते हैं और तब उसमें चीनी, मिर्च, शीतल चीनी, केसर, इलायची आदि डाल देते हैं।

बरकना[1]—क्रि० अ० [हिं० बरकाना] १. कोई बुरी बात न होने पाना। न घटित होना। निवारण होना। बचना। जैसे, झगड़ा बरकना। २. अलग रहना। हटना। दूर रहना।

बरकना(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० वल्गन (= बहुत बोलना), हिं० बलकना, गुज० बरकुवुँ] आवेश में उत्साहित होकर बोलना या चिल्लाना। बलकना। उ०—बरकि कन्ह चहुआँन करि, तिल तिल सम तन तुंड।—पृ० रा०, ५।८६।

बरकरार—वि० [फ़ा० बर + अ० क़रार] १. कायम। स्थिर। जिसकी स्थिति हो। २. उपस्थित मौजूद। ३. जीवित। जिंदा (को०)।

क्रि० प्र०—रहना।

बरकस—क्रि० वि० [फ़ा० बर + अ० अक्स, अक्स] विपरीत। उलटा। उ०—बहुत मिल के विद्या शिकना। भावबंद में बरकस रहे ना।—दक्खिनी०, पृ० ६५।

बरकाज—संज्ञा पुं० [सं० वर + कार्य] विवाह। व्याह। शादी। उ०—प्रबल प्रचंड बीरबंड बर बेष बपु बरिबे के बोले बैदेही बरकाज कें।—तुलसी (शब्द०)।

बरकाना†—क्रि० स० [सं० वारण वारक] १. कोई बुरी बात न होने देना। निवारण करना। बचाना। जैसे, झगड़ा बरकाना। २. पीछा छुड़ाना। बहलाना। फुसलाना। उ०—खेलत खुशी भए रघुवंशिन। कोशलपति सुख छाय दें नवीन भूषन पट सुंदर जस तस कै बरकाय।—रघुराज (शब्द०)।

बरकावना(पु)—क्रि० स० [हिं० बरकाना] किसी के द्वारा बरकाना।

बरक्कत†—संज्ञा स्त्री० [अ० बरकत] वृद्धि। समृद्धि। भलाई। उ०—भीड़ भाड़ से डरे भीड़ में नहीं बरक्कत। पलटू०, पृ० ५५।

बरख(पु)†—संज्ञा पु० [सं० वर्ष] बरस। साल। उ०—(क) बरख बधे बिय बाल पिथ्थ बढ्ढें इक मासह।—पृ०, रा०, १।७१७। (ख) अगले बरख तो लड़कों का जनेउआ करोगे।—नई०, पृ० ७८।

बरखना—क्रि० अ० [सं० वर्षण] पानी बरसना। वर्षा होना। उ०—(क) कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६। (ख) बरखै प्रलय को पानी, न जात काहू पै बखानी। ब्रज हूँ तें भारी टूटत हैं तर तर।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६२।

बरखनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्षण] बरसने की स्थिति। वर्षा। उ०—तैसियै सिर तैं कुसुम सु बरखनि।—नंद० ग्रं० पृ० २४८।

बरखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्षा] १. मेह गिरना। जल का बरसना। वृष्टि। उ०—का बरखा जब कृषी सुखाने।—तुलसी (शब्द०)। २. वर्षा ऋतु। बरसात का मौसिम। उ०—बरखा बिगत सरद ऋतु आई।—मानस, ४।१६।

बरखाना(पु)—क्रि० स० [सं० वर्षा] १. बरसाना। २. ऊपर से इस प्रकार छितराकर गिराना कि बरसता हुआ मालुम हो। ३. बहुत अधिकता से देना।

बरखास(पु)†—वि० [फ़ा० बरखास्त] दे० 'बरखास्त'। उ०—करि भूपति दूतन विदा कियो सभा बरखास। भरत शत्रुहन संग लै गए आपु रनिवास।—रघुराज (शब्द०)।

बरखास्त—वि० [फ़ा० बरखास्त] १. (सभा आदि) जिसका विसर्जन कर दिया गया हो। जिसकी बैठक समाप्त कर दी गई हो। जैसे, दरबार, कचहरी, स्कूल आदि बरखास्त होना। जो बंद कर दिया गया हो। उ०—मुनिकै सभासद अभिलषित निज निज अयन गमनत भए। भूपति सभा बरखास्त करि किय शयन अति आनंदमए।—रघुराज (शब्द०)। २. जो नौकरी से हटा या छुड़ा दिया गया हो। मौकूफ।

बरखास्तगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बरखास्तगी] १. नौकरी या सेवा से अलगाव । सेवानिवृत्ति । मौकूफी [को०] ।

बरखिलाफ—क्रि० वि० [फ़ा० बरखिलाफ़] प्रतिकूल । उलटा । विरुद्ध ।

बरखुरदार¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० बरखरदार] पुत्र । बेटा । संतान ।

बरखुरदार²—वि० फलयुक्त । फूलता फलता । भाग्यवान् [को०] ।

बरगंधा†—संज्ञा पुं० [सं० वर+गन्ध] सुगंधित मसाला ।

बरग¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० बर्ग] पत्ता । पत्र । जैसे, बरग बनफशा । बरग गावजुबाँ ।

बरग²—संज्ञा पुं० [सं० वर्ग] दे० 'वर्ग' ।

बरगद—संज्ञा पुं० [सं० वट, हिं० बड़] वड़ का पेड़ । पीपल, गूलर आदि की जाति का एक प्रसिद्ध बड़ा वृक्ष जो प्रायः सारे भारत मे बहुत अधिकता से पाया जाता है ।

विशेष—अनेक स्थानों पर यह आपसे आप उगता है । पर इसकी छाया बहुत घनी और ठंढी होती है, इसलिये कहीं कहीं लोग छाया आदि के लिये इसे लगाते भी हैं । यह बहुत दिनों तक रहता, बहुत जल्दी बढ़ता और कभी कभी अस्सी या सौ फुट की ऊंचाई तक जा पहुँचता है । इसमें एक विशेषता यह होती है कि इसकी शाखाओं में से जटा निकलती है जिसे बरोह कहते हैं और जो नीचे की ओर आकर जमीन मे मिल जाती है और तब एक नए वृक्ष के तने का रूप धारण कर लेती है । इस प्रकार एक ही बरगद की डालों में से चारों ओर पचासों जटाएँ नीचे आकर जड़ और तने का काम देने लगती हैं जिससे वृक्ष का विस्तार बहुत शीघ्रता से होने लगता है । यही कारण है कि बरगद के किसी बड़े वृक्ष के नीचे सैकड़ों हजारों आदमी तक बैठ सकते हैं । इसके पत्तों और डालियों आदि में से एक प्रकार का दूध निकलता है जिससे घटिया रबर बन सकता है । यह दूध फोड़े फुंसियों पर, उनमें मुँह करने के लिये, और गठिया आदि के दर्द में भी लगाया जाता है । इसकी छाल का काढ़ा बहुमूत्र होने में लाभदायक माना जाता है । इसके पत्ते, जो बड़े और चौड़े होते हैं, प्रायः दोने बनाने और सौदा रखकर देने के काम आते हैं । कहीं कहीं, विशेषतः अकाल के समय मे, गरीब लोग उन्हें खाते भी हैं । इसमें छोटे छोटे फल लगते जो गरमी के शुरू में पकते हैं और गरीबों के खाने के काम आते हैं । यों तो इसकी लकड़ी फुसफुसी और कमजोर होती है और उसका विशेष उपयोग नहीं होता, पर पानी के भीतर वह खूब ठहरती है । इसलिये कुएँ की 'जमवट' आदि बनाने के काम आती है । साधारणतः इसके संदूक और चौखटे बनते हैं । पर यदि यह होशियारी से काटी जाय और सुखाई जाय तो और सामान भी बन सकते हैं । डालियों में से निकलनेवाली मोटी जटाएँ बहँगी के डंडे, गाड़ियों के जुए और खेमों के चोब बनाने के काम आती हैं । इस पेड़ पर कई तरह के लाख के कीड़े भी पल सकते हैं । हिंदू लोग बरगद को बहुत ही पवित्र और स्वयं रुद्रस्वरूप मानते हैं । इसके दर्शन तथा स्पर्श आदि से बहुत पुण्य होना और दुःख तथा आपत्तियों आदि का दूर होना माना जाता है और इसलिये इस वृक्ष का लगाना भी बड़े पुण्य का काम माना जाता है । वैद्यक के अनुसार यह कषाय, मधुर, शीतल, गुरु, ग्राहक और कफ, पित्त, व्रण, दाह, तृष्णा, मेह तथा योनि-दोष-नाशक माना गया है ।

पर्य्या०—न्यग्रोध । बहुपात । वृक्षनाथ । यमप्रिय । रक्तफल । शृंगी । कर्मज । ध्रुव । क्षीरी । वैश्रवणावास । भांडरी । जटाल । अवरोही । विटपी । स्कंदरुह । महाच्छाय । भृंगी । यक्षावास । यक्षतरु । नील । बहुपाद । वनस्पति ।

बरगश्ता—वि० [फ़ा० बरगश्तह्] प्रतिकूल । उलटा । फिरा हुआ । विपरीत । उ०—ऐ रसा जैसा है बरगश्ता जमाना हमसे । ऐसा बरगश्ता किसी का न मुकद्दर होगा ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५७ ।

बरगेल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बवा (पक्षी) जिसके पंजे कुछ छोटे होते हैं और जो पाला जाता है ।

बरचर—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय में होनेवाला एक प्रकार का देवदार वृक्ष जिसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है । थेसी । पडंगी । खेख ।

बरचस—संज्ञा पुं० [सं० वर्चस्क] विष्ठा । मल । (डिं०) ।

बरच्छा†—संज्ञा पुं० [सं० वर+ईक्षा (=ईक्षण)] विवाह की बात पक्की होने पर वर के पिता के हाथ में जनेऊ, द्रव्य और फल रखने की रीति । इसे लोग बरछेकाई भी कहते हैं ।

बरछा—संज्ञा पुं० [सं० व्रश्चन् (=काटनेवाला) ?] [स्त्री० बरछी] भाला नामक हथियार जिसे फेंककर अथवा भोंककर मारते हैं ।

विशेष—इसमें प्रायः एक बालिश्त लंबा लोहे का फल होता है और यह एक बड़ी लाठी के सिरे पर जड़ा होता है । यह प्रायः सिपाहियों और शिकारियों के काम का होता है ।

बरछैत—संज्ञा पुं० [हिं० बरछा+ऐत (प्रत्य०)] बरछा चलानेवाला । भालाबर्दार । उ०—सहस दोइ बरछैत जे न कबहूँ मुख मोरत ।—सुजान०, पृ० २६ ।

बरजनहार—वि० [हिं० बरजना+हार (प्रत्य०)] रोकनेवाला । निवारक । उ०—चहहु करहु होय सोई कौन बरजनहार । जग० श०, भा० २, पृ० १०३ ।

बरजनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० वर्जन] मना करना । रोकना । निवारण करना । निषेध करना ।

बरजनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्जन] १. मनाही । २. रुकावट । ३. रोक ।

बरजबान—वि० [फ़ा० बरजबान] जो जबानी याद हो । मुखाग्र । कंठस्थ ।

बरजोर¹—वि० [हिं० बल, बर+फ़ा० जोर] १. प्रबल । बलवान् । जबरदस्त । उ०—द्वे रनरोर कपीस किशोर बड़े बरजोर परे

फग थाए।—तुलसी (शब्द०)। २. अत्याचार अथवा अनुचित बलप्रयोग करनेवाला।

बरजोर²—क्रि० वि० १. जबरदस्ती। बलपूर्वक। उ०—भूषन भनत जो लौं भेजो उत ओर तिन, वेही काज वरजोर कटक कटायो है।—भूषण ग्रं०, पृ० ७२।

बरजोरन—संज्ञा पुं० [सं० वर (=पति) + हिं० जोरन (=मिलान)] १. विवाह के समय वर और वधू के पल्लों में गाँठ बाँधा जाना। गठबंधन। २. विवाह (डिं०)।

बरजोरी(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरजोर+ई (प्रत्य०)] जबरदस्ती। बलप्रयोग। प्रबलता।

बरजोरी²—क्रि० वि० जबरदस्ती से। बलपूर्वक।

बरट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अन्न [को०]।

बरड†—संज्ञा पुं० [सं० वरट] भिड़। बर्रें। उ०—बरड छता कै छेरि, गाय व्यानी वग्गानिय।—पृ० रा०, १३।२८।

बरड़ाना†—क्रि० स० [अनुध्व०] दे० 'बर्राना' या 'बड़बड़ाना'। उ०—(क) सुपने हू बरडाइ के जिह्व मुख निकसै राम।—कबीर ग्रं०, पृ० २६१। (ख) सब जग सोता सुध नहिं पावै। बोलै सो सोता बरड़ावै।—दरिया० बानी, पृ० २४।

बरण—संज्ञा पुं० [सं० वर्ण] दे० 'वर्ण'। अक्षर। उ०—राम बरण जग रूर प्रसिद्ध वरणाँ सिरताज।—रघु० रू०, पृ० २।

बरणना—क्रि० स० [सं० वर्णन] दे० 'बरनना'। उ०—अजर अमर अज अंगी और अनंगी सब बरणि सुनावें ऐसे कौने गुण पाए हैं।—केशव (शब्द०)।

बरतंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वृत्तान्त] दे० 'वृत्तांत'। उ०—तब कहिय जामिनि कंत। यह लिखिय तिय बरतंत।—पृ० रासो, पृ० १२।

बरत¹—संज्ञा पुं० [सं० व्रत] ऐसा उपवास जिसके करने से पुण्य हो। परमार्थसाधन के लिये किया हुआ उपवास। विशेष—दे० 'व्रत'। उ०—जप तप संयम बरत करि तजै खजाना कोष। कह रघुनाथ ऐसे नृपै रती न लागै दोष।—रघुनाथदास (शब्द०)।

यौ०—तीरथ बरत = उ०—नारद कहि संवाद अपारा। तीरथ बरत महा मत सारा।—सबलसिंह (शब्द०)।

बरत²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरना (=बटना)] १. रस्सी। उ०—बरत बाँधकर धरन में कला गगन में खाय। अर्ध अर्ध नट ज्यों फिरै सहजो राम रिझाय।—सहजो०, पृ० ४२। २. नट की रस्सी जिसपर चढ़कर वह खेल करता है। उ०—(क) डीठ बरत बाँधी अटनि चढ़ि धावत न डरात। इत उत ते चित दुहुन के नट लौं आवत जात।—बिहारी (शब्द०)। (ख) दुहूँ कर लीन्हे दोऊ बैस बिसवास बास डीठ की बरत चढ़ी नाचै भौं नटिनी।—देव (शब्द०)।

बरतन¹—संज्ञा पुं० [सं० वर्तन (=पात्र)] मिट्टी या धातु आदि की इस प्रकार बनी वस्तु कि उसमें कोई वस्तु, विशेषतः खाने पीने की, रख सकें। पात्र। जैसे, लोटा, थाली, कटोरा, गिलास, हंडा, परात, घड़ा, हाँड़ी, मटका आदि। भाँड़। भाँड़ा।

बरतन²—संज्ञा पुं० [सं० वर्तन] बरतना या व्यवहृत करने का भाव। बरताव। व्यवहार।

बरतना¹—क्रि० अ० [सं० वर्तन] किसी के साथ किसी प्रकार का व्यवहार करना। बरताव करना। जैसे,—जो हमारे साथ बरतेगा, उसके साथ हम भी बरतेंगे।

बरतना²—क्रि० स० काम में लाना। व्यवहार में लाना। इस्तेमाल करना। जैसे,—यह कटोरा हम बरसों से बरत रहे हैं, पर अभी तक ज्यों का त्यों बना है।

बरतना³—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तनी] एक प्रकार की कलम। बरतनी। उ०—राजपूताना में अब भी लकड़ी की गोल तीखे मुँह की कलम को जिससे बच्चे पट्टे पर सुरखी बिछाकर अक्षर बनाना सीखते हैं थरथा या बरतना कहते हैं।—भा० प्रा० लि०, पृ० ६।

बरतनी—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तनी] १. लकड़ी आदि की बनी एक प्रकार की कलम जिससे विद्यार्थी लोग मिट्टी या गुलाल आदि बिछाकर उसपर अक्षर लिखते हैं। अथवा तांत्रिक लोग यंत्र आदि भरते हैं। २. लेखनप्रणाली। लिखने का ढंग।

बरतर—वि० [फा० तुल० सं० बर+तर (प्रत्य०)] श्रेष्ठतर। अधिक अच्छा उ०—याने बुजुर्ग हैं वह बरतर।—दक्खिनी०, पृ० ३०३।

बरतराई†—संज्ञा स्त्री० [फा० बरतर] वह कर जो जमींदार की ओर से बाजार में बैठनेवाले बनियों और दुकानदारों आदि से लिया जाता है। बैठकी। झरी।

बरतरफ—वि० [फा० तर + अ० तरफ़] १. किनारे। अलग। एक ओर। २. किसी कार्य, पद, नौकरी आदि से अलग। छुड़ाया हुआ। मौकूफ। बरखास्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बरताना¹—क्रि० सं० [स० वर्तन या वितरण] सबको थोड़ा थोड़ा देना। वितरण करना। बाँटना।

संयो० क्रि०—डालना—। देना।

बरताना²—क्रि० अ० [सं० वर्तन] बरताव करना। आचरण करना। उ०—ज्ञान सु इंद्रिय पंच पे भिन्न भिन्न बरताहिं। सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० २४।

बरताना†³—संज्ञा पुं० [सं० वर्तन, हिं० बरतना] १. व्यवहार। बरताव। उ०—पिता आइ कीयो संयोगा, यहु कलियुग बरताना।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८७४। २. व्यवहार में आया हुआ वस्त्र। व्यवहृत वस्त्र आदि। ३. व्यवहृत सामान। बर्तन आदि (हलवाई)।

बरताव—संज्ञा पुं० [हिं० बरतना का भाव] बरतने का ढंग। मिलने जुलने, बातचीत करने या बरतने, आदि का ढंग या भाव। वह कर्म जो किसी के प्रति, किसी के संबंध में किया जाय। व्यवहार। जैसे,—(क) वे छोटे बड़े सबके साथ एक सा

बरताव करते हैं। (ख) जिस श्रादमी का बरताव श्रच्छा न हो उसके पास किसी भले श्रादमी को जाना न चाहिए। विशेष दे० 'व्यवहार'।

वरती¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

वरती²—वि० [सं० व्रतिन्, हिं० व्रती] जिसने उपवास किया हो। जिसने व्रत रखा हो।

वरती³—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्त्ति, हिं० बरवा] दे० 'बत्ती'।

वरतुल(पु)—वि० [सं० वर्तुल] वृत्ताकार। गोला। वर्तुल। उ०—वरतुल सुछम कपोल रसीली वांमरा। किया तयारी वेह दरप्पण कांम रा।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ३२।

वरतुस‡—संज्ञा पुं० [देश०] वह खेत जिसमें पहले धान बोया गया हो और फिर जोतकर ईख बोई जाय।

बरतेला†—संज्ञा स्त्री० [देश०] जुलाहों की वह खूँटी जो करघे की दाहिनी श्रोर रहती है श्रौर जिसमें ताने को कसा रखने के लिये उसमें बँधी हुई अंतिम रस्सी या 'जोते' का दूसरा सिरा 'पिंडा' या 'हथेला' (करघे के पीछे लगी हुई दूसरी खूँटी) पीछे से घुमाकर लाया और बाँधा जाता है।

विशेष—यह खूँटी करघे की दाहिनी श्रोर बुननेवाले के दाहिने हाथ के पास इसलिये रहती है जिसमें वह श्रावश्यकतानुसार जोते ढीला करता रहे श्रौर उसके कारण ताना श्रागे बढ़ता चले।

बरतोर†—संज्ञा पुं० [हिं० बार + तोरना] वह फुंसी या फोड़ा जो बाल उखड़ने के कारण हो। उ०—(क) ताते तन पेखियत घोर बरतोर मिसु फूटि फूटि निकसत है लोन राम राय को। —तुलसी (शब्द०)। (ख) जनु छुइ गयउ पाक बरतोरा।

वरथ‡—संज्ञा पुं० [सं० व्रत, हिं० बरत] दे० 'व्रत'। उ०—तीरथ बरथ करे असनान। नहिं नहिं हरि नाम समान। —दक्खिनी०, पृ० १६।

वरद—संज्ञा पुं० [सं० बलीवर्द; देशी प्रा० बलद्द] उ०—वह बौराह बरद असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा। —मानस, १।६५।

वरदना—क्रि० अ० [हिं० बरद+ना (प्रत्य०) दे० 'बरदाना'।

वरदमानी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ध (= काटना)] काट करनेवाली एक तरह की तलवार। उ०—तहँ सु वरदमानी खड़्ग पिहानी हर बरदानी हेरि हँसे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

वरदवान¹—संज्ञा पुं० [सं० वर + दामन्] कमखाव बुननेवालों के करघे की एक रस्सी जो पगिया में बँधी रहती है। 'नथिया' भी इसी में बँधी रहती है। २. रस्सी। उ०—बरदवानी, डेरा, कनात, पात्र, सामग्री, आभूपण वस्त्र दोऊ भाँति के, सिज्या श्रौर जो कछू वस्तु चाहिए ये सब पठवाए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११४।

वरदवान²—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादबान] १. तेज हवा। (कहार)। २. हवा। वायु। उ०—जैसे जहाज चलै सागर में बरदवान वहै धीमी।—घट०, पृ० १६८।

वरदवाना—क्रि० स० [हिं० बरदाना] बरदाना का प्रेरणार्थक रूप। बरदाने का काम दूसरे से कराना।

वरदा¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण भारत की एक तरह की रूई।

वरदा²—संज्ञा पुं० [देशी बलद्द] दे० 'बरधा'।

वरदा³—संज्ञा पुं० [तु० बर्दह्] दास। गुलाम [को०]।

वरदाइ(पु)—वि० [सं० वरदानी] वर देनेवाली। उ०—श्रये गवरि, ईस्वरि सब लायक। महामाइ बरदाइ सुभायक।—नंद० ग्रं०, पृ० २६८।

वरदाई—संज्ञा पुं० [हिं०] पृथ्वीराज चौहान के मित्र श्रौर पृथ्वीराज रासो के रचयिता राजकवि चंद की उपाधि।

वरदाना†¹—क्रि० स० [हिं० बरधा (= बैल)] गौ, भैंस, बकरी, आदि पशुओं का इनकी जाति के नर पशुओं से, संतान उत्पन्न करने के लिये संयोग कराना। जोड़ा खिलाना। जुफ्ती खिलाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

बरदाना²—क्रि० अ० गौ, भैंस, बकरी, घोड़ी आदि पशुओं का अपनी जाति के नरपशुओं से गर्भ रखाना। जोड़ा खाना। जुफ्ती खाना।

संयो० क्रि०—जाना।

वरदानि, वरदानी—वि० [सं० वरदानी] अभीष्ट देनेवाला। उ०—जगजीवन कर जोरि कहत हैं, देहु दरस बरदानी।—जग० बानी, पृ० ३।

वरदाफ़रोश—संज्ञा पुं० [फ़ा० बर्दह् फ़रोश] गुलाम बेचनेवाला। दासों को खरीदने श्रौर बेचनेवाला।

वरदाफ़रोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बर्दह् फ़रोशी] गुलाम बेचने का काम।

वरदाय(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'बरदाई'¹। उ०—महामाय बरदाय, सु संकर तुमरे नायक।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६।

वरदायक—वि० [सं० वर + दायक] वर देनेवाला।—उ०—ब्रह्म राम तें नाम बड बरदायक बरदानि।—मानस, १।३१।

वरदार—वि० [फ़ा०] १. ले जानेवाला। वहन करनेवाला। ढोनेवाला। धारण करनेवाला। जैसे, बल्लम बरदार। उ०—वहु कनक छरी बरदार तित, मानि प्रभुहिं बिनती करी।—दीन० ग्रं०, पृ० १०२। २. पालन करनेवाला। माननेवाला। जैसे, फरमाँबरदार।

वरदाश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सहने की क्रिया या भाव। सहन।

वरदिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बलदिया'।

वरद्दिया(पु)—संज्ञा पुं० [देशी बलद्द+हिं० इया] बैल। वृप। उ०—प्रथिराज खलन खद्दो जु खर यो दुव्वरो बरद्दिया।—पृ० रा०, ३०, पृ० ६७३।

वरधी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'बलदी'। २. बैलों का समूह जिसपर माल लादकर व्यापारी लोग एक जगह से दूसरी जगह आते जाते थे। उ०—(क) इक बनिजारा भलप जुवनियाँ

दुसरे लगतु है जाड। राति बिराति चलै तोरी बरदी, लुटि लेइहि कोउ ठाढ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८४।

बरदुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] बरमे की तरह का एक औजार जिससे लोहा छेदा जाता है।

बरदौर†—संज्ञा पुं० [स० बरद+औार (प्रत्य०)] गौओं और बैलों के बाँधने का स्थान। मवेशीखाना। गोशाला।

बरध, बरधा—संज्ञा पुं० [स० बलीवर्द] बैल। उ०—और वा तेली के साथ एक बरध हतो।—दो सौ बावन,० भा० १, पृ० ३००।

बरधमुतान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बरधा या बैल के मूतने से बनी टेढ़ीमेढ़ी रेखा या आकृति।

बरधवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बरदवाना'।

बरधाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बरदाना'।

बरधी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चमड़ा।

बरन—संज्ञा पुं० [सं० वर्ण] १. दे० 'वर्ण'। २. रंग। उ०—सुबरन बरन सुवास जुत, सरस दलनि सुकुमारि।—मतिराम (शब्द०)। ३. हिंदू जाति के चार मुख्य वर्ग। उ०—प्रेम दिवाने जो भए जात बरन गई छूट। सहजो जग बौरा कहै लोग गए सब फूट।—सहजो०, पृ० ४०।

बरननⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'वर्णन'।

बरननाⓅ—क्रि० स० [सं० वर्णन] वर्णन करना। बयान करना। उ०—बरनौं रघुबर बिमल जस जो दायक फल चारि।—तुलसी (शब्द०)।

बरनमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्णमाला] दे० 'वर्णमाला'। उ०—जासु बरनमाला गुन खानि सकल जग जानत।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१६।

बरनर—संज्ञा पुं० [अं०] लंप का ऊपरी भाग जिसमें बत्ती लगाई जाती है। बत्ती इसी भाग में जलती है और इसी के ऊपर से होकर प्रकाश बाहर निकलता और फैलता है।

बरना[1]—क्रि० स० [सं० वरण] १. वर या वधू के रूप में ग्रहण करना। पति या पत्नी के रूप में अंगीकार करना। ब्याहना। उ०—(क) जो एहि बरइ अमर सो होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मरे ते अपसरा आइ ताको बरति, भाजि है देखि अब गेह नारी।—सूर० (शब्द०)। २. कोई काम करने के लिये किसी को चुनना या ठीक करना। नियुक्त करना। उ०—बरे विप्र चहुँ वेद फिर रविकुल गुरु ज्ञानी।—तुलसी (शब्द०)। ३. दान देना।

बरना†[2]—क्रि० अ० [हिं० बलना] दे० 'जलना'। उ०—औंधाई सीसी सुलखि बिरह बरति बिललात। बीचहि सूखि गुलाब गो छीटो छुई न गात।—बिहारी (शब्द०)।

बरना†[3]—क्रि० स० [सं० वलन (=घुमना)] दे० 'बटना'।

बरनाⓅ[4]—क्रि० स० [सं० वारण, हिं० वारना] मना करना। रोकना। (लश०)।

बरना[5]—संज्ञा पुं० [सं० वरुण] एक प्रकार का वृक्ष।

बरना[6]—संज्ञा स्त्री० [सं० वरणा] वरुणा नदी। दे० 'वरुणा'—१ उ०—ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी बारानसी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१।

बरना[7]—अव्य० [फ़ा० वर्नह्] अन्यथा। नहीं तो। दे० 'वरना'।

बरनाल—संज्ञा पुं० [हिं० परनाला] जहाज में वह परनाला या पानी निकालने का मार्ग जिसमें से उसका फालतू पानी निकलकर समुद्र में गिरता है। (लश०)।

बरनाला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परनाला'। (लश०)।

बरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० वरणीय] वरणीया। कन्या। उ०—(क) परिहार सिंध जिम जेर कीन। बरनी बिवाहि रस बसि अधीन।—पृ० रा०, १।६७५। (ख) बरनी जोग बरंन को वर भुल्ले करतार।—पृ० रा०, २५।११०।

बरनीय—संज्ञा स्त्री० [सं० वरणीया] कन्या जिसका परिणय किया जाय। उ०—बरनीय अष्ट दुय लेय ब्याहि।—पृ० रा०, १।७११।

बरनेत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० वरना (=वरण करना) + ऐत (प्रत्य०)] विवाह की एक रस्म जो विवाहमुहूर्त से कुछ पहले होती है।

विशेष—इसमें कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष के लोगों को बुलाते है और विवाहमंडप में उन्हें बैठाकर उनसे गणेश आदि का पूजन कराते हैं।

बरपा—वि० [फ़ा०] खड़ा हुआ। उठा हुआ। मचा हुआ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय: झगड़ा फसाद, आफत, कयामत, अप्रिय अशुभ बातों के लिये ही होता है।

बरफ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बर्फ़] दे० 'बर्फ'।

बरफानी—वि० [फ़ा० बर्फ़ानी] बरफ से युक्त। बरफ का। बरफीला।

बरफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बरफ़, बर्फी] एक प्रकार की प्रसिद्ध मिठाई।

विशेष—यह मिठाई चीनी की चाशनी में गरी या पेठे के महीन टुकड़े, पीसा हुआ बदाम, पिस्ता या मूँग आदि अथवा खोवा डालकर जमाई जाती है और पीछे से छोटे छोटे चौकोर टुकड़ों के रूप में काट ली जाती है। इसकी जमावट आदि प्राय: बरफ की तरह होती है। इसीलिये यह बरफी कहलाती है।

बरफीदार कनारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बरफीदार+देश० कनारी] वह स्थान जहाँ सफेद रंग के काँटे अधिकता से मार्ग में पड़ते हों। (पालकी के कहारों की बोली)।

बरफीसंदेस—संज्ञा सं० [फ़ा बरफी + बँग० संदेश] बरफी की तरह की एक प्रकार की बँगला मिठाई जो छेने से तैयार की जाती है।

बरफीला—वि० [फ़ा० बर्फ़ीलह्] बरफ से युक्त। हिमयुक्त। हिमावृत।

बरबंडⓤ†—वि० [सं० बलवन्त] १. बलवान्। ताकतवर। २. प्रतापशाली। ३. उद्दंड। उद्धत। ४. प्रचंड। प्रखर। बहुत तेज।

बरबटⓤ†—क्रि० वि० [सं० बलवत्] १. बलपूर्वक। जबरदस्ती। बरबस। उ०—बेधक अनियारे नयन बेधत करि न निषेधु। बरबट बेधतु मो हियो तो नासा को बेधु।—बिहारी (शब्द०)। २. दे० 'बरबस'। उ०—(क) नैन मीन ऐ नागरनि, बरबट बाँधत आइ।—मतिराम (शब्द०)। (ख) कैसे अपबस राखौ अपनपो है बरबट चित चोर।—घनानंद, पृ० ५४८।

बरबत—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का बाजा।

बरबर[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] व्यर्थ की बातें। बक बक। बकवाद। उ०—सुनि भृगुपति के बैन मनही मन मुसक्यात मुनि। अबै ज्ञान यह है न, वृथा बकत बरबर बचन।—रघुराज (शब्द०)।

बरबर[2]—वि० बड़बड़ानेवाला। बकवादी। उ०—आलि! बिदा करु बटुहि बेगि, बड़ बरबर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४।

बरबर[3]—संज्ञा पुं० [सं० बर्बर] दे० 'बर्बर'।

बरबराना—क्रि० अ० [अनुध्व०] दे० 'बर्राना'।

बरबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० बर्बरी] १. बर्बर या बर्बरी नामक देश। २. एक प्रकार की बकरी।

बरबस—क्रि० वि० [सं० बल + वश] १. बलपूर्वक। जबरदस्ती। हठात्। २. व्यर्थ। फिजूल। उ०—खेलत में कोउ काको गुसैयाँ। हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस हीं क्यों करत रिसैयाँ।—सूर (शब्द०)।

बरबाद—वि० [फा०] १. नष्ट। चौपट। तबाह। जैसे, घर बरबाद होना। २. व्यर्थ खर्च किया हुआ। जैसे,—सैकड़ों रुपए बरबाद कर चुके, कुछ भी काम न हुआ। तुम्हें क्या मिल जायगा?

बरबादी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नाश। खराबी। तबाही। जैसे,—इस झगड़े में तो हर तरह तुम्हारी बरबादी ही है।

बरमⓤ[1]—संज्ञा पुं० [सं० वर्म] जिरह बक्तर। कवच। शरीरत्राण। उ०—(क) असन बिनु बिनु बरम बिनु रण बच्यो कठिन कुघायँ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पहिर बरम, असि, चरम खरे सो सुभट बिराजै।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६।

बरम†—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म] दे० 'ब्रह्म'।

यौ०—बरमसूत = जनेऊ। ब्रह्मसूत्र। यज्ञोपवीत। उ०—कंधे पर बरमसूत पहने रग्घू मजदूरी करने कैसे जाते।—भस्मावृत०, पृ० ८५।

बरमाⓤ[1]—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० बरमी] लकड़ी आदि में छेद करने का, लोहे का बना एक प्रसिद्ध औजार

विशेष—इसमें लोहे का एक नोकीला छड़ होता है जो पीछे की ओर लकड़ी के एक दस्ते में इस प्रकार लगा रहता है कि सहज में खूब अच्छी तरह घूम सके। जिस स्थान पर छेद करना होता है, उस स्थान पर नोकीला कोना लगाकर और दस्ते के सहारे उसे दबाकर रस्सी की गराड़ियों की सहायता से अथवा और किसी प्रकार खूब जोर जोर से घुमाते हैं, जिससे वहाँ छेद हो जाता है।

बरमा[2]—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मदेश] १. भारत की पूर्वी सीमा पर, बंगाल की खाड़ी के पूर्व और आसाम तथा चीन के दक्षिण का एक पहाड़ी प्रदेश।

विशेष—यह प्रदेश पहले वहाँ के देशी राजा के अधिकार में था। फिर अंग्रेजों के अधिकार मे आ गया और भारतवर्ष में मिला लिया गया। दूसरे महायुद्ध के बाद से यह एक स्वतंत्र देश हो गया है। इस प्रदेश मे खान और जंगल बहुत अधिकता से हैं। यहाँ चावल बहुत अधिकता से होता है। इस देश के अधिकाश निवासी बौद्ध हैं।

२. एक प्रकार का धान जो बहुत दिनों तक रखा जा सकता है।

बरमी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बरमा + ई (प्रत्य०)] बरमा देश का निवासी। बरमा का रहनेवाला।

बरमी[2]—संज्ञा स्त्री० बरमा देश की भाषा।

बरमी[3]—वि० बरमा संबंधी। बरमा देश का। जैसे, बरमी चावल।

बरमी[4]—संज्ञा स्त्री० गीली नाम का पेड़। विशेष दे० 'गीली'।

बरम्हंडⓤ—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्माण्ड] दे० 'ब्रह्मांड'। उ०—कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा। कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा।—जायसी ग्रं०, पृ० १।

बरम्ह—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म] दे० 'ब्रह्म'।

बरम्हबोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरमा (देश) + अं० बोट (= नाव)] प्रायः चालीस हाथ लंबी एक प्रकार की नाव।

विशेष—इसका पिछला भाग अपेक्षाकृत अधिक चौड़ा होता है। इसके बीच में एक बड़ा कमरा होता है और पीछे की ओर ऐसा यंत्र बना होता है जिसे बारह आदमी पैर से चलाते हैं।

बरम्हा[1]—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मा] दे० 'ब्रह्मा'। उ०—एक एक बोल अरथ चौगुना। इंद्रमोह बरम्हा सिर धुना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६१।

बरम्हा[2]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरमा'।

बरम्हाउⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० बरम्हाव] दे० 'बरम्हाव'। उ०—(क) ठाढ़ देखि सब राजा राऊ। बाएँ हाथ दीन्ह बरम्हाऊ। —जायसी (शब्द०)। (ख) मइ प्रज्ञा को भाँट अभाऊ। बाएँ हाथ देइ बरम्हाऊ।—जायसी ग्रं० पृ० ११५।

बरम्हावⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मा + हिं० आव (प्रत्य०)] १. ब्राह्मणत्व। २. ब्राह्मण का आशीर्वाद।

बरम्हावनाⓤ—क्रि० स० [सं० ब्रह्म + हिं० आवना (प्रत्य०)] आशीर्वाद देना। आसीस देना। उ०—जाति भाट कित औगुन लावसि। बाएँ हाथ राज बरम्हावसि।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५।

बररानाⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बर्राना'। उ०—जोग जोग

कबहुँ न जाने कहा जोहि जाको, ब्रह्म ब्रह्म कबहुँ बहकि बररात हौ।—पोद्दार—अभि० ग्र०, पृ० ३४३।

बररे(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] भिड़। दे० 'बर्रे'।

बरवट—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तिल्ली' (रोग)।

बरवल—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ की एक जाति।

विशेष—इस जाति की भेड़ हिमालय पर्वत के उत्तर मे जुमिला से किरट तक और कमाऊँ से शिकम तक पाई जाती है। यह पहाडी भेड़ो के पाँच भेदो मे से एक है। इसके नर के सिर पर दृढ़ सीगें होती हैं और वह लड़ाई में खूब टक्कर लगाता है। इसका ऊन यद्यपि मैदान की भेडो से अच्छा होता है, तो भी मोटा होता है और कंबल आदि बनाने के काम में ही आता है। इसका मांस खाने मे रूखा होता है।

बरवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरवै'।

बरवै—संज्ञा पुं० [देश०] १६ मात्राओं का एक छंद जिसमें १२ और ७ मात्राओं पर यति और अंत में 'जगण' होता है। इसे 'ध्रुव' और 'कुरंग' भी कहते हैं। जैसे,—मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार।

बरष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वर्ष] दे० 'बरषा'। उ०—आत बरष अपने तन सहैं। काहू सों कछु दुख नहि कहैं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३००। २. साल। वर्ष। बरस। उ०—बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।—मानस, २।५३।

बरषना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० बरष(=वर्षा)+ना (प्रत्य०)] दे० 'बरसना'।

बरषा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्षा] १. पानी बरसना। वृष्टि। उ०—का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने।—तुलसी (शब्द०)। २. वर्षाकाल। बरसात।

बरषाना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बरसाना'।

बरषासन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वर्षाशन] एक वर्ष की भोजनसामग्री। उतना अनाज आदि जितना एक मनुष्य अथवा एक परिवार एक वर्ष मे खा सके। उ०—गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे।—मानस, २।८०।

बरस—संज्ञा पुं० [सं० वर्ष] बारह महीनों अथवा ३६५ दिनों का समूह। वर्ष। साल। जैसे,—(क) दो बरस हुए, बहुत बाढ आई थी। (ख) अभी तो वह चार बरस का बच्चा है।
विशेष—दे० 'वर्ष'।

यौ०—बरसगाँठ।

मुहा०—बरस दिन का दिन=ऐसा दिन (त्योहार या पर्व आदि) जो साल भर में एक ही बार आता हो। बड़ा तिहवार।

बरसगाँठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरस+गाँठ] वह दिन जिसमें किसी का जन्म हुआ हो। वह दिन जिसमें किसी की आयु का एक बरस पूरा हुआ हो। जन्मदिन। सालगिरह। उ०—कुछ न मिला हमको बरसगाँठ से। एक बरस और गया गाँठ से।—(शब्द०)।

विशेष—आगरे आदि की तरफ घर में एक तागा रहता है। जिसके नाम का यह तागा होता है उसके एक एक जन्म दिन पर इस तागे में एक एक गाँठ देते जाते हैं। इसी से जन्मदिन को बरसगाँठ कहते हैं। प्राचीन समय मे भी ऐसी ही प्रथा थी।

बरसना—क्रि० अ० [सं० वर्षण] आकाश से जल की बूँदो का निरतर गिरना। वर्षा का जल गिरना। मेह पड़ना। २. वर्षा के जल की तरह ऊपर से गिरना। जैसे, फूल बरसना। ३. बहुत अधिक मान, सख्या या मात्रा में चारों ओर से आकर गिरना, पहुँचना या प्राप्त होना। जैसे, रुपया बरसना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—बरस पड़ना=बहुत अधिक क्रुद्ध होकर डाँटने, डपटने लगना। बहुत कुछ बुरी भली बातें कहने लगना।

४. बहुत अच्छी तरह झलकना। खूब प्रकट होना। जैसे,—उनके चेहरे से शरारत बरसती है। शोभा बरसना। ५. दाएँ हुए गल्ले का इस प्रकार हवा में उड़ाया जाना जिसमे दाना अलग और भूसा अलग हो जाय। ओसाया जाना। डाली होना।

बरसनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बरसने की क्रिया या भाव।

बरसाइत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० वट+सावित्री] जेठ बदी अमावस जिस दिन स्त्रियाँ वटसावित्री का पूजन करती हैं। उ०—बर साइति है मिलन की, बरसाइत है लेखि। पूजन बर साइत भली, बरसाइत चलि देखि।—स० सप्तक, पृ० ३६२।

बरसाइनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरस+आइन (प्रत्य०)] प्रति वर्ष बच्चा देनेवाली गाय। वह गौ जो हर साल बच्चा दे।

बरसाऊ†—वि० [हिं० बरसना+आऊ (प्रत्य०)] बरसनेवाला। वर्षा करनेवाला। (बादल आदि)।

बरसात—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्षा, हिं० बरसना+आत (प्रत्य०)] पानी बरसने के दिन। सावन भादों के दिन जब खूब वर्षा होती है। वर्षाकाल। वर्षाऋतु।

बरसाती¹—वि० [सं० वर्षा] बरसात का। बरसात संबंधी। जैसे, बरसाती पानी। बरसाती मेढक।

बरसाती²—संज्ञा पुं० [सं० वर्षा, हिं० बरसात+ई (प्रत्य०)]। १. घोड़ों का स्थायी रोग जो प्रायः बरसात में होता है। २. एक प्रकार का आँख के नीचे का घाव जो प्रायः बरसात में होता है। ३. पैर में होनेवाली एक प्रकार की फुंसियाँ जो बरसात में होती हैं। ४. चरस पक्षी। चीनी मोर। तन मोर। ५. एक प्रकार का मोमजामे या रबर आदि का बना हुआ ढीला कपड़ा जिसे पहन लेने से शरीर नहीं भीगता। ६. सबसे ऊपर का खुला हवादार कमरा। ७. मकान के आगे का वह छतदार हिस्सा जहाँ गाड़ी (बग्घी, कार आदि) रोकी जाती है।

बरसाना¹—क्रि० स० [हिं० बरसना का प्रे० रूप] १. आकाश से जल की बूँदे निरंतर गिराना। वर्षा करना। वृष्टि करना।

२. वर्षा के जल की तरह लगातार बहुत सा गिराना। जैसे, फूल बरसाना। ३. बहुत अधिक संख्या या मात्रा में चारों ओर से प्राप्त करना। ४. दाएँ हुए अनाज को इस प्रकार हवा में गिराना जिससे दाने अलग और भूसा अलग हो जाए। ओसाना। डाली देना।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

बरसाना[२]—संज्ञा पुं०[हिं०] मथुरा जिले का एक गाँव जो राधिका जी का जन्मस्थान माना जाता है।

बरसायत[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० बर+अ० सायत] शुभ घड़ी। शुभ मुहूर्त। उ०—संमत पंद्रा से बीस प्रमाना। मास जेठ बरसायत जाना।—कबीर सा०, पृ० ६३४।

बरसायत[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरसाइत'।

बरसालाा†—वि० [हिं० बरसालू] बरसनेवाला। उ०—घमहर तीरां पूर सचालो, वरसे फिर मातो बरसालो।—रा० रू०, पृ० २५३।

बरसालू—वि० [सं० वर्षा+आलुच् (प्रत्य०)] वर्षणशील। बरसनेवाला। उ०—अति अंबु कोपि कुँवर ऊफणियो बरसालू वाहला वारि।—वेलि०, दू० ३४।

बरसावना†[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरसाना'[२]।

बरसावना[२]—क्रि० सं० दे० 'बरसाना'[१]।

बरसिंघा[१]—संज्ञा [पुं० बर+हिं० सींग] वह बैल जिसका एक सींग खड़ा और दूसरा नीचे की ओर झुका हो। मैना।

बरसिंघा[२]‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बारहसिंगा'।

बरसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरस+ई (प्रत्य०)] वह श्राद्ध जो किसी मृतक के उद्देश्य से उसके मरने की तिथि के ठीक एक बरस बाद होता है। मृतक के उद्देश्य से किया जानेवाला प्रथम वार्षिक श्राद्ध।

बरसीला—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० बरसीली] बरसनेवाला। उ०—लाड़ लड़ीली रस बरसीली लसीली हँसीली सनेह सगमगी।—घनानंद, पृ० ४४७।

बरसू—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।

बरसोदिया†—संज्ञा पुं० [हिं० बरस+ओदिया (प्रत्य०)] पूरे साल भर के लिये रखा हुआ नौकर। वह नौकर जो साल भर के लिये रखा जाय।

बरसौड़ी, बरसौंढ़ी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरस+औड़ी या औंढ़ी (प्रत्य०)] वार्षिक कर। प्रति वर्ष लिया जानेवाला कर।

बरसौंदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बसोंधी'। उ०—जे बरसौंदी खात, ते सब विप्र बुलाइयो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४।

बरसौंहा†—वि० [हिं० बरसना+औहाँ (प्रत्य०)] बरसनेवाला। उ०—तिय तरसौहैं मुनि किए करि सरसौहै नेह। घर परसौहैं ह्वै रहे भर बरसौहैं मेह।—बिहारी (शब्द०)।

बरहंटा—संज्ञा पुं० [सं० भण्टाकी] बड़ी कटाई। कड़वा भंटा।

पर्या०—वार्ताकी। बृहती। महती। सिंहिका। राष्ट्रिका। स्थूलकंटा। क्षुद्रभंटा।

बरह—संज्ञा पुं० [सं० वर्ह] १. वृक्ष आदि का पत्ता। २. पंख। पक्ष। उ०—बरहि बरह धरि भ्रमित कलन करि नचत अहीरन सगी बहुरंगी लाल त्रिभंगी।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २७३।

बरहन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बड़हन'।

बरहना—वि० [फ़ा० बरहन:] [संज्ञा बरहनगी] जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। नंगा। नग्न। उ०—कोई साफ बरहना फिरता है न पगड़ी है न जामा है।—राम० धर्म०, पृ० ९२।

यौ०—बरहनागो = स्पष्टवक्ता। बरहनापा = नंगे पाव। बरहनासर = नंगे सर।

बरहम—वि० [फ़ा० बरहम] १. जिसे गुस्सा आ गया हो। क्रुद्ध। २. उत्तेजित। भड़का हुआ। ३. तितर बितर। उलट पलट। उ०—यही है अदना सी इक अदा से जिन्होने बरहम है की खुदाई।—भारतेंदु ग्रं०, २, पृ० ८५७।

बरहमन—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुल० सं० ब्राह्मण] पंडित। ब्राह्मण। उ०—क्या शेख व क्या बरहमन जब आशिकी में आवे। तसवी करे फरामोश जुन्नार भूल जावे।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० १५।

बरहा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० बहा या बाहा] [स्त्री० अल्पा० बरही] १. खेतों में सिंचाई के लिये बनी हुई छोटी नाली। उ०—तरह तरह के पक्षी कलोल कर रहे थे, बरहों में चारों तरफ जल बह रहा था।—रणधीर (शब्द०)। २. नाला। उ०—बरहे हरे भरे सर जित तित। हित फुहार की झमक रहति नित।—घनानंद, पृ० २८८।

बरहा[२]—संज्ञा पुं० [देश०] मोटा रस्सा।

बरहा[३]—संज्ञा पुं० [सं० बर्हि] मयूर। मोर। उ०—(क) तहँ बरहा निरतत बचन मुख दुति अलि चकोर बिहंग। वलि भार सहित गोपाल झूलत राधिका अरधंग।—सूर (शब्द०)। (ख) उहाँ बरहा जनु उप्परि केल। किने तब दीठ हिया छबि मेल।—पृ० रा०, २५।२३४।

बरही[१]—संज्ञा पुं० [सं० बर्हि] १. मयूर। मोर। उ०—लता लचत बरही नचत रचत सरस रसरंग। घन बरसत दरसत दृगन सरसत हियै अनंग।—स० सप्तक, पृ० ३६०। २. साही नाम का जंगली जंतु। उ०—पुनि शत सर छाती महँ दीन्हें। दीसहु भुज बरही सम कीन्हे।—विश्राम (शब्द०)। ३. अग्नि। आग। (डिं०)। ४. मुरगा। ५. द्रुम। वृक्ष।—अनेकार्थ०, पृ० १४३। ६. अग्नि।—अनेकार्थ०, पृ० १४३।

बरही[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बारह+ई (प्रत्य०)] १. प्रसूता का वह स्नान तथा अन्यान्य क्रियाएँ जो संतान उत्पन्न होने के बारहवें दिन होती हैं। २. संतान उत्पन्न होने के दिन से बारहवाँ दिन।

बरही[३]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पत्थर आदि भारी बोझ उठाने का मोटा रस्सा। २. जलाने की लकड़ी का भारी बोझा। ईंधन का बोझा। उ०—(क) शक्ति भक्त सों बोलि दिनहि प्रति बरही डारै।—नाभा जी (शब्द०)। (ख) नित उठ नौवा

नाव चढ़त है बरही बेरा बारि उही।— कबीर (शब्द०)।

बरहीपीड़Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० बर्हिपीड] मोर के परों का बना हुआ मुकुट। मोरमुकुट। उ०—वेणु बजाय बिलास कियो वन धौरी धेनु बुलावत। बरहीपीड़ दाम गुंजामणि अद्‌भुत वेष बनावत।—सूर (शब्द०)।

बरहीमुखⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० बर्हिमुख] देवता।

बरहीं—संज्ञा पुं० [हिं० बरही] संतान उत्पन्न होने के दिन से बारहवाँ दिन। बरही। इसी दिन नामकरण होता है। विशेष—दे० 'बरही'। उ०—चारों भाइन नामकरन हित बरही साज सजायो।—रघुराज (शब्द०)।

बरांडल—संज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज के उन रस्सों में कोई रस्सा जो मस्तूल को सीधा खड़ा रखने के लिये उसके चारो ओर, ऊपरी सिरे से लेकर नीचे जहाज के भिन्न भिन्न भागो तक बाँधे जाते हैं। बारांडा। बरांडाल। २. जहाज में इसी प्रकार के और कामो में आनेवाला कोई रस्सा। (लश०)।

बरांडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० बरामदा'। २ दे० 'बरांडल'।

बरांडाल—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बरांडल'।

बरांडी—संज्ञा स्त्री० [अं० ब्रैंडी] एक प्रकार की बिलायती शराब। ब्रांडी। उ०—शंपेन और बराडी को मात करनेवाली किन्नरी सुरा यहाँ मौजूद है।—किन्नर०, पृ० ३७।

बरा[१]—संज्ञा पुं० [सं० बटी] उड़द की पीसी हुई दाल का बना हुआ, टिकिया के आकार का एक प्रकार का पक्वान्न जो घी या तेल में पकाकर यों ही या दही, इमली के पानी में डालकर खाया जाता है। बड़ा। उ०—(क) बरी बरा बेसन बहु भाँतिन व्यंजन विविध अनगनियाँ। डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनियाँ।—सूर (शब्द०)। (ख) सो दारि भिजोइ धोइ पीसि के वाके बरा करति हुती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १७३।

बरा†[२]—संज्ञा पुं० [सं० बट] बरगद का पेड़।

बरा[३]—संज्ञा पुं० [देश०] भुजदंड पर पहनने का एक आभूषण। बहुँटा। टाँड़। उ०—बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर छरा धरि ढूकति आवैं।—घनानंद, पृ० २१२।

बराई[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ा+ई या आई (प्रत्य०)] दे० 'बड़ाई'। उ०—सरधा भगति की बराई भले साधि परैं बाधि ये सुदृष्टि बिसवास सम तूल हैं।—प्रियादास (शब्द०)।

बराई[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गन्ना।

बराक[१]—संज्ञा पुं० [सं० वराक] १. शिव। २. युद्ध। लड़ाई।

बराक[२]—वि० १. शोचनीय। सोच करने के योग्य। २. नीच। अधम। पापी। दुखिया। ३. बपुरा। बेचारा। उ०—सोहै जहँ वृषभान तहँ को है इंद्र बराक।—अनेकार्थ०, पृ० १२।

बराकⓅ[३]—क्रि० वि० [हिं० बार+एक] थोड़ा। नाममात्र। किंचित्। मनाक्। उ०—सुंदर जो सतसंग मैं बैठे आइ बराक। सीतल और सुगंध ह्वै चंदन की ढिग ढाक।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७४१।

बराट[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० वराटिका] कौड़ी। कपर्दिका। उ०—भयो करतार बड़े कूर को कृपालु पायो नाम प्रेम पारस हौं लालची बराट को।—तुलसी (शब्द०)।

बराट[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० वरारी] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ से २८ दंड तक है। हनुमत के मत से यह भैरव राग की रागिनी मानी गई है।

बराटक—संज्ञा पुं० [सं० वराटक] कौड़ी। उ०—कृपण बराटक पावियाँ, नाटक करे निलज्ज।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ३२।

बराड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरार (देश)] बरार और खानदेश की रूई।

बराद—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरार] दे० 'बरार'।

बरात—संज्ञा स्त्री० [सं० वरयात्रा] १. विवाह के समय वर के साथ कन्यापक्षवालों के यहाँ जानेवाले लोगों का समूह, जिसमें शोभा के लिये बाजे, हाथी, घोड़े, ऊँट या फुलवारी आदि भी रहती है। वरपक्ष के लोग, जो विवाह के समय वर के साथ कन्यावालों के यहाँ जाते हैं। जनेत।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—निकलना।—सजना।—सजाना।

२. कहीं एक साथ जानेवालो का बहुत बड़े लोगों का समूह। ३ उन लोगों का समूह जो मुरदे के साथ श्मशान तक जाते हैं (क्व०)।

बराती—संज्ञा पुं० [हिं० बरात+ई (प्रत्य०)] बरात में वर के साथ कन्या के घर तक जानेवाला। विवाह में वरपक्ष की ओर से संमिलित होनेवाला। २. शव के साथ श्मशान तक जानेवाला (क्व०)।

बरानकोट—संज्ञा पुं० [अं० ब्राउनकोट] १. वह बड़ा कोट या लबादा जो जाड़े या बरसात मे सिपाही लोग अपनी वर्दी के ऊपर पहनते हैं। २. दे० 'ओवरकोट'।

बराना[१]—क्रि० अ० [सं० वारण] १. प्रसंग पड़ने पर भी कोई बात न कहना। मतलब की बात छोड़कर और और बातें करना। बचाना। उ०—बैठी सखीन की सोभै सभा सबै के जु नैनन माँझ बसै। बूझै ते बात बराइ कहै मन ही मन केशवराइ कहै।—केशव (शब्द०)। २. बहुत सी वस्तुओं या बातों में से किसी एक वस्तु या बात को किसी कारण छोड़ देना। जान बूझकर अलग करना। बचाना। उ०—साँवरे कुँवर के चरन के चिह्न बराइ बधू पग धरति कहा धौं जिय जानि कै।—तुलसी (शब्द०)। ३. रक्षा करना। हिफाजत करना। बचाना। उ०—हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई।—तुलसी (शब्द०)। ४. खेतों में से चूहों आदि को भगाना।

बराना[२]—क्रि० स० [सं० वरण] बहुत सी चीजों में से अपने इच्छानुसार कुछ चीजें चुनना। देख देखकर अलग करना।

छाँटना। उ०—(क) आसिष आयसु पाइ कपि सीय चरन सिर नाइ। तुलसी रावन बाग फल खात बराइ बराइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८७। (ख) यादव बीर बराई इक हलधर इक आपै ओर।—सूर (शब्द०)।

बराना[३]†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बालना'। (जलाना)। उ०—देवो गुण लियो नीके जल सो पछारि करि करी दिव्य बाती दई दिये में बराइ कै।—प्रियादास (शब्द०)।

बराना[४]—क्रि० अ० [सं० वारि] १. सिंचाई का पानी एक नाली से दूसरी नाली में ले जाना। २. खेतों में पानी देना।

बराबर[१]—वि० [फ़ा० बर ?] १. मान, मात्रा, संख्या, गुण, महत्व, मूल्य, आदि के विचार से समान। किसी के मुकाबिले में उससे न कम न अधिक। तुल्य। एक सा। जैसे,—(क) चौड़ाई में दोनों कपड़े बराबर हैं। (ख) सिर के सब बाल बराबर कर दो। (ग) एक रुपया चार चवन्नियों के बराबर है। (घ) इसके चार बराबर हिस्से कर दो। २. समान पद या मर्यादावाला। जैसे,—(क) यहाँ सब आदमी बराबर हैं। (ख) तुम्हारे बराबर झूठा ढूँढ़ने से न मिलेगा।

मुहा०—बराबर का=(१) बराबरी करनेवाला। समान। जैसे,—बराबर का लड़का है, उसे मार भी तो नहीं सकते। (२) सामने या बगल का। बराबर छूटना=बिना हार जीत के निर्णय के कुश्ती या बाजी समाप्त होना। बराबर से निकलना=समीप से समान भाव से आगे बढ़ना।

३. जिसकी सतह ऊँची नीची न हो। जो खुरखुरा न हो। समतल।

मुहा०—बराबर करना=समाप्त कर देना। अंत कर देना। न रहने देना। जैसे,—उन्होंने दो ही चार बरस में अपने बड़ों की सब कमाई बराबर कर दी।

४. जैसा चाहिए वैसा। ठीक।

बराबर[२]—क्रि० वि० १. लगातार। निरंतर। बिना रुके हुए। जैसे, बराबर आगे बढ़ते जाना। २. एक ही पंक्ति में। एक साथ। जैसे, सब सिपाही बराबर चलते हैं। ३. साथ। (क्व०)। जैसे,—हमारे बराबर रहना। ४. सदा। हमेशा। जैसे,—आप तो बराबर यही कहा करते हैं।

यौ०—बराबर बराबर=(१) पास पास। साथ साथ। (२) आधा आधा। समान समान।

बराबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बराबर+ई (प्रत्य०)] १. बराबर होने की क्रिया या भाव। समानता। तुल्यता। २. सादृश्य। ३. मुकाबिला। सामना।

बरामद[१]—वि० [फ़ा०] १. जो बाहर निकला हुआ हो। बाहर आया हुआ। सामने आया हुआ। २. खोई हुई, चोरी गई हुई या न मिलती हुई वस्तु जो कहीं से निकाली जाय। जैसे, चोरी का माल बरामद करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बरामद[२]—संज्ञा स्त्री० १. वह जमीन जो नदी के हट जाने से निकल आई हो। दियारा। गंगबरार। २. निकासी। आमदनी। उ०—बडो तुम्हार बरामद हूँ को लिखि कीनो है साफ।—सूर (शब्द०)।

बरामदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बरामद होना। प्राप्ति। मिलना।

बरामदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बरामदह्] १. मकानों में छाया हुआ वह तंग और लंबा भाग जो मकान की सीमा के कुछ बाहर निकला रहता है और जो खंभों, रेलिंग या घुड़िया आदि के आधार पर ठहरा हुआ होता है। बारजा। छज्जा। २. मकान के आगे का वह स्थान जो ऊपर से छाया या पटा हो पर सामने या तीनों ओर खुला हो। दालान। ओसारा।

बरामीटर—संज्ञा पुं० [अं० बैरोमीटर] दे० 'बैरोमीटर'।

बराम्हण, बराम्हन†—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण] दे० 'ब्राह्मण'। उ०—प्राए भाट बराम्हन लगन धराइन हो।—कबीर०, श०, भा० ४, पृ० २।

बराय[१]—अव्य० [फ़ा०] वास्ते। लिये। निमित्त। जैसे, बराय खुराक, बराय नाम।

बराय(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'बड़ाई'। उ०—तुका मिलना तो भला मन सूँ मन मिल जाय। ऊपर ऊपर माटी घसनि उनकी कौन बराय।—दक्खिनी०, पृ० १०९।

बरायन—संज्ञा पुं० [सं० वर+आयन (प्रत्य०)] वह लोहे का छल्ला जो ब्याह के समय दूल्हे के हाथ में पहनाया जाता है। इसमें रत्नों के स्थान में गुंजा लगे रहते हैं। उ०—बिहँसत आव लोहारिनि हाथ बरायन हो।—तुलसी (शब्द०)। २. विवाह के अवसर पर मंडप में स्थापित कलश।

बरार[१]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का जंगली जानवर। २. वह चंदा जो गाँवों में घर पीछे लिया जाता है। ३. मध्य-प्रदेश का एक भाग जो अब महाराष्ट्र का अंग है।

बरार[२]—वि० [फ़ा०] [संज्ञा बरारी] पूर्ण करनेवाला। २. लाने अथवा ले जानेवाला। (समासांत मे)।

बरारक—संज्ञा पुं० [देश०] हीरा। (डिं०)।

बरारा(पु)†—वि० [देश०; या हिं० बड़ा+रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० बरारी] बड़ा। जबरदस्त। महान्। उ०—(क) खट तीसूँ वंस तणां खितधारी विग्रह रूप बरारा है।—रघु० रू०, पृ० २७७। (ख) आस पास अमराय बरारी। जहँ लग फूल तिती फुलवारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ११९।

बरारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो दोपहर के समय गाई जाती है। कोई कोई इसे भैरव राग की रागिनी मानते हैं।

बरारीश्याम—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमे सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

बराव—संज्ञा पुं० [हिं० बराना+आव (प्रत्य०)] बराना का भाव। बचाव। परहेज। निवारण। उ०—मानहुँ बिधि खंजन लरै शुक करत बराव।—विश्राम० (शब्द०)।

बरास[१]—संज्ञा पुं० [सं० पोतास ?] एक प्रकार का कपूर जो भीमसेनी कपूर भी कहलाता है। विशेष—दे० 'कपूर'।

बरास[2]—संज्ञा पुं० [अं० ब्रेस] जहाज में पाल की वह रस्सी जिसकी सहायता से पाल को घुमाते हैं

बराह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बराह'। उ०—सेसनाग और राजा बासुक बराह मुर्छित होइ आई।—कबीर० श०, भा० २, पृ० १२।

बराह[2]—क्रि० वि० [फ़ा०] १. के तौर पर। जैसे, बराह मेहरबानी। २. जरिए से। द्वारा।

बराही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घटिया ऊन।

बरिअर†—वि० [हिं० बरियार] दे० 'बरियार'। उ०—गर्वहि मन्त्रि वाद खिन आवा। मति बरिअर औ गरब निवावा।—चित्रा०, पृ० १३६।

बरिअरा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बरियार[1]'।

बरिआई[1]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बरियाई'।

बरिआई[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'बरियाई[2]'।

बरिआत†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरात'। उ०—विधु बरिआती धीर समीर।—विद्यापति, पृ० १६५।

बरिआर†—वि० [हिं०] [वि० स्त्री०] बरिआरि दे० 'बरियार'। उ०—(क) यह सोहिल बरिआर जो हुतों होत भिनुसार।—चित्रा०, पृ० १४६। (ख) अस बरिआरि मारि विधि कीन्हा। पुरुषन्ह आइ सरन जिन लीन्हा।—चित्रा०, पृ० १४२।

बरिच्छा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरच्छा'।

बरिबंड(पु)—वि० [सं० बलवन्त] बरबंड। बली। दुर्धर्ष। उ०—(क) क्रोध उपजाय भृगुनंद बरिबंड को।—केशव (शब्द०)। (ख) विधि विरुद्ध कछु सूझ परत नहिं कहा करे बरिबंड हुमाऊँ।—अकबरी०, पृ० ६०।

बरिया(पु)†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेरा] समय। अवसर। काल। दे० 'बेरिया'। उ०—(क) दादू नीकी बरिया आय करि, राम जपि लीन्हा। आतम साधन सोधि करि कारिज भल कीन्हा।—दादू०, पृ० ४१। (ख) करि लै सुकृत यह बरिया न आवै फेरि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४१६।

बरिया(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्ली, वल्लरी] लता। बेलि। उ०—फूलन बरिया फूल है फैली अंग न समाय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५६।

बरिया†[3]—संज्ञा पुं० [हिं० बारी] दे० 'बारी'। उ०—नौवा भूले बरिया भूले, भूले पंडित ज्ञानी।—कबीर० श०, भा० २, पृ० १०७।

बरिया(पु)†[4]—वि० [सं० बलिन्] बलवान्। ताकतवर। उ०—तुलसिदास को प्रभु कोसलपति सब प्रकार बरियो।—तुलसी (शब्द०)।

बरिया[5]—संज्ञा स्त्री० [सं० वटिका] बटी। बरी।

बरियाई†[1]—क्रि० वि० [सं० बलात्] हठात्। जबरदस्ती से। उ०—मन्त्रिन पुर देखा बिनु साई। मो कहँ दीन राज बरियाई।—तुलसी (शब्द०)।

बरियाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरियार] १. बलवान् होने का भाव। बलशालिता। ताकतवरी। २. बलप्रयोग। जबरदस्ती।

बरियार†—वि० [हिं० बल + आर (प्रत्य०)] बली। बलवान्। मजबूत। उ०—कीन्हेसि कोई निभरोसी, किन्हेसि कोइ बरियार।—जायसी ग्रं०, पृ० २।

बरियारा—संज्ञा पुं० [सं० बला] एक छोटा झाड़दार छतनारा पौधा जो हाथ सवा हाथ ऊँचा होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तुलसी की सी पर कुछ बड़ी और खुलते रंग की होती हैं। इसमें पीले पीले फूल लगते हैं जिनके झड़ जाने पर कोदो के से बीज पड़ते हैं। वैद्यक में बरियारा कड़ुवा, मधुर, पित्तातिसारनाशक, बलवीर्यवर्धक, पुष्टिकारक और कफदोषविशोषक माना जाता है। इसके पौधे की छाल से बहुत अच्छा रेशा निकलता है जो अनेक कामों में आ सकता है। इस पौधे को खिरेटी, बीजबंध और बनमेथी भी कहते हैं।

पर्या०—वाट्यपुष्पी। समांशा। विहला। बलिनी। बला। ओदनी। समंगा। भद्रा। खरककाष्टिका। कल्याणिनी। भद्रबला। मोटापाटी। बलाढ्या। शीतपाकी। वाट्यबाटी। मिलया। वाटिका। खरयष्टिका। ओदनाह्वा। वातघ्नी। कनका। रक्ततंडुला। क्रूरा। प्रहासा। वारिगा। फणिजिह्विका। जयती। कठोरयष्टिका।

बरियाल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पतला घास। बाँसी।

बरिला†—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा, बरा] पकौड़ी या बड़े की तरह का एक पकवान। उ०—बने अनेक अन्न पकवाना। बरिल इडरहर स्वादु महाना।—रघुराज (शब्द०)।

बरिल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] सज्जीखार।

बरिवंड(पु)—वि० [सं० बलवत्, हिं० बलवंत] १. बलवान्। बली। २. प्रचंड। प्रतापी।

बरिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बडिश। बंसी [को०]।

बरिषना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बरसना'।

बरिषा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्षा] दे० 'वर्षा'। उ०—ये श्यामघन तू दामिनि प्रेमपुंज बरिषा रस पीजै।—हरिदास (शब्द०)।

बरिष्ठ—वि० [सं० वरिष्ठ] दे० 'वरिष्ठ'।

बरिस†—संज्ञा पुं० [सं० वर्ष] वर्ष। साल। उ०—(क) पाँच बरिस महँ भई सो बारी। दीन्ह पुरान पढ़इ बइसारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) तापस बेष विशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी।—तुलसी (शब्द०)।

बरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वटी, प्रा० बड़ी] गोल टिकिया। बटी। २. उर्द या मूँग की पीठी के सुखाए हुए छोटे छोटे गोल टुकड़े जिनमें पेठे या आलू के कतरे भी पड़ते हैं। ये घी में तलकर पकाए जाते हैं। उ०—पापर, बरी अचार परम शुचि। अदरख औ निबुवन ह्वै है रुचि।—सुर (शब्द०)। ३. वह मेवा या मिठाई जो दूल्हे की ओर से दुलहिन के यहाँ जाती है।

बरी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरना (=जलना)] एक प्रकार का कंकड़ जो फूँके जाने के बाद चूने की जगह काम में आता है। कंकड़ का चूना।

बरी³—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास या कदन्न जिसके दानों को बाजरे में मिलाकर राजपूताने की ओर गरीब लोग खाते हैं।

बरी⁴—वि० [फ़ा०] १. मुक्त। छूटा हुआ। बचा हुआ। जैसे, इलजाम से बरी। २. खाली। फारिग (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—हो जाना। उ०—बरी हो जाने की गुलाबी आशा उसके कपोलों पर चमक रही थी।—ज्ञान०, पृ० ५।

बरी‡⁵—वि०[सं० बली] दे० 'बली'। उ०—बरम नियाउ चलइ सत भाखा। दूवर बरी एक सम राखा।—जायसी (शब्द०)।

बरीक—वि० [हिं० बारीक] पतला। सूक्ष्म। उ०—जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम। दादू महल बरीक है, दुइ के नाहीं ठाम।—संतबानी, भा० १, पृ० ६५।

बरीवर्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बलीवर्द'।

बरीस‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'वर्ष'। उ०—(क) जानि लखन सम देहिं असीसा। जियहु सुखी सय लाख बरीसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नंद महर के लाड़िले तुम जीओ कोटि बरीस।—सूर (शब्द०)।

बरीसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० बरसना] दे० 'बरसना'। उ०—(क) सघन मेघ होइ साम बरीसहिं।—जायसी (शब्द०)। (ख) समय गेले मेघे बरीसब, कीदहुँ से जलधार।—विद्यापति, पृ० १२०।

बरीसानु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरसाना'। उ०—बरीसानु गिरि गाइऐ, परम पुनीत सुथान।—घनानंद, पृ० २४१।

बरु(पु)¹—अव्य [सं० वर (=श्रेष्ठ, भला)] भले ही। ऐसा हो जाय तो हो जाय। चाहे। कुछ हर्ज नहीं। कुछ परवा नहीं। उ०—(क) सूरदास बरु उपहास सहौंई सुर मेरे नंद सुवन मिलै तो पै कहा चाहिए।—सूर (शब्द०)। (ख) बरु तीर मारहु लषनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।—मानस, २।१००।

बरु†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'वर'। उ०—लिख लाई सिय को बरु ऐसो। राजकुमारहि देखिय ऐसो।—केशव (शब्द०)।

बरुआ†—संज्ञा पुं० [सं० बटुक, प्रा० बडुअ] १. बटु। ब्रह्मचारी। जिसका यज्ञोपवीत हो गया हो पर जो गृहस्थ न हुआ हो। २. ब्राह्मणकुमार। ३. उपनयन संस्कार। जनेऊ का संस्कार।

बरुआ—संज्ञा पुं० [हिं० बरना] मूँज के छिलके की बनी हुई बद्धी जिससे डालियाँ बनाई जाती हैं।

बरुक†—अव्य० [हिं० बरु+क (प्रत्य०)] दे० 'बरु'। उ०—(क) निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई।—मानस २।४७। (ख) नहिं नैमित्तिक बरुक नित्य की बात बतावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२।

बरुन(पु)‡—संज्ञा पुं०[सं० वरुण] दे० 'वरुण'। उ०—बरुन कहत कवि नीर कहँ, बरुन स्याम को नाम।—अनेकार्थ०, पृ० १४३।

बरुना¹—संज्ञा पुं० [सं० वरुण] एक सीधा सुंदर पेड़ जिसकी पत्तियाँ साल में एक बार झड़ती हैं। बन्ना। बलासी।

विशेष—कुसुम काल में यह पेड़ फूलों से लद जाता है। फूल सफेद और सुगंधित होते हैं। इसकी लकड़ी चिकनी और मजबूत होती है जिसे खरादकर अच्छी अच्छी चीजें बनती हैं। ढोल, कंघियाँ और लिखने की पट्टियाँ इस लकड़ी की अच्छी बनती हैं। बरुना भारतवर्ष के सभी प्रांतों में होता है और बरसात में बीजों से उगता है। इसे बन्ना और बलासी भी कहते हैं।

बरुना²—संज्ञा स्त्री० [सं० वरुणा] दे० 'वरुणा' (नदी)।

बरुना(पु)³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरुनी'। उ०—धनुष सम है भृकुटी, बरुना चोखी बान।—इंद्रा०, पृ० १८।

बरुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० वरण (=ढकना)] पलक के किनारे पर के बाल। बरौनी। उ०—(क) अंजन बरुनी पनच करि लोचन बान चलाय।—(शब्द०)। (ख) बरुनी बघंबर में गूदरी पलक दोऊ, कोए राते बसन भगौहैं भेष रखियाँ।—देव (शब्द०)।

बरुला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बल्ला'।

बरुवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरुआ'।

बरुहा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बर्ह] मोरपंख।

यौ०—बरुहाचंद=मोरपंखों का चाँद। उ०—बीच बीच बरुहाचंद फूलनि के सेहरा माई।—छीत०, पृ० ३६।

बरूँज—संज्ञा पुं० [देश०] देवदार की जाति का एक एक पेड़। उ०—याद है क्या, ओट में बरूँज की प्रथम बार।—इत्यलम्, पृ० १६७।

बरूथ—संज्ञा पुं० [सं० वरूथ] दे० 'वरूथ'। उ०—चहुँ दिसि बरूथ बनाइ। तिन राम घेरे जाइ।—मानस, ६।

बरूथी—संज्ञा स्त्री० [सं० वरूथ] एक नदी जो सई और गोमती के बीच में है। उ०—बहुरि बरूथी सरित लखि उतरि गोमती आसु। निरख्यो साल बिसाल बन बिबिध बिहंग बिलासु।—रघुराज (शब्द०)।

बरूद—संज्ञा पुं० [फ़ा० बारूद] दे० 'बारूद'। उ०—भरत तोस दानन कोउ, सिगरा भरत बरूदहिं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४।

बरेंड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० वरण्डक (= गोला, गोल लकड़ी)] १. लकड़ी का वह मोटा गोल लट्ठा जो खपरैल या छाजन की

लंबाई के वल एक पाखे से दूसरे पाखे तक रहता है। इसी के आधार पर छप्पर या छाजन का टट्टर रहता है। २. छाजन या खपरैल के बीचोबीच का सबसे ऊँचा भाग। उ०—यह उपदेश संत ना भाए जो चढ़ि कहौ बरेंड़े।—सूर (शब्द०)।

बरेंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरेंड़ा'। उ०—छानि बरेंड़ि ओ पाट पछीति मयारि कहा किहि काम के कोरे।—अकबरी०, पृ० ३५४।

बरे(पु)†[1]—क्रि० वि० [सं० बल, हिं० बर] १. जोर से। बलपूर्वक। २. जबरदस्ती से। ३. ऊँची आवाज से। ऊँचे स्वर से। उ०—बोलि उठौगी बरे तेरो नाँव जो बाट मे लालन ऐसी करोगे।—(शब्द०)।

बरे[2]—अव्य० [सं० वर्त (=पलटा), हिं० बद, बदे] १. पलटे में। २. निमित्त। वास्ते। लिये। खातिर। उ०—हाजिर मैं हौं हुजूर में रावरे सेवा बरे सहिहै लघु भाई।—रघुराज (शब्द०)।

बरेखी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँह + रखना] स्त्रियों की भुजा पर पहनने का एक गहना।

बरेखी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बर + देखना, बरदेखी] विवाह संबंध के लिये वर या कन्या देखना। विवाह की ठहरौनी। उ०—घरघाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी। तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लोग कहैं पोच सो न सोच न सँकोच मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।—तुलसी (शब्द०)।

बरेज, बरेजा—संज्ञा पुं० [सं० वाटिका, प्रा० वाडिअ] पान का बगीचा। पान का भीटा।

बरेठ† बरेठा—संज्ञा पुं० [देश०] रजक। धोबी।

बरेत[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरेता'।

बरेत[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] मंथनरज्जु। मथनी की रस्सी।

बरेता—संज्ञा पुं० [हिं० बरना, बरना + एत (प्रत्य०)] सन का मोटा रस्सा। नार।

बरेदी†—संज्ञा पुं० [देश०] चरवाहा। ढोर चरानेवाला।

बरेवा†—संज्ञा पुं० [सं० वाटिका, वाडिआ] दे० 'बरेज'।

बरेषी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरेखी'। उ०—जो तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी। रहि न जाप बिनु किए बरेषी।—तुलसी (शब्द०)।

बरैंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरेंड़ा'।

बरो[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बार, बाल] आल की जड़ का पतला रेशा। (रँगरेज)।

बरो[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक घास जिससे बागों को हानि पहुँचती है।

बरो‡[3]—वि० [हिं०] दे० 'बड़ा'।

बरोक[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बर + रोक] वह द्रव्य जो कन्या पक्ष से वर पक्ष को यह सूचित करने के लिये दिया जाता है कि संबंध की बातचीत पक्की हो गई। इसके द्वारा वर रोका रहता है। अर्थात् उससे और किसी कन्या के साथ विवाह की बातचीत नहीं हो सकती। बरच्छा। फलदान। उ०—(क) राजा कहै गरब से अहौ इंद्र सिवलोक। सो सरवरि हैं मोरे कासे करउँ बरोक।—जायसी ग्रं०, पृ० २०। (ख) भा बरोक तब तिलक सँवारा।—जायसी ग्रं०, पृ० ११६।

बरोक[2]—संज्ञा पुं० [सं० बलौक] सेना। फौज।

बरोक[3]—क्रि० वि० [सं० बलौक] बलपूर्वक। जबरदस्ती। उ०—धावन तहाँ पठावहु देहिं लाख दस रोक। होइ सो बेली जेहिं बारी आनहिं सबहि बरोक।—जायसी (शब्द०)।

बरोठा—संज्ञा पुं० [सं० द्वार+कोष्ठ, हिं० बार + कोठा] १. ड्योढ़ी। पौरी। उ०—चढे पयोधर कों चितै जात कितै मति खोइ। छन मैं घन रस बरसिहै रहौ बरोठे सोइ।—स० सप्तक, पृ० २८४। २. बैठक। दीवानखाना।

मुहा०—बरोठे का चार = द्वारपूजा। द्वारचार।

बरोधा†—संज्ञा पुं० [देश०] वह खेत या भूमि जिसमें पिछली फसल कपास की रही हो।

बरोबर‡—वि० [हिं०] दे० 'बराबर'।

बरोरु, बरोरू(पु)—वि० [सं० वरोरु] दे० 'वरोरु'। उ०—जानसि मोर सुभाउ बरोरू।—मानस, २।२६।

बरोह—संज्ञा स्त्री० [सं० वट, हिं० बर + रोह (= उगनेवाला)] बरगद के पेड़ के ऊपर की डालियों में टँगी हुई सूत या रस्सी के रूप की वह शाखा जो क्रमशः नीचे की ओर बढ़ती हुई जमीन पर जाकर जड़ पकड़ लेती है। बरगद की जटा।

बरौंछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बार + ओंछना] सूअर के बालों की बनी हुई कूँची जिससे सुनार गहना साफ करते हैं।

बरौखा†—संज्ञा पुं० [हिं० बड़ा > बड़ + ऊख] एक प्रकार का गन्ना जो बहुत ऊँचा या लंबा होता है। बड़ोखा।

बरौठा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरोठा'।

बरौनी†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरुनी'। उ०—आँसू बरौनियों तक आए, नीचे न किंतु गिरने पाए।—साकेत, पृ० १५६।

बरौनी†[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौका बर्तन साफ करनेवाली मजदूरनी। उ०—थोड़ी देर में बरौनी चौका साफ करने आई।—शुक्ल अभि० ग्रं० (जी०), पृ० ७।

बरौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बड़ी, बरी] बड़ी या बरी नाम का पकवान। उ०—बढ़ी सँवारी और फुलौरी। औ खँड़वाना लाय बरौरी।—जायसी (शब्द०)।

बर्कंदाज—संज्ञा पुं० [फा० बर्कन्दाज] दे० 'बरकंदाज'। उ०—अधिकारियों ने सरकारी बर्कंदाजों और तहसील के चपरासियों को बड़े बड़े प्रलोभन देकर काम करने के लिये तैयार किया।—रंगभूमि, भा० १, पृ० ८२६।

बर्क¹—संज्ञा स्त्री० [अ० बर्क] बिजली । विद्युत् ।

बर्क²—वि० १. तेज । चालाक । २. चट उपस्थित होनेवाला । पूर्ण रूप से अभ्यस्त ।

बर्कत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरकत' ।

बर्कर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकरा । २. कोई भी पशु । ३. बधिर व्यक्ति । बहरा । ४. क्रीड़ा । परिहास [को०] ।

बर्की—वि० [फ़ा० बर्क + ई (प्रत्य०)] विद्युत् संबंधी । बिजली का [को०] ।

बर्खास्त— वि० [हिं०] दे० 'बरखास्त' ।

बर्ग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. युद्धास्त्र । २. दल । पत्ता (को०) ।

बर्छा—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० अल्पा० बर्छी] दे० 'बरछा' ।

बर्ज(पु)—वि० [सं० वर्य] दे० 'वर्य' । उ०—रामकथा मुनिबर्ज बखानी । सुनी महेश परम सुख मानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

बर्जना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बरजना' ।

बर्णन—संज्ञा पुं० [सं० वर्णन] दे० 'वर्णन' ।

बर्णना¹(पु)—क्रि० स० [हिं० वर्णन] वर्णन करना । बयान करना ।

बर्णना²—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्णना] दे० 'वर्णना' ।

बर्त‡¹—संज्ञा पुं० [सं० व्रत] दे० 'व्रत' ।

बर्त(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० बरेत] दे० 'बरेता' । उ०—मुक्ति पंथ की ओर मँसूबे सूँ चला । तैसे बर्त पै जाय जो नट भूला कला ।—चरण० बानी पृ० ६५ ।

बर्तन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरतन' ।

बर्तना—क्रि० सं० [सं० वर्तन (=वृत्ति, व्यवहार)] १. आचरण करना । व्यवहार करना । जैसे, मित्रता बर्तना । २. व्यवहार में लाना । काम में लाना । इस्तेमाल करना । जैसे,—यह बरतन नया है । किसी ने इसे बर्ता नहीं है । उ०—इनसे प्रजा को रात दिन बर्तना पड़ता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८२ ।

बर्ताव—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बरताव' ।

बर्द—संज्ञा पुं० [सं० बलद] बैल । वृष ।

बर्दाश्त—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरदाश्त' ।

बर्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वर्ण] दे० 'वर्ण' ।

यौ०—बर्नाश्रम = दे० 'वर्णाश्रम' । उ०—बनाश्रम में निष्ट इष्ट रत सिष्ट अदूषित ।—श्यामा० (भू०) पृ० ४ ।

बर्नना(पु)—क्रि० स० [हिं०] वर्णन करना ।

बर्नर—संज्ञा पुं० [अं०] लैंप का वह अंश जिसमे बत्ती लगी रहती है और आवश्यकतानुसार कमबेशी की जा सकती है ।

बर्फ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बर्फ़] १. हवा मे मिली हुई भाप के अत्यंत सूक्ष्म अणुओं की तह जो वातावरण की ठंढक के कारण आकाश में बनती और भारी होने के कारण जमीन पर गिरती है । पाला । हिम । तुषार ।

विशेष—गिरते समय यह प्रायः रुई की तरह मुलायम होती है और जमीन पर गिरकर अधिक ठंढक के कारण जम जाती है । जमने से पहले यदि चाहे तो इसे एकत्र करके ठोस गोले आदि के रूप में भी बना सकते हैं । जमने पर इसका रंग बिलकुल सफेद हो जाता है । ऊँचे पहाड़ों आदि पर प्रायः सरदी के दिनों मे यह अधिकता से गिरती है और जमीन पर इसकी छोटी मोटी तहें जम जाती हैं जिन्हें पीछे से फावड़े आदि से खोदकर हटाना पड़ता है ।

क्रि० प्र०—गलना ।—गिरना ।—पड़ना ।

२. बहुत अधिक ठंढक के कारण जमा हुआ पानी जो ठोस और पारदर्शी होता है और जो आघात पहुँचने पर टुकड़े टुकड़े हो जाता है ।

विशेष—जिस समय जल में तापमान की ४ अंश की गरमी रह जाती है तब वह जमने लगता है और ज्यों ज्यों जमता जाता है त्यों त्यों फैलकर कुछ अधिक स्थान घेरने लगता है, यहाँ तक कि जब वह बिलकुल जम जाता है और उसमें तापमान O (शून्य) अंश जाता तब उसके आकार में प्रायः १/११ वें अंश की वृद्धि हो जाती है । जबतक उसका तापमान घटकर ४° तक नहीं पहुँच जाता तबतक तो वह सिमटता और नीचे बैठता है पर जब उसका तापमान ४° से भी कम होने लगता है तब वह फैलकर हलका होने लगता है और अंत में आस पास के पानी पर तैरने लगता है । साधारणत; जल में तैरती हुई बर्फ का ९/१० वाँ भाग पानी के भीतर और १/१० भाग पानी के ऊपर होता है । प्रायः जाड़े के दिनों में अथवा और किसी प्रकार सरदी बढ़ने के कारण समुद्र आदि का बहुत सा जल प्राकृतिक रूप से जमकर बर्फ बन जाता है ।

क्रि० प्र०—गलना ।—जमना ।

मुहा०—बर्फ होना = बहुत ठंढा होना । जैसे,—मरने से एक घंटे पहले उनका सारा शरीर बर्फ हो गया ।

३. मशीनों आदि की सहायता अथवा और कृत्रिम उपायों से ठंढक पहुँचाकर जमाया हुआ पानी जो साधारणतः बाजारों में बिकता है और जिससे गर्मी के दिनों में पीने के लिये जल आदि ठंढा करते हैं ।

क्रि० प्र०—गलना ।—गलाना ।—जमना ।—जमाना ।

४. दे० 'ओला' ।

बर्फ²—वि० १. अत्यंत शीतल । बरफ की तरह ठंढा । २. बर्फ की तरह श्वेत । एक दम सफेद ।

बर्फानी—वि० [फ़ा० बर्फ़ानी] बर्फ भरी । अत्यंत शीतल । उ०—मालूम होता था जैसे शीतकाल की बर्फानी हवा ने मेरे भीतर घर कर लिया हो ।—संन्यासी, पृ० २९० ।

बर्फिस्तान—संज्ञा पुं० [फ़ा० बर्फ़ + स्तान; तुल० सं० स्थान] वह स्थान जहाँ बर्फ ही बर्फ हो । बर्फ का मैदान या पहाड़ ।

बर्फी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बर्फ़ + ई] एक मिठाई जो चाशनी के

साथ जमे हुए खोए आदि के कतरे काट काटकर बनाई जाती है।

यौ०—करनसाही बर्फी = एक मिठाई जो बेसन की तली हुई बुंदिया शीरे मे डालकर जमा देने से बनती है।

बर्फी³—वि० [फ़ा० बर्फ़+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'बर्फानी'। उ०—मानो बर्फी समुंदर के ऊपर घोड़ो के सदृश दौड़ रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२।

बर्फीला—वि० [फ़ा० बर्फ़+हिं० ईला (प्रत्य०)] बर्फ से भरा हुआ। बर्फ से युक्त। बर्फ का। उ०—राजपूताने में पहले बर्फीले पहाड़ थे।—प्रा० भा० प०, पृ० ३।

बर्बट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० बर्बटी] एक प्रकार का अन्न। राजमाष [को०]।

बर्बटा, बर्बटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। गणिका। वारस्त्री। २. राजमाष। †३. बोड़ा [को०]।

बर्बणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीले वर्ण की एक मक्खी [को०]।

बर्बर¹—वि० [सं०] १. भ्रष्ट उच्चारण किया हुआ। हकलाता हुआ। २ घूँघरदार। बल खाया हुआ। (बाल)।

बर्बर²—संज्ञा पुं० १. घुँघराले बाल। २. अनार्य। वर्णाश्रम विहीन असभ्य मनुष्य। जंगली आदमी। ३. एक पौधा। ४. एक कीड़ा। ५. एक प्रकार की मछली। ६. एक प्रकार का नृत्य। ७. अस्त्रों की झनकार। हथियारों की आवाज। ८. पीतचंदन।

बर्बर³—वि० १. जंगली। असभ्य। २. अशिष्ट। उद्दंड। उ०—परम बर्बर खर्ब गर्ब पर्वत चढ़ो अज्ञ सर्वज्ञ जनमानि जनावै।—तुलसी (शब्द०)।

बर्बरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बर्बरी। बनतुलसी। २. एक प्रकार की मक्खी। ३. एक नदी का नाम।

बर्बरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बनतुलसी। २. ईंगुर। ३. पीतचंदन।

बर्बरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घुँघराले बाल। २. पीत चंदन। ३. भीम के पुत्र घटोत्कच का बेटा।

विशेष—इसकी माता का नाम कामकटंकटा था। अपमेय बलशाली बर्बरीक को कुछ ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त थी जिनके बल से पलक झपते महाभारत के युद्ध मे भाग लेनेवाले समग्र वीरो को वह मार सकता था। जब यह युद्ध में सहायता देने आया तब इसकी शक्ति का परिचय प्राप्त कर कृष्ण ने अपनी कूटनीति से इसे रणचंडी को बलि चढ़ा दिया। महाभारत युद्ध की समाप्ति तक युद्ध देखने की इसकी कामना कृष्ण के बरदान से पूर्ण हुई और इसका कटा सिर अंत तक युद्ध देखता और वीरगर्जन करता रहा।

बर्बुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृक्ष। २. जल [को०]।

बर्म्म—संज्ञा पुं० [सं० वर्म] दे० 'वर्म'। उ०—अंग बर्म्म चर्म्म सु कीन। सिर टोप ओप सुदीन।—ह० रासो, पृ० १२३।

बर्याइ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बरियाई'। उ०—बंसीवट की गैल मैं हों सखि गई भुलाइ। तब बरयाइ जदुराज नै दीन्ही राह बताइ।—स० सप्तक, पृ० ३७८।

बर्याना—क्रि० स० [हिं०] 'बराना'। उ०—बूझत बात बरयाइ कहै मन ही मन केसवराइ हँसै।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८।

बर्रे—संज्ञा पुं० [सं० वरट] बर्रे। भिड़।

बर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० बरना] रस्से की खिंचाई जो कुआर सुदी चौदस (बाँटा चौदस) को गाँवों में होती है। जो लोग रस्सा खींच ले जाते हैं यह समझा जाता है कि वे साल भर कृतकार्य होंगे।

बर्राक—वि० [अ०] १. चमकीला। जगमगाता हुआ। २. तेज। वेगवान्। ३. तीव्र। ४. चतुर। चालाक। होशियार। ५. बहुत उजला। धवला। सफेद। ६. खूब मश्क किया हुआ। पूर्ण रूप से अभ्यस्त। जैसे, सबक बर्राक कर डालना।

बर्राना—क्रि० अ० [अनुध्व० बर बर] व्यर्थ बोलना। फिजूल बकना। प्रलाप करना। २. नीद या बेहोशी में बकना। स्वप्न की अवस्था में बोलना।

बर्रै¹—संज्ञा पुं० [सं० वरट] भिड़ नाम का कीड़ा। ततैया। तितैया। उ०—बर्रै बालक एक सुभाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

बर्रै†²—संज्ञा पुं० एक काँटेदार क्षुप जिसके पुष्प केसर के रंग के और लाल पीले श्वेत होते हैं। इसके बीज का तेल बनता है। यह एक कदन्न है।

बर्रो—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

बर्रोही—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरोह] दे० 'बरोह'। उ०—कोउ बर्रोही खुनि खानि कै बरत पलीते।—प्रेमघन०, भा०१, पृ० ५।

बर्ष—संज्ञा पुं० [सं० वर्ष] भूखंड। देश। उ०—जब लगि रहि तुव वर्ष मँह मम आयस कव बच।—प० रासो०, पृ० २०।

बर्सात—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बरसात'।

बर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] मयूरपिच्छ। दे० 'बर्ह'।

बर्हण¹—वि० [सं०] मजबूत। शक्तिशाली [को०]।

बर्हण²—संज्ञा पुं० पत्र। पत्ता [को०]।

बर्हि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. कुश। कुशा [को०]।

बर्ही—संज्ञा पुं० [सं० बर्हिन्] १. मयूर। मोर। २. एक प्रकार का गंध [को०]।

बलंद—वि० [फ़ा०] [संज्ञा बलंदी] ऊँचा। उ०—क्रम क्रम जाति कहूँ पुनि गंगा। करति अपार करारन भंगा। मंद मंद कहुँ चलत स्वच्छंदा। नीच होति कहुँ होति बलंदा।—रघुराज (शब्द०)।

बलंधरा—संज्ञा स्त्री० [सं० बलन्धरा] महाभारत के अनुसार भीमसेन की एक स्त्री का नाम।

बलंबो—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़।

विशेष—यह वृक्ष भारत के अनेक भागों में पाया जाता है। इसके फल खट्टे होते हैं और अचार के काम में आते हैं।

फलों के रस से लोहे पर के दाग भी साफ किए जाते हैं। इसकी लकड़ी से खेती के औजार भी बनाए जाते हैं।

बलइया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बलैया'। उ०—संत की सकल बलइया लेवैं। संत कूँ अपनो सर्वस देवैं।—चरण० बानी, पृ० ३१०।

बल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शक्ति। सामर्थ्य। ताकत। जोर। बूता।
पर्या०—पराक्रम। शक्ति। वीर्य।
मुहा०—बलभरना = बल दिखाना। जोर दिखाना। जोर करना। बल की लेना = इतराना। घमंड करना।
२. भार उठाने की शक्ति। सँभार। सह। ३. आश्रय। सहारा। जैसे, हाथ के बल, सिर के बल, इत्यादि। ४. आसरा। भरोसा। बिर्ता। उ०—(क) जो अंतहु अस करतब रहेऊ। माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बल पाई।—तुलसी (शब्द०)। ५. सेना। फौज। ६. बलदेव। बलराम। ७. एक राक्षस का नाम। ८. वरुण नामक वृक्ष। ९. सत्य (को०)। १० काम (को०)। ११. पुरुष तेज। शुक्र (को०)। १२. औषधि (को०)। १३. मोटाई। स्थूलता (को०)। १४. रक्त (को०)। १५. काक, कौआ (को०)। १६. हाथ (को०)। १७. पार्श्व। पहलू। जैसे, दहने बल, बाएँ बल।

बल²—संज्ञा पुं० [सं० वलि (= झुर्री मरोड़) अथवा वलय] ऐंठन। मरोड़। वह चक्कर या घुमाव जो किसी लचीली या नरम वस्तु को बढ़ाने या घुमाने से बीच बीच में पड़ जाय। पेच।
क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।
मुहा०—बल खाना = ऐंठ जाना। पेच खाना। बटने या घुमाने से घुमावदार हो जाना। बल देना = (१) ऐंठना। मरोड़ना। (२) बटना।
२. फेरा। लपेट। जैसे,—कई बल बाँधोगे तब यह न छूटेगा।
३. लहरदार घुमाव। घोलापन लिए वह टेढ़ापन जो कुछ दूर तक चला गया हो। पेच।
क्रि० प्र०—पड़ना।
मुहा०—बल खाना = घुमाव के साथ टेढ़ा होना। कुंचित होना। उ०—कंधे पर सुंदरता के साथ बनाई गई काल साँपनी ऐसी बल खाती हिलती मन मोहनेवाली चोटी थी।—अयोध्या सिंह (शब्द०)।
४. टेढ़ापन। कज। खम। जैसे,—इस छड़ी में जो बल है वह हम निकाल देंगे।
मुहा०—बल निकालना = टेढ़ापन दूर करना।
५. सुकड़न। शिकन। गुलझट।
क्रि० प्र०—पड़ना।
६. लचक। झुकाव। सीधा न रहकर बीच से झुकने की मुद्रा।
मुहा०—बल खाना = लचकना। झुकना। उ०—(क) पतली कमर बल खाती जाति (गीत)। (ख) बल खात दिग्गज कोल कूरम शेष सिर हालति मही।—विश्राम (शब्द०)।
७. कज। कसर। कमी। अंतर। फर्क। जैसे,—(क) पाँच रुपए का बल पड़ता है नहीं तो इतने में मैं आपके हाथ बेच देता। (ख) इसमें उसमें बहुत बल है।
मुहा० - बल खाना = घाटा सहना। हानि सहना। खर्च करना। जैसे,—बिना कुछ बल खाए यहाँ काम न होगा। बल पड़ना = (१) अंतर होना। फर्क रहना। (२) कमी वा घाटा होना।
८. अनपके जौ की बाल।

बल(पु)³—अव्य [हिं०] तरफ। ओर। उ०—साँवला सोहन मोहन गभरू इत बल आइ गया।—घनानद, पृ० ४४।

बल†⁴—संज्ञा पुं० [हिं०] 'बाल' शब्द का समासगत रूप। जैसे, बलटुट और बलतोड़।

बलकंद—संज्ञा पुं० [सं० बलकन्द] माला कंद।

बलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वप्न जो अर्धरात्रि के बाद हो। २. दूध और सीरे का मिश्रण [को०]।

बलकट¹—संज्ञा पुं० [हिं० बाल + काटना] पौधे की बाल को बिना काटे तोड़ लेना।

बलकट²—वि० [?] पेशगी। अगाऊ। अगौढ़ी।

बलकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बल (= जौ की बाल) + कट] मुसलमानी राज्य काल की एक प्रकार की किस्त जो फसल कटने के समय वसूल की जाती थी।

बलकना—क्रि० अ० [सं० वल्गन (= बढ़कर बोलना)] १. उबलना। उफान खाना। खौलना। २. उमड़ना। उमगना। उमंग या आवेश मे होना। जोश में होना। उ०—(क) प्रेम पिए वर बारुणी बलकत बल न सँभार। पग डग मग जित तित धरति मुकुलित अलक लिलार।—सूर (शब्द०)। (ख) बलकि बलकि बोलति बचन ललकि ललकि लपटाति। बिहारी (शब्द०)। ३. बकना झकना। बढ़कर बोलना। उ०—कहत है और करत है औरे बलकत फिरत अनेरा।—भीखा० श०, पृ० ४।

बलकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बलकना] बलकने की स्थिति या भाव। मौज। उफान। लहर। तरंग। उ०—नीकी पलकनि पीक लीक झलकनि सोहै, रस बलकनि उनमदि न कहूँ रुके।—घनानद, पृ० ११।

बलकर¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० बलकरी] बल देनेवाला। बलजनक।

बलकर²—संज्ञा पुं० हड्डी।

बलकल(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० वल्कल] दे० 'वल्कल'। उ०—उरझ्यो काहू रुख में कहूँ न बलकल चीर।—शकुंतला, पृ० ३७।

बलकाना†—क्रि० स० [हिं० बलकना] १. उबालना। खौलाना। २. उभारना। उमगाना। उत्तेजित करना। उ०—जोबन

ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जसु न नसावा।
—तुलसी (शब्द०)।

बलकारक—वि० [स०] दे० 'बलकर'।

बलकारी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बलकर'।

बलकारीⓊ[2]—वि० [सं० बल+कारिन्] बली। बलवान्। बल करनेवाला। उ०—सत सामंत सुर बलकारी। तिन सम जुद्ध सु देव विचारी।—पृ० रा०, २५।७७।

बलकाय—संज्ञा पुं० [सं०] सेना। फौज [को०]।

बलकुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह चालीस पचास हाथ लंबा और दस बारह अंगुल मोटा होता है। इसकी गाँठें लंबी होती हैं जिनपर गोल छल्ला पड़ा रहता है। यह बहुत मजबूत होता है और पाइट बाँधने के काम के लिये बहुत अच्छा होता है। इसे भलुआ, बड़ा बाँस, सिल बरुआ आदि भी कहते है। यह पूर्वीय भारत में होता है।

बलकौहाँ†—वि० [हिं० बलकना] उन्माद या आनंदयुक्त। उल्लास युक्त। उ०—नैन छलकोहे वर वैन बलकौहें औ कपोल फलकौहें झलकौहें भए अंग है।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४१।

बलक्ष[1]—वि० [सं०] धवल। श्वेत [को०]।

यौ०—बलक्षगु=श्वेत किरणवाला—चंद्रमा।

बलक्ष[2]—संज्ञा पुं० श्वेत वर्ण [को०]।

बलगनाⓊ—क्रि० अ० [सं० वल्गन] दे० 'बलकना'। उ०—बलगत बचन बीर मुख भावे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

बलगम—संज्ञा पुं० [अ० बलगम] [वि० बलगमी] श्लेष्मा। कफ।

बलगर†—वि० [हिं० बल+गर] १. बलवान्। बली। २. दृढ़। मजबूत।

बलचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राज्य। साम्राज्य। २. राज्यशासन। ३. सेना (को०)।

बलज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० बलजा] १. अन्न की राशि। २. शस्य। फसल। ३. नगर का द्वार। ४. द्वार। ५. खेत। ६. युद्ध।

बलज[2]—वि० १. बल देनेवाला। २. बलोत्पन्न।

बलजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. एक प्रकार की जुही। ३. रस्सी। ४. सुंदर स्त्री (को०)।

बलटुट, बलतोड़—संज्ञा पुं० [हिं० बाल+टूटना] दे० 'बरटुट', 'बरतोड़'।

बलदंड—संज्ञा पुं० [सं० बलदण्ड] कसरत करने के लिये लकड़ी का बना हुआ एक ढाँचा जिसमें एक काठ के दोनों ओर कमान की तरह लकड़ियाँ लगी होती हैं। इसे गदठेदंड भी कहते हैं।

बलद[1]—वि० [सं०] बलदायक [को०]।

बलद[2]—संज्ञा पुं० [स०] १. बैल। उ०—अचरिज बात ईम सयल असेस, बलद ते मानजे हुलि वहइ गाय।—वी० रासो, पृ० ७९। २. जीवक नामक वृक्ष। ३. गृहाग्नि का एक भेद जिससे पौष्टिक कर्म किया जाता है।

बलदर्प—संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति या बल का गर्व [को०]।

बलदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा।

बलदाऊ—संज्ञा पुं० [सं० बलदेव वा बल+हिं० दाऊ] बलदेव। बलराम। उ०—(क) गए नगर देखन को मोहन बलदाऊ के साथ। पुर कुलवधू झरोखन झाँकत निरखि निरखि मुसकात —सूर (शब्द०)। (ख) लै हर मूसर ऊसर ह्वै कहू आयो तहाँ वनि कै बलदाऊ।—पद्माकर (शब्द०)।

बलदिया—संज्ञा पुं० [स० बलद (=बैल)+हिं० इया (प्रत्य०)] वह कर जो गौओं, भैसों, आदि को चराने के बदले में दिया या लिया जाय। चराई।

बलदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बलद (=बैल)] बैलों का झुंड या समूह। बरदी।

बलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्णचंद्र के भाई जो रोहिणी के पुत्र थे। बलदाऊ। बलराम। २. वायु। हवा (को०)।

बलद्विट्—संज्ञा पुं० [स० बलद्विष्] बल दानव के शत्रु इंद्र [को०]।

बलधियाⓊ†—संज्ञा पुं० [सं० बलद] बलीवर्द। बैल। उ०—कबिरा पाँच बलधिया, ऊजर ऊजर जाहिं। बलिहारी वा दास की पकरि जो राखै बाहिं।—कबीर सा० सं०, पृ २२।

बलन—संज्ञा पुं० [सं०] बलवर्धन की क्रिया। शक्ति अर्जन करना [को०]।

बलना—क्रि० अ० [सं० वर्हण वा ज्वलन] जलना। लपट फेंक-कर जलना। दहकना।

बलनिषूदन—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

बलनेह—संज्ञा पुं० [हिं० बल+नेह] एक संकर राग जो रामकली, श्याम, पूर्वी, सुंदरी, गुणकली और गांधार से मिलकर बना है।

बलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. सेनानायक (को०)।

बलपांडुर—संज्ञा पुं० [सं० बलपाण्डुर] कुंद का पौधा।

बलपुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ।

बलपुष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहू मछली।

बलप्रमथनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

बलप्रसू—संज्ञा स्त्री० [स०] बलराम की माता। रोहिणी [को०]।

बलबलाना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १. ऊँट का बोलना। २. व्यर्थ बकवाद। ३. निरर्थक शब्द उच्चारण करना।

बलबलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बलबलाना] १. ऊँट की बोली। २. व्यर्थ बकवाद। ३. उमंग। ४. अहंकार। घमंड।

बलबीज—संज्ञा पुं० [सं० बला+बीज] कंघी नाम के पौधे का बीज।

बलबीरⓊ—संज्ञा पुं० [हिं० बल (=बलराम)+बीर (=भाई)] बलराम के भाई कृष्ण। उ०—(क) छठ छ रागिनी गाय रिझावत मति नागर बलबीर। खेलत फाग संग गोपिन के

गोपवृंद की भीर ।—सूर (शब्द०) । (ख) ए री ! बलबीर के अहीरन की भीरन मे सिमिटि समीरन अबीर को अटा भयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

बलबूता—संज्ञा पुं० [सं० बल+वित्त] शक्ति । सामर्थ्य । ताकत । उ०—सम्राट् अपने ही बलबूते पर यह दुस्साहस कर बैठे ।—वै० न०, पृ० २९५ ।

बलभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषैला कीड़ा ।

बलभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बलदेव जी का एक नाम । २. लोध का पेड़ । ३. नील गाय । ४. भागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम । ५. बलशाली पुरुष (को०) । ६. एक प्रकार का बैल (को०) । ७. अनंत का एक नाम (को०) ।

बलभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुमारी । २. त्रायमाण नाम की लता । ३. नील गाय । ४. जंगली गाय ।

बलभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०] ।

बलभी—संज्ञा स्त्री० [सं० वलभि] वह कोठरी जो मकान के सबसे ऊपरवाली छत पर बनी हो । ऊपर का खंड । चौबारा । उ०—कंचन कलित नग लालन वलित सौध, द्वारिका ललित जाकी दिपति अपार है । ता ऊपर बलभी, विचित्र अति ऊँची, जासो निपटे नजीक सुरपति को अगार है ।—दास (शब्द०) ।

बलभृत्—वि० [सं०] बली । ताकतवर [को०] ।

बलम—संज्ञा पुं० [सं० वल्लभ] प्रियतम । पति । नायक । उ०—ताकि रहत छिन और तिय, लेत और को नाउँ । ए अलि ऐसे बलम की विविध भाँति बलि जाउँ ।—पद्माकर (शब्द०) ।

बलमा†—संज्ञा पुं० [सं० वल्लभ] दे० 'बलम' ।

बलमीक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वल्मीक] दे० 'बाँबी' ।

बलमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का प्रधान । सेनापति [को०] ।

बलय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वलय] दे० 'वलय' । उ०—जनु इह वलय नाड़िका लहै । जियति हौ किधौं मरि गई अहै ।—नंद ग्रं०, पृ० १५० ।

बलया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० वलय] कंगन । वलय । उ०—सरकी सारी सीस तें सुनतहिं आगम नाह । तरकी बलया कंचुकी दरकी फरकी बाह ।—स० सप्तक, पृ० २४८ ।

बलय्या—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बलैया' उ०—जी करता है तुझे चूम लूँ, ले लूँ मधुर बलय्या ।—हिल्लोल, पृ० १०१ ।

बलराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बलराम] कृष्ण के अग्रज । बलराम । उ०—ताल रस के पान ते अति मत्त भे बलराइ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २५७ ।

बलराम—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचंद्र के भाई जो रोहिणी से उत्पन्न हुए थे ।

विशेष—कृष्ण के साथ ये गोकुल में रहे और उनके साथ ही मथुरा में आए । ये स्वभाव के बड़े उद्दंड थे और मद्य पिया करते थे । इनका अस्त्र हल और मूसल था । सूत पौराणिक की धृष्टता पर क्रुद्ध होकर इन्होंने उन्हें मार डाला था ।

बलल—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. बलराम [को०] ।

बलवंड(पु)—वि० [सं० बलवन्त] बली । पराक्रमवाला । उ०—आगर इक लोह जटित लीनों बलवंड दुहूँ करनि असुर हयो भयो मांस पिंड ।—सूर (शब्द०) ।

बलवंत—वि० [सं० बलवन्त] बलवान् । बली । उ०—प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी ।—मानस ७।६२ ।

बलवत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शक्तिसंपन्नता । उत्कृष्टता । श्रेष्ठता [को०] ।

बलवर्जित—वि० [सं०] कमजोर । दुर्बल । बलरहित [को०] ।

बलवर्द्धक—वि० [सं०] बल बढ़ानेवाला [को०] ।

बलवर्द्धी—वि० [सं० बलवर्द्धिन्] [स्त्री० बलवर्द्धिनी] दे० 'बलवद्र्धक' ।

बलवा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बलवह्] १. दंगा । हुल्लड़ । खलबली । विप्लव । २. बगावत । विद्रोह ।

क्रि० प्र०—मचाना ।—करना —होना ।

बलवाई—संज्ञा पुं० [फ़ा० बलवा+ई (प्रत्य०)] १. बलवा करनेवाला । विद्रोही । बागी । २. उपद्रवी । फसादी ।

बलवान्—वि० [सं० बलवत्] [स्त्री० बलवती] १. बलिष्ठ । मजबूत । ताकतवर । जिसके शरीर में बल हो । २. सामर्थ्यवान् । शक्तिमान । ३. दृढ़ । मजबूत । ४. घना । गहरा । जैसे, अंधकार (को०) । ५. अधिक महत्व का । अधिक वजन का (को०) । ६. सेनायुक्त (को०) । ७. आठवें मुहूर्त का नाम (ज्यो०) ।

बलवार(पु)—वि० [हिं० बल+वार (=वाला)] बली । बलवान् ।

बलवर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

बलविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का व्यूहाकार संयोजन । सेनाओं का व्यूह विन्यास करना [को०] ।

बलवीर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बलबीर' ।

बलव्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] सेना को हराना या तितर बितर करना ।

बलव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि ।

बलशाली—वि० [सं० बलशालिन्] [स्त्री० बलशालिनी] बलवान् । बली ।

बलशील—वि० [सं०] बली । शक्तिशाली । शक्तिवाला ।

बलसाली(पु)—वि० [सं० बलशाली] दे० 'बलशाली' । उ०—राम सेन निज पाछे घाली । चले सकोप महा बलशाली ।—मानस, ६।६६ ।

बलसील(पु)—वि० [सं० बलशील] उ०—अंगद मयंद नल नील बलसील महाबालधी फिरावै मुख नाना गति लेत हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

बलसुम—वि० [हिं० बालू + सम] बलुआ। जिसमें बालू हो।

बलसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. विष्णु।

बलस्थ[1]—वि० [सं०] ताकतवर। मजबूत [को०]।

बलस्थ[2]—संज्ञा पुं० सिपाही। सैनिक [को०]।

बलहा—संज्ञा पुं० [सं० बलहन्] १. इंद्र। २. बल का, सेना का नाश करनेवाला। ३, श्लेष्मा। कफ।

बलहीन—वि० [सं०] निर्बल। कमजोर। उ०—छुधाछीन बलहीन रिपु सहजेहिं मिलिहहिं आइ।—मानस, १।१८१।

बलांगक—संज्ञा पुं० [सं० बलाङ्गक] वसंतकाल। वसंत ऋतु।

बला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरियारा नामक क्षुप। दे० 'बरियारा'। २. वैद्यक के अनुसार पौधों की एक जाति का नाम।

विशेष—इसके अंतर्गत चार पौधे माने जाते हैं—(क) बला या बरियारा। (२) महाबला या सहदेवी (सहदेइया)। (३) अतिबला या कँगनी और (४) नागबला या गँगेरन। ये चारों पौधे पौष्टिक माने जाते हैं और इन्हें 'बलाचतुष्टय' भी कहते हैं। इन चारों पौधों में 'राजबला' का मिश्रण 'बलापंचक' नाम से अभिहित है। इनके बीज, जड आदि का प्रयोग औषध में होता है।

३. मंत्र या विद्या का नाम जिससे युद्ध के समय योद्धा को भूख और प्यास नहीं लगती। ४. नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकों में छोटी बहन का संबोधन। ५. दक्ष प्रजापति की एक कन्या का नाम। ६. पृथ्वी। ७. लक्ष्मी। ८. जैनियों के ग्रंथानुसार एक देवी जो वर्तमान अवसर्पिणी में सत्रहवें अर्हत के उपदेशों का प्रचार करती है। ९. दे० 'बला'।

बला[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. आपत्ति। आफत। गजब। २. दुःख। कष्ट। ३. भूत। प्रेत। भूत प्रेत की बाधा। ४. रोग। व्याधि। जैसे,—इस बच्चे की सब बला तू ले जा।

मुहा०—बला का = गजब का। घोर। अत्यंत। बहुत बढा-चढ़ा। जैसे,—बला का बोलनेवाला है। (किसी की) बला ऐसा करे या करती है = ऐसा नहीं करता है या करेगा। जैसे,—(क) मेरी बला जाय अर्थात् मैं नहीं जाऊँगा। (ख) उसकी बला दुकान पर बैठे अर्थात् वह दुकान पर नहीं बैठता या बैठेगा। (ग) एक बार वह वहाँ हो आया फिर उसकी बला जाती है अर्थात् फिर वह नहीं गया। बला टालना = आपत्तियाँ दूर करना। संकट हटाना। उ०—सब बला टाल देस के सिर की।—चुभते०, पृ० ४४। बला पीछे लगना = (१) तंग करनेवाले आदमी का साथ में होना। (२) बखेडा साथ होना। किसी ऐसी बात से संबंध या लगाव हो जाना जिससे तंग होना पड़े। झंझट या आफत का सामना होना। बला पीछे लगाना = (१) बखेड़ा साथ करना। तंग करनेवाले आदमी को साथ में करना। (२) झंझट में डालना। बखेड़े में फँसाना। बला लगाना = परेशानी में डालना। उलझन में फसाना। उ०—परेशाँ हम हुए जुल्फ उनकी उलझी। बला मेरे लगाई अपने सर की।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २९। बला से = कुछ परवा नहीं। कुछ चिंता नहीं।

बलाइⓅ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बलाय] दे० 'बलाय'।

मुहा०—बलाइ लेना = मंगल कामना के साथ प्यार करना। उ०—पोछन मुख अपुने अंचल सौं, पुनि पुनि लेत बलाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४८।

बलाइⓅ[2]—वि० [?] बलशाली। बली। खोफनाक। भयंकर। बलाय। उ०—च्यारि सहस मीना प्रवल बैठे आइ बलाइ।—पृ० रा०, ७।७८।

बलाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बक। बगला। २. एक राजा का नाम जो भागवत के अनुसार पुरु का पुत्र और जह्नु का पौत्र था। ३. जातुकर्ण मुनि के एक शिष्य का नाम। ४. एक राक्षस का नाम। ५. शाकपूणि ऋषि के एक शिष्य का नाम।

बलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बगली। २. कामुकी स्त्री। ३. बगलों की पंक्ति। ४. गति के अनुसार नृत्य का एक भेद। ५. प्रेमिका। प्रिया (को०)।

बलाकारीⓅ—वि० [हिं०] दे० 'बलकारी'। उ०—कुए बलाकारी गर्वहारी अकलवारी गाजए।—राम० धर्म०, पृ० २८७।

बलाकाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरिवंश के अनुसार एक राजा का नाम जो अजक का पुत्र था। २. जह्नु के वंश का एक राजा।

बलाकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी आकृति के बगलों की एक जाति [को०]।

बलाकी[1]—संज्ञा पुं० [सं० बलाकिन्] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

बलाकी[2]—वि० जहाँ बहुत बगले हों। बलाकाओं से परिव्याप्त।

बलागत—संज्ञा स्त्री० [अ० बलागत] आलंकारिक ढंग से बात करने की शैली। उ०—बले अक्ल सूआ में कुछ होर था। हुनर के बलागत में बरजोर था।—दक्खिनी०, पृ० ८०।

बलाग्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति। २. सेना का अगला भाग।

बलाग्र[2]—वि० बलशाली। बली।

बलाठ—संज्ञा पुं० [सं० बलाट] मूँग।

बलाढ्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] माष। उड़द। उरद।

बलाढ्य[2]—वि० [सं०] बलवान। बलशाली। बलाग्र।

बलात्—क्रि० वि० [सं०] १. बलपूर्वक। जबरदस्ती। बल से। २. हठात्। हठ से।

बलात्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक कोई काम करना। जबरदस्ती कोई काम करना। २. अत्याचार। अन्याय। ३. किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध संभोग करना। ४. दे० 'बलात्कार दायन' (को०)।

बलात्कार दायन—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति के अनुसार ऋणी को मार पीटकर रुपया चुकता कराना।

बलात्काराभिगम—संज्ञा पुं० [सं०] बलात् किसी स्त्री के सतीत्व का नाश करना। जिनाबिलजब्र।

बलात्कारित—वि० [सं०] जिससे बलात्कार से कुछ कराया जाय। जिसपर बलात्कार करके कोई काम कराया जाय।

बलात्कृत—वि० [सं०] जिसके साथ बलात्कार किया गया हो।

बलात्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथीसूँड़ (हस्तिशुंडी) नाम का पौधा।

बलाधिक—वि० [सं०] जो बल में अधिक हो। अधिक शक्तिवाला [को०]।

बलाधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सैनिक काररवाई। २. सेना का प्रधान कार्यालय।

बलाधिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके अधिकार में सेना हो। सेनापति। उ०—बलाधिकृत पर्णदत्त की आज्ञा हुई कि महाराजपुत्र गोविंद गुप्त को, जिस तरह हो, खोज निकालो। —स्कंद०, पृ० ३८।

बलाधिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] शक्तिसंपन्नता। बल या सेना की अधिकता [को०]।

बलाधिक्षⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बलाध्यक्ष] दे० 'बलाध्यक्ष'। उ०—बलाधिक्ष चिंतामनि राइय। दिय निसान भूपति सुख पाइय। प० रासो, पृ० २०।

बलाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। सेनानायक।

बलानाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] बुलाना। उ०—कुँवर बलावे बाहुड़चा, राजमति मूकलावी सुमाई। —बी० रासो, पृ० २७।

बलानुज—संज्ञा पुं० [सं०] बलराम के छोटे भाई। कृष्ण [को०]।

बलान्वित—वि० [सं०] बलाढ्य। पराक्रमी [को०]।

बलापंचक—संज्ञा पुं० [सं० बलापञ्चक] बला, अतिबला नागबला, महाबला और राजबला नामकी पाँच ओषधियों के समुदाय का नाम। विशेष—दे० 'बला'।

बलाबंधⓅ‡—संज्ञा पुं० [देश०] अरावली। आड़बला नामक पर्वतमाला —उ०—कहै मतिराम, सब राजत अनूप गुन, राव भावसिंह बलाबंध सुलतान के।—मति० ग्रं०, पृ० ३७१।

बलाबल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल और अबल। २. महत्व और हीनता। उत्कृष्टता और लघुता (तुलनात्मक रूप से किन्ही दो का)।

बलामोटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी नाम की ओषधि।

बलाय¹—संज्ञा पुं० [सं०] बरुना नामक वृक्ष। बरना। बलास।

बलाय²—संज्ञा पुं० [अ० बला] १. आपत्ति। विपत्ति। बला। उ०—लालन तेरे मुख रहौं वारी। बाल गोपाल लगो इन नैननि रोगु बलाय तुम्हारी।—सूर (शब्द०)। २. दुख। कष्ट। उ०—हरि को मति पूछति इमि गायो बिरह बलाय। परत कान तजि मान तिय मिली कान्ह सों जाय।—पद्माकर (शब्द०)। ३. भूत प्रेत की बाधा। ४. दुखदायक रोग जो पीछा न छोड़े। व्याधि। उ०—अलि इन लोचन को कहूँ उपजी बड़ी बलाय। नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय।—बिहारी (शब्द०)। ५. पीछा न छोड़नेवाला शत्रु। अत्यंत दुखदायी मनुष्य। बहुत तंग करनेवाला आदमी। उ०—बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो बानर बड़ी बलाय घने घर घालि है।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बलाय ऐसा करे या करती है=ऐसा नहीं करता है या करेगा। दे० 'बला'। उ०—(क) तौ अनेक अवगुन भरी चाहै याहि बलाय। जो पति संपति हू बिना जदुपति राखे जाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जा मृगनैनी के सदा बेनी परसत पाय। ताहि देखि मन तीरथनि विकटनि जाय बलाय।—बिहारी (शब्द०)। (ग) उठि चलौ जो न मानै काहू की बलाय जानै मान सों जो पहिचानै ताके आइयतु है। —देव (शब्द०)। बलाय लेना=(अर्थात् किसी का रोग दुख अपने ऊपर लेना) मंगल कामना करते हुए प्यार करना।

विशेष—स्त्रियाँ प्राय: बच्चों के ऊपर से हाथ घुमाकर और फिर ऊपर ले जाकर इस भाव को प्रकट करती हैं। उ०—(क) निकट बुलाय बिठाय निरखि मुख आँचर लेति बलाय।—सूर (शब्द०)। (ख) लै बलाय मुकर लगायो निरखि मंगलचार गायो।—सूर (शब्द०)।

६. एक रोग जिसमें रोगी की उँगली के छोर या गाँठ पर फोड़ा हो जाता है। इसमें रोगी को बहुत कष्ट होता है और उँगली कट जाती या टेढ़ी हो जाती है।

बलायत—संज्ञा पुं० [हिं० विलायत] दे० 'विलायत'। उ०—बलायत की सब उन्नति का मूल लार्ड बेकन की यह नीति है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १५८।

बलाराति—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. विष्णु।

बलालक—संज्ञा पुं० [सं०] जलआँवला।

बलावलेप—संज्ञा पुं० [सं०] गर्व। अहंकार। बल का दर्प।

बलाश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बलास'।

बलास¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग जिसमें कफ और वायु के प्रकोप से गले और फेफड़े में सूजन और पीड़ा होती है, साँस लेने में कष्ट होता है। २. क्षय। यक्ष्मा (को०)।

बलास²—संज्ञा पुं० [सं० बलाय] बरुना नाम का पौधा।

बलासक—संज्ञा पुं० [सं०] रोग के कारण आँख की पुतलियों की सुफेदी पर आया हुआ पीलापन [को०]।

बलासबस्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग [को०]।

बलासम—संज्ञा पुं० [सं०] बुदध।

बलासवर्धन—वि० [सं०] कफ या श्लेष्मा बढ़ानेवाला [को०]।

बलासी¹—संज्ञा पुं० [सं० बलाय, विलासिन्] बलास। बरना। बन्ना नाम का पेड़।

बलासी[2]—वि० [सं० बलासिन्] यक्ष्मापीड़ित। क्षयग्रस्त।

बलाह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जल। सलिल [को०]।

बलाह[2]—संज्ञा पुं० [सं० बोल्लाह] वह घोड़ा जिसकी गरदन और दुम के बाल पीले हों। बुल्लाह। उ०—हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गुरं कोकाह बलाह सो पाँती।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० १५०।

बलाहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. एक दैत्य। ३. एक नाग। ४. सुश्रुत के अनुसार दर्वीकर जाति के साँपों के छब्बीस भेदों में एक का नाम। ५. कृष्णचंद्र के रथ के एक घोड़े का नाम। ६. मोथा। ७. लिंगपुराण के अनुसार शाल्मलि द्वीप के, और मत्स्यपुराण के अनुसार कुश द्वीप के एक पर्वत का नाम। ८. महाभारत के अनुसार जयद्रथ के एक भाई का नाम। ९. एक प्रकार का बगला।

बलाहर—संज्ञा पुं० [हिं० बुलाना] गाँव में होनेवाला वह कर्मचारी जो दूसरे गाँवों मे संदेसा ले जाता, गाँव में आए हुए लोगों की सेवा सुश्रूषा करता और उन्हें मार्ग दिखलाता हुआ दूसरे गाँव तक ले जाता है।

बलिंदम—संज्ञा पुं० [सं० बलिन्दम] विष्णु।

बलि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमि की उपज का वह अंश जो भूस्वामी प्रतिवर्ष राजा को देता है। कर। राजकर।

विशेष—हिंदू धर्मशास्त्रों में भूमि की उपज का छठा भाग राजा का अंश ठहराया गया है।

२. उपहार। भेंट। ३. पूजा की सामग्री या उपकरण। ४. पंच महायज्ञों मे चौथा भूतयज्ञ नामक महायज्ञ।

विशेष—इसमे गृहस्थों को भोजन में से ग्रास निकालकर घर के भिन्न भिन्न स्थानों में भोजन पकाने के उपकरणों पर तथा काक आदि जंतुओं के उद्देश्य से घर के बाहर रखना होता है।

५. किसी देवता का भाग। किसी देवता को उत्सर्ग किया कोई खाद्य पदार्थ। ६. भक्ष्य। अन्न। खाने की वस्तु। उ०—(क) बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहै नाग अरि भागू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आए भरत दीन ह्वै बोले कहा कियो कैकेयी माई। हम सेवक वा त्रिभुवनपति के सिंह को बलि कौवा को खाई।—सूर (शब्द०)। ७. चढ़ावा। नैवेद्य। भोग। उ०—पर्वत सहित धोइ ब्रज डारौ देउँ समुद्र बहाई। मेरो बलि औरहि लै पर्वत इनको करौं सजाई।—सूर (शब्द०)। (ख) बलि पूजा चाहत नही चाहत एकै प्रीति। सुमिरन ही मानै भलो यही पावनी रीति।—तुलसी (शब्द०)। ८. वह पशु जो किसी देवस्थान पर या किसी देवता के उद्देश्य से मारा जाय।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—बलि चढ़ना = मारा जाना। बलि चढ़ाना = बलि देना। देवता के उद्देश्य से घात करना।—देवार्पण के लिये वध करना। बलि जाना = निछावर होना। बलिहारी जाना। उ०—(क) तात जाऊँ बलि वेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कौशल्या आदिक महतारी आरति करत बनाय। यह सुख निरखि मुदित सुर नर मुनि सूरदास बलि जाय।—सूर (शब्द०)। बलि जाऊँ या बलि = तुम पर निछावर हूँ। (बात चीत में स्त्रियाँ इस वाक्य का व्यवहार प्रायः यों ही किया करती हैं)। उ०—छुवै छिगुनी पहुँचो गिलत अति दीनता दिखाय। बलि बावन को ब्योंत सुनि को बलि तुम्हैं पताय।—बिहारी (शब्द०)।

९. चँवर का दंड। १०. आठवें मन्वंतर में होनेवाले इंद्र का नाम। ११. असुर।—अनेकार्थ०, पृ० १४४। १२. विरोचन के पुत्र और प्रह्लाद के पौत्र का नाम। यह दैत्य जाति का राजा था। विष्णु ने वामन अवतार लेकर इसे छल कर पाताल भेजा था।

बलि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'वलि'। २. चमड़े की झुर्री। ३ स्त्रियों की नाभि के ऊपर की रेखा (को०)। ४. एक प्रकार का फोड़ा जो गुदावर्त के पास अर्शादि रोगों में उत्पन्न होता है। ५. अर्श का मस्सा। ६. मकान की छाजन का छोर या किनारा (को०)। ७. लक्ष्मी।—अनेकार्थ०, पृ० १४४।

बलि[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० बला (= छोटी बहिन)] सखी। उ०—ताकि रहत छिन और तिय लेत और को नाउँ। ए बलि ऐसे बलम को विविध भाँति बलि जाउँ।—पद्माकर (शब्द०)।

बलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नाग का नाम। २. वह व्यक्ति जो प्रति छठे दिन भोजन करता है (को०)।

बलिकर—वि० [सं०] १. बलि करनेवाला। २. सिकुड़न या झुर्री पैदा करनेवाला। ३. करदाता [को०]।

बलिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० बलिकर्मन्] बलिदान।

बलित(पु)[1]—वि० [हिं० बलि] बलिदान चढ़ाया हुआ। हत। मारा हुआ। उ०—बलित अवेर कुबेर बलिहि गहि देहुँ इंद्र अब। विद्याधरन अविद्य करौं बिनु सिद्धि सिद्ध सब।—केशव (शब्द०)।

बलित(पु)[2]—वि० [सं० वलित] दे० 'वलित'। उ०—भाग्यौ सुलतान जान बचत न जानि बेगि, बलित बितुंड पै विराजि बिलखाइ कै।—हम्मीर०, पृ० ४०।

बलिदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता के उद्देश्य से नैवेद्यादि पूजा की सामग्री चढ़ाना। २. बकरे आदि पशु देवता के उद्देश्य से मारना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बलिद्विष्—संज्ञा पुं० [सं०] बलि के शत्रु—विष्णु।

बलिध्वंसी—संज्ञा पुं० [सं० बलिध्वंसिन्] विष्णु [को०]।

बलिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० बलिनन्दन] बाणासुर।

बलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतिबला नाम की ओषधि। २. बरियरा [को०]।

बलिपशु—संज्ञा पुं० [हिं० बलि + पशु] वह पशु जो किसी देवता के उद्देश्य से मारा जाय। उ०—लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित तृन बलिपशु जैसे।—तुलसी (शब्द०)।

बलिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बलि का पुत्र—बाणासुर [को०]।

बलिपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा।

बलिपोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी पोय।

बलिप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] बलिदान।

बलिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोध का पेड़। २. कौवा।

बलिबंड—वि० [हिं०] दे० 'बलवंड'। उ०—प्रथियराज चहुआन बान पारथ बलिबंडह।—पृ० रा०, ६।१२८।

बलिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० बलिबन्धन] बलि को बाँधनेवाले विष्णु [को०]।

बलिभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा।

बलिभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बलिभुक्'।

बलिभृत—वि० [सं० बलिभृत्] १. करद। करदाता। कर देनेवाला। २. अधीन।

बलिभोज, बलिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा।

बलिभोजी—संज्ञा पुं० [सं० बलिभोजिन्] दे० 'बलिभोज'।

बलिया†—वि० [हिं० बल + इया (प्रत्य०) अथवा सं० बलीयस्] बलवान्। ताकतवर। जैसे,—किस्मत के बलिया। पकाई खीर, हो गया दलिया।—(कहा०)। उ०—जम किंकर मोर कि करत अंगे। रह अपराधी बलिया संगे।—विद्यापति, पृ० ५७६।

बलिवर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँड़। बैल।

बलिवैश्वदेव—संज्ञा पुं० [सं०] भूतयज्ञ नामक पाँच महायज्ञों में चौथा यज्ञ। इसमें गृहस्थ पाकशाला में पके अन्न से एक ग्रास लेकर मंत्रपूर्वक घर के भिन्न स्थानों में मूसल आदि पर तथा काकादि प्राणियों के लिये भूमि पर रखता है।

बलिश—संज्ञा पुं० [सं०] बंसी। कँटिया।

बलिष्ठ[1]—वि० [सं०] अधिक बलवान।

बलिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

बलिष्णु—वि० [सं०] अपमानित।

बलिसद्म—संज्ञा पुं० [सं० बलिसद्मन्] बलि का गृह या वेश्म। पाताल [को०]।

बलिसुत—संज्ञा पुं० [सं० बलिसुत] बलि का पुत्र। बाणासुर [को०]।

बलिहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बलिहारी'। उ०—जीवन या बलिहार, तुम्हारा पार न आया।—अर्चना, पृ० २२।

बलिहारना(पु)—क्रि० स० [हिं० बलि + हारना] निछावर कर देना। कुर्बान कर देना। चढ़ा देना। उ०—विश्व निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर। बलिहारौं त्रिभुवन धन उसपर वारौं काम करोर।—श्रीधर (शब्द०)।

बलिहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बलि + हारी] निछावर। कुरबान। प्रेम, भक्ति, श्रद्धा आदि के कारण अपने को उत्सर्ग कर देना। उ०—(क) सुख के माथे सिल परै हरि हिरदा सो जाय। बलिहारी वा दुःख की पल पल राम कहाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) बलिहारी अब क्यों कियो सैन साँवरे संग। नहिं कहुँ गोरे अंग ये भए भाँवरे रंग।—शृंगार सत० (शब्द०)। (ग) तुका बड़ो मैं ना मनूँ जिस पास बहुत दाम। बलिहारी उस मुख की जिस्से निकसे राम।—दक्खिनी०, पृ० १०७।

मुहा०—बलिहारी जाना = निछावर होना। कुरबान जाना। बलैया लेना। उ०—दादू उस गुरुदेव की मैं बलिहारी जाउँ। आसन अमर अलेख था लै राखे उस ठाउँ।—दादू (शब्द०)। बलिहारी लेना = बलैया लेना। प्रेम दिखाना। उ०—पहुँची जाय महरि मंदिर में करत कुलाहल भारी। दरसन करि जसुमति सुत को सब लेन लगी बलिहारी।—सूर (शब्द०)। बलिहारी है! = मैं इतना मोहित या प्रसन्न हूँ कि अपने को निछावर करता हूँ। क्या कहना है!

विशेष—सुंदर रूप रंग, शोभा, शील स्वभाव, आदि को देख प्रायः यह वाक्य बोलते हैं। किसी की बुराई, बेढंगेपन या विलक्षणता को देखकर व्यंग्य के रूप मे भी इसका प्रयोग बहुत होता है।

बलिहृत्[1]—वि० [सं०] १. बलि लानेवाला। भेंट लानेवाला। २. करप्रद। करदाता। कर देनेवाला।

बलिहृत्[2]—संज्ञा पुं० राजा।

बलींडा†—संज्ञा स्त्री० [सं० बलीक] बड़ेरा। उ०—औ लौ ठीका चढ़्या बलीडै जिनि पीया तिनि माना।—कबीर ग्रं०, पृ० ६०।

बली[1]—वि० [सं० बलिन्] बलवान्। बलवाला। पराक्रमी।

बली[2]—१. साँड़। वृषभ। २. महिष। ३. ऊँट। ४. शूकर। ५. एक तरह की चमेली। ६. बलराम। ७. सैनिक। सिपाही।

बलि[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० बलि, बली] १. चमड़े पर की झुर्री। २. वह रेखा जो चमड़े के मुड़ने या सिकुड़ने से पड़ती है। दे० 'वली'। ३. दे० †'बलि'। ४.(पु) लता। बल्ली।

बलीक—संज्ञा पुं० [सं०] छाजन के किनारे का भाग [को०]।

बलीता(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पलीता' उ०—दोइ पुड़ जोड़ चिगाई भाठी, चुया महारस भारी। काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी।—कबीर ग्रं०, पृ० ११०।

बलीन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिच्छू। २. एक असुर का नाम।

बलीन(पु)[2]†—वि० [सं० बलिन्] दे० 'बली'।

बलीना—संज्ञा स्त्री० [यू० फैलना] एक प्रकार की ह्वेल मछली।

बलीबैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बली + बैठक] एक प्रकार की बैठक जिसमें जंघे पर भार देकर उठना बैठना पड़ता है। इससे जाँघ शीघ्र भरती है।

बलीमुख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बलिमुख] बंदर। उ०—चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई।—तुलसी (शब्द०)।

बलीयस्[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० बलीयसी] अत्यधिक बलवाला।

बलवान्। उ०—विडंवना है विधि की बलीयसी।—प्रिय० प्र०, पृ० १७३। २. अधिक प्रभावपूर्ण या आकर्षक (को०)। ३. अधिक महत्व का (को०)।

बलीयस्²—क्रि० वि० पूरी तरह से। अत्यधिक [को०]।

बलीयान्—वि० [स० बलीयस्] बलवान्। सबल। सशक्त। जैसे,—प्रजा के बल से बलीयान् होने के वे प्रजा पर तो अनियंत्रित शासन करते रहना चाहते हैं।

बलीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौवा। काक। २. धूर्त या चालबाज व्यक्ति [को०]।

बलु¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बल'। उ०—जामवंत हनुमंत बलु कहा पचारि पचारि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८५।

बलु(पु)²—अव्य० [हिं०] दे० 'वरु' उ०—प्यास न एक बुझाई बुझै त्रैताप बलु।—शिवव (शब्द०)।

बलुआ¹—वि० [हिं० बालू] [स्त्री० बलुई] रेतीला। जिसमें बालू अधिक मिला हो। जैसे, बलुआ खेत, बलुई मिट्टी।

बलुआ²—सज्ञा पुं० वह मिट्टी या जमीन जिसमें बालू अधिक हो।

बलुआह, बलुआहा†—सज्ञा पु० [हिं० बालू] बालू का मैदान। वह मैदान जिधर बालू पड़ता हो। उ०—दिशा फराकत के लिये लोटा लेकर बलुआहा की ओर निकल गए।—रति०, पृ० १४१।

बलूच—संज्ञा पु० [देश० ?] एक जाति जिसके नाम पर देश का नाम पड़ा।

विशेष—यह जाति कब बलूचिस्तान में आकर बसी इसका ठीक पता नहीं है। बलूचिस्तान मे ब्रहुई और बलूची दो जातियाँ निवास करती हैं। इनमे से ब्रहुई जाति अधिक उन्नत और सभ्य है और उसका अधिकार भी बलूचों से पुराना है। बलूच पीछे आए। बलूचों में ऐसा प्रवाद है कि उनके पूर्वज अलिपो नगर से अरबों की चढ़ाई के साथ आए। अरबों की चढ़ाई बलूचिस्तान पर ईसा की आठवीं शताब्दी में हुई थी। बलूच सुन्नी शाखा के मुसलमान हैं।

बलूचिस्तान—संज्ञा पु० [फ़ा०] एक राज्य जो हिंदुस्तान के पश्चिमोत्तर कोण में है। इसके उत्तर मे अफगानिस्तान, पूर्व मे सिंधु प्रदेश, दक्षिण मे अरब का समुद्र और पश्चिम मे फारस है।

विशेष—ब्रहुई और बलूची इस देश के प्रधान निवासी हैं। इनमें ब्रहुई पुराने हैं। दे० 'बलूच'। इस देश के प्राचीन इतिहास के संबध में अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं। गंधार और काबोज के समान यह देश भी हिंदुओ का ही था, इसमें तो कोई सदेह नही। ऐसी कथा है कि यहाँ पहले शिव नाम का कोई राजा था जिसने सिंधु देशवालों के आक्रमण से अपनी रक्षा के लिये कुछ पहाड़ी लोगों को बुलाया। अंत में पहाड़ियो के सरदार कुंभर ने आकर सिंधवालों को हटाया और क्रमशः उस हिंदू राजा को भी अधिकारच्युत कर दिया। यह कुंभर कौन था, इसका पता नहीं। ईसा की आठवीं शताब्दी में अरबों का आक्रमण इस देश पर हुआ और यहाँ के निवासी मुसलमान हुए। आजकल बलूच और ब्रहुई दोनों सुन्नी शाखा के मुसलमान हैं।

बलूची—संज्ञा पुं० [देश०] बलूचिस्तान का निवासी।

बलूत—सज्ञा पुं० [अ०] माजूफल की जाति का एक पेड़ जो अधिकतर ठंढे देशों में होता है।

विशेष—योरोप में यह बहुत होता है। इसके अनेक भेद होते हैं जिनमें से कुछ हिमालय पर भी, विशेषतः पूर्वी भाग (सिक्किम आदि) में होते हैं। हिंदुस्तानी बलूत बज, मारू या सीतासुपारी, सफेद (कश्मीर) के नाम से प्रसिद्ध है जो हिमालय में सिंधु नद के किनारे से लेकर नैपाल तक होता है। शिमला नैनीताल, मसूरी आदि में इसके पेड़ बहुत मिलते हैं। लकड़ी इसकी अच्छी नहीं होती, जल्दी टूट जाती है। अधिकतर ईंधन और कोयले के काम में आती है। घरो में भी कुछ लगती है। पर दार्जिलिंग और मनीपुर की ओर जो बूक नाम का बलूत होता है उसकी लकड़ी मजबूत होती है। योरप मे बलूत का आदर बहुत प्राचीन काल से है। इंगलैंड के साहित्य में इस तरुराज का वही स्थान है जो भारतीय साहित्य में वट या आम का है। यूरोप का बलूत मजबूत और टिकाऊ होता है।

बलूल—वि० [सं०] बलयुक्त। शक्तिशाली।

बलूला—संज्ञा पुं० [अनु०] बुल्ला। बुदबुद्। उ०—(क) देखत ही ही देखत बलूला सो बिलाइहै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४१६। (ख) बहु सितभानु भानु उस वारिधि के हैं विविध बलूले।—पारिजात, पृ० १८।

बलैया—संज्ञा स्त्री० [अ० बला, हिं० बलाय] बला। बलाय।

मुहा०—(किसी की) बलैया लेना=(अर्थात् किसी का रोग, दुःख ऊपर लेना) मंगलकामना करते हुए प्यार करना। दे० 'बलाय लेना'। बलैया लेता हूँ=बलिहारी है! इस बात पर निछावर होता हूँ! क्या कहना है! पराकाष्ठा है! बहुत ही बढ़ चढ़ कर है! (सुंदरता, रूप, गुण, कर्म, आदि देख सुन कर इसका प्रयोग करते हैं। यद्यपि 'बलि जाना और 'बलैया लेना' व्युत्पत्ति के विचार से भिन्न हैं पर मुहाविरे हिलमिल से गए हैं)। उ०—लाज बाँह गहे की, नेवाजे की सँभार सार, साहब न राम सो, बलैया लीजै सील की।—तुलसी (शब्द०)।

बल्कल—संज्ञा पुं० [सं० वल्कल] दे० 'वल्कल'।

बल्कस—संज्ञा पुं० [सं०] वह तलछट या मैल जो आसव [illegible] में नीचे बैठ जाती है।

बल्कि—अव्य० [फ़ा०] १. अन्यथा। इसके विरुद्ध। प्रत्युत। जैसे,—उसे मैंने नहीं उभारा बल्कि मैंने तो बहुत रोका। २. ऐसा न होकर ऐसा हो तो और अच्छा। बेहतर है। जैसे,—बल्कि तुम्हीं चले जाओ, यह सब बखेड़ा ही दूर हो जाय।

बल्ब—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक प्रकार की वनस्पति । गुट्ठी ।

विशेष—इसमें बहुत सी पत्तियों के योग से प्रायः कमल के आकार की बहुत बड़ी कली या गुट्ठी सी बन जाती है। इसके नीचे के भाग से जड़ें निकलती हैं जो जमीन के अंदर फैलती हैं और ऊपरी मध्य भाग में से पतला तना निकल कर ऊपर की ओर बढ़ता है जिसमें सुगंधित फूल लगते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

२. शीशे का वह खोखला लट्टू जो प्रायः कमल के आकार का होता है और जिसके अंदर बिजली की रोशनी के तार लगे रहते हैं। ३. शीशे की किसी नली का चौड़ा हिस्सा ।

बल्वलाकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो तुतला या हकलाकर बोलता हो (को०)।

बल्मा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बालम'। उ०—बल्मा झोक लगै लटकैन की, मो पै अटा चढ्यो ना जाइ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८७७ ।

बल्य¹—वि० [सं०] १. बलकारक । २. शक्तियुक्त । बलशाली (को०)।

बल्य²—संज्ञा पुं० १. शुक्र । वीर्य । २. बौद्ध भिक्षु (को०)।

बल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतिबला । २. अश्वगंधा । ३. प्रसारिणी । ४. शिम्रीडी । चंगोनी ।

बल्ल—संज्ञा पुं० [सं० वल्ल] दे० 'वल्ल'।

बल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'वल्लकी'।

बल्लवⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बल्लभ] गोप । ग्वाल ।—अनेकार्थ०, पृ० २६ ।

बल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० वल्लभ] [स्त्री० बल्लभा] दे० 'वल्लभ'। उ०—(क) डारयो उगिलि सुबल्लभ बालक । जगपालक ऐसेइ घरघालक ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५८ । (ख) निश्र बल्लभ परिहरि जुवति धाव ।—विद्यापति, पृ० ६६ ।

बल्लभीⓅ¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्लभी] दे० 'वलभी'।

बल्लभीⓅ²—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्लवी] १. ग्वालिन । २. रसोई बनानेवाली स्त्री ।

बल्लम—संज्ञा पुं० [सं० बल, हिं० बल्ला] १. छड़ । बल्ला । २. सोंटा । डंडा । ३. वह सुनहरा या रुपहला डंडा जिसे प्रतिहार या चोबदार राजाओं के आगे लेकर चलते हैं।

यौ०—आसाबल्लम ।

४. बरछा । भाला ।

बल्लमटेर—संज्ञा पुं० [अं० वालंटियर] १. वह मनुष्य जो बिना वेतन के स्वेच्छा से फौज में सिपाही या अफसर का काम करे। स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला । स्वेच्छा सैनिक । वालंटियर । २. अपनी इच्छा से सार्वजनिक सेवा का कोई काम करनेवाला । स्वेच्छासेवक । स्वयंसेवक ।

बल्लमबर्दार—संज्ञा पुं० [हिं० बल्लम+फ़ा० बर्दार] वह नौकर जो राजाओं की सवारी या बारात के साथ हाथ में बल्लम लेकर चलता है ।

बल्लमा†—संज्ञा पुं० [सं० वल्लभ] दे० 'बालम'। उ०—बार लगाई बल्लमा विरहनि फिरै उदास।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८५ ।

बल्लरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्लरी] दे० 'वल्ली'।

बल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १. चरवाहा । ग्वाला । २. भीम का वह नाम जो उन्होंने विराट के यहाँ रसोइए के रूप में अज्ञातवास करने के समय में धारण किया था । ३. रसोइया ।

बल्लवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्वालिन (को०)।

बल्ला¹—संज्ञा पुं० [सं० वल (=लट्ठा या डंडा)] [स्त्री० अल्पा० बल्ली] १. लकड़ी की लंबी, सीधी और मोटी छड़ या लट्ठा । डंडे के आकार का लंबा मोटा टुकड़ा । शहतीर या डंडा । जैसे, साखू का बल्ला । २. मोटा डंडा । दंड । उ०—कल्ला करे आगू जान देत लेत बल्ला त्यागे ढौंसत प्रबल्ला मल्ला धायो राजद्वार को ।—रघुराज (शब्द०)। ३. बाँस या डंडा जिससे नाव खेते हैं । डाँड़ा । ४. गेंद मारने का लकड़ी का डंडा जो आगे की ओर चौड़ा और चिपटा होता है । बैट ।

यौ०—गेंद बल्ला ।

बल्ला²—संज्ञा पुं० [सं० वलय] गोबर की सुखाई हुई पहिए के आकार की गोल टिकिया जो होलिका जलने के समय उसमें डाली जाती है ।

बल्लारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें केवल कोमल गांधार लगता है ।

बल्ली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बल्ला] १. छोटा बल्ला । लकड़ी का लंबा टुकड़ा । २. खंभा । ३. नाव खेने का बल्ला । डाँड़ ।

बल्लीⓅ²—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्ली] लता । वल्ली । उ०—सुनि कग्गर नृरराज पृथु भौ आनंद सुभाइ । मानो वल्ली सूकते बीरा रस जल पाइ ।—पृ० रा०, १२।६६ ।

बल्लेबाज—वि० [हिं० बल्ला+बाज] क्रिकेट के खेल में बल्ले (बैट) से गेंद मारनेवाला । क्रिकेट के बल्ले से खेलनेवाला ।

बल्लोच—संज्ञा पुं० [फ़ा० बलूच] बलुचिस्तान की निवासिनी एक जाति का नाम । उ०—बल्लोच मिले सब पाइ बंधि । आभन्या नृपति तजि गए संधि ।—पृ० रा०, १।४२२ ।

बल्व—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक करण का नाम ।

बल्वज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० बल्वजा] एक घास का नाम ।

बल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] इल्वल नामक दैत्य के पुत्र का नाम जिसे बलदेव जी ने मारा था ।

यौ०—बल्वलारि=बलदेव जी ।

बवंडर—संज्ञा पुं० [सं० वायु+मण्डल या सं० वात हिं० अंडंबर] १. हवा का तेज झोंका जो घूमता हुआ चलता है और जिसमें

पड़ी हुई घूम खंभे के आकार में ऊपर उठती हुई दिखाई देती है। चक्र की तरह घूमती हुई वायु। चक्रवात। बगूला।
क्रि० प्र०—उठना।
२. प्रचंड वायु। आँधी। तूफान। उ०—आई जसुमत विगत बवंडर। बिन गोविंद लख्यो सो मंदिर।—गोपाल (शब्द०)।

बवंडा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बवंडर'।

बवँड़ना†—क्रि० अ० [सं० व्यावर्त्तन प्रा० व्यावट्टन] इधर उधर घूमना। व्यर्थ फिरना। उ०—इत उत ही तुम डोलत बवँड़त करत आपने जी की।—सूर (शब्द०)।

बवँड़ियाना‡—क्रि० अ० [हिं० बवँड़ना] निष्प्रयोजन इतस्ततः घूमना।

बव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक करण का नाम।

बवघूरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० वायु+घूर्णन] [हिं० बाइ+घूरा] बगूला। बवंडर। उ०—केशवराइ अकाश के मेह बड़े बवघूरन में तृण जैसे।—केशव (शब्द०)।

बवन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वमन] दे० 'वमन'।

बवना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० वपन] १. दे० 'बोना'। जमने के लिये जमीन पर बीज डालना। उ०—करि कुरूप विधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। २. छितराना। बिखराना।

बवना[2]—क्रि० अ० छिटकना। छितराना। बिखरना। उ०—ऊधो योग की गति सुनत मोरे अंग आगि बई।—सूर (शब्द०)।

बवना(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [सं० वामन] दे० 'बावना' या 'वामन'।

बवरना—क्रि० अ० [हिं० बौर] दे० 'बौरना', 'मौरना'। उ०—बवरे बौंड़ सीस भुइँ लावा। बड़ फल सुफर वही पै पावा।—जायसी (शब्द०)।

बवादा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जड़ी या ओषधि जो हलदी की तरह की होती है।

बवाल—वि० [अ० बवाल] जंजाल। झमेला। झंझट।
यौ०—बवाले जान=भारी कष्ट का कारण। उ०—गोया जनाव कविसंमेलन क्या है एक बवाले जान है।—कुंकुम, पृ० २।

बवासीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक रोग का नाम जिसमें गुदेंद्रिय में मस्से या उभार उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें रोगी को पीड़ा होती है और पाखाने के समय मस्सों से रक्त भी गिरता है। अर्शरोग।
विशेष—आयुर्वेद में मनुष्य के मलद्वार में तीन वलियाँ मानी गई हैं। सबके भीतर या ऊपर की ओर जो वली होती है उसे प्रवाहिनी, मध्य में जो होती है उसे सर्जनी कहते हैं। इनके अतिरिक्त एक वली अंत में या बाहर की ओर होती है। इन्हीं त्रिवलियों में अर्शरोग होता है। यदि बाहरवाली वली में मस्से हों तो रोग साध्य, मध्यवाली में हो तो कष्टसाध्य और सबसे भीतरवाली वली में हों तो असाध्य होता है। अर्शरोग छह प्रकार का कहा गया है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज और सहज।

बवियान—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का यंत्र जिससे गुरज या कोई अग्निपदार्थ फेंका जाता था। उ०—छुटै गुरजं बवियानन सें। पह ते पलटे मनो तारक सें।—पृ० रा०, २५।५११।

बशर—संज्ञा पुं० [अ०] व्यक्ति। मानव। उ०—जीते जी कद्र बशर की नहीं होती प्यारे। याद आएगी तुम्हें मेरी वफा मेरे बाद।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ६३।

बशिष्ट—संज्ञा पुं० [सं० वशिष्ठ] दे० 'वशिष्ठ'।

बशीरी—संज्ञा पुं० [अ० बशीर] एक प्रकार का बारीक रेशमी कपड़ा जो अमृतसर से आता है।

बष्कय—वि० [सं०] १. एक वर्ष का। २. पूर्ण युवा। जैसे, बछड़ा [को०]।

बष्कयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसको ब्याए हुए बहुत समय हो गया हो। बकेना।
विशेष—ऐसी गाय का दूध गाढ़ा और मीठा होता है।

बष्कयिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'बष्कयणी'।

बष्कयनी, बष्कयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकेना गौ [को०]।

बष्किह—वि० [सं०] वृद्धावस्था से जीर्ण। जराजीर्ण [को०]।

बष्ट—वि० [सं०] मूर्ख। जड़। अज्ञ [को०]।

बसंत—संज्ञा पुं० [सं० वसन्त] १. दे० 'वसंत'। २. दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा।
विशेष—यह पौधा प्रायः सारे भारत में और हिमालय में सात हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी पर गोलाकार होती हैं। फूल के विचार से इसके कई भेद होते हैं।

बसंत†—संज्ञा पुं० [हिं० बसंत] हरे रंग की एक चिड़िया जिसका सिर से लेकर कंठ तक का भाग लाल होता है।

बसंती[1]—वि० [हिं० बसंत] १. वसंत का। वसंत ऋतु संबंधी। २. खुलते हुए पीले रंग का। सरसों के फूल के रंग का।
विशेष—वसंतागम में खेत में सरसों के फूलने का वर्णन होता है। इससे वसंत का रंग पीला माना जाता है।

बसंती[2]—संज्ञा पुं० १. एक रंग का नाम।
विशेष—यह रंग तुन के फूलों आदि में रँगने से आता है। यह हलका पीला होता है। बसंत ऋतु में यह रंग लोगों को अधिक प्रिय होता है।
२. पीला कपड़ा। सरसों के फूल के रंग का कपड़ा।

बसंदर—संज्ञा पुं० [सं० वैश्वानर] आग। उ०—कथा कहानी सुनि जिउ जरा। जानहुँ घीउ बसंदर परा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६७।

बस[1]—वि० [फ़ा०] पर्याप्त। भरपूर। प्रयोजन के लिये पूरा।

बहुत काफी। उ०—मेरे सदृश विद्वान् की परीक्षा बस होगी।—सरस्वती (शब्द०)।

मुहा०—बस करो। या बस। ठहरो। रुको। इतना बहुत है, और अधिक नहीं। उ०—बलराम जी, बस करो, बस करो, अधिक बड़ाई उनकी न करो।—लल्लू (शब्द०)।

बस²—अव्य० १. पर्याप्त। काफी। अलम्। २. सिर्फ। केवल। इतना मात्र। जैसे,—बस, हमें और कुछ न चाहिए। उ०—रचिए गुणगौरव पूर्ण ग्रंथ सब सारा। बस यही आपसे विनय विनीत हमारा।—द्विवेदी (शब्द०)।

बस³—संज्ञा पुं० [सं० वश] दे० 'वश'।

क्रि प्र०—करना।—कर लेना = वश में कर लेना। उ०—हुजूर, बिल्कुल बस में कर लिया।—फिसाना०, भा०३, पृ० ४।

बस⁴—संज्ञा पुं० [हिं० वास] सुवासित। उ०—मधुर मालती के सिंगार सजि पहिरि बिसद बस बास।—घनानंद, पृ० ४८२।

बस⁵—संज्ञा स्त्री० [अं०] यात्रियों की सवारी गाड़ी। लारी। वह लंबी मोटर जिसपर लोग आवागमन करते हैं।

बसकरन—वि० [सं० वशीकरण] वश में करनेवाली। वशीभूत करनेवाली। उ०—घानंदघन घमंडि घोर बिहरत रमडि ब्रजवधु बसकरन बंसिका बाजै।—घनानंद, पृ० ४३४।

बसत†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वस्तु] दे० 'वस्तु'। उ०—(क) स्वामी जी बसत पछोरी परतम थोड़ा कहो गुरु क्या कीजे।—रामानंद०, पृ० १४। (ख) लै परी बसत अनेक गुर करि सस्तुति मुख कोटि तर।—पृ० रा०, २४।४८०।

बसत²—संज्ञा पुं० [सं० वसति] घर। निवासस्थान। उ०—मनो बसत रँगरेज गृह फुट्टयो सुरंग हट्ट।—पृ० रा०, २४।१६६।

बसती†—संज्ञा स्त्री० [सं० वसति] दे० 'बस्ती'। उ०—बसती न सुन्यं, सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।—गोरख०, पृ० १।

बसन—संज्ञा पुं० [सं० वसन] दे० 'वसन'। उ०—बसन बीजुरी सी धरे सदपी सु यह बस नेह।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

बसना¹—क्रि० अ० [सं० वसन] १. स्थायी रूप से स्थित होना। निवास करना। रहना। जैसे,—इस गाँव में कितने मनुष्य बसते हैं। उ०—(क) जो खोदाय मसजिद में बसत है और देस केहि केरा?—कबीर (शब्द०)। (ख) ब्रजवनिता के बसत प्रान जिय तुमही स्याम बसंत।—सूर (शब्द०)। २. जनपूर्ण होना। प्राणियों या निवासियों से भरा पूरा होना। आबाद होना। जैसे, गाँव बसना, शहर बसना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—घर बसना = कुटुंबसहित सुखपूर्वक स्थित होना। गृहस्थी का बनना। उ०—नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवन, उजरउ नहिं डरउँ।—तुलसी (शब्द०)। घर में बसना = सुखपूर्वक गृहस्थी में रहना। उ०—[illegible] बिहँसे रिपिय निसिरिंबव सब देहु। [illegible] बहुरु बसेउ को गेहु।—तुलसी (शब्द०)।

३. टिकना। ठहरना। कुछ काल रहना। डेरा करना। जैसे,—वे तो साधु हैं रात भर कहीं बस रहेंगे।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

मुहा०—मन में बसना = ध्यान में बना रहना। स्मृति में रहना। उ०—सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल। इहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल।—बिहारी (शब्द०)।

४.[illegible] बैठना। टिकना।

बसना²—क्रि० अ० [हिं० बासना] बासा जाना। सुगंध से पूर्ण हो जाना। सुवासित हो जाना। महक से भर जाना। जैसे,—तेल बस गया।

संयो० क्रि०—जाना।

बसना³—संज्ञा पुं० [सं० वसन (= कपड़ा)] १. वह कपड़ा जिसमें कोई वस्तु लपेटकर रखी जाय। बेठन। बेठन। २. थैली। ३. वह लंबी जालीदार थैली जिसमें रुपया पैसा रखते हैं। इसे बसनी भी कहते हैं। ४. वह कोठी जिसमें रुपए का लेनदेन होता हो। ५. आसन। बरतन। भाँड़ा।

बसना⁴—संज्ञा पुं० [देश०] जयंती की जाति का एक प्रकार का मझोला वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः शोभा के लिये बागों में लगाया जाता है। इसके पत्ते एक बालिश्त लंबे होते हैं। प्रायः पान के भीटों में यह लगाया जाता है। इसकी पत्तियों, कलियों और फूलों की तरकारी बनती है और औषधि रूप में भी इनका उपयोग होता है।

बसनि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बसना] रहना। निवास। वास। उ०—बिहुर गयो दरसावन उन जोगिन की बसनि।—देवस्वामी (शब्द०)।

बसबास—संज्ञा पुं० [हिं० बसना+वास] १. निवास। रहना। उ०—(क) सुनि मुनि आयसु प्रभु कियो पंचवटी बसवास।—तुलसी ग्रं०, पृ० ७६। (ख) जो तुम छाँड़न चाहत हौ के [illegible] बसवास। [illegible] निमिष न [illegible] वास।—सूर (शब्द०)। २. रहन। रहने का ढंग। स्थिति। उ०—[illegible] बसवास तें [illegible] [illegible]।—केशव (शब्द०)। ३. रहाइश। रहने का ठौर या ठिकाना। निवास योग्य परिस्थिति। ठिकाना। उ०—[illegible] बसवास [illegible] [illegible] बिछुरत [illegible]।—सूर (शब्द०)।

बसर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गुजर। निर्वाह। कालक्षेप।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बसवर्ती—[illegible] [सं० वशवर्ती] दे० 'वशवर्ती'। उ०—[illegible] [illegible] की तरह वह [illegible] वशवर्ती [illegible]।—[illegible], पृ० ६६२।

बसवार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० वास (=सुगंध) + वार (प्रत्य०)] छौंक। बघार।

बसवार[2]—वि० सोंधा। सुगंधित। उ०—करुए तेल कीन्ह बसवारू। मेथी कर तब दीन्ह बघारू।—जायसी (शब्द०)।

बसह—संज्ञा पुं० [सं० वृषभ, प्रा० वसह] बैल। उ०—(क) कर त्रिशूल प्रह डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा। तुलसी (शब्द०)। (ख) अमरा शिव रवि शशि चतुरानन हयगय बसह हंस मृग जावत। धर्मराज वनराज अनल दिव शारद नारद शिव सुत भावत।—सूर (शब्द०)।

बसही(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० वसति, प्रा० वसहि, वसइ] १. घर। २. स्त्री। पत्नी। उ०—और सब सामंतन की बसही आनी। कितकों ग्रांनने मानी।—पृ० रा०, १६।११४।

बसाँधा†—वि० [हिं० बास] बासा हुआ। सुगंधित।

बसा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वसा] दे० 'वसा'।

बसा[2]—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] १. बर्रे। भिड़। बरटी। उ०—बसा लंक बरनी जग झीनी। तेहि ते अधिक लंक वह खीनी।—जायसी (शब्द०)। २. एक प्रकार की मछली।

बसात—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिसात'।

बसाना[1]—क्रि० स० [हिं० 'बसना' का सकर्मक तथा प्रे० रूप] १. बसने देना। बसने के लिये जगह देना। रहने को ठिकाना देना। जैसे,—राजा ने उस नए गाँव में बहुत से बनिए बसाए।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. जनपूर्ण करना। आबाद करना। जैसे,—गाँव बसाना, शहर बसाना। उ०—(क) केहि सुकृती केहि घरी बसाए। धन्य पुण्यमय परम सुहाए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नाद तें तिय जेंवरी ते साँप करि घालै घर वीथिका बसावति बनन की।—केशव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—घर बसाना = गृहस्थी जमाना। सुखपूर्वक कुटुंब के साथ रहने का ठिकाना करना।

३. टिकाना। ठहराना। स्थित करना। जैसे,—रात को इन मुसाफिरों को अपने यहाँ बसा लो।

मुहा०—मन में बसाना = चित्त में इस प्रकार जमाना कि बराबर ध्यान में रहे। हृदय में अंकित कर लेना। उ०—व्यासदेव जब शुकहि सुनायो। सुनि कै शुक सो हृदय बसायो।—सूर (शब्द०)।

बसाना(पु)[2]—क्रि० अ० बसना। ठहरना। रहना। उ०—बालक अजाने हठी और की न मानै बात बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाय है। माटी के बनाए गज बाजी रथ खेल माते पालन बिछौने तापै नेक न बसाय है।—हनुमान (शब्द०)।

बसाना[3]—क्रि० स० [सं० वेशन, पू० हिं० बैसाना] १. बिठाना। २. रखना। उ०—वधुक सुमन पद पंकज अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आयो। नूपुर जनु मुनिवर कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसायो।—तुलसी (शब्द०)।

बसाना(पु)[4]—क्रि० अ० [हिं० बश से नामि० धा०] वश चलना। जोर चलना। काबू चलना। अधिकार या शक्ति का काम देना। उ०—(क) घट में रहै सूझै नहीं कर सों गहा न जाय। मिला रहै औ ना मिलै तासों कहा बसाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) काटिय तासु जीभ जो बसाई। स्रवन मूँदि नतु चलिय पराई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) करो री न्यारी हरि आपन गैयाँ। नहिन बसात लाल कछु तुम सों सबै ग्वाल इक ठैयाँ। सूर (शब्द०)।

बसाना[5]—क्रि० अ० [हिं० बास] १. वास देना। महकना। उ०—(क) बेलि कुढंगी फल बुरी फुलवा कुबुधि बसाय। मूल बिनासी तूमरी सरो पात करुआय।—कबीर (शब्द०)। (ख) घूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई। तुलसी (शब्द०)। २. दुर्गंध देना। बदबू देना। उ०—मद जस मंद बसाइ पसेऊ। औ बिसवासि छरै सब कोऊ। —जायसी (शब्द०)।

बसाहना(पु)†—क्रि० स० [हिं० बिसाहना] खरीदना। क्रय करना। उ०—बसाहंति घीसा पइञ्जल्ल मोजा। भमे मीर बल्लीअ सहल्लार षोजा।—कीर्ति०, पृ० ४०।

बसिआना(पु)—क्रि० अ० [हिं० बासा] दे० 'बसियाना'।

बसिऔरा—संज्ञा पुं० [हिं० बासी + और (प्रत्य०)] १. वर्ष की कुछ तिथियाँ जिनमें स्त्रियाँ बासी भोजन खाती और बासी पानी पीती हैं। २. बासी भोजन।

बसिठ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बसीठ'। उ०—उतरि बसिठ दुइ आइ जोहारे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६७।

बसिया†—वि० [हिं० बासी + इया (प्रत्य०)] दे० 'बासी'।

बसियाना—क्रि० अ० [हिं० बासी, या बसिया + ना (प्रत्य०)] बासी हो जाना। ताजा न रह जाना।

बसिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वसिष्ठ'।

बसीकत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बसना] १. बस्ती। आबादी। २. बसने का भाव या क्रिया। रहन।

बसीकर—वि० [सं० वशीकर] वशीकर। वश में करनेवाला। उ०—रसखानि कै प्रानसुधा भरिबो अधरान पै त्यों अधरा धरिबो। इतने सब मैन के मोहनी यंत्र पै मंत्र बसीकर सी करिबो।—रसखानि (शब्द०)।

बसीकरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वशीकरण] दे० 'वशीकरण'।

बसीगत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बसना] दे० 'बसीकत'।

बसीठ—संज्ञा पुं० [सं० अवसृष्ट, प्रा० अवसिट्ठ] भेजा हुआ दूत। संदेसा ले जानेवाला। उ०—(क) प्रथम बसीठ पठव सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मधुकर तोहिं कौन सों हेत।...अति शठ दीठ बसीठ श्याम को हमे सुनावत गीत।—सूर (शब्द०)। (ग) सूझत

ही मकराक्ष के रावण प्रति दुख पाय। सत्वर श्री रघुनाथ पै दिए बसीठ पठाय।—केशव (शब्द०)।

बसीठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बसीठ+ई(प्रत्य०)] दूत का काम। दौत्य। संदेशा भुगताने का काम। उ०—(क) हरि मुख निरखत नागरि नारि।...हारि जोहारि जो करत बसीठी प्रथमहि प्रथम चिन्हार।—सूर (शब्द०)। (ख) बिकानी हरिमुख की मुसकानि।......नैनन निरखि बसीठी कीन्हों मनु मिलयो पय पानि।—सूर (शब्द०)। (ग) सेतु बाँधि कपि सेन जिमि, उतरी सागर पार। गयउ बसीठी वीरवर जेहि विधि बालिकुमार।—तुलसी (शब्द०)।

बसीत—संज्ञा पुं० [अ०] एक यंत्र का नाम जो जहाज पर सूर्य का प्रकाश देखने के लिये रहता है। कमान।

बसीत्यो—संज्ञा पुं० [हिं०] वास। निवास।

बसीना†—संज्ञा पुं० [हिं० बसना] रहायस। रहन।

यौ०—बासबसीना। उ०—इनही ते व्रज बासबसीनो। हम सब अहिर जाति मतिहीनो।—सूर (शब्द०)।

बसीला[1]—वि० [हिं० बास+इल (प्रत्य०)] गंधयुक्त। सुगंध या दुर्गंध भरा।

बसीला[2]—संज्ञा पुं० [अ० वसीलह्] १. मदद। सहायता। २. जरिया। राह। रास्ता।

बसु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वसु'।

बसुकला—संज्ञा पुं० [सं० वसुकला] एक वर्णवृत्त जिसे तारक भी कहते हैं।

बसुदेव—संज्ञा पुं० [सं० वसुदेव] दे० 'वसुदेव'।

बसुद्यौ†—संज्ञा पुं० [सं० वसुदेव] कृष्ण के पिता। वसुदेव। उ०—वसुद्यौ संभु सीस धरि आन्यौ गोकुल आनँदकंद।—सूर०, १०।१७६५।

बसुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० वसुधा] दे० 'वसुधा'।

बसुमती—संज्ञा स्त्री० [सं० वसुमती] दे० 'वसुमती'।

बसुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाँसुरी'।

बसुला—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० बसुली] दे० 'बसूला'।

बसूला—संज्ञा पुं० [सं० वासि+ल (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० बसूली] एक हथियार जिससे बढ़ई लकड़ी छीलते और गढ़ते हैं। उ०—मातु कुमति बढ़ई अघ मूला। तेहि हमरे हित कीन्ह बसूला।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह बेंट लगा हुआ चार पाँच अंगुल चौड़ा लोहे का टुकड़ा होता है जो धार के ऊपर बहुत भारी और मोटा होता है। यह ऊपर से नीचे की ओर चलाया जाता है।

बसूली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बसूला] १. छोटा बसूला। २. राजगीरों का एक औजार जिससे वे ईंटों को तोड़ते, छीलते ठोंकते हैं।

बसेंड़ा‡—संज्ञा पुं० [हिं० बाँस+ड़ा] [स्त्री० बसेंड़ी] पतला

बसेरा[1]—वि० [हिं० बसना √बस+एरा (प्रत्य०)] बसनेवाला। [illegible] वाला। उ०—(क) निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर [illegible] अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं। —तुलसी (शब्द०)। (ख) [illegible] जंबूदीप बसेरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १३८।

बसेरा[2]—संज्ञा पुं० १. वह स्थान जहाँ रहकर यात्री रात [illegible] हैं। वासा। टिकने की जगह। २. वह स्थान [illegible] ठहरकर रात बिताती हैं। उ०—(क) [illegible] हेरा। मानहुँ विपति विषाद बसेरा।—[illegible] (ख) पिय मूरति चितसरिया चितवति बान [illegible] बसेरवा जपि जपि माल।—रहिमन (शब्द०)।

मुहा०—बसेरा करना = (१) डेरा करना। [illegible] ठहरना। उ०—(क) बहुते को उद्यम [illegible] बसेरो करै। —सूर (शब्द०)। (ख) [illegible] संग्रह किया घनेरा। बस्ती में से [illegible] बसेरा। —कबीर (शब्द०)। (२) [illegible] बस जाना। उ०—कहा भयो [illegible] दूर बसेगे। आपुनही या व्रज के [illegible] फेंगे।—सूर (शब्द०)। बसेरा [illegible] वास करना। रहना। उ०—[illegible] बोलत जो अनेरो। कब हरि [illegible] बसेरो।—सूर (शब्द०)। बसेरा [illegible] देना। ठहराना। टिकाना। [illegible] देना। उ०—प्रभु कह गरल [illegible] उर दीन बसेरा।—तुलसी [illegible]

रहने की जगह। उ०—चारि भाँति नृपता तुम कहियो। चारि मंत्रिमत मन मे गहियो। राम मारि सुर एक न बचिहै। इंद्रलोक बसोबासहि रचिहैं।—केशव (शब्द०)।

बसौंधी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बास + औंधी (प्रत्य०)] एक प्रकार की रबड़ी जो सुगंधित और लच्छेदार होती है।

बस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. चित्रकारी मे वह मूर्ति, चित्र या प्रतिकृति जिसमे किसी व्यक्ति के मुख, अथवा छाती के ऊपरी भाग मात्र की आकृति बनाई गई हो। किसी व्यक्ति की ऐसी मूर्ति या चित्र जिसमें केवल धड़ और सिर हो। २. छाती। वक्षस्थल। सीना।

बस्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. बकरा।

बस्त[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'वस्तु'। उ०—जो कुछ बस्त हवाले करें तो गँवाय।—दक्खिनी०, पृ० १५१।

यौ०- चीजबस्त।

बस्त(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० वस्त्र] दे० 'वस्त्र'। उ०—तिन दिष्षत वर बस्त मंग अप्पन मुख अप्पहि।—पृ० रा०, १।४१३।

बस्त(पु)[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० वस्ति] वस्ति। वक्षस्थल। उ०—अस्त बस्त अरु चर्म टंक लग्गै नन हड्डं।—पृ० रा०, १।६६६८।

बस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] साँभर झील से तैयार नमक। साँभर नमक [को०]।

बस्तकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. साल का पेड़। २ असना का पेड़। पीतशाल वृक्ष।

बस्तगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० बस्तगन्धा] अजगंधा। अजमोदा।

बस्तमुख—वि० [सं०] बकरे की तरह मुँहवाला। बकरमुहाँ [को०]।

बस्तमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

बस्तर(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० वस्त्र] वस्त्र। कपड़ा। उ०—बिन बस्तर अंग सुरंग रसी। सुहलै जनु साख मदंन कसी।—पृ० रा०, १४।४६।

यौ०—बस्तरमोचन, बस्तरामोचन = किसी का सब कुछ छीन लेना।

बस्तशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० बस्तश्रृङ्गिन्] मेषशृंगी। मेढ़ासींगी।

बस्तांबु—संज्ञा पुं० [सं० बस्ताम्बु] बकरे का मूत्र [को०]।

बस्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० बस्तह्, तुल० सं० वेष्ट (वेष्टन)] कपड़े का चौकोर टुकड़ा जिसमें कागज के मुट्ठे, बही खाते और पुस्तकादि बाँधकर रखते हैं। बेठन।

क्रि० प्र०—बाँधना।

मुहा०—बस्ता बाँधना = कागज पत्र समेटकर उठने की तैयारी करना।

बस्ताजिन—संज्ञा पुं० [सं०] बकरे का चमड़ा [को०]।

बस्तार—संज्ञा पुं० [फ़ा० बस्ता] एक में बँधी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह मुट्ठा। पुलिंदा।

बस्ति—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] दे० 'वस्ति'।

बस्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० वसति] १. बहुत से मनुष्यों का घर बनाकर रहने का भाव। आबादी। निवास। उ०—जिन जिह्वा गुन गाइया बिन बस्ती का गेह। सूने घर का पाहुना तासों लावै नेह।—कबीर (शब्द०)। २. बहुत से घरों का समूह जिसमें लोग बसते हैं। जनपद। खेड़ा, गाँव, कसबा, नगर इत्यादि। जैसे,—राजपूताने मे कोसों चले जाइए कहीं बस्ती का नाम नहीं। उ०—मन के मारे बन गए, बन तजि बस्ती माहिं। कहै कबीर क्या कीजिए या मन ठहरै नाहिं।—कबीर (शब्द०)।

बस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं० वस्तु] दे० 'वस्तु'। उ०—बस्तु सकल राखी नृप आगे। बिनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे।—मानस, १।३०६।

बस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० वस्त्र] दे० 'वस्त्र'।

बस्य—वि० [सं० वश्य] दे० 'वश्य'। उ०—भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।—मानस, ७।९२।

बस्स‡—अव्य० [फ़ा० बस] दे० 'बस'। उ०—अच्छी, पै एक बात और कह लऊँ, फिर बस्स।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ५८।

बस्साना—क्रि० अ० [हिं० बास (= गंध) + आना] दुर्गंध देना। बदबू करना।

बहँगा—संज्ञा पुं० [सं० वहन + अङ्ग] बड़ी बहँगी।

बहँगी—संज्ञा स्त्री० [सं० वहन + अङ्ग] बोझा ले चलने के लिये तराजू के आकार का एक ढाँचा। काँवर।

विशेष—लगभग चार पाँच हाथ लंबी लचीली लकड़ी या बाँस के दोनों छोरों पर रस्सी का छीका लटकाकर नीचे काठ का चौकठा सा लगा देते हैं जिसपर बोझा रखा जाता है। बाँस को बीचोबीच कंधे पर रखकर ले चलते हैं।

बहक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहकना] १. पथभ्रष्टता। २. बहकने या इतस्ततः होने की स्थिति। ३. बहुत बढ़कर बोलना।

बहकना—क्रि० अ० [हिं० बहा ? या हिं० बहना से बहकना (= इधर उधर बह जाना)] १. भूल से ठीक रास्ते से दूसरी ओर जा पड़ना। मार्गभ्रष्ट होना। भटकना। जैसे,—वह बहककर जंगल की ओर चला गया।

संयो० क्रि०—जाना।

२. ठीक लक्ष्य या स्थान पर न जाकर दूसरी ओर जा पड़ना। चूकना। जैसे, तलवार बहकना, हाथ बहकना। ३. किसी की बात या भुलावे में आ जाना। बिना भला बुरा विचारे किसी के कहने या फुसलाने से कोई काम कर बैठना। उ०—बहक न इहि बहनापने जब तब, बीर बिनास। बचै न बड़ी सबीलहू चील घोंसुवा माँस।—बिहारी (शब्द०)। ४. किसी बात में लग जाने के कारण शांत होना। बहलना (बच्चों के लिये)। ५. आपे में न रहना। रस या मद में चूर होना। जोश या आवेश में होना। उ०—जब ते ऋतुराज समाज रच्यो तब तें अवली अलि की चहकी। सरसाय के सोर रसाल की डारन कोकिल कूकैं फिरैं बहकी।—रसिया (शब्द०)।

मुहा०—बहककर बोलना = (१) मद में चूर होकर बोलना। (२) जोश में आकर बढ़ बढ़कर बोलना। अभिमान आदि

से भरकर परिणाम या औचित्य आदि का विचार न करना। जैसे,—आज बहुत बहककर बोल रहे हो, उस दिन कुछ करते धरते नहीं बना। बहकी बहकी बातें करना=(१) मदोन्मत्त की सी बातें करना। (२) बहुत बढ़ी चढ़ी बातें करना।

बहकाना—क्रि० स० [हिं० बहकना] १. ठीक रास्ते से दूसरी ओर ले जाना या फेरना। रास्ता भुलवाना। भटकाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. ठीक लक्ष्य या स्थान से दूसरी ओर कर देना। लक्ष्यभ्रष्ट कर देना। जैसे,—लिखने में हाथ बहका देना। ३. भुलावा देना। भरमाना। बातों से फुसलाना। कोई अयुक्त कार्य कराने के लिये बातों का प्रभाव डालना। जैसे,—उसे बहकाकर उसने यह काम कराया है। उ०—नई रीति इन अबै चलाई। काहू इन्हें दियो बहकाई।—सूर (शब्द०)। ४. (बातों से) शांत करना। बहलाना। (बच्चों को)।

बहकावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहकाना+आवट (प्रत्य०)] बहकाने की क्रिया या भाव।

बहकावा—संज्ञा पुं० [हिं०] भुलावा। बहकाने या भुलावे मे डालनेवाला कार्य।

बहतोल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहता+ल (प्रत्य०)] जल बहाने की नाली। बरहा। उ०—ग्रीषम निदाघ समै बैठे अनुराग भरे बाग में बहति बहतोल है रहँट की।—लाल (शब्द०)।

बहत्तर[1]—वि० [सं० द्वासप्तति, प्रा० बहत्तरि] सत्तर और दो। सत्तर से दो अधिक।

बहत्तर[2]—संज्ञा पुं० सत्तर से दो अधिक की संख्या और अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७२।

बहत्तरवाँ—वि० [हिं० बहत्तर+वाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० बहत्तरवीं] जिसका स्थान बहत्तर पर पड़े। जो क्रम में इकहत्तर वस्तुओं के बाद पड़े।

बहदुरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो धान या चने में लगकर उनके पत्ते काटकर गिरा देता है।

बहन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बहिन'। उ०—उसने आशीर्वाद दिया कि बहन, तुम भी हम सी हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१६।

बहन[2]—संज्ञा पुं० [सं० वहन] बहने की क्रिया या भाव। उ०—वायु को बहन दिन दावा को दहन, बड़ी बड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यो परे।—केशव (शब्द०)।

बहनड़ी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहन+ड़ी (प्रत्य०)] बहिन। भगिनी। उ०—आन पुरुष हूँ बहनड़ी, परम पुरुष भर्तार। हूँ अबला समझौ नहीं, तूँ जानै कर्तार।—दादू० बानी, पृ० ३५१।

बहना—क्रि० अ० [सं० वहन] १. द्रव पदार्थों का निम्न तल की ओर आपसे आप गमन करना। पानी या पीने के रूप की वस्तुओं का किसी ओर चलना। प्रवाहित होना। उ०—हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—बहती गंगा में हाथ धोना=किसी ऐसी बात से लाभ उठाना जिससे सब लाभ उठा रहे हों। बहती नदी में पाँव पखारना=दे० 'बहती गंगा में हाथ धोना'। बह चलना=पानी की तरह पतला हो जाना। जैसे,—दाल या तरकारी का।

२. पानी की धारा में पड़कर जाना। प्रवाह में पड़कर गमन करना। जैसे, बाढ़ मे गाय, बैल, छप्पर आदि का बह जाना। ३. स्रवित होना। लगातार बूँद या धार के रूप में निकलकर चलना। (जो निकले और जिसमे से निकले दोनों के लिये)। जैसे, मटके का घी बहना, शरीर से रक्त बहना, फोड़ा बहना। ४. वायु का संचरित होना। हवा का चलना। जैसे, हवा बहना। उ०—(क) गुंज मजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिविध बयारि बहइ सुख देनी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चाँदनी के भारन दिखात उनयो सो चंद गंध ही के भारन बहत मंद मंद पौन।—द्विजदेव (शब्द०)। ५. कहीं चला जाना। इधर उधर हो जाना। हट जाना। दूर होना। जैसे,—(क) मंडली के टूटते ही सब इधर उधर हो गए। (ख) कबूतरों का इधर उधर बह जाना। (कबूतरबाज)। उ०—सुक सनकादि सकल मन मोहे, ध्यानिन ध्यान बह्यो।—सूर (शब्द०)। ६. ठीक लक्ष्य या स्थान से सरक जाना। हट जाना। फिसल जाना। जैसे,—टोपी के गोट का नीचे बह आना। धोती का कमर के नीचे बह आना। ७. बिना ठिकाने का होकर घूमना। मारा मारा फिरना। जैसे,—न जाने कहाँ का बहा हुआ आया, यहाँ ठिकाना लग गया। ८. सन्मार्ग से दूर हो जाना। कुमार्गी होना। आवारा होना। चौपट होना। बिगड़ना। चरित्रभ्रष्ट होना। जैसे,—लुच्चों के साथ में पड़कर वह बह गया। उ०—मातु पितु गुरु जननि जान्यो भली खोई महति। सूर प्रभु को ध्यान धरि चित अतिहि काहे बहति।—सूर (शब्द०)। ९. गया बीता होना। अधम या बुरा होना। जैसे,—वह ऐसा नहीं बह गया है कि तुम्हारा पैसा छूएगा। १०. गर्भपात होना। अड़ाना। (चौपायों के लिये)। ११. बहुतायत से मिलना। सस्ता मिलना।

संयो० क्रि०—चलना।

२. (रुपया आदि) डूब जाना। नष्ट जाना। व्यर्थ खर्च हो जाना। १३. कनकौवे की डोर का ढीला पड़ना। पतंग का पेटा छोड़ना। १४. जल्दी जल्दी अंडे देना।

मुहा०—बहता हुआ जोड़ा=बहुत अंडे देनेवाला जोड़ा (कबूतर)।

१५. लादकर ले चलना। ऊपर रखकर ले चलना। वहन करना। उ०—जन्म याहि रूप गयो पाप बहत।—सूर (शब्द०)। १६. खीचकर ले चलना (गाड़ी आदि)। उ०—अस कहि चढ़्यो ब्रह्म रथ माही। श्वेत तुरंग बहे रथ काही।—रघुराज

(शब्द०)। ⓤ१७. धारण करना। रखना। उ०—छोनी मे न छांड़यो छप्यो छोनिप को छौना छोटो छोनिपछपन वाको विरद बहत हो।—तुलसी (शब्द०)। १८. उठना। चलना। उ०—बहइ न हाथ दहइ रिस छाती।—तुलसी (शब्द०)। १६. निर्वाह करना। निबाहना। उ०—गाडे भली उखारे अनुचित बनि आए बहिबे ही।—तुलसी (शब्द०)। २०. बीतना। गुजरना। व्यतीत होना। उ०—बहुत काल बहि गए भरे जगल घर पूरन।—पृ० रा०, १।५२०।

बहनापा—संज्ञा पुं० [हिं० बहिन+आपा (प्रत्य०)] भगिनी की आत्मीयता। बहिन का सबंध।

क्रि० प्र०—जोड़ना।

बहनी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कोल्हू में से रस लेकर रखनेवाली। ठिलिया।

बहनीⓤ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वह्नि] अग्नि। आग। उ०—(क) तुम काहे उडुराज अमृतमय तजि सुभाउ बरषत कत बहनी।—सूर (शब्द०)। (ख) दार बहनी ज्यूं होइवा मेवं। असंख दल पखुडी गगन करि सेवं।—गोरख०, पृ० १६।

बहनी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बोहनी'।

बहनुⓤ—संज्ञा पुं० [सं० वहन] सवारी। उ०—देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि भवन विभूत भाग वृषभ बहनु है।—तुलसी (शब्द०)।

बहनेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहन+एली (प्रत्य०)] वह जिसके साथ बहनापा या बहन का संबंध स्थापित किया गया हो। मुँहबोली बहन। (स्त्रियाँ)। उ०—हम दोनों बहनेली हो गई हैं।—त्याग०, पृ० ५।

बहनोई—संज्ञा पुं० [सं० भगिनीपति, प्रा० बहिणीवइ] बहिन का पति।

बहनौता—संज्ञा पुं० [सं० भगिनीपुत्र, प्रा० बहिणीउत्त] बहिन का पुत्र। भांजा।

बहनौरा—संज्ञा पुं० [हिं० बहिन+औरा (प्रत्य०)<सं० आलय] बहिन की ससुराल।

बहबलⓤ†—वि० [सं० विह्वल] दे० 'विह्वल'। उ०—दे सिर फूटि परचो सु भयो पीड़ित अति कैदी। इंद्री बहबल भूख पिटारी मूसे छेदी।—व्रज० ग्रं० पृ० ७३।

बहबहा—वि० [हिं० बहना] बहेतू। उ०—बहबहे कहूँ रहे धोखे काहू कै आनँदघन भूले से फूले फिरो तकि ताही ज्यों टकटोरो।—घनानंद०, पृ० ५६६।

बहबूदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लाभ। भलाई। फायदा।

बहम—संज्ञा पुं० [अ० वहम] दे० 'वहम'।

बहमोल—वि० [सं० बहुमूल्य] बहुमूल्य। अधिक दामवाला। उ०—इह अमोल मोलन बहमोल ग्रह फिरि साजिय।—पृ० रा०, १६।१८।

बहरंगीⓤ—वि० [हिं० बहुरंगी] बहुत रगोंवाला। उ०—बहुरंगी चौघों लखी, अवरंगी नीसाँण।—रा० रू०, पृ० ८३।

बहरⓤ[1]—क्रि० वि० [हिं० बाहर] दे० 'बाहर'। उ०—दरिया गुर दरियाव की, साध चहूँ दिस नहर। संग रहै सोई पिए, नहिं फिरै तृषाया बहर।—दरिया० बानी, पृ० ३१।

बहर[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० बह्र] छंद। वृत्त। उ०—काम कामिनी तै ललित केलि कला कमनीय। रंग भरी राजत रवन बहर बनी रवनीय।—स० सप्तक, पृ० ३५२।

विशेष—छंद को उर्दू मे बहर कहते हैं। मशहूर बहरें कुल उन्नीस हैं। उनमें से कुल पांच बहरें खास अरबी के लिये हैं। बाकी अरबी और फारसी दोनो में काम देती हैं।

बहर[3]—संज्ञा पुं० [अ० बह] समुद्र। सागर। उ०—बहर रूप सम भूप रूप अनभूत सँचारिय —पृ० रा०, ७।६३।

बहरⓤ[4]—संज्ञा पुं० [अ० वहल] पंक। कर्दम। कीचड़। उ०—एक लरत गिरत घुंमत घटत भटक नट्ट मंडिय बहर।—पृ० रा०, १३।७०।

बहरखाⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] बोरखा नामक हाथ का गहना। उ०—बाहे सुंदरि बहरखा, चासू चुड़ स वचार। मनुहरि कटियल मेखला पग झांझर झंकार।—ढोला०, दू० ४८१।

बहरतौर—वि० [फ़ा० बहर+अ० तौर] दे० 'बहरहाल'।

बहरहाल—वि० [फ़ा० बहर+अ० हाल] प्रत्येक दशा मे हर हालत में। जैसे भी हो। उ०—मामले को सच समझा हो या झूठ, मुंशी का बहरहाल तबादला हो गया।—काले०, पृ० ६७।

बहरा—वि० [सं० बधिर, प्रा० बहिर] [स्त्री० बहरी] जो कान से सुन न सके। न सुननेवाला। जिसे श्रवण शक्ति न हो।

मुहा०—बहरा पत्थर, या बज्र बहरा=बहुत अधिक बहरा। जिसे कुछ भी न सुनाई पड़ता हो।

बहराई†—संज्ञा पुं० [हिं० बाहर] बाहर होने या रहने की स्थिति। बाह्य स्थिति। बाहर होना। उ०—बासा सब महँ अहै तुम्हारो, नही कहूँ बहराई।—जग० बानी, पृ० २६।

बहराना[1]—क्रि० स० [हिं० भुराना (भ का उच्चारण बह के रूप में हो गया) या फ़ा बहाल] १. जिस बात से जी ऊबा या दुखी हो उसकी ओर से ध्यान हटाकर दूसरी ओर ले जाना। ऐसी बात कहना या करना जिससे दु.ख की बात भूल जाय और चित्त प्रसन्न हो जाय। उ०—मैं पठवत अपने लरिका को आवै मन बहराइ।—सूर (शब्द०)। २. बहकाना। भुलाना। फुसलाना। उ०—(क) उरहन देत ग्वालि जे आई तिन्हे जशोदा दियो बहराई।—सुर (शब्द०)। (ख) क्यों बहरावत झूठ मोहिं और बढ़ावत सोग। अब भारत में नाहिं वे रहे बीर जे लोग।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

बहराना†[2]—क्रि० स० [हिं० बाहर] दे० 'बहरियाना'।

बहराना[3]—क्रि० अ० बाहर होना। दे० 'बहरियाना' २।' उ०—भोर ठहरात न कपूर बहरात मेघ सरद उड़ात बात लाके दिसि दस को।—भूषण ग्रं०, पृ० ६। २. बहरा बनने का नाटक करना।

बहरिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बाहर+इया (प्रत्य०)] बल्लभ संप्रदाय

के मंदिरों के छोटे कर्मचारी जो प्रायः मंदिर के बाहर ही रहते हैं।

बहरिया[2]—वि० बाहर का। बाहर संबंधी।

बहरियाना[1]—क्रि० स० [हिं० बाहर+इयाना (नामधातु० प्रत्य०)] १. बाहर की ओर करना। निकालना। २. अलग करना। जुदा करना। ३. नाव को किनारे से हटाकर मँझधार की ओर ले जाना। (मल्लाह)।

बहरियाना[2]—क्रि० अ० १. बाहर की ओर होना। २. अलग होना। जुदा होना। ३. नाव का किनारे से हटकर मंझधार की ओर जाना।

बहरी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक शिकारी चिड़िया जिसका रूप रंग और स्वभाव बाज का सा होता है, पर आकार कुछ छोटा होता है। उ०—जुररा, बहरी, बाज बहु, चीते, स्वान, सचान।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १४४।

बहरी[2]—वि० [अ० बह्र] दे० 'बह्री'।

बहरू—संज्ञा पुं० [देश०] मध्यप्रदेश, बरार और मदरास में होनेवाला मझोले आकार का एक पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी सुंदर, चमकदार और मजबूत होती है। हल, पाटे आदि खेती के सामान, गाड़ियाँ तथा तसवीरों के चौखटे इस लकड़ी के बनते हैं।

बहरूप—संज्ञा पुं० [हिं० बहु+रूप] एक जाति जो बैलों का व्यवसाय करती है और गोरखपुर, चंपारन आदि पूरबी जिलों में बसती है।

बहरोⓤ†—वि० [हिं०] दे० 'बहरा'।

बहल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वहन] एक प्रकार की छतरीदार या मंडपदार गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं। रथ के आकार की बैलगाड़ी। खड़खड़िया। रब्बा।

बहल[2]—वि० [सं०] १. अत्यधिक। बहुत ज्यादा। २. घना। ठोस। ३. गुच्छेदार। झब्बेदार। जैसे, द्रुम। ४. मजबूत। गाढ़। दृढ़। ५. कर्कश। कठोर। जैसे, ध्वनि (को०)।

बहल[3]—संज्ञा पुं० एक प्रकार की ईख।

बहलना—क्रि० अ० [हिं० बहलाना का अकर्मक रूप] १. जिस बात से जी ऊबा या दुःखी हो उसकी ओर से ध्यान हटकर दूसरी ओर लाना। झंझट या दुःख की बात भूलना और चित्त का दूसरी ओर लगना। जैसे,—दो चार महीने बाहर जाकर रहो, जी बहल जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

२. मनोरंजन होना। चित्त प्रसन्न होना। जैसे,—थोड़ी देर बगीचे में जाने से जी बहल जाता है।

बहलवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० बहलवर्त्मन्] एक नेत्ररोग (को०)।

बहला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एला या इलायची का वृक्ष और उसका फल (को०)।

बहलाना—क्रि० स० [फ़ा० बहाल (=स्वस्थ) या हिं० भुलाना] १. जिस बात से जी ऊबा या दुःखी हो उसकी ओर से ध्यान हटाकर दूसरी ओर ले जाना। झंझट या दुःख की बात भुलाकर चित्त दूसरी ओर ले जाना। २. मनोरंजन करना। चित्त प्रसन्न करना। जैसे,—थोड़ी देर जी बहलाने के लिये बगीचे चला जाता हूँ। ३. भुलावा देना। बातों में लगाना। बहकाना। किसी के साथ ऐसा करना कि वह सावधान न रह जाय। जैसे,—उसे बहलाकर हम कुछ रुपया निकाल लाए हैं।

बहलाव—संज्ञा पुं० [हिं० बहलना] चित्त का किसी ओर कुछ काल के लिये लग जाना। मनोरंजन। प्रसन्नता।

यौ०—मनबहलाव।

बहलावा—संज्ञा पुं० [हिं० बहलाना] भुलावा। बहाना। उ०—मंतगुरु संगठन पलायन, बहलावा है।—रजत०, पृ० ६३।

बहलित—वि० [सं०] अत्यधिक मजबूत और ठोस या घना (को०)।

बहलिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बहेलिया'।

बहली—संज्ञा स्त्री० [सं० वहन] एक प्रकार की छतरीदार या परदेदार गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं। रथ के आकार की बैलगाड़ी।

बहल्लाⓤ‡—संज्ञा पुं० [हिं० बहलना अथवा फ़ा० बहाल] आनंद। प्रमोद। उ०—चला चला छायो रथ हूँ गयो बहल्ला हमैं लल्ला देत ईस आज अवधभुआर को।—रघुराज (शब्द०)।

बहल्ली—संज्ञा पुं० [हिं० बाहर>बहर+ली (प्रत्य०)] कुश्ती का एक पेंच। इसमें प्रतिपक्षी द्वारा कंधे पर आए हाथ को दबाकर घूम जाते हैं और साथ ही उसकी टाँग पर टाँग मारकर चित्त कर देते हैं।

बहशत—संज्ञा स्त्री० [अ० वहशत] भय। डर। खौफ। बदहोशी। उ०—बजाय तबीयत खुश करने के एक अजीब किस्म की बहशत और घबराहट पैदा करती है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५५।

बहस‡[1]—संज्ञा पुं० [देश०] सर्प। उ०—विषम बहस सह विषम बहस इम पद चतु हालै तेक धरी।—रघु० रू०, पृ० ६२।

बहस[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. वाद। दलील। तर्क। खंडन मंडन की युक्ति। किसी विषय को सिद्ध करने के लिये उत्तर प्रत्युत्तर के साथ बातचीत।

क्रि० प्र०—करना।

२. विवाद। झगड़ा। हुज्जत। ३. होड़। बाजी। बदाबदी। उ०—मोंहि तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज। अपने अपने बिरद की दुहूँ निबाहन लाज।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—बहस मुबाहसा = तर्क वितर्क। वादविवाद।

बहसनाⓤ [अ० बहस+हिं० ना (प्रत्य०)] १. बहस करना। तर्क वितर्क करना। २. होड़ बाँधना। उ०—बहसि [illegible] [illegible] नहिं। [illegible] [illegible] [illegible] तुलसीराम (शब्द०)।

बहा [illegible] [अ० बहाव] दे० 'बहाव'।

जानि। हिये करुना उपजै अति आनि।—केशव (शब्द०)। (ख) ग्यारह वर्ष बहिक्रम बीत्यो। खेलत आखेटक श्रम जीत्यो।—लाल (शब्द०)।

बहित्र—संज्ञा पुं० [सं० वहित्र] नाव। जहाज। उ०—छोड़ राम कामारि प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी त्रासनिधि वहित्रं।—तुलसी (शब्द०)।

बहिन—संज्ञा स्त्री० [सं० भगिनी, प्रा० बहिणी] माता की कन्या। बाप की बेटी। वह लड़की या स्त्री जिसके साथ एक ही माता पिता से उत्पन्न होने का संबंध हो। भगिनी।

विशेष—जिस प्रकार स्नेह से समान अवस्था के पुरुषों के लिये 'भाई' शब्द का व्यवहार होता है उसी प्रकार स्त्रियों के लिये 'बहिन', 'बहिनी' शब्द का भी।

बहिना†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बहिन'। उ०—बहिना आज सँजो दो, धीरे धीरे दीप अवलियाँ।—कुंकुम, पृ० १८।

बहिनापा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बहनापा'।

बहिनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० भगिनी, प्रा० बहिणी] दे० 'बहिन'।

बहिनोली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बहनेली'। उ०—अोली बहिनोली घर घर तें भरि भरि ओली देत सिहाय।—घनानंद, पृ० ५६१।

बहियाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाह+इयाँ (प्रत्य०)] दे० 'बाही' या 'बाहँ'। उ०—सूरदास हरि बोलि भगत को निरवाहत दै बहियाँ।—सूर (शब्द०)।

बहिया—संज्ञा स्त्री० [सं० वाह] बाढ़। प्लावन। उ०—नारी का अश्रु जल अपनी एक एक बूँद में बहिया लिए रहता है। जनमेजय०, पृ० १३।

बहिर्—अव्य० [सं० बहिस् का समासप्रयुक्त रूप] १. बाहर। जैसे, बहिर्गमन। २. बाहर का। बाहर से। उ०—बहिर्रति सात अरु अंतर्रति सात सुन रति विपरीतनि को विविध विचार है।—केशव (शब्द०)।

बहिरंग—वि० [सं० बहिरङ्ग] १. बाहरी। बाहरवाला। 'अंतरंग' का उलटा। २. जो गुट या मंडली के भीतर न हो।

बहिर†—वि० [सं० बधिर] दे० 'बहरा'। उ०—अंधहु बधिर न कहहि अस स्रवन नयन तव बीस।—तुलसी (शब्द०)।

बहिरत‡—अव्य० [सं० बहिर्] बाहर। उ०—जोगी होइ जग जीतता, बहिरत होइ संसार। एक अंदेसा रहि गया, पाछे परा अहार।—कबीर (शब्द०)।

बहिरा—वि० [हिं०] दे० 'बहरा'।

बहिराना†[1]—क्रि० स० [हिं० बाहर+ना (प्रत्य०)] बाहर कर देना। निकाल देना। उ०—सत्त नाम सुवा बरतावहु, घिरत लेहु बहिराई।—जग० बानी, पृ० ११७।

बहिराना[2]—क्रि० अ० बाहर होना।

बहिर्गत—वि० [सं०] १. जो बाहर गया हो। बाहर : निकला हुआ। २. जो बाहर हो। ३. अलग। जुदा अंतर्गत न हो।

बहिर्गमन—संज्ञा पुं० [सं०] बाहर जाना। उ०—जीवन को कुछ बहिर्गमन मिले।—सुनीता, पृ० ३३।

बहिर्गीत—संज्ञा पुं० [सं०] वह गायन जो तंतुवाद्य पर गाया जाय [को०]।

बहिर्गेह—अव्य० [सं०] १. गृह के बाहर। २. अन्य देश में। विदेश में [को०]।

बहिर्जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] दृश्यमान संसार। प्रत्यक्ष जगत् [को०]।

बहिर्जानु—अव्य० [सं०] हाथो को दोनों घुटनों के बाहर किए हुए (बीच मे नही)।

विशेष—श्राद्ध आदि कृत्यों में इस प्रकार बैठने का प्रयोजन पड़ता है।

बहिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] १. विदेश। परदेश। २. ग्राम या जनपद के बाहर का स्थान। ३. वह स्थान जहाँ गाँव या कस्बा न हो [को०]।

बहिर्द्वार—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकोष्ठ। तोरण। पोर्टिको [को०]।

बहिर्धा—वि० [सं०] बाहर का। बाहर की ओर का। बाह्य। बाहरी। उ०—और बहिर्धा परिणामभाजन लोक के रूप में (स्थान) होता है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३४१।

बहिर्ध्वजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

बहिर्भूत—वि० [सं०] १. जो बाहर हुआ हो। २. जो बाहर हो। ३. अलग। जुदा। ४. बीता हुआ। व्यतीत। जैसे, समय (को०)। ५. लापरवाह (को०)।

बहिर्भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बस्ती से बाहरवाली भूमि। २. झाड़े या जंगल जाने की भूमि। उ०—गए हैं बहिर्भूमि तहाँ कृष्ण भूमि आए करी बड़ी धूम आक बौंड़िन सों मारि कै।—प्रियादास (शब्द०)।

बहिर्मुख[1]—वि० [सं०] १. विमुख। विरुद्ध। पराङ्मुख। २. जो बाह्य विषयों में प्रवृत्त या दत्तचित्त हो। ३. मुख के बाहर आया हुआ (को०)। † ४. बहिष्कृत। बाहर किया हुआ। उ०—तब वा नागर ने श्रीगुसाँई जी से विनती करि कह्यो जो महाराज मेरी ज्ञाति के बहिर्मुख हैं।

बहिर्मुख[2]—संज्ञा पुं० देवता [को०]।

बहिर्यात्रा—संज्ञा पुं० [सं०] बाहर जाना। विदेश जाना [को०]।

बहिर्यान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बहिर्यात्रा'।

बहिर्योग—संज्ञा पुं० [सं०] बाह्य वस्तुओं या विषयों पर ध्यान अधिक केंद्रित करना [को०]।

बहिर्रति—संज्ञा स्त्री० [सं० बहिर्+हिं० रति] केशव के अनुसार रति ...ो भेदों में एक। बाहरी रति या समागम जिसके अंतर्गत ...लगन, चुंबन, स्पर्श, मर्दन, नखदान, रददान और ...स्पान हैं। उ०—बहिर्रति सात अरु अंतर्रति सात सुन विपरीतनि को विविध ...वच... (शब्द०)।

...संज्ञा पुं० [सं० बहिर्लम्ब ... अधिक कोण ... है [को०]।

...क—संज्ञा स्त्री० [सं ...ी

पहेली जिसमें उसके उत्तर का शब्द पहेली के शब्दों के बाहर रहता है, भीतर नहीं। 'अंतर्लापिका' का उलटा। जैसे,—अक्षर कौन विकल्प को युवति वसति किहि अग। बलि राजा कीने छल्यो सुरपति के परसग। उत्तर क्रमशः वा, वाम और वामन।

वहिर्वासा—संज्ञा पुं० [सं० वहिर्वास्] बाहरी कपड़ा। कौपीन के ऊपर पहनने का कपड़ा।

वहिर्विकार—संज्ञा पुं० [सं०] गर्मी या आतशक का रोग [को०]।

वहिर्व्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] बाहरी विषयों के प्रति अनुराग। लंपटता [को०]।

वहिर्व्यसनी—वि० [सं० बहिर्व्यसनिन्] लंपट। क्षुद्र। अविनयी। निम्न [को०]।

वहिला†—वि० [सं० बहुला (= गाय), या हिं० बाँझ + ला (प्रत्य०)] वंध्या। बाँझ। जो बच्चा न दे। (चौपायों के लिये)।

वहिश्चर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहर जानेवाला। २. बाहरी। बाहर का [को०]।

वहिश्चर²—संज्ञा पुं० १. केकड़ा। कर्कट। २. बाहर का दूत या गुप्तचर। बाहर का भेद लेनेवाला [को०]।

वहिष्क—वि० [सं०] बाहर का। बाहरी [को०]।

वहिष्करण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाह्य इंद्रियाँ। २. हटाना। अलग करना। ३. निकालना। बाहर करना। ४. त्याग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वहिष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० बहिष्कृत] १. बाहर करना। निकालना। २. दूर करना। हटाना। अलग करना। ३. त्याग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वहिष्कार्य—वि० [सं०] वहिष्कार करने योग्य। उ०—किसी त्याज्य। प्रकार की कुटिल अभिसंधि वह अपने के लिये हो या दूसरे के लिये सद्यः वहिष्कार्य समझता हूँ।—गीतिका (व०), पृ० १६।

वहिष्कुटीचर—संज्ञा पुं० [सं०] कर्कट। केकड़ा [को०]।

वहिष्कृत—वि० [सं०] १. बाहर किया हुआ। निकाला हुआ। २. अलग किया हुआ। दूर किया हुआ। ३. त्यागा हुआ। त्यक्त।

वहिष्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'वहिष्कार' [को०]।

वही—संज्ञा स्त्री० [सं० बद्ध, *बद्धिता, हिं० बँधी ?] हिसाब किताब लिखने की पुस्तक। सादे कागजों का गड्ड जो एक में सिला हो और जिसपर क्रम से नित्य प्रति का लेखा लिखा जाता हो। उ०—खाता खत जान दे वही को बहि जान दे।—पद्माकर (शब्द०)।

यौ०—वहीखाता। रोकड़ बही। हुंडी बही।

मुहा०—वही पर चढ़ना या टँकना = हिसाब की किताब में लिख लिया जाना। वही पर चढ़ाना या टाँकना = बही पर लिखना। दर्ज करना।

वहीखाता—संज्ञा स्त्री० [हिं०] हिसाब किताब की पुस्तक।

बहीर—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीड़] १. भीड़। जनसमूह। उ०—जिहि मारग गे पंडिता तेही गई बहीर। ऊँची घाटी राम की तिहि चढि रहे कबीर।—कबीर (शब्द०)। २. सेना के साथ साथ चलनेवाली भीड़ जिसमे साईस, सेवक, दूकानदार आदि रहते हैं। फौज का लवाज। उ०—ऐसे रघुबीर छीर नीर के विवेक कवि भीर की वहीर को समय के निकारिहौं।—हनुमान (शब्द०)। ३. सेना की सामग्री। फौज का सामान। उ०—हुकुम पाय कुतवाल ने दई बहीर लदाय।—सूदन (शब्द०)। (ख) कब आय हौ औसर जान सुजान बहीर लौं वैस तौ जाति लदी।—रसखान०, पृ० ७५।

बहीर(पु)†²—अव्य [सं० बहिस्, बहिर्] बाहर। उ०—कोऊ जाय द्वार ताहि देत हैं अढ़ाई सेर। बेर जनि खाओ चले जाव यों बहीर के।—प्रियादास (शब्द०)।

बहीरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'वहिर्रति'।

बहीरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बहेड़ा'।

बहूँटा—संज्ञा पुं० [हिं० बाँह] दे० 'बहूँटा'। उ०—बाहँन बहूँटा टाड़ सलोनी।—जायसी ग्रं०, पृ० १३२।

बहु¹—वि० [सं०] १. बहुत। एक से अधिक। अनेक। २. ज्यादा। अधिक।

बहु²—संज्ञा स्त्री० [सं० वधू] दे० बहू'। उ०—गे जनवासहि राउ, सुत, सुतबहुन समेत सब।—तुलसी (शब्द०)।

बहुकंटक¹—वि० [सं० बहुकण्टक] काँटों से भरा हुआ। बहुत काँटो-वाला कंटकावृत [को०]।

बहुकंटक²—संज्ञा पुं० १. जवासा। २. छोटा गोखरू (को०)। ३. हिंताल वृक्ष।

बहुकंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुकण्टा] कंटकारी।

बहुकंद—संज्ञा पुं० [सं० बहुकन्द] सूरन। ओल [को०]।

बहुक¹—वि० [सं०] अधिक या महँगे मूल्य पर क्रीत [को०]।

बहुक²—संज्ञा पुं० १. केकड़ा। २. आक। मदार। ३. पपीहा। चातक। ४. सूर्य (को०)। ५. तालाब खोदनेवाला व्यक्ति (को०)।

बहुकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतकुमारी।

बहुकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. झाड़ू देनेवाला। २. ऊँट।

बहुकरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुहारी। झाड़ू।

बहुकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू। बुहारी।

बहुकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी।

बहुकालीन—वि० [सं०] अत्यंत पुराना। बहुत काल का। प्राचीन। उ०—ज्ञानी मुन गृह बहुकालीना।—मानस, ७।६२।

बहुकूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का नारिकेल वृक्ष।

बहुकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित एक पर्वत का नाम।

बहुक्षम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० बहुक्षमा] १. बहुत सहन करनेवाला। २. अनेक कार्यों को करने में समर्थ।

बहुक्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिक दूध देनेवाली गौ। वह गाय जो अधिक दूध देती हो [को०]।

बहुगंध[1]—वि० [सं० बहुगन्ध] बहुत गंधवाला। तीव्र गंध का [को०]।

यौ०—बहुगंधदा = कस्तूरी। मृगमद।

बहुगंध[2]—संज्ञा पुं० १. दारचीनी। २. कुंदरु। ३. पीतचंदन।

बहुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुगन्धा] १. जूही। २. स्याहजीरा। ३. चंपा की कली।

बहुगव—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत में वर्णित पुरुवंशीय राजा।

बहुगुड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारी। भटकटैया। २. भूम्यामलकी।

बहुगुण—वि० [सं०] १. जिसमें बहुत सूत हों। अनेक सुतोंवाला। २. अनेक गुणयुक्त [को०]।

बहुगुना—संज्ञा पुं० [हिं० बहु+गुण] चौड़े मुँह का एक गहरा बरतन जिसके पेंदे और मुँह का घेरा बराबर होता है। इससे यात्रा आदि में कई काम ले सकते हैं। शायद इसी से इसे बहुगुना कहते हैं।

बहुगुनी—वि० [सं० बहुगुणिन्] विशेष जानकार। उ०—कह्या तब ऐ बहुगुनी नामदार। तेरा नाम रोशन अछो ठार ठार।—दक्खिनी०, पृ० ६२।

बहुगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसने ऊपरी तौर से या अगंभीरता से बहुत अधिक पढ़ा हो। अल्पज्ञ या पल्लवग्राही व्यक्ति।

बहुग्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुज्ञता] दे० 'बहुज्ञता'। उ०—धिग बहुग्यता धिग सब इषै। बिमुख जो कृष्ण अधोक्षज विषै।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४।

बहुग्रंथि—संज्ञा पुं० [सं० बहुग्रन्थि] झाऊ का पेड़।

बहुच्छल—वि० [सं०] छलयुक्त [को०]।

बहुछिन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंद गुडूची। गुडबेल [को०]।

बहुजन—संज्ञा पुं० [सं०] व्यक्तियों की बहुत अधिक संख्या। बहुत से लोगों का समूह। जनसमाज। जनसाधारण।

यौ०—बहुजन हिताय बहुजन सुखाय = बहुत से लोगों या जनसाधारण के कल्याण या सुख के लिये।

बहुजल्प—वि० [सं०] अत्यधिक बोलनेवाला। बड़बड़िया [को०]।

बहुज्ञ—वि० [सं०] बहुत बातें जाननेवाला। जानकार।

बहुज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत से विषयों का ज्ञान। सर्वज्ञता। उ०—संस्कृत के अनेक कवियों ने वेदांत, आयुर्वेद न्याय के पारिभाषिक शब्दों को लेकर बड़े बड़े चमत्कार खड़े किए हैं या अपनी बहुज्ञता दिखाई है।—रस०, पृ० ४४।

बहुटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहूँटा] बाँह पर पहनने का एक गहना। छोटा बहूँटा। उ०—बहु नंग लगे जराव की अँगिया भुजा बहुटनी बलय संग को।—सूर (शब्द०)।

बहुतंत्री—वि० [सं० बहुतन्त्रिन्] १. अनेक तंतुओंवाला (शरीर)। २. अनेक तारों वाला जैसे, सितार आदि वाद्य [को०]।

बहुतन्त्रीक—वि० [सं० बहुतन्त्रीक] अनेक तंतुओं या तारों से युक्त (वाद्य)।

बहुत[1]—वि० [सं० बहुतर; अथवा सं० प्रभूत, प्रा० पहुत्त] १. एक दो से अधिक। गिनती में ज्यादा। अनेक। जैसे,—वहाँ बहुत से आदमी गए। २. जो परिमाण में अल्प या न्यून न हो। जो मात्रा में अधिक हो। जैसे,—आज तुमने बहुत पानी पिया। ३. आवश्यकता भर या उससे अधिक। यथेष्ट। बस। काफी। जैसे, अब मत दो, इतना बहुत है।

मुहा०—बहुत अच्छा = (१) स्वीकृतिसूचक वाक्य। एवमस्तु। ऐसा ही होगा। (२) धमकी का वाक्य। खैर ऐसी करो, हम देख लेंगे। कोई परवा नहीं। बहुत करके = (१) अधिकतर। ज्यादातर। बहुधा। प्रायः। अक्सर। अधिक अवसरों पर। जैसे,—बहुत करके वह शाम को ही आता है। (२) अधिक संभव है। बीस बिस्वे। जैसे,—बहुत करके तो वह वहाँ पहुँच गया होगा, न पहुँचा हो तो भेज देना। बहुत कुछ = कम नहीं। गिनती करने योग्य। जैसे,—अभी उनके पास बहुत कुछ धन है। बहुत खूब! = (१) वाह! क्या कहना है। (किसी अनोखी बात पर)। (२) बहुत अच्छा। बहुत है = कुछ नहीं है। (व्यंग्य)। बहुत हो जिए = रहने दो। जाव। चल दो। तुम्हारा काम नहीं।

बहुत[2]—क्रि० वि० अधिक परिमाण में। ज्यादा। जैसे,—वह बहुत दौड़ा।

बहुतक—वि० [हिं० बहुत+एक अथवा क (स्वार्थ प्रत्य०)] बहुत से। बहुतेरे। उ०—बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।—तुलसी (शब्द०)।

बहुतरि—संज्ञा पुं०, वि० [सं० द्वासप्तति, प्रा० बहत्तरि] दे० 'बहत्तर'। उ०—लषिन बतिस बहुतरि कला बाल बेस पूरन सगुन। क्रीड़त गिलोल जब लाल कर तब मार बान चापक सुमन।—पृ० रा०, १।७२७।

बहुतों—वि० [हिं० बहुत] १. बहुत। २. बनियों की बोली में तीसरी तौल का नाम। (तीन की संख्या अशुभ समझी जाती है, इससे तौल की गिनती में जब बनिये तीन पर आते हैं तब यह शब्द कहते हैं।

बहुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत्व। अधिकता।

बहुताइत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बहुतायत'। उ०—हमको पिय तुम एक हो तुम को हम सी कोरि। बहुताइत के रावरे प्रीति न डारो तोरि।—नंद० ग्रं०, पृ० १६०।

बहुताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहुत+आई<आयत (प्रत्य०)] बहुतायत। अधिकता। ज्यादती।

बहुतात—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बहुतायत'।

बहुतायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहुत+आयत (प्रत्य०)] अधिकता। ज्यादती। कसरत।

बहुतिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकमाची।

बहुतृण[1]—वि० [सं०] १. घास से भरा हुआ। शाद्वलपूर्ण। २. घास की तरह। घास जैसा अनावश्यक एवम् तुच्छ [को०]।

बहुतृण[2]—संज्ञा पुं० मुंज नामक घास।

बहुतेर(५)—वि० [हिं०] दे० 'बहुतेरे'। उ०—साधो मंत्र सत मत ज्ञान। देखि जड़ बहुतेर अंधे, झूठ करहिं बखान।—जग० बानी, पृ० १५।

बहुतेरा[1]—वि० [हिं० बहुत+एरा (प्रत्य०)] [वि०स्त्री० बहुतेरी] बहुत सा। अधिक।

बहुतेरा[2]—क्रि० वि० बहुत। बहुत प्रकार से। बहुत परिमाण में। जैसे,—मैंने बहुतेरा समझाया, पर उसने एक न मानी।

बहुतेरे—वि० [हिं० बहुतेरा] संख्या में अधिक। बहुत से। अनेक। उ०—अवलोकि रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न वेष घनेरे।—मानस, १।५५।

बहुत्त(५)†—वि० [हिं०] दे० 'बहुत'। उ०—धनि छोड़िअ नवजोव्वना धन छोड़िओ बहुत्त।—कीर्ति०, पृ० २२।

बहुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] आधिक्य। अधिकता।

बहुत्वक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

बहुत्वच्—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

बहुदक्षिण—वि० [सं०] १. अधिक दानोपहार पानेवाला। अधिक उपहारों से युक्त। २. उदार विचारोंवाला [को०]।

बहुदर्शक—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'बहुदर्शी' [को०]।

बहुदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुज्ञता। बहुत सी बातों की जानकारी या समझ।

बहुदर्शी[1]—संज्ञा पुं० [सं० बहुदर्शिन्] वह व्यक्ति जिसने बहुत-कुछ देखा हो। जानकार या बहुज्ञ व्यक्ति।

बहुदर्शी[2]—वि० जानकार। बहुज्ञ। दूरदर्शी [को०]।

बहुदल—संज्ञा पुं० [सं०] चेना नाम का अन्न।

बहुदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंचु। चेंच नाम का साग।

बहुदुग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ।

बहुदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] थूहर का पेड़। स्नुही।

बहुदुग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'बहुदुग्धा'।

बहुधंधी—वि० [हिं० बहु+धंधा] अपने को बहुत कामों में लगाए रखनेवाला।

बहुधन—वि० [सं०] अत्यधिक संपत्तिवाला [को०]।

बहुधर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

बहुधा—क्रि० वि० [सं०] १. बहुत प्रकार से। अनेक ढंग से। २. बहुत करके। प्रायः। अकसर। अधिकतर। अवसरों पर।

बहुधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से बारहवाँ संवत्सर।

बहुधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का हीरा। वज्र। हीरक। २. विद्युत्। वज्र [को०]।

बहुनाद—संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

बहुपत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभ्रक। अबरक। २. प्याज। पलांडु। ३. वंशपत्र। ४. मुचकुंद का पेड़। ५. पलाश।

बहुपत्र[2]—वि० बहुत पत्तों से युक्त [को०]।

बहुपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरुणीपुष्प वृक्ष। २. शिवलिंगनी लता। ३. गोरकादुग्धी। दुधिया घास। ४. भूम्यांवला। ५. घीकुवार। ६. वृहती। ७. जतुका। पहाड़ी नाम की लता जिसकी पत्तियाँ दवा के काम में आती हैं।

बहुपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूम्यामलकी। २. महा शतावरी। ३. मेथी। ४. वच।

बहुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूम्यामलकी। २. लिंगिनी ३. तुलसी का पौधा। ४. जतुका। ५. वृहती। ६. दुधिया घास।

बहुपद्, बहुपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बहुपाद'।

बहुपाद[1]—वि० [सं०] अधिक पैरोंवाला। अनेक पैरोंवाला।

बहुपाद[2]—संज्ञा पुं० वटवृक्ष। बरगद का पेड़। बड़ का पेड़।

बहुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाँचवें प्रजापति का नाम। २. सप्तपर्ण। सप्तच्छद।

बहुपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद की अनुचरी। एक मातृका।

बहुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारिभद्र वृक्ष। फरहद का पेड़। २. नीम का पेड़।

बहुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी वृक्ष। धाय का पेड़।

बहुप्रज[1]—वि० [सं०] जिसके बहुत संतान हों।

बहुप्रज[2]—संज्ञा पुं० १. शूकर। सूअर। २. मूँज का पौधा। ३. मूसा। मूषक (को०)।

बहुफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कदंब। २. विकंकत। कटाई। बनभंटा।

बहुफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूम्यामलकी। २. खीरा। त्रपुष। ३. क्षविका। एक प्रकार का बनभंटा। ४. काकमाची। ५. छोटा करेला। जंगली करेला। करेली।

बहुफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जंगली गाजर।

विशेष—इसका पौधा अजवाइन का सा पर उससे छोटा होता है। पत्ते सौंफ के से होते हैं और धनिए के फूलों के से पीले रंग के गुच्छे लगते हैं। उँगली की तरह या पतली गाजर सी लंबी जड़ होती है। बीज भूरे हलके और हरसिंगार के बीजों के से होते हैं तथा बाजार में 'बनफली' या 'दूकू' (हकीमी) के नाम से बिकते हैं।

बहुफेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सातला। पीले दूधवाला थूहर। २. शंखाहुली।

बहुबल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। मृगेंद्र।

बहुबल्क—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल।

बहुबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] रावण । उ०—तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू । नाहि त अस होइहि बहुबाहू ।—तुलसी (शब्द०) ।

बहुबिधि—क्रि० वि० [सं० बहुविध] दे० 'बहुविध'[२] । उ०—बहुबिधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसु कौतुक तेई ।—मानस, ७।८८ ।

बहुबीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिजौरा नीबू । २. बीजवाला केला । ३. शरीफा । सीताफल ।

बहुबोलक—वि० [सं०] अत्यधिक वार्ता करनेवाला । बड़बड़िया [को०] ।

बहुभाग्य—वि० [सं०] अत्यंत भाग्यवान् [को०] ।

बहुभाषी—संज्ञा पुं० [सं० बहुभाषिन्] १. बहुत बोलनेवाला । बकवादी । २. अनेक भाषाओं का जानकार ।

बहुभुजक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] रेखागणित में वह क्षेत्र जो चार से अधिक रेखाओं से घिरा हो ।

बहुभुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

बहुभूमिक—वि० [सं०] १. अनेक मंजिलोंवाला । २. (नाटक) जो अनेक पात्र या अभिनेताओं से युक्त हो ।

बहुभोग्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुतों के द्वारा भोगी जानेवाली नारी । वेश्या । वारांगना [को०] ।

बहुभोजी—वि० [सं० बहुभोजिन्] अत्यधिक खानेवाला । पेटू [को०] ।

बहुमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुमञ्जरी] तुलसी ।

बहुमत—संज्ञा पुं० [सं०] अलग अलग बहुत से मत । बहुत से लोगों की अलग अलग राय । जैसे,—बहुमत से बात बिगड़ जाती है । २. बहुत से लोगों की मिलकर एक राय । अधिकतर लोगों का एक मत । जैसे,—सभा में यह प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया ।

बहुमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुमान । संमान । इज्जत [को०] ।

बहुमल—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नाम की धातु ।

बहुमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यंत समादर । उ०—बोलइ बीसल दे परधान । रायकुँवर आपी बहुमान ।—बी० रासो, पृ० १०२ । २. श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा अपने से छोटे के प्रति संमान या आदर भाव ।

बहुमानी—वि० [सं० बहुमानिन्] १. विशेष रूप से समादरणीय । २. अपने को बहुत समान्य समझनेवाला [को०] ।

बहुमान्य—वि० [सं०] विशेष रूप से आदर के योग्य । संमानित [को०] ।

बहुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] जहाँ से अनेक मार्ग फूटते हों । चतुष्पथ । चौराहा [को०] ।

बहुमार्गगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । २. पुंश्चली । चरित्रहीना नारी [को०] ।

बहुमार्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान या भूमि जहाँ कई रास्ते मिले हों [को०] ।

बहुमुख—वि० [सं०] १. अत्यधिक । बहुत । २. अनेक प्रकार की बातें करनेवाला [को०] ।

बहुमुखी—वि० [सं०] अनेक दिशाओं या विषयों में प्रवृत्त होनेवाली [को०] ।

बहुमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें रोगी को मूत्र बहुत उतरता है । पेशाब अधिक आने का रोग ।

विशेष—यह रोग दो प्रकार का होता है । एक में तो केवल जल का अंश ही बहुत उतरता है, दूसरे में मूत्र के साथ शर्करा या मधु निकलता है । बहुमूत्र शब्द से प्रायः दूसरे प्रकार का रोग समझा जाता है । यह बहुत भयंकर रोग है और इसमें रोगी की आयु दिन प्रतिदिन क्षीण होती चली जाती है । वैद्यक में यह प्रमेह के अंतर्गत माना गया है । विशेष—दे० 'मधुमेह' ।

बहुमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं० बहुमूर्त्ति] १. वनकपास । २. विष्णु । ३. बहुरूपिया ।

बहुमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामशर । सरकंडा । २. नरसल । ३. शोभांजन । शिग्रु । सहिजन । सैजन ।

बहुमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] खस । उशीर ।

बहुमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी ।

बहुमूल्य—वि० [सं०] अधिक मूल्य का । कीमती ।

बहुरंगा—वि० [हिं० बहु + रंग] १. कई रंग का । चित्रविचित्र । २. बहुरूपधारी । ३. मनमौजी । अस्थिर चित्त का ।

बहुरंगी—वि० [हिं० बहुरंगा + ई (प्रत्य०)] १. बहुरूपिया । अनेक प्रकार के रूप धारण करनेवाला । २. अनेक रंग दिखलानेवाला । अनेक प्रकार के करतब या चाल दिखलानेवाला । ३. मनमौजी ।

बहुरंध्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुरन्ध्रिका] मेदा ।

बहुर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बहुरि' । उ०—चपमाल सिसुपाल परसे अलि बहुर न आए ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०८ ।

बहुरना—क्रि० अ० [सं० प्रघूर्णन, प्रा० पहोलन] १. लौटना । फिरकर आना । वापस आना । उ०—बहुरी बरात जनवास थान । छबि सोभ सुवन भुवभंति भान ।—पृ० रा०, ४।१३ । २. फिर हाथ मे आना । फिर मिलना ।

बहुरस—संज्ञा पुं० [सं०] ईख । इक्षु [को०] ।

बहुरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती ।

बहुराना—क्रि० स० [हिं० बहुरना का सक० रूप] बिदा करना । लौटाना । उ०—(क) बहुराइ देव कवियन प्रबल मिलन पिथ्थ मग्गे चलिय ।—पृ० रा०, ६।६३ (ख) दइय बाच सब बीर नै बहुराए कवि चंद । सब सामंत अनंद भो बरसत नट्ठे दंद ।—पृ० रा०, ६।१७५ । (ग) सायर बन बसीठ बहुराए । चारिहुँ दिस बारी दौराए ।—चित्रा०, पृ० १४३ ।

बहुरि—क्रि० वि० [हिं० बहुराना > बहुरि (= फिरकर)] १. पुनः । फिर । २. इसके उपरांत । पीछे । अनंतर । उ०—आगे चले बहुरि रघुराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—बहुरि बहुरि = पुनः पुनः । बार बार । उ०—बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं ।—मानस, १।१४० ।

बहुरिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वधूटी, वधूटिका, प्रा० बहूडिया] नई बहू। उ०—जाग बहुरिया पहिरु रँग सारी।—धर्म० श०, पृ० ७०।

बहुरिया²—संज्ञा स्त्री० [देशी] बुहारी। मार्जनी [को०]।

बहुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भौरना (=भूनना)] भुना हुआ खड़ा अन्न। चर्वण। चबेना। उ०—सेतुवा कराइन बहुरी भुजाइन।—कबीर० श०, पृ० ५५।

बहुरूप¹—वि० [सं०] अनेक रूप धारण करनेवाला।

बहुरूप²—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. शिव। ३. कामदेव। ४. सरट। गिरगिट। ५. ब्रह्मा। ६. बाल। प्रियव्रत के पौत्र और मेधातिथि के पुत्र का नाम (भाग०)। ७. एक वर्ष का नाम। ८. एक बुद्ध का नाम। ९. तांडव नृत्य का एक भेद जिसमें अनेक प्रकार के रूप धारण करके नाचते हैं। १०. बाल। केश (को०)। ११. सूर्य (को०)।

बहुरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] एक जंतु।

बहुरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

बहुरूपिया¹—वि० [हिं० बहु + रूप + इया (प्रत्य०)] १. अनेक प्रकार के रूप धारण करनेवाला। २. नकल बनानेवाला।

बहुरूपिया²—संज्ञा पुं० वह जो तरह तरह के रूप बनाकर अपनी जीविका करता है।

बहुरूपी¹—वि० [सं० बहुरूपिन्] अनेक रूप धारण करनेवाला।

बहुरूपी²—संज्ञा पुं० बहुरूपिया।

बहुरेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

बहुरोमा—संज्ञा पुं० [सं० बहुरोमन्] १. मेष। मेढ़ा। २. वह जिसे अधिक बाल हों। लोमश। ३. घना (को०)। ४. बंदर। कपि।

बहुल¹—वि० [सं०] १. प्रचुर। अधिक। ज्यादा। २. काला। कृष्ण [को०]।

बहुल²—संज्ञा पुं० १. आकाश। २. सफेद मिर्च। ३. कृष्ण वर्ण। ४. कृष्ण पक्ष। ५. अग्नि। ६. महादेव।

बहुलगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुलगन्धा] छोटी इलायची।

बहुलच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] लाल सँजन। लाल सहिजन। रक्त शिग्रु।

बहुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुतायत। अधिकता। बाहुल्य। प्राचुर्य।

बहुला—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय। २. एक गाय जिसके सत्यव्रत की कथा पुराणों में है और जिसके नाम पर लोग भादों बदी चौथ को व्रत करते हैं। ३. नीलिका। नील का पौधा। ४. कालिका पुराण के अनुसार एक देवी का नाम। ५. इलायची। ६. मार्कंडेय पुराण में वर्णित एक नदी का नाम। ७. कृत्तिका नक्षत्र।

बहुलाचौथ—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुलाचतुर्थी] भादों बदी चौथ।

विशेष—इस दिन बहुला गाय के सत्यव्रत के स्मरणार्थ व्रत किया जाता है।

बहुलानुरक्त (सैन्य)—वि० [सं०] कौटिल्य के अनुसार प्रजा से प्रेम रखनेवाली (सेना)। सर्वप्रिय।

बहुलावन—संज्ञा पुं० [सं०] वृंदावन के ८४ बनों में से एक बन।

विशेष— कहते हैं, इसी बन में, बहुला गाय ने व्याघ्र के साथ अपना सत्यव्रत निबाहा था।

बहुलाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत में वर्णित मिथिला के एक परम भागवत राजा।

बहुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्तर्षिमंडल।

बहुलित—वि० [सं०] अभिवर्धित। बढ़ाया हुआ [को०]।

बहुली—संज्ञा स्त्री० [स० बहुला] इलायची। उ०—बूझा मरुआ, कुंद सों कहै गोद पसारी। बकुल, बहुलि, बट, कदम पै ठाढ़ी ब्रजनारी।—सूर (शब्द०)।

बहुलीकृत—वि० [स०] १. अभिवृद्ध। वर्धित। २. व्यक्त। प्रकटित [को०]।

बहुवचन—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण की एक परिभाषा जिससे (हिंदी मे द्विवचन न होने से) एक से अधिक वस्तुओं के होने का बोध होता है। जमा।

बहुवर्ण—वि० [सं०] १. बहुत रंगों से युक्त। बहुरंगा। २. बहुत वर्णों (ध्वनियों) वाला।

बहुवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक रोग जिसमें पलकों के चारो ओर छोटी छोटी फुंसियाँ सी फैल जाती हैं।

बहुवल्क—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल वृक्ष [को०]।

बहुवल्कल—संज्ञा स० [स०] दे० 'बहुवल्क'।

बहुवा—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहू] बहू। बहू। उ०—कहैं कबीर सुनो हो बहुवा, सवसंगत को घाव।—कबीर श०, पृ० ५०।

बहुविद—वि० [स०] बहुत सी बातें जाननेवाला। बहुज्ञ।

बहुविध¹—वि० [स०] अनेक प्रकार का [को०]।

बहुविध²—क्रि० वि० अनेक प्रकार से। बहुत ढंग से।

बहुविवाह—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनेक स्त्रियों का परिणयन। कई शादी करना।

बहुवीज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बहुबीज'।

बहुवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभीतक। बहेड़ा २. सेमर का पेड़। शाल्मली। ३. मरुवा।

बहुव्रीहि—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याकरण में छह प्रकार के समासों में से एक जिसमे दो या अधिक पदों के मिलने से जो समस्त पद बनता है वह एक अन्यपद का विशेषण होता है। जैसे,—पीतांबर, आरूढ़वानर (वृक्ष)=वह वृक्ष जिसपर बंदर आरूढ़ हो। २. बहुत व्रीहिवाला जन। वह व्यक्ति जिसके पास धान अधिक हो।

बहुशः—क्रि० वि० [सं० बहुशस्] बहुत। अधिक। बार बार।

उ०—विघूर्ण होती बहुशः शिला रही, कठोर उदबंधन सर्प गात्र से।—प्रिय० प्र०, पृ० १७७।

बहुशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] चटक। गौरा पक्षी।

बहुशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त खदिर। लाल खैर।

बहुशस्त—वि० [सं०] अत्यंत सुंदर। बहुत अच्छा। एकदम ठीक।

बहुशाख—संज्ञा पुं० [सं०] स्नुही। थूहर।

बहुशाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बहुशाख'।

बहुशिख—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

बहुशिर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

बहुशृंग—संज्ञा पुं० [सं० बहुशृङ्ग] विष्णु।

बहुश्रुत—वि० [सं०] १. जिसने बहुत सी बातें सुनी हों। जिसने अनेक प्रकार के विद्वानों से भिन्न भिन्न शास्त्रों की बातें सुनी हों। अनेक विषयों का जानकार। चतुर। २. बहुत लोगों द्वारा ज्ञात या चर्चित (व्यक्ति)।

बहुसंख्यक—संज्ञा पुं० [सं० बहुसंख्यक] गिनती में बहुत। अनेक। बहुत। उ०—फिर देखा, उस पुल के ऊपर बहुसंख्यक बैठे हैं वानर।—अनामिका, पृ० २४।

बहुसार—संज्ञा पुं० [सं०] खदिर। खैर।

बहुसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतमूली नामक क्षुप [को०]।

बहुसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शूकरी। मादा सुअर। २. अनेक पुत्रों की माता (को०)। ३. गाय (को०)।

बहुसूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कई पुत्रों की जननी। २. बहुत बच्चे देनेवाली गाय (को०)।

बहुस्रव—संज्ञा पुं० [स्त्री० बहुस्रवा] शल्लकी वृक्ष। सलई।

बहुस्वन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उल्लू। २. शंख।

बहुस्वामिक—वि० [सं०] अनेक मालिकोंवाला। जिसके कई स्वामी हों [को०]।

बहूँटा—संज्ञा पुं० [सं० बाहुस्थ, प्रा० बाहुट्ठ] [स्त्री० अल्पा० बहूँटी] बाँह पर पहनने का एक गहना।

बहू—संज्ञा स्त्री० [सं० वधू, प्रा० बहू] १. पुत्रवधू। पतोहू। २. पत्नी। स्त्री। ३. कोई नवविवाहिता स्त्री। दुलहिन।

बहूकरी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुकरी] दे० 'बहुकरी'।

बहूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० वधूटी] दे० 'वधूटी'। उ०—झंडे लेकर निकली थी और बहूटी पंडित की।—बेला, पृ० ४७।

बहूदक—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासियों का एक भेद। एक प्रकार का संन्यासी।

विशेष—ऐसे संन्यासियों को सात घर में भिक्षा माँगकर निर्वाह करना चाहिए। यदि एक ही गृहस्थ भरपेट भोजन दे तो भी नहीं लेना चाहिए। इनके लिये गाय की पूँछ के रोएँ से बँधा त्रिदंड, शिक्य, कौपीन, कमंडलु, गात्राच्छादन, कंथा, पादुका, छत्र, पवित्र, चर्म, सूची, पक्षिणी, रुद्राक्षमाला, बहिर्वास, खनित्र और कृपाण रखने का विधान है। इन्हें सर्वांग में भस्म और मस्तक में त्रिपुंड धारण करना चाहिए तथा शिखासूत्र न छोड़ना चाहिए और योगाभ्यास भी करना चाहिए।

बहूपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अर्थालंकार जिसमें एक उपमेय के एक धर्म से अनेक उपमान कहे जायँ। जैसे,—हिम हर हीरा हंस सो जस तेरो जसवंत।—मुरारिदान (शब्द०)।

बहेँगवा¹—संज्ञा पुं० [सं० विहङ्गम (बहिगम)] १. एक पक्षी जिसे भुजंगा या करचोटिया भी कहते हैं। †२. घुमंतू या आवारा व्यक्ति। ३. दे० 'बहेगवा'।

बहेँगवा²—वि० [सं० विहगम] १. घुमक्कड़। इधर उधर घूमनेवाला। २. आवारा। बहेतू।

बहेँत—संज्ञा स्त्री० [हिं० √बह (बहना) + ऐत (प्रत्य०)] वह काली मिट्टी जो तालों या गड्ढों में बहकर जमा हो जाती है। इसी मिट्टी के खपड़े बनते हैं।

बहेँतू—वि० [हिं०] दे० 'बहेतू'।

बहेगवा†—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों की गुदा के पास पूँछ के नीचे की मासग्रंथि।

बहेचा—संज्ञा पुं० [देश०] घड़े का ढाँचा जो चाक पर से गढ़कर उतारा जाता है। इसे जब थापी और पिटने से पीटकर बढ़ाते हैं तब यह घड़े के रूप में आता है। (कुम्हार)।

बहेड़ा—संज्ञा पुं० [सं० विभीतक, प्रा० बहेडअ] एक बड़ा और ऊँचा जंगली पेड़ जो अर्जुन की जाति का माना गया है।

विशेष—यह पतझड़ में पत्ते झाड़ता है और सिंध तथा राजपूताने आदि सूखे स्थानों को छोड़कर भारत के जंगलों में सर्वत्र होता है। बरमा और सिंहल में भी यह पाया जाता है। इसके पत्ते महुए के से होते हैं। फूल बहुत छोटे छोटे होते हैं जिनके झड़ने पर बड़ी बेर के इतने बड़े फल गुच्छों में लगते हैं। इनमें कसाव बहुत कम होता है, इससे ये चमड़ा सिझाने और रँगाई के काम में आते हैं। ताजे फलों को भेड़ बकरी खाती भी है। वैद्यक में बहेड़े का बहुत व्यवहार है। प्रसिद्ध औषध त्रिफला में हड़, बहेड़ा और आँवला ये तीन वस्तुएँ होती हैं। वैद्यक में बहेड़ा स्वादपाकी, कसैला, कफ-पित्त-नाशक, उष्णवीर्य, शीतल, भेदक, कास-नाशक, रूखा, नेत्रों को हितकारी, केशों को सुंदर करनेवाला तथा कृमि और स्वरभंग को नष्ट करनेवाला माना गया है। बहेड़े के पेड़ से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है जो पानी में नहीं घुलता। लकड़ी इसकी अच्छी नहीं होती पर तख्ते, हलके संदूक, हल या गाड़ी बनाने के काम में आती है।

पर्या०—विभीतक। कलिद्रुम। कल्पवृक्ष। संवर्त। अक्ष। तुष। कर्षफल। भूतवास। कुलिक। बहुवीर्य। तैलफल। वासंत। हार्य। विषघ्न। कलिंद। कासघ्न। तोलफल। तिलपुष्पक।

बहेतू—वि० [हिं०] १. बहा बहा फिरनेवाला। इधर उधर

मारा मारा फिरनेवाला। जिसका कहीं ठौर ठिकाना न हो। २. आवारा। व्यर्थ घूमनेवाला। निकम्मा।

बहेरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बहेड़ा'। उ०—मोहि बरजत बहेर तर गई।—नंद० ग्रं०, पृ० १०८।

बहेरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बहेड़ा'।

बहेरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहराना] बहाना। हीला। उ०—मोहि न पत्याहु तो संग हरिदासी हुती पूँछि देखि भटू कहि धौ कहा भयो मेरी सौं। प्यारी तोहिं गठौंध न प्रतीति छाड़ि छिया जान दे इतनी बहेरी सौं —हरिदास (शब्द०)।

बहेला—संज्ञा पुं० [सं० बाह्यकर] कुश्ती का एक पेंच।

बहेलिया—संज्ञा पुं० [सं० बध+हेला] पशु पक्षियों को पकड़ने या मारने का व्यवसाय करनेवाला। शिकारी। अहेरी। व्याध। चिड़ीमार।

बहोड़नाⓅ—क्रि० स० [सं० प्रघूर्णन, प्रा० पहोलन, हिं० बहुरना] वापस करना। लौटाना। उ०—(क) कबीर यह तन जात है सकै तो लेहु बहोड़ि।—कबीर ग्रं०, पृ० २४४। (ख) साल्ह चलंतउ हे सखी, गउखे चढ़ि मई दीठ। हियड़उ वाहीं सूँ गयउ नयण बहोड़्या नीठ।—ढोला०, दू० ३६२।

बहोड़िⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'बहोरि'। उ०—तो तूठा वर प्रापिजइ। भूलउ हो आखर आणि बहोड़ि।—बी० रासो, पृ० ३।

बहोड़ीⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'बहोड़ि'। उ०—रहि [रही] कांमणी अंचल छोड़ी, ओलग जाऊँ हूँ अंक न बहोड़ी।—बी० रासो, पृ० ४६।

बहोत—वि० [हिं०] दे० 'बहुत'। उ०—(क) सो ये पढ़े बहोत।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४। (ख) शम दम से आन लड़े। बहोतों के तखत चढ़े।—दक्खिनी०, पृ० ६३।

बहोतरिⓅ†—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'बहत्तर'। उ०—नव नाड़ी बहोतरि कोठा ए अष्टांग सब झूठा।—गोरख०, पृ० ४६।

बहोरⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० बहुरना] फेरा। वापसी। पलटा। उ०—सबही लीन्ह बिसाहन अरु घर कीन्ह बहोर। बाम्हन तहवाँ लेइ का गाँठि साँठि सुठि थोर।—जायसी (शब्द०)।

बहोर²—क्रि० वि० दे० 'बहोरि'।

बहोरना†—क्रि० स० [हिं० बहुरना] १. लौटाना। वापस करना। फेरना। पलटाना। उ०—गई बहोरि गरीबनिवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।—मानस, १।१३। २. (चौपायों को) घर की ओर हाँकना। हाँकना।

बहोरि†Ⓟ—अव्य० [हिं० बहोर] पुनः। फिर। दूसरी बार। उ०—प्रस्तुति कीन्ह बहोरि बहोरी।—तुलसी (शब्द०)।

बहोरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [?] बहुल्ली। शालभंजिका। पुतली। उ०—न करि मोह कर गहि सु दुज, मुछि बहोरिय सुप।—पृ० रा०, २४।४४६।

बह्न¹—संज्ञा स्त्री० [प्र०] शेर का वजन। बहर। वृत्त। छंद [को०]।

बह्न²—संज्ञा पुं० १. समुद्र। सागर। २. महासागर। ३. नद। ४. उदारहृदय व्यक्ति। ५. जलयानों का झुंड। जहाजों का समूह। ६. तीव्रगामी अश्व [को०]।

बह्नी—वि० [अ०] समुद्र संबंधी। समुद्रीय।

बह्नोद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बहूदक' [को०]।

बांछनाⓅ†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छा या वाञ्छना] इच्छा। अभिलाषा। कामना। आकांक्षा। उ०—यह बाछना होइ क्यो पूरन दासी ह्वै बस ब्रज रहिए।—सूर (शब्द०)।

बांछनाⓅ†²—क्रि० स० [सं० वाञ्छन] दे० 'बाँछना'।

बांछाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छा] इच्छा। कामना। अभिलाषा। आकांक्षा।

बांछितⓅ—वि० [सं० वाञ्छित] इच्छित। अभिलषित। आकांक्षित।

बांछी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० वाञ्छिन्] इच्छुक। इच्छा करनेवाला। अभिलाषा करनेवाला।

बांड—संज्ञा पुं० [अं० बॉन्ड] १. अनुबंध। एकरारनामा। २. दृढ़ या पक्का आश्वासन। ३. ऋणपत्र। हुंडी [को०]।

बांधकिनेय—संज्ञा पुं० [सं० बान्धकिनेय] जारज संतान। पुंश्चली-पुत्र [को०]।

बांधकेय—संज्ञा पुं० [सं० बान्धकेय] दे० 'बांधकिनेय'।

बांधव—संज्ञा पुं० [सं० बान्धव] १. भाई। बंधु। २. नातेदार। रिश्तेदार। ३. मित्र। दोस्त।† ४. दे० 'बांधोगढ़'। उ०—(क) विध्य पृष्ठ पर है मनोज्ञ बांधव अति विस्तृत।—प्रेमांजलि, पृ० ४२। (ख) है यह बांधव मही स्वयं निज छवि पर मोहित।—प्रेमांजलि, पृ० ४३।

बांधवक—वि० [सं० बान्धवक] बंधुजन संबंधी [को०]।

बांधवजन—संज्ञा पुं० [सं० बान्धवजन] नातेदार। रिश्तेदार। भाई बंधु।

बांधवधुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० बान्धवधुरा] सद्भाव। हितकामना।

बांधव्य—संज्ञा पुं० [सं० बान्धव्यम्] बंधुता। भाईचारा। भ्रातृत्व। नातेदारी [को०]।

बांधोगढ़—संज्ञा पुं० [हिं० बांधव+गढ़] एक प्रदेश। वर्तमान रीवाँ राज्य (मध्यप्रदेश)। उ०—बांधोगढ़ के आमिन बिनवै धनि हो कबीर गोसाईं।—धर्म० श० पृ० ५६।

बाँ¹—संज्ञा पुं० [अनु०] गाय के बोलने का शब्द।

बाँ†²—संज्ञा पुं० [हिं० बेर] बार। दफा। बेर। उ०—(क) कै बाँ आवत यहि गली रह्यो चलाय चलै न। दरसन की साधै रहै सूधे रहत न नैन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मैं तोसों कै बाँ कह्यो तू जन इन्हैं पत्याय। लगा लगी करि लोयननि उर में लाई लाय।—बिहारी (शब्द०)।

बाँक¹—संज्ञा पुं० [सं० बङ्क] १. चंद्राकार बना हुआ टाँड़ जो बच्चों की बाँह में पहनाया जाता है। भुजदंड पर पहनने का एक आभूषण। २. एक प्रकार का चाँदी का गहना जो पैरों में

पहना जाता है। ३. हाथ में पहनने की एक प्रकार की पटरी या चौड़ी चूड़ी। ४. लोहारों का लोहे का बना हुआ शिकंजा जिसमें जकड़कर किसी चीज को रेतते हैं। ५. नदी का मोड़। ६. सरौते के आकार का वह औजार जिससे गन्ना छीलते हैं। ७. कमान। धनुष। ८. टेढ़ापन। ९. एक प्रकार की छोटी छुरी जो आकार में कुछ टेढ़ी होती है। १०. बाँक नामक हथियार चलाने की विद्या।

यौ०—बाँक बनौट = बाँक चलाने का कला। उ०—और बाँक बनौट से वाकिफ न होते तो भंडारा खुल जाता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३६।

११. एक प्रकार की कसरत जिसमें बाँक चलाने का अभ्यास किया जाता है। यह कसरत बैठकर या लेटकर होती है।

बाँक[2]—वि० [सं० वक्र] १. टेढ़ा। घुमावदार। उ०—कुच जुग धरए कुंभथल कांति। बाँक नखर खत अंकुश भाँति। विद्यापति, पृ० १८। २. बाँका। तिरछा। उ०—बाँक नयन अरु अंजन रेखा। खंजन जान सरद रितु देखा।—जायसी (शब्द०)।

बाँक[3]—संज्ञा पुं० [सं० वक्रक] जहाज के ढाँचे में वह शहतीर जो खड़े बल में लगाया जाता है।

बाँक[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

बाँकड़ा†[1]—वि० [बाँक + ड़ा (प्रत्य०)] वीर। साहसी। बहादुर। दे० 'बाँकुरा'।

बाँकड़ा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बाँक+ड़ा (प्रत्य०)] छकड़े के आँक की वह लकड़ी जो धुरे के नीचे आड़े बल में लगी होती है।

बाँकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० वक्र + हिं० ड़ी (प्रत्य०)] बादले और कलाबत्तू का बना हुआ एक प्रकार का सुनहला या रुपहला फीता जिसका एक सिरा कँगूरेदार होता है और जो स्त्रियों की धोती आदि में शोभा के लिये टाँका जाता है।

बाँकडोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँक] एक प्रकार का शस्त्र। उ०—बाँकडोरी फरस्सानि लै दाव को। खंजरो पंजरो में करै घाव को।—सूदन (शब्द०)।

बाँकनल—संज्ञा पुं० [सं० वक्रनाल] सोनारों का एक औजार जिसे फूँक मारकर टाँका लगाते हैं। बकनाल।

विशेष—यह पीतल की बनी हुई एक छोटी सी नली होती है। इसके एक ओर से फूँक मारी जाती है और दूसरे सिरे से, जो टेढा होता है, दीए की लौ से टाँका गलाकर लगाते हैं।

बाँकना†[1]—क्रि० स० [सं० वङ्क+हिं० ना (प्रत्य०)] टेढ़ा करना। उ०—जेहि जिय मनहि होय सतभाऊ। परै पहार नहिं बाँकै बाऊ।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—बाल बाँकना = दे० 'बाल' के अंतर्गत 'बाल बाँका करना'।

बाँकना†[2]—क्रि० अ० टेढा होना।

बाँकपन—संज्ञा पुं० [हिं० बाँका+पन (प्रत्य०)] १. टेढ़ापन। तिरछापन। २. छैलापन। अलबेलापन। ३. बनावट। सजावट। वजअदारी। ४. छवि। शोभा।

बाँकपना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाँकपन'। उ०—स्मित बन जाती है तरल हँसी नयनों में भरकर बाँकपना।—कामायनी, पृ० ९८।

बाँका[1]—वि० [सं० वङ्क] १. टेढ़ा। तिरछा। २. अत्यंत साहसी। बहादुर। वीर। ३. सुंदर और बना ठना। जो अपने शरीर को खूब सजाए हो। छैला। उ०—और क्या पूछते हो काफिर का। शोख है बाँका है सिपाही है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १०। ४. गुंडा। उ०—बड़ो भाई बाँकों हतो।—दो सौ बावन०, भा० १ पृ० २०९।

बाँका[2]—संज्ञा पुं० [सं० वङ्क] १. लोहे का बना हुआ एक प्रकार का हथियार जो टेढ़ा होता है और जिससे बाँसफोड़ लोग बाँस काटते छाँटते हैं। उ०—खिन खिन जीव सँडासन आँका। औ नित डोम छुआवहि बाँका।—जायसी (शब्द०)। २. एक प्रकार का कीड़ा जो धान की फसल को हानि पहुँचाता है। ३. बारात आदि में अथवा किसी जुलूस में वह बालक या युवक जो खूब सुंदर वस्त्र और अलंकार आदि से सजाकर तथा पालकी पर बैठाकर शोभा के लिये निकाला जाता है।

बाँकिया—संज्ञा पुं० [सं० वङ्क+हिं० इया (प्रत्य०)] नरसिंहा नाम का फूँककर बजानेवाला बाजा जो आकार में कुछ टेढ़ा होता है। यह पीतल या ताँबे का बनता है।

बाँकी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँका] लोहे का बना हुआ एक औजार जिससे बँसफोड़ लोग बाँस की फट्टियाँ काटते, छीलते या दुरुस्त करते हैं।

बाँकी[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० बाक़ी] १. भूमिकर। लगान। २. दे० 'बाकी'।

बाँकुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाँकड़ी'।

बाँकुर(पु)†—वि० [हिं० बाँका] दे० 'बाँकुरा'।

बाँकुरा—वि० [हिं० बाँका अथवा सं० वङ्कुर (= मोड़, घुमाव)] १ बाँका। टेढ़ा। २. पैना। पतली धार का। ३. कुशल। चतुर। उ०—प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रण बाँकुरा बालिसुत बंका।—तुलसी (शब्द०)।

बाँग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. आवाज। शब्द। २. पुकार। चिल्लाहट। ३. वह ऊँचा शब्द या मंत्रोच्चारण जो नमाज का समय बताने के लिये कोई मुल्ला मसजिद में करता है। अजान।

क्रि० प्र०—देना।

४. प्रातःकाल मुरगे के बोलने का शब्द।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना। उ०—आहट जो पाई तो घबरा के कुकड़ूँ कूँ की बाँग लगाई।—फिसाना०, भा० १, पृ० १।

बाँगड़[1]—संज्ञा पुं० [राज० बाघड़] बिना बस्ती का देश। वह देश जहाँ बस्ती दूर दूर पर हो।

बाँगड़[2]—संज्ञा पुं० [देश०] हिसार, रोहतक और करनाल का प्रांत।

बाँगड़ू†[1]—वि० [हिं० बाँगर] मूर्ख। बेवकूफ। दुर्बुद्धि।

बाँगड़[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँगड़ (प्रदेश)] हिसार, रोहतक और करनाल के जाटों की बोली जिसे जाटू या हरियानी भी कहते हैं।

बाँगर—संज्ञा पुं० [देश०] १. छकड़ा गाड़ी का वह बाँस जो फड़ के ऊपर लगाकर फड़ के साथ बाँध दिया जाता है। २. खादर के विरुद्ध वह भूमि जो कुछ ऊँचे पर अवस्थित हो। वह भूमि जो नदी, झील आदि के बढ़ने पर भी कभी पानी में न डूबे। ३. अवध में पाए जानेवाले एक प्रकार के बैल।

बाँगा—संज्ञा दे० [देश०] वह रूई जो ओटी न गई हो। बिनौले समेत रूई। कपास।

बाँगुर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं या पक्षियों को फँसाने का जाल। फंदा। उ०—बाँगुर विषम तोराइ, मनहु भाग मृग भाग बस।—तुलसी (शब्द०)।

बाँचना[1]—क्रि० स० [सं० वाचन] पढ़ना। उ०—(क) जाइ बिधिहि तिन दीन्ह सो पाती। बाँचत प्रीति न हृदय समाती।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तर झुरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाय। पिय पाती बिन ही लिखी बाँची बिरह बलाय।—बिहारी (शब्द०)।

बाँचना[2]—क्रि० अ० [सं० वञ्चन] १. शेष रहना। बाकी रहना। बच रहना। उ०—सत्यकेतु कुल कोउ न बाँचा। विप्र साप किमि होय असाँचा।—तुलसी (शब्द०)। २. जीवित रहना। बचा रहना। उ०—तेहि कारण खल अब लगि बाँचा। अब तब काल सीस पर नाचा।—तुलसी (शब्द०)।

बाँचना[3]—क्रि० स० [हिं० बचाना] बचाना। छोड़ देना। उ०—बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनिहार भा साँचा।—तुलसी (शब्द०)।

बाँचनिहार—वि० [हिं० बचना+हार (प्रत्य०)] बचनेवाला। उ०—दिया खता न प्यान किया मंदर भया उजार। मरे गए ते मर गए बाँचे बाँचनिहार।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० २३६।

बाँछ—संज्ञा स्त्री० [देश०] ओंठ की कोर। दे० 'बाछ'। उ०—नवाब साहब की बाँछें खिल गईं।—झाँसी०, पृ० १८४।

बाँछना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छन] इच्छा। अभिलाषा। कामना। आकांक्षा।

बाँछना[2]—क्रि० स० [सं० वाञ्छन] १. चाहना। इच्छा करना। अभिलाषा करना। उ०—महा मुक्ति कोऊ नहीं बाँछै यदपि पदारथ चारी। सूरदास स्वामी मन मोहन मूरति की बलिहारी।—सूर (शब्द०)। २. अच्छी या बुरी चीजें चुनना। छाँटना।

बाँछा—संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छा] इच्छा। कामना।

बाँछित—वि० [सं० वाञ्छित] दे० 'वांछित'। उ०—जो बाँछित ही रैनि दिन सो कीनी करतार।—नंद० ग्रं० पृ०, १३३।

बाँछी—संज्ञा पुं० [सं० वाञ्छिन्] अभिलाषा करनेवाला।

बाँझ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्ध्या] १. वह स्त्री जिसे संतान होती ही न हो। वंध्या। २. कोई मादा जिसे बच्चा न होता हो।

बाँझ[2]—वि० १. बिना संतान का। संततिरहित। २. निष्फल। फलरहित (वृक्ष)। ३. व्यर्थ। बेकार। फिजूल।

मुहा०—बाँझ होना = व्यर्थ होना। उ०—नंददास लटकत पिय प्यारी, छबि रची बिरचि, मनो निपुनता भई बाँझ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७४।

बाँझ[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष जिसके फलों की गुठलियाँ बच्चों के गले में, उनको रोग आदि से बचाने के लिये बाँधी जाती हैं।

बाँझककोली—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्ध्याकर्कोटकी] बन ककोड़ा। खेखसा। बन परवल।

बाँझपन—संज्ञा पुं० [सं० वन्ध्या, हिं० बाँझ+पन (प्रत्य०)] बाँझ होने का भाव। वंध्यात्व।

बाँझपना—संज्ञा पुं० [हिं० बाँझ+पन (प्रत्य०)] दे० 'बाँझपन'।

बाँट[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बाँटना का भाव] १. किसी वस्तु को बाँटने की क्रिया या भाव। २. भाग। हिस्सा। बखरा।

मुहा०—बाँट पड़ना = हिस्से में आना। किसी में, या किसी के पास बहुत परिमाण में होना। उ०—विप्रद्रोह जु बाँट परचो हठि सबसे बैर बढ़ावौं।—तुलसी (शब्द०)। बाँट में पड़ना = दे० 'बाँट पड़ना'। उ०—दिलेरी हमारे बाँट में पड़ी थी।—भुभते०, पृ० २। बाँटे पड़ना = हिस्से में आना। उ०—काँटे भी हैं कुसुम संग बाँटे पड़े।—साकेत, पृ० १३८।

३. घास या पयाल का बना हुआ एक मोटा सा रस्सा जिसे गाँव के लोग कुवार सुदी १४ को बनाते हैं और दोनों ओर से कुछ लोग इसे पकड़कर तब तक खींचातानी करते हैं जब तक वह टूट नहीं जाता।

यौ०—बाँटा चौदस = कुँवार सुदी १४ जिस दिन बाँट खींचा जाता है।

बाँट[2]—संज्ञा पुं० [सं० वटक] दे० 'बाट'।

बाँट[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १ गौओं आदि के लिये एक विशेष प्रकार का भोजन जिसमें खरी बिनौला आदि चीजें रहती हैं। इससे उनका दूध बढ़ जाता है। २. ढेंढर नाम की घास जो धान के खेतों में उगकर उसकी फसल को हानि पहुँचाती है।

बाँट बखरा—संज्ञा पुं० [हिं० बाट+बखरा] बाँट। अलग अलग हिस्सा मिलना।

बाँटचूँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँट+चूँट (अनुध्व०)] १ भाग। हिस्सा। बखरा।

२. लेन देन। देना दिलाना।

बाँटनहार—वि० [हिं० बाँटना+हार (प्रत्य०)] वितरणकर्ता। बाँटनेवाला। उ०—निश्चय निधी मिलाय तव, सतगुरु साहस धीर। निपजी में साझी घना, बाँटनहार कबीर।—कबीर सा० सं०, पृ० ५।

बाँटना[1]—क्रि० स० [सं० वितरण, वर्तन या वण्टन] १. किसी चीज के कई भाग करके अलग अलग रखना। २. हिस्सा

लगाना। विभाग करना। जैसे,—उन्होंने अपनी सारी जायदाद अपने दोनों लड़कों और तीनों भाइयों में बाँट दी। ३. थोड़ा थोड़ा सबको देना। वितरण करना। जैसे,—चने बाँटना, पैसे बाँटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

बाँटना[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बाटना'।

बाँटबूँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाट+बूँट (द्विरुक्तिमूल अनु०)] दे० 'बाँटचूँट'।

बाँटा—संज्ञा पुं० [हिं० बाँटना] १. बाँटने की क्रिया या भाव। २. भाग। हिस्सा। ३. गाने बजानेवालों आदि का वह इनाम जो वे आपस मे बाँट लेते हैं। हर एक के हिस्से का मिला हुआ पुरस्कार।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—लगना।—लगाना।—लेना।

बाँड़[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दो नदियों के संगम के बीच की भूमि जो वर्षा में नदियों के बढ़ने से डूब जाती है और फिर कुछ दिनों मे निकल आती है। इस भूमि पर खेती अच्छी होती है।

बाँड़[2]—वि० [सं० वण्ट] जिसके पूँछ न हो।

बाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बिना पूँछ की गाय। २. कोई मादा पशु जिसकी पूँछ न हो या कट गई हो। ३. छोटी लाठी। छड़ी। ४. दो नदियों के संगम के बीच का भूभाग। बाँड़। उ०—बाँड़ी जो नदी को नाम जै की सीम कीनी।—शिखर०, पृ० ५।

बाँड़ीबाज—संज्ञा पुं० [हिं० बाँड़ी + फ़ा० बाज] १. लाठीबाज। लकड़ी से लड़नेवाला। २. उपद्रवी। शरारती।

बाँदा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बंदह] [स्त्री० बाँदी] सेवक। दास। उ०—जहाँगीर वह चिश्ती निहकलंक जस चाँद। वै मखदूम जगत के हों वहि घर को बाँद।—जायसी (शब्द०)।

बाँदनाⓅ†—क्रि० स० [देश०] केंद्रित करना। बाँधना। उ०—कोई नाक के ऊपर ज्यों, नित बाँदते नजर क्यों। दिसते ही जोत फर यों, नित हँसत रह तूँ मीरों।—दक्खिनी०, पृ० ११०।

बाँदर†—संज्ञा पुं० [सं० वानर] दे० 'बंदर'। उ०—बाँदर मैं बाँदर भयो मच्छ माँहि पुनि मच्छ। सुंदर गाइनि मैं गऊ बच्छनि माँहै बच्छ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ७७।

मुहा०—बाँदर काटे=बंदर काटे अर्थात् बुरा हो। उ०—सुंदर जाइहि राजघर जोगिहि बाँदर काटु।—जायसी ग्रं०, पृ० ६५।

बाँदा—संज्ञा पुं० [सं० वन्दाक] १. एक प्रकार की वनस्पति जो अन्य वृक्षों की शाखाओं पर उगकर पुष्ट होती है।

पर्या०—तरुभुक्। शिखरी। वृक्षरुहा। गंधमादनी। वृक्षादनी। श्यामा।

२. किसी वृक्ष पर उगी हुई कोई दूसरी वनस्पति।

बाँदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बंदह्] लौंड़ी। दासी।

मुहा०—बाँदी का बेटा या जना=(१) परम अधीन। अत्यंत आज्ञाकारी। (२) तुच्छ। हीन। (३) वर्णसंकर। दोगला।

बाँदूⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बन्दी] बँधुआ। कैदी। उ०—पाँखन फिर फिर परा सो फाँदू। उड़ि न सकहिं उरझे, भए बाँदू।—जायसी (शब्द०)।

बाँध—संज्ञा पुं० [हिं० बाँधना (=रोकना)] नदी या जलाशय आदि के किनारे मिट्टी, पत्थर आदि का बनाया हुआ धुस्स। यह पानी की बाढ़ आदि को रोकने के लिये बनाया जाता है। धुस्स। बंद। उ०—खेत फटिक जस लागै गढ़ा। बाँध उठाय चहूँ गढ़ मढ़ा।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बाँधना।

बाँधना—क्रि० स० [सं० बन्धन] १. रस्सी, तागे, कपड़े आदि की सहायता से किसी पदार्थ को बंधन में करना। रस्सी, डोरे आदि की लपेट में इस प्रकार दबा रखना कि कहीं इधर उधर न हो सके। कसने या जकड़ने के लिये किसी चीज के घेरे में लाकर गाँठ देना। जैसे, हाथ पैर बाँधना। घोड़ा बाँधना। २. रस्सी, तागा आदि किसी वस्तु में लपेटकर दृढ़ करना जिससे वह वस्तु अथवा रस्सी या तागा इधर उधर हट या सरक न सके। कसने या जकड़ने के लिये रस्सी आदि लपेटकर उसमें गाँठ लगाना। जैसे, रस्सी बाँधना। जंजीर बाँधना। ३. कपड़े आदि के कोनों को चारों ओर से बटोरकर और गाँठ देकर मिलाना जिसमें संपुट सा बन जाय। जैसे, गठरी बाँधना। ४. चारों ओर से बटोरे या लपेटे हुए कपड़े के भीतर करना। जैसे,—यह धोती गठरी में बाँध लो। ५. कैद करना। पकड़कर बंद करना। ६. नियम, प्रभाव, अधिकार, प्रतिज्ञा या शपथ आदि की सहायता से मर्यादित रखना। ऐसा प्रबंध या निश्चय कर देना जिससे किसी को किसी विशेष प्रकार से व्यवहार करना पड़े। पाबंद करना। जैसे,—(क) आपको तो उन्होंने वचन लेकर बाँध लिया है। (ख) सब लोग एक ही नियम से बाँध लिए गए। ७. मंत्र तंत्र आदि की सहायता से अथवा और किसी प्रकार प्रभाव, शक्ति या गति आदि को रोकना। जैसे,—(क) वह देखते ही साँप को बाँध देते हैं, उसे अपनी जगह से आगे बढ़ने ही नहीं देते। (ख) आजकल पानी नहीं बरसता मालूम पड़ता है कि किसी ने बाँध दिया है। ८. प्रेमपाश में बद्ध करना। ९. नियत करना। मुकर्रर करना। ऐसा करना जिससे कोई वस्तु किसी रूप में स्थिर रहे या कोई बात बराबर हुआ करे। जैसे, हद बाँधना, महसूल बाँधना, महीना बाँधना। १०. पानी का बहाव रोकने के लिये बाँध आदि बनाना। ११. चूर्ण आदि को हाथों से दबाकर पिंड के रूप में लाना। जैसे, लड्डू बाँधना, गोली बाँधना। १२. मकान आदि बनाना। जैसे, घर बाँधना। १३. किसी विषय का, वर्णन आदि के लिये, ढाँचा या स्थूल रूप तैयार

करना। रचना के लिये सामग्री जोड़ना। उपक्रम करना। योजना करना। न्यास करना। बैठाना। बंदिश करना। जैसे, रूपक बाँधना। मजमून बाँधना। १४. क्रम या व्यवस्था आदि ठीक करना। जैसे, कतार बाँधना। १५. ठीक करना। दुरुस्त करना। मन में बैठाना। स्थिर करना। जैसे, मसूबा बाँधना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

१६. किसी प्रकार का अस्त्र या शस्त्र आदि साथ रखना। जैसे, हथियार बाँधना। तलवार बाँधना। १७. किसी कार्य की दृष्टि से लोगों को इकट्ठा करना। जैसे, दल बाँधना। गोल बाँधना। १८. संपुटित करना। एक में करना। मिलाना। जैसे, हाथ बाँध कर निवेदन करना। १६. किसी एक विंदु या स्थान पर केंद्रित करना। जैसे, दीठ बाँधना।

बाँधनीपौरिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँधनी + पौरि] पशुओं के बाँधने का स्थान। पशुशाला। उ०—कवि ग्वाल चरायो लै आयो घरे फिरि बाँधनीपौरि सुहावनी है। —ग्वाल (शब्द०)।

बाँधनू—संज्ञा पुं० [हिं० बाँधना + ऊ (प्रत्य०)] १. वह उपाय जो किसी कार्य को आरंभ करने से पहले सोचा या किया जाय। पहले से ठीक की हुई तरकीब या विचार। उपक्रम। मंसूबा।

क्रि० प्र०—बाँधना।

२. कोई बात होनेवाली मानकर पहले से ही उसके संबंध में तरह तरह के विचार। ख्याली पुलाव।

क्रि० प्र०—बाँधना।

३. झूठा दोष। मिथ्या अभियोग। तोहमत। कलंक। ४. कल्पित बात। मन में गढ़ी हुई बात। ५. कपड़े की रँगाई में वह बंधन जो रँगरेज लोग चुनरी या लहरिएदार रँगाई आदि रँगने के पहले कपड़े में बाँधते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।

६. चुनरी या और कोई ऐसा वस्त्र जो इस प्रकार बाँधकर रँगा गया हो। उ०—कहै पद्माकर त्यों बाँधनू बसनवारी वा ब्रज बसनवारी ह्यो हरनवारी है।—पद्माकर (शब्द०)।

बाँन्योटा†—संज्ञा पुं० [हिं० बनिया + ओटा (प्रत्य०)] वणिक का कार्य। व्यापार। कारबार। रोजगार। बनियौटा। उ०—साह रमइया अति बड़ा खोलै नही कपाट। सुंदर बान्योटा किया दीन्ही काया हाट।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७४२।

बाँब—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो साँप के आकार की होती है।

बाँबी—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्मीक] १. दीमकों के रहने का भीटा। दीमकों का बनाया हुआ मिट्टी का भीटा। बँबीठा। उ०—(क) बाँबी फिर अंगहवली अंग उदेही जाम। झीन सबद मुख निक्कसे धीर धीर कै राम।—पृ० रा०, ११६१। (ख) आधे तन बाँबी चढ़ि आई। सर्प तुचा छाती लपटाई।—शकुंतला, पृ० १३६। २. वह बिल जिसमें साँप रहता हो। साँप का बिल। उ०—मन मनसा मारै नहीं, काया मारण जाँहि। दादू बाँबी मारिए सरप मरै क्यों माँहि।—दादू० बानी, पृ० ३४८।

बाँभन†Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण, प्रा० बंभन] दे० 'ब्राह्मण'। उ०—(क) धरि आनए बाँभन बटुआ।—कीर्ति०, पृ० ४४। (ख) बाँभनन देखि करत सुदामा सुधि, मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ।—भूषण ग्रं०, पृ० १६।

बाँमा—संज्ञा स्त्री० [सं० वामा] वामा। स्त्री। नारी। उ०—आदि हु राम हि अंतहु राम हि, मध्य हु राम हि पुंस न बाँमै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५०२।

बाँमी—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्मीक] दे० 'बाँबी'।

बाँय†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाय] बावड़ी। उ०—यो भी है सौदागर ने यूसुफ कूँ काढ़ी बाँय सूँ।—दक्खिनी०, पृ० १४६।

बाँयाँ—वि० [सं० वाम] दे० 'बायाँ'। उ०—उससे मनमानी करा लेना उसके बाँयें हाथ का खेल होता है।—रसकलश, पृ० ६।

बाँव†—वि० [सं० वाम] वाम। बायाँ। उ०—विधि परसाद कुँअर एकसरा। बाँव पंथ तजि दाहिन परा।—चित्रा०, पृ० २७।

बाँवनाⓅ—क्रि० स० [?.] रखना।

बाँवली—संज्ञा स्त्री० [सं० बब्बुल, राज० बाँवल, हिं० बबूल] बबूल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष। उ०—बाँवलि काइ न सिरिजिआँ, मारू मंझ थलाँह। प्रातम बाढ़त काँवड़ी फल सेवंत कराँह।—ढोला०, दू० ४१४।

विशेष—यह वृक्ष सिंध, पंजाब और मारवाड़ में सूखे तालों के तलों में होता है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है और इसमें से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

बाँवाँ†—वि० [सं० वाम] दे० 'बायाँ'। उ०—(क) लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं। एतो बड़ो अपराध भो न मन बाँवों।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जो दसकंठ दियो बाँवों जेहि हरगिरि कियो है मनाकु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१५।

बाँवाँछोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रत्न जो लहसुनिया की जाति का होता है।

बाँवारथी—संज्ञा पुं० [सं० बावन] वामन। बौना। बहुत ठिंगना।

बाँस—संज्ञा पुं० [सं० वंश] १. तृण जाति की एक प्रसिद्ध वनस्पति जिसके कांडों में थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं और गाँठों के बीच का स्थान प्रायः कुछ पोला होता है।

विशेष—भारत में इसकी ठोस, पोली, मोटी, पतली, लंबी, छोटी आदि प्रायः २८ जातियाँ और १०० से ऊपर उपजातियाँ होती हैं। जैसे,—नरी, रिंगल, कँटबाँस, बोरो, नलबाँस, देवबाँस, बाँसिनी, गोबिया, ततंग (तिनवा),

कोकवा, सेजसई (तीली), खांग, तिरिया, करैल, भूली (पैवा), बुलंगी आदि। यह गरम देशों में अधिक होता है और बहुत से कामों में आता है। इससे चटाइयाँ, टोकरियाँ, पंखे, कुरसियाँ, टट्टर, छप्पर, छड़ियाँ, आदि अनेक चीजें बनती हैं। कहीं कहीं तो लोग केवल बांस से ही सारा मकान बना लेते हैं और कहीं कहीं कच्चे बाँस के चोंगों में भरकर चावल तक पका लेते हैं। इसके पतले रेशों से रस्सियाँ भी बनती हैं। इसके कोपलों का मुरब्बा और अचार भी तैयार किया जाता है। इसके रेशों से मजबूत कागज बनता है।

प्रायः एक ही स्थान पर बहुत से बांस एक साथ एक झुरमुट में उत्पन्न होते हैं जिसे 'कोठी' कहते हैं। गरम देशों में प्रायः बहुत बड़े तथा मोटे और ठंढे देशों में छोटे और पतले बाँस होते हैं। कुछ बाँस ऐसे होते हैं जो जड़ की ओर अधिक मोटे और सिरे की ओर पतले होते जाते हैं। कुछ ऐसे भी होते है जिनकी मोटाई सब जगह बराबर रहती है। ऐसे बाँस प्रायः छड़ियाँ और छाते की डंडियाँ बनाने के काम मे आते हैं। बहुत बड़े बड़े बांस प्रायः सौ हाथ तक लंबे होते हैं। कुछ छोटे बाँस लता के रूप में भी होते हैं। सब प्रकार के बाँसो में एक प्रकार के फूल लगते हैं, पर कुछ बाँस, विशेषतः बड़े बाँस, फूलने के पीछे प्रायः तुरत नष्ट हो जाते हैं। बाँस के फूल आकार में जई की बालों के समान होते हैं और उनमे छोटे छोटे दाने होते हैं जो चावल कहलाते हैं और पीसकर ज्वार आदि के आटे में मिलाकर खाए जाते है। यह एक विलक्षण बात है कि प्रायः अकाल के समय बाँस अधिकता से फूलते हैं, और उस समय इन्हीं फूलो को खाकर सैकड़ों आदमी अपने प्राण बचाते हैं। भारत में बाँसों का फूलना बहुत ही अशुभ माना जाता है। बांसो की पत्तियाँ पशुओं को चारे और औषध के रूप में खिलाई जाती हैं। तबाशीर या वंशलोचन भी बाँसों से ही निकलता है।

मुहा०—बाँस पर चढ़ना = बदनाम होना। बाँस पर चढ़ाना = (१) बदनाम करना। (२) बहुत बढ़ा देना। बहुत उन्नत या उच्च कर देना। (३) मिजाज बढा देना। बहुत आदर करके धृष्ट या घमंडी बना देना। बाँसों उछलना = बहुत अधिक प्रसन्न होना। खूब खुश होना।

२. एक नाप जो सवा तीन गज की होती है। लाठा। ३. नाव खेने की लग्गी। ४. पीठ के बीच की हड्डी जो गरदन से कमर तक चली गई है। रीढ़। ५. भाला (डिं०)।

बाँसपूर—संज्ञा पुं० [सं० वंशपर्व, हिं० बाँस+पोर या पूरना] एक प्रकार का महीन कपड़ा। उ०—चँदनौता औ खरदुक भारी। बाँसपूर झिलमिल की सारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १४५।

विशेष—कहते हैं, यह इतना महीन होता था कि इसका एक थान बाँस के चोंगे मे भरा जा सकता था।

बाँसपोर†—संज्ञा पुं० [हिं० बाँसपूर] दे० 'बाँसपूर'।

बाँसफल—संज्ञा पुं० [हिं० बाँस+फल] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में पैदा होता है। इसे 'बाँसी' भी कहते हैं।

बाँसली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँस+ली (प्रत्य०)] १. बांस की बनी हुई बजाने की वंशी। बाँसुरी। मुरली २. इसी आकार प्रकार का पीतल लोहे आदि का बना हुआ बजाने का बाजा। वंशी। ३. एक प्रकार की जालीदार लंबी पतली थैली जिसमें रुपया पैसा रखा जाता है और जो कमर में बाँधी जाती है। हिमयानी।

बाँसा[१]—संज्ञा पुं० [सं० वंशक, हिं० बाँस] बाँस का बना हुआ चोंगे के आकार का वह छोटा नल जो हल के साथ बँधा रहता है। अरना। तार।

विशेष—इसी मे बोने के लिये अन्न भरा रहता है जो नीचे की ओर से गिरकर खेत में पड़ता है।

बाँसा[२]—संज्ञा पुं० [सं० वंश (=रीढ़)] १. नाक के ऊपर की हड्डी जो दोनो नथनों के ऊपर बीचोबीच रहती है।

मुहा०—बाँसा फिर जाना = नाक का टेढा हो जाना (जो मृत्यु काल के समीप होने का चिह्न माना जाता है)। २. पीठ की लंबी हड्डी जो गरदन के नीचे से लेकर कमर तक रहती है। रीढ।

बाँसा[३]—संज्ञा पुं० [हिं० प्रिय+बाँस] एक प्रकार का छोटा पौधा। पियाबाँसा। उ०—मोथा नींव निरायत बाँसा। पीतपापरा पित कहँ नासा।—इंद्रा०, पृ० १५१।

विशेष—इस पौधे में चंपई रंग के बहुत सुंदर फूल लगते हैं। इसके बीज बहुत छोटे और काले रंग के होते हैं। इसकी लकड़ी के कोयलों से बारूद बनती है।

बाँसा†[४]—क्रि० वि० [सं० पार्श्व, हिं० पास, राज० वास] पास। समीप। बगल। उ०—प्रीतम बाँसइ जाइ नइँ मुई सुणाए मुझ्झ।—ढोला०, दू० ६२५।

बाँसागड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० बाँस+गाड़ना] कुश्ती का एक पेंच।

बाँसिनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँस] एक प्रकार का बाँस जिसे करियाल, कना अथवा कुल्लुक भी कहते हैं।

बाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँस+ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का मुलायम पतला बाँस जिससे हुक्के के नैचे आदि बनते हैं। २. एक प्रकार का गेहूँ जिसकी बाल कुछ काली होती है। ३. एक प्रकार का धान जिसका चावल बहुत सुगंधित, मुलायम और स्वादिष्ट होता है। यह संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में अधिकता से होता है इसे बाँसफल भी कहते हैं। ४. एक प्रकार की घास। इसके डंठल मोटे और कड़े होते हैं, इसीलिये पशु इसे कम खाते हैं। ५. एक प्रकार का पक्षी। ६. एक प्रकार पत्थर जिसका रंग सफेदी लिए पीला होता है और जो बड़ी बड़ी सिलों के रूप मे पाया जाता है। ७. बसुरी। बाँसुरी।

बाँसुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँस+उरी (प्रत्य०)] बाँस का बना हुआ प्रसिद्ध बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है। मुरली। वंशी। बाँसली।

विशेष—यह बाजा प्रायः डेढ़ बालिश्त लंबा होता है और इसका

एक सिरा बाँस की गाँठ के कारण बंद रहता है। बंद सिरे की ओर सात स्वरों के लिये सात छेद होते हैं और दूसरी ओर बजाने के लिये एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ छेद होता है। उसी छेदवाले सिरे को मुँह में लेकर फूँकते हैं और स्वरोंवाले छेदों पर उँगलियाँ रखकर उन्हें बंद कर देते हैं। जब जो स्वर निकालना होता है तब उस स्वरवाले छेद पर की उँगली उठा लेते हैं।

बाँसुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँस] १ एक प्रकार की घास जो अंतर्वेद में होती है।

विशेष—फसल के लिये यह घास बड़ी ही हानिकारक होती है; इसका नाश करना बहुत ही कठिन होता है।

२. 'बाँसुरी'।

बाँसुलीकंद—संज्ञा पुं० [हिं० बाँसुली + सं० कन्द] एक प्रकार का जंगली सूरन या जमींकंद जो गले मे बहुत अधिक लगता है और प्रायः इसी के कारण खाने के योग्य नहीं होता।

बाँह—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहु] १. कंधे से निकलकर दंड के रूप में गया हुआ अंग जिसके छोर पर हथेली या पंजा लगा होता है। भुजा। हाथ। बाहु।

मुहा०—बाँह गहना या पकड़ना = (१) किसी की सहायता करने के लिये हाथ बढ़ाना। सहारा देना। हर तरह से मदद देने के लिये तैयार होना। अपनाना। उ०—बिन सतगुर बाचै नही, फिरि बूड़ै भव माँह। भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकड़ै बाँह।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ११। (२) विवाह करना। पाणिग्रहण करना। शादी करना। बाँह की छाँह लेना = शरण में आना। बाँह के सहारे रहना = पौरुष का भरोसा करना। अपने बल का विश्वास करना। उ०—है करम रेख मुठियों में ही। बेहतरी बाँह के सहारे हैं।—चुभते०, पृ० १०। बाँह चढ़ाना = (१) किसी कार्य के करने के लिये उद्यत होना। कोई काम करने के लिये तैयार होना। (२) लड़ने के लिये तैयार होना। बाँह दिखाना = हाथ की नाड़ी दिखाना। रोग का निदान कराना। उ०—बाबुल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह। मूरख बैद मरम नहिं जानै, करक कलेजे माँह। —संतवाणी०, भा० २, पृ० ७२। बाँह देना = सहायता देना। सहारा देना। मदद करना। उ०—(क) नूपुर जनु मुनिवर कलहंसन रचे नीड़ दै बाँह।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कीन्ह सखा सुग्रीव प्रभु दीन्ह बाँह रघुबीरतु।—[तु]लसी (शब्द०)। बाँह बुलंद होना = (१) बलवान या साहसी होना। (२) हृदय उदार होना। दान देने के लिये उठनेवाला हाथ होना।

यौ०—बाँह बोल = रक्षा करने या सहायता देने का वचन। सहायता देने का वादा। उ०—लाज बाँह बोल की, नेवाजे की सँभार सार, साहेब न राम सो, बलैया लीजै सील की।—तुलसी (शब्द०)।

२. बल। शक्ति। भुजबल। उ०—मैन महीप सिंगार पुरी निज बाँह बसाई है मध्य सखी के।—(शब्द०)। ३. सहायक। मददगार।

मुहा०—बाँह टूटना = सहायक या रक्षक आदि का न रह जाना। शक्तिहीन होना।

४. भरोसा। आसरा। सहारा। शरण। उ०—(क) तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब, तेरो नाम लिए रहै आरति न काहु की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तिनकी न काम सकै चापि छाँह। तुलसी जे बसैं रघुबीर बाँह।—तुलसी (शब्द०)। ५. एक प्रकार की कसरत जो दो आदमी मिलकर करते हैं।

विशेष—इसमें बारी बारी से हर एक आदमी अपनी बाँह दूसरे के कंधे पर रखता है और उसे अपनी बाँह के जोर से वहाँ से हटाता है। इससे बाहों पर जोर पड़ता है और उनमें बल आता है।

६. कुरते कमीज, अंगे, कोट आदि मे लगा हुआ वह मोहरीदार टुकड़ा जिसमें बाँह डाली जाती है। आस्तीन। जैसे,—इस कुरते की बाँह छोटी हो गई है।

बाँह²—संज्ञा पुं० दे० 'बाह' या 'बाही'।

बाँहतोड़—संज्ञा पुं० [हिं०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें जब गरदन पर जोड़ के दोनों हाथ आते हैं तब उन हाथों पर से अपना एक हाथ उलटकर उसकी जाँघ में अड़ा देते हैं और दूसरा हाथ उसकी बगल से ले जाकर गरदन पर से घुमाते हुए उसकी पीठ पर ले जाते हैं। फिर उसे टाँग पर मारकर गिरा देते हैं।

बाँहनाⓅ¹—क्रि० स० [सं० वपन] बाहना। बोना। उ०—राम नाम करि बोंहड़ा, बाँही बीज अघाइ। अंति कालि सूका पड़ै तो निरफल कदे न जाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५८।

बाँहनाⓅ²—क्रि० स० [सं० वाहन (= चालन)] संधान करना। चलाना। उ०—सतगुर लई कमाण करि, बाँहण लागा तीर। एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या शरीर।—कबीर ग्रं०,।

बाँहमरोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुश्ती का पेंच।

विशेष—इसमें जब जोड़े का हाथ कधे पर आता है तब अपना हाथ उसकी बगल में ले जाकर उसकी उँगलियाँ पकड़कर मरोड़ देते है और दूसरे हाथ से उसकी कोहनी पकड़कर टाँग मारते हैं, जिससे जोड़ गिर जाता है। यह पेंच उसी समय किया जाता है जब जोड़ शरीर से नहीं सटा रहता, कुछ दूर पर रहता है।

बाँहीं—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाँह'।

बा¹—संज्ञा पुं० [सं० वार् > वाः (= जल)] जल। पानी। उ०—राधे तैं कत मान कियो री। घन हर हित रिपु सुत सुजान को नीतन नाहिं दियो री। बा जा पति अग्रज अंबा के भानुथान

सुत हीन हियो री ।—सूर (शब्द०) । (ख) राधा कैसे मान बचावै । सेसभार धर जा पति रिपु तिय जलयुत कबहुँ न हेरै । वा निवास रिपु घर रिपु लै सर सदा सूल सुख पैरै । वा ज्वर नीतन ते सारँग अति बार बार भर लावै ।—सूर (शब्द०) ।

वा[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बार] बार । दफा । मरतबा । उ०—कारे बरन डरावने कत आवत यहि गेह । कै वा लख्यो, सखी ! लखे लगै थरथरी देह ।—बिहारी (शब्द०) ।

वा[३]—उप० [फ़ा०] साथ । वाला । पूर्ण ।

विशेष—संज्ञावाचक शब्दों के पूर्व लगने पर यह उपरिलिखित अर्थ देता है । जैसे,—बाअदव, बाअसर, बाआबरू, बाईमान, आदि ।

वा[४]—संज्ञा स्त्री० [देशी वाइया, गुज० बाई, बा] १. माता । मा । २. श्रेष्ठ या बड़ी स्त्रियों के लिये आदरार्थक शब्द । ३. महात्मा गांधी की धर्मपत्नी । कस्तूरबा गांधी ।

बाइ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाई' ।

बाइक(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० वाचक, प्रा० वायक] दे० 'बायक' । उ०—सतगुरु रहना सकल सूँ सब गुन रहिता बैन । रज्जब मानी साखि सो उस बाइक मे चैन ।—रज्जब०, बानी, पृ० ६ ।

बाइक(पु)[२]—वि० [सं० वाचिक, प्रा० वाइअ] दे० 'वाचिक' । उ०—काइक बाइक मानसी कर्म न लागै ताहि ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८०७ ।

यौ०—बाइकविलास = वाग्विलास । वाग्जाल । वाणी का विलास । उ०—तीजो बाइकविलास सु तौ सब वेद माँहि । बरनि के जहाँ लग बचन तै कह्यो है ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६२२ ।

बाइका†—संज्ञा स्त्री० [तु० बायको, मरा० बायको, तुल० गुज०, हिं० बाई, बा] सुंदर स्त्री । पण्यनारी । उ०—बाइकाँ बनेंगी राँडाँ बेगले फिरेंगे छोरे ।—दक्खिनी०, पृ० २६७ ।

बाइगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] औरत । स्त्री । उ०—कौन बाइगी सुनै, ताहि किन मोहि बतायौ । परपचिनि तुम ग्वालि ! झूठ ही मोहि बुलायौ ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६८ ।

बाइनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बयना' ।

बाइप्लेन—संज्ञा पुं० [अं०] एरोप्लेन या वायुयान का एक भेद ।

बाइबिरंग†—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु विडङ्ग, हिं० बाय बिडंग] बिड़ंग ।

बाइबिल—संज्ञा स्त्री० [यू० बाइबिल(= पुस्तक)] ईसाइयों की धर्मपुस्तक । इंजील ।

विशेष—यह दो भागों में विभक्त है । एक प्राचीन जो हिब्रू या इब्रानी भाषा मे थी और जिसे यहूदी भी मानते है । इसमें सृष्टि की उत्पत्ति मूसा के ईश्वरदर्शन आदि की कथा है । दूसरी नवीन या अर्वाचीन, जो यूनानी भाषा में थी और जिसमें ईसा की उत्पत्ति, उपदेश, करामात आदि का वर्णन है । ये दोनों ही भाग कई पोथियों के संग्रह हैं । ये संग्रह ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दी में हुए थे । इन दोनों का अनुवाद संसार की प्राय: सभी भाषाओं मे हो गया है ।

बाइस[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. सबब । कारण । वजह । उ०—लोग पूँछते हैं बाइस बस सुनकर चुप हो जाऊँ ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६२ । २. मूल कारण । बुनियाद ।

बाइस[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाईस' ।

बाइसवाँ—वि० [हिं०] दे० 'बाईसवाँ' ।

बाइसिकिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रसिद्ध गाड़ी । पैरगाड़ी । साइकिल ।

विशेष—इसमें आगे पीछे केवल दो ही पहिए होते हैं । इसके बीच में केवल बैठने भर को स्थान होता है और आगे की ओर दोनों हाथ टेकने और गाड़ी को घुमाने के लिये अड्डे के आकार की एक टेक होती है । इसमे नीचे की ओर एक चक्कर लगा रहता है जो पैर के दबाव से घूमता है, जिससे गाड़ी बहुत तेजी से चलती है ।

बाई[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु] त्रिदोषों मे से वातदोष जिसके प्रकोप से मनुष्य बेसुध या पागल हो जाता है । दे० 'वात' ।

क्रि० प्र०—आना ।—उतरना ।

मुहा०—बाई का दखल, बाई की झोंक = (१) वायु का प्रकोप । सन्निपात । (२) आवेश । बाई चढ़ना = (१) वायु का प्रकोप होना । (२) घमंड आदि के कारण व्यर्थ की बातें करना । बाई पचना = (१) वायुप्रकोप शांत होना । (२) घमंड टूटना । शेखी मिटना । बाई पचाना = घमंड तोड़ना । गर्व चूर करना ।

बाई[२]—संज्ञा स्त्री० [देशी बाइया, गुज० बाई, बा, हिं० बाबा, बाबी] स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द । जैसे,—लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग राजपूताने, गुजरात और दक्षिण आदि देशों में अधिक होता है ।

२. एक शब्द जो उत्तरी प्रांतो में प्राय: वेश्याओं के नाम के साथ लगाया जाता है ।

बाईजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाइका] पण्यस्त्री । वेश्या । नायका ।

बाईस[१]—संज्ञा पुं० [सं० द्वाविंशति, प्रा० बाईसा] बीस और दो की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२२ ।

बाईस[२]—वि० जो बीस और दो हो । बीस से दो अधिक ।

बाईसवाँ—वि० [हिं० बाईस + वाँ (प्रत्य०)] गिनने में बाईस के स्थान पर पड़नेवाला । जो क्रम में बाईस के स्थान पर हो ।

बाईसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाईस + ई (प्रत्य०)] १. बाईस वस्तुओं का समूह । २. बाईस पद्यों का समूह । जैसे, खटमल बाईसी ।

बाउंटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सहायता या मदद जो व्यापार या उद्योग धंधे को उत्तेजन देने के लिये दी जाय । सहायता । मदद ।

बाउ‡—संज्ञा पुं० [सं० वायु] हवा । पवन । उ०—(क) मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ तन लाग न काऊ ।—

मानस, २।२०० । (ख) ताति बाउ लागै नहीं, आठो पहर अनंद ।—संतबानी०, भा० १, पृ० १३५ ।

बाउर†—वि० [सं० वातुल] [वि० स्त्री० बाउरी] १. बावला । पागल । उ०—करम लिखा जो बाउर नाहू । तौ कत दोसु लगाइय काहू ।—मानस, १।९७ । २. भोला भाला । सीधा सादा । ३. मूर्ख । अज्ञान । ४. जो बोल न सके । मूक । गूँगा । †५. बुरा ।

बाउरि, बाऊरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाउर] बौरी । पगली ।

बाउरी†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बावली' ।

बाउरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास ।

बाउलि†—वि० [हिं०] पगली । बावरी । उ०—हृदय का बाउलि कहिए पर जनु तोहीं कही सयानी ।—विद्यापति, पृ० २१३ ।

बाऊ‡[1]—संज्ञा पुं० [सं० वायु] हवा । पवन । उ०—सीतल मंद सुरभि बह बाऊ ।—मानस, १।१९१ ।

बाऊ‡[2]—संज्ञा पु० [हिं०] पिता । बाबू । बापू ।

बाएँ—क्रि० वि० [हिं० बायाँ] बाईं ओर । बाईं तरफ ।

बाक[1]—संज्ञा पु० [स०] बकपंक्ति । बकयूथ [को०] ।

बाक(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० वक्त्र; प्रा० वक्क, राज० बाक] मुख । उ०—बाक घणा फाटा रहै, नाहर डाच निहाल ।—बाँकी०, ग्रं०, भा० १. पृ० २६ ।

बाक(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० वाक्, प्रा० बाक] वाक् । वाणी । उ०—नटनागर की न गली तजिहौं, गुरु लोक के वाक गजै न गजै ।—नट०, पृ० ५८ ।

मुहा०—बाक न आना=कुछ कह न पाना । मुख से बोल न निकलना । उ०—बंध नाहिं औ कंध न कोई । बाक न आव कहौं केहि रोइ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६२ ।

बाकचाल—वि० [सं० वाक्+चल] बहुत अधिक बोलनेवाला । बक्की । बातूनी । मुँहजोर । उ०—बड़ो बाकचाल याहि सूझत न काल निज, कहौ तों बिचारि कपि कौन विधि मारिए ।—हनुमान (शब्द०) ।

बाकता(पु)— वि० [सं० वक्ता] बोलनेवाला । कहनेवाला । वक्ता । उ०—सत्य बैन को बाकता, बुल्लिव जगनिक राय ।—प० रासो, पृ० ६७ ।

बाकना(पु)‡—क्रि अ० [सं० वाक् से हिं० बकना, बाकनां] बकना । प्रलाप करना । उ०—साँवरे जू रावरे यों बिरह बिकानी बाल, बन बन बावरी लौ बाकिबो करति है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

बाकबानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वाक्+वाणी] वाक्यरूपा वाणी । वचनरूपा सरस्वती । उ०—आसन मिल्यो है पाकसासन को सेय तिन्हैं, जिन की कृपा तै बोल कढ़ै बाकबानी के ।—ग्रं०, ब्रज० पृ० १२६ ।

बाकमाल—वि० [फ़ा० बा+अ० कमाल] कमालवाला । चमत्कारी । गुणी । उ०—ऐसे ऐसे बाकमाल पड़े हुए हैं ।—मान०, भा० ५, पृ० २०६ ।

बाकरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पाँच महीने की ब्याई गाय ।

बाकरी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बकरी] दे० 'बकरी' । उ०—सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै ससार ।—संतबानी०, भा० १, पृ० १६० ।

बाकल(पु)—संज्ञा पु० [सं० वल्कल, प्रा० बक्कल] दे० 'वल्कल' । उ०—सिरसि जटा बाकल वपु धारी ।—केशव (शब्द०) ।

बाकला—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की बड़ी मटर के समान दालों वाली छीमी जिसकी फलियों की तरकारी बनती है ।

बाकली—संज्ञा स्त्री० [सं० बकुल] एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते रेशम के कीड़ों को खिलाए जाते हैं ।

विशेष—यह वृक्ष बहुत ऊँचा होता है । इसकी लकड़ी भूरे रंग की और बहुत मजबूत होती है तथा खेती आदि के औजार बनाने के काम में आती है । इसकी छाल से चमड़ा भी सिझाया जाता है । यह आसाम और मध्यप्रदेश में बहुत अधिकता से होता है । इसे धौरा और बोंदार भी कहते हैं ।

बाकस‡—संज्ञा पुं० [अं० बॉक्स] दे० 'बक्स' ।

बाकसो—क्रि० अ० [अं० बैकसेल] जहाज के पाल को एक ओर से दूसरी ओर करने का काम ।

बाका(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [स० वाक्] वाणी । बोलने की शक्ति ।

बाकायदा—क्रि० वि० [फा० बाकायदह्] कायदे के साथ । ढंग से । नियमानुकूल । उ०—वह वहाँ क्यों है, उसे बाकायदा दीवार पर टँगा होना चाहिए था ।—सुनीता, पृ० १५१ ।

बाकी[1]—वि० [अ० बाकी] जो बच रहा हो । अवशिष्ट । शेष । उ०—मन धन हानो बिसात जो सो तोहि दियो बताय । बाकी बाकी बिरह की प्रीतम भरी न जाय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—बचना । —रहना ।

यौ०—बाकीदार=जिसके यहाँ लगान बकाया हो । बाकी-साकी=बचा खुचा । शेष । उ०—दुजा टोला नमाज अपनी भी बाकी । गुजारें वारिवरात बाकी साकी ।—दक्खिनी०, पृ० २०६ ।

बाकी[2]—संज्ञा स्त्री० १. गणित में वह रीति जिसके अनुसार किसी एक संख्या या मान को किसी दूसरी संख्या या मान में से घटाते हैं । दो संख्याओं या मानों का अंतर निकालने की रीति । २. वह संख्या जो एक संख्या को दूसरी संख्या में से घटाने पर निकले । घटाने के पीछे बची हुई संख्या या मान ।

क्रि० प्र०—निकालना ।

बाकी[3]—अव्य० [अ० बाकी] लेकिन । मगर । परंतु । पर । (बोलचाल) । उ०—मन धन हतो बिसात जो सो तोहि दियो बताय । बाकी बाकी बिरह की प्रीतम भरी न जाय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

बाकी[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान । इसे बक्की भी कहते हैं । उ०—पाही सो सीधी लाची बाकी । सुभटी बगरी बरहन हाकी ।—जायसी (शब्द०) ।

बाकुंभा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंभी] कुंभी के फूल का सुखाया हुआ केसर जो खाँसी और सर्दी मे दवा की तरह दिया जाता है ।

बाकुल¹—संज्ञा पुं० [सं०] वकुल वृक्ष का फल। मौलसिरी का फल [को०]।

बाकुल²—संज्ञा पुं० [सं० वल्कल] दे० 'वल्कल'। उ०—बाकुल वसतर किता पहिरबा, का तप वनखंडि वासा।—कबीर ग्रं०, पृ० ११६।

बाकुला—संज्ञा पुं० [सं० वल्कल, हिं० बकला, बोकला] पेड़ की छाल। २. फल के ऊपर का छिलका। उ०—ऐसा एक अनूप फल, बीज बाकुला नाँहि।—दादू० बानी, पृ० १०१।

बाक्सी—क्रि० वि० [? या अं० प्राक्सी] पृष्ठ भाग। पीछे। (लश०)।

बाखर¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की घास जो रुहेलखंड में अधिकता से होती है। २. घोड़े की पीठ पर पलानी के नीचे रखी जानेवाली सूखी घास आदि का मुट्ठा जो टाट से लपेटा रहता है। बखरा।

बाखर² (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बखरी'। उ०—बन उपवन ब्रज बाखर खरिक खोरि, गिरि गह्वर उफनाति प्रेम रौरई।—घनानंद, पृ० १६६।

बाखरि (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बखरी'। उ०—(क) जानति हौं गोरस को लेबो वाही बाखरि माँझ।—सूर (शब्द०)। (ख) छाँडो क्यों करि छैल छबीले सूनी बाखरि पायो।—छीत०, पृ० २१।

बाखुदा—वि० [फ़ा० बाखुदा] पुण्यात्मा। ईश्वरभक्त [को०]।

बाख्तर—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाख्तर] हिंदूकुश की ओर का एक प्राचीन प्रदेश। बैक्ट्रिया। बलख [को०]।

बाग¹—संज्ञा पुं० [अ० बाग] वह स्थान जहाँ शोभा और मनोविनोद आदि के लिये अनेक प्रकार के छोटे बड़े पेड़ पौधे लगाए गए हों। उद्यान। उपवन। वाटिका। बारी।

बाग²—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्गा] लगाम।

मुहा०—बाग उठाना = कूच करना। यात्रा करना। **बाग छूटना** = बेकाबू होना। **बाग मोड़ना** = किसी ओर प्रवृत्त करना। किसी ओर घुमाना। उ०—महमूद गजनवी ने अपने लश्कर की बाग हिंदुस्तान की तरफ मोड़ी।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

बागड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाँगड़'। उ०—बागड़ देस लुवन का घर है। तहाँ जिनि जाइ दाझन का डर है।—कबीर ग्रं०, पृ० १०६।

बागडोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाग + डोर (= रस्सी)] १. वह रस्सी जो घोड़े की लगाम में बाँधी जाती है और जिसे पकड़कर साईस लोग उसे टहलाते हैं। २. लगाम। वल्गा।

बागडोरि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बागडोर'। उ०—वा घोड़ा की बागडोरि पकरि कै चाबुक लै आइ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६३।

बागना¹†—क्रि० अ० [सं० वक (= चलना)] चलना। फिरना। घूमना। टहलना। उ०—देश देश हम बागिया ग्राम ग्राम की खोरि। ऐसा जियरा ना मिला जो लेइ फटकि पछोरि। कबीर (शब्द०)।

बागना‡²—क्रि० अ० [सं० वाक् (= बोलना)] १. कहना। बोलना। उ०—जागत बागत सुख सपने न सोइहै जनम जनम जुग जुग जग रोइहै।—संतबानी०, भा० २, पृ० ८८। २. बजना। ध्वनित होना। उ०—(क) मेरा मन के मन सौं मन लागा। सबद के सबद सौं नाद बागा।—दादू० बानी, पृ० ६२३। (ख) पिय कौ ढूँढे बारी बागा।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३५१।

बागवाँ (पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाग़बान] दे० 'बागबान'। उ०—बाग इक रखता हूँ ज्यों बागे इरम। बागवाँ हो ले मेरे सूँ दस दिरम।—दक्खिनी०, पृ० २०१।

बागबाग—वि० [फ़ा० बाग़बाग़] अत्यानंदित। अत्यंत खुश। बहुत प्रसन्न। उ०—(क) वह गुलवदन परी जामें मे फूले न समाई बागबाग हो गई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६२। (ख) कर्मचारियों के हाथ तो खुजला रहे थे। वसूली का हुक्म पाते ही बागबाग हो गए।—काया०, पृ० १६५।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

बागबाणी (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वाच् + वाणी] सरस्वती। उ०—बागबाणी मो बर दीयो।—बी० रासो, पृ० ६२।

बागबान—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाग़बान] वह जो बाग की रखवाली, प्रबंध और सजावट आदि करता है। माली।

बागबानी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बाग़बानी] १. बागबान का पद। माली की जगह। २. बागबान का काम। माली का काम।

बागबानी (पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० वाक्‌वाग्] दे० 'वाकवानी'।

बागमी (पु)—संज्ञा पुं० [सं० वाग्मी] दे० 'वाग्मी'।—नंद० ग्रं०, पृ० ११२।

बागर—संज्ञा पुं० [देश०] १. नदी किनारे की वह ऊँची भूमि जहाँ तक नदी का पानी कभी पहुँचता ही नहीं। उ०—बागर ते सागर करि राखै चहुँदिसि नीर भरै। पाहन बीच कमल विकसाही जल मे अगिनि जरै।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'बाँगुर'।

बागल (पु)†—संज्ञा पुं० [पू० हिं० बकुला] बगला। बक। उ०—(क) बिन विद्या सों नर सोहत यों। वह हंसन में इक बागल ज्यों।—रघुनाथदास (शब्द०)। (ख) जिन हरि की चोरी करी गए राम गुन भूलि। ते बिधना बागल रचे रहे उरधमुख झूलि।—कबीर (शब्द०)।

बागवान—संज्ञा पुं० [हिं०] माली। दे० 'बागबान'।

बागवानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बागवान + ई] दे० 'बागबानी'।

बागा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाग] अंगे की तरह का पुराने समय का एक पहनावा जो घुटनों तक लंबा होता है और जिसमें छाती पर तीन बंद लगते हैं। जामा। उ०—अनंत नाम का सिऊँ बागा। जो सीवत जम का डर भागा।—दक्खिनी०, पृ० ३२। २. पोशाक। पहनावा। वस्त्र। उ०—कहिसि कि

तजहु जोग वैरागा। पहिरहु अब छत्री कर बागा।—चित्रा०, पृ० १४६।

बागी—संज्ञा पुं० [अ० बागी] वह जो प्रचलित शासनप्रणाली अथवा राय के विरुद्ध विद्रोह करे। विद्रोही। राजद्रोही।

बागीचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बागीचह्] छोटा बाग। वाटिका। उपवन। उद्यान।

बागीसा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वागीश] दे० 'वागीश'। उ०—मिलिहि जबहि अब सप्तरिषीसा। जानिहु तब प्रमान बागीसा।—मानस, १।७५।

बागुर(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] पक्षी या मृग आदि फँसाने का जाल जिसे बागौर भी कहते हैं। उ०—बागुर विषम तोराइ मनहुँ भाग मृग भागवस।—मानस, २।७५।

बागेसरी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० वागीश्वरी] १. सरस्वती। २. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो किसी के मत से भैरव, केदार, गौरी और देवगिरि आदि कई रागो तथा रागिनियों के मेल से बनी हुई संकर रागिनी है।

बाघंबर—संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्राम्बर] १. बाघ की खाल जिसे लोग विशेषतः साधु, त्यागी और अमीर बिछाने आदि के काम मे लाते हैं। २. एक प्रकार का रोएँदार कंबल जो दूर से देखने पर बाघ की खाल के समान जान पड़ता है।

बाघंबरी(पु)—वि० [सं० व्याघ्राम्बर, हिं० बाघंबर + ई (प्रत्य०)] वह (साधु) जो बाघंबर धारण करता है। बाघंबर ओढ़नेवाला (साधु)। उ०—लाखो मौनी फिरे लाखो बाघंबरी।—पलटू० बानी, पृ० ६३।

बाघ—संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्र] [स्त्री० बाघिन, बाघिनी] शेर नाम का प्रसिद्ध हिंसक जंतु।

विशेष—दे० 'शेर'।

बाघनख—संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्रनख] दे० 'बघनखा'।

बाघा—संज्ञा दे० [हिं० बाघ] १. चौपायों का एक रोग। इसमें पशुओं का पेट फूल जाता है और वे साँस रुकने से मर जाते हैं। २. कबूतरो की एक जाति का नाम।

बाघी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की गिलटी जो अधिकतर गरमी के रोगियों को होती है।

विशेष—यह पेडू और जाँघ की संधि में होती है। यह बहुत कष्टदायक होती है और जल्दी दबती नही। बहुधा यह पक जाती है और चीरनी पड़ती है।

बाघुल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली।

बाच(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० वाच्य] दे० 'वाच्य'। उ०—तत पद त्वं पद और असी पद, बाच लच्छ पहिचानें।—कबीर श०, पृ० ६६।

बाचक(पु)—वि० [सं० वाचक] बोलने वाला। वक्ता। उ०—बाचक ज्ञानी बहुतक देखे। लच्छ ज्ञानी कोइ लेखे लेखे।—चरण० बानी, पृ० ४२।

बाचना‡[1]—क्रि० अ० [हिं० बचना] बचना। सुरक्षित रहना। उ०—धोखा दे सब को भरमावै सुर नर मुनि बाचै।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० २७।

बाचना[2]—क्रि० स० बचाना। सुरक्षित रखना।

बाचना[3]—क्रि० स० [सं० वाचन] पढ़ना। पाठ करना। बाँचना।

बाचयं†—संज्ञा पुं० [सं० वाक्य या वाच्य] वह बात जो कहना है। कथनीय बात। उ०—करी जु अग्ग सेख भेंट बुल्लियौ सु बाचयं।—ह० रासो, पृ० ५१।

बाचा—संज्ञा स्त्री० [सं० वाचा] १. बोलने की शक्ति। २. वचन। बातचीत। वाक्य। उ०—(क) रावन कुंभकरन वर माँगत शिव विरंचि बाचा छले।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तब कुमार बोल्यो अस बाचा। मैं कंगाल दास हौं साचा।—रघुराज (शब्द०)। ३. प्रतिज्ञा। प्रण। उ०—बाचा पुरुष तुरुक हम बूझा। परगट मेह, गुप्त छल सूझा।—जायसी (शब्द०)।

बाचाबंध(पु)—वि० [सं० वाचा + बद्ध] जिसने किसी प्रकार का प्रण किया हो। प्रतिज्ञाबद्ध। उ०—बाढ़ चढ़ती बेलरी उरझी आसा फंद। टूटै पर जूटै नही भई जो बाचाबंध।—कबीर (शब्द०)।

बाच्छाह†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादशाह] दे० 'बादशाह'। उ०—मालम का बाच्छाह दुहाई मुलुक में।—पलटू० बानी, पृ० ३०।

बाछ[1]—संज्ञा पुं० [सं० वत्स, प्रा० वच्छ (=वर्ष)] इजमाल। गाँव में मालगुजारी, चंदे, कर आदि का प्रत्येक हिस्सेदार के हिस्से के अनुसार परता। बछौटा। बेहरी।

मुहा०—बाछ करना = चंदा या बेहरी एकत्र करना या होना। बाछ डालना = चंदे के द्वारा इकट्ठा करके लगान जमा करना।

२. मुख। ३. होठ। ४. विभाग। हिस्सा।

बाछ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाछे] होठ के दोनों कोर। होठ का सिरा।

मुहा०—बाछें आना = होठो का सिरा बाल आने से ढँक जाना। मसें भीनना। बाछें खिलना = प्रसन्नता व्यक्त करते हुए हँसना। हँसी आना। मुस्कुराना। उ०—नवाब साहब की बाछें खिल गईं।—झाँसी०, पृ० १८५।

बाछ[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाछा'।

बाछ[4]—संज्ञा पुं० [सं० वास (=निवास)] वास। स्थिति। उ०—सतगुरु के सदके करूँ, दिल अपनी का साछ। कलियुग हमस्यूँ लड़ि पड़या मुहकम मेरा बाछ।—कबीर ग्रं०, पृ० १।

बछड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बछड़ा'।

बछरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] 'बछड़ा'। उ०—कोउ करै पय पान कौ कौन सिद्धि कहि बीर। सुंदर बालक बाछरा ये नित पीवहिं खीर।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३३।

बाछा—संज्ञा पुं० [सं० वत्सक, प्रा० वच्छ] १. गाय का बच्चा। बछड़ा। उ०—गऊ निकसि बन जाहीं। बाछा उनका घर ही

माही। —जग० श०, पृ० ५१। २. लड़का। बच्चा। उ०—मैं आवत हौं तुम्हरे पाछे। भवन जाहु तुम मेरे बाछे। —सूर (शब्द०)।

बाछायत(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादशाहत] दे० 'बादशाहत'। उ०—हत्ती, घोडे, दौलत दक्खन मुलुख बाछायत, बेदर सरीखा तखत इस वक्त जाएगा।—दक्खिनी०, पृ० ४७।

बाजत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वादित्र, प्रा० बाजित्र] वाद्य। बाजा। उ०—वजि बाजत्र अनेक स वीरं।—ह० रासो, पृ० १०५।

बाज[1]—संज्ञा पुं० [अ० बाज़] १. एक प्रसिद्ध शिकारी पक्षी जो प्रायः सारे संसार में पाया जाता है।

विशेष—यह प्रायः चील से छोटा, पर उससे अधिक भयंकर होता है। इसका रंग मटमैला, पीठ काली और आँखें लाल होती हैं। यह आकाश में उड़ती हुई छोटी मोटी चिड़ियों और कबूतरों आदि को झपटकर पकड़ लेता है। पुराने समय में आखेट और युद्ध में भी इसका प्रयोग होता था जिसके उल्लेख ग्रंथों में मिलते हैं। प्रायः शौकीन लोग इसे दूसरे पक्षियों का शिकार करने के लिये पालते भी हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं।

२. एक प्रकार का बगला। ३. तीर में लगा हुआ पर। शरपुंख।

बाज[2]—प्रत्य० [फ़ा० बाज़] एक प्रत्यय जो शब्दों के अंत में लगकर रखने, खेलने, करने या शौक रखनेवाले आदि का अर्थ देता है। जैसे,—दगाबाज, कबूतरबाज, नशेबाज, दिल्लगीबाज, आदि।

बाज[3]—वि० [फ़ा० बाज़] वंचित। रहित।

मुहा०—बाज आना = (१) खोना। रहित होना। जैसे,—हम दस रुपए से बाज आए। (२) दूर होना। अलग होना। पास न जाना। जैसे,—तुमको कई बार मना किया पर तुम शरारत से बाज नहीं आते हो। बाज करना = रोकना। मना करना। वंचित करना। उ०—देखिबे तें अँखियान को बाज कै लाज कै भाजि कै भीतर आई।—रघुनाथ (शब्द०)। बाज रखना = रोकना। मना करना। बाज रहना = दूर रहना। अलग रहना।

बाज[4]—वि० [अ० बअ़ज़] कोई कोई। कुछ विशिष्ट। जैसे,—(क) बाज आदमी बड़े जिद्दी होते हैं। (ख) बाज मौको पर चुप से भी काम बिगड़ जाता है। (ग) बाज चीजें देखने में तो बहुत अच्छी होती हैं पर मजबूत बिलकुल नहीं होतीं।

बाज[5]—क्रि० वि० बगैर। बिना। (क्व०)। उ०—अब तेहि बाज राँक भा डोलौं। होय सार तो बरगों बोलौं।—जायसी (शब्द०)।

बाज[6]—संज्ञा पुं० [सं० वाजिन्] घोड़ा। उ०—इततें सातो जात हरि उततें आवत राज। देखि हिए संशय कह्यो गह्यो चरन तजि बाज।—विश्राम (शब्द०)।

बाज[7]—संज्ञा पुं० [सं० वाद्य] १. वाद्य। बाजा। उ०—महा मधुर वहु बाज बजाई। गावहिं रामायन सुर छाई।—रघुराज (शब्द०)। २. बजने या बाजे का शब्द। ३. बजाने की रीति। ४. सितार के पाँच तारों में से पहला जो पक्के लोहे का होता है।

बाज[8]—संज्ञा पुं० [देश०] ताने के सूतों के बीच में देने की लकड़ी।

बाज(पु)[9]—वि० [सं० वाज] गति। वेग।—अनेकार्थ०, पृ० ९८।

बाजड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाजरा'।

बाजदावा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़दावह्] अपने अधिकारों का त्याग। अपने दावे या स्वत्व से बाज आना।

क्रि० प्र०—लिखना।—लिखाना।

बाजन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वादन (= बाजा)] दे० 'बाजा'। उ०—कोटिन्ह बाजन बाजहिं दसरथ के गृह हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३।

बाजना[1]—क्रि० अ० [हिं० बजना] १. बाजे आदि का बजना। उ०—गुंजत अलिगन कुंज बिहंगा। बाजत बाजन उठत तरंगा।—विश्राम० (शब्द०)। २. लड़ना। भिड़ना। झगड़ना। ३. कहलाना। प्रसिद्ध होना। पुकारा जाना। ४. लगना। आघात पहुँचना। उ०—उठि बहोरि मारुति युवराजा। हने कोपि तेहि घाव न बाजा।—तुलसी (शब्द०)।

बाजना‡[2]—वि० बजनेवाला। जो बजता हो।

बाजना[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० √व्रज] जा पहुँचना। सामने मौजूद हो जाना। (क्व०)।

बाजनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बजने का कार्य, भाव या स्थिति। उ०—पृथु कटि कल किंकिनि की बाजनि। बिलुलित वर कवरी की राजनि।—नंद०, ग्रं० पृ० २४८।

बाजरा—संज्ञा पुं० [सं० वर्जरी] एक प्रकार की बड़ी घास जिसकी बालो मे हरे रंग के छोटे छोटे दाने लगते हैं। इन दानों की गिनती मोटे अन्नों में होती है। प्रायः सारे उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में लोग इसे खाते हैं। जोंधरिया। बजड़ा।

विशेष—इस अनाज की खेती बहुत सी बातों में ज्वार की खेती से मिलती जुलती होती है। यह खरीफ की फसल है और प्रायः ज्वार के कुछ पीछे वर्षा ऋतु में बोई और उससे कुछ पहले अर्थात् जाड़े के आरंभ में काटी जाती है। इसके खेतों में खाद देने या सिंचाई करने की विशेष आवश्यकता नहीं होती। इसके लिये पहले तीन चार बार जमीन जोत दी जाती है और तब बीज बो दिए जाते हैं। एकाध बार निराई करना अवश्य आवश्यक होता है। इसके लिये किसी बहुत अच्छी जमीन की आवश्यकता नहीं होती और यह साधारण से साधारण जमीन में भी प्रायः अच्छी तरह होता है। यहाँ तक कि राजपूताने की बलुई भूमि में भी यह अधिकता से होता है। गुजरात आदि देशों में तो अच्छी बरारी रूई बोने से पहले जमीन तयार करने के लिये इसे

बोते हैं। बाजरे के दानों का आटा पीसकर और उसकी रोटी बनाकर खाई जाती है। इसकी रोटी बहुत ही बलवर्धक और पुष्टिकारक मानी जाती है। कुछ लोग दानों को यों ही उबालकर और उसमें नमक मिर्च आदि डालकर खाते हैं। इस रूप में इसे 'खिचड़ी' कहते हैं। कहीं कहीं लोग इसे पशुओं के चारे के लिये ही बोते हैं। वैद्यक में यह बादी, गरम, रूखा, अग्निदीपक, पित्त को कुपित करनेवाला, देर में पचनेवाला, कांतिजनक, बलवर्धक और स्त्रियों के काम को बढ़ानेवाला माना गया है।

बाजहर—संज्ञा पुं० [हिं० बाज (=वेग) + हर] दे० 'जहर-मोहरा—१'।

बाजा—संज्ञा पुं० [सं० वाद्य] कोई ऐसा यंत्र जो गाने के साथ यों ही, स्वर (विशेषत: राग रागिनी) उत्पन्न करने अथवा ताल देने के लिये बजाया जाता हो। बजाने का यंत्र। वाद्य।

विशेष—साधारणतः बाजे दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें से स्वर या राग रागिनियाँ आदि निकलती हैं। जैसे, बीन, सितार, सारंगी, हारमोनियम, बाँसुरी आदि और दूसरे वे जिनका उपयोग केवल ताल देने में होता है। जैसे, मृदंग, तबला, ढोल, मजीरा, आदि। विशेष—दे० 'वाद्य'।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।

यौ०—बाजा गाजा = अनेक प्रकार के बजते हुए बाजों का समूह।

बाजाब्ता[१]—क्रि० वि० [फ़ा० बाज़ाब्तह्] जाब्ते के साथ। नियमानुसार। कायदे के मुताबिक। जैसे,—बाजाब्ता दरख्वास्त दो।

बाजाब्ता[२]—वि० जो जाब्ते के साथ हो। जो नियमानुकूल हो। जैसे,—अभी बाजाब्ता नकल नहीं मिली है।

बाजार—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़ार] १. वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के पदार्थों की दुकानें हों। वह जगह जहाँ सब तरह की चीजों की, अथवा किसी एक तरह की चीज की बहुत सी दुकानें हों। २. भाव। मूल्य।

मुहा०—**बाजार करना** = चीजें खरीदने के लिये बाजार जाना। **बाजार गर्म होना** = (१) बाजार में चीजों या ग्राहकों आदि की अधिकता होना। खूब लेन देन या खरीद बिक्री होना। (२) खूब काम चलना। काम जोरों पर होना। जैसे,—आजकल गिरफ्तारियों का बाजार गर्म है। **बाजार तेज होना** = (१) बाजार में किसी चीज की माँग बहुत होना। गाहकों की अधिकता होना। (२) किसी चीज का मूल्य वृद्धि पर होना। (३) काम जोरों पर होना। खूब काम चलना। **बाजार मंद या मदा होना** = (१) बाजार मे किसी चीज की माँग कम होना। ग्राहकों की कमी होना। (२) किसी पदार्थ के मूल्य में निरंतर ह्रास होना। दाम घटना। (३) कारबार कम चलना। **बाजर लगाना** = बहुत सी चीजों का इधर उधर ढेर लगना। बहुत सी चीजों का यों ही सामने रखा होना। **बाजार लगाना** = चीजों को इधर उधर फैला देना। अटाला लगाना।

यौ०—**बाजार भाव** = वह मूल्य जिसपर कोई चीज बाजार में मिलती या बिकती है। प्रचलित मूल्य।

वह स्थान जहाँ किसी निश्चित समय, तिथि, वार या अवसर आदि पर सब तरह की दूकानें लगती हों। हाठ। पैंठ।

मुहा०—**बाजार लगना** = बाजार में दूकानों का खुलना।

बाजारणⓅ—वि० [हिं० बाजार + न (प्रत्य०)] बाजारू। निम्न। उ०—रे बाजारण छोहरी, काँइ खेलाड़इ घाति।—ढोला०, दू० ३३४।

बाजारी—वि० [फ़ा० बज़ारी] १. बाजार संबंधी। बाजार का। २. मामूली। साधारण। जो बहुत अच्छा न हो। ३. बाजार में इधर उधर फिरनेवाला। मर्यादारहित। जैसे, बाजारी लौंडा। ४. अशिष्ट। जैसे, बाजारी बोली, बाजारी प्रयोग।

यौ०—**बाजारी औरत** = वेश्या। रंडी।

बाजारू—वि० [हिं०] दे० 'बाजारी'।

बाजिⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० वाजिन्] १. घोड़ा। उ०—बाजि चारि महि मारि गिराए।—राम, पृ० ५३६। २. बाण। ३. पक्षी। ४. अड़ूसा।

बाजि[२]—वि० चलनेवाला।

बाजित्र—संज्ञा पुं० [सं० वादित्र] दे० 'वादित्र'। उ०—गुरु गीत बाद बाजित्र नृत्य।—पृ० रा०, १।७३२।

बाजी[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बाज़ी] १. दो व्यक्तियों या दलों में ऐसी प्रतिज्ञा जिसके अनुसार यह निश्चित हो कि अमुक बात होने या न होने पर हम तुमको इतना धन देंगे अथवा तुमसे इतना धन लेंगे। ऐसी शर्त जिसमें हार जीत के अनुसार कुछ लेन देन भी हो। शर्त। दाँव। बदान।

क्रि० प्र०—बदना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—**बाजी पर बाजी जीतना** = लगातार विजयी होना। उ०—वह बड़े शहसवार हैं। कई घुड़दौड़ों में बाजियों पर बाजियाँ जीत चुके हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२। **बाजी बीस होना** = (१) अन्य खेलनेवालों से अधिक जीतना। (२) व्यापार में गहरा मुनाफा कमाना। **बाजी मारना** = बाजी जीतना। दाँव जीतना। **बाजी ले जाना** = किसी बात में आगे बढ़ जाना। श्रेष्ठ ठहरना।

२. आदि से अंत तक कोई ऐसा पूरा खेल जिसमें शर्त या दाँव लगा हो। जैसे,—दो बाजी ताश हो जाय, तो चलें। ३. खेल में प्रत्येक खिलाड़ी के खेलने का समय जो एक दूसरे के बाद क्रम से आता है। दाँव।

मुहा०—**बाजी आना** = गंजीफे या ताश आदि के खेल में अच्छे पत्ते मिलना।

३. कौतुक। तमाशा। ४. धोखा। छल। असत्य। माया। उ०—अविगति अगम अपार और सब दीसै बाजी। पढ़ि पढ़ि वेद कितेब भुले पंडित औ काजी।—धरम० श०, पृ० ८६। ५. मसखरापन (को०)।

बाजी[२]—संज्ञा पुं० [सं० वाजिन्] घोड़ा।

बाजी[३]—संज्ञा पुं० [हिं० बाजा] वह जिसका काम बाजा बजाना हो। बजनिया।

बाजीगर—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़ीगर] जादू के खेल करनेवाला। जादूगर। ऐंद्रजालिक। उ०—कै कहूँ रंक, कहूँ ईश्वरता नट बाजीगर जैसे।—सूर (शब्द०)।

बाजीगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० बाज़ीगरी] बाजीगर का काम। चालाकी। धूर्तता।

बाजीदार—संज्ञा पुं० [हिं० बाली (=बाल) + फ़ा० दार] वह हलवाहा जिसे वेतन के स्थान में उपज का अंश मिलता हो। बालीदार।

बाजु(पु)—अव्य० [सं० वर्ज्य, मि० फ़ा० बाज़] १. बिना। बगैर। उ०—(क) नख शिख सुभग श्यामघन तन को दरसन हरत बिथा जु। सूरदास मन रहत कौन बिधि बदन बिलोकनि बाजु।—सूर (शब्द०)। (ख) का भा जोग कहानी कथे। निकस न घीउ बाजु दधि मथे।—जायसी (शब्द०)। २. अतिरिक्त। सिवा।

बाजू—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़ू] १. भुजा। बाहु। बाँह। विशेष—दे० 'बाँह'। उ०—तब कुरता बाजू तन खोला। पहिरायो सो बसन अमोला।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २४१।

यौ०—बाजूबंद।

२. बाँह पर पहनने का बाजूबंद नाम का गहना। विशेष—दे० 'बाजूबंद'। ३. सेना का किसी ओर का एक पक्ष। ४. वह जो हर काम मे बराबर साथ रहे और सहायता दे। जैसे, भाई, मित्र आदि। (बोलचाल)। ५. एक प्रकार का गोदना जो बाँह पर गोदा जाता है और बाजूबंद के आकार का होता है। ६. पक्षी का डैना।

बाजूबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़ूबंद] बाँह पर पहनने का एक प्रकार का गहना जो कई आकार का होता है। इसमें बहुधा बीच में एक बड़ा चौकोर नग या पटरी होती है और उसके आगे पीछे छोटे छोटे और नग या पटरियाँ होती हैं जो सब की सब तागे या रेशम में पिरोई रहती हैं। बाजू। बिजायठ। भुजबंद। उ०—भबिया कर फूलन के बाजूबंद दोऊ। फूलन की पहुँची कर राजत प्रति सोऊ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४०।

बाजूबीर‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़ू] दे० 'बाजूबंद'।

बाजेगिरि†—वि० [फ़ा० बाज़ीगरी] बाजीगर संबंधी। बाजीगर का। उ०—महर उतारा देखो मिया बाजेगिरि विद्या खेल।—दक्खिनी०, पृ० ६१।

बाझ†—अव्य० [हिं०] दे० 'बाज़' या 'बाजु'।

बाझन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बझना (=फँसना)] १. बझने या फँसने का भाव। फँसावट। २. उलझन। पेंच। ३. झंझट। बखेड़ा। ४. लड़ाई। झगड़ा।

बाझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बझना'। उ०—नकबेसरि बंसी के संभ्रम भौह मीन अकुलात। मनु ताटंक कमठ घूँघट उर जाल बाझि अकुलात।—सूर (शब्द०)।

बाझु(पु)—अव्य० [हिं० बाजु] दे० 'बाजु'। उ०—जेहु बाझु न जीया जाई। जौ मिलै तौ घाल अघाई।—कबीर ग्रं०, पृ० २९२।

बाट[1]—संज्ञा पुं० [सं० वाट (=मार्ग)] मार्ग। रास्ता। पथ।

मुहा०—बाट करना = रास्ता खोलना। मार्ग बनाना। उ०—जीत्यो जरासंध बँदि छोरी। जुगल कपाट बिदारि बाट करि लतनि जुही सँधि चोरी।—सूर (शब्द०)। बाट जोहना या देखना = प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। उ०—तुम पथिक दूर के श्रांत और मैं बाट जोहती आशा।—अपरा, पृ० ७१। बाट पड़ना = (१) रास्ते में आ आकर बाधा देना। तंग करना। पीछे पड़ना। (२) डाका पड़ना। हरण होना। उ०—तरनिउँ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।—तुलसी (शब्द०)। बाट पारना = डाका मारना। मार्ग में लूट लेना। उ०—राम लों न जान दीनी बाट ही मे खरी कीनी बाट पारिबे को बली अंगद प्रवीन है।—हनुमान (शब्द०)। (सिर के केश या बालों से) बाट बुहारना = अत्यंत ही प्रिय और इच्छित व्यक्ति के आने पर स्वागत सत्कार करना। (स्त्रियाँ)। उ०—एकसाँरा घरि आवज्यो, बाट वूहारूँ सीर का केस।—बी० रासो, पृ० ७५। बाट लगाना = (१) रास्ता दिखलाना। मार्ग बतलाना। (२) किसी काम के करने का ढंग बतलाना। (३) मूर्ख बनाना।

बाट[2]—संज्ञा पुं० [सं० वटक] १. पत्थर आदि का वह टुकड़ा जो चीजें तौलने के काम आता है। बटखरा। २. पत्थर का वह टुकड़ा जिससे सिल पर कोई चीज पीसी जाय।

बाट†[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बटना] बटने का भाव। रस्सी आदि में पड़ी हुई ऐंठन। बटन। बल।

बाटका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वाटक] पात्र। बटलोई। बर्तन। उ०—दस बार कनक प्रतिबिंब सूर। बाटका बीसविग्र अभुत पूर।—पृ० रा०, १४।२३।

बाटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाटक] दे० 'बाटका'।

बाटना[1]—क्रि० स० [हिं० बट्टा या बाट] सिल पर बट्टे आदि से चूर्ण करना। उ०—कुच विष बाटि लगाय कपट करि बालघातिनी परम सुहाई।—सूर (शब्द०)।

बाटना[2]—क्रि० स० [हिं०] १. दे० 'बटना'। उ०—कह गिरिधर कविराय सुनो हो धूर को बाटी।—गिरिधर (शब्द०)। (पु)२. दे० 'बाँटना'। उ०—कूपक पानि अधिक होअ काटि। नागर गुने नागरि रति बाटि।—विद्यापति, पृ० ३००।

बाटली[1]—संज्ञा स्त्री० [अं० बंटलाइन] जहाज के पाल में ऊपर की ओर लगा हुआ वह रस्सा जो मस्तूल के ऊपर से होकर फिर नीचे की ओर आता है। इसी रस्से को खींचकर पाल तानते हैं। (लश०)।

मुहा०—बाटली चापना = रस्से को खींचकर पाल तानना।

बाटली[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० बॉटल] बोतल। बड़ी शीशी।

बाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाग। फुलवारी। २. गद्य काव्य

का एक भेद। वह गद्य जिसमे गद्य और कुसुमगुच्छ गद्य मिला हो।

बाटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० बटी, वटिका] १. गोली। पिंड। २. अंगारों या उपलों आदि पर सेंकी हुई एक प्रकार की गोली या पेड़े के आकार की रोटी। अंगाकड़ी। लिट्टी। उ०—दूध बरा उत्तम दधि बाटी दाल मसूरी की रुचिकारी।—सूर (शब्द०)।

बाटी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तुल; मि० हिं० बटुआ] १. चौड़ा और कम गहरा कटोरा। २. तसला नाम का बरतन।

बाड्किन—संज्ञा पुं० [अं०] १. छापेखाने में काम आनेवाला एक प्रकार का सूआ जिसमें पीछे की ओर लकड़ी का दस्ता लगा रहता है। इससे कंपोजिटर लोग कंपोज किए हुए मैटर में से गलती लगा हुआ अक्षर निकालते और उसकी जगह दूसरा अक्षर बैठाते हैं। २. दफ्तरीखाने मे काम आनेवाला एक प्रकार का सूआ जिसका पिछला सिरा बहुत मोटा होता है। यह किताबों और दफ्तियों आदि मे ठोककर छेद करने के काम में आता है।

बाड़[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाढ़] १. वृद्धि। २. तेजी। जोर। उ०—बाढ चलंती बेलरी उरभी आसाफद। टूटे पर छूटे नही भई जो बाचाबंध।—कबीर (शब्द०)।

बाड़†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वाट] फसल की हिफाजत के लिये खेतों के चारों तरफ बाँस, काटे आदि से बनाया हुआ मजबूत घेरा। टट्टी। आड़।

बाड़[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियो का बाँह पर पहनने का टाँड़ नामक गहना।

बाड़व[1]—संज्ञा पुं० [सं० बाडव] १. ब्राह्मण। २. बड़वाग्नि। बडवानल। ३. घोड़ियों का झुंड।

बाड़व[2]—वि० बड़वा संबंधी।

बाड़वानल—संज्ञा पुं० [सं० बाड़वानल] दे० 'बड़वानल'। उ०—मम बाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप।—केशव (शब्द०)।

बाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० वाट] १. चारों ओर से घिरा हुआ कुछ विस्तृत खाली स्थान। २. वह स्थान जिसमे पशु रहते हों। पशुशाला।

बाडिस—संज्ञा स्त्री० [अं० बॉडिस] स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की अँगरेजी ढंग की कुरती।

बाडी[1]—संज्ञा स्त्री० [अं० बॉडिस का संक्षिप्त रूप] एक प्रकार की अँगिया या कुरती जो मेमे पहनती हैं और आजकल बहुतेरी भारतीय स्त्रियाँ भी पहनने लगी हैं। बाडिस।

बाडी[2]—संज्ञा स्त्री० [अं०] शरीर। देह। जिस्म।

बाडीगार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी राजा या बहुत बड़े राजकर्मचारी के साथ रहनेवाले उन थोड़े से सैनिकों का समूह जिनका काम उसके शरीर की रक्षा करना होता है। शरीर रक्षक। २. इन सैनिकों मे से कोई एक सैनिक।

बाडीर—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। मजदूर। नोकर [को०]।

बाड़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० वाटी] १. वाटिका। बारी फुलवारी। २. फलदायक वृक्षों का बाग या समूह। बारी। उ०—वह बागो के उस पारवाले किनारे की बाड़ियो में मिलते हुए दीमक के ठिकाने पर गए।—काले०, पृ० २५। ३. घर। मकान। गृह (बंगाल)।

बाड़ौⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बाडव] दे० 'बाड़व'।

बाढ़[1]—वि० [सं० बाढ] १. शक्तिशाली। मजबूत। २. अधिक। ज्यादा। ३. कर्कश। तीव्र। तुमुल [को०]।

बाढ़[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढ़ना] १. बढ़ने की क्रिया या भाव। बढाव। वृद्धि। अधिकता। २. अधिक वर्षा आदि के कारण नदी या जलाशय के जल का बहुत तेजी के साथ और बहुत अधिक मान में बढ़ना। जल प्लावन। सैलाब।

संयो० क्रि०—आना।—उतरना।

३. वह धन जो व्यापार आदि में बढ़े। व्यापार आदि से होनेवाला लाभ। ४. बदूक तोप आदि का लगातार छूटना।

मुहा०—बाढ़ दगना=तोप बदूक का लगातार छूटना। बाढ़ मरना=किसी कारणवश बढ़ाव का रुकना। बाढ़ मारना=बदूकों से एक साथ गोलियाँ दागना। उ०—तुर्कों ने, जो कमीनगाह और झाड़ियों की आड़ में छिपे थे, बाढ़ मारी, रूसी घबरा उठे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७५। बाढ़ रुकना=दे० 'बाढ मरना'। बाढ़ रोकना=आगे बढ़ने से रोकना। आगे न बढ़ने देना।

बाढ़[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० वाट, हिं० बारी] १. तलवार, छुरी आदि शस्त्रो की धार। सान। २. कोर। किनारा।

मुहा०—बाढ़ का डोरा=तलवार या कटारी के धार की लकीर या रेखा। बाढ़ पर चढ़ाना=(१) धार पर चढ़ाना। सान देना। (२) उत्तेजित करना। उकसाना।

बाढ़ईⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वार्धकि] दे० 'बढ़ई'। उ०—सोनै पकरि सुनार कौ काढ्यौ ताइ कलंक। लकरी छील्यौ बाढ़ई सुंदर निकसी बंक।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५०।

बाढ़कढ़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. तलवार। २. खड्ग।

बाढ़नाⓅ†[1]—क्रि० अ० [हिं० बढ़ना] १. दे० 'बढ़ना'। उ०—(क) मंडल बाँधि दिनहूँ दिन बाढ़त लहरदार जन ताप नेवारे।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख) एक बार जल बाढ़त भयऊ। सब ब्रह्मांड बूड़ि तहँ गयऊ।—विश्वास (शब्द०)। २. दे० 'बढ़ना'।

बाढ़नाⓅ†[2]—क्रि० स० [सं० वर्धन प्रा० बढ्ढण, गुज० बाढवुँ] काटना। चीरना। हिस्सा करना। फाड़ना। उ०—बाबहिया निल पंखिया बाढ़त दइ दइ लूण।—ढोला०, दू० ३३।

बाढ़ाली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ तलवार। उ०—सुंदर बाढाली बहैं होइ कडाकडि मार। सुरबीर सनमुख रहैं जहाँ खलक के सार।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७४०। २. खड्ग। उ०—बीजल ज्यों चमकै बाढाली काइर काँदरि भाजै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८८५।

बाढ़ि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'बाड़¹'। उ०—भुज सिर बाढ़ि देखि रिपु केरी।—तुलसी (शब्द०)। २. बाढ़। जलप्लावन। सैलाब। उ०—बाढ़ि क पानी काढ़ि जा जानि ठाम रहल गए जे निज जानि।—विद्यापति, पृ० ५१।

बाढ़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाढ़] १. बाढ़। बढ़ाव। २. अधिकता। वृद्धि। ज्यादती। ३. वह ब्याज जो किसी को अन्न उधार देने पर मिलता है। ४. लाभ। मुनाफा। नफा।

बाढ़ी²—संज्ञा पुं० [सं० वार्धकि] बढ़ई। उ०—बाढ़ी आवत देख-करि तरिवर डोलन लाग। हमें कटे की कुछ नहीं, पंखेरू घर भाग।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ६६।

बाढ़ीवान‡—संज्ञा पुं० [हिं० बाढ़ (= धार) + सं० वान] वह जो छुरी, कैंची आदि की धार तेज करता हो। औजारों पर सान रखनेवाला।

बाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक लंबा और नुकीला अस्त्र जो धनुष पर चढ़ाकर चलाया जाता है। तीर। सायक। शर।

विशेष—प्राचीन काल में प्रायः सारे संसार में इस अस्त्र का प्रयोग होता था; और अब भी अनेक स्थानों के जंगली और अशिक्षित लोग अपने शत्रुओं का संहार या आखेट आदि करने में इसी का व्यवहार करते हैं। यह प्रायः लकड़ी या नरसल की डेढ़ हाथ की छड़ होती है जिसके सिरे पर पैना लोहा, हड्डी, चकमक आदि लगा रहता है जिसे फल या गाँसी कहते हैं। यह फल कई प्रकार का होता है। कोई लंबा, कोई अर्धचंद्राकार और कोई गोल। लोहे का फल कभी कभी जहर में बुझा भी लिया जाता है जिससे आहत की मृत्यु प्रायः निश्चित हो जाती है। कहीं इसके पिछले भाग में पर आदि भी बाँध देते हैं जिससे यह सीधा तेजी के साथ जाता है। हमारे यहाँ धनुर्वेद में बाणों और उसके फलों का विशद रूप से वर्णन है। वि० दे० 'धनुर्वेद'।

पर्या०—पृषत्क। विशिख। खग। आशुग। कलंब। मार्गण। पत्री। रोप। वीरतर। काड। विपर्पक। शर। बाजी। पत्रवाह। अस्त्रकंटक।

२. गाय का थन। ३. आग। ४. भद्रमुंज नामक तृण। रामसर। सरपत। ५. निशाना। लक्ष्य। ६. पाँच की संख्या। (कामदेव के पाँच बाण माने गए हैं; इसी से बाण से ५ की संख्या का बोध होता है)। ७. शर का अगला भाग। ८. नीली कटसरैया। ९. इक्ष्वाकुवंशीय विकुक्षि के पुत्र का नाम। १०. राजा बलि के सौ पुत्रों में से सबसे बड़े पुत्र का नाम।

विशेष—इनकी राजधानी पाताल की शोणितपुरी थी। इन्होंने शिव से वर प्राप्त किया था जिससे देवता लोग अनुचरों के समान इनके साथ रहते थे। कहते हैं, युद्ध के समय स्वयं महादेव इनकी सहायता करते थे। उषा, जो अनिरुद्ध को ब्याही थी, इन्हीं की कन्या थी।

११. संस्कृत के एक प्रसिद्ध कवि। वि० दे० 'बाणभट्ट'। १२. स्वर्ग। १३. निर्वाण। मोक्ष।

बाणक‡—संज्ञा पुं० [सं० वणिक्] १. महाजन। २. बनिया (डिं०)।

बाणगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० बाणगङ्गा] हिमालय के सोमेश्वर गिरि से निकली हुई एक प्रसिद्ध नदी। कहते हैं, यह रावण के बाण चलाने से निकली थी, इसी से उसका यह नाम पड़ा।

बाणगोचर—संज्ञा पुं० [सं०] बाण के मार की दूरी या पहुँच। तीर के मार की दूरी या पहुँच [को०]।

बाणजित्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

बाणधि—संज्ञा पुं० [सं०] तरकस। निषंग [को०]।

बाणपति—संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर के स्वामी, महादेव। (डिं०)।

बाणपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कंक नाम का एक पक्षी [को०]।

बाणपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बाणगोचर' [को०]।

बाणपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण की मार या पहुँच। २. बाण की शय्या। शरतल्प [को०]।

बाणपुंखा—संज्ञा स्त्री० [सं० बाणपुङ्खा] बाण की छोर या अंतिम सिरा जहाँ पंख लगे रहते हैं [को०]।

बाणपुर—संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर की राजधानी। शोणितपुर।

बाणभट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि जो कादंबरी के पूर्वार्ध का रचयिता था।

विशेष—यह सम्राट हर्षवर्धन की सभा का पंडित था और इसने कई काव्य तथा नाटक लिखे थे। कादंबरी को समाप्त करने से पहले ही इसकी मृत्यु हो गई थी। जिसे, कहते हैं, बाणभट्ट के पुत्र ने पूरा किया। बाणभट्ट का यह ग्रंथ और हर्षचरित दोनों गद्य काव्य हैं। हर्षचरित में इसने हर्षवर्धन का चरित्र लिखा है। इस ग्रंथ में बाणभट्ट का अपना चरित्र भी संक्षेपतः आ गया है।

बाणमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर को लक्ष्य पर छोड़ना [को०]।

बाणमोचण—संज्ञा पुं० [सं०] बाण छोड़ना। बाणमुक्ति [को०]।

बाणयोजन—संज्ञा पुं० [सं०] तरकश। भाथा [को०]।

बाणरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाण से लगा से लगा हुआ लंबा घाव [को०]।

बाणलिंग—संज्ञा पुं० [सं० बाणलिङ्ग] नर्मदा नदी में मिलनेवाला श्वेतवर्ण का प्रस्तर लिंग जिसे शिव के रूप में पूजते हैं [को०]।

बाणवर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बाणवृष्टि'।

बाणवर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'बाणवृष्टि'।

बाणवर्षी—वि० [सं० बाणवर्षिन्] बाण की वर्षा करनेवाला [को०]।

बाणवार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण का निवारक—कवच। जिरह बख्तर। २. बाणों का पुंज, समूह या सिलसिला [को०]।

बाणविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिससे बाण चलाना आए। बाण चलाने की विद्या। तीरंदाजी।

बाणवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाणों की वर्षा। बाणवर्षण।

बाणसंधान—संज्ञा पुं० [सं० बाणसन्धान] चलाने के लिये बाण को धनुष पर चढ़ाना [को०]।

बाणसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाण द्वारा लक्ष्य का भेदन करना। निशाने पर तीर मारना [को०]।

बाणसुता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बाणासुर की कन्या उषा जो अनिरुद्ध की पत्नी थी। वि॰ दे॰ 'उषा'।

बाणहा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] विष्णु [को॰]।

बाणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] [संज्ञा पुं॰ बाण] नीलझिंटी नाम का एक क्षुप [को॰]।

बाणाभ्यास—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बाण चलाना और लक्ष्यभेद सीखना [को॰]।

बाणारसी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ वाराणसी, प्रा॰ (वर्णविपर्यय-बणारसि, बाणारसि] दे॰ 'वाराणसी'। उ॰—अति चतुराई, दीसइ घणी, गंग गया है तीरथ जोग। बाणारसी तिहाँ परसजे तिणि दरसण जाइ पतिग ल्हागि।—बी॰ रासो, पृ॰ ३५।

बाणावती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बाणासुर की पत्नी का नाम।

बाणाश्रय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तूणीर। तरकश [को॰]।

बाणासन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धनु। धनुष [को॰]।

बाणासुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] राजा बलि के सौ पुत्रों में से सबसे बड़े पुत्र का नाम। बाण।

विशेष—यह बहुत ही वीर, गुणी और सहस्रबाहु था। पाताल की शोणितपुरी इसकी राजधानी थी। इसने हजारों वर्ष तक तपस्या करके शिव से वर प्राप्त किया था। युद्ध में स्वयं शिव आकर इसकी सहायता किया करते थे। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध की पत्नी उषा इसी बाण की कन्या थी। उषा के कहने से जब उसकी सखी चित्रलेखा आकाशमार्ग से अनिरुद्ध को ले आई थी तब समाचार पाकर बाण ने अनिरुद्ध को कैद कर लिया। यह सुनते ही श्रीकृष्ण ने बाण पर आक्रमण किया और युद्धक्षेत्र में उसके सब हाथ काट डाले। शिवजी के कहने से केवल चार हाथ छोड़ दिए गए थे। इसके उपरांत बाण ने अपनी कन्या उषा का विवाह अनिरुद्ध के साथ कर दिया। विशेष दे॰ 'बाण'।

बाणि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ वाणी] दे॰ 'वाणी'।

बाणिजक—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वाणिज्य करनेवाला। व्यापारी।

बाणिज्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] व्यापार। रोजगार। सौदागरी।

बाणिणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. नर्तकी। २. धूर्त और मत्त स्त्री। ३. पुंश्चली। कुलटा। ४. एक वर्णवृत्त का नाम [को॰]।

बाणी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'वाणी'

बाणी[2]—वि॰ [सं॰ बाणिन्] बाणयुक्त। तीरवाला [को॰]।

बात—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ वार्ता] १. सार्थक शब्द या वाक्य। किसी वृत्त या विषय को सूचित करनेवाला शब्द या वाक्य। कथन। वचन। वाणी। बोल। जैसे,—(क) उसके मुँह से एक बात न निकली। (ख) तुम्हारी बातें मैं क्यों सहूँ ?

क्रि॰ प्र॰—कहना।—निकलना।—निकालना।

यौ॰—बातचीत।

मुहा॰—बात उठाना=(१) कड़वी बातें सहना। कठोर वचन सहना। सख्त सुस्त बर्दाश्त करना। (२) कथन का पालन करना। बात पर चलना। मान रखना। (३) बात न मानना। वचन खाली करना। बात उलटना=(१) कही हुए वचन के उत्तर में उसके विरुद्ध बात कहना। बात का जवाब देना। जैसे,—बड़ों की बात नहीं उलटनी चाहिए। (२) एक बार कुछ कहकर फिर दूसरी बार कुछ और कहना। बात पलटना। बात कहते=उतनी देर में जितने में मुँह से बात निकले। तुरंत। झट। फौरन। पल भर में। बात काटना=(१) किसी के बोलते समय बीच में बोल उठना। बात में दखल देना। (२) कथन का खंडन करना। जो कहा गया हो उसके विरुद्ध कहना। बात कान पड़ना=बात का सुना या जाना जाना। जैसे,—जहाँ यह बात किसी के कान पड़ी, गुजब हो जायगी। बात का पुल बाँधना=दे॰ 'बातों की झड़ी लगाना'। उ॰—मद उनद बात रहू नहीं गरती। बातन ... बाँधे ... पुल।—बोधि॰, पृ॰ ७२। बात की बात में=दम भर में। झट। फौरन। तुरंत। बात खाली जाना=प्रार्थना या कथन का निष्फल होना। बात का न माना जाना। बात गढ़ना=झूठ बात कहना। मिथ्या प्रसंग की उद्भावना करना। बात बनाना। उ॰—झूठे कहत स्याम घन सुंदर बातें गढ़त बनाय।—सूर (शब्द॰)। बात गाँठ या आँचल में बाँधना=बात को न भूलना। सदा ध्यान बराबर याद रखना। बात घूँट जाना=दे॰ 'बात पी जाना'। बात चबा जाना=(१) कुछ कहते कहते रुक जाना। (२) एक बार कही हुई बात को ढंग से दूसरे रूप में ला देना। (मन में) बात जमाना या बैठाना=दृढ़ निश्चय कराना कि यह बात ठीक है। बात टलना=वचन का अन्यथा होना। जैसा कहा गया हो वैसा न होना। बात टालना=(१) पूछी हुई बात का ठीक जवाब न देकर इधर उधर की और बात कहना। सुनी अनसुनी करना। (२) आदेश, प्रार्थना या शिक्षा के अनुसार कार्य न करना। कही हुई बात पर न चलना। जैसे,—मैं कभी तुम्हारी बात नहीं टाल सकते। बात डालना=कहना न मानना। वचन का पालन न करना। बात दुहराना या दोहराना=(१) पूछी हुई बात फिर कहना। (२) किसी की कही हुई बात का उलटकर जवाब देना। जैसे,—बड़ों की बात दुहराते हो। उ॰—है बिना हारे हराना पाप। है बड़ों की बात दोहराना बुरा।—चुभते॰, पृ॰ ४३। मुँह से बात न आना=मुँह से शब्द न निकलना। बात न पूछना=अवज्ञा से ध्यान न देना। तुच्छ समझकर बात तक न करना। कुछ भी कदर न करना। जैसे,—तुम्हारी यही चाल रही तो मारे मारे फिरोगे, कोई बात न पूछेगा। उ॰—सिर हेठ, ऊपर चरन संकट, बात नहिं पूछै कोऊ।—तुलसी (शब्द॰)। बात न करना=घमंड के मारे न बोलना। बात नीचे डालना=अपनी बात का खंडन होने देना। अपनी बात के ऊपर किसी और की बात होने देना। जैसे,—वह ऐसी मुँहजोर है कि एक बात नीचे नहीं डालती। बात पकड़ना=(१) कथन में परस्पर विरोध या दोष दिखाना। किसी के कथन को उसी के कथन द्वारा अयुक्त सिद्ध करना। बातों से कायल करना।

(२) तर्क करना। हुज्जत करना। **(किसी की) बात पर जाना**=(२) बात का ख्याल करना। बात पर ध्यान देना। बात का भला बुरा मानना। जैसे,—तुम भी लड़कों की बात पर जाते हो। (२) कहने पर भरोसा करना। कथन के अनुसार चलना। जैसे,—उसकी बात पर जाओगे तो धोखा खाओगे। **बात पलटना**=दे० 'बात बदलना'। **बात पी जाना**=(१) बात सुनकर भी उसपर ध्यान न देना। सुनी अनसुनी कर देना। (२) अनुचित या कठोर वचन सुनकर भी चुप हो रहना। दर गुजर करना। जाने देना। **बात पूछना**=(१) खोज रखना। खबर लेना। सुख या दुःख है इसका ध्यान रखना। (२) कदर करना। **बात फूटना**=(१) शब्द मुँह से निकलना। (२) भेद खुलना। बात प्रकट हो जाना। उ०—और अगर बात फूटी तो बड़ी रुसवाई जगत हँसाई होगी।—सैर०, पृ० २६। **बात फेंकना**=व्यंग्य छोड़ना। ताने मारना। बोली ठोली मारना। **बात फेरना**=(१) चलते हुए प्रसंग को बीच से उड़ाकर दूसरा विषय छेड़ना। बात पलटना। (२) बात बड़ी करना। बात का समर्थन करके उसका महत्व बढ़ाना। **बात बटना**=(१) बात मे बात बनाना। बात गढ़ना। (२) बातो को इस प्रकार परस्पर मिला देना कि असत्य होते हुए भी वे सत्य प्रतीत हों। उ०—हुजूर वह बात बटी है कि अल्ला ही अल्ला।—सैर०, पृ० ४२। **बात बढ़ाना**=बात का विवाद के रूप में हो जाना। झगड़ा हो जाना। तकरार होना। जैसे,—पहले तो लोग यों ही आपस में कह सुन रहे थे, धीरे धीरे बात बढ़ गई। **बात बढ़ाना**=विवाद करना। कहासुनी करना। झगड़ा करना। जैसे,—तुम्ही चुप रह जाओ, बात बढ़ाने से क्या फायदा! **(किसी की) बात बढ़ाना**=बात का समर्थन करना। बात की पुष्टि करके उसे महत्व देना। **बात बदलना**=एक बार एक बात कहना दूसरी बार दूसरी। काटकर पलटना। मुकरना। उ०—आप तो बात ही बदलते थे। आँख अब किसलिये बदलते हैं।—चोखे०, पृ० ४६। **बात बनना**=काम होना। काम निकलना। काम सध जाना। उ०—बात बनती नही वचन से ही। काम सध कब सका सदा धन से।—चोखे०, पृ० २४। **बात बनाना**=मिथ्या प्रसग की उद्भावना करना। झूठ बोलना। बहाना करना। व्यर्थ वाग्विस्तार करना। उ०—तुम जो राजनीति सब जानत बहुत बनावत बात।—सूर (शब्द०)। **बात बात में**=(१) हर एक बात में। जो कुछ कहता है, सबमे। जैसे,—वह बात बात में झूठ बोलता है। (२) बार बार। हर बार। पुन: पुन:। **बात बैठना**=कही हुई बातो का असर पड़ना जिससे कार्यसिद्धि की आशा हो। **बात मारना**=(१) बात दबाना घुमा फिराकर असल बात न कहना। (२) व्यंग्य बोलना। ताना मारना। **बात मुँह पर लाना**=बात बोलना। वाक्य का उच्चारण करना। **बात में बात निकालना**=बाल की खाल निकालना। किसी के कथन में दोष निकालना। **(किसी की) बात रखना**=(१) कहना मानना। कथन या आदेश का पालन करना। (२) मनोरथ पूरा करना। मन रखना। **अपनी बात रखना**=(१) अपने कहे अनुसार करना। जैसा कहा था वैसा करना। (२) हठ करना। दुराग्रह करना। जैसे,—तुम अपनी ही बात रखोगे कि दूसरे की भी मानोगे? **बात लगाना**=किसी के विरुद्ध इधर उधर बात कहना। लगाई बझाई करना। कान भरना। निंदा करना। पिशुनता करना। **बात है**=कथन मात्र है। सत्य नहीं है। ठीक नहीं है। जैसे,—वह निराहार रहते, यह तो बात है। **बातें छाँटना**=(१) बहुत बातें करना। व्यर्थ बोलना। (२) बढ़ बढ़कर बोलना। **बातें बघारना**=(१) बातें बनाना। बहुत बोलना। ऐसी बातें करना जिनमे तत्व न हो। (२) बढ़ बढ़कर बोलना। डींग हाँकना। शेखी मारना। **बातें बनाना**=(१) व्यर्थ बोलना। ऐसी बातें कहना जिनमें तत्व न हो। झूठमूठ इधर उधर की बातें कहना। (२) बहाना करना। खुशामद करना। चापलूसी करना। (३) डींग हाँकना। बढ़ बढ़कर बोलना। **बातें मिलाना**=हाँ में हाँ मिलाना। प्रसन्न करने के लिये सुहाती बातें कहना। **बातें सुनना**=कठोर वचन सहना। दुर्वचन सहना। कड़वी बात बरदाश्त करना। **बातें सुनाना**=ऊँचा नीचा सुनाना। भला बुरा कहना। कठोर वचन कहना। **बातों आना**=दे० 'बातों में आना'। **बातों की झड़ी बाँधना**=बात पर बात कहते जाना। लगातार बोलते जाना। **बातों का धनी**=सिर्फ जबानी जमा खर्च करनेवाला। बहुत कुछ कहनेवाला पर करनेवाला कुछ नही। बातें बनानेवाला। **बातों पर जाना**=(१) बातों पर ध्यान देना। (२) कहने के अनुसार चलना। **बातों में आना**=बातों पर विश्वास करके उनके अनुकूल चलना। **बातों में उड़ाना**=(१) किसी विषय को हँसी मे टालना। इधर उधर की अनावश्यक बातें कहकर असल बात पर ध्यान न देना। (२) बहाली देना। टाल-मटूल करना। **बातों में धर लेना**=कही हुई बातो में से किसी अंश को लेकर यह सिद्ध कर देना कि बातें यथार्थ नही है। युक्ति से बातो का खंडन कर देना। कायल करना। **बातों में फुसलाना या बहलाना**=केवल वचनों से संतुष्ट या दूसरी ओर प्रवृत्त करना। बातें कहकर संतोष या समाधान करना। **बातों में लगाना**=बातें कहकर उसमें लीन रखना। वार्तालाप मे प्रवृत्त करना। उ०—बातन ही सुत लाय लियो। तब लौं मथि दधि जननि जसोदा माखन करि हरि हाथ दियो।—सूर (शब्द०)।

२. चर्चा। जिक्र। प्रसंग।

किसी प्रसंग की चर्चा चलाना या छेड़ना। उ०—(२) फिरि फिरि नृपति चलावत बात। कहौ सुमत कहाँ तें पलटे प्रानजिवन कैसे बन जात। —सूर (शब्द०)। (ख) ऊधो कत ये बातै चाली। कछु मीठी कछु कड़ई हरि की अंतर मे सब साली। —सूर (शब्द०)। (अमुक की) बात मत चलाओ = इस संबंध मे (अमुक की) चर्चा करना (दृष्टांत या उदाहरण के लिये) व्यर्थ है। (अमुक का) दृष्टांत देना ठीक नहीं है। जैसे,—उनकी बात मत चलाओ; वे रुपए वाले हैं सब कुछ खर्च कर सकते हैं। (अमुक की) बात क्या चलाते हो = दे० 'बात मत चलाओ'। बात छिड़ना = दे० 'बात चलना'। बात छेड़ना = दे० 'बात चलाना'। बात निकालना = बात चलाना। बात पड़ना = किसी विषय का प्रसंग प्राप्त होना। चर्चा छिड़ना। जैसे,—बात पड़ी इसलिये मैंने कहा, नहीं तो मुझसे क्या मतलब? बात मुँह पर लाना = (किसी विषय की) चर्चा कर बैठना। जैसे,—किसी के सामने यह बात मुँह पर न लाना।

३. फैली हुई चर्चा। प्रचलित प्रसंग। खबर। अफवाह। किंवदंती। प्रवाद।

मुहा०—बात उड़ना = चारों ओर चर्चा फैलना। किसी विषय का लोगों के बीच प्रसिद्ध होना या प्रचार पाना। उ०—झूठी ही यह बात उड़ी है राधा कान्ह कहत नर नारी। रिस की बात सुता के मुख सों सुनत हँसी मन ही मन भारी। —सूर (शब्द०)। (किसी पर) बात आना = दोषारोपण होना। दोष लगना। कलंक लगना। बुराई आना। बात फैलाना = चर्चा फैलना। बात लोगों के मुँह से चारों ओर सुनाई पड़ना। प्रसिद्ध होना। बात फैलाना = इधर उधर लोगों में चर्चा करना। प्रसिद्ध करना। बात बहना = चारों ओर चर्चा फैलना। बात उड़ना। उ०—जे हम सुनति रही सो नाही ऐसी ही यह बात बहानी। —सूर (शब्द०)। (किसी पर) बात रखना, लगाना या लाना = दोष लगाना। कलंक मढ़ना। इलजाम लगाना। लांछन रखना।

४. कोई वृत्त या विषय जो शब्दों द्वारा प्रकट किया जा सके या मन में लाया जा सके। जानी जाने या जताई जानेवाली वस्तु या स्थिति। मामला। माजरा। हाल। व्यवस्था। जैसे,—(क) बात क्या है कि वह अबतक नहीं आया? (ख) उनकी क्या बात है! (ग) इस चिट्ठी मे क्या बात लिखी है? उ०—क्यो करि झूठो मानिए सखि सपने की बात —पद्माकर (शब्द०)।

मुहा०—बात का बतंगड करना = (१) साधारण विषय या घटना को व्यर्थ विस्तार देकर वर्णन करना। छोटे से मामले को बहुत बढ़ाकर कहना। (२) किसी साधारण घटना को बहुत बड़ा या भीषण रूप देना। छोटे से मामले को व्यर्थ बहुत पेचीदा या भारी बना देना। बात ठहरना = किसी विषय में यह स्थिर होना कि ऐसा होगा। मामला तै होना। जैसे—हमारे उनके यह बात ठहरी है कि कल सवेरे यहाँ से चल दें। बात डालना = विषय उपस्थित करना। मामला पेश करना। जैसे,—यह बात पंचों के बीच डाली जाय। बात न पूछना = दशा पर ध्यान न देना। ख्याल न करना। परवा न करना। उ०—मीन वियोग न सहि सकै नीर न पूछै बात। —सूर (शब्द०)। बात पर धूल डालना = किसी काम या घटना को भूल जाना। मामले का ख्याल न करना। गई कर जाना। बात पी जाना = जो कुछ हो गया हो उसका ख्याल न करना। जाने देना। दर गुजर करना। बात बतंगड़ होना = किसी साधारण घटना का अर्थ कुछ का कुछ कर लिया जाना या समझना। उ०—जहाँआरा बेगम देख लेंगी तो क्या जाने क्या बात बतंगड़ हो। —फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०२। बात बढ़ना = मामले का तूल खीचना। किसी प्रसंग या घटना का घोर रूप धारण करना। जैसे,—अब बात बहुत बढ़ गई है, समझाना बुझाना व्यर्थ है। बात बढ़ाना = मामले को तूल देना। किसी प्रसंग, परिस्थिति या घटना को घोर रूप देना। जैसे,—जो हुआ सो हुआ, अब अदालत में जाकर क्यों बात बढ़ाते हो? बात बनना = (१) काम बनना। प्रयोजन सिद्ध होना। मामला दुरुस्त होना। सिद्धि प्राप्त होना। उ०—खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनहि नहि बाता। —तुलसी (शब्द०)। (२) संयोग या घटना का अनुकूल होना। अच्छी परिस्थिति होना। बोलबाला होना। अच्छा रंग होना। बात बनाना या सँवारना = काम बनाना। कार्य सिद्ध करना। मतलब गाँठना। सिद्धि प्राप्त करना। संयोग या परिस्थिति को अनुकूल करना। जैसे,—यह तो सारा मामला बिगाड़ चुका था, तुमने आकर बात बना दी। उ०—(क) चतुर गभीर राम महतारी। बीच पाय निज बात सँवारी। —तुलसी (शब्द०)। (ख) भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोच विधि बात बनाई। —तुलसी (शब्द०)। बात बात पर या बात बात में = प्रत्येक प्रसंग पर। थोड़ा सा भी कुछ होने पर। हर काम में। जैसे,—तुम बात बात में बिगड़ा करते हो, कैसे काम चलेगा? बात बिगड़ना = (१) कार्य नष्ट होना। काम चौपट होना। मामला खराब होना। अच्छी परिस्थिति न होकर बुरी परिस्थिति हो जाना। (२) प्रयोजन सिद्ध न होना। विफलता होना। जैसे,—तुम्हारे वहाँ न जाने से सारी बात बिगड़ गई। बात बिगाड़ना या बिगारना = कार्य नष्ट करना। काम चौपट करना। मामला खराब करना। बुरी परिस्थिति लाना। उ०—विधि बनाइ सब बात बिगारी। —तुलसी (शब्द०)।

५. घटित होनेवाली अवस्था। प्राप्त संयोग। परिस्थिति। जैसे,—(क) इससे एक बात होगी कि वह फिर कभी न आवेगा। (ख) रास्ते में कोई बात हो जाय तो कौन जिम्मेदार होगा। ६. दूसरे के पास पहुँचाने के लिये कहा हुआ वचन। संदेश। संदेसा। पैगाम। उ०—ऊधो! हरि सों कहियो बात। —सुर (शब्द०)। ७. परस्पर कथोपकथन। संवाद। वार्तालाप। गपशप। वाग्विलास। जैसे,—क्यों बातों में दिन खोते हो?

यौ०—बातचीत।

मुहा०—बातों बातों में=बातचीत करते हुए। कथोपकथन के बीच में। जैसे,—बातों ही बातों मे वह बिगड़ खड़ा हुआ।

८. किसी के साथ कोई व्यवहार या संबंध स्थिर करने के लिये परस्पर कथोपकथन। कोई मामला तै करने के लिये उसके संबंध में चर्चा। जैसे—(क) ब्याह की बात। (ख) इस मामले में मुझसे उनसे बात हो गई है। (ग) जिससे पहले बात हुई है उसी के साथ सौदा बेचेंगे।

यौ०—बातचीत।

मुहा०—बात ठहरना=(१) ब्याह ठीक होना। विवाह संबंध स्थिर होना। (२) किसी प्रकार का निश्चय होना। बात लगना=विवाह के संबंध मे प्रस्ताव आदि होना। बात लगाना=विवाह का प्रस्ताव करना। ब्याह संबंध स्थिर करने के लिये कही कहना सुनना। बात लाना=वर या कन्या पक्ष से विवाह का प्रस्ताव लाना।

९. फँसाने या धोखा देने के लिये कहे हुए शब्द या किए हुए व्यवहार। जैसे,—तुम उसकी बातो में न आना।

मुहा०—बातों में आना या जाना=कथन या व्यवहार से धोखा खाना।

१०. झूठ या बनावटी कथन। मिस। बहाना। जैसे,—यह सब तो उसकी बात है। ११. अपने भावी आचरण के संबंध में कहा हुआ वचन। प्रतिज्ञा। कौल। वादा। जैसे,—वह अपनी बात का पक्का है।

मुहा०—बात का धनी, पक्का या पूरा=प्रतिज्ञा का पालन करनेवाला। कौल का सच्चा। मुँह से जो कहे वही करनेवाला। दृढ़प्रतिज्ञ। बात का कच्चा या हेठा=प्रतिज्ञा भंग करनेवाला। (अपनी) बात नक्की करना=दे० 'बात पक्की करना'। बात पर न रहनेवाला=प्रतिज्ञा भंग करनेवाला। कौल पूरा न करनेवाला। बात पक्की करना=(१) परस्पर स्थिर करना कि ऐसा ही होगा। दृढ निश्चय करना। (२) प्रतिज्ञा या संकल्प पुष्ट करना। वचन देकर और वचन लेकर किसी विषय में कर्तव्य स्थिर करना। बात पक्की होना=(१) स्थिर होना कि ऐसा ही होगा। (२) प्रतिज्ञा या संकल्प का दृढ़ होना। बात पर आना=अपने कहे हुए वचन के अनुसार ही काम करने के लिये उतारू होना। जैसा मैंने कहा वैसा ही हो, ऐसा हठ या आग्रह करना। बात पर जाना=कथन या प्रतिज्ञा पर विश्वास करना। कहे का भरोसा करना। (अपनी) बात रखना=वचन पूरा करना। प्रतिज्ञा का पालन करना। उ०—वेद विदित वहु धर्म चलाउब राखु हमारी बाता।—रघुराज (शब्द०)। बात हारना=प्रतिज्ञा करना। वादा करना। वचन देना। जैसे,—मैं बात हार चुका हूँ नहीं तो तुम्हीं को देता।

१२. वचन का प्रमाण। साख। प्रतीति। विश्वास। जैसे,—जिसकी बात गई उसकी जात गई।

मुहा०—(किसी की) बात जाना=बात का प्रमाण न रहना। (लोगों को) एतबार न रह जाना। बात खोना=साख बिगाड़ना। ऐसा काम करना जिससे लोग एतबार करना छोड़ दें। बात बनना=साख रहना। विश्वास रहना। जैसे,—अभी बाजार में उनकी बात बनी है। बात हेठी होना=बात का प्रमाण या साख न रह जाना। वचन का विश्वास या प्रतिष्ठा उठ जाना। बात की कदर न रह जाना।

१३. मानमर्यादा। छाप। प्रतिष्ठा। इज्जत। कदर। जैसे,—अपनी बात अपने हाथ। उ०—सुनो राजा लंकपति, आज तेरी बात अति, कौन सुरपति, धनपति, लोकपति है।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बात खोना=प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत गँवाना। ऐसा काम करना जिससे लोग आदर प्रतिष्ठा करना छोड़ दें। बात जाना=प्रतिष्ठा नष्ट होना। इज्जत न रह जाना। उ०—उचित यासु निग्रह अब भाई। नतरु बात जदुकुल की जाई।—गोपाल (शब्द०)। बात बनना=प्रतिष्ठा प्राप्त होना। इज्जत पैदा होना। रंग जमना। लोगो पर अच्छा प्रभाव होना। जैसे,—दस आदमियो में उनकी बात बनी हुई है। (अपनी) बात बना लेना=लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेना। लोगों के बीच इज्जत पैदा करना। नाम या यश प्राप्त करना। बात बिगड़ना=(१) प्रतिष्ठा न रहना। इज्जत न रहना। लोगों के बीच वैसा आदर या संमान न होना। (२) हैसियत बिगड़ना। दिवाला निकलना। बात बिगाड़ना=प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत खोना। ऐसा काम करना जिससे साख या मर्यादा न रह जाय। बात रख लेना=प्रतिष्ठा नष्ट न होने देना। इज्जत न बिगड़ने देना। बात रह जाना=मान मर्यादा रह जाना। इज्जत रह जाना।

१४. अपनी हैसियत, योग्यता, गुण, सामर्थ्य आदि के संबंध में कथन या वाक्य। जैसे,—अब तो वह बहुत लंबी चौड़ी बातें करता है। १५. आदेश। उपदेश। सीख। नसीहत। जैसे,—बड़ों की बात माना करो।

क्रि० प्र०—पर चलना।—मानना।

मुहा०—बात उठाना=बात न मानना। कथन या आदेश का पालन न करना। कहे अनुसार न चलना।

१६. रहस्य। भेद। मर्म। गुप्त विषय। जैसे,—इसके भीतर कोई बात है।

मुहा०—बात खुलना=गुप्त विषय प्रकट होना। छिपी व्यवस्था ज्ञात होना। छिपा मामला जाहिर होना। बात फूटना=गुप्त विषय का कई आदमियों पर प्रकट हो जाना। रहस्य प्रकाशित होना।

१७. तारीफ की बात। प्रशंसा का विषय। जैसे,—उससे पहले पहुँचो तब तो बात। १८. उक्ति। चमत्कारपूर्ण कथन। १९. गूढ़ अर्थ। अभिप्राय। मानी। उ०—चतुरन की कहिए कहा बात बात में बात।—(शब्द०)।

मुहा०—बात पाना=छिपा हुआ अर्थ समझ जाना। गूढ़ार्थ जान जाना। जैसे,—वह बात पाकर हँसा है, यों ही नहीं।

२०. गुण या विशेषता। खूबी। जैसे,—यह भी अच्छा है; पर उसकी कुछ बात ही और है। २१. ढंग। ढब। तौर। २२. प्रश्न। सवाल। समस्या। जैसे,—उनकी बात का जवाब दो। २३. अभिप्राय। तात्पर्य। आशय। विचार। भाव। जैसे,—किसी के मन की बात क्या जानूँ? २४. कामना। इच्छा। चाह। उ०—ऊधो मन की (बात) मन ही माँहि रही।—सूर (शब्द०)। २५. कथन का सार। कहने का सार। कहने का असल मतलब। तत्व। मर्म। जैसे,—तुमने अभी बात नहीं पाई, यों ही बिना समझे बोल रहे हो।

मुहा०—बात तक पहुँचना=दे० 'बात पाना'। बात पाना=असल मतलब समझ जाना।

२६. काम। कार्य। कर्म। आचरण। व्यवहार। जैसे,—(क) उसे हराना कोई बड़ी बात नहीं है। (ख) एक बात करो तो वह यहाँ से चला जाय। (ग) कोई बात ऐसी न करो जिससे उन्हें दुःख पहुँचे। २७. संबंध। लगाव। तअल्लुक। जैसे,—उन दोनों के बीच जरूर कोई बात है। २८. स्वभाव। गुण। प्रकृति। लक्षण। जैसे,—उसमें बहुत सी बुरी बातें हैं। २९. वस्तु। पदार्थ। चीज। विषय। जैसे,—उन्हें कभी किस बात की है जो दूसरों के यहाँ माँगने जायँगे। उ०—कितक बात यह धनुष रुद्र को सकल विश्व कर लैहों। आज्ञा पाय देव रघुपति की छिनक माँझ हठि गैहों।—सूर (शब्द०)। ३. बेचनेवाली वस्तु का मूल्य कथन। दाम। मोल। जैसे,—यहाँ तो एक बात होती है लीजिए या न लीजिए। ३१. उचित पथ या उपाय। कर्तव्य। जैसे,—तुम्हारे लिये तो अब यही बात है कि जाकर उनसे क्षमा माँगो। उ०—परचो सोच भारी नृप निपट खिसानो भयो गयो उठि 'सागर में बूड़ों' यही बात है।—प्रियादास (शब्द०)।

बात[२]—संज्ञा पुं० [सं० वात] वायु। हवा। उ०—दिग्देव दहे बहु बात बहे।—केशव (शब्द०)।

बातकंटक—संज्ञा पुं० [सं० वातकण्टक] एक वायुरोग।

बातचीत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बात+चितन] दो या कई मनुष्यों के बीच कथोपकथन। दो या कई आदमियों का एक दूसरे से कहना सुनना। वार्तालाप।

मुहा०—बातचीत चलना या छिड़ना=दे० 'बात-२' का मुहा० 'बात चलना'।

बातड़†—वि० [सं० वातल] वायुयुक्त। वायुवाला।

बातप—संज्ञा पुं० [सं० वातप ?] हिरन।—अनेकार्थ (शब्द०); नंद ग्रं०, पृ० ९१।

बातफरोश—संज्ञा पुं० [हिं० बात+फ़ा० फ़रोश] १. बात बनानेवाला। बात गढ़नेवाला। झूठ मूठ इधर उधर की बात कहनेवाला।

बातमीज—वि० [फ़ा० बा+तमीज़] शिष्ट। सभ्य। उ०—कितनी बातमीज बाशऊर हसीन लड़की थी।—काया०, पृ० ३३६।

बातय—संज्ञा पुं० [सं० वातायु] हिरन। मृग।—अनेकार्थ०, पृ० ८१।

बातर—संज्ञा पुं० [देश०] पंजाब में धान बोने का एक ढंग।

बातलारोग—संज्ञा पुं० [सं०] एक योनिरोग जिसमें सुई चुभने की सी पीड़ा होती है।

बातायन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वातायन] झरोखा। खिड़की। उ०—कवि मतिराम देखि बातायन बीच आयो।—मति० ग्रं०, पृ० ३३६।

बातास†—संज्ञा स्त्री० [सं० वात, बं० बातस; हिं० बतास] बतास। वायु। उ०—वन उपवन में लेती उसाँस, चलती है अब बातास नहीं।—तीर०, पृ० ३४।

बाति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तिका, हिं० बाती] दे० 'बाती—२'। उ०—ज्ञान का थाल और सहज मति बाति है, अधर आसन किया अगम डेरा।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६७।

बातिन—संज्ञा पुं० [अ०] १. अंतःकरण। उ०—नहीं अगर बातिन में मेरा राजदाँ। सर पै उसके ला सहूँ गम के पहाड़। —दक्खिनी०, पृ० १७८। २. भीतर। अंदर। अप्रकट। उ०—जाहिर बातिन हाजिर नाजिर, दाना तूँ दीवान।—दादू० बानी, पृ० ५७७।

बातिल—वि० [अ०] झूठ। मिथ्या। गलत। बेकार। उ०—रहा नूरे नबी आ जिस बशर में। बुताँ दिसते थे बातिल उस नजर में।—दक्खिनी०, पृ० १६३।

यौ०—बातिल परस्त=असत्य या मिथ्या का उपासक।

बाती†—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ती] १. लंबी सलाई के आकार में बटी हुई रुई या कपड़ा। २. कपड़े या रुई को बटकर बनाई हुई सलाई जो तेल में डुबाकर दिया जलाने के काम में आती है। बत्ती। उ०—(क) परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती।—तुलसी (शब्द०)। (ख) यही सराव सप्तसागर घृति बाती शैल घनी।—सूर (शब्द०)। ३. वह लकड़ी जो पान के खेत के ऊपर बिछाकर छप्पर छाते हैं।

बातुल—वि० [सं० वातुल] १. पागल। सनकी। बौड़हा। उ०—(क) बातुल मातुल की न सुनी सिष का तुलसी कपि लंक न जारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे।—तुलसी (शब्द०)।

बातूनिया—वि० [हिं० बात+ऊनियाँ (प्रत्य०)] दे० 'बातूनी'।

बातूनी—वि० [हिं० बात+ऊनी (प्रत्य०)] बकवादी। बहुत बोलने या बात करनेवाला।

बातूल—संज्ञा पुं० [सं० वातूल] बवंडर। तूफान। वातचक्र। उ०—ज्यों तुल मध्य वातूल पवन जिम पत्त भ्रमाइय।—पृ० रा०, ७।८४।

बाथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वस्ति (=कटि या वक्ष)] १. गोद। अंक।

अंकवार। उ०—दृग मिहचत मृगलोचनी भरयौ उलटि भुजबाथ। जानि गई तिय नाथ के हाथ परस ही हाथ।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—बाथ भरना=लिपटना। आलिंगन करना। उ०—बिन हाथन सब बाथ भरि, तन मन लीए जाय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५१।

२. दोनों भुजाओं का घेरा। करपाश। उ०—इत सामंतन नाथ बाथ बड़वानल घल्लन।—पृ० रा०, ७।२०। ३. छाती। वक्ष। ४. भुजा। बाहु। कर। उ०—ओर अमरेस गहै आसमान बाथूं।—रा० रू०, पृ० १२०।

बाथ[2]—संज्ञा पुं० [अं०] स्नान। नहाना।

यौ०—बाथरूम=स्नानगृह। नहाने का स्थान। उ०—कानजी कंबल ओढ़े बाथरूम में आकर उन दोनों का निरीक्षण करने लगे थे।—तारिका, पृ० १६६।

बाथू—संज्ञा पुं० [सं० वास्तुक, प्रा० वात्थुअ] बथुआ नाम का साग।

बाद[1]—संज्ञा पुं० [सं० वाद] १. बहस। तर्क। खंडन मंडन की बातचीत। उ०—सजल कठौता भरि जल कहत निषाद। चढ़हु नाव पग धोइ करहु जनि बाद।—तुलसी (शब्द०)। २. विवाद। झगड़ा। हुज्जत। उ०—गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी, प्रभु सों विवाद कै कै बाद न बढ़ायहौं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बाद बढ़ाना=झगड़ा बढ़ाना। उ०—जे अबूझ ते बाद बढ़ावैं।—विश्राम (शब्द०)।

३. नाना प्रकार के तर्क वितर्क द्वारा बात का विस्तार। झकझक। तूलकलामी। उ०—त्यों पदमाकर वेद पुरान पढ्यो पढ़ि कै बहु बाद बढ़ायो।—पद्माकर (शब्द०)। ४. प्रतिज्ञा। शर्त। बाजी। होड़ाहोड़ी। उ०—कूदत करि रघुनाथ सपथ उपरा उपरी करि बाद।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बाद मेलना=शर्त बदना। बाजी लगाना उ०—बाद मेलि कै खेल पसारा। हार देय जो खेलत हारा।—जायसी (शब्द०)।

बाद(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० वाद्य] दे० 'वाद्य'। उ०—गुरु गीत बाद बाजित्र नृत्य।—पृ० रा०, १।३७१।

बाद[3]—अव्य० [सं० वाद; हिं० वादि (=वाद करके, हठ करके, व्यर्थ)] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फिजूल। बिना मतलब। उ०—भए बटाऊ नेह तजि बाद बकति बेकाज। अब अलि देत उराहनो उर उपजति अति लाज।—बिहारी (शब्द०)।

बाद[4]—अव्य [अ०] पश्चात्। अनंतर। पीछे।

बाद[5]—वि० १. अलग किया हुआ। छोड़ा हुआ। जैसे,—खर्चा बाद देकर तुम्हारा कितना रुपया निकलता है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

२. दस्तूरी या कमीशन जो दाम में से काटा जाय। ३. अतिरिक्त। सिवाय। ४. असल से अधिक दाम जो व्यापारी लिख देते और दाम बताते समय घटा देते हैं।

बाद[6]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाद, तुल० सं० वात] वायु। पवन। उ०—(क) है दिल में दिलदार सही, अँखियाँ उलटी करि ताहि चितइए। आब में, खाक में, बाद में आतस, जान में सुंदर जानि जनइए।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१५। (ख) थे जल्दी में घोड़े से जियाद। थे दौड़ में वह मानिंद बाद।—दक्खिनी०, पृ० २२०।

यौ०—बादगीर। बादनुमा। बादेबहारी=वासंती वायु। मस्ती भरी हवा।

बादकाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के मुख्य ६० भेदों में से एक भेद।

विशेष—संगीत दामोदर मे इसका लक्षण निम्नांकित है—प्लुतो लघु चतुष्कच मौनौ द्रुत युगं लघुः। लघु चतुष्क बिना शब्द तालस्याद्वादकाकुलः।

बादगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] झरोखा। वातायन [को०]।

बादना(पु)—क्रि० अ० [सं० वाद+हिं० ना (प्रत्य०)] १. बकवाद करना। तर्क वितर्क करना। २. झगड़ा करना। हुज्जत करना। उ०—(क) बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बादति है बिन काज ही वृथा बढ़ावति रार।—सूर (शब्द०)। ३. बोलना। ललकारना। उ०—बादत बड़े सूर की नाईं अबहिं लेत हौ प्रान तुम्हारे।—सूर (शब्द०)।

बादनुमा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वायु की दिशा सूचित करनेवाला यंत्र। हवा किस ओर से बहती है, यह बतानेवाली कल। पवनप्रकाश। पवनप्रचार।

बादफ़रोश—वि० [फ़ा० बादफ़रोश] इधर उधर की बात करनेवाला। खुशामदी। चापलूस। बातफरोश।

बादबान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पाल। उ०—बादबान तानी पलकों ने, हा! यह क्या व्यापार ?—हिम कि०, पृ० २३।

बादबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पाल से चलनेवाली नाव [को०]।

बादर†(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० वारिद, वर्णविपर्यय द्वारा बादरि] बादल। मेघ। उ०—(क) देति पाँवड़े अरघ चली लै सादर। उमगि चल्यो आनंद भुवन भुइँ बादर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लाल बिन कैसे लाल चादर रहैगी, हाय! कादर करत मोहिं बादर नए नए।—श्रीपति (शब्द०)।

बादर[2]—वि० [सं०] १. बदर या बेर नामक फल का। उससे उत्पन्न या संबंध रखनेवाला। २. कपास का। कपास या रुई का बना हुआ। ३. मोटा या खद्दड़। 'सूक्ष्म' का उलटा (कपड़ा)।

बादर[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदरी या बेर का पेड़। २. कपास का पौधा। ३. कपास की रुई का बना हुआ सूत या वस्त्र। ४. जल। पानी। ५. रेशम। ६. दक्षिणावर्त शंख। ७. बृहत्संहिता के अनुसार नैऋत्य कोण में एक देश।

बादर[4]—वि० [देश०] आनंदित। प्रसन्न। आह्लादित। उ०—सादर सखी के साथ बादर बदन ह्वै कै भूपति पधारे महारानी के महल को।—(शब्द०)।

वादरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपास का पौधा। २. कपास की रुई का सूत या वस्त्र।

वादरायण—संज्ञा पुं० [सं०] वेदव्यास का एक नाम।

यौ०—बादरायण संबध=किसी प्रकार खींच तानकर किया हुआ संबंध। बादरायण सूत्र=व्यासरचित सूत्र। ब्रह्मसूत्र।

वादरायणिक—संज्ञा पुं० [सं०] व्यास के पुत्र शुकदेव [को०]।

बादरि—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शनशास्त्र के एक आचार्य का नाम [को०]।

बादरिक—वि० [सं०] [स्त्री० बादरिकी] बेर के फलों को एकत्र करनेवाला [को०]।

बादरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बादर+इया (स्वा० प्रत्यय)] दे० 'बदली'। उ०—बरसन लागी कारी बादरिया।—गीत (शब्द०)।

बादरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बादर] दे० 'बदली'।

बादल—संज्ञा पुं० [सं० वारिद, (वर्ण वि०)>हिं० बादर] १. पृथ्वी पर के जल (समुद्र, झील, नदी आदि के) से उठी हुई वह भाप जो घनी होकर आकाश में छा जाती है और फिर पानी की बूँदों के रूप में गिरती है। मेघ। घन।

विशेष—सूक्ष्म जलसीकर रूप की इस प्रकार की भाप जो पृथ्वी पर छा जाती है, उसे नीहार या कुहरा कहते हैं। बादल साधारणतः पृथ्वी से डेढ़ कोस की ऊँचाई पर रहा करते हैं। ये आकाश में अनेक विलक्षण रूप रंग धारण किया करते हैं जिनकी शोभा अनिर्वचनीय होती है।

क्रि० प्र०—आना।—छाना।

मुहा०—बादल उठना=बादलों का किसी ओर से समूह के रूप में बढ़ते हुए दिखाई पड़ना। बादल चढ़ना=दे० 'बादल उठना'। बादल गरजना=मेघों के संघर्ष का घोर शब्द। घरघराहट की आवाज जो बादलों से निकलती है। बादल घिरना=मेघों का चारों ओर छाना। बादल फटना=मेघों का घटा के रूप में फैला न रहना, तितर बितर हो जाना। बादल छँटना=मेघों का खंड खंड होकर हट जाना। आकाश स्वच्छ होना। बादलों में थिगली लगाना=असंभव काम करना। कठिन काम कर डालना। बादलों से बातें करना=बहुत ऊँचा उठना।

२. एक प्रकार का पत्थर जो दूधिया रंग का होता है और जिसपर बैगनी रंग की बादल की सी धारियाँ पड़ी होती हैं। यह राजपूताने मे निकलता है।

बादला—संज्ञा पुं० [हिं० पतला ?] सोने या चाँदी का चिपटा चमकीला तार जो गोटे बुनने या कलाबत्तू बटने के काम में आता है। कामदानी का तार। यह तार एक तोले में ५०० गज के लगभग होता है। उ०—करि असनान पन्हावा जोरा। तास बादला जोत अँजोरा।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २७२।

बादली‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बादल] दे० 'बदली'।

बादशाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०, तुल० सं० पातशासक] १. तख्त का मालिक। राजसिंहासन पर बैठनेवाला। राजा। शासक। २. सबसे श्रेष्ठ पुरुष। सरदार। सबसे बड़ा आदमी। जैसे, झूठों के बादशाह। ३. स्वतंत्र। मनमाना करनेवाला। जैसे, तबीयत का बादशाह। ४. शतरंज का एक मुहरा जो किश्त लगने के पहले केवल एक बार घोड़े की चाल चलता है और दोड़धूप से बचा रहता है। ५. ताश का एक पत्ता जिसपर बादशाह की तसवीर बनी रहती है।

बादशाहजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादशाहजादह्] राजकुमार। कुँवर। कुमार।

बादशाहजादी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बादशाहजादी] राजकुमारी।

बादशाहत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. राज्य। राज्याधिकार। २. शासन। हुकूमत।

बादशाहपसंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. खशखाशी रंग। दिलबहार हलका आसमानी रंग। २. एक प्रकार का आम। ३. एक प्रकार का चावल।

बादशाही[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. राज्य। राज्याधिकार। २. शासन। हुकूमत। ३. मनमाना व्यवहार।

बादशाही[2]—वि० १. बादशाह का। राजा का। जैसे, बादशाही झंडा। २. राजाओं के योग्य।

यौ०—बादशाही खर्च=अत्यधिक व्यय। बहुत अधिक खर्च। फिजूल खर्च। बादशाही फरमान या हुक्म=राजाज्ञा। राज्यादेश।

बादहवाई—क्रि० वि० [फ़ा० बाद+अ० हवा] यों ही। व्यर्थ। फिजूल। निष्प्रयोजन।

बादाम—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष और उसका फल।

विशेष—यह वृक्ष पश्चिमी एशिया में अधिकता से और पश्चिमी भारत (काश्मीर और पंजाब आदि) मे कहीं कहीं होता है। इसमें एक प्रकार के छोटे छोटे फल लगते हैं जिनके ऊपर का छिलका बहुत कड़ा होता है और जिसके तोड़ने पर लाल रंग के एक दूसरे छिलके मे लिपटी हुई सफेद रंग की गिरी रहती है। यह गिरी बहुत मीठी होती है और प्रायः खाने के काम मे आती है। यह पौष्टिक भी होती है और मेवों में गिनी जाती है। इसका व्यवहार औषधों में और पकवानों आदि को स्वादिष्ट करने में होता है। इसकी एक और जाति होती है जिसका फल या गिरी कड़वी होती है। दोनों प्रकार के बादामों में से एक प्रकार का तेल निकलता है जो औषधों, सुगंधियों और छोटी मशीनों के पुरजों आदि में डालने के काम में आता है। इस वृक्ष में से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है जो फारस से हिंदुस्तान आता और यहाँ से युरोप जाता है। वैद्यक में बादाम (गिरी) गरम, स्निग्ध, वातनाशक, शुक्रवर्धक, भारी और सारक माना गया है और इसका तेल मृदुरेची, वाजीकर, मस्तक-रोग-नाशक पित्तनाशक, वातघ्न, हलका, प्रमेहकारक और शीतल कहा गया है।

यौ०—बादाम पाक=बादाम और ओषधियों के संमिश्रण

से निर्मित एक बलकारक श्रोषधि। बादामफरोश = बादाम बेचनेवाला।

बादामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादामह्] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

बादामी[1]—वि० [फ़ा० बादाम + ई (प्रत्य०)] १. बादाम के छिलके के रंग का। कुछ पीलापन लिए लाल रंग का। २. बादाम के आकार का। अंडाकार। जैसे, बादामी आँख। ३. बादाम के योग से निर्मित। जैसे, बादामी बर्फी।

बादामी[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का धान। २. बादाम के आकार की एक प्रकार की छोटी डिबिया जिसमें गहने आदि रखते हैं। ३. वह ख्वाजासरा जिसकी इंद्रिय बहुत छोटी हो। ४. एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो पानी के किनारे होती है और मछलियाँ खाती है। किलकिला। वि० दे० 'किलकिला'। ५. बादाम के रंग का घोड़ा। उ०—लीले लक्खी, लक्ख बीज, बादामी चीनी।—सूदन (शब्द०)। ६. बादाम के छिलके की तरह का रंग।

यौ०—बादामी आँख = बादाम की तरह छोटी आँख।

बादि—अव्य० [सं० वादि, हिं० बादी (हठ करके)] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फिजूल। निष्फल। उ०—सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।—तुलसी (शब्द०)। २. बिना। छोड़कर। उ०—बादि हरि नाम कोऊ काज नाहिं अंत कै।—केशव० अमी०, पृ० १२।

बादित(पु)—वि० [सं० वादित] बजाया हुआ।

बादित्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वादित्र] वाद्य। बाजा। उ०—हज्जार वीस बादित्य साथ, सब जुरे आय रणधीर हाथ।—ह० रासो, पृ० ८१।

बादिया—संज्ञा पुं० [देश०] लुहारों का पेंच बनाने का एक औजार।

बादिसाह†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादशाह] बादशाह। राजा। उ०—नो नो लाष फोजाँ बादिसाहाँ कै बताया।—शिखर०, पृ० १८।

बादी[1]—वि० [फ़ा०] १. वात संबंधी। वायु संबंधी। २. वायुविकार संबंधी। जैसे बादी बवासीर। ३. वायु कुपित करनेवाला, वात का विकार उत्पन्न करनेवाला। जैसे,—बैंगन बहुत बादी होता है।

बादी[2]—संज्ञा स्त्री० शरीरस्थ वायु। बात। वातविकार। वायु का दोष। जैसे,—उनका शरीर बादी से फूला है।

बादी[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० वादी] घाटी। वादी। उ०—इस बादिये खुशनुमा के अंदर लहराता है धान का समंदर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४५५।

बादी[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़ी] बाजीगर। साँप पकड़नेवाला। उ०—औरंग भगे अथाह बाई बध बादी बणे।—नट०, पृ० १७२।

बादी[5]—संज्ञा पुं० [सं० वादिन्, वादी] १. किसी के विरुद्ध अभियोग लानेवाला। मुद्दई। २. प्रतिद्वंद्वी। शत्रु। बैरी।

विशेष—दे० 'वादी'। ३. राग में प्रधान रूप से लगनेवाला स्वर जिसके कारण राग शुद्ध होता है।

बादी[6]—संज्ञा पुं० [देश०] लुहारों का सिकजी करने का औजार।

बादीगर†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाज़ीगर] इंद्रजाल करनेवाला। बाजीगर। उ०—चापड़े मचै रिण निसाचर बनचरी। बीर कौतिक रचे जाण बादीगरी।—रघु० रू०, पृ० १८३।

बादुर—संज्ञा पुं० [देश०] चमगादड़। चमचटक। उ०—लटकि बादुर हुआ पटकि जम मारिया चरन भौ चारिया चरख नाधा।—संत० दरिया, पृ० ८४।

बादूना—संज्ञा पुं० [देश०] एक औजार जो घेवर नाम की मिठाई बनाने के काम मे आता है।

विशेष—यह साँचा चढ़ाने के कालबूत के समान लोहे या पीतल का बना होता है। इसे भट्ठी के मुँह पर रखकर उसमें घी भरते और पतला मैदा डाल देते हैं। मैदा पक जाने पर उसे चीनी की चाशनी में पाग लेते हैं।

बाध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाधा। रुकावट। अड़चन। २. पीड़ा। कष्ट। ३. कठिनता। मुश्किल। ४. अर्थ की असंगति। मानी का ठीक न बैठना। व्याघात। जैसे,—जहाँ वाच्यार्थ लेने से अर्थ में बाधा पड़ती है वहाँ लक्षणा से अर्थ निकाला जाता है। ५. न्याय में वह पक्ष जिसमें साध्य का अभाव सा हो। ६. विरोध। खिलाफत (को०)। ७. खडन (को०)।

बाध†[2]—संज्ञा पुं० [सं० बद्ध] [स्त्री० बाधी] मूँज की रस्सी।

बाधक[1]—वि० [सं०] १. प्रतिबंधक। रुकावट डालनेवाला। रोकनेवाला। विघ्नकर्ता। उ०—तो हम उनके बाधक क्यों हों।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६८। २. दुःखदायी। हानिकारक। हिंसक। मार डालनेवाला। उ०—बाधक बधिक बिलोकि पराही।—मानस।

बाधक[2]—संज्ञा पुं० स्त्रियों का एक रोग जिसमे उन्हें संतति नहीं होती या संतति होने में बड़ी पीड़ा या कठिनता होती है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार चार प्रकार के दोषों से बाधक रोग होता है—रक्तमाद्री, षष्ठी, अंकुर और जलकुमार। रक्तमाद्री मे कटि, नाभि, पेड़ू आदि में वेदना होती है और ऋतु ठीक समय पर नही होता। षष्ठी बाधक में ऋतुकाल में आँखों, हथेलियों और योनि में जलन होती है, और रक्तस्राव लाल युक्त (झाग मिला) होता है तथा ऋतु महीने में दो बार होता है। अंकुर बाधक में ऋतुकाल में उद्वेग रहता है, शरीर भारी रहता है। रक्तस्राव बहुत होता है। नाभि के नीचे शूल होता है तीन तीन चार चार महीने पर ऋतु होता है, हाथ पैर में जलन रहती है। जलकुमार में शरीर सूज जाता है, बहुत दिनों में ऋतु हुआ करता है, सो भी बहुत थोड़ा; गर्भ न रहने पर भी गर्भ सा मालुम होता है। इन चारो बाधकों से प्रायः गर्भ नहीं रहता।

बाधकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाधा।

बाधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० बाधित, बाधनीय, बाध्य] १. रुकावट या विघ्न डालना। २. पीड़ा पहुँचाना। कष्ट देना।

बाधना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० बाधन] बाधा डालना। रुकावट डालना। रोकना। उ०—(क) सुमिरत हरिहि सापगति बाधी। सहज विमल मन लागि समाधी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) देखत ही आधे पल बाधी जात बाधा सब रावाजू की रसना नुरूप की सी रानी है।—केशव (शब्द०) २. विघ्न करना। बाधा डालना। उ०—(क) काम सुभासुभ तुमहिं न बाधा। अब लगि तुमहिं न काहू साधा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दुख सुख ये बाधैं जेहि नाही तेहि तुम जानौ ज्ञानी। नानक मुकुत ताहि तुम मानो यहि विधि को जो प्राणी।—नानक (शब्द०)।

बाधना(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० वर्द्धन, प्रा० वड्ढण] अभिवृद्ध होना। बढ़ना। उ०—(क) बलि नंद अति आनद बाध्यो चढ़ि हिंडोरे गावई। —नंद० ग्रं०, पृ० ३७५। (ख) मित मित बाधे रिध मिले जय मित दास सुजाण।—रघु० रू०, पृ० ६।

बाधयिता—संज्ञा पु०, वि० [सं० बाधयितृ] बाधा देनेवाला। बाधक [को०]।

बाधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विघ्न। रुकावट। रोक। अड़चन। उ०—द्विज भोजन मख होम सराधा। सब के जाइ करहु तुम बाधा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—होना।

मुहा०—बाधा करना, डालना या देना=रुकावट खड़ी करना। विघ्न उपस्थित करना। बाधा पड़ना=रुकावट खड़ी होना। विघ्न उपस्थित होना। बाधा पहुँचना=दे० 'बाधा पड़ना'।

२. संकट। कष्ट। दुःख। पीड़ा। उ०—(क) छुधा व्याधि बाधा भइ भारी। वेदन नहिं जानै महतारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोइ। जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुति होइ।—बिहारी (शब्द०)। ३. भय। डर। आशंका। उ०—(क) मारेसि निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आजु ही प्रात इक चरित देख्यो नयो तबहि ते मोहिं यह भई बाधा।—सूर (शब्द०)।

बाधाहर—वि० [सं०] बाधाओं को दूर करनेवाला। उ०—भर उद्दाम वेग से बाधाहर तू कर्कश प्राण, दूर कर दे दुर्बल विश्वास। —अनामिका, पृ० ६८।

बाधित[1]—वि० [सं०] १. जो रोका गया हो। बाधायुक्त। २. जिसके साधन में रुकावट पड़ी हो। ३. जिसके सिद्ध होने या प्रमाणित होने मे रुकावट हो। जो तर्क से ठीक न हो। असंगत। ४. ग्रस्त। गृहीत। प्रभावहीन। जैसे,—व्याकरण में वह सूत्र जो किसी अपवाद या बाधक सूत्र के कारण किसी स्थलविशेष मे न लगता हो।

बाधित[2]—वि० [सं० वर्द्धित, हिं० बाधना (=बढ़ना)] (किसी के प्रति) आभारी या अनुगृहीत।

बाधिता—संज्ञा पु० वि० [सं० बाधितृ] दे० 'बधयिता' [को०]।

बाधिर्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहिरापन।

बाधी[1]—वि० [सं० बाधिन्] १. बाधा करनेवाला। बाधक। २. कष्ट या पीड़ा देनेवाला [को०]।

बाधी(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] दे० 'व्याधि', 'त्रिआधि'। उ०—बोलै झूठ महा अपराधी। धर्म छुटै उठि लागै बाधी। —भक्ति प०, पृ० २१५।

बाध्य—वि० [सं०] १. जो रोका या दबाया जानेवाला हो। २. विवश किया जानेवाला। मजबूर होनेवाला। ३. रद्द या नष्ट करने लायक [को०]।

बान[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. शालि या जड़हन को रोपने के समय उतनी पेड़ियाँ जो एक साथ लेकर एक थान में रोपी जाती हैं। जड़हन के खेत मे रोपी हुई धान की जुरी।

क्रि० प्र०—बैठाना।—रोपना।

२. एक बहुत ऊँचा और मजबूत लकड़ीवाला पहाड़ी वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष अफगानिस्तान में तथा हिमालय में आसाम तक सात हजार से नौ हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। इसके पेड़ बहुत ऊँचे होते हैं और यद्यपि इसका पतझड़ नहीं होता तो भी वसंत ऋतु में इसकी पत्तियाँ रंग बदलती हैं। इसकी लकड़ी ललाई लिए सफेद रंग की होती है और बहुत मजबूत होती है। इसका वजन प्रति घनफुट तीस सेर तक होता है और यह घर और खेती के सामान बनाने में काम आती है। इसकी छड़ियाँ भी बनती हैं। पत्तियाँ और छाल चमड़े सिझाने के काम आती है।

बान[2]—संज्ञा पुं० [सं० बाण] १. बाण। तीर। २. एक प्रकार की आतशबाजी जो तीर के आकार की होती है। इसमें आग लगते ही यह आकाश की ओर बड़े वेग से छूट जाती है। ३. समुद्र या नदी की ऊँची लहर। ४. वह गुंबदाकार छोटा डंडा जिससे धुनकी (कमान) की ताँत को झटका देकर रुई धुनते हैं। ५. मूँज की बटी हुई रस्सी। बाध। ६. बाना नाम का हथियार जो फेंककर मारा जाता है। उ०—गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु। उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन विचारि बिसेखु।—तुलसी (शब्द०)। ७. स्वर्ग।—अनेकार्थ०, पृ० १४५।

बान[3]—संज्ञा पुं० [देश०] गोला। उ०—तिलक पलीता माथे दमन बज्र के बान। जेहि हेरहिं तेहि मारहिं चुरकुस करहिं निदान।—जायसी (शब्द०)।

बान[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनना] १. बनावट। ढंग। आकार। उ०—सकट को बान बनायो ऐसो। सुंदर अर्धचंद्र होइ जैसो।—नंद० ग्रं०, पृ० २५७। २. सजधज। वेश विन्यास। उ०—सब अंग छीटै लागी नीको बन्यो बान।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६४। ३. टेव। आदत। अभ्यास। उ०—भक्त बछल है बान तिहारो गुन औगुन न विचारो।—गुलाल०, पृ० ४५।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।

बान[5]—संज्ञा पुं० [सं० वर्ण] रंग। आब। कांति। उ०—कनकहि बान चढ़ै जिमि दाहे। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहे।—तुलसी (शब्द०)।

बानइत[1]—वि० [हिं० बाना+इत (प्रत्य०)] बाना चलाने या खेलनेवाला। दे० 'बानैत'।

बानइत²—वि० [हिं० बान+इत (प्रत्य०)] १. बाण चलानेवाला। उ०—रोपे रन रावन बुलाए बीर बानइत, जानत जे रीति सब सुजुग समाज की।—तुलसी (शब्द०)। २. योद्धा। वीर। बहादुर। उ०—लोकपाल महिपाल बान बानइत दसानन सके न चाप चढ़ाई।—तुलसी (शब्द०)।

बानक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनाना] १. वेष। भेस। सजधज। उ०—या बानक उपमा दैवे को सुकवि कहा टकटोहै। देखत अंग थके मन में शशि कोटि मदनछबि मोहै।—सूर (शब्द०)। (ख) आपने अपाने थल, आपने अपाने साज आपनी अपानी वर बानक बनाइए।—तुलसी (शब्द०)। २. एक प्रकार का रेशम जो पीला या सफेद होता है। (यह तेहुरी से कुछ घटिया होता है और रामपुर हाट बंगाल से आता है।) ३. संयोग। अवसर। साज। उ०—सहज भाव की भेट अचानक बिधना सदा बनावत बानक।—घनानंद, पृ० २६०।

बानगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बयाना+गी (प्रत्य०)] किसी माल का वह अंश जो ग्राहक को देखने के लिये निकालकर दिया या भेजा जाय। नमूना।

बाननाⓅ¹—क्रि० स० [सं० वर्णन, प्रा० वण्णण] वर्णन करना। कहना। उ०—कर्मठ ज्ञानी ऐंचि अर्थ को अनरथ बानत।—भक्तमाल (प्रि०), पृ० ५३२।

बानना†²—क्रि० स० [सं० बन्धन] दे० 'बाँधना'। उ०—तब वसुदेव देवकी आनि। पाइनि सुदृढ़ शृंखला बानि।—नंद० ग्रं०, पृ० २२३।

बनना³—क्रि० स० [हिं० बान(=व्याज)+ना (प्रत्य०)] बनाना। ठानना। उ०—तब नहिं सोचै इहि विधि बानत। अब हो नाथ बुरी क्यों मानत।—नंद० ग्रं० पृ० २८२।

बानबे¹—वि० [सं० द्विनवति, प्रा० बाणवइ] जो गिनती में नब्बे से दो अधिक हो। दो ऊपर नब्बे।

बानर†—संज्ञा पुं० [सं० वानर] [स्त्री० बानरी] बंदर।

बानरेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० वानर+इन्द्र] १. सुग्रीव। उ०—बानरेंद्र तब ही हँसि बोल्यो।—केशव (शब्द०)। २. हनुमान।

बाना¹—संज्ञा पुं० [हिं० बनाना या सं० वर्ण (=रूप)] १. पहनावा। वस्त्र। पोशाक। वेशविन्यास। भेस। उ०—(क) बाना पहिरे सिंह का चलै भेंड़ की लार। बोली बोलै स्यार की कुत्ता खाए फार।—कबीर (शब्द०)। (ख) विविध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।—तुलसी (शब्द०)। (ग) यह है सुहाग का अचल हमारे बाना। असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. अंगीकार किया हुआ धर्म। रीति। चाल। स्वभाव। उ०—(क) राम भक्त वत्सल निज बानो। जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहिं रंक होय कै रानो।—सूर (शब्द०)। (ख) जासु पतितपावन बड़ बाना। ग श्रुति संत पुराना।—तुलसी (शब्द०)।

बाना²—संज्ञा पुं० [सं० बाण] १. एक हथियार जो हाथ लंबा होता है।

विशेष—यह सीधा और दुधारा तलवार के आकार का होता है। इसकी मूठ के दोनो ओर दो लट्टू होते हैं जिनमें एक लट्टू कुछ आगे हटकर होता है। इसे बानइत पकड़कर बड़ी तेजी से घुमाते हैं।

२. साँग या भाले के आकार का एक हथियार। उ०—(क) रोह मृगा संशय वह हाँकै पारथ बाना मेलै। सायर जरै सकल बन दाहै, मच्छ अहेरा खेलै।—कबीर (शब्द)। (ख) बाने फहराने घहराने घंटा गजन के नाहीं ठहराने राव राने देस देस के।—भूषण (शब्द०)।

विशेष—यह लोहे का होता है और आगे की ओर बराबर पतला होता चला जाता है। इसके सिरे पर कभी कभी झंडा भी बाँध देते हैं और नोक के बल जमीन में गाड़ भी देते हैं।

बाना³—संज्ञा पुं० [सं० वयन (=बुनना)] १. बुनावट। बुनन। बुनाई। २. कपड़े की बुनावट जो ताने में की जाती है। ३. कपड़े की बुनावट मे वह तागा जो आड़े बल ताने में भरा जाता है। भरनी। उ०—सूत पुराना जोड़ने जेठ घिनत दिन जाय। बरन बीन बाना किया जुलहा पड़ा भुलाय।—कबीर (शब्द०)। ४. एक प्रकार का बारीक महीन सूत जिससे पतंग उड़ाई जाती है। ५. वह जुताई जो खेत में एक बार या पहली बार की जाय।

बाना⁴—क्रि० स० [सं० व्यापन] किसी सुकड़ने और फैलनेवाले छेद को फैलाना। आकुंचित और प्रसारित होनेवाले छिद्र को विस्तृत करना। जैसे, मुँह बाना। उ०—(क) पुत्र कलत्र रहैं लव लाए। जंबुक नाईं रहैं मुँह बाए।—कबीर (शब्द०)। (ख) हा हा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, परी न छार मुँह बायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६४। (ग) व्यास नारि तबही मुख बायो।। तब तनु तजि मुख माहिं समायो।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—(किसी वस्तु के लिये) मुँह बाना=लेने की इच्छा करना। पाने का अभिलाषी होना।

बनात—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाना] एक प्रकार का मोटा चिकना ऊनी कपड़ा।

बानारसीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० वाराणसी, वर्ण वि०>वाणारसी हिं० बनारस+ई (प्रत्य०)] उ०—नाभी कुंडर बानारसी। सौंह को होइ मीचु तहँ बसी।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १९६।

बानावरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाण+फा आवरी (प्रत्य०)] बाण चलाने की विद्या या ढंग। उ०—सुनि भालु कपि धाए कुपर गहि देखि सो मारन लगा। लखि तासु बानावरी सब अकुलाइ मरकट दल भगा।—रघुनाथ दास (शब्द०)।

बानि¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनना या बनाना] १. बनावट। सजधज उ०—वा पटपीत की फहरानि। कर धर चक्र चरन की धावनि नहिं बिसरति वह बानि।—सूर (शब्द०)। २. टेव। आदत। स्वभाव। अभ्यास। उ०—(क) बन ते भगि बिहड़े पर खरहा अपनी बानि। बेदन खरहा [illegible] कहै को खरहा को जानि।—कबीर (

पूतना बाँधे बलि सो दानि। सूपनखा ताड़का सँहारी श्याम सहज यह बानि—सूर (शब्द०)। (ग) थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि। तुमहूँ कान्ह मनो भए आजु कालि के दानि।—बिहारी (शब्द०)।

बानि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ण] रंग। चमक। आभा। कांति। उ०—(क) सुवा! बानि तोरी जस सोना। सिंहलदीप तोर कस लोना।—जायसी (शब्द०)। (ख) हीरा भुजताबीज में सोहत है यहि बानि। चद लखन मुखमीत जनु लग्यो भुजा सन आनि।—रसनिधि (शब्द०)।

बानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वाणी] बाणी। वचन। उ०—करति कछु न कानि बकति है कटु बानि निपट निलज बैन बिलखहूँ।—सूर (शब्द०)।

बानिक[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्णक या हिं० बनना] वेश। भेस। सजधज। बनाव सिंगार। उ०—(क) बानिक तैसी बनी न बनावत केशव प्रत्युत ह्वै गइ हानी।—केशव (शब्द०)। (ख) यो बनि बानिक सो पदमाकर आए जु खेलन फाग तो खेलो।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) यहि बानिक मो मन बसो सदा बिहारीलाल।—बिहारी (शब्द०)।

बानिक(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० वणिक] दे० 'वणिक'। उ०—नयर मध्य कोटीस बसै बानिक अनंत लछि।—पृ० रा०, २५। १७३।

बानिज—संज्ञा पुं० [सं० वाणिज] बनिया। वाणिज। उ०—एक आँख आज के बानिज की पराधीन होकर उसपर पड़ी।—बेला, पृ० ५३।

बानिज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वाणिज्य, प्रा० वाणिज्ज] दे० 'वाणिज्य'। उ०—बानिज्ज विनय भाषित्त देस।—पृ० रा०, १।७३४।

बानिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनी (=बनिया)] बनिये की स्त्री।

बानिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बानिन'। उ०—बानिनि चली सेंदुर दिए माँगा।—जायसी ग्रं०, पृ० ८१।

बानिया(पु)—स्त्री० [सं० वणिक्] [स्त्री० बानिन] एक जाति का नाम जो व्यापार, दूकानदारी तथा लेन देन का कार्य करती है। वैश्य। उ०—बैठ रहे सो बानियाँ, खड़ा रहै सो ग्वाल। जागत रहै सो पाहरू तीनहुँ खोयो काल।—कबीर (शब्द०)।

बानी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वाणी] १. वचन। मुँह से निकला हुआ शब्द। २. मनौती। प्रतिज्ञा। उ०—रह्यो एक द्विज नगर कहुँ सो असि बानी मानि। देहु जो मोहि जगदीस सुत तो पूजौं सुख मानि।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—बानी मानना = प्रतिज्ञा करना। मनौती मानना।

३. सरस्वती। ४. साधु महात्मा का उपदेश या वचन। जैसे,—कबीर की बानी, दादू की बानी। दे० 'वाणी'।

बानी[2]—संज्ञा पुं० [सं० वर्ण] १. वर्ण। रंग। आभा। दमक। जैसे, बारहबानी का सोना। उ०—उतरहिं मेघ चढ़हिं लै पानी। चमकहिं मच्छ बीजु की बानी।—जायसी (शब्द०)। २. एक प्रकार की पीली मिट्टी जिससे मिट्टी के बरतन पकाने के पहले रँगते हैं। कपसा।

बानी[3]—संज्ञा पुं० [सं० वणिक्] बनिया। उ०—(क) ब्राह्मण छत्री औरो बानी। सो तीनहु तो कहल न मानी।—कबीर (शब्द०)। (ख) इक बानी पूरब धनी भयो निर्धनी फेरि।—(शब्द०)।

बानी[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'वाणिज्य'। उ०—अपने चलन सो कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी (शब्द०)।

बानी[5]—संज्ञा पुं० [अ०] १. बुनियाद डालनेवाला। जड़ जमानेवाला। २. आरंभ करनेवाला। चलानेवाला। प्रवर्तक।

बानैत[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बान+ऐत (प्रत्य०)] १. बाना फेरनेवाला। २. बाण चलानेवाला। तीरंदाज। ३. योद्धा। सैनिक। वीर। उ०—मानहुँ मेघ घटा अति गाढ़ी। बरसत बान बूँद सेनापति महानदी रन बाढ़ी। जहाँ बरन बादर बानैत अरु दामिनि करि करि वार। उड़त धूर धुरवा धुर हीसत सूल सकल जलधार।—सूर (शब्द०)। (ख) विविध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।—तुलसी (शब्द०)।

बानैत[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बाना] बाना धारण करनेवाला।

बाप—संज्ञा पुं० [सं० वप्ता, प्रा० बप्पा, बप्प, अथवा सं० वापक[1] (=बीज बोनेवाला)] पिता। जनक। उ०—(क) प्रथमै यहाँ पहुँचते परिगा सोक सँताप। एक अचंभो औरो देखा बेटी ब्याहै बाप।—कबीर (शब्द०)। (ख) बाप दियो कानन आनन सुमानन सों बैरी भो दसानन सो तीय को हरन भो।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बाप दादा=पूर्वज। पूर्वपुरुष। बापदादा बखानना = पूर्वजों को गाली देना या उनकी निंदा करना। बाप माँ = रक्षक। पालन करनेवाला। बाप रे=दुःख, भय या आश्चर्यसूचक वाक्य। बाप बनाना = (१) मान करना। आदर करना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना। बाप तक जाना = बाप की गाली देना। बाप का = पैतृक।

बापड़ा—वि० [प्रा० बप्पुड, गुज० बापडुँ, हिं० बपुरा, बापुरा] [वि० स्त्री० बापड़ी] दे० 'बापुरा'। उ०—जाके गण गंधर्व ऋषि बापड़े ठाडिया। गावत आछै सर्वशास्त्र बहुरूप मंडलीक आछे।—दक्खिनी०, पृ० ३०।

बापरना†—क्रि० स० [सं० व्यापारण] व्यवहृत करना। प्रयोग में लाना।

बापा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाप्पा'।

बापिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वापिका] दे० 'वापिका'। उ०—बन उपवन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा।—तुलसी (शब्द०)।

बापी—संज्ञा स्त्री० [सं० वापी] दे० 'वापी'।

बापु‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बाप'।

बापुरा—वि० [सं० बर्बर (=तुच्छ, मूढ़ ?) या देश०] [स्त्री० बापुरी] १. तुच्छ। जिनकी कोई गिनती न हो। उ०—तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहाँ तुम त्रिभुवनपति गोपाल। कहाँ बापुरो नर शिशुपाल।—सूर (शब्द०)। २. दीन। बेचारा। उ०—संसय साउज देह मे संगहि खेल जुआरि। ऐसा घायल बापुरा जीवन मारै झारि।—कबीर (शब्द०)।

बापू—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'बाप'। २. दे० 'बाबू'। ३. महात्मा गांधी का एक आदरसूचक संबोधन।

बाप्पा—संज्ञा पुं० [देश०] चारणों द्वारा वर्णित इतिहास के अनुसार बल्लभी वंश के महाराज गुहादित्य से आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न नागादित्य का पुत्र।

विशेष—जब यह छोटा था तब इसके पिता को भीलों ने मार डाला था। इसकी रक्षा इसकी माता ने और ब्राह्मण पुरोहितों ने की थी। यह नागोद मे ब्राह्मणों की गाएँ चराया करता था, जहाँ इसको हारीत ऋषि और एकलिंग शिव का दर्शन हुआ था और हारीत ने उसे शिव की दीक्षा दी थी। इसने चित्तौर जाकर वहाँ अपना अधिकार जमाया और पश्चिम के देशों का भी विजय किया। मेवाड़ के राजवंश का यह आदिपुरुष था। इसका जन्मकाल टाड साहब ने सं० ७६९ वि० या ७४४ ई० लिखा है।

बाफा—संज्ञा स्त्री० [सं० वाष्प] कोई तरल पदार्थ खौलाने से उसमें से उठा हुआ धूएँ के आकार का पदार्थ। विशेष—दे० 'भाप'।

बाफकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बाष्पक] अश्रु। आँसु। उ०—मिलत परस्पर दोउब रानिय। बाफक भीज बसन रस सानिय।—प० रा०, पृ० १२२।

बाफता संज्ञा पुं० [फ़ा० बाफ़्तह्, बाफ्तह्] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जिसपर कलाबत्तू और रेशम की बूटियाँ होती हैं। यह दोरुखा भी होता है। उ०—सुंदर जाके बाफता खासा मलमल ढेर। ताके आगे चौसई आनि धरै बहुतेर।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७।

बाब¹—संज्ञा पुं० [अ०] १. पुस्तक का कोई विभाग। परिच्छेद। अध्याय। उ०—दरीचा तूं इस बाब का मुज पो खोल। मिल उस यार सूं क्यूं गहूँ मुज कूं बोल।—दक्खिनी०, पृ० ८४। २. मुकदमा। ३. प्रकार। तरह। ४. विषय। ५. आशय। मतलब। अभिप्राय। ६. द्वार। दरवाजा।

बाबⓅ²—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु] वायु। पवन। उ०—दिण परघो दिस पालटइ सखी बाब फरूकती जाइ संसार।—बी० रासो, पृ० ६८।

बाबची—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'बकुची'।

बाबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. संबंध। २. विषय। जैसे,—इस आदमी की बाबत तुम क्या जानते हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकरण का चिह्न 'में' लुप्त करके अव्ययवत् ही होता है।

बाबननेट—संज्ञा स्त्री० [अं० बाबिननेट] एक प्रकार का जालीदार कपड़ा जिसमें गोल गोल षट्कोण छोटे छोटे छेद होते हैं। यह मसहरी आदि के काम आता है।

बावर¹Ⓟ—वि० [सं० वातुल] दे० 'बाउर'। उ०—आपुहि बावर आपु सयाना। हृदय बसु तेहि राम न जाना।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० १९२।

बाबर²—संज्ञा पुं० [तु० बाबुर, फा० बाबर] पहला मुगल सम्राट् जिसने राणा साँगा को पराजित किया था। हुमायूँ इसका पुत्र था।

बाबर³—वि० [सं० बर्बर] निम्न जाति का। क्रूर। अंत्यज।

बाबरची—संज्ञा पुं० [फ़ा० बावरची] दे० 'बावरची'।

यौ०—बाबरचीखाना=पाकशाला।

बाबरलेट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाबननेट] दे० 'बाबननेट'।

बावरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बावला'। उ०—कोउ बावरे भए गुलालहिं गगन उड़ावत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८९५।

बाबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बबर (=सिंह)] लंबे लंबे बाल जो लोग सिर पर रखते हैं। जुल्फ। पट्टा।

बाबल†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाबुल'। उ०—बावल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह। मूरख बैद मरम नहिं जाने, करक कलेजे माँह।—संतबानी०, भा० २, पृ० ७१।

बाबहियाⓅ†—संज्ञा पुं० [अप० बप्पीहा, राज० बाबीहा, पपीहा, पपइया] दे० 'पपीहा'। उ०—(क) बाबहियउ आसाढ़ जिम विरहणि करइ विलाप।—ढोला०, दू० २६। (ख) बाबहिया चढि डूंगरे चढ़ि ऊँचइरी पाज।—ढोला०, दू० २६। (ग) बाबहियउ पिउ पिउ करइ कोयल सुरंगइ साद।—ढोला०, दू० २५२।

बाबा¹—संज्ञा पुं० [तु० तुल० अप० बप्पा, बब्बा] १. पिता। उ०—(क) दादा बाबा भाई के लेखे चरन होइगा बंधा। अब की बेरियाँ जो न समुझे सोई है अंधा।—कबीर (शब्द०)। (ख) बैठे संग बाबा के चारों भइया जेंवन लागे। दसरथ राय आपु जेंवत हैं अति आनँद रस पागे।—सूर(शब्द०)। २. पितामह। दादा। ३. साधु संन्यासियों के लिये एक आदरसूचक शब्द। जैसे, बाबा रामानंद। ४. बूढ़ा पुरुष। उ०—केशव केशन अस करी, बैरी हूँ न कराहिं। चंद्रवदन मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं।—केशव (शब्द०)। ५. एक संबोधन जिसका व्यवहार साधु फकीर करते हैं। जैसे,—भला हो, बाबा।

विशेष—झगड़े या बातचीत में जब कोई कोई बहुत साधु या शांत भाव प्रकट करना चाहता है और दूसरे से न्यायपूर्वक विचार करने या शांत होने के लिये कहता है तब वह प्रायः

इस शब्द से संबोधन करता है। जैसे,—(क) बाबा! जो कुछ तुम्हारा मेरे जिम्मे निकलता हो वह मुझसे ले लो। (ख) एक—अभी थका माँदा आ रहा हूँ फिर शहर जाऊँ? दूसरा—बाबा! यह कौन कहता है कि तुम अभी जाओ?

बाबा[2]—संज्ञा पुं० [अ०] लड़कों के लिये प्यार का शब्द।

बाबार—वि० [सं० बर्बर, प्रा० बब्बर] बर्बर। झगड़ालू। संघर्षप्रिय। उ०—बाबारो वर तुंग खग्ग साहै विरुभाना। लंगी लगरराव अदूघराजी चहुमाना।—पृ० रा०, ६१।१००८।

बाबिल—संज्ञा पुं० [अ०] एशिया खंड का एक अत्यंत प्राचीन नगर।

विशेष—यह नगर फारस के पश्चिम बगदाद से लगभग ६० मील की दूरी पर फरात नदी के किनारे था। ३००० वर्ष पूर्व यह एक अत्यंत सभ्य और प्रतापी जाति की राजधानी था और उस समय सबसे बड़ा नगर गिना जाता था।

बाबी Ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाबा] १. साधु स्त्री। संन्यासिन। उ०—कामी से कुत्ता भला ऋतु सिर खोले काँच। राम नाम जाना नहीं बाबी जाय न बाँच।—कबीर (शब्द०)। २. लड़कियों के लिये प्यार का शब्द।

बाबीहा Ⓤ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बाबहिया'। उ०—जिए पीहे पावस झरइ, बाबीहउ कुरलाइ।—ढोला०, दू० २५१।

बाबुना—संज्ञा पुं० [देश०] पीले रंग का एक पक्षी जिसकी आँख के ऊपर का रंग सफेद, चोंच काली और आँखें लाल होती हैं।

बाबुल[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बाबू] १. बाबू। उ०—घरही में बाबुल! बाढी रारि। अंग उठि उठि लागै चपल नारि।—कबीर (शब्द०)। २. पिता। बाप। उ०—(क) बाबुल जी मैं पैया तोरी लागो अबकी गवन दे डार।—कबीर श०, पृ० ४। (ख) बाबुल मोरा ब्याह करा दो, अनजाया वर लाय।—कबीर श०, पृ० १०१।

बाबुल[2]—संज्ञा पुं० [अ० बाबिल] दे० 'बाबिल'।

बाबू—संज्ञा पुं० [हिं० बाप या बाबा] १. राजा के नीचे उनके बंधु बांधवों या और क्षेत्रीय जमींदारों के लिये प्रयुक्त शब्द। २. एक आदरसूचक शब्द। भलामानुस। उ०—(क) बाबू ऐसी है संसार तुम्हारा ये कलि है व्यवहारा। को अब अनख सहै प्रतिदिन को नाहिन रहनि हमारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) 'आयसु आदेश, बाबू (?) भलो भलो भाव सिद्ध तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि हैं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—आजकल अंगरेजी पढ़े लिखे लोगों के लिये इस शब्द का व्यवहार अधिक होता है।

यौ०—बाबूपन = प्रतिष्ठित या सभ्य या शिक्षित होने का भाव। उ०—हट जाओ सामने से, नहीं तो मारा बाबूपन निकाल दूँगा।—काया०, पृ० २४०। बाबूसाहब = एक आदरसूचक संबोधन।

†३. पिता का संबोधन। बापू।

बाबूड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० बाबू+ड़ा (प्रत्य०)] बाबू के लिये हास्य, व्यंग्य या घृणासूचक शब्द।

बाबूना—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाबूनह्] औषध के काम में आनेवाला एक छोटा पौधा।

विशेष—यह पौधा यूरोप और फारस में होता है। इसको पंजाब में भी बोते हैं। इसका सूखा फूल बाजारों में मिलता है और सफेद रंग का होता है। इसमें एक प्रकार की गंध होती है और इसका स्वाद कड़ुवा होता है। इसके फूल को तेल में डालकर एक तेल बनाया जाता है जिसे 'बाबूने का तेल' कहते हैं। यह पेट की पीड़ा, शूल और निर्बलता को हटाता है। इसका गरम काढ़ा वमन कराने के लिये दिया जाता है और स्त्रियों के मासिक धर्म बंद होने पर भी उपकारी माना जाता है।

बाभन—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण] १ दे० 'ब्राह्मण'। २. दे० 'भूमिहार'

बाभ्रवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

बाभ्रुक—वि० [सं०] [स्त्री० बाभ्रुकी] भूरे वर्ण का। भूरा।

बाम[1]—वि० [सं० वाम] १. दे० 'वाम'। उ०—विधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हीं बावरी।—मानस, २।२००।

बाम[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. अटारी। कोठा। २. मकान के ऊपर की छत। घर के ऊपर का सबसे ऊँचा भाग। घर की चोटी। उ०—तूर पर जैसे किसी वक्त में चमके थी झलक। कुछ सरेबाम से वैसा ही उजाला निकला।—नजीर (शब्द०)। ३. साढ़े तीन हाथ का एक मान। पुरसा।

बाम[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्राह्मी] एक मछली जो देखने में साँप सी पतली और लंबी होती है।

विशेष—इसकी पीठ पर काँटा होता है। यह खाने में स्वादिष्ट होती है और इसमें केवल एक ही काँटा होता है।

बाम[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० बाम] १. दे० 'वामा'। २. स्त्रियों का एक गहना जिसे वे कानों में पहनती है।

बामकी—संज्ञा स्त्री० [सं० वामकी] एक देवी जिसकी पूजा प्रायः जादूगर आदि करते हैं।

बामदेव—संज्ञा पुं० [सं० वामदेव] दे० 'वामदेव'।

बामन—संज्ञा पुं० [सं० वामन] दे० 'वामन'।

मुहा०—बामन होकर भी चाँद छूना = असंभव काम कर दिखाना। छोटा होते हुए भी बड़ा काम कर दिखाना। उ०—मैं समझूँगा कि मैंने बामन होकर भी चाँद को छू लिया।—चुभते० (दो दो०), पृ० ६।

बामा—संज्ञा स्त्री० [सं० वामा] दे० 'वामा'। उ०—जो हठ करहु प्रेमवस बामा।—मानस, २।६२।

बामी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाँबी] दे० 'बाँबी'।

बामी[2]—संज्ञा पुं० [सं० वामिन्] वाममार्गी। अघोरी या अघोरपंथी उ०—(क) कलि की कुचाल निशा खंडे हैं पखंड, तम दुरिगे अभक्त चोर पंथ घोर बामी हैं।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४२०।

(ख) भावति है हरि भक्तनि भारी । निंदत हैं तव नामनि बानी ।—राम चं०, पृ० १६३ ।

बाम्हन†—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण] दे० 'ब्राह्मण' उ०—पहिली पठौनी तीन जने आए नौवा बाम्हन बार ।—कबीर श०, पृ० ४ ।

बायँ—वि० [सं० वाम] १. बायाँ । २. खाली । चूका हुआ । दाँव या लक्ष्य पर न बैठा हुआ ।

मुहा०—बायँ देना = (१) बचा जाना । छोड़ना । (२) तरह देना । कुछ ध्यान न देना । (३) फेरा देना । चक्कर देना । उ०—निंदक न्हाय गहन कुरखेत । अरपै नारि सिंगार समेत । चौसठ कूआँ बायँ दिखावे । तो भी निंदक नरकहि जावे ।—कबीर (शब्द०) ।

बाय¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु] १. वायु । हवा । उ०—(क) एक बान बेग ही उड़ाने जातुधान जात, सूखि गए गात हैं पतौआ भए बाय के ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हित करि तुम पठयो लगे वा बिजना की बाय । टरी तपन तन की तऊ चली पसीना न्याय ।—बिहारी (शब्द०) । २. बाई । वात का कोप जो प्रायः संनिपात होने पर होता है और जिसमें लोग बकते झकते हैं । उ०—जीवन जुर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

बाय²—संज्ञा स्त्री० [सं० वापी] बावली । बेहर । उ०—अति अगाध अति औथरो नदी कूप सर बाय । सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

बाय³—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का लोहे का पीपा जो समुद्र में या उन नदियों मे जिनमें जहाज चलते हैं स्थान स्थान पर लंगर द्वारा बाँध दिए जाते हैं और सिगनल का काम देते हैं । २. दे० 'लाइफबाय' ।

बायकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वाचक, प्रा० वायक] १. कहनेवाला । बतलानेवाला । २. पढ़नेवाला । बाँचनेवाला । उ०—गूँगा बायक अविरल बोल्या राग अनेक उचार ।—राम० धर्म०, पृ० ३६८ । ३. दूत ।

बायकाट—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह व्यवस्थित बहिष्कार जो किसी व्यक्ति, दल या देश आदि को अपने अनुकूल बनाने या उससे कोई काम कराने के उद्देश्य से उसके साथ उस समय तक के लिये किया जाय जबतक वह अनुकूल न हो जाय या माँग पूरी न करे । २. संबंध आदि का त्याग या बहिष्कार ।

बायड़—संज्ञा पुं० [सं० वायु + हिं० ड़ (प्रत्य०)] महक । गंध । वायु का गंधयुक्त उद्गार । उ०—भौरों ने कहा मेरे को तो मेरे ही खान पान की बायड़ आ रही है ।—राम० धर्म०, पृ० १९२ ।

बायन¹—संज्ञा पुं० [सं० वायन] १. वह मिठाई या पकवान आदि जो लोग उत्सवादि के उपलक्ष में अपने इष्टमित्रों के यहाँ भेजते हैं । २. भेंट । उपहार ।

बायन²—संज्ञा पुं० [अ० बयानह्] १. मूल्य का कुछ अंश जो किसी चीज को मोल लेनेवाला उसे ले जाने या पूरा दाम चुकाने से पहले मालिक को दे देता है जिसमें बात पक्की रहे और वह दूसरे के हाथ न बेचे । अगाऊ । पेशगी ।

विशेष—व्यापारी जब किसी माल को पसंद करते हैं और उसका भाव पट जाता है तब मूल्य का कुछ अंश माल के मालिक को पहले से दे देते हैं और शेष माल ले जाने पर या अन्य किसी समय पर देते हैं । इससे माल का मालिक उस माल को किसी दूसरे के हाथ नहीं बेच सकता है । वह धन जो माल पसंद होने और दाम पटने पर उसके मालिक को दिया जाता है बयाना कहलाता है ।

२. मजदूरी का थोड़ा अंश जो किसी को कोई काम करने की आज्ञा के साथ इसलिये दे दिया जाता है जिसमें वह समय पर काम करने आवे, और जगह न जाय ।

मुहा०—बायन देना = छेड़छाड़ करना । उ०—भले भवन अब बायन दीन्हा । पावहुगे फल आपन कीन्हा ।—मानस, १।१३७ ।

बायब—वि० [हिं० बायबी] बाहरी । विरुद्ध । खिलाफ । उ०—संत कहैं सोइ करै राम ना करते बायब ।—पलटू०, भा० १, पृ० १२ ।

बायबरंग—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बायबिडंग' ।

बायबिडंग—संज्ञा पुं० [सं० बिडङ्ग] एक लता जो हिमालय पर्वत, लंका और बर्मा में मिलती है ।

विशेष—इसमें छोटे छोटे मटर के बराबर गोल गोल फल गुच्छों में लगते हैं जो सूखने पर औषध के काम आते हैं । ये सूखे फल देखने में कबाबचीनी की तरह लगते हैं । पर उससे अधिक हलके और पोले होते हैं । वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा कड़वा लिखा है और इसे रूखा, गरम और हलका माना है । यह कृमिनाशक, कफ और वात को दूर करनेवाला, दीपक तथा उदररोग, प्लीहा आदि में लाभकारी होता है ।

पर्या०—भस्मक । मोघा । कैराल । केवल । वेल्लतंडुला । घोषा, इत्यादि ।

बायबिल—संज्ञा स्त्री० [अं० बाइबिल] दे० 'बाइबिल' ।

बायबी—वि० [सं० वायवीय] १. बाहरी । अपरिचित । अजनबी । अज्ञात । गैर । २. नया आया हुआ ।

विशेष—इस देश में जितनी विदेशीय जातियाँ आईं वे सबकी सब प्रायः वायव्य कोण ही से आईं । अतः बायबी शब्द, जो वायवीय का अपभ्रंश है गैर, अज्ञात, अजनबी इत्यादि अर्थों मे रूढ़ हो गया है ।

बायव्य—संज्ञा पुं० [सं० वायव्य] दे० 'वायव्य' ।

बायभिरंगⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बायबिडंग' । उ०—अजमोदा चितकरना, पतरज बायभिरंग । सेंधा सोंठ त्राफला, नासहि मारुत अंग ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

वायरा[१]—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच।

वायरा(ु)[२]—अव्य० [हिं० बाहर, वायल (=खाली)] बिना। उ०—दस दूना दस कूतरा दस पाखती वहंत। हेकण घवला वायरा, दंवाताण करंत।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४५।

वायल[१]—वि० [हिं० वायाँ, वायें] (दाँव) जो खाली न जाय। (दाँव) जो किसी का न पड़े। (जुआरी)।

संयो० क्रि०—जाना।

वायल[२]—संज्ञा पुं० [अं० वायल] झीनी बिनावट का एक प्रकार का बारीक कपड़ा।

वायलर—संज्ञा पुं० [अं०] भाप के इंजन में लोहे आदि धातु का बना हुआ वह बड़ा कोठा जिसमे भाप तैयार करने के लिये जल भरकर गरम किया जाता है।

वायला†—वि० [हिं० वाय+ला (प्रत्य०)] वायु उत्पन्न करनेवाला। वायु का विकार बढ़ानेवाला। जैसे,—किसी को बैगन वायला किसी को बैगन पथ्य।

वायलिन—संज्ञा पुं० [अ० वायलिन] एक विशेष प्रकार का विलायती तंतुवाद्य। इसे बेला या बेहला भी कहते हैं। उ०—वायलिन मुझसे बजा।—कुकुर०, पृ० ६।

वायस[१]—संज्ञा पुं० [सं० वायस] दे० 'वायस'। उ०—लघु वायस वपु धरि हरि संगा।—मानस, ७।७५।

वायस[२]—संज्ञा पुं० [अ० बाइस] वजह। कारण। उ०—नालए रश्क न हो वायसे दरदे सरे मर्ग। गैर के सर पे लगाता है वह संदल घिस्के।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ८३।

वाय स्काउट—संज्ञा पुं० [अं०] विद्यार्थियों का एक प्रकार का सैनिक ढंग से संघटन जिसका प्रधान उद्देश्य विविध प्रकार से समाज की सेवा करना है। जैसे,—कहीं आग लगने पर तुरंत वहाँ पहुँचकर आग बुझाना, मेले ठेले और पर्वो पर यात्रियों को आराम पहुँचाना, चोर उचक्कों को गिरफ्तार करना, आहत या अनाथ रोगियों को यथास्थान पहुँचाना, उनके दवादारू और सेवा सुश्रूषा की की समुचित व्यवस्था करना, आदि। बालचर चमू। २. उक्त चमू या सेना का सदस्य।

वायस्कोप—संज्ञा पुं० [अं०] एक यंत्र जिसके द्वारा पर्दे पर चलते-फिरते हिलते डोलते (विशेषतः मूक) चित्र दिखलाए जाते हैं।

विशेष—इस यंत्र मे एक छोटा सा छेद होता है जिसमे होकर सामने के पर्दे पर बिजली का प्रकाश डाला जाता है, फिर एक पतला फीता जिसे 'फिल्म' कहते हैं चरखी से उस छेद के ऊपर तेजी से फिराया जाता है। यह फीता पतला, पारदर्शक और लचीला होता है। इसपर चित्रों की आकृति भिन्न भिन्न चेष्टा की बनी रहती है जिसके शीघ्रता से फिराए जाने से चित्र चलतेफिरते हिलते डोलते दिखलाई पड़ते हैं।

वायाँ[१]—वि० [सं० वाम] [वि० स्त्री० बाईं] १. किसी मनुष्य या और प्राणी के शरीर के उस पार्श्व में पड़नेवाला जो उसके पूर्वाभिमुख खड़े होने पर उत्तर की ओर हो। 'दहना' का उलटा। जैसे,—बायाँ पैर, बायाँ हाथ, बाईं आँख।

मुहा०—बायाँ देना=(१) किनारे से निकल जाना। बचा जाना जैसे,—रास्ते में कहीं वे दिखाई भी पड़े तो बायाँ दे जाते हैं। (२) जान बूझकर छोड़ना। मिलते हुए का त्याग करना। उ०—बायों दियो विभव कुरुपति को भोजन जाय विदुर घर कीन्हों।—तुलसी (शब्द०)। बायाँ पाँव पूजना=धाक मानना। हार मानना।

२. उलटा। ३. प्रतिकूल। विरुद्ध। खिलाफ। अहित मे प्रवृत्त। उ०—बहुरि बंदि खलगन सति भाये। जे जिनु काज दाहिने बायें।—तुलसी (शब्द०)।

वायाँ[२]—संज्ञा पुं० वह तबला जो बायें हाथ से बजाया जाता है यह मिट्टी या ताँबे आदि धातु का होता है। इसे अकेला भी लोग ताल के लिये बजाते हैं। उ०—जहाँ तबले की थाप, बायें की गमक सुनी वहीं जा धमके।—फिसाना०, भा० १, पृ० ४।

वायु—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु] दे० 'वायु'।

बायें—क्रि० वि० [हिं बायाँ] १. बाईं ओर। २. विपरीत। विरुद्ध।

मुहा०—बायें होना=(१) प्रतिकूल होना। विरुद्ध होना। (२) अप्रसन्न होना। रुष्ट होना।

बारंबार—क्रि० वि०[सं० वारम्वार] बार बार। पुनः पुनः। लगातार।

बार[१]—संज्ञा पुं० [सं० वार] १. द्वार। दरवाजा। उ०—(क) अकिल विहूना आदमी जानै नहीं गँवार। जैसे कपि परवस परयो नाचै घर घर बार।—कबीर (शब्द०)। (ख) सुवर सेन चहुआन सिंग जद्दून नवाई। जनु मदिर बिय बार ढंकि इक बार बनाई।—पृ० रा०, ३५।४७४। (ग) गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोस अपार। डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—दरबार।

२. आश्रयस्थान। ठिकाना। उ०—रहा समाइ रूप वह नाऊँ। और न मिलै बार जहँ जाऊँ।—जायसी (शब्द०)। ३. दरवार।

बार[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० वार] १. काल। समय। उ०—(क) कविरा पूजा साहु की तू जनि करै खुआर। खरी बिगूचनि होयगी लेखा देती बार।—कबीर (शब्द०)। (ख) सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तन प्रगटेसि मरती बारा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) इक भीजे चहले परे बूड़े बहे हजार। कितने औगुन जग करत नय वय चढ़ती बार।—बिहारी (शब्द०)। २. प्रतिकाल। देर। विलंब। बेर। उ०—(क) निधड़क बैठा राम बिनु चेतन करों पुकार। यह तन जल का बुदबुदा बिनसत नाही बार।—कबीर (शब्द०)। (ख) देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) अबही और की और होत कछु लागे बारा। तातें मैं पाती लिखी तुम प्रान अधारा।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लाना।—होना।

३. समय का कोई अंश जो गिनती में एक गिना जाय। दफा। मरतबा। जैसे,—मैं तुम्हारे यहाँ तीन बार आया। उ०—(क) मरिए तो मरि जाइए छूटि परै जंजार। ऐसा मरना को मरै दिन मे सौ सौ बार।—कबीर (शब्द०)। (ख) जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग। बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बार बार = पुनः पुनः। फिर फिर। उ०—(क) तुलसी मुदित मन पुरनारि जिती बार बार हेरै मुख अवध मृगराज को।—तुलसी (शब्द०) (ख) फूल बिनन मिस कुंज मे पहिरि गुंज को हार। मग निरखति नदलाल को सुबलि बार ही बार।—पद्माकर (शब्द०)।

बार³—संज्ञा पुं० [सं० वाट (=घेरा या किनारा हिं० बाड़)] १. घेरा या रोक जो किसी स्थान के चारो ओर हो। जैसे, बाँध, टट्टी आदि। दे० 'बाड़', 'बाढ़'। २. किनारा। छोर। बारी। ३. धार। बाढ़। उ०—एक नारि वह है बहुरंगी। घर से बाहर निकसे नंगी। उस नारी का यही सिंगार। सिर पर नथनी मुँह पर बार।—रहीम (शब्द०)। ४. नाव, थाली आदि की अवँठ। किनारा। ५. बाँगर। ऊँची पक्की जमीन जिसे नदियों ने न बनाया हो। उ०—मनुष्यों के विभिन्न झुंडो को तीन तरह की विभिन्न परिस्थितियाँ थीं—समुद्र तट, सघन वन और सूखे बागर या बार।—भारत नि०, पृ० ४।

बार⁴—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाल'। केश। उ०—भ्रू पर अनूप मसि बिंदु बारे बार बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है। —तुलसी ग्रं०, पृ० २७३।

बार⁵—संज्ञा पुं० [फ़ा०; मि० सं० भार] १. बोझा। भार। उ०—जेहि जल तृण पशु बार बूड़ि अपने संग बोरत। तेहि जल गाजत महाबीर सब तरत अंग नहिं डोलत।—सूर (शब्द०)।

यौ०—बारबरदार। बारबरदारी। बारदाना।

मुहा०—बार करना = जहाज पर से बोझ उतारना। (जहाजी)।

२. वह माल जो नाव पर लादा जाय। (लश०)। ३. ऋण का बोझ। ४. वृक्ष की शाखा या टहनी (को०)। ५. फल (को०)। ६. इजलास। दरबार। सभा (को०)। ७. गर्भ। भ्रूण (को०)। ८. गुजर। पहुँच। प्रवेश। रसाई। पैठ। उ०—देस देस के राजा आवहिं। ठाढ़ तँवाहि बार नहिं पावहिं।—चित्रा०, पृ० ६०।

बार⁶—प्रत्य० [फ़ा०] बरसनेवाला।

विशेष—संज्ञा पदो में प्रयुक्त होकर यह प्रत्यय उक्त अर्थ देता है जैसे,—गोहरबार, दरियाबार आदि।

बार⁷—वि० [हिं०] दे० 'बाल' और 'वाला'।

बार†⁸—संज्ञा पुं० [सं० वारि] जल।

बार⁹—संज्ञा पुं० [सं०] छिद्र। छेद। दरार। बिल [को०]।

बार¹⁰—संज्ञा पुं० [फ़ा० बहृह् (=अंश) या बह्र (=छंद)] अंश। भाग। हिस्सा। उ०—मेच्छ मसूरति सत्ति कै बंच कुरानी बार।—पृ० रा०, २६।

बार¹¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० वार] वार। आक्रमण। हमला। उ०—पसुन प्रहार वह् कठ तैं बचाय राख्यो बालपन बीच तोको सूलन की बार मैं।—मोहन०, पृ० १३४।

बार¹²—क्रि० वि० [सं० बहिः बाह्य] दे० 'बाहर'। उ०—मगर हैं आमिना के सात बेजार, उसे आने कतें देना नही बार।—दक्खिनी०, पृ० १६३।

बार¹³—संज्ञा पुं० [अं०] १. वकीलो, बैरिस्टरो का समूह, उनका पेशा और कचहरी मे उनके उठने बैठने, आराम करने का स्थान। २. वह स्थान जहाँ नृत्य होता हो। नाचघर। ३. शराबखाना। मदिरालय।

यौ०—बार असोसिएशन = वकीलो का संघ। बार ऐट लॉ = बैरिस्टर। बार रूम = कचहरी मे वकीलो के उठने बैठने का कमरा। बार लाइब्रेरी = कचहरी में वकीलो बैरिस्टरो का पुस्तकालय।

बार आवर—[फ़ा०] फलयुक्त। फलदार। फलनेवाला [को०]।

बारक¹—क्रि वि० [हिं० बार+एक] एक बेर। एक बार। एक दफा। उ०—बारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो। राम दशरथ के तु उथपन थापनो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४८।

बारक²—संज्ञा स्त्री० [अं० बैरक] छावनी आदि मे सैनिको के रहने के लिये बना हुआ पक्का मकान।

बारकक्रंत—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो साँप काटने की औषध है। इसकी जड़ पीसकर उस स्थान पर लगाई जाती है जहाँ साँप काटता है।

बारगह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बारगाह] १. डेवढ़ी। २. डेरा। खेमा। तबू। उ० चितौर सौंप बारगह तानी। जहँ लग सुना कूच सुलतानी।—जायसी (शब्द०)।

बारगाह—संज्ञा पुं० [फ़ा० बारगाह] खेमा। शामियाया। उ०—तबू बारगाह छत्र मेहराब आदि खड़े किए गए।—हुमायूँ०, पृ० १०६।

बारगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह जो घोड़े के लिये घास लाता और उसकी रक्षा आदि में साईस को सहायता देता हो। घसियारा। २. बोझा ढोनेवाला जानवर।

बारचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बारचह्] १. छोटा दरवाजा। दे० 'बारचा' [को०]।

बारजा—संज्ञा पुं० [हिं० बार (=द्वार)+जा(=जगह)] १. मकान के सामने के दरवाजो के ऊपर पाटकर बढ़ाया हुआ बरामदा। २. कोठा। अटारी। ३. बरामदा। ४. कमरे के आगे का छोटा दालान।

बारट†—संज्ञा पुं० [देश०] भाट। बारहठ। बारठ। उ०—बारट एक स्वरूपा नामू। जाका भया अदाणा धामू।—राम० धर्म०, पृ० ३५७।

बारठ†—संज्ञा पुं० [हिं० बार(=द्वार)+हठ] दे० 'बारट'। उ०—कहियो बारठ केहरी, विघ रचतां करियांम। पाऊँ बोल पंचायती, हूँ लाऊँ संगराम।—रा० रू०, पृ० २६३।

बारडह†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बारट'।

बारण—संज्ञा पुं० [सं० वारण] दे० 'वारण' ।

बारता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० वार्ता] दे० 'वार्ता' ।

बारतिय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बार + तिया] दे० 'वारस्त्री' ।

बारतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० वारतुण्डी] श्राल का पेड़ ।

बारदाना—संज्ञा पुं० [फा० बारदानह्] १. व्यापार की चीजों के रखने का बरतन। जैसे, भाँड़ा, खुरजी, थैला, थैली आदि। २. फौज के खाने पीने का सामान। रसद। ३. अगड़ खंगड़, लोहे, लकड़ी आदि के टूटे फूटे सामान। ४. वह अस्तर जो बँधी हुई पगड़ी के नीचे रहता है।

बारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वारण] दे० 'वारण' उ०—अथ बारन कंठीरव दारुन दुपदल बिदारन गुन अपारन को सकत बिचारि।—घनानंद, पृ० ४०६।

बारना[1]—क्रि० स० [सं० वारण] निवारण करना। मना करना। रोकना। उ०—लिखि सो बात सखिन सो कही। यही ठाँव हौं बारति रही।—जायसी (शब्द०)। (ख) चोरी कैसी बात चंद्रमा हू ते चुराइन, बसननि तानि के बयारि बारियतु है।—मति० ग्रं०, पृ० २६६।

बारना[2]—क्रि० स० [हिं० बरना] बालना। जलाना। प्रज्वलित करना। उ०—(क) साँझ सकार दिया लै बारे। खसम छोड़ि सुमिरे लगवारे।—कबीर (शब्द०)। (ख) करि शृंगार सघन कुंजन में निशिदिन करत बिहार। नीराजन बहुविधि बारत हैं ललितादिक प्रजनार।—सूर (शब्द०)।

बारना[3]—क्रि० स० [हिं०] न्योछावर करना। दे० 'वारना'। उ०—सकल संपदा बारूँ तुम पर प्यारी चतुर सुजान। —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६६।

बारना[4]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फलों का गूदा इमारत की लेई में मिलाया जाता है। वि० दे० 'बिलासी'।

बारनारि—संज्ञा स्त्री० [सं० वारनारि] वेश्या। उ०—इति विधि सदागति वास विगलित गात, छिमिर की शोभा किधौं बारनारि नागरी।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १३८।

बारनिश—संज्ञा स्त्री० [अं०] फैला हुआ रोगन या चमकीला रंग जैसे, बारनिशदार जूता, कुरसियों पर बारनिश करना।

मुहा०—बारनिश करना = रोगन या चमकीला रंग चढ़ाना।

बारबटाई—संज्ञा स्त्री० [फा० बार(=बोझ) + हिं० बाँटना] वह विभाग जो फसल को दाने के पहले किया जाय। बोझ बँटाई।

बारबधू(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वारवधू] वेश्या। उ०—(क) नाम अजामिल से खल तारन तारन बारन बारबधू को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहुँ गोदान करत कहुँ देखे कहुँ कछु सुनत पुरान। कहुँ नर्तत सब बारबधू औ कहुँ गँधरब गुनगान।—सूर (शब्द०)। (ग) जनु अति नील अलकिया बसी लाइ। मो मन बारबधुअवा मीन बझाइ।—रहीम (शब्द०)।

बारबधूटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वारवधूटी] वेश्या। उ०—क्यों न करै करतार उबारक ज्यों चितवै वह बारबधूटी।—केशव (शब्द०)।

बारबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो सामान आदि ढोने का काम करता हो। बोझा ढोनेवाला मजदूर।

बारबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. सामग्री आदि ढोने की क्रिया। सामान ढोने का काम। २. सामान ढोने की मजदूरी।

बारबर्दार—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'बारबरदार'। उ०—एक प्यादे को सवारी और बारबर्दार ठीक करने को भेज दिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५३।

बारबिलासिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वारविलासिनी] दे० 'वार-विलासिनी'। उ०—बारबिलासिनि को बिसरै न बिदेश गयो पिय प्रानपियारो।—मति० ग्रं०, पृ० २०७।

बारबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० बालबुद्धि] लड़कपन का ज्ञान। बाल्या-वस्था का बोध। उ०—बारबुद्धि बारनि के साथ ही बढ़ी है बीर, कुचनि के साथ ही सकुच उर आई है।—केशव ग्रं० भा० १, पृ० १७६।

बारमा(पु)—वि० [हिं० बारह] दे० 'बारहवाँ'। उ०—बारमैं सूर सो करन रग। अनमी नमाइ तिन करै भंग।—पृ० रा०, १।७०१।

बारमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० वारमुख्या] वेश्या। उ० (क) बार मुखी लई संग मानो वाही रंग रँगे जानो यह बात करी उर अति भीर की।—प्रियादास (शब्द०)। (ख) बारमुखी मुनिवर बिलोकि कै करत चली कल गाने।—रघुराज (शब्द०)।

बारयाब[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. नमस्कार। सलाम। उ०—बारयाब कर चालीं सबे ज साह ही।—नट०, पृ० १६६।

बारयाब[2]—वि० पहुँचनेवाला। आनेवाला। आगंतुक।

बारयाबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रवेश। आगमन। पहुँच (को०)।

बारली—वि० [हिं० बार(=बाहर) + ली (प्रत्य०)] बाहरी। बाहर की।—बी० रासो, पृ० ५।

बारवा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागिनी जिसे कुछ लोग श्रीराग की पुत्रवधू मानते हैं।

बारस[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादश, प्रा० बारस] दे० 'द्वादशी'। उ०—नया ऊगा चाँद बारस का लजीली चाँदनी लंबी।—इत्यलम्, पृ० २१६।

बारस[2]—वि० दे० 'बारह'। उ०—बारस मास जहाँ चौमासो। हित किसान के कहूँ न साँसो।—घनानंद, पृ० २८७।

बारह[1]—वि० [सं० द्वादश, प्रा० बारस, अप० बारह][वि० बारहवाँ] जो संख्या में दस और दो हो। उ०—जहँ बारह मास बसंत होय। परमारथ बूझै बिरला कोय।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—बारह पानी का = बारह बरस का सूअर। बारह बच्चे-वाली = सूअरी। बारह बाट = इधर उधर। उ०—बारहबाटै बहत हैं, दरिया जगत औ भेष। तु बहता सँग मत बहै रहता साहब देख।—दरिया० बानी, पृ० ३२। बारह बाट

करना = तितर बितर या छिन्न भिन्न करना। इधर उधर कर देना। बारह बाट घालना = छिन्न भिन्न करना। तितर बितर या नष्ट भ्रष्ट करना। उ०—मोहि लगि यह कुठाट तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारहबाटा।—तुलसी (शब्द०)। बारह बाट जाना = (१) तितर बितर होना। छिन्न भिन्न होना। उ०—मन बदले सर्वसिंधु ते बहुत लगाए घाट। मनही कै घाले गए वहि घर बारहबाट।—रसनिधि (शब्द०)। (२) नष्ट भ्रष्ट होना। उ०—(क) लंक असुभ चरचा चलति हाट बाट घर घाट। रावन सहित समाज अब जाइहि बारहबाट।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राज करत बिनु काजही ठटहिं जे ठाट कुठाट। तुलसी ते कुरुराज ज्यों जैहैं बारहबाट।—तुलसी (शब्द०)। बारह बाट होना = तितर बितर होना। नष्ट होना। उ०—प्रथम एक जे ही किया भया सो बारहबाट। कसत कसौटी ना टिका पीतर भया निराट।—कबीर (शब्द०)।

बारह[2]—संज्ञा पुं० १. बारह की संख्या। २. बारह का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१२।

बारह आना—संज्ञा पुं० [हिं०] तीन चौथाई। पचहत्तर प्रतिशत। उ०—हमारे आनंद बारह आने क्लेश ही हो जायँ तो क्या?—चिंतामणि, भा० २, पृ० ५०।

बारहखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादश + अक्षरी, हिं० बारह + खड़ी] वर्णमाला का वह अंश जिसमें प्रत्येक व्यंजन में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन बारह स्वरों को, मात्रा के रूप में लगाकर बोलते या लिखते हैं।

बारहदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बारह + फ़ा० दर (= दरवाजा)] चारों ओर से खुली और हवादार वह बैठक जिसमें बारह द्वार हों। उ०—बारहदरीन बीच चारहू तरफ जैसो बरफ बिछाय तापै सीतल सुपाटी है।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—बारह दरवाजों से कम की बैठक भी यदि चारों ओर से खुली और हवादार हो तो बारहदरी कहलाती है। इसमें अधिकतर खंभे होते हैं, दरवाजे नहीं होते।

बारहपत्थर—संज्ञा पुं० [हिं० बारह + पत्थर] १. वह पत्थर जो छावनी की सरहद पर गाड़ा जाता है। सीमा। २. छावनी।

मुहा०—बारहपत्थर बाहर करना = निकालना। सीमा बाहर करना।

बारहबान—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशवर्ण] एक प्रकार का सोना जो बहुत अच्छा होता है। बारहबानी का सोना।

बारहबाना—वि० [सं० द्वादशवर्ण] १. सूर्य के समान दमकवाला। २. खरा। चोखा (सोने के लिये)। उ०—सूरदास प्रभु हम हैं खोटी तुम तो बारहबाने हो।—सूर (शब्द०)। विशेष—दे० 'बारहबानी'।

बारहबानी[1]—वि० [सं० द्वादश (आदित्य) + वर्ण, पा० बारस वण्ण] १. सूर्य के समान दमकवाला। २. खरा। चोखा (सोने के लिये)। उ०—(क) सोहत लोह परसि पारस ज्यों सुबरन बारहबानि।—सूर (शब्द०)। (ख) सिंघल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारहबानी।—जायसी (शब्द०)। ३. निर्दोष। सच्चा। जिसमें कोई बुराई न हो। पापरहित। ४. जिसमें कुछ कसर न हो। पूरा। पूर्ण। पक्का। उ०—है वह सब गुन बारहबानी। ए सखि! साजन, ना सखि, पानी।—खुसरो (शब्द०)।

बारहबानी[2]—संज्ञा स्त्री० सूर्य की सी दमक। चोखी चमक। जैसे, बारहबानी का सोना।

बारहमासा—संज्ञा पुं० [हिं० बारह + मास] [स्त्री० बारहमासी] वह पद्य या गीत जिसमें बारह महीनों की प्राकृतिक विशेषताओं का वर्णन किसी विरहिणी के मुख से कराया गया हो। उ०—गाती बारहमासी, सावन और कजलियाँ।—अपरा, पृ० १९४।

बारहमासी—वि० [हिं० बारह + मास] १. जिसमें बारहों महीनों में फल, फूल लगा करते हों। सब ऋतुओं में फलने, फूलनेवाला। सदाबहार। सदाफल। जैसे, बारहमासी आम, बारहमासी गुलाब। २. बारहों महीने होनेवाला। उ०—उ०—कुबजा कान्ह दोउ मिलि खेलैं बारहमासी फाग।—सूर (शब्द०)।

बारह मुकाम—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ईरानी संगीत के १२ स्थान या पर्दे।

बारहवफात—संज्ञा स्त्री० [हिं० बारह + अ० वफ़ात] अरबी महीने 'रबी उल अव्वल' की वे बारह तिथियाँ जिनमें मुसलमानों के विश्वास के अनुसार, मुहम्मद साहब बीमार होकर मरे थे।

बारहवाँ—वि० [हिं० बारह] [वि० स्त्री० बारहवीं] जो स्थान में ग्यारहवें के बाद हो। जैसे,—बारहवाँ दिन, बारहवीं तिथि, बारहवाँ महीना इत्यादि।

बारहसिंगा—संज्ञा पुं० [हिं० बारह + सींग] हिरन की जाति का एक पशु जो तीन चार फुट ऊँचा और सात आठ फुट लंबा होता है।

विशेष—इस पशु जाति के नर के सीगों में कई शाखाएँ निकलती हैं, इसी से बारहसिंगा नाम पड़ा। और चौपायों के सींगों के समान, इसके सींगों पर कड़ा आवरण नहीं होता, कोमल चमड़ा होता है जिसपर नरम महीन रोएँ होते हैं। इसके सींग का आवरण प्रति वर्ष फागुन चैत में उतरता है। आवरण उतरने पर सींग में से एक नई शाखा का अंकुर दिखाई पड़ता है। इस प्रकार हर साल एक नई शाखा का अंकुर दिखाई पड़ता है और हर साल एक नई शाखा निकलती है जो कुआर से कार्तिक तक पूरी बढ़ जाती है। मादा, जिसे सींग नहीं होते, चैत बैशाख में बच्चा देती है।

बारहाँ—वि० [हिं० बारह] १. दे० 'बारहवाँ'। २. श्रेष्ठ। बड़ा। (व्यंग्य में)।

बारहा[1]—क्रि० वि० [फ़ा० बार + हा (प्रत्य०)] अनेक बार। कई बार। अक्सर। जैसे,—मैं बारहा उनके यहाँ गया, पर

वे नहीं मिले । उ०—प्यार तो हम किया करेंगे ही । बारहा क्यों न जाय दिल फेरा ।—चोखे०, पृ० ६४ ।

बारहा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बार (=महान्)+हिं० हा (प्रत्य०)] ताकतवर । बहादुर । वीर ।

बारहीं—संज्ञा स्त्री० [हिं० बारहाँ] बच्चे के जन्म से बारहवाँ दिन जिसमें उत्सव आदि किया जाता है । बरही । उ०—छठी बारही लोक वेद विधि करि सुबिधान बिधानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

बारहौं—संज्ञा पुं० [हिं० बारह] १. किसी मनुष्य के मरने के दिन से बारहवाँ दिन । बारहवाँ । द्वादशाह । २. कन्या या पुत्र के जन्म से बारहवाँ दिन । बरही ।

विशेष—इस दिन कुल व्यवहार के अनुसार अनेक प्रकार की पूजा होती है । बहुतों के यहाँ इसी दिन नामकरण भी होता है । इसे बरही भी कहते है ।

बारा[1]—वि० [सं० बाल] बालक । जो सयाना न हो । जिसकी बाल्यावस्था हो ।

यौ०—नन्हाबारा ।

मुहा०—बारे तें, बारेहि ते=जब बालक रहा हो तभी से । बचपन से । बाल्यावस्था से । उ०—(क) परम चतुर जिन कीन्हे मोहन अल्प बैस ही थोरी । बारे तें जिन यहै पढ़ायो बुधि, बल, कल विधि चोरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) बारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी । तुलसी (शब्द०) ।

बारा[2]—संज्ञा पुं० [सं० बालक] बालक । लड़का । उ०—रोवत माय न बहुरै बारा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ५५ ।

बारा[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बालह् (=ऊँचा)] लोहे की कँगनी जो बेलन के सिरे पर लगाई जाती है और जिसके फिरने से बेलन फिरता है ।

बारा[4]—संज्ञा पुं० [हिं० बार] वह दूध जो चरवाहा चौपाए को चराने के बदले मे आठवें दिन पाता है ।

बारा[5]—संज्ञा पुं० [देश०; अथवा स० बार, प्रा० बार (=द्वार अर्थात् कूपमुख)] १. एक गीत जिसे कुएँ से मोट खींचते समय गाते हैं । २. वह आदमी जो कुएँ पर खड़ा होकर भरकर निकले हुए चरसे या मोट का पानी उलटकर गिराता है । ३. जंतरे से तार खींचने का काम ।

बारा[6]—संज्ञा पुं० [हिं० बारह] दे० 'बारह' । उ०—(क) बारा कला सोषै, सोला कला पोषै ।—गोरख०, पृ० ३१ । (ख) बारा मते काल ने कीन्हा । आदि अंत फाँसी जिव दीन्हा ।—घट०, पृ० २१२ ।

यौ०—बाराकला=बारह कलाओंवाला—सूर्य ।

बारा[7]—संज्ञा पुं० [फ़ा० बारः, बारह्] १. बार । बेला । उ०—भूत भविष्य को जाननिहारा । कहतु है बन सुभ गवन की बारा । नंद० ग्रं०, पृ० १५६ । २. विषय । संबध । मामला । ३. परकोटा । घेरा । हाता (को०) ।

बारा[8]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बारान्, बारा] १. वर्षा । बरसात । वृष्टि । उ०—जहे तिस फैज का बारा भया है । जमीन होर आसमान सब भर रह्या है ।—दक्खिनी०, पृ० १५४ । २. वर्षा का जल । ३. वर्षा का मौसम । वर्षा ऋतु (को०) ।

यौ०—बारागीर=सायबान । छज्जा । बारादीदा=अनुभवी । तजुर्बेकार । बारावार =अधिक वर्षावाला देश ।

बारात—संज्ञा स्त्री० [सं० वरयात्रा, प्रा० वरयत्ता] १. किसी के विवाह में उसके घर के लोगों, संबंधियों, इष्टमित्रों का मिलकर वधू के घर जाना । २. वह समाज जो वर के साथ उसे ब्याहने के लिये सजकर वधू के घर जाता है ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—सजना ।

मुहा०—बारात उठना=बारात का प्रस्थान करना । बारात विदा होना=(१) कन्या के पिता के घर से बारात का प्रस्थान होना । (२) निधन होना । मर जाना । (३) शान शौकत समाप्त होना ।

बाराती—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'बराती' ।

बारादरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बारहदरी' ।

बारानसी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाराणसी] दे० 'वाराणसी' । उ०—ससी सम जसी, असी बरना में बसी, पाप खसी हेतु असी, ऐसी लसी बारानसी है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१ ।

बारानी[1]—वि० [फ़ा० बारान्+ई (प्रत्य०)] बरसाती ।

बारानी[2]—संज्ञा स्त्री० १. वह भूमि जिसमें केवल बरसात के पानी से फसल उत्पन्न होती है और सींचने की आवश्यकता नहीं पड़ती है । २. वह फसल जो बरसात के पानी से, बिना सिंचाई किए उत्पन्न होती हो । ३. वह कपड़ा जो पानी से बचने के लिये बरसात में पहना या ओढ़ा जाता हो । यह ऊन को जमाकर या सूती कपड़े पर मोम आदि लपेटकर बनाया जाता है । बरसाती कोट ।

बारामीटर—संज्ञा पुं० [अं० बैरोमीटर] दे० 'बैरोमीटर' ।

बाराह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वाराह] दे० 'वाराह' । उ०—करि बिरुप बाराह पुरनि पुर अविगत खिलिय ।—पृ० रा०, २।१५३ ।

यौ०—बाराहकंद =वाराहीकंद ।

बाराही—संज्ञा स्त्री० [सं० वाराही] दे० 'वाराही' ।

बाराहीकंद—संज्ञा स्त्री० [सं० वाराहीकन्द] दे० 'वाराहीकंद' ।

बारि(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० वारि] दे० 'वारि' ।

बारि[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बारी' ।

बारिक—संज्ञा पुं० [अं० बारक] ऐसे बँगलों या मकानों की श्रेणी या समूह जिनमे फौज के सिपाही रहते हैं । छावनी ।

बारिक मास्टर—संज्ञा पुं० [अं०] वह प्रधान कर्मचारी जो बारिक की देखभाल या प्रबंध करता हो ।

बारिगर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० बारी+गर] हथियारों पर बाढ़ रखनेवाला । सिकलीगर । उ०—मदन बारिगर तुव दृगन

बरी बाढ़ जो मित्त। याके हेरत जात है नटि नटि नेही चित्त।—रसनिधि (शब्द०)।

बारिगह—संज्ञा स्त्री० [फा० बारगह, बारगाह] शाही खेमा।

बारिचर—संज्ञा पुं० [सं० वारिचर] जल के जंतु—मछली। दे० 'वारिचर'।

बारिचर केतु—संज्ञा पुं० [सं० वारिचर(=मछली)+केतु (पताका)] मीनकेतु। कामदेव। झषकेतु। उ०—कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुतिसेतू।—मानस, १।८४।

बारिजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वारिज] दे० 'वारिज'। उ०—बारिज लोचन मोचत बारी।—मानस, २।३१६।

बारिद—संज्ञा पुं० [सं० वारिद] दे० 'वारिद'।

यौ०—बारिदनाद=मेघनाद। उ०—बारिदनाद जेठ सुत तासू।—मानस, १।

बारिधर—संज्ञा पुं० [सं० वारिधर] १ बादल। बारिद। मेघ। उ०—हृदय हरिनख अति विराजत छबि न बरनी जाइ। मनो बालक बारिधर नवचंद लई छपाइ।—सूर (शब्द०)। २. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में रगण, नगण और दो भगण होते हैं। इसे केशवदास ने माना है। जैसे,—राजपुत्र इक बात सुनो पुनि। रामचंद्र मन माँहि कही गुनि। राति दीह जमराज जनी जनु। जातनानि तन जातन के भनु।—केशव (शब्द०)।

बारिधि—संज्ञा पुं० [सं० वारिधि] दे० 'वारिधि'।

बारिवाह—संज्ञा पुं० [सं० वारी+वाह] बादल। उ०—पौन बारिवाह पर, संभु रतिनाह पर ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।—भूषण ग्रं०, पृ० ३७।

बारिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वर्षा। वृष्टि। २. वर्षा ऋतु।

बारिस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बारिश] वर्षा। उ०—बारिस बसिल बीसवधारा घरि जलधर कोपि।—विद्यापति, पृ० २५७।

बारिस्टर—संज्ञा पुं० [अं० बैरिस्टर] वह वकील जिसने विलायत मे रहकर कानून की परीक्षा पास की हो।

विशेष—ऐसे वकील दीवानी, फौजदारी और माल आदि की सारी छोटी बड़ी अदालतों मे वादी प्रतिवादी की ओर से मामलों और मुकदमों में पैरवी, बहस तथा अन्य कार्रवाइयाँ कर सकते हैं। ऐसे वकीलों के लिये वकालतनामे या मुख्तारनामे की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

बारिस्टरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बारिस्टर] बैरिस्टर का काम। वकालत।

बारी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वार] १. किनारा। तट। उ०—जियत न नाई नार चातक घन तजि दूसरेहि। सुरसरिहू की बारि मरत न माँगेउ अरध जल।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बारी रहो=किनारे होकर चलो। बचकर चलो।

विशेष—पालकी के आगेवाले कहार काँटे आदि चुभने पर 'बारी रहो' कहते हैं जिससे पीछे का वाहक उसे बचाकर।

२. वह स्थान जहाँ किसी वस्तु के विस्तार का अंत हुआ हो। किसी लबाई चौड़ाईवाली वस्तु का बिलकुल छोर पर का भाग। हाशिया। ३. बगीचे, खेत आदि के चारों ओर रोक के लिये बनाया हुआ घेरा। बाड़ा। ४ किसी बरतन के मुँह का घेरा या छिछले बरतन के चारो ओर रोक के लिये उठा हुआ घेरा या किनारा। औठ। जैसे, थाली की बारी, लोटे की बारी। ५. धार। बाढ़। पैनी वस्तु का किनारा।

बारी²—संज्ञा स्त्री० [सं० वाटी, वाटिका(=बगीचा, घेरा घर)] १. पेड़ों का समूह या वह स्थान जहाँ से पेड़ लगाए गए हों। बगीचा। जैसे, आम की बारी। उ०—(क) सरग पताल भूमि लै बारी। एकै राम सकल रखवारी।—कबीर (शब्द०)। (ख) जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बर बारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) लग्यो सुमन है सुफल तहं आतप रोस निवारि। बारी बारी आपनी सींच सुहृदता बारि।—बिहारी (शब्द०)। २. मेड़ से घिरा स्थान। क्यारी। उ०—गेंदा गुलदावदी गुलाब आबदार चारु चंपक चमेलिन की न्यारी न्यारी बारी मैं।—व्यंग्यार्थ०, पृ० ३७। ३. घर। मकान। दे० 'बाड़ी'। ४. खिड़की। झरोखा। ५. जहाजों के ठहरने का स्थान। बंदरगाह। ६. रास्ते मे पड़े हुए काँटे, झाड़ इत्यादि। (पालकी के कहार)।

बारी³—संज्ञा पुं० [स्त्री० बारिन, बारिनी Ⓟ] एक जाति जो अब पत्तल, दोने बनाकर ब्याह, शादी आदि मे देती है और सेवा करती है। पहले इस जाति के लोग बगीचा लगाने और उनकी रखवाली आदि का काम करते थे इससे कामकाज में पत्तल बनाना उन्ही के सुपुर्द रहता था। उ०—नाऊ बारी, भाट, नट राम निछावरि पाइ। मुदित असीसहिं नाइ सिर हरष न हृदय समाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लिए बारिन पत्रावली जात मुसकाती।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १७।

बारी⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० बार] बहुत बातों में से एक एक बात के लिये समय का कोई नियत अंश जो पूर्वापर क्रम के अनुसार हो। आगे पीछे के सिलसिले के मुताबिक आनेवाला मौका। अवसर। ओसरी। पारी। जैसे,—अभी दो आदमियों के पीछे तुम्हारी बारी आएगी। उ०—(क) घरी सो बैठि गनइ घरियारी। पहर पहर सो आपनि बारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) काहू पै दुःख सदा न रह्यो, न रह्यो सुख काहू के नित्त अगारी। चक्रनिमी सम दोउ फिरैं तर ऊपर आपनि आपनि बारी।—लछमणसिंह (शब्द०)।

मुहा०—बारी बारी से=कालक्रम में एक के पीछे एक इस रीति से। समय के नियत अंतर पर। जैसे,—सब लोग एक साथ मत आओ, बारी बारी से आओ। बारी बँधना=आगे पीछे के क्रम से एक एक बात के लिये अलग अलग समय नियत होना। उ०—तीनहु लोकन की तरुनीन की बारी बँधी हुती

उ०—वुढिया हँस कह मैं नितहि बारि। मोहिं घस तरुनी कहु कौन नारि ?—कबीर (शब्द०)।

—वि० स्त्री० थोड़ी अवस्था की। जो सयानी न हो। उ०—बारी वधू मुरझानी विलोकि, जिठानी करै उपचार चितै को।—पद्माकर (शब्द०)।

—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाली'।

—वि० [फ़ा० बारीक़] [संज्ञा बारीकी] १. जो मोटाई या घेरे में इतना कम हो कि छूने से हाथ में कुछ मालूम न हो। महीन। पतला। जैसे, बारीक तार या तागा, बारीक कपड़ा। २. बहुत ही छोटा। सूक्ष्म। जैसे, बारीक अक्षर। ३. जिसके अणु बहुत ही छोटे या सूक्ष्म हों। जैसे,—(क) बारीक आटा। (ख) इस दवा को खूब बारीक पीसकर लाओ। ४. जिसकी रचना में दृष्टि की सूक्ष्मता और कला की निपुणता प्रकट हो। जैसे,—उस मंदिर मे पत्थर पर बहुत बारीक काम बना है। ५. जिसे समझने के लिये सूक्ष्म बुद्धि आवश्यक हो। जो बिना अच्छी तरह ध्यान से सोचे समझ में न आए। जैसे, बारीक बात।

—संज्ञा पुं० [फ़ा० बारीक] बालों की वह महीन कलम जिससे चित्रकारी में पतली पतली रेखाएँ खींची जाती हैं।

—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बारीक+ई] १. महीनपन। पतलापन। २. साधारण दृष्टि से न समझ में आनेवाला गुण या विशेषता। खूबी। जैसे, मजमून की बारीकी।

मु०—बारीकी निकालना = ऐसी बात निकालना जो साधारण दृष्टि से देखने पर समझ में न आ सके। सूक्ष्म उद्भावना करना।

—ना—संज्ञा पुं० [हिं० बरी+फ़ा० खानह्] नील के कारखाने मे वह स्थान जहाँ नील की बरी या टिकिया सुखाई जाती है।

—संज्ञा पुं० [सं० वारीश] समुद्र। दे० 'वारीश'। उ०—बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।—मानस, ६।१०।

—संज्ञा स्त्री० [सं० बालुका] बालू। रेत। उ०—नेह नवोढा नारि को वारि बारुका न्याय। थलराए पै पाइए नीपीहे न रसाय।—नंद० ग्रं०, पृ० १४१।

—संज्ञा पुं० [सं० वारुणी] पश्चिम दिशा। उ०—जहाँ वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज। तही कियो भागवत विन, उपवि शोभा साज।—राम चं०, पृ० १०।

—संज्ञा स्त्री० [सं० वारुणी] १. दे० 'वारुणी'। २. हाथी की गति। गयंद गति। मस्तानी चाल। ३. मदिरा। सुरा। ४. पश्चिम दिशा। उ०—गजपति कहिए बारुनी, उरझयो कहा गँवार ?—तेगबहादुर (शब्द०)।

बारूत—संज्ञा स्त्री० [तु०] दे० 'बारूद'।

बारूद[1]—संज्ञा स्त्री० [तु०] एक प्रकार का चूर्ण या बुकनी जो गंधक, शोरे और कोयले को एक में पीसकर बनती है और आग पाकर भक से उड़ जाती है। तोप बंदूक इसी से चलती है। दारू।

विशेष—ऐसा पता चलता है कि इसका प्रयोग भारतवर्ष और चीन में बंदूक आदि अग्न्यस्त्र और तमाशे में बहुत पुराने जमाने से किया जाता था। अशोक के शिलालेखों में 'अग्निस्कंध' या या अग्निस्कंध शब्द तमाशे (आतशबाजी) के लिये आया है, पर इस बात का पता आजतक नहीं लगा है कि सबसे पहले इसका आविष्कार कहाँ, कब और किसने किया है। इसका प्रचार युरोप में चौदहवीं शताब्दी मे मूर (अरब) के लोगों ने किया और सोलहवीं शताब्दी तक इसका प्रयोग केवल बंदूकों को चलाने मे होता रहा। आजकल अनेक प्रकार की बारूदें मोटी, महीन, नम, विषम रंगें की बनती हैं। इसके संयोजक द्रव्यों की मात्रा निश्चित नहीं है। देश देश में प्रयोजनानुसार अंतर रहता है पर साधारण रीति से बारूद बनाने में प्रति सैकड़े ७५ से ७८ अंश तक शोरा, १० या १२ अंश तक गंधक और १२ से १५ अंश तक कोयला पड़ता है। ये तीनों पदार्थ अच्छी तरह पीस छानकर एक में मिलाए जाते हैं। फिर तारपीन का तेल या स्पिरिट डालकर चूर्ण को भलीभाँति मलना पड़ता है। इसके पीछे उसे धूप से सुखाते हैं। तमाशे की बारूद मे कोयले की मात्रा अधिक डाली जाती है। कभी कभी लोहचुन भी फूल अच्छे बँधने के लिये डालते हैं। भारतवर्ष मे अब बारूद बंदूक के काम की कम बनती है, प्रायः तमाशे की ही बारूद बनाई जाती है।

मुहा०—गोली बारूद = (१) लड़ाई की सामग्री। युद्ध का सामान। (२) सामग्री। आयोजन।

बारूद[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान।

बारूदखाना—संज्ञा पुं० [हिं० बारूद+फ़ा० खानह्] वह स्थान जहाँ गोला बारूद आदि लड़ाई का सामान रहता है।

बारूदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बालूदानी'

बारे—क्रि० वि० [फ़ा०] १. अंत को। आखिरकार। उ०—आबे न दिया बारे गुनह ने पैदल। ताबूत में काँधो पे सवार आया हूँ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५६। २. खैर। अस्तु। जैसे,—बारे जो हुआ, भला हुआ।

बारे में—अव्य० [फ़ा० बारह्+हिं० में] प्रसंग मे। विषय मे। संबंध मे। जैसे,—मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता।

बारै(पु)—वि०, संज्ञा पु० [हिं० बारह] बारह। उ०—बारै अरु ढै बरष परि सुदि असाढ़ सनि सोइ।—ह० रासो, पृ० ७६।

बारोंबार(पु)†—क्रि० वि० [सं० वारम्वार] दे० 'बारबार'। उ०—राम को नाम जो लेव बारोबार। त्याके पाऊँ मेरे तन की पैजार।—दक्खिनी०, पृ० १०१।

बारोठा—संज्ञा पु० [सं० द्वार+स्थ (प्रत्य०)] १. वह रस्म जो विवाह के समय वर के द्वार पर आने के समय की जाती है। २. द्वार। दरवाजा। उ०—बारोठे को चार करि कहि केशव अनुरूप। द्विज दूलह पहिराइयो पहिराए सब भूप।—केशव (शब्द०)।

बारोमीटर—संज्ञा पु० [अं० बैरोमीटर] दे० 'बैरोमीटर'।

बार्जा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बारजह् या अं० बाज (=हाउसबोट)] दे० 'बारजा'। उ०—जालपा भी सँभलकर बार्जे पर खड़ी हो गई।—गबन, पृ० ३५२।

बार्डर—संज्ञा पुं० [अं०] किसी चीज के किनारों पर बना हुआ बेल बूटा। हाशिया। किनारा।

बार्बर¹—वि० [सं०] बर्बर देश का। बर्बर देशोत्पन्न।

बार्बर²—संज्ञा पुं० [फ़ा० बार (= हुँच)+ बर (वाला)] वजीर। सलाहकार। उ०—तारीखे फिरोजशाही से जान पड़ता है कि सुलतान तुगलकशाह (गयासुद्दीन) ने गद्दी पर बैठते ही अपने भतीजे असदुद्दीन को नायब बार्बर (वजीर) बनाया था।—राज०, पृ० ५०२।

बार्बरीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. आम की कोइली। आम की गुठली। २. कल्ला। कनखा। कोपल। ३. पुंश्चली या वेश्या का पुत्र। ४. टिन [को०]।

बार्ह—वि० [सं०] [वि० स्त्री० बार्ही] बर्ह अर्थात् मोरपंख का। मयूरपंख संबंधी। मोरपंख का बना हुआ [को०]।

बार्हद्रथ—संज्ञा पु० [सं०] बृहद्रथ का पुत्र जरासंध [को०]।

बार्हस्पत¹—वि० [सं०] बृहस्पति से संबद्ध। बृहस्पति संबंधी।

बार्हस्पत²—संज्ञा पुं० एक संवत् का नाम [को०]।

बार्हस्पत्य—संज्ञा पु० [सं०] १. बृहस्पति का एक भौतिकवादी अनुयायी। २. अग्नि। ३. बृहस्पति द्वारा रचित एक अर्थशास्त्र। ४. भौतिकवादी। नास्तिक।

बार्हिण—वि० [सं०] [वि० स्त्री० बार्हिणी] मयूर संबंधी [को०]।

बालंगा—संज्ञा पु० [फ़ा० बालिंगू] जीरे की तरह काले रंग का एक बीज जो बहुत पुष्टिकर माना जाता है और औषध के काम में आता है। इसे पानी में डालने से बहुत लासा निकलता है। तुख्मबालंगू। तूतमलंगा।

बाल¹—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० बाला] १. बालक। लड़का। वह जो सयाना न हो। वह जो जवान न हुआ हो। उ०—बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा।—मानस, १।

विशेष—मनुष्य जन्मकाल से प्रायः सोलह वर्ष की अवस्था तक बाल या बालक कहा जाता है।

२. वह जिसको समझ न हो। नासमझ आदमी। ३. मूर्ख। अनेकार्थ०, पृ० १४७। ४. सुगंधवाला नामक गंध। ५. किसी पशु का बच्चा। बछेड़ा। ६. करभ। हाथी का पाँचवर्षीय बच्चा (को०)। ७. नारियल (को०)। ८. दुम। ९. हाथी या घोड़े की दुम (को०)।

बाल(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० बाला] दे० 'बाला'। उ०—तन मन मेटै खेद सब तज उपाधि को चाल। सहजो साधू राम कू तजे कनक और बाल।—सहजो०, पृ० १७।

बाल³—वि० १. जो सयाना न हो। जो पूरी बाढ़ को न पहुँचा हो। २. जिसे उगे या निकले हुए थोड़ा ही देर हुई हो। जैसे, बालरवि।

बाल⁴—संज्ञा पु० [सं०] सूत की सी वस्तु जो दूध पिलानेवाले जंतुओं के चमड़े के ऊपर इतनी अधिक होती है कि उनका चमड़ा ढका रहता है। लोम और केश।

विशेष—नाखून, सींग, पर आदि के समान बाल भी कड़े पड़े हुए त्वक् के विकार ही हैं। उनमें न तो संवेदनसूत्र होते हैं न रक्तवाहिनी नालियाँ। इसी से ऊपर से बाल को कतरने से किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव नहीं होता। बाल का कुछ भाग त्वचा से बाहर निकला रहता है और कुछ भीतर रहता है। जिस गड्ढे में बाल की जड़ रहती है उसे रोमकूप, लोमकूप कहते हैं। बाल की जड़ का नीचे का सिरा मोटा और सफेद रंग का होता है। बाल के दो भाग होते हैं, एक तो बाहरी तह और दूसरा मध्य का सार भाग। सार भाग आड़े रेशों से बना हुआ पाया जाता है। वहाँ तक वायु का संचार होता है।

मुहा०—बाल बाँका न होना=कुछ भी कष्ट या हानि न पहुँचना। पूर्ण रूप से सुरक्षित रहना। उ०—होय न बाँको बार भक्त को जो कोउ कोटि उपाय करै।—तुलसी (शब्द०)। बाल न बाँकना=बाल बाँका न होना। उ०—जेहि जिय मनहिं होय सत भारू। परै पहार न बाँके बारू।—जायसी (शब्द०)। नहाते बाल न खिसना=कुछ भी कष्ट या हानि न पहुँचना। उ०—नित उठि यहो मनावति देवन न्हात खसै जनि बार।—सूर (शब्द०)। (किसी काम में) बाल पकाना=(कोई काम करते करते) बुड्ढा हो जाना। बहुत दिनों का अनुभव प्राप्त करना। जैसे,—मैंने भी पुलिस की नौकरी में ही बाल पकाए हैं। बाल बराबर=बहुत सूक्ष्म। बहुत महीन या पतला। बाल बराबर न समझना=कुछ भी परवा न करना। अत्यंत तुच्छ समझना। बाल बराबर फर्क होना=जरा सा भी भेद होना। सूक्ष्मतम अंतर होना। उ०—जो कह दे वही हो जाए। मजाल क्या जो बाल बराबर फर्क हो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १४४। बाल बाल बचना=कोई आपत्ति पड़ने या हानि पहुँचने में बहुत थोड़ी कसर रह जाना। जैसे,—पत्थर आया, वह बाल बाल बच गया।

बाल⁵—संज्ञा पु० [देश०] कुछ अनाजों के पौधों के डंठल का वह

अग्र भाग जिसके चारो ओर दाने गुछे रहते हैं। जैसे, जौ, गेहूँ या ज्वार की बाल।

बाल[६]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

बाल[७]—संज्ञा पुं० [अं० बॉल] १. अँगरेजी नाच। उ०—कत्थक हो या कथकली या बाल डान्स।—कुकुर०, पृ० १०। २. कंदुक। गेंद। जैसे, फुटबाल।

बालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लड़का। पुत्र। २. थोड़ी उम्र का बच्चा। शिशु। ३. अबोध व्यक्ति। अनजान आदमी। ४. हाथी का बच्चा। ५. घोड़े का बच्चा। बछेड़ा। ६. सुगंधवाला। नेत्रबाला। ७. कंगन। ८. बाल। केश। ९. अँगूठा। १०. हाथी की दुम।

बालकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालक का भाव। लड़कपन। उ०—अति कोमल केशव बालकता।—केशव (शब्द०)।

बालकताई—संज्ञा स्त्री० [सं० बालकता+ई (प्रत्य०)] १. बाल्यावस्था। २ लड़कपन। नासमझी। उ०—तुव प्रसाद रघुकुल कुसलाई। छमा करहु गुनि बालकताई।—रघुराजसिंह (शब्द०)।

बालकपनां—संज्ञा पुं० [सं० बालक+पन (प्रत्य०)] १. बालक होने का भाव। २. लड़कपन। नासमझी।

बालकप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केला। २. इंद्रवारुणी।

बालकवि—संज्ञा पुं० [सं० बाल (=मूढ)+कवि] १. मूढ कवि। अज्ञ कवि। उ०—जो प्रबंध बुध नहिं आदरही। सो स्रम वादि बालकबि करही।—मानस, १।१४। २. वह जो बाल्यावस्था से ही कविता करे।

बालकमानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक बहुत ही महीन कमानी जो घड़ी आदि की गति के नियंत्रण के लिये लगाई जाती है। अँगरेजी में इसे 'हेयरस्प्रिंग' अर्थात् बाल की तरह महीन स्प्रिंग कहते है।

बालकांड—संज्ञा पुं० [सं० बालकाण्ड] रामायण का वह भाग जिसमे रामचंद्र जी के जन्म तथा बाललीला आदि का वर्णन है।

बालका—संज्ञा पुं० [सं० बालक] एक जातिविशेष का अश्व। टाँगन। उ०—(क) जाति बालका समुद थहाए। सेतपूँछ जनु चँवर बनाए।—जायसी ग्रं०, पृ० २२८। (ख) सोरह सहस घोर असवारा। साँवकरन बालका तुखारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३७।

बालकाल—संज्ञा पुं० [सं०] बालक होने की अवस्था। बाल्यावस्था। बचपन। शिशुता।

बालकी—संज्ञा स्त्री० [सं० बालक] कन्या। लड़की। पुत्री।

बालकीय—वि० [सं०] बच्चों से संबद्ध। बच्चों का। बालक संबंधी [को०]।

बालकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ।

बालकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] उस समय के कृष्ण जिस समय वे छोटी अवस्था के थे। बाल्यावस्था के कृष्ण।

बालकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लड़कों का खेल। खिलवाड़। उ०—बालकेलि करता हूँ तुम्हारे साथ।—अनामिका, पृ० ६६। २. ऐसा काम जिसके करने मे कुछ भी परिश्रम न पड़े। बहुत ही साधारण या तुच्छ काम।

बालक्रीड़नक—संज्ञा पुं० [सं० बालक्रीडनक] बालकों के खेलकूद की वस्तु। खिलौना [को०]।

बालक्रीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० बालक्रीडा] वे कार्य जो छोटे छोटे बच्चे किया करते हैं। लड़कों के खेल और काम।

बालखंडी—संज्ञा पुं० [देश०] वह हाथी जिसमें कोई दोष हो।

बालखिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ब्रह्मा के रोएँ से उत्पन्न ऋषियों का एक समूह।

विशेष—इस समूह का प्रत्येक ऋषि डीलडौल में अँगूठे के बराबर है। इस समूह मे साठ हजार ऋषि माने जाते हैं। ये सब के सब बड़े भारी तपस्वी और उर्द्ध्वरेता हैं। ऐसा माना जाता है कि ये सभी सूर्य के रथ के आगे आगे चलते हैं।

बालखोरा—संज्ञा पुं० [फा० बाल+खोरह्] एक रोग जिसमे सिर के बाल झड़ जाते हैं।

बालगर्भिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहिली बार गर्भिणी। २. वह गाय जो पहिली बार गाभिन हो [को०]।

बालगोपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाल्यावस्था के कृष्ण। २. परिवार के लड़के लड़कियाँ आदि। बाल बच्चे।

बालगोविंद—संज्ञा पुं० [सं० बालगोविन्द] कृष्ण का बालक स्वरूप। बालकृष्ण।

बालग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों के प्राणघातक नौ ग्रह जिनके नाम ये हैं—(१) स्कंद, (२) स्कंदापस्मार, (३) शकुनी, (४) रेवती, (५) पूतना, (६) गंधपूतना, (७) शीतपूतना, (८) मुखमंडिका और (९) नैगमेय।

विशेष—कहते हैं, जिस घर में देवयाग और पितृयाग आदि न हो, देवता, ब्राह्मण और अतिथि का सत्कार न हो, आचार विचार आदि का ध्यान न रहता हो, उसमें इन ग्रहों में से कोई ग्रह घुसकर गुप्त रूप से बालक की हत्या कर डालता है। यद्यपि बालक पर भिन्न भिन्न ग्रहों के आक्रमण का भिन्न भिन्न परिणाम होता है, तथापि कुछ लक्षण ऐसे हैं जो सभी ग्रहों के आक्रमण के समय प्रकट होते हैं। जैसे, बच्चे का बार बार रोना, उद्विग्न होना, नाखूनों या दाँतों से अपना या दूसरे का बदन नोचना, दाँत पीसना, होंठ चबाना, भोजन न करना, दिल धड़कना, बेहोश हो जाना इत्यादि। बालग्रह का प्रकोप होते ही उनकी शांति के लिये पूजन आदि किया जाना चाहिए। साधारणत: ये कुछ विशिष्ट रोग ही हैं जो ग्रहों के रूप में मान लिए गए हैं।

बालचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० बालचन्द्र] द्वितीया का चाँद।

बालचंद्रमा—संज्ञा पुं० [सं० बालचन्द्रमस्] दे० 'बालचंद्र'।

बालचर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाय स्काउट'।

बालचरित—संज्ञा पुं० [सं०] बाल्यावस्था का आचरण, खेल कूद

आदि। उ०—बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति आनंद दासन्ह कहँ दीन्हा। —मानस, १।२०३।

बालचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

बालचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बालचरित। २. बच्चों की देख रेख।

बालचुंबाल—संज्ञा पुं० [सं० बालचुम्बाल] मत्स्य। मछली [को०]।

बालछड़—संज्ञा स्त्री० [देश०] जटामासी।

बालज—वि० [सं०] केशनिर्मित। रोमनिर्मित। रोएँ का बना हुआ [को०]।

बालजातीय—वि० [सं०] बचपने का। बच्चों जैसा। साधारण। मूर्खतापूर्ण [को०]।

बालटी—संज्ञा स्त्री० [अं० बकेट] एक प्रकार की डोलची जिसका पेंदा चिपटा और जिसका घेरा नीचे की ओर सँकरा और ऊपर की ओर अधिक चौड़ा होता है। इसमें ऊपर की ओर उठाने के लिये एक दस्ता भी लगा रहता है।

बालटू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाल्टू'।

बालतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० बालतन्त्र] बालकों के लालन पालन आदि की विद्या। कौमारभृत्य। दायागिरी।

बालतनय—संज्ञा पुं० [सं०] खैर का पेड़।

बालतृण—संज्ञा पुं० [सं०] नई नई उगी हुई हरी घास [को०]।

बालतोड़—संज्ञा सं० [हिं० बाल+तोड़ना] एक प्रकार का फोड़ा जो शरीर में का कोई बाल झटके के साथ टूट जाने के कारण उस स्थान पर हो जाता है। इसमें कभी कभी पीड़ा होती है और यह कभी कभी पक भी जाता है। बरटुट। बरतोर।

बालदा—संज्ञा पुं० [सं० बलद] बैल।

बालदलक—संज्ञा पुं० [सं०] खैर का पेड़।

बालदि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बालद+ई (प्रत्य)] दे० 'बरदी', 'बलदी'। उ०—छाड़ि पुरानी जिद्द अयाना बालदि हाँकि सबेरियाँ बे।—रै० बानी, पृ० २७।

बालधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति या धन जो नाबालिग का हो। बालक की संपत्ति [को०]।

बालधि—संज्ञा पुं० [सं०] दुम। पूँछ। उ०—कानन दलि होली रचि बनाइ। हठि तेल बसन बालधि बँधाइ।—तुलसी (शब्द०)।

बालधी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० बालधि] पूँछ। दुम। उ०—बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानो लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है—तुलसी ग्रं०, पृ० १७०।

बालना—क्रि० सं० [सं० ज्वलन] १. जलाना। जैसे, आग बालना। २. रोशन करना। प्रज्वलित करना। जैसे, दीआ बालना।

बालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. खैर का पेड़। २. जवासा।

बालपन—संज्ञा पुं० [सं० बाल+हिं० पन या पना (प्रत्य०)] १. बालक होने का भाव। २. बालक होने की अवस्था। लड़कपन। बचपन। उ०—बालपना सब खेल गवाया तरुन भया नारी बस भा रे।—कबीर० श०, पृ० २६।

बालपाश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर के बालों में पहनने का प्राचीन काल का एक प्रकार का आभूषण।

बालपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही।

बालबच्चे—संज्ञा स्त्री० [सं० बाल+हिं० बच्चा] लड़के बाले। संतान। औलाद।

बालविधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो बाल्यावस्था ही में विधवा हो गई हो।

बालविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह विवाह जो बाल्यावस्था ही में हो। छोटी अवस्था में होनेवाला विवाह।

बालबुद्धि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बालकों की सी बुद्धि। छोटी। बुद्धि। थोड़ी अक्ल। उ०—तुम्हारी बालबुद्धि की मुष्टि; सह रहा था, कह इसे विनोद।—अभिशप्त, पृ० ४। २. अल्पज्ञान या बुद्धि।

बालबुद्धि[2]—वि० जिसकी बुद्धि बच्चों की सी हो। बहुत ही थोड़ी बुद्धिवाला। मंदबुद्धि।

बालबोध[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवनागरी लिपि।

बालबोध[2]—वि० जो बालकों की समझ में भी आ जाय। बहुत सहज।

बालब्रह्मचारी—संज्ञा पुं० [सं० बालब्रह्मचारिन्] वह जिसने बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हो। बहुत ही छोटी उम्र से ब्रह्मचर्य रखनेवाला। उ०—बालब्रह्मचारी अति कोही। बिस्वबिदित छत्रिय कुल द्रोही।—मानस, १। २७२।

बालभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष जिसे 'शांभव' भी कहते हैं।

बालभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बचपन। नासमझी। २. बाल्यावस्था। ३. चापल्य [को०]।

बालभु—संज्ञा पुं० [सं० वल्लभ] वल्लभ। प्रिय। पति। उ०—चिरे मिलत तोहि बालभु पुरत मनोरथ रे।—विद्यापति, पृ० ३५५।

बालभैषज्य—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन।

बालभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह नैवेद्य जो देवताओं, विशेषतः बालकृष्ण आदि की मूर्तियों के सामने प्रातःकाल रखा जाता है। उ०—तब वा डोकरी ने नाग जी को बालभोग को महाप्रसाद अनसखड़ी तथा दूध की (सामग्री) आगे धरी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ८। २. जलपान। कलेवा। नाश्ता।

बालभोज्य—संज्ञा पुं० [सं०] चना।

बालम—संज्ञा सं० पुं० [सं० वल्लभ] १. पति। स्वामी। २. प्रणयी। प्रेमी। जार।

बालमखीरा—संज्ञा पुं० [हिं० बालम+खीरा] एक प्रकार का बड़ा खीरा। इसकी तरकारी बनती है और बीज यूनानी दवा के काम में आते हैं। उ०—नारँग दारिउँ तुरंज जँभीरा। औ हिंदवाना बालमखीरा।—जायसी (शब्द०)।

बालमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके ऊपर छिलका नहीं होता। इसका मांस पथ्य और बलकारक माना जाता है।

बालमरण—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों में प्रचलित (अज्ञों) मूर्खों की मृत्यु का ढंग या तौर तरीका जो १२ प्रकार का कहा गया है [को०]।

बालमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेणी, पेणी, कुक्कुर, रक्तसारी, प्रभुता, स्वरिता, और रजनी नाम की सात मातृकाएँ।

विशेष—इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये बालकों को पकड़ती हैं और उन्हें रोगी बनाती हैं।

बालमीक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वल्मीक] वल्मीक। बाँबी। उ०—अहि सुरंग मनि दुत्ति देवि मंडप तंडव गति। बालमीक बिल अग्र इक्क फनि कुंटल क्रोध मति।—पृ० रा०, १७।३०।

बालमुकुंद—संज्ञा पुं० [सं० बालमुकुन्द] १. बाल्यावस्था के श्रीकृष्ण। २. श्रीकृष्ण की शिशुकाल की वह मूर्ति जिसमें वे घुटनों के बल चलते हुए दिखाए जाते हैं।

बालमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी और कच्ची मूली।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, तथा श्वास, अर्श, क्षय और नेत्र रोग आदि की नाशक, पाचक तथा बलवर्धक मानी जाती है।

बालमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़े का पेड़।

बालमृग—संज्ञा पुं० [सं०] हिरन का शिशु। मृगछौना [को०]।

बालयज्ञोपवीतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बालोपवीत' [को०]।

बालरंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० बालरण्डा] दे० 'बालविधवा'। उ०—ट्रेजडी की लालसा से नायक को मार डालेंगे, और नायिका को बालरंडा बनावेंगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०।

बालरवि—संज्ञा पुं० [सं०] उगता हुआ सूर्य। उषःकालीन सूर्य। उ०—पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बालरवि दामिनि जोती।—मानस, १।३२७।

बालरस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की औषध जो पारे, गंधक और सोनामक्खी से बनाई जाती है और बालकों को पुराने ज्वर, खाँसी और शूल आदि में दी जाती है।

बालराज—संज्ञा पुं० [सं०] वैदूर्य मणि।

बालरोग—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चों की व्याधि या रोग।

बाललीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालकों के खेल। बालकों की क्रीड़ा।

बालव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार दूसरा करण जिसमें शुभ कर्म करना वर्जित नहीं है।

विशेष—कहते हैं, इस करण में जिसका जन्म होता है वह बहुत कार्यकुशल, अपने परिवार के लोगों का पालन करनेवाला, कुलशील संपन्न, उदार तथा बलवान् होता है। दे० 'करण'।

बालवत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय का कुछ दिनों का बछड़ा। २. कबूतर। कपोत [को०]।

बालवत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर।

बालवाह्य—संज्ञा पुं० [सं०] जवान या जंगली बकरा [को०]।

बालविधु—संज्ञा पुं० [सं०] अमावास्या के पीछे का नया चंद्रमा। शुक्ल पक्ष की द्वितीया का चंद्रमा।

बालवैधव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बालविधवापन। बाल्यावस्था में ही विवाह के बाद विधवा हो जाना [को०]।

बालव्यजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चामर। चँवर। २. छोटा पंखा।

बालव्रत—पुं० [सं०] मंजुश्री या मंजुघोष का एक नाम।

बालसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० बालसन्ध्या] सायंकाल की शुरुआत। गोधूलिवेला। रजनीमुख [को०]।

बालसखा—संज्ञा पुं० [सं०] बाल्यावस्था का मित्र। लँगोटिया दोस्त। उ०—बालसखा सुनि हिय हरषाही। मिलि दस पाँच राम पहिं जाही।—मानस, २।२४।

बालसफा—वि० [सं० बाल + हिं० सफा] बाल या रोएँ को उड़ानेवाला। बाल को साफ करनेवाला (साबुन, दवा आदि)।

बालसाँगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० बालशृङ्खला] कुश्ती में एक प्रकार का पेंच या दाँव।

विशेष—इसमें विपक्षी की कमर पर पहुँचकर उसकी एक टाँग उठाई जाती है और उसपर अपना एक पैर रखकर और अपनी जाँघों में से खींचते और मरोड़ते हुए उसे जमीन पर गिरा देते हैं।

बालसात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुग्ध। क्षीर। दूध [को०]।

बालसिंगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० बालशृङ्खला] कुश्ती का एक पेंच। बालसाँगड़ा।

बालसुहृद्—संज्ञा पुं० [सं०] बालसखा। बालमित्र [को०]।

बालसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदयकाल के सूर्य। प्रातःकाल के उगते हुए सूर्य। २. वैदूर्य मणि।

बालस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. बचपना। किशोरावस्था। २. अनुभवहीनता। अज्ञता [को०]।

बालहठ—संज्ञा पुं० [हिं०] बच्चों का हठ या जिद।

बाला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युवती स्त्री। जवान स्त्री। बारह तेरह वर्ष से सोलह सत्रह वर्ष तक की अवस्था की स्त्री। २. पत्नी। भार्या। जोरू। ३. स्त्री। औरत। ४. बहुत छोटी लड़की। नौ वर्ष तक की अवस्था की लड़की। ५. पुत्री। कन्या। ६. नारियल। ७. हलदी। ८. बेले का पौधा। ९. खैर का पेड़। १०. हाथ में पहनने का कड़ा। ११. घीकुआर। १२. सुगंधबाला। १३. मोइया वृक्ष। १४. नीली कटसरैया। १५. एक वर्ष की अवस्था की गाय। १६. इलायची। १७. चीनी ककड़ी। १८. दस महाविद्याओं में से एक महाविद्या का नाम। १९. एक प्रकार की कीड़ी जो गेहूँ की फसल के लिये बहुत नाशक होती है। २०. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तीन रगण और एक गुरु होता है।

बाला²—वि० [फ़ा० बालह् ?] ऊपर की ओर का। ऊँचा।

मुहा०—बोल बाला रहना = संमान और आदर का सदा बढ़ा रहना। बाला बाला = (१) ऊपर ही ऊपर। उनसे अलग जिनके द्वारा कोई काम होना चाहिए या कोई वस्तु भेजी जानी चाहिए। जैसे,—तुमने बाला बाला दरखास्त भेज दी। (२) बाहर बाहर। वहाँ से होते हुए नहीं जहाँ से होते हुए जाना चाहिए था। जैसे—तुम बाला बाला चले गए, मेरे यहाँ उतरे नहीं। (३) इस प्रकार जिसमें किसी को मालूम न हो।

यौ०—बालाए ताक = अलग। दूर। उपेक्षित। उ०—साहित्यिक युद्ध की नीति को बालाए ताक रख मेरी मशहूर पुस्तक 'चाकलेट' पर महात्मा गांधी की राय २५ वर्षों तक छिपा न रखी होती तो मेरी एक भी पुस्तक किसी दूसरे प्रकाशक के हाथ न लगी होती।—खुदाराम (प्रवा०)। बालानशीन = (१) सबसे उत्तम। सर्वश्रेष्ठ। बढ़िया। (१) ऊँचा (स्थान)। बालाबंद = (१) एक प्रकार का अँगरखा। (२) सिरपेंच। कलंगी। (३) एक प्रकार की रजाई या लिहाफ।

बाला[३]—संज्ञा पुं० [हिं० बाल] जो बालकों के समान अज्ञान हो। बहुत ही सीधा सादा। सरल। निश्छल।

यौ०—बाला जोबन = उठती जवानी। वह जवानी जो अभी किशोर या अज्ञ हो। बाला भोला, बाली भोली = बहुत ही सीधा सादा। उ०—तन बेसँभार केस औ चोली। चित अचेत जनु बाली भोली।—जायसी (शब्द०)।

बाला[४]—संज्ञा पुं० [हिं० बाल] १. कान का एक गहना। बाली। उ०—बाला कै जुग कान मैं बाला सोभा देत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८८। २. जौ और गेहूँ की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा।

बालाई[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'मलाई'।

बालाई[२]—वि० १. ऊपरी। ऊपर का। २. वेतन या नियत आय के अतिरिक्त। निश्चित आय के अलावा। जैसे, बालाई आमदनी।

बाला कुप्पी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बाला (= ऊँचा) + कुप्पी] प्राचीन काल का एक प्रकार का दंड जो अपराधियों को शारीरिक कष्ट पहुँचाने के लिये दिया जाता था।

विशेष—इसमें अपराधी को एक छोटी पीढ़ी पर, जो एक ऊँचे खंभे से लटकती होती थी, बैठा देते थे; फिर उस पीढ़ी को रस्सी के सहारे ऊपर खींचकर एकदम से नीचे गिरा देते थे। इसमें आदमी के प्राण तो नहीं जाते थे, पर उसे बहुत अधिक शारीरिक कष्ट होता था।

बालाखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कोठे के ऊपर की बैठक। मकान के ऊपर का कमरा।

बालाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] मकान के बाहर दीवार में बने मोखे जिसमें पंडुक कबूतर आदि रहते हैं।

बालातप—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातःकालीन धूप [को०]।

बालादस्त—वि० [फ़ा०] पद में श्रेष्ठ। बड़ा [को०]।

बालादस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. अनुचित रूप से हस्तगत करना। नामुनासिब तौर से वसूल करना। २. जबरदस्ती। बलप्रयोग।

बालादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभातकालीन सूर्य।

बालापन†—संज्ञा पुं० [सं० बाल+हिं० पन] लड़कपन। बचपन।

बालाबर†—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अँगरखा जिसमें चार कलियाँ और छह बंद होते हैं। दे० 'अँगरखा'।

बालामय—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चों का एक रोग [को०]।

बालारुण—वि० [सं०] प्रातःकालीन ललाई के समान। उ०—सोहता स्वस्थ मुख बालारुण।—अपरा, पृ० १४८।

बालारोग†—संज्ञा पुं० [हिं० बाल (= लोम) + रोग] नहरुआ, नाहरू या नहारू रोग।

बालार्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रातःकालीन सूर्य। २. कन्या राशि में स्थित सूर्य।

बालि—संज्ञा पुं० [सं०] पंपा किष्किंधा का वानर राजा जो अंगद का पिता और सुग्रीव का बड़ा भाई था।

विशेष—कहते हैं, एक बार मेरु पर्वत पर तपस्या करते समय ब्रह्मा की आँखों से गिरे हुए आँसुओं से एक बंदर उत्पन्न हुआ जिसका नाम ऋक्षराज था। एक बार ऋक्षराज पानी में अपनी छाया देखकर कूद पड़ा। पानी में गिरते ही उसने एक सुंदर स्त्री का रूप धारण कर लिया। एक बार उस स्त्री को देखकर इंद्र और सूर्य मोहित हो गए। इंद्र ने अपना वीर्य उसके मस्तक पर और सूर्य ने अपना वीर्य उसके गले में डाल दिया। इस प्रकार उस स्त्री को इंद्र के वीर्य से बालि और सूर्य के वीर्य से सुग्रीव नामक दो बंदर उत्पन्न हुए। इसके कुछ दिनों पीछे उस स्त्री ने फिर अपना पूर्व रूप धारण कर लिया। ब्रह्मा की आज्ञा से उसके पुत्र किष्किंधा में राज्य करने लगे। एक बार रावण ने किष्किंधा पर आक्रमण किया था। उस समय बालि दक्षिण सागर में संध्या कर रहा था। रावण को देखते ही उसने बगल में दबा लिया। अंत में उसके हार मानने पर बालि ने उसे छोड़ दिया। एक बार बालि मय नामक दैत्य के पुत्र मायावी का पीछा करने के लिये पाताल गया था। उसके पीछे सुग्रीव ने उसका राज ले लिया, पर बालि ने आते ही उसे मार भगाया और वह अपनी स्त्री तारा तथा सुग्रीव की स्त्री रूमा को लेकर सुख से रहने लगा। सुग्रीव ने भागकर मतंग ऋषि के आश्रम में आश्रय लिया। जिस समय रामचंद्र सीता को ढूँढ़ते हुए किष्किंधा पहुँचे, उस समय मतंग के आश्रम में सुग्रीव से उनकी भेंट हुई थी। उसी समय सुग्रीव के कहने से उन्होंने बालि का वध किया था, सुग्रीव को राज्य दिलाया था और बालि के लड़के अंगद को वहाँ का युवराज बनाया था। रावण के साथ युद्ध करने में सुग्रीव और अंगद ने रामचंद्र की बहुत सहायता की थी।

बालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी लड़की। कन्या। २. पुत्री।

कन्या। बेटी। ३. छोटी इलायची। ४. कान में पहनने की बाली। ५. बालू। रेत।

बालिकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] बालि नामक बंदर का लड़का अंगद जो रामचंद्र की सेना में था।

बालिग—संज्ञा पुं० [अ० बालिग] [स्त्री० बालिगा] वह जो बाल्यावस्था को पार कर चुका हो। जो अपनी पूरी अवस्था को पहुँच चुका हो। जवान। प्राप्तवय। वयस्क। नाबालिग का उलटा।

विशेष—कानून के अनुसार कुछ बातों के लिये २१ वर्ष और कुछ बातों के लिये १८ वर्ष या इससे अधिक अवस्था का मनुष्य बालिग माना जाता है।

बालिध—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बलदी', 'बरदी'। उ०—[illegible] हो बालिध लाव लागी [illegible] है। [illegible] हमारा जो जग में उजियारी है।—[illegible] प०, पृ० ३६३।

बालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी नक्षत्र का एक नाम।

बालिमा—संज्ञा पुं० [सं० बालिमन्] बालभाव। [illegible]।

बालिश[1]—संज्ञा पुं० [फा०, तुल० सं० बालिशम्, बँग० बालिश] तकिया। मसनद। शिरोपधान।

बालिश[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बालक। शिशु। २. मूर्ख या अबोध व्यक्ति। नासमझ।

बालिश[3]—वि० [सं०] अबोध। अज्ञान। नासमझ। बेवकूफ।

बालिश्त—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की माप जो प्रायः बारह अंगुल से कुछ ऊपर और लगभग आध फुट के होती है। हाथ के पंजे को भरपूर फैलाने पर अंगूठे की नोक से लेकर कानी उँगली की नोक तक की दूरी। बित्ता। बीता। बिता। उ०—रहावत प्रसिद्ध है कि बालिश्त भर की गुँड़ी, बवा जमीन में गाड़ें और [illegible] आसमान में।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६२।

बालिश्तिया—संज्ञा पुं० [फ़ा० बालिश्तियह्] बौना आदमी। नाटा व्यक्ति [को०]।

बालिश्य—संज्ञा पुं० [सं०] बचपना। मूर्खता। अज्ञानता। नासमझी। बेवकूफी।

बालिस[1]—वि० [सं० बालिश] दे० 'बालिश'। उ०—(क) कुलहि लजावै बाल बालिस बजावै गाल कैधौ कूर काल बस तमकि त्रिदोष है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बालिस करत श्रम बालिस कुरंग गहि सालिस भयो न अजो पालिस वरिस में।—दीन० ग्रं०, पृ० १३५।

बालिस[2]—संज्ञा पुं० [अं० बैलास्ट] गिट्टी। कंकड़ पत्थर के टुकड़े।

बलिस ट्रेन—संज्ञा स्त्री० [अं० बैलास्ट ट्रेन] वह रेलगाड़ी जिस पर सड़क बनने के सामान (कंकड़ आदि) लादकर भेजे जाते हैं।

बालीं—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. तकिया। मसनद। शिरोपधान। २. सिरहाना। उ०—पकड़े रेहलत जो आए बाली पर, खूब रोए गले लगा करके।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०।

बाली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० बालिका, बाली] कान में पहनने का एक प्रसिद्ध आभूषण जो सोने या चाँदी के पतले तार का गोलाकार बना होता है। इसमें शोभा के लिये मोती आदि भी पिरोए जाते हैं।

बाली[2]—संज्ञा [illegible] [हिं० बाल] जौ, गेहूँ, ज्वार आदि के पौधों का वह [illegible] भाग जिसमें [illegible] लगते हैं। [illegible]। २. [illegible] में [illegible] किया जाता है।

क्रि०—[illegible]।

बाली[3]—[illegible] [[illegible]] [illegible]।

बाली[4]—[illegible] [सं० वालिन्] [illegible]।

बाली[5]—[illegible] [हिं० [illegible]] [illegible] ([illegible])। उ०—[illegible] अस्मर [illegible], [illegible]।—[illegible]।

बालीदार—[illegible] [हिं० बाली ([illegible]) + फ़ा० दार] [illegible]।

बालीश—[illegible] [[illegible]] [illegible]। [illegible]।

बाली सवरा—[illegible] [हिं० बाली (= [illegible], [illegible]) + हिं० सवरा] वह सवरा जिसमें [illegible] बाली या [illegible] की ओर उभाते हैं।

बालुंकी, बालुंगी—[illegible] [सं० वालुंकी, बालुंगी] एक प्रकार की [illegible] या ककड़ी [illegible]।

बालु—संज्ञा पुं० [[illegible]] दे० 'बालू'।

बालुक[1]—[illegible] [[illegible]] १. [illegible]। २. [illegible]।

बालुक[2]—[illegible] पुं० [[illegible]] दे० 'बालक'। उ०—[illegible] ज्यों [illegible] मिर [illegible]। [illegible] [illegible]।—[illegible], १५८६।

बालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रेत। बालू। २. एक प्रकार का कपूर। ३. ककड़ी।

बालुकायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० बालुकायन्त्र] औषध आदि को फूँकने का एक यंत्र जिसमें औषध को बालू भरी हाँडी में रखकर आग पर रखते या आग में गाड़ते और फूँकते हैं।

बालुकास्वेद—[illegible] [सं०] आयुर्वेद के अनुसार पसीना लाने के लिये गरम बालू से गरमी पहुँचाने की क्रिया।

बालुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

बालू[1]—संज्ञा पुं० [सं० बालुका] पत्थर या चट्टानों आदि का वह बहुत ही महीन चूर्ण या कण जो वर्षा के जल आदि के साथ पहाड़ों पर से बह आता और नदियों के किनारे आदि पर अथवा ऊसर जमीन या रेगिस्तानों में बहुत अधिक पाया जाता है। रेणुका। रेत। उ०—तृष्णा का घोरेहरा ज्यों बालू की भीत।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० २०।

मुहा०—बालू की भीत = ऐसी वस्तु जो शीघ्र ही नष्ट हो जाय अथवा जिसका कोई भरोसा न किया जा सके। उ०—बिनसत बार न लागही ओछे जनकी प्रीत। अंबर डंबर साँझ के ज्यों बालू की भीत।—कबीर (शब्द०)।

बालू²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण भारत और लंका के जलाशयों में पाई जाती है।

बालूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष।

बालूचर—संज्ञा पु० [बालूचर (= एक स्थान)] बंगाल के बालूचर नामक स्थान का गाँजा जो बहुत अच्छा समझा जाता है। (अब यह गाँजा और स्थानो में भी होने लगा है।)

बालूचरा—संज्ञा पुं० [हिं० बालू + चर] वह भूमि जिसपर बहुत उथला या छिछला पानी भरा हो। चर। (लश०)

बालूदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बालू + फ़ा० दानी] एक प्रकार की झँझरीदार डिबिया जिसमें लोग बालू रखते हैं। इस बालू से वे स्याही सुखाने का काम लेते हैं।

विशेष—साधारणतः बहीखाता लिखनेवाले लोग, जो सोख्ते का व्यवहार नहीं करते, इसी बालूदानी से तुरंत के लिखे हुए लेखों पर बालू छिड़कते हैं। और फिर उस बालू को उसी डिबिया की झँझरी पर उलटकर उसे डिबिया में भर लेते हैं। प्राचीन काल में इसी प्रकार लेखों की स्याही सुखाई जाती थी।

बालूबुर्द¹—वि० [हिं० बालू + फ़ा० बुर्द (= ले गया)] बालू द्वारा नष्ट किया हुआ।

बालूबुर्द²—संज्ञा पुं० वह भूमि जिसकी उर्वरा शक्ति बालू पड़ने के कारण नष्ट हो गई हो।

बालूसाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० बालू + साही (= अनुरूप)] एक प्रकार की खस्ती मिठाई।

विशेष—इसके लिये पहले मैदे की छोटी छोटी टिकिया बना लेते हैं और उनको घी में तलकर दो तार के शीरे में डुबाकर निकाल लेते हैं। यह खाने में बालू सी खसखसी होती है।

बालेंदु—संज्ञा पुं० [सं० बालेन्दु] द्वितीया का चंद्रमा। दूज का चाँद [को०]।

बालेमियाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] गाजी मियाँ।

बालेय¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० बालेया] १. गदहा। खर। २. चावल। ३. बलि राजा का पुत्र (को०)।

बालेय²—वि० १. मृदु। कोमल। २. जो बालकों के लिये लाभदायक हो। ३. जो बलि देने के योग्य हो। बलिदान करने लायक। ४. बलि से उत्पन्न। बलि का (को०)।

बालेयशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास। भँगरैया। भृंगराज। भँगरा [को०]।

बालेष्ट—संज्ञा पु० [सं०] बेर।

बालोपचरण—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों की चिकित्सा या सुश्रूषा [को०]।

बालोपचार—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'बालोपचरण'।

बालोपवीत—संज्ञा पु० [सं०] १. यज्ञोपवीत। जनेऊ। २. कौपीन। कछनी। लँगोटी [को०]।

बालोबाल—क्रि० वि० [हिं०] बाल बाल। रोम रोम। जर्रा जर्रा। उ०—काशी पंडत प्यारेलाल मेरे जान कूँ सँबाल। पीर फकीर हक्ताल बालोबाल गुन्हेगार हूँ।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

बाल्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बालटी'।

बाल्टू—संज्ञा पुं० [अं० बोल्ट] एक प्रकार की लोहे की कील जिसके एक ओर रोक के लिये घुंडी बनी रहती है और दूसरी ओर चूड़ियों की रेखा। इसी में ढिबरी (नट) कसी जाती है।

बाल्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाल का भाव। लड़कपन। बचपन। २. बालक होने की अवस्था। ३. नासमझी। अज्ञता (को०)।

बाल्य²—वि० १. बालक संबंधी। बालक का। २. बालक की अवस्था से संबंध रखनेवाला। बचपन का।

यौ०—बाल्यकाल = दे० 'बाल्यावस्था'।

बाल्यावस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायः सोलह सत्रह वर्ष तक की अवस्था। बालक होने की अवस्था। युवावस्था से पहले की अवस्था। लड़कपन।

बाल्हीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बलख का प्राचीन नाम। २. बाल्हीक का निवासी।

बाव¹—संज्ञा पुं० [सं० वायु, प्रा० वाव] १. वायु। हवा। पवन। उ०—दादू बलि तुम्हारे बाप जी गिणत न राणा राव। मीर मलिक प्रधान पति तुम बिन सब ही बाव।—दादू (शब्द०)। २. बाई। ३. अपान वायु। पाद। गोज।

मुहा०—बाव सरना = अपान वायु का निकलना। पाद निकलना।

बाव²—संज्ञा पुं० [फ़ा० बाव] जमींदारों का एक हक जो उनको असामी की कन्या के विवाह के समय मिलता है। मँड़वच। भुरस।

बावजा—वि० [फ़ा० बावजूअ] सभ्य। शिष्ट [को०]।

बावजूद—क्रि० वि० [फ़ा०] होते हुए भी। यद्यपि। उ०—समस्त पच्चीकारी और मीनाकारी के बावजूद प्रकृति और प्रेम संबंधी रचनाओं में भी प्रकट होता है।—बंदन०, पृ० २०।

बावड़ना⁽ᵖ⁾†—क्रि० अ० [हिं० बहुरना] बहुरना। लौटना। वापस होना। उ०—मन मेरु से बावड़ै, त्रिकुटी लग ओंकार।—संतबानी०, भा० १, पृ० १३१।

बावड़ाना†—क्रि० स० [हिं० बावड़ना का प्रे० रूप] वापस कराना। घूमने या वापस होने के लिये प्रेरित करना। उ०—काला नाग को सो पूँछ पाछा सूँ दबायो। फोजाँ नावड़ी के जाट पाछो बावड़ायो।—शिखर०, पृ० ८६।

बावड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाप + हिं० ड़ी (प्रत्य०)] १. वह चौड़ा और

बड़ा कुआँ जिसमें उतरने के लिये सीढ़ियाँ होती हैं। बावली। २. छोटा तालाब। उ०—क्या पोखर क्या कुआँ बावड़ी क्या खाईं क्या कोर।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ७३।

बावदूकता(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बावदूक+ता] वाग्मिता। वक्तृता। उ०—कृस्न कृस्न बानी को भूषन, या बिन बावदूकता दूषन।—घनानंद, पृ० २५०।

बावन[1]—संज्ञा पुं० [सं० वामन] दे० 'वामन'।

बावन[2]—संज्ञा पुं० [सं० द्विपंचाशत्, पा० द्विपण्णासा, प्रा० बिवण्णा] पचास और दो की संख्या या उसका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५२।

बावन[3]—वि० पचास और दो। छब्बीस का दूना।

मुहा०—बावन तोले पाव रत्ती=जो हर तरह से बिलकुल ठीक हो। बिलकुल दुरुस्त। जैसे,—आपकी सभी बातें बावन तोले पाव रत्ती हुआ करती हैं। उ०—उन विदेशियों के अनुमान और प्रमाण बावन तोले पाव रत्ती सटीक और सच्चे ही हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७२। बावन परकार=भोजनार्थ बावन प्रकार की वस्तुएँ। उ०—पुनि बावन परकार जो आए। ना अस देखे कबहूँ खाए।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१३। बावन बीर=(१) बहुत अधिक वीर या चतुर। बड़ा बहादुर या चालाक। (२) एक प्रकार के अपदेवता जिनकी संख्या ५२ कही जाती है। पृथ्वीराज रासो के 'आपेटक वीर बरदान' शीर्षक समय में इनके नाम और गुण निरूपित हैं।

बावनवाँ—वि० [हिं० बावन+वाँ (प्रत्य०)] गिनती में बावन के स्थान पर पड़नेवाला। जो क्रम में बावन के स्थान पर हो।

बावना[1]—वि० [सं० वामनक, प्रा० वावणअ] दे० 'बौना'।

बावना(पु)†[2]—क्रि० अ० [सं० वहन, हिं० बाहना, मि० भोज० उआना, उबाना] चलाना। फेंकना। मारना। उ०—दरिया सुमिरै नाम को, साकित नाहिं सोहात। बीज चमक्के गगन मे, गधिया बावै लात।—दरिया० बानी, पृ० ६।

बावफा—वि० [फ़ा० बावफा] प्रेम करनेवाला। वफादार। प्रेमी। उ०—सबी खीश बेगाना हमसे खफा, जो थे बावफा हो गए बेवफा।—दक्खिनी०, पृ० २११।

बावभक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाव (=वायु)+अनु० भक् अथवा सं० वायु+भक्ष्य] पागलपन। सिड़ीपन। झक।

बावर(पु)†[1]—वि० [सं० वातुल, प्रा० वाउल, हिं० बावला, बाउर] १. पागल। बावला। उ०—पिय वियोग अस बावर जीऊ, पपिहा जस बोलै पिउ पीऊ।—जायसी (शब्द०)। २. मूर्ख। बेवकूफ। निर्बुद्धि। उ०—राजै दुहू दिसा फिर देखा। पंडित बावर कौन सरेखा।—जायसी (शब्द०)।

बावर[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] यकीन। विश्वास। उ०—गर नहीं बावर तो करना टुक कयास। क्या गंदे मछली नमन तेरे है बास।—दक्खिनी०, पृ० १८०।

बावर[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० वागुर (=जाल)] जाल। फंदा। उ०—बावरिया ने बावर डारी, फंद जाल सब कीता रे।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ८।

बावरची—संज्ञा पुं० [फ़ा०] भोजन पकानेवाला। रसोइया।

यौ०—बावरचीखाना।

बावरचीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० बावरचीखानह्] भोजन पकने का स्थान। पाकशाला। रसोईघर।

बावरा—वि० [हिं०] दे० 'बावला'। उ०—बावरो रावरो नाह भवानी। दानि बड़ो दिन, देत दए बिनु वेद बड़ाई भानी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४५६।

बावरि(पु)†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बावली'।

बावरि(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वागुर] जाल। उ०—मोहमया की बावरि मंडी भरम करम का फंदा। जाया जीव सब काल अहेरै के छुटा के बंधा।—राम० धर्म०, पृ० १४६।

बावरिया(पु)†—वि० [सं० वागुरिक] जालवाला। अहेरी। उ०—बावरिया ने बावर डारी, फंद जाल सब कीता रे।—कबीर श०, भा० २, पृ० ८।

बावरी[1]—वि० [हिं०] दे० 'बावली'।

बावरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश० अथवा सं० वाल्वज] एक प्रकार की बारहमासी घास जो उत्तरी भारत के रेतीले और पथरीले मैदानों में पाई जाती है और पशुओं के चारे के लिये अच्छी समझी जाती है। सरदाला।

बावरी†[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जाति। उ०—सरदारों को चाहिए कि वे चोरो डकैतों, थोरियों, बावरियों, मोगियों और बागियों को आश्रय न दें।—राज० इति०, पृ० १०६५।

बावल—संज्ञा पुं० [सं० वायु] आँधी। अंधड़। (डिं०)। उ०—साख जोग पपील मति, बिघन पड़ै बहु आय। बावल लागै गिर पड़ै मंजल न पहुँचै जाय।—दरिया० बानी, पृ० ३५।

बावला—वि० [सं० वातुल, प्रा० वाउल] [वि० स्त्री० बावली] जिसे वायु का प्रकोप हो। पागल। विक्षिप्त। सनकी।

बावलापन—संज्ञा पुं० [हिं० बावला+पन (प्रत्य०)] पागलपन। सिड़ीपन। झक।

बावली—संज्ञा स्त्री० [सं० वाप+हिं० ड़ी या ली (प्रत्य०)] १. चौड़े मुँह का कुआँ जिसमें पानी तक पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ बनी हों। उ०—बावली तो बनी नहीं मगरों ने डेरा डाल दिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३७। २. छोटा गहरा तालाब जिसमें पानी तक सीढ़ियाँ हों। ३. हजामत का एक प्रकार जिसमे माथे से लेकर चोटी के पास तक के बाल चार पाँच अंगुल चौड़ाई में मूड़ दिए जाते हैं जिससे सिर के ऊपर चूल्हे का सा आकार बन जाता है।

बावाँ(पु)†—वि० [सं० वाम या वामक] १. बाईं ओर का। २. प्रतिकूल। विरुद्ध। उ०—(क) प्रभु रुख निरख निरास भरत भए जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) घरहु धीर बलि जाऊँ तात मोको आजु विधाता बावों।—तुलसी (शब्द०)।

वावीस†—संज्ञा पुं० [सं० द्वाविंशति, प्रा० वावीस] दे० 'वाईस'।

वावीसवाँ—वि० [प्रा०] दे० 'वाइसवाँ' उ०—अस्टम दीप वावीसवाँ प्रकाशा।—कबीर सा०, पृ० ६२३।

वावेला†—संज्ञा पुं० [फ़ा० वावैलह्] शोरगुल। कुहराम।

वाशऊर—वि० [फ़ा०] गुणी। शऊरदार। उ०—कितनी वातमीज वाशऊर, हसीन लड़की थी।—काया०, पृ० ३३६।

वाशिंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० वाशिंदह्] रहनेवाला। निवासी।

वाष्कल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक दैत्य का नाम। २. वीर। योद्धा। ३. एक उपनिषद् का नाम। ४. एक ऋषि का नाम।

वाष्प—संज्ञा पुं० [सं० वाष्प] १. भाप। २. लोहा। ३. अश्रु। आँसू। ४. एक प्रकार की जड़ी। ५. गौतम बुद्ध के एक शिष्य का नाम।

यौ०—वाष्पकंठ = गदगद कंठ। जिसका गला अश्रु के कारण भर आया हो। वाष्पकल = अश्रु आने के कारण अस्पष्ट और मधुर (ध्वनि)। वाष्पपूर, वाष्पप्रकर = आँसू की अधिकता या वेग। वाष्पमोक्ष, वाष्पमोचन = रुदन। रोना। आँसू गिराना। वाष्पविप्लव = अश्रुपूरित। अश्रु से छलकता हुआ वाष्पसंदिग्ध = दे० 'वाष्पकल'।

वाष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाप। वाष्प। २. हिंगुपत्री। ३. एक शाक। माठ। मरसा [को०]।

वाष्पका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री [को०]।

वाष्पांबु—संज्ञा पुं० [सं० वाष्पाम्बु] अश्रु। आँसू [को०]।

वाष्पाकुल—वि० [सं०] अश्रु से भरा हुआ या परिव्याप्त [को०]।

वाष्पाप्लुत—वि० [सं०] दे० 'वाष्पाकुल'।

वाष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक शाक जिसे मराठी माठ कहते हैं। मरसा [को०]।

वाष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री।

वासंत—संज्ञा पुं० [वासन्त] दे० 'बसंत'। उ०—मनहु पाइ वासंत पालास फूले।—प० रासो, पृ० ८३।

वासंतिक—वि० [सं० वासन्तिक] १. वसंत ऋतु संबंधी। २. वसंत ऋतु में होनेवाला।

वासंती—संज्ञा स्त्री० [सं० वासन्ती] १. अड़ूसा। वासा। २. माधवी लता।

वास¹—संज्ञा पुं० [सं० वास] १. रहने की क्रिया या भाव। निवास। २. रहने का स्थान। निवासस्थान। ३. बू। गंध। महक। उ०—फूली फूली केतकी भौंरा लीजै वास।—पलटू०, भा० १, पृ० ५२। ४. एक छंद का नाम। ५. वस्त्र। कपड़ा। पोशाक। उ०—(क) जहाँ कोमलै वल्वरी वास सोहैं। जिन्हैं अल्पधी कल्पशाखी विमोहैं।—केशव (शब्द०)। (ख) पाँच घरी चौथे प्रहर पहिरति राते वास। करति अंगरचना विविध भूषन भेष विलास।—देव (शब्द०)।

वास²—संज्ञा पुं० [सं० वसन] छोटा वस्त्र। उ०—दासि दास वास रोम पाट को कियो। दायजो विदेहराज भाँति भाँति को कियो।—केशव (शब्द०)।

वास³—संज्ञा स्त्री० [सं० वासना] वासना। इच्छा। लालच। उ०—तिय के मन दूजो नहीं सुख सोई निरेत जिन्यो विधि वास धरे।—सेवक श्याम (शब्द०)।

वास⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० वासिः] १. अग्नि। आग। २. एक प्रकार का अस्त्र। उ०—गिरिधरदास तीर तुपक तमंचा लिए लरैं बहु भाँति वास धार बरसैं असह।—गिरधर (शब्द०)। ३. तेज धारवाली छुरी, चाकू, कैंची इत्यादि छोटे छोटे अस्त्र जो रण मे तोपों में भरकर फेंके जाते हैं।

वास⁵—संज्ञा पुं० [देश०] एक पर्वतीय वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। बिपरसा।

विशेष—इस वृक्ष की लकड़ी रंग मे लाली लिए काली और इतनी मजबूत होती है कि साधारण कुल्हाड़ियों से नहीं कट सकती। यह लकड़ी पलग के पावे और दूसरे सजावटी सामान बनाने के काम मे आती है। इसमे बहुत ही सुगंधित फूल लगते हैं और गोंद निकलता है जो कई कामों मे आता है। पहाड़ों में यह वृक्ष ३००० फुट की ऊँचाई तक होता है।

वासक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वासक] वस्त्र। दे० 'वासक'।

वासकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञशाला।

वासकसज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं० वासकसज्जा] वह नायिका जो अपने प्रिय या प्रियतम के आने के समय केलिसामग्री सज्जित करे। नायक के आने के समय उससे मिलने की तैयारी करनेवाली नायिका।

वासकसज्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वासकसज्जा] दे० 'वासकसज्जा'।

वासठ¹—वि० [सं० द्विषष्टि, प्रा० द्वासट्ठि-वासट्ठि] साठ और दो। इकतीस का दूना।

वासठ²—संज्ञा पुं० साठ और दो की संख्या या उसको सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६२।

वासठवाँ—वि० [सं० द्विषाष्ठितम, हि वासठ+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम मे वासठ के स्थान पर हो। गिनती मे वासठ के स्थान पर पड़नेवाला।

वासदेव¹—संज्ञा पुं० [सं० वासिःदेव] अग्नि। आग। (डिं०)।

वासदेव²—संज्ञा पुं० [सं० वासुदेव] दे० 'वासुदेव'।

वासन¹—संज्ञा पुं० [सं० वासन] बरतन। भाँड़ा। उ०—कंचन भाजन विष भरा, सो मेरे किस काम। दरिया वासन सो भला, जामे अमृत नाम।—दरिया० बानी, पृ० ३८।

वासन²—संज्ञा पुं० [सं० वसन] वसन। वस्त्र। परिधान। उ०—वसुधा सब उज्वल रूप कियं। सित वासन जानि बिछाय दियं।—पृ० रासो, पृ० २१।

वासना¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वासना] १. इच्छा। वांछा। चाह। दे० 'बासना'। २. गंध। महक। बू। उ०—आपु भँवर आपुहि कमल आपुहि रंग सुवास। लेत आपुही वासना आपु रमत सब पास।—रसनिधि (शब्द०)।

वासना²—क्रि० स० [सं० वासन या वास] सुगंधित करना।

महकाना। सुवासित करना। उ०—दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत।—तुलसी (शब्द०)।

वासना³—क्रि० अ० [हिं० वास + ना (प्रत्य०), अथवा सं० वसन (= निवास)] बसना। रहना। निवास करना। उ०—क्या सराय का वासना, सब लोग वेगाना है।—कबीर श०, पृ० ४।

वासना‡—क्रि० स० किसी के बसने या निवास की व्यवस्था करना। (बोल०)।

वसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० वसना (= थैली)] रुपए पैसे रखने की जालीदार लंबी एक थैली जिसमे रुपए रखकर कमर मे बाँध लेते थे। नोटों के अधिक चलन से अब यह जाती रही। दे० 'बसना'। उ०—कहा करौं अति सुख द्वै नैना, उमँगि चलत पल पानी। सूर सुमेरु समाइ कहाँ लौं बुधि वासनी पुरानी।—सूर०, १०।१७८४।

वासफूल—संज्ञा पुं० [हिं० वास (= गंध)+फूल] १. एक प्रकार का धान। २. इस धान का चावल।

वासमती—संज्ञा पुं० [हिं० बास (= महक)+मती (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का धान। २. इस धान का चावल जो पकाने पर अच्छी सुगंध देता है।

वासर—संज्ञा पुं० [सं० वासर] १. दिन। २. सबेरा। प्रातःकाल। सुबह। ३. वह राग जो सवेरे गाया जाता है। जैसे, प्रभाती, भैरवी इत्यादि। उ०—सर सो प्रतिबासर बासर लागै। तन घाव नहीं मन प्राणन खाँगै। केशव (शब्द०)।

वासलीका—वि० [फ़ा० वासलीकह्] ढंग से काम करनेवाला। सहूरदार (कौ०)।

वासव—संज्ञा पुं० [सं० वासव] इंद्र।

वासवी—संज्ञा पुं० [सं० वासवि] अर्जुन। (डिं०)।

वासवी दिशा—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व की दिशा जो इंद्र की दिशा मानी जाती है।

वासस—संज्ञा पुं० [सं० वासस्] वस्त्र। दे० 'वासस्'।—नंद० ग्रं०, पृ० ८४।

बाससी⑤—संज्ञा पुं० [सं० वाससि] कपड़ा। वस्त्र। उ०—तून तेल बोरि बोरि जोरि जोरि वाससी। लै अगार रार ऊन दून सूत सों कसी।—केशव (शब्द०)।

वासा¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पक्षी। २. अडूसा।

वासा²—संज्ञा पुं० [सं० वास] वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर भोजन का प्रबंध हो। भोजनालय।

विशेष—कलकत्ता, बंबई आदि बड़े बड़े व्यापारप्रधान नगरों में भिन्न भिन्न जातियों के ऐसे वासे हैं। इनमें वे लोग, जो बिना गृहस्थी के हैं, निर्धारित मूल्य देकर भोजन करते हैं।

वासा³—संज्ञा पुं० [हिं० बाँस] एक प्रकार की घास जो आकार मे बाँस के पत्तों के समान होती है। यह पशुओं को खिलाई जाती है।

वासा⁴—संज्ञा पुं० दे० 'वास'।

वासा⁵—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पियावाँस'।

वासिग⑤—संज्ञा पुं० [सं० वासुकि, प्रा० वासुगि] दे० 'वासुकी'। उ०—कहि महिपल बल कितौ एक दट्ठ हरि धारिय। कहि वासिग बल किचौ सु पुनि करि नेत्रा सारिय।—पृ० रा०, १।७८०।

वासित—वि० [सं० वासित] सुगंधित किया हुआ। सुवासित। उ०—तिनकी बास बायु लै गयौ। ता करि सब बन बासित भयौ।—नंद० ग्रं, पृ० २९२।

वासिष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० वशिष्ट] बन्नास (बनास) नदी का एक नाम। ऐसा माना जाता है कि बसिष्ठ जी के तप के प्रभाव से ही यह नदी प्रकट हुई थी।

वासी¹—वि० [सं० वासर या बाँस (= गंध)] १. देर का बना हुआ। जो ताजा न हो। (खाद्य पदार्थ) जिसे तैयार हुए अधिक समय हो चुका हो और जिसका स्वाद बिगड़ चुका हो। जैसे,—बासी भात, बासी पूरी, बासी मिठाई। २. जो कुछ समय तक रखा रहा हो। जैसे, बासी पानी। जो सूखा या कुम्हलाया हुआ हो। जो हरा भरा न हो। जैसे, बासी फूल, बासी साग। ४. (फल आदि) जिसे डाल से टूटे हुए अधिक समय हो चुका हो। जिसे पेड़ से अलग हुए ज्यादा देर हो गई हो। जैसे, बासी अमरूद, बासी आम।

मुहा०—बासी कढ़ी में उबाल आना=(१) बुढ़ापे में जवानी का उमंग आना। (२) किसी बात का समय बिलकुल बीत जाने पर उसके संबंध मे कोई वासना उत्पन्न होना। (३) असमर्थ में सामर्थ्य के लक्षण दिखाई देना। बासी बचे न कुत्ता खाय = इतना अधिक न बनाना कि बाकी बचे। चाट पोंछकर सब कुछ स्वयं खा जाना। अन्य के लिये गुंजाइश न रहना। बासी मुँह = (१) जिस मुँह मे सवेरे से कोई खाद्य पदार्थ न गया हो। जैसे, बासी मुँह दवा पी लेना। (२) जिसने रात के भोजन के उपरांत प्रातःकाल कुछ न खाया हो। जैसे,—मुझे क्या मालूम कि आप अभी तक बासी मुँह हैं।

यौ०—बासी ईद = ईद का दूसरा दिन। बासी तिबासी = कई दिनों का सड़ा गला।

वासी²—वि० [सं० वासिन्] रहनेवाला। निवास करनेवाला। वसनेवाला। उ०—खासी परकासी पुनवासी चंद्रिका सी जाके, वासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २८२।

वासु‡—संज्ञा स्त्री० [सं० वास] महक। गंध। दे० 'वास'। उ०—तिनकी बासु बायु लै गयौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २९२। २. निवास। वास। उ०—वासु छंडि कनवज कहँ चल्लिय। राजा दल पाँगुर सह मिल्लिय।—प० रासो, पृ० ११९।

बासुक⑤—संज्ञा पुं० [सं० वासुकि] दे० 'वासुकि'। उ०—सेसनाग

श्रौ राजा बासुक बराह मुछित होइग्रा हे। —कबीर श०, भा० ३ पृ० १२।

बासुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० वासुकि] दे० 'वासुकि'।

बासुदेव—संज्ञा पुं० [सं० वासुदेव] दे० 'वासुदेव'। उ०—इन सबहिन ते बासुदेव अच्युत हैं न्यारे।—नंद० ग्रं० पृ० १७८।

बासुरि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वासर] दिन। दे० 'वासर'। उ०—बासुरि गमि न रैणि गमि ना सुपनै तरगम। कबीर तहाँ बिलबिया जहाँ छाँहड़ी न घम।—कबीर ग्रं०, पृ० ५४।

बासौंधी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बसौंधी'।

बास्त—वि० [सं०] [वि० स्त्री० बास्ति] बकरे का। बकरे से संबंध रखनेवाला [को०]।

बास्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] बकरों का झुंड या समूह। अजयूथ [को०]।

बास्तुक(पु)—वि० [सं० वास्तुक] शिल्प या वास्तुशास्त्र संबंधी। उ०—मनि मंत्र जंत्र बास्तुक बिनोद। नैपथ विलास सु नितत्त मोद।—पृ० रा०, १।७३२।

बाह[1]—संज्ञा पुं० [सं० वाह] १. खेत जोतने की क्रिया। खेत की जोताई। चास। २. प्रवाह। निकास।

बाह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'बाँह'। उ०—सरकी सारी सीस ते सुनतहि आगम नाह। तरकी बलया कंचुकी दरकी फरकी बाह।—स० सप्तक, पृ० २४८। २. अश्व (वहन करनेवाला)।

बाहक(पु)—संज्ञा पुं०, वि० [सं० वाहक] १. सवार। २. वहन करनेवाला। ढोनेवाला।

बाहकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वाहक+ई (प्रत्य०)] पालकी ले चलनेवाली स्त्री। कहारिन। उ०—सजी बाहकी सखी सुहाई। लीन्ही शिविका कंध उठाई।—रघुराज (शब्द०)।

बाहड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह खिचड़ी जो मसाला और कुम्हड़ौरी डालकर पकाई गई हो।

बाहन[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक बहुत लंबा पेड़ जिसके पत्ते जाड़े के दिनों मे झड़ जाते हैं।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी बहुत ही लाल और भारी होती है और प्रायः खराद और इमारत के काम मे आती है।

२. सफेदा नाम का एक पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है और बहुत जल्दी बढ़ जाता है।

विशेष—यह काश्मीर और पंजाब के इलाकों में अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी प्रायः आरायशी सामान बनाने के काम मे आती है।

बाहन(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० वाहन] दे० 'वाहन'। उ०—असवार डिगत बाहन फिरै भिरै भुत भैरव विकट।—हम्मीर०, पृ० ५८।

बाहनहारा(पु)—वि० [हिं०] धारण करनेवाला। सहन करनेवाला। उ०—जाय पूछ वा घायलैं, दिवस पीर निसि जागि। बाहनहारा जानिहै, कै जानै जिस लागि।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २७।

बाहना—क्रि० स० [सं० वहन] १. ढोना, लादना या चढ़ाकर ले जाना या ले आना। २. चलाना। फेंकना। (हथियार)। उ०—(क) लखि रथ फिरत असुर बहु धाए। बाहत अस्त्र तुरनि पर आए।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) करि क्रोध जोध बाहंत सार।—ह० रासो, पृ० ८२। (ग) नेही सनमुख जुरत ही तहँ मन की गिरवान। बाहत हैं रन बावरे तेरे द्रग किरवान।—रसनिधि (शब्द०)। (घ) इहित संग उभ्भारि बिरचि बाही गज मथ्थह।—पृ० रा०, १.६५३। ३. गाड़ी, घोड़े आदि को हाँकना। ४. धारण करना। लेना। पकड़ना। ५. बहना। प्रवाहित होना। उ०—(क) तजे रँग ना रँग केसरि को अंग धोवत सो रँग बाहत जात।—देव (शब्द०)। (ख) नातरु जगत सिंधु महँ भंगा। बाहत कर्म वीचिकन संगा।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) मैं निरास औ बिनु जिउ बाहा। आस दई तै जिउ घट बाहा।—चित्रा०, पृ० ६५। ६. खेत जोतना। खेत मे हल चलाना। जैसे,—आज तो उसने चार बीघा बाह के दम लिया। ७. वपन करना। बीज आदि बोना। उ०—जो बाहै लुनिएगा सोई। अमृत खाइ कि विष फल होई।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३३६। ८. गौ, भैंस आदि को गाभिन कराना। ९. कंघी करना। बाछना। उ०—बालों को बाहकर उनमें तेल डालते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८०। १०. लगाना। आँजना। सारना। उ०—दादू सतगुरु अंजन बाहि करि, नैन पटल सब खोलै। बहरे कानो सुणने लागे, गूँगे मुख सो बोले।—दादू० बानी, पृ० ३।

बाहनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वाहिनी] १. सेना। फौज। २. नदी।

बाहबली—संज्ञा सं० [हिं० बाँह+बल] कुश्ती का एक पेंच।

बाहम—क्रि० वि० [फ़ा०] आपस मे। परस्पर। एक दूसरे के साथ।

बाहर[1]—क्रि० वि० [सं० बाह्य या बहिर] १. स्थान, पद, अवस्था या संबंध आदि के विचार से किसी निश्चित अथवा कल्पित सीमा (या मर्यादा) से हटकर, अलग या निकला हुआ। भीतर या अंदर का उलटा। उ०—तुलसी भीतर बाहरहुँ जो चाहेसि उजियार।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बाहर आना या होना = सामने आना। प्रकट होना। बाहर करना = अलग करना। दूर करना। हटाना। बाहर बाहर = ऊपर ऊपर। बाहर रहते हुए। अलग से। बिना किसी को जताए। जैसे,—वे कलकत्ते से आए तो थे पर बाहर बाहर दिल्ली चले गए।

२. किसी दूसरे स्थान पर। किसी दूसरी जगह। अन्य नगर या गाँव आदि में। जैसे,—(क) आप बाहर से कब लौटेंगे। (ख) तुम्हें बाहर जाना था, तो मुझसे मिल तो लेते। उ०—कंता ते सुखी तेहि गारू तेहि गर्व। कंत पियारे [illegible] सुख भूला सर्व।—जायसी (शब्द०)।

[illegible]का = ऐसा आदमी जिससे किसी [illegible] हो। बेगाना। पराया।

३. प्रभाव, अधिकार या संबंध आदि से अलग। जैसे,—हम आपसे किसी बात में बाहर नहीं हैं, आप जो कुछ कहेंगे, वही हम करेंगे। उ०—साईं मैं तुझ बाहरा कौड़ी हूँ नहि पाँव। जो सिर ऊपर तुम धनी महँगे मोल बिकाँव।—कबीर (शब्द०)। ४. बगैर। सिवा। (क्व०)। ५. से अधिक। प्रभाव, शक्ति आदि से अधिक। जैसे, शक्ति से बाहर, बूते से बाहर आदि।

बाहर२—संज्ञा पुं० [हिं० बाहा] वह आदमी जो कुएँ की जगत पर मोट का पानी उलटता है।

बाहरजामीⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० बाह्ययामी] ईश्वर का सगुण रूप। राम, कृष्ण, नृसिंह इत्यादि अवतार। उ०—अंतरजामिहु ते बड़ बाहरजामी हैं राम जो नाम लिए तें।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२६।

बाहरी—वि० [हिं० बाहर + ई (प्रत्य०)] १. बाहर का। बाहरवाला। २. जो घर का न हो। पराया। गैर। ३. जो आस का न हो। अजनबी। ४. जो केवल बाहर से देखने भर को हो। ऊपरी। जैसे,—यह सब बाहरी ठाठ है, अंदर कुछ भी नहीं है।

बाहरीटाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाहरी + टाँग] कुश्ती का एक पेंच जिसमे प्रतिद्वंद्वी के सामने आते ही उसे खींचकर अपनी बगल मे कर लेते हैं और उसके घुटनो के पीछे की ओर अपने पैर से आघात करके उसे पीठ की ओर ढकेलते हुए गिरा देते हैं।

बाहस—संज्ञा पुं० [देश०] अजगर। (डिं०)।

बाहाँजोरी—क्रि० वि० [हिं० बाँह + जोड़ना] भुजा से भुजा मिलाकर। हाथ से हाथ मिलाकर। उ०—(क) बाहाँजोरी निकसे कुंज ते प्रात रीझि रीझि कहैं बात।—सूर (शब्द०)। (ख) राजत हैं दोउ बाहाँजोरी दपति अरु ब्रज बाल।—सूर (शब्द०)।

बाहाँबाहीँ—क्रि० वि० [सं० बाहाबाहि] १. दे० 'बाहाँजोरी'। २. बाहुयुद्ध। बाहुसंघर्ष।

बाहा१—संज्ञा पुं० [सं०] भुजा। बाहु [को०]।

बाहा२—संज्ञा पुं० [हिं० बाँधना] वह रस्सी जिससे नाव का डाँड़ बँधा रहता है।

बाहा३—संज्ञा पुं० [सं० वह] नाला। प्रवाह। उ०—उधर से एक बाहा पड़ता था। उसे लाँघने के लिये वह क्षण भर के लिये रुकी थी कि पीछे से किसी ने कहा—कौन है!—तितली, पृ० १६०।

बाहिज१—क्रि० वि० [सं० बाह्य] ऊपर से। बाहर से। देखने मे। बाहरी तौर पर। उ०—बाहिज नम्र देखि मोहिं भाई। विप्र पढाव पुत्र की नाईं।—तुलसी (शब्द०)।

बाहिज२—वि० [सं० बाह्यज, प्रा० हिं० बाहिज] बाह्य। बाहरी। बाहर की। बाहर से संबद्ध। उ०—(क) बाहिज चिंता कीन्ह बिसेखी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोउ कहै यह ऐसेहि होत है क्यों करि मानिए बात अनिष्टी। सुंदर एक किए अनुभौ बिनु जानि सकै नहिं बाहिज दृष्टी।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१६।

बाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाहिनी] १. वह सेना जिसमे तीन गण अर्थात् ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ सवार और ४०५ पैदल हो। २. सेना। फौज। ३. सवारी। यान। ४. नदी।

बाहिर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बाहर'। उ०—लगी अंतर मैं करै बाहिर को बिन जाहिर कोऊ न मानत है।—ठाकुर०, पृ० ३।

बाहिरीⓅ†—क्रि० वि० [हिं० बाहर] बिना। सिवा। विरहित। उ०—ढोला हूँ तुझ बाहिरी झीलण गइय तलाइ। ऊ जल काला नाग जिऊं, लहिरी ले ले खाइ।—ढोला०, दू० ३६३।

बाहीँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाँह'।

बाहीⓅ२—संज्ञा पुं० [सं० वाह] अश्व। तुरंग।

बाहीक१—वि० [सं०] बाहर का। बाह्य संबद्ध। बाहरी [को०]।

बाहीक२—संज्ञा पुं० १. पंजाब की एक प्राचीन जाति। २. उस जाति का व्यक्ति [को०]।

बाहु—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुजा। हाथ। बाँह।

यौ०—बाहुकंठ, बाहुकुब्ज = लूना : बाहुतरण = तैरकर नदी या जलाशय पार करना। बाहुदंड = भुजा। बाहुपाश = भुजाओं का बंधन। अंकवार। बाहुप्रसर, बाहुप्रसार = भुजाओं का फैलाव या विस्तार। बाहुभूषण, बाहुभूषा = भुजा का गहना। अंगद। बाहुयोध, बाहुयोधी = कुश्ती लड़नेवाला। बाहुलता, बाहुवल्ली = कोमल भुजाएँ। बाहुविमर्द = मल्लयुद्ध। बाहुवीर्य = भुजबल। बाहुव्यायाम = कसरत। दंड। जोर। बाहुशिखर = स्कंध। कंधा।

बाहुकंटक—संज्ञा पुं० [सं० बाहुकण्टक] मल्लयुद्ध का एक दाँव [को०]।

बाहुक१—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा नल का उस समय का नाम जब वे कर्कोटक द्वारा डसे जाने पर वामनाकृति हुए थे और अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के सारथी बने थे। २. नकुल का नाम। ३. एक नाग का नाम। ४. बंदर (को०)।

बाहुक२—वि० १. बाहु द्वारा तैरनेवाला। २. निर्भर। आश्रित। ३. बौना। वामनाकार [को०]।

बाहुकुंथ—संज्ञा पुं० [सं० बाहुकुन्थ] पक्ष। पखना। पंख [को०]।

बाहुगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अनेक गुणों की स्थिति। बहुत गुणों की स्थिति। बहुत गुणों का रहना या होना।

बाहुज—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रिय, जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के हाथ से मानी जाती है।

बाहुजता—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहुज + ता (प्रत्य०)] क्षत्रियत्व। वीरता। उ०—बस बाहुजता विलीन है, वसुधा वीरविहीन दीन है।—साकेत, पृ० ३५४।

बाहुजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से जनों की अवस्थिति। भीड़ [को०]।

बाहुड़ना‡—क्रि० अ० [देश०] दे० 'बहुरना'। उ०—(क) गई दसा सब बाहुड़े, जे तुम प्रगटहु आइ। दादू ऊजड़ सब बसे, दरसन

देहु दिखाइ। —दादू०, पृ० ६३। (ख) कुँवर बलावे बाहुड्या राजमती मुकलावी सुभाई।—बी० रासो, पृ० २७।

बाहुड़ि†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बहुरि'। उ०—दादू यों फूटे थे सारा भया संधे संधि मिलाइ। बाहुडि विषै न भुंचिए तौ कबहूँ फूटि न जाइ।—दादू०, पृ० १६७।

बाहुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बाहुत्राण'।

बाहुत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े या लोहे आदि का वह दस्ताना जो युद्ध मे हाथो की रक्षा के लिये पहना जाता है।

बाहुदंती—संज्ञा पुं० [सं० बाहुदन्तिन्] इंद्र।

बाहुदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम। २. राजा परीक्षित की पत्नी का नाम।

बाहुप्रलंब—वि० [सं० बाहुप्रलम्ब] जिसकी बाहें बहुत लंबी हों। आजानुबाहु। (ऐसा व्यक्ति बहुत वीर माना जाता है।)

बाहुबल—संज्ञा पुं० [सं०] पराक्रम। बहादुरी। उ०—श्री हरिदास के स्वामी श्याम कुंजविहारी कहत राखि लै बाहुबल हौं बपुरा काम दहा।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

बाहुभेदी—संज्ञा पुं० [सं० बाहुभेदिन्] विष्णु।

बाहुमूल—संज्ञा पुं० [सं०] कंधे और बाँह का जोड़।

बाहुयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] कुश्ती।

बाहुरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बहुरना'। उ०—उत ते कोई न बाहुरा, जा से बूझूँ धाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ५८।

बाहुरूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] अनेकरूपता [को०]।

बाहुल[1]—वि० [सं०] बहुत। अनेक। अधिक। प्रचुर [को०]।

बाहुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध के समय हाथ मे पहनने को एक वस्तु जिससे हाथ की रक्षा होती थी। दस्ताना। २. कार्तिक मास। ३. अग्नि। आग। ४. अनेकरूपता (को०)।

बाहुलग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] मोर।

बाहुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की पूर्णिमा [को०]।

बाहुलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का एक नाम [को०]।

बाहुलोह—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा धातु। कांस्य [को०]।

बाहुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुतायत। अधिकता। ज्यादती। २. अनेकरूपता। विविधता (को०)।

बाहुविस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] ताल ठोकना।

बाहुशाली—संज्ञा पुं० [सं० बाहुशालिन्] १. शिव। २. भीम। ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ४. एक दानव का नाम।

बाहुशोष—संज्ञा पुं० [सं०] बाँह मे होनेवाला एक प्रकार का वायु-रोग जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

बाहुश्रुत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुश्रुत होने का भाव। बहुत सी बातो को सुनकर प्राप्त की हुई जानकारी।

बाहुसंभव—संज्ञा पुं० [सं० बाहुसम्भव] क्षत्रिय जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा की बाँह से मानी जाती है।

बाहुहजार—संज्ञा पुं० [सं० बाहु+फ़ा० हजार] दे० 'सहस्रबाहु'।

बाहू—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहु] दे० 'बाहु'।

बाहेर—क्रि० वि० [हिं० बाहर] अपने स्थान या पद आदि से च्युत। पतित। निकृष्ट। उ०—कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक वेद बाहेर सब भाँती।—तुलसी (शब्द०)।

बाह्मन—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मण] दे० 'ब्राह्मण'।

बाह्य[1]—वि० [सं०] १. बाहरी। बाहर का। २. दिखावटी। ३. प्रदर्शनात्मक। बहिष्कृत।

बाह्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भार ढोनेवाला पशु। जैसे, बैल, गधा, ऊँट, आदि। २. सवारी। यान।

बाह्यकरण—संज्ञा पुं० [सं०] बाहरी इंद्रियाँ [को०]।

बाह्यकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

बाह्यकुंड—संज्ञा पुं० [सं० बाह्यकुण्ड] एक नाग का नाम।

बाह्यकोप—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार राष्ट्र के मुखियों, अंतपाल (सीमारक्षक), आटविक (जंगलो के अफसर) और दंडोपनत (पराजित राजा) का विद्रोह।

बाह्यतपश्चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार तपस्या का एक भेद।

विशेष—यह छह प्रकार की होती है—अनशन, औनोदर्य, वृत्तिसक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और लीनता।

बाह्यद्रुति—संज्ञा पुं० [सं०] पारे का एक संस्कार (वैद्यक)।

बाह्यपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवनिका। नाटक का परदा।

बाह्यविद्रधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर के किसी स्थान मे सूजन और फोडे की सी पीड़ा होती है।

विशेष—इस रोग में रोगी के मुँह अथवा गुदा से मवाद निकलता है। यदि मवाद गुदा से निकले तब तो रोगी साध्य माना जाता है, पर यदि मवाद मुँह से निकले तो वह असाध्य समझा जाता है।

बाह्यविषय—संज्ञा पुं० [सं०] प्राण को बाहर अधिक रोकना।

बाह्यवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राणायाम का एक भेद जिसमें भीतर से निकलते हुए श्वास को धीरे धीरे रोकते हैं।

बाह्याचरण—संज्ञा पुं० [सं०] केवल दिखौआ आचरण। आडंबर। ढकोसला।

बाह्याभ्यंतर—संज्ञा पुं० [सं० बाह्य + अभ्यन्तर] प्राणायाम का एक भेद जिसमें भीतर से निकलते हुए श्वास को धीरे धीरे रोकते हैं।

बाह्याभ्यंतराक्षेपी—संज्ञा पुं० [सं० बाह्याभ्यन्तराक्षेपिन्] प्राणायाम का एक भेद। जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उसे निकलने न देकर उलटे उलटे लौटाना; और जब भीतर जाने लगे तब उसको बाहर रोकना।

बाह्यायाम—संज्ञा पुं० [सं०] वायु संबंधी एक रोग जिसमें रोगी की पीठ की नसें खिंचने लगती हैं और उसका शरीर पीछे की ओर झुकने लगता है। धनुस्तंभ।

बाह्लीक—संज्ञा पुं० [सं०] कांबोज के उत्तर के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ आजकल बलख है।

विशेष—यह स्थान काबुल से उत्तर की ओर पडता है। इसका प्राचीन पारसी नाम बक्तर है जिससे यूनानी शब्द बैक्ट्रिया बना है।

बिंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० व्यङ्ग्य] १. वह चुभती हुई बात जिसका गूढ अर्थ हो। व्यंग्य। काकूक्ति। विशेष—दे० 'व्यंग्य'। उ०—(क) करत बिंग ते बिंग दूसरी जुक्त अलंकृत माहीं। सूरदास ग्वालिन की बातें को कस समुझन हाँहीं।—सूर (शब्द०)। (ख) प्रेम प्रशसा विनय बिंग जुत सुनि विधि की वर बानी। तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी। —तुलसी (शब्द०) २. आक्षेपपूर्ण वाक्य। ताना।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—बोलना।

बिंगा†[2]—वि० [सं० वक्र या व्यंग्य] [स्त्री० बिंगी] वक्र। टेढ़ा। उ०—मैं कुँआरी छोरियों की एक लंबी साँस हूँ। दो दिलों में चुबनेवाली एक बिंगी फाँस हूँ।—दक्खिनी०, पृ० २६५।

बिंग्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यङ्ग्य] दे० 'बिंग'। उ०—रस धुनि गुनि अरु लच्छना बिंग्य सब्द अभिराम। सत सही या में सही धरचो सतसई नाम।—स० सप्तक, पृ० ४००।

बिंछो(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वृश्चिक हिं० बिच्छी, बिच्छू, बीछी] दे० 'बीछा'। उ०—काहर कंधन कितक कितक स्वानन मुख टुट्टत। बिंछो सर्प विषंग मन्त्रवादी मिल लुट्टत।—पृ० रा०, ६।१०५।

बिंजन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० व्यञ्जन, प्रा० विंजन] भोज्य पदार्थ। खाने की सामग्री। उ०—(क) मायामय तेहि कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुंदर बिंजन सुंदर छौंके। काँधनि धरि लिए लागत नीके।—नंद० ग्रं०, पृ० २५६।

बिंझ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विन्ध्य प्रा० विंझ] दे० 'विंध्य'। उ०—जाऊँ वेगि थरि आपनि है जहाँ बिंझ बनाँह।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३११।

बिंझनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्ध्या, प्रा० वंझा, हिं० बाँझ, बाँझिन] दे० 'बाँझ'। उ०—सब सौति कह्यौ दुख सुनहु तुम्म, राजन्न तनय हमसो न भ्रम्म। को जानि मात बिंझनी पीर, सौति कौ साल सालै सरीर।—पृ० रा०, १।३७५।

बिंटना(पु)†—क्रि० स० [सं० वेष्टन, प्रा०विंटन, गुज० विटवु] लपेटना। वेष्टित। करना। उ०—मुख केस पास बिंटिय विसाल। वध्यौ कि सोम सोभा सिवाल।—पृ० रा० १।३७२।

बिंटुलना(पु)—क्रि० स० [सं० वेष्टन प्रा० विंटन] बटोरना। एकत्र करना। उ०—बिंटुलिय बार आना नरिंद। बीसल तड़ाग मधि द्रव्य कद।—पृ० रा०, १।६०६।

बिंद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विन्दु प्रा० विंदु] १. पानी की बूँद। २. दोनो भँवों के मध्य का स्थान। भ्रूमध्य। ३. वीर्यबुंद। उ०—जो कामी नर कृपण कहि करै आपनी रिंद। तदपि अकार्थ न दीजिए विद्या बिंद रु जिंद।—रघुनाथदास (शब्द०)। ४. बिंदी। माथे का गोल तिलक। उ०—(क) मृगमद बिंद अनिंद सास खामिंद हिंद भुव।—गोपाल (शब्द०)। (ख) किधौं सु अधपक ग्राम मै मानहुँ मिलो अमद। किधौं तनक है तम दुरचौ कै ठोढ़ी को बिंद।—पद्माकर (शब्द०)।

बिंदक(पु)—वि० [सं० विन्दक] जानकार। ज्ञाता। दे० 'विंदक'। उ०—चौरासी आसन वर जोगी। षटरस बिंदक चतुर सुभोगी।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३३४।

बिंदवि—संज्ञा स्त्री० [सं० विन्दवि] बूँद। बिंदु [को०]।

बिंदा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वृन्दा] एक गोपी का नाम। उ०—इंद्रा बिंदा राधिका श्यामा कामा नारि।—सूर (शब्द०)।

बिंदा[2]—संज्ञा पुं० [सं० विन्दु] १ माथे पर का गोल और बड़ा टीका। बेंदा। बुंदा। बड़ी बिंदी। उ०—मृगमद बिंदा ता में राजे। निरखत ताहि काम सत लाजे।—सूर (शब्द०)। २. इस आकार का कोई चिह्न।

बिंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० विन्दु] १. सुन्ना। शून्य। सिफर। बिंदु। २ माथे पर लगाने का गोल छोटा टीका। बिंदुली। ३. इस प्रकार का कोई चिह्न।

बिंदु—संज्ञा पुं० [सं० विन्दु, प्रा० विंदु] दे० 'विंदु'।

बिंदुक—संज्ञा पुं० [सं० विन्दुक] बूँद। दे० 'बिंदु' [को०]।

बिंदुका—संज्ञा पुं० [सं० विन्दु + हिं० का (प्रत्य०)] १. बिंदी। गोल टीका। उ०—लट लटकनि मोहन मिस बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।—सूर (शब्द०)। २. इस आकार का कोई चिह्न।

बिंदुमाधव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विन्दुमाधव] दे० 'विंदुमाधव'।

बिंदुरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० विन्दु] १. माथे पर का गोल टीका। बिंदी। बिंदुली। टिकुली। २. इस आकार का कोई चिह्न।

बिंदुलरथी(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] बेंत।—नंद० ग्रं०, पृ० १०७।

बिंदुली—संज्ञा स्त्री० [सं० विन्दु] बिंदी। टिकुली। उ०—बंदन बिंदुली भाल की भुज आप बनाए।—सूर (शब्द०)।

बिंद्रावन—संज्ञा पुं० [सं० वृन्दावन, प्रा० विंद्रावण] दे० 'वृंदावन'।

बिंध†—संज्ञा पुं० [सं० विन्ध्य, प्रा० विंध] दे० 'विंध्याचल'। उ०—बिंध न ईंधन पाइए, सायर जुरै न नीर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९२।

बिंधना—क्रि० अ० [सं० वेधन, प्रा० विंधण] १. बींधना का अकर्मक रूप। बींधा जाना। छेदा जाना। २ फँसना। उलझना।

बिंधाना(पु)—क्रि० स० [हिं० बिंधना] छिद्रित कराना। वेधित कराना। उ०—(क) सुंदर क्यों पहिले न संभारत, जो गुर खाइ सु कान बिंधावे।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४०२। (ख) जो गुड़ खाय सो कान बिंधावै।—(कहावत)।

बिंधिया—संज्ञा पुं० [हिं० बाँधना + इया (प्रत्य०)] वह जो मोती बींधने का काम करता हो। मोती में छेद करनेवाला।

बिंब¹—संज्ञा पुं० [सं० बिम्ब] १. प्रतिबिंब । छाया । अक्स । २. रवि । कमंडलु । ३. प्रतिमूर्ति । ४. कुंदरू नाम का फल । ५. सूर्य या चंद्रमा का मंडल । ६. कोई मंडल । ७. गिरगिट । ८. सूर्य । (डिं०) । ९. उपमान । १०. झलक । आभास । उ०—विरह बिंब अकुलाय उर त्यों सुनि कछु न सुहाय । चित न लगत कहूँ कैसहूँ सो उद्वेग बनाय ।—पद्माकर (शब्द०) । ११. छंद विशेष । जैसे—फल अधर बिंब जासो । कहि अधर नाम तासो । लहत द्युति कौन मूँगा । वरिण जग होत गूँगा ।—गुमान (शब्द०) ।

बिंब²—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बाँबी' । उ०—साकट का मुख बिंब है निकसत बचन भुजंग । ताकी ओषधि मौन है विष नहिं व्यापे अंग ।—कबीर (शब्द०) ।

बिंबक—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बक] १. चंद्रमा या सूर्य का मंडल । २. कुँदरू । ३. साँचा । ४. बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था ।

बिंबट—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बट] सरसों ।

बिंबफल—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बफल] कुँदरू ।

बिंबसार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिंबिसार' ।

बिंबा—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बा] १. कुँदरू । २. बिंब । प्रतिच्छाया । ३. चंद्रमा या सूर्य का मंडल ।

बिंबाधर—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बाधर] पके हुए कुँदरू की तरह लाल होंठ [को०] ।

बिंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० बिम्बिका] १. सूर्य या चंद्र की परिधि । २. कुँदरू की लता [को०] ।

बिंबित—वि० [सं० बिम्बित] १. प्रतिच्छायित । प्रतिबिंबित । २. चित्रीकृत [को०] ।

बिंबिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० बिम्बिनी] आँख की पुतली । तारा । कनीनिका [को०] ।

बिंबिसार—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बसार] मगध के एक प्राचीन राजा का नाम जो अजातशत्रु के पिता और गौतम बुद्ध के समकालीन थे । कहते हैं, ये पहले शाक्त थे पर पीछे बुद्ध के उपदेश से बौद्ध हो गए थे ।

बिंबु—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बु] सुपारी या उसका वृक्ष ।

बिंबू—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बू] दे० 'बिंबु' ।

बिंबोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० बिम्बोष्ठ] दे० 'बिंबाधर' ।

बिⓅ—वि० [सं० द्वि प्रा० बि, मि० गुज० बे] दो । एक और एक ।

बिअंत†—वि० [सं० वि (=रहित)+अन्त] जिसका अंत न हो । अनंत । उ०—तिस महि अगम बस्तु बनाई । तूँ बिअंत धनी मिति तिलु नही पाई ।—प्राण०, पृ०, ४७ ।

बिअⓅ—वि० [सं० द्वि, प्रा० बि, मि० गुज० बे] दे० 'बि' ।

बिअहुता‡—वि० [सं० विवाहित] १. जिसके साथ विवाह संबंध हुआ हो । २. विवाह संबंधी । विवाह का । जैसे, बिअहुता जोड़ा ।

बिआज†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ब्याज' ।

बिआधिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] दे० 'व्याधि' । उ०—परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई । बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ।—तुलसी (शब्द०) ।

बिआधु†—संज्ञा पुं० [सं० व्याध] दे० 'व्याध' । उ०—जोबन पंखी बिरह बिआधू । केहरि भयउ कुरगिनि खाधू ।—जायसी (शब्द०) ।

बिआना—क्रि० स० [सं० विजनन, प्रा० बिआयण, तुल० गु० वियावुँ] बच्चा देना । जनना । (विशेषतः पशुओं आदि के संबंध में) ।

बिआपी—वि० [सं० व्यापिन्] दे० 'व्यापी' ।

बिआस‡—संज्ञा पुं० [सं० व्यास, प्रा० बिआस] १. पौराणिक कथाएँ आदि सुनानेवाला । व्यास । कथक्कड़ । २. पुराणों के वक्ता । दे० 'व्यास' । उ०—अस्टौ महासिद्धि तेहि जस कबि कहा बिआस ।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० २१२ ।

बिआसी‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] धान (चावल) की खेती करने की एक विशेष पद्धति । उ०—चावल पैदा करने की बिआसी पद्धति भी अधिक लोकप्रिय है ।—शुक्ल अभि० ग्रं० (विवि०) पृ० ४ ।

बिआह—संज्ञा पुं० [सं० विवाह, प्रा० बिआह] दे० 'ब्याह' । उ०—लगन धरी औ रचा बिआहू । सिंघल नेवत फिरा सब काहू ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०७ ।

बिआहना†—क्रि० स० [प्रा० बिआह+हिं० ना (प्रत्य०)] परिणय करना । दे० 'ब्याहना' ।

बिओग—संज्ञा पुं० [सं० वियोग, प्रा० बिओग] दे० 'वियोग' ।

बिओगी†—वि० [प्रा० बिओग+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'वियोगी' ।

बिकंत—वि० [सं० विकट] दे० 'विकट' । उ०—वहै नागमुष्षी सु सोहै बिकंतं । फटै हस्ति कुंभं ठनंकंत घंटं ।—पृ० रा०, ५।४०६ ।

बिकच—वि० [सं० विकच] विकसित । खिला हुआ । उ०—बिकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति, ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है ।—घनानंद, पृ० ५६ ।

बिकट—वि० [सं० विकट] दे० 'विकट' । उ०—असवार डिगत बाहन फिरैं भिरैं भूत भैरव बिकट ।—हम्मीर०, पृ० ५८ ।

बिकना—क्रि० अ० [सं० विक्रयण] किसी पदार्थ का द्रव्य लेकर दिया जाना । मूल्य लेकर दिया जाना । बेचा जाना । बिक्री होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—किसी के हाथ बिकना=किसी का अनुचर, सेवक या दास होना । किसी का गुलाम बनना । जैसे,—हम उनके हाथ बिके तो हैं नहीं, जो उनका हुकुम मानें ।

विशेष—कभी कभी इस अर्थ में और विशेषतः मोहित होने के

अर्थ में केवल 'बिकना' शब्द का भी प्रयोग होता है। जैसे,—ठानहिं ऐसी नही करिके कर तोष चिते जेहि कान्ह बिकानु है।—तोष (शब्द०)।

बिकरम†¹—संज्ञा पुं० [सं० विक्रम] दे० 'विक्रमादित्य'। उ०—भोज भोग जस माना विकरम साका कीन्ह। परिख सो रतन पारखी सवइ लख लिखि दीन्ह।—जायसी (शब्द०)। २. पराक्रम। विक्रम।

बिकरम²—वि० [सं० वि (=बुरा)+कर्म] खराब काम। बुरे काम। उ०—करम बिकरम करत नहिं डरिहैं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४०२।

बिकरा†—संज्ञा पुं० [?] एक पेड़।

बिकरार‡¹—वि० [फा० बेकरार] व्याकुल। विकल। बेचैन। उ०—कँवल टार गहि भइ बिकरारा। कासु पुकारउँ आपनहारा।—जायसी (शब्द०)।

बिकरार²—वि० [सं० विकराल] कठिन। भयानक। डरावना। भयंकर। उ०—(क) नाक कान बिनु भइ बिकरारा।—मानस, ३।१२। (ख) पुष्कर पुष्कर नयन चल्यो वृकसुत बिकरारो।—गोपाल (शब्द०)।

बिकराल—वि० [सं० विकराल] डरावना। विकराल। उ०—माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट नीके सब काल सींचै सुधासार नीर के।—तुलसी (शब्द०)।

बिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० वि+कर्म] खराब काम। बुरा काम। उ०—कर्म न बिकर्म करै भाव न अभाव धरै सुभ हू असुभ परै यातें निधरक है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६३६।

बिकल†—वि० [सं० विकल] १. व्याकुल। घबराया हुआ। २. बेचैन। उ०—बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति।—मानस, २।१६१।

बिकलई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विकल+हिं० ई (प्रत्य०)] व्याकुलता। बेचैनी। विकलाई।

बिकलप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विकल्प] दे० 'विकल्प-१'। उ०—दरिया बिकलप मेट के, भज राम सहाई।—दरिया० बानी, पृ० ६२।

बिकलाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० विकल+हिं० आई(प्रत्य०)] व्याकुलता। बेचैनी। उ०—(क) दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृह गईं लवाई।—मानस, २।१४८। (ख) ऐसी कलाई लखे बिकलाई भई कल आई नही दिन राती।—अयोध्या-सिंह (शब्द०)।

बिकलाना(पु)†¹—क्रि० अ० [सं० विकल] १. व्याकुल होना। बेचैन होना। उ०—हरिमुख राधा राधा बानी। धरनी परे अचेत नही सुधि सखी देखि बिकलानी।—सूर (शब्द०)।

बिकलाना²—क्रि० स० व्याकुल करना। बेचैन करना।

बिकल्प—संज्ञा पुं० [सं० विकल्प] एक अलंकार। वि० दे० 'विकल्प'। उ०—ताहि बिकल्प बखानही, भूषन कवि सब कोय।—भूषण ग्रं०, पृ०।

बिकवाना—क्रि० स० [हिं० बिकना का प्रे० रूप] बेचने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को बेचने में प्रवृत्त करना। किसी से बिक्री कराना।

बिकसना—क्रि० अ० [सं० विकसन] १. खिलना। फूलना। प्रस्फुटित होना। २. प्रफुल्लित होना। बहुत प्रसन्न होना।

बिकसाना¹—क्रि० अ० [सं० विकसन] दे० 'बिकसना'। उ०—पाहन बीच कमल बिकसाहीं जल में अगिनि जरै।—सूर (शब्द०)।

बिकसाना²—क्रि० स० १. विकसित करना। खिलाना। २. प्रफुल्लित करना। प्रसन्न करना।

बिकसानू(पु)—वि० [हिं० बिकसना] विकसित होनेवाला। खिलने-वाला। उ०—फून अहै पै कलिय समानू। कलिन अहै पै है बिकसानू।—इंद्रा०, पृ० ४३।

बिकाऊ—वि० [हिं० बिकना+आऊ (प्रत्य०)] जो बिकने के लिये हो। जो बेचा जानेवाला हो। बिकनेवाला। जैसे,—कोई मालमत्ता बिकाऊ हो तो हमसे कहना।

बिकाना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बिकना'।

बिकार(पु)†¹—वि० [सं० विकार या विकराल] जिसकी दशा विकृत हो। २. विकराल। विकट। भीषण। उ०—तुम जाहु बालक छाँड़ि जमुना स्याम मेरो जागिहै। अंग कारो मुख बिकारो दृष्टि पर तोहि लागिहै।—सूर (शब्द०)।

बिकार(पु)†²—संज्ञा पुं० [सं० विकार] १. बिगड़ा हुआ रूप। विकृति। विक्रिया। उ०—बारिद बचन सुनि पुनि सीस सचिवनि कहै दससीस ईस बामता बिकार है।—तुलसी (शब्द०)। २. रोग। पीड़ा। दुःख। ३. दोष। ऐब। खराबी। बुराई। अवगुण। उ०—जड़ चेतन गुण दोषमय बिस्व कीन्ह करतार। संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।—तुलसी (शब्द०)। ४. बुरा कृत्य। पापकर्म। उ०—भने रघुराज कार्पण्य पत्य चौधरी है जग के बिकार जेते सबै सरदार हैं।—रघुराज (शब्द०)। ५. कुवासना। उ०—रंजन संत अखिल अघगंजन भंजन बिषय बिकारहिं।—तुलसी (शब्द०)। विशेष दे० 'विकार'।

बिकारी†¹—वि० [सं० विकार] १. विकृत रूपवाला। जिसका रूप बिगड़कर और का और हो गया हो। २. अहितकर। बुरा। हानिकारक। उ०—असुभ होय जिनके सुमिरन ते बानर रीछ बिकारी।—तुलसी (शब्द०)।

बिकारी²—संज्ञा स्त्री० [सं० विकृत या वक्र अथवा हिं० बिकार+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार की टेढ़ी पाई जो अंकों आदि के आगे संख्या या मान आदि सूचित करने के लिये लगाई जाती है। लिखने में रुपए पैसे या मन सेर आदि का चिह्न जिसका जिसका रूप) तथा ऽ होता है। उ०—वक्र बिकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत।—बिहारी (शब्द०)।

बिकाल—संज्ञा पुं० [बंग०] दिन का परार्ध भाग। अपराह्न काल। सकाल का उलटा।

बिकास—संज्ञा पुं० [सं० विकास] दे० 'विकास'।

बिकासना¹—क्रि० अ० [हिं० बिकास+ना (प्रत्य०)] १. विकसाना। खिलाना। २. उद्घाटित करना।

बिकासना²—क्रि० अ० १. विकसित होना। खिलना। २. व्यक्त होना। स्फुट होना।

बिकिरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० विक्रयण] बिक्री। बेचने की वस्तु। उ०—अजपा जाप जहाँ है दूलह बिकिरी लावो वोहि हाटे।—संत० दरिया, पृ० १४०।

बिकुंठ†—संज्ञा पुं० [सं० वैकुण्ठ, प्रा० वेकुंठ] दे० 'वैकुंठ'।

बिकुटीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि, प्रा० बि+हिं० कुटी] योग में दूसरी नाड़ी। पिंगला नाम की नाड़ी। उ०—इकटी बिकुटी त्रिकुटी संधि। पछिम द्वारे पवनां बंधि।—गोरख०, पृ० ६३।

बिकुसाⓅ†—वि० [हिं० बिकसना] खिला हुआ। विकसित। उ०—कमल एक लागा जल माही। आधा बिकुसा आधा नाहीं।—इंद्रा०, पृ० ४०।

बिकूलⓅ—वि० [सं० विकूल] प्रतिकूल। विरुद्ध। उ०—सुपिय आज मैं अति अवमाने। सखि अब विधि बिकूल पै जानै।—नंद० ग्रं०, पृ० १५२।

बिकृत—वि० [सं० विकृत] बिगड़ा हुआ। कुरूप। विकृत। उ०—पढ़त क़ुरान शरीफ अजब मुख बिकृत बनावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

बिक्खⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विष] दे० 'विष'। उ०—कीन्हेसि अमृत जियै जो पाए। कीन्हेसि बिक्ख, मीचु जेहि खाए।—जायसी ग्रं०, पृ० २।

बिक्तिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० व्यक्ति] मनुष्य। आदमी। जन। उ०—बिक्ति बिक्ति बिख्यान यह, ब्रह्म अनूप देखाए।—संत० दरिया, पृ० ४३।

बिक्रमⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विक्रम] दे० 'विक्रम'।

बिक्रमाजीत—संज्ञा पुं० [सं० विक्रमादित्य] दे० 'विक्रमादित्य'।

बिक्रमी—संज्ञा पुं० [सं० वैक्रमीय अथवा हिं० बिक्रम+ई (प्रत्य०)] दे० 'वैक्रमीय'।

बिक्री—संज्ञा स्त्री० [सं० विक्रय] १. किसी पदार्थ के बेचे जाने की क्रिया या भाव। विक्रय। जैसे,—आज सवेरे से बिक्री ही नहीं हुई। २. वह धन जो बेचने से प्राप्त हो। बेचने से मिलनेवाला धन। जैसे,—यही १०) आज की बिक्री है।

बिक्रू—वि० [हिं० बिक्री] बेचने लायक। जो बेचा जाता हो। बिक्री का। बिकाऊ। (लश०)।

विशेष—जहाजों आदि पर लश्कर के लोग इस विशेषण का प्रयोग ऐसे बने हुए वस्त्रों के लिये करते हैं जो नौसेना विभाग से उन्हें लागत के दाम पर मिलते हैं।

बिख†—संज्ञा पुं० [सं० विष] जहर। विष। उ०—नेकियाँ मानते नहीं ऐवी। क्यों उन्हीं के लिये न बिख चख लें।—चोखे०, पृ० २६।

यौ०—बिखधर=सर्प।—अनेकार्थ०, पृ० ७०।

बिखम¹—वि० [सं० विष] विष। जहर। गरल। (डिं०)।

बिखम²—वि० [सं० विषम] दे० 'विषम'।

बिखयⓅ—अव्य० [सं० विषय] विषय में। बारे में। संबंध में।

बिखरना—क्रि० अ० [सं० विकीर्ण] १. खंडों या कणों आदि का इधर उधर गिरना या फैल जाना। छितराना। तितर बितर होना। २. लट्टू होना। रीझना (लाक्ष०)। उ०—तुमने कुब्जा में रस देखा उसपर बिखरे।—अपलक, पृ० १०१।

बिखराना—क्रि० स० [हिं० बिखरना का सक० रूप] १. खंडों या कणों को इधर उधर फैलाना। छितराना। २. छींटना। छिटकना।

बिखराव†—संज्ञा पुं० [हिं० बिखरना+आव (प्रत्य०)] बिखरने, अलग अलग होने या इतस्ततः होने का भाव।

बिखादⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विषाद] दे० 'विषाद'। उ०—तुअ परसाद बिखाद नयन जल काजरे मोर उपकारे।—विद्यापति, पृ० १४८।

बिखानⓅ—संज्ञा [सं० विषाण] सींग। उ०—ज्ञानवंत अपि सोइ नर पसु बिनु पूँछ बिखान।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११४।

बिखें†—अव्य० [हिं०] दे० 'बिखय'।

बिखेरना—क्रि० स० [हिं० बिखरना का सक० रूप] खंडों या कण को इधर उधर फैलाना। तितर बितर करना। छितराना। छिटकाना। छींटना। उ०—है बिखेर देती वसुंधरा मोती सबके सोने पर, रवि बटोर लेता है उनको सदा सवेरा होने पर।—पंचवटी, पृ० ६।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

बिखैंⓅ†—अव्य० [सं० विषय] विषय में। संबंध में। बाबत। उ०—गुन की ओर न तुम बिखै, औगुन को मो माहिं। होड़ परसपर यह परी, छोड़ बदी है नाहिं।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११।

बिखैⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विषय] दे० 'विषय'। उ०—छेरी उलटि बिगे धरि पकरा बिखै सरोवर साथा।—संत० दरिया, पृ० १०५।

बिखोंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० बिख (=विष)] सारे भारत में पाई जानेवाली ज्वार की जाति की एक प्रकार की बड़ी घास जो बारहो महीने हरी रहती है।

विशेष—यह जब अच्छी तरह बढ़ जाती है, तब चारे के लिये बहुत उपयोगी होती है; पर आरंभिक अवस्था में इसका प्रभाव खानेवाले पशुओं पर बहुत बुरा और प्रायः विष के समान होता है। इसमें से एक प्रकार के दाने भी निकलते हैं जिन्हें गरीब लोग यों ही पीसकर अथवा बाजरे आदि के आटे के साथ मिलाकर खाते हैं। इसकी कहीं खेती नहीं होती, यह खेतों की मेड़ों अथवा जलाशयों के आसपास आपसे आप होती है। इसका एक नाम कालामुच्छ भी है।

बिख्यान—संज्ञा पुं० [सं० व्याख्यान] दे० 'व्याख्यान'। उ०—बिक्ति बिक्ति बिख्यान यह, ब्रह्म अनूप देखाए।—संत० दरिया, पृ० ३०।

बिग¹—संज्ञा पुं० [सं० वृक, हिं० बीग] दे० 'बीग'। उ०—छेरी

उलटि विगे धरि पकरा विर्ध सरोवर खाया।—संत० दरिया, पृ० १०५।

विग²—वि० [अं०] बड़ा। स्थूल। विपुल। वृहत्।

विगड़ना—क्रि० अ० [सं० विकृत] १. किसी पदार्थ के गुण या रूप आदि में ऐसा विकार होना जिससे उसकी उपयोगिता घट जाय या नष्ट हो जाय। असली रूप या गुण का नष्ट हो जाना। खराब हो जाना। जैसे, मशीन विगड़ना, अचार विगड़ना, दूध विगड़ना, काम विगड़ना। २. किसी पदार्थ के बनते या गढ़े जाते समय उसमें कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे वह ठीक या पूरा न उतरे। जैसे,—(क) यह तस्वीर अब तक तो ठीक बन रही थी पर अब विगड़ चली है। (ख) देखते हैं कि तुम्हारे कारण ही यह बनती हुई बात विगड़ रही है। ३. दुरवस्था को प्राप्त होना। खराब दशा में आना। अच्छा न रह जाना। जैसे,—(क) किसी जमाने में इनकी हालत बहुत अच्छी थी, पर आजकल ये विगड़ गए हैं। (ख) विगड़े घर की बात जाने दो। ४. नीतिपथ से भ्रष्ट होना। बदचलन होना। चाल चलन का खराब होना। जैसे,—आजकल उनका लड़का विगड़ रहा है, पर वे कुछ ध्यान ही नहीं देते। ५. क्रुद्ध होना। गुस्से में आकर डाँट डपट करना। जैसे,—वे अपने नौकरों पर बहुत विगड़ते हैं। ६. विरोधी होना। विद्रोह करना। जैसे,—सारी प्रजा विगड़ खड़ी हुई। ७. (पशुओं आदि का) अपने स्वामी या रक्षक की आज्ञा या अधिकार से बाहर हो जाना। जैसे, घोड़ा विगड़ना, हाथी विगड़ना। ८. परस्पर विरोध या वैमनस्य होना। लड़ाई झगड़ा होना। खटकना। जैसे,—आजकल उन दोनों में विगड़ी है। ९. व्यर्थ व्यय होना। बेफायदा खर्च होना। जैसे,—आज बैठे बैठाए ५) विगड़ गए।

संयो० क्रि०—जाना।

विगड़े दिल—संज्ञा पुं० [हिं० विगड़ना + फ़ा० दिल] १. वह जो बात बात में विगड़ खड़ा हो। हर बात में लड़ने झगड़नेवाला। २. वह जो विगड़ा हुआ हो। कुमार्ग पर चलनेवाला।

विगड़ैल—वि० [हिं० विगड़ना+ऐल (प्रत्य०) या विगड़ेदिल] १. जो बात बात में विगड़ने लगता हो। हर बात में क्रोध करनेवाला। जो स्वभाव से क्रोधी हो। २ हठी। जिद्दी। ३. जो विगड़ा हुआ हो। कुमार्ग पर चलनेवाला। बुरे रास्ते पर चलनेवाला। खराब चाल चलनवाला।

विगत—संज्ञा पुं० [सं० विगत (=व्यतीत)] १. बीता हुआ। २. ब्योरा। विवरण। उ०—(क) बकूँ जिका ज्यारा विगत अवर न कोय उपाय।—रघु० रू०, पृ० १३।

विगताविगत—संज्ञा पुं० [सं० विगत+अविगत] अतीत और वर्तमान का रूप। ज्ञेयाज्ञेय। उ०—विमल एक रस उपजै न विनसै उदय अस्त दोउ नाहीं। विगताविगत घटै नहिं कबहूँ बसत बसै सब माहीं।—रै० बानी, पृ० ४५।

विगति—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'विगत'। समाचार। वृत्त। हाल चाल। उ०—पवर विगति पूर्णा जू यह पत्री मांही ह्याव। समाचार जानें सबै सुनो इही की नाम।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६३।

विगर—क्रि० वि० [फा० बगैर] बिना। रहित। बगैर। उ०—तुमहि सुमिरि सब काज, सिद्धि होत सुकवीन के। रचन चहत रघुराज, विघन विगर पूरण करहु।—रघुराज (शब्द०)।

विगरना—क्रि० अ० [हिं० विगड़ना] दे० 'विगड़ना'। उ०—(क) विगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) साहिब कबीर मोहि मिलिगे सतगुरु, विगरल मोर बनाए।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० १६।

विगराइल†—वि० [हिं० विगड़ना+आइल (प्रत्य०)] १. हठी। दे० 'विगड़ैल'। २. विगड़ैल। विगड़ा हुआ। उ०—कुटिल कुकमिनी उदास सेज पर बैठी देख्या विगराइल विनासिन के पास है।—दूलह (शब्द०)।

विगरायल†—वि० [हिं०] दे० 'विगराइल'। उ०—हौं तो विगरायल और को विगरो न विगरिये।—तुलसी (शब्द०)।

विगलित—वि० [सं० विगलित] द्रवीभूत। आर्द्र। अस्तव्यस्त। टूटा-फूटा। उ०—कलित स्वेद विगलित वचन लखियतु कंपित गात।—स० सतक, पृ० ३८४।

विगसना—क्रि० अ० [हिं०] खिलना। दे० 'विकसना'। उ०—फल विरवनि सों लपटि लता फूली फूली जल। विलसत सारस हंस बंस विगसत अंबुज दल।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५।

विगसाना¹—क्रि० स० [हिं० विगसना] दे० 'विकसाना'।

विगसाना²—क्रि० अ० दे० 'विकसना'। उ०—(क) सियमुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय। निसि मलीन वह निसि दिन यह विगसाय।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सब गुरु चरण गहे हिय माहीं। भानु उदय पंकज विगसाहीं।—कबीर सा०, पृ० ८३७।

विगहरि—संज्ञा पुं० [सं० वृक, हिं० विग, चीता+हर (प्रत्य०); या सं० वृक+हर (=चीता)] भेड़िया, चीता आदि हिंसक जंतु। उ०—साधिय एक कुँवर सो कहा। बन विगहरि सों लूझो अहा।—इंद्रा०, पृ० २८।

विगहा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बीघा'।

विगही†—संज्ञा स्त्री० [देश०] क्यारी। बरही।

विगाड़—संज्ञा पुं० [हिं० विगड़ना] १. विगड़ने की क्रिया या भाव। २. खराबी। बुराई। दोष। ३. वैमनस्य। द्वेष। झगड़ा। लड़ाई।

विगाड़ना—क्रि० स० [सं० विकार] १. किसी वस्तु के स्वाभाविक गुण या रूप को नष्ट कर देना। किसी पदार्थ में ऐसा विकार उत्पन्न करना जिससे उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाय। जैसे, कल विगाड़ना, रसोई विगाड़ना। २. किसी पदार्थ को बनाते समय या कोई काम करते समय उसमें कोई ऐसा विकार

उत्पन्न कर देना जिससे वह ठीक या पूरा न उतरे। जैसे,—इतना सब कुछ करके भी अंत में तुमने जरा से के लिये बात बिगाड़ दी। ३. दुरवस्था को प्राप्त कराना। बुरी दशा में लाना। जैसे,—दुर्व्यसन ही युवकों को बिगाड़ते हैं। ४. नीति-पथ से भ्रष्ट करना। कुमार्ग में लगाना। जैसे,—महाजनों ने रुपए देकर उनके लड़के को बिगाड़ दिया। ५. स्त्री का सतीत्व नष्ट करना। पातिव्रत्य भंग करना। ६. स्वभाव खराब करना। बुरी आदत लगाना। ७. बहकाना। ८. व्यर्थ व्यय करना। जैसे,—तुम तो यों ही अनावश्यक कामों में रुपए बिगाड़ा करते हो।

बिगाना†—वि० [फ़ा० बेगानह्] १. जो अपना न हो। जिससे आपसदारी का कोई सबंध न हो। पराया। गैर। उ०—किंतु फिर भी बन रहे हैं आज अपने ही बिगाने।—क्वासि, पृ० ६५। २. अजनबी। अनजान।

बिगार†[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिगाड़'। उ०—बुधि न विचार, न बिगार, न सुधार सुधि देह गेह नेह नाते मन से निसरिगे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३९।

बिगार[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बेगार'।

बिगारना†—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'बिगाड़ना'। उ०— (क) सरिता निज तट तोरि जो रूखन लेति खसाय। नीरि बिगारति आपनो सोभा देति नसाय।—शकुंतला, पृ० ९२। (ख) आपनों बनाइबे कों और कों बिगारिबे को सावधान ह्वै वे परद्रोह सो हुनर है।—ठाकुर०, पृ० १३।

बिगारिⓅ**†**—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बेगार'। उ० नाहिं तो भव बिगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई हो।—तुलसी (शब्द०)।

बिगारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बेगारी'।

बिगारी[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेगारी'।

बिगासⓅ**†**—संज्ञा पुं० [सं० विकास] दे० 'विकास'। उ०—जतखन भान कीन्ह परगासू। कँवल करी मन कीन्ह बिगासू।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३४०।

बिगासनाⓅ—क्रि० स० [सं० विकास] विकसित करना। खिलाना। उ०—अभी अधर अस राजा सब जग आस करेइ। केहि कहँ कँवल बिगासा की मधुकर रस लेई।—जायसी (शब्द०)।

बिगाहा—संज्ञा पुं० [प्रा० बिग्गाहा] दे० 'बिग्गाहा'।

बिगिंधⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वि (=विकृत)+गन्ध] असह्य दुर्गंध। उ०—सुंदर नर तन पाइ कै भगति न कीन्ह बिचारि। भयो क्रिमी बिनु नैन को बास बिगिध सँवारि।—संत० दरिया०, पृ० १७।

बिगिर, बिगिरिⓅ**†**—क्रि० वि० [फ़ा० बगैर, हिं० बिगर, बिगिरि] दे० 'बगैर'। उ०—ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कँह आकुत महाउत सु आँकुस लै सटक्यो।—भूषण ग्रं०, पृ० ४३।

बिगुनⓅ**†**—वि० [सं० विगुण] जिसमें कोई गुण न हो। निर्गुण। गुणरहित।

बिगुरⒽ—वि० [सं० वि+गुरु] जिसने किसी गुरु से शिक्षा या दीक्षा न ली हो। निगुरा। उ०—हरि बिनु मर्म बिगुर बिनु फंदा। जहँ जहँ गए अपनपौ खोए तेहि फंदे बहु फंदा।—कबीर (शब्द०)।

बिगुरचिनⓅ**†**—संज्ञा स्त्री० [सं० विकुञ्चन ? या देश०] दे० 'बिगूचन'। उ०—कबिरा परजा साह की तू जिन करे खुवार। खरी बिगुरचिन होयगी लेखा देती बार।—कबीर (शब्द०)।

बिगुरदाⓅ**†**—संज्ञा पुं० [देश०] प्राचीन काल का एक प्रकार का हथियार। उ०—कपटी जब लौं कपट नहिं साच बिगुरदा धार। तब लौ कैसे मिलैगो प्रभु साँचो रिझवार।—रसनिधि (शब्द०)।

बिगुर्चनⓅ**†**—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिगूचन] दे० 'बिगूचन'।

बिगुल—संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी ढंग की एक प्रकार की तुरही जो प्रायः सैनिकों को एकत्र करने अथवा इसी प्रकार का कोई और काम करने के लिये संकेत रूप में बजाई जाती है।

मुहा०—बिगुल बजना = (१) किसी कार्य के लिये आदेश होना। (२) कूच होना।

बिगुलरⓅ**†**—संज्ञा पुं० [अं०] फौज में बिगुल बजानेवाला।

बिगूचन—संज्ञा स्त्री० [सं० विकुञ्चन अथवा विवेचन ?] १. वह अवस्था जिसमें मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। असमंजस। अड़चन। उ०—ऐसा भेद बिगूचन भारी। वेद कतेब दीन अस दुनियाँ, कौन पुरिष कौन नारी।—कबीर ग्रं०, पृ० १०६। २. कठिनता। दिक्कत। उ०—सूरदास अब होत बिगूचन भजि लै सारँगपान।—सूर (शब्द०)।

बिगूचना[1]—क्रि० अ० [सं० विकुञ्चन ?] १. संकोच में पड़ना। दिक्कत में पड़ना। अड़चन या असमंजस में पड़ना। उ०—(क) संगति सोइ बिगूचन, जो है साकट साथ। कँचन कटोरा छाड़ि कै सनहक लीन्ही हाथ—कबीर (शब्द०)। (ख) ताकर हाल होल अधकूचा। छह दरशन में जैन बिगूचा।—कबीर (शब्द०)। २. दबाया जाना। पकड़ा जाना। उ०—राम ही के कोप मधुकैटभ सँभारे अरि ताही ते बिगूचे बलराम सों न मेल है।—हृदयराम (शब्द०)।

बिगूचना[2]—क्रि० सं० [सं० विकुञ्चन] दबोचना। धर दबाना। छोप लेना। उ०—लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूचे।—भूषन (शब्द०)।

बिगूतना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बिगूचना'। उ०—जोगी जती तपी सन्यासी, अह निसि खोजैं काया। मैं मेरी करि बहुत बिगूते, बिषै बाघ जग खाया।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३।

बिगूहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विग्रह] विग्रह। शरीर। देह। उ०—सुष मीन लग्न बिगूह सु त्यागि। करि हवन जवन सुख हृदय पागि।—पृ० रासो, पृ० २९।

बिगोना—क्रि० सं० [सं० विगोपन] १. नष्ट करना। बिगाड़

करना। बिगाड़ना। उ०—(क) सूर सनेह करै जो तुम सों सो पुनि आप बिगोऊ।—सूर (शब्द०)। (ख) जिन्ह एहि बारि न मानस धोए। ते पापी कलिकाल बिगोए।—तुलसी (शब्द०)। (ग) तुम जब पाए तबही चढाए ल्याए राम न्याव नेक कीजे बीर यो बिगोइयत है।—हृदयराम (शब्द०)। २. छिपाना। दुराना। उ०—द्वैत वचन को स्मरण जु होवै। ह्वै साक्षात तू ताहि बिगोवै।—निश्चलदास (शब्द०)। ३. तंग करना। दिक करना। ४. भ्रम में डालना। बहकाना। उ०—(क) प्रथम मोह मोहिं बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहु न सोवा।—तुलसी (शब्द०) (ख) ताहि बिगोय सिवा सरजा, भनि भूषन भौनि छपा यों पछारयो।—भूषन (शब्द०)। ५. व्यतीत करना। बिताना। उ०—बहु राछसा सहित तरु के तर तुमरे बिरह निज जनम बिगोवति।—तुलसी (शब्द०)।

बिगोला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बगूला'। उ०—भारतवर्ष के उत्तर पश्चिमी अंचल पर सिकंदर एक आँधी की तरह आया और बिगोले की तरह चला गया।—भा० इ० रू०, पृ० ५४५।

बिगोवनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विगोपन] छिपाने की क्रिया या भाव। छिपाव। दुराव। उ०—कहियै कहा बिगोवनि या की रस मैं बिरस बढ़ायौ।—घनानंद०, पृ० ४४८।

बिग्गाहा—संज्ञा पुं० [सं० विगाथा] आर्या छंद का एक भेद जिसे 'उद्गीति' भी कहते हैं। इसके पहले चरण में १२, दूसरे में १५, तीसरे में १२, और चौथे में १८ मात्राएँ होती हैं। जैसे,—राम भजहु मन लाई, तन मन धन के सहित मीत रामहिं निस दिन ध्याओ, राम भजे तबहिं जान जग जीता।

बिग्यानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विज्ञान] [वि० बिग्यानी] दे० 'विज्ञान'।

बिग्रह—संज्ञा पुं० [सं० विग्रह] १. शरीर। देह। उ०—भगत हेतु नर बिग्रह सुर बर गुन गोतीत।—तुलसी (शब्द०)। २. झगड़ा लड़ाई। कलह। विरोध। उ०—बयरु न बिग्रह आस न वासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।—तुलसी (शब्द०)। ३. विभाग। ४. दे० 'विग्रह'।

बिघटना[1]—क्रि० अ० [सं० विघटन] नष्ट होना। विपरीत होना। उ०—करम क दोसे बिघटि गेलि साठि। अगला जनम बुझब परिपाटि।—विद्यापति, पृ० १०८।

बिघटना[2]—क्रि० स० [सं० विघटन] विनाश करना। बिगाड़ना। तोड़ना फोड़ना। उ०—(क) रजनीचर मत्त गयंद घटा बिघटै मृगराज के साज लरै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुघट ग्रीव रस सीव कंठ मुकुता बिघटत तम।—हृदयराम (शब्द०)।

बिघटाना—क्रि० स० [हिं० बिघटना का सक० रूप] नष्ट करना। दे० 'बिघटना[2]'। उ०—सुघटेओ बिहि बिघटावे बाँक बिधाता की न करावे।—विद्यापति, पृ० ११४।

बिघन—संज्ञा पुं० [सं० विघ्न, प्रा० विग्घन] दे० 'विघ्न'। उ०—गणपति बिघन बिनासन हारे।—(शब्द०)। वि० दे० 'विघ्न'।

बिघनता†—संज्ञा स्त्री० [सं० विघ्नता] विघ्न का भाव या स्थिति। उ०—ग्रंथकरता गुरु कूँ भी इष्ट देवता सु अभेद करिकै, ग्रंथ की बिघनता दूरि करिबे के हेत बहुरि निमस्कार करत हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८३।

बिघनहरनⓅ†[1]—वि० [सं० विघ्नहरण] बाधा को हटानेवाला। बाधा दूर करनेवाला।

बिघनहरनⓅ[2]—संज्ञा पुं० गणेश। गजानन। उ०—बिघनहरन मंगलकरन सदा रहहु अनुकूल।—(शब्द०)।

बिघारⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० बिगहर] दे० 'बीग'।

बिघूर्नितⓅ—वि० [सं० विघूर्णित] इधर उधर घूमती या घूरती हुई। चंचल। उ०—मद बिघूर्नित लोचन गोरोचन बरन रोहिनीनदन बल हलधर राजैं।—घनानंद, पृ० ५५१।

बिचⓅ†—क्रि० वि० [प्रा० विच्च (=मध्य)] दे० 'बीच'। उ०—ललित नाक नथुनी बनी चुनी रही ललचाय। गजमुकतनि के बिच परयो, कहो कहाँ मन जाइ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४८।

बिचकना—क्रि० अ० [सं० वि+(उप०)√चक् (=भ्रांति)] १. भौचका होना। घबड़ाना। चौंकना। २. (घोड़े का) भड़कना या बिदकना।

बिचकाना—क्रि० स० [अनु० अथवा हिं० 'बिचकना' का सक० रूप] १. किसी को चिढ़ाने के लिये (मुँह) टेढ़ा करना। बिराना। (मुँह) चिढ़ाना। २. (मुँह को) स्वाद बिगड़ने के कारण टेढ़ा करना। (मुँह) बनाना।

बिचखोपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० विष+कपाल] दे० 'बिसखपरा'। उ०—घूमते हैं वनों में, पेड़ों पर बिचखोपड़।—कुकुर०, पृ० ६१।

बिचच्छिनⓅ†—वि० [सं० विचक्षण] दे० 'विचक्षण'। उ०—मुग्धा मैं धीरादिक लच्छिन। प्रगट नहीं पै लखै बिचच्छिन।—नंद० ग्रं०, पृ० १४७।

बिचछन†—वि० [सं० विचक्षण] दे० 'विचक्षण'। उ०—एत सब लछन संग बिचछन कपट रहत कतखन जे थरू।—विद्यापति, पृ० ४।

बिचरना—क्रि० अ० [सं० विचरण] १. इधर उधर घूमना। चलना फिरना। २. पर्यटन करना। यात्रा करना। सफर करना। उ०—ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना।—मानस, २।११९।

बिचल—वि० [सं० विचल] चलायमान। अस्थिर।

बिचलना—क्रि० अ० [सं० विचलन] १. विचलित होना। इधर उधर हटना। उ०—निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजा दस चाप।—मानस, ६।८०। २. हिम्मत हारना। ३. कहकर इनकार करना। मुकरना।

बिचला—वि० [हिं० बीच+ला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० बिचली] जो बीच में हो। बीचवाला। बीच का। जैसे, बिचला लड़का, बिचली किताब।

बिचलानाⓅ[1]—क्रि० अ० [सं० विचलन] दे० 'बिचलना'। उ०—प्रेम मगन ह्वै घायल खेलै कायर रन बिचलाना।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० १६।

बिचलानाⓅ†[2]—क्रि० स० १. चलायमान करना। विचलित करना। डिगाना। २. हिला देना। ३. तितर बितर करना। उ०—बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावन लियो।—मानस, ६।६६।

बिचवई†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बीच] १. मध्यस्थ। २. एजेंट। दलाल। उ०—वे विलायती वस्तुओं को बेचने के बिचवई हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६।

बिचवई†[2]—संज्ञा स्त्री० १. मध्यस्थता। किसी कार्य (बातचीत, खरीद फरोख्त, लड़ाई झगड़ा) में बीच में पड़ना। २. एजेंटी या दलाली।

बिचवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीच] दे० 'बिचवई[2]'।

बिचवान—संज्ञा पुं० [हिं० बीच + वान] बीच में पड़नेवाला। बीच बिचाव करनेवाला। मध्यस्थ। उ०—विनय करै पंडित बिचवाना। काहे नहिं जेवहिं जजमाना।—जायसी (शब्द०)।

बिचवानी—संज्ञा पुं० [हिं० बीच] दे० 'बिचवान'।

बिचहुतⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० बीच + भूत > हुत] १. अंतर। फरक। २. दुबधा। संदेह। उ०—अब हँसि के शशि सुरहिं भेंटा। अहा जो शीत सो बिचहुत मेटा।—जायसी (शब्द०)।

बिचार—संज्ञा पुं० [सं० विचार] दे० 'विचार'। उ०—मुदिता मथै बिचार मथानी।—मानस, ७।११७।

बिचारणाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० विचारणा] सोचने या विचारने की क्रिया।

बिचारनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० विचार + हिं० ना (प्रत्य०)] १. विचार करना। सोचना। गौर करना। २. पूछना। प्रश्न करना। (इस अर्थ में इसका प्रयोग प्रायः 'प्रश्न' शब्द के साथ होता है।)

बिचारमानⓅ†—वि० [सं० विचारवान्] १. विचार करनेवाला। बुद्धिमान्। २. विचारने के योग्य। विचारणीय। उ०—विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।—केशव (शब्द०)।

बिचारा—वि० [फा० बेचारह्] [स्त्री० बिचारी] दे० 'बेचारा'।

बिचारीⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० विचारिन्] विचार करनेवाला। उ०—मारग छाँड़ि कुमारग सो रत बुधि बिपरीति बिचारी हो।—सूर (शब्द०)। २. वह जो बहुत आचार विचार से रहता हो।

बिचालⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० विचाल] १. अलग करना। पृथक् करना। २. अंतर। फर्क।

बिचेतⓅ†—वि० [सं० विचेतस्] १. मूर्छित। बेहोश। अचेत। उ०—हरि चेत नाहिं बिचेत प्रानी भरम गोता खाइया।—गुलाल०, पृ० ८५। २. बदहवास। व्याकुल।

बिचौंहाँⓅ—वि० [हिं० बीच + औंहाँ (प्रत्य०)] बीचवाला। मध्य का। बीच का।

बिचौंहैंⓅ—क्रि० वि० बीच में ही। मध्य में ही।

बिचौलिया—संज्ञा पुं० [हिं० बीच + औलिया (प्रत्य०)] १. मध्यस्थ। २. दलाल। एजेंट।

बिच्चू†—संज्ञा पुं० [सं० वृश्चिक] बीछी। बिच्छू। उ०—बिच्चू ने नांगी मारा रे मारा। छ न न न न कहने लगा।—दक्खिनी०, पृ० ५७।

बिच्छित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] शृंगार रस के ११ हावों में से एक जिसमें किंचित् शृंगार से ही पुरुष को मोहित कर लिया जाना वर्णन किया जाता है। जैसे,—बेंदी भाल तमोल मुख सीस सिलसिले बार। दग आंजे राजै खरी साजे सहज सिंगार।—बिहारी (शब्द०)।

बिच्छी†—संज्ञा स्त्री० [सं० वृश्चिक] दे० 'बिच्छू'। उ०—मानो सहस्र बिच्छियों ने एक साथ ही डंक मारा है।—कबीर सा०, पृ० ५७२।

बिच्छू—संज्ञा पुं० [सं० वृश्चिक] १. आठ पैर और दो सूँड़वाला एक प्रसिद्ध छोटा जहरीला जानवर।

विशेष—यह जानवर प्रायः गरम देशों में अँधेरे स्थानों में जैसे, लकड़ियों या पत्थरों के नीचे, बिलों में रहता है। इसके आठ पैर और आगे की ओर दो सूँड़ होते हैं। इनमें से हर एक सूँड़ आगे की ओर दो भागों में चिमटी की तरह विभक्त होता है। इन्हीं सूँड़ों से यह अपने शिकारों को पकड़ता है। इसका पेट लंबा और गावदुमा होता है जिसके बाद एक और दूसरा अंग होता है जो दुम की तरह बराबर पतला होता जाता है। यह अंग मुड़कर जानवर की पीठ पर भी आ जाता है। इसके अंतिम भाग में एक जहरीला डंक होता है जिससे वह अपने शिकार को मार डालता है। अपने हानि पहुँचानेवालों को भी यह इसी डंक से मारता है जिसके कारण सारे शरीर में असह्य पीड़ा और जलन होती है जो कई कई दिन तक थोड़ी बहुत बनी रहती है। कहीं कहीं ८–१० इंच के बिच्छू भी पाए जाते हैं जिनके डंक मारने से आदमी मर भी जाते हैं। इसके संबंध में अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यदि बिच्छू चारों ओर से आग के बीच में फँस जाय तो वह जलना नहीं पसंद करेगा; बल्कि जलने से पहले अपने डंक से ही अपने आपको मार डालेगा। कुछ लोग कहते हैं, इसके शरीर में से किसी प्रकार निकाला हुआ अर्क इसके डंक के विष को अच्छा कर सकता है; और इसी लिये लोग जीते बिच्छू को पकड़कर तेल आदि में डालकर छोड़ देते हैं और बिच्छू के मर जाने पर उस तेल में डंक के विष को दूर करने का गुण मानने लगते हैं। पर इन सब किंवदंतियों में कोई सार नहीं है।

२. एक प्रकार की घास जिसके शरीर में छू जाने से बिच्छू के काटने की सी जलन होती है। ३. काकतुंडी का पौधा या उसका फल। (क्व०)।

बिच्छेपⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० विक्षेप, प्रा० बिच्छेप] दे० 'विक्षेप'।

बिछना—क्रि० अ० [सं० विस्तरण] १. बिछाना का अकर्मक रूप।

बिस्तर आदि का बिछाया जाना। फैलाया जाना। २. किसी पदार्थ ा जमीन पर बिखेरा जाना। छितराया जाना। ३. (मार पीटकर) जमीन पर लिटाया या गिराया जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

बिछनागⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० बछनाग] दे० 'बछनाग'। उ०—भूला अभरन राग सुहागा। सखिय भई दारुण बिछनागा।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २६१।

बिछलन—संज्ञा स्त्री० [सं० विस्खलन] दे० 'फिसलन'। उ०—लहरों की बिछलन पर जब मचली पड़ती किरणें भोली।—यामा, पृ० ६।

बिछलना†—क्रि० अ० [हिं० बिछलन] दे० 'फिसलना'।

बिछलहर†—वि० [हिं० बिछलना+हर (प्रत्य०)] पिच्छिल। फिसलन भरी। उ०—मेड़ के ऊपर से लोगों की निकाली हुई पगडंडी, वह भी पानी बरस जाने से बिछलहर।—काले०, पृ० १।

बिछलाना—क्रि० अ० [हिं० बिछलन] दे० 'फिसलना'।

बिछवाना—क्रि० स० [हिं० बिछाना का प्रे० रूप] बिछाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को बिछाने में प्रवृत्त करना।

बिछाउ†—संज्ञा पुं० [हिं० बिछाना] बिछाने की वस्तु। बिछौना।

बिछान†—संज्ञा पुं० [सं० विस्तर] दे० 'बिछौना'।

बिछाना—क्रि० स० [सं० विस्तरण] १. (बिस्तर या कपड़े आदि को) जमीन पर उतनी दूर तक फैलाना जितनी दूर तक फैल सके। जैसे, बिछौना बिछाना, दरी बिछाना। उ०—औ भुइँ सुरँग बिछाव बिछावा।—जायसी ग्रं०, पृ० १२८। २. किसी चीज को जमीन पर कुछ दूर तक फैला देना। बिखेरना। बिखराना। जैसे, चूना बिछाना, बताशे बिछाना। ३. (मार मारकर) जमीन पर गिरा या लेटा देना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

बिछायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिछाना+आयत (प्रत्य०)] १. बिछाने का काम। बिछौना बिछाना। उ०—पाछे नारायन दास ने वा दिन बिछायत करि राखी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२३। २. बिछाने की वस्तु। बिछौना। उ०—कमरे मे रेशमी गलीचे की बड़ी उम्दा बिछायत थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७७।

बिछायतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिछायत] दे० 'बिछायत'। उ०—डेरा डयोढी करि खरे, करि *बिछायति* बेस।—ह० रासो पृ० ५०।

बिछावⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० बिछाना+आव (प्रत्य०) दे० 'बिछा-वन']। उ०—औ भुइँ सुरंग बिछाव बिछावा।—जायसी ग्रं०, पृ० १२८।

बिछावन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिछौना'। उ०—करी बिछावन तहँ बड़ भारी। गादी तकिया बहुत अपारी।—कबीर सा०, पृ० ५४३।

बिछावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बिछाना'। उ०—औ भुइँ सुरँग बिछाव बिछावा।—जायसी ग्रं०, पृ० १२८।

बिछिआ, बिछिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिच्छू+इया (प्रत्य०)] पैर की उँगलियों में पहनने का एक प्रकार का छल्ला। उ०—(क) अनवट बिछिया नखत तराई।—जायसी ग्रं०, (गुप्त०), पृ० १९०। (ख) तब या प्रकार नूपुर के शब्द अनवट बिछियान के पाइलन के तथा कटिसूत्रन के सब्दन सो पधारे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२०।

बिछिप्त†Ⓟ—वि० [सं० विक्षिप्त] दे० 'विक्षिप्त'।

बिछुआ†Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० बिच्छू] १. पैर में पहनने का एक गहना। २. एक प्रकार की छोटी टेढ़ी छुरी। एक छोटा सा शस्त्र। बघनखा। ३. सन की पूली। ४. अगिया या भावर नाम का पौधा। विशेष—दे० 'अगिया'। ५. कमर में पहनने का एक गहना। एक प्रकार की करधनी।

बिछुट्टनाⓅ—क्रि० अ० [प्रा० वि+छुटना (=छूटना)] दे० 'छूटना'। उ० बज्जि गहर निसान। अग्गि भगवान बिछु-ट्टिय।—पृ० रा०, १। ६३६।

बिछुड़न†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिछुड़ना] १. बिछड़ने या अलग होने का भाव। २. वियोग। विरह। जुदाई।

बिछुड़ना—क्रि० अ० [सं० विच्छेद] १. साथ रहनेवाले दो व्यक्तियों का एक दूसरे से अलग होना। २. प्रेमियों का एक दूसरे से अलग होना। वियोग होना।

संयो० क्रि०—जाना।

बिछुरंताⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० बिछुड़ना+अंता (प्रत्य०)] १. बिछुड़नेवाला। उ०—बिछुरंता जब भेंटिऐ सो जानै जेहि नेहु।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० २३९। २. जो बिछड़ गया हो।

बिछुरना—क्रि० अ० [हिं] दे० 'बिछुड़ना'। उ०—बिछुरत सुंदर अधर तैं रहत न जिहि घट साँस।—स० सप्तक, पृ० १८७।

बिछुरनिⓅ†संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बिछुड़न'।

बिछुवा—संज्ञा पुं० [हिं० बिछुआ] १. पैर की उँगली का एक गहना। उ०—कंचन के बिछुवा पहिरावत प्यारी सखी परिहास बढ़ायो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३५। २. बाँक। बघ-नख। उ०—भौंहें बाँकी बाँक सी लखी कुंज की ओट। समर सस्र बिछुवा लग्यौ लालन लोटहिं पोट।—ब्रज ग्रं०, पृ० १५। दे० 'बिछुआ'।

बिछूनाⓅ†—संज्ञा पुं० [प्रा० बिच्छूढ (=वियुक्त) या हिं० बिछु-ड़ना] बिछुड़ा हुआ। जो बिछुड़ गया हो। उ०—मिले रहस भा चाहिय दूना। कित रोइय जौ मिलै बिछूना।—जायसी ग्रं०, पृ० ७६।

बिछोईⓅ†संज्ञा पुं० [हिं० बिछोह+ई (प्रत्य०)] १. वह जो बिछुड़ा हुआ हो। जिसका वियोग हुआ हो। उ०—अधिक मोह जौं मिले बिछोई।—जायसी ग्रं०, पृ० ७६। २. जो विरह का दु:ख सह रहा हो। विरही।

बिछोड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० बिछड़ना] १. बिछड़ने की क्रिया या भाव। अलग होना। अलगाव। उ०—बरसों के बिछोड़े के बाद मिलने पर संबंधियों के दिल भर आते हैं।—फूलो०, पृ० ३५। २. विरह होना। प्रेमियों का वियोग होना।

बिछोना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिछौना'। उ०—तब या ने एकांत आछे बिछोना बिछाय दिए।—दो सौ बावन० भा० २, पृ० ४७।

बिछोय(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विच्छेद] वियोग। उ०—जुदाई। एक दिन ऐसा होयगा सबसे परै बिछोय। राजा राना राव रंक सावध क्यों नहिं होय।—कबीर (शब्द०)।

बिछोर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० बिछुड़न] वियोग। जुदाई। उ०—ऐसा जिवडा न मिलाए जो फरक बिछोर।—कबीर मं०, पृ० ३२५।

बिछोरना—क्रि० स० [हिं० बिछोर + ना (प्रत्य०)] अलगाना। वियुक्त करना। उ०—है सब उहि अदिष्ट के घोरे। बिछुरे मिलवै मिले बिछोरे।—नंद० ग्रं०, पृ० २३६।

बिछोव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिछोह' उ०—(क) हिआ देखि सो चंदन घेवरा मिलि कै लिखा बिछोव।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५५। (ख) अब सो मिलन कत सखी सहेलनि परा बिछोवा टूटि।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१।

बिछोह—संज्ञा पुं० [हिं० बिछुड़ना] बिछोड़ा। जुदाई। विरह। वियोग। उ०—आसा कहै हमीर सह, हम तुम भया बिछोह।—हृ० रासो, पृ० १२०।

बिछौन, बिछौना—संज्ञा पुं० [हिं० बिछावना] वह कपड़ा जो सोने के काम के लिये बिछाया जाता हो। दरी, गद्दा, चाँदनी आदि जो सोने के लिये बिछाए जाते हैं। बिछावन। बिस्तर। उ०—जनु कोउ भूपति उतरयो आइ। छत्र तनाइ, बिछौन बिछाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८६। २. वह फालतू सामान और काठ कबाड़ आदि जो जहाजों के पेंदे में बहुमूल्य पदार्थों को सीड़ आदि से बचाने के लिये उनके नीचे अथवा उनको टक्कर आदि से बचाने और उन्हें कसा रखने के लिये उनके बीच में बिछाया जाता है। (लश०)

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—बिछाना।

बिज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० बीज] दे० 'बीज'। उ०—बिज से बिज उतपति किया सो बिज सभ के दीन्ह।—संत० दरिया, पृ० १।

बिजई†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीज] बीज का अवशिष्ट अन्न जो नीच जाति के लोग खेतों से लाते हैं। बिजवार।

बिजई(पु)[2]—वि० [सं० विजयिन, हिं० विजयी] जयशील। दे० 'विजयी'। उ०—दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर।—मानस, ७।२५।

बिजउरा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बिजौरा'। (डिं०)

बिजड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तलवार। खड्ग।

बिजन(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० व्यजन] हवा करने का छोटा पंखा जो हाथ से हिलाया जाता है। बेना। उ०—(क) कैसे वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै बिजय बयारि लागैं लंक लचकत है।—मतिराम (शब्द०)। (ख) चंद्रक चंदन बरफ मिलि हिले जिन चहुँ पास। ग्रीषम गाल गरम लगैं गैं गुलाब के त्रास।—स० सप्तक, पृ० ३६२।

बिजन[2]—संज्ञा पुं० [सं० विजन] निर्जन स्थान। सुनसान जगह।

बिजन[3]—क्रि० वि० जिसके साथ कोई न हो। अकेला। उ०—कैसे वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै बिजन बयारि लागैं लंक लचकत है।—मतिराम (शब्द०)।

बिजन[4]—संज्ञा पुं० [अं० वेन्ज्यन्स (= प्रतिशोध, बदला)] प्रतिशोध। कत्ले आम। बहुत से लोगों की एक साथ हत्या। उ०—लाचार होकर नादिर शाह ने बिजन बोल दिया।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३०।

बिजना†—संज्ञा पुं० [हिं० बिजन] पंखा। बेना। बिजन।

बिजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० विजन] हिमालय की एक जंगली जाति।

विशेष—यह जाति उस प्रदेश में बसती है जहाँ ब्रह्मपुत्र नद हिमालय को काटकर तिब्बत से भारत में आता है।

बिजय—संज्ञा पुं० [सं० विजय] दे० 'विजय'।

बिजयखार—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बिजयसार'।

बिजयघंट—संज्ञा पुं० [सं० विजय + घण्ट] बड़ा घंटा जो मंदिरों में लटकाया रहता है।

बिजयसार—संज्ञा पुं० [सं० विजयसार] एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली पेड़ जिसके पत्ते पीपल के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं। बिजयखार।

विशेष—इसमें आँवले के समान एक प्रकार के पीले फल भी लगते हैं। इसके फूल कड़वे, पर पाचक और बादी उत्पन्न करनेवाले होते हैं। इसकी लकड़ी कुछ कालापन लिए लाल रंग की और मजबूत होती है। यह प्रायः ढोल, तबले आदि बनाने के काम में आती है। इससे अनेक प्रकार की स्याहियाँ और रंग भी बनते हैं। वैद्यक में इसे कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, गुदा के रोग, कृमि, कफ, रक्त और पित्त का नाशक माना है।

बिजया—संज्ञा स्त्री० [सं० विजया] भाँग। विजया। उ०—काया कूँड़ी साफ बनायो तिरबिधि बिजया नाई।—गुलाल०, पृ० २६।

बिजयी—वि० [सं० विजयिन्] विजयी। जयशील।

बिजरी(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिजली] दे० 'बिजली'। उ०—प्रिया अति गति लई, बिजरी सी कौंधि गई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८८५।

बिजरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] अलसी या तीसी का पौधा। (बुंदेल०)।

बिजली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्] १. एक प्रसिद्ध शक्ति जिसके कारण वस्तुओं में आकर्षण और अपकर्षण होता है और

जिससे कभी कभी ताप और प्रकाश भी उत्पन्न होता है। विद्युत्।

विशेष—यह शक्ति सब वस्तुओं में और सदा नहीं होती, बल्कि कुछ विशिष्ट क्रियाओं की सहायता से उत्पन्न होती है। यह शक्ति एक तो घर्षण से और दूसरे रासायनिक क्रियाओं से उत्पन्न होती है। मोरपंख को थोड़ी देर तक उँगलियों से, लाह के टुकड़े को फलालीन से अथवा शीशे को रेशम से रगड़ने पर यह शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसी बिजली के घनात्मक और ऋणात्मक ये दो भेद होते हैं। जब दो वस्तुओं को एक साथ रगड़ते हैं, तो उनमे से एक से धन विद्युत् और दूसरी में से ऋण विद्युत् उत्पन्न होती है। बिजली कुछ विशिष्ट पदार्थों में चलती भी है और अत्यंत वेग से (प्रति सेकंड २९०००० मील अथवा प्रकाश के वेग की अपेक्षा डयोढ़े वेग से) चलती है। ऐसे पदार्थों को चालक कहते हैं। इनके एक सिरे पर यदि बिजली पहुँच जाय तो वह तुरंत उनके दूसरे सिरे पर जा पहुँचती है। धातुएँ, जल, वृक्ष, शरीर, बर्फ आदि पदार्थ चालक हैं। कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जिनमे बिजली का संचालन नहीं होता और जिनको अवरोधक कहते हैं। जैसे, चूना, हवा, रेशम, शीशा, मोम, ऊन, लाह, आदि। घर्षण से जो बिजली उत्पन्न होती है, वह बहुत ही थोड़ी होती है और उसके उत्पादन में परिश्रम भी अधिक होता है। इसलिये वैज्ञानिको ने अनेक रासायनिक प्रयोगों और क्रियाओं की सहायता से बिजली उत्पन्न करने के उपाय निकाले हैं। ऐसे उपायों से थोड़े व्यय और कम परिश्रम से कम समय में बहुत अधिक बिजली उत्पन्न की जाती है जो एकत्र या संग्रह करके भी रखी जाती है। ये यंत्र अनेक आकार और प्रकार के होते हैं और इनसे बहुत अधिक मान में बिजली उत्पन्न होती है। इस प्रकार उत्पन्न की हुई बिजली से आजकल अनेक प्रकार के कार्य लिए जाते हैं। जैसे, रोशनी करना, पंखा चलाना, अनेक प्रकार की गाड़ियाँ चलाना, एक धातु पर दूसरी धातु चढ़ाना, समाचार भेजना, इत्यादि, इत्यादि। आजकल भारत के बड़े बड़े नगरों में ऐसी ही बिजली की सहायता से ट्राम गाड़ियाँ और अनेक प्रकार की मशीनें चलती हैं और रोशनी होती है। इससे अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्साएँ भी होने लगी हैं। यदि यह बिजली अधिक मान मे हो और मनुष्य के शरीर से उसका स्पर्श हो जाय तो उससे तुरंत ही मृत्यु भी हो सकती है।

बिजली का आविष्कार पहले पहल थेल्स नामक एक व्यक्ति ने किया था जो ईसा से प्राय: ६०० वर्ष पूर्व हुआ था। उसने पहले पहल इस बात का पता लगाया था कि रेशम के साथ कुछ विशिष्ट वस्तुओं को रगड़ने से उसमें यह शक्ति आ जाती है कि वह कागज के टुकड़ों अथवा इसी प्रकार के कुछ और हलके पदार्थों को अपनी ओर खीचने लगती है। आरंभ के वैज्ञानिकों में से फ्रांक्लिन का मत था कि बिजली बहुत ही सूक्ष्म और गुरुत्वहीन द्रव पदार्थ है। पीछे से सेमर ने कल्पना की कि यह धन और ऋण दो गुरुत्वहीन द्रव पदार्थों के संयोग से उत्पन्न होती है। परंतु अभी तक इसके संबंध में कुछ विशेष निर्णय नहीं हो सका है। तो भी यह बात प्राय: निश्चित सी है कि बिजली कोई द्रव पदार्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त इसका द्रव्य होना भी निश्चित नहीं है, क्योंकि इसमें कोई गुरुत्व नहीं होता।

२. आकाश में सहसा उत्पन्न होनेवाला वह प्रकाश जो एक बादल से दूसरे बादल में जानेवाली अथवा किसी बादल से पृथ्वी की ओर आनेवाली वातावरण की बिजली के कारण उत्पन्न होता है। चपला।

विशेष—साधारणत: वातावरण में सदा कुछ न कुछ बिजली रहती है जो प्राय: घनात्मक होती है और जो पृथ्वी से कुछ ऊँचाई पर पाई जाती है। वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य की किरणों के कारण पानी से जो भाप बनती है, उसके साथ इस बिजली का विशेष संबंध है; क्योंकि प्रात:काल वातावरण मे यह बिजली थोड़े परिमाण में रहती है और ज्यों ज्यों दिन चढता है, त्यों त्यों बढनी जाती है। इसके अतिरिक्त बादलो मे भी कहीं घनात्मक और कहीं ऋणात्मक बिजली रहती है। जब घनात्मक और ऋणात्मक बिजली-वाले दो बादल आमने सामने आते हैं, तब पहले उन दोनों की बिजली में आकर्षण होता है और तब उसका विसर्जन होता है जिससे प्रकाश देख पड़ता है। जिस समय कोई धन विद्युत्वाला बादल पृथ्वी के सामने आता है, उस समय पृथ्वी के ऊपर की ओर ऋणविद्युत् उत्पन्न होती है और तब दोनों मिलकर विसर्जित होती हैं जिससे प्रकाश होता है। यही बिजली आकाश से तिरछी रेखा के रूप में पृथ्वी की ओर बड़े वेग से चलती है और उसके मार्ग मे जो कुछ पड़ता है, उसे जला या नष्ट कर देती है। इसी को साधारण बोलचाल की भाषा मे बिजली गिरना या बिजली पड़ना आदि कहते हैं। इसके मार्ग मे पड़नेवाले वृक्ष और घर गिर जाते है और मनुष्य या दूसरे जीव मर जाते हैं। यह प्रकाश प्राय: मीलो लंबा होता है और इसकी गति प्राय: वक्र होती है। गति की वक्रता का कारण यह है कि वातावरण मे इसे जिधर सबसे कम अवरोध मिलता है, उधर ही यह बढ़ चलती है। बादलों के गरजने का कारण भी यही बिजली है; क्योंकि जब बादलो में से इसका विसर्जन होता है, तब वायु मे बहुत अधिक गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। कभी ऐसा भी होता है कि यह प्रकाश एक लंबी चादर के रूप में दिखाई पड़ता है। पर यह प्राय: क्षितिज के पास और उसी समय दिखाई देता है जब वर्षा अथवा तूफान बहुत दूर पर हो। कभी कभी बिजली के गोले भी आकाश से नीचे गिरते हुए दिखाई देते हैं जो पृथ्वी तक पहुँचने से पहले ही भीषण शब्द उत्पन्न करते हुए फट जाते हैं। पर ऐसे गोले बहुत ही कम गिरते हैं और कुछ ही क्षणों तक दिखाई देते हैं।

क्रि० प्र०—चमकना।

मुहा०—बिजली गिरना या पड़ना=दे० ऊपर 'विशेष'। बिजली कड़कना= बिजली के विसर्जन के कारण आकाश में बहुत

जोर का शब्द होना। बिजली चमक जाना=चकाचौंध होना। चकपकाहट होना। सनसनी फैलना। उ०—अखाड़े में गदका लेकर खड़े हुए तो मालूम हुआ बिजली चमक गई। —फिसाना०, भा०१, पृ० ७। बिजली गिराना=कहर ढाना। जुल्म ढाना। उ०—दिल मे जिगर में सीने में पहलू में आपने। बिजली कहाँ कहाँ न गिराई तमाम रात। —फिसाना०, भा०३, पृ० ११९।

३. आम की गुठली के अंदर की गिरी। ४. गले में पहनने का एक प्रकार का गहना। ५. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना।

बिजली²—वि० १. बहुत अधिक चंचल या तेज। २. बहुत अधिक चमकनेवाला। चमकीला।

बिजलीघर—संज्ञा पुं० [हिं०] वह स्थान जहाँ विद्युत् पैदा की जाय।

बिजलीमार—संज्ञा पुं० [देश०] इक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बहुत सुंदर और छायादार होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी बहुत कड़ी होती है और प्राय: सिरिस की लकड़ी की तरह काम मे आती है। यह आसाम और दारजिलिंग के आस पास की तराइयों में अधिकता से होता है। आसामवाले इस वृक्ष पर एक प्रकार की लाख भी उत्पन्न करते हैं।

बिजवार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिजई'।

बिजहन—वि० [हिं० बीज+हन] जिसका बीज नष्ट हो गया हो। जिसकी बीज शक्ति नष्ट हो गई हो। जैसे, बिजहन गेहूँ।

बिजागी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वज्राग्नि, हिं० बजागि] दे० 'बजागि' उ०—रानी सुनि सिर परी बिजागी। सुनतहिं जरी कोप की आगी।—चित्रा०, पृ० ३७।

बिजाती—वि० [सं० विजातीय] १. दूसरी जाति का। और जाति या तरह का। उ०—गुरुजन नैन बिजातियन परी कौन यह बान। प्रीतम मुख अवलोक तन होत जु आड़े आन।—रसनिधि (शब्द०)। २. जो जाति से बहिष्कृत कर दिया गया हो। जाति से निकला हुआ। अजाती।

बिजान(पु)†—संज्ञा पुं० [फा० वि+जान] अज्ञान। अनजान। उ०—जो यह एकै जानिया तौ जानी सब जान। जो यह एक न जानिया तौ सबही जानु बिजान।—कबीर (शब्द०)।

बिजायठ—संज्ञा पुं० [सं० विजय] बाँह पर पहनने का बाजूबंद नामक गहना। अंगद। भुज। बाजू।

बिजार‡—संज्ञा पुं० [देश०] १. बैल। २. साँड।

बिजुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिजली] दे० 'बिजली'। उ०—मेघ डरहि बिजुरी जहँ डीठी। कुरुम डरै धरती जेहि पीठी। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २९९।

बिजुल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्] बिजली। दामिनि। उ०—कहुँ वहुँ मृगु निरजन बन माही। चमकत भजत बिजुल की नाईं।—पद्माकर (शब्द०)।

बिजूका, बिजूखा‡—संज्ञा पुं० [देश०] १. खेतों में पक्षियों आदि को डराकर दूर रखने के उद्देश्य से लकड़ी के ऊपर उलटी रखी हुई काली हाँड़ी। उ०—भेष बिजूका नाम का, देखत डरै कुरग। दरिया सिंघा ना डरै भीतर निर्भय अंग।—दरिया० बानी, पृ० ३४। २. धोखा। छल (व्व०)।

बिजै(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० विजय] दे० 'विजय'।

बिजैसार—संज्ञा स्त्री० [सं० विजयसार] दे० 'विजयसार'।

बिजोग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वियोग, प्रा० विजोग] वियोग। उ०—खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़ै बिजोग। प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहेब जोग।—कबीर सा० सं०, पृ० २९।

बिजोना—[सं० बीजवन] बीज बोना। उ०—आछी भाँति सुधारिकै खेत किसान बिजोय। नत पीछे पछतायगो समै गयो जब खोय।—दीन० ग्रं०, पृ० २३९।

बिजोरा¹—संज्ञा पुं० [सं० बीजपूर, प्रा० बिज्जउर] दे० 'बिजौरा'।

बिजोरा²—वि० [सं० वि+फ़ा० जोर (=ताकत)] कमजोर। अशक्त। निर्बल।

बिजोहा—संज्ञा पुं० [देश०] केशव के अनुसार एक छद का नाम। विशेष—दे० 'बिज्जूहा'।

बिजौर, बिजौरा—संज्ञा पु० [सं० बीजपूरक, प्रा० बिज्जऊरअ] नीबू की जाति का एक वृक्ष।

विशेष—इसके पत्ते नीबू के पत्तों के समान, पर उससे बहुत अधिक बड़े होते हैं। इसके फूलों का रंग सफेद होता है और फल बड़ी नारंगी के बराबर होते हैं। यह दो प्रकार का होता है, एक खट्टे फलवाला और दूसरा मीठे फलवाला। फलो का छिलका बहुत मोटा होता है। वैद्यक मे इसे खट्टा, गरम, कंठशोधक, तीक्ष्ण, हलका, दीपक, रुचिकारक, स्वादिष्ट और त्रिदोष, तृषा, खाँसी, हिचकी आदि को दूर करनेवाला माना है। इस वृक्ष की जड़, इसके फल और फलों के बीज तीनों औषध के काम आते हैं।

पर्या०—बीजपूर। मातुलुंग। रुचक। फलपूरक। अम्लकेशर। बीजपूर्ण। पूर्णबीज। सुकेश। बीजक। सुपूरा। बीजफलक। जंतुघ्न। पूरक। रोचनफल।

बिजौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीज+औरी (प्रत्य०)] उड़द की पीठी और पेठे के मेल से बनी हुई बड़ी। कुम्हड़ौरी।

बिज्जु(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत् प्रा० बिज्जु] दे० 'बिजली'। उ०—नागर नट पट पीत धर जिमि घन बिज्जु बिलात।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८८।

बिज्जुपात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विद्युत्पात] बिजली का गिरना। वज्रपात।

बिज्जुल(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० विज्जुल] त्वचा। छिलका।

बिज्जुल²—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्, प्रा० विज्जुल] बिजुली। दामिनि। उ०—सूर कै तेज तें सूरज दीपत चंद के तेज

ते चंद उजासै । तारे के तेज तें तारे उदीसत बिज्जुल तेज तें बिज्जु चकासै ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१८ ।

बिज्जू—संज्ञा पुं० [देश०] बिल्ली के आकार प्रकार का एक जंगली जानवर जो प्रायः दो हाथ लंबा होता है । बीजू ।

विशेष—यह प्रायः जंगलों में बिल खोदकर अपनी मादा के साथ उसी में रहता है । दिन के समय वह जल्दी बाहर नहीं निकलता, पर रात को बाहर निकलकर चूहों, मुरगियों आदि का शिकार करता और उनको खा जाता है । कभी कभी यह कब्रों को खोदकर उनमें से मृतक शरीर को निकालकर भी खा जाता है ।

बिज्जूहा—संज्ञा पुं० [?] एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो 'रगण' होते हैं । जैसे—पुन्य के पाल हैं । दीन के ग्वाल हैं । सीय के हेत है । नैन से भेत हैं । इसी का नाम 'विमोहा' और 'विजोहा' भी है ।

बिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० विज्ञान] दे० 'विज्ञान' । उ०—जेहि बिज्ञान मगन मुनी ज्ञानी ।—मानस, १ । १११ ।

बिज्ञानीⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विज्ञानी] वह जो विशिष्ट ज्ञानयुक्त हो । वह जो ज्ञान की परिधि को पार कर गया हो । उ०—ह्वै गइ दसा अखंड ज्ञान तजि भई बिज्ञानी ।—पलटू०, भा० १, पृ० ३० ।

बिझँवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] छत्तीसगढ़ में बोली जानेवाली एक प्रकार की बोली ।

बिझकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बिझुकना' ।

बिझरा†—संज्ञा पुं० [हिं० मेझरना (=मिलाना)] एक में मिला हुआ मटर, चना, गेहूँ और जो ।

बिझुकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० झोंका] १.भड़कना । उ०—बोले झुकै उझकै अनबोलें फिरै बिझुकै से हिये महँ फूले ।—केशव (शब्द०) । २. डरना । भयभीत होना । उ०—हँसि उठचौ नरनायक चाइकौ रिसभरी बिझुकै सरसाइकै ।—गुमान (शब्द०) । ३. टेढा होना । तनना । उ०—नेह उरझे से नैन देखिबे को बिरुझे से बिझुकी सी भौहें उझके से उरजात हैं ।—केशव (शब्द०) ।

बिझुकाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिजूका' । उ०—बुधि मेरी किरषी, गुर मेरो बिझुका, आखिर दोउ रखवारे ।—कबीर ग्रं०, पृ० २१६ ।

बिझुकानाⓅ†—[हिं० बिझुकना का सक० रूप] १. भड़काना । उ०—भाग बड़ो जु रची तुम सो वह तो बिझुकाइ कहो कहँ कीजै ।—केशव (शब्द०) । २. डराना । उ०—दान दया शुभ शील सखा बिझुकै गुण भिक्षुक को बिझुकावै ।—केशव (शब्द०) ।

बिझूकाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'बिजूका' । उ०—जगत बिझूका देखि करि मन मृग मानैं संक । सुंदर कियो बिचार जब मिथ्या पुरुष करंक ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७२६ । २. धोखा । छल । फरेब । उ०—अजहूँ वेगि समुझि किन देखौ यह संसार बिझूकौ रे ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१० ।

बिटंडⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वितण्डा] दे० 'वितंडा' । हुज्जत । शरारत । उ०—काहु श्रवनि पाएँ अस गरसी । करसि बिटंड भरम नहिं करसी ।—पद्मावत, पृ० २५४ ।

बिटंबनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विडम्बन] दे० 'विडंबना' । उ०—नाना रँग बोलहि वह बानी । घरफै भेष बिटंबन ठानी ।—द० सागर, पृ० २४ ।

बिट—संज्ञा पुं० [सं० विट्] १. साहित्य में नायक का वह सखा जो सब कलाओं में निपुण हो । उ०—पीठमर्द बिट चेट पुनि बहुरि बिदूषक होई । मोचै मान तियान को पीठमर्द है सोई ।—पद्माकर (शब्द०) । २. वैश्य । उ०—बस्त बसी ब्रह्म छत्री बिट शूद्र जाति अनुसारा ।—रघुराज (शब्द०) । ३. पक्षियों की विष्टा । बीट । ४. नीच । खल । धूर्त । उ०—नट भट बिट ठग ठाठ पीक पाच है सबन को ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६ ।

बिटक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० बिटक] फोड़ा । फुंसी (को०) ।

बिटपⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विटप] १. वृक्ष । २. क्षुप । ३. टहनी ।

बिटपी—संज्ञा पुं० [सं० विटपी] दे० 'विटपी' ।

बिटरना—क्रि० अ० [हिं० बिटारना का अक० रूप] १. घँघोला जाना । २. गंदा होना ।

बिटामिन—संज्ञा पुं० [अं० विटामिन] जीवनतत्व । पोषक तत्व । उ०—जिसमें बिटामिन भले ही कम हो किंतु किलोरी शक्ति अधिक रहती है ।—किन्नर०, पृ० ७ ।

बिटारना—क्रि० स० [सं० विलोडन] १. घँघोलना । घँघोलकर गंदा करना । उ०—बगुलों नीर बिटारिया सायर चढ़ा कलंक । और पखेरू पीविया हंस न बोरै चंच ।—कबीर (शब्द०) ।

बिटालना—क्रि० सं० [हिं० बिडारना] फैलाना । बिखेरना । घँघोलना ।

बिटिनिया, बिटिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बेटी' ।

बिटोरा, बिटौरा—संज्ञा पुं० [हिं० बटोरना] [अव० चिटहुर, बिठुहरा] उपलों का ढेर । उ०—कान जिनि गह्यो तिनि सूप सो बनाइ कह्यो, पीठि जिनि गही तिनि बिटोरा बतायो है ।—सुंदर ग्रं०, भाग २, पृ० ६२० ।

बिट्टी, बिट्टो—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिटिया] दे० 'बेटी' । उ०—पूछा, अरी बिट्टो तुम्हें क्या हुआ ।—कुकुर०, पृ० ४४ ।

बिट्ठल—संज्ञा पुं० [सं० विष्णु, महा० बिठोबा] १. विष्णु का एक नाम । २. बंबई प्रांत में शोलापुर के अंतर्गत पंढरपुर नगर की एक प्रधान देवमूर्ति । उ०—बाल दशा बिट्ठल पानि जाके पय पीयो मृतक गऊ जिआइ परचो असुरन को दियो ।—नाभा (शब्द०) ।

विशेष—यह मूर्ति देखने में बुद्ध की मूर्ति जान पड़ती है । जैन लोग इसे अपने तीर्थंकर की मूर्ति और हिंदू लोग विष्णु भगवान् की मूर्ति बतलाते हैं ।

बिठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. वायुमंडल [को०] ।

बिठक—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश [को०] ।

बिठलाना—क्रि० स० [हिं] दे० 'बैठाना' ।

बिठाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बेठाला' ।

बिठालना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बैठाना'

बिडंब—संज्ञा पुं० [सं० विडम्ब] आडंबर । दिखावा ।

यौ०—बिडंबरत = पाखंडरत । उ०—कतहुँ मूढ़ पंडित बिडंबरत कबहुँ धर्मरत ज्ञानी ।—(शब्द०) ।

बिडंबनाⓊ†—संज्ञा स्त्री० [सं० विडम्बना] १. नकल । स्वरूप बनाना । २. उपहास । हँसी । निंदा । बदनामी । उ०—ज्ञानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार । केहिकै लोभ बिडंबना कीन्ह न एहि संसार ।—तुलसी (शब्द०) ।

बिड[1]—पुं० [सं०] एक प्रकार का नमक ।

बिड[2]—संज्ञा पुं० [सं० विट्] १. विष्टा । (डिं०) दे० 'बिट'—३ । २. दे० 'विट' ।

बिड़Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० विट] नीच । खल । धूर्त । उ०—बीर करि केसरी कुठारपानि मानी हारि तेरी कहा चली बिड़ तो सो गनै कालि को ।—तुलसी (शब्द०) ।

बिड्द†—संज्ञा पुं० [सं० बिरद] दे० 'बिरद' । उ०—हम कसिये क्या होइगा, बिड़द तुम्हारा जाइ । पीछे ही पछिताहुगे तार्थं प्रगटहु आइ ।—दादू० बानी, पृ० ६३ ।

बिडर[1]—वि० [हिं० बिडरना] छितराया हुआ । अलग अलग । दूर दूर ।

बिडर†[2]—वि० [हिं० बि (=बिना) + डर (=भय)] १. जिसे भय न हो । न डरनेवाला । निर्भय । निडर । २. धृष्ट । ढीठ ।

बिडरना—क्रि० अ० [सं० विट् (=तीखे स्वर से पुकारना, चिल्लाना)] १. उधर उधर होना । तितर बितर होना । उ०—भीर भई सुरभी सब बिडरी मुरली भली सँभारी ।—सूर (शब्द०) । २. पशुओं का भयभीत होना । बिचकना । उ०—सिव समाज जब देखन लागे । बिडरि चले बाहन सब भागे ।—तुलसी (शब्द०) । ३. नष्ट होना । बरबाद होना ।

बिडराना—क्रि० स० [हिं० बिडरना का सक० रूप] १. इधर उधर करना । तितर बितर करना । २. भगाना । उ०—खाए फल दल मधु सबन रखवारे बिडराय ।—विश्राम (शब्द०) ।

बिड़वनाⓊ†[1]—क्रि० स० [सं० विद् (=जोर से चिल्लाना)] तोड़ना । उ०—यद्यपि अलक अंज गहि बाँधे तऊ चपल गति न्यारे । घुँघट पट बागुर ज्यों बिड़वत जतन करत शशि हारे ।—सूर (शब्द०) ।

बिड़वनाⓊ†[2]—क्रि० स० [हिं० बिढ़वना] कमाना । पैदा करना । उ०—रहूँ भरोसे राम के, बनिजे कबहुँ न जाँव । दास मलूका यों कहै, हरि बिड़वै मैं खाँव ।—मलूक० बानी, पृ० ३४ ।

बिड़ाⓊ—संज्ञा पुं० [सं० विटप या विरुह, हिं० बिरवा] पेड़ । बिरवा । विटप । उ०—कबीर चंदन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास । आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५० ।

बिड़ायते—वि० [सं० वृद्धायते] अधिक । ज्यादा (दलाल) ।

बिडारना—क्रि० स० [सं० बिडरना का सक० रूप] भयभीत करके भगाना । उ०—(क) अर्जुन आदि बीर जो रहेऊ । दिए बिडारि बिकल सब भयऊ ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) कुंभकरन कपि फौज बिडारी ।—तुलसी (शब्द०) २. नष्ट करना । बरबाद करना । न रहने देना । उ०—सेतु बंध जेइ धनुष बिडारा । उहौ धनुष भौहन्ह सो हारा ।—जायसी (शब्द०) ।

बिडाल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल्ली । बिलाव । २. आँख का डेला । ढेंढर (को०) । ३. बिडालाक्ष नामक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था । ४. आँख के रोगों की एक प्रकार की ओषधि । ५. दोहे के बासवें भेद का नाम जिसमें ३ अक्षर गुरु और ४२ अक्षर लघु होते हैं । जैसे,—बिरद सुमिरि सुधि करत नित हरि तुव चरन निहार । यह भव जलनिधि तें उरत कब प्रभु करिहहु पार ।

बिडालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख का गोलक । २. आँखों पर लेप चढ़ाने की क्रिया । ३. बिलाव ।

बिडालपद, बिडालपदक—संज्ञा पुं० [सं०] एक तौल जो एक कर्ष के बराबर होती है । विशेष—दे० 'कर्ष' ।

बिडालवृत्तिक—वि० [सं०] बिल्ली के स्वभाववाला । लोभी । कपटी, दंभी, हिंसक, सबको धोखा देनेवाला, और सबसे टेढ़ा रहनेवाला ।

बिडालव्रतिक—वि० [सं०] बिडालवत् व्यवहारवाला । झूठा ।

बिडालाक्ष—वि० [सं०] जिसकी आँखें बिल्ली की आँखों के समान हों।

बिडालाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम ।

बिडालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिल्ली । २. हरताल ।

बिडाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिल्ली । २. एक प्रकार का आँख का रोग । ३. एक योगिनी जो इस रोग की अधिष्ठात्री मानी जाती है । ४. एक प्रकार का पौधा ।

बिडिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा । गिलौरी ।

बिड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बीड़ी' ।

बिडौजा—संज्ञा पुं० [सं० बिडौजस्] इंद्र का एक नाम ।

बिड्डालⓊ—संज्ञा पुं० [सं० बिडाल] बिडालाक्ष नाम का एक राक्षस । उ०—जे सुरक्त जे रक्तबीज बिड्डाल बिहंडिनि । —भूषण, ग्रं०, पृ० ३ ।

बिढ़ईⓊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिलाव] बिलाव । बिल्ली । उ०—कहल बिनु मोहि रहल न जाई । बिढ़ई ले ले कुकुर खाई । —कबीर बी० (शिशु०), पृ० २८० ।

बिढ़तोⓊ†—संज्ञा पुं० [हिं० बढ़ना (=अधिक होना) कमाई । नफा । लाभ । उ०—दै पठयो पहिलो बिढ़तो ब्रज सादर सिर धरि लीजै ।—तुलसी (शब्द०) ।

बिढ़ना⁽पु⁾—क्रि० स० [सं० वर्द्धन, प्रा० वड्डण] दे० 'बिढ़वना'। उ०—तात राउ नहिं सोचन जोगू। बिढ़इ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू।—तुलसी (शब्द०)।

बिढ़वना⁽पु⁾†—क्रि० स० [सं० अभिवर्धन या वृद्धि, हिं० बढ़ाना] १. कमाना। २. संचय करना। इकट्ठा करना।

बिढ़ाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बिढ़वना'।

बिण⁽पु⁾†—अव्य० [सं० बिना] दे० 'बिन'। उ०—तुम बिण भव दुख कौण निवारे।—दक्खिनी०, पृ० १२२।

बितंड⁽पु⁾—संज्ञा पुं० [सं० वि + तुण्ड (= मुख)] रूप। आकृति या मुख। उ०—धर बितंड बाराह। बीर बीरन बिदारि पल।—पृ० रा०, २।१४४।

बितंडा—संज्ञा पुं० [सं० वितण्डा] १. बखेड़ा। झंझट। २. बिना अर्थ की बहस।

यौ०—बितंडावाद। उ०—विद्वन्मंडल करत बितंडावाद विनाशक।—भारतेंदु० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५०।

बित⁽पु⁾†—संज्ञा पुं० [सं० वित्त] १. धन। द्रव्य। उ०—सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।—मानस, ६।६०। २. सामर्थ्य। शक्ति। ३. कद। आकार।

बितताना¹—क्रि० अ० [हिं० बिलखाना] बिलखाना। व्याकुल होना। विशेष संतप्त होना। उ०—(क) रोवति महरि फिरति बिततानी। बार बार लै कंठ लगावति अतिहि शिथिल भइ बानी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्रिया पिय लीन्हो अंकम लाय। खेलत में तुम बिरह बढ़ायो गई कहा बितताय।—सूर (शब्द०)। (ग) सूर स्याम रस भरी गोपिका बन में यों बितताही।—सूर (शब्द०)।

बितताना²—क्रि० स० संतप्त करना। सताना। दुखी करना।

बितन⁽पु⁾—संज्ञा पुं० [सं० वि (= रहित)+तनु] अतनु। कामदेव। उ०—तिय तन बितन जु पच सर, लगे पंच ही बाट।—नंद०, ग्रं०, पृ० १३५।

बितना‡¹—संज्ञा पुं० [हिं० बित्ता] दे० 'बित्ता'। उ०—इंद्र गरब हर सजह में गिरि नख पर धर लीन। इह इतना बितना भरा कहु कितना बल कीन।—रसनिधि (शब्द०)।

बितना⁽पु⁾²—क्रि० अ० [हिं० बीतना] गुजरना। व्यतीत होना। उ०—नंद दास लगे नैनि लाल सों, पलक ओट भए बितत जुग चारि।—नंद ग्रं०, पृ० ३५३।

बितनु⁽पु⁾—संज्ञा पुं० [सं० वितनु] दे० 'वितनु'। उ०—फटिक छरी सी किरन कुंज रंध्रनि जब आई। मानों बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई।—नंद० ग्रं०, पृ० ७।

बितरना⁽पु⁾†—क्रि० स० [सं० वितरण] बाँटना। वितरण करना। उ०—कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर बिचारै ना।—पद्माकर (शब्द०)।

बितरेक⁽पु⁾—वि० [सं० व्यतिरेक] अतिशयतायुक्त। अतिक्रमण करनेवाला। उ०—ए हो नटनागर! तिहारी सौंह साँची कहौं, सारे भुवमंडल बिधाता रचो एक है। प्यारी के नयन अनियारे कारे कजरारे, मृग मीन कंज खंज हू ते बितरेक है।—नट०, ४६।

बितवना⁽पु⁾†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बिताना'। उ०—घर के काज अकाज किए सब जग सुख दुखमय बितवत।—श्यामा०, पृ० ८४।

बितस्ति—संज्ञा पुं० [सं० वितस्ति] बित्ता। १२ अंगुल। दे० 'वितस्ति'। उ०—सप्त बितस्ति काड कौं करयो। रहत बहुरि कहाँ धौ परयो।—नंद० ग्रं०, पृ० २७०।

बिता—संज्ञा पुं० [सं० वितस्ति] दे० 'बित्ता'।

बितान—संज्ञा पुं० [सं० वितान] दे० 'वितान'। उ०—सजहिं सुमंगल कलस बितान बनावहिं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६।

बिताना—क्रि० स० [सं० व्यतीत, हिं० बीतना का संक्षिप्त रूप, या सं० व्यतीत, प्रा० बितीत + हिं० ना (प्रत्य०)] (समय) आदि व्यतीत करना। (वक्त) गुजारना। काटना।

बिताल†—संज्ञा पुं० [सं० वेताल] दे० 'वेताल'।

बितावना⁽पु⁾†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बिताना'।

बितीत⁽पु⁾¹—वि० [सं० व्यतीत, प्रा० वितीत] दे० 'व्यतीत'।

बितीत²—संज्ञा पुं० व्यतीत करने या गुजर जाने की स्थिति या भाव। उ०—योंही बितीत कीनो समय ताकत डोल्यौ काक ज्यों।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११६।

बितीतना¹—क्रि० अ० [सं० व्यतीत, प्रा० वितीत = ना (प्रत्य०)]। व्यतीत होना। गुजरना। उ०—(क) सात बोस यहि रीति बितीते। पचम इंद्रिन के गुन जीते।—लाल (शब्द०)। (ख) बिधिवत बारह मास बितीते।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) ज्यों ज्यों बितीतति है रजनी उठि त्यों त्यों उनींदे से अंगनि ऐंठे।—(शब्द०)।

बितीतना²—क्रि० स० बिताना। गुजारना।

बितीपात⁽पु⁾—संज्ञा पुं० [सं० व्यतीपात] ज्योतिष में एक योग। वि० दे० 'व्यतीपात'। उ०—बितीपात परदोष बताई। ये सब झूठी बात चलाई।—घट०, पृ० १३।

बितुंड⁽पु⁾—संज्ञा पुं० [सं० वितुण्ड] दे० 'वितुंड'। उ०—वलित बितुंड पै बिराजि बिलखाइ कै।—हम्मीर०, पृ० ४०।

बितु†⁽पु⁾—संज्ञा पुं० [सं० वित्त, हिं० बित] दे० 'वित्त'।

बित्त—संज्ञा पुं० [सं० वित्त] १. धन। दौलत। २. हैसियत। औकात। ३. सामर्थ्य। शक्ति। बूता। उ०—किसी की भड़ी में आकर अपने बित्त से बढ़कर काम मत करो। पर कोई यदि अपने बित्त के बाहर माँगे या ऐसी वस्तु माँगे जिससे दाता की सर्वस्व हानि होती हो तो वह दे कि नहीं?।

यौ०—बित्तहीन = धनहीन। निर्धन। उ०—दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।—तुलसी (शब्द०)।

बित्ता—संज्ञा पुं० [सं० वितस्ति] हाथ की सब अँगुलियाँ फैलाने पर अँगूठे के सिरे से कनिष्ठिका के सिरे तक की दूरी। बालिश्त।

बित्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० वृत्ति] वह धन जो दूकानदार लोग गोशाला या और किसी धर्मकार्य के लिये माल या दाम चुकाने के समय, काटकर अलग रखते हैं।

बिथकना—क्रि० अ० [हिं० थकना] १. थकना। २. चकित होना। हैरान होना। स्तब्ध होना। उ०—अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू।—तुलसी (शब्द०)। ३. मोहित होना। उ०—सूर अमर ललना गण अमर बिथकी लोक बिसारी।—सूर (शब्द०)।

बिथकित—वि० [हिं० बिथकना] थकित। मोहित। स्तब्ध। उ०—तुलसी भइ गति बिथकित करि अनुमान। रामलषन के रूप न देखेउ आन।—तुलसी ग्रं०, पृ० २१।

बिथरना—क्रि० अ० [सं० विस्तरण, प्रा० विथ्थरण या विकिरण] १. छितराना। बिखरना। इधर उधर होना। २. अलग अलग होना। खिल जाना। उ०—परा बिरति कंचन महँ सीसा। बिथरि न मिलइ सावँ पइ सीसा।—जायसी (शब्द०)।

बिथरनी⁺†—संज्ञा स्त्री० [सं० वैतरणी] दे० 'वैतरणी'। उ०—मन सूषा को कूच कियो है, ग्यान बिथरनी पाई। जीव की गाँठि गुढी सब भागी, जहाँ की तहाँ ल्यो लाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १८६।

बिथराना†—क्रि० स० [हिं० बिथरना] बिखेरना। अस्त व्यस्त करना। इधर उधर करना। उ०—हार तोरि बिथराइ दियो। मैया यै तुम कहन चली कत दधि माखन सब छीन लियो।—सूर (शब्द०)।

बिथा⁺†—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यथा, प्रा० विथा] दुःख। पीड़ा। क्लेश। कष्ट। तकलीफ। उ०—(क) हृदय की कबहुँ न जरनि घटी। बिन गोपाल बिथा या तनु की कैसे जात कटी। —सूर (शब्द०)। (ख) नैना मोहन रूप सों मन कों देत मिलाय। प्रीति लगै मन की बिथा सकों न ये फिर पाय।——रसनिधि (शब्द०)।

बिथार⁺—संज्ञा पुं० [सं० विस्तार, प्रा० विथ्थार, बिथार] दे० 'विस्तार'। उ०—तनकहि बीज बोइ बिरख बिथार होइ, तनक चिनग परै भसम समान है।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १०३।

बिथारना—क्रि० स० [हिं० बिथरना का सक० रूप] छितरना। छिटकाना। बिखेरना। उ०—(क) मनहुँ रबिबाल मृगराज तन निकर करि दलित अति ललित मनिगन बिथारे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रावणहिं मारों पुर भली भाँति जारों, अंड मुंडन बिथारों आज राम बल पाइ कै।—हनुमान (शब्द०)।

बिथित⁺—वि० [सं० व्यथित] जिसे कष्ट पहुँचा हो। पीडित। दुःखित। उ०—निदा अपने भागि की चली करति वह तीय। रोई बाँह पसारि कै भई बिथित अति हीय।—शकुंतला, पृ० ६६।

बिथुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसे पस्सी भी कहते हैं। वि० दे० 'पस्सी'।

बिथुरना†—क्रि० अ० [सं० विस्तरण] दे० 'बिथरना'। उ०—पुहुप परे बिथुरै पुनि वेही। ताते मैं आनत अब येही।—पद्माकर (शब्द०)।

बिथुरा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीड़ा। —नंद० ग्रं०, पृ० ६६।

बिथुराना—क्रि० स० [हिं० बिथुरना] दे० 'बिथराना'।

बिथुरित—वि० [हिं० बिथुर + इत (प्रत्य०)] लोल। चंचल। अस्त व्यस्त।—बिथुरित कुंडल अलक तिलक झुकि झाईं लेही।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२।

बिथोरना⁺—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बिथराना'।

बिदकना—क्रि० [अ० विदरण] १. फटना। चिरना। विदीर्ण होना। २. घायल होना। जख्मी होना। ३. भड़कना। चौंकना।

बिदकाना—क्रि० स० [सं० विदारण] १. फाड़ना। विदीर्ण करना। २. घायल करना। जख्मी करना। उ०—चोच चंगुलन तन बिदकायो, मुर्छित ह्वै पुनि आरी लै धायो।—विश्राम (शब्द०)। ३. चौंकाना। भड़काना।

बिदरँग⁺—वि० [फ़ा० बदरंग] दे० 'बदरंग'। उ०—देह सुरंगी तब लगै जब लग प्राण समीप। जीव जाति जाती रही सुंदर बिदरंग दीप।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१०।

बिदर†—संज्ञा पुं० [सं० विदर्भ] १. देश विशेष। विदर्भ नाम का देश। बरार। उ०—दहिनइ बिदर चँदेरी बाए। दुहु को होब बाट दुहु ठाएँ।—जायसी (शब्द०)। २. एक प्रकार की उपधातु।

विशेष—यह ताँबे और जस्ते के मेल से बनती है और इसके पात्र भी बनते हैं। आरंभ में इसका बनना विदर्भ देश से ही आरंभ हुआ था, इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

बिदरद†—वि० [फ़ा० बेदर्द] दे० 'बेदर्द'। उ०—झमक सहचरी सरन, बिदरदी, जुल्फ जाल झक मोरें।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३६३।

बिदरन†⁺¹—संज्ञा स्त्री० [सं० विदीर्ण] दरार। दरज। शिगाफ।

बिदरना⁺—क्रि० अ० [सं० विदीर्ण] विदीर्ण होना। खंड खंड होना। फटना। उ०—(क) हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर।—मानस, २।१४६। (ख) हृदय दाड़िम ज्यों न बिदरयो समुझि सील सुभाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५२।

बिदरना⁺²—वि० [वि०स्त्री० बिदरनि] फाड़नेवाला। चीरनेवाला। विदीर्ण करनेवाला। उ०—जोति रूप लिंगमई अगनित लिंगमई मोक्ष बितरनि बिदरनि जग जाल की।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४५।

बिदरनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिदरना] विदीर्ण करने अथवा होने की क्रिया, भाव या स्थिति। उ०—हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों सँहारे, रथनि सो रथ बिदरनि बलवान की।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६२।

बिदरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० विदर्भ, हिं० बिदर] जस्ते और ताँबे के मेल से बरतन आदि बनाने का काम जिसमें बीच बीच में

सोने या चाँदी के तारों से नक्काशी की हुई होती है। बिदर की धातु का काम। २. बिदर धातु का बना हुआ सामान।

बिदरी[2]—वि० [हिं० बिदर+ई (प्रत्य०)] बिदर या बिदर्भ संबंधी। बिदर का।

बिदरी[3]—संज्ञा स्त्री० [?] बिदलित। उ०—बिदरी कहे बीचि तेहि लूटा अवर जहाँ तक पोता।—संत० दरिया, पृ० ११३।

बिदरीसाज—संज्ञा पुं० [हिं० बिदरी+फा० साज] वह जो बिदर की धातु से बरतन आदि बनाता हो। बिदर का काम बनानेवाला।

बिदलनाⓅ—क्रि० सं० [सं० वि+दलन] विदीर्ण करना। नष्ट करना। ध्वस्त करना। दलना। उ०—ऊँ रनकेहरि केहरि के बिदले अरि कुंजर छैल छवा से।—तुलसी ग्रं०, पृ० २५१।

बिदलित—वि० [सं० विदलित] दे० 'विदलित'। उ०—सुंदर जिह्वा आपुनी अपने ही सब दंत। जो रसना बिदलित भई तो कहा वैर करंत।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८०४।

बिदहना—क्रि० स० [सं० विदहन] [स्त्री० बिदहनी] धान या ककुनी आदि की फसल पर आरंभ में पाटा या हेंगा चलाना।

विशेष—जिस समय फसल एक बालिश्त हो जाती है और वर्षा होती है, तब मिट्टी गीली हो जाने पर उसपर हेंगा या पाटा चला देते हैं। इससे फसल लेट जाती है और फिर जब उठती है, तब जोरों से बढ़ती है।

बिदहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० विदहन] बिदहने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।

बिदा—संज्ञा स्त्री० [अ० विदाअ्] १. प्रस्थान। गमन। रवानगी। रुखसत। उ०—बेटी को बिदा कै अकुलाने गिरिराज कुल व्याकुल सकल शुद्धि बुद्धि बदली गई।—देव (शब्द०)। २. जाने की आज्ञा। उ०—माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—मिलना।

३. द्विरागमन। गौना।

बिदाई—संज्ञा स्त्री० [अ० विदाअ, हिं० बिदा+ई (प्रत्य०)] १. बिदा होने की क्रिया या भाव। २. बिदा होने की आज्ञा। ३. वह धन जो किसी को बिदा होने के समय, उसका सत्कार करने के लिये दिया जाय।

बिदामी—वि० [हिं० बादाम] दे० 'बादामी'।

बिदारना—क्रि० स० [सं० विदारण] १. चीरना। फाड़ना। उ०—सीयबरन सन केतकि अति हिय हारि। किहेसि भँवर कर हरवा हृदय बिदारि।—तुलसी ग्रं०, पृ० २१।

बिदारी—संज्ञा पुं० [सं० विदारी] १. शालपर्णी। २. भूमि कूष्मांड। भुइँ कुम्हड़ा। ३. अठारह प्रकार के कंठरोगों में से एक प्रकार का रोग।

बिदारीकंद—संज्ञा पुं० [सं० विदारीकन्द] एक प्रकार का कंद जिसकी बेल के पत्ते अरई के पत्ते के समान होते हैं। बिलाई कंद।

विशेष—यह कंद बेल की जड़ में होता है इसका रंग कुछ लाल होता है और इसके ऊपर एक प्रकार के छोटे छोटे रोएँ होते हैं। वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, भारी, स्निग्ध, रक्तपित्त-नाशक, बलकारक, वीर्यवर्धक, वर्ण को सुंदर करनेवाला और रुधिरविकार, दाह तथा वमन को दूर करनेवाला माना है।

बिदावा—वि० [फा० बेदावा] बेदावा। अधिकार या किसी प्रकार की कामना से रहित। उ०—प्रनदीठे सिउँ सहजि पतीना तबते भया बिदावँ।—राम०, पृ० ६६१।

बिदिसाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० विदिशा] दे० 'विदिशा'[2]।

बिदीरनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विदीर्णन] फाड़ना। विदीर्ण करने की स्थिति, क्रिया या भाव।

बिदीरनाⓅ—क्रि० स० [सं० विदीर्णन] दे० 'बिदारना'।

बिदुरानाⓅ—क्रि० अ० [सं० विदुर (=चतुर)] मुसकराना। धीरे धीरे हँसना। उ०—धरे नरी जहँ ओढ़ रजाई। बधो बिदेह बनन बिदुराई।—रघुराज (शब्द०)।

बिदुरानिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिदुराना] मुसकराहट। मुसक्यान उ०—नए चाँद से बदन बिदुरानि नासी त्यों जवाहिर जड़े कढ़े दिल चादर ते।—रघुराज (शब्द०)।

बिदूखना, बिदूपनाⓅ—क्रि० अ० [सं० विदूषण] १. दोष लगाना। कलंक लगाना। ऐब लगाना। २. खराब करना। बिगाड़ना।

बिदूरितⓅ—स० [सं० विदूरित] दूरीकृत। दूर किया हुआ। अलग किया हुआ।

बिदेस—संज्ञा पुं० [सं० विदेश] विदेश। परदेश। अपने देश के अतिरिक्त और कोई देश। जैसे, देश विदेश मारे मारे फिरना।

बिदेसी—वि० [हिं० विदेशी] दे० 'विदेशी'।

बिदेहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० वि + देह (= शरीररहित)] १. अनंग। कामदेव। उ०—त्यों दुख देखि हँसै चपला, घर पौन हूँ दूनो बिदेह ते दाहक।—घनानंद, पृ० १०४। २. राजा जनक का एक नाम। ३. वह जो देहाभिमान वा शरीर की स्थिति से रहित हो। उ०—भएउ बिदेह बिदेह बिसेखी।—मानस, १।२१५।

बिदेहना—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बिदहने की क्रिया। उ०—कुछ बीज परती (बिना जुते) खेतों में ही बोए जाते हैं। इस प्रक्रिया को बिदेहना कहते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४७।

बिदेही—वि० [सं० वि+देहिन्] देहाभिमान से रहित। उ०—साहेब कबीर प्रभु मिले बिदेही, झीना दरस दिखाइया।—धरम० श०, पृ० ५६।

बिदोरना—क्रि॰ स॰ [सं॰ विदीर्णन] फैलाना। चलाना। निपोरना। उ॰—खाय के पान बिदोरत ओठ हैं बैठि सभा मे बने अलबेला।—कविता कौ॰, भा॰ १, पृ॰ ३६६।

बिदोखⓟ†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विद्वेष] बैर। वैमनस्य।

बिद्दत†—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ बिदअत] १. पुरानी अच्छी बात को बिगाड़नेवाली नई खराब बात। २. खराबी। बुराई। दोष। ३. कष्ट। तकलीफ। ४. विपत्ति। आफत। ५. अत्याचार। ६. दुर्दशा।

क्रि॰ प्र॰—में पड़ना।—भोगना।—सहना।—होना।

बिद्दती—वि॰ [हिं॰ बिद्दत + ई] बिद्दत करनेवाला।

बिद्धⓟ—वि॰ [सं॰ विद्ध] बेधा हुआ। बिधा हुआ। विद्ध।

बिद्धिⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विधि] भाँति। प्रकार। दे॰ 'विधि'। उ॰—कमलति चंपक चारु फूल सब बिद्धि फल। सरद रित्त ससि सीस मरुत्त त्रिविद्ध चल।—पृ॰ रा॰, २।१३६।

बिद्यारथीⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विद्यार्थी] दे॰ 'विद्यार्थी'। उ॰—बिद्यारथिन करावहु यहि विधि सत सिच्छा दय।—प्रेमघ॰, भा॰ १, पृ॰ २१।

बिद्यावाहीⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विद्या + वाहिन्] १. विद्वान्। २. पंडित। उ॰—बिद्यावाही पढ़हिं ग्रंथ गुनि गूढ़ि अनेकहिं।—रत्नाकर, भा॰ १, पृ॰ ९६।

बिद्रुम—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विद्रुम] दे॰ 'विद्रुम'। उ॰—हीरा गहै सो बिद्रुम धारा। बिहँसत जगत होइ उजियारा।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ १९०।

बिद्वेस—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विद्वेष] विद्वेष। वैर। शत्रुता। उ॰—संतन को बिद्वेस जु आहि। मृत्युमात्र जिनि जानहु ताहि।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २३३।

बिधंसⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विध्वंस] विनाश। विध्वंस। उ॰—करहिं बिधंस आव दसकंधर।—मानस ६।८४।

बिधंसक—वि॰ [सं॰ विध्वंसक] दे॰ 'विध्वंसक'। उ॰—मतिभ्रंसक सब धर्म बिधंसक। निरदै महा बिस्थ पसुहिंसक।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २५२।

बिधंसनाⓟ†—क्रि॰ स॰ [सं॰ विध्वंसन] नाश करना। विध्वंस करना। नष्ट करना। उ॰—बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा।—मानस, ६।२४।

बिधँसनाⓟ—क्रि॰ स॰ [सं॰ विध्वंसन] दे॰ 'बिधंसना'।

बिध[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विधि] हाथियों का चारा या रातिब।

बिध[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विधि] १. प्रकार। तरह। भाँति। उ॰—जदपि करनी है करी मैं हर भात मुरार। प्रभु करनी कर आपनी सब बिध लेहु सुधार।—रसनिधि (शब्द॰)। २. ब्रह्मा। विधाता।

बिध[3]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विधा (= लाभ)] जमा खर्च का हिसाब। आय व्यय का लेखा।

मुहा॰—बिध मिलाना = आय व्यय का हिसाब ठीक करना। यह देखना कि आय और व्यय की सब मदें ठीक ठीक लिखी गई हैं या नहीं।

बिधना[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विधि + हिं॰ ना (प्रत्य॰)] ब्रह्मा। कर्तार। विधि। विधाता। उ॰—अहो बिधना तो पै अचरा पसारि माँगों जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिबो।—(शब्द॰)।

बिधना[2]—क्रि अ॰ [सं॰ विद्ध] विद्ध होना। बेधा जाना। दे॰ 'बिधना'।

बिधना[3]—क्रि॰ स॰ फँसाना। विद्ध करना।

बिधबंदी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बिधि (= जमा) + फा॰ बंदी] भूमिकर देने की वह रीति जिसमें बीघे आदि के हिसाब से कोई कर नियत नहीं होता बल्कि कुल जमीन के लिये यों ही अंदाज से कुछ रकम दे दी जाती है। बिल मुकता।

बिधवनाⓟ—क्रि॰ स॰ [सं॰ विद्ध] बेधना। विद्ध करना। फँसाना। उ॰—जैसे बधिक अधिक मृग बिधवत राग रागिनी ठानी।—सूर (शब्द॰)।

बिधवपन†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विधवा + हिं॰ पन (प्रत्य॰)] रँडापा। वैधव्य। उ॰—लीन्ह बिधवपन अपजस आपू। दीन्हेउँ प्रजहि सोक संतापू।—मानस, २।१८०।

बिधवा—वि॰ [सं॰ विधवा] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो। राँड़। बेवा।

बिधवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'बिधवाना'।

बिधाँसनाⓟ—क्रि॰ स॰ [सं॰ विध्वंसन] विध्वंस करना। नष्ट करना। नाश करना। उ॰—जनहुँ लंक सब लूसी हनू बिधाँसी बारि। जागि उठेउ अस देखत सखि कहु सपन बिचारि।—जायसी (शब्द॰)।

बिधाइनीⓟ—वि॰ स्त्री॰ [सं॰ विधायिनी] विधान करनेवाली। दे॰ 'बिधानी'। उ॰—पूरनमासी भगवती, सिद्ध बिधाइनि सोय।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ ३, पृ॰ ६४८।

बिधाईⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विधायक] वह जो विधान करता हो। विधायक। उ॰—जैति सौमित्रि रघुनंदनानंदकर रीछ कपि कटक संघट बिधाई।—तुलसी (शब्द॰)।

बिधातⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विधाता] दे॰ 'विधाता'। उ॰—पाछे अद्भुत निरखि बिधात। चक्यो थक्यो जहँ फुरै न बात।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २६८।

बिधान—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विधान] दे॰ 'विधान'। उ॰—गान निसान बितानवर, बिरचे बिबिध बिधान।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ८५।

बिधाना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बिंधना] दे॰ 'बिंधाना'। उ॰—बाहन बिधाए बाँह जंघन जघन माह कहे छोड़ो नाह नाहिं गयो चाहे मुचि कै।—देव (शब्द॰)।

बिधानीⓟ†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विधान] विधान करनेवाला। बनानेवाला। रचनेवाला।

विधि[1]—संज्ञा पुं० [सं० विधि] दे० 'विधि'। उ०—विधि केहि भाँति धरउँ मन धीरा ।—मानस, १।

विधि[2]—संज्ञा स्त्री० प्रकार। भाँति। तरह। उ०—एहि विधि पंथ करत पछितावा।—मानस, २।

विधिना—स्त्री० पुं० [हिं०] दे० 'विधना'। उ०—बिधिना सो विनती यहै मिलि बिछुरन नहिं होय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३४।

विधुंतुद—संज्ञा पुं० [हिं० विधुन्तुद] राहु।

बिधुंसना(पु)†—क्रि० स० [सं० विध्वंस+हिं० ना (प्रत्य०)] दे० 'विध्वंसना'। उ०—लक बिधुंसी बानरां थे काई सराहो राजा गढ अजमेर।—बी० रासो, पृ० ३३।

विधु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विधु] दे० विधु'।

विधुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विधुर] दे० 'विधुर'।

बिधुली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो हिमालय की तराई में पाया जाता है। इसे नल बाँस और देव बाँस भी कहते हैं। विशेष—दे० 'देवबाँस'।

बिनंठना(पु)‡—क्रि० अ० [सं० विनष्ट, प्रा० विनट्ठ, बिनंठ] विनष्ट होना। उ०—पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल।—कबीर ग्रं०, पृ० ३।

बिनंती, बिनंतु‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'विनती'। उ०—(क) तब यह आह्वान बिनंती कियो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ८५। (ख) ऐसा संम्रथु को नही किसु यहि करउँ बिनंतु।—प्राण०, पृ० २११।

बिन†[1]—अव्य [हिं०] दे० 'बिना'।

बिन†[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति। बिंद।

बिनई‡—संज्ञा पुं० [हिं० विहान] प्रातः काल। सवेरा। उ०—राजै, लै जाउ द्वै के चारि, बिनई जाइ के दीजिए।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९२१।

बिनई—वि० [सं० विनयी] १. विनती करनेवाला। २. नम्र।

बिनउ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'विनय'।

बिनउनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिनना] बुनने की मजदूरी। उ०—काहु बिनउनी देह परम हरि बालहिआ।—विद्यापति, पृ० १५४।

बिनठना(पु)†—क्रि० अ० [सं० विनष्ट] दे० 'विनशना'। उ०—(क) काया काची कारवी, काची केवल धातु। साबतु रख हित राम तनु नाहि त बिनठी बात।—कबीर ग्रं०, पृ० २५१। (ख) ते नर बिनठे मूलि जिनि धधै मैं ध्याया नही।—कबीर ग्रं०, पृ० २३।

बिनत(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० विनति] विनम्रता। विनती। उ०—विनती सब औगुन गुन होई। सेवक बिनत तजै नहि कोई।—चित्रा०, पृ० १५६।

बिनत[2]—वि० [सं० विनत] नम्र। झुका हुआ।

बिनता—संज्ञा पुं० [देश०] पिडकी नाम की चिड़िया।

बिनति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विज्ञप्ति ?] प्रार्थना। विनती। उ०—बिपर असीसि बिनति अउधारा। सुआ जीउ नहिं करउँ निनारा।—जायसी (शब्द०)।

बिनती—संज्ञा स्त्री० [सं० विनय या विज्ञप्ति] प्रार्थना। निवेदन अर्ज। उ०—बिनती करत मरत हौ लाज।—(शब्द०)।

बिनती पत्र—संज्ञा पुं० [हिं० बिनती+पत्र] प्रार्थनापत्र। आवेदन। उ०—श्री गुसाईं जी को विनती पत्र लिखि कै वा मनुष्य को महाप्रसाद लियाइ कै नारायन दास ने बिदा कियो।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १३२।

बिनन—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिनना (=चुनना)] १. बिनने या चुनने की क्रिया या भाव। २. वह कूड़ा कर्कट आदि जो किसी चीज में से चुनकर निकाला जाय। चुनना। जैसे,—मन भर गेहूँ में से तीन सेर तो बिनन ही निकल गई। ३. बुनने की क्रिया या भाव। बुनावट।

बिनना[1]—क्रि० स० [सं० वीक्षण] १. छोटी छोटी वस्तुओं को एक एक करके उठाना। चुनना। २. छाँट छाँटकर अलग करना। इच्छानुसार संग्रह करना।

बिनना[2]—क्रि० स० [हिं० बींधना] डंकवाले जीव का डंक मारना। काटना। बींधना।

बिनना[3]—क्रि० स० [सं० वयन] दे० बुनना'।

बिननिहार(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० बिनन+हार] वह जो बिनता या चुनता हो। बिनने या बुननेवाला। उ०—बिननिहार के चिन्है न कोई तातें जम जिव लूटा।—संत० दरिया, पृ० १२५।

बिनय—संज्ञा स्त्री० [सं० विनय] दे० 'विनय'।

बिनयना(पु)—क्रि० अ० [सं० विनयन] दे० 'बिनवना'।

बिनरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'अरनी'। (वृक्ष)।

बिनवट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बनेठी, बनौट] बनौट। बनेठी चलाने की क्रिया या विद्या।

यौ०—बिनवट पटा। उ०—कुछ बिनवट पटे के हाथ सीखे हैं।—काया०, पृ० २६६।

बिनवन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीनना] दे० 'बिनन'।

बिनवना(पु)†—क्रि० अ० [सं० विनयन] विनय करना। मिन्नत करना। प्रार्थना करना। उ०—अजहूँ कछु संसउ मन मोरे। करहु कृपा बिनवौ कर जोरे।—मानस, १।१०९।

बिनवाना†—क्रि० स० [हिं० बीनना] बिनने या बुनने का काम कराना।

बिनशना(पु)†[1]—क्रि० अ० [सं० विनाश] नष्ट होना। बरबाद होना।

बिनशना[2]—क्रि० स० विनाश करना। नष्ट करना।

बिनसना(पु)†[1]—क्रि० अ० [सं० विनष्ट] विनष्ट होना। नाश होना।

बिनसना[2]—क्रि० स० नष्ट करना। चौपट करना।

बिनसाना[1]—क्रि० स० [सं० विनाशना] विनाश करना। बिगाड़ डालना। नष्ट कर देना।

बिनसाना[2]—क्रि० अ० विनष्ट होना। उ०—(क) कबहुँ कि काँजी

सीकरन छीरसिंधु बिनसाय । —तुलसी (शब्द०) । (ख) जग में घर की फूट बुरी । घर की फूटहि सों बिनसाई सुबरन लंक पुरी । —हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

बिनहोनीⓅ†—वि० [हिं० बिना + होनी] अनहोनी । उ०—बिनहोनी हरि करि सकै होनी देहि मिटाय । चरणदास करु भक्ति हो आपा देहु उठाय ।—भक्ति प०, पृ० १७१ ।

बिनाँणी, बिनाँनीⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विज्ञानी, प्रा० विण्णाणी] दे० 'विज्ञानी' । उ०—(क) गगनि सिखर महि सबद प्रकास्या तहँ बूझै बिनाँणी ।—गोरख०, पृ० २ । (ख) मानव पशु पंषी किए करतार, बिनाँनी ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २०६ ।

बिना[1]—अव्य० [सं० विना] छोड़कर । बगैर । जैसे,—(क) आपके बिना तो यहाँ कोई काम ही न होगा । (ख) अब वे बिना किताब लिए नहीं मानेंगे ।

बिना[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. नीवँ । जड़ । बुनियाद । २. वजह । सबब । कारण [को०] ।

बिनाइकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विनायक] दे० 'विनायक' । उ०—सिगरे नरनाइक असुर बिनाइक राकसपति हिय हारि गए ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १७१ ।

बिनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिनना या बीनना] १. बीनने या चुनने की क्रिया या भाव । २. बीनने या चुनने की मजदूरी । ३. बुनने की क्रिया या भाव । बुनावट । ४. बुनने की मजदूरी ।

बिनाणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विज्ञान, प्रा० विणाण] दे० 'विज्ञान' । उ०—जिहि जिहि जाण बिनाण है तिहि घटि आवरणा घणा ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५१ ।

बिनाणी—वि० [सं० विज्ञानिन् प्रा० विणाणि] दे० 'विज्ञानी' । उ०—विष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी । बाँका सूधा कर लिया, सो साधु बिनाणी ।—दादू० बानी, पृ० ३१० ।

बिनाती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बिनती' । उ०—पइ गोसाई सउँ एक बिनाती । मारग कठिन जाब केहि भाँती ।—जायसी (शब्द०) ।

बिनाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बुनवाना' ।

बिनानी[1]—वि० [सं० विज्ञानी] अज्ञानी । अनजान । उ०—(क) रोवन लागे कृष्ण बिनानी । जसुमति आइ गई लै पानी ।—सूर (शब्द०) । (ख) पाहन शिला निरखि हरि डारयो ऊपर खेलत श्याम बिनानी ।—सूर (शब्द०) । (ग) भवन काज को गई नँदरानी । आँगन छाँड़े श्याम बिनानी ।—सूर (शब्द०) ।

बिनानीⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० विज्ञान] विज्ञानी । उ०—तहाँ पवन न चालइ पानी । तहाँ आपई एक बिनानी ।—दादू (शब्द०) ।

बिनानी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० विज्ञान] विशेष । विचार । गौर । तर्क वितर्क । उ०—चितै रहे तब नंद युवति मुख मन मन करत बिनानी ।—सूर (शब्द०) ।

बिनावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिनना] दे० 'बुनावट' ।

बिनासना—क्रि० सं० [सं० विनष्ट] विनष्ट करना । संहार करना । बरबाद करना ।

बिनासीⓅ—वि० [सं० विनाशिन्] दे० 'विनाशी' ।

बिनाहⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'विनाश' ।

बिनिⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'बिना' । उ०—नख नाराचनि बिनि कुँअरि करिहौ कहा प्रनाम ।—नंद० ग्रं०, पृ० ६७ ।

बिनिया—संज्ञा स्त्री० [सं० विनय] दे० 'विनय' । उ०—दैवल दै बिनिया सु सुनि कालिंदी सुखदाय ।—प० रासो, पृ० १२३ ।

बिनु—अव्य० [हिं०] दे० 'बिना' । उ०—तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहै घ्रान बिनु बास असेखा ।—मानस, १।११८ ।

बिनूठा†—वि० [हिं० अनूठा] अनूठा । अनोखा । आश्चर्यप्रद । विलक्षण ।

बिनैⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० विनय] दे० 'विनय' । उ०—हाथ जोड़कर पंच परमेश्वर से बिनै है ।—मैला०, पृ० २६ ।

बिनैका†—संज्ञा पुं० [सं० विनायक] पकवान बनाते समय का वह पकवान जो पहले घान मे से निकालकर गणेश के निमित्त अलग रख देते हैं । यह भाग पकवान बनानेवाले को मिलता है ।

बिनोद—संज्ञा पुं० [सं० विनोद] खेल कूद । क्रीड़ा । दे० 'विनोद' ।

बिनौⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० विनय] दे० 'विनय' । उ०—बिनौ करहि जेते गढपती । का जिउ कीन्ह कवनि मति मती ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ६०८ ।

बिनौरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिनौला] एक प्रकार की घास जो खरीफ के खेतों मे पैदा होती है । इसमे छोटे पीले फूल निकलते हैं । यह प्रायः चारे के काम मे आती है ।

बिनौला—संज्ञा पुं० [देश०] कपास का बीज जो पशुओं के लिये पुष्टिकारक होता है । इससे एक प्रकार का तेल भी निकलता है । बनौर । कुकटी ।

बिन्हनी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिंधना] जुलाहों की वह लकड़ी या छड़ जो ताने में लगा रहता है और जो ताने से लपेटन में बँधा रहता है ।

बिपंचकी—संज्ञा स्त्री० [सं० विपञ्चिका] वीणा । दे० 'विपंची' । उ०—बुलंत बाणि कोकिला, विपंची सुरं मिला ।—ह० रासो, पृ० २५ ।

बिपच्छ[1]—संज्ञा पुं० [सं० विपक्ष] शत्रु । बैरी । दुश्मन ।

बिपच्छ[2]—वि० अप्रसन्न । नाराज । प्रतिकूल । विमुख विरुद्ध । उ०—बिध न ईंधन पाइए सायर जुरै न नीर । परै उपास कुबेर घर जो बिपच्छ रघुबीर ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६२ ।

बिपच्छी†—संज्ञा पुं० [सं० विपक्षिन्] वह जो विपक्ष का हो । विरोधी । शत्रु । दुश्मन ।

बिपणी—संज्ञा स्त्री० [सं० विपणि] बाजार । हाट ।

बिपत‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'विपत्ति' । उ०—इसी बिपत में रात कटी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३० ।

बिपता†—संज्ञा स्त्री० [देशी] दे० 'विपत्ति' ।

बिपतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'विपत्ति' । उ०—घन गरजै जल

बरसी इनपर बिपति परै किन आई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०६।

विपत्त, विपत्ति—संज्ञा स्त्री० [देशी] दे० 'विपत्ति'।

विपद्, विपदा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० विपद्] आफत। मुसीबत। संकट। विपत्ति।

विपर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विप्र] ब्राह्मण। उ०—अपढ़ विपर जोगी घर बारी। नाथ कहै रे पूता इनका संग निवारी।—गोरख०, पृ० ८०।

विपाकु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विपाक] परिणाम। फल। दे० 'विपाक'। उ०—राम बिरह दसरथ दुखित कहति कैकई काकु। कुसमय जाय उपाय सब केवल करम बिपाकु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९८।

विपाशा, विपासा—संज्ञा स्त्री० [सं० विपाशा] व्यास नदी।

विपुंगवासन(पु)—संज्ञा पुं० [?] गरुड़ है वाहन जिसका—विष्णु अर्थात् कृष्ण। उ०—प्रगुन अयन संगीत तन वृंदावन हित जासु। नगधर कमला सकत वर विपुंगवासन आसु।—स० सप्तक, पृ० ३२९।

विपोहना—क्रि स० [हिं०] गूँथना। ग्रथित करना।

विप्रिय(पु)—वि० [सं० विप्रिय] अप्रिय। उ०—ऐसैं बहुतै विप्रिय बैन। कहे जु प्रीतम पंकज नैन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१९।

विप्रीति(पु)—वि० [सं० विपरीत] उलटा। विपरीत। उ०—विप्रीति बुद्धि कौने दई, हीन बचन मुख निक्करै।—ह० रासो, पृ० ११७।

विफर(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'विफल'।

विफरना(पु)†—क्रि० अ० [सं० विस्फुरण, या विप्लवन] विप्लव करने पर उद्यत हो जाना। बागी होना। विद्रोही होना। उ०—घूमति हैं झुकि झूमति है मुख चूमति हैं थिर है न थकी ये। चौकि परै चितवै विफरै सफरैं जलहीन ज्यों प्रेम पकी ये। रीझति हैं खुलि खीझति हैं अँसुवान सो भीजती सोभ तकी ये। ता छिन तें उछकी न कहूँ सजनी अँखियाँ हरि रूप छकी ये।—(शब्द०)। २. बिगड़ उठना। नाराज होना।—उ०—विफरे सब वीर सुधीर मनं।—ह० रासो, पृ० १५७।

विबछना(पु)†—क्रि० अ० [सं० विपक्ष, हिं० बिपच्छ] १. विरोधी होना। २. उलझना। अटकना। फँसना। उ०—विबछि गयो मन लागि ज्यों ललित त्रिभंगी संग। सूधो रहै न और तनि नउत रहै वह अंग।—रसनिधि (शब्द०)।

विबध(पु)—वि० [सं० विविध] दे० 'विविध'। उ०—ललित विलोकनि पै विबध विलास है।—मति० ग्रं०, पृ० ४२०।

विबधान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यवधान, प्रा० विवधान] दे० 'व्यवधान'। उ०—चित विबधान सहति नहिं सोई। रूप मंजरी अस रस भोई।—नंद० ग्रं०, पृ० १४२।

विबर[1]—संज्ञा पुं० [सं० विवर] दे० 'विवर'।

विबर(पु)[2]—वि० [सं० विवरण] ब्यौरेवार। उ०—निज धाम आय अप अनुज सों, बिबर बिबर बातैं जु हुव।—ह० रासो, पृ० ४८।

विबरजित(पु)‡—वि० [सं० विवर्जित] दे० 'विवर्जित'। उ०—मुरख सौ बिबरजित रहना, प्रगट पसु समान।—रामानंद०, पृ० ३४।

विबरन(पु)[1]—वि० [सं० विवर्ण] १. जिसका रंग खराब हो गया हो। बदरंग। २. चिंता या ग्लानि आदि के कारण जिसके चेहरे का रंग उड़ गया हो। जिसके मुख की कांति नष्ट हो गई हो। जिसका चेहरा उतरा हो। उ०—(क) बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहु तरु तालू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहु पिता महतारी।—तुलसी (शब्द०)।

विबरन(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० विवरण] दे० 'विवरण'। उ०—ज्ञान संपूरन प्रेम रस बिबरन करो बिचार।—द० सागर, पृ० २२।

विबर्त—संज्ञा पुं० [सं० विवर्त] दे० 'विवर्त'। उ०—जग बिबर्त सूँ न्यारा जान। परम अद्वैत रूप निर्वान।—दया० बानी, पृ० १६।

विबस(पु)‡[1]—वि० [सं० विवश] १. मजबूर। विवश। उ०—नंददास प्रभु की छवि निरखत बिबस भई ब्रजबाल।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७८। २. परतंत्र। पराधीन।—मनु अंबुज बन बास बिबसु है, अलि लंपट उठि धाए।—नंद०, ग्रं०. पृ० ३८१।

विबस[2]—क्रि० वि० [सं० विवस] विवश होकर। लाचारी से। बेबसी की हालत में। उ०—बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।—तुलसी (शब्द०)।

विबसाना(पु)‡—क्रि० अ० [हिं० विवश] विवश होना। लाचार होना।

विबहार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार, प्रा० विवहार] दे० 'व्यवहार'।

विबाई—संज्ञा स्त्री० [सं० विपादिका] एक रोग जिसमें पैरों के तलुए का चमड़ा फट जाता है और वहाँ जख्म हो जाता है। इससे चलने फिरने में बहुत कष्ट होता है। यह रोग प्रायः जाड़े के दिनों में और बुड्ढों को हुआ करता है। उ०—जिसके पैर न फटी बिवाई। वह क्या जाने पीर पराई।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—फटना।

विबाक†—वि० [अ० बेबाक] दे० 'बेबाक'। उ०—स्वारथ रहित परमारथी कहावत हैं भे सनेह बिबस बिदेहता बिबाके हैं।—तुलसी (शब्द०)।

विबाकी—संज्ञा स्त्री० [अ० बेबाकी] १. बेबाक होने का भाव। हिसाब आदि का साफ होना। २. समाप्ति। अंत। उ०—रिपि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी।—मानस, १।२४।

विबादक—वि० [सं० विवादक] दे० 'विवादी'। उ०—सुंदर

स्वान विवादक निंदक, जानहिं लाभ न हानि ।—जग० श०, भा० २, पृ० १८ ।

बिवादना(पु)—क्रि० स० [हिं० बिवाद+ना (प्रत्य०)] बहस मुबाहसा करना । वादविवाद करना । झगड़ा करना ।

बिवाह—संज्ञा पुं० [सं० विवाह] दे० 'विवाह' । उ०—भयो विवाह परम रँग भीनो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१ ।

बिवाहना(पु)—क्रि० स० [हिं० बिवाह+ना (प्रत्य०)] विवाह करना । शादी करना ।

बिबि—वि० [सं० द्वि] दो । उ०—(क) बिबि रसना तनु स्याम है बंक चलनि विष खानि ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०७ । (ख) सखि कह राहु अमृत जब पियो । तेरे कंत खंड बिबि कियो ।—नंद० ग्रं०, पृ० १३४ । (ग) माणिक निखर सुख मेरु के सिखर बिबि कनक बनाए बिधि कनक सरोज के ।—देवदत्त (शब्द०) ।

बिबुध—संज्ञा पुं० [सं० विबुध] दे० 'विबुध' ।

बिबुधेश—संज्ञा पुं० [सं० विबुधेश] इंद्र । उ०—जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद बिरागी ।—तुलसी (शब्द०) ।

बिवेकता—संज्ञा स्त्री० [सं० विवेकिता] विवेचन की योग्यता । विवेचन करने की शक्ति । उ०—भावै वार रहो भावै पार रहो, दया संग कबीर बिवेकता है ।—कबीर० रे०, पृ० ३६ ।

बिवेखो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विवेक] दे० 'विवेक' । उ०—(क) अलख नाम घट भीतर देखो । हृदये माही करो बिवेखो ।—कबीर सा०, पृ० ८५३ । (ख) ढोल मारि कै सबै चेतावों, सतगुरु शबद बिवेखो ।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० २६ ।

बिबौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिमौरा] दे० 'बिमौरा' । उ०—आसन मारि बिबौरी होवै, तबहूँ भक्ति न होई ।—जग० श०, भा० २, पृ० ३३ ।

बिभंगित—वि० [सं० विभङ्गित] कंपित । तरंगित । उ०—भाव अभंग तरंग बिभंगित महा मधुर रसरूप सरीर ।—घनानंद, पृ० ४४६ ।

बिभंगिनी—वि० [सं० विभङ्गिनी] तरंगिणी । तरंगोंवाली । उ०—मधुर केलि आनँदघन अनुराग बिभंगिनी ।—घनानंद, पृ० ४३२ ।

बिभग(पु)—वि० [सं० विभक्त, प्रा० विभग्ग] अलग । पृथक् । जुदा । उ०—दिन्निय सु सीस तिहि घाल सोइ । उड़ि परयो मध्य घर बिभग होइ ।—पृ० रासो, पृ० ४० ।

बिभचार—संज्ञा पुं० [सं० व्यभिचार] दे० 'व्यभिचार' । उ०—कृष्ण तुष्ट करि कर्म करै जो आन प्रकारा । फल बिभचार न होइ, होइ सुख परम अपारा ।—नंद० ग्रं०, पृ० ४० ।

बिभचारी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यभिचारिन्] व्यभिचारी । विषयी । उ०—ता कहुँ भूलि गए बिभचारी । अइया मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३२३ ।

बिभछ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वीभत्स, प्रा० वीभच्छ] दे० 'बीभत्स' । उ०—जित्तौ सु जग घारह घनिय बिभछ वीर बिच्चौ जहाँ ।—पृ० रा०, ११६५४ ।

बिभावरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विभावरी] रात्रि । विभावरी । उ०—दिन ही मैं तिन सम कानि के कपाट तोरि, दूँधरि अबीर की को मानत बिभावरी ।—घनानंद, पृ० ५६० ।

बिभिचार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यभिचार] अनैतिक कार्य । नीच कर्म । उ०—जानत सब बिभिचार तब गुनत न नाह सुजान ।—दीन० ग्रं०, पृ० ११६ ।

बिभिचारी—संज्ञा पुं० [सं० व्यभिचारी] [स्त्री० व्यभिचारिनी] दे० 'व्यभिचारी' ।

बिभित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेदन करने या किसी वस्तु को तोड़ने की इच्छा [को०] ।

बिभित्सु—वि० [सं०] भेदन करने या तोडने की इच्छावाला [को०] ।

बिभिनाना‡—क्रि० स० [सं० विभिन्न] अलग करना । विभाग करना ।

बिभीखन†—संज्ञा पुं० [सं० विभीषण] रावण का भाई । विशेष— दे० 'विभीषण[1]' । उ०—बिभीखन जब दीन भयो है, ताहि कियो परधान ।—जग० श०, पृ० ११३ ।

बिभीतक—संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़ा [को०] ।

बिभीषक—वि० [सं०] भयकारक । त्रासद [को०] ।

बिभीषण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रावण का भाई । विशेष—दे० 'विभीषण[1]' ।

बिभीषण[2]—वि० भीषण । डरावना । बहुत भयानक ।

बिभीषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'विभीषिका' [को०] ।

बिभौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विभव] दे० 'विभव' । उ०—(क) अगिनि तें बिस्फुलिंग ज्यों जगें । अगिनिहिं बिभौ दिखावन लगें ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७० । (ख) कबहिं पाप औ ज्ञान कबहिं बहु, आपन बिभौ बढ़ाई ।—जग० बानी, पृ० २३ ।

बिमन[1]—वि० [सं० विमनस्] १. जिसे बहुत दुःख हो । २. उदास । सुस्त । चिंतित ।

बिमन[2]—क्रि० वि० बिना मन के । बिना चित्त लगाए । अनमना होकर ।

बिमनी—संज्ञा पुं० [सं० विमनस्] व्यसनी । उ०—कुछ लोग कहते हैं कि रडियो के घरों पर बिमनियों की इतनी भीड होने लगी कि स्थान के संकोच से उन्हें अपने घरों से नीचे नाचना पड़ा ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३ ।

बिमनैन(पु)—वि० [सं० विमन] विमनस्क । उ०—लै मन मोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम ।—घनानंद, पृ० १२४ ।

बिमर्दना—क्रि० स० [सं० विमर्दन] मर्दित करना । कुचलना । नष्ट करना ।

बिमान—संज्ञा पुं० [सं० विमान] १. अनादर। अवज्ञा। २. २. वायुयान।

बिमानी—वि० [सं० वि+मान] मानरहित। निरभिमान। उ०—विधि के समान हैं बिमानी कृतराजहंस विविध विबुध युत मेरु सो अचल है।—केशव (शब्द०)।

बिमानु(पु)—संज्ञा सं० [सं० विमान] दे० 'विमान'। उ०—सनमाने कपि भालु सब सादर साजु बिमानु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६०।

बिमासणि—संज्ञा स्त्री० [सं० विमर्शिन्>विमर्शिनी] विचारिका। विमर्श करनेवाली। परीक्षिका। उ०—आगै है मन खरी बिमासणि लेखा मांगै दे रे। काहे सोवै नींद भरी रे, कृत विचारै तेरे।—दादू० बानी, पृ० ५३८।

बिमूढ़(पु)—वि० [सं० विमूढ] दे० 'विमूढ़'।

बिमोचना—क्रि० स० [सं० विमोचन] १. मुक्त करना। छोड़ना। २. गिराना। टपकाना।

बिमोट†—संज्ञा पुं० [देश०] बामी। वल्मीक।

बिमोटा†—संज्ञा पुं० [देश०] बिमौरा। बाँबी।

बिमोहना[1]—क्रि० स० [सं० विमोहन] मोहित करना। लुभाना। मोहना। उ०—एक नयन कवि मुहमद गुनी। सोइ बिमोहा जेइ कवि सुनी।—जायसी (शब्द०)।

बिमोहना[2]—क्रि० अ० मोहित होना। आसक्त होना। उ०—सरवर रूप बिमोहा हिये हिलोरहि लेइ। पाँव छुवै मनु पावौं एहि मिसि लहरहि देइ।—जायसी (शब्द०)।

बिमौटा†—संज्ञा पुं० [देश०] बाँबी।

बिमौरा‡—संज्ञा पुं० [सं० वल्मीक] टीले के आकार का दीमक के रहने का स्थान। वल्मीक। बामी।

बिय(पु)†[1]—वि० [सं० द्वि, प्रा० वि] १. दो। युग्म। २. दूसरा। द्वितीय।

बिय(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० बीज, प्रा० बीय] दे० 'बीज'।

बियत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वियत्] आकाश। उ०—जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत।—तुलसी (शब्द०)।

बियर—संज्ञा स्त्री० [अं०] जौ की बनी हुई एक प्रकार की हलकी अंग्रेजी शराब जो प्रायः स्त्रियाँ पीती हैं।

बियरसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जो पहाड़ों मे ३००० फुट की ऊँचाई तक होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी कुछ लाली लिए काले रंग की, बहुत मजबूत और कड़ी होती है और बड़ी कठिनता से कटती है। लकड़ी प्रायः इमारत और मेज, कुर्सी आदि बनाने के काम मे आती है। इसमे एक प्रकार के सुगंधित फूल लगते हैं और गोंद भी होती है जो कई काम में आती है।

बियहुता‡—वि० [सं० विवाहित] [स्त्री० बियहुती] जिसके साथ विवाह हुआ हो जिसके साथ शादी हुई हो। विवाहित।

बिया†[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बीज'।

बिया[2]—वि० [सं० द्वि] दूसरा। अन्य। अपर।

बिया[3]—संज्ञा पुं० [सं० द्वि] शत्रु। (डिं०)।

बियाज†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ब्याज'।

बियाजू†—वि० [सं० व्याज+ऊ] (धन) जिसका ब्याज लिया जाय। सूद पर दिया हुआ (रुपया)।

बियाड़†—संज्ञा पुं० [हिं० बिया+ड़ (प्रत्य०)] वह खेत जिसमें पहले बीज बोए जाते हैं और छोटे छोटे पौधे हो जाने पर वहाँ से उखाड़कर दूसरे खेत में रोपे जाते हैं।

बियाधा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० व्याध] दे० 'ब्याधा'।

बियाधि†—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] दे० 'ब्याधि'।

बियान—संज्ञा पुं० [हिं० बियाना] १. प्रसव। बच्चा देने की क्रिया। २. बच्चा देने का भाव। वि० दे० 'ब्यान'।

विशेष—यह शब्द विशेषकर पशुओं के लिये प्रयुक्त होता है।

बियाना†—क्रि० स० [सं० विजनन] (पशुओं आदि का) बच्चा देना। जनना। वि० दे० 'ब्याना'।

बियापना(पु)†—क्रि० स० [सं० व्यापन] दे० 'व्यापना'।

बियापित(पु)—वि० [सं० व्यापित] व्याप्त। फैला हुआ। उ०—नि.स्वादी निर्लिप्त बियापित नि.नित अगुन सगुन स्वामी।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० २८।

बियाबान—संज्ञा पुं० [फा०] ऐसा उजाड़ स्थान या जंगल जहाँ कोसों तक पानी न मिले।

बियाबानी—वि० [फ़ा बियाबान+ई (प्रत्य०)] जंगल संबंधी। जंगली।

बियार†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बयार'। उ०—चंदन चौकी पै बैठनों औउ चँवरन ढोरू बियार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८७७।

बियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० वि+अद् (=भोजन करना)] रात का भोजन। विशेष—दे० 'ब्यालू'।

बियारू[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बयार'। वायु।

बियारू[2]—संज्ञा स्त्री० [वि + अद्] बियालू। ब्यालू।

बियाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्याल, प्रा० वियाल] दे० 'ब्याल'।

बियालू(पु)†—संज्ञा स्त्री० [वि+अद्] रात का भोजन। विशेष—दे० 'ब्यालू'।

बियाह(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० बियाह] दे० 'विवाह'।

बियाहचार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० बियाह+चार] विवाह का आचार। विवाह की रस्म। उ०—लाग बियाहचार सब होई।—जायसी ग्रं०, पृ० १२६।

बियाहता†—वि० स्त्री० [सं० विवाहित] जिसके साथ विवाह हुआ हो। जिसके साथ नियमानुसार पाणिग्रहण हुआ हो।

बियाहुत(पु)†—वि० [हिं० बियाह+उत] विवाह संबंधी। वैवाहिक। विवाह का। उ०—बाजे लाग बियाहुत बाजा।—इंद्रा०, पृ० १६५।

बियो[1]—संज्ञा पुं० [डिं०] बेटे का बेटा। पोता।

बियो[2]—वि० [हिं०] दे० 'बिय'।

बियोग—संज्ञा पुं० [सं० वियोग] दे० 'वियोग'। उ०—पढ़ा बियोग चलेउ होइ जोगी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२८।

बियौ(पु)—वि० [हिं०] दूसरा। उ०—परमानंद भगत के बस सो, उपमा कौन बियौ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २४०।

बिरंग—वि० [हिं० बि (प्रत्य०) + रंग] १. कई रंगों का। जिसमें एक से अधिक रंग हों। जैसे, रंग बिरंग। २. बिना रंग का। जिसमें कोई रंग न हो।

बिरंच—संज्ञा पुं० [सं० विरञ्चि] दे० 'विरंचि'। उ०—अर्जुन ज्यौं धनुधर अवधि तिहि सम और न होइ। तिम तुव प्रेम अवधि सुबुधि रची बिरंच न कोइ।—अनेकार्थ०, पृ० ८।

बिरंचन†—संज्ञा स्त्री० [देश०] लरी। माला की लडी। उ०—कोटि ग्रंथ को अर्थ तेरह बिरंचन में गाई।—भक्तमाल, पृ० ५५२।

बिरंचि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विरञ्चि] ब्रह्मा।

बिरंज—संज्ञा पुं० [फ़ा० बिरंज़] १. चावल। २. पका हुआ चावल। भात। ३. पीतल।

बिरंजारी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] व्यापारी [को०]।

बिरंजी—संज्ञा स्त्री० [?] लोहे की छोटी कील। छोटा काँटा।

बिरंब†—संज्ञा पुं० [सं० विलम्ब] दे० 'विलंब'। उ०—सत्य कहत कछु करत न खेला। आवहु चलि न बिरंब की बेला।—नंद० ग्रं०, पृ० २६८।

बिरँन†—संज्ञा पुं० [हिं० बीर] भाई। उ०—ए पिया, मेरे मन भाई ऐ चूँदरी। ए बँन, अपने बिरँन पे माँगि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१४।

बिर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० बीर (= भाई)] दे० 'बीर'। उ०—मन फूला फूला फिरै, जक्त में कैसा नाता रे। माता कहै यह पुत्र हमारा, बहिन कहै बिर मेरा रे। —संतबानी०, भा० २, पृ० ३।

बिरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिरवा] १. जड़ी बूटी। २. छोटा पौधा।

बिरकत(पु)—वि० [सं० विरक्त] दे० 'विरक्त'। उ०—(क) कामणि अंग बिरकत भया रत भया हरि नांइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५१। (ख) बैरागी बिरकत भला गेही चित्त उदार। दोउ बातों खाली पड़ै, ताको वार न पार।—संतबानी०, भा० २, पृ० ४७। (ग) जल ज्यों निर्मल होय सदा बिरकत वही। तजै न शीतल अंग बसै नित ही मही।—मन बिरक्त०, पृ० २४६।

बिरख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष] दे० 'वृक्ष'।

बिरखब†—संज्ञा पुं० [सं० वृषभ] दे० 'वृषभ'। उ०—आह्वान बिरखब को साजा।—द० सागर, पृ० ५३।

बिरखभ†—संज्ञा पुं० [सं० वृषभ] दे० 'वृषभ'। उ०—... की भक्ति बिन, राजा बिरखभ होय। माटी लदै कु०... घास न डारै कोय।—कबीर सा० सं०, पृ० १७।

बिरखा†—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्षा] दे० 'बरखा'। उ०—बरसते मेघ भलके ही बिरखा, कौन काम आपनी उन्होंव रखा।—दक्खिनी०, पृ० २०२।

बिरगंध(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिर (= विपरीत या बुरा) + गंध] विकृत या विपरीत गंध। दुर्गंध उ०—आतुर लोभी अधिक ढिठाई। मन्मथ जल बिरगंध बसाई।—चित्रा०, पृ० २१४।

बिरगिड—संज्ञा स्त्री० [अं० ब्रिगेड] १. सेना का एक विभाग जिसमें कई रेजिमेंट या पलटनें होती हैं। २. काम करनेवालों का कोई ऐसा दल जो एक तरह की वर्दी पहनता हो और एक ही अधिकारी की अधीनता में काम करता हो। जैसे, फायर ब्रिगेड।

बिरचना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० विरञ्चन] विशेष रूप से सँवारना। रचना। उ०—कोऊ चदन घसत बिरचि कोउ तिलक लगावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २३।

बिरचना(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० विरञ्जन] क्रोध करना। राग से रहित होना। उ०—बीदग बिरचो बीनड़ो, हठ गाढ़ो लेहल्ल।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १।

बिरछ, बिरछा†—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष] पौधा। बिरवा। उ०—(क) निज लक्ष सिद्धि सी, तनिक घूमकर तिरछे, जो सींच रही थीं पर्णकुटी के बिरछे।—साकेत, पृ० २०२। (ख) बिरछा पूछै बीज को, बीज वृक्ष के माहिं। जीव जो ढूँढ़ै ब्रह्म को ब्रह्म जीव के पाहिं।—कबीर सा० सं०, पृ० १६।

बिरछिक बिरछीक(पु)†—संज्ञा स्त्री० [स० वृश्चिक] दे० वृश्चिक'।

बिरज—वि० [सं० वि + रज(= शुद्ध)] १. निर्मल। शुद्ध। २. रजोगुण रहित। उ०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस १।५०।

बिरझना†—क्रि० अ० [सं० विरुद्ध्य + (ति)] उलझना। झगड़ना। उ०—बदन चद्र के लखन को शिशु ज्यों बिरझत नैन।—रसनिधि (शब्द०)।

बिरझाना—क्रि० अ० [हिं० बिरझना का प्रेर०] १. दे० 'बिरझना'। २. क्रुद्ध होना। रुष्ट होना।

बिरतंत(पु)†—क्रि० अ० [स० वृत्तान्त] दे० 'वृत्तांत'। उ०—(क) कहत जुद्ध बिरतंत अंत अरि को करि आइय।—सुजान०, पृ० ३५। (ख) प्रान बचत दीसत नहीं, जानि लियो बिरतंत।—हम्मीर०, पृ० ३६।

बिरत[1]—वि० [सं० विरत] दे० 'विरत'।

बिरत[2]—संज्ञा पुं० [सं० वृत्त] वृत्तांत। विवरण। उ०—प्रथम नाम कहो जु तुम बिरत कहो सु विशेष।—ह० रासो, ५७।

... संज्ञा पुं० [सं० वृत्ति] [स्त्री० बिरती] ... जीविका। उ०—(क) इसमें चिर... , जिससे हिंदी बिरत नि...

पृ० १३१। (ख) सांख्य योग ग्रौर नौधा भक्ती। सुपना में इनकी बिरती।—दरिया० बानी, पृ० २५।

बिरतांत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वृत्तान्त] दे० 'वृतांत'।

बिरता—संज्ञा पु० [सं० वृत्ति (=स्थिति)] १. बूता। बल। शक्ति। उ०—(क) राजा साहब कहेंगे, फिर गए ही किस बिरते पर थे।—काया०, पृ० २२६। (ख) सच्ची बात तो दीवान साहब है कि झाँसी बिचारी का कोई बिरता नहीं।—झाँसी०, पृ० ३८४। २. वृत्ति। योगक्षेम। ग्रानविका। व्यवहार स्थिति।

बिरताना(पु)†—क्रि० स० [सं० वर्त्तन] विभाग करके सबको ग्रलग ग्रलग देना। बाँटना। वितरण करना।

बिरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विरति] दे० 'विरक्ति'।

बिरतिया†—संज्ञा पु० [सं० वृत्ति+हिं० इया (प्रत्य०)] हज्जाम या बारी ग्रादि की जाति का वह व्यक्ति जो विवाह संबंध ठीक करने के लिये वर पक्ष की ग्रोर से कन्यावालों के यहाँ ग्रथवा कन्या पक्ष से वरपक्ष की योग्यता, मर्यादा, ग्रवस्था ग्रादि देखने के लिये जाता है। बरेखी करनेवाला।

बिरथ(पु)[1]—वि० [सं० व्यर्थ या वृथा] दे० 'बिरथा'। उ०—सब धर्म विधसक। निरदै महाबिरथ पसुहिंसक।—नंद० मतिभ्रंसक ग्रं०, पृ० २५२।

बिरथ[2]—वि० [सं० विरथ] दे० 'विरथ'। १. जो रथ पर या रथवाला न हो। उ०—रावन रथी बिरथ रघुबीरा।—मानस, ६।७६। २. रथ से च्युत। रथ से रहित। उ०—धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा।—मानस, ३।२३।

बिरथा†[1]—वि० [सं० वृथा] निरर्थक। फिजूल। बेकाम। व्यर्थ। उ०—ऊठत बैठत जागत, यह मन तुझे चितारे। सुख दुख इस मन की बिरथा तुझही ग्रागे सारे।—संतबानी०, भा०२, पृ० ४८।

बिरथा[2]—क्रि० वि० बिना किसी कारण के। ग्रनावश्यक रूप से।

बिरदंग(पु)—संज्ञा पु० [हिं० मिरदंग] दे० 'मृदंग'।

बिरद†—संज्ञा पुं० [सं० विरुद] १. बड़ाई। यश। नेकनामी। २. दे० 'विरद'।

बिरदाना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० बिरद+ना (प्रत्य०)] यशगान। गुण वर्णन करना। उ०—नाना बिरद बंदि बिरदावै।—ह० रासो, पृ० ७६।

बिरदैत, बिरदैत[1]—संज्ञा पु० [हिं० बिरद+ऐत (प्रत्य०)] बहुत अधिक प्रसिद्ध वीर या योद्धा। ऐसा वीर या दानी पुरुष जिसका नाम बहुत दूर तक हो। जिसके नाम का बिरद बखाना जाय।

बिरदैत, बिरदैत[2]—वि० प्रसिद्ध। बिरदवाला। श्रेष्ठ। नामी। उ०—प्रौढोकति तासो कहत, भूषन कवि बिरदैत।—भूषण ग्रं०, पृ० २६८।

बिरदालि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विरुदालि] दे० 'विरुदावलि'। उ०—चावंड बुल्लि बिरदालि बक।—प० रासो०, पृ० ५३।

बिरद्द(पु)—संज्ञा पु० [हिं० बिरद] दे० 'विरद'। उ०—सुनत बिरद्द बीर गलगाजे।—हम्मीर०, पृ० २५।

बिरध†—वि० [सं० वृद्ध] दे० 'वृद्ध'।

बिरधाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिरध+ग्राई (प्रत्य०)] बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

बिरधापन—संज्ञा पुं० [सं० वृद्ध+हिं० पन (प्रत्य०)] वृद्ध होने का भाव। बुढ़ापा। २. वृद्ध होने की ग्रवस्था। वृद्धावस्था। उ०—तेरो नंद बहुत यश पायो। जिन बिरधापन सुत जायो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४२४।

बिरम—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० विरम या विलम्ब] विराम। ग्रटकाव। विलंब। उ०—हा हा हा फिर हा हा नुखनिधि बिरम न जात सह्यो।—घनानंद, पृ० ३४६।

बिरमना†—क्रि० ग्र० [सं० विलम्बन] १. ठहरना। रुकना। विलंब करना। २. सुस्ताना। ग्राराम करना। ३. मोहित होकर फँस रहना।

बिरमाना[1]—क्रि० स० [हिं० बिरमना का सक० रूप] १. ठहराना। रोक रखना। २. मोहित करके फँसा रखना। उ०—रामे पिय बिरमाइ सु ग्रावन ना दिया।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३६४। ३. व्यतीत करना। गुजारना। बिताना।

बिरमाना(पु)[2]—क्रि० ग्र० [सं० विराम] विश्राम करना। सुस्ताना। उ०—चुवत स्वेत मकरंद कन तरु तरु तर बिरमाइ। ग्रावतु दच्छिन देस तै थक्यौ बटोही बाइ।—बिहारी (शब्द०)।

बिरराना(पु)[1]—क्रि० स० [हिं० बिलगाना] ग्रलग करना। त्याग करना। छोड़ना। उ०—धीरज धन मैं दीन्ह लुटाई। नीति सहचरी सो बिरराई।—नंद०, ग्रं० पृ० १५२।

बिरराना†[2]—क्रि० ग्र० [हिं० बिललाना] दे० 'बिललाना'—२। उ०—तब वह सुररानी बिलखानी। ग्रायो कितहूँ ते बिररानो।—नंद०, ग्रं० पृ० ३१२।

बिररे(पु)†—वि० [हिं० बिरला का बहु व०] दे० 'बिरला'। उ०—कहैं कबीर सुनो भाई साधो बिररे उतरिगे पार।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० २८।

बिरल—वि० [सं० विरल] दे० 'विरल'। उ०—बहु सद्धर्मपरायन जस कहुँ बिरल सुनाहीं।—प्रेमघन०, भा०१, पृ० ५।

बिरला—वि० [सं० विरल] कोई कोई। बहुत में से कोई एक ग्राध। इक्का दुक्का। जैसे,—साहित्य क्षेत्र में ऐसा कोई बिरला ही होगा जो ग्रापको न जानता हो।

बिरले—वि० [हिं० बिरला का बहु व०] कुछ। इने गिने। उ०—ते बिरले जग देखिए कहुँ हजार मैं एक।—स० सप्तक, पृ०३६८।

बिरवा†—संज्ञा पुं० [सं० विरुह] १. वृक्ष। २. पौधा। ३. चना। बूट।

बिरवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिरवा+ई (प्रत्य०)] दे० 'बिरवाही'।

बिरवाही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिरवा+ही (प्रत्य०)] १. छोटे पौधों का बाग या कुंज। छोटे पौधों का समूह। २. वह स्थान जहाँ छोटे छोटे पौधे उगाए गए हों।

बिरषभ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वृषभ] दे० 'वृषभ'।

बिरस[1]—वि० [सं० विरस] रसहीन। शुष्क।

बिरस[2]—संज्ञा पुं० अरसिकता। रसविमुखता। बिगाड़। उ०—ऐसें जान ? रस माहिं बिरस अनीति है।—घनानंद, पृ० ७३।

बिरसन—संज्ञा पुं० [सं० रस (= विष)] जहर। विष १. (डिं०)।

बिरसना(पु)†—क्रि० अ० [सं० विलसन] विलास करना। भोगना। उ०—नीर घटे पुनि पूछ न कोई। बिरसि जो लीज हाथ रस सोई।—जायसी (शब्द०)।

बिरह—संज्ञा पुं० [सं० विरह] विरह। वियोग। उ०—राम बिरह व्याकुल भरत सानुज सहित समाज।—मानस, २।२१२।

बिरहा[1]—संज्ञा पुं० [सं० विरह] वियोग। उ०—दरिया गुर किरपा करी, बिरहा दिया पठाय। यह बिरहा मेरे साध को, सोता लिया जगाय।—दरिया० बानी, पृ० ६।

बिरहा[2]—संज्ञा पुं० [सं० विरह] एक प्रकार का गीत जो प्रायः अहीर लोग गाते हैं। इसका अंतिम शब्द प्रायः बहुत खींचकर कहा जाता है। जैसे,—बैद हकीम बुलाओ कोई गोइयाँ कोई लेओ री खबरिया मोर। खिरकी से खिरकी ज्यों फिरकी फिरति दुओ पिरकी उठल बड़ जोर।—बलबीर (शब्द०)।

मुहा०—झार बिरहा गाना = बढ़ बढ़कर ऐसी बातें कहना जो प्रायः कार्य रूप में परिणत न हो सकती हों।

बिरहाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० बिरहा + ना (प्रत्य०)] विरहयुक्त होना। विरहजन्य दुःख से पीड़ित होना।

बिरही—संज्ञा पुं० [सं० विरहिन्] [स्त्री० बिरहिन, बिरहिनी] वियोग से पीड़ित पुरुष। वह पुरुष जो अपनी प्रेमिका के विरह से दुःखित हो।

बिरहुली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कबीर साहित्य मे एक विशेष रचना जिसमें सर्प और उसके विष आदि की चर्चा हो। २. २. बिरवा। जड़ी बूटी। ३. सर्पादि का विष दूर करनेवाला। विषवैद्य।

बिराग—संज्ञा पुं० [सं० विराग] दे० 'विराग'।

बिरागना—क्रि० अ० [हिं० बिराग+ना (प्रत्य०)] विरक्त होना। अनासक्त होना। उ०—बँधेउ सनेह बिदेह बिराग बिरागेउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६।

बिराजना—क्रि० अ० [सं० वि+रञ्जन] १. शोभित होना। शोभा देना। उ०—झूलत बँसि हिंडोरनि पिय कर संग। उत्तम चीर बिराजत भूषन अंग।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, ३७९। २. बैठना। आसीन होना। बिराजना।

बिरादर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. भाई। भ्राता। २. सजातीय। भाई बंधु।

बिरादराना—वि० [फ़ा० बिरादरानह्] बिरादर संबंधी। जातीय।

बिरादरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. भाईचारा। बंधुत्व। २. जातीय समाज। एक ही जाति के लोगों का समूह।

मुहा०—बिरादरी से बाहर या खारिज होना = जाति से बहिष्कृत होना। जातिच्युत होना।

बिरान—वि० [हिं० बेगाना] पराया। बेगाना। उ०—बहुतक फिरहिं गरब की माती खोजत पुरुष बिरान।—जग० श०, पृ० ८५।

बिराना(पु)[1]—वि० [फ़ा० बेगानह्] [वि० स्त्री० बिरानी] १. पराया। जो अपने से अलग हो। उ०—मैं तुम्हारे घर से चली आई तो बिरानी हो गई।—मान०, भा० ५, पृ० १०२। २. दूसरे का। जो अपना न हो। उ०—अरुन अधर, दसननि दुति निरखत, विद्रुम सिखर लजाने। सूर स्याम आछो वपु काछे, पटतर मेटि बिराने।—सूर०, १०।१७५६।

बिराना†[2]—क्रि० अ० [अनु०] किसी को दिखाकर चिढ़ाने के लिये मुहँ की विलक्षण मुद्रा बनाना। बिरावना। मुँह चिढ़ाना। दे० 'मुँह' का मुहा०। उ०—दई तैन सब सखन को लै गोरस समुदाय। गए निकरि जब दूरि तब आपहु भगे बिराय।—रघुनाथ (शब्द०)।

बिराल—संज्ञा पुं० [सं० बिडाल] दे० 'बिडाल'।

बिरावना(पु)†—क्रि० स० [सं० विरावण (= शब्द)] १. मुँह चिढ़ाना। किसी के मुँह से निकले हुए शब्द को उसे चिढ़ाने के लिये उसी प्रकार उच्चारण करना। २. किसी को दिखलाकर चिढ़ाने हेतु मुँह की कोई विलक्षण मुद्रा बनाना।

बिरास(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विलास] दे० 'विलास'।

बिरासी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विलासिन्] वह जो विलास करता हो। विलासी। उ०—जौ लगि कालिंदि होहि बिरासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी।—जायसी (शब्द०)।

बिरिख(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० वृष] दे० 'वृष'। उ०—बिरिख सँवरिया दहिने बोला।—जायसी ग्रं०, पृ० ५६।

बिरिख[2]—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष, प्रा० बिक्ख] दे० 'वृक्ष'।

बिरिछ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष] दे० 'वृक्ष'।

बिरिध(पु)†—वि० [सं० वृद्ध] दे० 'वृद्ध'। उ०—बिरिध होइ नहि जोलहि जिभ्रा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ४३।

बिरियाँ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० वेला] समय। वक्त। वेला। उ०—पुनि आउब यहि बिरियाँ काली।—तुलसी (शब्द०)।

बिरियाँ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वार] बार। दफा। पारी। उ०—(क) सूर की बिरियाँ निठुर भए प्रभु मोते कछु न सरयो।—सूर (शब्द०)। (ख) बीस बिरियाँ चोर को तो कबहुँ मिलि है साहु।—सूर। (शब्द०)।

बिरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाली] १. चाँदी या सोने का बना छोटी कटोरी के आकार का एक गहना जो कान में जाता है। पश्चिमी जिलों में इसे 'ढार' कहते हैं। कानों में झुमके रहे झूल, बिरिया, गलनुमनी कर्णफूल।—न्या, पृ० ४०। २. चर्खे के बेलन की वह गोल टिकिया जो

कि चर्से की मूँड़ी नूँटे से रगड़ न खाय ।

विरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० वीटिका] १. दे० 'बीड़ी' । २. दे० 'बीड़ा' या 'बीरी' । उ०—विरी अधर, अंजन नयन, मिहँदी पग अरु पान ।—मति० ग्रं०, पृ० ३४९ ।

विरुग्रा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का राजहंस ।

विरुज—वि० [सं० विरुज] दे० 'विरुज' । रोग रहित । उ०—ग्रानिय तब मन विरुज गोसाईं ।—मानस,

विरुझना†—क्रि० अ० [सं० विरुद्ध(+ जि) या हिं० उलझना] झगड़ना । उलझना । उ०—जो बालक जननी सों विरुझै माता ताको लेइ बनाइ ।—सूर (शब्द०) ।

विरुझाना७†—क्रि० अ० [सं० विरुद्ध या हिं० उलझना] क्रुद्ध होकर लड़ने के लिये प्रस्तुत होना । उलझना ।

विरुद—संज्ञा पुं० [सं०] विरद । यश । बड़प्पन ।

विरुदावलि—संज्ञा स्त्री० [हिं० विरद + अवली] दे० 'विरुदावली' उ०—बंदी जन विरुदावलि बोलत मुदित विप्र धुनि छंद के । —घनानंद०, पृ० ४६० ।

विरूप—वि० [सं० वि + रूप] विपरीत । उलटा । उ०—जहाँ वरनिए हेतु ते उपजत काज विरूप । और विसम तह कहत हैं कवि मतिराम अनूप ।—मति० ग्रं०, पृ० ४०६ ।

विरोग‡—संज्ञा पुं० [सं० वियोग ?] दुःख । कष्ट । वेदना ।

विरोजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गंधाविरोजा' ।

विरोध—संज्ञा पुं० [सं० विरोध] दे० 'विरोध' ।

विरोधना†—क्रि० अ० [सं० विरोधन] विरोध करना । वैर करना । द्वेष करना । उ०—(क) साईं ये न विरोधिए गुरु पंडित कवि यार । बेटा वनिता पौरिया यज्ञ करावनहार ।—गिरधर (शब्द०) । (ख) तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहिं विरोधे नहिं कल्याना ।—तुलसी (शब्द०) ।

विरोलना७†—क्रि० स० [सं० विलोडन, प्रा० विरोलण, विलोलण] विलोना । मथना । दे० 'विलोड़ना' । उ०—(क) विरोलि दद्धि ज्यों मही । घटा तटाक घूँमही । लियं प्रथम्म लच्छ्छमी । —पृ० रा०, २।२२ । (ख) गोरष लो गोपलं गगंन गाइ दुहि पीवै लो । मही विरोलि अमी रस पीजै अनभै लागा जीजै लो ।—गोरख०, पृ० ११३ ।

विलंगम—संज्ञा पुं० [सं० विलङ्गम] सर्प । साँप [को०] ।

विलंगी†—संज्ञा स्त्री० [सं० विलग्निका या देश०] अलगनी । अरगनी ।

विलंजा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ साग के रूप में खाई जाती हैं और ओषधि रूप में भी उनका व्यवहार होता है ।

विलंद—वि० [फा० बुलंद] १. ऊँचा । उच्च । उ०—(क) मंद विलंद अभेरा दलकन पाइअ दुख झकझोरा रे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रबल विलंद वर वारनि के दंतनि सों घैरनि के बाँके बाँके दुरग विदारे हैं ।—केशव (शब्द०) । २. विफल । नाकामयाब । जैसे,—अगर अच्छी तरह न पढ़ोगे तो इस बार इम्तहान में विलंद हो जाओगे ।

विलंब¹—वि० [फा० बुलंद] १. ऊँचा । २. बड़ा । ३. जो विफल हो गया हो (व्यंग्य) ।

विलंब²—संज्ञा पुं० [सं० विलम्ब] दे० 'विलंब' ।

विलंबना७—क्रि० अ० [सं० विलम्बन] १. विलंब करना । देर करना । २. ठहरना । रुकना । अटकना । उ०—जीव विलबा पीव सों, पिय जो लिया मिलाय । लेख समान अलेख में, अब कछु कहा न जाय ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४७ ।

विलंबित—वि० [सं० विलम्बित] दे० 'विलबित' ।

विल¹—संज्ञा पुं० [सं० विल] १. वह खाली स्थान जो किसी चीज में खुदने, फटने आदि के कारण हो गया हो और दूर तक गया हो । छेद । दरज । विवर । २. इंद्र का अश्व । उच्चैःश्रवा (को०) । ३. एक प्रकार का वेतस् (को०) । ४. जमीन के अंदर खोदकर बनाया हुआ कुछ जंगली जीवों के रहने का स्थान । जैसे, चूहे का विल, साँप का विल ।

मुहा०—विल ढूँढ़ते फिरना = अपनी रक्षा का उपाय ढूँढ़ते फिरना । बहुत परेशान होकर अपने बचने की तरकीब ढूँढ़ना ।

विल²—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह ब्योरेवार परचा जो अपना बाकी रुपया पाने के लिये किसी देनदार के सामने पेश किया जाता है । पावने के हिसाब का परचा । पुरजा ।

विशेष—विल में प्रायः बेची या दी हुई चीजों के तिथि सहित नाम और दाम, किसी के लिये व्यय किए हुए धन का विवरण, अथवा किसी के लिये किए हुए कार्य या सेवा आदि का विवरण और उसके पुरस्कार की रकम का उल्लेख होता है । इसके उपस्थित होने पर वाजिब पावना चुकाया जाता है ।

२. किसी कानून आदि का वह मसौदा जो कानून बनानेवाली सभा में उपस्थित किया जाय । कानून की पांडुलिपि ।

विलकारी—संज्ञा पुं० [सं० विलकारिन्] मूसा । चूहा [को०] ।

विलकुल—क्रि० वि० [अ०] पूरा पूरा । सब । जैसे—उनका हिसाब विलकुल साफ कर दिया गया । २. सिर से पैर तक । आदि से अंत तक । निरा । निपट । जैसे,—तुम भी विलकुल बेवकूफ हो । ३ सब । पूरा पूरा । (परिमाण या मिक)

विलखना—क्रि० अ० [हिं० अथवा सं० वि = (विपरीत) + लक्ष (= दिखाई देना = दुःख प्रकट करना)] १. विलाप करना । रोना । २. दुखी होना । उ०—सुनहु भरत भावी प्रबल विलखि कह्यो मुनिनाथ ।—तुलसी (शब्द०) । २. संकुचित होना । सिकुड़ जाना ।

विलखाना¹—क्रि० स० [हिं० विलखना का प्रे० रूप या सकर्मक] विलखना का सकर्मक रूप । रुलाना । २. दुःखी करना ।

विलखाना²—क्रि० अ० १. दे० 'विलखना' । उ०—सीता मातु सनेह वस बचन कहइ विलखाइ ।—मानस, १।२५५ । २. संकुचित होना । उ०—(क) विकसित कंज कुमुद विलखाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जेहि विलोकि विलखाहि विमाना ।—मानस, २।२१३ ।

विलखावा७—क्रि० स० [हिं० विलखाना] किसी को उदास,

निष्प्रभ वा संकुचित करना। उ०—काम तून तल सरिस जानु जुग उरु करि कर करभहि बिलखावति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१५।

बिलग¹—वि० [सं० उप० बि (=पार्थक्य या राहित्य)+लग्न; हिं० लगना] [अन्य रूप - बिलगि, बिलगु] अलग। पृथक्। जुदा। उ०—बिलग बिलग ह्वै चलहु सब निज निज सहित समाज।—तुलसी (शब्द०)।

बिलग²—संज्ञा पुं० [हिं० बि (प्रत्य०)+लगना] [अन्य रूप बिलगि बिलगु]। १. पार्थक्य। अलग होने का भाव। २. द्वेष या और कोई बुरा भाव। रंज। उ०—(क) देवि करौ कछु विनय सो बिलगु न मानब।—तुलसी (शब्द०)। (ख) इनको बिलगु न मानिए कहि केशव पल आधु। पानी पावक पवन प्रभु त्यों असाधु त्यों साधु।—केशव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना।

बिलगर—संज्ञा पुं० [देश०] गिरगिट्टी नाम का वृक्ष जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। वि० दे० 'गिरगिट्टी'।

बिलगाना—क्रि० अ० [हिं० बिलग+आना (प्रत्य०)] १. अलग होना। पृथक् होना। दूर होना। उ०—निज निज सेन सहित बिलगाने।—तुलसी (शब्द०)। २. पृथक् या स्पष्ट रूप से दिखाई देना।

बिलगाना²—क्रि० स० अलग करना। पृथक् करना। दूर करना। उ०—(क) ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल ते न कोउ बिलगावै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भलेउ पोच सब विधि उपजाए। गनि गुन दोष वेद बिलगाए।—तुलसी (शब्द०)। २. छाँटना। चुनना।

बिलगाव—संज्ञा पुं० [हिं० बिलग+आव (प्रत्य०)] पृथक् वा अलग होना। पृथक्त्व। अलगाव।

बिलगी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का संकर राग।

बिलगुⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिलग'। उ०—स्वामिनि अविनय छमब हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी।—तुलसी (शब्द०)।

बिलच्छन—वि० [सं० विलक्षण] दे० 'विलक्षण'।

बिलछना—क्रि० अ० [सं० वि+लक्ष] लक्ष करना। ताड़ना।

बिलछाना¹—क्रि० अ० [सं० वि+लक्ष्य (=दृष्टि)] दृष्टि से परे होना। दूर होना। समाप्त होना। उ०—कहै कबीर सुनो भाई साधो, लोक लाज बिलछानी।—संतबानी०, भा०२, पृ० १२।

बिलछाना²—क्रि० स० [सं० वि+लक्ष(=देखना)] पृथक् पृथक् करना। चुनना। बीछना। उ०—प्रथम कहौं अंडज की बानी। एकहि एक कहौ बिलछानी।—कबीर सा०, पृ० ३९।

बिलटना—क्रि० अ० [सं० विनष्ट] बर्बाद होना। खत्म होना। नष्ट होना। उ०—अगर आप इस तरह दो चार महीने और फर्स्ट क्लास जेंटुलमैन बनेंगे तो बिलट ही जाइएगा। फिसाना०, भा० ३, पृ०, ५८। (ख) रोजी बिलटी हाय हाय, सब मुखवारी हाय हाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ६७८।

बिलटी—संज्ञा स्त्री० [अं० बिलेट] रेल द्वारा भेजे जानेवाले माल की वह रसीद जो रेलवे कंपनी से मिलती है। रेलवे रसीद।

विशेष—जिस स्थान से माल भेजा जाता है, उस स्थान पर यह रसीद मिलती है। पीछे से यह रसीद उस व्यक्ति के पास भेज दी जाती है, जिसके नाम माल भेजा जाता है। निर्दिष्ट स्थान पर यही रसीद दिखलाने पर माल मिलता है। इसमें माल का विवरण, तौल, महसूल, आदि लिखा रहता है।

बिलनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिल या सं० भृङ्गिन्] काली भौंरी जो दीवारों पर या किवाड़ों पर अपने रहने के लिये मिट्टी की बाँबी बनाती है। यही वह भृंगी है जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह किसी कीड़े को पकड़कर भृंगी ही बना डालती है। भ्रमरी।

बिलनी²—संज्ञा स्त्री० आँख की पलक पर होनेवाली एक छोटी फुंसी। गुहांजनी।

बिलपनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० विलपन] विलाप करना। रोना।

बिलफेल—क्रि० वि० [अ० बिलफ़ेल] इस समय। अभी। सम्प्रति। वर्तमान अवस्था में। जैसे,—बिलफेल १००) लेकर काम चलाइए; फिर और ले लीजिएगा।

बिलबिलाना—क्रि० अ० [अनु०] १. छोटे छोटे कीड़ों का इधर उधर रेंगना। जैसे,—उसके घाव में कीड़े बिलबिलाते हैं। २. व्याकुल होकर बकना। असंबद्ध प्रलाप करना। ३. कष्ट के कारण व्याकुल होकर रोना चिल्लाना। ४. भूख से बेचैन हो उठना।

बिलमⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० विलम्ब] दे० 'विलंब'। उ०—कहै पतिसाह नहि बिलम किज्जे।—ह० रासो, पृ० ८७।

बिलमनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० विलम्बन] १. विलंब करना। देर करना। २. ठहर जाना। रुकना। उ०—बीच में बिल में बिराजे विष्णुथल में। सुगंगा जू के जल में अन्हाए एक पल में।—पद्माकर (शब्द०)। ३. किसी के प्रेमपाश में फँसकर कहीं रुक रहना। उ०—माधव बिलमि बिदेस रहे।—सूर (शब्द०)। विश्राम करना। ठहरना। उ०—क्या बिलम सकेगा वह नदन के प्रांगन में।—सून०, पृ० ८९।

बिलमाना—क्रि० स० [हिं० बिलमना का सक० रूप] रोक रखना। अटका रखना। उ०—कहेसि को मोहि बातन बिलमावा। हत्या केर न तोहि डेरावा।—जायसी (शब्द०)। २. प्रेमपाश में फँसा रखना। प्रेम के वशीभूत कर रोक रखना। उ०—ठाने अठान जेठानिन हू सब लोगन हू अकलंक लगाए। सासु लरी गहि गाँस खरी ननदीन के बोल न जात गनाए। एती सही जिनके लिये मैं सखि तैं कहि कौने कहाँ बिलमाए। आए गरे लगि प्रान पै केसे हूँ कान्हर आजु अजौ नहि आए।—कोई कवि (शब्द०)।

बिललाना†—क्रि० अ० [सं० विलपन विलाप+हिं० ना (प्रत्य०)] १. बिलखकर रोना। विलाप करना। उ०—औधाई सीसी सुलखि बिरह बरी बिललात। बीचहि सुखि गुलाब गो छीटो छुई

न गात।—बिहारी (शब्द०)। २. व्याकुल होकर असंबद्ध बातें कहना। उ०—दीन हुवो बिललात फिरै नित इंद्रिनि कै बस छीलक छीले।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८७।

बिलल्ला—वि० [देश० अथवा सं० वि = (रहित) + हिं० लुर = (लर)] [वि० स्त्री० बिलल्ली] जिसे किसी बात का कुछ भी शऊर या ढग न हो। गावदी। मुख। उ०—बिलल्ली है! तुम ऐसी दस को बेच ले।—सैर०, पृ०३०। २. इधर उधर आवारागर्दी में समय बितानेवाला।

बिलल्लापन—संज्ञा पुं० [हिं० बिलल्ला + पन (प्रत्य०)] आवारगी। मुर्खता। फूहड़पन। उ०—दो एक और हो तो बस मुहल्ला उजड़ जाय। बिलल्लेपन की एक ही कही।—सैर०, पृ० ३०।

बिलवाना†—क्रि० स० [सं० वि + लय, विलयन] १. किसी वस्तु को खो देना। नष्ट करना। बरबाद करना। २. किसी वस्तु को दूसरे द्वारा नष्ट कराना। बरबाद कराना। दूसरे को बिलाने मे प्रवृत्त करना।

संयो० क्रि०— डालना।—देना।

३. ऐसे स्थान में रखवाना या रखना जहाँ कोई देख न सके। छिपाना अथवा छिपाने के काम मे दूसरे को प्रवृत्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

बिलसना(पु)†[1]—क्रि०अ० [सं० विलसन] विशेष रूप से शोभा देना। बहुत भला जान पड़ना। उ०—(क) त्यों पद्माकर बोलै हँसै हुलसै बिलसे मुखचंद्र उज्यारी।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) बिलसत बेतस बनज बिकासे।—तुलसी (शब्द०)।

बिलसना[2]—क्रि० स० भोग करना। भोगना। विलास करना। उ०—(क) सज्जन सींव विभीषन भो अजहूँ बिलसै बर बधुबधू जो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) इंद्रासन बैठे सुख बिलसत दूर किए भुवभार। - सूर (शब्द०)।

बिलसाना(पु)†—क्रि० स [हिं० बिलसना] १. भोग करना। बरतना। काम में लाना। उ०—दान देय खाही बिलसाही। ता को धन मुनी यश गाही। —सबल (शब्द०)। २. दूसरे को बिलसने मे प्रवृत्त करना। दूसरे से भोगवाना।

बिलस्त—संज्ञा पुं० [हिं०] 'बालिस्त'।

बिलहरा—संज्ञा पु० [हिं० बेल] [स्त्री० बिलहरी] बाँस की तीलियों या खस आदि का बना हुआ एक प्रकार का संपुट जिसमें पान के लगे हुए बीड़े रखे जाते हैं।

बिलाँद†—संज्ञा पु० [हिं० बिलस्त] बालिश्त। बित्ता। उ०—किस भाँति यह बिलाँद भर की चीज खिलौना नहीं है।—सुनीता, पृ० २०६।

बिला—अव्य० [अ०] बिना। बगैर। उ०—आज अपनी जरा सी मेहर की निगाह से इस बादशाहत को बिला कीमत खरीद सकती हो।—राधाकृष्ण दास (शब्द०)।

यौ०—बिला तकल्लुफ = निःसंकोच। बिला तरद्दुद = नि.शंक। बिला नागा = प्रतिदिन। रोजाना। बिला वजह = अकारण। व्यर्थ। बिला वास्ता = बिना किसी संबंध या सिलसिला के। बिला शक, बिला शुबहा = संदेह रहित। निस्संदेह। बिला सबब = दे० 'बिला वजह'। बिला शर्त = बिना किसी दाँव या बाजी के। बिना किसी प्रतिबंध के।

बिलाइत†—संज्ञा पु० [अ० वलायत] संरक्षक। स्वामी। वली। उ०—जोगी सो जे मन जोगवै, बिन बिलाइत राज भोगवै। —गोरख०, पु० ३५।

बिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिल्ली] बिल्ली। बिलारी। उ०—नवनि नीच के अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई।—तुलसी (शब्द०)। २. कुएं में गिरा हुआ बरतन या रस्सी आदि निकालने का काँटा जो प्रायः लोहे का बनता है। इसके अगले भाग मे बहुत सी अँकुसियाँ लगी रहती हैं जिनमे चीज फँसकर निकल आती है। ३. लोहे या लकड़ी की एक सिटकनी जो किवाडों में उनको बंद करने के लिये लगाई जाती है। पटेला। ४. [संज्ञा पुं०] दे० 'बिलैया-२'।

बिलाईकंद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिदारीकंद'।

बिलाना—क्रि० अ० [सं० विलायन] १. नष्ट होना। विलीन होना। न रह जाना। उ०—कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।—तुलसी (शब्द०)। २. छिप जाना। अदृश्य हो जाना। गायब होना। उ०—जेंवत अधिक सुवासिक मुँह में परत बिलाय। सहस स्वाद सो पावै एक कौर जो खाय।—जायसी (शब्द०)।

बिलाप—संज्ञा पुं० [सं० विलाप] दे० 'विलाप'।

बिलापना(पु)—क्रि० अ० [हिं० बिलाप + ना (प्रत्य०)] दे० 'बिलपना'।

बिलायत—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'विलायत'। उ०—सुनि बिलाप दुखहु दुख लागा।—मानस, २।

बिलायती—वि० [हिं० विलायत + ई (प्रत्य०)] विलायत का। विदेश संबंधी। उ०—बड़े खेमों का कपड़ा बिलायती जरबफ्त का था और बाहरी ओर पुर्तगाली कपड़ा था।—हुमायूँ०, पृ० ४०।

बिलायन—संज्ञा पु० [सं०] १. गुफा। गुहा। २. माँद [को०]।

बिलार†—संज्ञा पुं० [सं० बिडाल] [स्त्री० बिलारी] बिल्ला। मार्जार।

बिलारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिलार] बिल्ली। मंजारी।

बिलारी कंद—संज्ञा पु० [सं० विदारीकन्द] एक प्रकार का कंद। दे० 'विदारीकंद'।

बिलाल†—संज्ञा पु० [सं० बिडाल] दे० 'बिलार'।

बिलाव—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बिलार'। उ०—मैं अपने जीने से ऐसा निरास हो रहा हूँ जैसे बिलाव का पकड़ा मूसा। —शकुंतला, पृ० १२८।

बिलावर—संज्ञा पुं० [अ० बिल्लौर] दे० 'बिल्लौर'।

बिलावल[1]—संज्ञा पु० [सं०] एक राग जो केदारा और कल्याण के योग से बनता है। इसे दीपक राग का पुत्र मानते हैं। यह

सबेरे के समय गाया जाता है। उ०—व्रजि ललित बिलावल गिरी देव।—ह० रासो०, पृ० ११०।

बिलावल(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्लभा] १. प्रेमिका। प्रियतमा। २ स्त्री। पत्नी। जैसे, राजबिलावल।

बिलास—संज्ञा पुं० [सं० विलास] दे० 'विलास'। उ०—चित्त सुनाल के अग्र लसे लहु कंठव कष्ट बिलास बिलासे।—केशव (शब्द०)।

बिलासना—क्रि० स० [सं० विलसन] भोग करना। भोगना। बरतना। उ०—चित्त सुनाल के अग्र लसे लहु कंठव कष्ट बिलास बिलासे। – केशव (शब्द०)।

बिलासिका—वि० स्त्री० [सं० विलासिका] आनंद देनेवाली। विलास करनेवाली। उ०—देवनदी बर वारि बिलासिका। भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ०२८१।

बिलासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० विलासिनी] पुंश्चली। दे० 'विलासिनी'।

बिलासी¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण भारत में मालाबार और कनारा मे आपसे आप होता है और दूसरे स्थानों मे लगाया जाता है। बारना।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अंडाकार और ३ से ६ इंच तक लंबी होती हैं। इसकी छाल और पत्तियों का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है और इसके फल का गूदा राज लोग इमारत की लेई में मिलाते हैं जिससे उनकी जुड़ाई बहुत मजबूत हो जाती है।

बिलासी²—वि० [सं० विलासिन्] [वि० स्त्री० विलासिनी] विलास करनेवाला। भोग करनेवाला। उ०—देखि फिरौं तब ही तब रावण सातो रसातल के गे बिलासी।—केशव (शब्द०)।

बिलिंबी—संज्ञा स्त्री० [मलया० बलिंया] एक प्रकार की कमरख का फल या उसका पेड़।

बिलियर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंग्रेजी खेल जो गोल गेंदों और लंबी लंबी छड़ियों द्वारा बड़ी मेज पर खेला जाता है।

यौ०—बिलियर्ड टेबुल=वह मेज जिसपर बिलियर्ड का खेल खेला जाता है। बिलियर्ड रूम=वह घर जहाँ यह खेल खेला जाता है।

बिलिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेला=(कटोरा)] कटोरी।

बिलिया²—संज्ञा स्त्री० [देश०] गाय, बैल के गले की एक बीमारी।

बिलिश—संज्ञा पुं० [सं० बडिश] मछली मारने का काँटा या उसमे का चारा।

बिलुठना(पु)—क्रि० अ० [सं० विलुण्ठन] लोटना। उ०—मुनिजन जिनहिं पत्यात न रती। ते पद बिलुठत ताकी छती।—नंद० ग्रं०, पृ० २३६।

बिलूधना(पु)—क्रि० अ० [सं० वि+लुब्ध] विलुप्त होना। बिलाना। उ०—चंद सूर दोउ गगन बिलुधा भईला घोर अंधारं।—गोरख० पृ० ६६।

बिलूमना—क्रि० अ० [सं० वि+लम्बन] बिलमना। लटकना। अटकना। उ०—वह प्यारी के कंठ बिलूम्यो करै, मुख चूम्यो करै त्यों ही झूम्यो करै।—नट०, पृ० ५०।

बिलूर¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० बिलोर] दे० 'बिल्लौर'। उ०—बिसद बसन मेहीन में ती तन नूर जहूर। मनु बिलूर फानूस में दीपै दीप कपूर।—स० सप्तक, पृ० २७३।

बिलूरगात—संज्ञा पुं० [सं० तिब्बती] तिब्बत के एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह शब्द जैनियों के वैताढ्य (पर्वत) का अपभ्रंश जान पड़ता है।

बिलेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्प। २. चूहा। ३. बिल या माँद मे रहनेवाला कोई जानवर। ४. खरगोश [को०]।

बिलैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिल्ली+ऐया (प्रत्य०)] १ बिल्ली। २. सिटकिनी। अगंला। ३. पेठा, कद्दू, मूली आदि के महीन महीन डोरे से लच्छे काटने का एक औजार। कद्दूकश

विशेष—यह वास्तव में लोहे की एक (चार पायों की) चौकी सी होती है जिसपर उभरे हुए छेद बने होते हैं। उभारों से रगड़ खाकर कटे हुए कतरे छेदों के नीचे गिरते जाते हैं।

बिलोकना(पु)—क्रि० स० [सं० विलोकन] १. देखना। लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई।—मति० ग्रं०, पृ० ४०३। २. जाँच करना। परीक्षा करना।

बिलोकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विलोकन] १. देखने की क्रिया। चितवन। उ०—लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई।—मति० ग्रं०, पृ० ४०३। २. दृष्टिपात। कटाक्ष। उ०—ललित बिलोकनि पै बिवस बिलास है।—मति० ग्रं०, पृ० ४२०।

बिलोगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

बिलोचन—संज्ञा पुं० [सं० विलोचन] आँख। दे० 'विलोचन'। उ०—काल न देखत कालबस, बीस बिलोचन अंधु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८७।

बिलोचना(पु)—क्रि० स० [सं० विलोचन] जाँचना। परीक्षा करना। उ०—लोचन बिलोच पोच ललिता की ओटन सों हाव भाव भरी करत झोटन में ललित बात।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७६।

बिलोड़ना(पु)—क्रि० स० [सं० विलोडन] १. मथना। पानी की सी वस्तु को चारों ओर से खूब हिलाना। २. अस्त व्यस्त कर देना। गड्ड बड्ड करना।

बिलोन¹—वि० [सं० वि+हिं० लोन (=लवण=लावण्य)] बिना लावण्य का। कुरूप। बदसूरत। उ०—लोन बिलोन तहाँ को कहै। लोनी सोइ कंत जेहि चहै।—जायसी (शब्द०)।

बिलोन²—वि० [सं० वि+लवण] अलोना। बिना नमक का।

बिलोना¹—क्रि० स० [सं० विलोडन] १. मथना। किसी वस्तु, विशेषतः पानी की सी वस्तु, को खूब हिलाना। जैसे, दही

बिलोना (घी निकालने के लिये)। उ०—ज्यूँ मही बिलोए माखण आवै। त्यूँ मन मथियो तें तत पावै। —संतबानी०, भा०२, पृ० ९८। २. ढालना। गिराना। उ०—तुलसी मदोवै रोइ रोइ कै बिलोवै आँसु बार बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सो।—तुलसी (शब्द०)।

बिलोना†[२]—संज्ञा पुं० [हिं० बिलोना] वह वस्तु जो बिलोकर निकाली जाय। नवनीत। मक्खन। उ०—सत के बिलोना बिलोय मोर माई। ऐसा बिलोय जामे तत्त न जाई। —कबीर (शब्द०)।

बिलोना[३]—वि० [हिं०] 'बिलोन'।

बिलोपित—वि० [सं० विलुप्त] गायब। अंतर्धान। उ०—तब जिंदा बाबा मथुरा नगर से बिलोपित हो गए।—कबीर मं०, पृ० ४९७।

बिलोरना(पु)—क्रि० स० [सं० विलोडन] १. दे० 'विलोडना'। १. छिन्न भिन्न कर डालना। अस्त व्यस्त कर डालना। उ०—घोरि डारी केसरि सुबेसरि बिलोरि डारी बोरि डारी चूनरि चुवाति रंग रंनी ज्यों।—पद्माकर (शब्द०)।

बिलोल—वि० [सं० विलोल] चंचल। चपल। उ०—स्रवित सोभए हार बिलोल, मुदित मनोभव खेल हिंडोल।—विद्यापति, पृ० ३४०,।

बिलोलना—क्रि० सं० [सं० विलोलन] डोलना। हिलना। उ०—डोलति अडोल मन खोलति न बोलति कलोलति बिलोलति न तोलति त्रसति सी।—देव (शब्द०)।

बिलोवना(पु)†—क्रि० स० [सं० विलोडन, प्रा० विलोअण] दे० 'बिलोना'। उ०—(क) तब प्रेमलता जाइ कै देखें तो श्री जसोदा जी दही बिलोवति है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०८।

बिलौका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'विलोका'।

बिलौटा‡—संज्ञा पुं० [हिं० बिल्ली + औटा (प्रत्य०)] बिल्ली का बच्चा।

बिलौर—संज्ञा पुं० [फ़ा० बिलौर] दे० 'बिल्लौर'।

बिलौरा—संज्ञा पुं० [हिं० बिल्ली या बिलाई+औरा (प्रत्य०)] बिल्ली का बच्चा।

बिलौरी—वि० [फ़ा० बिलौर + ई (प्रत्य०)] 'बिल्लौरी'। उ०—तामें धारा तीन बीच में सहर बिलौरी।—पलटू०, बानी, पृ० ७।

बिल्कला—संज्ञा स्त्री० [सं०] यथार्थ निकलती हुई औरत [को०]।

बिल्कुल—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बिलकुल'।

बिल्मुक्ता[१]—वि० [अ०] जो घट बढ़ न सके। जैसे, लगान बिल्मुक्ता।

बिल्मुक्ता[२]—संज्ञा पुं० १. वह पट्टा जिसकी शर्तों के अनुसार लगान घटाया बढ़ाया न जा सके।

बिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा। गड़हा। २. वृक्षादि का थाला। आलवाल। ३. हीग [को०]।

बिल्ला[१]—संज्ञा पुं० [सं० बिडाल, हिं० बिल्ली (का पुंवाचक)] [स्त्री० बिल्ली] मार्जार। दे० 'बिल्ली'।

बिल्ला[२]—संज्ञा पुं० [सं० पटल, हिं० पल्ला, पल्ला] चपरास की तरह की पीतल की पतली पट्टी जिसे पहचान के लिये विशेष विशेष प्रकार के काम करनेवाले (जैसे, चपरासी, कुली, लैसंसदार, खोंचेवाले) बाँह पर या गले में पहनते हैं। बैज।

बिल्लाना†—क्रि० अ० [हिं० बिलबिलाना] दे० 'बिलबिलाना'। उ०—(क) आवन आवन होय रह्यो रे, नहिं आवन की बात। मीरा ब्याकुल बिरहनी रे, बाल ज्यों बिल्लात।—संतबानी०, भा० २, पृ० ७०। (ख) हथनियाँ पास चिल्लाती थीं, वे विवश विकल बिल्लाती थीं।—साकेत, पृ० १५६।

बिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० बिडाल, हिं० बिलार] केवल पंजों के बल चलनेवाले पूरा तलवा जमीन पर न रखनेवाले मांसाहारी पशुओं में से एक जो सिंह, व्याघ्र आदि की जाति का है और अपनी जाति में सबसे छोटा है। बिल्ली नाम इस पशु की मादा का है पर यही अधिक प्रसिद्ध है। इसका प्रधान भक्ष्य चूहा है।

विशेष—इसकी लंबाई एक हाथ से कम होती है और पूँछ डेढ़ दो बालिश्त की होती है। बिल्ली की जाति के और पशुओं के जो लक्षण हैं, व सब बिल्ली में भी होते हैं—जैसे टेढ़े पैने नख जो गद्दी के भीतर छिपे रहते हैं और आक्रमण के समय निकलते हैं; परदे के कारण आँख की पुतली का घटना बढ़ना; सिर की बनावट नीचे की ओर झुकती हुई; २८ या ३० दाँतों में केवल नाम मात्र के लिये एक चौभर होना; बिना आहट दिए चलकर शिकार पर झपटना, इत्यादि, इत्यादि। कुत्तों आदि के समान बिल्ली की नाक में भी घ्राणग्राही चर्म कुछ ऊपर होता है। इससे वह पदार्थों को बहुत दूर से सूँघ लेती है।

भारतवर्ष में बिल्ली के दो भेद किए जाते हैं, एक बनबिलाव और दूसरा पालतू बिल्ली। वास्तव में दोनों प्रकार की बिल्लियाँ बस्ती में या उसके आसपास ही पाई जाती हैं। बनबिलाव का रंग स्वाभाविक भूरा, कुछ चित्तीदार होता है और वह पालतू से क्रूर और बलिष्ठ होता है। पालतू बिल्लियाँ सफेद, काली, बादामी, चितकबरी कई रंग की होती हैं। उनके रोएँ भी मुलायम होते हैं। पालतू बिल्लियों में अंगोरा या पारसी बिल्ली बहुत अच्छी समझी जाती है। वह डील में भी बड़ी होती है और उसके रोएँ भी घने, बड़े बड़े और मुलायम होते हैं। ऐसी बिल्लियाँ प्रायः काबुली अपने साथ बेचने के लिये लाते हैं। बिल्ली बहुत दिनों से मनुष्यों के बीच रहती आई है। रामायण, मनुस्मृति, अष्टाध्यायी सबमें बिल्ली का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में बिल्ली का जूठा खाने का निषेध है। बिल्ली पहले पहल कहाँ पाली गई, इसके संबंध में कुछ लोगों का अनुमान है कि पहले पहल प्राचीन मिस्रवालों ने बिल्ली पाली क्योंकि मिस्र में जिस प्रकार मनुष्यों की मोमियाई लाशें मिलती हैं, उसी प्रकार बिल्ली की भी। मिस्रवाले जिस प्रकार मनुष्यों के शव मसाले से सुरक्षित रखते थे उसी प्रकार पालतू जानवरों के भी। पश्चिम के तथा अन्य अनेक देशों में इनको पालतू जानवर के रूप में भी रखा जाता है।

मुहा०—बिल्ली के भाग्य से छींका टूटना=जो वस्तु प्राप्त होने में कठिनाई हो, उसकी प्राप्ति आसानी से हो जाना। उ०—कितना ही स्थान खाली है बँगले की कोई सुध लेनेवाला नहीं है, बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा।—किन्नर०, पृ० ६५। बिल्लियों से चूहों की न चलना=ताकतवर से कमजोरों की न चलना। उ०—बिल्लियों से चली न चूहों की। छिपकली से रुके न कीड़े पल।—चुभते०, पृ० ६६।

२. किवाड़ की सिटकनी जिसे कोढ़े में डाल देने से ढकेलने पर किवाड़ नहीं खुल सकते। एक प्रकार का अर्गल। बिलैया। ३. एक प्रकार की मछली जो उत्तरीय भारत में और बरमा की नदियों में होती है। पकड़े जाने पर यह मछली काटती है जिससे विष सा चढ़ जाता है।

बिल्ली लोटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिल्ली+लोटना] एक प्रकार की बूटी जिसके विषय मे प्रसिद्ध है कि उसकी गंध से बिल्ली मस्त होकर लोटने लगती है। यह दवा में काम आती है। यूनानी हकीम इसे 'बादरंजबोया' कहते हैं।

बिल्लूर—संज्ञा पुं० [फा० बिल्लूर] दे० 'बिल्लौर'।

बिल्लौर—संज्ञा पु० [सं० वैदूर्य्य, प्रा० बेलुरिय, तुल० फ़ा० बिल्लूर] १. एक प्रकार का स्वच्छ सफेद पत्थर जो शीशे के समान पारदर्शक होता है।

विशेष—अणुओं की योजना की विशेषता के कारण इसमें यह गुण होता है जैसा कि मिश्री की स्वच्छ डली में देखा जाता है।

२. स्वच्छ शीशा जिसके भीतर मैल आदि न हो।

बिल्लौरी—वि०[हिं० बिल्लौर+ई (प्रत्य०)] बिल्लौर का बना हुआ। बिल्लौर पत्थर का। जैसे, बिल्लौरी चूड़ियाँ। २. बिल्लौर के समान स्वच्छ।

बिल्व—संज्ञा पुं० [सं० बिल्व] १. बेल का पेड़। २. बेल का फल। ३. एक तौल जो एक पल होती है। ४. छोटा तालाब या गड़हा (को०)।

बिल्वकीया—संज्ञा स्त्री० [सं० बिल्वकीया] वह भूमि जहाँ बेल के वृक्ष उगाए गए हों (को०)।

बिल्वदंड—संज्ञा पु० [सं० बिल्वदण्ड] शिव का एक नाम (को०)।

बिल्हण—संज्ञा पु० [सं० बिल्हण] विक्रमांकदेवचरित नामक संस्कृत प्रबंधकाव्य के कर्ता।

बिवछना(पु)—क्रि० अ० [देश०] दे० 'बिबछना'।

बिवरना¹—क्रि० स० [सं० विवरण] १. सुलझाना। एक में गुथी हुई वस्तुओं को अलग अलग करना। २. बँधे या गुथे हुए बालों को हाथ या कंघी आदि से अलग अलग करके साफ करना। बाल सुलझाना।

बिवरना²—क्रि० अ० सुलझना।

बिवराना—क्रि० स० [हिं० बिवरना का प्रे० रूप] १. बालों को खुलवाकर सुलझवाना। उ०—पुनि निज जटा राम बिवराए। गुरु अनुसासन माँगि नहाए।—तुलसी (शब्द०)। २. बाल सुलझाना।

बिवसाइ(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय, प्रा० विवसाइ] दे० 'व्यवसाय'।

बिवस्वत(पु)—वि० [सं० वैवस्वत] दे० 'वैवस्वत'। उ०—त्यों हि उपाधि संयोग ते सीसत आहि मिल्यो सो विकारा। काढ़ि लिए जु बिचार बिवस्वत सुंदर शुद्ध स्वरूप है न्यारा।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६०५।

बिवहार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार] दे० 'व्यवहार'। उ०—(क) कुल बिवहार बेदविधि चाहिय जँह जस। उपरोहित दोउ करहिं मुदित मन तहँ तस।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५६। (ख) जबही मैं क्रीडत विविध बिवहार होत काम क्रोध लोभ मोह जल मैं संहार है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१४।

बिवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० विपादिका] पैर में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें पैर की उँगलियों के बीच का भाग या तलुए का चमड़ा फट जाता है। उ०— जाके पैर न फटी बिवाई। सो का जानै पीर पराई।—कहावत (शब्द०)।

क्रि०प्र०—फटना।

बिवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विमान, प्रा० विवाण] दे०—'विमान'।

बिवाय¹—संज्ञा स्त्री० [सं० विपादिका] दे० 'बिवाई'।

बिवाय²—संज्ञा पुं० [सं० व्यपाय (=विश्लेष, अंत ?) विघ्न। बाधा। (डिं०)।

बिवेचना(पु)—क्रि० स० [सं० विवेचन] व्याख्या करना। गुणदोष कहना।

बिवोगनी‡—संज्ञा स्त्री० [देश० तुल० सं० वियोगिनी] दे० 'वियोगिनी'। उ०—दरसन कारनि बिरहनी, वैरागनि होवै। दादू बिरह बिवोगनी, हरि मारग जोवै।—दादू० बानी, पृ० ५७।

बिशप—संज्ञा पुं० [अं०] ईसाई मत का सबसे बड़ा पादरी।

बिष—संज्ञा पुं० [सं० विष] दे० 'विष'।

बिषमाई—संज्ञा स्त्री० [सं० विषमयता या सं० विषम+हिं० आई (प्रत्य०)] विष का गुण। भयंकरता। जहरीलापन। उ०—देखहु दै मधु की पुट कोटि मिटै न घटै विष की बिषमाई।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८।

बिषय(पु)¹—अव्य० [सं० विषये] दे० 'बिखय', 'बिखै'। उ०—अन्य अनेकन काज बिषय आदेश हेतु नत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५।

बिषय²—संज्ञा पुं० [सं० विषय] दे० 'विषय'।

बिषया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विषय] विषय की वासना। कामेच्छा।

बिषहर(पु)—वि० [सं० विषहर] विष के प्रभाव को हरण करनेवाला। मांत्रिक। विषवैद्य। उ०—यह बिषहर धन्वतरि आयो। मूर मंत्र पढ़ि तोहि जियायो।—हिं० क० का०, पृ० २१८।

बिषान—संज्ञा पुं० [सं० विषाण] दे० 'विषाण'।

बिषार, बिषारा—वि० [सं० विष+हिं० आर या आरा (प्रत्य०)] जहरीला। विषयुक्त।

बिषिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विषय] दे० 'विषया'।

बिषै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विषय] दे० 'विषय'। उ०—जो तजै

आप यह बिषै सुख तो सुख होत अनंत अति।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११०।

बिष्टालाⓤ—संज्ञा पुं० [सं० विस्तार ?] ब्यौरा। विवरण। उ०—नव डाँड़ी दस मुंसफ धावहि रैयति बसन न देही। डोरी पूरी मापहि नाही बहु बिष्टाला लेही।—कबीर ग्रं०, पृ० २७३।

बिसंचⓤ—संज्ञा पुं० [सं० वि+सञ्चय] १. संचय का अभाव। वस्तुओं की सँभाल न रखना। बेपरवाई। उ०—लघु मनुजहू को सच कियहु बिसंच रंच न होय।—रघुराज (शब्द०)। २. कार्य की हानि। बाधा। ३. अमंगल। भय। डर। उ०—रचक नहिं बिसच कौशिक संग जात लखन सहकारी।—रघुराज (शब्द०)।

बिसंभर†—संज्ञा पुं० [सं० विश्वम्भर] दे० 'विश्वंभर'।

बिसँभरⓤ†—वि० [सं० वि (उप०)+हिं० सँभार] १. जो सँभाल न सकें। जिसे ठीक और व्यवस्थित न रख सकें। उ०—तन बिसँभर मन बाउर लटा। उरझा प्रेम परी सिर जटा।—जायसी (शब्द०) २. बेखबर। गाफिल। असावधान।

बिसँभार†—वि० [सं० वि (उप०)+हिं० सँभार] जिसकी सुध बुध खो गई हो। जिसे तन बदन की खबर न हो। बेखबर। गाफिल। असावधान। उ०—परा सुप्रेम समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होई बिसँभारा।—जायसी (शब्द०)।

बिसंसृत—वि० [सं० विसंसृत] विसंसृत। स्खलित। च्युत। उ०—नगर में बगर बगर ह्वै गयो। देवकी गर्भ बिसंसृत भयो।—नंद० ग्रं०, पृ० २२४।

बिसⓤ[1]—संज्ञा पुं० [सं० विष] १. दे० 'विष'। गरल। उ०—हरी हरी बिझरी रहति, हरी प्रेम बिस पाय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५६। २. जल।—अनेकार्थ०, पृ० ५०।

बिस[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की नाल। मृणाल।

बिसकंठी—संज्ञा पुं० [सं० विसकण्ठिन्] एक प्रकार का छोटा बक या बगुला [को०]।

बिसकरमाⓤ—संज्ञा पुं० [सं० विश्वकर्मा] दे० 'विश्वकर्मा'।

बिसखपरा—संज्ञा पुं० [सं० विष+खर्पर] १. हाथ सवा हाथ लंबा गोह की जाति का एक विषैला सरीसृप जंतु। इसका काटा जीव तुरत मर जाता है। इसकी जीभ रंगीन होती है जिसे यह थोड़ी थोड़ी देर पर निकाला करता है। देखने मे यह बड़ी भारी छिपकली सा होता है। २. एक प्रकार की जंगली बूटी जिसकी पत्तियाँ बनगोभी की सी परंतु कुछ अधिक हरी और लंबी होती हैं। यह औषध मे काम आती है। इसे 'बिसखपरी' भी कहते हैं। ३. पुनर्नवा। पथरचटा। गदहपूरना।

बिसखापर, बिसखोपड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० विष+खर्पर] दे० 'बिसखपरा'। उ०—बीछू बिसखापरहि चाँपत चरन बीच लपटै फनीजै गहि पटकै पछार को।—राम कवि (शब्द०)।

बिसटाⓤ—संज्ञा पुं० [सं० विष्टा] दे० 'विष्टा'। उ०—पान औ कपूर लौंग चर काग आगै राखै, बिसटा बिगंध खात अधिक सियान कै।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १०४।

बिसटी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बेगार। (डिं०)।

बिसटी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० वस्त] लँगोटी। चिट।

बिसतरना[1]—क्रि० स० [सं० विस्तारण] विस्तार करना। बढ़ाना। फैलाना। उ०—एक पल ठाढ़ो ह्वै कै सामुहे रही निहारि फेरि कै लजौहीं, भौंह सौंचे बिसतरि कै।—रघुनाथ (शब्द०)।

बिसतरनाⓤ[2]—क्रि० अ० [सं० विस्तरण] विस्तृत होना अभिवृद्धि होना। बढ़ना। उ०—बिहँसि गरे सों लागी मिली रघुनाथ प्रभा अंगनि सो गुन रूप ऐसो बिसतरि गो।—रघुनाथ (शब्द०)।

बिसतार—संज्ञा पुं० [सं० विस्तार] दे० 'विस्तार'।

बिसदⓤ—वि० [सं० विशद] दे० 'विशद'।

बिसदताⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० विशद+ता (प्रत्य०)] स्वच्छता। पवित्रता। निर्मलता। उ०—ललित बिसदता नखन की चरन अरुनता रंग। ज्यों द्विकला ससि की कला लसति सुसध्या संग।—स० सप्तक, पृ० २४४।

बिसन—संज्ञा पुं० [सं० व्यसन] दे० 'व्यसन'।

बिसनी[1]—वि० [सं० व्यसनिन्] १. जिसे किसी बात का व्यसन या शौक हो। २. जो अपने व्यवहार के लिये सदा बढ़िया चीजें ही ढूँढ़ा करे। जिसे चीजें जल्दी पसंद न आएँ। जो व्यवहार की साधारण वस्तु सामने आने पर नाक भौं सिकोड़े। ३. जिसे सफाई, सजावट या बनाव सिंगार बहुत पसंद हो। छैला। चिकनिया। शौकीन। ४. वेश्यागामी। रंडीबाज। उ०—ज्ञानी मूढ़ औ चेला चोर साहु भर भूना। बिस्वा बिसनी भेड़ कसाई नाहि कोई घर सूना।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० २७। (ख) रंडियाँ बिसनियों से रुपया लेकर सारंगी ही में डाल देती हैं।—प्रेमघन०, भा०, २, पृ० ३३०। ५. दुःखदायक। कष्टदायक। उ०—क्यों जियो कैसी करो बहुरयो बिसु सी बिसनी बिसवासिनि फूली।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

बिसनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० बिसिनी, प्रा० बिसणी] १. कमलिनी। २. लता।—अनेकार्थ०, पृ० ८८।

बिसबासⓤ—संज्ञा पुं० [सं० विश्वास] दे० 'विश्वास'। उ०—ब्रज जीवन फेरि बसौ ब्रज में, बिसवास में यो बिस घोरिए ना।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५६६।

बिसमउ†—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय] दे० 'विस्मय'।

बिसमय—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय] १. आश्चर्य। २. गर्व ३. विषाद। उ०—पेयसी समाद सुनि हरि बिसमय कए पाए ततहि बेरा।—विद्यापति, पृ० ६५।

बिसमरनाⓤ—क्रि० स० [सं० विस्मरण] विस्मृत करना। भूल जाना। उ०—सुत तिय धन की सुधि बिसमरै।—सूर (शब्द०)।

बिसमला(पु)—संज्ञा पुं० [अ० बिसमिल्लाह] मुसलमानों में जबह करने की क्रिया। उ०—जब नहिं होते गाई कसाई। तब बिसमला किनि फुरमाई।—कबीर ग्रं०, पृ० २३९।

बिसमव†—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय या विस्मित] दे० 'विस्मय'।

बिसमाद†—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय] दे० 'विस्मय'। उ०—जाइ सुखासन भासु भा, बाजु गीत औ नाद। चला पाछु सब भावै, कटक भरा बिसमाद।—चित्रा०, पृ० ३७।

बिसमादी—वि० [हिं० बिसमाद+ई (प्रत्य०)] विस्मय से युक्त। चकित। उ०—हौ बिसमादी देस निल, केहि मारग होइ जाउँ। को राजा यह नगर मों को रानी यह गाउँ।—इंद्रा०, पृ० १२४।

बिसमादु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय, हिं० बिसमाद] दे० 'विस्मय'। उ०—जिनि चखिया तिसु आया स्वादु। नानक बोलै इहु बिसमादु।—प्राण०, पृ० १३४।

बिसमाध‡—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय] दे० 'बिसमौ¹'।

बिसमित—वि० [सं० विस्मित] दे० 'विस्मित'। उ०—सुनत वचन बिसमित महतारी।—मानस, १।

बिसमिल—वि० [फा० बिस्मिल] १. घायल। जख्मी। २. जबह करना। घायल करते हुए मारना। उ०—गऊ पकड़ बिसमिल करे, दरगह खंड वजूद। गरीबदास उस गऊ का, पिए जुलाहा दूध।—कबीर मं०, पृ० ११४।

बिसमिल्ला (ह्)—संज्ञा पुं०[अ०]श्रीगणेश। प्रारंभ। आरंभ। आदि। मुहा०—बिसमिल्ला ही गलत होना=आदि से ही गलती का शुरू होना। किसी कार्य के आरंभ ही में विघ्न, बाधा या भूल का होना। उ०—किंतु संयुक्ता को संयोगिता लिखकर बिसमिल्ला ही गलत कर डाला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४४०। बिसमिल्ला करना=आरंभ करना। लग्गा लगाना। शुरू करना।

बिसमौ¹—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय, हिं० बिसमव, बिसमउ] विषाद। दुःख। रंज (अवध)। उ०—नाग फाँस उन्ह मेला गीवा। हरष न बिसमौ एकौ जीवा।—जायसी (शब्द०)।

बिसमौ²—क्रि० वि० [सं० वि+समय] बिना समय के। असमय या कुसमय। उ०—बिरह अगस्त जो बिसमौ उयऊ। सरवर हरष सूखि सब गयऊ।—जायसी (शब्द०)।

बिसयक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विषय] १. देश। प्रदेश। २. रियासत।

बिसरना—क्रि० स० [विस्मरण, प्रा० विम्हरण, बिस्सरण] भूल जाना। विस्मृत होना। याद न रहना। ध्यान में न रहना। उ०—(क) बिसरा भोग सेज सुख वासू।—जायसी (शब्द०) (ख) बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सुरति स्याम घन की सुरति बिसरेहू बिसरै न।—विहारी (शब्द०)।

बिसरात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वेशरह्] खच्चर। अश्वतर। उ०—कूजत पिक मानहु गज माते। ढेक महोख ...—तुलसी (शब्द०)।

बिसराना—क्रि० स० [सं० विस्मारण हिं० बिसरना] भुला देना ध्यान में न रखना। विस्मृत करना। उ०—(क) दच्छ सकल निज सुता बोलाई। हमरे बयर तुम्हउ बिसराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिसराइयो न याको है सेवकी अयानी।—प्रताप (शब्द०)। (ग) थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि। तुमहूँ कान्ह भए मनो आज काल के दानि।—बिहारी (शब्द०)।

बिसराम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विश्राम] दे० 'विश्राम'। उ०—प्यारी की ठोढी को बिंदु दिनेस किधौ बिसराम गोबिंद के जी को। चारु चुभ्यो कणिका मणिनील को कैधों जमाव जम्यो रजनी को।—दिनेस (शब्द०)।

बिसरामी(पु)—वि० [सं० विश्राम, हिं० बिसराम+ई (प्रत्य०)] विश्राम देनेवाला। सुख देनेवाला। सुखद। उ०—सुआ सो राजा कर बिसरामी। मारि न जाय चहै जेहि स्वामी।—जायसी (शब्द०)।

बिसरावना(पु)†—क्रि० स० [हिं० बिसराना] दे० 'बिसराना'। उ०—करि कै उनके गुन गान सदा अपने दुख को बिसरावनो है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

बिसर्पी—वि० [सं० विसर्पिन्] बढ़नेवाला। फैलनेवाला। गतिशील। उ०—उठि उठि सठ ह्याँ तै भागु तौ लौ अभागे। मम बचन बिसर्पी सर्प जौ लौं न लागे।—रामचं०, पृ० ९७।

बिसल—संज्ञा पुं० [सं०] कनखा। कोपल। अंकुर [को०]।

बिसवना†¹—क्रि० अ० [सं० विश्रमण] अस्त होना। समाप्त होना। बीतना।

बिसवना†²—क्रि० स० समाप्त करना। बिता देना।

बिसवल†—संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसे ऊँदरू भी कहते हैं। वि० दे० 'ऊँदरू'।

बिसवा(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिस्वा'। उ०—दादू सतगुरु वंदिए मन क्रम बिसवा बीस।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६६५।

बिसवा‡²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वेश्या।

बिसवार—संज्ञा पुं० [सं० विषय (=वस्तु)+हिं० वार (प्रत्य०)] हज्जामों की वह पेटी जिसमें वे हजामत बनाने के औजार रखते हैं। छुरहँडी। किसबत।

बिवास(पु)—संज्ञा पु० [सं० विश्वास] दे० 'विश्वास'।

बिसवासिनि¹—वि० स्त्री० [सं० विश्वासिन्] १. विश्वास करनेवाली। २. जिसपर विश्वास हो।

बिसवासिनि²—वि० स्त्री० [सं० अविश्वासिन्] १. जिसपर विश्वास न हो। २. विश्वासघातिनी। उ०—क्यों जियौ कैसी करौ बहुरयो बिसु सी बिसनी बिसवासिनि फूली।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

बिसवासी¹—वि० [सं० विश्वासिन्] १. जो विश्वास करे। २. जिसपर विश्वास हो। जिसका एतबार हो।

बिसवासी[2]—वि० [सं० अविश्वासिन्] १. जिसपर विश्वास न न किया जा सके। बेएतबार। विश्वासघाती। २. जिसका कुछ ठीक न हो कि कब क्या करे करावेगा। जैसे,—बिसवासी पेट के कारण परदेश में पड़े हैं (बोलचाल)।

बिससना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० विश्वसन] विश्वास करना। एतबार करना। भरोसा करना। उ०—न ये बिससिए अति नए दुरजन दुसह स्वभाव। आँटे परि प्रानन हरत काँटे लौ लगि पाव।—बिहारी (शब्द०)।

बिससना[2]—क्रि० स० [सं० विशसन] १. वध करना। मारना। घात करना। उ०—पुनि तुरग को बिससि तहँ कौसल्या कर दीन। कियो होम करि प्राण वप दसरथ नृपति प्रवीन।—रघुराज (शब्द०)। २. शरीर काटना। चीरना फाड़ना।

बिसह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वृषभ] बैल। उ०—रहट बिसह एह मूढ़ मन, दिऐं अधौटा नैन। कहा जो हाँक्यो जनम भरि चलेहु न एकौ कैन।—चित्रा०, पृ० १७५।

बिसहना(पु)[1]—क्रि० स० [हिं० बिसाह] १. मोल लेना। खरीदना। दाम देकर कोई वस्तु लेना। क्रय करना। २. जान बूझकर अपने साथ लगाना। उ०—जो पै हरि जन के औगुण गहते। तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठ बैर बिसहते।—तुलसी (शब्द०)।

बिसहना†[2]—संज्ञा पुं० [बिसाह][स्त्री० बिसहनी] सौदा। बिसाहना।

बिसहर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विषधर, प्रा० बिसहर] सर्प। उ०—(क) ए अप्पन गनिऐं नही, बैरी बिसहर घाव।—पृ० रा०, ७।६४। (ख) बिसहर सी लट सों लपटि, मो मन हठि लपटात। कियो। आपनो पाइहै तू तिय कहा सकात।—मुबारक (शब्द०)।

बिसहरू†—संज्ञा पुं० [हिं० बिसहना+रू (प्रत्य०)] मोल लेनेवाला। खरीददार।

बिसहिनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

बिसाँयँध[1]—वि० [सं० वसा (=मज्जा, चरबी) +गंध] सड़ी मछली सी गंधवाला। जिससे सड़ी मछली की सी गंध आती हो।

बिसाँयँध[2]—संज्ञा स्त्री० मछली की सी गंध। सड़े मांस की सी गंध। उ०—जो अन्हवाय भरे अरगजा। तौहु बिसाँयँध ओहि नहिं तजा।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—बिसाँयँध आना = सड़ी मछली सी दुर्गंध आना।

बिसा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बिस्वा'। उ०—बीस बिसे व्रत भंग भयो सु कहो अब केशव को धनु ताने।—केशव (शब्द०)।

बिसाइँध—वि०, संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'बिसाँयँध'।

बिसाइत†—संज्ञा स्त्री० [अ० बिसाती] बिसातवाना। फुटकर। उ०—किसी पर सस्ती बिसाइत की चीजें हैं तो किसी पर बासी साग और भाजी और चुचके फल रखे हैं।—त्याग०, पृ० ६२।

बिसाख(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विशाखा] दे० 'विशाखा'।

बिसात—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. हैसियत। समाई। वित्त। धन। संपत्ति का विस्तार। औकात। जैसे,—मेरी बिसात नहीं है कि मैं यह मकान मोल लूँ। २. जमा। पूँजी। उ०—(क) मन धन हुतो बिसात जो सो तोहिं दियो बताय। बाकी बाकी बिरह की प्रीतम भरी न जाय।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) हे रघुनाथ कहा कहिए पिय की तिय पूरन पुन्य बिसात सी।—रघुनाथ (शब्द०)। ३. सामर्थ्य। हकीकत। स्थिति। गणना। उ०—(क) मेदिनि मेरु अजादि सुर सो इक दिन नसि जात। गजश्रुति सम नर आयु चर ताकी कौन बिसात।—विश्राम (शब्द०)। (ख) स्त्री की बिसात है कितनो, बड़े बड़े योगियो के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। (ग) समय की अनादि अनंत धारा के प्रवाह मे १९ वर्ष के जीवन की बिसात ही क्या।—बालकृष्ण (शब्द०)। ४. शतरंज या चौपड़ आदि खेलने का कपड़ा या बिछौना जिसपर खाने बने होते हैं। उ०—हित बिसात धर मन नरद, चलि कै देह न दाव। यासौं प्रीतम की रजा, बाजू खेलत चाव।—रसनिधि (शब्द०)। ५. दरी। फर्श पर बिछाई जानेवाली कोई वस्तु। बिछावन।

बिसाती—संज्ञा पुं० [अ०] १. बिस्तर बिछाकर उसपर सौदा रखकर बेचनेवाला। २. छोटी चीजों का दुकानदार। सुई, तागा, लैंप, रंग, चूड़ी, गोली तथा खिलौने इत्यादि छोटी छोटी वस्तुओं का बेचनेवाला। उ०—बढ़ई संगतरास बिसाती। सिकलीगर कहार की पाँती।—जायसी (शब्द०)।

बिसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विषाण] विषाण। सींग। उ०—(क) बरु जामहि सस सीस बिसाना।—मानस, (ख) तुम्हरे सीस बिसान कोऊ ना संग तुम्हारी।—पलटू०, भा० पृ० २४।

बिसाना[1]—क्रि० अ० [सं० वश] वश चलना। बल चलना। काबू चलना। उ०—(क) जो सिर परे आय सो सहै। कछु न बिसाय काह सों कहै—जायसी (शब्द०)। (ख) जानि बूझि के परे आपसे भाड़ में। तासे काह बिसाय खुसी जो मार में।—पलटू० बानी, पृ० १००।

बिसाना†[2]—क्रि० अ० [सं० विष हिं० बिस+ना (प्रत्य०)] विष का प्रभाव करना। जहर का असर करना। जहरीला होना। जैसे, कुत्ते का काटा बिसाता है।

बिसाना†[3]—क्रि० अ० [सं० √विश (वेशन = उपवेशन,)] बैठना ठहरना। लदना। उ०—करे हाकिमी गोरा जाय। खर्चा भारत सीस बिसाय।—प्रेमघन०,भा० १, पृ० १८६।

बिसामण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विश्रमण] भय। शंका। संशय। रुकावट। उ०—आगम मो पै जान्यूँ न जाइ। इहै बिसामण जियरे माँहि।—दादू० बानी, पृ० ६६४।

बिसायँध(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० विष+गन्ध] १. दुर्गंध। बदबू। २. मांस की दुर्गंध। गोश्त की बदबू। उ०—मोटि माँसु रुचि भोजन तासू। औ मुख आव बिसायँध बासू।—जायसी (शब्द०)।

बिसारद⑨—संज्ञा पुं० [सं० विशारद] दे० 'विशारद'।

बिसारना—क्रि० स० [हिं० बिसरना] भुला देना। स्मरण न रखना। ध्यान में न रखना। विस्मृत करना। उ०—(क) धीर सिखापन आपनहू को बिसूरि बिसूरि बिसारत ही बन्यो। धीर (शब्द०)। (ख) देश कोश की सुरति बिसारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) पाथर महुँ नहि पतँग बिसारा। जहँ तहँ सँवर दीन्ह तुइँ चारा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

बिसारा—वि० [सं० विषालु] [वि० स्त्री० बिसारी] विष भरा। विषाक्त। विषैला। उ०—नैन बिसारे बान सों चली बटाउइ मारि। बचन सुधारस सींचि कै वाहि जीव दै नारि।—मति० ग्रं०, पृ० ४४६।

बिसास⑨¹—संज्ञा पुं० [सं० अविश्वास] विश्वासघात। उ०—प्रीतम अनेरे मेरे घूमत घनेरे प्रान विष भोए विषम बिसास बान हत है।—घनानंद, पृ० ६२।

बिसास²—संज्ञा पुं० [सं० विश्वास] दे० 'विश्वास'। उ०—तुम्हरे नावँ बिसास छाँडि है आन की आस संसार धरम मेरो मन धीजै।—रै० बानी, पृ० ६।

बिसासिन, बिसासिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अविश्वासिनी] (स्त्री) जिसपर विश्वास न किया जा सके। विश्वासघातिनी। दगाबाज (स्त्री)। उ०—(क) लाजहू को न डेराति अबूझ बिसासिनि के छल को पछिताति है।—(शब्द०)। (ख) राखि गई घर सुने बिसासिनि सासु जँजाल ते मोहि न छोरयो।—(शब्द०)।

बिसासी⑨—वि० [सं० अविश्वासी] [स्त्री० बिसासिन] जिसपर विश्वास न किया जा सके। विश्वासघाती। दगाबाज। धोखेबाज। छली। कपटी। उ०—(क) कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसो।—घनानंद, पृ० १०८। (ख) सेखर वैर करै सिगरे पुरवासी बिसासी भए दुखदात हैं।—सेखर (शब्द०)। (ग) जापै हौ पठाई ता बिसासी पै गई न दीसै, संकर को चाही चदकला तें लहाई री।—दूलह (शब्द०)। (घ) गोकुल के चख में चक चावगो, चोर लौं चौंके अयान बिसासी।—गोकुल (शब्द०)।

बिसाह—संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय] मोल लेने का काम। खरीद। क्रय।

बिसाहना¹—क्रि० स० [हिं० बिसाह + ना (प्रत्य०)] १. खरीदना मोल लेना। क्रय करना। दाम देकर लेना। उ०—(क) जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो बेचिए बिबुध धेनु, रासभी बिसाहिए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हौं बनिजार तो बनिज बिसाहौ। भर ब्योपार लेहु जो चाहौ।—जायसी (शब्द०)। (ग) हाटों में रखी हुई बेचने बिसाहने की वस्तुएँ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। २. जान बूझकर अपने पीछे लगाना। अपने साथ करना। जैसे, रार बिसाहना, बैर बिसाहना। उ०—निदान पहले तो हैदरअली के बेटे टीपू सुलतान का सिर खुजलाया कि इन अंग्रेजों से बैर बिसाहा।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

बिसाहना²—संज्ञा पुं० १. मोल लेने की वस्तु। काम की चीजें जिसे खरीदें। सौदा। उ०—सबही लीन्ह बिसाहन और घर कीन्ह बहोर।—जायसी (शब्द०)। २. मोल लेने की क्रिया। खरीद। उ०—(क) पूरा किया बिसाहना बहुरी न आवें हट्ट।—कबीर (शब्द०)। (ख) इहाँ बिसाहन करि चली आगे बिषमी बाट।—कबीर (शब्द०)।

बिसाहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिसाहना] सौदा। जो वस्तु मोल ली जाय। उ०—(क) जो कहुँ प्रीति बिसाहनी करतो मन नहिं जाय। काहे को कर माँगतो बिरह जगातो आय।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) कोई करै बिसाहनी काहू के न बिकाय। कोऊ चालै लाभ सों कोऊ मूर गवाँय।—जायसी (शब्द०)।

बिसाहा—संज्ञा पुं० [हिं० बिसाहना] सौदा। खरीदी हुई वस्तु। जो वस्तु मोल ली जाय। बिसाहना। बिसाहनी। उ०—(क) सिंघलदीप जाय सब चाहा मोल न पाउब जहाँ बिसाहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जिन्ह यहि हाट न लीन्ह बिसाहा। ताकहँ आन हाट किन लाहा।—जायसी (शब्द०)।

बिसिख⑨—संज्ञा पुं० [सं० विशिख] दे० 'विशिख'। उ०—हरिहि हेरि ही हरि गयो बिसिख लगे झषकेत। थहरि सयन तें हेत करि, डहरि रहरि के खेत।—स० सप्तक, पृ० २६१।

बिसिनी—संज्ञा स्त्री० [स० विसिनी] कमलसमूह वा कमल। उ०—ज्यों निशि बिसिनी जल में रहै। बसै कलानिधि नभ सो वहै।—राम० धर्म०, पृ० ३४३।

यौ०—बिसिनीपत्र=कमल का पत्ता।

बिसियर⑨¹—वि० [सं० विषधर] विषैला। विषयुक्त। उ०—कनक बरन छबि मैन नैन बिसियर बिनु सायक।—हनुमान (शब्द०)।

बिसियर²—संज्ञा पुं० सर्प। विषधर।

बिसिल—वि० [सं०] बिस से संबद्ध। कमल संबंधी [को०]।

बिसी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चमड़ा। वह चर्म जो हिमालय के द्वादश ग्राम में द्वारा तैयार किया गया हो [को०]।

बिसीष⑨—वि० [सं० विशिष्ट या विशेष] असाधारण। दे० 'विशिष्ट'। उ०—अंदर नट्ट बुलाइ कै पुच्छिय बिगति बिसीष।—पृ० रा०, २५।२५।

बिसुकरमा, बिसुकर्मा⑨—संज्ञा पुं० [सं० विश्वकर्मन्] दे० 'विश्वकर्मा'।

बिसुनना—क्रि० अ० [हिं० सुरकना, सुनकना] कोई वस्तु खाते समय उसका कुछ अंश नाक की ओर चढ़ जाना।

बिसुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० विष्णु ?] अमरबेल।—अनेकार्थ (शब्द०)।

बिसुरना¹—क्रि० अ०, [हिं०] दे० 'बिसूरना'।

बिसुरना²—संज्ञा स्त्री० [सं० विसूरण] चिंता। बिसुरना।

बिसुवा—संज्ञा पुं० [हिं० बिस्वा] दे० 'बिस्वा'।

बिसूरना¹—क्रि० अ० [सं० विसूरण (=शोक)] सोच करना। चिंता करना। खेद करना। मन में दुःख मानना। उ०—(क)

जानि कठिन शिव चाप विसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जनु करुना बहु वेष विसूरति।—तुलसी (शब्द०)।

विसूरना¹—संज्ञा स्त्री० चिंता। फिक्र। सोच। उ०—लालची लबार बिललात द्वार द्वार, दीन बदन मलीन मन मिटै ना विसूरना।—तुलसी (शब्द०)।

विसूलना(पु)—क्रि० स० [सं० वि+हिं० सूरना, सूलना, हूलना] पीडित करना। कष्ट देना। व्यथा पहुँचाना। उ०—फूल विसूलै देहि री ह्वी हूलै अलि अंध। वन मन रथ करै पवन सीतल मंद सुगंध।—स० सप्तक, पृ० २३०।

विसेख(पु)—वि० [स० विशेष] दे० 'विशेष'। उ०—(क) विसेखि न देखलि ए निरमलि रमनी। सुरपुर सञो चलि आइत गजगमनी।—विद्यापति, पृ० २०। (ख) दूति दयावति कहहि विसेखि।—विद्यापति, पृ० ५०।

विसेखता(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० विशेषता] दे० 'विशेषता'।

विसेखना(पु)—क्रि० स० [सं० विशेष] १. विशेष प्रकार से वर्णन करना। विशेष रूप से कहना। ब्योरेवार वर्णन करना। विवृत करना। उ०—नैन नाहि पै सब कुछ देखा। कवन भाँति अस जाय विसेखा।—जायसी (शब्द०)। २. निर्णय करना। निश्चित करना। उ०—पंडित गुनि सामुद्रिक देखा। देखि रूप औ लगन विसेखा।—जायसी (शब्द०)। ३. विशेष रूप से होना या प्रतीत होना। उ०—(क) सुरिज किरन जनु गगन विसेखी। जमुना माँझ सरस्वति देखी।—जायसी (शब्द०)।

विसेन—संज्ञा पुं० [?] क्षत्रियों की एक शाखा जिसका राज्य किसी समय वर्तमान गोरखपुर के आस पास के प्रदेश से लेकर नैपाल तक था।

विसेस(पु)—वि० [स० विशेष] दे० 'विशेष'।

विसेसर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विश्वेश्वर] दे० 'विश्वेश्वर'। उ०—बसैं बिंदुमाधव विसेसरादि देव सबै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१।

विसेसिक(पु)—संज्ञा पुं० [स० वैशेषिक] दे० 'वैशेषिक'। उ०—कथन पातंजल जोग कह्यो, सो विसेसिक सार समय जो बतायो।—घट०, पृ० १३०।

विसैंधा†—वि० [हिं० विसायंध] १. जिसमें दुर्गंध आती हो। बदबूदार। २. माँस मछली आदि की गंधवाला। उ०—तजि नागेसर फूल सुहावा। कवँल विसैंधहि सौ मन लावा।—जायसी (शब्द०)।

विसोक—वि० [स० वि+शोक] शोकरहित। गतशोक। वीतशोक। उ०—राम नाम जपु तुलसी होइ विसोक।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३।

विस्कुट—संज्ञा पु० [अं०] खमीरी आटे की तंदूर पर पकी हुई एक प्रकार की टिकिया।

विशेष—यह बहुत हलकी और सुपाच्य होती है और दूध में डालने से फूल जाती है। विस्कुट नमकीन और मीठा दोनों प्रकार का होता है। इसे योरप के लोग बहुत खाते हैं। अब भारत में भी इसका विशेष प्रचार हो गया है।

विस्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'विस्त' (हिं०)।

विस्तर—संज्ञा पुं० [सं० विस्तर, फ़ा०] १. बिछौना। बिछावन। वह मोटा कपड़ा जिसे फैलाकर उसपर सोएँ। पायनाजन। २. विस्तार। बढ़ाव। उ०—(क) जोति एकै कियो विस्तर, तहाँ जहाँ समाइ।—जग० बानी, पृ० २। (ख) बहुत काल लगि दौड़ धूप कीन्हो। विस्तर भाँति न मैं कोउ चीन्हो।—रघुराज (शब्द०)।

विस्तरना¹—क्रि० अ० [सं० विस्तरण] फैलना। इधर उधर बढ़ना।

विस्तरना²—क्रि० स० १. फैलाना। बढ़ाना। अधिक करना। उ०—दुःख मूल गनि पाप, पाप कहँ कुमति प्रकासै। मोह कुमति विस्तरै क्रोध मोहै उल्लासै।—मतिराम (शब्द०)। २. विस्तार से कहना। बढ़ाकर वर्णन करना। उ०—धर्म परीक्षित रक्षा करी। सोई कथा सकल विस्तरी।—सूर (शब्द०)।

विस्तरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० विस्तर] दे० 'विस्तर'।

विस्तार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विस्तार] विस्तार। फैलाव। उ०—रूप तिलक, कच कुटिल किरनि छबि कुंतल कुल विस्तार।—सूर०, १०।१७९६।

विस्तारना—क्रि० स० [सं० विस्तारण] विस्तृत करना। फैलाना। उ०—तब आपन प्रभाव विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा।—तुलसी (शब्द०)।

विस्तुइया†—संज्ञा स्त्री० [सं० विषतूलिका या हिं० विष+चूना (=टपकना, चूना)] छिपकली। गृहगोधा।

विस्थार—संज्ञा पुं० [सं० विस्तार] दे० 'विस्तार'। उ०—(क) बहुत विस्थार कहियतु है एको।—प्राण०, पृ० २३। (ख) एक स ते कीना विस्थार। नानक एक अनेक विचार।—प्राण०, पृ० ६६।

विस्थीर(पु)—वि० [सं० विस्थिर ?] अस्थिर। चंचल। उ०—नानक लखिय न जाय बहुत विस्थीर।—प्राण०, पृ० १६०।

विस्मै—संज्ञा पुं० [सं० विस्मय] दे० 'विस्मय'। उ०—माधोनल कियो रागु, सुनि पुनि हो विस्मै भई।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १८६।

विस्राम—संज्ञा पुं० [सं० विश्राम] दे० 'विश्राम'।

विस्व—संज्ञा पुं० [सं० विश्व] दे० 'विश्व'। उ०—गिरिधर दास विस्व कीरति बिलासी रमा, हासी लौ उजासी जाकी जगत हुलासी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१।

विस्वा¹—संज्ञा स्त्री० [?] सोंठ।—अनेकार्थ०, पृ० १०४।

विस्वा†²—संज्ञा स्त्री० [स० वेश्या] रंडी। वेश्या। उ०—विस्वा किए सिंगार है बैठी बीच बजार।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० १८।

बिस्वा³—संज्ञा पुं० [हिं० बीसवाँ] एक बीघे का बीसवाँ भाग।
मुहा०—बीस बिस्वा=निश्चय। निस्संदेह। उ०—देखे बिना दोष दे सीसा। नरक परै सो बिस्वे बीसा।—रघुनाथदास (शब्द०)।

बिस्वादार—संज्ञा पुं० [हिं० बिस्वा+फ़ा० दार] १. हिस्सेदार। पट्टीदार। २. किसी बड़े राजा या ताल्लुकेदार के अधीन जमींदार।

बिस्वास—संज्ञा पुं० [सं० विश्वास] दे० 'विश्वास'।

बिहंग—संज्ञा पुं० [सं० विहङ्ग] दे० 'विहग'।

बिहंडना—क्रि० स० [सं० विघटन या सं० विखण्डन, प्रा० विहंडण] १. खंड खंड कर डालना। तोड़ना। २. काटना। ३. नष्ट कर देना। मार डालना। उ०—(क) परम तत आधारी मेरे, शिव नगरी घर मेरा। कालहि षंडूँ मीच बिहडूँ, बहुरि न करिहूँ फेरा।—कबीर ग्रं०, पृ० १५४। (ख) तू अघ के अघ ओघन खंडै। अधिक अनेकन बिघन बिहडै।—लाल (शब्द०)।

बिहंडा(पु)—वि० [सं० विभण्ड, या विखण्डन, प्रा० विहंड, विहंडण] [स्त्री० बिहंडी] भंड आचरण करता हुआ। भ्रष्टाचार युक्त। उ०—तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारे खोय रे।—कबीर० श०, भा०, पृ० ३५।

बिहँसना—क्रि० अ० [सं० विहसन] मुस्कराना। मंद मंद हँसना। जाहु वेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता।—तुलसी (शब्द०)।

बिहँसाना—क्रि० अ० १. दे० 'बिहँसना'। उ०—ततखन एक सखी बिहँसानी। कौतुक एक न देखहु रानी।—जायसी (शब्द०) २. प्रफुल्लित होना। खिलना (फूल का)।

बिहँसाना²—क्रि० स० हँसाना। हर्षित करना।

बिह¹—संज्ञा पुं० [सं० विधि, प्रा० बिहि] ब्रह्मा। उ०—सुघटित बिह बिघटारे।—विद्यापति, पृ० ५९।

बिह²—वि० [फ़ा०] भला। अच्छा [को०]।

बिहँसौहाँ—वि० [हिं० √ बिहँस+औहाँ (प्रत्य०)] १. बिहँसनशील। हँसता हुआ। २. खिला हुआ। विकसित। उ०—भौहैं करि सूधी बिहँसौहैं कै कपोल नैंक सौहैं करि लोचन रसौहैं नंदलाल सौं।—मति० ग्रं०, पृ० ३१२।

बिहग—संज्ञा पुं० [सं० विहग] दे० 'विहग'। उ०—सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल बिहग समाना।—मानस, १।३७।

बिहडना(पु)—क्रि० अ० [प्रा० विहडण, हिं० बिहँडना] खंडित होना। टूटना। उ०—दादू संगी सोई कीजिए, कबहूँ पलट न जाइ। आदि अंत बिहडै नहीं, ता सन यहु मन लाइ।—दादू०, पृ० ४६३।

बिहतर—वि० [फ़ा०] बहुत अच्छा।

बिहतरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] भलाई। कुशल।

बिहतार†—संज्ञा पुं० [सं० विस्तार] दे० 'विस्तार'।

बिहद, बिहद्द—वि० [फ़ा० बेहद] असीम। परिमाण से बहुत अधिक। उ०—(क) भूषण भनत नाद बिहद नगारन के, नदी नद मद गैबरन के रलत हैं।—भूषण (शब्द०)। (ख) देव नद्दी कैसी किधि दिपति बिसद्दी जासु युगलेश साहियो बिहद्दी मनो देवराज।—युगलेश (शब्द०)। (ग) कहै मतिराम बलविक्रम बिहद्द सुनि गरजनि परै दिगवारन बिपति मैं।—मति० ग्रं०, पृ० ३८६।

बिहफै†—संज्ञा पुं० [सं० बृहस्पति] दे० 'बृहस्पति'। उ०—बिहफे गुरु दीरघ गुरु, सबके गुरु गोविंद।—नंद० ग्रं०, पृ० ७४।

बिहबल(पु)—वि० [सं०] १. व्याकुल। उ०—यादोपति यदुनाथ खगपति साथ जन जान्यो बिहबल तब छाँड़ि दियो थल मे।—सूर (शब्द०)। २. शिथिल। उ०—ह्वै गई बिहबल अंग पृथु, फिरि सजे सकल सिंगार जू।—केशव (शब्द०)।

बिहरना¹—क्रि० अ० [सं० विहरण] घूमना फिरना। सैर करना। भ्रमण करना। उ०—जिन बीथिन बिहरैं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई।—तुलसी (शब्द०)।

बिहरना(पु)†²—क्रि० स० [सं० विघटन, प्रा० विहडन] १. फटना। दरकना। विदीर्ण होना। उ०—तासु दूत ह्वै हम कुल बोरा। ऐसेहु मति उर बिहरु न तोरा।—तुलसी (शब्द०)। २. टुकड़ टुकड़े होकर टूटना। फूटकर बिखर जाना। उ०—हृदय बड़ दारुन रे पिया बिनु बिहरि न जाए।—विद्यापति, पृ० १५।

बिहराना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० बिहरना] फटना। उ०—(क) केरा के से पात बिहराने फन सेस के।—भूषण (शब्द०)। (ख) पुष्ट भए अंडा बिहराना। कछु दिन गत भो चक्षु सुजाना।—कबीर सा०, पृ० २२४।

बिहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० व्योहार] चंदा। बरार। भेजा।

बिहवल—वि० [स० विह्वल] दे० 'विह्वल'। उ०—तब तुम सर अभ्यास लख्यो बिहवल ह्वै नाहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १०९।

बिहसनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिहँसना] बिहँसने का भाव या कार्य। उ०—बाढ़ चली बिहसनि मनो सोभा सहज बिलास।—मति० ग्रं०, पृ० ३१५।

बिहसाना—क्रि० स० [सं० विहसन, हिं० बिहँसना] विकसित करना। उ०—अष्ट कँवल दल पाँखुरी उनको बिहसावो।—धरनी० श०, पृ० ३१।

बिहसिन(पु)—वि० स्त्री० [सं० विहसन] हँसनेवाली। हँसोड़। उ०—बिहसिन आई नीर को बीर तरनिजा तीर। बीर गिरी तिहि हेरि री पहिराई बलबीर।—स० सप्तक, पृ० २३०।

बिहस्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बिहिश्त] दे० 'बिहिश्त'। उ०—(क) दल दोय दिखत बीर। पहुँचे बिहस्त गहीर।—ह०

रासो, पृ० १४२। (ख) चढि विमान दोऊ तहाँ पहुँचे जाय बिहस्त।—ह० रासो, पृ० १४२।

बिहाग—संज्ञा पुं० [सं० विभाग (=वियोग)] एक राग जो आधी रात के बाद लगभग २ बजे के गाया जाता है। यह राग हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है।

बिहागड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० बिहाग+ड़ा (प्रत्य०)] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

विशेष—इसके गाने का समय रात को १६ दंड से २० दंड तक है। कोई इसे हिंडोल राग की रागिनी कहते हैं और कोई इसे सरस्वती, केदार और मारवा के योग से उत्पन्न मानते हैं।

बिहाड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विभात, प्रा० विहाड] दे० 'बिहान'। उ०—मारू सनमुख तेडिया, दियण स्वदेसा वज्ज। कहउ थदे थे चालिस्यउ, काँइ बिहाडइ अज्ज।—ढोला०, दू० १८७।

बिहाण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विभात; प्रा० विहाण या सं० विभानु ?] दे० 'बिहान'।

बिहान[1]—संज्ञा पुं० [सं० विभात, प्रा० विहाड, विहाण] सवेरा। प्रातःकाल। उ०—लसत सेत सारी ढक्यो तरल तर्यौना कान। पर्यो मनो सुरसरि सलिल रबि प्रतिबिंब बिहान।—बिहारी (शब्द०)।

बिहान[2]—क्रि० वि० आनेवाले दूसरे दिन। कल्ह। कल। उ०—नगर यथाक्रम खबरि बखाने। राम होहिं युवराज बिहाने।—रघुराज (शब्द०)।

बिहाना[1]—क्रि० स० [सं० वि+हा (=छोड़ना)] छोड़ना। त्यागना। उ०—सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।—तुलसी (शब्द०)।

बिहाना[2]—क्रि० अ० व्यतीत होना। गुजरना। बीतना। उ०—(क) चेतना है तो चेत ले निस दिन मे प्रानी। छिन छिन अवधि बिहात है, फूटै घट ज्यों पानी।—सतवानी० भा०२, पृ० ४७। (ख) बड़ी बिरह की रैनि यह क्योंहूँ कै न बिहाय।—रसनिधि (शब्द०)। (ग) निमिष बिहात कल्प सम तेही।—तुलसी (शब्द०)।

बिहायसी—संज्ञा पुं० [सं० विहायस्] आकाश। आसमान।—नंद० ग्रं०, पृ० ६७।

बिहारक—वि० [सं० विहारक] विहार करनेवाला। उ०—व्यास बिरंचि सुरेस महेसहु के हिय अंबर बीच बिहारक।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २००।

बिहार—संज्ञा पुं० [सं० विहार] १. दे० 'विहार'। २. भारत का एक राज्य।

बिहारना—क्रि० अ० [सं० विहरण] विहार करना। केलि वा क्रीड़ा करना। उ०—(क) सुर नर नाग नव कन्यन के प्राणपति पति देवतानहू कै हियन बिहारे हैं।—केशव (शब्द०)। (ख) पदुम सहस्र बरस तुम धारो। विष्णु लोक में जाय बिहारो।—रघनाथदास (शब्द०)।

बिहारी[1]—वि० [सं० विहारिन्] [स्त्री० बिहारिणी] विहार करनेवाला। उ०—एक तहाँ दुग देखत केशव होत उहाँ सुरलोक बिहारी।—केशव (शब्द०)।

बिहारी[2]—संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण का एक नाम।

बिहाल—वि० [फ़ा० बेहाल] व्याकुल। बेचैन। उ०—ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरयो बिहाला।—तुलसी (शब्द०)।

बिहाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० बेहाली] उ०—नौवों कोठ गोट मन माली। दुरमति माया करै बिहाली।—घट०, पृ० ४५।

बिहास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यास] दे० 'व्यास'। उ०—पारासर जो पुत्त बिहासहु। सतवती अभ्भं गुरु भासहु।—पृ० रा०, ११८७।

बिहि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विधि, प्रा० विहि] दे० 'विधि'।

बिहित—वि० [सं० विहित] दे० 'विहित'। उ०—बनित बरनि रस बिहित कहि, मदन हाव दस जान।—मति० ग्रं०, पृ० ३४४।

बिहित(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० बिहिश्त] दे० 'बिहिश्त'।

बिहिश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बिहिश्त] स्वर्ग। बैकुंठ। उ०—सिजदे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४८०। २. स्वर्गतुल्य स्थान। आनंदपूर्ण जगह।

बिहिश्ती—वि० [फा०] १. स्वर्गीय। स्वर्ग का। स्वर्ग संबंधी। २. (पु) मशक से पानी का छिड़काव करनेवाला।

बिहिश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बहिश्त] दे० 'बिहिश्त'। उ०—जिसने बिहिश्त बैकुंठ बनाया।—कबीर सा०, पृ० १५१३।

बिही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. एक पेड़ जिसके फल अमरूद से मिलते जुलते होते हैं। यह पेशावर और काबुल की ओर होता है। २. उक्त पेड़ का फल जो मेवों में गिना जाता है। ३. अमरूद। उ०—वहाँ संभर प्रदेश के राजमानी ने आपके साथ के संतों को बिही के फल लेने से रोक दिया।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४३७। २. नेकी। भलाई।

बिहीदाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बिही नामक फल का बीज जो दवा के काम में आता है। इन बीजों को भिगो देने से लुआब निकलता है जो शर्बत की तरह पिया जाता है।

बिहीन—वि० [हिं० विहीन] रहित। बिना। उ०—बारि बिहीन मीन ज्यों व्याकुल व्याकुल ब्रजनारि सबै।—सूर (शब्द०)।

बिहून—वि० [हिं० विहीन] बिना। रहित। उ०—(क) निज संगी निज सम करत दुरजन मन दुख दून। मलयाचल है संत जब तुलसी दोष बिहून।—तुलसी (शब्द०) (ख) ढोल बाजता ना सुनै सुरति बिहूना कान।—कबीर (शब्द०)।

बिहोरना—क्रि० अ० [हिं० बिहरना (=फूटना)] बिछुड़ना। उ०—सीता के बिहोरे रती राम मे न रह्यो बल, दूजे लछिमन मेघनाद ते बचो जीति है।—हनुमान (शब्द०)।

बिहोस†—वि० [फ़ा० बेहोश] दे० 'बेहोश'। उ०—पड़ा बिहोस होस कर बंदे, विषय लहर में माता है।—कबीर० श०, पृ० ५।

बींझ—वि० [सं० विद्ध, प्रा० विज्झ] गुथा हुआ। सघन।

बींड़¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बीडा'।

बींड़ा²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बीड़ा'।

बींड़ा³—संज्ञा पुं० [हिं० बींड़ी+आ (प्रत्य०)] पेड़ की पतली टहनियों से बुनकर बनाया हुआ मेंडरे के आकार का लंबा नाल जो कच्चे कुएँ या चोंढ में इसलिये दिया जाता है कि उसका भगाड न गिरे। बीड। २. धान की पयाल को बुन और लपेटकर बनाया हुआ गोल आसन जिसपर गाँव के लोग आग के किनारे बैठकर तापते हैं।

विशेष—पहले पयाल को बुनकर उसका लंबा फीता बनाते हैं। फिर उस फीते कोवतुंलाकार लपेटकर ऊपर से रस्सी से कसकर बाँध देते हैं। यह गोल होता है और बैठने के काम आता है।

३. घास आदि को लपेटकर बनाई हुई गेंड़ुरी जिसपर घड़े रखे जाते हैं। ४. वह गेंड़ुरी जिसे सिर पर रखकर घड़े, टोकरे आदि का भार उठाते हैं। ५. बड़ी बीडी। लुंडा। ६. जलाने की लकड़ी या बाँस आदि का बाँधकर बनाया हुआ बोझ। ७. पिंडी। पिंड।

बींड़िया†—संज्ञा पुं० [हिं० बींड़ी] वह बैल जो तीन बैलों की गाड़ी में सबसे आगे रहता है और जिसके गले के नीचे बीड़ी रहती है। प्रूँड़िया।

बींड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० वेणी] १. वह मोटी और कपड़े आदि में लपेटी हुई रस्सी जो उस बैल के आगे गले के सामने छाती पर रहती है जो तीन बैलों की गाड़ी में सबसे आगे रहता है। २. रस्सी या सूत की वह पिंडी जो लकड़ी या किसी और चीज के ऊपर लपेटकर बनाई जाय। ३. वह लकड़ी जिसपर सूत आदि को लपेटकर बीड़ी बनाई जाती है। ४. वह गेंड़ुरी जिसे सिर पर रखकर घड़ा, टोकरा या और कोई बोझ उठाते है। ५. कैंसुला।

बींद†¹—संज्ञा पुं० [सं० विन्दु] दे० 'बिंदु'। उ०—डटे सींघ पीसे बीद, काचा गुरु जे गम्य न देही।—रामानंद०, पृ० ३४।

बींद²—संज्ञा पुं० [देशज अथवा सं० √ विद्>विन्द (=ढूढ़ँना, चुनना, वरण करना] [स्त्री० बींदणी] वर। दूल्हा। उ०—(क) लै चले बीद ननकरि बिलँब दिन तुच्छै साहो सु पुवि।—पृ० रा०, २५।१६०। (ख) सब जग सूता नीद भरि, संत न आवै नीद। काल खड़ा सिर ऊपरै ज्यो तोरणि आया बीद।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६।

बींदना†—क्रि० अ० [सं० विद्, प्रा० विंद+हिं० ना (प्रत्य०)] अनुमान करना। अंदाज से जानना। उ०—झुकि झुकि झपकौहैं पलनु फिरि फिरि जुरि जमुहाइ। बींदि पियागम नीद मिसि दी सब अली उठाइ।—बिहारी (शब्द०)।

बींधना⁽ᵖ⁾¹—क्रि० अ० [सं० विद्ध] १. बीधना। २. फँसना। उलझना। उ०—(क) अंतर्यामी यहो न जानत जो मों उरहि बिती। ज्यों कुजुवरि रस बींधि हारि गथु सोचतु पटकि चिती।—सूर (शब्द०)। (ख) भूल्यो भौंह भाल में चुभ्यो कै टेढ़ी चाल में, छक्यो कै छविजाल में कै बीध्यो बनमाल में।—पद्माकर (शब्द०)।

बींधना²—क्रि० स० विद्ध करना। छेदना। बेधना। जैसे, कान बींधना।

बींधना‡³—संज्ञा पुं० [सं० वेधन] विद्ध करने या छेदने का औजार। उ०—लानि देवे तें भइया बसुला वो बीधना, हेरि देवे ओकर तन के खोभा।—शुक्ल अभि० ग्रं०—पृ० १४२।

बींभर†—वि० [सं० विह्वल, प्रा० विभर] विह्वल। उ०—निस बीती त्रय जांम, गजर बज्जी घड़ियाले। कर आदर परजंक जग्यो बीभर तिंह काले।—रा० रू०, पृ० १५३।

बी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० 'बीबी' का संक्षिप्त रूप] दे० 'बीबी'। उ०—प्रसुवन भीजी बी जी छीजी और पसीजी मीजी पीजी सो पतीजी राग रंग रौन रितई।—(शब्द०)।

बी²—प्रव्य० [सं० अपि, प्रा० अवि] दे० 'भी'। उ०—(क) जिव का बी श्रो जिवाला रूपों में रूप आला।—दक्खिनी०, पृ० ११०। (ख) सो उपज सी तो बाल बी तो दरी लीतो दूर।—रघु० रू०, पृ० १४५।

बीआ†—संज्ञा पुं० [सं० बीज, प्रा० बीय, बीअ] बीज। बीया।

बीकट⁽ᵖ⁾†—वि० [सं० वि+कृष्ट, प्रा० विअट्ठ] दूरस्थित। दूर। उ०—है हरि निकट बीकट नाँहि। जो दीपक जोति धरे घट माँही।—संत० दरिया, पृ० ६२।

बीकना⁽ᵖ⁾—क्रि० अ० [सं० विक्रयण] दे० 'बिकना'। उ०—जीव अछित जोबन गया, कछू न किया नीका। यहु हीरा निरमोलिक, कोड़ी पर बीका।—कबीर ग्रं०, पृ० १४८।

बीका†—वि० [सं० वक्र] टेढ़ा। उ०—तुम अपने नाश को देखा चाहती हो। तुम्हारा बाल तक बीका न होगा। परतु तुम अपना जीवन चाहती हो तो मौन रहो।—अयोध्यासिंह (शब्द०)।

बीख†¹—संज्ञा पुं० [सं० बीखा (=गति)] पद। कदम। डग। उ०—(क) जरा आप जोरा किया नेत्रन दीनी पीठ। आँखों ऊपर आँगुरी बीख भरे पचि नीठ।—कबीर (शब्द०)। (ख) हरिया संगी राम है का सतगुरु की सीख। जिन पैंडे दुनियाँ चलै भरूँ न काई बीख।—राम० धर्म०, पृ० ६६।

बीख²—संज्ञा पुं० [सं० विष] दे० 'विष'।

बीग†—संज्ञा पुं० [सं० वृक] [स्त्री० बीगिन] भेड़िया। उ०—१८ के पग हस्ती बाँधे छेरी बीगहि खायो। उदधि माँहि निकसि माँछरी चोड़े गेह करायो।—कबीर (शब्द०)।

बीगना‡—क्रि० स० [सं० विकिरण] १. छींटना। छितराना २. गिरना। फेंकना।

बीगहाटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिगहार, बीघा+टी (प्रत्य०)] वह लगान जो बीघे के हिसाब से लिया जाय।

बीघा†—संज्ञा पुं० [सं० विग्रह, प्रा० विग्गह] खेत नापने का एक वर्गमान जो बीस बिस्वे का होता है। उ०—अब भए सौतिन के हाथ के रे घर बीघा सौ कीन्ह।—मलूक० बानी, पृ० १३।

विशेष—एक जरीब लंबी और एक जरीब चौड़ी भूमि क्षेत्रफल में एक बीघा होती है। भिन्न भिन्न प्रांतो मे भिन्न भिन्न मान की जरीब का प्रचार है। अतः प्रांतिक बीघे का मान जिसे देही वा देहाती बीघा कहते हैं, सब जगह समान नहीं है। पक्का बीघा जिसे सरकारी बीघा भी कहते हैं, ३०२५ वर्गगज का होता है जो एक एकड़ का पाँचवाँ भाग होता है, अब सब जगह प्रायः इसी बीघे का प्रयोग होता है।

बीच†[1]—संज्ञा पुं० [सं० विच (= अलग करना)] १. किसी परिधि, सीमा या मर्यादा का केंद्र अथवा उस केंद्र के आस पास का कोई स्थान जहाँ से चारों ओर की सीमा प्रायः समान अंतर पर हो। किसी पदार्थ का मध्य भाग। मध्य। उ०—(क) मन को यारों पटकि कर टूक टूक हो जाय। टूटे पाछे फिर जुरे बीच गाँठि परि जाय। (ख) जनमपत्रिका वर्तिकै देखहु मनहि विचार। दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजत नारि।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—बीच खेत = (१) खुले मैदान। सबके सामने। प्रकट रूप में।

२. अवश्य। जरूर। उ०—आजाद जरूर छूट आएँगे। वह टिकनेवाले आदमी नहीं है। बीच खेत आएँगे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २११। बीच बाजार = दे० 'बीच खेत'। उ०—विस्वा किए सिंगार है बैठी बीच बजार।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० १८। बीच बीच में = (१) रह रह कर। थोड़ी थोड़ी देर में। (२) थोड़ी थोड़ी दूरी पर।

३. भेद। अंतर। फरक। उ०—(क) बंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) धन्य हो धन्य हो तुम घोष नारी। मोहि धोखो गयो दरस तुमको भयो तुमहिं मोहिं देखो री बीच भारी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—बीच करना = (१) लड़नेवालों को लड़ने से रोकने के लिये अलग अलग करना। उ०—ललित भृकुटि तिलक भाल चिबुक अधर, द्विज रसाल, हास चारुतर कपोल नासिका सुहाई। मधुकर जुग पंकज बिच मुख बिलोकि नीरज पर लरत मधुप अवलि मानों बीच किए आई।—तुलसी (शब्द०)। (२) झगड़ा निबटाना। झगड़ा मिटाना। उ०—(क) चोरी के फल तुमहिं दिखाऊँ। बीच करन जो आवै कोऊ ताको सोह दिवाऊँ। सूर श्याम चोरन के राजा बहुरि कहा मैं पाऊँ।—सूर (शब्द०)। (ख) रहा कोई घरहरिया करे जो दोउ महँ बीच।—जायसी (शब्द०)। बीच पड़ना = (१) परिवर्तन होना। और का और होना। बदल जाना। उ०—कोटि जतन कोऊ करे परे न प्रकृतिहि बीच। नल बल जल ऊँचे चढ़ै अंत नीच को नीच।—बिहारी (शब्द०)। (२) झगड़ा निपटाने के लिये पंच बनना। मध्यस्थ होना। बीच पारना वा डालना = (१) परिवर्तन करना। (२) विभेद वा पार्थक्य करना। उ०—(क) विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गिरि सों गिरि आनि मिलावती फेरि उपाय कै बीचहि पारती है।—प्रताप (शब्द०)। बीच में पड़ना = (१) मध्यस्थ होना। (२) जिम्मेदार बनना। प्रतिभू बनना। बीच रखना = भेद करना। दुराव रखना। पराया समझना। उ०—कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाखा।—तुलसी (शब्द०)। बीच में कूदना = अनावश्यक हस्तक्षेप करना। व्यर्थ टाँग अड़ाना। (किसी को) बीच देना या बीच में देना = (१) मध्यस्थ बनाना। (२) साक्षी बनाना। (ईश्वर आदि को) बीच में रखकर कहना = (ईश्वर आदि की) शपथ खाना। कसम खाना।

विशेष—इस अर्थ में कभी कभी जिसकी कसम खानी होती है, उसका नाम लेकर और उसके साथ केवल 'बीच' शब्द लगाकर भी बोलते हैं। जैसे,—ईश्वर बीच, हम कुछ नहीं जानते। उ०—तोहि अलि कीन्ह आप भा केवा। हौ पठवा गुरु बीच परेवा।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—बीचबचाव, बीचबिचाव = बिचवई। मध्यस्थता।

३. दो वस्तुओं वा खंडों के बीच का अंतर। अवकाश। उ०—अवनि जमहि जाँचइ कैकेई। महि न बीच बिधि मीचु न देई।—तुलसी (शब्द०)। ४. अवसर। मौका। अवकाश।

बीच[2]—क्रि० वि० दरमियान। अंदर। में। उ०—ज्ञानी न ऐसी चढ़ा चढ़ी में फिहिथौ कटि बीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर (शब्द०)।

बीच[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० वीचि] लहर। तरंग। दे० 'बीचि'। उ०—राम सीय जस ललित सुधा सम। उपमा बीच बिलास मनोरम।—मानस १।३७।

बीचलना—क्रि० अ० [सं० विचलन] दे० 'बिचलना'। उ०—कायर कादर बीचलै, मिला न सब्द अमोल।—संतबानी०, भा० १, पृ० ११४।

बीचारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विचार] दे० 'विचार'। उ०—कहैं कबीर बीचार बिन दुनियाँ, काल के संग सदा नींद सोवै।—कबीर० रे०, पृ० २४।

बीचि—संज्ञा स्त्री० [सं० वीचि] लहर। तरंग। उ०—बीचिन के सोर सौं जनावत पुकार कै।—मतिराम (शब्द०)।

बीचुⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० बीच] १. अवसर। मौका। २. अंतर। फरक। उ०—चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी।—तुलसी (शब्द०)।

बीचोबीच—क्रि० वि० [हिं० बीच] बिलकुल बीच में। ठीक मध्य में। उ०—श्री कृष्णचंद भी अर्जुन को साथ ले वहाँ गए और जा के बीचोबीच स्वयंवर के खड़े हुए।—लल्लू० (शब्द०)।

बीछण†—संज्ञा स्त्री० [सं० वृश्चिक] दे० 'बिच्छी'। उ०—तन धारे बीछण तणो, जग चुगलां री जीह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५१।

बीछना⑨[1]—क्रि० स० [सं० विचय वा विचयन या स० वीक्षण] १. चुनना। पसंद करके अलग करना। उ०—सानुज सानंद हिए छाँटना। आगे ह्वै जनक लिए रचना रुचिर सब सादर दिखाइ कै। दिए दिव्य आसन सुपास सावकास अति आछे आछे बीछे बीछे बिछौना बिछाइ कै।—तुलसी (शब्द०)।

बीछना⑨[2]—क्रि० स० [सं० वीक्षण] देखना। भली भाँति देखना। एक एक को अलग अलग देखना। उ०—बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यों कोउ जानै त्यों ही करि ईछो। जैसो ही आपुनो भाव है सुंदर तैसो हि है दग खोलि कै बीछो।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७७।

बीछी⑨‡—संज्ञा स्त्री० [सं० वृश्चिक] बिच्छू। उ०—ग्रह गृहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार। ताहि पियाई बारुनी कहहु कवन उपचार।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मारना।

मुहा०—बीछी चढ़ना = बिच्छू के डंक का विष चढ़ना। उ०—नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी।—तुलसी (शब्द०)।

बीछुटना, बीछुड़ना⑨†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बिछुड़ना'। उ०—(क) नाँ वह मरै न बीछुटै नाँ दुख व्यापै कोइ।—द दू०, पृ० ४६३। (ख) पान बेल से बीछुड़ै परदेशा रस देत।—दरिया० बानी, पृ० २।

बीछू⑨†—संज्ञा पुं० [सं० वृश्चिक] १. दे० 'बिच्छू'। उ०—सीत असह विष चित चढ़ै सुख न मढै परिजंक। बिनु मोहन अगहन हनै बीछू कैसो डंक।—शृंगार सत० (शब्द०)। २. दे० 'बिछुआ' (हथियार)। उ०—बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि ऊपर ही सिवराज निहारयो।—भूषण। (शब्द०)।

बीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूलवाले वृक्षों का गर्भांड जिससे वृक्ष अंकुरित होकर उत्पन्न होता है। बीया। तुख्म। दाना।

विशेष—यह गर्भांड एक छिलके में बंद रहता है और इसमें अव्यक्त रूप से भावी वृक्ष का भ्रूण रहता है। जब इस गर्भांड को उपयुक्त जलवायु और स्थान मिलता है तब वह भ्रूण जिसमे अंकुर अव्यक्त रहता है, प्रवुद्ध होकर बढ़ता और अंकुर रूप मे परिणत हो जाता है। यही अंकुर समय पाकर बढता है और बढ़कर वैसा ही पेड़ हो जाता है जैसे पेड़ के गर्भांड से वह स्वयं निकला था।

क्रि० प्र०—उगना —डालना।—बोना।

२. प्रधान कारण। मूल प्रकृति। ३. जड़। मूल। ४. हेतु। कारण। ५. शुक्र। वीर्य। ६. वह अव्यक्त सांकेतिक वर्ण-समुदाय या शब्द जिसको कोई व्यक्ति जो उसके सांकेतिक भावों को न जानता हो, नहीं समझ सकता। ७. गणित का एक भेद जिसमें अव्यक्त संख्या के सूचक संकेतों का व्यवहार होता है। दे० 'बीजगणित'। ८. अव्यक्त संख्यासूचक संकेत। ९. वह अव्यक्त ध्वनि वा शब्द जिसमें तंत्रानुसार किसी देवता को प्रसन्न करने की शक्ति मानी गई हो।

विशेष—भिन्न भिन्न देवताओं का भिन्न भिन्न बीजमंत्र होता है।

१०. मंत्र का प्रधान भाग या अंग।

विशेष—तंत्रानुसार मत्र के तीन प्रधान अंग होते हैं—बीज, शक्ति और कीलक।

११. वह भावपूर्ण सांकेतिक अव्यक्त शब्द जिसमें बहुत से भाव सूक्ष्म रूप से सन्निवेशित हों और जिसका तात्पर्य दूसरे लोग, जिन्हें सांकेतिक अर्थों का ज्ञान न हो, न जान सकें। ऐसे शब्दों का प्रयोग रासायनिक तथा इसी प्रकार के और कार्यों के लिये किया जाता है। १२. मज्जा (को०)। १३. नाटक में प्रारंभ में मूल कथा की ओर संकेत। उ०—यह रूपक राजा सूरजदेव की रानी नीलदेवी का अपने पति के प्राण के बदले में उक्त पतिप्राणहारक शत्रु का वध कर डालने के बीज पर लिया गया है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२८।

बीज[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्] दे० 'बिजली'। उ०—छुट्यो पट्ट पीतंवरं कट्टि छुट्टो। मनों स्याम आकास ते बीज तुट्टी।—पृ० रा०, १।१३४। (ख) अजहुँ शशी मुँह बीज दिखावा। चौंध परयो कछु कहै न आवा।—जायसी (शब्द०)।

बीजक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूची। फिहरिस्त। २. वह सूची जिसमें माल का ब्योरा, दर और मूल्य आदि लिखा हो। यह सूची बेचनेवाला माल के साथ खरीदनेवाले के पास भेजता है। ३. वह सूची जो किसी गड़े हुए धन की, उसके साथ रहती है। ४. असना का वृक्ष। ५. बिजौरा नीबू। ६. बीज। ७. वे फल जिनमें बीज अधिक हों, जैसे, अंजीर (को०)। ८. जनम के समय बच्चे की वह अवस्था जब उसका सिर दोनों भुजाओं के बीच में होकर योनि के द्वार पर आ जाय। ९. कबीरदास के पदों के तीन संग्रहों में से एक।

बीजकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० बीजकर्तृ] शिव का एक नाम (को०)।

बीजकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] बाजीकरण।

बीजकोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्प का वह अंश जहाँ बीज रहता है। २. कमल के बीच का वह छत्ता जिसमें कमल के बीज या कमलगट्टा रहता है (को०)।

बीजक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] बीजगणित के नियमानुसार गणित के किसी प्रश्न की क्रिया।

बीजखाद—संज्ञा पु० [सं० बीज+हिं० खाद] वह रकम जो जमींदारों या महाजनों की ओर से किसानों को बीज और खाद आदि के लिये पेशगी दी जाती है।

बीजगणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित का वह भेद जिसमें अक्षरों को संख्याओं का द्योतक मानकर कुछ सांकेतिक चिह्नों और निश्चित युक्तियों के द्वारा गणना की जाती है और विशेषत: अज्ञात संख्याएँ आदि जानी जाती हैं।

बीजगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] परवल।

बीजगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेम। २. फली। ३. भूसी।

बीजत्व—संज्ञा पुं० [सं०] बीज का भाव। बीजपन।

बीजदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटकों में अभिनय का परिदर्शक। वह व्यक्ति जो नाटक के अभिनय की व्यवस्था करता हो।

बीजद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मूल द्रव्य या तत्व [को०]।

बीजधान्य–संज्ञा पुं० [सं०] धनियाँ।

बीजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यजन] बेना। पखा। उ०—खासे रस बीजन सुखाने पौन खाने खुले, खस के खजाने, खसखाने खूब खस खास। —पद्माकर (शब्द०)। †२. बिजन। भोजन। व्यंजन।

बीजना(पु)१—संज्ञा पुं० [सं० व्यजन] दे० 'बीजन'। उ०—सोहत चंद चिराग बीजना करत दसौं दिस।—व्रज० ग्र०, पृ० १२१।

बीजना२—क्रि० स० [सं० व्यजन] १. पंखा डुलाना। उ०—केइ कोमल पद लै कर रीजत। केइ लै कुसुम बीजना बीजत। —नंद० ग्रं० पृ० २७७। †२. रात्रि का भोजन करना। व्यालू करना।

बीजनिर्वापण—संज्ञा पुं० [स०] बीज बोना [को०]।

बीजपादप—संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ।

बीजपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरुआ। २. मदन वृक्ष।

बीजपूर, बीजपूरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिजौरा नीबू। २. चकोतरा।

बीजपेशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडकोष।

बीजप्ररोह, बीजप्ररोही—वि० [सं० बीजप्ररोहिन्] बीजोत्पन्न। बीज से पैदा होनेवाला [को०]।

बीजफलक—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।

बीजबंद—संज्ञा पुं० [हिं० बीज+बाँधना] खिरैटी के बीज। बरियारे के बीज। बला।

बीजमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० बीजमन्त्र] १. किसी देवता के उद्देश्य से निश्चित किया हुआ मूलमंत्र। २. किसी काम को करने का असली ढंग। मूलमंत्र। गुर।

बीजमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलगट्टा।

बीजमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वाममार्ग का एक भेद।

बीजमार्गी—संज्ञा पुं० [सं० बीजमार्गिन्] बीजमार्ग पंथ के अनुयायी।

बीजरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] उड़द की दाल।

बीजरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बिजली'।

बीजरुह—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। अन्न [को०]।

बीजरेचन—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

बीजल१—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें बीज हो।

बीजल२—वि० बीजवाला। बीजयुक्त।

बीजल३—संज्ञा स्त्री० [डिं०] तलवार।

बीजल(पु)४—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्, प्रा० विज्जल] दे० 'बिजली' उ०—(क) बीजल ज्यों चमकै वाढाली काइर कादरि भाजै। —सुंदर ग्रं०, भा०२, पृ० ८८५। (ख) हैजम हुजाव सिर उच्छटो बीजलि कै अंबर अरी।—पृ० रा०, १२।१४८।

बीजवपन—संज्ञा पुं० [सं०] बीज बोना। २. खेत [को०]।

बीजवाहन—संज्ञा पुं० [स०] शिव।

बीजवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] असना का पेड़।

बीजसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

बीजहरा, बीजहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक डाकिनी का नाम।

बीजांकुर—संज्ञा पुं० [सं० बीजाङ्कुर] अँखुआ। अंकुर [को०]।

बीजांकुरन्याय—संज्ञा पुं० [सं० बीजाङ्कुर न्याय] एक न्याय जिसका व्यवहार दो संबद्ध वस्तुओं के नित्य प्रवाह का दृष्टांत देने के लिये होता है। बीज से अंकुर होता है और अंकुर से बीज होता है। इन दोनों का प्रवाह अनादि काल से चला आता है। दो वस्तुओं में इसी प्रकार का प्रवाह या संबंध दिखलाने के लिये इसका उपयोग होता है।

बीजा१—वि० [सं० द्वितीय पा० द्वितियो, प्रा० दुओ, बिइज्ज, अप० बिज्जय, पु० हिं० दूज्जा] [वि० स्त्री० बीजी] दूसरा। अन्य। उ०—ए मन के गुण गुंथत जे पहिचानता जानवी और न बीजो।—हनुमान (शब्द०)।

बीजा२—संज्ञा पुं० [सं० बजिक, प्रा० बीजय, बीजअ] १. दे० 'बीज'। २. बीजक। असना का वृक्ष। विजैसार वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है।—शुक्ल अभि० ग्रं० (विविध), पृ० १४।

बीजाकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह खेत जो बीज बोने के बाद जोता गया हो। २. बोया हुआ खेत। वह खेत जिसमें बीजवपन हुआ हो [को०]।

बीजाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी बीजमंत्र का पहला अक्षर।

बीजाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

बीजाढ्य—वि० [सं०] बीजयुक्त। बीज से पूरित [को०]।

बीजाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

बीजापहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'बीजहरा' [को०]।

बीजार्थ—वि० [सं०] संतति की कामनावाला। संतान का इच्छुक [को०]।

बीजाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] सज्जित अश्व [को०]।

बीजित—वि० [सं०] जिसमें बीज बोया जा चुका हो। बोया हुआ।

बीजी१—वि० [सं० बीजिन्] १. बीजवाला। २. बीज संबंधी। जिसका संबंध बीज से हो।

बीजी२—संज्ञा स्त्री० [सं० बीज+ई (प्रत्य०)] १. गिरी। मींगी। २. गुठली।

बीजी³—संज्ञा पुं० [सं० बीजिन्] १. पिता। बीज से उत्पत्ति करनेवाला बाप। क्षेत्री का उलटा। २. सूर्य (को०)।

बीजी‡⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० बीज] दे० 'चाबी'। उ०—जिस विषम कोठड़ी जंदे मारे। बिनु बीजी क्यों खूलहिं ताले।—प्राण०, पृ० ३२।

बीजु—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्, प्रा० विज्जु] बिजली। उ०—हरिमुख देखिए बसुदेव।···श्वान सूने पहरुवा सब नींद उपजी गेह। निशि अँधेरी बीजु चमकै सघन बरषै मेह।—सूर (शब्द०)।

बीजुपात—संज्ञा पुं० [सं० विद्युत्पात, प्रा० विज्जुपात] दे० 'वज्रपात'।

बीजुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बिजली'।

बीजू¹—वि० [हिं० बीज+ऊ (प्रत्य०)] बीज से उत्पन्न। जो बीज बोने से उत्पन्न हुआ हो। कलमी का भिन्न। जैसे, बीजू आम।

बीजू²—संज्ञा पुं० [सं० विद्युत्] दे० 'बिज्जु'।

बीजोदक—संज्ञा पुं० [सं०] ओला।

बीज्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ हो। कुलीन।

बीझ(पु)—वि० [सं० विजन] दे० 'बीझा'। उ०—परेउ आप अब वनखंड माहीं। दँडकारण्य बीझ बन जाहीं।—जायसी (शब्द०)।

बीझना(पु)†—क्रि० अ० [सं० विद्ध, प्रा० विज्झ] लिप्त होना। फँसना। उ०—(क) डोलै बन बन जोर यौवन के याचकन राग वश कीन्हें बन बासी बीझि रहे हैं।—देव (शब्द०)। (ख) झींझि झींझि झुकि कै विरुझि बीझि मेरे बैरी एरी रीझ रीझि तै रिझाए रिझवार री।—देव (शब्द०)।

बीझा(पु)†—वि० [सं० विजन] १. जहाँ मनुष्य न हों। निर्जन। एकांत। २. सघन। घना (जंगल)।

बीट—संज्ञा स्त्री० [सं० विट्] १. पक्षियों की विष्ठा। चिड़ियों का गुह। २. गुह। मल। (व्यंग्य)। ३. दे० 'विट्लवण'।

बीटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] आभूषण विशेष। उ०—भुजबंध पहुँचि बीटी हथफूल है जु खासा।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५८।

बीठल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'विट्ठल'।

बीड़¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीड़ा] एक के ऊपर एक रखे हुए रुपए जो साधारणतः गुल्ली का आकार धारण कर लेते हैं।

बीड़²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बींड़', 'बींड़ा'।

बीड़³—वि० [सं० वृत या विद्ध] सघन। घना। उ०—महा बीड़ वन आयो तहाँ। रोवन लग्यो बोझिया तहाँ।—अर्ध०, पृ० ३९।

बीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० वीटक] १. सादी गिलौरी जो पान में चूना, कत्था, सुपारी आदि डालकर और लपेटकर बनाई जाती है। खीली।

मुहा०—बीड़ा उठाना=(१) कोई काम करने का संकल्प करना। किसी काम के करने के लिये हामी भरना। पण बाँधना। उ०—कबिरा निंदक मर गया अब क्या कहिए जाइ। ऐसा कोई ना मिले बीड़ा लेइ उठाइ।—कबीर (शब्द०)। (२) उद्यत होना। मुस्तैद होना। उ०—कहे कंस मन लाय भलो भयो मंत्री दयो। लीने मल्ल बुलाय आदर कर बीरा लयो।—लल्लू (शब्द०)। बीड़ा डालना या रखना=किसी कठिन काम के करने के लिये सभा में लोगों के सामने पान की गिलौरी रखकर यह कहना कि जिसमें यह काम करने की योग्यता हो या साहस हो वह इसे उठा ले। जो पुरुष उसे उठा ले, उसी को उसके करने का भार दिया जाता है। (यह प्रायः प्राचीन काल के दरबारों की रस्म थी जो अब उठ सी गई है)। बीड़ा या बीरा देना=(१) कोई काम करने की आज्ञा देना। काम का भार देना। सौंपना। दे० 'बीड़ा डालना'। उ०—कंस नृपति ने शकट बुलाए लेकर बीरा दीन्हो। आय नंदगृह द्वार नगर मे रूप प्रगट निज कीन्हों।—सूर (शब्द०)। (२) नाचने, गाने, बजाने आदि का व्यवसाय करनेवालों को किसी उत्सव में सम्मिलित होकर अपना काम करने के लिये नियत करना। नाचने, गानेवालों आदि को साई देना। बयाना देना।

२. वह डोरी जो तलवार की म्यान में मुँह के पास बँधी रहती है।

विशेष—म्यान मे तलवार डालकर यह डोरी तलवार के दस्ते की खूँटी मे बाँध दी जाती है जिससे वह म्यान से निकल नहीं सकती।

बीड़िया—वि० [हिं० बीड़ा+इया (प्रत्य०)] १. बीड़ा उठानेवाला। अगुवा। नेता। २. दे० 'बीड़िया'।

बीड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीड़ा] १. दे० 'बीड़ा'। २. गड्डी। दे० 'बीड़'। ३. मिस्सी जिसे स्त्रियाँ दाँत रँगने के लिये मुँह में मलती हैं। ४. पत्ते में लपेटा हुआ सुरती का चूर जिसे लोग विशेषतः भारतीय सिगरेट या चुरुट आदि के समान सुलगाकर पीते हैं।

बीड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीड़ा] एक प्रकार की नाव।

बीतक—संज्ञा पुं० [सं० वृत्त] बीती हुई घटना। समाचार। वृत्त। उ०—ता पछ हिंदू तुरक सबै बीतक ज्यों बित्यो।—पृ० रा०, २१।२११।

बीतना—क्रि० अ० [सं० व्यतीत या वीत (जैसे, वीतराग)] १. समय का विगत होना। वक्त कटना। गुजरना। उ०—(क) चौरासी लक्षहू जीव भूलै धरहि रविसुत धाय। कोटिन कलप युग बीतिया मानै ना अजहूँ हाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जनम गयो वादहि चिर बीति। परमारथ पालन न करेउ कछु अनुदिन अधिक अनीत।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कछु दिन पत्रभक्ष करि बीते कछु दिन लीन्हों पानी। कछु दिन पवन कियो अनप्रासन रोक्यो श्वास यह जानी।—सूर (शब्द०)। २. दूर होना। जाता रहना। छूट जाना। निवृत्त होना। ऊ०—(क) सब विधि सानुकूल लखि सीता। भा निसोच उर अपडर बीता। तुलसी—(शब्द०)। (ख) मुनि वाल्मीकि कृपा सतो ऋषि

राममंत्र फल पायो। उलटा नाम जपत अघ बीत्यो पुनि उपदेश करायो।—सूर (शब्द०)। २. सघटित होना। घटना। पड़ना। उ०—मन बच क्रम पल ओट न भावत छिन युग बरस सयाने। सूरश्याम के वश्य भए ये जेहि बीते सो जाने।—सूर (शब्द०)।

बीतरागी—[सं० बीतराग + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'बीतराग'। उ०—सहज का ख्याल सोइ बीतरागी।—पलटू० बानी, भा० २, पृ० ४०।

बीता†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बित्ता'।

बीती—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यतीत या वृत्त] १. गुजरी हुई स्थिति या बात। २. खबर। हाल।

बीथि—संज्ञा स्त्री० [सं० वीथि] दे० 'वीथी'।

बीथित㉦†—वि० [सं० व्यथित] दुखित। पीड़ित। उ०—पातकी पपीहा जल पान को न प्यासो काहू बीथित वियोगिनि के प्रानन को प्यासो हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

बीथी㉦—संज्ञा स्त्री० [सं० वीथि] दे० 'वीथी'। उ०—बीथी सीची चतुरसम चौकै चारु पुराइ।—मानस, १। २९६।

बीध㉦—संज्ञा स्त्री० [सं० विधि] दे० 'बिधि' (प्रकार)। उ०—बुध का कोट सबल नाहीं टूटे। ताते मनसा कौस बीध लुटे।—रामानंद०, पृ० ३२।

बीधना†[1]—क्रि० अ० [सं० विद्ध] फँसना। उलझना। उ०—(क) धरती बरसे बादल भीजे भीट भया पौराऊ। हंस उड़ाने ताल सुखाने चहले बीधा पाऊं।—कबीर (शब्द०)। (ख) नैना बीधे दोऊ मेरे। श्याम सुंदर के दरस परस में इत उत फिरत न फेरे।—सूर (शब्द०)। (ग) कौन भाँति रहिहै बिरद अब देखबी मुरारि। बीधे मोसो आय के गीधे गीधहि तारि।—बिहारी (शब्द०)।

बीधना[2]—क्रि० स० दे० 'बीधना'।

बीधा—संज्ञा पुं० [सं० विधान] यह तय करना कि इस गाँव की इतनी मालगुजारी सरकारी होगी। मालगुजारी निश्चित करना।

बीन—संज्ञा स्त्री० [सं० वीणा] एक प्रसिद्ध बाजा जो सितार की तरह का पर उससे बड़ा होता है।

विशेष—इसमे दोनों ओर बहुत बड़े तूंबे होते हैं जो बीच के एक लंबे डाँड़ से मिले होते हैं। इसमे एक सिरे से दूसरे सिरे तक साधारणतः ५ या ७ तार लगे होते हैं जिनमें प्रत्येक में आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न प्रकार के स्वर निकाले जाते हैं। यह द[illegible] बहुत उच्च कोटि का माना जाता है और प्राय: [illegible] वड़े गवैयों के काम का होता है। दे०

पुं० [सं[illegible]

[illegible]—संज्ञा पुं० [

[illegible]र्तन—संज्ञा पुं० [[illegible]

=बीणा का जानकार। बीणावादक।

बीजरी㉦—संज्ञा स्त्री[illegible]

[illegible]० [सं० बिनती] विनय। दे० 'विनती'। उ०—

बीजरुह—संज्ञा पुं० [[illegible]त ने ऐसी बीनती करी, तब आकासबानी भई।—

बीजरेचन—संज्ञा पुं०[illegible]

पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६१। (ख) सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै।—सूर०, १।४।

बीनना[1]—क्रि० स० [सं० विनयन] १. छोटी छोटी चीजों को उठाना। चुनना। उ०—(क) मोर फल बीनबे को गए फुलवाई हैं। सीसनि टेपारे उपवीत पीत पट कटि दोना बाम करन सलोने भे सवाई हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नैन किलकिला मीत के ऐसे कहू प्रवीन। हिय समुद्र ते लेत हैं बीन तुरत मन मीन।—रसनिधि (शब्द०)।

२. छाँटकर अलग करना। छाँटना। उ०—सुंदर नवीन निज करन सो बीन बीन बेला की कली ये आजु कौन छीन लीनी है।—प्रताप (शब्द०)।

यौ०—बीनाचोंनी† = बिनने और चुनने का काम। बीनना चुनना। उ०—तब रेंडा श्रीगुसाईं जी की आज्ञा मानि कै भंडार मे बीनाचोंनी करि आवै।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७४।

बीनना[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बीधना'।

बीनना[3]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बुनना'।

बीनवना㉦—क्रि० स० [सं० विनवन] दे० 'बिनवना'। उ०—पय लगि प्रानपति बीनवौं, नाह नेह मुझ चित धरहु। दिन दिन अवद्धि जुब्बन घटय कंत बसंत न गम करहु।—पृ० रा०, ६१।१०।

बीना—संज्ञा स्त्री० [सं० वीणा] दे० 'बीन' उ०—कहूँ सुंदरी बेनु बीना बजावैं।—केशव (शब्द०)।

बीफै—संज्ञा पुं० [सं० बृहस्पति] बृहस्पतिवार। गुरुवार।

बीबा†—संज्ञा पुं० [देश०] मुसलमान। उ०—मरे गए कबरा महीं, बीबा मंसवदार।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६८।

बीबादी㉦—वि० [सं० विवादिन्] दे० 'विवादी'। उ०—बकवादी बीबादी निंदक, तेहिं का मुँह वरु काला।—जग० श०, भा० २, पृ० १८।

बीबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. कुलवधू। कुलीन स्त्री। २. पत्नी। स्त्री। उ०—थिरा मनचैन आँसू उमगत नैन देखि बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै।—(शब्द०)। ३. स्त्रियों के लिये आदरार्थक शब्द। ४. अविवाहिता लड़की। कन्या। (आगरा)।

बीवेक㉦—संज्ञा पुं० [सं० विवेक] दे० 'विवेक'। उ०—दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं बीवेक बिना बहु भेख पसारी।—संत० दरिया, पृ० ६२।

बीबेरना—संज्ञा पुं० [सिंहाली] एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण भारत के पश्चिमी घाटों में बहुत होता है।

विशेष—इस वृक्ष की लकड़ी का रंग पीला होता है और यह इमारत और नावें बनाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी में जल्दी घुन या कीड़ा आदि नहीं लगता।

बीभंग—वि० [सं० विभङ्ग] चंचल। चपल। उ०—नाचत चित

त्रिभंग बंस बसीधर राजै। अति उतंग (माया) बीभंग। नाम लेवंत सुराजै।—पृ० रा०, २।३४०।

बीभच्छ, बीभछⓅ—संज्ञा पुं० [सं० बीभत्स, प्रा० बीभच्छ, अप० बीभछ] दे० 'बीभत्स' (रस)। उ०—(क) सगपन सुहास बीभच्छ रिन भय भयांन कमधज्ज दुति।—पृ० रा०, २५।३८१। (ख) बीभछ अरिन समूह सांत उप्पनो मरन भय।—पृ० रा०, २५।५०१।

बीभत्स¹—वि० [सं०] १. जिसे देखकर घृणा हो। घृणित। २. क्रूर। ३. पापी।

बीभत्स²—संज्ञा पुं० १. काव्य के नौ रसों के अंतर्गत सातवाँ रस।

विशेष—इसमें रक्त. मांस आदि ऐसी बातों का वर्णन होता है जिनसे अरुचि और घृणा तथा इंद्रियों में संकोच उत्पन्न होता है। इसका वर्ण नील और देवता महाकाल माने गए हैं। जुगुप्सा इसका स्थायी भाव है, पीव, मेद, मज्जा, रक्त, मास या उनकी दुर्गंध आदि विभाव हैं, कंप, रोमाच, आलस्य, संकोच आदि अनुभाव हैं और मोह, मरण, आवेग, व्याधि आदि व्यभिचारी भाव हैं। उ०—यथा, पढ़त मंत्र अरु यंत्र अत्र लीलत इमि जुग्गिनि। मनहुँ गिलत मद मत्त गरुड़ तिय अरुण उरग्गिनि। हरवरात हरषात प्रथम परसत पल पंगत। जँह प्रताप जिति जग रंग अँग अंग उमंगत। जहँ पद्माकर उतपत्ति अति रन रकतन नद्दिय बहत। चख चकित चित्त चरबीन चुभि चकचकाइ चंडी रहत। —पद्माकर।

२. अर्जुन का नाम (को०)। ३. घृणोत्पादक वस्तु (को०)।

बीभत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृणा। जुगुप्सा। अरुचि [को०]।

बीभत्सित—वि० [सं०] निंदित। घृणित।

बीभत्सु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाडुपुत्र अर्जुन। २. अर्जुन वृक्ष।

बीभल†—वि० [सं० विह्वल] रसविह्वल। विह्वल। रसिक। उ०—आखडियाँ अणियालियाँ काजल रेख कियाहँ। बीभलियाँ भावंदियाँ, लाज सनेह लियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६३।

बीभोⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विभव] दे० 'विभव'। उ०—हरणकसीप वध कर अधपती देही। इंद्र को बीभो प्रहलाद न लेही।—दक्खिनी०, पृ० २८।

बीम¹—संज्ञा पुं० [अं०] १. जहाज के पार्श्व मे लंबाई के बल में लगा हुआ बड़ा शहतीर। आड़ा। २. जहाज का मस्तूल। (लश०)।

बीम²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] भय। डर। खौफ [को०]।

बीमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बीम (= भय)] किसी प्रकार की विशेषत: आर्थिक हानि पूरी करने की जिम्मेदारी जो कुछ निश्चित धन लेकर उसके बदले में की जाती है। कुछ धन लेकर इस बात की जमानत करना कि यदि अमुक कार्य में अमुक प्रकार की हानि होगी तो उसकी पूर्ति हम इतना धन देकर कर देंगे।

विशेष—आजकल बीमे की गणना एक प्रकार से व्यापार के अंतर्गत होती है और इसके लिये अनेक प्रकार की कंपनियाँ स्थापित हैं। उसमें बीमा करनेवाला कुछ निश्चित नियमों के अनुसार समय समय पर या एक साथ ही कुछ निश्चित धन लेकर अपने ऊपर इस बात का जिम्मा लेता है कि यदि बीमा करनेवाले की अमुक कार्य या व्यापार आदि में अमुक प्रकार की हानि या दुघटना आदि होगी तो उसके बदले में हम बीमा करानेवाल को इतना धन देंगे। आजकल मकानों या गोदामों आदि के जलने का, समुद्र में जहाजों के डूबने का, भेजे हुए माल को ठीक दशा मे नियत स्थान तक पहुँचने का या दुर्घटना आदि के कारण हाथ पैर टूटने या शरीर बेकाम हो जाने का बीमा होता है। एक प्रकार का बीमा और होता है जो जान बीमा या जीवन बीमा कहलाता है। इसमे बीमा करानेवाले को प्रतिमास, प्रतिवर्ष, अथवा एक साथ ही कुछ निश्चित धन देना पड़ता है और उसके किसी निश्चित अवस्था तक पहुँचने पर उसे बीमे की रकम मिल जाती है; अथवा यदि उस निश्चित अवस्था तक पहुँचने से पहले ही उसकी मृत्यु हो जाय तो उसके परिवारवालों को वह रकम मिल जाती है। आजकल बालकों के विवाह और पढ़ाई लिखाई के व्यय के संबंध मे भी बीमा होने लगा है और वृद्धावस्था मे शरीर अशक्य हो जाने की दशा मे जीवननिर्वाह का भी। डाक द्वारा पत्र या माल आदि भेजने का भी डाकविभाग द्वारा बीमा होता है।

यौ०—बीमा कराई = वह धन जो बीमा करानेवाला बीमा कराने के लिये बीमा करनेवाले को देता है।

२. वह पत्र या पार्सल आदि जिसका इस प्रकार बीमा हुआ हो।

बीमार—वि० [फ़ा०] [संज्ञा बीमारी] वह जिसे कोई बीमारी हुई हो। रोगग्रस्त। रोगी।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

बीमारदार—वि० [फ़ा०] रोगी की सुश्रूषा करनेवाला। जो रोगियों की सेवा करे। तीमारदार।

बीमारदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगियों की सुश्रूषा।

बीमारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. रोग। व्याधि। २. झंझट। ३. बुरी आदत (बोल०)।

बीयⓅ†¹—संज्ञा पुं० [सं० बीज, प्रा० बीय] दे० 'बीज'। उ०—बीय सुनय लय मध्य ज्ञान अंकुर सजूरन।—पृ० रा०, १।४।

बीयⓅ—वि० [सं० द्वितीय] दे० 'दो'। उ०—जोरि रची विधिना निपुन, एक प्रान तनु बीय।—नंद० ग्रं०, पृ० ८६।

बीयाⓅ¹—वि० [सं० द्वितीय] दूसरा। उ०—(क) तुम कहहु नवाब सों जो साँचु राखत जीय में। तौ एक बार मिलौ हमे नहिं बात कहनी बीय में।—सुजान०, पृ० १०। (ख) एक तूँ दोइ तूँ तीन तूँ चारि तूँ पंच तूँ तत्व में जग कीयौ। नाम अरु रूप ह्वै बहुत विधि विस्तर्यौ तुम ~ न

श्रोर कोऊ नाहि बीयो।—सुंदर० ग्रं० भा० २, पृ० ६४८। (ग) फिर वदनेस कुआर बियो सु फते अली। बैठे इकलें जाइ करन मसलत भली।—सूदन (शब्द०)।

बीया²—संज्ञा पुं० [सं० बीज, प्रा० बीय] बीज। दाना।

बीयास†—संज्ञा पुं० [सं० व्यास, प्रा० बीयास] कृष्ण द्वैपायन।

बीर—वि० [सं० वीर] दे० 'वीर'।

बीर²—संज्ञा पुं० [सं० वीर] भाई। भ्राता। उ०—(क) सबै व्रज है यमुना के तीर। काली नाग के फन पर निर्तत संकर्षण को बीर।—सूर (शब्द०)। (ख) चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर। को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर।—बिहारी (शब्द०)। २. एक देवयोनि जिनकी संख्या ५२ कही जाती है। उ०—प्रसन चद सम जतिय दिन्न इक मंत्र इट्ट जिय। इह आराधत भट्ट प्रगट पवास बीर बिय।—पृ० रा०, ६।१२६।

बीर³—संज्ञा स्त्री० १. सखी। सहेली। उ०—(क) बार बुद्धि बालनि के साथ ही बढ़ी है बीर कुचनि के साथ ही सकुच उर आई है।—केशव (शब्द०)। (ख) यह जा यसोदा के पास बैठी और कुशल पूछ असीस दी कि बीर तेरा कान्ह जीवे कोटि बरस।—लल्लू (शब्द०)। २. एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कान मे पहनती है। बिरिया। चाँद बोल। उ०—लसै बोरै चका सी चलै श्रुति मे भृकुटी जुवा रूप रही छबि छवै। (ख) अंग अंग अनंग झलकत सोहत कानन बीरै सोमा देत देखत ही बनै जोन्ह सी फूली।—हरिदास (शब्द०)।

विशेष—यह गोल चक्राकार होता है और इसका ऊपरी भाग ढालुआँ और उठा हुआ होता है। इसके दूसरी ओर खूँटी होती है जो कान के छेद में डालकर पहनी जाती है। इसमें ढाई तीन अंगुल लंबी कँगनीदार पूँछ सी निकली रहती है जिसमे प्राय: स्त्रियाँ रेशम आदि का झब्बा लगवाती हैं। यह झब्बा पहनते समय सामने कान की ओर रहता है।

३. कलाई में पहनने का एक प्रकार का गहना। बेरवा। उ०—हाथ पहुँची बीर कगन जरित मुँदरी भ्राजई।—सूर (शब्द०) ४. पशुओं के चरने का स्थान। चरागाह। चरी। ५. चरागाह में पशुओं को चराने का वह महसूल जो पशुओं की संख्या के अनुसार लिया जाता है।

बीरउ†—संज्ञा पुं० [सं० वीरुत्] दे० 'बिरवा'।

बीरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वीर्य] दे० 'वीर्य'।

बीरत(पु)**†**—संज्ञा पुं० [सं० वीरत्व, प्रा० बीरत्त] वीरता। पराक्रम। उ०—जाया रजपूतानियाँ, बीरत दीधो वेह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४।

बीरन¹—संज्ञा पुं० [सं० वीर] भाई। उ०—बीरन आए लिवाइवे को तिन को मृदुबानि हू मानि न लेत है।—पद्माकर (शब्द०)।

बीरन²—संज्ञा स्त्री० [सं० वीरण] १. खस का ऊपरी हिस्सा। दे० 'गाँडर'। २. जड़ी। बूटी। उ०—फनपति बीरन देख के, राखे फनहि सकोर।—कबीर० सा०, पृ० ८६४।

बीरनि—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। ढारो। तरना। बीरी।

बीरबधू(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] दे० 'बीरबहूटी'। उ०—छन परभा के छल रहीं चमकि मार करवार। बीरबधू के ब्याज री दहकत आज अँगार।—स० सप्तक, पृ० २७२।

बीरबहूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० विर+वधूटी] एक छोटा रेंगनेवाला कीड़ा। उ०—(क) कोकिल बैन पाँति बग छूटी। धन निसरी जनु बीरबहूटी।—जायसी (शब्द०)। (ख) बीरबहूटी बिराजहि दादुर धुनि चहुँओर। मधुर गरज घन बरखहिं सुनि सुनि बोलत मोर।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह किलनी जाति का होता है और प्राय: बरसात आरंभ होने के समय जमीन पर इधर उधर रेंगता हुआ दिखाई पड़ता है। इसका रंग गहरा लाल होता है और मखमल की तरह इसपर छोटे छोटे कोमल रोयें होते हैं। इसे 'इंद्रवधू' भी कहते हैं।

बीरम†—संज्ञा पुं० [हिं० बीरन] बीरन। भाई। उ०—दाई ददा के इंदरी जरत हय भोजी के जियरा जुड़ाय। श्रो मोरे बीरम भोजी का जियरा जुड़ाय।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १४३।

बीरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वोटक, हिं० बीड़ा] १. पान का बीड़ा। वि० दे० 'बीड़ा'। उ०—(क) जब तू अपनी स्त्री के पास जाय तब यह बीरा खोलि के आधो लीजो आधो स्त्री को दीजो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६७। (ख) उन हंस के बीरा दई हरषि लुई सुखदान। होन लगी अब दुहुन की मग मधुरी मुसकान।—स० सप्तक, पृ० ३७७। २. वह फूल फल आदि जो देवता के प्रसाद स्वरूप भक्तों आदि को मिलता है। उ०—कत अपनी परतीत नसावत मैं पायो हरि हीरा। सूर पतित तबहीं लै उठिहै जब हँसि दैहै बीरा।—सूर (शब्द०)।

बीरालाप—संज्ञा पुं० [सं० वीर+आलाप] वीरों की ललकार। वीरों की हुंकार। उ०—सेना सहित खग खीच के 'मारो मारो क्षुद्र रावण को' इस प्रकार बीरालाप करते हुए घोड़े पर चढ़े।—भक्तमाल, पृ० ५७२।

बीरिट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। पवन। २. भीड़भाड़ [को०]।

बीरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० वीरि या हिं० बीड़ा] १. चूना, कत्था और सुपारी पड़ा हुआ पान का बीड़ा। उ०—निरषत द्रप्पन नैन वदन बीरी रद खडित।—पृ० रा०, १४।१६१। (ख) तरिवन श्रवण नैन दोउ आँजति नासा बेसरि साजत। बीरी मुख भरि चिबुक डिठौना निरखि कपोलनि लाजत।—सूर (शब्द०)। —ढरकी के बीच में लंबाई के बल वह छेद जिसमें से नरी भरकर तागा निकाला जाता है। ३. लोहे का वह छेददार टुकड़ा जिसपर कोई दूसरा लोहा रखकर लोहार छेद करते हैं। ४. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसे 'तरना' भी कहते हैं। उ०—बीरी न होई विराजत कानन

जानन को मन लावत धंधै ।—(शब्द०) । ५. एक दंतमंजन । मिस्सी । दाँत रँगने का मंजन । उ०—कोइ बीरा कोइ लीन्हे बीरी ।—जायसी ग्रं०, पृ० १२७ ।

बीरो, बीरौ⁽ᵖ⁾‡—संज्ञा पुं० [हिं० बिरवा] वृक्ष । पेड । उ०—(क) आपहु खोइ ओहि जो पावा । सो बीरो जनु लाइ जमावा । —(शब्द०) । (ख) सुनि रानी मन कीन्ह विचारा । उपजत बीरौ जौ न उपारा ।—चित्रा०, पृ० ५२ ।

बीर्ज⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [सं० वीर्य] दे० 'वीर्य' । उ०—हमरो मान बीर्ज बल जितो । प्रभु तुम सम्यक जानहु तितो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७४ ।

बील^१—वि० [सं० विल] पोला । अंदर से खाली ।

बील^२—संज्ञा पुं० वह भूमि जो नीची हो और जहाँ पानी भरा रहता हो । झील ताल इत्यादि की भूमि ।

बील^३—संज्ञा पुं० [सं० विल्व] १. बेल । उ०—रहै उघारे मूँड़ बार हू तापर नाहीं । तप्यौ जेठ को घाम बील की पकरी छाहीं ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७६ । २. एक ओषधि का नाम ।

बीलो†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिल्ली] दे० 'बिल्ली' । उ०—बीली नाचे मुस मिरदंगी खरहा ताल बजावै ।—संत० दरिया, पृ० १२६ ।

बीवरा^१—वि० [सं० वीरवर] वीरवर । श्रेष्ठ योद्धा । बीरों में श्रेष्ठ । उ०—रयणागिर राठोड़ बल काढचो तैं बीवरो । —नट०, पृ० १७२ ।

बीवर^२—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का जंतु जो उत्तरीय अमेरिका और एशिया के उत्तरी किनारे पर होता है ।

विशेष—यह पानी के किनारे झुंड बाँधकर रहता है । इसके मुँह में बड़े, बड़े मजबूत और कँटीले दाँत होते हैं और ऊपर नीचे चार चार डाढ़ें होती हैं जो ऊपर की ओर चिपटी और कठोर होती हैं । इसके प्रत्येक पाँव में पाँच पाँच उँगलियाँ होती हैं । पिछले पैरों की उँगलियाँ जुड़ी रहती हैं और दूसरी उँगली का नाखून भी दोहरा रहता है । इसकी पूँछ भारी, नीचे ऊपर से चपटी और छिलकों से ढँकी होती है । इसकी नाक और कान की बनावट ऐसी होती है कि पानी में गोता लगाने से आपसे आप उनके छेद बंद हो जाते हैं । इसका चमड़ा, जो समूर कहलाता है, कोमल होता है और बड़े दामों को बिकता है । इसका मांस स्वादिष्ट होता है पर लोग इसका शिकार विशेषतः चमड़े के लिये ही करते हैं ।

बीवी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'बीबी' ।

बीस^१—वि० [सं० विंशति, प्रा० वीशति, वीसा] जो संख्या में दस का दूना और उन्नीस से एक अधिक हो ।

मुहा०—बीस बिस्वे = अधिक संभवतः । जैसे,—बीस बिस्वे हम सवेरे ही पहुँच जायँगे । बीस बिसे = (१) दे० 'बीस बिस्वे' । (२) पूर्णतः । पूरी तौर से । उ०—(क) सातहु द्वीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने । बीस बीसे व्रत भंग भयो सो कहौ अब केशव को धनु ताने ।—केशव (शब्द०) । (ख) बीस बीसे जानी महा मूरख विधाता है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

२. श्रेष्ठ । बड़ा । ३. अच्छा । उत्तम । श्रेष्ठ । उ०—नाथ अचान उचकि के चढ़े तासु के सीस । ताकी जनु महिमा करी, बीस राजते बीस ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

बीस^२—संज्ञा स्त्री० १. बीस की संख्या । बीस की संख्या का द्योतक चिह्न । बीस का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है —२० ।

बीस^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो गोरखपुर और बरमा के जंगलों तथा कोंकण देश में पाया जाता है । इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है और प्रायः बंदूक के कुंदे बनाने के काम में आती है ।

बीस^४—संज्ञा पुं० [सं० विष] जहर । विष ।

बीसना†—क्रि० स० [स० विशन वा वेशन] शतरंज या चौसर आदि खेलने के लिये बिसात बिछाना । खेल के लिये बिसात फैलाना ।

बीसरना⁽ᵖ⁾—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० विस्मरण] दे० 'बिसरना' । उ०—परन कुटी सो बीसरत नाहीं, नाहिन भावत सुंदर धाम ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३०५ ।

बीसराना⁽ᵖ⁾—क्रि० स० [हिं० बिसरना] दे० 'बिसराना' उ०—क्यूँ बीसरायो गोरी पूरब देस । पाप तणउ तिहाँ नहीं प्रवेश ।—बी० रासो, पृ० ३५ ।

बीसवाँ—वि० [सं० विंशतिम, हिं० बीस + वाँ (प्रत्य०)] जो गणना मे उन्नीस के बाद हो । बीस के स्थान पर पड़नेवाला ।

बीसाल⁽ᵖ⁾—वि० [सं० विशाल] दे० 'विशाल' । उ०—भाल तीलक बीसाल लोचन आनंद कंद श्रीराम है ।—रामानंद०, पृ० ५५ ।

बीसी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० बीस] १. बीस चीजों का समूह । कोड़ी । २. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार साठ संवत्सरों के तीन विभागो में से कोई विभाग । इनमें से पहली बीसी ब्रह्मबीसी, दूसरी विष्णुबीसी और तीसरी रुद्र या शिवबीसी कहलाती है । उ०—बीसी विश्वनाथ को विषाद बड़ो बारानसी बूझिए न ऐसी गति शंकर सहर की ।—तुलसी (शब्द०) । ३. भूमि की एक प्रकार की नाप जो एक एकड़ से कम होती है । उतनी भूमि जिसमें बीस नालियाँ हों ।

बीसी^२—संज्ञा पुं० [सं० विशिख] तौलने का काँटा । तुला ।

बीसी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० हिं० बिस्वा] प्रति बीघे दो बिस्वे की उपज जो जमीदार को दी जाती है ।

बीहंगम⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [सं० विहङ्गम] दे० 'विहंग' । उ०—बीहंगम चढि गयउ अकासा ।—द० सागर, पृ० ६७ ।

बीह⁽ᵖ⁾^१—वि० [सं० विंशति, प्रा० वीसा, बीह] बीस । उ०—साँचहु मैं लबार भुज बीहा । जौं न उपारउँ तव दस जीहा । —तुलसी (शब्द०) ।

बीह⁽ᵖ⁾^२—संज्ञा पुं० [सं० भी (= भय)] भय । भीति । उ० भ.

वहु ऐ भाजे नही, नही मरण रो बीह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५।

बीहड़[1]—वि० [सं० विकट] १. ऊँचा नीचा। विषम। ऊबड़ खाबड़। जैसे, बीहड़ भूमि, बीहड़ जंगल। २. जो ठीक न हो। जो सरल या सम न हो। विषम। विकट।

बीहड़[2]—वि० [सं० विघट, मिलाम या हिं० बारी] अलग। पृथक्। जुदा।

बीहन†—संज्ञा पुं० [हिं० बेहन] बीज। बेंगा। उ०—तहसीलदार साहब दरवाजे पर बैठे हुए बीहन लेनेवालों से कहते हैं।—मैला०, पृ० ८०३।

बीहरⓅ—वि० [सं० विघट] अलग। पृथक्। उ०—(क) साज सात बैकुंठ जस तस साजे खँड सात। बीहर बीहर भाव तस खँड खँड ऊपर छात।—जायसी (शब्द०)। (ख) बीहर सोहर सबकी बोली। विधि यह कहाँ कहाँ सो खोली।—जायसी (शब्द०)।

बुंद[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० बिन्दु] १. बूँद। कतरा। टोप। बिंदु। २. वीर्य। शुक्र।

बुंद[2]—वि० थोड़ा सा। जरा सा।

बुंद[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० बुन्द] तीर। शर।

बुंदकी—संज्ञा स्त्री० [सं० बिन्दु + हिं० की (प्रत्य०)] दे० 'बुँदकी'।

बुंदकीदार—वि० [हिं० बुँदकी + फ़ा० दार] दे० 'बुँदकीदार'।

बुंदा—संज्ञा पुं० [सं० बिन्दुक] [स्त्री० बुंदी] १. बुलाक के आकार का कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। लोलक। २. माथे पर लगाने की बड़ी टिकली जो पन्नी या काँच आदि की बनती है और जिसमें बहुत से छोटे छोटे दाने या गोदने के चिह्न होते हैं। ४. बुंद। बिंदु।† ५. छोटी गोली। छर्रा।

बुंदिर—संज्ञा पुं० [सं० बुन्दिर] गृह। घर। मकान [को०]।

बुंदीदार—वि० [हिं० बूँदी + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें छोटी छोटी बिंदियाँ बनी या लगी हों।

बुंदेलखंड—संज्ञा पुं० [हिं० बुंदेल] १. संयुक्त प्रांत का वह अंश जिसमें जालौन, झाँसी, हमीरपुर बाँदा के जिले पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त ओड़छा, दतिया, पन्ना, चरखारी, बिजावर, छतरपुर आदि अनेक छोटी बड़ी रियासतें भी इसी के अंतर्गत हैं। यह विशेषतः बुंदेले क्षत्रियों का निवास स्थान है। इसलिये यह बुंदेलखंड कहलाता है। २. दे० 'बुंदेला'।

विशेष—यहाँ पहले गहरवारों, परिहारों और चंदेलों आदि का राज्य था। पर ११८२ ई० में दिल्ली के पृथ्वीराज ने बुंदेलखंड पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया था। १५४५ ई० में शेरशाह सूर ने बुंदेलखंड पर आक्रमण किया था। पर कालिंजर पर घेरा डालने में ही उसकी मृत्यु हो गई थी। पीछे से यह प्रदेश मुसलमानों के हाथ में चला गया था। इसके दो विभाग अंग्रेजी शासन में थे जिनमें एक उन्हीं के अधीन और दूसरा अनेक छोटे बड़े राजाओं और जागीरदारों आदि के अधीन था। इस प्रदेश में अनेक पहाड़ हैं और बड़ी बड़ी झीलें हैं। जिनके कारण यहाँ की प्राकृतिक शोभा प्रशंसनीय है।

बुंदेलखंडी[1]—वि० [हिं० बुंदेलखंड + ई (प्रत्य०)] बुंदेलखंड संबंधी। बुंदेलखंड का।

बुंदेलखंडी[2]—संज्ञा पुं० बुंदेलखंड का निवासी।

बुंदेलखंडी[3]—संज्ञा स्त्री० बुंदेलखंड की भाषा।

बुंदेला—संज्ञा पुं० [हिं० बुंद + एला (प्रत्य०)] क्षत्रियों का एक वंश जो गहरवार वंश की एक शाखा माना जाता है।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि पंचम नामक एक गहरवार क्षत्रिय ने एक बार अपने आपको विंध्यवासिनी देवी पर बलिदान चढ़ाना चाहा था। उस समय उसके शरीर से रक्त की जो बूँदें वेदी पर गिरी थी, उन्हीं से बुंदेला वंश के आदि पुरुष की उत्पत्ति हुई थी। चौदहवीं शताब्दी में बुंदेलखंड प्रांत में बुंदेलों का बहुत जोर था। उसी समय कालिंजर और कालपी इनके हाथ आई थी। जब ये लोग बहुत बढ़े, तब मुसलमानों से इनकी मुठभेड़ होने लगी। कहा जाता है, पद्रहवीं शताब्दी के आरंभ में बाबर ने बुंदेल सरदार राजा रुद्रप्रताप को अपना सूबेदार बनाया था। बुंदेलखंड में बुंदेलों और मुसलमानों में कई बार बड़े बड़े युद्ध हुए थे। वीरसिंह देव और छत्रसाल आदि प्रसिद्ध वीर और मुसलमानों से लड़नेवाले इसी बुंदेले वंश के थे।

२. बुंदेला वंश का कोई व्यक्ति। ३. बुंदेलखंड का निवासी।

बुंदौरीⓅ†—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं० बूँद + औरी (प्रत्य०)] बुँदिया या बूँदी नाम की मिठाई।

बुंलपटी—संज्ञा पुं० [अज्ञा०] जहाज में पिछला पाल।

बुँदकपारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दंड जो बदमाशों से जमींदार लिया करते थे।

बुँदकी—संज्ञा स्त्री० [सं० बिन्दु + की (प्रत्य०)] १. छोटी गोल बिंदी। २. किसी चीज पर बना या पड़ा हुआ छोटा गोल दाग या धब्बा।

बुँदकीदार—वि० [हिं० बुँदकी + फ़ा० दार] जिसपर बुँदकियाँ पड़ी या बनी हों। जिसपर बुंदों के से चिह्न हों। बुँदकीवाला।

बुँदवा†—संज्ञा पुं० [सं० बिन्दुक] १. बुंदा। २. बंदूक में भरकर चलाने की छोटी गोली या छर्रा। उ०—कोउ ढालत गोली कोउ बुँदवन बैठि बनावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४।

बुँदवान†—संज्ञा पुं० [हिं० बुंद + वान (प्रत्य०)] छोटी छोटी बूँदों की वर्षा।

बुँदवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुंद + वारी (प्रत्य०)] दे० 'बुंद', 'बूँद'। उ०—परन लगी नान्ही बुंदवारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०७।

बुँदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूँद + इया (प्रत्य०) दे० 'बूँदी'।

बुँदेलखंड—संज्ञा पुं० [हिं० बुंदेला] दे० 'बुंदेलखंड'।

बुँदेलखंडी—वि०, संज्ञा पु० [हिं० बुंदेलखंड] दे० 'बुंदेलखंडी'।

बुँदेलखंडी²—संज्ञा स्त्री० बुंदेलखंड की भाषा।

बुँदेला—संज्ञा पुं० [हिं० बूँद+एला (प्रत्य०)] दे० 'बुंदेला'।

बुँदोरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूँद+ओरी (प्रत्य०)] १. माथे पर लगाने की टिकली। बुंदा। उ०—काहू के पाँय लगावत जावक काहू पै आपु लगावै बुंदौरी।—नट०, पृ० ५१। २. बुँदिया या बूँदी नाम की मिठाई। उ०—मतलड छाल और मकरोरी। माँठ पेराक और बुंदोरी।—जायसी (शब्द०)।

बुअंजानि(पु)—संज्ञा पु० [सं० प्रभञ्जन या देशज] महावात। प्रचंड वायु। उ०—किधौं बाय बढचो बुअंजानि घोरं।—पृ० रा०, २५।२१३।

बुआ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बूआ'।

बुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. हास्य। २. अगस्त वृक्ष का फूल [को०]।

बुक²—संज्ञा स्त्री० [अ० बकरम] १. एक प्रकार का कलफ किया हुआ महीन पर बहुत करारा कपड़ा जो बच्चों की टोपियों में अस्तर देने या अँगिया, कुरती, जनानी चादरें आदि बनाने के काम में आता है। यह साधारण बकरम की अपेक्षा बहुत पतला पर प्रायः वैसा ही करारा या कड़ा होता है। २. एक प्रकार की महीन पन्नी।

बुक³—संज्ञा स्त्री० [अं०] पुस्तक। किताब। पोथी।

यौ०—बुक बाइंडर=किताब बाँधनेवाला। दफ्तरी। जिल्दसाज। बुकशाप=पुस्तकों की दूकान। बुकसेलर।

बुकचा—संज्ञा पु० [तु० बुकचह्] १. वह गठरी जिसमें कपड़े बँधे हुए हों। २. गठरी। उ०—कै उतरे के उतरि कै बुकचा बाँधि तयार।—राम० धर्म०, पृ० ७२।

बुकची¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुकचा+ई (प्रत्य०)] १. छोटी गठरी विशेषतः कपड़ों की गठरी। २. दर्जियों की वह थैली जिसमें वे सुई, डोरा, कैंची कपड़े, कागज, आदि रखते हैं।

बुकची²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बकुची'।

बुकटा, बुकट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकोटा'।

बुकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूकना+ई (प्रत्य०)] १. किसी चीज का महीन पीसा हुआ चूर्ण। २. वह चूर्ण जिसे पानी में घोलने से कोई रंग बनता हो। जैसे, गुलाबी बुकनी।

यौ०—बुकनीदार=भुरभुरा। चूर्ण सा।

बुकवा†—संज्ञा पुं० [हिं० बूकना] १. उबटन। बटना। २. दे० 'बुक्का'। उ०—मेही मेही बुकवा पिसावो तो पिय के लगावो हो।—धरम० श०, पृ० ४८।

बुकस—संज्ञा पुं० [सं० बुक्कस] भंगी। मेहतर। हलालखोर।

बुकसेलर—संज्ञा पुं० [अं०] पुस्तकें बेचनेवाला। पुस्तकविक्रेता।

बुका—संज्ञा पुं० [हिं० बुक्का] दे० 'बुक्का'।

बुकार†—संज्ञा पुं० [देश०] वह बालू जो बरसात के बाद नदी अपने तट पर छोड़ जाती है और जिसमें कुछ अन्न आदि बोया जा सकता हो। भाट। बालू।

बुकुन, बुकुना—संज्ञा पुं० [हिं० बूकना] १. बुकनी। २. किसी प्रकार का पाचक। चूर्ण। उ०—जलित जलेबे अँदरसा बुकुने दधि चटनी चटकारी जू।—विश्राम (शब्द०)।

बुक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. हृदय। २. वक्षस्थल। स्तन। ३. रक्त। ४. बकरा। अज। ५. समय [को०]।

बुक्कन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूकना। २. कुत्ते आदि किसी भी पशु का बोलना [को०]।

बुक्कस—संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल [को०]।

बुक्कसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा। नील नाम का क्षुप [को०]।

बुक्का¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हृदय। कलेजा। २. गुरदे का मांस। ३. रक्त। लहू। ४. बकरी। ५. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुहँ से फूँककर बजाया जाता था।

बुक्का²—संज्ञा पु० [हिं० बूकना (=पीसना)] १. फूटे हुए अभ्रक का चूर्ण जो चमकीला होता है और प्रायः होली में गुलाल के साथ मिलाया जाता है या इसी प्रकार के और काम में आता है। उ०—खेलत गोपाल हरिचंद राधिका के साथ बुक्का एक सोहत कपोल की लुनाई मैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८२२। २. बहुत छोटे छोटे सच्चे मोतियों के दाने जो पीसकर औषध के काम में आते हैं अथवा पिरोकर आभूषणों आदि पर लपेटे जाते हैं।

बुक्का—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'बूक'।

बुक्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] हृदय [को०]।

बुखार—संज्ञा पुं० [अ० बुख़ार] १. वाष्प। भाप। २. ज्वर। ताप। विशेष दे० 'ज्वर'। ३. हृदय का उद्वेग। शोक, क्रोध, दुःख आदि का आवेग।

मुहा०—दिल या जी का बुखार निकालना=दे० 'जी' शब्द का मुहा० 'जी का बुखार निकालना'।

बुखारचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुख़ारचह्] १. खिड़की के आगे का छोटा बरामदा। २. कोठरी के अंदर तख्तों आदि की बनी हुई छोटी कोठरी।

बुखारा—संज्ञा पुं० [फा० बुख़ारह्] रूसी तुर्किस्तान का एक प्रदेश। यहाँ का सौंदर्य प्रसिद्ध है।

बुखारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बुख़ारी] १. भाप से चलनेवाली मशीन। २. बखार। खत्ती। ३. दीवार मे बनी अँगीठी या आतिशदान [को०]।

बुग¹—संज्ञा पुं० [देश०] मच्छर। (बुंदेलखंड)।

बुग²—संज्ञा पुं० दे० 'बुक³'।

बुगचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुग्चह] दे० 'बुकचा'।

बुगदर†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] मच्छर।

बुगदा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] कसाइयों का छुरा जिससे वे पशुओं की हत्या करते हैं।

बुगला†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बगुला] [स्त्री॰ बुगली] दे॰ 'बगुला'। उ॰—मछली बुगला को ग्रस्यो देषहु याके भाग। सुंदर यह उल्टी भई मूसे पायौ काग।—सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰२, पृ॰ ७४८।

बुगिअल—संज्ञा पुं॰ [देश॰] पशुओं के चरने का स्थान। चरी। चरागाह।

बुगुल—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बिगुल] दे॰ 'बिगुल'।

बुग्ज—संज्ञा पुं॰ [अ॰ बुग्ज] शत्रुभाव। दुश्मनी। भीतरी दुश्मनी। उ॰—जिसको मुज बुग्ज पर सदा मन है।—दक्खिनी॰, —पृ॰ २१८। २. डाह। ईर्ष्या। उ॰-वे आँखें किस काम की जो आदमी को नफरत, बुग्ज और कीने की शक्ल में देखें।—चद॰, पृ॰ १०१।

बुचका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बुकचा] दे॰ 'बुकचा'।

बुज—संज्ञा पुं॰, स्त्री॰ [फ़ा॰ बुज़] बकरा। बकरी [को॰]।

बुजकसाव—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ बुज़कस्साब] वह जो पशुओं की हत्या करता अथवा उनका मांस आदि बेचता हो। कस्साई। बकरकसाव।

बुजदिल—वि॰ [फ़ा॰ बुज़दिल] कायर। डरपोक। भीरु।

बुजदिली—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] कायरता। भीरुता।

बुजनी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] करनफूल के आकार का एक गहना जो कान में पहना जाता है और जिसके नीचे झुमका भी लटकाया जाता है। इसे प्राय ब्याही स्त्रियाँ पहनती हैं।

बुजियाला¹—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ बुज़] वह बकरी का बच्चा जिसे कलंदर लोग तमाशा करना सिखलाते हैं। (कलंदर)।

बुजियाला²—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ बूज़नह्] वह बंदर जिसे कलंदर तमाशा करना सिखाते हैं। (कलंदर)।

बुजरग(पु)†—वि॰ [फ़ा॰ बुज़ुर्ग] वृद्ध। बड़ा। आदरणीय। श्रेष्ठ। उ॰—बेच्यून उसको कहत बुजरग बेनिमून उसै कहै।—सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰१, पृ॰ २६३।

बुजुर्ग¹—वि॰ [फ़ा॰ बुज़ुर्ग] १. जिसकी अवस्था अधिक हो। वृद्ध। बड़ा। २. पाजी। दुष्ट। (व्यंग्य)।

बुजुर्ग²—संज्ञा पुं॰ बाप दादा। पूर्वज। पुरखा।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द सदा बहुवचन में बोला जाता है।

बुजुर्गी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ बुज़ुर्गी] बुजुर्ग होने का भाव। बड़ापन।

बुज्जर†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का पक्षी।

बुज्जी—वि॰ [फ़ा॰ बुज] बकरी। (डिं॰)।

बुज्झना‡—क्रि॰ स॰ [प्रा॰ बुज्झई] बूझना। समझना। उ॰—परम ब्रह्म परमत्थ बुज्झइ, वित्ते बढोरइ किति।—कीर्ति॰, पृ॰ १८।

बुज्झनिहार(पु)‡—वि॰ [प्रा॰ बुज्झण + हिं॰ हार] बूझनेवाला। समझनेवाला। उ॰—अक्खर रस बुज्झनिहार नहि, कइ कुल भमि भिक्खारि भउँ।—कीर्ति॰, पृ॰ १८।

बुज्झा—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की चिड़िया।

बुझना—क्रि॰ अ॰ [?] १. किसी जलते हुए पदार्थ का जलना बंद हो जाना। जलने का अंत हो जाना। अग्नि या अग्निशिखा का शांत होना। जैसे, लकड़ी बुझना, लंप बुझना। २. किसी जलते या तपे हुए पदार्थ का पानी में पड़ने के कारण ठंढा होना। तपी हुई या गरम चीज का पानी में पड़कर ठंढा होना। ३. पानी का किसी गरम या तपाई हुई चीज से छौंका जाना। पानी में किसी चीज का बुझाया जाना जिसमें उस चीज का पानी में कुछ प्रभाव आ जाय। ४. पानी आदि की सहायता से किसी प्रकार का ताप शांत होना। पानी पड़ने या मिलने के कारण ठंढा होना। जैसे, चूना बुझना। ५. चित्त का आवेग या उत्साह आदि मंद पड़ना। जैसे,—ज्यों ज्यों बुढ़ापा आता है, त्यों त्यों जी बुझता जाता है।

बुझरिया†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बूझना] शांति। संतोष। बुझारत। उ॰—कोउ नहि कइल मोरे मन कै बुझरिया।—गुलाल॰, पृ॰ ८।

बुझाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बुझाना + ई (प्रत्य॰)] बुझाने की क्रिया। बुझाने का काम।

यौ॰—बुझाई का हौज = वह हौज जिसमें नील के पौधे काटकर पहले पहल पानी में भिगोए जाते हैं।

२. बुझाने की मजदूरी।

बुझाना¹—क्रि॰ स॰ [हिं॰ बुझना का सक॰ रूप] १. किसी पदार्थ के जलने का (उसपर पानी डालकर या हवा के जोर से) अंत कर देना। जलते हुए पदार्थ को ठंढा करना या अधिक जलने से रोक देना। अग्नि शांत करना। जैसे, आग बुझाना, दीआ बुझाना। २. किसी जलती हुई धातु या ठोस पदार्थ को ठढे पानी में डाल देना जिससे वह पदार्थ भी ठढा हो जाय। तपी हुई चीज को पानी में डालकर ठंढा करना। जैसे,—सोनार पहले सोने को तपाते हैं और तब उसे पानी में बुझाकर पीटते और पत्तर बनाते हैं।

मुहा॰—जहर में बुझाना = छुरी, बरछी, तलवार आदि अस्त्रों के फलों को तपाकर किसी जहरीले तरल पदार्थ में बुझाना जिसमें वह फल भी जहरीला हो जाय। ऐसे फलों का घाव लगने पर जहर भी रक्त में मिल जाता है जिससे घायल आदमी शीघ्र मर जाता है। जहर का बुझाया हुआ = दे॰ 'जहर' के मुहा॰।

३. ठढे पानी में इसलिये किसी चीज को तपाकर डालना जिसमें उस चीज का गुण या प्रभाव उस पानी में आ जाय। पानी का छौंकना। जैसे,—इनको लोहे का बुझाया पानी पिलाया करो। ४. पानी की सहायता से किसी प्रकार का ताप दूर करना। पानी डालकर ठंढा करना। जैसे, प्यास बुझाना,

चूना बुझाना, नील बुझाना। ५. चित्त का आवेग या उत्साह आदि शांत करना। जैसे, दिल की लगी बुझाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

बुझाना[२]—क्रि० अ० बुझ जाना। शांत होना। दे० 'बुझना'।

बुझाना[३]—क्रि० स० [हिं० बूझना का प्रे० रूप] बूझने का काम दूसरे से कराना। किसी को बूझने में प्रवृत्त करना। जैसे, पहेली बुझाना। २. बोध कराना। समझाना। ३. संतोष देना। जी भरना। उ०—जो बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा।—मानस, १।३६।

बुझारत—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुझाना (=समझाना)] १. किसी गाँव के जमींदारों के आय व्यय का वार्षिक लेखा। २. समझाना बुझाना। तोष देना।

बझावना†—क्रि० स० [हिं० बुझाना] बोध कराना। समझाना। उ०—बहु विधि बचन बुझावए नेहा।—विद्यापति, पृ० ३२१।

बुझौवल—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूझना+औवल (प्रत्य०)] दे० 'पहेली'।

बुभक्ष†—संज्ञा स्त्री० [सं० बुद्‌ध्य, प्रा० बुज्झ, राज बूझणों, बूझना] दे० 'बूझ'। उ०—मारू तूँ आखइ सखी, एह हमारी बुज्झ। साल्ह कुअर सुहिणइ मिल्यउ, सुंदरी सउ वर तुज्झ।—ढोला०, दू० २४।

बुट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूटी या बूट] दे० 'बूटी'। उ०—जातुधान बुट पुटपाक लंका जात रूप रतन जतन जारि किया है मृगांक सो।—तुलसी (शब्द०)।

बुटना†—क्रि० अ० [सं० √ बुड्‌ (=संवरण)] दौड़कर चला जाना या हट जाना। भागना। उ०—(क) आशा करि आयो हुतो पास रावरे मैं गाढ़ है के पास दुख दूरि बुटि बुटि गे।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) राम सिया सिय सिधु धरा अहि देवन के दुख पुंज बुटे।—हनुमान (शब्द०)।

बुट्ठना, बुट्टना—क्रि० अ० [सं० वृष्टि या वर्षण] ऊपर से गिरना। उ०—(क) करी कंध टुट्टे इते उंच बुट्टे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११। (ख) कायर मेंह को फिर मेघ बुट्ठै धाराधर।—पृ० रा०, ५५।६१।

बुट्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० वृष्टि, प्रा० वुट्टि] वृष्टि। वर्षा। उ०—मनो पावसी बुट्टि बद्दुल्ल रारं।—पृ० रा०, २।४७५।

बुड़त†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुड़ना] डूबने या बुड़ने की स्थिति। नष्ट या समाप्त होने की स्थिति। उ०—नट कुपठित होने से तो फिर बुड़त हो जाती है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५।

बुड़की†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना सं० √बुड] डुबकी। गोता। उ०—(क) श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी लै बुड़की गरे, लागि चौंक परी कहाँ जाऊँ।—हरिदास (शब्द०)। (ख) करत सनान सब प्रेम बुड़की देहि समुझि होइ भजि तार आवै।—सूर (शब्द०)।

बुड़ना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बूड़ना'।

बुड़बक†—वि० [सं० वृद्ध, प्रा० बुड्ढ+सं० वच (=बक) या सं० मूढवच] मूर्ख। बेवकूफ। अनजान। बाड़म।

बुड़बकपन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुड़बक+पन (प्रत्य०)] मूर्खता। बेवकूफी। उ०—जल में रहकर मगर से बैर करना बुड़बकपन है।—गोदान, पृ० ३१।

बुड़बुड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] मन ही मन कुढ़कर या क्रोध में आकर अस्पष्ट रूप से कुछ बोलना। बड़बड़ करना।

बुड़भस—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुढ़भस] वृद्ध का जवानों की तरह रंगीन बनना। वृद्ध का युवक के समान विवेकरहित आचरण करना। उ०—अजी किबला अब तो हवा ही ऐसी चली है कि जवान तो जवान बुड्ढों तक को बुड़भस लगा है।—फिसाना०, भा०, १, पृ० ६।

बुड़ाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'डुबाना'।

बुड़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० बुड़ना+आव (प्रत्य०)] दे० 'डुबाव'।

बुड़ुआ, बुड़ुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० बूड़ना] डूबकर मरनेवाला व्यक्ति जो प्रेत बन जाता है। यह मौका पाकर नहानेवालों को डुबाकर मार डालता है।

बुड्ढा†—वि० [सं० वृद्ध, प्रा० बुड्ढ] जिनकी अवस्था अधिक हो गई हो। ५०–६० वर्ष से अधिक अवस्थावाला। वृद्ध। उ०—जवान तो जवान बुड्ढों तक को बुड़भस लगा है। —फिसाना०, भा० १, पृ० ६।

बुढ़†—वि० [सं० वृद्ध प्रा० बुड्ढ, हिं० बूढ़+बूढ़ा] वृद्ध। बूढ़ा। उ०—बसह चढ़ल बुढ़ भाव।—विद्यापति, पृ० २६५।

बुढ़ना†—संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धन] १. छड़ीला। पत्थरफूल। ‡२. वृद्ध। बूढ़ा।

बुढ़भस—संज्ञा स्त्री० [सं० वृद्ध, प्रा० बुड्ढ, हिं० बुढ़+अ० हवस, हिं० भस, होस] बुड़भस। उ०—बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है।—गोदान, पृ० ८।

बुढ़वा†—वि० [हिं०] [स्त्री० बुढ़िया] दे० 'बुड्ढा'। उ०—विद्यापति कवि गाओल नाह बुढ़वा जनए किसोन।—विद्यापति, पृ० २६५।

बुढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूढ़ा+आई (प्रत्य०)] बुढ़ापा। वृद्धत्व। वृद्ध या बूढ़ा होने का भाव। उ०—स्वर में वैसी मेरी बुढ़ाई है, दोनों ढलते जाते उन्मन।—आराधना, पृ० २९।

बुढ़ाना—क्रि० अ० [हिं० बूढ़ा+ना (प्रत्य०)] वृद्धावस्था को प्राप्त होना। बुड्ढा होना। उ०—अब मैं जानी देह बुढ़ानी। सीस पाँव कर कह्यो न मानत तनु की दसा सिरानी।—सूर (शब्द०)।

बुढ़ापा—संज्ञा पुं० [हिं० बूढ़ा+पा (प्रत्य०)] १. वृद्धावस्था। बुड्ढे होने की अवस्था। २. बुड्ढे होने का भाव। बुड्ढापन।

बुढ़ियाबैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुढ़िया+बैठक (=कसरत)] एक प्रकार की बैठक (कसरत)। इसमें दीवार खंभे आदि का सहारा लेकर बार बार उठते बैठते हैं।

बुढ़ीⓤ†—संज्ञा स्त्री० [देश०] बूढ़ । बीर बहूटी । उ०—बूढ़ी लुढ़ी जु हरित भई धरनी । उच्छलित छवि फबि हियहरनी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८९ ।

बुढ़ौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूढ़ा + औती (प्रत्य०)] बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

बुत—संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० बुद्ध] १. मूर्ति । प्रतिमा । पुतला । २. वह जिसके साथ प्रेम किया जाय । प्रियतम । उ०—खुद ब खुद आज जो वो बुत आया, मैं भी दौड़ा खुदा खुदा करके ।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० २२० । ३. सेसरबुत नाम के खेल मे वह दाँव जिसमें खिलाड़ी के हाथ में केवल तसवीरें हो अथवा तीनो ताशो की बुदियों का जोड़ १०,२० या ३० हो । विशेष दे० 'सेसरबुत' ।

यौ०—बुतखाना = मंदिर । मूर्तिस्थान । बुततराश = मूर्ति गढ़नेवाला । बुतपरस्त । बुतशिकन ।

बुत²—वि० मूर्ति की तरह चुपचाप बैठा रहनेवाला । जो कुछ भी बोलता चालता न हो । जैसे, नशे मे बुत हो जाना ।

बुतना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बुझना' ।

बुतपरस्त—संज्ञा पुं० [फा] वह जो मूर्तियों को पूजता हो । मूर्तिपूजक । २. वह जो सौंदर्य का उपासक हो । रसिक ।

बुतपरस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] मूर्तिपूजा ।

बुतशिकन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो प्रतिमाओं को तोड़ता या नष्ट करता हो । वह जो मूर्तिपूजा का घोर विरोधी हो ।

बुतात†—संज्ञा स्त्री० [?] खर्च । व्यय । जरूरियात । उ०—जमीन इतनी ही थी कि चार महीने का बुतात उनकी उपज से निकल आता ।—नई०, पृ० ४ ।

बुताना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'बुझाना' ।

बुताना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बुझाना' ।

बुताम—संज्ञा पुं० [अं० बटन] पहनने के कपड़े में लगाई जानेवाली कड़ी चिपटी घुंडी । बटन ।

बुत्त—वि० [फ़ा० बुत] दे० 'बुत' । उ०—हाजिर छाड़ि बुत्त को पूजे ।—कबीर० शब्द० पृ० ३१ ।

बुत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] १. धोखा । झाँसा । पट्टी ।

मुहा०—बुत्ता देना = झाँसा देना । दम देना ।

यौ०—दमबुत्ता ।

२. बहाना । हीला ।

मुहा०—बुत्ता बताना या बता देना = बहाना करना । हीला करना । उ०—अब दिल्लगी जब साहब को ले के आएगी और मैं बुत्ता बता दूँगी । दिल मे गालियाँ देती और कोसती ही जायगी ।—सैर०, पृ० १८ ।

बुद—वि० [देश०] पाँच । (दलाल) ।

बुदकना†—क्रि० अ० [अनु०] बुद बुद करना । उ०—क्षण भर भुला सकें हम, नगरी की बेचैन बुदकती गड्डमड्ड अकुलाहट ।—हरी घास०, पृ० ६० ।

बुदगल†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बुदबुद' । उ०—बुदगल देखो जलसबै, बुदगल कहूँ न होय । कहबे को दूजो कहो जल बुदगल नहिं होय ।—चरण०, पृ० २८६ ।

बुदबुद—संज्ञा पुं० [सं० बुद् बुद] पानी का बुलबुला । बुल्ला । उ०—उस विराट आलोड़न में ग्रह तारा बुदबुद से लगते ।—कामायनी, पृ० १७ ।

बुदबुदा—संज्ञा पुं० [सं० बुद्बुद] पानी का बुलबुला । बुल्ला । उ०—तासु में बुदबुदे अंड उपजै मिटै गुरु दई दृष्टि जा सूँ निहारा ।—चरण० बानी, पृ० १३० ।

बुदलाय—वि० [दलाल० बुद + लाय (प्रत्य०)] पंद्रह । दस और पाँच । (दलाल) ।

बुद्ध¹—वि० [सं०] १. जो जगा हुआ हो । जागरित । २. ज्ञानवान् । ३. पंडित । विद्वान् । ४. विकसित । खिला हुआ ।

बुद्ध²—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रबुद्ध, जिसने बुद्धत्व प्राप्त कर लिया हो । सुप्रसिद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक एक बहुत बड़े महात्मा जिनका जन्म ईसा से लगभग ५५० वर्ष पूर्व शाक्यवंशी राजा शुद्धोदन की रानी महामाया के गर्भ से नेपाल की तराई के 'लुंबिनी' नामक स्थान में माघ की पूर्णिमा को हुआ था ।

विशेष—इनके जन्म के थोड़े ही दिनों बाद इनकी माता का देहांत हो गया था और इनका पालन इनकी विमाता महाप्रजावती ने बहुत उत्तमतापूर्वक किया था । इनका नाम गोतम अथवा सिद्धार्थ रखा गया था और इन्हें कौशिक विश्वामित्र ने अनेक शास्त्रों, भाषाओं और कलाओं आदि की शिक्षा दी थी । बाल्यावस्था में ही ये प्रायः एकांत मे बैठकर त्रिविध दुखों की निवृत्ति के उपाय सोचा करते थे । युवावस्था मे इनका विवाह देवदह की राजकुमारी गोपा के साथ हुआ था । शुद्धोदन ने इनकी उदासीन वृत्ति देखकर इनके मनोविनोद के लिये अनेक सुंदर प्रासाद आदि बनवा दिए थे और सामग्री एकत्र कर दी थी तिसपर भी एकांतवास और चिंताशीलता कम न होती थी । एक बार एक दुर्बल वृद्ध को, एक बार एक रोगी को और एक बार एक शव को देखकर ये संसार से और भी विरक्त तथा उदासीन हो गए । पर पीछे एक संन्यासी को देखकर इन्होंने सोचा कि संसार के कष्टों से छुटकारा पाने का उपाय वैराग्य ही है । वे संन्यासी होने की चिंता करने लगे और अंत में एक दिन जब उन्हें समाचार मिला कि गोपा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब उन्होंने संसार को त्याग देना निश्चित कर लिया । कुछ दिनों बाद आषाढ़ की पूर्णिमा की रात को अपनी स्त्री को निद्रावस्था में छोड़कर उन्तीस वर्ष की अवस्था में ये घर से निकल गए और जंगल में जाकर इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की । इसके उपरांत इन्होंने गया के समीप निरंजना नदी के किनारे उरुविल ग्राम में कुछ दिनों तक रहकर योगसाधन तथा तपश्चर्या की और अपनी काम, क्रोध, आदि

वृत्तियों का पूर्णरूप से नाश कर लिया। उसी अवसर पर घर से निकलने के प्रायः सात वर्ष बाद एक दिन आषाढ़ की पूर्णिमा की रात को महाबोधि वृक्ष के नीचे इनको उद्बोधन हुआ और इन्होंने दिव्य ज्ञान प्राप्त किया। उसी दिन से ये गौतम बुद्ध या बुद्ध देव कहलाए। इनके उपरांत ये धर्मप्रचार करने के लिये काशी आए। इनके उपदेश सुनकर धीरे धीरे बहुत से लोग इनके शिष्य और अनुयायी होने लगे और थोड़े ही दिनों में अनेक राजा, राजकुमार और दूसरे प्रतिष्ठित पुरुष भी इनके अनुयायी बन गए जिनमें मगध के राजा बिंबिसार भी थे।

उस समय तक प्रायः सारे उत्तर भारत में उनकी ख्याति हो हो चुकी थी। कई बार महाराज शुद्धोदन ने इनको देखने के लिये कपिलवस्तु में बुलाना चाहा, पर जो लोग इनको बुलाने के लिये जाते थे, वे इनके उपदेश सुनकर विरक्त हो जाते और इन्हीं के साथ रहने लगते थे। अंत में ये एक बार स्वयं कपिलवस्तु गए थे जहाँ इनके पिता अपने बंधु-बांधवों सहित इनके दर्शन के लिये आए थे। उस समय तक शुद्धोदन को आशा थी कि सिद्धार्थ गौतम कहने सुनने से फिर गृहस्थ आश्रम में आ जायँगे और राजपद ग्रहण कर लेंगे। पर इन्होंने अपने पुत्र राहुल को भी अपने उपदेशों से मुग्ध करके अपना अनुयायी बना लिया। इसके कुछ दिनों के उपरांत लिच्छिवि महाराज का निमंत्रण पाकर ये वैशाली गए थे। वहाँ से चलकर ये संकाश्य, श्रावस्ती, कौशांबी, राजगृह, पाटलिपुत्र, कुशीनगर आदि अनेक स्थानों में भ्रमण करते फिरते थे; और सभी जगह हजारों आदमी इनके उपदेश से संसार त्यागते थे। इनके अनेक शिष्य भी चारों ओर घूम घूमकर धर्मप्रचार किया करते थे। इनके धर्म का इनके जीवनकाल में ही बहुत अधिक प्रचार हो गया था। इसका कारण यह था कि इनके समय में कर्मकांड का जोर बहुत बढ़ चुका था और यज्ञों आदि में पशुओं की हत्या बहुत अधिक होने लगी थी। उन्होंने इस निरर्थक हत्या को रोककर लोगों को जीवमात्र पर दया करने का उपदेश दिया था। इन्होंने प्रायः ४४ वर्ष तक बिहार तथा काशी के आस पास के प्रांतों में धर्मप्रचार किया था। अंत में कुशीनगर के पास के वन में एक शालवृक्ष के नीचे वृद्धावस्था में इनका शरीरांत या परिनिर्वाण हुआ था। पीछे से इनके कुल उपदेशों का संग्रह हुआ जो तीन भागों में होने के कारण 'त्रिपिटक' कहलाया। इनका दार्शनिक सिद्धांत अनात्मवाद या सर्वात्मिवाद था। ये संसार को कार्य कारण के अविच्छिन्न नियम में बद्ध और अनादि मानते थे तथा छह इंद्रियों और अष्टांग मार्ग को ज्ञान तथा मोक्ष का साधन समझते थे। विशेष—दे० 'बौद्ध धर्म'।

हिंदू शास्त्रों के अनुसार बुद्धदेव दस अवतारों में से नवें अवतार और चौबीस अवतारों में से तेईसवें अवतार माने जाते हैं। विष्णु पुराण और वेदांत सूत्र आदि में इनके संबंध की बातें और कथाएँ दी हुई हैं।

यौ०—बुद्धगया = बिहार प्रदेश के गया जिले का वह स्थान जहाँ बुद्ध को बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी। बुद्ध द्रव्य = बुद्ध संबंधी स्मृतिचिह्न। बुद्ध धर्म = दे० 'बौद्धधर्म'।

२. ज्ञान। बोध (को०)। ३. परमात्मा (को०)। ४. वह जो ज्ञानी हो। ज्ञानवान्। संत (को०)।

बुद्ध(पु)†³—संज्ञा पुं० [सं० बुद्ध] १. दे० 'बुध' (ग्रह)। उ०—सुन भयो सोम कै बुद्ध आय।—ह० रासो, पृ० ६। २. बुधवार। बुध का दिन।

बुद्ध(पु)†⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० बुधि] बुद्धि। अक्ल। समझ। उ०—(क) अष्टपदी अभ्यास करै तिहुँ बुद्ध बढ़ावै।—भक्तमाल (प्रि०), पृ० ५०१। (ख) बड़े आदमियों की बुद्ध भी बड़ी ही होती है।—रंगभूमि, भा० १, पृ० ४६७।

बुद्धद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध भगवान् की अस्थि, केश, नख, आदि स्मृतिचिह्न जो किसी स्तूप में संरक्षित हो।

बुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह शक्ति जिसके अनुसार मनुष्य किसी उपस्थित विषय के संबंध में ठीक ठीक विचार या निर्णय करता है। विवेक या निश्चय करने की शक्ति। अक्ल। समझ।

विशेष—हमारे यहाँ बुद्धि अंतःकरण की चार वृत्तियों में से दूसरी वृत्ति मानी गई है और इसके नित्य और अनित्य दो भेद रखे गए हैं। इसमें से नित्य बुद्धि परमात्मा की और अनित्यबुद्धि जीव की मानी गई है। सांख्य के मत से त्रिगुणात्मिका प्रकृति का पहला विकार यही बुद्धितत्व है; और इसी को महत्तत्व भी कहा गया है। सांख्य में यह भी माना गया है कि आरंभ में ज्यों ही जगत् अपनी सुषुप्तावस्था से उठा था, उस समय सबसे पहले इसी महत् या बुद्धितत्व का विकास हुआ था। नैयायिकों ने इसके अनुभूति और स्मृति ये दो प्रकार माने हैं। कुछ लोगों के मत से बुद्धि के इष्टानिष्ट, विपत्ति, व्यवसाय, समाधिता, संशय और प्रतिपत्ति ये पाँच गुण और कुछ लोगों के मत से सुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊह, अपोह और अर्थविज्ञान ये सात गुण हैं। पाश्चात्य विद्वान् अंतःकरण के सब व्यापारों का स्थान मस्तिष्क मानते हैं। इसलिये उनके अनुसार बुद्धि का स्थान भी मस्तिष्क ही है। यद्यपि यह एक प्राकृतिक शक्ति है, तथापि ज्ञान और अनुभव की सहायता से इसमें बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है।

पर्या०—मनीषा। धीषणा। धी। प्रज्ञा। शेमुषी। मति। प्रेक्षा। चित्। चेतना। धारणा। प्रतिपत्ति। मेधा। मन। मनस्। ज्ञान। बोध। प्रतिभा। विज्ञान। संख्या।

मुहा०—'बुद्धि' शब्द के मुहा० के लिये दे० 'अक्ल' शब्द।

२. उपजाति वृत्त का चौदहवाँ भेद जिसे सिद्धि भी कहते हैं। ३. एक छंद जिसके चारों पदों में क्रम से १६, १४, १४, १३ मात्राएँ होती हैं। इसे 'लक्ष्मी' भी कहते हैं। ४. छप्पय का ४२ वाँ भेद।

बुद्धिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

बुद्धिकामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

बुद्धिकृत—वि० [सं०] बुद्धिपूर्वक किया हुआ [को०] ।

बुद्धिकुशल—वि० [सं०] [संज्ञा बुद्धिकौशल] चतुर ।

बुद्धिगम्य—वि० [सं०] समझ मे आने योग्य । उ०—आत्यंतिक सुख इंद्रिय सुखों के परे फलत: बुद्धिगम्य है ।—सा० समीक्षा, पृ० १ ।

बुद्धिचक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] प्रज्ञाचक्षु । धृतराष्ट्र । उ०—करण दुशासन नृप मन माना । बुद्धिचक्षु पहँ कीन्ह पयाना ।—(शब्द०) ।

बुद्धिचिंतक—वि० [सं० बुद्धिचिन्तक] बुद्धिपूर्वक चिंतन करनेवाला [को०] ।

बुद्धिजीवी—संज्ञा पु० [सं० बुद्धिजीविन्] वह जो बुद्धि के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो ।

बुद्धितत्व—संज्ञा पु० [सं० बुद्धितत्त्व] दे० 'बुद्धि' ।

बुद्धिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञान । नासमझी ।

बुद्धिद्यूत—संज्ञा पु० [सं०] शतरंज का खेल [को०] ।

बुद्धिपर—वि० [सं०] जो बुद्धि से परे हो । जिस तक बुद्धि न पहुँच सके । उ०—राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर । अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।—तुलसी (शब्द०) ।

बुद्धिपूर्व, बुद्धिपूर्वक—वि० [सं०] सोच समझकर । जान बूझकर ।

बुद्धिपुरस्सर—क्रि० वि० [सं०] दे० 'बुद्धिपूर्व' ।

बुद्धिबल—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का खेल । २. बुद्धि शक्ति । ज्ञान की शक्ति (को०) ।

बुद्धिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चयात्मक ज्ञान न होना । समझ का गड़बड़ी । संशय । संदेह ।

बुद्धिभ्रंश—संज्ञा [सं०] जिसमे अनीति नीति प्रतीत हो ऐसा बुद्धि संबंधी रोग या दोष । बुद्धिनाश दोष जिसमें बुद्धि ठीक काम न करे । उ०—बुद्धिभ्रंश ते लहत विनासहि । ताहि अनीति नीति भासहि ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २८४ ।

बुद्धिभ्रम—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'बुद्धिभेद' । उ०—किंतु हाय, वह हुई लीन जब, क्षीण बुद्धिभ्रम में काया ।—अनामिका, पृ० ३१ ।

बुद्धिमंत—वि० [सं० बुद्धिमान्] दे० 'बुद्धिवंत' । उ०—ताहू को व्याकरण, न्याय, वेदांतादि पठित करि कै जे बुद्धिमंत हैं तेई ग्रहन करि सकें ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५२० ।

बुद्धिमत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धिमान् होने का भाव । समझदारी । अक्लमंदी ।

बुद्धिमानी—संज्ञा स्त्री० [सं० बुद्धिमान + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'बुद्धिमत्ता' ।

बुद्धिमोह—संज्ञा पु० [सं०] दिमाग का काम न करना या घबड़ाना [को०] ।

बुद्धियोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान योग [को०] ।

बुद्धिलाघव—संज्ञा पु० [सं०] शीघ्र ठीक निर्णय करना । किसी विषय पर ठीक निर्णय लेने में क्षिप्रता की स्थिति [को०] ।

बुद्धिवंत—वि० [सं० बुद्धि + वंत (प्रत्य०)] बुद्धिमान् । अक्लमंद । समझदार ।

बुद्धिवाद—संज्ञा पुं० [सं० बुद्धि + वाद] १. वह वाद या विचारधारा जिसमें बुद्धि का प्राधान्य हो । २. धर्म मे भी बुद्धि को ही प्रमाण माननेवाला मत ।

बुद्धिवादी—वि० [सं० बुद्धिवादिन्] बुद्धिवाद संबंधी विचारधारा का माननेवाला ।

बुद्धिविलास—संज्ञा पु० [सं०] बुद्धि की क्रीड़ा या खेल । कल्पना [को०] ।

बुद्धिवैभव—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धि की प्रखरता । बौद्धिक सपत्ति [को०] ।

बुद्धिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धिबल [को०] ।

बुद्धिशस्त्र—वि० [सं०] ज्ञान वा बुद्धि रूपी शस्त्र से युक्त [को०] ।

बुद्धिशाली—वि० [सं० बुद्धिशालिन्] बुद्धिमान् । समझदार । अक्लमंद ।

बुद्धिशील—वि० [सं०] बुद्धिमान् । बुद्धिशाली । अक्लमंद ।

बुद्धिशुद्ध—वि० [सं०] सच्चे विचार या भाव से युक्त । सच्ची नीयतवाला [को०] ।

बुद्धिश्रीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

बुद्धिसंकीर्ण—संज्ञा स० [सं० बुद्धिसङ्कीर्ण] एक प्रकार का कक्ष [को०] ।

बुद्धिसंपन्न—वि० [सं० बुद्धिसम्पन्न] दे० 'बुद्धिशील' ।

बुधिसख—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'बुद्धिसहाय' ।

बुधिसहाय—संज्ञा पु० [सं०] । मंत्री । सचिव । वजीर ।

बुद्धिहत—वि० [सं०] जिसमे बुद्धि न हो । बुद्धिहीन । बे अकल ।

बुद्धिहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि का नष्ट करनेवाली मदिरा । मद्य । शराब ।

बुद्धिहीन—वि० [सं०] जिसे बुद्धि न हो । मूर्ख । बेवकूफ ।

बुद्धींद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० बुद्धीन्द्रिय] दे० 'ज्ञानेंद्रिय' ।

बुद्धी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० बुद्धि] दे० 'बुद्धि' ।

बुध१—संज्ञा पु० [सं०] १. सौर जगत् का एक ग्रह जो सूर्य के सबसे अधिक समीप रहता है ।

विशेष—यह प्राय: सूर्य से ३६००००० मील की दूरी पर अट्ठासी दिन मे उसकी परिक्रमा करता है । इसका व्यास प्राय: ३१०० मील के लगभग है और यह २४ घंटे ५। मिनट मे अपनी धुरी पर घूमता है । इसकी कक्षा का व्यास ७२००००० मील है । और इसकी गति प्रति घंटे प्राय: एक लाख मील है । सूर्य के बहुत समीप होने के कारण यह दूरबीन की सहायता के बिना बहुत कम देखने में आता है ।

यह न तो सूर्य से कभी बहुत पहले उदय होता है और न कभी उसके बहुत बाद अस्त होता है। इसमें स्वयं अपना कोई प्रकाश नहीं है और यह केवल सूर्य के प्रकाश के प्रतिबिंब से ही चमकता है। यह आकार में पृथ्वी का प्रायः १८ वाँ अंश है।

२. भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नौ ग्रहों में से चौथा ग्रह जो पुराणानुसार देवताओं के गुरु बृहस्पति की स्त्री तारा के गर्भ से चंद्रमा के वीर्य से उत्पन्न हुआ था।

विशेष—कहते हैं, चंद्रमा एक बार तारा को हरण कर ले गया था। ब्रह्मा तथा दूसरे देवताओं के बहुत समझाने पर भी जब चंद्रमा ने तारा को नहीं लौटाया तब बृहस्पति और चंद्रमा में युद्ध हुआ। बाद में ब्रह्मा ने बीच में पड़कर बृहस्पति को तारा दिलवा दी। पर उस समय तक तारा चंद्रमा से गर्भवती हो चुकी थी। बृहस्पति के बिगड़ने पर तारा ने तुरंत प्रसव कर दिया जिससे बुध की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त काशीखंड तथा दूसरे अनेक पुराणों में भी बुध के संबंध की कई कथाएँ हैं। यह नपुंसक, शूद्र, अथर्ववेद का ज्ञाता, रजोगुणी, मगध देश का अधिपति, बालस्वभाव, धनु के आकार का और दूर्वाश्याम वर्ण का माना जाता है। रवि और शुक्र इसके मित्र और चंद्रमा इसका शत्रु माना जाता है। किसी किसी का मत है कि इसने वैवस्वत मनु की कन्या इला से विवाह किया था जिसके गर्भ से पुरूरवा का जन्म हुआ था। यह भी कहा जाता है कि ऋग्वेद के मंत्रों का इसी ने प्रकाश किया था।

३. पंडित, विद्वान्, शास्त्रज्ञ।

४. अग्निपुराण के अनुसार एक सूर्यवंशी राजा का नाम। ५. भागवत के अनुसार वेगवान् राजा के पुत्र का नाम जो तृणबिंदु का पिता था। ६. देवता। ७. कुत्ता।

बुध(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० बोध] ज्ञान। बोध। समझ। उ०—(क) बुध का कोट सबल नाहीं टूटे। नाते मनसा कीस बीध लूटे।—रामानंद०, पृ० ३२। (ख) अजब लोग ओ कोई हैं बुध के कम। जो इंसान देते हैं लेकर दिरम।—दक्खिनी० पृ० १५१।

बुधजन—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धिमान् एवं पंडित। शिक्षित जन [को०]।

बुधजामी—संज्ञा पु० [सं० बुध + हिं० जन्मना (= उत्पन्न होना)] बुध के पिता, चंद्रमा।

बुधरत्न—संज्ञा पु० [सं०] बुध ग्रह का रत्न। पन्ना। पुखराज [को०]।

बुधवान(पु)†—वि० [हिं० बुध + वान] दे० 'बुद्धिमान'। उ०—बुल्लि सुजान करेय दीवानह। फाइथ सब लायक बुधवानह।—प० रासो,—। पृ० २०।

बुधवार—संज्ञा पु० [सं०] सात वारों में से एक वार जो बुध ग्रह का माना जाता है। यह मंगलवार के बाद और बृहस्पतिवार से पहले पड़ता है। रविवार से चौथा दिन।

बुधवासर—संज्ञा पुं० [सं०] बुध का दिन।

बुधसुत—संज्ञा पुं० [सं०] बुध का सुत। बुध का पुत्र। पुरूरवा [को०]।

बुधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी [को०]।

बुधान¹—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धिमान् व्यक्ति। ज्ञानी संत। २. आचार्य। उपदेष्टा।

बुधान²—वि० १. जानकार। विज्ञ। ज्ञानी। २. वेदशिक्षक। ३. जगा हुआ। जागरित। ४. नम्रभाषी। मृदुभाषी [को०]।

बुधि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० बुद्धि] दे० 'बुद्धि'। उ०—सूकर स्वान वृषभ खर की बुधि सोइ ओहिकाँ आवै।—जग० श०, भा० २, पृ० ६०।

बुधित—वि० [सं०] जाना हुआ। समझा हुआ [को०]।

बुधिल—वि० [सं०] बुद्धिमान्। शिक्षित। विज्ञ [को०]।

बुधिवान(पु)—वि० [हिं० बुधि + वान (प्रत्य०)] बुद्धिमान्। उ०—सोइ अरूप अखंड विराजत है, बुधिवान सोई नर अरूप को गावत है।—नट० पृ० ११।

बुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. सतह। बुनियाद। आधार। किसी वस्तु का अंतिम हिस्सा। जैसे, वृक्ष की जड़। २. आकाश। ३. शरीर। ४. शिव का एक रूप। (प्रायः 'अहि' के साथ 'बुध्न्य' रूप में भी प्रयुक्त)। ५. दस्ता। मुठिया [को०]।

बुध्य—वि० [सं०] बोध के योग्य। जानने लायक [को०]।

बुनकर—संज्ञा पुं० [सं० वयन + कर] वस्त्र बुननेवाला। जुलाहा। उ०—और बुनकरों का मुहल्ला (ठान) था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २६६।

बुनना—क्रि० स० [सं० वयन] १ जुलाहों की वह क्रिया जिससे वे सूतों या तारों की सहायता से कपड़ा तैयार करते हैं। बिनना। उ०—हमैं बात कहै को प्रयोजन का बुनिबे मैं न बीन बजाइबे मैं।—ठाकुर०, पृ० १५।

विशेष—इस क्रिया में पहले करगह में लंबाई के बल बहुत से सूत बराबर बराबर फैलाए जाते हैं, जिसे ताना कहते हैं। इसमें करगह की राछों की सहायता से ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है कि सम संख्याओं पर पड़नेवाले सूत आवश्यकता पड़ने पर विषम संख्याओं पर पड़नेवाले सूतों से अलग करके ऊपर उठाए या नीचे गिराए जा सकें। अब ताने के इन सूतों में से आधे सूतों को कुछ ऊपर उठाते और आधे को कुछ नीचे गिराते हैं। और तब दोनों के बीच में से होकर ढरकी, जिसकी नरी में बाने का सूत लपेटा हुआ होता है, एक ओर से दूसरी ओर को जाती है, जिससे बाने का सूत तानेवाले सूतों में पड़ जाता है। इसके उपरांत फिर ताने के सूतों मे से ऊपरवाले सूतों को नीचे और नीचेवाले सूतों को ऊपर करके दोनों के बीच से उसी प्रकार बाने के सूत को फिर पीछे की ओर ले जाते हैं। इसी प्रकार बार बार करने से ताने के सूतों में बाने के सूत पड़ते जाते हैं जिनसे अंत में कपड़ा तैयार हो जाता है। ताने के सूतों में उक्त

नियम के अनुसार बाने के सूतों को बैठाने की यही क्रिया 'बुनना' कहलाती है ।

२. बहुत से सीधे और बेड़े सूतों को मिलाकर उनको कुछ के ऊपर और कुछ के नीचे से निकालकर अथवा उनमें गोट आदि देकर कोई चीज तैयार करना । जैसे, गुलूबंद बुनना । जाल बुनना । ३ बहुत से तारों आदि की सहायता से उक्त क्रिया से अथवा उससे मिलती जुलती किसी और क्रिया से कोई चीज तैयार करना । जैसे, मकड़ी का जाला बुनना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

बुनवाना—क्रि० स० [हिं० बुनना] बुनने का काम कराना ।

बुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुनना + ई (प्रत्य०)] १. बुनने की क्रिया या भाव । बुनावट । २. बुनने की मजदूरी ।

बुनावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुनना+आवट (प्रत्य०)] बुनने में सूतों के मिलावट का ढंग । सूतों के संयोग का प्रकार ।

बुनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूँद + इया (प्रत्य०)] दे० 'बुँदिया' ।

बुनियाद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. जड़ । मूल । नींव । २. असलियत । वास्तविकता । ३. प्रारंभ । शुरुआत ।

क्रि० प्र०—डालना ।—देना ।—रखना ।

बुनियादी—वि० [फा० बुनियाद + ई (प्रत्य०)] मूल या नींव संबंधी । असली । मूलभूत । उ०—शुक्ल जी जीवन और साहित्य के भावों में बुनियादी अंतर नहीं मानते । —आचार्य०, पृ० ५ ।

बुबुकना—क्रि० अ० [अनु०] जोर जोर से रोना । बुक्का फाड़ना । डाढ़ मारना । उ०—जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत । —तुलसी ग्रं०, पृ० १७१ ।

बुबुकारी—संज्ञा स्त्री० [अनु० बुबुक+आरी (प्रत्य०)] डाढ़ मारकर रोने की क्रिया । बुक्का फाड़कर रोना । उ०—जहाँ तहाँ बुबुकि बिलोकि बुबुकारी देत, जरत निकेत धाव धाव लागि आगि रे ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७१ ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।

बुबुधान—वि० [सं०] दे० 'बुधान' [को०] ।

बुबुर—संज्ञा पुं० [सं०] जल । पानी [को०] ।

बुभुक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाने की इच्छा । क्षुधा । भूख ।

बुभुक्षित—वि० [सं०] जिसे भूख लगी हो । भूखा । क्षुधित । २. किसी वस्तु की इच्छा करनेवाला [को०] ।

बुभुक्षु—वि० [सं०] १. भूखा । बुभुक्षित । २. सांसारिक इच्छाओं, वासनाओं का इच्छुक । मुमुक्षु का विलोम [को०] ।

बुभुत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा । जिज्ञासा । ज्ञान की आकांक्षा [को०] ।

बुभुत्सु—वि० [सं०] जानने का इच्छुक । जिज्ञासु [को०] ।

बुभूषक—वि० [सं०] शुभ, कल्याण, शक्ति आदि का इच्छुक [को०] ।

बुभूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० बुभूषक, बुभूषु] यश की इच्छा रखना ।

बुयाम—संज्ञा पुं० [अं० ?] चीनी मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का गोल और ऊँचा बड़ा पात्र जो साधारणतः तेजाब और अचार आदि रखने के काम में आता है । जार ।

बुर†—संज्ञा स्त्री० [सं० बूरि] स्त्री की योनि । भग ।

बुरकना—क्रि० स० [अनु०] किसी पिसी हुई या महीन चीज को हाथ से धीरे धीरे किसी दूसरी चीज पर छिड़कना । भुरभुराना । उ०—सुंदर सुघर उबट जो पुर की । चोवा चदन वंदन बुरकी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१३ ।

बुरकना²—संज्ञा पुं० बच्चों की वह दावात जिसमें वे पटिया आदि पर लिखने के लिये खड़िया मिट्टी घोलकर रखते हैं । बोरका । बोरिका ।

बुरका—संज्ञा पुं० [अ० बुरक़ा] १. प्रायः थैले के आकार का मुसलमान स्त्रियों का एक प्रकार का पहनावा जो दूसरे सब वस्त्र पहन चुकने के उपरांत सिर पर से डाल लिया जाता है और जिससे सिर से पैर तक सब अंग ढके रहते हैं । इसमें का जो भाग आँखों के सामने पड़ता है, उसमें जाली लगी रहती है जिसमें चलते समय सामने की चीजें दिखाई पड़ें । उ०—बुरका डारे टारि खुदा दाखुद दिखरावै ।—पलटू०, पृ० ४२ ।

यौ०—बुरकापोश = जो बुरका ओढ़े हुए हो ।

२. वह झिल्ली जिसमें जन्म के समय बच्चा लिपटा रहता है । खेड़ी ।

बुरकाना—क्रि० स० [हिं० बुरकना का प्रे० रूप] बुरकने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को बुरकने में प्रवृत्त करना ।

बुरज, बुरिज(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुर्ज] १. दे० 'बुर्ज' । उ०—(क) बुरजै बुरजै पर घूम परी ।—ह० रासो, पृ० ७७ । २. राशि (यहाँ शरीरस्थ नाड़ी राशि) उ०—नौ से जोगणी चालिबा सार्थं, बुरिज दहूंनरि गाइबा नार्थं ।—गोरख०, पृ० १६२ ।

बुरदू—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व] १. पार्श्व । बगल । २. ओर । तरफ । ३. जहाज का बगलवाला भाग । ४. जहाज का वह भाग जो हवा या तूफान के रुख पर न पड़ता हो, बल्कि पीछे की ओर हो । (लश०) ।

बुरना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] बूड़ना । डूबना । उ०—बड़े सुधे सासु सुमध्योवाह मथा । ओठ बुरत सुरसरि के सथा ।—विद्यापति, पृ० ५११ ।

बुरा¹—वि० [सं० विरूप] [वि० स्त्री० बुरी] जो अच्छा या उत्तम न हो । खराब । निकृष्ट । मंदा ।

बुरा²—संज्ञा पुं० हानि । बुराई । शत्रुता ।

मुहा०—बुरा करना = हानि करना । बुराई करना । बुरा मानना = द्वेष रखना । वैर रखना । खार खाना । उ०—यह वाको वचन सुनत ही हरिदास के ऊपर राजा ने बोहोत बुरी मान्यो ।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० २४४ । बुरा जोग जगना या लगना = बुरे दिन आना । उ०—वाणी

के फतेपुर भ्रूभुणू के बुरो जोग जाग्यो।—शिखर०, पृ० ५४। बुरी नजर से देखना। अविश्वास से देखना। बुरी भावना से देखना उ०—उसने फकीर को बुरी नजर से देखा तो देखते ही आग में गिर पड़ी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १४३।

यौ०—बुरा भला=(१) हानि लाभ। अच्छा और खराब। (२) गाली गलौज। लानत मलामत। बुरा हाल=बुरे दिन। बुरे दिन का साथी=कष्ट और विपत्ति के समय साथ देनेवाला। बुरी नजर=अशुभ दृष्टि।

बुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुरा+ई (प्रत्य०)] १. बुरे होने का भाव। बुरापन। खराबी। २. खोटापन। नीचता। जैसे,—हमने किसी के साथ बुराई नहीं की। ३. अवगुण। दोष। दुर्गुण। ऐब। जैसे,—उसमें बुराई यही है कि वह बहुत झूठ बोलता है। ४. किसी के संबंध में कही हुई कोई बुरी बात। निंदा। जैसे,—तुम तो सबकी बुराई ही करते फिरते हो।

यौ०—बुराई भलाई।

मुहा०—बुराई आगे आना=किए हुए बुरे काम का बुरा फल मिलना।

बुरादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुरादह्] १. वह चूर्ण जो लकड़ी को आरे से चीरने पर उसमें से निकलता है। लकड़ी का चूरा। कुनाई। २. चूर्ण। चूरा (क्व०)।

बुरापन—संज्ञा पुं० [हिं० बुरा+पन (प्रत्य०)] दे० 'बुराई'।

बुरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भग। योनि [को०]।

बुरुज(ॶ)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुर्ज] दे० 'बुर्ज'। उ०—चौदह बुरुज दसो दरवाजा।—कबीर० श०, पृ० ७।

बुरुड—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति जिसकी गणना अंत्यजों में होती है। डोलची, चटाई आदि बनानेवाली जाति।

बुरुल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा वृक्ष जो हिमालय में १३००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी छाल बहुत सफेद और चमकीली होती है जिससे पहाड़ी लोग झोपड़े बनाते हैं। इसकी लकड़ी छत पाटने और पत्ते चारे के काम में आते हैं।

बुरुश—संज्ञा पुं० [अं० ब्रश] अंग्रेजी ढंग की बनी हुई किसी प्रकार की कूँची जो चीजों को रँगने, साफ करने या पालिश आदि करने के काम में आती है।

विशेष—बुरुश प्रायः कूटी हुई मूँज या कुछ विशेष पशुओं के बालों अथवा कृत्रिम रेशों से बनाए जाते हैं और भिन्न भिन्न कार्यों के लिये भिन्न भिन्न आकार प्रकार के होते हैं। रंग भरने या पालिश आदि करने के लिये जो बुरुश बनते हैं, उनमें प्रायः मूँज या बालों का एक गुच्छा किसी लंबी लकड़ी या दस्ते के सिरे पर लगा रहता है। चीजों को साफ करने के लिये जो बुरुश बनाए जाते हैं, उनमें प्रायः काठ के एक चौड़े टुकड़े में छोटे छोटे बहुत से छेद करके उनमें एक विशेष क्रिया और प्रकार से मूँज या बालों के छोटे छोटे गुच्छे भर देते हैं। कभी कभी ऐसे काठ के टुकड़ों में एक दस्ता भी लगा दिया जाता है। बुरुश प्रायः मूँज या नारियल, बेंत आदि के रेशों से अथवा घोड़े, गिलहरी, ऊँट, सूअर, भालू, बकरी आदि पशुओं के बालों से बनाए जाते हैं। साधारणतः बुरुश का उपयोग कपड़े, टोपियाँ, चिमनियाँ, तरह तरह के दूसरे सामान, बाल, दाँत आदि साफ करने अथवा किसी चीज पर रंग आदि चढ़ाने में होता है।

बुरूस‡—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लाल फूलोंवाला पौधा। उ०—लाल बुरूसों के मधु छत्तों से थी भरी बनानी।—अतिमा, पृ० १५।

बुर्ज—संज्ञा पुं० [अ०] १. किले आदि की दीवारों में, कोनों पर आगे की ओर निकला अथवा आस पास की इमारत से ऊपर की ओर उठा हुआ गोल या पहलदार भाग जिसके बीच में बैठने आदि के लिये थोड़ा सा स्थान होता है। प्राचीन काल में प्रायः इसपर रखकर तोपें चलाई जाती थीं। गरगज। २. मीनार का ऊपरी भाग अथवा उसके आकार का इमारत का कोई अंग। ३. गुंबद। ४. गुब्बारा। ५. ज्योतिष में राशिचक्र।

बुर्जी—संज्ञा स्त्री० [अ० बुर्ज+ई] छोटा बुर्ज।

बुर्जुआ—संज्ञा पुं० [फरासीसी > अं० बुर्ज्वा] धनिक मध्यमवर्गीय जन। अभिजात जन। अभिजात जनों से संबद्ध वस्तु या व्यवहार।

बुर्द—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. ऊपरी आमदनी। ऊपरी लाभ। नफा। २. शर्त। होड़। बाजी। ३. शतरंज के खेल में वह अवस्था जब सब मोहरे मर जाते हैं और केवल बादशाह रह जाता है। उस समय बाजी 'बुर्द' कहलाती है और आधी मात समझी जाती है। ४. बेलबूटावाली चादर। नक्सी चादर (को०)।

बुर्दबार—वि० [फ़ा०] १. बोझा उठानेवाला। २. सहिष्णु। सहनशील।

बुर्दबारी—संज्ञा स्त्री० [फा० बुर्दबार+ई] सहनशीलता। सुशीलता। उ०—यह मुरौवत सखावत बुर्दबारी खाकसारी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

बुर्दा—संज्ञा पुं० स्त्री० [तु० बुर्दह्] १. गुलाम। २. कनीज। बाँदी [को०]।

बुर्दाफरोश—संज्ञा पुं० [तु० बुर्दह्+फ़रोश (प्रत्य०)] १. गुलामों को बेचनेवाला। दास दासियों को बेचनेवाला व्यक्ति। २. वह व्यक्ति जो औरतों को भगाकर बेचता हो। औरतों को उड़ाकर बेचनेवाला व्यापारी।

बुर्दाफरोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बुर्दाफरोश+ई (प्रत्य०)] बुर्दाफरोश का काम। औरतों को बेचने का काम।

बुर्राक¹—संज्ञा पुं० [अ० बुराक] मुसलमानों के मतानुसार वह घोड़ा जिसपर सवार होकर उनके रसूल हजरत मुहम्मद जरूसलम से स्वर्ग गए थे। उ०—आगे चलकर वह बुर्राक अश्व भी रह गया।—कबीर मं०, पृ० ८६।

बुर्राक²—वि० [फ़ा० बुर्रा (=तीक्ष्ण)?] धारदार। तीक्ष्ण। चमकदार। जैसे, बुर्राक सफेद।

बुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुरकना] बोने का वह ढंग जिसमें बीज हल की जोत मे डाल दिए जाते हैं और उसमे से आपसे आप गिरते चलते हैं।

बुर्श—संज्ञा पुं० [हिं० बुरुश] दे० 'बुरुश'।

बुलंद—वि० [फा० बलंद, बुलंद] १. भारी। उत्तुंग। जैसे, बुलंद आवाज, बुलंद हौसला। २. जिसकी ऊँचाई अधिक हो। बहुत ऊँचा।

बुलंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० बलंदी] १. बुलंद होने का भाव। २. उच्चता। ऊँचाई।

बुलडाग—संज्ञा पुं० [अं०] मझोले आकार का एक प्रकार का विलायती कुत्ता जो बहुत बलवान्, पुष्ट और देखने में भयंकर होता है।

बुलनाⓅ‡—क्रि० स० [प्रा० बुल्ल] दे० 'बोलना'। उ०—बुलंत वाणि कोकिला, विपच्ची सुरं मिला।—पृ० रासो, पृ० २४।

बुलबुल—संज्ञा स्त्री० [अ०, फ़ा०] एक प्रसिद्ध गानेवाली छोटी चिड़िया जो कई प्रकार की होती है और एशिया, यूरोप तथा अमेरिका में पाई जाती है।

विशेष—इसका रंग ऊपर की ओर काला, पेट के पास भूरा और गले के पास कुछ सफेद होता है। जब इसकी दुम कुछ लाल रंग की होती है तब इसे 'गुलदुम' कहते हैं। यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है और झाड़ियों या जंगलों आदि में जमीन पर या उससे कुछ ही ऊँचाई पर घोंसला बनाकर रहती है और ४, ५ अंडे देती है। यह ऋतु के अनुसार स्थान का परिवर्तन करती है। इसका स्वर बहुत ही मधुर होता है और इसीलिये लोग इसे पालते भी हैं। कहीं कहीं लोग इसको लड़ाते भी हैं। जंगलों आदि में यह दिखाई तो बहुत कम पड़ती है, पर इसका मनोहर शब्द प्रायः सुनाई पड़ता है। फारसी और उर्दू के कवि इसे फूलों के प्रेमी नायक के स्थान मे मानते हैं। (उर्दू वाले इस शब्द को पुं० मानते हैं)।

बुलबुलचश्म—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की सहिली (पक्षी)।

बुलबुलबाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुलबुलबाज] वह जो बुलबुल पालता या लड़ाता हो। बुलबुल का खिलाड़ी या शौकीन।

बुलबलवाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बुलबुल पालने या लड़ाने का काम। बुलबुलबाज का काम।

बुलबुला—संज्ञा पुं० [सं० बुद्बुद या देशी] पानी का बुल्ला। बुदबुदा।

बुलबुलाना—क्रि० अ० [हिं० बुलबुला+ना (प्रत्य०)] तरल पदार्थ या जल में बुदबुद उठाना। उ०—उसका जीवन उत्साह से वैसे ही बुलबुला रहा था जैसे नदी की पतली, क्षीण परंतु सजीव धारा अपने स्रोत पर बुलबुलाती है।—अभिशप्त, पृ० ५६।

बुलवनⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बुलावा'। उ०—सासु ननद के बुलवन उत्तर का देहु हो।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० २।

बुलवाना—क्रि० स० [हिं० बुलाना का प्रे०रूप] बुलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को बुलाने में प्रवृत्त करना।

बुलहवस—वि० [अ०] लोभी। उ०—गुजर है तुम तरफ हर बुलहवस का। हुआ धावा मिठाई पर मगस का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४।

बुलाक—संज्ञा पुं० [तु० बुलाक] १. वह लंबोतरा या सुराहीदार मोती जिसे स्त्रियाँ प्रायः नथ में या दोनों नथनों के बीच के परदे में पहनती हैं। उ०—स्याम स्वरूप में सोहै बुलाक सखी मत भाव सोहाग जो लीजै।—पजनेस०, पृ० १३। २. नथनों के बीच का परदा। नाक के बीच की सीधी हड्डी (को०)।

बुलाकी—संज्ञा पुं० [तु० बुलाक] घोड़े की एक जाति। उ०—मुश्की और हिरमंजि इराकी। तुरकी कशी भुथोर बुलाकी।—जायसी (शब्द०)।

बुलाना—क्रि० स० [हिं० बोलना का सक० रूप] १. आवाज देना। पुकारना। २. अपने पास आने के लिये कहना। ३. किसी को बोलने में प्रवृत्त करना। बोलने मे दूसरे को लगाना।

बुलावा—संज्ञा पुं० [हिं० बुलाना+आवा (प्रत्य०)] १. बुलाने की क्रिया या भाव। २. निमंत्रण।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—भेजना।

बुलाह—संज्ञा पुं० [सं० वोल्लाह] वह घोड़ा जिसकी गर्दन और पूँछ के बाल पीले हों। —अश्ववैद्यक (शब्द०)।

बुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योनि। भग (हिं०)। २. भय। भीति (को०)।

बुलिन—संज्ञा स्त्री० [अं० बुलियन] एक विशेष प्रकार का रस्सा जो चौकोर पाल के लग्घे में बाँधा जाता है। (लश०)।

बुलेट—संज्ञा स्त्री० [अं०] बंदूक, राइफल आदि की गोली।

बुलेटिन—संज्ञा पुं० [अ०] १. किसी सार्वजनिक विषय पर सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति का वक्तव्य या विवरण। जैसे,—सत्याग्रह कमिटी के प्रचार मंत्री ने एक बुलेटिन निकाला है जिसमें लोगों से कहा गया है कि वे ऐसे समाचारों पर विश्वास न करें। २. किसी राजा, महाराज, राजपुरुष या देश के प्रमुख नेता के स्वास्थ्य के संबंध मे सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति की रिपोर्ट या विवरण। जैसे,—राज्य के प्रधान डाक्टर के हस्ताक्षर से सवेरे ७ बजे एक

बुलेटिन निकला जिसमें लिखा था कि महाराज का स्वास्थ्य सुधर रहा है।

बुलेली—संज्ञा पुं० [तामिल] मझोले आकार का एक पेड़ जो मैसूर और पूर्वी घाट मे अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी सफेद और चिकनी होती है और तस्वीरों के चौखटे, मेज, कुर्सियाँ आदि बनाने के काम में आती है। इसके बीजो से एक प्रकार का तेल निकलता है जो मशीनो आदि के पुरजों में डाला जाता है।

बुलौआ, बुलौवा—संज्ञा पुं० [हिं० बुलाना] दे० 'बुलावा'।

बुल्लन¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. मुँह। चेहरा। (दलाली)। २. गिरई की तरह की पर भूरे रंग की एक मछली जिसके मूछें नही होतीं।

बुल्लन²—संज्ञा पुं० [अनु० या हिं० बुलबुला] पानी का बुलबुला। बुद्बुद।

बुल्लना⑤—क्रि० स० [प्रा० बोल्ल, बुल्ल+हिं० ना (प्रत्य०)] दे० 'बोलना'। उ०—(क) वरषि कदम सुबन्न चढ़ि लज्जित वहु वर बाल। हथ्थ जोरि सम सो भई प्रभु बुल्ले बछपाल। —पृ० रा०, २।३७८। (ख) चढ़ि कदम बुल्ले सु प्रभु मधुरित मिष्टत बानि।—पृ० रा०, २।३७९।

बुल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० बुलबुला] बुदबुदा। उ०—पानी मँह जस बुल्ला तस यह जग उतराइ। एकहि आवत देखिए एक है जात बिलाइ।—जायसी (शब्द०)।

बुष, बुस—संज्ञा पुं० [सं० बुष, बुस] १. अनाज आदि के ऊपर का छिलका। भूसी। २. हटा देने योग्य वस्तु (को०)। ३. जल (को०)। ४. संपत्ति (को०)। ५. सूखा कंडा। सूखा गोबर (को०)।

बुसतान⑤—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुस्ताँ] उद्यान। वाटिका। उपवन। उ०—सो गुल खिला बुसतान में। वू फैल हिंदुस्तान मे। —कबीर मं०, पृ० ३९०।

बुसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी बहन। (नाट्य०)।

बुस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. भुने हुए मास का जला हुआ ऊपरी पर्त। २. फल का छिलका। फल का आवरण (को०)।

बुहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भौंरना (=भूनना)] दे० 'बहुरी'।

बुहारना—क्रि० स० [सं० बहुकर+हिं० ना (प्रत्य०)] झाड़ से जगह साफ करना। झाड़ू देना। झाड़ना। उ०—द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि। कौरेन सथिया चीतति नव निधि।—सूर (शब्द०)।

बुहारा¹—संज्ञा पुं० [हिं० बुहारना] ताड़ की सींकों का बना हुआ बड़ा झाड़ू।

बुहारा²—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार] दे० 'व्यवहार'। उ०—ऐसे ऐसे फरत बुहारा। आए साहिब के हलकारा।—रामानंद०, पृ० ६।

बुहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० बहुकरी, हिं० बुहारना+ई (प्रत्य०)] झाड़ू। बढ़नी। सोहनी।

बूँच, बूँछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँछ] एक प्रकार की मछली। दे० 'गूँछ'।

बूँद¹—संज्ञा स्त्री० [सं० विन्दु] १. जल या और किसी तरल पदार्थ का वह बहुत ही छोटा अंश जो गिरने आदि के समय प्रायः छोटी सी गोली या दाने आदि का रूप धारण कर लेता है। कतरा। टोप। जैसे, पानी की बूँद, ओस की बूँद, खून की बूँद, पसीने की बूँद।

मुहा०—बूँद गिरना या पड़ना = धीमी वर्षा होना। थोड़ा थोड़ा पानी बरसना। बूँद भर = बहुत थोड़ा।

यौ०—बूँदाबाँदी।

२. वीर्य। ३. एक प्रकार का रंगीन देशी कपड़ा।

विशेष—इसमे बूँदों के आकार की छोटी छोटी बूटियाँ बनी होती है और यह स्त्रियों के लहँगे आदि बनाने के काम में आता है।

बूँद²—वि० बहुत अच्छा या तेज।

विशेष—इस अर्थ मे इसका व्यवहार केवल तलवार, कटार, आदि काटनेवाले हथियारों और शराब के सबंध मे होता है।

बूँदा—संज्ञा पुं० [हिं०] १. बड़ी टिकुली। २. सुराहीदार मणि या मोती जो कान या नथ मे पहना जाता है।

बूँदाबाँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूँद+अनु० बाँद] अल्प वृष्टि। हलकी या थोड़ी वर्षा।

बूँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूँद+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार की मिठाई जो अच्छी तरह फेंटे हुए बेसन को झरने में से बूँद बूँद टपकाकर और घी मे छानकर बनाई जाती है। बुँदिया।

विशेष—यह मीठी और नमकीन दो प्रकार की होती है। नमकीन बूँदी बनाने के लिये पहले ही बेसन को घोलते समय उसमे नमक, मिर्च आदि मिला देते हैं, पर मीठी बूँदी बनाने के लिये बेसन घोलते समय उसमे कुछ नहीं मिलाया जाता। उसे घो में छानकर शीरे में डुबा देते हैं और तब फिर काम में लाते हैं। छोटे दानों की बूँदी का लड्डू भी बाँधते हैं जो 'बूँदी का लड्डू' कहलाता है। ऐसे ही लड्डू पर जब कंद या दाने का चूर लपेट देते हैं तब वह मोतीचूर का लड्डू कहलाता है।

२. वर्षा के जल की बूँद।

क्रि० प्र०—पड़ना।

बूँबा†—संज्ञा स्त्री० [देश० या अनु०] पुकार। चिल्लाहट। आवाज। उ०—सूँब सूँब कहै सरव दिन, जाचक पाड़ै बूँब। सिद्ध दिगंवर बाजही, ज्यूँ धनवंतो सूँब।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३५।

बू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वास। गंध। महक। २. दुर्गंध। बदबू। ३. तौर तरीका। ढग (को०)। ४. आनबान। ठसक (को०)। ५. सुराग (को०)।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।

यौ०—बूबास=बू। गंध।

बूआ—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पिता की बहन । फूफी । २. बड़ी बहन । ३. स्त्रियों का परस्पर आदरसूचक संबोधन । (मुसल०) । ४. एक प्रकार की मछली जो भारत की बड़ी बड़ी नदियों में पाई जाती है । इसका मांस रूखा होता है । ककसी ।

बूई—संज्ञा पुं० [देश०] ऊमरी और ग्वार आदि की जाति का एक प्रकार का पौधा जो दिल्ली से सिंध तक और दक्षिण भारत में पाया जाता है । इसे जलाकर सज्जीखार निकालते हैं । कौड़ा ।

बूक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] माजूफल की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष । बलसी ।

विशेष—यह पूर्वी हिमालय में ५००० से ९००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है और प्रायः ७५ से १०० हाथ ऊँचा होता है । इसकी लकड़ी यदि सूखे स्थान में रहे तो बहुत दिनों तक खराब नहीं होती । इस लकड़ी से खंभे, चौखटे और धरनें आदि बनाई जाती हैं । दार्जिलिंग के आस पास के जंगलों में इससे बढ़कर उपयोगी और कोई वृक्ष कदाचित् ही होता है । वहाँ इसकी पत्तियों से चमड़ा भी सिझाया जाता है ।

बूक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बकोटा] हाथ के पंजों की वह स्थिति जो उँगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को पकड़ने, उठाने या लेने के समय होती है । चंगुल । बकोटा । उ०—पुनि सँधान बहु आनहिं परसहिं बूकहि बूक । करे सँवार गुसाईं जहाँ परी कछु चूक ।—जायसी (शब्द०) ।

बूका[3]—संज्ञा पुं० [सं० बुक्क (=वक्ष), बँ०, बूक] कलेजा । हृदय । वक्ष ।

बूकना—क्रि० स० [सं० वृक्ण (=तोड़ा फोड़ा हुआ)] १. सिल और बट्टे की सहायता से किसी चीज को महीन पीसना । पीसकर चूर्ण करना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

२. अपने को अधिक योग्य प्रमाणित करने के लिये गढ़ गढ़कर बातें करना । जैसे, कानून बूकना, अँग्रेजी बूकना ।

बूका[1]—संज्ञा पुं० [सं० बुक्कन (=बुकड़ा)] दे० 'बूक[2]' ।

बूका[2]—संज्ञा पुं० [देश०] वह भूमि जो नदी के हटने पर निकलती है । गंगबरार ।

बूका[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० बूकी] दे० 'बुक्का' । उ०—भरि भरि फेंटनि बूका बंदनि कूदि परे सब ग्वाला । जुवति जूथ मे जुवति भेष तहाँ राजत है नंदलाला ।—छीत०, पृ० २२ ।

बूगा†—संज्ञा पुं० [देश०] भूसा ।

बूच[1]—संज्ञा पुं० [अं० बूच] बड़ी मेख । (लश०) ।

मुहा०—बूच मारना=गोले या गोली आदि की मार से होनेवाले छेद को डाट लगाकर बंद करना ।

बूच[2]—संज्ञा पुं० [अं० बंच (= गुच्छा)] कपड़े, कागज या चमड़े आदि का वह टुकड़ा जो बंदूक आदि में गोली या बारूद को यथास्थान स्थिर रखने के लिये उसके चारों ओर लगाया जाता है । (लश०) ।

बूच[3]—वि० [सं० बुस (=विभाग करना) अथवा] [सं० व्युच्छिन्न, प्रा० वोच्छिन्न, वुच्छिन्न] रहित । वियुक्त । छिन्न । उ०—सतगुरु तेग तरक जम काढ़ा नाक कान कर बूच ।—संत तुलसी०, पृ० १६४ ।

बूचड़—संज्ञा पुं० [अं० बुचर] वह जो पशुओं का मांस आदि बेचने के लिये उनकी हत्या करता है । कसाई ।

यौ०—बूचड़खाना ।

बूचड़खाना—संज्ञा पुं० [हिं० बूचड़+फा० खाना] वह स्थान जहाँ पशुओं की हत्या होती है । कसाईबाड़ा ।

बूचा—वि० [सं० बुस (=विभाग करना)] १. जिसके कान कटे हों । कनकटा । २. जिसके ऐसे अंग कट गए हों, अथवा न हों जिनके कारण वह कुरूप जान पड़ता हो । जैसे,—पत्तियाँ झड़ जाने के कारण यह पेड़ बूचा मालूम होता है । ३. जिसके साथ कोई सौंदर्य बढ़ानेवाला उपकरण न हो । नंगा । खाली ।

बूची—वि० [हिं० बूचा] वह भेड़ जिसके कान बाहर निकले हुए न हों बल्कि जिसके कान के स्थान में केवल छोटा सा छेद ही हो । गुजरी ।

बूजन—संज्ञा पुं० [फा० बूज़न] बंदर । (कलंदर) ।

बूजना—क्रि० स० [?] छिपना । धोखा देना । उ०—पाड़ा बूजी भगति है लोहर बाढ़ा माहिं । परगट पेड़ाइत बसै तहँ संत काहे को जाहिं ।—दादू (शब्द०) ।

बूजीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० बूज़ीनह्] बंदर । मर्कट [को०] ।

बूझ, बूझि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० बुद्धि] १. समझ । बुद्धि । अकल । ज्ञान । उ०—राजै सरब कथा कही, सोहिल सागर जूझि । औ पुनि उपजी चेत कछु, हिए परा जनु बूझि ।—चित्रा०, पृ० १८४ । २. पहेली ।

बूझन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूझना] दे० 'बूझ'

बूझना†—क्रि० स० [हिं० बूझ (=बुधि)] १. समझना । जानना । जैसे,—किसी के मन की बात बूझना । पहेली बूझना । उ०—(क) मुझे मत बूझ प्यारे अपना दुशमन । कोई दुशमन हुआ है अपनी जाँ का ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २८ । (ख) मैंर अबूझी बूझिया, पूरी पड़ी बलाइ ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५१ । २. पूछना । प्रश्न करना ।

बूझनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूझना] बूझने की क्रिया । पूछ ताछ । उ०—जब अति सखिन बूझनी लई । तब हँसि कुँवरि गोद लुठि गई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १२६ ।

बूझवारा(पु)—वि० [हिं० बूझ+वारा (प्रत्य०)] समझदार । उ०—बीघा ह्वै गइ बाँझ बूझवारे नहि दीसत । दौरयो आवत काल को जकरि दसनन पीसत ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५४ ।

बूट[1]—संज्ञा पुं० [सं० विटप, हिं० बूटा] १. चने का हरा पौधा । २.

चने का हरा हरा दाना। ३. वृक्ष। पेड़ पौधा। उ०—सीता राम लषन निवास बास मुनिन को सिद्धि साधु साधक बिबेक बूट सों।—तुलसी (शब्द०)।

बूट२—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अंग्रेजी ढंग का जूता जिससे पैर के गट्टे तक ढँक जाते है।

बूटनिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहूटी] बीर बहूटी नाम का कीडा। उ०—आछी भूमि हरी हरी आछी बूटनि की रेंगनि काम करोरनि।—हरिदास (शब्द०)।

बूटा—संज्ञा पु० [सं० विटप] १. छोटा वृक्ष। पौधा। २. एक छोटा पौधा जो पश्चिमी हिमालय मे गढ़वाल से अफगानिस्तान तक पाया जाता है। ३. फूलों या वृक्षों आदि के आकार के चिह्न जो कपड़ो या दीवारो आदि पर अनेक प्रकार से (जैसे, सूत, रेशम, रग आदि की सहायता से) बनाए जाते हैं। बड़ी बूटी।

यौ०—वेलबूटा = किसी चीज पर बनाए हुए फूल पत्ते। बूटेदार = जिसपर बूटे बने हों।

बूटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बूटा का स्त्री० रूप] १. वनस्पति। वनौषधि। जड़ी। २. भाँग। भंग। (मुहा० के लिये दे० 'भग')। ३. एक पौधा जिसके रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। ऊदल। गुलबादला। ४. फूलो के छोटे चिह्न जो कपड़ों आदि पर बनाए जाते हैं। छोटा बूटा। ५. खेलने के ताश के पत्तों पर बनी हुई टिक्की।

बूठनाⓅ— क्रि० अ० [सं० वृष्ट, प्रा० बुट्ठ (=बरसा हुआ)] बरसना। वर्षा होना। उ०—(क) मारवणी प्रिय संभलउ नयणे बूठा नीर।—ढोला०, दू० १८। (ख) कबीर यहु मन कत गया जो मन होता काल्हि। डूँगरि बूठा मेह ज्यूँ, गया निवाणां चालि।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०।

बूड़, बूड़न†—संज्ञा स्त्री० [अनु० बुड़बुड़ (=डूबने का शब्द)] जल की इतनी गहराई जिसमें आदमी डूब सके। डुबाव।

बूड़ना—क्रि० स० [सं० ब्रुड् (=डूबना)] १. डूबना। निमज्जित होना। गर्क होना। उ०—(क) बूड़े सकल समाज चढ़े जो प्रथमहि मोह बस।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बूड़त भव निधि नाव निबाहक। निगुणिन के तुमही गुणगाहक —रघुराज सिंह (शब्द०)। २. लीन होना। निमग्न होना। गूढ विचार करना। उ०—दशा गुनि गौरि की बिलोकि गेह बारे लो एरी सखी रोग ठहराय राख्यो सबहू। बूड़ि बूड़ि बैदन सों एक ते सरस एक हारें नाहि उपचार करत हैं अबहूँ।—रघुनाथ (शब्द०)।

सयो०—क्रि०—जाना।

बूड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] वर्षा आदि के कारण होनेवाली जल की बाढ।

क्रि० प्र०—आना।

बूढ़Ⓟ†१—वि० [सं० वृद्ध, प्रा० बुड्ढ] दे० 'बुड्ढा'। उ०—बूढ़ भएसि न त मरतेउ तोही।—मानस, ६।४८।

बूढ़२—संज्ञा पुं० [प्रा० बूठ (= वृष्टि)?] १. लाल रंग। २. बीर बहूटी। उ०—रस कैसे रुख ससिमुखी हँसि हँसि बोलत बैन। गूढ़ मान मन क्यों रहै भए बूढ रँग नैन।—बिहारी (शब्द०)।

बूढ़ा१—संज्ञा पु० [सं० वृद्ध] [स्त्री० बूढ़ी] दे० 'बुड्ढा'।

बूढ़ा†२—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुड्ढा] बुड्ढी स्त्री।

बूत—संज्ञा पुं० [सं० वृत्त (=परिधि)] दे० 'बूता'। उ०—(क) 'को चढ़ि नाघै समुद ए, है काकर अस बूत।—जायसी ग्रं०, पृ० ५६। (ख) कहिन रहे दोउ राजा होही। ऐसे बूत दसे सब तोही।—जायसी (शब्द०)।

बूता—संज्ञा पु० [सं० वृत्त या वित्त] बल। पराक्रम। शक्ति। उ०—देव कृपा कजरा दृग की पलकैं न उठैं जिहि सो निज बूते।—सेवक (शब्द०)।

बूथड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] आकृति। चेहरा। सूरत। शकल। (दलाल)।

बूना—संज्ञा पु० [देश०] चनार नाम का वृक्ष। दे० 'चनार'।

बूम१—संज्ञा पु० [अं०] १. वह लट्ठा जो जहाजो के पाल के नीचे के भाग में, उसको फैलाए रखने के लिये लगाया जाता है। २. बहुत से लट्ठों आदि को बाँधकर तैयार की हुई वह रोक जो नदी में लकड़ियो आदि को बह जाने से रोकने के लिये लगाई जाती है। ३. लट्ठों या तारो आदि से बनाई हुई वह रोक जो बदरों में इसलिये लगा दी जाती है जिसमें शत्रु के जहाज अदर न आ सकें। ४. वह लट्ठा जो नदी आदि में नावों को छिछले पानी से बचाने और ठीक मार्ग दिखलाने के लिये गाड़ा रहता है। (लश०)।

बूम२—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. धरती। पृथ्वी। २. उलूक। उल्लू। उ०—बुलबुल गुजरा जाए नशी बूम हुआ है।—कबीर मं०, पृ० १४१।

बूर—संज्ञा पु० [देश०] [संज्ञा स्त्री० बूरि] १. पश्चिम भारत में होनेवाली एक प्रकार की घास। खोई। उ०—थल मथ्थइ जल बाहिरी, काँइ लवू की बूरि। मीठा बोला घण सहा, सज्जण मूक्या दूरि।—ढोला०, दू० ३६०।

विशेष—इस घास के खाने से गौओं, भैसों, आदि का दूध और दूसरे पशुओ का बल बहुत बढ़ जाता है। इसमें एक प्रकार की गध होती है और यदि गौएँ आदि इसे अधिक खाती हैं तो उनके दूध में भी वही गध आ जाती है। यह दो प्रकार की होती है। एक सफेद और दूसरी लाल। यह सुखाकर १०—१५ वर्षों तक रखी जा सकती है।

†२. आटे आदि का चोकर। चून की कराई।

बूरनाⓅ†१—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'डूबना'।

बूरना†२—क्रि० स० [हिं० पूरना] १. किसी कार्य को पूरा करना। २. बटना। बरना।

बूरा—संज्ञा पु० [हिं० भूरा] १. कच्ची चीनी जो भूरे रंग की होती है। शक्कर। २. साफ की हुई चीनी। उ०—और चाँवर

सीधो, नए बासन में बूरा, तुअर आदि सर्व सामान घर मे हतो सो हरिवस जी को सवं वस्तू दिखाई।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ७५। ३. महीन चूर्ण। सफूफ।

बूरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बहुत छोटी वनस्पति, जो पौधो, उनके तनों, फूलो और पत्तो आदि पर उत्पन्न हो जाती है और जिसके कारण वे पदार्थ सड़ने या नष्ट होने लगते हैं। अंगूर के लिये यह विशेष प्रकार से घातक होती है। इसकी गणना वृक्षो आदि के रोगों मे होती है।

बूर्जवा—वि० [फ़ा० बुर्जुआ] बुर्जुआ से सबद्ध। उ०—इसे आपके समान बूर्जवा मनोवृत्ति के लोग नही समझ सकते। —संन्यासी, पृ० ४८१।

बूला—संज्ञा पुं० [देश०] पयाल का बना हुआ जूता। लवड़ी।

बृंद—संज्ञा पुं० [स० वृन्द] दे० 'वृंद'।

बृंदा—संज्ञा स्त्री० [स० वृन्दा] दे० 'वृंदा'। उ०—जहाँ वृंदा मति भली विधि रची वनक वनाय।—घनानंद, पृ० २०१।

यौ०—वृंदारण्य। वृंदावन।

बृच्छ—संज्ञा पुं० [स० वृक्ष] दे० 'वृक्ष'। उ०—सैलनि मैं ज्यो सुमेर लसै वर वृक्षनि मैं कलपद्रुम सालै।—मति० ग्रं०, पृ० ३७०।

बृखभानु(पु)†—संज्ञा पुं० [स० वृषभानु] दे० 'वृषभानु'। उ०—उठी विहँसि बृखभानु कुँवरि वर कर पिचकारी लेत।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८२।

यौ०—बृखभानु कुँवरि। बृखभानुनदिनी।

बृच्छ(पु)†—संज्ञा पुं० [स० वृक्ष] दे० 'वृक्ष'। उ०—सबै वृच्छ फुल्ले फले भार झूलें।—ह० रासो, पृ० ३५।

बृजिन—संज्ञा पुं० [स० वृजिन] दे० 'वृजिन'।—अनेकार्थ०, पु० ४०।

बृटिश—वि० [अ० ब्रिटिश] दे० 'ब्रिटिश'।

बृतंत(पु)—संज्ञा पुं० [स० वृत्तान्त] दे० 'वृत्तांत' उ०—जो वोहि लोक लखन की बनंन कहवे वाक वृतंत।—संत तुरसी०, पृ० २११।

बृत्त—संज्ञा पुं० [स० वृत्त] दे० वृत्त'। उ०—अब वृत्त कहे छल चातुरता।—ह० रासो०, पृ० १५६।

बृद्धि—संज्ञा स्त्री० [स० वृद्धि] दे० 'वृद्धि'।

बृष—संज्ञा पुं० [स० वृष] १. साँड़। बैल।

यौ०—वृषकेतु। वृषध्वज।

२. मोरपख। ३. इंद्र। उ०—हमरे आवत रिस करत अस तुम गए मुटाइ। पठइ पत्रिका बान कर लखि वृष रहे लुपाइ। —विश्राम (शब्द०)। ४. बारह राशियों मे से दूसरी राशि। दे० 'वृष'। उ०—दुसह विरह वृष सुर सम चलत कहत अब आप। तिय की कोमल प्रेम तरु क्यो सहिहै संताप।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

बृसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी संत महात्मा का आसन। ऋषि का आसन [को०]।

विशेष—संस्कृत में इसी अर्थ में बृषिका, बृसिका, बृषी और बृषी रूप भी प्राप्त होते हैं।

बृहत्[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० बृहती] १. बहुत बड़ा। विशाल। बहुत भारी। २. दृढ़। बलिष्ठ। ३. पर्याप्त। ४. उच्च। ऊँचा। (स्वर आदि)।

विशेष—संस्कृत में सधि संबंधी नियमो के आधार पर इसके बृहच्, बृहज्, बृहड्, बृहद् और बृहन् रूप भी होते हैं। जैसे,—बृहच्चक्षु, बृहज्जन, बृहड्ढानु, बृहन्नला, आदि। इस शब्द से बननेवाले अन्य यौगिक शब्दों के लिये देखिए 'बृहत्' शब्द।

बृहत्[2]—संज्ञा पुं० एक मरुत् का नाम।

बृहतिका—संज्ञा स्त्री० [स०] दुपट्टा। उपरना [को०]।

बृहती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटाई। बनभंटा। वनभंटा। २. विश्वावसु गधर्व की वीणा का नाम। ३. उत्तरीय वस्त्र। उपरना। ४. कंटकारी। भटकटैया। ५. सुश्रुत के अनुसार एक मर्मस्थान जो रीढ के दोनो ओर पीठ के बीच में है। यदि इस मर्मस्थान मे चोट लगे तो बहुत अधिक रक्त जाता है और अंत में मृत्यु हो जाती है। ६. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे नौ अक्षर होते हैं। ७. वाक्य।

बृहतीकल्प—संज्ञा पुं० [स०] वैद्यक मे एक प्रकार का कायाकल्प।

बृहतीपति—संज्ञा पुं० [स०] बृहस्पति।

बृहत्कंद—संज्ञा पुं० [सं० बृहत्कन्द] १. विष्णु कंद। २. गाजर।

बृहत्तर—वि० [सं०] विशाल। विस्तृत।

बृहत्तृण—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

बृहत्त्वच्—संज्ञा पुं० [सं० बृहत्त्वक्] नीम का वृक्ष।

बृहत्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथीकद। २. सफेद लोध। ३. कासमर्द।

बृहत्पर्ण—संज्ञा पुं० [स०] सफेद लोध।

बृहत्पाटलि—संज्ञा पुं० [स०] धतूरे का पेड़।

बृहत्पाद—संज्ञा पुं० [स०] वट वृक्ष। बड़ का पेड़।

बृहत्पाली—संज्ञा पुं० [सं० बृहत्पालिन्] वनजीरा।

बृहत्पीलु—संज्ञा पुं० [स०] महापीलु। पहाड़ी अखरोट।

बृहत्पुष्प—संज्ञा पुं० [स०] १. पेठा। २. केले का वृक्ष।

बृहत्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सन का पेड़।

बृहत्फल—संज्ञा पुं० [स०] १. चिचिडा। चिचड़ा। २. कुम्हड़ा। ३. कटहल। ४. जामुन।

बृहत्फला—संज्ञा स्त्री० [स०] १. तितलौकी। २. महेंद्र वारुणी। ३. कुम्हड़ा। ४. जामुन।

बृहदारण्यक—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रसिद्ध उपनिषद् जो दस मुख्य उपनिषदों के अतर्गत है।

विशेष—यह शतपथ ब्राह्मण के मुख्य उपनिषदो में से है और उसके अतिम ६ अध्यायो या ५ प्रपाठकों में है।

बृहद्¹—वि० [सं०] दे० 'बृहत्'।

बृहद्²—संज्ञा पुं० एक अग्नि का नाम।

बृहद्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] करुष नामक प्राचीन देश।

बृहद्दंती—संज्ञा स्त्री० [सं० बृहद्दन्तिन्] एक प्रकार की दंती जिसके पत्ते एरंड के पत्तों के समान होते हैं। दे० 'दंती'।

बृहद्दल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सफेद लोध। २. सप्तपर्ण नामक वृक्ष।

बृहद्दली—संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू। लज्जावंती।

बृहद्बला—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाबला। २. सफेद लोध। ३. लजालू। लज्जावंती।

बृहद्बीज—संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा।

बृहद्भंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० बृहद्भण्डी] त्रायमाणा लता।

बृहद्भट्टारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

बृहद्भानु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. चित्रक। चीता वृक्ष। ३. सूर्य। ४. भागवत के अनुसार सत्यभामा के पुत्र का नाम।

बृहद्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. सामवेद का एक अंश। ३. यज्ञपात्र। ४. शतधन्वा के पुत्र का नाम। ५. देवराज के पुत्र का नाम। ६. मगध देश के राजा जरासंध के पिता का नाम।

बृहद्वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी। स्वर्णमाक्षिक।

बृहद्वल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

बृहद्वारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महेंद्रवारुणी नामक लता।

बृहन्नल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्जुन का एक नाम। २. बाहु। बाँह।

बृहन्नला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्जुन का उस समय का नाम जिस समय वे *अज्ञातवास में स्त्री के वेश में रहकर राजा विराट की* कन्या को नाच गाना सिखाते थे।

बृहन्नारायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम जिसे याज्ञिकी उपनिषद् भी कहते हैं।

बृहन्निंब—संज्ञा पुं० [सं० बृहन्निम्ब] महानिंब।

बृहस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध वैदिक देवता जो अंगिरस के पुत्र और देवताओं के गुरु माने जाते हैं।

विशेष—इनकी माता का नाम श्रद्धा और स्त्री का नाम तारा था। ये सभी विषयों के पूर्ण पंडित थे और शुक्राचार्य के साथ इनकी स्पर्धा रहती थी। ऋग्वेद के ११ सूक्तों में इनकी स्तुति भरी हुई है। उनमे कहा गया है कि इनके सात मुँह, सुंदर जीभ, पैने सींग, और सौ पंख हैं और इनके हाथ मे धनुष, बाण और सोने का परशु रहता है। एक स्थान मे यह भी कहा गया है कि ये अंतरिक्ष के महातेज से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सारा अंधकार नष्ट कर दिया था। यह भी कहा गया है कि ये देवताओं के पुरोहित हैं और इनके बिना यज्ञ का कोई कृत्य पूर्ण नहीं होता। ये बुद्धि और वक्तृत्व के देवता तथा इंद्र के मित्र और सहायक माने गए हैं। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में इनका जो वर्णन दिया है, वह अग्नि के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुलता है। 'वा... 'सदसस्पति' भी इनके नाम हैं। कई स्मृतियाँ ... मत के ग्रंथ इन्हीं के बनाए हुए माने जाते हैं। ... इनकी स्त्री तारा को सोम (चंद्रमा) उठा ले गया ... कारण सोम से इनका घोर युद्ध हुआ था। अंत में ... बृहस्पति को तारा दिलवा दी। पर तारा को सो... रह चुका था जिसके कारण उसे एक पुत्र हुआ ... नाम बुध रखा गया था। विशेष—दे० 'बुध'। ... के उपरात इनकी गणना नवग्रहों मे होने लगी।

पर्या०—सुराचार्य। गीष्पति। धिषण। जीव। वाचस्पति। चाक्ष। द्वादशरश्मि। गिरीश। वाक्पति। वचसांपति। वागीश। द्वादशकर। ...

२. सौर जगत् का पाँचवाँ ग्रह जो सूर्य से ४४, ३०, ... मील की दूरी पर है और जिसका परिभ्रमण का... ४३३३ दिन है। इसका व्यास ८३००० मील है।

विशेष—यह सबसे बड़ा ग्रह है और इसका व्यास पृथ्वी से ११ गुना बड़ा है। यह बहुत चमकीला भी है ... छोड़कर और कोई ग्रह चमक में इससे बढ़कर नहीं ... अक्ष पर यह लगभग १० घंटे मे घूमता है। दूरबी... से इसके पृष्ठ पर कुछ समानांतर रेखाएँ खिंची देती हैं। अनुमान किया जाता है कि यह ग्रह मेखलाओं से घिरा हुआ है। यह अभी बालक ग्रह है, अर्थात् इसका निर्माण हुए अभी बहुत समय ... है। अभी इसकी अवस्था सूर्य की अवस्था से कुछ ... जुलती है और पृथ्वी की अवस्था तक इसे पहुँ... बहुत समय लगेगा। यह अभी स्वयं प्रकाशमा... और केवल सूर्य के प्रकाश से ही चमकता है। ... भी अभी पृथ्वी तल के समान ठोस नहीं है। यह अनेक प्रकार के वाष्पों के मंडल से घिरा हुआ ... साथ कम से कम पाँच उपग्रह या चंद्रमा हैं जिन... उपग्रह हमारे चंद्रमा से बड़े हैं और दो छोटे।

बृहस्पतिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] ६० संवत्सरों का समूह।

बृहस्पतिपुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

बृहस्पतिवार—संज्ञा पुं० [सं०] गुरुवार। बीफे [को०]।

बृहस्पतिस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगिरा के पुत्र बृहस्प... एक स्मृति।

बेंच—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. लकड़ी, लोहे या पत्थर... बनी हुई एक प्रकार की चौकी जो चौड़ी कम... अधिक होती है। इसपर बराबर कई आदमी ... सकते हैं। कभी कभी इसमें पीछे की ओर से ... भी कर दी जाती है जिससे बैठनेवाले की पीठ ... भी मिल सके। २. सरकारी न्यायालय के न्या... वह आसन जिसपर न्यायकर्ता बैठता है। ... न्यायालय। अदालत।

यूसुफ आजिजी लब। वले नईं रहम लाए बेकदर सब।—दक्खिनी०, पृ० ३३६।

बेकत†—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यक्ति] व्यक्ति। आदमी। जन।

बेकद्र—वि० [फा० बेक़द्र] जिसकी कोई कदर या प्रतिष्ठा न हो। बेइज्जत।। अप्रतिष्ठित।

बेकद्रा—वि० [फा० बे+क़द्रह] जिसकी कोई कदर न हो। अप्रतिष्ठित। २. जो कदर करना न जानता हो।

बेकदरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा बेक़दरी] बेकदर होने का भाव। बेइज्जती। अप्रतिष्ठा। उ०—ऐसी दशा के कारण वह जहाँ घुसे उनकी बेकदरी हुई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४८।

बेकद्र—वि० [फा० बे+कद्र] [संज्ञा बेकद्री] बेइज्जत। अप्रतिष्ठित। उ०—समाज की दृष्टि में फल से उतार दिए गए छिलके की भाँति बेकद्र होते हैं।—अभिश०, पृ० १३७।

बेकरा†—संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं का खुरपका नामक रोग। खुरहा।

बेकरार—वि० [फ़ा० बेक़रार] जिसे शांति या चैन न हो। घबराया हुआ। व्याकुल। विकल। उ०—निगह तुम्हारी की दिल जिससे बेकरार हुआ।—बेला, पृ० २१।

बेकरारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेकरारी] बेकरार होने का भाव। घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता।

बेकल (पु)†—वि० [सं० विकल] व्याकुल। विकल। बेचैन।

बेकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेकल+ई (प्रत्य०)] १. बेकल होने का भाव। घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता उ०—रह रह इनमें क्यों रंग आ जा रहा है। कुछ सखि! इनको भी हो रही बेकली है।—प्रिय प्र०, पृ० ४३। २. स्त्रियों का एक रोग जिसमें उनकी धरन या गर्भाशय अपने स्थान से कुछ हट जाता है और जिसमें रोगी को बहुत अधिक पीड़ा होती है।

बेकस—वि० [फ़ा०] १. निःसहाय। निराश्रय। २. गरीब। मुहताज। दीन। ३. मातृ-पितृ-हीन। बिना माँ बाप का। अनाथ। यतीम।

बेकसी—वि० स्त्री० [फ़ा०] १. असहाय होने की स्थिति। निराश्रयता। २. विवशता। दीनता। उ०—क्यों वह दौलतमंद है जिसके पास जरे बेकसी नहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५७०।

बेकहा—वि० [हिं० बे+कहना] जो किसी का कहना न माने। किसी की आज्ञा या परामर्श को न माननेवाला।

बेकाज—वि० [हिं० बे+काज] बिना काम का। व्यर्थ। निरर्थक। बेकार। उ०—परबस भए न सोच सकहिं कछु करि निज बल बेकाज।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४८५।

बेकानूनी—वि० [फ़ा० बे+अ० क़ानून] जो कानून या कायदे के खिलाफ हो। नियमविरुद्ध।

बेकाबू—वि० [फ़ा० बे+अ० क़ाबू] १. जिसका अपने ऊपर काबू न हो। विवश। लाचार। २. जिसपर किसी का काबू न हो। जो किसी के वश में न हो।

बेकाम¹—वि० [हिं० बे+काम] जिसे कोई काम न हो। निकम्मा। निठल्ला।

बेकाम²—क्रि० वि० व्यर्थ। निरर्थक। बेमतलब। निष्प्रयोजन।

बेकायदा—वि० [फ़ा० बे+अ० क़ायदा] [संज्ञा बेकायदगी] कायदे के खिलाफ। नियमविरुद्ध।

बेकार¹—वि० [फ़ा०] १. जिसके पास करने के लिये कोई काम न हो। निकम्मा। निठल्ला। २. जो किसी काम में न आ सके। जिसका कोई उपयोग न हो सके। निरर्थक। व्यर्थ।

बेकार²—क्रि० वि० व्यर्थ। बिना किसी काम के (पूरब)।

बेकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेकार होने का भाव। खाली या निरुद्यम होने का भाव।

बेकारयो (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० बिकारी] किसी को जोर से बुलाने का शब्द। जैसे, अरे, हो, आदि। उ०—बेकारयो दै जान कहावत जान परयो की कहा परी बाढ़।—हरिदास (शब्द०)।

बेकुसूर—वि० [फा० बे+अ० क़ुसूर] जिसका कोई कसूर न हो। निरपराध। दोषरहित। बेगुनाह।

बेकूफ (पु)—वि० [फ़ा० बेवक़ूफ़] दे० 'बेवकूफ'। उ०—पलटू बड़े बेकूफ वे आसिक होने जाहिं। सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं।—पलटू०, भा० १, पृ० ३०।

बेख¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेख़] जड़। मूल।

बेख (पु)²—संज्ञा पुं० [सं० वेष] १. भेस। स्वरूप। उ०—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेख।—मानस, १।६७। २. स्वाँग। नकल।

बेखटक¹—वि० [फ़ा० बे+हिं० खटका] बिना किसी प्रकार के खटके के। बिना किसी प्रकार की रुकावट या असमंजस के। निस्संकोच।

बेखटक²—क्रि० वि० मन में कोई खटका किए बिना। बिना आगा पीछा किए। निस्संकोच।

बेखटके—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बेखटक'।

बेखतर¹—वि० [फ़ा० बे+अ० ख़तर] जिसे किसी प्रकार का खतरा या भय न हो। निर्भय। निडर। जैसे,—आप बेखतर वहाँ चले जाँय।

बेखतर²—क्रि० वि० बिना डर या बिना भय के।

बेखता—वि० [फ़ा० बे+अ० ख़ता (=कसूर)] १. जिसका कोई अपराध न हो। बेकसूर। निरपराध। २. जो कभी खाली न जाय। अमोघ। अचूक।

बेखना (पु)—क्रि० स० [सं० प्रेक्षण, या अवेक्षण प्रा० वेक्खण] देखना। अवलोकना।

बेखबर—वि० [फ़ा० बे+खबर] १. जिसको किसी बात की खबर न हो। अनजान। नावाकिफ। उ०—जहाँ ओ कारे जहाँ से हूँ बेखबर बदमस्त—कविता कौ०, भा० ४। २. बेहोश। बेसुध।

बेखबरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेख़बरी] १. बेखबर होने का भाव। २. अज्ञानता। ३. बेहोशी। आत्मविस्मृति।

बेखुद—वि० [फ़ा० बेखुद] आत्मविस्मृत । बेसुध । बेहोश । उ०—बेखुद इस दौर मे हैं सब 'हातिम'। इन दिनों क्या शराब सस्ती है ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४५ ।

बेखुदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेखुदी] आत्मविस्मृति । उ०—जबतक तुम किसी के हो नही गए तबतक, बेखुदी का मीठा मीठा मजा मिलने का नही ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १८४ ।

बेखुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका शिकार किया जाता है ।

विशेष—यह काश्मीर, नैपाल और बंगाल में पाया जाता है; पर अक्टूबर में पहाड़ पर से उतरकर सम भूमि पर आ जाता है। यह केवल फल फूल ही खाता है और प्रायः नदियों या जलाशयों के किनारे छोटे छोटे झुंडों में रहता है ।

बेखौफ—वि० [फ़ा० बेखौफ़] जिसे खौफ या भय न हो । निर्भय । निडर ।

बेग[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेग] दे० 'वेग'। उ०—लागे जब बेगी जाइ परयो सिंधु तीर, चाहै जब नीर लिये ठाढ़े देन धोई है ।—प्रियादास (शब्द०) ।

बेग[2]—संज्ञा पु० [अं० बैग] कपड़े, चमड़े या कागज आदि लचीले पदार्थों का कोई ऐसा थैला जिसमें चीजें रखी जाती हों और जिसका मुँह ऊपर से बंद किया जा सकता हो । थैला ।

बेग[3]—संज्ञा पुं० [तु०] अमीर । सरदार । (नाम के अंत में प्रयुक्त) ।

बेगड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] १. हीरा काटनेवाला । हीरातराश । २. नगीना बनानेवाला । हक्काक ।

बेगती—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल की खाड़ी में पाई जाती है । यह प्रायः ४ हाथ लंबी होती है और इसका मांस स्वादिष्ट होता है ।

बेगम[1]—संज्ञा स्त्री० [तु०] १. राज्ञी । रानी । राजपत्नी । २. ताश के पत्तों में से एक जिसपर एक स्त्री या रानी का चित्र बना होता है । यह पत्ता केवल एक्के और बादशाह से छोटा और बाकी सबसे बड़ा समझा जाता है ।

बेगम[2]—वि० [फ़ा० बेग़म] चितारहित ।

बेगमी[1]—वि० [तु० बेगम+ई (प्रत्य०)] १. बेगम संबंधी । २. उत्तम । उम्दा । बढ़िया ।

बेगमी[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का बढ़िया कपूरी पान । २. एक प्रकार का पनीर जिसमें नमक कम होता है । ३. एक प्रकार का बढ़िया चावल जो पंजाब में होता है ।

बेगर[1]—संज्ञा पुं० [?] उड़द या मूँग का कुछ मोटा और रवेदार आटा जिससे प्रायः मगदल या बड़ा आदि बनाते हैं ।

विशेष—यह कच्चा और पक्का दो प्रकार का होता है । कच्चा वह कहलाता है जो कच्चे मूँग या उड़द को पीसकर बनाया जाता है, और पक्का वह कहलाता है जो भुने हुए मूँग या उड़द को पीसने से बनता है ।

बेगर†[2]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बगैर' ।

बेगरज†[1]—वि० [फ़ा० बे+अ० गरज़] जिसे कोई गरज या [illegible] न हो ।

बेगरज[2]—क्रि० वि० बिना किसी मतलब के । निष्प्रयोजन । व्यर्थ

बेगरजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बे+अ० गरज+ई (प्रत्य०)] बेगर[illegible] होने का भाव ।

बेगला†—वि० [हिं बेघर या बे(=दो)फ़ा० +गुलह्] १. गृहहीन निराश्रय । आवारा । २. दोगला । जारज । उ०—बाइक बनेंगी राँड़ाँ बेगले फिरेंगे छोरे । पस्सो उठा को माँटी डालें नाउँ पो तेरे ।—दक्खिनी०, पृ० २९७ ।

बेगवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णार्ध वृत्त जिसके विषम पादों ३ सगण, १ गुरु और सम पादों में ३ भगण और २ [illegible] होते हैं ।

बेगसर—संज्ञा पुं० [सं० वेगसर] बेसर । अश्वतर । खच्चर । (डिं०)

बेगानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेगाना होने का भाव । परायापन ।

बेगाना—वि० [फ़ा० बेग़ानह्] [स्त्री० बेगानी] १. जो अ[illegible] न हो । गैर । दूसरा । पराया । उ०—एक बेर मायके लिये बेगानी हो जाने पर स्त्री के लिये फिर मायका अपना नही हो सकता ।—भस्मावृत०, पृ० ५३ । २. नावाकिफ अनजान ।

बेगार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वह काम जो राज्य के क[illegible]चार आदि अथवा गाँव के जमीदार आदि छोटी जाति के [illegible] गरीब आदमियों से बलपूर्वक लेते हैं और जिसके बद[illegible] में उनको बहुत ही कम पुरस्कार मिलता है अथवा कुछ पुरस्कार नही मिलता । बिना मजदूरी का जबरदस्ती लि[illegible] हुआ काम ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

२. वह काम जो चित्त लगाकर न किया जाय । वह काम ज[illegible] बेमन से किया जाय ।

मुहा०—बेगार टालना=बिना चित्त लगाए कोई काम करना पीछा छुड़ाने के लिये किसी काम को जैसे तैसे पूरा करना ।

बेगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह मजदूर जिससे बिना मजदूरी दि[illegible] जबरदस्ती काम लिया जाय । बेगार में काम करनेव[illegible] आदमी । उ०—षट दर्शन पाखंड छानवे, पकरि क[illegible] बेगारी ।—धरम०, पृ०, ६२ ।

बेगि(प)†—क्रि० वि० [सं० वेग] १. जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक । चटपट । फौरन । तुरंत । उ०—जाहु बेगि संकट अ[illegible] भ्राता । लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता ।—मानस, ६।२२

बेगुन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बैगन' ।

बेगुनाह—वि० [फ़ा०] [संज्ञा स्त्री० बेगुनाही] १. जिसने को[illegible] गुनाह न किया हो । जिसने कोई पाप न किया हो । जिसने कोई अपराध न किया हो । बेकसूर । निर्दोष ।

यूसुफ आजिजी लव। वले नईं रहम लाए बेकडर सब।—दक्खिनी०, पृ० ३३९।

बेकत†—संज्ञा स्त्री० [स० व्यक्ति] व्यक्ति। आदमी। जन।

बेकदर—वि० [फा० बेक़द्र] जिसकी कोई कदर या प्रतिष्ठा न हो। बेइज्जत।। अप्रतिष्ठित।

बेकद्रा—वि० [फा० बे+क़द्रह] जिसकी कोई कदर न हो। अप्रतिष्ठित। २, जो कदर करना न जानता हो।

बेकदरी—संज्ञा स्त्री० [फा बेक़द्री] बेकदर होने का भाव। बेइज्जती। अप्रतिष्ठा। उ०—ऐसी दशा के कारण वह जहाँ घूमे उनकी बेकदरी हुई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४८।

बेकद्र—वि० [फ़ा० बे+क़द्र] [संज्ञा बेकद्री] बेइज्जत। अप्रतिष्ठित। उ०—समाज की दृष्टि में फल से उतार दिए गए छिलके की भाँति बेकद्र होते हैं।—अभिशा०, पृ० १३७।

बेकरा†—संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं का खुरपका नामक रोग। खुरहा।

बेकरार—वि० [फ़ा० बेकरार] जिसे शाति या चैन न हो। घबराया हुआ। व्याकुल। विकल। उ०—निगह तुम्हारी की दिल जिससे बेकरार हुआ।—बेला, पृ० २१।

बेकरारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेकरारी] बेकरार होने का भाव। घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता।

बेकल पु†—वि० [स० विकल] व्याकुल। विकल। बेचैन।

बेकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेकल+ई (प्रत्य०)] १. बेकल होने का भाव। घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता उ०—रह रह इनमें क्यों रंग आ जा रहा है। कुछ सखि! इनको भी हो रही बेकली है।—प्रिय प्र०, पृ० ४३। २. स्त्रियों का एक रोग जिसमें उनकी धरन या गर्भाशय अपने स्थान से कुछ हट जाता है और जिसमें रोगी को बहुत अधिक पीड़ा होती है।

बेकस—वि० [फ़ा०] १. निःसहाय। निराश्रय। २. गरीब। मुहताज। दीन। ३. मातृ-पितृ-हीन। बिना माँ बाप का। अनाथ। यतीम।

बेकसी—वि० स्त्री० [फ़ा०] १. असहाय होने की स्थिति। निराश्रयता। २. विवशता। दीनता। उ०—क्यों वह दौलतमंद है जिसके पास जरे बेकसी नहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५७०।

बेकहा—वि० [हिं० बे+कहना] जो किसी का कहना न माने। किसी की आज्ञा या परामर्श को न माननेवाला।

बेकाज—वि० [हिं० बे+काज] बिना काम का। व्यर्थ। निरर्थक। बेकार। उ०—परवस भए न सोच सकहिं कछु करि निज बल बेकाज।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४८५।

बेक़ानूनी—वि० [फ़ा० बे+अ० क़ानून] जो कानून या कायदे के खिलाफ हो। नियमविरुद्ध।

बेक़ाबू—वि० [फ़ा० बे+अ० क़ाबू] १. जिसका अपने ऊपर काबू न हो। विवश। लाचार। २. जिसपर किसी का काबू न हो। जो किसी के वश में न हो।

बेकाम[1]—वि० [हिं० बे+काम] जिसे कोई काम न हो। निकम्मा। निठल्ला।

बेकाम[2]—क्रि० वि० व्यर्थ। निरर्थक। बेमतलब। निष्प्रयोजन।

बेकायदा—वि० [फ़ा० बे+अ० क़ायदा] [संज्ञा बेकायदगी] कायदे के खिलाफ। नियमविरुद्ध।

बेकार[1]—वि० [फ़ा०] १. जिसके पास करने के लिये कोई काम न हो। निकम्मा। निठल्ला। २. जो किसी काम में न आ सके। जिसका कोई उपयोग न हो सके। निरर्थक। व्यर्थ।

बेकार[2]—क्रि० वि० व्यर्थ। बिना किसी काम के (पूरब)।

बेकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेकार होने का भाव। खाली या निरुद्यम होने का भाव।

बेकार्यो पु—संज्ञा पुं० [हिं० बिकारी] किसी को जोर से बुलाने का शब्द। जैसे, अरे, हो, आदि। उ०—बेकार्यो दै जान कहावत जान परयो की कहा परी बाढ़।—हरिदास (शब्द०)।

बेकुसूर—वि० [फ़ा० बे+अ० क़ुसूर] जिसका कोई कसूर न हो। निरपराध। दोषरहित। बेगुनाह।

बेकूफ पु—वि० [फ़ा० बेवक़ूफ़] दे० 'बेवकूफ'। उ०—पलटू बड़े बेकूफ वे आसिक होने जाहिं। सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं।—पलटू०, भा० १, पृ० ३०।

बेख[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० बेख़] जड़। मूल।

बेख पु[2]—संज्ञा पुं० [सं० वेष] १. भेस। स्वरूप। उ०—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेख।—मानस, १।६७। २. स्वाँग। नकल।

बेखटक[1]—वि० [फ़ा० बे+हिं० खटका] बिना किसी प्रकार के खटके के। बिना किसी प्रकार की रुकावट या असमंजस के। निस्संकोच।

बेखटक[2]—क्रि० वि० मन में कोई खटका किए बिना। बिना आगा पीछा किए। निस्संकोच।

बेखटके—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बेखटक'।

बेखतर[1]—वि० [फ़ा० बे+अ० ख़तर] जिसे किसी प्रकार का खतरा या भय न हो। निर्भय। निडर। जैसे,—आप बेखतर वहाँ चले जाँय।

बेखतर[2]—क्रि० वि० बिना डर या बिना भय के।

बेखता—वि० [फा० बे+अ० ख़ता (=कसूर)] १. जिसका कोई अपराध न हो। बेकसूर। निरपराध। २. जो कभी खाली न जाय। अमोघ। अचूक।

बेखना पु—क्रि० स० [सं० प्रेक्षण, या अवेक्षण प्रा० वेक्खण] देखना। अवलोकना।

बेखबर—वि० [फ़ा० बे+खबर] १. जिसको किसी बात की खबर न हो। अनजान। नावाकिफ। उ०—जहाँ ओ कारे जहाँ से हूँ बेखबर बदमस्त—कविता कौ०, भा० ४। २. बेहोश। बेसुध।

बेखबरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेखबरी] १. बेखबर होने का भाव। २. अज्ञानता। ३. बेहोशी। आत्मविस्मृति।

बेखुद—वि० [फ़ा० बेखुद] आत्मविस्मृत। बेसुध। बेहोश। उ०—बेखुद इस दौर में हैं सब 'हातिम'। इन दिनों क्या शराब सस्ती है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४५।

बेखुदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेखुदी] आत्मविस्मृति। उ०—जबतक तुम किसी के हो नहीं गए तबतक, बेखुदी का मीठा मीठा मजा मिलने का नहीं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १८४।

बेखुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका शिकार किया जाता है।

विशेष—यह काश्मीर, नैपाल और बंगाल में पाया जाता है; पर अक्टूबर में पहाड़ पर से उतरकर सम भूमि पर आ जाता है। यह केवल फल फूल ही खाता है और प्रायः नदियों या जलाशयों के किनारे छोटे छोटे झुंडों में रहता है।

बेखौफ—वि० [फ़ा० बेखौफ़] जिसे खौफ या भय न हो। निर्भय। निडर।

बेग[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेग] दे० 'वेग'। उ०—लागे जब वेगी जाइ परयो सिंधु तीर, चाहै जब नीर लिये ठाढ़े देन धोई है।—प्रियादास (शब्द०)।

बेग[2]—संज्ञा पुं० [अं० बेग] कपड़े, चमड़े या कागज आदि लचीले पदार्थों का कोई ऐसा थैला जिसमें चीजें रखी जाती हों और जिसका मुँह ऊपर से बंद किया जा सकता हो। थैला।

बेग[3]—संज्ञा पुं० [तु०] अमीर। सरदार। (नाम के अंत में प्रयुक्त)।

बेगड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] १. हीरा काटनेवाला। हीरातराश। २. नगीना बनानेवाला। हक्काक।

बेगतो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल की खाड़ी में पाई जाती है। यह प्रायः ४ हाथ लंबी होती है और इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

बेगम[1]—संज्ञा स्त्री० [तु०] १. राज्ञी। रानी। राजपत्नी। २. ताश के पत्तों में से एक जिसपर एक स्त्री या रानी का चित्र बना होता है। यह पत्ता केवल एक्के और बादशाह से छोटा और बाकी सबसे बड़ा समझा जाता है।

बेगम[2]—वि० [फ़ा० बेग़म] चितारहित।

बेगमी[1]—वि० [तु० बेगम+ई (प्रत्य०)] १. बेगम संबंधी। २. उत्तम। उम्दा। बढ़िया।

बेगमी[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का बढ़िया कपूरी पान। २. एक प्रकार का पनीर जिसमें नमक कम होता है। ३. एक प्रकार का बढ़िया चावल जो पंजाब में होता है।

बेगर[1]—संज्ञा पुं० [?] उड़द या मूँग का कुछ मोटा और रवेदार आटा जिससे प्रायः मगदल या बड़ा आदि बनाते हैं।

विशेष—यह कच्चा और पक्का दो प्रकार का होता है। कच्चा वह कहलाता है जो कच्चे मूँग या उड़द को पीसकर बनाया जाता है, और पक्का वह कहलाता है जो भुने हुए मूँग या उड़द को पीसने से बनता है।

बेगर†[2]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बगैर'।

बेगरज†[1]—वि० [फ़ा० बे+अ० ग़रज़] जिसे कोई गरज या परवा न हो।

बेगरज[2]—क्रि० वि० बिना किसी मतलब के। निष्प्रयोजन। व्यर्थ।

बेगरजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बे+अ० ग़रज+ई (प्रत्य०)] बेगरज होने का भाव।

बेगला†—वि० [हिं बेवर या बे(=दो)फ़ा०+गुलह्] १. गृहहीन। निराश्रय। आवारा। २. दोगला। जारज। उ०—बाइकाँ बनेंगी राँडाँ बेगले फिरेंगे छोरे। पसो उठा को माँटी डालेंगे नाउँ पो तेरे।—दक्खिनी०, पृ० २९७।

बेगवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णार्ध वृत्त जिसके विषम पादों में ३ सगण, १ गुरु और सम पादों में ३ भगण और २ गुरु होते हैं।

बेगसर—संज्ञा पुं० [सं० वेगसर] बेसर। अश्वतर। खच्चर। (डिं०)।

बेगानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेगाना होने का भाव। परायापन।

बेगाना—वि० [फ़ा० बेग़ानह्] [स्त्री० बेगानी] १. जो अपना न हो। गैर। दूसरा। पराया। उ०—एक बेर मायके के लिये बेगानी हो जाने पर स्त्री के लिये फिर मायका अपना नहीं हो सकता।—भस्मावृत०, पृ० ५३। २. नावाकिफ। अनजान।

बेगार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वह काम जो राज्य के कर्मचारी आदि अथवा गाँव के जमींदार आदि छोटी जाति के और गरीब आदमियों से बलपूर्वक लेते हैं और जिसके बदले में उनको बहुत ही कम पुरस्कार मिलता है अथवा कुछ भी पुरस्कार नहीं मिलता। बिना मजदूरी का जबरदस्ती लिया हुआ काम।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

२. वह काम जो चित्त लगाकर न किया जाय। वह काम जो बेमन से किया जाय।

मुहा०—बेगार टालना=बिना चित्त लगाए कोई काम करना। पीछा छुड़ाने के लिये किसी काम को जैसे तैसे पूरा करना।

बेगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह मजदूर जिससे बिना मजदूरी दिए जबरदस्ती काम लिया जाय। बेगार में काम करनेवाला आदमी। उ०—षट दर्शन पाखंड छानवे, पकरि किए बेगारी।—धरम०, पृ०, ६१।

बेगि(पु)†—क्रि० वि० [सं० वेग] १. जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक। २. चटपट। फौरन। तुरंत। उ०—जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता।—मानस, ३।२२।

बेगुना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बैगन'।

बेगुनाह—वि० [फ़ा०] [संज्ञा स्त्री० बेगुनाही] १. जिसने कोई गुनाह न किया हो। जिसने कोई पाप न किया हो। २. जिसने कोई अपराध न किया हो। बेकसूर। निर्दोष।

बेगुनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सुराही।

बेगैरत—वि० [फ़ा० बे+अ० ग़ैरत] सम्मानहीन। प्रतिष्ठारहित। उ०—(क) उसका लड़का इतना बेशर्म और बेगैरत हो। —गबन, पृ० १०८। (ख) ऐसे बेगैरत लड़के से क्या होगा। —वो दुनियाँ, पृ० ४५।

बेघर—वि० [हिं०] गृहहीन। जिसे घर न हो।

बेचक†—संज्ञा पुं० [हिं० बेचना] बेचनेवाला। बिक्री करनेवाला। उ०—द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।—मानस, ७।९८।

बेचना—क्रि० स० [सं० विक्रय] मूल्य लेकर कोई पदार्थ देना। चीज देना और उसके बदले में दाम लेना। विक्रय करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—बेच खाना=खो देना। गवाँ देना। उ०—(क) सनु मैया याकी टेव लरन की सकुच बेंचि सी खाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पुरुष केरी सबै सोहै कूबरी के काज। सूर प्रभु की कहा कहिए बेंच खाई लाज।—सूर (शब्द०)।

बेचवाना—क्रि० स० [हिं० बेचना का प्रे०रूप] दे० 'बिकवाना'।

बेचवाल‡—संज्ञा पुं० [हिं०] बेचनेवाला व्यक्ति।

बेचानाⓊ†—क्रि० स० [हिं० बेचना] दे० 'बिकवाना'।

बेचारगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] विवशता। लाचारी। उ०—उसकी बेचारगी पर हमारा मन आकुलता से भर उठता है—सुनीता, पृ० १३।

बेचारा—वि० [फ़ा० बेचारह्] [स्त्री० बेचारी] जो दीन और निस्सहाय हो। जिसका कोई साथी या अवलंब न हो। गरीब। दीन।

बेचिराग—वि० [फ़ा० बे+अ० चिराग़] जहाँ दीया तक न जलता हो। उजड़ा हुआ।

बेचो—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेचना] विक्रय। खरीद फरोख्त।

बेचूँचुरा—क्रि० वि० [फ़ा० बे+चूँ व चरा] बिना विवाद या बिना इतराज। बिना उज्र के। उ०—जो बेचूँचुरा नामनामी हुआ। वह सब अंजिया में गिरामी हुआ।—कबीर मं०, पृ० ३८५।

बेचू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेचवाल'।

बेचैन—वि० [फ़ा०] जिसे किसी प्रकार चैन न पड़ता हो। व्याकुल। विकल। बेकल।

बेचैनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेचैन होने का भाव। बिकलता। व्याकुलता। बेकली। घबराहट।

बेजड़—वि० [फा० बे+हिं० जड़] जिसकी कोई जड़ या बुनियाद न हो। जिसके मूल में कोई तत्व या सार न हो। जो यों ही मन से गढ़ा या बना लिया गया हो। निर्मूल। जैसे,—आप तो रोज यो ही बेजड़ की बातें उड़ाया करते हैं।

बेजबान—वि० [फ़ा० बेजबान] जिसमें बातचीत करने की शक्ति न हो। जो बोलकर अपने मन के भाव प्रकट न कर सकता हो। गूँगा। मूक। जैसे,—बेजबान जानवरों की रक्षा करनी चाहिए। २. जो अपनी दीनता या नम्रता के कारण किसी प्रकार का विरोध न करे। दीन। गरीब।

बेजर—वि० [फ़ा० बे+जर] संपत्तिहीन। निर्धन। उ०—अगर मुज जानते बदा हूँ बेजर। चलो मुज घर करतें तशरीफ लेकर।—दक्खिनी०, पृ० १६०।

बेजवाल[1]—वि० [फ़ा० बे+जवाल] अविनश्वर। जो न घटे बढ़े या न छीजे। उ०—काम न आता दिसे ये मुल्को माल। देव मुझे या रब तूँ मिल्के बेजवाल।—दक्खिनी०, पृ० १०५।

बेजवाल†[2]—वि० [फ़ा० बे+जवाल (झंझट)] जो बिना झंझट का हो। बिना बखेड़े का।

बेजा—वि० [फ़ा० बे+जा (=स्थान)] १. जो अपने उचित स्थान पर न हो। बेठिकाने। बेमौके। २. अनुचित। नामुनासिब। ३. खराब। बुरा।

बेजान—वि० [फ़ा०] १. जिसमें जान न हो। मुरदा। मृतक। २. जिसमे जीवन शक्ति बहुत ही थोड़ी हो। जिसमे कुछ भी दम न हो। ३. मुरझाया हुआ। कुम्हलाया हुआ। ४. निर्बल। कमजोर।

बेजाब्ता—वि० [फ़ा० बे+अ० जाब्ता] जो जाब्ते के अनुसार न हो। कानून या नियम आदि के विरुद्ध। जैसे,—जाब्ते की काररवाई न करके आप बेजाब्ता काम क्यों करने गए।

बेजार—वि० [फ़ा० बेज़ार] १. जो किसी बात से बहुत तंग आ गया हो। जिसका चित्त किसी बात से बहुत दुखी हो। जैसे,—आप तो दिन पर दिन अपनी जिंदगी से बेजार हुए जाते हैं। २ नाराज। अप्रसन्न। उ०—यह आपके बेजार होने का इजहार है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४। †३. बीमार। रोगग्रस्त।

बेजारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेज़ार] १. परेशानी। २. नाराजी।

बेजू—संज्ञा पुं० [अं० बेजर] डेढ़ दो हाथ लंबा एक प्रकार का जंगली जानवर जो प्रायः सभी गरम देशों में पाया जाता है।

विशेष—इसके शरीर का रंग भूरा और पैर छोटा होता है। इसकी दुम बहुत छोटी और पंजे लंबे तथा दृढ़ होते है जिनसे यह अपने रहने के लिये बिल खोदता है। इसका मांस खाया जाता है और इसकी दुम के बालों से चित्रों आदि मे रंग भरने या दाढ़ी में साबुन लगाने के बुरुश बनाए जाते हैं। प्रायः शिकारी लोग इसे बिलो से जबरदस्ती निकालकर कुत्तों से इसका शिकार कराते हैं।

बेजूना†—क्रि० वि० [फ़ा० बे+हिं० जून (=समय)] अनवसर। असमय। बेमौके।

बेजोड़—वि० [फ़ा० बे+हिं० जोड़] १. जिसमें जोड़ न हो। जो एक ही टुकड़े का बना हो। अखंड। २. जिसके जोड़ का और

कोई न हो। जिसकी समता न हो सके। अद्वितीय। निरुपम।

बेझ(पु)[1]—वि० [सं० विद्ध, प्रा० विज्झ] १. विद्ध। बिधा हुआ। २. (लाक्ष०) स्तब्ध। उ०—गहि पिनाक जानहुँ सुर गहा। जत कत जगत बेझ होइ रहा।—चित्रा०, पृ० २६।

बेझ[2]—संज्ञा पुं० वेध। लक्ष्य।

बेझना—क्रि० स० [सं० वेध+हिं० ना (प्रत्य०)] निशाना लगाना। वेधना।

बेझरा—संज्ञा पुं० [हिं० मेझरना (=मिलाना)] गेहूँ, जौ, मटर, चना, इत्यादि अनाजों मे से कोई दो या तीन मिले हुए अन्न।

बेझा†—संज्ञा पुं० [सं० वेध] निशाना। लक्ष्य। उ०—(क) वदन के बेझे पै मदन कमनैती के चुटारी शर चोटन चटा से चमकत हैं।—देव (शब्द०)। (ख) तिय कत कमनैती पढ़ी बिन जिह भौंह कमान। चित चल बेझे चुकति नहिं बक बिलोकनि बान।—बिहारी (शब्द०)। (ग) मारे नैन बान ऐंचि ऐंचि स्रवनांत जबै, ताते हते छिद्र से निकट थिर बेझा ज्यों। रावरी बियोग आगि जाके खाय खाय दाग ह्वै गयो करेजा मेरो चूनरी को रेजा ज्यों।—नट०, पृ० ७७।

बेझी†—संज्ञा पुं० [हिं० बेझ] वेध करनेवाला व्यक्ति। बहेलिया। उ०—तकत तकावत रहि गया, सका न बेझी मारि। —कबीर० सा० सं०, पृ० ८३।

बेट—संज्ञा पुं० [अं०] बाजी। दाँव। शर्त। बदान। जैसे,—कुछ बेट लगाते हो।

क्रि० प्र०—लगाना।

बेटकी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेटा] बेटी। कन्या। पुत्री। लड़की। उ०—ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।—तुलसी (शब्द०)।

बेटला(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० बेटा+ला (प्रत्य०)] दे० 'बेटा'। उ०—गई गाव के बेटला मेरे आदि सहाई। इनकी हम लज्जा नहीं तुम राज बड़ाई।—सूर (शब्द०)।

बेटवा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेटा'।

बेटा—संज्ञा पुं० [सं० वटु (=बालक)] [स्त्री० बेटी] पुत्र। सुत। लड़का।

मुहा०—बेटा बनाना=किसी बालक को दत्तक लेकर अपना पुत्र बनाना। (किसी को) बेटी देना=कन्या का विवाह करना। (किसी की) बेटी लेना=किसी की कन्या से विवाह करना। बेटे वाला=वर का पिता अथवा वर पक्ष का और कोई बड़ा आदमी। बेटी वाला=वधू का पिता अथवा वधू पक्ष का और कोई बड़ा आदमी।

यौ०—बेटा बेटी=संतान। औलाद। बेटे। पोते=संतान और संतान की संतान। पुत्र, पौत्र, आदि।

बेटिकट—वि० [हिं०] बिना टिकट का।

बेटौना‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेटा'।

बेट्टा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का भैंसा जो मैसुर देश में होता है।

बेट्टा†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बेटा] दे० 'बेटा'।

बेठ[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ऊसर जमीन जिसे बीहड़ भी कहते हैं।

बेठ[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'बेंट' 'बेंठ'।

बेठन—संज्ञा पुं० [सं० वेष्टन] वह कपड़ा जो किसी चीज को गर्द आदि से बचाने के लिये उसपर लपेट दिया जाय। वह कपड़ा जो किसी चीज को लपेटने के काम में आवे। बँधना।

मुहा०— पोथी का बेठन=पुस्तकों से बराबर संबध रहने पर भी जो अधिक पढ़ा लिखा न हो। उ०- तू भला कबी झूठ बोलबो, तू तो निरे पोथी के बेठन हो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३५।

बेठिकाने—वि० [फ़ा० बे+ठिकाना] जो अपने उचित स्थान पर न हो। स्थानच्युत। २. जिसका कोई सिर पैर न हो। ऊलजलूल। ३. व्यर्थ। निरर्थक।

बेड—संज्ञा पुं० [अं०] १. नीचे का भाग। तल। २. बिस्तर। बिछौना। ३. छापेखाने मे लोहे का वह तख्ता जिसपर कपोज और शुद्ध किए हुए टाइप, छापने से पहले, रखकर कसे जाते हैं।

यौ०- बेड रूम=शयनकक्ष।

बेड़[1]—संज्ञा पुं० [हिं० बाढ़] वृक्ष कि चारों ओर लगाई हुई बाड़। मेड़। उ०—ये पन पीड़ी सी मीड़ी पिंडुरी उमड़ि मेड़ बेड़न लगावे पेड़पाइन गुभ्फती।—देव (शब्द०)।

बेड़[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बीड़] नगद रुपया। सिक्का। (दलाल)।

बेड़ना—क्रि० स० [हिं० बेड़+ना (प्रत्य०)] नए वृक्षों आदि के चारो ओर उनकी रक्षा के लिये छोटी दीवार आदि खड़ी करना। थाला बाँधना। मेड़ या बाढ़ लगाना। उ०—जिसने दाख की बारी लगाई और उसको चहुँ ओर बेड़ दिया।—(शब्द०)।

बेड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेष्ट] १. बड़े बड़े लट्ठों, लकड़ियों या तख्तों आदि को एक में बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा जिसपर बाँस का टट्टर बिछा देते हैं और जिसपर बैठकर नदी आदि पार करते हैं। यह घड़ों की बनी हुई घन्नई से बड़ा होता है। तिरना।

मुहा०—बेड़ा पार करना या लगाना=किसी को संकट से पार लगाना या छुड़ाना। विपत्ति के समय सहायता करके किसी का काम पूरा कर देना। जैसे,—इस समय तो ईश्वर ही बेड़ा पार करेगा। बेड़ा पार होना या लगना=विपत्ति या संकट से उद्धार होना। कष्ट से छुटकारा होना। बेड़ा डूबना=विपत्ति मे पड़कर नाश होना।

२. बहुत सी नावों या जहाजों आदि का समूह। जैसे,—भारतीय महासागर में सदा एक अँगरेजी बेड़ा रहता है। ३. नाव। नौका (डिं०)। ४. झुंड। समूह (पूरब)।

मुहा०—बेड़ा बाँधना = बहुत से आदमियों को इकट्ठा करना। लोगों को एकत्र करना।

बेड़ा²—वि० [हिं० आड़ा का अनु०, या सं० वलि (= टेढ़ा)] १. जो आँखों के समानांतर दाहिनी ओर से बाईं ओर अथवा बाईं ओर से दाहिनी ओर गया हो। आड़ा। २. कठिन। मुशकिल। विकट।

बेड़िचा†—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की कमाचियों की बनी हुई एक प्रकार की टोकरी जो थाल के आकार की होती है और जिससे किसान लोग खेत सींचने के लिये तालाब से पानी निकालते हैं।

बेड़िन, बेड़िनी—संज्ञा स्त्री० [?] नट जाति की स्त्री जो नाचती गाती हो। उ०—(क) जाने गति बेडिन दिखराई। बाँह डुलाय जीव लेइ जाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहूँ भाँट भाट्यो करैं मान पावैं। कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं।—केशव (शब्द०)। २. नीच जाति की कोई स्त्री जो नाचती गाती और कसब कमाती हो।

बेड़िया†—संज्ञा पुं० [हिं०] बेडिन की जाति का व्यक्ति। नट।

बेड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वलय] १. लोहे के कड़ों की जोड़ी या जंजीर जो कैदियों या पशुओं आदि को इसलिये पहनाई जाती है जिसमें वे स्वतंत्रतापूर्वक घूम फिर न सकें। निगड। उ०—(क) पहुँचेंगे तब कहेंगे वेही देश की सीच। अबहिं कहाँ तें गाड़िए बेडी पायन बीच।—कबीर (शब्द०)। (ख) पायन गाढ़ी बेड़ी परी। साँकर ग्रीव हाथ हथकड़ी।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।—पड़ना।—पहनना।—पहनाना।

२. बाँस की टोकरी जिसके दोनों ओर रस्सी बँधी रहती है और जिसकी सहायता से पानी नीचे से उठाकर खेतों में डाला जाता है। ३. साँप काटने का एक इलाज जिसमें काटे हुए स्थान को गरम लोहे से दाग देते हैं।

बेड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेड़ा का स्त्री० अल्पा०] १. नदी पार करने का टट्टर आदि का बना हुआ छोटा बेड़ा। २. छोटी नाव। (क्व०)।

बेडौल—वि० [हिं० बे + डौल (= रूप)] १. जिसका डौल या रूप अच्छा न हो। भद्दा। २. जो अपने स्थान पर उपयुक्त न जान पड़े। बेढंगा।

बेढंग—वि० [हिं०] दे० 'बेढंगा'।

बेढंगा—वि० [फ़ा० बे + हिं० ढंग + आ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० बेढंगी] १. जिसका ढंग ठीक न हो। बुरे ढंगवाला। २. जो ठीक तरह से लगाया, रखा या सजाया न गया हो। बेतरतीब। ३. भद्दा। कुरूप।

बेढंगापन—संज्ञा पुं० [हिं० बेढंगा + पन (प्रत्य०)] बेढंग होने का भाव।

बेढ़—संज्ञा पुं० [सं० √वृध् (= वर्धन)] नाश। बरबादी। उ०—दौरि बेंढ़ सिरोज को कीन्हों। कुंदा के गिरि डेरा दीन्हों।—लाल (शब्द०)। २. बोया हुआ वह बीज जिसमें अंकुर निकल आया हो। ३. दे० 'बेंढ़'। मेड़। बाढ़।

बेढ़ई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेढ़ना (= घेरना)] वह रोटी या पूरी जिसमें दाल, पीठी आदि कोई चीज भरी हो। कचौड़ी।

बेढ़क†—संज्ञा पुं० [सं० वर्धन (= काटना)] काटनेवाला अर्थात् लड़नेवाला। योद्धा। सुभट। उ०—बेढ़क हेरे वज्जिए पढ़िया सुहड पचास।—रा० रू०, पृ० २५६।

बेढ़न†—संज्ञा पुं० [सं० वेष्टन] वह जिससे कोई चीज घेरी हुई हो। बेठन। घेरा।

बेढ़ना¹—क्रि० स० [सं० वेष्टन] १. वृक्षों या खेतों आदि को उनकी रक्षा के लिये चारो ओर से टट्टी बाँधकर, काँटे बिछाकर या और किसी प्रकार घेरना। रूँधना। २. चौपायों को घेरकर हाँक ले जाना।

बेढ़ना²—क्रि० स० [सं० वर्धन] छिन्न करना। काटना। उ०—दग वाण तिणरा भुजा दोन्यू बेढिया सुष बाँघनै।—रघु०, रू०, पृ० १२६।

बेढब¹—वि० [हिं० बे + ढब] १. जिसका ढब या ढंग अच्छा न हो। २. जो देखने में ठीक न जान पड़े। बेढंगा। भद्दा।

बेढब²—क्रि० वि० बुरी तरह से। अनुचित या अनुपयुक्त रूप से। बेतरह।

बेढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० बेढ़ना (= घेरना)] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का कड़ा (गहना)। उ०—तोरा कंठीमाल रतन चोकी बहु साकर। बेढ़ा पहुँची कटक सुमरनी छाप सुभाकर।—सूदन (शब्द०)। २. घर के आसपास वह छोटा सा घेरा हुआ स्थान जिसमें तरकारियाँ आदि बोई जाती हैं।

बेढ़ाना‡—क्रि० स० [हिं० बेढना का प्रे०रूप] १. घेरने का काम दूसरे से कराना। घिरवाना। २. ओढ़ाना।

बेढुआ‡—संज्ञा पुं० [देश०] गोल मेथी।

बेणी—संज्ञा स्त्री० [सं० वेणी] दे० 'बेनी'।

बेणीफूल—संज्ञा पुं० [सं० वेणी + हिं० फूल] फूल के आकार का सिर पर पहनने का एक गहना। सीसफूल।

बेत—संज्ञा पुं० [सं० वेतस्] दे० 'बेंत'।

यौ०—बेतपानि(पु) वेत्रपाणि। बेंत लिए हुए। दंडधारी। उ०—बेतपानि रक्षक चहुँपासा।—मानस, ६।१०७।

बेतकल्लुफ¹—वि० [फ़ा० बे + अ० तकल्लुफ़] १. जिसे तकल्लुफ की कोई परवा न हो। जिसे ऊपरी शिष्टाचार का कोई ध्यान न हो बल्कि जो अपने मन का व्यवहार करे। सीधा सादा व्यवहार करनेवाला। २. जो अपने हृदय की बात साफ साफ कह दे। अंतरंगता का भाव रखनेवाला।

बेतकल्लुफ²—क्रि० वि० १. बिना किसी प्रकार के तकल्लुफ के। बेधड़क। निस्संकोच।

बेतकल्लुफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेतकल्लुफ़ी] बेतकल्लुफ होने का भाव । सरलता । सादगी ।

बेतकसीर—वि० [फ़ा० बे+अ० तकसीर] जिसने कोई अपराध न किया हो । निरपराध । निर्दोष । बेगुनाह ।

बेतना—क्रि० अ० [सं० विद्>वेत्ति, वेतन] प्रतीत होना । जान पड़ना । उ०—आपनी सुंदरता को गुमान गहै सुखदान सु औरहि वेति है ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

बेतमीज—वि० [फ़ा० बे+अ० तमीज़] जिसे शऊर या तमीज न हो । जिसको भद्रता का आचरण करना न आता हो । बेहूदा । उजड्ड । फूहड़ ।

बेतरतीब—वि० [फ़ा०] बिना सिलसिला या क्रम का ।

बेतरतीबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] विश्रृंखलता । क्रमहीनता । अस्तव्यस्तता । उ०—हरएक काम में बेतरतीबी, झुँझलाहट, जल्दीबाजी, लापरवाही या दृष्टिकोण का रूखापन ।—ठंढा०, पृ० ७५ ।

बेतरह[1]—क्रि० वि० [फ़ा० बे+अ० तरह] १. बुरी तरह से । अनुचित रूप से । जैसे,—तुम तो बेतरह बिगड गए । २. असाधारण रूप से । विलक्षण ढंग से । जैसे,—यह पेड बेतरह बढ़ रहा है ।

बेतरह[2]—वि० बहुत अधिक । बहुत ज्यादा । जैसे,—वह बेतरह मोटा है ।

बेतरीका[1]—वि० [फ़ा० बे+अ० तरीक़ह्] जो तरीके और नियम के विरुद्ध हो । बेकायदा । अनुचित ।

बेतरीका[2]—क्रि० वि० बिना ठीक तरीके के । अनुचित रूप से ।

बेतवा—संज्ञा स्त्री० [सं० वेत्रवती] बुंदेलखंड की एक नदी जो भूपाल के ताल से निकलकर जमुना में मिलती है ।

बेतहाश—क्रि० वि० [फ़ा० बेतहाशा] दे० 'बेतहाशा' ।

बेतहाशा—क्रि० वि० [फ़ा० बे+अ० तहाशह्] १. बहुत अधिक तेजी से । बहुत शीघ्रता से । जैसे,—घोड़ा बेतहाशा भागा । २. बहुत घबराकर । ३. बिना सोचे समझे । जैसे,—तुम तो हर एक काम इसी तरह बेतहाशा कर बैठते हो ।

बेता(पु)—वि० [सं० वेत्ता] जानकार । ज्ञानी । वेत्ता । उ०—पहुची बात बिद्या के बेता । बाहु को भ्रम भया सकेता ।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० २०६ । (ख) सकल सिम्रत जिती सत मति कहै तिती हैं इनही परमगति परम बेता ।—रै० बानी, पृ० १६ ।

बेताज—वि० [फ़ा०] मुकुटविहीन । अधिकाररहित ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—बेताज का राजा = बिना अधिकार के सब कुछ करने में समर्थ । सर्वजनप्रिय एवं समर्थ । उ०—अब मास्टर अमृराज बेताज का राजा था ।—किन्नर०, पृ० २ ।

बेताब—वि० [फ़ा०] १. जिसमें ताब या ताकत न हो । दुर्बल । कमजोर । २. जो बेचैन हो । विकल । व्याकुल ।

बेताबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. कमजोरी । दुर्बलता । २. बेचैनी । घबराहट । व्याकुलता ।

बेतार—वि० [हिं० बे + तार] बिना तार का । जिसमें तार न हो ।

यौ०—बेतार का तार = विद्युत् की सहायता से भेजा हुआ वह समाचार जो साधारण तार की सहायता के बिना भेजा गया हो ।

विशेष—आजकल तार द्वारा समाचार भेजने में यह उन्नति हुई है कि समाचार भेजने के स्थान से समाचार पहुँचने के स्थान तक तार के खंभों की कोई आवश्यकता नहीं होती । केवल दोनों स्थानों पर दो विद्युत्यंत्र होते हैं जिनकी सहायता से एक स्थान का समाचार दूसरे स्थान तक बिना तार की सहायता के ही पहुँच जाता है । इसी प्रकार आए हुए समाचार को बिना तार का तार या बेतार का तार कहते हैं ।

बेताल[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेताल] वैताल । दे० 'वेताल' ।

बेताल[2]—संज्ञा पुं० [स० वैतालिक] भाट । बंदी । उ०—सभा मध्य बेताल ताहि समय सो पढ़ि उठ्यो । केशव बुद्धि बिशाल, सुंदर सूरो भूप सो ।—केशव (शब्द०) ।

बेताल[3]—वि० [हिं० बे + सं० ताल] गायन वादन में ताल से चूक जानेवाला । संगीत में ताल का ध्यान न रखनेवाला ।

बेताला—वि० [हिं० बेताल] दे० 'बेताल'[3] ।

बेतास्सुबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बे + अ० तअस्सुब] निष्पक्षता । उदारता । उ०—धार्मिक सहिष्णुता और बेतास्सुबी के भी वे जीवित प्रतीक थे ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २५३ ।

बेतुका—वि० [फ़ा० बे + हिं० तुक] १. जिसमें सामंजस्य न हो बेमेल ।

मुहा०—बेतुकी उड़ाना = दे० 'बेतुकी हाँकना' । उ०—बेतुकी उड़ाना खूब जानते हैं । जवाब नहीं सूझता ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १० । बेतुकी हाँकना = बेढंगी बातें कहना । ऐसी बात कहना जिसका कोई सिर पैर न हो ।

२. जो अवसर कुअवसर का ध्यान न रखता हो । बेढंगा । जैसे,—वह बड़ा बेतुका है, उसको मुँह नहीं लगाना चाहिए ।

मुहा०—बेतुकी बकना = अनवसर की बात करना । उ०—आका क्या बेतुकी बकता है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १४ ।

बेतुकाछंद—संज्ञा पुं० [हिं० बेतुका + सं० छन्द] अमिताक्षर छंद । ऐसा छंद जिसके तुकांत आपस में न मिलते हों ।

बेतौर[1]—क्रि० वि० [फ़ा० बे + अ० तौर] बुरी तरह से । बेढंगेपन से । बेतरह ।

बेतौर[2]—वि० जिसका तौर तरीका ठीक न हो । बेढंगा ।

बेत्ता(पु)—वि० [सं० वेत्ता] दे० 'वेत्ता' । उ०—शंका उपजत इहि तन चाहि । जैसे सब को बेत्ता आहि ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३११ ।

बेदंत(पु)†—वि० [सं० वेद + अन्त या सं० विद्वत्] वेदपारग या वेदज्ञ । विद्वान् । उ०—ग्रह नव सुदान बिधि विद्व दीन । बेदत विप्र अभिषेक कीन ।—पृ० रा०, ६।८० ।

वेद¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० बेंत] दे० 'बेंत'।

वेद⑦**²**—संज्ञा पु० [स० वेद] दे० 'वेद'।

वेद⑦**³**—संज्ञा स्त्री० [वेदना ?] पीड़ा। वेदना। उ०—मंत्र दवा अरु आप सों वेढब मिटे न वेद।—व्रज० ग्रं०, पृ० ६६।

वेदक—संज्ञा पुं० [स० वेद+क (प्रत्य०)] वेद को माननेवाला—हिंदू (डिं०)।

वेदखल—वि० [फा० बेदखल] जिसका दखल, कब्जा या अधिकार न हो। अधिकारच्युत। जैसे—डिगरी होते ही वह तुम्हें बेदखल कर देगा। (इसका व्यवहार केवल स्थावर संपत्ति के लिये ही होता है)।

वेदख़ली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेदख़ली] दखल या कब्जे का हटाया जाना अथवा न होना। अधिकार में न रहने का भाव। (इसका व्यवहार केवल स्थावर संपत्ति के लिये होता है।)

वेदन⑦—संज्ञा पु० [स० वेदन] दे० 'वेदन'। उ०—हे सारस तुम नीकें बिछुरन वेदन जानो—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४३८।

वेदनरोग—संज्ञा पु० [स० वेदना+रोग] पशुओं का एक प्रकार का छूतवाला भीषण ज्वर जिसमें रोगी पशु बहुत सुस्त होकर काँपने लगता है। उसका सारा शरीर गरम और लाल हो जाता है। उसे भूख बिल्कुल नहीं और प्यास बहुत अधिक लगती है और पाखाने के साथ आँव निकलती है।

वेदनि—संज्ञा स्त्री० [सं० वेदना] वेदना का भाव या क्रिया। उ०—मैं वेदनि कासनि भाँखू, हरि बिन जिव न रहै कस राखूँ।—रै० बानी, पृ० ५२।

वेदबाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० बेदबाफ़] [संज्ञा स्त्री० बेदबाफी] वह व्यक्ति जो बेत की बुनाई का काम करता हो।

वेदम—वि० [फा०] १. जिसमें दम या जान न हो। मृतक। मुरदा। २ जिसकी जीवनी शक्ति बहुत घट गई हो। मृतप्राय। अधमरा। ३. जो काम देने योग्य न रह गया हो। जर्जर। बोदा।

वेदमजनूँ—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी शाखाएँ बहुत झुकी हुई रहती हैं और जो इसी कारण बहुत मुरझाया और ठिठुरा हुआ जान पड़ता है। इसकी छाल और फलों आदि का व्यवहार औषध मे होता है।

वेदमल, वेदमाल—संज्ञा पु० [देश०] लकड़ी की वह तख्ती जिसपर तेल लगाकर सिकलीगर लोग अपना मस्किला नामक औजार रगड़कर चमकाते हैं।

वेदमुश्क—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का वृक्ष जो पच्छिम भारत मे और विशेषतः पंजाब मे अधिकता से होता है।

विशेष—इसमे एक प्रकार के बहुत ही कोमल और सुगंधित फूल लगते हैं जिनके अर्क का व्यवहार औषध के रूप मे होता है। यह अर्क बहुत ही ठढा और चित्त को प्रसन्न करनेवाला माना जाता है।

वेदर—वि० [फ़ा०] जिसका ठिकाना न हो। उ०—थीं अभी चिताएँ चटक रही रावी तट पर, ये अभी हजारों भटक रहे बेघर वेदर।—सूत०, पृ० ४४।

वेदरी—वि० [हिं०] दे० 'बिदरी'।

वेदरेग—वि० [फा० बेदरेग] बेधड़क। निस्संकोच। आगा पीछा न सोचनेवाला।

वेदर्द—वि० [फ़ा०] जिसके हृदय में किसी के प्रति मोह या दया न हो। जो किसी की व्यथा को न समझे। कठोरहृदय। निर्दय।

वेदर्दी¹—संज्ञा स्त्री० [फा०] वेदर्द होने का भाव। निर्दयता। बेरहमी। कठोरता।

वेदर्दी⑦†**²**—वि० [फ़ा० बेदर्द] दे० 'वेदर्द'।

वेदलैला—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का पौधा जिसमें सुंदर फूल लगते हैं।

वेदहल—वि० [हिं० वेदहल] निर्भय। निडर। उ०—एक प्रेमेल वेदहल लौ से, मेल कर तेल को मिला फल क्या।—चुभते०, पृ० ६५।

वेदा⑦†—संज्ञा स्त्री० [सं० विदा] दे० 'विदा'। उ०—जओ प्रभु हम पए वेदा लेब।—विद्यापति, पृ० ३७५।

वेदाग—वि० [फ़ा० बेदाग़] १. जिसमें कोई दाग या धब्बा न हो। साफ। २. जिसमें कोई ऐब न हो। निर्दोष। शुद्ध। ३. जिसने कोई अपराध न किया हो। निरपराध। बेकसूर।

वेदाद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अन्याय। अत्याचार (को०)।

वेदाना¹—संज्ञा पुं० [हिं० बिहीदाना या फा० बे+दानह्] एक प्रकार का बढ़िया काबुली अनार जिसका छिलका पतला होता है। २. बिहीदाना नामक फल का बीज जिसे पानी में भिगाने से लुआब निकलता है। लोग प्रायः इसका शर्बत बनाकर पीते हैं। यह ठंढा और बलकारक माना जाता है। ३. एक प्रकार का जरिश्क जिसे अंबरबारी या कश्मल भी कहते हैं। दारुहलदी। चित्रा। वि० दे० 'अंबरबारी'। ४. एक प्रकार का मीठा छोटा शहतूत। ५. एक प्रकार की छोटे दाने की मीठी बुँदिया जो बहुत रसदार होती है।

वेदाना²—वि० [हिं० वे (प्रत्य०)+फा० दाना (=बुद्धिमान)] जो दाना या समझदार न हो। मूर्ख। बेवकूफ। उ०—वेदाना से होत है दाना एक किनार। वेदाना नहि आदरै दाना एक अनार।—स० सप्तक, पृ० १७६।

वेदाम¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादाम] दे० 'बादाम'।

वेदाम²—क्रि० वि० [हिं० बे+दाम] बिना दाम का। जिसका कुछ मूल्य न दिया गया हो।

वेदार—वि० [फ़ा०] १ तेज। २. चौकन्ना। जागरूक।

यौ०—वेदारबख्त=भाग्यशाली। जिसकी किस्मत जागरूक हो। बेदारमग्ज=तेज दिमागवाला। तीव्रबुद्धि। वेदारबाश=जागरूक रहो। जागते रहो। (पहरेदार)।

वेदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चौकन्ना रहना। जागरूकता (को०)।

बेदावा—वि० [फ़ा० बेदावह्] अधिकारविहीन। दावा रहित। उ०—चले फहम की फोज दरोग की कोट ढहाई। बेदावा तहसील सबुर कै तलब लगाई।—पलटू०, बानी, पृ० ३३।

बेदिमाग—वि० [फ़ा० बेदिमाग] १. नाराज। रुष्ट। अप्रसन्न। २. चिड़चिड़ा। नासमझ (को०)।

बेदियानत—वि० [फ़ा० बे+अ० दियानत] निष्ठारहित। कर्तव्यशून्य। बेईमान (को०)।

बेदिरंग—क्रि० वि० [फ़ा० बे+अ० दिरंग] बिना विलंब किए। फौरन। तत्क्षण। तत्काल। उ०—छीन लेऊँ जे कुछ अछे सो बेदिरंग।—दक्खिनी०, पृ० १७८।

बेदिल—वि० [फ़ा०] खिन्न। उदास। दुखी। बेमन। उ०—बेदिल के बहलाव भला दिल कैसे कर बहलाऊँ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १९१।

बेदिली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उदासी। खिन्नता। उ०—वह भी ऐसी बेदिली और अनुत्साहित रीति से।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९६।

बेदी(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० वेदी] दे० 'वेदी'। उ०—सरीर सरोवर बेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचार।—कबीर श०, पृ० ८०।

बेदी(पु)[२]—वि० [सं० वेदिन्] वेद का ज्ञाता। वेदज्ञ। उ०—नादी बेदी सबदी मौनी जम के परै लिखाया।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२४।

बेदीदा—वि० [फ़ा० बेदीदह्] १. बिना आँख का। बेमुरव्वत। २. निर्लज्ज। धृष्ट।

बेदीन—वि० [फ़ा० बे+अ० दीन] विधर्मी। धर्मभ्रष्ट। उ०—अगर किसी बेदीन बदमाश ने मार नहीं डाला है तो जरूर खोज निकालूंगा।—काया०, पृ० ३३५।

बेदुआ(पु)†—वि० [सं० वेद] वेद का जानकार। वेदज्ञ। उ०—कहिं बेदुआ बेद बहु बाएव के कहिं बाँह उठाए के आपु ठाढ़ा।—सत० दरिया, पृ० ६६।

बेधड़क[१]—क्रि० वि० [फ़ा० बे+हिं० धड़क (=डर)] १. बिना किसी प्रकार के संकोच के। निःसंकोच। २. बिना किसी प्रकार के भय या आशंका के। बेखौफ। निडर होकर। ३. बिना किसी प्रकार की रोक टोक के। बेरुकावट। ४. बिना आगा पीछा किए। बिना कुछ सोचे समझे।

बेधड़क[२]—वि० १. जिसे किसी प्रकार का संकोच या खटका न हो। निर्द्वंद्व। २. जिसे किसी प्रकार का भय या आशंका न हो। निडर। निर्भय।

बेधना—क्रि० स० [सं० वेधन] १. किसी नुकीली चीज की सहायता से छेद करना। सूराख करना। छेदना। भेदना। जैसे, मोती बेधना। उ०—हरि सिद्धि हीरा भई वज्र न बेधा जाय। तहाँ गुरू गैल किया तब सिख सूत समाय।—रज्जब० बानी, पृ० ३। २. शरीर में क्षत करना। घाव करना।

बेधरम†—वि० [हिं० बेधर्म] दे० 'बेधर्म'।

बेधर्म—वि० [सं० विधर्म] जिसे अपने धर्म का ध्यान न हो। धर्म से गिरा हुआ। धर्मच्युत।

बेधा†—वि० [सं० वेध] १. जिसपर कोई जादू हो। जो आविष्ट हो। २. विपत्तिग्रस्त। उ०—रावी, वाह कोई बेधा ही होगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४७।

बेधिया†—संज्ञा पुं० [हिं० बेधना] अंकुश। आँकुस। उ०—केहरि लंक कुंभस्थल हिया। गीउ मयूर अलक बेधिया।—जायसी (शब्द०)।

बेधीर(पु)—वि० [फ़ा० बे+हिं० धीर] जिसका धैर्य टूट गया हो। अधीर। उ०—अधर निधि बेधीर करिकै करत आनन हास। फिरै भौंवरि हरम भूषण अग्नि मानो भास।—सूर (शब्द०)।

बेनंग[१]—संज्ञा पुं० [देश०] छोटी जाति का एक प्रकार का पहाड़ी बाँस।

विशेष—यह प्रायः लता के समान होता है। इसकी टहनियों से लोग छप्परों की लकड़ियाँ आदि बाँधते हैं। यह जयंतिया पहाड़ी में होता है।

बेनंग†[२]—वि० [फ़ा०] लज्जारहित। बेशर्म।

बेना†—संज्ञा पुं० [सं० वेणु] १. वंशी। मुरली। बाँसुरी। २. सँपेरों के बजाने की तूमड़ी। महुवर। ३. बाँस। उ०—केरा परै कपूर बेन तें लोचन व्याला। अहि मुख जहर समान उपल ते लोह कराला।—पलटू०, पृ० ६६। ४. एक प्रकार का वृक्ष। उ०—बेन बेल अरु तिमिस तमाला।—(शब्द०)।

बेन[२]—संज्ञा पुं० [सं० वचन, प्रा० वयण, बेन] बैन। वाणी। उ०—अग अंग आनँद उमगि उफनत बेनन माँझ। सखी सोभ सब बसि भई मनों कि फूली साँझ।—पृ० रा०, १४।५५।

बेन[३]—संज्ञा पुं० [अं० वेन] एक प्रकार की झंडी जो जहाज के मस्तूल पर लगा दी जाती है और जिसके फहराने से यह पता चलता है। कि हवा किस रुख की है। (लश०)।

बेन[४]—संज्ञा पुं० [अं० विंड] हवा। वायु। (लश०)।

यौ०—बेनसेढ़।

बेनउर‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिनौला'।

बेनकाब—वि० [फ़ा० बे+अ० निक़ाब] बेपर्द। बेशर्म। बेहया। उ०—जहाँ औरतें बेनकाब हों, शराब पी जा रही हो।—भस्मावृत०, पृ० ३९।

बेनजीर—वि० [फ़ा० बे+अ० नजीर] जिसके समान और कोई न हो। जिसकी कोई समता न कर सके। अद्वितीय। अनुपम।

बेनट—संज्ञा स्त्री० [अं० बेयोनेट] लोहे की वह छोटी किर्च जो सैनिकों की बंदूक के अगले सिरे पर लगी रहती है। संगीन।

बेनमक—वि० [फ़ा०] १. बिना नमक का। अलोना। बिना स्वाद का। २. लावण्यरहित। असुंदर (को०)।

बेनयाज—वि० [फ़ा० बेनियाज] [संज्ञा स्त्री० बेनियाजी] जो

किसी पर अवलंबित न हो। जिसे किसी की चाह न हो। उ०—मानू अल्ला एक है और न दूजा कोय। यारी वह सब खल्क कूँ बेनयाज हैं सोय।—दक्खिनी०, पृ० ३८४।

बेनवर‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिनौला'।

बेनवा—वि० [फ़ा०] दरिद्र। दीन। कंगाल [को०]।

बेनवाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दरिद्रता। विवशता। अकिंचनता। उ०—सबब बेनवाई के जंगल तजे फकीर के सबब सूँ शहर कूँ तजे।—दक्खिनी०, पृ० ३४६।

बेनसीब—वि० [हिं० बे+अ० नसीब] जिसका नसीब अच्छा न हो। अभागा। बदकिस्मत।

बेनसेढ—संज्ञा पुं० [अं० विडसेल] जहाज में टाट आदि का बना हुआ नल के आकार का वह बड़ा थैला जिसकी सहायता से जहाज के नीचे के भागों में ऊपर की ताजी हवा पहुँचाई जाती है। (लश०)।

बेना†[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेणु] १. बाँस का बना हुआ हाथ से झलने का छोटा पखा। उ०—जहँवा आँधी चलै बेना को वर्न बतावै।—पलटू०, पृ० ७४। २. खस। उशीर। उ०—किन्हेसि अगर कस्तुरी बेना। कीन्हेसि भीमसेनि अरु चेना।—जायसी (शब्द०)। ३. बाँस।

बेना[2]—संज्ञा पुं० [सं० वेणी] एक गहना जो माथे पर बेंदी के बीच में पहना जाता है। उ०—बेना सिर फूलहि को देखत मन भूल्यो। रूप की लता में मनों एक फूल फूल्यो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४०।

बेनागा—क्रि० वि० [फ़ा० बे+अ० नागह्] बिना नागा डाले। निरंतर। लगातार। नित्य।

बेनाम—वि० [फ़ा० बे+सं० नाम] बिना नाम का। नामहीन। गुमनाम।

बेनिमूनⓅ—वि० [फ़ा० बे+नमूना] अद्वितीय। अनुपम। उ०—बेनिमून वै सबके पारा। आखिर काको करो दिदारा।—कबीर (शब्द०)।

बेनियन—संज्ञा पुं० [हिं० बनिया] वह व्यापारी या महाजन जो यूरोपीय कोठीवालों (हाउसवालों) को आवश्यकतानुसार धन की सहायता देता है।

विशेष—'बेनियन' धनी बंगाली और मारवाड़ी होते हैं। हाउसवालों से इनकी लिखा पढ़ी रहती है कि जब जितने रुपए की आवश्यकता होगी देना पड़ेगा। एक हाउस या कोठी का एक ही बेनियन होता है। लाभ होने पर बेनियन को भी हिस्सा मिलता है और घाटा होने पर उसे हानि भी सहनी पड़ती है।

बेनियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यजन, प्रा० विअण] बेना। पखी। उ०—जहँ प्रभु बैसि सिंहासन आसन डासब हो। तहवाँ बेनियाँ डोलइबों, बड़ सुख पाइब हो।—धरंतबानी०, भा० २, पृ० १२७। २. वह लकड़ी जो किवाड़ के दूसरे पल्ले को रोकने के लिये लगाई जाती है। वि० दे० 'बेनी'।

बेनिसाफी—संज्ञा पुं० [फ़ा० बेइन्साफ़] अन्याय। उ०—जानी हुती कबहूँ तो लैहिगे हमारी सुधि जापै करि बिना सुधि बेनिसाफ लेखी रे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १३५।

बेनी—संज्ञा स्त्री० [सं० वेणी] १. स्त्रियों की चोटी। उ०—गूँदी न राखत प्रात्ति अली यह गूँदी गोपाल के हाथ की बेनी।—मतिराम (शब्द०)। २. गंगा, सरस्वती और यमुना का संगम। त्रिवेणी। उ०—तनु प्रयाग अरयल बिच मिली। बेनी भई सो रोमावली।—जायसी (शब्द०)। ३. किवाड़ों के किसी पल्ले में लगी हुई एक छोटी लकड़ी जो दूसरे पल्ले को खुलने से रोकती है। उ०—चोगिन रानी दियो निसेनी। चढ़ि खोल्यो कपाट की बेनी।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—जिस पल्ले में बेनी लगी होती है, जब तक वह न खुले तब तक दूसरा पल्ला नहीं खुल सकता। इसलिये किसी एक पल्ले में यह बेनी लगाकर उसी में सिटकनी या सिकड़ी लगा देते हैं जिससे दोनों पल्ले बंद हो जाते हैं।

४. एक प्रकार का धान जो भादों के अंत या कुँआर के आरंभ में तैयार हो जाता है।

बेनीयाना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेंदी'। (गहना)।

बेनु—संज्ञा पुं० [सं० वेणु] १. दे० 'वेणु'। २. वंशी। मुरली। ३. बाँस। उ०—बेनु के बस भई बँसुरी जो अनर्थ करे तो अचजं कहा है—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८२१।

बेनुली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] जाते या चक्की में वह छोटी सी लकड़ी जो खिल्ले के ऊपर रखी जाती है और जिसके दोनों सिरों पर जोती रहती है।

बेनूर—वि० [फ़ा०] प्रकाश रहित। ज्योतिहीन। निष्प्रभ। उ०—चढा दार पर जब शेख मंसूर। हुए उस वक्त सूरज चंद बेनूर।—कबीर ग्रं०, पृ० ६०६।

बेनौटीⓅ[1]—वि० [हिं० बिनौला] कपास के फूल की तरह पीले रंग का। कपासी।

बेनौटी[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो कपास के फूल के रंग का सा हलका पीला होता है। कपासी।

बेनौरा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिनौला'।

बेनौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिनौला] आकाश से वर्षा के साथ गिरनेवाले छोटे छोटे पत्थर जो प्रायः बिनौले के आकार के होते हैं। ओला। पत्थर। बिनौरी।

बेपंतⓅ—वि० [सं० √वेप का वर्तमान कृदंत प्र० व०] कंपमान। काँपता हुआ। उ०—सीतल सलिल कंठ परजंत। तहँ ठाढ़ो पर थर बेपंत।—नंद ग्रं०, पृ० २९६।

बेपनाह—वि० [फ़ा०] शरणविहीन। आश्रयरहित [को०]।

बेपर—वि० [फ़ा० बेपर] पंखरहित। बिना पंख का।

मुहा०—बेपर की उड़ाना=असंभव और अविश्वसनीय बात कहना। उ०—दूसरे ने कहा अच्छी बेपर की उड़ाई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५०७। बेपर की बात=असंभव

बात। अंडबंड या बेमेल बात। उ०—कँकरीली राहें न कटेंगी, बेपर की बातें न पटेंगी।—अर्चना, पृ० ८४।

वेपरद—वि० [फ़ा० बे+परद] [संज्ञा स्त्री० वेपरदगी] १. जिसके ऊपर कोई परदा न हो। जिसके आगे कोई ओट न हो। अनावृत। २. नंगा। नग्न।

वेपरदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] परदे का अभाव। परदा न होना।

वेपरवा—वि० [फ़ा० वेपरवा] दे० 'वेपरवाह'।

वेपरवाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० वेपरवाही] दे० 'वेपरवाही'। उ०—लाला ब्रजकिशोर ने वेपरवाही से कहा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २९९।

वेपरवाह—वि० [फ़ा०] १. जिसे परवा न हो। वेफिक्र। २. जो किसी के हानि लाभ का विचार न करे और केवल अपने इच्छानुसार काम करे। मनमौजी। ३. उदार।

वेपरवाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वेपरवाह होने का भाव। वेफिकरी। २. अपने मन के अनुसार काम करना।

वेपर्द—वि० [फ़ा०] [स्त्री० वेपर्दगी] दे० 'वेपरद'।

वेपाइ(पु)†—वि० [हिं० बे+सं० उपाय] जिसे घबराहट के कारण कोई उपाय न सूझे। भौचक। हक्का बक्का। उ०—कोहर सी एड़ीनि को लाली देखि सुभाइ। पाय महावर देन को आप भई वेपाइ।—बिहारी। (शब्द०)।

वेपार[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जो हिमालय की तराई में ६००० से ११००० फुट की ऊँचाई तक अधिकता से पाया जाता है। फेल।

विशेष—इसकी लकड़ी यदि सीड़ से बची रही तो बहुत दिनों तक ज्यों की त्यों रहती है और प्रायः इमारत से काम आती है। इस लकड़ी का कोयला बहुत तेज होता है और लोहा गलाने के लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। इसकी छाल से जगलों में झोपड़ियाँ भी छाई जाती हैं।

वेपार†[2]—संज्ञा पुं० [सं० व्यापार] दे० 'व्यापार'।

वेपारी†—संज्ञा पुं० [सं० व्यापारी] दे० 'व्यापारी'।

वेपीर—वि० [फ़ा० बे+हिं० पीर (= पीड़ा)] १. जिसके हृदय में किसी के दुःख के लिये सहानुभूति न हो। दूसरों के कष्ट को कुछ न समझनेवाला। २. निर्दय। बेरहम।

वेपेंदी—वि० [हिं० बे+पेंदा] जिसमें पेंदा न हो। जो पेंदा न होने के कारण इधर उधर लुढकता हो।

मुहा०—वेपेंदी का लोटा = वह सीधा सादा आदमी जो दूसरों के कहने पर ही अपना मत या कार्य आदि बदल देता हो। किसी के जरा से कहने पर अपना विचार बदलनेवाला आदमी।

वेप्रमाण—वि० [सं० वि+प्रमाण] अत्यधिक। असंख्य। जिसका प्रमाण न हो। उ०—हमारे प्रधान पुरुषों की मृत्युसंख्या वेप्रमाण बढ़ी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७३।

वेफजूल—वि० [उच्चा० बे (आगम)+अ० फ़ुजूल] व्यर्थ। बेकार। बेमतलब। उ०—ऐसी वेफजूल बातों में पुलिस नहीं पड़ती।—सन्यासी, पृ० १०९।

वेफरमाणी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेफर्मान+ई (प्रत्य०)] आज्ञा का उल्लंघन। आदेश न मानना। हुक्मउदूली। उ०—हिंदू घात करै अजका हरि सूँ वेफरमाणी। मुख सूँ स्वाद करै मन सेती जीव दया नहीं जाणी।—राम० धर्म०, पृ० १४२।

वेफसल†—वि० [फ़ा० बे+फ़सल] बिना मौसम का। बे मौसम।

वेफायदा[1]—वि० [फ़ा० बे+अ० फाइदह] जिससे कोई फायदा न हो। जिससे कोई लाभ न हो सके। व्यर्थ का।

वेफायदा[2]—क्रि० वि० बिना किसी लाभ के। बिना कारण। व्यर्थ। नाहक।

वेफिकरा—वि० [हिं० बे+अ० फ़िक्र] जिसे किसी बात की फिक्र या परवाह न हो। निश्चिंत।

वेफिक्र—वि० [फ़ा० बे+अ० फ़िक्र] जिसे कोई फिक्र न हो। निश्चिंत। वेपरवाह।

वेफिक्री—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेफ़िक्री] बेफिक्र होने का भाव। निश्चिंतता।

मुहा०—बेफिक्री की रोटियाँ = बिना हाथ पाँव हिलाए मिलनेवाली रोजी। सुख की रोटी। उ०—जब बेफिक्री की रोटियाँ मिलती हैं तो ऐसी सूझती है।—सैर०, पृ० १५।

वेबदल—वि० [फ़ा० बे+अ० बदल] जिसकी जोड़ न हो। बेजोड़। अद्वितीय। उ०—जो बेटा दिया शाह कूँ वेबदल। चंद्र सूरत खूब निर्मल निछल।—दक्खिनी०, पृ० ९४।

वेबस—वि० [सं० विवश] १. जिसका कुछ वश न चले। लाचार। उ०—बेबसों पर छुरी चला करके क्यों गले पर छुरी चलाते हो।—चुभते०, पृ० ३४। जिसका अपने ऊपर कोई अधिकार न हो। पराधीन। परवश।

वेबसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेबस+ई (प्रत्य०)] १. वेबस होने का भाव। लाचारी। मजबूरी। विवशता। २. पराधीनता। परवशता।

वेबहा—वि० [हिं० बे+बाहा] बिना बाहा अर्थात् बिना बाँध का। बंधनविहीन। मुक्त। स्वच्छंद। उ०—भूमि हरी भई गैलै गई मिटि नीर प्रवाह बहा वेबहा है।—ठाकुर०, पृ० १०।

वेबाक—वि० [फ़ा० बेबाक़] जो चुका दिया गया हो। जो अदा कर दिया गया हो। चुकता किया हुआ। चुकाया हुआ। २. जिसमें अब कुछ बाकी या शेष न हो। बिना किसी बाधा के। पूरी तौर से। उ०—फाटे परवत पाप के गुरु दादू की हाँक। रज्जब निकस्या राह उस पाप मुकत वेबाक।—रज्जब०, पृ० ३।

वेबाकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेबाक़ी] १. धृष्टता। निर्लज्जता। २. निर्भयता। निडरता [को०]।

वेबात—वि० [फ़ा० बे+ हिं० बात] १. अनवसर। वेमौका।

उ०—वह. बेवात भी हँसती है।—सुनीता, पृ० ३३२। २. अनुचित। अनुपयुक्त।

यौ०—बेवात की बात = अनवसर की बात। अनुचित चर्चा। असामयिक कथन।

बेवादी(पु)†—वि० [सं० विवादी] विवाद करनेवाला। उ०—वक्वादी बेवादी निंदक तेहि का मुँह करु काला।—जग० श०, पृ० १२६।

बेबुनियाद—वि० [फ़ा०] १. जिसकी कोई जड़ न हो। निर्मूल। बेजड़। २. मिथ्या। झूठ।

बेव्याहा—वि० [फ़ा० बे + हिं० ब्याहा] [स्त्री० बेव्याही] जिसका ब्याह न हुआ हो। अविवाहित। कुँआरा।

बेभाव—क्रि० वि० [फ़ा० बे+हिं० भाव] जिसका कोई हिसाब या गिनती न हो। बेहद। बेहिसाब।

मुहा०—बेभाव की पड़ना = (१) बहुत अधिक मार पड़ना। उ०—खोजी की चाँद पर बेभाव की पड़ने लगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४२। २, बहुत अधिक फटकार पड़ना।

बेम‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. जुलाहों की कघी। बय। बैसर। वि० दे० 'कंघी'-२। २. भैंस का बछड़ा। पँड़वा। उ०—भक्त ग्वाल के लिये जियराम जी महाराज ने चुराई हुई भैंसे पीछी मँगाई ब्याज रूप घृत में भैंसें की बेम (संतान) आई।—राम० धर्म०, पृ० २८६।

बेमजा—वि० [फ़ा० बेमज़ह्] जिसमे कोई मजा न हो। जिसमें कोई आनंद न हो।

बेमतलब—वि० [फ़ा० बे+अ० मतलब] बिना जरूरत का। अनावश्यक। बेकार।

बेमन[१]—क्रि० वि० [फा० बे+हिं० मन] बिना मन लगाए। बिना दत्तचित्त हुए।

बेमन[२]—वि० जिसका मन न लगता हो।

बेमरम्मत—वि० [फ़ा०] जिसकी मरम्मत होने को हो पर न हुई हो। बिगड़ा हुआ। बिना सुधरा। टूटा फूटा।

बेमरम्मती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेमरम्मत होने का भाव।

बेमसरफ—वि० [फ़ा० बेमसरफ़] बेकार। बेमतलब।

बेमाई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बिवाई'।

बेमारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बीमारी'।

बेमालूम[१]—क्रि० वि० [फ़ा०] ऐसे ढंग से जिसमें किसी को मालूम न हो। बिना किसी को पता लगे। जैसे,—वह सब माल बेमालूम उड़ा ले गए।

बेमालूम[२]—वि० जो मालूम न पड़ता हो। जो देखने में न आता हो या जिसका पता न लगता हो। जैसे,—इसकी सिलाई बेमालूम होनी चाहिए।

बेमिलावट—वि० [फ़ा० बे + हिं० मिलावट] जिसमें किसी प्रकार की मिलावट न हो। बेमेल। शुद्ध। खालिस। साफ।

बेमिस्ल—वि० [फा० बे + अ० मिसाल] अनुपम। बेनजीर। लाजवाब। उ०—न उसकूँ है औरत न फर्जंद है। के ओ एक बेमिस्ल मानिंद है।—दक्खिनी०, पृ० ११७।

बेमुख†—वि० [सं० विमुख] दे० 'विमुख'। उ०—कृतघनी बेमुख भवै, गुरु से विद्या पाय।—कबीर० बानी, पृ० २००।

बेमुनासिब—वि० [फ़ा०] जो मुनासिब न हो। अनुचित।

बेमुरव्वत—वि० [फ़ा०] जिसमे मुरव्वत न हो। जिसमें शील या संकोच का अभाव हो। तोताचश्म।

बेमुरव्वती[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेमुरव्वत होने का भाव।

बेमुरौवती[२]—वि० [फ़ा० बेमुरव्वत] [भा० बेमुरौवती] दे० 'बेमुरव्वत'।

बेमेल—वि० [फ़ा० बे+हिं० मेल] बिना जोड़ का। अनमिल।

बेमौका[१]—वि० [फ़ा० बे+ अ० मौक़ए] जो अपने ठीक मौके पर न हो। जो अपने उपयुक्त अवसर पर न हो।

बेमौका[२]—संज्ञा पुं० मौके का न होना। अवसर का अभाव।

बेमौसिम—वि० [फ़ा० बे+ अ० मौसिम] उपयुक्त मौसिम या ऋतु न होने पर भी होनेवाला। जैसे—जाड़े में पानी बरसना या आम मिलना बेमौसिम होता है। उ०—बेमौसिम की धीमी धीमी झड़ी लग रही थी।—दो दुनियाँ, पृ० २।

बेयरा—संज्ञा पुं० [अं० बेअरर] दे० 'बेरा'।

बेरंग—वि० [सं० वि + रङ्ग (= आनंद)] १. आनंदरहित। बेमजा। २. वर्ण रहित।

बेरंगी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० बेरंग + ई] बिना रूप रंगवाला, अर्थात् ईश्वर। उ०—बेरंगी के रंग सूँ सखि गागर लई भराय।—चरण० बानी०, पृ० १५५।

बेर[१]—संज्ञा पुं० [सं० बदरी या बदर प्रा० बयर] १. प्रायः सारे भारत में होनेवाला मझोले आकार का एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष।

विशेष—इसके छोटे बड़े कई भेद होते हैं। यह वृक्ष जब जंगली दशा में होता है, तब झरबेरी कहलाता है और जब कलम लगाकर तैयार किया जाता है तब उसे पेवंदी (पैवंदी) कहते हैं। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में और छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। बंगाल में इस वृक्ष की पत्तियों पर रेशम के कीड़े भी पलते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी और कुछ लाली लिए हुए होती है और प्रायः खेती के औजार बनाने और इमारत के काम मे आती है। इसमें एक प्रकार के लबोतरे फल लगते हैं जिनके अंदर बहुत कड़ी गुठली होती है। यह फल पकने पर पीले रंग का हो जाता है और मीठा होने के कारण खूब खाया जाता है। कलम लगाकर इसके फलों का आकार और स्वाद बहुत कुछ बढ़ाया जाता है।

पर्या०—बदर। कर्कंधू। कोल। सौर। कंटकी। वक्रकंटक।

२. बेर के वृक्ष का फल।

बेर[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बार] १. बार। दफा। दे० विशेष और मुहा० 'बार' शब्द मे। उ०—जो कोइ जाया इक बेर माँगा। जन्म न

हो फिर भूखा नांगा।—जायसी (शब्द०)। २. विलंब। देर। उ०—बेर न कीजे बेग चलि, वलि जाउँ री बाल।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६।

यौ०—बेर बखत = समय कुसमय। मौके बेमौके। जरूरत के समय। उ०—अपने हाथ मे बेर बखत के लिये पूरा स्टॉक रखना जरूरी है।—मैला०, पृ० २३०।

बेरजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेर + झड़ी] झड़बेरी। जगली बेर। उ०—बेरजरी सु बीलैया बूटी। बरु बहेर धावची जूटी।—सूदन (शब्द०)।

बेरजा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिरोजा'।

बेरवा†[1]—संज्ञा पुं० [देश० या वलय] कलाई मे पहनने का सोने या चाँदी का कड़ा।

बेरवा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ब्योरा'।

बेरस†[1]—वि० [फा० बे + हिं० रस] १. जिसमें रस का अभाव हो। रस रहित। २. जिसमे अच्छा स्वाद न हो। बुरे स्वाद वाला। ३. जिसमें आनंद न हो। बेमजा।

बेरस†[2]—संज्ञा पुं० रस का अभाव। विरसता। (क्व०)।

बेरसना—क्रि० स० [सं० विलसन] भोगना। विलसना। उ०—बेरसहु नव लख लच्छि पिआरी। राज छाँड़ि जनि होहु भिखारी।—जायसी० ग्रं० (गुप्त), पृ० २०७।

बेरहई†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेढ़ई'।

बेरहड्डी†—संज्ञा स्त्री० [बेर+हिं० हड्डी] घुटने के नीचे की हड्डी में का उभार।

बेरहम—वि० [फ़ा० बेरह्म] जिसके हृदय में दया न हो। निर्दय। निठुर। दयाशून्य।

बेरहमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेरह्मी] बेरहम होने का भाव। निर्दयता। दयाशून्यता। निष्ठुरता।

बेरा†[1]—संज्ञा पुं० [सं० बेला] १. समय। वक्त। वेला। २. देर। विलंब। उ०—मोहिं घट जीव घटत नहिं बेरा।—जायसी ग्रं०, पृ० ११०। ३. तड़का। भोर। प्रातःकाल।

बेरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक में मिला हुआ जौ और चना। बेरी।

बेरा[3]—संज्ञा पुं० [सं० वेड़ा] दे० 'बेड़ा'। उ०—भवसागर बेरा परो, जल मांझ मँझारे हो। संतन दीन दयाल ही करि पार निकारे हो।—संतबानी०, पृ० १२६।

बेरा[4]—संज्ञा पुं० [अं० बेअरर (= वाहक)] वह चपरासी, विशेषतः साहब लोगों का वह चपरासी जिसका काम चिट्ठी पत्री या समाचार आदि पहुँचाना और ले आना आदि होता है।

बेरादरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० बिरादरी] दे० 'बिरादरी'।

बेरानी†—वि० [हिं० बिराना] पराया। अन्य का। उ०—बेरानी सब तमाशा यह जो देखें।—कबीर म०, पृ० ३७६।

बेराम†—वि० [फा० बे+आराम] दे० 'बीमार'।

बेरामी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेराम+ई (प्रत्य०)] दे० 'बीमारी'।

बेरास†—संज्ञा पुं० [सं० विलास] दे० 'विलास'। उ०—भोग बेरास सदा सब माना। दुख चिंता कोई जरम न जाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १४६।

बेरिआ—संज्ञा स्त्री० [सं० वेला (= समय)] वेला। समय।

बेरिज†—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी जिले की कुल जमा। उ०—तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की ध्यान निरखि ठहराई।—धरनी० बानी, पृ० ४।

बेरियाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेर] समय। वक्त। काल। वेला। उ०—पिय आवन की भई बेरियाँ दरवजवा ठाढ़ी रहूँ।—गीत (शब्द०)।

बेरिया†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेर + इया (प्रत्य०)] बार। दफा। उ०—बेरिया एक इडा सो खेंचे। पिंगला दूजी बार जु एचे।—अष्टांग०, पृ० ७४।

बेरिया[2]—वि० [फ़ा० बेरिया अ] आडंबरविहीन। निश्छल। पाखंडहीन [को०]।

बेरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० बदरी हिं० बेर (= फल)] एक प्रकार की लता जो हिमालय मे होती है। इसके रेशों से रस्सियाँ और मछली फँसाने के जाल बनते हैं। इसे 'मुरकूल' भी कहते हैं। २. दे० 'बेर'। ३. एक में मिली हुई सरसों और तीसी। ४. खत्रियों की एक शाखा।

बेरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेड़ी] दे० 'बेड़ी'। उ०—(क) हथ्थ हथ्थ करि प्रेम की पाइन बेरी लोन। गलै तोष नर आन की छुटयो कहत है कोन।—पृ० रा०, ६६।४०६ (ख) हरि ने कुटुंब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी।—सहजो०, बानी, पृ० ४।

बेरी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बार (=दफा) १. दे० 'बेर'। २. उतना अनाज जितना एक बार चक्की में डाला जाता है। अनाज की मुट्ठी जो चक्की में डाली जाती है।

बेरीछत—संज्ञा पुं० [देश०] एक शब्द जो महावत लोग हाथी को किसी काम से मना करने के लिये कहते हैं।

बेरुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस का वह टुकड़ा जो नाव खींचने की गून में आगे की ओर बँधा रहता है और जिसे कंधे पर रखकर मल्लाह चलते हैं।

बेरुई†—संज्ञा स्त्री० [?] वेश्या। रंडी।

बेरुकी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रोग जिसमें बैलों की जीभ पर काले काले छाले हो जाते हैं और उसे बहुत कष्ट देते है।

बेरुख—वि० [फ़ा० बेरुख] १. जो समय पड़ने पर रुख (मुँह) फेर ले। बेमुरव्वत। २. नाराज। क्रुद्ध। रुष्ट।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

बेरुखी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेरुखी] बेरुख होने का भाव। अवसर पड़ने पर मुँह फेर लेना। बेमुरव्वती।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

बेरूप†—वि० [सं० विरूप] भद्दी शक्लवाला। कुरूप। बदशक्ल।

बेरोक—क्रि० वि० [फ़ा० बे+हिं० रोक] विना किसी प्रकार की रुकावट के। बेखटके। निर्विघ्न।

यौ०—बेरोकटोक=निर्विघ्नतापूर्वक। बिना किसी रुकावट या अड़चन के।

बेरोजगार—वि० [फ़ा० बेरोज़गार] जिसके हाथ में कोई रोजगार न हो। जिसके पास करने को कोई काम धंधा न हो।

बेरोजगारी—संज्ञा स्त्री० [फा० बेरोजगारी] बेरोजगार होने का भाव।

बेरौनक—वि० [फा० बेरौनक] जिसपर रौनक न हो। जिसकी शोभा न रह गई हो। उदास।

क्रि० प्र०—छाना।—होना।

बेरौनकी—संज्ञा स्त्री० [फा० बेरौनकी] बेरौनक होने का भाव।

बेर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] १. मिले हुए जौ और चने का आटा। २. कोई का फल।

बेर्राबरार—संज्ञा पुं० [हिं० बेर्रा (=जौ और चना)+फा बरार (=लादा हुआ)] अन्न की उगाही।

बेलदा—वि० [फा० बलंद] १. ऊँचा। उ०—(क) पद बेलद परे जो पाऊँ। तो लोको घर लोक न ठाऊँ।—विश्राम (शब्द०)। (ख) रघुराज ब्याह होत ह्वै गई बेलद आँखें मिथिला निवासिन मिताई नई कीन्हें हैं।—रघुराज (शब्द०)। २, जो बुरी तरह परास्त या विफलमनोरथ हुआ हो। (व्यंग्य)।

बेलंब(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विलम्ब] दे० 'विलंब'।

बेल—[1]संज्ञा पुं० [सं० बिल्व] मझोले आकार का एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। श्रीफल। बिल्व।

विशेष—इसकी लकड़ी भारी और मजबूत होती है। और प्रायः खेती के औजार बनाने और इमारत के काम में आती है। इससे ऊख पेरने के कोल्हू और मूसल आदि भी अच्छे बनते हैं। इसकी ताजी गीली लकड़ी चंदन की तरह पवित्र मानी जाती है और उसे चीरने से एक प्रकार की सुगंध निकलती है। इसमें सफेद रंग के सुगंधित फूल भी होते हैं। इसकी पत्तियाँ एक सीके में तीन तीन (एक सामने और दो दोनों ओर) होती हैं जिन्हें हिंदू लोग महादेव जी पर चढ़ाते हैं। इसमें कैथ से मिलता जुलता एक प्रकार का गोल फल भी लगता है जिसके ऊपर का छिलका बहुत कड़ा होता है और जिसके अंदर गूदा और बीज होते हैं। पक्के फल का गूदा बहुत मीठा होता है और साधारणतः खाने या शरबत आदि बनाने के काम में आता है। फल औषध के काम में भी आता है और उसके कच्चे गूदे का मुरब्बा भी बनता है। वैद्यक मे इसे मधुर, कसैला, गरम, हृदय को हितकारी, रुचिकारक, दीपन, ग्राही, रूखा, पित्तकारक, पाचक, और वातातिसार तथा ज्वरनाशक माना है।

पर्या०—बिल्व। महाकपित्थ। गोहरीतकी। पूतिवात। मंगल्य। त्रिशिख। मालूर। महाफल। शल्य। शैलपत्र। पत्रश्रेष्ठ। त्रिपत्र। गंधपत्र। लक्ष्मीफल। गंधफल। शिवद्रुम। सदाफल। सत्यफल।

बेल[2]—संज्ञा पुं० [सं० मल्ल या मल्ली] वह स्थान जहाँ शक्कर आदि तैयार होती है।

बेल[3]—संज्ञा पुं० [अं०] कपड़े या कागज आदि की वह बड़ी गठरी जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये बनाई जाती है। गाँठ।

बेल[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्ली] १. वनस्पतिशास्त्र के अनुसार वे छोटे कोमल पौधे जिनमें काठ या मोटे तने नहीं होते और जो अपने बल पर ऊपर की ओर उठकर नहीं बढ़ सकते। वल्ली। लता। लतर।

विशेष—साधारणतः बेल दो प्रकार की होती है। एक वह जो अपने उत्पन्न होने के स्थान से आस पास के पृथ्वीतल अथवा और किसी तल पर दूर तक फैलती हुई चली जाती है। जैसे, कुम्हड़े की बेल। दूसरी वह जो आस पास के वृक्षों अथवा इसी काम के लिये लगाए गए बाँसों आदि के सहारे उनके चारो ओर घूमती हुई ऊपर की ओर जाती है। जैसे, सुरपेचा, मालती, आदि। साधारणतः बेलों के तने बहुत ही कोमल और पतले होते हैं और ऊपर की ओर अपने आप खड़े नहीं रह सकते।

मुहा०—बेल मँढ़े चढ़ना=किसी कार्य का अंत तक ठीक ठीक पूरा उतरना। आरंभ किए हुए कार्य में पूरी सफलता होना।

२. संतान। वंश।

मुहा०—बेल बढ़ना=वंशवृद्धि होना। पुत्र पौत्र आदि होना।

३. विवाह आदि में कुछ विशिष्ट अवसरों पर संबंधियों और बिरादरीवालों की ओर से हज्जामों, गानेवालियों और इसी प्रकार के और नेगियों को मिलनेवाला थोड़ा थोड़ा धन।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।

४. कपड़े या दीवार आदि पर एक पंक्ति में बनी हुई फूल पत्तियाँ आदि जो देखने में बेल के समान जान पड़ती हों। ५. रेशमी या मखमली फीते आदि पर जरदोजी आदि से बनी हुई इसी प्रकार की फूल पत्तियाँ जो प्रायः पहनने के कपड़ों पर टाँकी जाती हैं।

यौ०—बेलबूटा।

क्रि० प्र०—टाँकना।—लगाना।

६. नाव खेने का डाँड़। बल्ली। ७. घोड़ों का एक रोग जिसमें उनका पैर नीचे से ऊपर तक सूज जाता है। बदनाम। गुमनाम।

बेल[5]—संज्ञा पुं० [फा० बेलचह्] १. एक प्रकार की कुदाली जिससे मजदूरे जमीन खोदते हैं।

यौ०—बेलदार।

२. सड़क आदि बनाने के लिये चूने आदि से जमीन पर डाली हुई लकीर जो केवल चिह्न के रूप मे अथवा सीमा निर्धारित करने के लिये होती है।

क्रि० प्र०—डालना।

३. एक प्रकार का लंबा खुरपा।

बेल(पु)[6]—संज्ञा पुं० [सं० मल्लिक] १. दे० 'बेला'। २. बेले का

फूल। उ०—सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत। हार बेलि पहिरावौ चंपक होत।—तुलसी ग्रं० पृ० १६।

बेल(पु)[९]†—वि० [सं० द्वि>प्रा० वि, बे + एल (प्रत्य०)] दो। युग्म। उ०—जद जागूँ तद एकली जब सोऊँ तब बेल।—ढोला०, दू० ५११।

बेल†[८]—वि० [सं० √मेलय्, या हिं० मेल] मददगार। सहायक। साथी। दे० 'बेली'। उ०—संग जैतावत साहिबौ, दूंजो जैत दुभल्ल। जैत कमधा बेल जे, भांजण देत मुगल्ल।—रा० रू०, पृ० १२४।

बेलका†—संज्ञा पु० [देश०] फरसा। फावड़ा।

बेलकी—संज्ञा पु० [देश०] चरवाहा।

बेलकुन—संज्ञा पु० [देश०] नकछिकनी जाति की एक प्रकार की लता।

विशेष—यह लता पजाब की पहाड़ियों और पच्छिमी हिमालय मे ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यह लका और मलाया द्वीप में भी होती है। वर्षा ऋतु के अत में इसमें पीलापन लिए सफेद रग के बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं।

बेलखजी—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जिसके हीर की लकड़ी लाल होती है।

विशेष—यह वृक्ष पूर्वीय हिमालय मे ४००० फुट की ऊँचाई तक होता है जिससे चाय की संदूक, इमारती और आरायशी सामान तैयार किए जाते हैं। वृक्ष को काटने के बाद इसकी जड़ें जल्दी फूट आती हैं।

बेलगगरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

बेलगाम—वि० [फ़ा० बेलगाम] बलगारहित। निर्बंध। सरकश। अंकुश न माननेवाला।

मुहा०—बेलगाम होना=(१) निर्बंध होना। सरकश होना। (२) बिना विचारे बोलना। अंड बंड बोलना।

बेलगिरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० बेल+गिरी (= मींगी)] बेल के फल का गूदा।

बेलचका†—सज्ञा पु० [फ़ा० बेलचह्] दे० 'बेलचा'।

बेलचा—सज्ञा पुं० [फ़ा० बेलचह्] १. एक प्रकार की छोटी कुदाल जिससे माली लोग बाग की क्यारियाँ आदि बनाते हैं। २. कोई छोटी कुदाल। कुदारी। ३. एक प्रकार की लबी खुरपी।

बेलज्जत—वि० [फ़ा० बेलज्जत] १. जिसमें किसी प्रकार का स्वाद न हो। स्वादरहित। २. जिसमें कोई सुख न मिले। जैसे, गुनाह बेलज्जत।

बेलड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेल+डी (प्रत्य०)] छोटी बेल या लता। बौर। उ०—चंदबदन मृगलोचनी हो कहत सकल संसार। कामिनि विष की बेलड़ी हो नख सिख भरी बिकार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१८।

बेलदार—सज्ञा पु० [फ़ा०] वह मजदूर जो फावड़ा चलाने या जमीन खोदने का काम करता हो।

बेलदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फावड़ा चलाने का काम। बेलदार का काम।

बेलन[१]—संज्ञा पुं० [सं० वलन] १. लकड़ी, पत्थर या लोहे आदि का बना हुआ वह भारी, गोल और दड के आकार का खंड जो अपने अक्ष पर घमता है और जिसे लुढ़काकर किसी चीज को पीसते, किसी स्थान को समतल करते, अथवा कंकड़, पत्थर कूटकर सड़कें बनाते हैं। रोलर। २. किसी यत्र आदि में लगा हुआ इस आकार का कोई बड़ा पुरजा जो घुमाकर दबाने आदि के काम मे आता है। जैसे, छापने की मशीन का बेलन। ऊख पेरने की कल का बेलन। ३. कोल्हू का जाठ। ४. करघे मे का पौसार। वि० दे० 'पौसार'। ५. रुई धुनकने की मुठिया या हत्था। वि० दे० 'धुनकी'। ६. कोई गोल और लबा लुढ़कनेवाला पदार्थ। जैसे, छापने की कल मे स्याही लगानेवाला बेलन। ७. दे० 'बेलना'।

बेलन[२]—सज्ञा [देश०] १. एक प्रकार का जड़हन धान। २. एक में मिलाई हुई वे दो नावें जिनकी सहायता से डूबी हुई नाव पानी में से निकाली जाती है।

बेलनदार—वि० [हिं० बेलन+फ़ा० दार (प्रत्य०)] बेलनवाला। जिसमे बेलन लगा हो।

बेलना[१]—संज्ञा पुं० [सं० वलन] काठ का बना हुआ एक प्रकार का लंबा दस्ता जो बीच में मोटा और दोनों ओर कुछ पतला होता है और जो प्राय: रोटी, पूरी, कचौरी आदि की लोई को चकले पर रखकर बेलने के काम आता है। यह कभी कभी पीतल आदि का भी बनता है।

बेलना[२]—क्रि० स० १. रोटी, पूरी, कचौरी आदि को चकले पर रखकर बेलने की सहायता से दबाते हुए बढ़ाकर बडा और पतला करना। २. चौपट करना। नष्ट करना।

मुहा०—पापड़ बेलना=काम बिगाड़ना। चौपट करना।

३. विनोद के लिये पानी के छींटे उड़ाना। उ०—पानी तीर जानि सब बेलैं। फुलसहिं करहिं कटाकी केलैं।—जायसी (शब्द०)।

बेलपत्ती—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बेलपत्र'।

बेलपत्र—सज्ञा पुं० [सं० विल्वपत्र] बेल के वृक्ष की पत्तियाँ जो हर एक सींक मे ३-३ होती हैं, और जो शिव जी पर चढ़ाई जाती हैं।

बेलपात—सज्ञा पु० [सं० बिल्वपत्र] दे० 'बेलपत्र'।

बेलबागुरा—सज्ञा पुं० [डिं०] हिरनों को पकड़ने का जाल।

बेलबूटेदार—वि० वि० [हिं० बेलबूटा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें बेलबूटे बने हों। बेलबूटोंवाला।

बेलमाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० बिलमाना] दे० 'बिलमाना'।

बेलवाती†—सज्ञा स्त्री० [सं० विल्वपत्र] विल्वपत्र। बेलपत्ती। उ०—बेलवाती महि परै सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई।—राम०, पृ० ४६।

बेलवाना—क्रि० स० [हिं० बेलना] बेलने का काम किसी दूसरे से लेना। जैसे, पूरी बेलवाना।

बेलसना(पु)†—क्रि० अ० [सं० विलास+ना (प्रत्य०)] भोग करना। सुख लूटना। आनंद करना।

बेलहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० बेल (=पान) + हरा (=धारक) (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० बेलहरी] लगे हुए पान रखने के लिये एक लबोतरी पिटारी जो बाँस या धातुओं आदि की बनी होती है।

बेलहरी†—संज्ञा पुं० [हिं० बेल+हरी (प्रत्य०)] साँची पान।

बेलहाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेल+हाजी ?] धोती आदि के किनारों पर लहरिएदार बेल छापने का लकड़ी का ठप्पा।

बेलहाशिया—संज्ञा पुं० [हिं० बेल+हाशिया] धोती आदि के किनारों पर बेल छापने का ठप्पा।

बेला¹—संज्ञा पुं० [सं० मल्लिका] १. चमेली आदि की जाति का छोटा पौधा जिसमें सफेद रंग के सुगंधित फूल लगते हैं।

विशेष—ये फूल तीन प्रकार के होते हैं—(१) मोतिया, जो मोती के समान गोल होता है, (२) मोगरा जो उससे बड़ा और प्रायः सुपारी के बराबर होता है और (३) मदनबान, जिसकी कली प्रायः एक इंच तक लंबी होती है।

२. मल्लिका। त्रिपुरा। ३. बेले के फूल के आकार का एक प्रकार का गहना।

बेला²—संज्ञा पुं० [सं० वेला] १. लहर। उ०—बेला सम बढि सागर रण में। लव कह कूल सरिस तेहि क्षण में।—रामाश्व० (शब्द०)। २. चमड़े की बनी हुई एक प्रकार की छोटी कुल्हिया जिसमें एक लंबी लकड़ी लगी रहती है और जिसकी सहायता से तेल नापते या दूसरे पात्र में भरते हैं। ३. कटोरा। उ०—बेला भरि हलधर को दीन्हों। पीवत पै बल अस्तुति कीन्हो।—सूर (शब्द०)। ४. समुद्र का किनारा। उ०—बरनि न जाइ कहाँ लौ बरनौ प्रेम जलधि बेला बल बोरे।—सूर (शब्द०)। ५. समय। वक्त। ६. दे० 'वेला'।

बेला³—संज्ञा पुं० [हिं०] एक तंत्रवाद्य। दे० 'बेहला'। उ०—हमने डाक बंगाली को देखा कि जब वह बेला बजाने लगता आप भी मस्त हो जाता।—रस क० (भू०), पृ० ६।

बेलाग—वि० [फा० बे+हिं० लाग (=लगावट)] १. जिसमें किसी प्रकार की लगावट या सबंध न हो। बिल्कुल अलग। २. साफ। खरा।

बेलाडोना—संज्ञा पुं० [अं०] मकोय का सत्त जो प्रायः अँगरेजी दवाओं में खाने या पीड़ित स्थान पर लगाने के काम में आता है।

बेलावल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बिलावल'।

बेलास†—संज्ञा पुं० [सं० विलास] दे० 'विलास'। उ०—भोग बेलास सबै बिछु पावा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४५।

बेलासना†—क्रि० अ० [सं० विलासन] दे० 'विलसना'। उ०—पुहुप बेलासा सब भ्रम नासा भरि भरि अम्रित सो आई। अति सुख सागर सब गुन आगर दरिया दरसन सो पाई।—संत० दरिया, पृ० ७।

बेलि—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्ली] लता। दे० 'बेल'। उ०—इनके लिखे हुए कई ग्रंथ कहे जाते हैं जिनमें 'बेलि क्रिसन रुकिमणी री' भी है।—अकबरी, पृ० ४२।

बेलिफ—संज्ञा पुं० [अं०] दीवानी अदालत का वह कर्मचारी जिसका काम अदालत में हाजिर न होनेवाले को गिरफ्तार करना और माल कुर्क करना आदि है।

बेलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेला का अल्पा०] छोटी कटोरी।

बेलिहाज—वि० [फा० बे+लिहाज] निःसंकोच। निर्लज्ज। अदब कायदे का ख्याल न रखनेवाला। २. बेमुरव्वत (को०)।

बेली¹—संज्ञा पुं० [सं० बल, राज० बेल (=सहायता)] साथी। संगी। जैसे, गरीबों का बेली अल्लाह है।—(कहावत)। उ०—(क) सोरह सै संग चलीं सहेली। कँवल न रहा और को बेली।—जायसी (शब्द०)। (ख) ऐहैं बेली रली रेली उचित अदन में।—छीत०, पृ० ३६।

बेली²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा कँटीला वृक्ष जो ग्रीष्म में फूलता है और जाड़े में फलता है।

विशेष—हिमालय में यह वृक्ष ४००० फुट तक की ऊँचाई पर मिलता है और दक्षिण भारत में भी पाया जाता है। यह गरमी के दिनों में फूलता और जाड़े में फलता है। इसके भिन्न भिन्न अंगों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। इसकी लकड़ी पीले रंग की और कड़ी होती है। जावा में इसके फल कपड़ा धोने के काम में आते हैं।

बेहिलाज—वि० [फा० बे+लिहाज] १. निःसंकोच। निर्लज्ज। अदब कायदे का ख्याल न रखनेवाला। २. बेमुरव्वत (को०)।

बेलुत्फ—वि० [फा० बेलुत्फ] [संज्ञा बेलुत्फी] आनंदरहित। बेमजा (को०)।

बेलौस—वि० [हिं० बे+फा० लौस] १. सच्चा। खरा। जैसे, बेलौस आदमी। २. बेमुरव्वत। (क्व०)।

बेवकत—वि० [फा० बेवकत] बिना वकत या प्रतिष्ठा का। नगण्य तुच्छ। साधारण (को०)।

बेवकूफ—वि० [फा० बेवकूफ] जिसे किसी प्रकार का वकूफ या शऊर न हो। मूर्ख। निर्बुद्धि। नासमझ।

बेवकूफी—संज्ञा स्त्री० [फा० बेवकूफी] बेवकूफ होने का भाव। मूर्खता। नादानी। नासमझी।

बेवक्त—क्रि० वि० [फा० बेवक्त] अनुपयुक्त समय पर। कुसमय में।

मुहा०—बेवक्त का राग=दे० 'बेवक्त की शहनाई'। बेवक्त की शहनाई=बे मौके की चीज। असामयिक वस्तु या क्रिया।

बेवजा(पु)†—वि० [फा० बे+वजअ (=ढंग)] बेढंगा। भद्दा। उ०—हुआ बेवजा रूप जों का लहाँ। न पलकाँ, न साको कद्‌धा, ना भवाँ।—दक्खिनी० पृ० ६०।

बेवट†—संज्ञा पुं० [सं० विवर्त या व्यावर्त] विवशता। संकट की स्थिति। लाचारी।

बेवटना†—क्रि० अ० [सं० विवर्तन] १. परिवर्तित होना। जैसा

चाहते हों वैसा न होना। २. संकटग्रस्त होना। बिगड़ना। खराब होना।

बेवतन—वि० [फ़ा०] १. बिना घर द्वार का। जिसके रहने आदि का कोई ठिकाना न हो। २. परदेशी।

बेवपार Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० व्यापार] दे० 'व्यापार'।

बेवपारी—संज्ञा पुं० [सं० व्यापारिन्] दे० 'व्यापारी'। उ०—टाँड़ा तुमने लादा भारी, बनिज किया पूरा बेवपारी।—कबीर० श०, पृ० ६।

बेवफा—वि० [फ़ा० बे + अ० वफ़ा] १. जो मित्रता आदि का निर्वाह न करे। २. बेमुरव्वत। दुःशील। ३. किए हुए उपकार को न माननेवाला। कृतघ्न।

बेवफाई—संज्ञा स्त्री० [फा० बेवफ़ाई] बेवफा या बेमुरव्वत होने की स्थिति। उ०—सीखे हो बेवफाई, इसमें है क्या सफाई।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४४।

बेवर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसकी रस्सी खाट बुनने के काम आती है।

बेवरा Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० ब्योरा] विवरण। ब्योरा। उ०—कपिल कह्यो तोहि भक्ति सुनाऊँ। अरु ताको बेवरो समझाऊँ।—सूर (शब्द०)।

यौ०—बेवरेबाज = चालाक। धूर्त।

बेवरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ब्योरा + फ़ा० बाज़ी] चालाकी। चालबाजी। (बाजारू)।

बेवरेवार—वि० [हिं० बेवरा + वार (प्रत्य०)] तफसीलवार। विवरणसहित।

बेवसाउ Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय] उद्यम। व्यवसाय। काम। उ०—बिरिध बैस जो बाँधे पाऊ। कहाँ सो जोबन कित बेवसाऊ।—जायसी (शब्द०)।

बेवसाय†—संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय] व्यवसाय। काम।

बेवसार Ⓟ†—संज्ञा पुं० [?] व्यवसाय। विशिष्ट इच्छा या प्रयत्न। उ०—रेखा खाँचि कहत हौं हरि लै जाइहै। तब जानब बेवसार स्याम मुख लाइहै।—अकबरी०, पृ० ३४०।

बेवस्था†—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यवस्था] दे० 'व्यवस्था'। उ०—कठिन मरन तें प्रेम बेवस्था। ना जिउ जियै न दसवँ अवस्था।—जायसी ग्रं०, पृ० ४६।

बेवहर‡—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार] दे० 'व्यौहर'।

बेवहरना†Ⓟ—क्रि० अ० [सं० व्यवहार] व्यवहार करना। बरताव करना। बरतना।

बेवहरिया Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार + इया (प्रत्य०)] १. लेनदेन करनेवाला। महाजन। उ०—जेहि बेवहरिया कर बेवहारू। का लेइ देव जउँ छेंकहि बारू।—जायसी (शब्द०)। २. लेन देन का हिसाब करनेवाला। मुनीम। उ०—अब आनिय बेवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।—तुलसी (शब्द०)।

बेवहार—[सं० व्यवहार, प्रा० विवहार] दे० 'व्यवहार'। उ०—(क) से आवे जाहु ताहु देखि झावए, चिन्हिमन बेवहार।—विद्यापति, पृ० १७३। (ख) पुनि लौकिक बेवहार मैं नेम, प्रधान कियो तब नाहिं सुन्यौ।—नट०, पृ० १५२।

बेवा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेवह्] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो। विधवा। राँड।

बेवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बिवाई'।

बेवान Ⓟ†[1]—संज्ञा पुं० [सं० विमान] दे० 'विमान'। उ०—दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं बैकुंठ बेवान। चरन कमल चित चहत हौ, मोहिं तुम्हारी आन।—दया० बानी, पृ० २१।

बेवान[2]—संज्ञा पुं० [?] चाह। उ०—मुख तान के सुन बेवान लगा सोइ आइ खड़ी नहि लाज डरी।—संत० दरिया, पृ० ६६।

बेवाहा Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० बिवाहा] प्रिय। प्रियतम। उ०—बेवाहा के मिलन से नैन भया खुसहाल। दिल मन मतवाला हुआ गंगा गहिर रसाल।—संत० दरिया, पृ० २६।

बेवि Ⓟ†—वि० [हिं०] दो। उ०—बेवि सरोरुह उपर देखल जइसन दुतिअ चंदा।—विद्यापति, पृ० १४।

बेश[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेश] दे० 'वेश'।

बेश[2]—वि० [फ़ा०] अधिक। विशेष। ज्यादा।

बेश[3]—संज्ञा पुं० मीठा तेलिया। संखिया। बच्छनाग [को०]।

बेशऊर—वि० [फ़ा० बे + अ० शऊर] जिसे कुछ भी शऊर न हो। मूर्ख। फूहड़। नासमझ। बेसलीका।

बेशऊरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बे + अ० शऊर + ई (प्रत्य०)] बेशऊर होने का भाव। मूर्खता। नासमझी।

बेशक—क्रि० वि० [फ़ा० बे + अ० शक़] बिना किसी शक का। अवश्य। निःसंदेह। जरूर।

बेशकीमत, बेशकीमती—वि० [फ़ा० बेश + अ० क़ीमत] जिसका मूल्य बहुत अधिक हो। बहुमूल्य। मूल्यवान्।

बेशबहा—वि० [फ़ा०] दे० 'बेशकीमती'।

बेशरम—वि० [फ़ा० बेशर्म] जिसे शर्म हया न हो। निर्लज्ज। बेहया। उ०—बाँह पकरि तू ल्याई काको अति बेशरम गवाँरि। सूरस्याम मेरे आगे खेलत जोबन मद मतवारि।—सूर (शब्द०)।

बेशरमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बेशर्मी] निर्लज्जता। बेहयाई।

बेशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. अधिकता। ज्यादती। २. साधारण से अधिक कार्य करने की मजदूरी। ३. लाभ। नफा।

बेशुमार—वि० [फ़ा०] अगणित। असंख्य। अनगिनत।

बेश्म—संज्ञा पुं० [सं० वेश्म वा वेश्मन्] घर। गृह। निवासस्थान। उ०—निज रहिबे हित बेश्म जो पूँछेउ सो सुनि लेहु।—विश्राम (शब्द०)।

बेसंदर Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० वैश्वानर] अग्नि। उ०—यहै कुबेर

जयति वेसंदर। बैठे और अनेक मुनिंदर। —सबलसिंह (शब्द०)।

वेसँभर(पु)†—वि० [फ़ा० बे+हिं० सँभाल (=सुध)] बेहोश। उ०—राधो बिजली मारा वेसँभर कुछ न सँभार।—जायसी (शब्द०)।

वेस(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेश, प्रा० वेस] दे० 'वेश'।

वेस[2]—वि० [फ़ा० बेश, तुल० बँग० बेश (=अधिक)] १. बढ़िया। उत्तम। उ०—कृपनि एक बेस देस पालकी सुजान की। २. अधिक। ज्यादा। उ०—फबति फूँदननि मैं मुकतावलि मोल बेस की।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६।

वेसन—संज्ञा पुं० [देश०] चने की दाल का आटा। चने का आटा। रेहन।

वेसना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० बसन या वेष्ठन; तुल० हिं० बसना (=थैली)] सर्प का वेठन या थैली। केंचुल। उ०—नाहिन कछु स्रम सहजहिं ऐसे। साँप वेसना को सिसु जैसें।—नंद०, ग्रं०. पृ, १६२।

वेसना†[2]—क्रि० अ० [सं० वेशन] दे० 'बैठना'। उ०—मैं गुनिवंत भूमि पर वेसा। चरन धोइ करि पिए नरेसा।—माधवानल०, पृ० १६६।

वेसनी[1]—वि० [हिं० बेसन+ई (प्रत्य०)] बेसन का बना हुआ।

वेसनी[2]—संज्ञा स्त्री० १. बेसन की बनी हुई पूरी। २. कचौरी जिसमें बेसन भरा हो।

वेसबब—क्रि० वि० [फ़ा०] बिना किसी सबब या कारण के। अकारण।

वेसबरा—वि० [फ़ा० बे+अ० सब्र+आ (प्रत्य०)] जिसे सब्र या संतोष न होता हो। जो संतोष न रख सके। अधीर।

वेसबरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेसब्र होने का भाव। अधैर्य। असंतोष।

वेसबात—वि० [फ़ा०] [संज्ञा बेसबाती] विनश्वर। विनशनशील। क्षणभंगुर (को०)।

बेसब्र—वि० [फ़ा० बेसब्र] दे० 'वेसबरा'। उ०—बंदा बिल्कुल बेसब्र हुआ जाता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८८।

वेसमझ—वि०[फ़ा० बे+हिं० समझ] मूर्ख। निर्बुद्धि। नासमझ।

वेसमझी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेसमझ+ई (प्रत्य०)] बेसमझ होने का भाव। नासमझी। मूर्खता।

वेसम्हार(पु)—वि० [फ़ा० बे+हिं० सँभाल, सँभार] दे० 'बेसँभर'। उ०—दुरजन दार भजि भजि वेसम्हार चढी, उत्तर पहार डरि सिवजी नरिंद ते।—भूषण० ग्रं०, पृ० ७३।

वेसर(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेसर] खच्चर। वेसर। उ०—वेसर ऊँट वृषभ बहु जाती। चले वस्तु भरि अगनित भाँती।—मानस, १।३०।

वेसर(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. स्त्रियों का नाक में पहनने का एक आभूषण। उ०—वेसर बनी बुद्धि की सजनी, मोती वचन सुधार हो।—कबीर श०, भा० पृ० १३४। †२ वेसवा। पतुरिया। उ०—नाची वेसर वारिमुखी तहँ, परमानँद रह्यो छाई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७१।

वेसरा[1]—वि० [फ़ा बे+सरा (=ठहरने का स्थान)] जिसे ठहरने का कोई स्थान न हो। आश्रयहीन। उ०—बिहिरी कहूँ निवसत सुनो लगर झगर हित वेस। वासो पावत वेसरा सहीं प्रेम के देस।—रसनिधि—(शब्द०)।

वेसरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शिकारी पक्षी। उ०—बहरी सु वेसरा कुही संग। जे गहत नीर पर बहुत रंग।—सूदन (शब्द०)।

वेसरोकार—क्रि० वि० [फ़ा०] बिना मतलब। बिना किसी संबंध अथवा लाभ के। उ०—बेसरोकार जैसे किसी होटल में आ टिके हैं।—भस्मावृत० पृ० ३५।

वेसरोसामान—वि० [फ़ा०] १. जिसके पास कुछ भी सामग्री न हो। २. दरिद्र। कंगाल।

वेसवा—संज्ञा स्त्री० [सं० वेश्या] रंडी। वेश्या। कसबी।

वेसवार—संज्ञा पुं० [देश०] वह सड़ाया हुआ मसाला जिससे शराब चुआई जाती है। जावा।

वेसहना(पु)†—क्रि० अ० [देश०] 'बेसाहना'।

वेसहनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] सौदा। खरीद की वस्तु।

वेसहारा—वि० [फ़ा०] बिना आश्रय या आधारवाला। आश्रयविहीन।

वेसहारे—क्रि० वि० बिना सहारा या अवलंब के।

वेसहूर(पु)—वि० [फ़ा० बेशऊर] दे० 'बेशऊर'। उ०—दो दिन का जग मे जीवना करता है क्यों गुमान। ऐ वेसहूर गीदी टुक राम को पिछान।—चरण० बानी, पृ० ११।

वेसा†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वेश्या] रंडी। वारांगना। कसबी। उ०—पुनि सिंगारहार धनि देसा। कइ सिंगार तहँ बइठी वेसा।—जायसी (शब्द०)।

वेसा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भेष] दे० 'भेष'। उ०—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुमहि लागि धरिहउँ नर वेसा।—तुलसी (शब्द०)।

वेसाना(पु)†—क्रि० स० [सं० वेशन] दे० 'बैठाना,' 'बैसारना'। उ०—दीया खरोदक पदहरणइ। राजा कुँवर वेसाणी प्राणी।—बी० रासो, पृ० १११।

वेसामान—वि० [फ़ा०] बिना साज सामान का। बिना उपकरण का। साधनहीन।

वेसामानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] साधनविहीनता। अभाव की दशा। मुफलिसी। उ०—ऐसी वेसामानी के साथ ईश्वर पर भरोसा कर बादशाह बदख्शाँ प्रांत और काबुल की ओर चले।—हुमायूँ०, पृ० ४।

वेसारा†—वि० [हिं० बैठाना, गुज० बेसाना] १. बैठानेवाला। २. रखने या जमानेवाला। उ०—मातु भूमि पितु बीज वेसारा। काल निसान जीव तृण भारा।—विश्राम (शब्द०)।

वेसास(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विश्वास, प्रा० वेसास] दे० 'विश्वास'।

उ०—(ज) जप तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बेसास। सूवै सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास।—कबीर ग्रं०। (ख) दादू पंथ बतावै पाप का, मर्म कर्म बसास। निकट निरंजन जे रहे, क्यों न बतावैं तास।—दादू० बानी, पृ० २४।

बेसाहना—क्रि० अ० [देश०] १. मोल लेना। खरीदना। उ०—भरत कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं।—तुलसी (शब्द०)। २. जान बूझकर अपने पीछे लगाना। (झगड़े, बैर, विरोध, आदि के सबंध में बोलते हैं)।

बेसाहनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'बेसाहा'।

बेसाहा—संज्ञा पुं० [हिं० बेसाहना] खरीदी हुई चीज। सौदा। सामग्री। उ०—जेहि न हाट एहि लीन्ह बेसाहा। ताकहँ आन हाट कित लाहा।—जायसी (शब्द०)।

बेसिक—वि० [अं०] मूलभूत। आधार रूप। मौलिक। बुनियादी। उ०—जब तक आधुनिक छायावाद के बेसिक शब्द कविता में न आवें तब तक कवि जी को संतोष नहीं हो सकता।—आधुनिक०, पृ० २।

यौ०—बेसिक रीडर।

बेसिलसिले—क्रि० वि० [हिं० बे+फ़ा० सिलसिला] बिना किसी क्रम आदि के। अव्यवस्थित रूप से।

बेसो†—क्रि० वि० [फ़ा० बेश] अधिक। ज्यादा।

बेसु(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वेश] दे० 'वेश'। उ०—लाल कमली वोढ़े पेनाए। बेसु हरि ये कैसे बनाए।—दक्खिनी०, पृ० १०३।

बेसुध—वि० [हिं० बे+सुध (=होश)] १. अचेत। बेहोश। २. बेखबर। बदहवास।

बेसुधी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बेसुध+ई (प्रत्य०)] अचेतनता। बेखबरी। बेहोशी। (क्व०)।

बेसुमार—वि० [फ़ा० बेशुमार] दे० 'बेशुमार'। उ०—कछू सूझत न पार परी मार बेसुमार, मही भूमि आसमान धूम धाम घनघोर।—हम्मीर०, पृ० ३१।

बेसुर—वि० [हिं० बे+सुर (=स्वर)] संगीत आदि की दृष्टि से जिसका स्वर ठीक न हो। बेमेल स्वरवाला। उ०—चेतन होइ न एक सुर कैसे बनै बनाइ। जड़ मृदंग बेसुर भए मुँहे थपेरे खाइ।—स० सप्तक, पृ० २२२।

बेसुरा—वि० [हिं० बे+सुर (=स्वर)] १. जो नियमित स्वर में न हो। जो अपने नियत स्वर से हटा हुआ हो। (संगीत)। २. जो अपने ठिकाने या मौके पर न हो। बेमौका।

बेस्म(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वेश्म] गृह। घर।—अनेकार्थ०, पृ० ४३।

बेस्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वेश्या] दे० 'बेसा'। उ०—अपने अपने लाभ कों बोलत बैन बनाय। बेस्या बरस घटावही जोगी बरस बढ़ाय।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २१६।

बेस्वा†—संज्ञा स्त्री० [सं० वेश्या] वारांगना। वेश्या। बेसा। उ०—बेस्वा तजा सिंगारू सिद्ध की गइ सिद्धाई।—पलटू०, पृ० १०४।

बेस्वाद—वि० [हिं० बे+सं० स्वादु] जिसमें कोई अच्छा स्वाद न हो। स्वादरहित। २. जिसका स्वाद खराब हो। बदजायका।

बेहंगम—वि० [सं० विहङ्गम] १. जो देखने में भद्दा हो। बेढंगा। जैसे, बेहंगम मूर्ति। २. बेढब। विकट। जैसे,—वह बेहंगम आदमी है, सबसे झगड़ पड़ता है।

बेहंगमपन—संज्ञा पुं० [हिं० बेहंगम+पन (प्रत्य०)] १. बेहंगम होने का भाव। भद्दापन। बेढंगापन। २. विकटता। भयंकरता।

बेहँसना†—क्रि० अ० [सं० विहसन, हिं० बिहँसना, हँसना] ठठाकर हँसना। वि० दे० 'हँसना'।

बेह(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेध] १. छेद। छिद्र। सूराख। उ०—(क) भुज उपमा पौनारि न पूजी, खीन भई तेहि चित। ठावहिं ठाँव बेह भे हिरदे, ऊभि साँस लेइ नित।—जायसी —ग्रं० (गुप्त), पृ० १९५। २. चोट। घाव। (ख) अनिख चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न, मन मग मूँदे जाको बेह सब ओर तें।—घनानंद, पृ० १२।

बेह(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [?] बाँह। भुजा। उ०—संकट में हरि बेह उबारी। निस दिन सिमरो नाम मुरारी।—रामानंद०, पृ० ७।

बेह[3]—वि० [फ़ा०] अच्छा। भला। सुंदर [को०]।

बेहड़[1]—वि० [हिं०] दे० 'बीहड़'।

बेहड़[2]—संज्ञा पुं० दे० 'बीहड़'। उ०—बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा।—तुलसी (शब्द०)।

बेहतर[1]—वि० [फ़ा०] अपेक्षाकृत अच्छा। किसी के मुकाबले में अच्छा। किसी से बढ़कर। जैसे,—चुपचाप घर बैठने से तो वहीं चले जाना बेहतर है।

बेहतर[2]—अव्य० प्रार्थना या आदेश के उत्तर में स्वीकृतिसूचक शब्द। अच्छा।

विशेष—प्रायः इसी अर्थ में इसका प्रयोग 'बहुत' शब्द के साथ होता है। जैसे,—आप कल सुबह आइएगा। उत्तर—बहुत बेहतर।

बेहतरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेहतर का भाव। अच्छापन। भलाई। जैसे,—आपकी बेहतरी इसी में है कि आप उनका रुपया चुका दें।

बेहद—वि० [फ़ा०] १. जिसकी कोई सीमा न हो। असीम। अपरिमित। अपार। २. बहुत अधिक।

बेहन†[1]—संज्ञा पुं० [सं० वपन] अनाज आदि का बीज जो खेत में बोया जाता है। बीया।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

बेहन—वि० [?] पीला। जर्द।

बेहना†—संज्ञा पुं० [देश०] १. जुलाहों की एक जाति जो प्रायः रुई धुनने का काम करती है। २. रुई धुननेवाला। धुनिया।

बेहनौर‡—संज्ञा पुं० [हिं० बेहन + और (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ धान या जड़हन आदि का बीज बेहन डाला जाय। पनीर। बियाड़ा।

विशेष—धान आदि की फसल के लिये पहले एक स्थान पर बीज बोए जाते हैं; और जब वहाँ अंकुर निकल आते हैं, तब उन्हें उखाड़कर दूसरे स्थान में रोपते हैं। पहले जिस स्थान पर बीज बोए जाते हैं, उसी को पूरब में बेहनौर कहते हैं।

बेहया—वि० [फ़ा०] जिसे हया या लज्जा आदि बिलकुल न हो। निर्लज्ज। बेशर्म।

बेहयाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेहया होने का भाव। बेशर्मी। निर्लज्जता।

मुहा०—बेहयाई का जामा या बुरका पहनना या ओढ़ना = निर्लज्जता धारण करना। निलज्ज हो जाना। पूरा बेशर्म बन जाना। लोक लाज आदि की कुछ भी परवा न करना।

बेहर—वि० [देश०] १. अचर। स्थावर। उ०—रवि के उदय तारा भो छीना। चर बेहर दूनों मे लीना।—कबीर (शब्द०)। २. अलग। भिन्न। पृथक्। जुदा। उ०—खारि समुंद सब नाँघा आय समुद जहँ खीर। मिले समुद वे सातो बेहर बेहर नीर।—जायसी (शब्द०)।

बेहर—संज्ञा पुं० वापी। बावली।

बेहरना†—क्रि० अ० [हिं० बेहर + ना (प्रत्य०)] किसी चीज का फटना या तड़क जाना। दरार पड़ना। चिर जाना।

बेहरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की घास जिसे चौपाये बहुत पसंद करते हैं। (बुंदेल०)। २. मूँज की बनी हुई गोल या चिपटी पिटारी जिसमें नाक में पहनने की नथ रखी जाती है।

बेहरा[2]—वि० [हिं० बिहरना या देश०] अलग। भिन्न। जुदा। पृथक्। उ०—ना वह मिल ना बेहरा अइस रहा भरपूरि। दिसिटिवंत कहँ नीअरे अंध मुरुख कहँ दूरि।—जायसी (शब्द०)।

बेहरा[3]—संज्ञा पुं० [अं० बेयरा] दे० 'बेयरा'।

बेहराना[1]—क्रि० अ० [हिं० बेहर] फटना। विदीर्ण होना। बेहरना। उ०—उठा फूलि हिरदय न समाना। कंथा टूक टूक बेहराना।—जायसी (शब्द०)।

बेहराना†[2]—क्रि० स० फाड़ना। विदीर्ण करना।

बेहरी†—संज्ञा स्त्री० [?] १. किसी विशेष कार्य के लिये बहुत से लोगों से चंदे के रूप में माँगकर एकत्र किया हुआ धन। २. इस प्रकार चंदा उगाहने की क्रिया। ३. वह किस्त जो आसामी शिकमीदार को देता है। बाछा।

बेहला—संज्ञा पुं० [अं० वायोलिन] सारंगी के आकार का एक प्रकार का अंग्रेजी बाजा। बेला।

बेहवास—वि० [फ़ा०] बिना होश का। परेशान। बदहवास।

बेहाथ—वि० [सं० वि + हस्त, प्रा० विहत्थ] हस्तरहित। बिना हाथ का।

मुहा०—बेहाथ होना = (१) अकर्मण्य होना। निष्क्रिय या निरुद्यम होना। उ०—हाथ होते हम बेहाथ हैं।—चुभते० (दो दो बातें), पृ० ५। (२) हाथ के बाहर होना। अंकुश या प्रतिबंध न मानना। उच्छृंखल होना। (३) अधिकार से बाहर होना। अधिकार में न होना।

बेहान‡—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बिहान'।

बेहाल—वि० [फ़ा० बे + अ० हाल] व्याकुल। विकल। बेचैन। उ०—(क) राम राम रटि विकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहग बेहालू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लागत कुटिल कटाच्छ सर क्यों न होइ बेहाल। लगत जु हिए दुसारि करि तऊ रहत नट साल।—बिहारी (शब्द०)।

बेहाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेहाल होने का भाव। बेकली। बेचैनी। व्याकुलता। उ०—आपु चढे ब्रज ऊपर काली। उहाँ निकसि जंए को रार्ख नंद करत बेहाली।—सूर (शब्द०)।

बेहावनⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० भयावन] भयावना। डरावना। उ०—मार्दों भुवन बेहावन भयो। देखत घटा प्रान हरि गयो।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २८०।

बेहिजाब—वि० [फ़ा०] [संज्ञा बेहिजाबी] बेपर्द। निर्लज्ज। बेहया। हयाहीन [को०]।

बेहिम्मत—वि० [फ़ा०] बिना कूवत या ताकत का। कादर।

बेहिस—वि० [फ़ा०] लाचार। गतिहीन। उ०—(क) संग यंत्रों के यंत्र बने, बेहिस और बेबस पिसते जाना।—चाँदनी०, पृ० ४१। (ख) ये मजा हो न नसीबों में किसी बेहिस के।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ८६।

बेहिसाब—क्रि० वि० [फ़ा० बे + अ० हिसाब] बहुत अधिक। बहुत ज्यादा। बेहद।

बेहुⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेह'।

बेहुनर—वि० [फ़ा०] जिसे कोई हुनर न आता हो। जिसमें कोई कला या गुण न हो।

बेहुनरा—वि० [हिं० बे + फ़ा० हुनर] १. जिसे कोई हुनर न आता हो। जो कुछ भी काम न कर सकता हो। मूर्ख। २. वह भालू या बंदर जो तमाशा करना न जानता हो। (कलंदर)।

बेहुरमत—वि० [फ़ा०] जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो। बेइज्जत।

बेहूदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेहूदा होने का भाव। असभ्यता। अशिष्टता।

बेहूदा—वि० [फ़ा०] १. जिसे तमीज न हो। जो शिष्टता या सभ्यता के विरुद्ध हो। अशिष्टतापूर्ण।

हूदापन—संज्ञा पुं० [फ़ा० बेहूदा + हिं० पन (प्रत्य०)] बेहूदा होने का भाव। बेहूदगी। अशिष्टता। असभ्यता।

बेहूनⓅ‡—क्रि० वि० [सं० विहीन] बिना। बगैर। रहित। उ०—भई दुहेली टेक बेहूनी। थाँभ नाँहि उठ सकै न थूनी।—जायसी (शब्द०)।

बेहैफ—वि० [फ़ा० बेहैफ़] जिसे कोई चिंता न हो। चिंता

रहित। बेफिक्र उ०—भले छकाए नैन ये रूप सबी के कैफ। देत न मृदु मुसक्यान की तजि आपै बेहैफ।—रसनिधि (शब्द०)।

बेहोश—वि० [फ़ा०] मूर्छित बेसुध। अचेत।

बेहोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बेहोश होने का भाव। मूर्छा। अचेतनता।

बैंक¹—संज्ञा पुं० [देश०] कुलसूचक उपाधि। अल्ल। उ०—बूसर एक कस्बे का नाम था। जहाँ के पूर्व काल के वे रहनेवाले थे। जिससे यह बैंक उनका पड़ा। क्योंकि बहुत से गोत्र वा बैंक गाँवों के नामों से भी होते हैं। वैसे ही यह भी हुआ।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ५।

बैंक²—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान या संस्था जहाँ लोग ब्याज पाने की इच्छा से रुपया जमा करते हों और ऋण भी लेते हों। रुपए के लेन देन की बड़ी कोठी।

यौ०—बैंक जमा। बैंक डिपाजिट। बैंक ड्राफ्ट। बैंक दर। बैंक बैलेन्स। बैंक रेट।

बैंकर—संज्ञा पुं० [अं०] महाजन। साहूकार। कोठीवाला।

बैंड—संज्ञा पुं० [अं०] १. झुंड। २. बाजा बजानेवालों का झुंड जिसमें सब लोग मिलकर एक साथ बाजा बजाते हैं।

यौ०—बैंडमास्टर=बैंड का वह प्रधान जिसके संकेत के अनुसार बाजा बजाया जाता है।

बैंबिक—स्त्री० पुं० [सं० वैम्बिक] वह व्यक्ति या नायक जो प्रयत्नपूर्वक स्त्रियों के संपर्क में रहता हो या उन्हें प्यार करता हो [को०]।

बैंगन—संज्ञा पुं० [सं० वृन्ताक] १. एक वार्षिक पौधा जिसके फल की तरकारी बनाई जाती है। भंटा। उ०—गुरु शब्द का बैंगन करिले तब बनिहै कुंजड़ाई।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ४८।

विशेष—यह भटकटैया की जाति का है और अबतक कहीं कहीं जंगलों में आपसे आप उगा हुआ मिलता है जिसे 'बनभंटा' कहते हैं। जंगली रूप में इसके फल छोटे और कड़ुवे होते हैं। ग्राम्य रूप में इसकी दो मुख्य जातियाँ हैं; एक वह जिसके पत्तों पर काँटे होते हैं; दूसरी वह जिसके पत्तों पर काँटे नहीं होते। इसके अतिरिक्त फल के आकार, छोटाई, बड़ाई और रंग के भेद से अनेक जातियाँ हैं। गोल फलवाले बैंगन को मारवा मानिक कहते हैं और लबोतरे फलवाले को बथिया। यद्यपि इसके फल प्रायः ललाई लिए गहरे नीले रंग के होते हैं, तथापि हरे और सफेद रंग के फल भी एक ही पेड़ में लगते हैं। इसकी एक छोटी जाति भी होती है। इस पौधे की खेती केवल मैदानों में होती है। पर्वतों की अधिक ऊँचाई पर यह नहीं होता। इसके बीज पहले पनीरी में बोए जाते हैं; जब पौधा कुछ बड़ा होता है, तब क्यारियों में हाथ हाथ भर की दूरी पर रोपे जाते हैं। इसके बीज की पनीरी साल में तीन बार बोई जाती हैं; एक कार्तिक मे, दूसरी माघ में और तीसरी जेठ असाढ़ में। वैद्यक में यह कटु, मधुर और रुचिकारक तथा पित्तनाशक, व्रणकारक, पुष्टिजनक, भारी और हृदय को हितकारक माना गया है।

पर्या०—वार्ताकी। वृंताक। मांसफला। वृंतफला।

२. एक प्रकार का चावल जो कनारा और बंबई प्रांत में होता है।

बैंगनी—वि० [हिं० बैंगन+ई (प्रत्य०)] १. बैंगन की बनी हुई वस्तु। २. बैंगन के रंग का। जो ललाई लिए नीले रंग का हो। बैंजनी।

यौ०—बैंगनीबूँद=एक प्रकार की छींट जिसमें सफेद जमीन पर बैंगनी रंग की छोटी छोटी बूटियाँ होती हैं।

बैंजनी—वि० [हिं बैंगनी] जो ललाई लिए नीले रंग का हो। बैंगनी।

बैंड़ना—क्रि० स० [हिं० बाड़ा, बेंड़ा] बंद करना। बेढ़ना। पशुओं को रोककर रखना। उ०—तू अलि कहा परचो है पैंडे। ब्रज तू स्याम अजा भयो हमको यहऊ बचत न बैंडे।—सूर०, १०।३६१५।

बैंढ़ाⓊ—वि० [हिं०] दे० 'बेड़ा'। उ०—मेढ़ा भँवर उछालन चकरा समेट माला। बैंडा भँभीर तखता कट्टे पछार गर्रा।—नजीर (शब्द०)।

बैंत, बैंता—संज्ञा पुं० [वेतस्] दे० 'बेंत'।

बै¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वाय] बैसर। कंघी। (जुलाहे)।

बै²—संज्ञा स्त्री० [सं० वय] दे० 'वय'।

यौ०—बैसंधि।

बै³—संज्ञा स्त्री० [अ०] रुपए पैसे आदि के बदले में कोई वस्तु दूसरे को इस प्रकार दे देना कि उसपर अपना कोई अधिकार न रह जाय। बेचना। बिक्री।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—बैनामा।

मुहा०—बै लेना या खरीदना=जमीन आदि बैनामा लिखाकर मोल लेना।

बैकना†—क्रि० अ० [हिं० बहकना] अधिकार या सीमा से बाहर जाना।

बैकल†—वि० [सं० विकल, मि० फ़ा० बेकल] पागल। उन्मत्त। उ०—(क) कहुँ लतिकन महँ अरुझति अरुझी नेह। भइ बिहाल बैकल सी सुधि नहिं देह।—रघुराज (शब्द०)। (ख) यतिपति पर पंडित कुमति किय मारन अभिचार। ते बैकल बागल लगे विष्ठा करत अहार।—रघुराज (शब्द०)।

बैकुंठ—संज्ञा पुं० [सं० वैकुण्ठ] दे० 'वैकुंठ'।

बैकुंठी†—स्त्री० स्त्री० [हिं० बैकुंठ+ई (प्रत्य०)] अरथी जिसपर शव रखकर श्मशान को ले जाते हैं। उ०—सुंदरदास जी की बैकुंठी (चकडोल) बड़े ही सद्भाव से सजाई गई थी।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ११८।

बैखरी संज्ञा स्त्री० [सं० वैखरी] दे० 'वैखरी'। उ०—परा पसंती मधमा बैखरी, चौबानी ना मानी।—कबीर श० भा०, पृ०, ३६।

बैखानविद्🄟—वि० [सं० व्याख्यानविद्] व्याख्या करनेवाले। व्याख्याकार। टीकाकार। उ०—जो पंडित बैखानविद सो पुनि भाषा चाहि। निंदति हैं ब्रजबानि कौं पहुँचत बुद्धि न जाहि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५४२।

बैखानस—वि० [सं० वैखानस] दे० 'वैखानस'। उ०—बैखानस सोई सोचै जोगू। तप बिहाइ जेहि भावै भोगू।—मानस, २।१७३।

बैग—संज्ञा पुं० [अं०] १. थैला। झोला। बोरा। २. टाट का वह थैला जिसमें यात्री अपना असबाब भरकर हाथ में लटकाकर साथ ले जाते हैं।

बैगन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बैंगन'।

बैंगना—संज्ञा पुं० [हिं० बैंगन] एक प्रकार का पकवान या पकौड़ी जो बैंगन आदि के टुकड़ों को बेसन में लपेटकर और तेल में तलकर बनाई जाती है।

बैगनी[1]—वि० [हिं० बैगन] दे० 'बैंगनी'।

बैगनी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'बैगन'।

बैजंती—संज्ञा स्त्री० [सं० वैजयन्ती] १. फूल के एक पौधे का नाम। वैजयंती। उ०—राजति उर बैजंती माल। चलत जु मत्त द्विरद की चाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १६३।

विशेष—इसके पत्ते हाथ हाथ भर तक के लंबे और चार पाँच अंगुल चौड़े धड़ या मूल कांड से लगे हुए होते हैं। इसमें टहनियाँ नहीं होती, केले की तरह कांड सीधा ऊपर की ओर जाता है। यह हलदी और कचूर जाति का पौधा है। कांड के सिर पर लाल या पीले फूल लगते हैं। फूल लंबे और कई दलों के होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फूलों की जड़ में एक एक छोटी घुंडी होती है जो फूल सूखने पर बढ़कर बोंड़ी हो जाती है। यह बोंड़ी तिकोनी और लंबोतरी होती है जिसपर छोटी छोटी नोक या कँगूरे निकले रहते हैं। बोंड़ी के भीतर तीन कोठे होते हैं जिनमें काले काले दाने भरे हुए निकलते हैं। ये दाने कड़े होते हैं और लोग इन्हें छेदकर माला बनाकर पहनते है। यह फूलों के कारण शोभा के लिये बगीचे में लगाया जाता है। संस्कृत में इसे वैजयती कहते हैं।

२. विष्णु की माला।

बैजत्री🄟—संज्ञा स्त्री० [सं० वैजयन्ती] दे० 'बैजंती'। उ०—मोर पच्छ चंदा एह माथे ग्रिव बैजत्री माला।—संत० दरिया, पृ० १०३।

बैज—संज्ञा पुं० [अं०] १. चिह्न। २. चपरास।

बैजई[1]—वि० [अं० बैजा (= अंडा)] हलके नीले रंग का।

बैजई[2]—संज्ञा पुं० एक रंग जो बहुत हलका नीला होता है। इस रंग की रँगाई लखनऊ में होती है।

विशेष—कौवे के अंडे के रंग से मिलता जुलता होने के कारण इस रंग को लोग बैजई कहते हैं।

बैजनाथ—संज्ञा पुं० [सं० वैद्यनाथ] दे० 'वैद्यनाथ'।

बैजनी—वि० [हिं० बैंगनी] हलके नीले रंग का। बैंजनी। उ०—(क) सुभ काछनी बैजनी पैजनी पायन आनद मैं न लयै झटकों।—रसखान०, पृ० १८। (ख) सारी तन सजि बैजनी पग पैजनी उतारि। मिलु न बैजनी-माल सों सजनी रजनी चारि।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८५।

बैजयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० वैजयन्ती] बैजंती। वैजयंती।

बैजला—संज्ञा पुं० [देश०] १. उर्द का एक भेद। २. कबड्डी का खेल।

बैजवी—वि० [अ० बैज़्वी] दे० 'बैजावी'।

बैजा—संज्ञा पुं० [अ० बैज़ह्] १. अंडा। २. एक प्रकार का फोड़ा जिसके भीतर पानी होता है। फफोले की तरह का फोड़ा। गलका। ३. अंडकोश (को०)। ४. सिपाहियों के सिर पर की लोहे की टोपी (को०)। ५. सिरदर्द (को०)।

बैजावी—वि० [फ़ा० बैज़ाव] अंडाकृति। अंडाकार। उ०—बूझा पत्थर के खड़ में से चिप्पड़ ठोककर बनाया हुआ बैजावी (अंडाकृति) पहले का सुगठित औजार नर्मदा की उपत्यका में तृतीयकोत्तर (पोस्ट टशियरी) युग की कंकरीली धरती में पाया गया था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११।

बैजिक[1]— वि० [सं०] [वि० स्त्री० बैजिकी] १. बीज संबंधी। २. मूलभूत। मूलगत। ३. परंपराप्राप्त। पैतृक। ४. विषय संबंधी। संभोग से संबद्ध [को०]।

बैजिक[2]—संज्ञा पुं० १. अंकुर। २. हेतु। कारण। ३. आत्मा। ४. शिग्रु का तैल [को०]।

बैट—संज्ञा पुं० [अं०] क्रिकेट के खेल में गेंद मारने का डंडा जो आगे की ओर चौड़ा और चिपटा होता है। बल्ला।

बैटरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. चीनी या शीशे आदि का पात्र जिसमें रासायनिक पदार्थों के योग से रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बिजली पैदा करके काम में लाई जाती है। २. तोपखाना।

बैटा—संज्ञा स्त्री० [देश०] रूई ओटने की चर्खी। ओटनी।

बैठ—संज्ञा पुं० [हिं० बैठना (= पड़ता पड़ना)] सरकारी मालगुजारी या लगान या उसकी दर। राजकीय कर या उसकी दर।

बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठना] १. बैठने का स्थान। उ०—वरष सरोवर समीप किधौं बिछिया, क्वणित कलहंसनि की बैठक बनाय की।—केशव (शब्द०)। २. वह स्थान जहाँ कोई बैठता हो अथवा जहाँपर दूसरे लोग आकर उसके साथ बैठा करते हों। चौपाल। अथाई। उ०—वह अपनी बैठक में पलँग पर लेटा है, उसकी आँखें कड़ियों से लगी हैं, भौहें कुछ ऊपर को खिंच गई हैं और वह चुपचाप देवहूति की छवि मन ही मन खींच रहा है।—अधखिला० (शब्द०)।

यौ०—बैठकखाना = बैठने का स्थान।

३. वह पदार्थ जिसपर बैठा जाता है। आसन। पीठ। उ०—(क) अति आदर सों बैठक दीन्हों। मेरे गृह चंद्रावलि आई अति ही आनंद कीन्हों।—सूर (शब्द०)। (ख) पिय आवत अँगनैया उठि कै लीन। साथें चतुर तिरियवा बैठक दीन।—रहिमन (शब्द०)। ४. किसी मूर्ति या खंभे आदि के नीचे की चौकी। आधार। पदस्तल। ५. बैठने का व्यापार। बैठाई।

जमाव। जमावड़ा। जैसे,—उसके यहाँ शहर के लुच्चों की बैठक होती है।

यौ०—बैठकबाज।

६. अधिवेशन। सभासदों का एकत्र होना। जैसे, सभा की बैठक। ७. बैठने का ढंग या टेव। जैसे, जानवरों की बैठक। ८. साथ उठना बैठना। संग। मेल। उ०—माथुर लोगन के संग की यह बैठक तोहि अजौं न उबीठी।—केशव (शब्द०)। १०. काँच या धातु आदि का दीवट जिसके सिरे पर बत्ती जलती या मोमबत्ती खोंसी जाती है। बैठकी। उ०—बैठक और हँडियों मे मोमबत्तियाँ जल रही हैं।—अधखिला० (शब्द०)। ११. एक प्रकार की कसरत जिसमें बार बार खड़ा होना और बैठना पड़ता है।

बैठकबाज—वि० [हिं० बैठक+फा० बाज़] जमावड़े में बैठनेवाला। धूर्त। चालाक। शरारती। उ०—साधारण बुद्धि का मनुष्य ऐसी परिस्थिति में पड़कर घबड़ा उठता है, पर बैठकबाजों के माथे पर बल नहीं पड़ता।—गबन, पृ० १५०।

बैठका—संज्ञा पुं० [हिं० बैठक] वह चौपाल या दालान आदि जहाँ कोई बैठता हो और जहाँ जाकर लोग उससे मिलते या उसके पास बैठकर बातचीत करते हों। बैठक। २. आसन। आधार। बैठकी। उ०—कनक सिंहासन बैठका, ओढ़न अंबर चीर।—धरनी० बानी, पृ० ५४।

बैठकी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठक + ई (प्रत्य०)] १. बार बार बैठने और उठने की कसरत। बैठक २. आसन। आधार। उ०—कनक भूमि पर कर पग छाया, यह उपमा एक राजत। कर कर प्रति पद प्रति मणि बसुधा कमल बैठकी साजत।—सूर (शब्द०)। ३. दे० 'बैठक—२, ४, ८'।

बैठकी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठना] वह कर जो जमींदार की ओर से बाजार में बैठनेवाले बनियों और दूकानदारों आदि पर लगाया जाता है। बरतराई।

बैठन—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठना] १. बैठने की क्रिया। २. बैठने का ढंग या दशा। उ०—धनि यह मिलन धन्य यह बैठक धनि अनुराग नहीं रुचि थोरी। धनि यह अरस परस छबि लूटन महा चतुर मुख भोरे भोरी।—सूर (शब्द०)। ४. बैठक। आसन।

बैठना—क्रि० अ० [सं० वेशन, विष्ठ; प्रा० बिट्ठ+हिं० ना या म० वितिष्ठति, प्रा० बइट्ठइ] १. पुट्ठे के बल किसी स्थान पर इस प्रकार जमना कि धड़ ऊपर को सीधा रहे और पैर घुटने पर से मुड़कर दोहरे हो जायँ। किसी जगह पर इस प्रकार टिकना कि कम से कम शरीर का आधा निचला भाग उस जगह से लगा रहे। स्थित होना। आसीन होना। आसन जमाना। उ०—(क) बैठो कोइ राज औ पाटा। अंत सबै बैसे पुनि घाटा।—जायसी (शब्द०)। (ख) बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दसरथ भए।—तुलसी (शब्द०)। (ग) बैठे सोह काम रिपु कैसे। धरे शरीर शांत रस जैसे।—तुलसी (शब्द०)। (घ) शोभित बैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप। तहँ राजा दशरथ लसै देव देव अनुरूप।—केशव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—कहीं या किसी के साथ बैठना उठना=(१) संग में समय बिताना। कालक्षेप करना। उ०—जाइ आइ जहाँ तहाँ बैठि उठि जैसे तैसे दिन तो बितायो बधू बीतति हैं कैसे राति।—पद्माकर (शब्द०)। (२) रहना। संग में रहना। संगत में रहकर बातचीत करना या सुनना। बैठे ठाले=बिना काम काज के खाली बैठे रहनेवाले। उ०—फिर किसी भाव का स्वरूप दिखाकर बैठनेवाले लोगों को एक प्रकार के आनंद का अनुभव करा देता है।—रस० पृ० ९८। बैठे-बिठाए=(१) अकारण। निरर्थक। जैसे,-बैठे बिठाए यह झगड़ा मोल लिया। उ०—एक रोज बैठे बिठाए किसी ने शगूफा छोड़ा कि हुजूर चल के पहाड़ की सैर कीजिए—सैर०, पृ० १५। (२) अचानक। एकाएक। जैसे—बैठे बिठाए यह आफत कहाँ से आ पड़ी। बैठे बैठे=(१) निष्प्रयोजन। (२) अचानक। (३) अकारण। बैठे रहो=(१) अलग रहो। हाथ मत लगाओ। दखल मत दो। तुम्हारी जरूरत नहीं। (२) चुप रहो। कुछ मत बोलो। बैठे दंड=एक कसरत जिसमें दंड करके बैठ जाते हैं और बैठते समय हाथों को कुहनी पर रखकर उकड़ूँ बैठते हैं। इनके अनंतर फिर दंड करने लगते हैं। उठ बैठना=(१) लेटा न रहना। (२) जाग पड़ना। जैसे,—खटका सुनते ही वह उठ बैठा। बैठते उठते=सदा। सब अवस्था में। हरदम। जैसे,—बैठते उठते राम नाम जपना। बैठ रहना=(१) देर लगाना। वहीं का हो रहना। जैसे,—बाजार जाकर बैठे रहे। (२) साहस त्यागना या निराश होना हारकर उद्योग छोड़ देना।

२. किसी स्थान या अवकाश में ठीक रूप से जमना। ठीक स्थित होना। जैसे, चूल का बैठना, अँगूठी के प्याले मे नग का बैठना, सिर पर टोपी का बैठना, छेद में पेच या कील बैठना।

मुहा०—नस बैठना=सरकी हुई नस का ठीक जगह पर आ जाना। मोच दूर होना। हाथ या पैर बैठना=टूटा या उखड़ा हुआ हाथ पैर ठीक होना।

३. कैंड़े पर आना। ठीक होना। अभ्यस्त होना। जैसे,—किसी काम में हाथ बैठना। ४. पानी या अन्य द्रव पदार्थों में मिली हुई चीजों का नीचे तह में जम जाना। जल आदि के स्थिर होने पर उसमें घुली वस्तु का नीचे आधार मे जा लगना। ५. पानी या भूमि मे किसी भारी चीज का दाब आदि पाकर नीचे जाना या धँसना। दबना या डूबना। जैसे, नाव का बैठना, मकान का बैठना, इत्यादि। ६. सूजा या उभरा हुआ न रहना। दबकर बराबर या गहरा हो जाना। पचक जाना। धँसना। जैसे, आँख बैठना, फोड़ा बैठना। ७. (कारबार) चलता न रहना। बिगड़ना। जैसे, कोठी

बैठना, कारबार बैठना, इत्यादि। ८. तौल में ठहरना या परता पड़ना। जैसे,—(क) दस मन गेहूँ का नौ मन बैठा। (ख) रुपए का सेर भर घी बैठता है।

संयो० क्रि०—जाना।

९. लागत लगना। खर्च होना। जैसे,—घोड़े की खरीद में सौ रुपए बैठे। १०. गुड़ का बह जाना या पिघल जाना। ११. चावल पकाने मे गीला हो जाना। १२. क्षिप्त वस्तु का निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचना। फेंकी या चलाई हुई चीज का ठीक जगह पर जा रहना। लक्ष्य पर पड़ना। निशाने पर लगना। जैसे,—गोली बैठना, डंडा बैठना १३. घोड़े आदि पर सवार होना। जैसे, घोड़े पर बैठना, हाथी पर बैठना। १४. पौधे का जमीन में गाड़ा जाना। लगना। जैसे, जड़हन बैठना। १५. किसी पद पर स्थित होना या नियत होना। जमना। जैसे, जब तुम उस पद पर एक बार बैठ जाओगे, तब फिर जल्दी नहीं हटाए जा सकोगे। १६. एक स्थान पर स्थिर होकर रहना। जमना। १७. (किसी वस्तु मे) समाना। अँटना। आना। १८. किसी स्त्री का किसी पुरुष के यहाँ पत्नी के समान रहना। घर में रहना। जैसे,—वह स्त्री एक सोनार के घर बैठ गई। १९. पक्षियों का अंडे सेना। जैसे, मुर्गी का बैठना। २०. जोड़ा खाना। भोग करना। (बाजारू)। २१. बेकाम रहना। काम छोड़कर खाली रहना। निरुद्योग रहना। निठल्ला रहना। बेरोजगार रहना। जैसे,—वह आज ६ महीने से बैठा है; कैसे खर्च चले? २२. अस्त होना। जैसे, सूर्य का बैठना, दिन बैठना।

बैठनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठना] दे० 'बैठना'।

बैठनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठन] करघे मे वह स्थान जहाँ जुलाहे कपड़ा बुनते समय बैठते हैं।

बैठवाँ†—वि० [हिं० बैठना] बैठा या दबा हुआ। जो उठा हुआ न हो। चिपटा। जैसे, बैठवाँ जूता।

बैठवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैठना] बैठाने की मजदूरी।

बैठवाना—संज्ञा स० [हिं० बैठाना का प्रे० रूप] १. बैठाने का काम दूसरे से कराना। २. पेड़ पौधे लगवाना। रोपाना।

बैठा—संज्ञा पुं० [हिं० बैठना] चमचा या बड़ी करछी। (लश०)।

बैठाना—क्रि० स० [हिं० बैठना] १. स्थित करना। आसीन करना। उपविष्ट करना। खड़ा न रखकर कुछ विश्राम की स्थिति में करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. बैठने के लिये कहना। आसन पर विराजने को कहना। जैसे, लोग तुम्हारे यहाँ आए हैं; उन्हें आदर से ले जाकर बैठाओ। ३. पद पर स्थापित करना। प्रतिष्ठित करना। नियत करना। जैसे,—किसी मूर्ख को वहाँ बैठा देने से काम न चलेगा। ४. नियत स्थान पर ठीक ठीक ठहराना। ठीक जमाना। अड़ाना या टिकाना। जैसे, पेंच बैठाना, मूर्ति बैठाना, चूल्हे पर बटलोई बैठाना, अँगूठी मे नग बैठाना।

मुहा०—नस बैठाना = हटी हुई नस मलकर ठीक जगह पर लाना। मोच दूर करना। हाथ या पैर बैठाना = आघात या चोट के कारण जोड़ पर से उखड़ा हुआ हाथ या पैर ठीक करना। बैठा भात = वह भात जो चावल और पानी एक साथ आग पर रखने से पके।

५. किसी काम को बार बार करके हाथ को अभ्यस्त करना। माँजना। जैसे, लिखकर हाथ बैठाना। ६. पानी आदि मे घुली वस्तु को तल में ले जाकर जमाना। जैसे,—यह दवा सब मैल नीचे बैठा देगी। ७. धँसाना या डुबाना। नीचे की ओर ले जाना। जैसे,—इतना भारी बोझ दीवार बैठा देगा। ८. सूजा या उभरा हुआ न रहने देना। दबाकर बराबर या गहरा करना। पचकाना या धँसाना। जैसे,—यह दवा गिल्टी को बैठा देगी। ९. (कारबार) चलता न रहने देना। बिगाड़ना। १०. फेंक या चलाकर कोई चीज ठीक जगह पर पहुँचाना। क्षिप्त वस्तु को निर्दिष्ट स्थान पर डालना। लक्ष्य पर जमाना। जैसे, निशाना बैठाना, डंडा बैठाना। ११. घोड़े आदि पर सवार कराना। १२. पौधे को पालने के लिये जमीन में गाड़ना। लगाना। जमाना। जैसे, जड़हन बैठाना। १३. किसी स्त्री को पत्नी के रूप में रख लेना। घर में डालना। १४. काम धंधे के योग्य न रखना। बेकाम कर देना। जैसे,—रोग ने उसे बैठा दिया।

बैठारना†—क्रि० स० [हिं० बैठाना] दे० 'बैठाना'। उ०—(क) सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रत्न खचित सिंहासन धारयो। तेहि पर कृष्णहि लै बैठारयो।—सूर (शब्द०)।

बैठालना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बैठाना'। उ०—बैठाला ज्योतिर्मुख कर खोली छवि तमस्तोम हर कर।—अर्चना, पृ० ३८।

बैडाल—वि० [सं० बिडाल > बैडाल] [वि० स्त्री० बैडाली] बिल्ली संबंधी।

बैडालव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० बैडालव्रतिक, बैडालव्रती] बिल्ली के समान अपने घात में रहना और ऊपर से बहुत सीधा सादा बना रहना।

बैडालव्रतिक—वि० [सं०] दे० 'बैडालव्रती' [को०]।

बैडालव्रती—वि० [सं० बैडालव्रतिन्] बिल्ली के समान ऊपर से सीधा सादा, पर समय पर घात करनेवाला। कपटी।

बैढ़ना†—क्रि० स० [हिं० बाड़ा, बेढ़ा] बंद करना। बेढ़ना। (पशुओं को)।

बैण—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस को काटकर उसी से जीविका करनेवाला। बाँस का काम करनेवाला।

बैत[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] पद्य। श्लोक। शेर। उ०—दरव न जानैं पीर कहावै। बैता पढ़ि पढ़ि जग समुझावै।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० १८५।

यौ०—बैतबाजी = (१) पद्य, श्लोक, शेर आदि के पाठ की प्रतियोगिता। (२) अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता।

बैत[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १. गृह। निवास। २. प्रासाद। मंदिर [को०]।

बैतड़ा—वि० [हिं० बैतला] १. जो व्यर्थ इधर उधर घूमता रहता हो। आवारा। २. लुच्चा। शोहदा।

बैतरना—संज्ञा स्त्री० [सं० वैतरणी] १. दे० 'वैतरणी'। २. एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल कई वर्ष तक रहता है।

बैतलमाल—संज्ञा पुं० [अ० बैत-उल-माल] वह व्यक्ति जिसका कोई वारिस न हो। लावारिस। उ०—एक लखनऊ का मित्र यों बावला या बेहाल घूमता बैतलमाल बन रहा है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११२।

बैतला[1]—वि० [अ० बैतउल्ला] १. (माल) जिसका कोई मालिक न हो। लावारिस।

बैतला[2]—संज्ञा पुं० चोरी का माल। (जुआरी)।

बैताल—संज्ञा पुं० [सं० वेताल] दे० 'वेताल'।

बैतालिक—वि०, संज्ञा पुं० [सं० वैतालिक] दे० 'वैतालिक'।

बैदंगर†—वि० [हिं० बैद+फ़ा० गर (प्रत्य०)] वैद्य विद्या का जानकार। चिकित्सक। उ०—नाड़ी निरख भया बैदंगर अनत औषधी कीन्हा। सारी धात रसायण करि करि आतम एक न चीन्हा।—राम० धर्म०, पृ० १४३।

बैदंगा†—संज्ञा पुं० [सं० वैद्याङ्ग] वैद्यक। वैदकी। चिकित्सा। उ०—केचित करहिं विविध बैदंगा। बूटी जरी टटोरहि अंगा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ९०।

बैद—संज्ञा पुं० [सं० वैद्य] [स्त्री० वैदिन] चिकित्साशास्त्र का जाननेवाला पुरुष। वैद्य। उ०—(क) कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बहु धन लै अहसान कै पारो देत सराहि। बैद वधू हँसि भेद से रही नाह मुख चाहि।—बिहारी (शब्द०)।

बैदई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैद] वैद्य की विद्या या व्यवसाय। वैद्य का काम। उ०—आँचि न आवै लखि कछू देखत छाँह न घाम। अर्थ सुनारी बैदई करि जानत पति राम।—केशव (शब्द०)।

बैदाई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० बैद+आई] दे० 'बैदई'।

बैदूर्य—संज्ञा पुं० [सं० वैदूर्य] दे० 'वैदूर्य'।

बैदेही[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वैदेही] १. दे० 'वैदेही'। २. पीपर। पिप्पली।—अनेकार्थ०, पृ० ५८।

बैन(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० वचन, प्रा० वयन] १. वचन। बात। उ०—(क) माया डोलै मोहती बोलै कड़ुआ बैन। कोई घायल ना मिलै, साईं हिरदा सैन।—कबीर० (शब्द०)। (ख) विप्र आइ माला दए कहे कुशल के बैन। कुँवरि पत्यारो तब कियो जब देख्यो निज नैन।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—बैन झरना = बात निकलना। बोल निकलना। उ०—उ०—जसुमति मन अभिलाष करै। कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै। कब द्वै दंत दूध के देखों कब तुतरे मुख बैन झरैं।—सूर (शब्द०)।

२. घर में मृत्यु होने पर कहने के लिये बंधे हुए शोकसूचक वाक्य जिसे स्त्रियाँ कहकर रोती हैं। (पंजाब)।

बैन(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० वैन्य] वेन का पुत्र। पृथु।

बैन[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० वेणु] दे० 'वेणु', 'बीन'। उ०—(क) बिन ही ठाहर आसण पूरे, बिन कर बैन बजावै।—दादू० बानी०, पृ० ५६६। (ख) मोहन मन हर लिया सु बैन बजाय के।—घनानंद०, पृ० १७९।

बैनतेय—संज्ञा पुं० [सं० वैनतेय] दे० 'वैनतेय'।

बैना[1]—संज्ञा पुं० [सं० वायन] वह मिठाई आदि जो विवाहादि उत्सवों के उपलक्ष में इष्टमित्रों के यहाँ भेजी जाती है।

बैना(पु)[2]—क्रि० स० [सं० वपन, प्रा० वयण] बोना।

बैना[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बेंदा'।

बैनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० वेणी] दे० 'वेनी'। उ०—फूलन की बैनी गुही, फूलन की अँगिया, फूलन की सारी मानों फूली फुलवारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ८०।

बैपार—संज्ञा पुं० [सं० व्यापार] व्यापार। व्यवसाय। काम धंधा। उ०—अगम काटि गम कीन्हो हो रमैया राम। सहज कियो बैपार हो रमैया राम।—कबीर (शब्द०)।

बैपारी—संज्ञा पुं० [सं० व्यापारी] व्यापार करनेवाला। रोजगारी। व्यापारी। उ०—उठै हिलोर न जाय सँभारी। भागहिं कोइ निबहै बैपारी।—जायसी (शब्द०)।

बैयन—संज्ञा पुं० [सं० वायन(=बुनना)] लकड़ी का एक औजार जिससे बाना बैठाया जाता है। यह खड्ग के आकार का होता है और गड़रिये इसे कंबल की पट्टियों के बुनने के काम में लाते हैं।

बैयर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० वधूवर, हिं० बहुअर] औरत। स्त्री। उ०—सरजा समत्थ बीर तेरे बैर बीजापुर बैरि बैयरनि कर चीन्ह न चुरीन को।—भूषण (शब्द०)।

बैयाँ[1]—क्रि० वि० [हिं० बकैयाँ] घुटनों के बल। बाहु या कुहनियों के बल। बकैयाँ। उ०—बैयाँ बैयाँ डोलत कन्हैया की बलैयाँ जाउँ मैया मैया बोलत जुन्हैया को लखावै री।—दीन० ग्रं०, पृ० ७।

बैयाँ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहु] बाहँ। भुजा। कलाई। उ०—(क) बिनती करत गहे धन बैयाँ। वृंदावन तेरे बिनु सूनो बसत तुम्हारी छैयाँ।—छीत०, पृ० ८४। (ख) जसुदा गहति धाइ बैयाँ, मोहन करत न्हैयाँ न्हैयाँ नंददास बलि जाइ रे।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६।

बैया(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० वाय] बै। बेसर। (जुलाहे)। ८०—

कै ज्ञान कछु नहीं बाम्हन भक्ति न जान। ब्याह सराधे कारने बैठा सूँढ़ा तान।—कबीर (शब्द०)।

बैनी²†—संज्ञा स्त्री० [सं० भगिनिका] छोटी ननद। पति की छोटी बहन। (बुंदेल०)।

बैरंग—वि० [अं० बेयरिंग] वह चिट्ठी या पारसल जिसका महसूल भेजनेवाले की ओर से न दिया गया हो, पानेवाले से वसूल किया जाय।

मुहा०—बैरंग लौटना या वापस होना=निष्फल या बिना काम हुए तुरंत लौट आना।

बैर¹—संज्ञा पुं० [सं० वैर] १. किसी के साथ ऐसा संबंध जिससे उसे हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति हो और उससे हानि पहुँचने का डर हो। अनिष्ट संबंध। शत्रुता। विरोध। अदावत। दुश्मनी। जैसे,—इन दोनों कुलों में पीढ़ियों का बैर चला आता था। २. किसी के प्रति अहित कामना उत्पन्न करनेवाला भाव। प्रीति का बिल्कुल उलटा। वैमनस्य। दुर्भाव। द्रोह। द्वेष। उ०—बैर प्रीति नहिं दुरत दुराए।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—रखना।

मुहा०—बैर काढ़ना या निकालना=दुर्भाव द्वारा प्रेरित कार्य कर पाना। बदला लेना। उ०—यहि विधि सब नवीन पायो ब्रज काढ़त बैर दुरासी।—सूर (शब्द०)। बैर ठानना=शत्रुता का संबंध स्थिर करना। दुश्मनी मान लेना। दुर्भाव रखना आरंभ करना। उ०—सिर करि धाय कचुकी मांगी अब तो मेरो नाँव भयो। कालि नहीं यहि मारग ऐसे ऐसे मोसों बैर ठयो।—सूर (शब्द०)। बैर डालना=विरोध उत्पन्न करना। दुश्मनी पैदा करना। बैर पड़ना=बाधक होना। तंग करना। शत्रु होकर कष्ट पहुँचाना। उ०—कुटुँब बैर मेरे परे बरनि बरे सिसुपाल।—सूर (शब्द०)। बैर बढ़ाना=अधिक दुर्भाव उत्पन्न करना। दुश्मनी बढ़ाना। ऐसा काम करना जिससे अप्रसन्न या कुपित मनुष्य और भी अप्रसन्न और कुपित होता जाय। उ०—आवत जात रहत याही पथ मोसों बैर बढ़ैहो।—सूर (शब्द०)। बैर बिसाहना या मोल लेना=जिस बात से अपना कोई संबंध न हो उसमें योग देकर दूसरे को अपना विरोधी या शत्रु बनाना। बिना मतलब किसी से दुश्मनी पैदा करना। उ०—चाह्यो भयो न कछू कबहूँ जमराजहु सो वृथा बैर बिसाह्यो।—पद्माकर (शब्द०)। बैर मानना=दुर्भाव रखना। बुरा मानना। दुश्मनी रखना। बैर लेना=बदला लेना। कसर निकालना। उ०—(क) मैत केहरि को बयर जनु भेक हति गोमाय।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लेहौं बैर पिता तेरे को, कैहै कहाँ पराई?—सूर (शब्द०)।

बैर²—संज्ञा पुं० [देश०] हल में लगा हुआ चिलम के आकार का चोंगा जिसमें भरा हुआ बीज हल चलने से बराबर कूँड़ में पड़ता जाता है।

बैर³†—संज्ञा पुं० [सं० बदर, प्रा० बयर] बेर का फल और पेड़।

बैरख—संज्ञा पुं० [तु० बैरक़] सेना का झंडा। ध्वजा। पताका। निशान। उ०—घन धावन बग पाँति पटो सिर बैरख तड़ित सोहाई।—तुलसी (शब्द०) (ख) बैरख ढाल गगन गा छाई। चाल कटक धरती न समाई।—जायसी (शब्द०)। (ग) चलती चपलान है फेरते फिरंगै भट, इंद्र को न चाप रूप बैरख समाज को।—भूषण (शब्द०)।

बैरखी†—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहु+राखी] एक गहना। बहूँटा। बैरासी।

बैरन⑨¹—वि० स्त्री० [हिं० बैरिन] दे० 'बैरी'। उ०—देखन दै मेरी बैरन पलकैं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५१।

बैरन²—संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० बैरोनेस] इगलैंड के सामंतों तथा बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंशपरंपरा के लिये दी जानेवाली उपाधि जिसका दर्जा 'वाइकौंट' के नीचे है। वि० दे० 'ड्यूक'।

बैरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] चिलम के आकार का चोंगा जो हल में लगा रहता है और जिसमें बोते समय बीज डाला जाता है।

बैरा²—संज्ञा पुं० [अं० बेयरर] सेवक। चाकर। खिदमतगार।

बैरा³—संज्ञा पुं० [देश०] ईंट के टुकड़े, रोड़े आदि जो मेहराब बनाते समय उसमें चुनी हुई ईंटों को जमी रखने के लिये खाली स्थान में भर देते हैं।

बैराखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बाहु+राखी] एक गहना जिसे स्त्रियाँ भुजा पर पहनती हैं। इसमें लंबोतरे गोल बड़े बड़े दाने होते हैं जो धागे में गूँथकर पहने जाते हैं। बहूँटा।

बैराग⑨†—संज्ञा पुं० [सं० वैराग्य] दे० 'वैराग्य'। उ०—बैराग जोग कठिन ऊधो हम न गहैंगी।—गीत।

बैरागर†—संज्ञा स्त्री० [देश०] हीरे की खान। उ०—(क) बैरागर हीरा हुए कुलवंतिया सपूत। सीपैं मोती नीपजैं सब ब्रम्हारा सूत।—राँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २६। (ख) सतगुरु साधु शब्द तहँ बैरागर की खानि। रज्जब खोदि विवेक सुँ, तहाँ नहीं कछु हानि।—रज्जब०, पृ० १०।

बैरागी—संज्ञा पुं० [सं० विरागी] [स्त्री० बैरागिन] वैष्णव मत के साधुओं का एक भेद।

बैराग्य—संज्ञा पुं० [सं० वैराग्य] दे० 'वैराग्य'।

बैराना†—क्रि० अ० [हिं० बाइ, वायु] वायु के प्रकोप से बिगड़ना। उ०—जे अँखियाँ बैरा रहीं लगैं बिरह की बाइ। पीतम पगरज को तिन्हैं अंजन देहु लगाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

बैरिस्टर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'बारिस्टर'।

बैरी—वि० [सं० वैरी] [स्त्री० बैरिन] १. बैर रखनेवाला। शत्रु। दुश्मन। द्वेषी। उ०—(क) सिव बैरी मम दास कहावै। सो नर सपनेहु मोहिं न पावै।—तुलसी (शब्द०)। (ख)

लघु मिलनो बिछुरन घनो ता बिच बैरिन लाज। दृग अनुरागी भाव ते कहु कहु करै इलाज।—रसनिधि (शब्द०)। २. विरोधी।

बैरोमीटर—संज्ञा पुं० [अं०] वायुमंडल का दबाव नापने का यंत्र जो थर्मामीटर की तरह का, पर उससे बड़ा होता है। वायुदाबमापी।

बैल[1]—वि० [सं० बिल] १. बिल में रहनेवाला। जैसे, चूहा। २. बिल से संबंध रखनेवाला कोई भी जानवर (को०)।

बैल[2]—संज्ञा पुं० [सं० बलद, बलीवर्द] [स्त्री० गाय] १. चौपाया जिसकी मादा को गाय कहते हैं।

विशेष—यह चौपाया बड़ा मेहनती और बोझ उठानेवाला होता है। यह हल में जोता जाता है और गाड़ियों को खींचता है। दे० 'गाय'।

यौ०—बैलगाड़ी।

पर्या०—उक्षा। भद्र। बलीवर्द। वृषभ। अनड्वान। गो।

२. मूर्ख मनुष्य। जड़ बुद्धि का मनुष्य। जैसे,—वह पूरा बैल है। उ०—बातचीत में भी देखा जाता है कि कभी हम किसी को मूर्ख न कहकर बैल कह देते हैं।—रस०, पृ० ३४।

बैलर—संज्ञा पुं० [अं० बायलर] पीपे के आकार का लोहे का बड़ा देग जो भाप से चलनेवाली कलों में होता है। इसमें पानी भरकर खौलाते और भाप उठाते हैं जिसके जोर से कल के पुरजे चलते हैं।

बैलून—संज्ञा पुं० [अं०] १. गुब्बारा। २. बड़ा गुब्बारा जिसके सहारे लोग पहले ऊपर हवा में उड़ा करते थे।

बैल्व[1]—वि० [सं०] १. बेल के वृक्ष से संबंधित या उसके किसी अंश से बना हुआ या निर्मित। २. बेल के वृक्षों से भरा हुआ या आवृत।

बैल्व[2]—संज्ञा पुं० बेल का फल (को०)।

बैखानस—संज्ञा पुं० [सं० वैखानस] दे० 'वैखानस'।

बैठक—संज्ञा पुं० [सं०] शिकार किए गए किसी जानवर का मांस (को०)।

बैसंदरⓤ—संज्ञा पुं० [सं० वैश्वानर, प्रा० वैसंदर] अग्नि। उ०—कबिरा सीतलता भई उपजा ब्रह्मगियान। जिहि बैसंदर जग जल्या सो मेरे उदिक समान।—कबीर ग्रं०, पृ० ६३।

बैसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० वयःसंधि] दे० 'वयःसंधि'। उ०—रसिक छैल रिझवारहिं रिझवति रस में रूप गुन भरी बैसंधि छूटी।—घनानंद, पृ० ५७४।

बैसँधि—संज्ञा स्त्री० [हिं० बै+संधि] दे० 'बैसंधि'। उ०—बाला बैसँधि मैं छवि पावै। मन भावै मुँह कहत न आवै।—नंद० ग्रं०, पृ० १२१।

बैस[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वयस्] १. आयु। उम्र। उ०—(क) वयस गयउ मोर कजल देत। अरु बैस गयल पर पुरुष —कबीर (शब्द०)। (ख) बूझति है रुक्मिनी पिय! इनमें को वृषभानु किसोरी? नेक हमें दिखरावौ अपने बालापन की जोरी। परम चतुर जिन कीने मोहन सुवस बैस ही थोरी। बेरे ते जिहि यहैं पढ़ायो बुधि बल कल बिधि चोरी।—सूर (शब्द०)। (ग) नित प्रति एकत ही रहत बैस बरन मन एक। चहियत जुगल किशोर लखि लोचन जुगल अनेक।—बिहारी र०, दो० २३८। २. यौवन। जवानी।

मुहा०—बैस चढ़ना=युवावस्था प्राप्त होना। जवानी आना। उ०—बैस चढ़े घर ही रहु बैठि अटानि चढ़े बदनाम चढ़ैगो।—रसनिधि (शब्द०)।

बैस[2]—संज्ञा पुं० [?] (किसी मूल पुरुष के नाम पर) क्षत्रियों की एक प्रसिद्ध शाखा जो कन्नौज से लेकर अंतर्वेद तक बसी पाई जाती है।

विशेष—यह शाखा पहले थानेश्वर के पास बसती थी पीछे विक्रम संवत् ६६३ के लगभग इस शाखा के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धन ने पूरब के प्रदेशों को जीता और कन्नौज में अपनी राजधानी बनाई।

बैस[3]—संज्ञा पुं० [सं० वैश्य, प्रा० बैस] दे० 'वैश्य'।

बैसनाⓤ†—क्रि० स० [सं० वेशन] बैठना। उ०—(क) देखा कपिन जाइ सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ऐसी को ठाली बैठी है तो सों मूँड़ खपावै। झूठी बात तुसी सी बिन कन फटकत हाथ न आवै।—सूर (शब्द०)। (ग) मन मौज करि बैसब हो, भुलब बहोरि बहोरि।—गुलाल०, पृ० ७८।

बैसन्नर—संज्ञा पुं० [सं० वैश्वानर] दे० 'बैसंदर'। उ०—रिन रत्तो कुंभक्रन्न परचो भूखो बैसन्नर। घर बंदर थक थाह दत कटि पट्ये बन्नर।—पृ० रा०, २।२८६।

बैसर—संज्ञा स्त्री० [हिं० बय] जुलाहों का एक औजार जिससे करघे में कपड़ा बुनते समय बाने को बैठाते हैं। कंघी। बय।

विशेष—यह बाँस की पतली तीलियों को बाँस के दो फट्टों पर आड़ी बाँधने से बनती है।

बैसवारा—संज्ञा पुं० [हिं० बैस + बारा (प्रत्य०)] [वि० बैसवारी] अवध का पश्चिमी प्रांत।

विशेष—यह प्रदेश बहुत दिनों तक थानेश्वर के बैस क्षत्रियों के अधिकार में रहा। बैस क्षत्रियों की बस्ती होने के कारण यह प्रदेश बैसवारा या बैसवाड़ा कहा जाने लगा। यहाँ की बोलचाल की भाषा को बैसवारी या बैसवाड़ी कहते हैं। यह अवधी की एक उपभाषा है। बैस वंश के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धन ने अपनी राजधानी कन्नौज में रखी थी, यह ...सप्रसिद्ध है।

...ा पुं० [सं० वैशाख, प्रा० वैसाख] दे० 'वैशाख'।

...ंज्ञा पुं० [सं० वैशाखनन्दन ...] ... । बेवकूफ (लाक्ष०)।

बैसाखी—संज्ञा स्त्री० [सं० विशाख (= बैसाख (= मथानी) जिसमें शाखाएँ निकली हों)] १. वह लाठी जिसके सिर को कंधे के नीचे बगल मे रखकर लँगड़े लोग टेकते हुए चलते हैं। इसके सिरे पर जो अर्द्धचंद्राकार आड़ी लकड़ी (अड्डे के आकार की) लगी होती है, वही बगल में रहती। लँगड़े के टेकने की लाठी। उ०—(क) तिलक दुआदस मस्तक दीन्हे। हाथ कनक बैसाखी लीन्हे।—जायसी (शब्द०)। (ख) गिरइ बुद्ध बैसाखिय कर सों। होइ सरप तेहि घरइ न डर सों।—इंद्रा०, पृ० ३१। (ग) बैसाखी धरि कंध शस्त्रचातुरी दिखावन। किमि जीतै रनखेत बड़ी विधि सो समझावन।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। २. वैशाख मास की पूर्णिमा।

बैसानाⓤ†—क्रि० स० [हिं० बैसना] स्थित करना। बैठाना। उ०—(क) सिधि गुटका जो दिस्टि समाई। पारहि मेल रूप बैसाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) नयन भइल दोउ दुग्ररा बैसाई।—धरनी०, पृ० २।

बैसारनाⓤ—क्रि० स० [हिं० बैसना] बैठाना। स्थित करना। उ०—तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे। दुइ बुध दुहूँ खूँट बैसारे।—जायसी (शब्द०)।

बैसारिन—संज्ञा स्त्री० [सं० वैसारिण] मत्स्य। झष। मीन। —अनेकार्थ०, पृ० ८०।

बैसिकⓤ†—संज्ञा पु० [सं० वैशिक] वेश्या से प्रीति करनेवाला नायक। वारांगनाविलासी पुरुष।

बैहरⓤ‡[1]—वि० [सं० वैर (= भयानक)] भयानक। क्रोधालु। उ०—बावर बरार बाघ बैहर बिलार बिग बगरे बराह जानवरन के जोम हैं।—भूषण (शब्द०)।

बैहर†ⓤ[2]—संज्ञा स्त्री० [स० वायु] वायु। उ०—बैहर बगारन की अरि अगारन की नाघती पगारन नगारन की घमकै।—भूषण (शब्द०)।

बौंक—संज्ञा पु० [हिं० बंक, बौंक ?] लोहे का वह तिकोना कीला जो किवाड़ के पल्ले मे नीचे की चूल की जगह लगाया जाता है।

बौंगना—संज्ञा पुं० [हिं० बहुगुना] [स्त्री० बौंगनियाँ] पीतल का एक वर्तन जिसकी बाढ़ें ऊँची और सीधी ऊपर को उठी हुई होती हैं। बहुगुना।

बौंड़री†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बोड़री'।

बौंड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बौंड़ी'।

बौंदार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बाकली'।

बौंहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार, हिं० ब्योहर] वाणिज्य। व्यापार। लेनदेन। उ०—राम नाम करि बोहड़ा वाही बीज अघाइ। अंति काल सुका पड़ै; तो निरफल कदे न जाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५८।

बो[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वधू, प्रा० वहू, बँग० बऊ>बो] पत्नी। स्त्री।

बो†[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बू, हिं० बोय, बोह] गंध। वास। महक। जैसे, बो दार।

बोअनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० वपन, हिं० बोना] बीज बोने की क्रिया। बीग्रा बोने का कार्य।

बोआई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोना] १. बोने का काम। २. बोने की मजदूरी।

बोआना†—क्रि० स० [हिं० बोना] बीज बोने का काम दूसरे से कराना।

बोइⓤ—संज्ञा स्त्री० [फा० बू] दे० 'बोय'।

बोक†—संज्ञा पु० [हिं० बकरा] बकरा। उ०—कहूँ बैन भैंसा भिरै भीम भारे। कहूँ एण एणीन के हेत कारे। कहूँ बोक बाँके कहूँ मेष सूरे। कहूँ मत्त दंती लरैं लोह पूरे।—केशव (शब्द०)।

बोकरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकरा'।

बोकरा†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बकरी'।

बोकला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बकला'।

बोक्काण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पश्चिम दिशा का एक पर्वत। (बृहत्संहिता)। २. वह झोला जो घोड़े के मुख पर खाने के लिये लगाया जाता है। तोबड़ा।

बोखार—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'बुखार'। उ०—हाड़ चाम हमरे जो कहिए तोहरे कनक बोमारा।—संत० दरिया०, पृ० ६१।

बोगुमा—संज्ञा पुं० [सं० वायुगुल्म ?] घोड़ों की एक बीमारी जिससे उनके पेट मे ऐसी पीड़ा होती है कि वे बेचैन हो जाते हैं।

बोचना†—क्रि० स० [?] लोकना। झेलना।

बोज—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों का एक भेद। उ०—तीले लक्खी लक्ख बोज बादामी चोनी।—सूदन (शब्द०)।

बोजा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बोज़ह्] चावल से बनाया हुआ मद्य। चावल की शराब। उ०—जे बोजा बिजया पियैं तिन पै भावत हैफ। मन मोहन दग अमल मे क्या थोरी है कैफ।—रसनिधि (शब्द०)।

बोझ—संज्ञा पु० [?] १. ऐसा पिंड जिसे गुरुत्व के कारण उठाने में कठिनता हो। ऐसी राशि या गट्ठर या वस्तु जो उठाने या ले चलने में भारी जान पड़े। भार। जैसे,—तुमने मन भर का बोझ उसके सिर पर लाद दिया, वह कैसे चले।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।—उतरना।—उतारना।—लदना।—लादना।—होना।

२. भारीपन। गुरुत्व। वजन। जैसे,—इसका कुछ बहुत बोझ नहीं। ३. कोई ऐसा कठिन काम जिसके पूरे होने की चिंता बराबर बनी रहे। मुश्किल काम। कठिन बात। जैसे,—(क) बड़ा भारी बोझ तो कन्या का विवाह है। (ख) एक लड़के को अपने यहाँ रखना बोझ हो रहा है। ४. कठिन लगनेवाली बात पूरी करने की चिंता, खटका या असमंजस।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना।

५. किसी कार्य को करने में होनेवाला श्रम, कष्ट या व्यय। मिहनत, हैरानी, खर्च या तकलीफ जो किसी काम को करने में हो। कार्यभार। जैसे,—(क) तुम सब कामों का बोझ हमारे सिर पर डाल देते हो। (ख) गृहस्थी का सारा बोझ उसके सिर पर है। (ग) वे इस काम में बहुत रुपए दे चुके हैं, अब उनपर और बोझ न डालो। (घ) उनपर ऋण का बोझ न डालो।

क्रि॰ प्र॰—उठाना।—उतारना।—डालना।—पड़ना।

६. वह व्यक्ति या वस्तु जिसके संबंध में कोई ऐसी बात करनी हो जो कठिन जान पड़े। जैसे,—यह लड़का तुम्हें बोझ हो, तो, मैं इसे अपने यहाँ ले जाकर रखूँगा। ७. घास, लकड़ी आदि का उतना ढेर जितना एक आदमी लेकर चल सके। गट्ठर। जैसे,—बोझ भर से ज्यादा लकड़ी नहीं है। ८. उतना ढेर जितना बैल, घोड़े, गाड़ी आदि पर लद सके। जैसे,—अब गाड़ी का पूरा बोझ हो गया, अब मत लादो।

मुहा॰—बोझ उठना=किसी कठिन बात का हो सकना। किसी कठिन कार्य का भार लिया जा सकना। बोझ उठाना=किसी कठिन कार्य का भार ऊपर लेना। कोई ऐसी बात करने का नियम करना जिसमें बहुत मेहनत, खर्च, हैरानी, या तकलीफ हो। जैसे, गृहस्थी का बोझ उठाना; खर्च का बोझ उठाना। बोझ उतरना=किसी काम से छुट्टी पाना। चिंता या खटके की बात दूर होना। जी हलका होना। जैसे,—आज उसका रुपया दे दिया, मानो बड़ा भारी बोझ उतर गया। बोझ उतारना=(१) किसी कठिन काम से छुटकारा देना। चिंता या खटके की बात दूर करना। (२) कोई ऐसा काम कर डालना जिससे चिंता या खटका मिट जाय। जैसे,—धीरे धीरे महाजन का रुपया देकर बोझ उतार दो (३) किसी काम को बिना मन लगाए यों ही किसी प्रकार समाप्त कर देना। बेगार टालना।

बोझना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ बोझ] बोझ के सहित करना। लादना। किसी नाव या गाड़ी पर माल रखना। उ॰—(क) नैया मेरी तनक सी बोझी पाथर भार।—गिरधरराय (शब्द॰) (ख) अवसर पड़ै तो पर्वत बोझै तहूँ न होवै भारी। धन सतगुरु यह जुगत बताई तिनकी मैं बलिहारी।—मलूक॰, पृ॰ ३।

बोझल—वि॰ [हिं॰ बोझ] दे॰ 'बोझिल'।

बोझा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बोझ] १. दे॰ 'बोझ'। २. संदूक की तरह की तंग कोठरी जिसमें रात के बोरे इसलिये ऊपर रखे जाते हैं जिसमें शीरा या जूसी निकल जाय।

बोझाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बोझना+आई (प्रत्य॰)] १. बोझने या लादने का काम। २. बोझने की मजदूरी।

बोझिल—वि॰ [हिं॰ बोझ+इल (प्रत्य॰)] [वि॰ स्त्री॰ बोझीली] वजनी। भारी। वजनदार। गुरु।

बोट—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] १. नाव। नौका। २. स्टीमर। अगिन-बोट। जहाज।

बोटा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वृन्त, बोएट (=डाल, लट्ठा)] १. लकड़ी का काटा हुआ मोटा टुकड़ा जो लबाई में हाथ दो हाथ के लगभग हो, बड़ा न हो। कुंदा। २. काटा हुआ टुकड़ा। खंड।

बोटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बोटा] मास का छोटा टुकड़ा।

मुहा॰—बोटी बोटी काटना=तलवार, छुरी आदि से शरीर को काटकर खंड खंड करना। बोटी बोटी फड़कना=(१) बहुत अधिक नटखट होना। (२) उत्साह या उमंग से भर उठना। स्फूर्ति से भर उठना।

बोड़[१]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] सिर पर पहनने का एक आभूषण।

बोड़[२]—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ [हिं॰ बौंर] 'बौंर', 'वल्ली'।

बोड़री†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बोंड़ी] ढोंढी। नाभि। तुंदकूपिका।

बोडल—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] पक्षी जिसे जेबर भी कहते हैं। इसकी चोंच पर एक सींग सा होता है। यह एक प्रकार का पहाड़ी महोख है।

बोड़ा[१]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] अजगर। बड़ा साँप।

बोड़ा[२]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की पतली लंबी फली जिसकी तरकारी होती है। लोबिया। बजरबट्टू।

बोड़ी[१]—संज्ञा स्त्री॰ [?] १. दमड़ी। दमड़ी कौड़ी। २. अत्यंत अल्प धन। उ॰—जाँचै को नरेस देस देस को कलेस करै, देहै तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बोड़िये।—तुलसी (शब्द॰)।

बोड़ी[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'बौड़ी', 'बौंड़ी'।

बोत—संज्ञा पुं॰ पुं॰ [देश॰] घोड़ों की एक जाति। उ॰—कोइ अरबी जंगली पहारी। त्रिरचेंबक चंपा कंधारी। कोई काबुली कंबोज कोइ कच्छी। बोत नेमना मुंजी लच्छी।—विश्राम (शब्द॰)।

बोतक—संज्ञा पुं॰ [देश॰] पान की पहले वर्ष की खेती।

बोतल—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰ बॉटल] १. काँच का वह लंबी गरदन का गहरा बरतन जिसमें द्रव पदार्थ रखा जाता है। २. मद्य। मदिरा। शराब। (लाक्ष॰)। उ॰—जैसी जब मौज हुई, बोतल का सेवन करते थे।—शराबी, पृ॰ ९१।

मुहा॰—बोतल चढ़ाना=मद्य पीना। बोतल पर बोतल चढ़ाना=बहुत मद्य पीना।

यौ॰—बोतलवासिनी, बोतलवाहिनी=मदिरा। शराब।

बोतलिया[१]—वि॰ [हिं॰ बोतल] बोतल के रंग सा। कालापन लिये हरा।

बोतलिया[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] छोटी बोतल।

बोतली—वि॰, संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बोतल का अल्पा॰ स्त्री॰] दे॰ 'बोतलिया'।

बोता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पोत] ऊँट का बच्चा जिसपर अभी सवारी न होती हो।

बोदका—संज्ञा स्त्री० [रूसी वोदका] रूस में बनी एक प्रकार की मदिरा।

बोदकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुसुम या बरें की एक जाति जिसमें काँटे नही होते और जिसके केवल फूल रँगाई के काम में आते हैं। बीजो से तेल नही निकाला जाता।

बोदर[1]†—संज्ञा स्त्री० [देश०] लचीली छड़ी।

बोदर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] ताल या जलाशय के किनारे सिंचाई का पानी चढ़ाने के लिये बना हुआ स्थान जिसमें कुछ नीचे दो आदमी इधर उधर खड़े होकर टोकरे आदि से उलीचकर पानी ऊपर गिराते रहते हैं।

बोदा[1]—वि० [सं० अबोध] [वि० स्त्री० बोदी] १. जिसकी बुद्धि तीव्र न हो। मूर्ख। गावदी। उ०—गुरु के पथ चले सो जोधा। गुरु के पथ चले का बोदा।—सहजो०, पृ० ५। २. जो तत्पर बुद्धि का न हो। ३. सुस्त। मट्ठर। ४. जो दृढ़ या कड़ा न हो। फुसफुसा। उ०—पहाड़ पानी के थपेड़े सहते सहते बोदे हो गए हैं।—सैर०, पृ० ३१।

बोदापन—संज्ञा पुं० [हिं० बोदा+पन (प्रत्य०)] १. बुद्धि की अतत्परता। अक्ल का तेज न होना। २. मूर्खता। नासमझी।

बोदार†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बू (= गंध) दार] सुगंध से युक्त, इत्र। उ०—प्रीणो हिलवी आदरस, वोह यमनी बोदार।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ५७।

बोदुला—संज्ञा पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक वृक्ष जो अवध, बुंदेलखंड और बंगाल मे पाया जाता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ टहनियों के सिरों पर गुच्छों के रूप में होती हैं और पशुओं के चारे के काम में आती हैं। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है।

बोद्धव्य—वि० [सं०] १. जानने योग्य। समझने योग्य। ज्ञेय। २. बोध्य। उ०—जब बोद्धव्य प्रसंगानुसार आक्षेप कर लेता है तभी उसे शब्दबोध होता है।—शैली०, पृ० ७३।

बोद्धा[1]—वि० [सं० बोद्धृ] जाननेवाला। बूझनेवाला [को०]।

बोद्धा[2]—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र का विद्वान्। नैयायिक [को०]।

बोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. भ्रम या अज्ञान का अभाव। ज्ञान। जानकारी। जानने का भाव। २. तसल्ली। धीरज। संतोष। उ०—जोध नाम तब जब मन को निरोध होइ, बोध को बिचारि सोध आतमा को करिए।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१०।

क्रि० प्र०—देना।—होना।

यौ०—बोधकर। बोधगम्य। बोधवासर।

बोधक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान करानेवाला। ज्ञापक। जतानेवाला। २. शृंगार रस के हावों में से एक हाव जिसमें किसी संकेत या क्रिया द्वारा एक दूसरे को अपना मनोगत भाव जताता है। उ०—निरखि रहे निधि बन तरफ नागर नंदकुमार। तोरि हीर को हार तिय लगी बगारन बार।—पद्माकर (शब्द०)। ३. जासूस। गुप्तचर।

बोधक[2]—वि० [सं० बौद्ध] बौद्ध संबंधी। बौद्धों का। उ०—परमोध बोधक पुरान। रामाइन सुन भारथ निदान।—पृ० रा०, १।३५२।

बोधकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैतालिक। बंदीजन। २. शिक्षक। उपदेशक। ३. बोध करानेवाला या जगानेवाला व्यक्ति [को०]।

बोधगम्य—वि० [सं०] समझ में आने योग्य।

बोधगया—संज्ञा पुं० [हिं० बोध+गया] बिहार प्रदेश के गया जिले का वह स्थान जहाँ बुद्ध को पीपल के नीचे संबोधि प्राप्त हुई थी। उ०—वह बोधगया भी एक से अधिक बार हो आया था।—किन्नर०, पृ० ४०।

बोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [बोधनीय, बोध्य, बोधित] १. वेदन। ज्ञापन। जताना। सूचित करना। २. जगाना। ३. उद्दीपन। अग्नि या दीपक को प्रज्वलित करना। (दिया) जगाना। ४. गंध दीप देना। दीपदान। ५. मंत्र जगाना। ६. बुध ग्रह (को०)।

बोधना(पु)†—क्रि० स० [सं० बोधन] १. बोध देना। समझाना बुझाना। कुछ कह सुनकर संतुष्ट या शांत करना। उ०—सूर श्याम को जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उड़त दिखावति।—सूर (शब्द०)। २. ज्ञान देना। जताना।

बोधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रबोधिनी एकादशी। २. पिप्पली। ३. समझ। ज्ञान। जानकारी (को०)।

बोधनीय—वि० [सं०] ज्ञातव्य। बोधयोग्य। २. जानने लायक। ज्ञात कराने योग्य।

बोधयिता—संज्ञा पुं० [सं० बोधयितृ] १. अध्यापक। शिक्षक। उपदेशक। २. जगानेवाला।

बोधवासर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रबोधिनी एकादशी। देवोत्थान एकादशी [को०]।

बोधान[1]—वि० [सं०] बुद्धिमान। चतुर। विज्ञ [को०]।

बोधान[2]—संज्ञा पुं० १. देवगुरु। बृहस्पति। २. विज्ञ या चतुर व्यक्ति [को०]।

बोधायन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मसूत्रवृत्ति के रचयिता एक आचार्य का नाम। २. एक श्रौतसूत्र के रचयिता। आचार्य।

बोधि—पुं० [सं०] १. समाधिभेद। २. पीपल का पेड़। ३. कौआ। काक (को०)। ४. बुद्ध का एक नाम (को०)।

बोधित—वि० [सं०] जिसे बोध या ज्ञान कराया गया हो। बुझाया, जताया या समझाया हुआ [को०]।

बोधितरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बोधिद्रुम'

बोधितव्य—वि० [सं०] ज्ञापन करने योग्य [को०]।

बोधिद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] गया में स्थित पीपल का वह पेड़ जिसके नीचे बुद्ध भगवान् ने संबोधि (बुद्धत्व) प्राप्त की थी।

विशेष—बौद्धों के धर्मग्रंथों के अनुसार इस वृक्ष का कल्पांत में भी नाश नही होता और इसी के नीचे बुद्धगण सदा संबोधि प्राप्त करते हैं।

बोधिमंडल—संज्ञा पुं० [सं० बोधिमण्डल] वह स्थान जहाँ बुद्ध ने संबोधि प्राप्त की थी। बोधगया।

बोधिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बोधितरु'।

बोधिसत्व—संज्ञा पुं० [सं० बोधिसत्त्व] वह जो बुद्धत्व प्राप्त करने का अधिकारी हो पर बुद्ध न हो पाया हो ।

विशेष—बोधिसत्व की तीन अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें पार करने पर बुद्धत्व की प्राप्ति होती है ।

बोधी—वि० [सं० बोधिन्] [वि० स्त्री० बोधिनी] १. बोधयुक्त । जाननेवाला । ज्ञाता । २. बताने या जतानेवाला । समझानेवाला [को०] ।

बोधोदय—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का जागरण । बोध या समझ होना ।

बोध्य—वि० [सं०] १. बोध के योग्य । जानने योग्य । २. जताने या सूचित करने या समझाने के योग्य [को०] ।

बोनस—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह धन या रकम जो किसी को उसके प्राप्य के अतिरिक्त दी जाय । २. वह धन जो किसी कर्मचारी को उसके पारिश्रमिक या वेतन के अतिरिक्त दिया जाय । पुरस्कार । पारितोषिक । बखशीस । ३. वह अतिरिक्त लाभ या मुनाफा जो संमिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी के शेयरहोल्डरों या हिस्सेदारों को दिया जाय ।

बोना१—क्रि० स० [सं० वपन, प्रा० बयण, ववण] १. बीज को जमने के लिये जुते खेत या भुरभुरी की हुई जमीन में छितराना । किसी दाने या फल के बीज को इसलिये मिट्टी में डालना जिसमे उसमें से अंकुर फूटे और पौधा उत्पन्न हो ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

२. बिखराना । छितराना । इधर उधर डालना । उ०—जान बूझकर धोखा खाना है यह कौन आऊर । आम कहाँ से खाओगे जब बोते गए बबूर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५५२ ।

बोना२—संज्ञा पुं० [सं० बुद्ध] एक प्रकार की वनस्पति । धूसरच्छदा । सफेद बोना ।

बोपार†—संज्ञा पुं० [सं० व्यापार] वाणिज्य । व्यापार । उ०—बोपार तो यहाँ का बहुत किया अब वहाँ का भी कुछ सौदा कर लो ।—राम० धम०, पृ० ६४ ।

बोबला†—स्त्री० पुं० [देश०] १. बाजरे का भूसा । २. रेत । बालू ।

बोबा†—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० बोबी] १. स्तन । थन । चूँची । उ०—शिशु उदास ह्वै जब तजि बोबा । तब दोऊ मिलि लागत रोबा ।—निश्चल (शब्द०) । २. घर का साज सामान । अंगड़ खंगड़ । ३. गट्ठर । गठरी । उ०—छीन भयो तहँ धोबी सोबी । ग्वालन पीठ लियो द्रुत बोबो ।—गर्गसंहिता (शब्द०) ।

बोव्वी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पुन्नाग या सुलताना चंपा की जाति का एक सदाबहार पेड़ जो दक्षिण मे पश्चिमी घाट की पहाड़ियों मे होता है ।

बोय‡—संज्ञा स्त्री० [फा० बू] १. गंध । बास । २. सुगंध । उ०—कस करील की कुंज सो उठत अतर की बोय । भयो तोहि भाभी कहा उठी भयानक रोय—पद्माकर (शब्द०) ।

बोर१—संज्ञा पुं० [हि० बोरना] डुबाने की क्रिया । डुबाव । जैसे,—एक बोर में रंग अच्छा नहीं चढ़ेगा, कई बोर दो ।

क्रि० प्र०—देना । उ०—अपने मन संकोच करत है जिन रँग बोर दई ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४७ ।

बोर२—संज्ञा पुं० [सं० वर्तुल] १. चाँदी या सोने का बना हुआ गोल और कँगूरेदार घुँघरू जो आभूषणों में एवं वस्त्रादि में गूँथा जाता है । जैसे, पाजेब के बोर । उ०—हिये रेशम के डोर, शिंजित हैं बोर बोर ।—अर्चना, पृ० ८१ । २. गुंबज के आकार का सिर पर पहनने का गहना जिसमें मीनाकारी का काम होता है और रत्नादि भी जड़े हुए होते हैं । इसे 'बीजु' भी कहते हैं ।

बोर†३—संज्ञा पुं० गड्ढा । खड्ड । बिल ।

बोर‡४—संज्ञा पुं० [सं० बदर] बेर का फल । बदरी फल । उ०—उमगे प्रभु भीलणी आंबा, एंठो बोर अरोगे आप ।—रघु० रू०, पृ० १४२ ।

बोरका†—संज्ञा पुं० [हि० बोरना] १. दावात । २. मिट्टी की दवात जिसमें लड़के खड़िया घोलकर रखते हैं ।

बोरना†—क्रि० स० [सं०, हि० बुड़ बूड़ना] १. जल या किसी और द्रव पदार्थ में निमग्न कर देना । पानी या पानी सी चीज में इस प्रकार डालना कि चारों ओर पानी ही पानी हो जाय । डुबाना । २. डुबाकर भिगोना । पानी आदि में डालकर तर करना । जैसे—कई बार बोरने से रंग चढ़ेगा । उ०—मानो मजीठ की माठ ढुरी इक ओर ते चाँदनी बोरति आवति ।—नृपशंभु (शब्द०) । ३. कलंकित करना । बदनाम कर देना । जैसे, कुल बोरना, नाम बोरना । उ०—(क) तासु दूत ह्वै हम कुल बोरा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) गावहिं पचरा मूढ कँपावहिं बोरहिं सकल कमाई हो ।—गुलाल०, पृ० २२ । ४. युक्त या आवेष्टित करना । योग देना या मिलाना । उ०—कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत ।—तुलसी (शब्द०) । ५. घुले रंग में डुबाकर रँगना । उ०—लागी ज्यौं ललिता पहिरावन कान्ह को कंचुकी केसर बोरी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

बोरसी—संज्ञा स्त्री० [हि० बोरसी] मिट्टी का बरतन जिसमें आग रखकर जलाते हैं । अँगीठी ।

बोरा१—संज्ञा पुं० [सं० पुट (= दोना या पत्र)] टाट का बना थैला जिसमे अनाज रखते है, विशेषतः कहीं से जाने के लिये ।

यौ०—बोराबंदी ।

बोरा२—संज्ञा पुं० [हि० बोर] चाँदी या सोने का बना छोटा घुँघरू । दे० 'बोर'२ ।

बोरिका†—संज्ञा पुं० [हि० बोरना] वह मिट्टी का बरतन जिसमें लड़के लिखने के लिये खड़िया घोलकर रखते हैं । बोरका ।

बोरिया१—संज्ञा स्त्री० [हि० बोरा] छोटा थैला ।

बोरिया२—संज्ञा पुं० [फा०] चटाई । बिस्तर ।

यौ०—बोरिया बँधना ।

मुहा०—बोरिया उठाना या बोरिया बँधना उठाना = चलने की तैयारी करना। प्रस्थान करना। उ०—जलसा बरख्वास्त। नाच रंग बंद, चहल पहल मौकूफ। तबलियों ने बोरिया बँधना उठाया।—फिसाना०, भा० १, पृ० १०।

बोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोरा] टाट की छोटी थैली। छोटा बोरा। उ०—सूर श्याम विप्रन बदी जन देत रतन कंचन की बोरी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—बोरी बाँधना = चलने की तैयारी करना। उ०—जानउँ लाई काहु ठगोरी। खन पुकार खन बाँधै बोरी।—जायसी (शब्द०)।

बोरो—संज्ञा पुं० [हिं० बोरना] एक प्रकार का मोटा धान जो नदी के किनारे की सीड़ में बोया जाता है।

बोरोबाँस—संज्ञा पुं० [देश० बोरो + हिं० बाँस] एक प्रकार का बाँस जो पूर्वी बंगाल में होता है।

बोर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी स्थायी कार्य के लिये बनी हुई समिति। २. माल के मामलों के फैसले या प्रबंध के लिये बनी हुई समिति या कमेटी।

यौ०—बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स = संचालक समिति या मंडल।

३. कागज की मोटी दफ्ती। ४. लकड़ी का तख्ता। काष्ठफलक।

बोर्डर—संज्ञा पुं० [अं०] वह विद्यार्थी जो बोर्डिंग हाउस में रहता हो।

बोर्डिंग हाउस—संज्ञा पुं० [अं०] वह घर जो विद्यार्थियों के रहने के लिये बना हो। छात्रावास।

बोलंगो बाँस—संज्ञा पुं० [देश० बोलंगी + हिं० बाँस] एक प्रकार का बाँस जो उड़ीसा और चटगाँव की ओर होता है। यह घरों में होता है और टोकरे बनाने के काम में आता है।

बोल¹—संज्ञा पुं० [हिं० बोलना] १. मनुष्य के मुँह से उच्चारण किया हुआ शब्द या वाक्य। वचन। वाणी। २. ताना। व्यंग्य। लगती हुई बात।

क्रि॰ प्र०—सुनाना।

मुहा०—बोल मारना = ताना देना। व्यंग्य वचन कहना।

३. बाजों का बँधा या गठा हुआ शब्द। जैसे, तबले का बोल, सितार का बोल। ४. कही हुई बात या किया हुआ वादा। कथन या प्रतिज्ञा।—जैसे, उसके बोल का कोई मोल नहीं।

मुहा०—(किसी का) बोलबाला रहना = (१) बात की साख बनी रहना। बात स्थिर रहना। बात का मान होते जाना। (२) मान मर्यादा का बना रहना। भाग्य या प्रताप का बना रहना। बोलबाला होना = (१) बात की साख होना। बात का माना जाना या आदर होना। (२) मान मर्यादा की बढ़ती होना। प्रताप या भाग्य बढ़कर होना। (३) प्रसिद्धि होना। कीर्ति होना। (किसी का) बोल रहना = साख रहना। मान मर्यादा रहना। इज्जत रहना।

५. गीत का टुकड़ा। अंतरा। ६. अदद। संख्या (विशेषतः वायन में आई हुई वस्तुओं के संबंध में स्त्रियाँ बोलती हैं)। जैसे,—सौ बोल आए थे, चार चार लड्डू बाँट दिए।

बोल†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोल] कथन। वार्ता। कथा। उ०—(क) ससनेही सयणाँ तणाँ कलि मा रहिया बोल।—ढोला०, दू० ६७५। (ख) घी को बोल मूँ मानीयो बाप।—बी० रासो०, पृ० २४।

बोल³—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सुगंधित गोंद जो स्वाद में कड़ुआ होता है। यह गुग्गुल की जाति के एक पेड़ से निकलता है जो अरब में होता है।

बोलक⁽ᵘ⁾—संज्ञा पुं० [देश०] जलभ्रमण। (डिं०)।

बोलचाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोल + चाल] १. बातचीत। कथनोपकथन। बातों का कहना सुनना। २. मेलमिलाप। परस्पर सद्भाव। जैसे,—आज कल उन दोनों में बोलचाल नहीं है। ३. छेड़छाड़। ४. चलती भाषा। रोजमर्रा या नित्य के व्यवहार की बोली। जैसे—वे अधिकतर बोलचाल की भाषा का व्यवहार करते हैं।

बोलता¹—संज्ञा पुं० [हिं० बोलना] १. ज्ञान कराने और बोलनेवाला तत्व। आत्मा। उ०—बोलते को जान ले पहचान ले। बोलता जो कुछ कहे सो मान ले।—(शब्द०)। २. जीवनतत्व। प्राण। उ०—वह बोलता कित गया काया नगरी तजि कै। दश दरवाजे ज्यों के त्यों ही कौन राह गयो भजि कै।—चरण० बानी, पृ० ३३२। ३. अर्थयुक्त शब्द बोलनेवाला प्राणी। मनुष्य। ४. हुक्का (फकीर)।

बोलता²—वि० १. खूब बोलनेवाला। वाक्पटु। वाचाल। २. प्राणयुक्त। जीवनी शक्तिवाला। ३. बोलनेवाला। बात करनेवाला। जैसे, बोलता सिनेमा, बोलती तसवीर।

बोलती—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोलना] बोलने की शक्ति। वाक्। वाणी।

मुहा०—बोलती बंद होना = लज्जा, शर्म या अपराधी होने की स्थिति में होना। दुःखादि के आधिक्य से बोल न पाना। बोलती मारी जाना = बोलने की शक्ति न रह जाना। मुँह से शब्द न निकलना।

बोलनहार, बोलनहारा†—संज्ञा पुं० [हिं० बोलना + हार (= वाला) (प्रत्य०)] शुद्ध आत्मा। बोलता।

बोलनिहारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'बोलनहार'। उ०—पराधीन देव हौं स्वाधीन गुसाईं। बोलनिहारे सो करै बलि बिनय कि भाईं।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना। उ०—आप ही कुंज के भीतर पैठि सुवारि कै सुंदर सेज बिछाई। बातें बनाय सटा के नटा करि, माधो सों आय कै राधा मिलाई। आली कहा कहौं हाँसी की बात विदूषक जैसी करी निठुराई। जाय रह्यो पिछवारे उतै पुनि बोलि उठ्यो वृषभानु की नाईं।—(शब्द०)।

यौ०—बोलना चालना = बात चीत करना।

मुहा०—बोल जाना=(१) मर जाना। संसार में न रह जाना। (अशिष्ट)। (२) निःशेष हो जाना। बाकी न रह जाना। चुक जाना। जैसे,—अब मिठाई बोल गई; और मँगाओ। (३) पुराना या जीर्ण होना। और व्यवहार के योग्य न रह जाना। टूट फूट जाना। घिस जाना या फट जाना। जैसे,—तुम्हारा जूता चार ही महीने में बोल गया। (४) हार मान लेना। हैरान होकर और आगे किसी काम में लगे रहने का बल या साहस न रखना। जैसे,—इतनी ही दूर में बोल गए, और दौड़ो। (५) सिटपिटा जाना। स्तब्ध हो जाना। (६) दिवाला निकाल देना। खुख हो जाना।

२. किसी वस्तु का शब्द उत्पन्न करना। किसी चीज का आवाज निकालना। जैसे,—(क) घंटा बोलना। (ख) यह जूता चलने में बहुत बोलता है।

बोलना¹—क्रि० अ० [सं० √'ब्रू>ब्रूयते' से 'बूयंते', प्रा० बुल्लई] १. मुँह से शब्द निकालना। मुख से शब्द उच्चारण करना। जैसे, आदमियों का बोलना, चिड़ियों का बोलना, मेढक का बोलना, इत्यादि।

बोलना²—क्रि० स० १. कुछ कहना। कथन करना। वचन उच्चारण करना। जैसे, कोई बात बोलना, वचन बोलना।

संयो० क्रि०—देना।—जाना।

मुहा०—बोल उठना=एकाएक कुछ कहने लगना। सहसा कोई वचन निकाल देना। चुप न रहा जाना। जैसे,—हम लोग तो बात कर ही रहे थे, बीच में तुम क्यों बोल उठे।

२. आज्ञा देकर कोई बात स्थिर करना। ठहराना। बदना। जैसे,—(क) कूच बोलना, पड़ाव बोलना, मुकाम बोलना। (ख) साहब ने आज खजाने पर नौकरी बोली है। ३. उत्तर में कुछ कहना। उत्तर देना। ४. रोक टोक करना। जैसे,—इस रास्ते पर चले जाओ, कोई नहीं बोलेगा। ५. छेड़छाड़ करना। सताना। दुःख देना। जैसे,—तुम डरो मत, यहाँ कोई बोल नहीं सकता। ६.(पु)† किसी का नाम आदि लेकर इसलिये चिल्लाना, जिससे वह सुनकर पास चला आवे। आवाज देना। बुलाना। पुकारना। उ०—ग्वालसखा ऊँचे चढ़ि बोलत बार बार लै नाम।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—लेना।

७.(पु)† आने के लिये कहना या कहलाना। पास आने के लिये कहना या सँदेसा भेजना। उ०—केसव वेगि चलौ, बलि, बोलति दीन भई वृषभानु की रानी।—केशव (शब्द०)।

मुहा०—बोलि पठाना(पु)=बुला भेजना। उ०—नाम करन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी।—तुलसी (शब्द०)।

बोलनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोल] बोलने की स्थिति या क्रिया। बोल। उ०—आयो बसंत रसाल प्रफुल्लित कोकिल बोलनि औन सुहाई।—मति० ग्रं०, पृ० ४२०।

बोलबाला—संज्ञा पुं० [अ० बोल+फ़ा० बाला (=ऊँचा)] १. एक बहुत ऊँचा सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत और भीतर ललाई लिए होती है। मकान में लगाने के लिये यह बहुत अच्छी होती है। २. (प्रसिद्धि का) चरम उत्कर्ष पर होना।

बोलवाना—क्रि० स० [हिं० बोलना का प्रे० रूप०] १. उच्चारण। कराना। जैसे,—पहाड़े बोलवाना। २. दे० 'बुलवाना'।

बोलशेविक—संज्ञा पु० [रूसी>अं०] रूसी कम्युनिस्ट पार्टी में मजदूरों और श्रमिकों के हितो और अधिकारों का समर्थक बहुसंख्यक दल।

विशेष—अल्पमत दल को 'मनशेविक' कहा जाता है।

यौ०—बोलशेविक क्रांति=वह संघर्षात्मक विप्लव, गदर या उलट फेर जो रूस में रूसी कम्युनिस्ट पार्टी ने जारशाही के खिलाफ बोलशेविज्म को आधार बनाकर किया था।

बोलशेविज्म—संज्ञा पु० [रूसी>अं० बोलशेविज्म] वह सिद्धांत या या मत जो श्रमिक वर्ग के हितों और अधिकारों को प्रमुख मानता हो तथा उन्हीं के शासन या हुकूमत का समर्थक हो।

बोलसरी¹—संज्ञा पुं० [सं० बकुलश्री, हिं० मौलसिरी] मौलसिरी। उ०—कोइ सो बोलसर, पुहुप बकोरी। कोई रूपमंजरी गोरी।—जायसी (शब्द०)।

बोलसरी²—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—किरमिज नुकरा जरदे भले। रूपकरान बोलसर चले।—जायसी (शब्द०)।

बोलसिरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० बकुलश्री] दे० 'मौलसिरी'।

बोलांश—संज्ञा पुं० [हिं० बोल + अंश] वह अंश या भाग जो किसी का कह दिया गया हो।

बोलाचाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोलना + अनु० चालना] बातचीत या आलाप का व्यवहार। जैसे,—तुम्हारी उनकी बोलाचाली क्यों बंद हो गई?

बोलाना—क्रि० स० [हिं० बुलाना] दे० 'बुलाना'।

बोलारी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रस्म। बोलावा। उ०—दादू जी ही को सब शुभ और अशुभ कार्यों (विवाह, जन्म, जडूल, जात, बोलारी) में मानते और स्मरण करते हैं।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ८।

बोलावा—संज्ञा स्त्री० [हिं० बुलाना] कहीं आने के लिये भेजा हुआ सदेस या न्योता। निमंत्रण या आह्वान। उ०—पिंगल बोलावा दिया सोहड़ सो असवार।—ढोला०, दू० ५७९।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—भेजना।

बोलिकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोल] ओझा। मंत्र पढ़नेवाला। उ०—सखी कहै कहु बोलिकिहि आनौ। एक मंत्र अरु हौंहू जानौं।—नंद० ग्रं०, पृ० १३८।

बोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोलना] १. किसी प्राणी के मुँह से

निकला हुआ शब्द। मुँह से निकली हुई आवाज। वाणी। जैसे,—(क) बच्चे की बोली, चिड़िया की बोली। (ख) वह ऐसा घबरा गया कि उसके मुँह से बोली तक न निकली।

क्रि० प्र०—बोलना।

मुहा०—मीठी बोली = शब्द या वाक्य जिसका कथन प्रिय हो। मधुर वचन।

२. अर्थयुक्त शब्द या वाक्य। वचन। बात।

३. नीलाम करनेवाले और लेनेवाले का जोर से दाम कहना। ४. वह शब्दसमूह जिसका व्यवहार किसी प्रदेश के निवासी अपने भाव या विचार प्रकट करने के लिये संकेत रूप से करते हैं। भाषा। जैसे,—वहाँ बिहारी नहीं बोली जाती, वहाँ की बोली उड़िया है। ५. वह वाक्य जो उपहास या कूट व्यंग्य के लिये कहा जाय। हँसी, दिल्लगी या ताना, ठठोली। उ०—सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बोलना।—मारना।—सुनाना।

यौ०—बोली ठोली।

मुहा०—बोली कसना, बोली छोड़ना, बोली बोलना या मारना = किसी को लक्ष्य करके उपहास या व्यंग्य के शब्द कहना। जैसे,—अब आप भी मुझपर बोली बोलने लगे।

बोली ठोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोली + ठिठोली] व्यंग्य। कटाक्ष। हँसी मजाक। उ०—बोली ठोली करै छिमा करि चुप मैं मारौं। भूँकि भूँकि फिरि जाँय जुगत से उनको टारौं।—पलटू०, पृ० ६२।

क्रि० प्र०—करना।—मारना।

बोलीदार—संज्ञा पुं० [हिं० बोली + फ़ा० दार] वह असामी जिसे जोतने के लिये खेत यों ही जबानी कहकर दिया जाय, कोई लिखा पढ़ी न हो।

बोल्लाह—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति।

बोवना†—क्रि० स० [सं० वपन, प्रा० बवण] दे० 'बोना'।

बोवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बोआई'।

बोवाना—क्रि० स० [हिं० बोना का प्रेरणा०] बोने का काम दूसरे से कराना।

बोसताँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाग। वाटिका। उपवन। उ०—सुनि बुलबुल बोसताँ होति जिहि ढंग।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७४।

बोसा—संज्ञा पुं० [फ़ा० बोसह्] चुंबन। उ०—हात उसका पकड़ जबीं के ऊपर, बोसा दे बिठाता उसकूँ सर पर।—दक्खिनी०, पृ० २२८।

बोह¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बोय] सुगंध। उ०—बगो राग खँभायची, लगो केसर बोह।—रा० रू०, पृ० ३४७।

बोह²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोर या सं० वाह] डुबकी। गोता।

मुहा०—बोह लेना = डुबकी लेना। गोता लगाना। उ०—रूप जलधि वपुष लेत मन गयंद बोहैं।—तुलसी (शब्द०)।

बोह³—क्रि० अ० [देश०] जमना। उगना। उ०—जहाँ जल बिन कवला बोह अनंत। जहाँ वपु बिन भौरा गोह करंत।—दरिया० बानी, पृ० ४५।

बोहना†—क्रि० स० [हिं० बोह] दे० 'बोना'।

बोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० बोधन (= जगाना)] १. किसी सौदे की पहली बिक्री। उ०—है कोइ संत सुजान करै मोरी बोहनियाँ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८। २ किसी दिन की पहली बिक्री। उ०—(क) मारग जात गहि रह्यो री अँवरा मेरो नाहिन देत हौं बिना बोहनी।—हरिदास (शब्द०)। (ख) औरन छाँडि परे हठ हमसों दिन प्रति कलह करत गहि झगरो। बिन बोहनी तनक नहिं देहौं ऐसेहि छीनि लेहु बरु सगरो।—सूर (शब्द०)।

विशेष—जबतक बोहनी नहीं हुई रहती तबतक दूकानदार किसी को उधार सौदा नहीं देते। उनका विश्वास है कि पहली बिक्री यदि अच्छी होगी, तो दिन भर अच्छी होगी। इस पहली बिक्री का शकुन किसी समय सब देशों में माना जाता था।

बोहनी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० बोह या बोवना] बोने की क्रिया। बोना। वपन करना।

बोहरा—संज्ञा पुं० [सं० व्यापार] व्यापार करनेवाली एक जाति। उ०—पहली हम होते छोहरा। कौड़ी बेच पेट निठि भरते अब तो हुए बोहरा।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१४।

विशेष—'राजपुताना का इतिहास', पृ० १४२१ में लिखा है कि 'कई ब्राह्मणों ने व्योपार और शिल्पकारी का कार्य करना आरंभ किया और जब पेशों के अनुसार जातियाँ बनने लगी तब शिल्प का कार्य करनेवाले ब्राह्मण 'खाती' और व्यापार करनेवाले ब्राह्मण 'बोहरा' कहलाने लगे।

बोहला‡—क्रि० अ० [हिं० बोह = (गोता) अथवा राज० वहला, बाहला] बहनेवाली अर्थात् नदी। उ०—लड़ जुड़ खग्गा बोहले मुरड़ चले राठौड़।—रा० रू०, पृ० १९२।

बोहारनहार—वि० [हिं० बोहरना + हार (प्रत्य०)] बुहारनेवाला। सफाई करनेवाला। उ०—ते वृषभानु भुआल के द्वार बोहारनहार।—नंद० ग्रं०, पृ० ७८।

बोहारना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'बुहारना'। उ०—अगर बोहारति अष्ट महासिधि द्वारे सथिया पूरति नौ निधि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३१।

बोहारी†—संज्ञा स्त्री० [देशी या हिं० बोहारना] झाड़ू। मार्जनी। वर्धनी।

बोहित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वोहित्थ, प्रा० वोहित्थ] नाव। जहाज। उ०—(क) बोहित भरी चला लै रानी। दान माँग सत देखी दानी।—जायसी (शब्द०)। (ख) बंदौ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।—तुलसी (शब्द०)।

बोहित्थ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० बोहित्थ, प्रा० बोहित्थ] दे० 'बोहित'। उ०—विष्णु स्वामि बोहित्थ सिंधु संसार पार करु। —भक्तमाल (श्री०), पृ० ३७५।

विशेष—हेमचंद्र ने इसे देशी माना है।

बोहिथ—संज्ञा पुं० [सं० बोहित्थ, प्रा० बोहित्थ, बोहिथ] दे० 'बोहित'। उ०–(क) तो सम न और तिहु लोक में, नट्ट भट्ट नाटिक्क नर। संसार पार बोहिथ समह तोहि मात देवी सुबर।—पृ० रा०, ६।१४८। (ख) को बोहिथ को खेवट आही। जिहि तिरिए सो लीजै चाही।—कबीर ग्रं०, पृ० २३४।

बोहिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय जो चीन में होती है। इसकी पत्तियाँ छोटी और काली होती है।

बोहोत†—वि० [हिं०] दे० 'बहुत'। उ०—सो तामस भक्त को श्रीठाकुर जी के प्रगट स्वरूप प्रति आसक्ति बोहोत रहत है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३।

बोहोरि†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'बहुरि'। उ०—बोहोरि एक दिन अर्द्ध रात्रि के समय श्रीगुसाईं जी बाहोत प्रसन्नता में बैठे हते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६४।

बौंड़†—संज्ञा स्त्री० [सं० वोण्ट (=वृत, टहनी)] १. टहनी जो दूर तक डोरी के रूप में गई हो। २. लता। बेल। उ०—नृपहि मोद सुनि सचिव सुभाखा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा।—तुलसी (शब्द०)।

बौंड़ना†—क्रि० अ० [हिं० बौंड़+ना (प्रत्य०)] लता की तरह बढ़ना। टहनी फेंकना। बढ़कर फैलना। उ०—(क) मूल मूल सुर बीथि तम तोम सुदल अधिकाई। नखत सुमन नभ बिटप बौंड़ि मनो छपा छिटकि छबि छाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राम बाहु बिटप बिसाल बौंड़ी देखियत जनक मनोरथ फलपबेलि फरी है।—तुलसी (शब्द०)।

बौंडर‡—संज्ञा पुं० [सं० वायुमण्डल, हिं० बवंडर] घूम घूमकर चलनेवाली वायु का झोंका। बगूला। उ०—उनहीं मैं मति भ्रमति है ह्वै बौंडर को पात।—मति० ग्रं०, पृ० ३२३। (ख) जहँ तहँ उड़े कीश भय पाए। यथा पात बौंडर के आए।—रघु० दा० (शब्द०)।

बौंड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बौंड़] १. पौधों या लताओं के वे कच्चे फल जो साररहित होते हैं। ढेंड़ी। ढोंड़। जैसे, मदार या सेमर की बौंड़ी। उ०—गए हैं बहर भूमि तहाँ कृष्ण भूमि आए करी बड़ी धूम आक बौंड़िन सों मारि कै।—प्रियादास (शब्द०)। †२. फली। छीमी।

बौंड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमड़ी] दमड़ी। छदाम। उ०—जाचै को नरेस देस देस को कलेस करैं देहैं तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िये।—तुलसी (शब्द०)।

बौआ‡—संज्ञा स्त्री० [सं० वधू, प्रा० बहू] परिवार की बड़ी बहू।

बौआना†—क्रि० [अ० सं० वायु, हिं० बाउ+आना (प्रत्य०)] १. सपने में कुछ कहना। स्वप्नावस्था का प्रलाप। २. पागल या बाई चढ़े मनुष्य की भाँति अट्ट सट्ट बक उठना। बर्राना। उ०—एकोहं बहुस्यामि मैं काहि लगा अज्ञान। को मुरख को पंडिता केहि कारण बौआन।—कबीर (शब्द०)।

बौखम‡—वि० [हिं०] दे० 'बौखल'।

बौखल—वि० [हिं० बाउ+सं० स्खलन] सनकी। पागल। उ०—वह बौखल सा आदमी, जो खपरैल में बैठा था न, उसने बहुत दिक किया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२७।

बौखलाना—क्रि अ० [हिं० बाउ+सं० स्खलन] १. कुछ कुछ पागल हो जाना। बहक जाना। सनक जाना। २. झल्लाकर या क्रुद्ध होकर कुछ कहना।

बौखलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० बौखल+आहट (प्रत्य०)] सनकीपन। पागलपन।

बौखा—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु+स्खलन] हवा का तेज झोंका जो वेग में आँधी से कम हो।

बौछाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु+क्षरित] १. वायु के झोंके से तिरछी आती हुई बूँदों का समूह। बूँदों की झड़ी जो हवा के झोंके के साथ कहीं जा पड़े। झटास।

क्रि० प्र०—आना।

२. वर्षा की बूँदों के समान किसी वस्तु का बहुत अधिक संख्या में कहीं आकर पड़ना। जैसे, फेंके हुए ढेलों की बौछाड़। ३. बहुत अधिक संख्या में लगातार किसी वस्तु का उपस्थित किया जाना। बहुत सा देते जाना या सामने रखते जाना। वर्षा। झड़ी। जैसे,—उस विवाह में उसने रुपयों की बौछाड़ कर दी। ४. लगातार बात पर बात, जो किसी से कही जाय। किसी के प्रति कहे हुए वाक्यों का तार। जैसे, गालियों की बौछाड़।

क्रि० प्र०—छूटना।—छोड़ना।—पड़ना।

५. प्रच्छन्न शब्दों में आक्षेप या उपहास। व्यंग्यपूर्ण वाक्य जो किसी को लक्ष्य करके कहा जाय। ताना। कटाक्ष। बोली ठोली।

क्रि० प्र०—करना।—छोड़ना।—मारना।—होना।

बौछार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बौछाड़'।

बौड़ना(पु)—क्रि० अ० [सं० वातुल] वातग्रस्त होना।

बौड़म—वि० [सं० वातुल] सनकी। अर्धविक्षिप्त। पागल सा।

बौड़मपन—संज्ञा पुं० [हिं० बौड़म+पन (प्रत्य०)] पागलपन। सनक। बौड़म होना। उ०—स्नेह के बौड़मपन में दाँतों को पीसता हुआ कहने लगा।—संन्यासी, पृ० १५५।

बौड़हा—वि० [सं० वातुल, हिं० बाउर+हा (प्रत्य०)] बावला। पागल।

बौत†—वि० [हिं० बहुत] दे० 'बहुत'।

बौता—संज्ञा पुं० [अ० ब्वाय+हिं० ता या टा (प्रत्य०)] जहाजों को किसी स्थान की सूचना देने के लिये पानी की सतह पर ठहराई हुई पीपे के आकार की वस्तु। समुद्र में तैरता हुआ निशान। तिरौदा। काती (लश०)।

बौद्ध[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० बौद्धी] १. बुद्ध द्वारा प्रचारित या बुद्ध संबंधी। जैसे, बौद्ध मत। २. बुद्धि या समझ संबंधी। बौद्धिक। दिमागी (को०)।

बौद्ध[2]—संज्ञा पुं० गौतम बुद्ध का अनुयायी।

बौद्धधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धर्म। गौतम बुद्ध का सिखाया मत।

विशेष—सबोधन (संबोधि) प्राप्त करने उपरांत शाक्य मुनि गया से काशी आए और वहाँ उन्होंने अपने साक्षात् किए हुए धर्ममार्ग का उपदेश आरंभ किया। 'आर्य सत्य' और 'द्वादश निदान' (या प्रतीत्यसमुत्पाद) के अंतर्गत उन्होंने अपने सिद्धांत की व्याख्या की है। आर्य सत्य के अंतर्गत ही प्रतिपद् या मार्ग है। इस नवीन मार्ग का नाम, जिसका साक्षात्कार गौतम को हुआ 'मध्यम प्रतिपदा' है। इस मध्यम मार्ग की व्याख्या भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार की है—'हे भिक्षुओ! परिव्राजक को इन दो अंतों का सेवन न करना चाहिए। वे दोनों अंत कौन हैं? पहला तो, काम या विषय में सुख के लिये अनुयोग करना। यह अंत अत्यंत हीन, ग्राम्य, अनार्य और अनर्थसंहित है। दूसरा है, शरीर को क्लेश देकर दुःख उठाना। यह भी अनार्य और अनर्थसंहित है। हे भिक्षुओ! तथागत ने (मैंने) इन दोनों अंतों को त्याग कर मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) को जाना है।'

मार्ग आर्य सत्यों में चौथा है। चार आर्य सत्य ये हैं—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और मार्ग। पहली बात तो यह है कि दुःख है। फिर, इस दुःख का कारण भी है। कारण है तृष्णा। यह तृष्णा इस प्रकार उत्पन्न होती है। मूल है अविद्या। अविद्या से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप, नामरूप से षडायतन (इंद्रियाँ और मन) षडायतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से भव, भव से जाति (जन्म), जाति या जन्म से जरामरण, इत्यादि। निदानों द्वारा इस प्रकार कारण मालूम हो जाने पर उसका निरोध आवश्यक है, यह जानना चाहिए। अंत में उस निरोध का जो मार्ग है, उसे भी जानना चाहिए। इसी मार्ग को निरोधगामिनी प्रतिपदा कहते हैं। यह मार्ग अष्टांग है। आठ अंग ये हैं—सम्यक्दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक्वाचा, सम्यक्कर्मांत, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति और सम्यक्समाधि।

बौद्ध मत के अनुसार कोई पदार्थ नित्य नहीं, सब क्षणिक हैं। नित्य चैतन्य कोई पदार्थ नहीं, सब विज्ञानमात्र है। बौद्ध अमर आत्मा नहीं मानते, पर कर्मवाद पर उनका बहुत जोर है। कर्म के शेष रहने से ही फिर जन्म के बंधन में पड़ना पड़ता है। यहाँ पर शंका हो सकती है कि जब शरीर के उपरांत आत्मा रहती ही नहीं, तब पुनर्जन्म किसका होता है। बौद्ध आचार्य इसका इस प्रकार समाधान करते हैं—मृत्यु के उपरांत उसके सब खंड—आत्मा इत्यादि सब—नष्ट हो जाते हैं; पर उसके कर्म के कारण फिर उन खंडों के स्थान पर नए नए खंड उत्पन्न हो जाते हैं और एक नया जीव उत्पन्न हो जाता है। इस नए और पुराने जीव में केवल कर्म-संबंध सूत्र रहता है; इसी से दोनों को एक कहा करते हैं।

बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ हैं—हीनयान और महायान। हीनयान बौद्ध मत का विशुद्ध और पुराना रूप है। महायान उसका अधिक विस्तृत रूप है, जिसके अंतर्गत बहुदेवोपासना और तंत्र की क्रियाएँ तक हैं। हीनयान का प्रचार बरमा, स्याम और सिंहल में है; और महायान का तिब्बत, मंगोलिया चीन, जापान, मंचूरिया आदि में है। इस प्रकार बौद्ध मत के माननेवाले अब भी पृथ्वी पर सबसे अधिक हैं।

बौद्धमत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बौद्ध धर्म'।

बौद्धिक—वि० [सं०] बुद्धि या ज्ञान से संबद्ध। दिमागी। उ०—वे युग की संदेहात्मक एवं बौद्धिक प्रवृत्ति से अछूते न बच सके।—हि० का० प्र०, पृ० १०३।

बौद्धिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धिक होने की स्थिति, भाव या क्रिया।

बौध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बुध का पुत्र पुरुरवा।

बौध(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० बौद्ध] दे० 'बौद्ध'। उ०—(क) जोगी जैन जंगम संन्यासी वनवासी बौध, और कोक भेष पक्ष सब भ्रम भाग्यो है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ३६६। (ख) बौध आते हैं, वैस्नव आते हैं।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६५।

बौधायन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र की रचना की थी।

बौन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वामन] दे० 'बौना'। उ०—ज्यों निरमल निसिनाथ कौं, हाथ पसारे बौन।—नंद० ग्रं०, पृ० १२४।

बौना[1]—संज्ञा पुं० [सं० वामन] [स्त्री० बौनी] बहुत छोटे डील का मनुष्य। बहुत छोटा आदमी जो देखने में, लड़के के समान जान पड़े, पर हो पूरी अवस्था का। अत्यंत ठिगना या नाटा मनुष्य। उ०—तहँ हौ कवन निपट मतिमंद। बौना पै पकरावौ चंद।—नंद० ग्रं०, पृ० २१६।

बौना[2]—वि० ठिगना। नाटा।

बौर[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुकुल, प्रा० मुउल] आम की मंजरी। मौर।

बौर(पु)[2]—[सं० वातुल, हिं० बाउर] बावला। बौड़म। उ०—(क) नाम रूप गुन भेद कै सो प्रगटित सब ठौर। ता बिनु तत्व जु आन कछु, कहै सो अति बड़ बौर।—अनेकार्थ०, पृ० २। (ख) अँखिया खोलि देखु अब दुनिया है रँग बौर।—गुलाल०, पृ०, १२।

बौर(पु)[3]—वि० [सं० भ्रमर, हिं० बँवर] समूह। झुंड। घेरा। उ०—अरिन बौर छुड़ै न कन्न मंडे दिलीय दिसि।—पृ० रा०, २५।७७६।

बौरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० बौरा] पागलपन। सनक।

बौरना—क्रि० अ० [हिं० बौर+ना (प्रत्य०)] आम के पेड़ में मंजरी निकलना। आम का फूलना। मोरना। उ०—(क) डहडही बौरी मंजु डारैं सहकारन की, चहचही चुहिल चहूँ कित अलीन की।—रसखानि (शब्द०)। (ख) दूजे करि डारी खरी बौरी बौरे आम।—विहारी (शब्द०)।

बौरहा†—वि० [हिं० बौरा+हा (प्रत्य०)] पागल। विक्षिप्त।

बौरा—वि० [सं० वातुल, प्रा० वाउड, हिं० बाउर] [स्त्री० बौरी] १. बावला। पागल। विक्षिप्त। सनकी। सिड़ी। जिसका मस्तिष्क ठीक न हो। उ०—मोर बौरा देखल केहु दहइ जात।—विद्यापति, पृ० ३६७। २ भोला। अज्ञान। नादान। मूर्ख। उ०—(क) हो ही बौरी विरह बस कै बौरो सब गाउँ।—विहारी (शब्द०)। (ख) हौं बौरी ढूँढ़न गई रही किनारे बैठ।—कबीर (शब्द०)। ३. गूँगा। मूक।

बौराई(पु)†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बौरा+ई (प्रत्य०)] पागलपन। उ०—सुनहु नाथ मन जरत त्रिविध ज्वर करत फिरत बौराई।—तुलसी (शब्द०)।

बौराई[2]—वि० स्त्री० [हिं० बौराना] बौर से भरी हुई। मंजरियों से पूर्ण।

बौराना[1]—क्रि० अ० [हिं० बौरा+ना (प्रत्य०)] १. पागल हो जाना। सनक जाना। विक्षिप्त हो जाना। उ०—कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ। उहिं खाए बौराइ नर इहिं पाए बौराइ।—विहारी र०, दो० १९२। २. उन्मत्त हो जाना। विवेक या बुद्धि से रहित हो जाना। उ०—भरतहि दोष देइ को जाए। जग बौराइ राजपद पाए।—तुलसी (शब्द०)।

बौराना[2]—क्रि० स० बेवकूफ बनाना। किसी को ऐसा कर देना कि वह भला बुरा न विचार सके। मति फेरना। उ०—(क) मथत सिंधु रुद्रहिं बौरायो। सुरन प्रेरि विषपान करायो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भल भूलिहु ठग के बौराए।—तुलसी (शब्द०)।

बौराह(पु)†—वि० [हिं० बौरा] १. बावला। पागल। सनकी। उ०—बर बौराह बरद असवारा।—तुलसी (शब्द०)। २. नासमझ।

बौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बौरा] बावली स्त्री। दे० 'बौरा'।

बौलड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० बहु+लड़] सिकड़ी के आकार का सिर पर पहनने का एक गहना।

बौलसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० बकुलश्री] बकुल। मौलसिरी। उ०—अपने कर गुहि आपु हठि पहिराई गर लाल। नौल सिरी औरे चढ़ी बौलसिरी की माल।—विहारी (शब्द०)।

बौलहल(पु)—वि० [देश०] बावला। उ०—तेरे जो न लेखो मोहि मारत परेखो महा जान घन आनंद पेखोइ बौलहल हैं।—घनानंद, पृ० ५४।

बौलाना†—क्रि० अ० [सं० व्यावर्तन] बीतना। समाप्त होना। उ०—बात हुई ग्रीषम बौलाई। उपर धुर बरखा रुत आई।—रा० रू०, पृ० २३४।

बौहु†—वि० [सं० बहु] बहुत। उ०—जोवन में मर जावणो दल खल साजै दाप। एह उचित बोह आवखो, सिंहाँ बड़ो सराप।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

बौहर—संज्ञा स्त्री० [सं० वधूवर, हिं० बहुवर] वधू। दुलहिन। पत्नी।

बौहला†—वि० [सं० बहुल] अधिक। बहुत। उ०—बोहलाँ पाटा बाँधणाँ, आछो होसी आव।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३४।

बौहलिया†—संज्ञा पु० [हिं० बहल] छोटी उम्र के बैल। छोटे बैल। उ०—बौहलिया बिरदावियाँ, गरज सरै नह तार।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४०।

बौहोटिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० वधू] वधू। बहू। बहूटी। उ०—गैल में टटवारी मिल्यो। बोल्यो—कै कोऐ, रामपरसादु का सी बोहोटिया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १००८।

ब्यंग—संज्ञा पु० [सं० व्यङ्ग्य] दे० 'व्यंग्य'।

ब्यंगि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्यङ्ग्य] दे० 'व्यंग'। उ०—प्रीतम कौं जब सागस लहै। व्यगि अव्यंगि वचन कछु कहै।—नंद० ग्रं०, पृ० १४७।

ब्यंजन—संज्ञा पु० [सं० व्यञ्जन] दे० 'व्यजन'। उ०—पेम सुरत की करी रसोई, ब्यजन आसन लाइय।—धरम० श०, पृ० ५५।

ब्यक्ति—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० व्यक्ति] दे० 'व्यक्ति'।

ब्यजन†—संज्ञा पुं० [सं० व्यजन] दे० 'व्यजन'।

ब्यतीतना(पु)—क्रि० स० [सं० व्यतीत+हिं० ना (प्रत्य०)] गुजर जाना। व्यतीत हो जाना। बीत जाना। उ०—(क) जबै दिवस दस पाँच ब्यतीते।—रघुराज (शब्द०)। (ख) एक समय दिन सात ब्यतीते।—रघुराज (शब्द०)। (ग) साधु प्रीतिवस मैं नहिं गयऊ। पहरा काल ब्यतीतत भयऊ।—रघुराज (शब्द०)।

ब्यथा—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यथा] दे० 'व्यथा'।

ब्यथित—वि० [सं० व्यथित] दे० 'व्यथित'।

ब्यलीक—वि० [सं० व्यलीक] दे० 'व्यलीक'।

ब्यवरना†(पु)—क्रि० अ० [सं० विवरण>हिं० ब्योरना] अलग अलग करना। विवृत करना। उ०—जैसे मधुमक्षिका सुवास कौं भ्रमर लेत तैसे ही ब्यवरि करि भिन्न भिन्न कीजिए।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४६६।

ब्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय] दे० 'व्यवसाय'।

ब्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यवस्था] दे० 'व्यवस्था'।

ब्यवहर†—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार] उधार। कर्ज।

क्रि० प्र०—देना।

ब्यवहरिया—संज्ञा पुं० [हिं० व्यवहार] व्यवहार या लेन देन करने-

वाला। महाजन। उ०—तब आनिय व्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मै थैली खोली।—तुलसी (शब्द०)।

व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार] १. दे० 'व्यवहार'। २. रुपए का लेन देन। ३. रुपए के लेन देन का संबंध। ४. सुख दुःख में परस्पर संमिलित होने का संबंध। इष्ट मित्र का संबंध। जैसे,—हमारा उनका व्यवहार नहीं है।

व्यवहारी—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहारिन्] [स्त्री० व्यवहारिणी] १. कार्यकर्ता। मामला करनेवाला। २. लेन देन करनेवाला। व्यापारी। ३. जिसके साथ प्रेम का व्यवहार हो। हितू या इष्ट मित्र। ४. जिसके साथ लेन देन हो।

व्यसन—संज्ञा पुं० [सं० व्यसन] दे० 'व्यसन'। उ०—आसा बसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं।—तुलसी (शब्द०)।

व्यसनी—वि० [सं० व्यसनिन्] दे० 'व्यसनी'।

ब्याउⓅ—संज्ञा पुं० [सं० विवाह] दे० 'ब्याह'। उ०—नाहिंन करिहौ ब्याउ, करौ जिनि लाड़ हमारो।—नंद० ग्रं०, पृ० १९५।

ब्याउर†—वि० [हिं० बिआना + आउर (प्रत्य०)] जनन करनेवाली। बच्चा देनेवाली। उ०—ब्याउर बेदन बाँझ न बूझै।—धरनी० बानी, पृ० २९।

ब्याकरनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० व्याकरण, प्रा० व्याकरन्न] दे० 'व्याकरण' उ०—व्याकरन कथा नाटक्क छंद।—पृ० रा०, १।३७१।

ब्याघरⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्र] दे० 'व्याघ्र'। उ०—(क) ब्याघर सिंघ सरप बहु काटी, बिन सत गुर पावे नहिं बाटी। कबीर० श०, भा० १ पृ० ५८। (ख) ब्याघर के घर पढ़े पुरानो दादुल भै गौ वक्ता।—संत० दरिया, पृ० १२७।

ब्याज—संज्ञा पुं० [सं० व्याज] १. दे० 'व्याज'। २. वृद्धि। सूद। उ०—(क) कलि का स्वामी लोभिया मनसा रहे बँधाय। देवे पैसा ब्याज को लेखा करत दिन जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—फैलाना।—लगाना।

यौ०—ब्याजखोर = सूदखोर। ब्याज बट्टा = हानि लाभ। नफा नुकसान।

ब्याजी—संज्ञा पुं० [सं० व्याजिन्] बहानेबाज। छली।—अनेकार्थ०, पृ० ४८।

ब्याजू—वि० [हिं० ब्याज] ब्याज पर दिया या लगाया हुआ (धन)। जैसे,—हमारे पास १०० रुपए थे, सो हमने ब्याजू दे दिए।

ब्याध—संज्ञा पुं० [सं० व्याध] दे० 'व्याध'।

ब्याधा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] दे० 'व्याधि'।

ब्याधा[2]—संज्ञा पुं० [सं० व्याध] दे० 'व्याध'।

ब्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] दे० 'व्याधि'।

ब्यान[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [फ़ा० बयान] बखान। वर्णन। बयान। पलक राम सुन ज्ञान, कहूँ ब्यान समझाइकै।—घट०, पृ० ३३०।

ब्यान†[2]—संज्ञा पुं० [सं० विजनन, हिं० बिश्रान] दे० 'बिश्रान'। उ०—भगवान ने चाहा, तो सौ रुपए इसी ब्यान में पीट लूँगा।—गोदान, पृ० ५।

ब्याना[1]—क्रि० स० [सं० वीज, हिं० बिया + ना (प्रत्य०)] जनना। उत्पन्न करना। पैदा करना। गर्भ से निकालना। जैसे, गाय का बछड़ा ब्याना।

ब्याना[2]—क्रि० अ० बच्चा देना। जनना।

ब्यापक, ब्यापकुⓅ—वि० [सं० व्यापक] दे० 'व्यापक'। उ०—ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी।—मानस, १।२३।

ब्यापनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० व्यापन] १. किसी वस्तु या स्थान में इस प्रकार फैलाना कि उसका कोई अंश बाकी न रह जाय। ओत प्रोत होना। किसी स्थान में भर जाना। कोई जगह छेक लेना। २. चारो ओर जाना। फैलना। उ०—मुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद। छन महँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संवाद।—तुलसी (शब्द०)। ३. घेरना। ग्रसना। उ०—जरा अबहिं तोहि ब्यापै आई। भयेउ वृद्ध तब कह्यो सिर नाई।—सूर (शब्द०)। ४. प्रभाव करना। असर करना। उ०—(क) चिंता साँपिन को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गुरु मिला तब जानिए मिटे मोह तन ताप। हरष शोक ब्यापै नहीं तब हरि आपै आप।—कबीर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

ब्यापार—संज्ञा पुं० [सं० व्यापार] दे० 'व्यापार'।

ब्यापारी—संज्ञा पुं० [सं० व्यापारिन्] दे० 'व्यापारी'।

ब्यापितⓅ—वि० [सं० व्याप्त] दे० 'व्याप्त'। उ०—जल थल औ पवन पानी ब्यापित है सोय।—जग० बानी, पृ० ३३।

ब्यार—संज्ञा स्त्री० [हिं० बयार] वायु। बयार। उ०—(क) आगे आगे धाय धाय बादर बरखत जाय, ब्यारन तें जलकन ठौर ठौर छिरकायौ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७३। (ख) चौबेजी—हा ब्यार ते कहूँ पहार उड़े हैं।—श्रीनिवास ग्रं० पृ० ४८।

ब्यारि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बयार] दे० 'बयार'। उ०—नैंक हँसि के ब्यारि हलावौ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१३।

ब्यारी—संज्ञा स्त्री० [सं० विहार ? या वि (विशिष्ट) + आहार] १. रात का भोजन। ब्यालू। उ०—एक दिन हरि ब्यारी करवाई। पूजक बीरी दियो न जाई।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—रात दिन दस बजाकर ब्यारी करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८१।

२. वह भोजन जो रात के लिये हो। जैसे,—मेरे लिये ब्यारी नहीं लाओ।

ब्याह्—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विहार] दे॰ 'बयारू'। उ०—पाले ब्यारू कराई के भगवद्वार्ता करि फेरि सेन कियो।—दो सौ बावन॰ भा॰ २, पृ० ४७।

ब्याल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्याल] १. दे॰ 'व्याल'। २. दुष्ट या क्रूर नर। ३. दिनांत। दिवस का अवसान।—अनेकार्थ॰, पृ० १४६।

ब्यालिस—संज्ञा पुं॰, वि॰ [हिं॰ बयालिस] दे॰ 'बयालिस'।

ब्याली[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ व्याली] सर्पिणी। साँपिन। नागिन। उ०—रम पुनरी इव सब दिन पाली। निरगत रहित सदा मणि ब्याली।—रघु॰ दा॰ (शब्द॰)।

ब्याली[2]—वि॰ [सं॰ व्यालिन्] सर्पों को धारण करनेवाला। शिव। उ०—निरगुण निलज कुवेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।—तुलसी (शब्द॰)।

ब्याली[3]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ब्यारी] रात का भोजन। ब्यारू। उ०—मुद्गादाली, घृत की ब्याली। रस के कंदर सुंदर साली।—नंद॰ ग्रं॰, पृ० ३०६।

ब्यालू—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विहार ?] वह भोजन जो सायंकाल के समय किया जाता है। रात का खाना। रात का भोजन। ब्यारी। उ०—महाराज इधर आय परमानंद से ब्यालू कर सोये।—लल्लू (शब्द॰)।

ब्यावौ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्याह] विवाह। शादी। उ०—राजा को छिताणै सावरा के ब्याव कीजूँ। चारण भाट जोसी ने बगोयो ब्याव दीजूँ।—शिखर॰, पृ० ११०।

ब्याह—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विवाह] देश, काल और जाति के नियमानुसार वह रीति या रस्म जिससे स्त्री और पुरुष में पति पत्नी का संबंध स्थापित होता है। विवाह। विशेष दे॰ 'विवाह'। उ०—(क) पहले ब्याह बहु नहीं ठाढ़ा भक्ति न जान। ब्याह माढ़े आरसी बैसा नैना माने।—कबीर (शब्द॰)। (ख) हिय हिमसेल सुता सिव ब्याहू। सिखिहि सुरन प्रभु जनम उछाहू।—तुलसी (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

पर्या॰—विवाह। उपयम। परिणय। उद्वाह। उपयाम। पाणिपीड़न। पाणिग्रहण। दारकर्म।

ब्याहता[1]—वि॰ स्त्री॰ [सं॰ विवाहिता] जिसके साथ विवाह हुआ हो। जैसे, ब्याहता औरत।

ब्याहता[2]—संज्ञा पुं॰ पति।

ब्याहना—क्रि॰ स॰ [सं॰ विवाह + हिं॰ ना (प्रत्य॰)] [वि॰ ब्याहता] १. देश, काल और जाति की रीति के अनुसार पुरुष का किसी स्त्री को अपनी पत्नी या स्त्री का किसी पुरुष को अपना पति बनाना। उ०—प्राण प्रीति सब वारन चाह कहूँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] — [illegible] [illegible]।

संयो॰ क्रि॰—लेना। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को धाय।—सूर ([illegible])।

२. किसी का किसी के साथ [illegible] कर देना। जैसे,—उसने उनको अपनी लड़की ब्याह दी।

संयो॰ क्रि॰—डालना।—देना।

ब्याहुला—वि॰ [हिं॰ ब्याह + ऊला (प्रत्य॰)] [illegible] विवाह का। वैवाहिक। जैसे, ब्याहुले गीत।

ब्यूहार†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्यवहार] [illegible] उ०—[illegible] [illegible] ब्यूहार, [illegible] [illegible] [illegible]।—[illegible], पृ० ६८।

ब्यूँगा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है पर इसका [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

ब्योंच—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विमर्द ? या विमोच] [illegible] स्थान से हटना। मोच। मुरकी।

ब्योंचना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ विकुंचन, प्रा॰ विउंचण] १. हाथ, पैर, उँगली, गरदन आदि किसी अंग के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जिसके कारण पीड़ा और सूजन होती है। मुरकना। जैसे, पैर ब्योंचना। २. किसी अंग का [illegible] [illegible] मुड़ जाना जिससे पीड़ा हो।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

ब्योंची†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ब्योंचना] [illegible] [illegible]।

ब्योंत—संज्ञा स्त्री॰, पुं॰ [सं॰ व्यवस्था या व्यवस्थित प्रा॰ वेवत्थ] १. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (शब्द॰)। २. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ३. [illegible] [illegible] उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] ([illegible])। ४. [illegible] [illegible] [illegible] किसी काम को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करने की [illegible] [illegible]।

मुहा॰—ब्योंत बाँधना [illegible] [illegible] ब्योंत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देते (शब्द॰)।

५. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] — [illegible] (शब्द॰)। ६. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

जैसे—तुमने अपनी ब्योंत तो कर ली; और किसी को चाहे मिले या न मिले।

क्रि० प्र०—करना।—बैठाना।

मुहा०—ब्योंत खाना = ठीक इंतजाम बैठना। व्यवस्था अनुकूल पड़ना। ब्योंत फैलना = दे० 'ब्योंत खाना'।

७. प्राप्त सामग्री से कार्य के साधन की व्यवस्था। काम पूरा उतारने का हिसाब किताब। जैसे,—कपड़ा तो कम है, पूरे की ब्योंत कैसे करें ?

मुहा०—ब्योंत खाना = पूरा हिसाब किताब बैठना। ब्योंत फैलना = दे० 'ब्योंत खाना'।

८. साधन या सामग्री की सीमा। समाई। जैसे,—जहाँ तक ब्योंत होगा, वहीं तक न खर्च करेंगे। ९. पहनावा बनाने के लिये कपड़े की काट छाँट। तराश। किता।

यौ०—कतरब्योंत।

ब्योँतना—क्रि० स० [हिं० ब्योंत] १. कोई पहनावा बनाने के लिये कपड़े को नापकर काटना छाँटना। नाप से कतरना। उ०—(क) मोटो एक थान आयो राख्यो है बिछाइ के। लावो बेगि याही क्षण मन की प्रवीन जानि, लायो दुख आनि ब्योंति लई है सियाइ के।—प्रिया (शब्द०)। (ख) कह्यो न काहू को करै बहुरि बहुरि अरै एक ही पाइँ दै पग पकरि पछारयो। सूर स्वामी अति रिस भीम की भुजा कै मिस ब्योंतत बसन जिमि तासु तन फारयो।—सूर०, १०।४२१७। (ग) दरजी किते तिते घन गरजी। ब्योंतहि पटु पट जिमि नृप मरजी।—गोपाल (शब्द०)। (२) मारना। काटना। मार डालना। (बाजारी)।

ब्योँताना—क्रि० स० [हिं० ब्योंतना का प्रेरणा०] दरजी से नाप के अनुसार कपड़ा कटाना।

ब्योपार—संज्ञा पुं० [सं० व्यापार] दे० 'व्यापार'।

ब्योपारी—संज्ञा पुं० [सं० व्यापारिन्] दे० 'व्यापारी'।

ब्योरना—क्रि० स० [सं० विवरण] १. गुथे या उलझे हुए बालों को अलग अलग करना। उ०—बेई कर ब्योरहि कहै ब्योरो कर न बिचार। जिनही उरझो मों हियो तिनही सुरझे बार।—बिहारी (शब्द०)। २. सूत या तागे के रूप की उलझी हुई वस्तुओं के तार तार अलग अलग करना।

ब्योरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ब्योरा] दे० 'ब्योरनि'।

ब्योरा—संज्ञा पुं० [सं० विवरण, हिं० ब्योरना] १. किसी घटना के अंतर्गत एक एक बात का उल्लेख या कथन। विवरण। तफसील। उ०—एक लड़के ने पेड़ गिरने का ब्योरा ज्यों त्यों कहा।—लल्लू (शब्द०)।

यौ०—ब्योरेवार=एक एक बात के उल्लेख के साथ। सविस्तर। विस्तार के साथ।

२. किसी विषय का अंग प्रत्यंग। किसी एक विषय के भीतर की सारी बात। किसी बात को पूरा करनेवाला एक एक खंड। जैसे,—(क) सब १०० रुपया खर्च हुआ जिसका ब्योरा नीचे लिखा है। (ख) उसके स्वरूप में इस प्रकार तल्लीन होना पड़ता है। एक एक ब्योरे पर ध्यान जाय।—रस०, पृ० १२०।

यौ०—ब्योरेवार।

३. वृत्त। वृत्तांत। हाल। समाचार। उ०—उसने वहाँ का सब ब्योरा कह सुनाया।—लल्लू (शब्द०)।

ब्योसाय—संज्ञा पुं० [सं० व्यवसाय] दे० 'व्यवसाय'।

ब्योहर—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार] लेन देन का व्यापार। रुपया ऋण देना। उ०—ऋण में निपुण, व्याज लेने में निपुण, भए ब्योहार निपुण, स्वर्ग कौड़ी की कमाई है।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—ब्योहर चलाना = सूद पर रुपया देना। महाजनी करना।

ब्योहरा—संज्ञा पुं० [हिं० ब्योहार] सूद पर रुपया देनेवाला। हुंडी चलानेवाला।

ब्योहरिया—संज्ञा पुं० [सं० व्यवहार] सूद पर रुपए के लेन देन का व्यापार करनेवाला। महाजनी करनेवाला। उ०—जेहि ब्योहरिया कर ब्योहारू। का लेइ देब जो छेंकिहि बारू।—जायसी ग्रं०, पृ० २०।

ब्योहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'व्यवहार'। उ०—यह उरले ब्योहार दूर दुरमति धरो।—कबीर श०, भा० ४, पृ० १।

ब्योहारी—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० ब्योहार] दे० 'ब्योहारा', ब्योहरिया'। उ०—कागद लिखै सो कागदी, की ब्योहारी जीव।—कबीर सा० सं०, पृ० ८५।

ब्यौँत—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० व्यवस्था] दे० 'ब्योंत'।

ब्यौँतना—क्रि० स० [हिं० ब्यौंत] दे० 'ब्योंतना'। उ०—ज्यों कपरा दरजी गही ब्यौंतत काष्टहि को बढ़ई कसि आनै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ३८६।

ब्यौछार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बौछार] दे० 'बौछार'। उ०—चहुँ दिसि टपकन लागी बूँदै। ब्यौछारन बिजब भीजेंगो, द्वार पिछोरी मूँदै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६०।

ब्यौपार†—संज्ञा पु० [हिं० ब्योपार] दे० 'व्यापार'। उ०—और जो कोई वैष्णव चाकरी न करतो ता को अपनी गोठि तें द्रव्य दै कै ब्यौपार करावतें।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २३५।

ब्यौरन, ब्यौरनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० विवरण, हिं० ब्योरा, ब्यौरा] बालों को सँवारने की क्रिया या ढंग। बाल सँवारने की रीति। उ०—वेई कर, ब्यौरनि वहै ब्यौरो कौन बिचार। जिनहीं उरभयो मो हियो तिनही सुरझे बार।—बिहारी र०, दो० ४३६।

ब्यौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० ब्योरा] विवरण। लेखा जोखा। हिसाब।

उ०—पाप पुन्य का ब्यौरा मांगै। कागद निकसै तेरे आगे —सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३३५।

ब्यौहर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ब्योहार'।

ब्यौहरिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ब्योहरिया'। उ०—अब आनिय ब्यौहरिया बोली। तुरत देऊँ मैं थैली खोली।—तुलसी (शब्द०)।

ब्यौहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ब्योहार'। उ०—जेहि ब्यौहरिया कर ब्यौहारू। का लेइ देब जो छेकहि बारू।—जायसी (शब्द०)।

ब्यौहारी†—संज्ञा पुं० [हिं० ब्योहारी] दे० 'ब्योहरिया'। उ०—ये तो गुरु जगत ब्योहारी। इनसे मुक्ति न होइ बिचारी।—घट०, पृ० २५२।

ब्रंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वृन्द] वृंद। समूह। उ०—बने ब्रंद पथ्थं, पथे पथ्थ हथ्थं।—पृ० रा०, २।४४१।

ब्रंदावन†—संज्ञा पुं० [सं० वृन्दावन] दे० 'वृंदावन'। उ०—ब्रदावन वैशाख पर, सोहे जान ससोह।—रा० रू०, पृ० ३४७।

ब्रज—संज्ञा पुं० [सं० व्रज] दे० 'व्रज'।

यौ०—ब्रजनाथ। ब्रजभाषा। ब्रजमंडल। ब्रजराज। ब्रजलाल= दे० 'व्रज' शब्द के क्रम में।

ब्रजगाम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० व्रज + ग्राम] व्रज। उ०—बैर कियो सिगरे ब्रजगाम सों, जाके लिये कुलकानि गँवाई।—मति० ग्रं०, पृ० ३००।

ब्रजधीस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० व्रज + अधीश] व्रज के राजा। ब्रजराज। उ०—जो कछु लघुता करत हौ सो असीम है ईस। फिरि यह मों पायन परन अति अनुचित ब्रजधीस।—मोहन०, पृ० ५६।

ब्रजना(पु)—क्रि० अ० [सं० व्रजन] जाना। चलना। गमन करना। उ०—(क) ब्रजति ब्रजेस के निवेस 'भुवनेस' बेस, चक्षुकृत चकृत विवकृत भृकुटि वंक।—भुवनेश (शब्द०)। (ख) अब न ब्रजहु ब्रज में ब्रज प्यारे।—रघुराज (शब्द०)। (ग) षोड़स कला कृष्ण सुखसारा। द्वादश कला राम अवतारा। षोड़स तजि द्वादश कस भजहू। समाधान करु नहिं घर ब्रजहू।—रघुराज (शब्द०)

ब्रजवादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० व्रज + बादनी ?] एक प्रकार का आम जिसका पेड़ लता के रूप का होता है। इसे राजवल्ली भी कहते हैं।

ब्रजवासी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० व्रज + वासिन्] [स्त्री० ब्रज-वासिनी] व्रज ग्राम का निवासी। उ०—ऐसे कहिके वा ब्रजवासिनी ने श्रीगोवर्धननाथ जी को सुद्ध भाव सों बाहोत ही प्रार्थना करिकै दंडवत करि कही।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३।

ब्रजबूली‡—संज्ञा स्त्री० [सं० व्रज+ बंग० बुलि (=बोली, भाषा)] ब्रज की बोली। उ०—यह इसी से जाना जा सकता है कि वहाँ ब्रजबूली का अलग साहित्य ही बन गया है।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ८७।

ब्रध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. वृक्षमूल। ३. अर्क। आक का पौधा। ४. शिव। ५. दिन। ६. घोड़ा। ७. मार्कंडेय पुराण के अनुसार चौदहवें मनु भौत्य के पुत्र का नाम। ८. एक रोग। ९. ब्रह्मा (को०)। १०. सीसा धातु (को०)। ११. तीर या बाण का नुकीला अगला हिस्सा (को०)।

ब्रन्न(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वर्ण, प्रा० ब्रन्न] दे० 'वर्ण'। उ०—बिय ब्रन्न उप्पम देखि। कंचन कसोटिय रेखि।—पृ० रा०, २।३१०।

ब्रन्नना(पु)†—क्रि० स० [सं० वर्णन; प्रा० ब्रन्नन] वर्णन करना। बरनना। उ०—(क) कान धरो रसना सरस ब्रन्नि दिखाऊँ तोहि।—पृ० रा०, १।७८३। (ख) तिन कहौं नाम परिमान ब्रन्न। जिन सुनत सुद्ध भव होत तन्न।—पृ० रा०, १।३११।

ब्रम्मा‡—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मन्, प्रा० बंभ, बम्ह] दे० 'ब्रह्मा'। उ०—बैरागर हीरा हुए कुलवंतिया सपूत। सीपै मोती नीपजै सब ब्रम्मा रा सूत।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ६६।

ब्रष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वर्ष, प्रा० ब्रष्प] वर्ष। बरिस। उ०—घरी दीह पल पष्प मास लष्षिय ब्रष तासह।—पृ० रा०, १।७१७।

ब्रह्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म] १. ईश्वर। परमात्मा। उ०—ज दिन जनम प्रथिराज भौ त दिन भार धर उत्तरिय। वतरीय बंस असन ब्रहम रही जुगं जुग बत्तरिय।—पृ० रा०, १।६८८। २. द्विज। ब्राह्मण। उ०—जग लोकवाण सीखै जवन, पढै ब्रहम मुख पारसी। हित देव सेव आघा हुआ, काई लगा आरसी।—रा० रू०, पृ० २२।

ब्रह्मंड—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्माण्ड, प्रा० ब्रम्हंड] दे० 'ब्रह्मांड'। उ०—धनुभंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को।—केशव (शब्द०)।

ब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मन्] १. एक मात्र नित्य चेतन सत्ता जो जगत् का कारण है। सत्, चित्, आनंद स्वरूप तत्व जिसके अतिरिक्त और जो कुछ प्रतीत होता है, सब असत्य और मिथ्या है।

विशेष—ब्रह्म जगत् का कारण है, यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। ब्रह्म सच्चिदानद अखंड नित्य निर्गुण अद्वितीय इत्यादि है। यह उसका स्वरूपलक्षण है। जगत् का कारण होने पर भी जैसी कि सांख्य की प्रकृति या वैशेषिक का परमाणु है, उस प्रकार ब्रह्म परिणामी या आरंभक नहीं। वह जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान-विवर्ति कारण है, जैसे मकड़ी, जो जाले का निमित्त और उपादान दोनों कही जा सकती है। सारांश यह कि जगत् ब्रह्म का परिणाम या विकार नहीं है, विवर्त है। किसी वस्तु का कुछ और हो जाना विकार या परिणाम है। उसका और कुछ प्रतीत होना विवर्त है। जैसे, दूध का दही हो जाना विकार

है, रस्सी का साँप प्रतीत होना विवर्त है। यह जगत् ब्रह्म का विवर्त है, अतः मिथ्या या भ्रम रूप है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ सत्य नही है। और जो कुछ दिखाई पडता है, उसकी पारिमार्थिक सत्ता नही है। चैतन्य आत्मवस्तु के अतिरिक्त और किसी वस्तु की सत्ता न स्वगत भेद के रूप मे, न सजातीय भेद के रूप में और न विजातीय भेद के रूप में सिद्ध हो सकती है। अतः शुद्ध अद्वैत दृष्टि मे जीवात्मा ब्रह्म का अंश (स्वगत भेद) नही है, अपने को परिच्छिन्न और मायाविशिष्ट समझता हुआ ब्रह्म ही है। सत् पदार्थ केवल एक ही हो सकता है। दो सत् पदार्थ मानने से दोनों को देश या काल से परिच्छिन्न मानना पड़ेगा। नाम और रूप की उत्पत्ति का नाम ही सृष्टि है। नाम और रूप ब्रह्म के अवयव नही, क्योकि वह तीनो प्रकार के भेदो से रहित है। अतः अद्वैत ज्ञान ही सत्य ज्ञान है। द्वैत या नानात्व ज्ञान अज्ञान है, भ्रम है। 'ब्रह्म' का सम्यक् निरूपण करनेवाले आदिग्रंथ उपनिषद् हैं। उनमें 'नेति' 'नेति' (यह नही, यह नहीं) कहकर ब्रह्म प्रपंचो से परे कहा गया है। 'तत्त्वमसि' इस वाक्य द्वारा आत्मा और ब्रह्म का अभेद व्यंजित किया गया है। ब्रह्मसंबंधी इस ज्ञान का प्राचीन नाम ब्रह्मविद्या है, जिसका उपदेश उपनिषदों में स्थान स्थान पर है। पीछे ब्रह्मतत्व का व्यवस्थित रूप मे प्रतिपादन व्यास द्वारा ब्रह्मसूत्र मे हुआ, जो वेदांत दर्शन का आधार हुआ। दे० 'वेदांत'।

२. ईश्वर। परमात्मा। ३. आत्मा। चैतन्य। जैसे,—जैसा तुम्हारा ब्रह्म कहे, वैसा करो। ४. ब्राह्मण (विशेषतः समस्तपदों में प्राप्त)। जैसे ब्रह्मद्रोही, ब्रह्महत्या। उ०—चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई।—तुलसी (शब्द०)। ५. ब्रह्मा (अधिकतर समास में)। जैसे, ब्रह्मसुता, ब्रह्मकन्यका। उ०—(क) मोर बचन सबके मनमाना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना।—मानस, १।१८५। (ख) ब्रह्म रचै पुरुषोतम पोसत संकर सृष्टि सँहारन हारे।—भूषण ग्रं०, पृ० ५१। ६. ब्राह्मण जो मरकर प्रेत हुआ हो। ब्राह्मण भूत। ब्रह्मराक्षस।

मुहा०—ब्रह्म लगना = किसी के ऊपर ब्राह्मण प्रेत का अधिकार होना। उ०—तासु सुता रहि सुछवि विशाला। ताहि लग्यो इक ब्रह्म कराला।—रघुराज (शब्द०)।

७. वेद। ८. एक की संख्या। ९. फलित ज्योतिष में २७ योगों मे से पचीसवाँ योग जो सब कार्यो के लिये शुभ कहा गया है। १०. संगीत में ताल के चार भेदो मे से एक (को०)। १२. ब्राह्मणत्व (को०)। १३. प्रणव। ओंकार (को०)। १४. सत्य (को०)। १५. धन (को०)। १६. भोजन (को०)।

ब्रह्मकन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मा की कन्या, सरस्वती। २. भारंगी नाम की बूटी जो दवा के काम में आती है। ब्राह्मी बूटी।

ब्रह्मकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ब्रह्मकन्यका'।

ब्रह्मकर्म—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मकर्मन्] १. वेदविहित कर्म। २. ब्राह्मण का कर्म।

ब्रह्मकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाक्षायनी।

ब्रह्मकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा के तुल्य। २. उतना समय जितने में एक ब्रह्मा रहते हैं।

ब्रह्मकांड—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मकाण्ड] वेद का वह भाग जिसमे ब्रह्म की मीमांसा की गई है और जो कर्मकांड से भिन्न है। ज्ञानकाड। अध्यात्म।

ब्रह्मकाय—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष जाति के देवता।

ब्रह्मकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तूत का पेड़। शहतूत।

ब्रह्मकुशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

ब्रह्मकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पर्वत का नाम। २. ब्रह्म का ज्ञाता, ब्राह्मण [को०]।

ब्रह्मकूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] रजस्वला के स्पर्श या इसी प्रकार की और अशुद्धि दूर करने के लिये एक व्रत जिसमें एक दिन निराहार रहकर दूसरे दिन पंचगव्य पिया जाता है।

ब्रह्मकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो प्रार्थना करता है। २. विष्णु [को०]।

ब्रह्मकोश—संज्ञा पुं० [सं०] वेद [को०]।

ब्रह्मकोशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

ब्रह्मक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु पुराण के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय से उत्पन्न एक जाति।

ब्रह्मगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्ति। नजात।

ब्रह्मगाँठ—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्मग्रन्थि] जनेऊ की गाँठ।

ब्रह्मगायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गायत्री मंत्र जो ब्रह्मा से संबद्ध है और जो गायत्री मंत्र के आधार पर रचित है [को०]।

ब्रह्मगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। इसे ब्रह्मकूट भी कहते हैं।

ब्रह्मगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा का उपदेश जो इस नाम से महाभारत के अनुशासन पर्व मे सकलित है।

ब्रह्मगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रख्यात ज्योतिर्विद् जो ईसा की छठी शती (ई० ५९८) मे हुए थे [को०]।

ब्रह्मगोल—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मांड।

ब्रह्मग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्मग्रन्थि] यज्ञोपवीत या जनेऊ की मुख्य गाँठ।

ब्रह्मग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मराक्षस।

ब्रह्मघातक—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण की हत्या करनेवाला।

ब्रह्मघातिनी—वि० स्त्री० [सं० ब्रह्मघातिन्] १. ब्राह्मण को मारनेवाली। २. रजस्वला होने के दूसरे दिन की संज्ञा (छूत के विचार से)।

ब्रह्मघाती—वि० [सं० ब्रह्मघातिन्] [स्त्री० ब्रह्मघातिनी] ब्राह्मण का मार डालनेवाला। ब्रह्महत्या करनेवाला।

ब्रह्मघोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदध्वनि। २. वेदपाठ। उ०— भाँति भाँति कहाँ कहाँ लगि बाटिका बहुधा भली। ब्रह्मघोष घने तहाँ जनु है गिरा बन की थली।—(शब्द०)।

ब्रह्मघ्न—वि० [सं०] दे० 'ब्रह्मघाती' [को०]।

ब्रह्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] संसारचक्र। (उपनिषद्)।

ब्रह्मचर—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म (=ब्राह्मण)+चर (=भोजन)] वह माफी जमीन जो ब्राह्मण को पूजा आदि करने मे दी जाय।

ब्रह्मचरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मचर्य] दे० 'ब्रह्मचर्य'। उ०—ब्रह्मचरज व्रत रत मतिधीरा। तुम्हहिं कि करइ मनोभव पीरा।—मानस, १।१२६।

ब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. योग में एक प्रकार का यम। वीर्य को रक्षित रखने का प्रतिबंध। मैथुन से बचने की साधना।

विशेष—शुक्र धातु को विचलित न होने देने से मन और बुद्धि की शक्ति बहुत बढ़ती है और चित्त की चंचलता नष्ट होती है।

२. चार आश्रमों में पहला आश्रम। आयु या जीवन के कर्तव्यानुसार चार विभागों में से प्रथम विभाग जिसमें पुरुष को स्त्रीसंभोग आदि व्यसनों से दूर रहकर अध्ययन में लगा रहना चाहिए।

विशेष—प्राचीन काल में उपनयन संस्कार के उपरांत बालक इस आश्रम में प्रवेश करता था और आचार्य के यहाँ रहकर वेदशास्त्र का अध्ययन करता था। ब्रह्मचारी के लिये मद्य-मांस-ग्रहण, गंधद्रव्य सेवन, स्वादिष्ट और मधुर वस्तुओं का खाना, स्त्रीप्रसंग करना, नृत्यगीतादि देखना सुनना, सारांश यह कि सब प्रकार के व्यसन निषिद्ध थे। उसे अच्छे गृहस्थ के यहाँ से भिक्षा लेना और आचार्य के लिये आवश्यक वस्तुओं को जुटाना पड़ता था। भिक्षा माँगने में गुरु का कुल, अपना कुल और नाना का कुल बचाना पड़ता था। पर यदि भिक्षा योग्य कोई गृहस्थ न मिलता तो वह नाना-मामा के कुल से माँगना आरंभ कर सकता था। नित्य समिधकाष्ठ वन से लाकर प्रातः सायं होम करना होता था। यह होम यदि छूट जाता तो अवकीर्णी प्रायश्चित्त करना पड़ता था। ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिये एकांतभोजन आवश्यक होता था, पर क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारी के लिये नहीं। ब्रह्मचारी के लिये भिक्षा के समय आदि को छोड़ सदा आचार्य के सामने रहना कर्तव्य था। आचार्य न हों तो आचार्य पुत्र के पास वह भी न हो तो अग्निहोत्र की अग्नि के पास रहना होता था।

ब्रह्मचर्य दो प्रकार का कहा गया है—एक उपकुर्वाण जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पूर्व सब द्विजों का कर्तव्य है, दूसरा नैष्ठिक जो आजीवन रहता है।

ब्रह्मचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाली स्त्री। २. दुर्गा। पार्वती। गौरी। ३. सरस्वती। ४. भारंगी बूटी।

ब्रह्मचारी—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मचारिन्] [स्त्री० ब्रह्मचारिणी] १. ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाला। २. ब्रह्मचर्य आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति। स्त्रीसंसर्ग आदि व्यसनों से दूर रहकर पहले आश्रम में विद्याध्ययन करनेवाला पुरुष। प्रथमाश्रमी।

ब्रह्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिरण्यगर्भ। २. ब्रह्मा। ३. ब्रह्म से उत्पन्न जगत्।

ब्रह्मजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दौने का पौधा। दमनक।

ब्रह्मजटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ब्रह्मजटा'।

ब्रह्मजन्म—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मजन्मन्] उपनयन संस्कार।

ब्रह्मजार—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मणी का उपपति। २. इंद्र।

ब्रह्मजिज्ञासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्म को जानने की उत्कट इच्छा। ब्रह्मज्ञान के निमित्त तत्वमीमांसा विषयक प्रश्न [को०]।

ब्रह्मजीवी—वि० [सं० ब्रह्मजीविन्] श्रौत आदि कर्म कराकर जीविका चलानेवाला।

ब्रह्मज्ञ—वि० [सं०] ब्रह्म को जाननेवाला। वेदांत का तत्व समझनेवाला। ज्ञानी।

ब्रह्मज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म का बोध। पारमार्थिक सत्ता का बोध। दृश्य जगत् के मिथ्यात्व का निश्चय और एकमात्र शुद्ध निर्गुण चैतन्य की जानकारी। अद्वैत सिद्धांत का बोध। उ०—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।—मानस, ७।९९।

ब्रह्मज्ञानी—वि० [सं० ब्रह्मज्ञानिन्] परमार्थ तत्व का बोध रखनेवाला। अद्वैतवादी।

ब्रह्मण्य[1]—वि० [सं०] १. ब्राह्मणनिष्ठ। ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखनेवाला। २. ब्रह्म या ब्रह्मा संबंधी।

ब्रह्मण्य[2]—संज्ञा पुं० १. तून का पेड़। शहतूत। २. वेद में पूर्णतः निष्णात व्यक्ति (को०)। ३. ताल वृक्ष (को०)। ४. मूँज नामक घास (को०)। ५. शनि (को०)। ६. विष्णु (को०)। ७. कार्तिकेय (को०)।

ब्रह्मण्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मण्य होने का भाव या क्रिया। उ०—तुम्हारे व्रत की तथा ब्रह्मण्यता की सचाई देखी।—भक्तमाल०, पृ० ५००।

ब्रह्मण्यदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। नारायण। २. वह जो ब्राह्मण का देवता के सदृश समादर करता हो। उ०—प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना। मोहि हित पिता तजे भगवाना।—तुलसी (शब्द०)।

ब्रह्मण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

ब्रह्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ब्रह्मत्व'।

ब्रह्मताल—संज्ञा पुं० [सं०] १४ मात्राओं का ताल। इसमें १० आघात और ४ खाली रहते हैं।

ब्रह्मतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में वर्णित नर्मदा के तट पर एक प्राचीन तीर्थ।

ब्रह्मतेज—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म का प्रकाश या ज्योति। २. ब्रह्मचर्य, ब्रह्मज्ञान या ब्राह्मण का तेज [को०]।

ब्रह्मत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुद्ध ब्रह्म भाव । २. ब्राह्मणत्व । ३. ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होने का भाव या धर्म ।

ब्रह्मदंड—संज्ञा पुं० [ब्रह्मदण्ड] १. ब्राह्मण ब्रह्मचारी का डंडा । २. तीन शिखावाला केतु । ३. ब्राह्मण का शाप । ४. ब्रह्मास्त्र (को०) । ५. शिव (को०) । ६. ब्रह्मयष्टि । भारंगी (को०) । ७. अभिचार (को०) ।

ब्रह्मदंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जड़ी जो जंगलों में प्रायः पाई जाती है । इसकी पत्तियों और फलों पर काँटे होते हैं । वैद्यक में इसे गरम और कड़वी तथा कफ और वातनाशक माना गया है ।

पर्या०—अजदंती । कटपत्रफला ।

ब्रह्मदर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजवाइन ।

ब्रह्मदाता—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्मदातृ] वेद पढ़ानेवाला आचार्य ।

ब्रह्मदान—संज्ञा पुं० [सं०] वेदविद्या देना । वेद पढ़ाना ।

ब्रह्मदाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेद का वह भाग जिसमें ब्रह्म का निरूपण है । २. ब्राह्मण की अधिकारगत भूमि या धन ।

ब्रह्मदारु—संज्ञा पुं० [सं०] तूत का पेड़ । शहतूत ।

ब्रह्मदिन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का एक दिन जो १००० चतुर्युगियों का माना जाता है ।

ब्रह्मदूषक—वि० [सं०] १. वेदनिंदक । नास्तिक । २. ब्रह्म या ब्राह्मणों की निंदा करनेवाला [को०] ।

ब्रह्मदेय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मणों को दान में दी हुई वस्तु । (शिलालेख) ।

ब्रह्मदेया—वि० स्त्री० [सं०] ब्रह्मविवाह में दी जानेवाली (कन्या) । ब्राह्मविवाह विधि द्वारा दी जानेवाली (पुत्री) ।

ब्रह्मदैत्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो प्रेत हो गया हो । ब्रह्म राक्षस ।

ब्रह्मदोष—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण को मारने का दोष । ब्रह्महत्या का बुरा प्रभाव । जैसे,—इस कुल में ब्रह्मदोष है ।

ब्रह्मदोषी—वि० [सं०] वह जिसे ब्रह्महत्या लगी हो ।

ब्रह्मद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] गंगाजल । उ०—कै वसुधा पै सुधाधार ब्रह्मद्रव धौनी ।—का० सुषमा, पृ० ६ ।

ब्रह्मद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] पलास । टेसू ।

ब्रह्मद्रोही—वि० [सं० ब्रह्मद्रोहिन्] ब्राह्मणों से वैर रखनेवाला ।

ब्रह्मद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] खोपड़ी के बीच माना हुआ वह छेद जिससे योगियों के प्राण निकलते हैं । ब्रह्मरंध्र । ब्रह्मछिद्र । उ०—(क) षटदल अष्ट द्वादस दल निर्मल अजपा जाप जपाली । त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार भिदि यों मिलिहैं बनमाली । —सूर (शब्द०) (ख) ब्रह्मद्वार फिरि फोरिकै निकसे गोकुल राय ।—सूर (शब्द०) ।

ब्रह्मद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] वेद अथवा ब्राह्मण के प्रति द्रोह या निंदा भाव [को०] ।

ब्रह्मद्वेषी—वि० [सं० ब्रह्मद्वेषिन्] दे० 'ब्रह्मदूषक' ।

ब्रह्मधर—वि० [सं०] १. ब्रह्मज्ञ । २. वेद का ज्ञाता [को०] ।

ब्रह्मनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी का एक नाम [को०] ।

ब्रह्मनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

ब्रह्मनिर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कैवल्य । मोक्ष । २. दे० 'ब्रह्मानंद' [को०] ।

ब्रह्मनिष्ठ[1]—वि० [सं०] १. ब्राह्मणभक्त । २. ब्रह्मज्ञानसंपन्न ।

ब्रह्मनिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० पारिस पीपल । शहतूत ।

ब्रह्मनीड—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण का निवासस्थान [को०] ।

ब्रह्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पत्ता ।

ब्रह्मपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मत्व । २. ब्राह्मणत्व । ३. मोक्ष । मुक्ति ।

ब्रह्मपर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ब्रह्मत्व को प्राप्त हो । ब्रह्मतत्व का ज्ञाता । उ०—जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान । —मानस, ७ । ४२ ।

ब्रह्मपरिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ब्रह्मसभा ।

ब्रह्मपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन नाम की लता ।

ब्रह्मपवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कुश ।

ब्रह्मपादप—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पेड़ ।

ब्रह्मपार—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मज्ञान का मूल तत्व या अंतिम लक्ष्य । [को०] ।

यौ०—ब्रह्मपारग = ब्रह्मतत्व को जाननेवाला । वेदपारग ।

ब्रह्मपारायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. समग्र वेदों का साद्यंत अध्ययन । २. संपूर्ण वेद [को०] ।

ब्रह्मपाश—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का दिया हुआ पाश नामक अस्त्र ।

विशेष—पाश या फंदे का प्रयोग प्राचीन काल में युद्ध में होता था ।

ब्रह्मपिता—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मपितृ] विष्णु का एक नाम [को०] ।

ब्रह्मपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा का पुत्र । २. नारद । ३. वशिष्ठ । ४. मनु । ५. मरीचि । ६. सनकादिक । ७. एक प्रकार का विष ।

विशेष—यह एक पौधे का कंद है जो मलयाचल पर होता है । इसका प्रयोग रसायन और बाजीकरण में होता है ।

८. एक नद । ब्रह्मपुत्र नाम की प्रसिद्ध नदी ।

विशेष—यह मानसरोवर से निकलकर हिमालय के पूर्वीय प्रांत से भारतवर्ष में प्रवेश करता है और आसाम, बंगाल होता हुआ बंगाल की खाड़ी में गिरता है । इसका प्राचीन नाम 'लौहित्य' है । 'अमोघानंदन' नाम भी मिलता है ।

ब्रह्मपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक जहरीला पौधा । २. ब्रह्मपुत्र नद [को०] ।

ब्रह्मपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती । वाक् की अधिष्ठात्री देवी । २. सरस्वती नदी । ३. वाराही कंद ।

ब्रह्मपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मलोक । २. ब्रह्म के अनुभव का स्थान । हृदय । ३. बृहत्संहिता के अनुसार ईशान कोण में स्थित एक देश । ४. शरीर । देह (को०) ।

ब्रह्मपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक।
विशेष—पुराणों में इसका नाम पहले आने से कुछ लोग इसे आदि पुराण भी कहते हैं। मत्स्यादि पुराणों में इसके श्लोकों की संख्या दस हजार लिखी है। पर आजकल ७००० श्लोकों का ही यह पुराण मिलता है। जिस रूप में यह पुराण मिलता है, उस रूप में प्राचीन नहीं जान पड़ता। इसमें पुरुषोत्तम क्षेत्र का बहुत अधिक वर्णन है। जगन्नाथ जी और कोणादित्य के मंदिर आदि का ४० अध्यायों में वर्णन है। 'पुरुषोत्तम प्रासाद' से जगन्नाथ जी के विशाल मंदिर का अभिप्राय है जिसे गांगेय वंश के राजा चोडगंग ने वि० सं० ११३४ में बनवाया था। उत्तरखंड में मारवाड़ की बलजा नदी का माहात्म्य है। कृष्ण की कथा भी आई है, पर अधिकतर वर्णन तीर्थों और उनके माहात्म्य का है।

ब्रह्मपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मलोक। २. वाराणसी नगरी [को०]।

ब्रह्मप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिचक्र का वह प्रलय या विनाश जो ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु की समाप्ति पर होता है [को०]।

ब्रह्मप्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मनिर्वाण। कैवल्य [को०]।

ब्रह्मफाँस—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्म + हिं० फाँस < सं० पाश] दे० 'ब्रह्मपाश'।

ब्रह्मबंधु—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मबन्धु] १. वह ब्राह्मण जो अपने कर्म से हीन हो। पतित ब्राह्मण। २. वह जो केवल जाति से ब्राह्मण हो। जात्या ब्राह्मण।

ब्रह्मबल—संज्ञा पुं० [सं०] वह तेज या शक्ति जो ब्राह्मण को तप आदि के द्वारा प्राप्त हो। ब्राह्मण की शक्ति।

ब्रह्मबान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म + बाण] दे० 'ब्रह्मास्त्र'—१। उ०—ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा।—मानस, ६।२०।

ब्रह्मबानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्मवाणी] जगत् के कारणभूत नित्य चेतन सत्ता ईश्वर या परमात्मा की वाणी। वेदवाणी। उ०—गगन ब्रह्मबानी सुनि काना।—मानस, १।१८७।

ब्रह्मबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मबिन्दु] दे० 'ब्रह्मविंदु'।

ब्रह्मबिद्या—संज्ञा संज्ञा [सं० ब्रह्मविद्या] १. उपनिषद् विद्या। ब्रह्मविद्या। २. आदिशक्ति। दुर्गा। उ०—सब सुभ लच्छन भरी, गुन नरी आनि ब्रह्मबिद्या अवतरी।—नंद० ग्रं० पृ० २२१।

ब्रह्मबीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'ओं'। प्रणव। २. शहतूत का वृक्ष या फल [को०]।

ब्रह्मभट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदों का ज्ञाता। २. ब्रह्म या ईश्वर को जाननेवाला। ३. सृष्टि के आदि में ब्रह्मयज्ञ से उत्पन्न कवि नामक ऋषि की उपाधि। ४. एक प्रकार के ब्राह्मणों की उपाधि।

ब्रह्मभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] औषध में प्रयुक्त एक वनस्पति। त्रायमाणा लता [को०]।

ब्रह्मभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहतूत। २. यज्ञ में ब्रह्मा को मिलनेवाला अंश या हिस्सा [को०]।

ब्रह्मभाव—संज्ञा पुं० [सं०] कैवल्य। मोक्ष [को०]।

ब्रह्मभूत—वि० [सं०] ब्रह्मलीन [को०]।

ब्रह्मभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सायंकाल। संध्या [को०]।

ब्रह्मभूमिजा—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहली।

ब्रह्मभूय—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मत्व। २. मोक्ष।

ब्रह्मभोज—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मणों को खिलाने का कर्म। ब्राह्मणभोजन।

ब्रह्ममंडूकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्ममण्डूकी] १. मजीठ। २. मंडूकपर्णी। ३. भारंगी।

ब्रह्ममति—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों में एक प्रकार के उपदेवता जिनका वर्णन ललितविस्तर में आया है।

ब्रह्ममुहूरत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्ममुहूर्त] दे० 'ब्रह्ममुहूर्त'। उ०—उ०—(क) ब्रह्ममुहूरत भयो सबेरो जागे दोऊ भाई।—सूर (शब्द०)। (ख) ब्रह्ममुहूरत जानि नरेशा। आयो निज यदुनाथ निवेशा।—रघुराज (शब्द०)।

ब्रह्ममुहूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े तड़के का समय। सूर्योदय से ३-४ घड़ी पहले का समय।

ब्रह्ममूर्धभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

ब्रह्ममेखल—संज्ञा पुं० [सं०] मुंज तृण। मुंज।

ब्रह्ममेध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत में वर्णित एक नदी।

ब्रह्मयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. विधिपूर्वक वेदाभ्यास। २. वेदाध्ययन। वेद पढ़ना।

ब्रह्मयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। ब्रह्मनेटी।

ब्रह्मयाग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ब्रह्मयज्ञ'।

ब्रह्मयामल—संज्ञा पुं० [सं०] एक तंत्रग्रंथ।

ब्रह्मयोगि—संज्ञा पुं० [सं०] १८ मात्राओं का एक ताल जिसमें १२ आघात और ६ खाली होते हैं।

ब्रह्मयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक तीर्थस्थान जो गया जी में है। २. ब्रह्म की प्राप्ति के लिये उसका ध्यान। ३. ब्रह्मनदी। सरस्वती (को०)।

ब्रह्मरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मरन्ध्र] मूर्धा का छेद। ब्रह्माण्डद्वार। मस्तक के मध्य में माना हुआ गुप्त छेद जिससे होकर प्राण निकलने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। कहते हैं, योगियों के प्राण इसी रध्र से निकलते है। उ०—ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो विलोकि जाइ। गेह चूरि ज्यों चकोर चंद्र में मिलै उड़ाइ।—केशव (शब्द०)।

ब्रह्मराक्षस—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेत योनि में गया हुआ ब्राह्मण। वह ब्राह्मण जो मरकर भूत हुआ हो। उ०—आजतक किसी भक्त महात्मा के सिर पर न कभी रामकृष्ण आए, न ब्रह्म—हाँ, ब्रह्मराक्षस अलबत्ता आते हैं।

—चिंतामणि, भा० २, पृ० २०७। २. महादेव का एक गण।

ब्रह्मरात—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुकदेव। २. याज्ञवल्क्य मुनि।

ब्रह्मरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] रात के शेष चार दंड। ब्राह्ममुहूर्त।

ब्रह्मरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की एक रात जो एक कल्प की होती है।

ब्रह्मराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. परशुराम का एक नाम। २. बृहस्पति से आक्रांत श्रवण नक्षत्र।

ब्रह्मरिन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मऋण] वह ऋण या कर्ज जो ब्रह्म या ब्राह्मण से संबंधित हो। उ०—सो अपने माथे ब्रह्मरिन होइगो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०२।

ब्रह्मरीति—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पीतल।

ब्रह्मरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में गुरु, लघु, गुरु, लघु के क्रम से १६ अक्षर होते हैं। इसे 'चंचला' और 'चित्र' भी कहते हैं। जैसे,—अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात। राज बाप मोल लै करै जु दीह पोषि गात। दास होय पुत्र होय, शिष्य होय कोइ माइ। शासना न मानई तो कोटि जन्म नर्क जाइ।—केशव (शब्द०)।

ब्रह्मरूपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदा। बाँदा।

ब्रह्मरेख—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्मरेखा] भाग्य या अभाग्य का लेख जिसके विषय मे कहा जाता है कि ब्रह्मा किसी जीव के गर्भ में आते ही उसके मस्तक पर लिख देते हैं, जो कभी मिट नही सकता, अवश्य ही होता है।

ब्रह्मर्षि—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण ऋषि।

ब्रह्मर्षिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] मनु द्वारा निर्दिष्ट वह भूभाग जिसके अंतर्गत कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेनक देश थे।

ब्रह्मलेख—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ब्रह्मरेख'।

ब्रह्मलोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह लोक जहाँ ब्रह्मा रहते हैं। उ०—ब्रह्मलोक लगि गएउँ मैं चितएउँ पाछ उड़ात।—मानस, ७।७९। २ मोक्ष का एक भेद।

विशेष—कहते हैं कि जो लोग देवयान पथ से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं उन्हें फिर इस लोक में जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता।

ब्रह्मलौकिक—वि० [सं०] १. ब्रह्मलोक संबंधी। २. ब्रह्मलोक में निवास करनेवाला [को०]।

ब्रह्मवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मवक्तृ] ब्रह्म का व्याख्याता। वेद का अध्यापक [को०]।

ब्रह्मवद्य—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म का ज्ञान। ब्रह्मज्ञान [को०]।

ब्रह्मवध—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्महत्या।

ब्रह्मवध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्महत्या। ब्राह्मणवध।

ब्रह्मवर्चस्—संज्ञा पुं० [सं०] वह शक्ति जो ब्राह्मण तप और स्वाध्याय द्वारा प्राप्त करे। ब्रह्मतेज।

ब्रह्मवर्चस्वी—वि० [सं० ब्रह्मवर्चस्विन्] ब्रह्मतेजवाला।

ब्रह्मवर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ब्रह्मावर्त्त'।

ब्रह्मवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] तांबा।

ब्रह्मवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] इस नाम का एक उपनिषद्।

ब्रह्मवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद।

ब्रह्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेद का पढना पढ़ाना। वेदपाठ। २. वह सिद्धांत जिसमें शुद्ध चैतन्य मात्र की सत्ता स्वीकार की जाय, अनात्म की सत्ता न मानी जाय। अद्वैतवाद।

ब्रह्मवादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री। २. उपनिषदों में वर्णित ज्ञान वेदिनी विदुषी स्त्रियाँ।

ब्रह्मवादी—वि० [सं० ब्रह्मवादिन्] [स्त्री० ब्रह्मवादिनी] ब्रह्म अर्थात् शुद्ध चैतन्य मात्र की सत्ता स्वीकार करनेवाला। वेदांती। अद्वैतवादी।

ब्रह्मविंदु—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मबिन्दु] वेदपाठ करने में मुँह से निकला हुआ थूक का छींटा।

ब्रह्मविद्—वि० [सं०] १. ब्रह्म को जानने या समझनेवाला। २. वेदार्थज्ञाता।

ब्रह्मविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह विद्या जिसके द्वारा कोई व्यक्ति ब्रह्म को जान सके। उपनिषद् विद्या। २. दुर्गा।

ब्रह्मविवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. विष्णु [को०]।

ब्रह्मवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा [को०]।

ब्रह्मवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश वृक्ष। २. गूलर का पेड़।

ब्रह्मवेत्ता—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मवेतृ] ब्रह्म को समझनेवाला। ब्रह्मज्ञानी। तत्वज्ञ।

ब्रह्मवैवर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह प्रतीति मात्र जो ब्रह्म के कारण हो; जैसे, जगत् की। २. ब्रह्म का विवर्त जगत्। ३. श्रीकृष्ण। ४. अठारह पुराणों मे से एक पुराण जो कृष्णभक्ति संबंधी है।

विशेष—मत्स्यपुराण में इस पुराण का जो परिचय दिया हुआ है, उसमे लिखा है कि इसमें सावर्णि ने नारद से 'रथंतर' कल्प के श्रीकृष्ण का माहात्म्य और ब्रह्मवाराह की गाथा कही है। पर इस नाम का जो पुराण आजकल मिलता है, उसमे न तो सावर्णि वक्ता हैं और न ब्रह्मवाराह की गाथा है। प्रचलित पुराण में नारायण ऋषि नारद जी से और नारद जी व्यास जी से कहते हैं। इसके 'ब्रह्म', 'प्रकृति', 'गणेश' और 'कृष्णजन्म' नामक चार खंड हैं। ब्रह्मखंड में परब्रह्मनिरूपण, सृष्टि, ब्रह्मांड की उत्पत्ति, कृष्णरूप में नारायण का आविर्भाव, महाविराट्जन्म, रासमंडल, राधा की उत्पत्ति, गोपों और गौओं की उत्पत्ति, पृथ्वी के गर्भ से मंगल की उत्पत्ति, इत्यादि विषय हैं। प्रकृति खंड मे प्रकृति शब्द की निरुक्ति, ब्रह्मांड की उत्पत्ति, देवताओं का आविर्भाव, सरस्वती, लक्ष्मी और गंगा का परस्पर विवाद और शाप के कारण नदी रूप में हो जाना, भूमिदान आदि का पुण्य, भगीरथ का गंगा लाना, गोलोक में क्रोध करके राधा का गंगा को पान करने दौड़ना, गंगा का श्रीकृष्ण के चरण में शरण लेना, फिर ब्रह्मा आदि की प्रार्थना पर कृष्ण का गंगा

को पैर से निकाल कर देना, तुलसी की कथा इत्यादि हैं। गणेशखंड में शिव का पार्वती को गंगातट पर हरिमंत्र देना, पार्वती का कृष्ण से वर प्राप्त करना, गणेशजन्म, गणेश के शिरच्छेद और गजाननत्व का वर्णन है। श्रीकृष्णजन्म खंड में श्रीकृष्ण की अनेक कथाओं और विहार आदि का वर्णन है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इस पुराण के असल होने में बहुत संदेह है। नारद और शिवपुराण में दिए हुए लक्षण इसपर नहीं घटते। वैष्णव पुराण तो यह है ही, पर विष्णु के कृष्ण रूप को सबसे अधिक महत्व प्रदान करना ही इसका मुख्य उद्देश्य जान पड़ता है।

ब्रह्मशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़।

ब्रह्मशासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेद या स्मृति की आज्ञा। २. वह गाँव या भूमि जो राजा की ओर से ब्राह्मण को दी गई हो।

ब्रह्मशिर—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मशिरस्] एक अस्त्र जिसका उल्लेख रामायण और महाभारत दोनों में है। इस अस्त्र का चलाना अगस्त्य से सीखकर द्रोणाचार्य ने अर्जुन और अश्वत्थामा को सिखलाया था।

ब्रह्मसती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी।

ब्रह्मसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक वेदपाठ। ब्रह्मयज्ञ।

ब्रह्मसदन—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार यज्ञ में ब्रह्मा नामक ऋत्विक् का आसन जो वारुणी काष्ठ का और कुश से ढका हुआ होता था।

ब्रह्मसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मा जी की सभा। उ०—ब्रह्मसभा हम सन दुखु माना। तेहि ते अजहु करहिं अपमाना।—मानस, १।६२। २. ब्राह्मणों की सभा।

ब्रह्मसमाज—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म + समाज] एक नया संप्रदाय जिसके प्रवर्तक बंगाल के राजा राममोहन राय थे।

विशेष—इसमें उपनिषदों में निरूपित एक ब्रह्म की उपासना और मनुष्यमात्र के प्रति भ्रातृभाव का उपदेश मुख्य है। बंग देश के नवशिक्षितों में एक समय इसका बहुत प्रचार हो चला था।

ब्रह्मसर[1]—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मसरस्] एक प्राचीन तीर्थ जो महाभारत में वर्णित है।

ब्रह्मसर[2]—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मशर] दे० 'ब्रह्मास्त्र'—१। उ०—प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा।—मानस, ३।१।

ब्रह्मसावर्णि—संज्ञा पुं० [सं०] दसवें मनु का नाम।

विशेष—भागवत के अनुसार इनके मन्वंतर में विष्वक्सेन अवतार और इंद्र, शंभु, सुवासन, विरुद्ध इत्यादि देवता होंगे।

ब्रह्मसिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मसिद्धान्त] ज्योतिष की एक सिद्धांत पद्धति।

ब्रह्मसुत—संज्ञा पुं० [सं०] मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्र।

ब्रह्मसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

ब्रह्मसुवर्चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुज या हुरहुर नाम का पौधा। पहले तपस्वी लोग इसका कड़ुआ रस पीते थे।

ब्रह्मसू—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु की चतुर्व्यूहात्मक मूर्तियों में से एक।

ब्रह्मसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनेऊ। यज्ञोपवीत। २. व्यास का शारीरिक सूत्र जिसमें ब्रह्म का प्रतिपादन है और जो वेदांत दर्शन का आधार है।

ब्रह्मसृज्—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा को उत्पन्न करनेवाला। २. शिव का एक नाम।

ब्रह्मस्तेय—संज्ञा पुं० [सं०] गुरु की अनुमति के बिना अन्य को पढ़ाया हुआ पाठ सुनकर अध्ययन करना। (मनु०)।

ब्रह्मस्व—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण का भाग। ब्राह्मण का धन।

ब्रह्महत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्राह्मणवध। ब्राह्मण को मार डालना।

विशेष—मनु आदि ने ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुपत्नी के साथ गमन को महापातक कहा है।

ब्रह्महा—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्म + हन्] ब्रह्मघाती। ब्राह्मण की हत्या करनेवाला। उ०—ज्यों ब्रह्महा जिवत ही मरयौ। ऐसो हौं हू विधना करयौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३२।

ब्रह्महृदय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम वर्ग के १६ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र जिसे अंगरेजी में कैपेल्ला कहते हैं।

ब्रह्मांड—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्माण्ड] १. चौदहों भुवनों का समूह। विश्वगोलक। संपूर्ण विश्व, जिसके भीतर अनंत लोक हैं।

विशेष—मनु ने लिखा है कि स्वयं भगवान् ने प्रजासृष्टि की इच्छा से पहले जल की सृष्टि की और उसमें बीज फेंका। बीज पड़ते ही सूर्य के समान प्रकाशवाला स्वर्णाभ अंड या गोला उत्पन्न हुआ। पितामह ब्रह्मा का उसी अंड या ज्योतिर्गोलक में जन्म हुआ। उसमें अपने एक संवत्सर तक निवास करके उन्होंने उसके आधे आध दो खंड किए। ऊर्ध्वखंड में स्वर्ग आदि लोकों की और अधोखंड में पृथ्वी आदि की रचना की। विश्वगोलक इसी से ब्रह्मांड कहा जाता है। हिरण्यगर्भ से सृष्टि की उत्पत्ति श्रुतियों में भी कही गई है। ज्योतिर्गोलक की यह कल्पना जगदुत्पत्ति के आधुनिक सिद्धांत से कुछ कुछ मिलती जुलती है जिसमें आदिम ज्योतिष्क नीहारिकामंडल या गोलक से सूर्य और ग्रहों उपग्रहों आदि की उत्पत्ति निरूपित की गई है।

२. मत्स्यपुराण के अनुसार एक महादान जिसमें सोने का विश्वगोलक (जिसमें लोक, लोकपाल आदि बने रहते हैं) दान दिया जाता है। ३. खोपड़ी। कपाल।

मुहा०—ब्रह्मांड चटकना = (१) खोपड़ी फटना। (२) अधिक ताप या गरमी से सिर में असह्य पीड़ा होना।

ब्रह्मांभ—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्माम्भस्] गोमूत्र (को०)।

ब्रह्मांडपुराण—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्माण्डपुराण] अठारह पुराणों में से एक का नाम (को०)।

ब्रह्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म के तीन सगुण रूपों में से सृष्टि की रचना करनेवाला रूप। सृष्टिकर्ता। विधाता। पितामह।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार स्वयंभू भगवान् ने जल की सृष्टि करके जो बीज फेंका, उसी से ज्योतिर्मय अंड उत्पन्न हुआ जिसके भीतर से ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ। (दे० ब्रह्मांड)। भागवत आदि पुराणों मे लिखा है कि भगवान् विष्णु ने पहले महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा द्वारा एकादश इंद्रियाँ और पंचमहाभूत इन सोलह कलाओं से विशिष्ट विराट् रूप धारण किया। एकार्णव में योगनिद्रा मे पड़कर जब उन्होंने शयन किया, तब उनकी नाभि से जो कमल निकला उससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के चार मुख माने जाते हैं जिनके संबंध मे मत्स्यपुराण में यह कथा है—ब्रह्मा के शरीर से जब एक अत्यंत सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई, तब वे उसपर मोहित होकर इधर उधर ताकने लगे। वह उनके चारों ओर घूमने लगी। जिधर वह जाती, उधर देखने के लिये ब्रह्मा को एक सिर उत्पन्न होता था। इस प्रकार उन्हें चार मुँह हो गए।

ब्रह्मा के क्रमश. दस मानसपुत्र हुए—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। इन्हे प्रजापति भी कहते हैं। महाभारत में २१ प्रजापति कहे गए हैं। दे० 'प्रजापति'।

पुराणों मे ब्रह्मा वेदों के प्रकटकर्ता कहे गए हैं। कर्मानुसार मनुष्य के शुभाशुभ फल या भाग्य को गर्भ के समय स्थिर करनेवाले ब्रह्मा माने जाते हे।

२. यज्ञ का एक ऋत्विक्। ३. एक प्रकार का धान जो बहुत जल्दी पकता है।

ब्रह्माक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणव। ओंकार [को०]।

ब्रह्माग्रभू—संज्ञा पुं० [सं०] अश्व [को०]।

पर्या०—ब्रह्मागभू। ब्रह्मात्मभू।

ब्रह्माणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मा की स्त्री। ब्रह्मा की शक्ति। उ०—आसिष दै दै सराहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी।—तुलसी (शब्द०)। २. सरस्वती। ३. रेणुका नामक गंधद्रव्य। ४ एक छोटी नदी जो कटक जिले मे वैतरणी नदी से मिली है। ५. दुर्गा का एक नाम (को०)। ६. पीतल (को०)।

ब्रह्मादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी। रक्त लज्जालु।

ब्रह्मानंद—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मानन्द] ब्रह्म के स्वरूप के अनुभव का आनंद। ब्रह्मज्ञान से उत्पन्न आत्मतृप्ति।

ब्रह्माभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वेद का अध्ययन [को०]।

ब्रह्मारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदाध्ययन या वेदपाठ का स्थान। २. एक वन का नाम [को०]।

ब्रह्मार्पण—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर को समर्पित किया हुआ कर्म या कर्मफल [को०]।

ब्रह्मावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रदेश का प्राचीन नाम। सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच का प्रदेश।

विशेष—मनु ने इस प्रदेश के परंपरागत आचार को सबसे श्रेष्ठ माना है।

ब्रह्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन जिससे बैठकर ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। २. तंत्रोक्त देवपूजा मे एक आसन।

ब्रह्मास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र जो मंत्र से पवित्र करके चलाया जाता था। यह अमोघ अस्त्र सब अस्त्रों में श्रेष्ठ कहा गया है। २. एक रसौषध जो सन्निपात में दिया जाता है। यह रस पारे, गंधक, सींगिया और काली मिर्च के योग से बनता है।

ब्रह्मिष्ठ—वि० [सं०] ब्रह्मा या वेद का पूर्ण ज्ञाता [को०]

ब्रह्मिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ब्रह्मी[1]—वि० [सं० ब्रह्मिन्] वेद संबंधी [को०]।

ब्रह्मी[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

ब्रह्मी[3]—संज्ञा स्त्री० १. एक ओषधि। २. एक प्रकार की मछली [को०]।

ब्रह्मीभूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. शंकराचार्य का एक नाम। २. ब्रह्म-सायुज्य। कैवल्यलाभ [को०]।

ब्रह्मेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. कार्तिकेय का एक नाम [को०]।

ब्रह्मोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वेद या ब्रह्मज्ञान की शिक्षा [को०]।

यौ०—ब्रह्मोपदेशनेता = पलाश।

ब्रह्मोपनेता—संज्ञा पुं० [सं० ब्रह्मोपनेतृ] पलाश का वृक्ष [को०]।

ब्रांडी—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की अँगरेजी शराब।

ब्रात(पु)—संज्ञा [सं० व्रात्य] दे० 'व्रात्य'।

ब्राह्म[1]—वि० [सं०] ब्रह्म संबंधी। जैसे, ब्राह्म दिन। ब्राह्म मुहूर्त।

ब्राह्म[2]—संज्ञा पुं० १. विवाह का एक भेद। २. एक पुराण। ३. नारद। ४. राजाओं का एक धर्म जिसके अनुसार उन्हें गुरुकुल से लौटे हुए ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। ५. एक नक्षत्र। रोहिणी नक्षत्र। ६. हथेली में अँगूठे के मूल से नीचे का हिस्सा। ७. पारा। पारद।

ब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ब्राह्मणी] १. चार वर्णों में सबसे श्रेष्ठ वर्ण। प्राचीन आर्यों के लोकविभाग के अनुसार सबसे ऊँचा माना जानेवाला विभाग। हिंदुओं मे सबसे ऊँची जाति जिसके प्रधान कर्म पठन पाठन, यज्ञ, ज्ञानोपदेश आदि हैं। २. उक्त जाति या वर्ण का मनुष्य।

विशेष—ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में ब्राह्मणों की उत्पत्ति विराट् या ब्रह्म के मुख से कही गई है। अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये छह कर्म ब्राह्मणों के कहे गए हैं, इसी से उन्हे षट्कर्मा भी कहते हैं। ब्राह्मण के मुख में गई हुई सामग्री देवताओं को मिलती है; अर्थात् उन्हीं के मुख से वे उसे प्राप्त करते हैं। ब्राह्मणों को अपने उच्च पद की मर्यादा रक्षित रखने के लिये आचरण अत्यंत शुद्ध और पवित्र रखना पड़ता था। ऐसी जीविका का उनके लिये निषेध है जिससे किसी प्राणी को दुःख पहुँचे। मनु ने कहा है कि उन्हें ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत या सत्यानृत द्वारा जीविका निर्वाह करना

चाहिए। ऋत का अर्थ है भूमि पर पड़े हुए अनाज के दानों को चुनना (उंछ वृत्ति) या छोड़ी हुई बालों से दाने झाड़ना (शिलवृत्ति)। बिना माँगे जो कुछ मिल जाय उसे ले लेना अमृत वृत्ति है; भिक्षा माँगने का नाम है मृतवृत्ति। कृषि 'प्रमृत' वृत्ति है और वाणिज्य 'सत्यानृत वृत्ति' है। इन्हीं वृत्तियों के अनुसार ब्राह्मण चार प्रकार के कहे गए हैं—कुशूलधान्यक, कुंभीधान्यक, त्र्यैहिक और अश्वस्तनिक। जो तीन वर्ष तक के लिये अन्नादि सामग्री संचित कर रखे उसे कुशूलधान्यक, जो एक वर्ष के लिये संचित करे उसे कुंभीधान्यक, जो तीन दिन के लिये रखे, उसे त्र्यैहिक और जो नित्य संग्रह करे और नित्य खाय उसे अश्वस्तनिक कहते हैं। चारो मे अश्वस्तनिक श्रेष्ठ है।

आदिम काल में मत्रकार या वेदपाठी ऋषि ही ब्राह्मण कहलाते थे। ब्राह्मण का परिचय उसके वेद, गोत्र और प्रवर से ही होता था। संहिता मे जो ऋषि आए हैं, श्रौत ग्रंथो मे उन्ही के नाम पर गोत्र कहे गए हैं। श्रौत ग्रंथो में प्रायः सौ गोत्र गिनाए गए हैं।

पर्या०—द्विज। द्विजाति। अग्रजन्मा। भूदेव। वाडव। विप्र। सूत्रकंठ। ज्येष्ठवर्ण। द्विजन्मा। वक्त्रज। मैत्र। वेदवास। नय। गुरु। षट्कर्मा।

३. वेद का वह भाग जो मंत्र नहीं कहलाता। वेद का मंत्रातिरिक्त अंश। ४. विष्णु। ५. शिव। ६. अग्नि। ७. पुरोहित। ८. अट्ठाईसवाँ नक्षत्र। अभिजित् (को०)। ९. ब्राह्म समाज के लिये प्रयुक्त संक्षिप्त रूप।

ब्राह्मणक—संज्ञा पुं० [सं०] हीन ब्राह्मण। निंद्य ब्राह्मण।

ब्राह्मणत्व—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण का भाव, अधिकार या धर्म। ब्राह्मणपन।

ब्राह्मणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मणों को प्रिय अथवा जिसे ब्राह्मण प्रिय हो अर्थात् विष्णु (को०)।

ब्राह्मणब्रुव—संज्ञा पुं० [सं०] केवल कहने भर को ब्राह्मण। कर्म और संस्कार से हीन ब्राह्मण।

ब्राह्मणभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मणों का भोजन। ब्राह्मणों को खिलाना।

ब्राह्मणयष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। भार्ङ्गी।

ब्राह्मणसंतर्पण—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मणसन्तर्पण] ब्राह्मण को खिला-पिलाकर संतुष्ट करना।

ब्राह्मणाच्छंसी—संज्ञा पुं० [सं०] सोमयाग में ब्रह्मा का सहकारी एक ऋत्विक् (ऐतरेय ब्राह्मण)।

ब्राह्मणातिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण का अनादर (को०)।

ब्राह्मणायन—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो शिक्षित एवं धार्मिक ब्राह्मणकुलोत्पन्न हो (को०)।

ब्राह्मणिक—वि० [सं०] ब्राह्मण संबंधी (को०)।

ब्राह्मणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्राह्मण जाति की स्त्री। २. ब्राह्मण की पत्नी या स्त्री। ३. बुद्धि। (महाभारत)। ४. एक तीर्थ

(महाभारत)। ५. एक प्रकार की छिपकली। बँमनी (को०)। ६. एक प्रकार की मक्खी या भिड़ (को०)। ७. पीतल का एक भेद (को०)।

ब्राह्मणेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] शहतूत का वृक्ष या फल (को०)।

ब्राह्मण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण का धर्म या गुण। ब्राह्मणत्व। २. ब्राह्मणों का समूह। ३ शनि ग्रह।

ब्राह्मपिंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्राह्मपिङ्गा] रजत। चाँदी (को०)।

ब्राह्ममुहूर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि के पिछले पहर के अंतिम दो दंड। सूर्योदय के पहले दो घड़ी तक का समय।

ब्राह्मसमाज—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्म + समाज] बंग देश में प्रवर्तित एक नया संप्रदाय जिसमे एक मात्र ब्रह्म की ही उपासना की जाती है।

विशेष—अँगरेजी राज्य के प्रारंभ मे जब ईसाई उपदेशक एक ईश्वर की उपासना के उपदेश द्वारा नवशिक्षितों को आकर्षित कर रहे थे, उस समय राजा राममोहन राय ने उपनिषद् में प्रतिपादित अद्वैत ब्रह्म की उपासना पर जोर दिया जिससे बहुत से हिंदू ईसाई न होकर उनके संप्रदाय में आ गए। इसे 'ब्राह्मधर्म' भी कहते हैं। इसका उपासनास्थल 'ब्राह्ममंदिर' कहा जाता है और इस मत में दीक्षित 'ब्राह्मसमाजी' कहे जाते हैं।

ब्राह्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मयष्टिका। भारंगी।

ब्राह्मी—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्गा। २. शिव की अष्ट मातृकाओं में से एक। ३. रोहिणी नक्षत्र (क्योंकि उसके अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा हैं)। ४. भारतवर्ष की वह प्राचीन लिपि जिससे नागरी, बँगला आदि आधुनिक लिपियाँ निकली हैं। हिंदुस्तान की एक प्रकार की पुरानी लिखावट या अक्षर।

विशेष—यह लिपि उसी प्रकार बाँई ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी जैसे, उनसे निकली हुई आजकल की लिपियाँ। ललितविस्तर में लिपियों के जो नाम गिनाए गए हैं, उनमें 'ब्रह्मलिपि' का नाम भी मिला है। इस लिपि का सबसे पुराना रूप अशोक के शिलालेखों में ही मिला है। पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि भारतवासियों ने अक्षर लिखना विदेशियों से सीखा और ब्राह्मीलिपि भी उसी प्रकार प्राचीन फिनीशियन लिपि से ली गई जिस प्रकार अरबी, यूनानी, रोमन आदि लिपियाँ। पर कई देशी विद्वानों ने सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि ब्राह्मी लिपि का विकास भारत में स्वतंत्र रीति से हुआ। दे० 'नागरी'।

५. सरस्वती। वाणी (को०)। ६. कथन। वक्तव्य। उक्ति (को०)। ७. एक प्रकार का पीतल (को०)। ८. एक नदी (को०)। ९. ब्राह्म विवाह के विधान से विवाहिता स्त्री (को०)। १०. औषध के काम में आनेवाली एक प्रसिद्ध बूटी।

विशेष—यह बूटी छत्ते की तरह जमीन में फैलती है। ऊँची नहीं होती। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और गोल होती हैं और एक ओर खिली सी होती हैं। इसके दो भेद होते हैं। जिसे

ब्रह्ममंडूकी कहते हैं, उसकी पत्तियाँ और छोटी होती हैं। वैद्यक में ब्राह्मी शीतल, कसैली, कड़वी, बुद्धिदायक, मेधाजनक सारक, कंठशोधक, स्मरणशक्तिवर्धक, रसायन तथा कुष्ठ, पांडुरोग, खाँसी, सूजन, खुजली, पित्त, प्लीहा आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—वयस्था। मत्स्याक्षी। सुरसा। ब्रह्मचारिणी। सोमवल्लरी। सरस्वती। सुवर्चला। कपोतवेगा। वैधात्री। दिव्यतेजा। ब्रह्मकन्यका। मंडूकमाता। दिव्या। शारदा।

ब्राह्मीअनुष्टुप्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें सब मिलाकर ४८ वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीउष्णिक्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें सब मिलाकर ४२ वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीकंद—संज्ञा पुं० [सं० ब्राह्मीकन्द] बाराही कंद।

ब्राह्मीगायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें सब मिलाकर ३६ वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीजगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें सब मिलाकर ७२ वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीत्रिष्टुप्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें कुल मिलाकर ६६ वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीपंक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्राह्मीपङ्क्ति] एक वैदिक छंद जिसमें सब मिलाकर ६० वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीवृहती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें सब मिलाकर ५४ वर्ण होते हैं।

ब्राह्म—वि० [सं०] दे० 'ब्राह्म¹'।

ब्रिंदावन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वृन्दावन] दे० 'वृंदावन'। उ०—ब्रिंदावन को चल जाऊँगी भक्तबछल को रिझाऊँगी मैं।—दक्खिनी०, पृ० १३१।

ब्रिख(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष, पु० हिं० बिरिख] वृक्ष। पेड़। उ०—जल बेली बिहु बाग ब्रिख ते जिन भए अलोप।—पृ० रा०, १।४६५।

ब्रिख(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० वृष] एक राशि। दे० 'वृष'। उ०—ब्रिछिक सिंघ ब्रिख कुंभ पुनीता।—संत० दरिया, पृ० २८।

ब्रिगेड—संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक समूह।

ब्रिगेडियर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'ब्रिगेडियर जनरल'।

यौ०—ब्रिगेडियर जनरल।

ब्रिगेडियर जेनरल—संज्ञा पुं० [अं०] एक सैनिक कर्मचारी जो एक ब्रिगेड भर का संचालक होता है।

ब्रिछिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० वृश्चिक] वृश्चिक राशि। उ०—ब्रिछिक सिंघ ब्रिख कुंभ पुनीता। चारिउ रासि चंद कर हीता।—संत० दरिया, पृ० २८।

ब्रिज—संज्ञा पुं० [अं०] १. पुल। सेतु। जैसे, सोन ब्रिज, हवड़ा ब्रिज। २. ताश का एक खेल।

ब्रिटिश—वि० [अं०] १. उस द्वीप से संबंध रखनेवाला जिसमें इंगलैंड और स्काटलैंड प्रदेश हैं। २. इंगलिस्तान का। अँगरेजी।

यौ०—ब्रिटिश राष्ट्रमंडल=समान हितों और समान स्वार्थों की रक्षा के लिये संघटित वह राष्ट्रसमूह जो पहले ब्रिटिश अधिकार में था।

ब्रिटेन—संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड और वेल्स।

ब्रीखभ†—संज्ञा पुं० [सं० वृषभ] दे० 'वृषभ' उ०—कहे दरिया ब्रह्मभेद नहीं नीर वेद वहाँ ब्रीखभ हुआ।—संत० दरिया, पृ० ६६।

ब्रीछ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष] दे० 'वृक्ष'। उ०—ब्रीछ एक तहँ सुंदर छाया। चौका चंदन तहाँ बनाया।—संत०, दरिया, पृ० २।

ब्रीड़ना(पु)—क्रि० अ० [सं० व्रीडन] लज्जित होना। लजाना। उ०—कुंडल झलक कपोलनि मानहुँ मीन सुधारस क्रीड़त। भ्रकुटी धनुष नैन खंजन मनु उड़त नहीं मन ब्रीड़त।—सूर०, १०।१७३१।

ब्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० व्रीडा] दे० 'व्रीडा'। उ०—मोहि मन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा।—मानस, ७।७७।

ब्रीद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विरुद, हिं० बिरद] दे० 'बिरद'। उ०—ब्रीद मेरे साइयाँ को 'तुका' चलावे पास। सूरा सो हमसें लरे छोरे तन की आस।—दक्खिनी०, पृ० १०६।

ब्रीवियर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा टाइप जो आठ प्वाइंट का अर्थात् पाइका का $\frac{2}{3}$ होता है। ब्रीवियर टाइप।

ब्रीहि—संज्ञा पुं० [सं० व्रीहि] दे० 'व्रीहि'।

ब्रश—संज्ञा पुं० [अं०] बालों का बना हुआ कूँचा जिससे टोपी या जूते इत्यादि साफ किए जाते हैं।

ब्रहम—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी जिसे ब्रूहम नामक डाक्टर ने ईजाद किया था। इसमें एक ओर डाक्टर के बैठने का और उसके सामने दूसरी ओर केवल दवाओं का बेग रखने का स्थान होता है।

ब्रेक—संज्ञा पुं० [अं०] १. रोक। रुकाव। वह यंत्र जो गाड़ियों को रोकता है। २. रेल में वह डब्बा जिसमें रोकयंत्र लगा रहता है। इसे ब्रेकवान भी कहते हैं। उ०—ब्रेक में सब सामान निकलवाकर...मैं मनिया का हाथ पकड़कर उसे बाहर ले गया।—जिप्सी, पृ० २७६।

ब्रेवरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कश्मीरी तंबाकू जो बहुत अच्छा होता है।

ब्रोकर—संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो दूसरे के लिये सौदा खरीदता और जिसे सौदे पर सैकड़े पीछे कुछ बंधी हुई दलाली मिलती है। दलाल। जैसे, शेयर ब्रोकर; पीस गुड्स ब्रोकर।

ब्लाउज—संज्ञा पुं० [अं० ब्लाउज़] १. विलायती ढंग या काट की बनी हुई औरतों की कुरती।

यौ०—ब्लाउज पीस=कुरती का कपड़ा।

ब्लाक—संज्ञा पुं० [अं०] १. ठप्पा जिसपर से कोई चित्र छापा जाय। बैठाए हुए अक्षर, चित्र, लिखावट आदि का जस्ते तांबे आदि का बना हुआ ठप्पा जिससे वह वस्तु छापी जाय। २. भूमि का

कोई चौकोर टुकड़ा या वर्ग। भूमिखंड। ३. मकानात। घरों का समूह। ४. किसी मकान का वह हिस्सा जो अपने आप में मकान या गृह की दृष्टि से पूरा हो। ५. विकास की दृष्टि से विभाजित छोटे क्षेत्र।

ब्लेड—संज्ञा पुं० [अं०] इस्पात का हलका एवं पतला छुरे की तरह धारदार टुकड़ा। पत्ती। इससे दाढ़ी मूड़ते हैं।

ब्लेष्क—संज्ञा पु० [सं०] जाल। वागुर। फंदा [को०]।

भ

भ—हिंदी वर्णमाला का चौबीसवाँ और पवर्ग का चौथा वर्ण। इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ है और इसका प्रयत्न संवार, नाद और घोष है। यह महाप्राण है और इसका अल्पप्राण 'ब' है।

भंक—वि० [अनु० या सं० वक्र, हिं० बंक] भीषण। भयंकर। भयानक। उ०—समसान लोटना बीर बक। तिहि पीर भीत अनसंक भंक।—पृ० रा०, ६।७०।

भंकार—संज्ञा पुं० [अनु० भं + कार (प्रत्य०)] विकट शब्द। भीषण नाद। उ०—कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजै।—केशव (शब्द०)।

भंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्कारी] १. डाँस। मशक। गोमक्षिका। २. दे० 'भँकारी'।

भंका[1]—वि० [सं० भङ्क्तृ] तोड़नेवाला। भंग करनेवाला।

भंक्ता[2]—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जो विध्वंसक हो। तोड़फोड़ करनेवाला व्यक्ति [को०]।

भंक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्क्ति] टूटना। नष्ट होना। खंडित होना [को०]।

भंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० भङ्ग] १. तरंग। लहर। २. पराजय। हार। ३. खंड। टुकड़ा। ४. भेद। ५. कुटिलता। टेढ़ापन। ६. रोग। ७. गमन। ८. जलनिर्गम। स्रोत। ९. एक नाग का नाम। १०. भय। ११. टूटने का भाव। विनाश। विध्वंस। उ०—(क) अकिल विहूना सिंह ज्यों गयो ससा के संग। अपनी प्रतिमा देखिके भयो जो तन को भंग।—कबीर (शब्द०)। (ख) प्रभु नारद संवाद कहि मारुति मिलन प्रसंग। पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान को भंग।—तुलसी (शब्द०)। (ग) देवराज मख भंग जानि कै बरस्यो ब्रज पै आई। सूर स्याम राखे सब निज कर गिरि लै भए सहाई।—सूर (शब्द०)। १२. बाधा। उच्छित्ति। अड़चन। रोक। उ०—(क) कबीर छुधा है कूकरी करत भजन में भंग। याको टुकड़ा डारि के सुमरन करो सुरंग।—कबीर (शब्द०)। (ख) छाड़ि मन हरि विमुखन को संग। जिनके संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भंग।—सूर (शब्द०)। १३. टेढ़े होने या झुकने का भाव। १४. लकवा नामक रोग जिसमें रोगी के अंग टेढ़े और बेकाम हो जाते हैं।

यौ०—अस्थिभंग। कर्णभंग। गात्रभंग। ग्रीवाभंग। भ्रूभंग। प्रसवभंग। वस्त्रभंग। भंगनय। भंगसार्थ।

भंग[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गा] दे० 'भाँग'।

भंगकार—संज्ञा पु० [सं० भङ्गकार] १. हरिवंश के अनुसार सत्राजित के पुत्र का नाम। २. महाभारत के अनुसार राजा अभिक्षित् के पुत्र का नाम।

भंगड़[1]—वि० [हिं० भाँग + अड़ (प्रत्य०)] जो नित्य और बहुत भाँग पीता हो। बहुत भाँग पीनेवाला। भँगेड़ी।

भंगड़[2]—संज्ञा पु० एक कवि का नाम। उ०—भंगड़ ज्यों रान कै बिहारी जयसिंह ज्यू कै। गग ह्वौ प्रवीन अकबर सुलतान कै।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १३३।

भंगना†[1]—क्रि० अ० [हिं० भंग + ना (प्रत्य०)] १. टूटना। २. दबना। हार मानना। उ०—कहि न जाय छवि कवि मति भंगी। चपला मनहुँ करति गति संगी।—गोपाल (शब्द०)।

भंगना[2]—क्रि० स० १. तोड़ना। २. दबाना। उ०—राम रंग ही से रँगरेजवा मोरी अँगिया रँगा दे रे। और रंग हैं दिन चटकीले, देखत देखत होत मटीले, नहीं अमीगी नहिं महकीले, उन रंगन की भंगि दे रे।—देवस्वामी (शब्द०)।

भंगराज—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराज] १. काले रंग की कोयल के आकार की एक चिड़िया जो सिरे से दुम तक १२ इंच लंबी होती है और जिसमें ७ इंच केवल पूँछ होती है।

विशेष—यह भारत वर्ष के प्रायः सभी भागों में होती है। यह अत्यंत सुरीली और मधुर बोली बोलती है और प्रायः सभी पशुपक्षियों की बोलियों का अनुकरण करती है। यह लड़ती भी है। इसका रंग बिलकुल काला होता है, केवल पंख पर दो एक पीली वा सफेद धारियाँ होती हैं। इसकी पूँछ भुजेटे की पूँछ की तरह कैंचीनुमा होती है। यह प्रायः जाड़े में अधिक देख पड़ती है और कीड़े मकोड़े खाकर रहती है।

२. भँगरैया नाम की एक वनस्पति। दे० 'भँगरा[2]'।

भंगरैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गराज] दे० 'भँगरा'।

भंगवासा—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गवासा] हलदी।

भंगसार्थ—वि० [सं० भङ्गसार्थ] कुटिल।

भंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गा] भाँग।

यौ०—भंगाकट = भाँग का पराग।

भंगान—संज्ञा पुं० [सं० भङ्गान] एक प्रकार की मछली।

भंगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गारी] दे० 'भंकारी'।

भंगास्वन—संज्ञा पुं० [सं० भङ्गास्वन] महाभारत के अनुसार एक राजा जिसने पुत्र की कामना से अग्निष्टुत् यज्ञ किया था और जिसे सौ पुत्र हुए थे।

भंगि—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गि] १. विच्छेद। २. कुटिलता। टेढ़ाई। ३. विन्यास। अंगनिवेश। अंदाज। ४. कल्लोल। लहर। ५. भंग। ६. व्याज। बहाना। ७. प्रतिकृति। ८. तरीका। युक्ति। ढंग। उपाय। उ०—जोग किए का होय भंगि जो आवै नाही।—पलटू० बानी, पृ० १७।

भंगिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गिमन्] कुटिलता। वक्रता। भंगि [को०]।

भंगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० भङ्गिन् [स्त्री० भंगिनी] १. भंगशील। नष्ट होनेवाला। २. भंग करनेवाला। भंगकारी। उ०—रसना रसालिका रसत हंस मालिका रतन ज्योति जालिका सो देव दुख भंगिनी।—देव (शब्द०)। ३. रेखाओं के झुकाव से खींचा हुआ चित्र वा बेलबूटा आदि।

भंगी[2]—संज्ञा पुं० [सं० देश०] [स्त्री० भंगिन] एक पिछड़ी जाति जिसका काम मलमूत्र आदि उठाना है।

भंगी[3]—वि० [हिं० भाँग] भाँग पीनेवाला। भँगेड़ी। उ०—लोग निकम्में भंगी गंजड़ लुच्चे बे बिसवासी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

भंगील—संज्ञा पुं० [सं० भङ्गील] ज्ञानेंद्रिय की विकलता या दोष।

भंगुर[1]—वि० [सं० भङ्गुर] १. भंग होनेवाला। नाशवान्। जैसे,—क्षणभंगुर। २. कुटिल। ३. टेढ़ा। वक्र।

भंगुर—संज्ञा पुं० नदी का मोड़ या घुमाव।

भंगुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतिविषा। अतीस। २. प्रियंगु।

भंग्य[1]—वि० [सं० भङ्ग्य] जो भंग किया या तोड़ा जाय। तोड़ने लायक। भंजन के योग्य [को०]।

भंग्य—संज्ञा पुं० भाँग का खेत। वह खेत जिसमें भाँग बोई हो [को०]।

भंजक—वि० [सं० भञ्जक] [स्त्री० भंजिका] भंगकारी। तोड़नेवाला।

भंजन[1]—संज्ञा पुं० [सं० भञ्जन] १. तोड़ना। भंग करना। २. भंग। ध्वंस। ३. नाश। ४. मंदार। आक। ५. भाँग। ६. दाँत गिरने का रोग। दे० 'भंजनक'। ७. व्रण की वह पीड़ा जो वायु के कारण होती है। ८. दूर करना। हटाना। जैसे, पीड़ा या दुःख।

भंजन[2]—वि० भंजक। तोड़नेवाला। जैसे, भवभंजन, दुःखभंजन। उ०—राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक।—मानस, १।१८।

भंजनक—संज्ञा पुं० [सं० भञ्जनक] एक रोग जिसमें मुँह टेढ़ा हो जाता है जिससे दाँत गिर जाते हैं। लकवा। भंग।

भंजना[1]—स्त्री० [सं० भञ्जना] विवृति। स्पष्टीकरण। विवरण [को०]।

भंजना(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० भञ्जन] तोड़ना। टुकड़े टुकड़े करना। उ०—उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक संतापा।—तुलसी (शब्द०)।

भंजनागिरि—संज्ञा पुं० [सं० भञ्जनागिरि] एक पर्वत का नाम।

भंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० भञ्जा] अन्नपूर्णा का एक नाम।

भंजिका—वि० [सं० भञ्जिका] भंग करनेवाली। तोड़नेवाली। उ०—प्रेजुडीस सेश मान भंजिका। मद्यपान घोर रंग रंजिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८४५।

भंजिता—संज्ञा पुं० [सं० भञ्जन] भंग करनेवाला। नाशक। दूर करनेवाला। उ०—दादू मैं भिखारी मंगिता, दरसन देहु दयाल। तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु सँभाल।—दादू० बानी, पृ० ५९।

भंभा—संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी जो कूएँ के किनारे के खंभे या मोटे के ऊपर आड़ी रखी जाती है और जिसपर गड़ारी लगाकर धुरे टिकाए जाते हैं।

भंटक—संज्ञा पुं० [सं० भण्टक] मरसा नामक साग।

भंटा—संज्ञा पुं० [सं० वृन्ताक] बैंगन।

भंटाकी—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्टाकी] बैंगन। भंटा [को०]।

भंटुक, भंटूक—संज्ञा पुं० [सं० भण्टुक, भण्टूक] श्योनाक।

भंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० भण्ड] १. भाँड़। वि० दे० 'भाँड़'। २. भाँट। ३. उपकरण। सामान। बर्तन भाँड़ा।

भंड[2]—वि० १. अश्लील या गंदी बातें बकनेवाला। २. धूर्त पाखंडी। उ०—बैठा हूँ मैं भंड साधुता धारण करके।—साकेत, पृ० ४०२।

भंडन—संज्ञा पुं० [सं० भण्डन] १. हानि। क्षति। २. युद्ध। ३. कवच। उ०—सेल सोधकर रंग बिनु, पाए भंडन जुद्द। बहुरि सुभट जे सुभट सौं सिंह रूप है कुद्द।—हिं० प्रेमगाथा०, पृ० २२३।

भंडना—क्रि० स० [सं० भण्डन] १. हानि पहुँचाना। बिगाड़ना। २. भंग करना। तोड़ना। ३. गड़बड़ करना। नष्ट भ्रष्ट करना। ४. बदनाम करना। अपकीर्ति फैलाना।

भंडपना—संज्ञा पुं० [हिं० भाँड+पना] १. भाँड़ों की क्रिया या भाव। भँड़ैती। २. अश्लीलता। उ०—भला और क्या चाहेंगे, हमारा भंडपना जारी ही रहा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६७।

भंडर—संज्ञा पुं० [सं० भट्ट] दे० 'भड्डर'।

भंडरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० भंडार+इया (प्रत्य०)] दीवाल में बनी हुई छोटी अलमारी। भंडारी।

भंडा—संज्ञा पुं० [सं० भाण्ड] १. बर्तन। पात्र। भाँडा। उ०—हम गृह फोरहिं शिशु बहु भंडा। तिनहि न देत नेक कोउ दंडा।—गोपाल (शब्द०)। २. भंडारा। ३. भेद। रहस्य।

मुहा०—भंडा फूटना = गुप्त रहस्य खुलना। भेद खुलना। भंडा फोड़ना = गुप्त रहस्य खोलना।

४. वह लकड़ी या बल्ला जिसका सहारा लगाकर मोटे और भारी बल्लों को उठाते या खसकाते हैं।

भंडाकी—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डाकी] भंटा। भंटाकी [को०]।

भंडार—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डागार] १. कोष। खजाना। २.

अन्नादि रखने का स्थान। कोठार। ३. वह स्थान जहाँ व्यंजन पकाकर रखे जाते हैं। पाकशाला। भंडारा। उ०—कबीर जैनी कि हिये बिल्ली को इतबार। साधन व्यंजन मोक्षहित सौंपेउ तेहि भंडार।—कबीर (शब्द०)। ४. पेट। उदर। ५. अग्निकोण। ६. दे० 'भंडारा'।

यौ०—भंडारघर=(१) कोष। खजाना। (२) कोठार। (३) पाठशाला।

भंडारा—संज्ञा पुं० [हिं० भंडार] १. दे० 'भंडार'। २. समूह। झुंड।

क्रि० प्र०—जुड़ना वा जुटना।—जोड़ना।

३. साधुओं का भोज। वह भोज जिसमें संन्यासी और साधु आदि खिलाए जाते हैं। उ०—विजय कियो भरि आनंद भारा। होय नाथ इत ही भंडारा।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।—जुड़ना।—खाना।

४. पेट। उ०—उक्त पुरुष ने अपने स्थान से उचककर चाहा कि एक हाथ कटार का ऐसा लगाए कि भंडारा खुल जाय, पर पथिक ने झपटकर उसके हाथ से कटार छीन लिया।—अयोध्यासिंह (शब्द०)।

मुहा०—भंडारा खुल जाना=पेट फटने से आँतों का निकल पड़ना। उ०—और बाँक बनौट से वाकिफ न होते तो भंडारा खुल जाता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३६।

भंडारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भंडार+ई (प्रत्य०)] १. छोटी कोठरी। २. कोश। खजाना। ३. दीवाल में बनी हुई छोटी अलमारी। भंडरिया।

भंडारी[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भंडार+ई (प्रत्य०)] १. खजानची। कोषाध्यक्ष। २. तोशाखाने का दारोगा। भंडारे का प्रधान अध्यक्ष। ३. रसोइया। रसोईदार।

भंडारी[3]—संज्ञा पुं० [?] जैनियों की एक शाखा। उ०—भंडारी आया परब, रायाचंद सहास।—रा० रू०, पृ० ३२०।

भंडासुर—संज्ञा पुं० [?] पाखंडी राक्षस। उ०—जै चमुंड जै चंड मुंड भंडासुर खंडिनि।—भूषण ग्रं०, पृ० ३।

भंडि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डि] १. तरंग। लहर। बीचि। २. मजीठ। मंजिष्ठा।

भंडि[2]—संज्ञा पुं० सिरिस का वृक्ष [को०]।

भंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डिका] मंजिष्ठा। मजीठ [को०]।

भंडित[1]—संज्ञा पुं० [सं० भण्डित] एक गोत्रकार ऋषि का नाम।

भंडित[2]—वि० [सं०] १. तिरस्कृत। तिरस्करणीय। २. भँड़ैती करनेवाला। भाँड़। उ०—पंडित भंडित अरु कतवारी, पलटी सभा विकलता नारी। अपढ़ विपर जोगी घरबारी, नाथ कहे रे पूता इनका संग निवारी।—गोरख०, पृ० २६१।

भंडिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डिमन्] छल। धोखा।

भंडिर—संज्ञा पुं० [सं०] सिरसा। शिरीष।

भंडिल[1]—संज्ञा पुं० [सं० भण्डिल] १. सिरस का पेड़। २. दूत। ३. शिल्पी। ४. प्रसन्नता। ५. भाग्य। किस्मत।

भंडिल[2]—वि० अच्छा। शुभ।

भंडी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डी] दे० 'भंडि' [को०]।

भंडी[2]—संज्ञा पुं० [सं० भण्ड] भाँट। मागध। स्तुतिपाठक। उ०—कवि एक भंडी शिडिभी प्रमानं। किते तार झंकार विद्या सुजान।—पृ० रा०, १६।२।

भंडीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डीतकी] मजीठ।

भंडीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौलाई। २. सिरसा। ३. वट। बरगद। ४. भँड़भाँड़। ५. भांडीर वन। बरगद का वन। उ०—वट भँडीर निवास नित, राधारसिक प्रसंस।—घनानंद, पृ० २६८।

भंडीरलतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डीरलतिका] मजीठ।

भंडीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० भण्डीरी] मजिष्ठा। मजीठ।

भंडील—संज्ञा पुं० [सं० भण्डील] मंजिष्ठा। भंडीरी [को०]।

भंडुक, भंडूक—संज्ञा पुं० [सं० भण्डुक, भण्डूक] १. भाकुर नामक मछली। २. श्योनाक।

भंडेरिया‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भँडरिया'।

भंडेरियापन—संज्ञा पुं० [हिं० भंडेरिया+पन (प्रत्य०)] १. ढोंग। मक्कारी। २. चालाकी।

भंत†—संज्ञा स्त्री० [सं० भक्ति; प्रा० भत्ति; अप० भंति, भंत] दे० 'भाँति'। उ०—(क) ढाढ़ी राच्यूँ ओलग्या गाया बहु बहु भंत।—ढोला०, दू० १८६। (ख) जाके ऐसे लोक अनंता, रचि राखे बिधि बहु भंता।—दादू०, पृ० ५८४।

भंति—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँति] दे० 'भाँति'। उ०—जुरे बर धीर दसों दिसि पति। मनो घन भद्दव वत्तँन भति।—पृ० रा० १२।३३४।

भंते—संज्ञा पुं० [हिं०] बौद्धों द्वारा प्रयुक्त आदरसूचक शब्द। उ०—परंतु आप भंते, यहाँ उस सुरक्षित कोष्ठ में बिना अनुमति आ कैसे पहुँचे।—वैशाली०, पृ० ११४।

भंद—संज्ञा पुं० [सं० भन्द] १. प्रसन्नता। खुशी। २. अभ्युदय। सौभाग्य [को०]।

भंदिल—संज्ञा पुं० [सं० भन्दिल] १. अभ्युदय। भाग्य। २. दूत। संदेशवाहक। ३. चंचल गति। स्खलित गति [को०]।

भंभ—संज्ञा पुं० [सं० भम्भ] १. भ्रमर। मक्षिका। २. धूम्र। धुआँ। ३. चूल्हे का मुँह [को०]।

भंभर—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] विह्वल। चंचल। तरल।

यौ०—भंभरनैनी(पु)=चंचल नेत्रवाली। भ्रमभंभर=भ्रम से चंचल उ०—इक बधिय इक बधिय एक भगिय भ्रमभंभर।—प० रा० (उ०), पृ० १०३।

भंभराली—संज्ञा स्त्री० [सं० भम्भराली] दे० 'भंभरालिका'।

भभलो—संज्ञा पुं० [देशी] मूर्ख।—देशी०, पृ० २५६।

भंभा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भम्भा] भेरी। डिंडिम। डुग्गी [को०]।

भंभा²—संज्ञा पुं० [सं० भम्भ = (चूल्हे का छेद); या० अनुध्व०] बहुत बड़ा बिल या गर्त।

भंभारव—संज्ञा पुं० [सं० भम्भारव] गाय के रँभाने का शब्द [को०]।

भमना†Ⓟ—क्रि० अ० [सं० भ्रमण, हिं० भँवना] इधर उधर घूमना। भँवना। उ०—इक बंधिय इक बधिय एक भंमिय भ्रम भीभर।—पृ० रा०, ६।१२।

भँइस†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भैंस] दे० 'भैंस'।

भँकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्कारी] १. भुनगा। २. एक प्रकार का छोटा मच्छर।

भँगरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० भाँग + रा (=का)] भाँग के रेशे से बना हुआ एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो बिछाने या बोरा बनाने के काम में आता है।

भँगरा²—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराज] एक प्रकार की वनस्पति जो बरसात मे, विशेषकर प्रायः ऐसी जगह, जहाँ पानी का सोता बहता है, या कूएँ आदि के किनारे, उगती है। भँगरैया। भृंगराज।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लँबोतरी, नुकीली, कटावदार और मोटे दल की होती हैं, जिनका ऊपरी भाग गहरे हरे रंग का और नीचे का भाग हलके रंग का खुर्दुरा होता है। इसकी पत्तियों को निचोड़ने से काले रंग का रस निकलता है। वैद्यक में इसका स्वाद कड़वा और चरपरा, प्रकृति रूखी और गरम तथा गुण कफनाशक, रक्तशोधक, नेत्ररोग और शिर की पीडा को दूर करनेवाला लिखा है और इसे रसायन माना है। यह तीन प्रकार का होता है—एक पीले फूल का जिसे स्वर्ण भृंगार, हरिवास, देवप्रिय आदि कहते हैं; दूसरा सफेद फूल का और तीसरा काले फूल का जिसे नील भृंगराज, महानील, सुनीलज, महाभृंग, नीलपुष्प या श्यामल कहते हैं। सफेद भँगरा तो प्रायः सब जगह और पीला भँगरा कहीं कही होता है; पर काले फूल का भँगरा जल्दी नही मिलता। यह अलभ्य है और रसायन माना गया है। लोगो का विश्वास है कि काले फूल के भँगरे के प्रयोग से सफेद पके बाल सदा के लिये काले हो जाते हैं। सफेद फूल के भँगरे की दो जातियाँ हैं—एक हरे डंठलवाली, दूसरी काले डंठलवाली।

पर्या०—मार्कव। भृंगराज। केशरंजन। रंगक। कुवेलवर्धन। भृंगार। मर्कर।

भँगार¹—संज्ञा पुं० [सं० भङ्ग] १ जमीन मे का वह गड्ढा जो बरसात के दिनो में आपसे आप हो जाता है और जिसमे वर्षा का पानी समाता है। २ वह गड्ढा जो कुआँ बनाते समय खोदा जाता है।

भँगार²—संज्ञा सं० [हिं० भाँग] घास फूस। कूड़ा करकट। उ०—(क) माला फेरे कुछ नही डारि मुआ गल भार। ऊपर ढेला ही गला भीतर भरा भँगार।—कबीर (शब्द०)। (ख) वैष्णव भया तो क्या भया माला पहिरी चार। ऊपर कलो लपेट के भीतर भरा भँगार।—कबीर (शब्द०)।

भँगारिⓅ—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भंगा + र, कुमा० भँगार (= राख)] गदगी। राख। छार। उ०—सुंदर देह मलीन है राख्यो रूप सँवारि। ऊपर ते कलई करी भीतरि भरी भँगारि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७२०।

भँगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गारी] मच्छड़। दे० 'भँकारी'।

भँगिया—संज्ञा स्त्री० [सं० भङ्गा + हिं० इया] दे० 'भाँग'। उ०—जोगिया भँगिया खवाइल, बौरानी फिरो दिवानी।—जग० बानी, पृ० १३५।

भँगिरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० भँगरा'।

भँगेड़ी—वि० [हिं० भाँग + एड़ी (प्रत्य०)] जिसे भाँग पीने की लत हो। बहुत अधिक भाँग पीनेवाला। भाँगड़।

भँगेरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० भाँग + एरा (प्रत्य०)] भाँग की छाल का बना हुआ कपड़ा। भँगरा। भँगेला।

भँगेरा²—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराज] भँगरा। भँगरैया।

भँगेला—संज्ञा पुं० [हिं भाँग + एला (प्रत्य०)] भाँग की छाल का बना हुआ कपड़ा। भँगेरा। भँगरा।

भँजना—क्रि० अ० [सं० भञ्जन] १. किसी पदार्थ के सयोजक अंगों का अलग अलग होना। टुकड़े टुकड़े होना। टूटना। २. किसी बड़े सिक्के का छोटे छोटे सिक्कों के रूप में बदला जाना। भुनना। जैसे, रुपया भँजना।

भँजना—क्रि० अ० [हिं० भाँजना] १. बटा जाना। जैसे, रस्सी वा तागे का भँजना। २. कागज के तख्तो का कई परतो मे मोड़ा जाना। भाँजा जाना।

भँजनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँजना] करघे का एक अंग जो ताने को विस्तृत रखने के लिये उसके किनारे पर लगाया जाता है। यह बाँस की तीन चिकनी, सीधी और दृढ़ लकड़ियो से बनता है जो पास पास समानातर पर रहती हैं। इन्हीं तीनों लकड़ियो के बीच की संधियो मे से ऊपर नीचे होकर ताना लगाया जाता है। वह बुननेवाले के सामने किनारे पर रहता है। भँसरा।

भँजाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँजना] १. रुपया नोट आदि को भँजाने के लिये दी जानेवाली रकम। २. भाँजने की मजदूरी। ३. भाँजने की क्रिया या भाव।

भँजाना†¹—क्रि० स० [हिं० भँजना] १. भँजने का सकर्मक रूप। भागो वा अंशो मे परिणत कराना। तुड़वाना। २. बड़ा सिक्का आदि देकर उतने ही मूल्य के छोटे सिक्के लेना। भुनाना। जैसे, रुपया भँजाना।

भँजाना²—क्रि० स० [हिं० भाँजना] भाँजने का प्रेरणार्थक रूप। दूसरे को भाँजने के लिये प्रेरणा करना वा नियुक्त करना। जैसे, रस्सी भँजाना, कागज भँजाना।

भँटकटैया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भटकटैया'।

भँडताल—संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़ + ताल] एक प्रकार का निम्न कोटि

का गाना और नाच जिसमें गानेवाला गाता है और शेष समाजी उसके पीछे तालियाँ पीटते हैं। भँडतिल्ला। उ०—साँग सगीत भँडताल रहस होने लगा।—इंशाअल्ला (शब्द०)।

भँड़तिल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० भांड] दे० 'भँडताल'।

भँड़फोड़—संज्ञा पुं० [हिं० भाँडा + फोडना] १. मिट्टी के बरतनों को गिराना या तोड़ना फोड़ना। उ०—जब हम देत लेत नहि छोरा। पाछे आह करत भँड़फोरा।—गिरधरदास (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। —मचना।—मचाना।—होना।

२. मिट्टी के बर्तनों का टूटना फूटना। ३. भेद खोलने का भाव। रहस्योद्‌घाटन। भंडाफोड़ करना।

भँड़भाँड—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डीर] एक कँटीला क्षुप जिसकी पत्तियाँ नुकीली, लबी और कँटीली होती हैं। यह जाड़े के दिनों में उगता है। भड़भांड।

विशेष—इसका फूल पोस्त के फूल के आकार का पीले या बसंती रंग का होता है। फूल के झड़ जाने पर पोस्त की तरह लबी और काँटों से युक्त ढेंढी लगती है जिसमें पकने पर काले रंग के पोस्त से और कुछ बड़े दाने निकलते हैं। इन दानों को पेरने से तेल निकलता है जो जलाने और दवा के काम आता है। इसके पौधे से पीले रग का दूध निकलता है जो घाव और चोट पर लगाया जाता है। उसकी जड़ भी फोड़े फुंसियों पर पीसकर लगाई जाती है। इसके नरम डंठल की गूदी की तरकारी भी बनाई जाती है।

भँडरिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भड्डरी] एक जाति का नाम। भड्डर।

विशेष—इस जाति के लोग फलित ज्योतिष या सामुद्रिक आदि की सहायता से लोगों को भविष्य बताकर अपना निर्वाह करते हैं और शनैश्चरादि ग्रहों का दान भी लेते हैं। कहीं कहीं इस जाति के लोग तीर्थों में यात्रियों को स्नान और दर्शन आदि भी कराते हैं। इस जाति के लोग माने तो ब्राह्मण ही जाते हैं, पर ब्राह्मणों में बिलकुल अतिम श्रेणी के समझे जाते हैं।

भँडरिया[2]—वि० १. ढोंगी। पाखंडी। २. धूर्त। मक्कार।

भँडरिया[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भड़ारा + इया (प्रत्य०)] दीवारों अथवा उनकी संधियों मे बना हुआ ताख या छोटी कोठी जिसके आगे छोटे छोटे दरवाजे लगे रहते हैं और जिसमें छोटी मोटी चीजें रखी जाती हैं। भडरिया।

भँड़सार, भँड़साल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भांड + शाला] वह गोदाम जहाँ सस्ता अन्न खरीदकर महँगी में बेचने के लिये इकट्ठा किया जाता है। खत्ता। खत्तो। उ०—पूँजी को अंत न पारा। हम करी बहुत भँड़सारा।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८८८।

भँड़हर—संज्ञा पुं० [सं० भाण्ड] १. कच्ची मिट्टी का पकाया हुआ पात्र। मिट्टी के बर्तन। २. पिंड। शरीर। (लाक्ष०)। उ०—चढत चढ़ावत भँडहर फोरी। मन नहिं जाने केकर चोरी।—कबीर० बी० (शिशु०), पृ० २१४।

भँड़ाना—क्रि० स० [हिं० भाँड़] १. उछल कूद मचाना। उपद्रव करना। २. दौड़ धूप करके वस्तुओं को अस्त व्यस्त करना या तोड़ना फोड़ना। नष्ट करना। उ०—नद घरनि सुत भलो पढायो। ब्रज की बीथिन पुरनि घरनि घर घाट घाट सब शोर मचायो। लरिकन मारि भजत काहू के काहू को दधि दूध लुटायो। काहू के घर करत बड़ाई मैं ज्यों त्यों करि पकरन पायो। अब तौ इन्हैं जकरि बाँधौंगी इहि सब तुम्हरो गाँव भँडायो। सूरश्याम भुज गहि नँदरानी बहुरि कान्ह सपने ढिग आयो।—सूर (शब्द०)।

भँडारा—संज्ञा पुं० [हिं० भंडार] १. दे० 'भंडार'। २. समूह। झुंड। उ०—पान करत जल पाप अपारा। कोटि जनम कर जुरा भँडारा। नाश होइ दिन मह महिपाला। सत्य सत्य यह बचन रसाला।—(शब्द०)। ३. दे० 'भडारा'।

क्रि० प्र०—जुटना।—जुड़ना।—जुरना।—जोड़ना।

भँडारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. छोटी कोठरी। २. कोश। खजाना। उ०—कौरव पासा कपट बनाए। धर्मपुत्र को जुवा खेलाए। तिन हारी सब भूमि भँडारी। हारी बहुरि द्रोपदी नारी।—सूर (शब्द०)।

भँडारी[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भडारी] १. कोषाध्यक्ष। उ०—(क) शेरशाह सम दूज न कोऊ। समुंद सुमेरु भँडारी दोऊ।—जायसी (शब्द०)। (ख) बोलि सचिव सेवक सखा पटधारि भँडारी।—तुलसी (शब्द०)। २. तोशखाने का दारोगा। उ०—पद्मावति पहँ आइ भँडारी। कहेसि मँदिर महँ परी मँजारी।—जायसी (शब्द०)।

भँड़िहा—संज्ञा पुं० [?] चोर।

भँडुआ—संज्ञा पुं० [सं० भाण्ड] दे० 'भडुआ'।—वर्ण०, पृ० २।

भड़ेर—संज्ञा पुं० [देश०] घूँट नामक झाड़ या वृक्ष जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है। वि० दे० 'घूँट'।

भँड़ेरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़] दे० 'भँडरिया'।

भँड़ेहर†—संज्ञा पुं० [सं० भाण्ड] मिट्टी का पात्र जो रँगा गया हो।

भँडौआ—संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़] १. भाँड़ों के गाने का गीत। ऐसा गीत जो सभ्य अथवा शिष्ट समाज मे गाने के योग्य न समझा जाय। २. हास्य आदि रसों की साधारण अथवा निम्नकोटि की कविता। जैसे, भड़ौआ संग्रह।

भँबूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बबूर] बबूल की जाति का एक पेड़ जिसे फुलाई भी कहते हैं। दे० फुलाई'।

भँभरना—क्रि० अ० [हिं० भय + रना (प्रत्य०)] [संज्ञा भँभेरिया]

ऐंचि खरो पकरो पट। तौ लगि गाय भँभाय उठी कवि देव बधू न मथ्यो दधि को मट। जागि परी तौ न कान्ह कहूँ न कदंब को कुंज न कालिंदी को तट।—देव (शब्द०)।

भँभीरी[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] एक प्रकार का पतिंगा इसे जुलाहा भी कहते हैं। उ०—बाल अवस्था को तुम धाई। उड़त भँभीरी पकरी जाई।—सूर० (शब्द०)।

विशेष—इसकी पूँछ लंबी और पतली, रंग लाल और बिलकुल झिल्ली के समान पारदर्शक चार पर होते हैं। इसकी आँखें टिड्डी की आँखों की तरह बड़ी और ऊपर निकली रहती हैं। यह वर्षा के अंत में दिखाई पड़ता है और प्रायः पानी के किनारे घासों के ऊपर उड़ता है। पकड़ने पर यह अपने परों को हिलाकर भन भन शब्द करता है।

भँभीरी[2]—संज्ञा स्त्री० फिरहरी। फिरकी। फिरेरी। उ०—बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर भा फिरै भँभीरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १५२।

भँभेरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० भँभरना] भय। डर। उ०—राज मराल को बालक पेलि कै पालत लालत पुसर को। सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को। गुन ज्ञान गुमान भँभेरि बड़ी कल्पद्रुम काटत मूसर को। कलिकाल अचार विचार हरी नहीं सूझै कछू धमधूसर को।—तुलसी (शब्द०)।

भँमर, भँमरा—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] १. बड़ी मधुमक्खी। सारंग। डंगर। २. बर्रे। भिड़।

भँवनि—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] घूमना फिरना। उ०—देखत खग निकट मृग खनन्हि जुत थकित बिसारि जहाँ तहाँ की भँवनि।—तुलसी (शब्द०)।

भँवना—क्रि० अ० [सं० भ्रमण] १. घूमना। फिरना। उ०—(क) लंपट लुबुध मन भव से भँवत कहा करि भूरि भाव ताकी भावना भवन में।—मतिराम (शब्द०)। (ख) भौंर ज्यों जगत निशि चातक ज्यों भँवत श्याम नाम तेरोई जपत है।—केशव (शब्द०)। २. चक्कर लगाना। उ०—केशोदास आसपास भँवत भँवर जल केलि में जलजमुखी जलज सी सोहिए।—केशव (शब्द०)।

भँवर—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर, प्रा० भँवर] १. भौंरा। उ०—कुदरत पाई खीर सो चित्त सों चित्त मिलाय। भँवर विलंबा कमल रस अब कैसे उड़ि जाय।—कबीर (शब्द०)। २. पानी के बहाव में वह स्थान जहाँ पानी की लहर एक केंद्र पर चक्राकार घूमती है। ऐसे स्थान पर यदि मनुष्य या नाव आदि पहुँच जाय, तो उसके डूबने की संभावना रहती है। आवर्त। चक्कर। यमकातर। उ०—(क) तड़ित विनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीन। नाभि मनोहर लेत जनु जमुन भँवर छवि छीन।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भागहु रे भागो भैया भागनि ज्यों भाग्यो, परे भव के भवन माँझ भय को भँवर है।—केशव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—परना।

मुहा०—भँवर में पड़ना = चक्कर में पड़ना। घबरा जाना।

उ०—यह सुठि लहरि लहरि पर धावा। भँवर परा जिउ थाह न पावा।—जायसी ग्रं०, पृ० २८९।

यौ०—भँवरकली। भँवरजाल। भँवरभीख।

३. गड्ढा। गर्त। उ०—उरज भँवरी भँवर मानो मीनमणि कांति। भृगुचरण हृदय चिह्न ये सब, जीव जल बहु भाँति।—सूर (शब्द०)।

भँवरकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भँवर + कली] लोहे या पीतल की वह कड़ी जो कील में इस प्रकार जड़ी रहती है कि वह जिधर चाहे, उधर सहज में घुमाई जा सकती है।

विशेष—यह प्रायः पशुओं के गले की सिकड़ी या पट्टे आदि में लगी रहती है। पशु चाहे जितने चक्कर लगावें, पर इसकी सहायता से उसकी सिकड़ी में बल नहीं पड़ने पाता। घूमने वाली कुंडी या कड़ी।

भँवरगीत—संज्ञा पुं० [हिं० भँवर (= भ्रमर) + गीत] दे० 'भ्रमरगीत'।

भँवरगुंजार—संज्ञा पुं० दे० [देश०] एक प्रकार का डिंगल गीत। इसके पहले पद में १६, दूसरे पद के अंत में दो लघु सहित १४, तीसरे में १४ और चतुर्थ पद के अंत में २ गुरु सहित ६ मात्राएँ होती हैं। जैसे,—निज धनुष गह कर जगत नायक, सात बेधे ताड़ सायक। गहक दुंदभ फरक नभ मग, जमे जस जागे।—रघु० रू०, पृ० १५०।

भँवरगुफा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] योगियों द्वारा साधना में एक कल्पित गुफा। ब्रह्मरंध्र। उ०—(क) पिय की मीठी बोल सुनत मैं भई दिवानी। भँवरगुफा के बीच उठत है सोहं बानी।—पलटू०, भा० १, पृ० २। (ख) भँवरगुफा में है तिवेनी सुरति निरति लै धावो।—चरण० बानी, पृ० ६६।

भँवरजाल—संज्ञा पुं० [हिं० भवर + जाल] संसार और सांसारिक झगड़े बखेड़े। भवजाल। भ्रमजाल। उ०—भँवरजाल में आसन माडा। चाहत सुख दुख संग न छाड़ा।—कबीर (शब्द०)।

भँवरभीख—संज्ञा स्त्री० [हिं० भँवर + भीख] वह भीख जो भौंरे के समान घूम फिरकर माँगी जाय। तीन प्रकार की भिक्षा में से दूसरी। उ०—भँवरभीख मध्यम कही सुनो संत चित लाय। कहै कबीर ताको गही मध्यम माहिं समाय।—कबीर (शब्द०)।

भँवरा—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] दे० 'भौंरा'।

भँवरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भँवरा] १. पानी का चक्कर। भँवर। उ०—जहँ नदि नीर गँभीर तहाँ भल भँवरी परई। छिल छिल सलिल न परै परै तौ छवि नहिं करई।—नंद० ग्रं०, पृ० १३। २. जंतुओं के शरीर के ऊपर वह स्थान जहाँ के रोएँ और बाल एक केंद्र पर घूमे हुए हों। बालों का इस प्रकार का घुमाव स्थानभेद से शुभ अथवा अशुभ लक्षण माना जाता है। उ०—श्याम उर सुधा दह मानो।······ उरजु भँवरी भँवर, मीनो नील मनि की कांति। भृगुचरन हिय चिह्न ये सब जीव जल बहु भाँति।—सूर०, १०।१८३८।

भँवरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भँवरना या भँवना] १. दे० 'भाँवर'।

२. बनियों का सौदा लेकर घूम घूमकर बेचना। फेरी। ३. रक्षक, कोतवाल या अन्य कर्मचारियों का प्रजा की रक्षा के लिये चक्कर लगाना। फेरी। गश्त। उ०—फिरै पाँव कुतवार सु भँवरी। काँपै पाउँ चंपत वह पौरी।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—फिरना।—लगाना।

४. परिक्रमा। (स्त्रियाँ)।

क्रि० प्र०—देना।

भँवा—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू, हिं० भौं] दे० 'भौं'। उ०—शारिज भँवाँ अलक टेढ़ी मनो अति सुगंधि रस अटके।—संतबानी०, भा० २, पृ० ७६।

भँवानाⓅ—क्रि० स० [हिं० भँवना] १. घुमाना। फिराना। चक्कर देना। उ०—(क) ग्यारे चंद्र पूर्व फिर जाय। बहु कष्टि सों दिवस भँवाय।—जायसी (शब्द०)। (ख) तेहि अंगद कहू लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भँवाई।—तुलसी (शब्द०)। २. भ्रम में डालना। उलझन में डालना।

भँवारा†—वि० [हिं० भँवना + आरा (प्रत्य०)] भ्रमणशील। घूमनेवाला। फिरनेवाला। उ०—बिलग मत मानो ऊधो प्यारे। यह मथुरा काजर की डाबरि जे आवैं ते कारे। तुम कारे सुफलक सुत कारे कारे मधुप भँवारे। ता गुण श्याम अधिक छबि उपजत कमल नैन मणि पारे।—सूर (शब्द०)। (ख) बिबरन आनन अरिगनी निरखि भँवारे मोर। दरकि गई आँगी नई फरकि उठे कुच कोर।—शृं० सत० (शब्द०)।

भँसना—क्रि० अ० [हिं० बहना] १. पानी के ऊपर तैरना। जैसे, भँसता जहाज। (लश०)। २. पानी में डाला या फेंका जाना। दे० 'भसाना'।

भँसरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भँसनी'।

भँसान†—वि० पुं० [बंग० भासान] पूजित देवमूर्ति का जल में विसर्जन। भसान।

भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। २. ग्रह। ३. राशि। ४. शुक्राचार्य। ५. भ्रमर। भौंरा। ६. भूधर। पहाड़। ७. भ्रांति। ८. छंदशास्त्रानुसार एक गण का नाम जिसके आदि का वर्ण गुरु और शेष दो लघु ऽ।। होते हैं। भगण।

भइआ†—संज्ञा पुं० [हिं० भाई] दे० 'भैया'। उ०—अरेरे पथिक भइया समाद लए जइह, जाहि देस बस मोर नाह।—विद्यापति, पृ० ११८।

भइरव†—संज्ञा पुं० [सं० भैरव] दे० 'भैरव'। उ०—जोही आँखू भइरव चाँपा का फूल, चोवा चंदन अंग कपूर।—बी० रासो, पृ० २९।

भइया—संज्ञा पुं० [हिं० भाई + इया (प्रत्य०)] १. भाई। उ०—मोर के आए दोऊ भइया। कीनों नाहिन कलेऊ दइया।—नंद० ग्रं०, पृ० २५५। २. एक आदरसूचक शब्द जिसका व्यवहार प्रायः बराबरवालों के लिये होता है।

भउँहा†—संज्ञा स्त्री० [अप० भउँह (म० पु०, ११२२), हिं० भौंह] दे०—'भौं'। उ०—भउँह धनु गुन काजर रेख। मार नम व पुंख अवशेष।—विद्यापति, पृ० १६।

भउजाई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० भौजाई < सं० भ्रातृजाया] दे० 'भौजाई'।

भउजी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भौजाई'। उ०—रामशंकर जी ने दूसरा दृश्य जो उनका असली है दिखाया। कहा, कालिन भउजी, वही आज फिर दे जाओ। यह तुम्हारे भतीजे हैं, इनका कुछ आदर, स्वागत करना है।—कालै०, पृ० १६।

भउरा†—संज्ञा० पुं० [हिं०] १. दे० 'भौंरा'। उ०—जो जन जाय, रहै तहँ शिव होय ज्यों अलीअल पर भउरा।—प्राण०, पृ० ६५। २. कंडे की निर्धूम अग्नि।

भक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सहसा अथवा रह रहकर आग के जल उठने अथवा वेग से धुएँ के निकलने के कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द। इसका प्रयोग प्रायः 'से' विभक्ति के साथ होता है। जैसे लंप भक से जल उठा।

भकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रकक्षा।

भकटाना‡—क्रि० अ० [?] दे० 'भकसाना'।

भकठना‡—क्रि० अ० [सं० विकार] दे० 'भगरना'।

भकति—संज्ञा स्त्री० [सं० भक्ति] दे० 'भक्ति'। उ०—वहु विभूति हरि द्विज क्यों दीनी। दया भकति पतंनी सुभ कीनी।—नंद० ग्रं०, पृ० २१२।

भकभक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'भक'।

भकभकाना—क्रि० अ० [अनु०] भक भक शब्द करते हुए जलना। चमकना या भभकना।

भकराँध—संज्ञा स्त्री० [हिं० भगरना अथवा भक्त (= भात)? + गंध] अनाज के सड़ने की गंध। सड़े हुए अनाज की गंध।

भकराँधा†—वि० [हिं० भकराँध + आ (प्रत्य०)] सड़ा हुआ अन्न।

भकसा†—वि० [हिं० भकसाना या भकटाना] (खाद्य पदार्थ) जो अधिक समय तक पड़ा रहने के कारण कसैला हो गया हो और जिसमें से एक विशेष प्रकार की दुर्गंध आती हो। बुसा हुआ।

भकसाना†—क्रि० अ० [हिं० कसाव] किसी खाद्य पदार्थ का अधिक समय तक पड़े रहने अथवा और किसी कारण से बदबूदार और कसैला हो जाना।

भकाऊँ—संज्ञा पुं० [अनु० या हिं० बीघ (= भेड़िया)] बच्चों को डराने के लिये एक कल्पित व्यक्ति। हौवा।

भकुआ†—वि० [देश०] मूर्ख। मूढ़। हतबुद्धि। बुद्धू। बेवकूफ। उ०—अपने देश की बनी वस्तुओं को छोड़कर

विदेशी पदार्थ ले लेकर भकुआ बनने के प्रत्यक्ष प्रमाण बनते हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३५।

भकुआना[1]—क्रि० अ० [हिं० भकुआ+ना (प्रत्य०)] चकपका जाना। घबरा जाना।

भकुआना[2]—क्रि० स० १. चकपका देना। घबरा देना। २. मूर्ख बनाना।

भकुड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० भाँकुट] मोटा गज जिससे तोप में बत्ती आदि ठूँसी जाती है।

भकुड़ाना†—क्रि० स० [हिं० भकुडा+आना (प्रत्य०)] १. लोहे के गज से तोप के मुँह में बत्ती भरना। २. लोहे के गज से तोप के मुँह का भीतरी भाग साफ करना।

भकुरना†—क्रि० अ० [देश०] मुँह लटकाना। रूठ जाना। उ०—निनी ने मनाया, अभी ठहर भी, यों ही भकुरने लगी।—मृग०, पृ० ४८।

भकुरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] मूर्ख। भकुआ। अज्ञानी। उ०—मान गवाए सोइ सब, जो संपति हुति साथ। अजहूँ जागु न घर बसे, भकुरे है कछु हाथ।—चित्रा०, पृ० ३५।

भकुवा†—वि० [देश०] भकुआ। मूढ़। हतबुद्धि।

भकुवाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० भकुवा+ना] दे० 'भकुआना'। उ०—कासी में जो प्रान तियागे सो पत्थर मे आई। कहैं कबीर सुनो भाई साधो भरमे जन भकुवाई।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ५४।

भकूट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की राशियों का समूह जो विवाह की गणना में शुभ माना जाता है। (फलित ज्यो०)।

भकोसना—क्रि० स० [सं० भक्षण] १. किसी चीज को बिना अच्छी तरह कुचले हुए जल्दी जल्दी खाना। निगलना। ठूँसना। २. खाना (व्यंग्य)।

भक्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

भक्कुड़—संज्ञा पुं० [सं० भक्कुड] एक प्रकार की मछली। भाकुर (को०)।

भक्कू†—वि० [सं० भेक] भकुआ। बोदा। मूर्ख। उ०—दूल्हा भक्कू योंहे था।—नई०, पृ० १४०।

भक्खना(पु)—क्रि० स० [सं० भाषण] भाखना। कहना। उ०—राव हमीर नजरि सव रक्खिय। बचन सेख को यहि विधि भक्खिय।—हृ० रासो, पृ० ५२।

भक्त—वि० [सं०] १. बाँटा हुआ। भागों में बाँटा हुआ। २. बाँटकर दिया हुआ। प्रदत्त। ३. अलग किया हुआ। ४. पक्षपाती। ५. अनुयायी। ६. सेवा करनेवाला। भजन करनेवाला। भक्ति करनेवाला।

भक्त—संज्ञा पुं० १. पका हुआ चावल। भात। २. धन। ३. अन्न। ४. भाग। हिस्सा। ५. वेतन। ६. सेवा पूजा करनेवाला पुरुष। उपासक।

विशेष—भगवद्गीता के अनुसार आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चार प्रकार के भक्त तथा भागवत के अनुसार नवधा भक्ति के भेद से नौ प्रकार के भक्त माने गए हैं।

भक्तकंस—संज्ञा पुं० [सं०] भात (पके हुए चावलों) से भरी काँसे की थाली।

भक्तकर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो अनेक दूसरे द्रव्यों के योग से बनाया जाता है।

भक्तकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. रसोइया। पाचक। २. भक्तकर नामक सुगंधित द्रव्य।

भक्तकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन पकाना (को०)।

भक्तच्छद—संज्ञा पुं० [सं० भक्तच्छन्द] खाने की इच्छा। बुभुक्षा। भूख (को०)।

भक्तजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमृत।

भक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भक्ति।

भक्ततूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो भोजन करते समय बजाया जाता था।

भक्तत्व—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के अंग या भाग होने का भाव। अव्ययीभूत होना। अंगत्व।

भक्तदाता—वि० [सं० भक्तदातृ] भरण पोषण करनेवाला। पालक। भक्तदायक (को०)।

भक्तदायक—वि० [सं०] १. पालन पोषण करनेवाला। सँभाल रखनेवाला। २. समर्थन और सहयोग देनेवाला।

भक्तदायी—वि० [सं० भक्तदायिन्] दे० 'भक्तदायक'।

भक्तदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो केवल भोजन लेकर ही काम करता हो।

विशेष—सात प्रकार के दासों में से यह मनु के अनुसार दूसरे प्रकार का दास है।

भक्तद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] मंदाग्नि। भोजन में अरुचि। उ०—अन्न का स्मरण, श्रवण, दर्शन और वास आदि इनसे जिसको त्रास होय उसको भक्तद्वेष कहते हैं।—माधव०, पृ० १०२।

भक्तपन—संज्ञा पुं० [सं० भक्त+हिं० पन (प्रत्य०)] भक्ति।

भक्तपुलाक—संज्ञा पुं० [सं०] माँड़। पीच।

भक्तबच्छल(पु)—वि० [सं० भक्तवत्सल] दे० 'भक्तवत्सल'।

भक्तबछल(पु)—वि० [सं० भक्त+हिं० बछल] दे० 'भक्तवत्सल'। उ०—राम गरीब नेवाज गरीबन सदा निवाजा। भक्तबछल भगवान करत भक्तन के काजा।—पलटू० बानी, पृ० १५।

भक्तबस्यता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भक्त+वश्यता] भक्त के वश में होने का भाव। उ०—भक्तबस्यता निगम जु गाई। सो श्रीकृष्ण प्रगट दिखराई।—नंद० ग्रं०, पृ० २५०।

भक्तमंड—संज्ञा पुं० [सं० भक्तमण्ड] चावल का माड़।

भक्तमंडक—संज्ञा पुं० [सं० भक्तमण्डक] माँड़। दे० 'भक्तमंड'।

भक्तमाल—संज्ञा पुं० [सं० भक्त+माल] वह ग्रंथ जिसमें हरिभक्तों का वर्णन हो। इस नाम का एक ग्रंथ जिसमें भक्तों का

चरित वर्णन है। इसके रचनाकार नाभादास जी हैं। उ०—'भक्तमाल' में भी इनका वर्णन मिलता है।—अकबरी०, पृ० ३६।

भक्तराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरिभक्तों में श्रेष्ठ व्यक्ति। २. भक्तों के आश्रयदाता। भगवान। उ०—दीन जानि मंदिर पगु धारो। भक्तराज तुम वेगि पधारो।—कबीर० सा०, पृ० ४८७।

भक्तरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन की इच्छा। बुभुक्षा [को०]।

भक्तवत्सल¹—वि० [सं०] [संज्ञा भक्तवत्सलता] जो भक्तों पर कृपा करता हो। भक्तों पर स्नेह रखनेवाला।

भक्तवत्सल²—संज्ञा पुं० विष्णु।

भक्तशरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ भात पकाकर रखा जाता है। रसोईघर।

भक्तशाला—संज्ञा स्त्री० [पुं०] १. पाकशाला। २. वह स्थान जहाँ भक्त लोग बैठकर धर्मोपदेश सुनते हों।

भक्तसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] पात्र जिसमें दाल रखी हो। दाल का बर्तन।

भक्तसिक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भक्तमंड'।

भक्ता—वि० [सं० भक्तृ] पूजक। आराधक।

भक्ताई㉤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भक्त+आई (प्रत्य०)] भक्ति।

भक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनेक भागों में विभक्त करना। बाँटना। २. भाग। विभाग। ३. अंग। अवयव। ४. खंड। ५. वह विभाग जो रेखा द्वारा किया गया हो। ६. विभाग करनेवाली रेखा। ७. सेवा सुश्रूषा। ८. पूजा। अर्चन। ९. श्रद्धा। १०. विश्वास। ११. रचना। १२. अनुराग। स्नेह। १३. शांडिल्य के भक्तिसूत्र के अनुसार ईश्वर में अत्यंत अनुराग का होना।

विशेष—यह गुणभेद से सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार की मानी गई है। भक्तों के अनुसार भक्ति नौ प्रकार की होती है जिसे नवधा भक्ति कहते हैं। वे नौ प्रकार ये हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

१४. जैन मतानुसार वह ज्ञान जिसमें निरतिशय आनंद हो और जो सर्वप्रिय, अनन्य, प्रयोजनविशिष्ट तथा वितृष्णा का उदयकारक हो। १५. गौण वृत्ति। १६. भंगी। १७. उपचार। १८. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण और अंत मे गुरु होता है।

भक्तिकर—वि० [सं०] १. भक्ति के योग्य। २. जिसे देखकर भक्ति उत्पन्न हो। भक्त्युत्पादक।

भक्तिगम्य—वि० [सं०] जो भक्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सके। भक्ति के द्वारा प्राप्य।

भक्तिगंधि—वि० [सं० भक्ति+गन्धि] साधारण भक्तिवाला।

भक्तिचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] रेखांकन। रेखाचित्र [को०]।

भक्तिच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह चित्रकारी जो रेखाओं द्वारा की जाय। २. भक्तों के विशेष चिह्न। जैसे, तिलक, मुद्रा आदि।

भक्तिन—संज्ञा स्त्री० [सं० भक्त+हिं० इन (प्रत्य०)] उ०—भक्तन के भक्तिन होय बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी। कहँ कबीर सुनो भाइ साधो यह सब अकथ कहानी।—कबीर० श०, भा० १, पृ० १५।

भक्तिनम्र—वि० [सं०] भक्तिपूर्वक झुका हुआ [को०]।

भक्तिपूर्व, भक्तिपूर्वक—क्रि० वि० [सं०] भक्ति के साथ। भक्तिसहित।

भक्तिप्रवण—वि० [सं०] भक्ति में तन्मय या लीन।

भक्तिभाजन—वि० [सं०] भक्ति का पात्र। श्रद्धेय। जिसके प्रति भक्ति की जाय। श्रद्धा के योग्य [को०]।

भक्तिमान्—वि० [सं० भक्तिमत्] [स्त्री० भक्तिमती] भक्ति से युक्त। भक्तिवाला।

भक्तिमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष की प्राप्ति का एक मार्ग। भक्ति का पथ।

भक्तियाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपास्य देव में अत्यंत अनुरक्त रहना। सदा भगवान् में श्रद्धापूर्वक मन लगाकर उनकी उपासना करना। २. भक्ति का साधन।

भक्तियोग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भक्तियाग'।

भक्तिरस—संज्ञा पुं० [सं०] उपास्य के प्रति उत्कृष्ट अनुराग। रति।

विशेष—संस्कृत के परवर्ती विद्वानों ने भक्ति को रस के रूप में मान्यता दी है।

भक्तिराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. भक्ति का पूर्वानुराग। २. पूर्णरूपेण भक्ति में तल्लीन होना।

भक्तिल¹—वि० [सं०] भक्तिदायक।

भक्तिल²—संज्ञा पुं० उत्तम घोड़ा। विश्वासी अश्व।

भक्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भक्ति विषयक वार्ता या कथा। २. भक्ति को रस, रूप और ईश्वरप्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन माननेवाला मतवाद।

भक्तिसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव संप्रदाय का एक सूत्र ग्रंथ।

विशेष—यह ग्रंथ शांडिल्य मुनि के नाम से प्रख्यात है। इसमें भक्ति का वर्णन है।

भक्तोद्देशक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के प्राचीन संघाराम का एक कर्मचारी जो इस बात की जाँच करता था कि आज कौन क्या भोजन करेगा।

भक्तोपसाधक—संज्ञा पुं० [सं०] १. रसोइया। २. परिवेशक।

भक्त्यानंद—संज्ञा पुं० [सं० भक्ति+आनन्द] भक्ति का आनंद। उ०—अब विधि भक्त्यानंद जु पग्यो। ब्रज को भाग सराहन लग्यो।—नंद० ग्रं०, पृ० २७२।

भक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाने का पदार्थ। भक्ष्य। खाना। भोजन। २. खाने का काम। भक्षण। उ०—शबरी कटुक बेर तजि मीठे भाषि गोद भरि लाई। जूठे की कछु शंक न मानी भक्ष

किए सतभाई।—सूर (शब्द०)। ३. पान करना। पान। पीना।

यौ०—भक्षकार। भक्षपत्री।

भक्षक—वि० [सं०] [स्त्री० भक्षिका] खानेवाला। भोजन करनेवाला। खादक।

भक्षकार—संज्ञा पुं० [सं०] हलवाई। सूपकार। रसोइया।

भक्षटक—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा गोखरू।

भक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० भक्ष्य, भक्षित, भक्षणीय] १. भोजन करना। किसी वस्तु को दाँतो से काटकर खाना। जैसे, पूआ आदि का खाना। २. आहार। भोजन।

भक्षन—संज्ञा पुं० [सं० भक्षण] दे० 'भक्षण'। उ०—गो भक्षन द्विज श्रुति हिंसन नित जासु कर्म मैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४०।

भक्षना—क्रि० स० [सं० भक्षण] भोजन करना। खाना। उ०—(क) छहूँ रसहूँ बरत आगे वहै गंध सुहाइ। और अहित अभक्ष भक्षति गिरा वरणि न जाइ।—सूर (शब्द०)। (ख) अवि तनु धनु रेखा नेक नाकी न जाकी। खल धार खर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी। बिड़ कन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै। शिव सिर शशि श्री को राहु कैसे सु छीवै।—केशव (शब्द०)। (ग) जाति लता दुहुँ आँख रहि नाम कहै सब कोय। सूधे सुख मुख भक्षिए उलटे भंवर होय।—केशव (शब्द०)।

भक्षयिता—वि० पुं० [सं० भक्षयितृ] भक्षण करनेवाला। खानेवाला।

भक्षिका—वि० [सं०] खानेवाली। भोजन करनेवाली। उ०—मातृ पितृ बंधु शील भक्षिका। लोक लाज नाश हेतु तक्षिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८४४।

भक्षित[1]—वि० [सं०] खाया हुआ। शेष।

भक्षित[2]—संज्ञा पुं० दे० 'भक्ष्य[2]'।

यौ०—भक्षितशेष, भक्षितान्न = उच्छिष्ट। खाने से बचा हुआ।

भक्षी—वि० [सं० भक्षिन्] [स्त्री० भक्षिणी] खानेवाला। भक्षक।

भक्ष्य[1]—वि० [सं०] भक्षण करने योग्य। खाने के योग्य।

भक्ष्य[2]—संज्ञा पुं० खाद्य। अन्न। आहार।

भक्ष्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भक्षकार'।

भक्ष्याभक्ष्य—वि० [सं० भक्ष्य+अभक्ष्य] खाने और न खाने योग्य। खाद्य अखाद्य (पदार्थ)।

भख—संज्ञा पुं० [सं० भक्ष, प्रा० भक्ख] आहार। भक्ष्य। भोजन। उ०—(क) आनँद ब्याह कटै मस खावा। अब भख जन्म जन्म कहँ पावा।—जायसी (शब्द०)। (ख) वेद वेदांत उपनिषद् अरपै सो भख भोक्ता नाहिं। गोपी, ग्वालिन के मंडल में सो हँहि जूठनि खाहिं।—सूर (शब्द०)। (ग) पट पाखै भख काँकरे सफर परेई संग। सुखी परेवा जगत में एकै तुही बिहंग।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—भख करना = खाना। उ०—आछे देहु जो गढ़ तौ जनि चाल्हु यह बात। तिन्हहिं जो पाहन भख करहिं अस केहि के मुख दाँत।—जायसी (शब्द०)

भखना—क्रि० स० [सं० भक्षण > प्रा० भक्खण] १. खाना। भोजन करना। उ०—(क) नीलकंठ कीटा भखै मुख वाके है राम। औगुन वाके लखैं नहिं दर्शन से ही काम।—कबीर (शब्द०)। (ख) कृमि पावक तेरो तन भखिहैं समुझि देखु मन माँही। दीनदयालु सूर हरि भजि ले यह औसर फिर नाहीं।—सूर (शब्द०)। (ग) क्यों करि सीतल बास करै मुख ज्यों भखिए घनसार के साटे।—केशव (शब्द०)। २. निगलना।

भखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो दलदलों में उत्पन्न होती है। खवी।

विशेष—यह नैनीताल में बहुत होती है और छप्पर छाने के काम में आती है। इसकी टट्टियाँ भी बनती हैं। इसके फल में नारंगी की सी महक होती है। पकने पर यह लाल रंग की हो जाती है। इसे चौपाए बड़े चाव से चरते हैं। इसे 'खवी' भी कहते हैं।

भखु—संज्ञा पुं० [सं० भक्ष्य] भक्ष्य। आहार। दे० 'भक्ष'। उ०—चूड़ कुरकुटा पै भखु चाहा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१०।

भक्ख—संज्ञा पुं० [सं० भक्ष] दे० 'भक्ष', 'भक्ष्य'। उ०—बावन्न अजा सुत भक्ख आनि। दीने सु आदि भैरव निदानि।—पृ० रा०, ६।१६६।

भक्खना—क्रि० स० [सं० भाषण] भाखना। कहना। उ०—पथी एक संदेसड़उ, भल मारूस नइ भक्ख।—ढोला०, दू०, ११४।

भगंदर—संज्ञा पुं० [सं० भगन्दर] एक रोग का नाम जो गुदावर्त के किनारे होता है।

विशेष—यह एक प्रकार का फोड़ा है जो फूटकर नासूर हो जाता है और इतना बढ़ जाता है कि उसमें से मल मूत्र निकलता है। जब तक यह फोड़ा फूटता नहीं, तब तक उसे पिड़िका या पीड़िका कहते हैं; और जब फूट जाता है तब उसे भगंदर कहते हैं। फूटने पर इससे लगातार लाल रंग का फेन और पीब निकलता है। यहाँ तक कि यह छेद गहरा होता जाता है और अंत को मल और मूत्र के मार्ग से मिल जाता है और इस राह से मल का अंश निकलने लगता है। वैद्यक में भगंदर की उत्पत्ति पाँच कारणों से मानी गई है और तदनुसार उसके भेद भी पाँच ही माने गए हैं—वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगतु; और इनसे उत्पन्न होनेवाले भगंदर क्रमशः शतपानक, उष्ट्रग्रीव, परिस्रावी, शंबूकावर्त और उन्मार्ग कहलाते हैं। वैद्यक में यह रोग विशेषकर सन्निपातज असाध्य माना गया है। वैद्यों का मत है कि भगंदर रोग में फुन्सियों के होने पर बड़ी खुजलाहट उत्पन्न होती है; फिर पीड़ा, जलन और शोथ होता है। कमर में पीड़ा होती है और कपोल में भी पीड़ा होती है। वैद्यक में इस रोग की

चिकित्सा व्रण के समान ही करने का विधान है। डाक्टर लोग इसे एक प्रकार का नासूर समझते हैं और चीर फाड़ के द्वारा उसकी चिकित्सा करते हैं।

भग—संज्ञा पुं० [सं०] १. योनि। २. सूर्य। ३. बारह आदित्यों में से एक। ४. ऐश्वर्य। ५. छह् प्रकार की विभूतियाँ जिन्हें सम्यगैश्वर्य, सम्यग्वीर्य, सम्यग्यश, सम्यग्श्रिय और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। ६. इच्छा। ७. माहात्म्य। ८. यत्न। ९. धर्म। १०. मोक्ष। ११. सौभाग्य। १२. कांति। १३. चंद्रमा। १४. धन। १५. गुदा। १६. पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र। १७ एक देवता का नाम। पुराणानुसार दक्ष के यज्ञ में वीरभद्र ने इनकी आँख फोड़ दी थी। १८. शिव का एक रूप [को०]। १९. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र (को०)। २०. अंडकोश और गुदा का मध्य भाग (को०)।

भगई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० भगवा] लँगोटी।

भगकाम—वि० [सं०] संभोग करने का इच्छुक।

भगघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

भगण—संज्ञा पुं० [सं०] १. खगोल में ग्रहों का पूरा चक्कर।

विशेष—यह ३६० अंश का होता है जिसे ज्योतिषीगण यथेच्छ राशियों और नक्षत्रों में विभक्त करते हैं। इस चक्कर को शीघ्रगामी ग्रह स्वल्प काल में और मंदगामी दीर्घ काल में पूरा करते हैं। आजकल के ज्योतिषी इस चक्कर का प्रारंभ रेवती के योगतारा से मानते हैं। सूर्यसिद्धांत में ग्रहों का भगण सतयुग के प्रारंभ से माना गया है; पर सिद्धांतशिरोमणि आदि में ग्रहों के भगण का हिसाब कल्पादि से लिया जाता है।

२. छंदःशास्त्रानुसार एक गण जिसमें आदि का एक वर्ण गुरु और अंत के दो वर्ण लघु होते हैं। जैसे,' पावन, भोजन आदि।

भगत¹—वि० [सं० भक्त] [हिं० भगतिन] १. सेवक। उपासक। उ०—बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।—तुलसी (शब्द०)। २. साधु। ३. जो मांस आदि न खाता हो। संकट या साकट का उलटा। ४. विचारवान्।

भगत²—संज्ञा पुं० १. वैष्णव वा वह साधु जो तिलक लगाता और मांस आदि न खाता हो। २. राजपूताने की एक जाति का नाम। इस जाति की कन्याएँ वेश्यावृत्ति और नाचने गाने का काम करती है। दे० 'भगतिया'। ३. होली में वह स्वाँग जो भगत का किया जाता है।

विशेष—इस स्वाँग में एक आदमी को सफेद बालों की दाढ़ी मोछ लगाकर उसके सिर पर तिलक, गले में तुलसी वा किसी और काठ की माला पहनाते हैं और उसके सारे शरीर पर राख लगाकर उसके हाथ मे एक तूँबी और सोंटा दे देते है। वह भगत बना हुआ स्वाँगी जोगीड़े में नाचनेवाले लौंडे के साथ रहता है और बीच बीच में नाचता और भाँड़ों की तरह मसखरापन करता जाता है।

४. भूत प्रेत उतारनेवाला पुरुष। ओझा। सयाना। भोपा। ५. वेश्या के साथ तबला आदि बजाने का काम करनेवाला पुरुष। सफरदाई। (राजपूताना)।

मुहा०—भगतबाज=(१) लौंडों को नचानेवाला। २. स्वाँग भरकर लौंडों को अनेक रूप का बनानेवाला पुरुष।

भगत³—संज्ञा स्त्री० [सं० भक्ति, हिं० भगत, जैसे, आवभगत] सत्कार। खातिर। दे० 'भक्ति'। उ०—पुगल भगतां नव नवी कीधी हरख अपार।—ढोला०, दू० ५६४।

भगतबछलⓅ—वि० [सं० भक्तवत्सल]. दे० 'भक्तवत्सल'। उ०—भगतबछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना।—मानस, १।१४६।

भगतराव—वि० [सं० भक्तराज] भक्तराज। भक्तों मे श्रेष्ठ। उ०—काशी पडत धरो पाव बहोत तहँ से मनाव। नामदेव भगतराव ये बला दूर करो।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

भगतावनⓅ†—क्रि० स० [सं०√भुज्] भुगताना। पहुँचाना। कहना। उ०—मारवणी भगताविया मारू राग निवाइ। ढोला०, दू० १०६।

भगतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० भक्ति] दे० 'भक्ति'। उ०—भगति नारदी रिदै न आई काछि कूछि तन दीना।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२४।

भगतिया—संज्ञा पुं० [हिं० भक्त] [स्त्री० भगतिन] राजपूताने की एक जाति का नाम। उ०—सेठ की दौलत पर गीध के समान ताक लगाए बैठे हुए शिकार भाँड़ भगतिए दूर दूर से आ जमा होने लगे।—बालकृष्ण भट्ट (शब्द०)।

विशेष—इस जाति के लोग वैष्णव साधुओं की संतान हैं जो अब गाने बजाने का काम करते हैं और जिनकी कन्याएँ वेश्याओं की वृत्ति करके अपने कुटुंब का भरण पोषण करती हैं और भगतिन कहलाती है। (बंगाल में भी वैष्णव साधुओं की लड़कियाँ वेश्यावृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करती हैं और अपनी जाति बोष्टम वा वैष्णव बतलाती हैं।)

भगती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भक्ति'।

भगदड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाग+दौड़] दे० 'भगदर'।

भगदत्त—संज्ञा पु० [सं०] प्राग्ज्योतिषपुर के एक राजा का नाम।

विशेष—इसके पिता का नाम नरक वा नरकासुर था। महाभारत में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय इसका अर्जुन से आठ दिन तक लड़कर अंत में पराजित होना लिखा है। महाभारत युद्ध में यह कौरवों की ओर था और बड़ी वीरता से लड़कर अर्जुन के हाथ से मारा गया था।

भगदर—संज्ञा स्त्री० [हिं० भगदड़ (=भागते हुए दौड़ना)] अचानक बहुत से लोगों का किसी कारण से एक ओर अस्तव्यस्त होकर भागना। भागने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

भगदारण—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग। भगंदर [को०]।

भगदेव—वि० [सं०] कामी। विषयी।

भगदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र [को०] ।

भगन¹—वि० [सं० भग्न] दे० 'भग्न'। उ०—भगन कियो भव धनुष, साल तुमको अब सालो ।—केशव (शब्द०) ।

भगन²—संज्ञा पुं० [हिं०] भागने का कार्य या स्थिति । उ०—दुरि मुरि भगन, बचावन, छवि सो आवन, उलटन सोहैं ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८१ ।

भगनंदन—संज्ञा पुं० [सं० भगनन्दन] विष्णु का उपनाम ।

भगनहा—संज्ञा पुं० [सं० भग्नहा] करेरुआ नामक कँटीली बेल । वि० दे० 'करेरुआ' ।

भगना¹—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'भागना' ।

भगना²—संज्ञा पुं० [सं० भागनेय] बहिन का लड़का । भानजा ।

भगनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगोष्ठ के ऊपरी संधिस्थान का समीपवर्ती भाग [को०] ।

भगनी⑤†—संज्ञा स्त्री० [सं० भगिनी] दे० 'भगिनी' ।

भगनेत्रघ्न, भगनेत्रहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

भगपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मुलतान व मूलस्थान नाम का नगर [को०] ।

भगभक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कुटना । भड़ुवा [को०] ।

भगयुग—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति के बारह युगों में से अंतिम युग । इसके पाँच वर्ष दुंदुभि, उद्गारी, रक्ता, क्रोध और क्षय हैं । इनमें पहले को छोड़ शेष चार वर्ष उत्तरोत्तर भयानक माने जाते हैं ।

भगर⑤¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. छल । फरेब । ढोंग । उ०—काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ, भगर के खेले महाभट पद पावहीं ।—केशव (शब्द०) । २. इंद्रजाल । बाजीगरी । भगल । उ०—हय हिंसहिं गज चिकारि भगर सम दिषि कुलाहल ।—पृ० रा०, ८।५४ । ३.† चूर जो सूखा हो । मोटा चूर । उ०—नामदेव का स्वामी भानी न्हागरा । राम भाई न परी भगरा ।—दक्खिनी०, पृ० ३६ ।

भगर²—संज्ञा पुं० [हिं० भगरना] सड़ा हुआ अन्न ।

भगरना—क्रि० अ० [सं० विकरण, हिं० बिगड़ना] खत्ते में गर्मी पाकर अनाज का सड़ने लगना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

भगल—संज्ञा पुं० [देश०] १. छल । कपट । ढोंग । २. हाथ की सफाई । जादू । इंद्रजाल । बाजीगरी । उ०—दंभ मकर छल भगल जो रहत लोभ के संग ।—चरण० बानी, पृ० १२ ।

भगली—संज्ञा पुं० [हिं० भगल+ई (प्रत्य०)] १. ढोंगी । छली । उ०—कोउ कहै भिच्छुक कोउ कहै भगली, अपकीरति गोहरावै ।—जग० श०, पृ० १०६ । २ बाजीगर । उ०—जाग्रत जाग्रत साँच है सोवत सपना साँच । देह गए दोऊ गए ज्यों भगली को नाच ।—कबीर (शब्द०) ।

भगवंत⑤—संज्ञा पुं० [सं० भगवत् का बहुव० भगवन्त] भगवान । ईश्वर । दे० 'भगवत्' । उ०—ब्रह्म निरूपण धर्म विधि बरनहिं तत्व विभाग । कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ज्ञान विराग ।—तुलसी (शब्द०) ।

भगवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवी । २. गौरी । ३. सरस्वती । ४. गंगा । ५. दुर्गा । ६. सामान्य स्त्री ।

भगवत्¹—वि० [सं०] [स्त्री० भगवती] ऐश्वर्ययुक्त । भगवान् । पूजनीय ।

भगवत्²—संज्ञा पुं० १. ईश्वर । परमेश्वर । २. विष्णु । ३. शिव । ४. बुद्ध । ५. कार्तिकेय । ६. सूर्य । ७. जिन ।

भगवत्पदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

भगवत्स्मरन—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों में परस्पर अभिवादन सूचित करने का एक शब्द । उ०—पाछें वह वैष्णव ने भगवत्स्मरन करयो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३४ ।

भगवदीय—संज्ञा पुं० [सं०] भगवद्भक्त । भगवान का भक्त । उ०—वह बीरा श्री गुसाईं जी, श्री ठाकुर जी को ऐसी कृपापात्र भगवदीय हती ।—दो सौ बावन०, भा १, पृ० १२१ ।

भगवद्गीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के भीष्मपर्व के अंतर्गत अठारह अध्यायों का एक प्रकरण ।

विशेष—इसमें उन उपदेशों और प्रश्नोत्तरों का वर्णन है जो भगवान् कृष्णचंद्र ने अर्जुन का मोह छुड़ाने के लिये उससे युद्धस्थल में किए थे । इसमें अठारह अध्याय हैं । यह ग्रंथ प्रस्थान-चतुष्टय में चौथा है और बहुत दिनों से महाभारत से पृथक् माना जाता है । इसपर शंकराचार्य, रामानुज, वल्लभादि आचार्यों के भाष्य हैं । हिंदू धर्म में यह ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ और सब संप्रदायों का मान्य ग्रंथ है ।

भगवद्द्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] महाबोधि वृक्ष ।

भगवद्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत् धर्म । उ०—ता करि भगवद्धर्म सिद्ध होइगो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११७ ।

भगवद्भक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. भगवान् का भक्त । ईश्वरभक्त । २. विष्णुभक्त । ३. दक्षिण भारत के वैष्णवों का एक संप्रदाय ।

भगवद्भक्ति—संज्ञा स्त्री० भगवान् की भक्ति ।

भगवद्भाव—संज्ञा पुं० [सं० भगवत्+भाव] ईश्वरभक्ति । भगवत्प्रेम । उ०—पाछें वह निष्किंचन स्त्री पुरुष को संग करन लाग्यो । सो याको भगवद्भाव बढ़यो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२ ।

भगवद्रस—संज्ञा पुं० [सं०] भगवद्भक्ति का आनंद । उ०—भगवद्रस में सदा मगन रहित हैं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२८ ।

भगवद्वार्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान् की चर्चा । उ०—सो आपन के दरसन करि कै बैठ्यो । पाछे व्यास कराइ कै भगवद्वार्ता करि फेरि सेन कियो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४७ ।

भगवद्विग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का विग्रह । भगवान् की मूर्ति ।

भगवन्मय—वि० [सं०] भगवान् में तन्मय ।

भगवल्लीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान् की लीला । उ०—एक

ठौर कहूँ रहे नाहीं। सदा भगवल्लीला के आवेस में छक्यो रहे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४३।

भगवा¹—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का कापाय रंग। गैरिक रंग।

भगवा²—वि० भगवा रंग का। साधु संन्यासियों की तरह वस्त्रवाला। जैसे, भगवा झंडा, भगवा वस्त्र। उ०—एक तो भगवा भेस बनाए और वेद वेदांत ले हाथ में खप्पर लिए फिरते।—कबीर मं०, पृ० ३५६।

भगवान्, भगवान¹—वि० [सं० भगवत् का कर्ता एकव० भगवान्] १. भगवत्। ऐश्वर्ययुक्त। २. पूज्य। ३. ऐश्वर्य, बल, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य से संपन्न।

भगवान्, भगवान²—संज्ञा पुं० १. ईश्वर। परमेश्वर। २. विष्णु। ३. शिव। ४. बुद्ध। ५. जिन। ६. कार्तिकेय। ७. कोई पूज्य और आदरणीय व्यक्ति। जैसे, भगवान् वेदव्यास।

भगवृत्ति—वि० [सं०] भग द्वारा जीविका करनेवाला [को०]।

भगशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र।

भगहर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भागना] दे० 'भगदर'।

भगहा—संज्ञा पुं० [पुं० भगहन्] दे० 'भगहारी'।

भगहारी—संज्ञा पुं० [सं० भगहारिन्] १. शिव। महादेव। २. विष्णु का एक नाम (को०)।

भगांकुर—संज्ञा पुं० [सं० भगाङ्कुर] अर्श रोग। बवासीर।

भगाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भागना] भागने की क्रिया। भागना।

भगाड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भँगार'।

भगाना¹—क्रि० स० [सं० √भञ्ज] १. किसी को भागने में प्रवृत्त करना। दौड़ाना। २. हटाना। दूर करना। खदेड़ना। उ०—दरस भूख लागै दृगन भूखहि देत भगाइ।—रसनिधि (शब्द०)। ३. बहलाकर या फुसलाकर ले जाना।

भगाना²—क्रि० अ० दे० 'भागना'। उ०—(क) उछरत उतरात हहरात मरि जात भभरि भगात जल थल मीचु मई है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान।—तुलसी (शब्द०)।

भगाल—संज्ञा पुं० [सं०] आदमी की खोपड़ी।

भगाली—संज्ञा पुं० [सं० भगालिन्] आदमी की खोपड़ी धारण करनेवाले, शिव।

भगास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र।

भगिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगिनी। सहोदरा [को०]।

भगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहन। सहोदरा। उ०—शूर्पणखा रावण की भगिनी पहुँची वहाँ विमोहित सी।—साकेत, पृ० ३७८।

यौ०—भगिनीपति, भगिनीभर्ता=बहनोई। भगिनीपुत्र, भगिनीसुत=भांजा।

भगिनीय—संज्ञा पुं० [सं०] बहन का लड़का। भगिनेय। भानजा।

भगीत†—वि० [हिं० भागना] भागा हुआ। पलायित। उ०—विषय बासना छाड़ भगीता। चरण प्रताप काल तुम जीता।—कबीर० सा०, पृ० २८४।

भगीरथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा जो राजा दिलीप के पुत्र थे।

विशेष—कहते हैं, कपिल के शाप से जल जाने के कारण सगरवंशी राजाओं ने गंगा को पृथ्वी पर लाने का प्रयत्न किया था, पर उनको सफलता नहीं हुई। अंत में भगीरथ घोर तपस्या करके गंगा को पृथ्वी पर लाए थे और इस प्रकार उन्होंने अपने पुरखाओं का उद्धार किया था। इसीलिये गंगा का एक नाम 'भागीरथी' भी है।

भगीरथ²—वि० [सं०] भगीरथ की तपस्या के समान। भारी। बहुत बड़ा। जैसे, भगीरथ परिश्रम।

भगेड़ू—वि० [हिं० भागना+एड़ू (प्रत्य०)] भागनेवाला। दे० 'भगेलू'। उ०—जो न दूसरे को अपने पास बुलाता और न भगेड़ुओं का पीछा करता।—प्रेमघन० पृ० २७३।

भगेलू—वि० [हिं० भागना+एलू (प्रत्य०)] १. भागा हुआ। जो कहीं से छिपकर भागा हो। २. जो काम पड़ने पर भाग जाता हो। कायर।

भगेश—संज्ञा पुं० [सं०] ऐश्वर्य का देवता।

भगोड़ा—वि० [हिं० भागना+ओड़ा (प्रत्य०)] १. भागा हुआ। २. भागनेवाला। कायर।

भगोल—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रचक्र। वि० दे० 'खगोल'।

भगोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] भग के बाहरी हिस्से का किनारा।

भगौती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भगवती] दे० 'भगवती'।

भगौहाँ¹—वि० [हिं० भागना+औहाँ (प्रत्य०)] १. भागनेवाला। भागने को तैयार या उद्यत। २. कायर।

भगौहाँ²—वि० [हिं० भगवा] गेरू से रँगा हुआ। भगवा। गेरुआ। उ०—बरुनी बघबर में गूदरी पलक दोऊ, कोए राते बसन भगौहें भेष रखियाँ।—देव (शब्द०)।

भग्गना(पु)—क्रि० अ० [हिं० भागना] भागना। पलायन करना। उ०—भग्गा नाहर राइ पाई मुक्के नाहर जिम। जिम जिम भर कट्टई रोस लग्गा बर तिम तिम।—पृ० रा०, ७।१६५।

भग्गर†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भगर' और 'भगल'। उ०—फिरैं रुंड बिनमुंड रस रोस राचे। मनो भग्गर नट्ट विद्या कि नाचे।—पृ० रा०, १३।८६।

भग्गल—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भगर', 'भगल'। उ०—रिनं राइ चामुंड पेलं करूरं। मनो भग्गलं नट्ट मंड्यो बिरूरं।—पृ० रा०, १२।३७७।

भग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० भागना] लड़ाई से भागा हुआ पशु या पक्षी।

भग्गी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भागना] बहुत से लोगों के साथ मिलकर भागने की क्रिया। भागल।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

भग्गुल(पु)—[हिं० भागना] १. रण से भागा हुआ। भगोड़ा।

भग्गू। उ०—प्राय भग्गुल लोग वरनैं युद्ध की सब गाथ।—केशव (शब्द०)। २. भागनेवाला। कायर।

भग्गू—वि० [हिं० भागना + ऊ (प्रत्य०)] जो विपत्ति देखकर भागता हो। कायर। डरपोक। भागनेवाला।

भग्न[1]—वि० [सं०] १. टूटा हुआ। २. नष्ट (को०)। ३. जो हारा या हराया गया हो। पराजित। ४. हताश। निराश।

भग्न[2]—संज्ञा पुं० हड्डियों अथवा उनके जोड़ों का टूट जाना।

यौ०—भग्नक्रम = क्रमरहित। जिसका क्रम टूट गया हो। भग्नचित्त = निराश। भग्नचेष्ट = विफल होकर चेष्टा से विरत। भग्नताल = संगीत में एक प्रकार का ताल। भग्नदंष्ट्र = जिसके दाँत टूटे हों। भग्ननिद्र = जिसकी नीद टूट गई हो। जो सोते समय जगाया गया हो। भग्नपरिणाम = जो फल से वंचित हो। भग्नपार्श्व = बगल के दर्द से पीडित। भग्नपृष्ठ = (१) जिसकी रीढ टूट गई हो। (२) सामने से आनेवाला। संमुखागत। भग्नप्रतिज्ञ = जिसने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी हो। भग्नमन = हतोत्साह। भग्नमनोरथ = विफल मनोरथ। भग्नाश। भग्नमान=अवमानित। तिरस्कृत। भग्नव्रत = जिसका व्रत भंग हो गया हो। भग्नश्री = जिसकी शोभा नष्ट हो गई हो। भग्न संधि। भग्नसंधिक। भग्नहृदय=जिसका मन टूट गया हो। भग्नचित्त। निराश।

भग्नदूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. रणक्षेत्र से हारकर भागी हुई वह सेना जो राजा के पराजय का समाचार देने आती हो। २. वह दूत जो विफल होकर आया हो। उ०—जैसे थककर साध्य विहग घर वापस आए। वैसे ही वे मेघदूत अब भग्नदूत से वापस आए।—ठंडा०, पृ० ५४।

भग्नपाद—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार पुनर्वसु, उत्तराषाढ़, कृत्तिका उत्तराफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा ये छह नक्षत्र जिनमें से किसी एक मे मनुष्य के मरने से द्विपाद दोष लगता है। इस दोष की शांति अशौच काल के अंदर ही कराने का विधान है।

भग्नप्रक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. काव्य का एक दोष। रचना का क्रम बिगड जाना। २. क्रमरहित। भग्नक्रम।

भग्नसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० भग्नसन्धि] हड्डी का जोड़ पर से टूट जाना।

भग्नसंधिक—संज्ञा पुं० [सं०] मठा।

भग्नांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूल द्रव्य का कोई अलग किया हुआ भाग या अंश। २. गणित शास्त्र के अनुसार किसी वस्तु के दो या अधिक किए हुए विभागों मे से एक या अधिक विभाग। जैसे,—किसी वस्तु के किए हुए सात विभागों में से दो विभाग, अर्थात् २/७ मूल वस्तु का भग्नांश है।

भग्नात्मा—संज्ञा पुं० [सं० भग्नात्मन्] चंद्रमा।

भग्नापद्—वि० [सं०] जिसने विपत्तियों को चूर कर दिया हो।

भग्नावशेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी टूटे फूटे मकान या उजड़ी हुई बस्ती का बचा हुआ अंश। खँडहर। २. किसी टूटे हुए पदार्थ के बचे हुए टुकड़े।

भग्नाश—वि० [सं०] हताश।

भग्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगिनी। बहन।

भग्नोत्साह—वि० [सं०] निरुत्साह। जिनका उत्साह नष्ट हो गया हो।

भग्नोत्सृष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] वे गोप जो साझीदार के समान अनुपयोगी गायों का पालन करते थे।

विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे लोगों के अधीन बीमार, लँगड़ी, लूली, दूध दुहने में बहुत तंग करनेवाली या किसी विशेष आदमी के हाथ से ही लगनेवाली और बछड़े को मार डालनेवाली गौएँ रखी जाती थी।

भचक—संज्ञा स्त्री० [हिं० भचकना] भचककर चलने का भाव। लँगड़ापन।

भचकना[1]—क्रि० अ० [हिं० भौंचक] आश्चर्य में निमग्न होकर रह जाना।

भचकना[2]—क्रि० अ० [भच् अनु०] चलने के समय पैर का इस प्रकार रुककर टेढ़ा पड़ना कि देखने मे लँगड़ापन मालुम हो। लँगड़ाना।

भचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राशियों या ग्रहों के चलने का मार्ग। कक्षा। २. नक्षत्रों का समूह। उ०—२७ नक्षत्रों में भचक्र होने से २७ × २१ हैं।—बृहत्०, पृ० ४९।

भचभचा—संज्ञा पुं० [अनु०] वह खाट, माचा, मचिया आदि जिससे भच् भच् की आवाज हो। उ०—नहीं तो वह गुड़ गुड़ी की गुडगुड़ाहट वा वह्रे भचभचे की भचभचाहट।—प्रेमघन० भा० २, पृ० २५८।

भचभचाना—क्रि० अ० [अनु०] भच् भच् करना।

भचभचाहट—संज्ञा पुं० [अनु०] भचभच करने का स्वर।

भच्छ(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० भक्ष्य] दे० 'भक्ष्य'।

भच्छक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भक्षक] दे० 'भक्षक'।

भच्छन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० भक्षण] दे० 'भक्षण'। उ०—आजु सबन्हि कहुँ भच्छन करऊँ।—मानस, ४।२७।

भच्छना(पु)†—क्रि० स० [सं० भक्षण] खाना। भक्षण करना। उ०—कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही।—मानस, ५।३।

भछन†—संज्ञा पुं० [सं० भक्षण] भोजन। भक्षण। भच्छन। उ०—रिपि जन पकरि भछन करि डारो।—नंद० ग्रं०, पृ० २२३।

भछना†—क्रि० स० [सं० भक्षण] भक्षना। भच्छना। खाना। उ०—कंद मूल भछि पवन अहारी, पय पी तनहिं दहाही।—जग० बानी, पृ० ३९।

भजक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भजन करनेवाला। भजनेवाला। २. विभाग करनेवाला।

भजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग। खंड। विभाजन। २. सेवा। पूजा। ३. स्वत्व। अधिकार (को०)। ३. बार बार किसी पूज्य या देवता आदि का नाम लेना। स्मरण। जप। ४. वह गीत जिसमें ईश्वर अथवा किसी देवता आदि के गुणों का कीर्तन हो। उ०—भजन सुनै भजनीन सों निर्मित निज बहु संत।—रघुराज (शब्द०)।

भजना१—क्रि० स० [सं० भजन] १. सेवा करना। २.Ⓤ आश्रय लेना। आश्रित होना। उ०—(क) विधिवश हठि अविवेकहिं भजई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तजो हठ आनि भजो किन मोहिं।—केशव (शब्द०)। ३. देवता आदि का नाम रटना। स्मरण करना। जपना। ४. अधिकार करना। जीतना। उ०—कहै वत्त मोरं सुनोराति नामं। भज्यौ इक्क अब्बू लग्यो सीस तामं।—पृ० रा०, १२।१२७।

भजनाⓊ२—क्रि० अ० [सं० व्रजन, पा० वजन] १. भागना। भाग जाना। उ०—भजन कह्यौ तातें भज्यौ भज्यो न एको वार। दूरि भजन जाते कह्यौ सो तैं भज्यो गँवार।—बिहारी (शब्द०)। (ख) दीजै दरस दयाल दया करि, गुन ऐगुन न बिचारो। धरनी भजि आयो सरनागति, तजि लज्जा कुल गारो।—संतवाणी०, पृ० १२८। २. पहुँचना। प्राप्त होना। उ०—चित्रकूट तब राम जू तज्यो। जाय यज्ञथल अत्रि को भज्यो।—केशव (शब्द०)।

भजनानंद—संज्ञा पुं० [सं० भजनानन्द] वह आनंद जो परमेश्वर का नाम स्मरण करने से प्राप्त होता है। भजन से मिलनेवाला आनंद।

भजनानंदी—संज्ञा पुं० [सं० भजनानन्द+ई (प्रत्य०)] वह जो दिन रात भजन करने में ही मगन रहता हो। भजन गाकर सदा प्रसन्न रहनेवाला।

भजनी—संज्ञा पुं० [हिं० भजन+ई (प्रत्य०)] भजन गानेवाला। उ०—करन लगे जप जेहि समय तब भरि गोद अनंत। भजन सुनै भजनीन सों निर्मित निज बहु संत।—रघुराज (शब्द०)।

भजनीक—संज्ञा पुं० [हिं० भजन+इक (प्रत्य०)] भजन करनेवाला या भजन गानेवाला।

भजनीय—वि० [सं०] १. सेवा करने योग्य। २. आश्रय लेने योग्य। ३. भजने के योग्य। उ०—उनको तो सब साधन छोड़कर एक श्रीकृष्ण ही भजनीय हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ७७७।

भजनोपदेशक—संज्ञा पुं० [सं० भजन+उपदेशक] भजन गाकर उपदेश करनेवाला। वह जो भजन गाकर उपदेश करता है।

भजमान—वि० [सं०] १. विभाग करनेवाला। २. सेवा करनेवाला। ३. न्याय्य। उचित।

भजाना१—क्रि० अ० [सं० √भञ्ज्+हिं० आना०, हिं० (=दौड़ना)] दौड़ना। भागना। उ०—भौन को पलि, छूटे लट केश के।—भूषण (शब्द०)।

भजाना२—क्रि० स० [सं० √भञ्ज्+हिं० आन, हिं० भजना का सक० रूप] भगाना। दूर कर देना। उ०—(क) पिय जियहिं रिझावै दुखनि भजावै, विविध बजावै गुण गीता।—केशव (शब्द०)। (ख) सर बरसत रव करै जलद मद दूरि भजावै।—गोपाल (शब्द०)।

भजितव्य—वि० [सं०] दे० 'भजनीय'।

भजियाउरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाजी+चावर (=चावल)] चावल, दही, घी आदि एक साथ पकाकर बनाया हुआ भोजन जिसमें नमक भी पड़ता है। इसे 'उभिया' और 'भिजियाउर' भी कहते हैं। उ०—भइ जाउर भजियाउर सीझी सब ज्यौनार।—जायसी (शब्द०)।

भजी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] खोपड़ी के भीतर की गुद्दी। भेजी। उ०—लगे गुर्ज सीसं भजी भति छुट्टं। मनो मंथनं दद्धि मंथान उट्टं।—पृ० रा०, १३।६०।

भज्जनाⓊ—क्रि० अ० [सं० भग्न, प्रा० भग्ग, भज्ज] दे० 'भजना२'। उ०—किते जीव समूह देखत भज्जै।—ह० रासो, पृ० ३६।

भज्य—वि० [सं०] १. विभाग करने के योग्य। २. सेवा करने के योग्य। ३. भजने के योग्य।

भटंतⓊ—संज्ञा पुं० [सं० भणिति] काव्यपाठ। रचनापाठ। उ०—भाँटन जोरि भटंत सुनावा। गुनियन उहँ गीति पुनि गावा।—चित्रा०, पृ० १८१।

भट१—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध करने या लड़नेवाला। योद्धा। २. सिपाही। सैनिक। ३. प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति। ४. रजनीचर (को०)। ५. नौकर। दास (को०)।

भट२—संज्ञा पुं० दे० 'भटनास'।

भटकटाई—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारि] दे० 'भटकटैया'।

भटकटैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारि, हिं० कटेरी या कटाई] एक छोटा और काँटेदार क्षुप जो बहुधा औषध के काम में आता है।

विशेष—इसके पत्तों पर भी काँटे होते हैं। इसके फूल बैंगनी होते हैं और फूल का जीरा पीला होता है। कहीं कहीं सफेद फूल की भी भटकटैया मिलती है। इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो पहले कच्चे रहते हैं, पर पकने पर पीले हो जाते हैं। वैद्यक में इसे सारक, कड़वी, चरपरी, रूखी, हलकी, अग्निदीपक तथा खाँसी, ज्वर, कफ, वात, पीनस तथा हृदय रोग का नाश करनेवाली माना है।

पर्या०—कटकारी। कुली। क्षुद्रा। कासघ्नी। कंटतारिका। स्पृही। धावनिका। व्याघ्री। दुःस्पर्शा। दुष्प्रधर्षिणी। कंटश्रेणी। चित्रफला। बहुकंटा। प्रयोदिनी। भंटाकी। धावनी। सिंही।

—क्रि० अ० [देश०] १. व्यर्थ इधर उधर घूमते [illegible]ना। उ०—अरे बैठि रहु जाय घर फत भटकत बेकाज। [illegible] टोना को अरे होना नहीं इलाज।—रसनिधि

(शब्द०)। ३. रास्ता भूल जाने के कारण इधर उधर घूमना। ३. किसी को खोजने में इधर उधर घूमना। ४. चूक जाना। ५. भ्रम में पड़ना। उ०—साँवरी मरति सों अटकी भटकी सी बधू बट की भरै भाँवरी। —दत्त (शब्द०)।

भटका ⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं०] व्यर्थ घूमना। इधर उधर व्यर्थ चक्कर लगाना।

भटकाना—क्रि० स० [हिं० भटकना का सक० रूप] १. गलत रास्ता बताना। ऐसा रास्ता बताना जिसमे आदमी भटके। २. धोखा देना। भ्रम में डालना।

भटकैया ⓤ†¹—संज्ञा पुं० [हिं० भटकना + ऐया (प्रत्य०)] १. वह जो भटक रहा हो। २. भटकानेवाला।

भटकैया†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० भटकटैया] दे० 'भटकटैया'।

भटकौहाँ ⓤ—वि० [हिं० भटकना + औहाँ (प्रत्य०)] भटकानेवाला। भुलावे में डालनेवाला। उ०—तुम भटकौहे वचन बोलि हरि करत रिसौहे।—अंबिकादत्त (शब्द०)।

भटक्कना—क्रि० अ० [देश०] भड़क उठना। भड़कना। उ०—नव-हत्थो मत्थो बडो रीस भटक्कै रार। —बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ११।

भटतीतर—संज्ञा पुं० [हिं० भट (= बड़ा) + तीतर] प्रायः एक फुट लंबा एक प्रकार का पक्षी जो उत्तर पश्चिम भारत में पाया जाता है। इसकी मादा एक बार में तीन अंडे देती है। लोग प्रायः इसके मास के लिये इसका शिकार करते हैं।

भटधर्मा—वि० [सं० भटधर्मन्] वीर धर्म का पालन करनेवाला। सच्चा बहादुर।

भटनास—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो चीन, जापान और जावा मे बहुत अधिकता से होती है।

विशेष—अब बरमा, पूर्वी बगाल, आसाम, गोरखपुर, बस्ती आदि मे भी इसकी खेती होने लगी है। इसमे एक प्रकार की फलियाँ लगती हैं; और उन्ही फलियो के लिये इसकी खेती की जाती है। फलियों के दानों की दाल भी बनाई जाती है और सत्तू भी। ये फलियाँ बहुत पुष्ट होती हैं और पशुओ को भी खिलाई जाती हैं। यह दो प्रकार की होती है—एक सफेद और दूसरी काली। मैदानों मे यह प्रायः खरीफ की फसल के साथ बोई जाती है।

भटनेर—संज्ञा पुं० [सं० भट + नगर] एक प्राचीन राज्य का मुख्य नगर जो सिंध नदी के पूर्वी तट पर स्थित था। इस नगर को तैमूर ने चढ़ाई के समय लूटा था। उ०—भटनेर राय की आइ भेट।—पृ० रा०, १।१३३।

भटनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० भट + नगरा] १. भटनेर नगर का निवासी। २. वैश्यो की एक उपजाति।

भटपेटक—संज्ञा पुं० [सं०] सेना की टुकड़ी। गुल्म [को०]।

भटबलाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वीर। श्रेष्ठ वीर। २. सेना। चमू [को०]।

भटभटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] भटकने की स्थिति। देखते हुए भी न दिखाई पड़ना। उ०—बात अटपटी बढ़ी चाह चटपटी रहै, भटभटी लागै जै पै बीच बदनी बसै।—घनानद, पृ० २६।

भटभेर ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० भटभेरा] मुठभेड। मिलन। दे० 'भटभेरा'। उ०—धधे आनँद वर्यो बचिए भटभेर अचानक होत गरचारैं गली।—घनानद, पृ० १४४।

भटभेरा †ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० भट + भिड़ना] १. दो वीरों का सामना। मुकाबला। भिड़ंत। उ०—एक पिशाचिनि है यहि बीच चलो किन तात करो भटभेरो।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। २. धक्का। टक्कर। ठोकर। उ०—कबहुँक हौं संगति सुभाव तें जाउ सुमारग नेरो। तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो।—तुलसी (शब्द०)। ३. आकस्मिक मिलन। ऐसी भेंट जो अनायास हो जाय। आमने सामने से आते हुए मिलन। संयोग। उ०—गली अँधेरी काँकरी भो भटभेरो आनि।—बिहारी (शब्द०)।

भटवाँस—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भटनास'।

भटरा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. भाट। २. भीटा या मिट्टी का ढूहा जिसपर ग्राम्य देवताओं की मूर्तियाँ वा पिंडी रहती हैं। उ०—भोये भटरे के पग लागै, साधु संत की निंदा। चेतन को तजि पाहन पूजै, ऐसा यह जग अंधा।—चरण० बानी०, पृ० ७३।

भटा†¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी। इंद्रायन। इनारू। विशेष दे० 'इंद्रायन'।

भटा†²—संज्ञा पुं० [हिं० भटा] दे० 'बैंगन'।

भटाश्वपति—संज्ञा पुं० [सं०] सेना की चारो शाखाओ का प्रधान। उ०—सेना मे पैदल, घुड़सवार, हाथियो के समूह तथा रथदल, ऐसी चार शाखाएँ होती थीं। इसके प्रधान कर्म-चारी को अश्वपति, भटाश्वपति या हस्त्यध्यक्ष कहते थे। —पूर्व० म० भा०, पृ० १०३।

भटियारा—संज्ञा पुं० [हिं० भट्टा + इयारा (प्रत्य०)] [स्त्री० भटियारिन, भटियारी] दे० 'भठियारा'।

भटियारी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जिसमे ऋषभ कोमल लगता है।

भटियारी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० भटियारा] भटियारे की स्त्री। उ०—भटियारियों का कायदा है कि जब लड़ाई को जी चाहता है तो ख्वाही न ख्वाही छेड़खानी करती हैं। —सैर०, पृ० ३८।

मुहा०—भटियारियों की तरह लड़ना = बेसबब गदी बातें कहते हुए झगड़ना। उ०—लाडो, तुम तो भटियारियो की तरह लड़ती हो।—सैर०, पृ० ३८।

भटियाल—क्रि० वि० [हिं० भाटा + इयाल (प्रत्य०)] धार की ओर। धार के साथ साथ। जिस ओर भाटा जाता हो, उस ओर। (लश०)।

भटियारो, भटिहारिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० भटियारा] दे० 'भटियारी'।

भट्टू—संज्ञा स्त्री० [सं० बधू, ब्रज०] १. स्त्रियों के संबोधन के लिये एक आदरसूचक शब्द। उ०—या ब्रज मंडल में रसखानि सु

कौन भट्ट जो लटू नहिं कीनी।—रसखान०, पृ० १४। २. सखी। गोइयाँ। उ०—भरी भट्ट गड़ी है कटीली वह दीठि मोहिं सुपने लखति फिरि जाति दुरि दुरि कै। —दीन० ग्रं०, पृ० ६। ३. प्रिय व्यक्ति।

भटेरा—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

भटैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० भटकटैया] दे० 'भटकटैया'। उ०—और भटैया जाहु जनि काँट बहुत रस थोर।—गिरिधर (शब्द०)।

भटोट—संज्ञा पुं० [देश०] यात्रियों के गले में फाँसी लगानेवाला ठग। (ठगों की बोली)।

भटोला[1]—वि० [हिं० भाट+ओला (प्रत्य०)] १. भाट का। भाट संबंधी। २. भाट के योग्य।

भटोला[2]—संज्ञा पुं० वह भूमि जो भाट को इनाम के तौर पर दी गई हो।।

भट्ट—पुं० [सं० भट, भट्ट] १. ब्राह्मणों की एक उपाधि जिसके धारण करनेवाले दक्षिण भारत, मालव, आदि कई प्रांतों मे पाए जाते हैं। २. महाराष्ट्र ब्राह्मण। ३. भाट। ४. योद्धा। शूर। भट। ५. शिक्षित ब्राह्मणों का एक संबोधन [को०]। ६. शिक्षित व्यक्ति विद्वान् या दार्शनिक [को०]। ७. स्वामी। प्रभु। नाटक आदि में राजाओं का आदरार्थक सबोधन (को०)।

यौ०—भट्टनारायण—वेणीसंहार संस्कृत नाटक के रचयिता का नाम। भट्टप्रयाग=प्रयाग। भट्टाचार्य।

भट्टाचार्य—संज्ञा पुं० [सं० भट्ट+आचार्य] १. दर्शनशास्त्र का पंडित। २. सम्मानित अध्यापक या विद्वानों के लिये पदवी रूप में प्रयुक्त शब्द। ३. बंगीय ब्राह्मणों की एक उपाधि।

भट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूज्य व्यक्ति। माननीय पुरुष। २. आदरार्थ पदवी रूप मे प्रयुक्त शब्द।

भट्टारक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० भट्टारिका] पूज्य। माननीय।

भट्टारक[2]—संज्ञा पुं० १. पूज्य व्यक्ति के आदरार्थ प्रयुक्त (पदवी रूप में)। २. मुनि। तपस्वी। ३. पंडित। ४. सूर्य। ५. देवता। ६. नाटक में राजा और प्रधान पुरुषों के लिये आदरार्थ संबोधन [को०]।

यौ०—भट्टारक वार, भट्टारक वासर=आदित्य वार। रविवार।

भट्टारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सम्माननीया महिला। समादृता स्त्री।

भट्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत के भट्टि महाकाव्य के लेखक। श्रीधर स्वामी के पुत्र।

भट्टिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाटक की भाषा मे राजा की वह पत्नी जिसका अभिषेक न हुआ हो। स्वामिनी। २. सम्माननीय महिला। ३. ब्राह्मण की पत्नी [को०]।

भट्टी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्राष्ट्र] दे० 'भट्ठी'।

भट्टी[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भाटिया' 'भाटी'। उ०—मारु बजाइ भट्टीन थान। घल भोमि लई बल चाहुवान।—पृ० रा०, १।६१३।

भट्टोजि—संज्ञा पुं० [सं०] भट्टोजी। सिद्धांत कौमुदी के कर्ता भट्टोजि दीक्षित।

भट्टोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] वराहमिहिर के ग्रंथों की टीका करनेवाले एक आचार्य का नाम।

भट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० भ्राष्ट्र, प्रा० भट्ठ] १. बड़ी भट्ठी। २. ईंटे या खपड़े इत्यादि पकाने का पजावा। वह बड़ी भट्ठी जिसमें ईंटे आदि पकती हों, चूना फूँका जाता हो, लोहा आदि गलाया जाता हो या इसी प्रकार का और कोई काम होता हो।

भट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्राष्ट्र, प्रा० भट्ठ] १. विशेष आकार और प्रकार का ईंटा आदि का बना हुआ बड़ा चूल्हा जिसपर हलवाई पक्वान्न बनाते, लोहार लोहा गलाते, वैद्य लोग रस आदि फूँकते अथवा इसी प्रकार के और और काम करते है। (भिन्न भिन्न कार्यों के लिये भट्ठियों का आकार और प्रकार भी भिन्न भिन्न हुआ करता है।)

मुहा०—भट्ठी दहकना=किसी का कारबार जोरों पर होना। बहुत आय होना (व्यंग्य)।

२. देशी मद्य टपकाने का कारखाना। वह स्थान जहाँ देशी शराब बनती हो।

भट्यानी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० भट्टिनी] भट्ट की स्त्री। उ०—तब या भटयानी ने कही, जो मेरे कछू द्रव्य नाहीं है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११।

भठ[1]—वि० [सं० भ्रष्ट] दे० 'भ्रष्ट'। उ०—साधु मतो क्यों मानै दुरमति जाको सबै सयान परयो भठ।—घनानंद, पृ० ४७१।

भठ[2]—संज्ञा पुं० [सं० भ्राष्ट्र] गहरा गड्ढा या अंधा कुआँ, जो थोड़ा या पूरा पट गया हो। भाठ। उ०—आ करि हम द्विज ह्वै मद भरे। गुरु कहाइ सठ भठ मैं परे।—नंद० ग्रं० पृ० ३०४।

भठियाना[1]—क्रि० अ० [हिं० भाठा+इयाना (प्रत्य०)] समुद्र मे भाटा आना। समुद्र मे पानी का नीचे उतरना।

भठियारपन—संज्ञा पुं० [हिं० भठियारा+पन (प्रत्य०)] १. भठियारे का काम। २. भठियारों की तरह लड़ना और अश्लील गालियाँ बकना।

भठियारा—संज्ञा पुं० [हिं० भट्ठा+इयार (प्रत्य०)] [स्त्री० भठियारन, भठियारिन, भठियारी] सराय का प्रबंध करनेवाला वा रक्षक जो यात्रियों के खाने पीने और ठहरने आदि की व्यवस्था करता है।

भठियारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. भठियारे की स्त्री। २. अत्यंत लड़ाकू स्त्री।

भठियाल—संज्ञा पुं० [हिं० भाटा] समुद्र के पानी का उतरना। ज्वार का उलटा। भाटा।

भठिहारा—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० भठिहारिन, भठिहारी] दे० 'भठियारा'। उ०—भए सब मतवार मतवारे। अपुनो अपुनो मत लै लैं सब झगरत ज्यों भठिहारे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३६।

भठुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भट्ठी+उली (प्रत्य०)] ठठेरों की

मिट्टी की बनी हुई वह छोटी भट्ठी जिसमें किसी चीज को गढ़ने से पहले तपाते या लाल करते हैं।

भड़ंबा—संज्ञा पुं० [सं० विडम्बना] दिखौआ शान। आडंबर।

भड़¹—संज्ञा स्त्री० [अं० बार्ज] एक प्रकार की नाव जो बहुत हलकी होती है (लश०)।

भड़²—संज्ञा पुं० [सं० भट] वीर। योद्धा। (डिं०)। उ०—माल्हू कुंवर सुरपति जिसउ, रूपे अधिक अनूप। तारां वगसद मागणां लाख भडां सिर भूप।—ढोला०, दू० ९३।

भड़³—संज्ञा स्त्री० [सं० भड] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति लेट पिता और तीवर माता से हुई थी।

भड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दिखाऊ चमक दमक। चमकीलापन। भड़कीले होने का भाव। २. भड़कने का भाव। वहम। जैसे,—अभी इसमें कुछ भड़क बाकी है। ३. क्रुद्ध होना। ४. चौकना। बिदकना।

भड़कदार—वि० [हिं० भड़क+फ़ा० दार] १ जिसमें खूब चमक दमक हो। भड़कीला। २. रोबदार।

भड़कना—क्रि० अ० [अनु० भड़क+ना (प्रत्य०)] १. प्रज्वलित हो उठना। तेजी से जल उठना। जैसे, आग भड़कना। २. झिझिकना। चौंकना। डरकर पीछे हटना। विशेषतः घोड़े आदि पशुओं के लिये बोलते हैं। ३. क्रुद्ध होना। ४. बढ़ जाना। तेज होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

भड़काना—क्रि० स० [हिं० भड़कना का सक० रूप] १. प्रज्वलित करना। जलाना। ज्वाला को बढ़ाना। उत्तेजित करना। उभारना। ३. भयभीत कर देना। चमकाना। चौंकाना। (घोड़े आदि पशुओं के लिये)। ४. बढ़ावा देना। ५. किसी को इस प्रकार भ्रम में डालना कि वह कोई काम करने के लिये तैयार न हो। बहकाना।

संयो० क्रि०—देना।

भड़कीला—वि० [हिं० भड़क+ईला (प्रत्य०)] १. भड़कदार। चमकीला। जिसमें खूब चमक दमक हो। २. चौंकन्ना होनेवाला। डरकर उत्तेजित होनेवाला। जैसे, भड़कीला बैल वा घोड़ा। (क्व०)।

भड़कीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० भड़कीला+पन (प्रत्य०)] चमक दमक। भड़कीले होने का भाव।

भड़कैल—वि० [हिं० भड़क+ऐल (प्रत्य०)] १. भड़कनेवाला। उत्तेजित होनेवाला। २. चौंकनेवाला।

भड़तल्ला—वि० [हिं०] दे० 'भंड़तिल्ला'। उ०—कहीं जोगीड़े होली मचाए भड़तल्ले की तान पर ललकार रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११५।

भड़भड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. भड़भड़ शब्द जो प्रायः एक चीज पर दूसरी चीज जोर जोर से पटकने अथवा बड़े बड़े ढोल बजाने से उत्पन्न होता है। आघातों का शब्द। उ०—कड कड़ बजत टाप हयद। भड़भड़ होत शब्द बलंद।—सूदन (शब्द०)। २. जनसमूह। जिसमें छोटे बड़े वा मोटे मर्दे का विचार न हो। भीड़। भड़भड़। ३. व्यर्थ की और बहुत अधिक बातचीत।

भड़भड़ाना¹—क्रि० स० [अनु०] भड़ भड़ शब्द करना।

भड़भड़ाना²—क्रि० अ० किसी चीज में भड़भड़ शब्द उत्पन्न होना।

भड़भड़ाहट—संज्ञा पुं० [अनु० भड़भड़] भड़भड़ शब्द होने या करने का भाव। जैसे, कैसी भी भड़भड़ाहट का आनंद।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५८।

भड़भड़िया—वि० [हिं० भड़भड़+इया (प्रत्य०)] बहुत अधिक और व्यर्थ की बातें करनेवाला। गप्पी। बकवादी।

भड़भाँड़—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डीर] एक कँटीला पौधा। सत्यानासी। घमोय। वि० दे० 'घमोय' या 'भंड़भाँड़'।

भड़भूँजा—संज्ञा पुं० [हिं० भाड़+भूँजना] हिंदुओं की एक जाति जो भाड़ झोंकने और अन्न भूनने का काम करती है।

पर्या०—भुनवा। भुरजी।

भड़री—संज्ञा पुं० [स० भड्डरी] दे० 'भड़रिया'। उ०—ऐसे मदारी के मेल बहुत देखे गये हैं। भड़री भी आपको ऐसी बातें बता देता है जो आपका आनंद में डाल देती हैं। वह सब माया लीला है।—कबीर०, पृ० ३२९।

भड़वा—संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़] दे० 'भड़ुआ'।

भड़साईं—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़+साईं] भड़भूजों की भट्ठी जिसमें वे अनाज भूनते हैं। वि० दे० 'भाड़'।

मुहा०—भड़साईं चिकना = कारबार का खूब चलना। अच्छी आय होना। (व्यंग्य)।

भड़सार—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँड़+साला] १. भोज्य पदार्थ रखने के लिये किवाड़दार आला या ताख। भंडरिया। भंडरिया। ‡२. दे० 'भाड़', 'भड़साईं'।

भड़साल‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँड़+साला] दे० 'भड़सार'। उ०—गुरमुखि सचु मनो धमसाला। सचु कारीगर सचु भड़साला।—नानक (शब्द०)।

भड़हर—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़ा] दे० 'भंड़हर'।

भड़ाभड़—संज्ञा स्त्री० [अनु० शब्द] दे० 'भड़भड़'। उ०—भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यो मचावे।—हिम्मत०, पृ० ६।

भड़ार(ु)†—संज्ञा पुं० [?] दे० 'भंडार'।

भड़ाला†—संज्ञा पुं० [सं० भट] सुभट। योद्धा। लड़ाका।

भड़ास—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] मन में बैठा हुआ दुःख या सोच।

मुहा० —भड़ास निकालना—कुछ कह सुनकर या और किसी प्रकार मन में बैठा हुआ दुःख दूर करना। जैसे,—तुम भी बक झककर अपने मन की भड़ास निकालो।

भड़िक‡—क्रि० वि० [अनु०] एकाएक। अचानक। झट। बिना सोचे बूझे। उ०—सज्जण, दुज्जण के कहे भड़िक न दीयइ गालि।—ढोला०, दू० १६६।

भड़िल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वीर। योद्धा। २. सेवक। चाकर [को०]।

भड़िहा†—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डहर] चोर। तस्कर। (बुंदेलखंडी)।

भड़िहाई१—संज्ञा स्त्री० [हिं० भड़िहा + ई] चोरी। तस्करी।

भड़िहाई(पु)२—क्रि० वि० [हिं० भड़िहा + आई] चोरों की तरह। लुक छिप या दबकर। उ०—इत उतचितै चला भड़िहाई। —तुलसी (शब्द०)।

भड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० बढ़ाना या भड़काना] वह उत्तेजना जो किसी को मूर्ख बनाने या उत्तेजित करने के लिये दी जाय। झूठा बढ़ावा। धोखा। उ०—बस चलिए हटिए यह भड़ी किसी ऐसे वैसे को दीजिए। यहाँ बड़े बड़ों की आखें देखी हैं। —फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

क्रि० प्र०—देना।—में आना। जैसे—सबके सब मेरी भड़ी में आ गए।

भड़ुआ—संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़ + उआ] १. वह जो वेश्याओं की दलाली करता हो। पुंश्चली स्त्रियों की दलाली करनेवाला। २. वेश्याओं के साथ तबला या सारंगी आदि बजानेवाला। सफरदाई।

भड़ेरिया—संज्ञा पुं० [हिं०] एक जाति जो हाथ देखने, शकुन बताने आदि का कार्य करके अपनी जीविका चलाती है। भड़रिया। उ०—आगम कहैं न संत भड़ेरिया कहत हैं।—पलटू०, पृ० ७६।

भड्डर—संज्ञा पुं० [सं० भद्र] ब्राह्मणों में बहुत निम्नकर्मा श्रेणी की एक जाति। इस जाति के लोग ग्रहादिक का दान लेते हैं अथवा यात्रियों को दर्शन आदि कराते हैं। भंडर।

भड्डरी—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'भड्डर'। २. दे० 'भड़ेरिया'। ३. भड़ेरिया जाति का व्यक्ति। ४. एक कहावत कहनेवाले का नाम। जैसे, घाघ और भड्डरी की कहावतें।

भण—संज्ञा पुं० [?] ताड़ का वृक्ष। (डिं०)।

भणक्कना†—क्रि० अ० [सं० भण वा अनुध्व०] भनकना। ध्वनि करना। बज उठना। उ०—मंदिर बोली मारुवी, जाँणि भणक्की वीण। —ढोला०, दू० ४६२।

भणन—संज्ञा पुं० [सं०] कहना। वर्णन।

भणना(पु)—क्रि० अ० [सं० भण] कहना। बोलना। उ०—मन लोभ मोह मद काम बस भए न केशवदास भणि। सोई परब्रह्म श्रीराम है अवतारी अवतारमणि।—केशव (शब्द०)। २. पढ़ना। बोलना। उ०—भणवा कारण भरत नै, मेले नृप मुसाल।—रघु० रू०, पृ० ६६।

भणित१—संज्ञा स्त्री० [सं०] कही हुई बात। वार्ता। कथा।

भणित२—वि० [सं०] कहा हुआ। जो कहा गया हो। कथित।

भणिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० भणितृ] बोलनेवाला। वक्ता। विद्वान्।

भणिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कथन। वार्ता। भनिति।

भणिया†—संज्ञा पुं० [सं० भणितृ>भणिता] विद्वान्। वक्ता। बोलनेवाला। उ०—सावल अणियाँ साँकड़ी, चोरंग बणिया चेत। भणियाँ सुं भेलप नहीं, दुरकणियाँ सूं हेत।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १।

भत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँति] दे० 'भाँति'।

भतरौड़—संज्ञा पुं० [हिं० भात + रौंड़ ?] १. मथुरा और वृंदावन के बीच का एक स्थान जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यहाँ श्रीकृष्ण ने चौबाइनों से भात मँगवाकर खाया था। उ०—भट्ट जमुना भतरौड लौ औंड़ी।—रसखान (शब्द०)। २. ऊँचा स्थान। ३. मंदिर का शिखर।

भतवान—संज्ञा पुं० [हिं० भात + दान (प्रत्य०)] विवाह की एक रीति जिसमे विवाह के पहले कन्यापक्ष के लोग भात, दाल आदि कच्ची रसोई बनाकर वर और उसके साथ चार कुँआरे लड़कों को बुलाकर भोजन कराते हैं। ब्याह के पूर्व होनेवाली कच्ची ज्योनार।

भताय†—संज्ञा पुं० [सं० भर्तरि] दे० 'भतार'। उ०—प्रेम प्रीति मन रातल हो, हमरो मरल भताय।—गुलाल० बानी पृ० ८१।

भतार†—संज्ञा पुं० [सं० भर्तृ, भर्त्ता] पति। खाविंद। खसम। उ०—ज्यौं तिय सुरत समय सितकारा। निफल जाहि जो बधिर भतारा।—नंद० ग्रं०, पृ० ११८।

भति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [पु० भणिति] कथन। विचार। भनिति। उ०—भति सुनी भीम सब अमरसीह।—पृ० रा०, १२।२०८।

भतीज—संज्ञा पुं० [सं० भ्रातृज, भ्रातृजात] दे० 'भतीजा'। उ०—भीमलणी हरनाथ भयंकर। जसो भतीज महा जोरावर। —रा० रू०, पृ० २६२।

भतीजा—संज्ञा पुं० [सं० भ्रातृज, भ्रातृजात] [स्त्री० भतीजी] भाई का पुत्र। भाई का लड़का।

भतुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] सफेद कुम्हड़ा। पेठा।

भतुला—संज्ञा पुं० [देश०] गकरिया। बाटी।

भत्ता—संज्ञा पुं० [सं० भरण या भृति] १. दैनिक व्यय जो किसी कर्मचारी को यात्रा के समय दिया जाता है। २. वेतन के अतिरिक्त वह धन जो किसी को यात्राकाल में विशेष रूप से दिया जाता है।

भदंत१—वि० [सं० भद्र] १. पूजित। २ सम्मानित।

भदंत२—संज्ञा पुं० बौद्ध भिक्षु।

भदई१—वि० [हिं० भादों] भादों संबंधी। भादों का।

भदई२—संज्ञा स्त्री० वह फसल जो भादों में तैयार होती है।

भदभद—वि० [अनु०] १. बहुत मोटा। २. भद्दा।

भदयल‡—संज्ञा पुं० [हिं० भादों] मेढक।

भदवरिया—वि० [हिं० भदावर + इया (प्रत्य०)] भदावर प्रांत का। भदौरिया।

भदाक—संज्ञा पुं० [सं०] उन्नति। सौभाग्य। अभ्युदय [को०]।

भदावर—संज्ञा पुं० [वि० भद्रवर] एक प्रांत जो आजकल ग्वालियर राज्य में है।

विशेष—यहाँ के क्षत्रियों का एक विशिष्ट वर्ग है। यहाँ के बैल भी बहुत प्रसिद्ध होते हैं।

भदेसा†—वि० [हिं० भद्दा+वेस (=वेष)] भद्दा। भोंडा। कुरूप। बदशकल। उ०—भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी।—मानस, १।१०।

भदेसिल†—वि० [हिं० भद्दा+देसिल (=देश का)] दे० 'भदेस'।

भदेल‡—संज्ञा पुं० [हिं० भादों ?] मेंढक।

भदैला†—वि० [हिं० भादों+ऐला (प्रत्य०)] भादों मास में उत्पन्न होनेवाला। भादों का।

भदौंह†—वि० [हिं० भादों+ह (प्रत्य०)] भादों मास में होनेवाला। उ०—वह रस यह रस एक न होई जैसे घाम भदोह।—देवस्वामी (शब्द०)।

भदौहाँ†—वि० [हिं० भादों+हाँ (प्रत्य०)] भादों में होनेवाला। भदोह।

भदौरिया[1]—वि० [हिं० भदावर] भदावर प्रांत का। भदावर संबंधी।

भदौरिया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भदावर] १. क्षत्रियों की एक जाति २. भदावर प्रांत का निवासी।

भद्द[1]—वि० [सं० भद्र, प्रा० भद्द] दे० 'भद्र'। उ०—रचि रूप भद्द तरु अद्द भली मनि दामिनि गोपी सु हर।—पृ० रा०, २।३८५।

भद्द[2]—संज्ञा पुं० [सं० भाद्र] दे० 'भादो'। उ०—कितिक दिवस अंतरह रहिय आधान रानि उर। दिन दिन कला बढंत मेघ ज्यों बढ़त भद्द धुर।—पृ० रा०, १।६८४।

भद्दा—वि० पुं० [सं० भद्र] [स्त्री० भद्दी] १. जिसकी बनावट में अंग प्रत्यंग की सापेक्षिक छोटाई बड़ाई का ध्यान न रखा गया हो। २. जो देखने में मनोहर न हो। बेढंगा। कुरूप।

भद्दापन—संज्ञा पुं० [हिं० भद्दा+पन (प्रत्य०)] १. भद्दे होने का भाव। २. अशिष्टता। असामाजिकता। अनौचित्य।

भद्रंकर—वि० [सं० भद्रङ्कर] भद्र करनेवाला। मंगलकारक। शुभकर्ता [को०]।

भद्रंकरण—संज्ञा पुं० [सं० भद्रङ्करण] मंगलसाधन।

भद्र[1]—वि० [सं०] १. सभ्य। सुशिक्षित। २. कल्याणकारी। ३. श्रेष्ठ। ४. साधु। ५. सुंदर (को०)। ६. प्रिय (को०)। ७. अनुकूल (को०)।

भद्र[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्याण। क्षेम। कुशल। २. चंदन। ३. हाथियों की एक जाति जो पहले विंध्याचल में होती थी। उ०—च्यारि प्रकार विविध वन बारन। भद्र मंद मृग जाति सधारन।—पृ० रा०, २७।४। ४. बलदेव जी का एक सहोदर भाई। ५. महादेव। ६. एक प्राचीन देश का नाम। ७. उत्तर देश के दिग्गज का नाम। ८. खंजन पक्षी। ९. बैल। १०. विष्णु के एक पारिषद् का नाम। ११. राम जी के एक सखा का नाम। १२. स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा रे सा, रे ग रे, ग म ग, म प म, प ध प, ध नि ध, नि सा नि, सा रे सा। सा नि सा, नि ध नि, ध प ध, प म प, म ग म, ग रे ग, रे सा रे, सा नि सा। १३. व्रज के ८४ वनों में से एक वन। १४. सुमेरु पर्वत। १५. कदंब। १६. सोना। स्वर्ण १७ मोथा। १८. रामचंद्र की सभा का वह सभासद जिसके मुँह से सीता की निंदा सुनकर उन्होंने सीता को वनवास दिया था। १९. विष्णु का वह द्वारपाल जो उनके दरवाजे पर दाहिनी ओर रहता है। २०. देवदारु वृक्ष (को०)। २१. दांभिक। दंभी। कपटी। छली। धूर्त (को०)। २२. लोह। लोहा (को०)। २३. ज्योतिष में सातवाँ करण। २४. पुराणानुसार स्वायंभुव मन्वंतर में विष्णु से उत्पन्न एक प्रकार के देवता जो तुषित भी कहलाते हैं।

भद्र[3]—संज्ञा पुं० [सं० भद्राकरण] सिर, दाढ़ी, मूछों आदि सबके बालों का मुंडन। उ०—लीन्हों हृदय लगाय सूर प्रभु पूछत भद्र भए क्यों भाई।—सूर (शब्द०)।

भद्रअवज्ञा—संज्ञा पुं० [सं० भद्र+अवज्ञा] दे० 'सविनय कानून भंग'।

भद्रकंट—संज्ञा पुं० [सं० भद्रकण्ट] गोक्षुर। गोखरू।

भद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम। २. चना, मूँग इत्यादि अन्न। ३. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ऽ।।. ऽ।ऽ. ।।।. ऽ।ऽ. ।।।. ऽ।ऽ. ।।।. ऽ. (भ र न र न र न ग) और ४, ६, ६, ६, पर यति होती है। ४. नागरमोथा। ५. देवदार।

भद्रकपिल—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

भद्रकल्पिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

भद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं० भद्रकान्त] रूपवान प्रेमी या पति।

भद्रका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रजव।

भद्रकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरिवंश के अनुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। २. वह जिसके शरीर की गठन सुंदर हो।

भद्रकार—वि० [सं०] मंगल या कल्याण करनेवाला।

भद्रकारक[1]—वि० [सं०] दे० 'भद्रकार'।

भद्रकारक[2]—संज्ञा पुं० एक प्राचीन देश का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

भद्रकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा देवी की एक मूर्ति जो १६ हाथोंवाली मानी जाती है। २. कात्यायिनी। ३. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

विशेष—पुराणानुसार इसकी उत्पत्ति दक्ष यज्ञ के समय भगवती के क्रोध से हुई थी। इसने उत्पन्न होते ही वीरभद्र के साथ मिलकर यज्ञ का ध्वंस किया था।

४. गंधप्रसारिणी। ५. नागरमोथा।

भद्रकाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रमुस्ता। नागरमोथा [को०]।

भद्रकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु वृक्ष।

भद्रकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० भद्रकुम्भ] वह स्वर्णकलश जिसमें तीर्थों का (विशेषतः गंगा का) पवित्र जल रहा हो जिसका उपयोग राजा के संस्कारार्थ होता था [को०]।

भद्रगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० भद्रगन्धिका] नागरमोथा [को०]।

भद्रगणित—संज्ञा पुं० [सं०] बीज गणित के अंतगर्त एक प्रकार का गणित जो चक्रविन्यास की सहायता से होता है।

भद्रगौड़—संज्ञा पुं० [सं० भद्रगौड] एक प्राचीन देश जो पुराणानुसार पूर्वी भारत में था।

भद्रगौर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

भद्रघट—संज्ञा पुं० [सं०] वह ड्रम या घट जिसमें से लाटरी निकाली जाती है।

भद्रघन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरमोथा।

भद्रचारु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो रुक्मिणी से उत्पन्न था।

भद्रज—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ।

भद्रजन—संज्ञा पुं० [सं०] भला व्यक्ति। शिष्ट जन।

भद्रतरुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गुलाब।

विशेष—पाटल, कुंजिका, भद्रतरुणी इत्यादि गुलाब की कई जातियाँ हैं।

भद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्र होने का भाव। शिष्टता। सभ्यता। शराफत। भलमनसी।

भद्रतुंग—संज्ञा पुं० [सं० भद्रतुङ्ग] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ।

भद्रतुरग—संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप के नौ वर्षों में से एक वर्ष।

भद्रदंत—संज्ञा पुं० [सं० भद्रदन्त] हाथी।

भद्रदंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती वृक्ष का एक भेद।

विशेष—वैद्यक में इसे कटु, उष्ण, रेचक और कृमि, शूल, कुष्ठ, आमदोष आदि का नाशक माना है।

पर्या०—केशरुहा। भिषग्भद्रा। जयावहा। आवर्तकी। जरांगी। भद्रदंतिका।

भद्रदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

भद्रदेह—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

भद्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुरु वर्ष के अंतगर्त एक द्वीप का नाम।

भद्रनाम—संज्ञा पुं० [सं० भद्रनामन्] १. खंजन पक्षी। खँडरिच। २. दे० 'कठफोड़वा'।

भद्रनामिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता। त्रायंती। वि० दे० 'त्रायमाणा'।

भद्रनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का महादान।

विशेष—अग्निपुराण ने 'भद्रनिधिदान' शीर्षक अध्याय मे इसकी विस्तृत विधि आदि वर्णित है।

भद्रपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भाद्रपदा' (नक्षत्र)।

भद्रपर्णा, भद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी। कंटभरा वृक्ष।

भद्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

भद्रपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आसन जिसपर बैठा जाय। २. वह सिंहासन आदि जिसपर राजाओं या देवताओं का अभिषेक होता है।

भद्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा के पास का एक वन।

भद्रबलन, भद्रवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] बलराम।

भद्रबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसारिणी लता। २. माधवी लता।

भद्रबाहु—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

भद्रभीमा—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कश्यप की एक कन्या का नाम जो दक्ष की कन्या क्रोधा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी।

भद्रभूषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक मूर्ति का नाम।

भद्रमंद—संज्ञा पुं० [सं० भद्रमन्द] हाथियों की एक जाति।

भद्रमनसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐरावत की माता का नाम।

भद्रमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुनी। गवाक्षी [को०]।

भद्रमुंज—संज्ञा पुं० [सं० भद्रमुञ्ज] सरपत।

भद्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक नाग का नाम। २. [स्त्री० भद्रमुखी] श्रीमान्। एक शिष्ट संबोधन।

भद्रमुस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] नागरमोथा। भद्रमुस्ता [को०]।

भद्रमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

भद्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों की एक जाति।

भद्रयव—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ।

भद्रयान—संज्ञा पुं० [सं०] शाखाप्रवर्तक एक बौद्ध आचार्य।

भद्ररेणु—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत।

भद्ररोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुका।

भद्रवट—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

भद्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटहल। २. नाग्नजिती के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण की एक कन्या का नाम।

भद्रवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० भद्रवर्मन्] चमेली। नवमल्लिका [को०]।

भद्रवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल।

भद्रवल्ली—संज्ञा [सं०] १. माधवी लता। २. मल्लिका।

भद्रवान्—संज्ञा पुं० [सं० भद्रवत्] देवदारु वृक्ष [को०]।

भद्रविंद—संज्ञा पुं० [सं० भद्रविन्द] पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

भद्रविराट्—संज्ञा पुं० [सं० भद्रविराज] वर्णार्धसम वृत्त का नाम जिसके पहले और तीसरे चरण मे १० और दूसरे तथा चौथे चरण में ११ अक्षर होते हैं।

भद्रवेश—संज्ञा पुं० [सं० भद्र + वेश] वह जो मुंडित हो। भद्र। उ०—इनके दश चिह्न होते हैं—भद्रवेष अर्थात् दाढी, मूँछ, सिर के बाल मुड़े हुए।—कबीर मं०, पृ० ६१।

भद्रशाख—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

भद्रश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

भद्रश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० भद्रश्रवस्] पुराणानुसार धर्म के एक पुत्र का नाम।

भद्रश्रिय, भद्रश्री—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन का वृक्ष।

भद्रश्रेण्य—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार वाराणसी के प्राचीन राजा जो दिवोदास से भी पहले हुए थे।

भद्रषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

भद्रसमाज—संज्ञा पुं० [सं०] शिष्ट जनों का समाज। उ०—उनके संसर्ग से भद्रसमाज मे औरों को भी इसका अनुराग न्यून न था।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८६।

भद्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवकी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम जिसे कंस ने मार डाला था। २. भागवत के अनुसार कुंतिराज के पुत्र का नाम। ३. बौद्धों के अनुसार मार, पापीय आदि कुमति दलपति का नाम।

भद्रसोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा का एक नाम। २. मार्कंडेय पुराण के अनुसार कुरुवर्ष की एक नदी का नाम।

भद्रांग—संज्ञा पुं० [सं०] बलराम।

भद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केकयराज की एक कन्या जो श्रीकृष्ण जी को ब्याही थी। २. रास्ता। ३. आकाशगंगा। ४. द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी तिथियों की संज्ञा। ५. प्रसारिणी लता। ६. जीवंती। ७. बरियारी। ८. शमी। ९. वच। १०. दंती। ११. हलदी। १२. दुर्वा। १३. चबुर। १४. गाय। १५. दुर्गा। १६. छाया से उत्पन्न सूर्य की एक कन्या। १७. पिंगल में उपजाति वृत्त का दसवाँ भेद। १८. कटहल। १९. कल्याणकारिणी शक्ति। २०. पृथ्वी। २१. पुराणानुसार भद्राश्ववर्ष की एक नदी का नाम जो गंगा की शाखा कही गई है। २२. बुद्ध की एक शक्ति का नाम। २३.सुभद्रा का एक नाम। २४. कामरूप प्रदेश की एक नदी का नाम। २५. फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो कृष्ण पक्ष की तृतीया और दशमी के शेषार्ध में तथा अष्टमी और पूर्णिमा के पूर्वार्द्ध में रहता है।

विशेष—जब यह कर्क, सिंह, कुंभ और मीन राशि में होता है, तब पृथ्वी पर; जब मेष, वृष, मिथुन और वृश्चिक राशि में होता है, तब स्वर्ग लोक मे और जब कन्या, धन, तुला और मकर राशि मे होता है, तब पाताल मे रहता है। इस योग के स्वर्ग मे रहने के समय यदि कोई कार्य किया जाय तो कार्यसिद्धि और पाताल मे रहने के समय किया जाय तो धन की प्राप्ति होती है। पर यदि इस योग के इस पृथ्वी पर रहने के समय कोई कार्य किया जाय तो वह बिलकुल नष्ट हो जाता है। अतः भद्रा के समय लोग कोई शुभ कार्य नहीं करते। इसे विष्टिभद्रा भी कहते हैं।

२६. बाधा। रोक। (बोलचाल)।

मुहा०—किसी के सिर की भद्रा उतारना=किसी प्रकार की हानि विशेषतः आर्थिक हानि होना। भद्रा लगाना = बाधा उत्पन्न करना।

भद्राकरण—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडन। सिर मुँड़ाना।

भद्राकार—वि० [सं०] दे० 'भद्राकृति'।

भद्राकृति—वि० [सं०] सुंदर। सौम्य आकृतिवाला।

भद्रात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग।

भद्रानंद—संज्ञा पुं० [सं० भद्रानन्द] एक प्रकार की स्वरसाधना प्रणाली जो इस प्रकार है—आरोही—सा रे ग म, रे ग म प, ग म प ध, म प ध नि, प ध नि सा। अवरोही—सा नि ध प, नि ध प म, ध प म ग, प म ग रे, म ग रे सा।

भद्राभद्र—वि० [सं०] अच्छा बुरा। भला बुरा।

भद्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

भद्रारक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार अठारह क्षुद्र द्वीपों मे से एक द्वीप का नाम।

भद्रालपत्रिका, भद्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधाली (को०)।

भद्रावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटफल का पेड़। २. महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नगरी।

भद्रावह—वि० [सं०] जिससे मंगल हो। मंगलकारक।

भद्राश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

भद्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप के नौ खंडों या वर्षों में से एक खंड। उ०— प्रथम मंडल मे उदित शुक्राचार्य के ऊपर जो कोई ग्रह होय तो भद्राश्व, शूरसेनक, यौधेयक और कोटि-वर्ष देश के राजा का नाश होता है।—बृहत्, पृ० ५६।

भद्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मणियों से जड़ा हुआ राजसिंहासन जिसपर राज्याभिषेक होता है। २. योगसाधन का एक आसन।

भद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिंगल में एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में रगण, नगण और रगण होते हैं। २. भद्रा तिथि। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि। ३. फलित ज्योतिष के अनुसार योगिनी दशा के अंतर्गत पाँचवीं दशा।

भद्री—वि० [सं० भद्रिन्] भाग्यवान्। उ०—समरथ महा मनोरथ पूरन हीन अभद्री भद्री।—रघुराज (शब्द०)।

भद्रेश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भद्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वाराह पुराण के अनुसार स्वरग्रामस्थ शिव। २. वामन पुराण के अनुसार दुर्गा द्वारा शिवप्राप्ति के निमित्त आराधित पार्थिव शिवलिंग। (को०)।

भद्रैला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची। (को०)।

भद्रोदनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बला। २. नागबला।

भनक—संज्ञा स्त्री० [सं० भणन या अनु०] १. धीमा शब्द। ध्वनि। २. अस्पष्ट या उड़ती हुई खबर। जैसे—हमारे कान में पहले ही इसकी कुछ भनक पड़ गई थी।

भनकना—Ⓟक्रि० स० [हिं० भनक] बोलना। कहना।

भनकंत—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भनभनाहट'। उ०—बलाय मंजु पैजनी भँवर भनकंत की।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २२२।

भनना Ⓟ—क्रि० स० [सं० भणन] कहना।

भनभन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] गुंजारने की ध्वनि। भनभनाहट।

भनभनाना—क्रि० अ० [अनु०] भन भन शब्द करना। गुंजारना।

भनभनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० भनभनाना + आहट (प्रत्य०)] भनभनाने का शब्द। धीमी आवाज की ध्वनि। गुंजार।

भनसा†—संज्ञा पुं० [सं० महानस, म्हानस, भनस] रसोई।

यौ०—भनसाघर = रसोईघर। रसोई बनाने का स्थान। उ०—भनसाघर और एक घर फालतू।—मैला०, पृ० १३।

भनित(पु)—वि० [सं० भणित] दे० 'भणित'।

भनिति(पु)—वि० [सं० भणिति] दे० 'भणिति'। उ०—(क) जे पर भनिति सुनत हरषाही। ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं।—मानस, १।८। (ख) भाषा भनिति भोरि मति मोरी।—मानस, १।९।

भनुजा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भानुजा] यमुना। उ०—भनुजा पै नटनागर जू, बनसीवट पास हमेस रहा करै।—नट० पृ० ५६।

भनैजी†—संज्ञा स्त्री० [सं० भागिनेयी] भानजी। उ०—बोलि उठी देवकि छबिमई। भैया न डर भनैजी भई।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१।

भबका—संज्ञा पुं० [हिं० भाप] अर्क उतारने या शराब चुआने का बंद मुँह का एक प्रकार का बड़ा घड़ा जिसके ऊपरी भाग में एक लंबी नली लगी रहती है।

विशेष—जिस चीज का अर्क उतारना होता है वह चीज पानी आदि के साथ इसमें डालकर आग पर चढ़ा दी जाती है और उसकी भाप बनती है। तब वह भाप उस नली के रास्ते से ठंढी होकर अर्क आदि के रूप में पास रखे हुए दूसरे बर्तन में गिरती है।

भबकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भभकी'।

भबूड़ा†—संज्ञा [सं० बाष्प + हिं० ऊड़ा (प्रत्य०)] १. दे० 'भभूका'। २. दे० बपूरा या बगूला और भूभल। उ०—उठिऐ ज्वानी या ढब ते जैसे आँधी में भबूडो बल खाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८७६।

भड़भड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीड़ + भाड़ अनु०] भीड़ भाड़। अव्यवस्थित जनसमुदाय।

भभक—संज्ञा स्त्री० [हिं० भक से अनु०] किसी वस्तु का एकाएक गरम होकर ऊपर को उबलना। उबाल। उ०—नए जुते खेतों से आती हुई भभक सी मन का भार बनी यह काफी। मन को डुबा रही यह काफी।—बंदन०, पृ० १६१।

भभकना—क्रि० अ० [अनु०] १. उबलना। २. गरमी पाकर किसी चीज का फूटना। ३. प्रज्वलित होना। जोर से जलना। भड़कना। उ०—बुद्धि विवेक कुलीनता तबही लौं मन माहिं। काम बान की अगनि तन, जौ लौं भभकत नाहिं।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६६।

भभका—संज्ञा पुं० [हिं० भाप] दे० 'भबका'।

भभकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भभका] झूठी धमकी। घुड़की। जैसे, बँदरभभकी।

भभ्भड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीड़भाड़] दे० 'भब्भड़'।

भभरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० भय या अनु०] १. भयभीत होना। डरना। उ०—(क) समय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तरि जात काम करि बरि जात कोप करि, कर्म कीलकाल तीन कंटक भभरि जात।—सुंदर० ग्रं० (जी०) भा० १, पृ० ६५। २. घबरा जाना। ३. भ्रम में पड़ना। उ०—(क) अब ही सुधि भूलिहौ मेरी भटू भभरौ जिन मीठी सी तानन में। कुल कानि जो आपनी राखो चहौ अँगुरी दै रहौ दोउ कानन मे।—नेवाज (शब्द०)। (ख) कहै पदमाकर सुमंद चलि कँधहू ते भ्रमि भ्रमि भाई सी भुजा मे त्यौं भभरि गो।—पद्माकर (शब्द०)।

भभाना¹—क्रि० वि० [अनु०] भाँय भाँय करते हुए। बहुत जोर से। उ०—एक बार पूछा, दो बार पूछा। तीसरी दफे मोन्टिल भभाकर हँस पड़ा।—नई०, पृ० ९७।

भभाना²—क्रि० अ० जले हुए अंग आदि ताप के कारण प्रदाह होना।

भभीखन—संज्ञा पुं० [सं० विभीषण] दे० 'विभीषण'। उ०—ध्रू प्रहलाद भभीखन पीया और पिया रैदासा।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ७।

भभीरी—संज्ञा स्त्री० [अनु] झींगुर। दे० 'भँभीरी'। उ०—बरषा भएँ ते जैसे बोलत भभीरी स्वर।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२५।

भभूका—संज्ञा पुं० [हिं० भभक + उल्का] १. ज्वाला। लपट। उ०—चातुर शंभु कहावत वे ब्रज सुंदरी सोहि रही ज्यौं भभूकै। जानी न जात मसाल औ बाल गोपाल गुलाल चलावत चूकैं।—शंभू (शब्द०)। २. चिनगारी। चिनगी।

भभूखा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भभूका'।

भभूत—संज्ञा स्त्री० [सं० विभूति] १. वह भस्म जो शिव जी लगाया करते थे। २. शिव की मूर्ति के सामने जलनेवाली अग्नि की भस्म जिसे शैव लोग मस्तक और भुजा आदि पर लगाते हैं। भस्म।

क्रि० प्र०—मलना—। रमाना—। लगाना।

३. दे० 'विभूति'।

भभूदर—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भूभल'।

भमर—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] भौंरा। भ्रमर। उ०—जनु अगनित नग छबि तन बिसाल। रसना कि बैठि जनु भमर व्याल।—पृ० रा०, ६।३६।

भयंक—वि० [सं० भयङ्कर] दे० 'भयकर'। उ०—बज्रपाट ता नाम गन घन तन घोर भयंक। प्रथुक नाम बरनत सबन सुनत मिटै तन संक।—पृ० रा०, ६।६५।

भयंकर¹—वि० [सं० भयङ्कर] जिसे देखने से भय लगता हो। डरावना। भयानक। भीषण। विकराल। खौफनाक। उ०—अग्ग गयौ गिरि निकट बिकट उद्यान भयंकर।—पृ० रा०, ६।६४।

भयकर²—संज्ञा पुं० १. एक अस्त्र का नाम। २. डुंडुल पक्षी।

भयंकरता—संज्ञा स्त्री० [सं० भयङ्करता] भयंकर होने का भाव। डरावनापन। भयानकता। भीषणता।

भयंद(पु)—वि० [सं० भयद] भयदायक। भयंकर। उ०—बजै नद्द नीसान भेरी भयदं, गजै शृंग रीसं मनो मेघ नद्दं।—पृ० रा०, ६।१४८।

भय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध मनोविकार जो किसी आनेवाली भीषण आपत्ति अथवा होनेवाली भारी हानि की आशंका से उत्पन्न होता है और जिसके साथ उस आपत्ति अथवा हानि से बचने की इच्छा लगी रहती है। भारी अनिष्ट या विपत्ति की संभावना से मन में होनेवाला क्षोभ। डर। भीति। खौफ।

विशेष—यदि यह विकार सहसा और अधिक मान में उत्पन्न हो तो शरीर काँपने लगता है, चेहरा पीला पड जाता है, मुँह से शब्द नहीं निकलता और कभी कभी हिलने डुलने तक की शक्ति भी जाती रहती है।

मुहा०—भय खाना = डरना। भयभीत होना।

यौ०—भयभीत। भयानक। भयंकर।

२. बालकों का वह रोग जो उनके कहीं डर जाने के कारण होता है। ३. निर्ऋति के एक पुत्र का नाम। ४ द्रोण के एक पुत्र का नाम जो उसकी अभिमति नामक स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ५. कुब्जक पुष्प। मालती।

भय(पु)²—वि० [सं० भू (= होना)] दे० 'भया' या 'हुआ'। उ०—भय दस मास पूरि भइ घरी। पद्मावत कन्या अवतारी।—जायसी (शब्द०)।

भयकंप—संज्ञा पुं० [सं० भयकम्प] भयजन्य कँपकँपी। डर के कारण काँपना [को०]।

भयकर—वि० [सं०] जिसे देखकर भय लगे। भय उत्पन्न करनेवाला। भयानक।

भयचक—वि० [सं० भय + √चक] दे० 'भौचक'।

भयज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] भय और शोक से उत्पन्न होनेवाला ज्वर।—माधव०, पृ० २६।

भयडिंडिम—संज्ञा पुं० [सं० भयडिण्डिम] प्राचीन काल का एक प्रकार का लड़ाई का बाजा।

भयतां—संज्ञा पुं० [सं० मयङ्क, हिं०] चंद्रमा। (डिं०)।

भयत्रस्त—वि० [सं०] अत्यंत भयभीत। बहुत डरा हुआ।

भयत्राता—वि० पुं० [सं० भयत्रातृ] भय से रक्षा करनेवाला। डर मिटानेवाला या छुड़ानेवाला।

भयद—वि० [सं०] भय उत्पन्न करनेवाला। भयानक। डरावना। खौफनाक। उ०—गिद्ध गरुड़ हुड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २९८।

भयदर्शी—वि० [सं० भयदर्शिन्] भय करनेवाला। भयानक [को०]।

भयदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जो भय के कारण किया जाय।

भयदोष—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक प्रकार का दोष जो उस समय होता है जब मनुष्य अपनी इच्छा से नहीं बल्कि केवल लोकापवाद के भय से सामयिक कर्म आदि करता है।

भयन—संज्ञा पुं० [सं०] भय। डर। खौफ [को०]।

भयनाशन¹—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

भयनाशन²—वि० भय का नाश करनेवाला।

भयनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता।

भयप्रतीकार—संज्ञा पुं० [सं०] डर को दूर करना। भयनिवारण।

भयप्रद—वि० [सं०] जिसे देखकर भय उत्पन्न हो। भय उत्पन्न करनेवाला। भयानक। खौफनाक।

भयप्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] डराना। भयभीत करना [को०]।

भयब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो अपना ब्राह्मणत्व बताकर आगत भय से बचने की चेष्टा करे [को०]।

भयभीत—वि० [सं०] जिसके मन में भय उत्पन्न हो गया हो। डरा हुआ।

भयभ्रष्ट—वि० [सं०] जो भय से पश्चात्पद हो [को०]।

भयमोचन—वि० [सं०] भय छुड़ानेवाला। डर दूर करनेवाला। निर्भय करनेवाला।

भयवर्जिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यवहार में दो गाँवों के बीच की वह सीमा जिसे वादी और प्रतिवादी आपस में मिलकर ही मान लें और जिसका निर्णय किसी दूसरे को न करना पड़ा हो।

भयवाद—संज्ञा पुं० [हिं० भाई + आद (प्रत्य०)] १. एक ही गोत्र या वंश के लोग। भाईबंदी। २. बिरादरी का आदमी। सजातीय।

भयविप्लुत, भयविह्वल—वि० [सं०] आतंकित। भयभीत। भयाकुल [को०]।

भयव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का व्यूह जो युद्धकाल में इसलिये रचा जाता था जिसमें भय उपस्थित होने पर राजा उसमें आश्रय लेकर अपनी रक्षा करे।

भयशील—वि० [सं०] डरपोक। भयालु।

भयशून्य—वि० [सं०] निडर। निर्भय।

भयस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] भय की जगह। भय का कारण।

भयहरण—वि० [सं०] भय का नाश करनेवाला। भय दूर करनेवाला।

भयहारी—वि० [सं० भयहारिन्] डर छुड़ानेवाला। भयहरण। डर दूर करनेवाला।

भयहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भयस्थान'।

भया¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जो काल की बहन और हेति की स्त्री थी। विद्युत्केश इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। २. एक प्रकार की नाव। ९२ हाथ लंबी, ५६ हाथ चौड़ी ३६ हाथ ऊँची नाव। (युक्तिकल्पतरु)।

भया(पु)†²—वि० [सं० √भू (= होना)] दे० 'हुआ'। उ०—(क)

भयो सचेत हेन हित लाग्यो सत दरसन रस पाग्यो रे।—जग० श०, पृ० ८७। (ख) जैसे कलपि कलपि के भए है गुड़ की माखी।—धरनी० श०, पृ० ८४। (ग) भयो द्रोपदी को बसनु बासर नाहिं बिहाय।—मति० ग्रं०, पृ० ३०८। (घ) जँह भए शाक्य हरिचंद अरु नहुष ययाती।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

भया²—संज्ञा पुं० [सं० भ्राता] भ्राता। भाई। उ०—लेहु भया गहि सीसन ते दधि की मटुकी अब कानि करो कित। जैसे सों तैसे भए ही बनै घनआनंद धाय धरो जित की तित।—घनानंद, पृ० २५४।

भयाउनि(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० भयावनी] भयावन का स्त्री लिंग। डरावनी। उ०—अति भयाउनि निबिल राति। कइसे अँगीरति जीवन साति।—विद्यापति, पृ० ६६।

भयाकुल—वि० [सं०] भय से व्याकुल। डर से घबराया हुआ। भयभीत।

भयाक्रांत—वि० [सं० भयाक्रान्त] दे० 'भयाकुल'।

भयातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] अतिसार का एक भेद जिसमें केवल भय के कारण दस्त आने लगते हैं। उ०—यहाँ माधवाचार्य ने भयातिसार की वातज अतिसार में गणना की है।—माधव०, पृ० ४४।

भयातुर—वि० [सं०] डर से घबराया हुआ। भयभीत।

भयान(पु)—वि० [सं० भयानक] डरावना। भयानक। उ०—तुम बिना सोभा न ज्यों गृह बिना दीप भयान। आस स्वास उसास घट में अवध आशा प्रान।—सूर (शब्द०)।

भयानक¹—वि० [सं०] जिसे देखने से भय लगता हो। भीषण। भयंकर। डरावना।

भयानक²—संज्ञा पुं० १. बाघ। २. राहु। ३. भय। डर (को०)। ४. साहित्य में नौ रसों के अंतर्गत छठा रस।

विशेष—इसका स्थायी भाव भय है। इसमें भीषण दृश्यों (जैसे, पृथ्वी के हिलने या फटने, समुद्र में तूफान आने आदि) का वर्णन होता है। इसका वर्ण श्याम, अधिष्ठाता देवता यम, आलंबन भयंकर दर्शन, उद्दीपन उसके घोर कर्म और अनुभाव कंप, स्वेद, रोमांच आदि माने गए हैं।

भयाना(पु)¹—क्रि० अ० [सं० भय+हिं० आना (प्रत्य०)] डरना। भयभीत होना। उ०—जो अहि कबहुँ न देखिया रज्जु में नहिं दरसाय। सर्प ज्ञान जाको भया सो जहँ तहँ देखि भयाय।—कबीर (शब्द०)।

भयाना²—क्रि० स० भयभीत करना। डराना।

भयान्वित—वि० [सं०] भययुक्त। डरा हुआ (को०)।

भयापह¹—वि० [सं०] दे० 'भयनाशन'।

भयापह²—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. राजा (को०)।

भयारा—वि० [सं० भयालु] भयंकर। डरावना। भीषण। उ०—दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारयो। भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेटिबो को निरसंक पधारयो।—भूषन ग्रं०, पृ० ७१।

भयार्त, भयावदीर्ण—वि० [सं०] दे० 'भयविह्वल'। डरा हुआ।

भयावन(पु)†—वि० [हिं० भय+आवन (प्रत्य०)] डरावना। भयानक। भयंकर। उ०—ढहे धाम अभिराम दिखि वे लगत भयावन।—प्रेमघन०, पृ० ३८।

भयावह—वि० [सं०] भयंकर। डरावना। खौफनाक। उ०—विमाता बन गई आँधी भयावह, हुआ चंचल न तो भी श्याम घन वह।—साकेत, पृ० ५७।

भय्या†—संज्ञा पुं० [सं० भ्रातृक] दे० 'भैया'।

भरंड—संज्ञा पुं० [सं० भरण्ड] १. मालिक। स्वामी। प्रभु। २. राजा। नरेश। ३. कीट। कीड़ा। ४. वृषभ। बैल (को०)।

भरंत(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रान्ति] भ्रम। संदेह। शक। उ०—लीला राजा राम की खेलहिं सबही संत। आपा पर एकइ भए छूटी सबइ भरंत।—दादू (शब्द०)।

भरंत‡²—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] दे० 'भराई'।

भर¹—वि० [हिं० भरना] कुल। पूरा। सब। तमाम। जैसे, सेर भर, जाड़े भर, शहर भर। उ०—(क) अति करुणा रघुनाथ गुसाईं युग भर जात घड़ी।—सूर (शब्द०)। (ख) रहु ता करों जनम भर सेवा। चलै तो यह जिव साथ परेवा।—जायसी (शब्द०)।

भर†²—क्रि० वि० [हिं० भार] भार से। बल से। द्वारा। उ०—(क) सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरम कठोरा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गिरिगो मुँह के भर भूमि तहाँ। चलि बैठि पराय लजाय जहाँ।—रघुराज (शब्द०)।

भर³—संज्ञा पुं० [सं०] १. भार। बोझ। वजन। २. पुष्टि। मोटाई। पीनता। उ०—भर लाग्यो परन उरोजनि में रघुनाथ, राजी रोमराजी भाँति कल अलि सैनी की।—रघुनाथ (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

४. वह जो भरण पोषण करता हो। ५. युद्ध। लड़ाई। आक्रमण। ६. तौल (को०)। ७. आधिक्य। अतिशयता। प्रचुरता (को०)। ८. राशि। ढेर। पुंज (को०)। ९. चौर्य। चोरी (को०)। १०. स्तुतिगान या एक प्रकार की ऋचा (को०)।

भर⁴—संज्ञा पुं० [सं० भरत या भरतपुत्र] एक छोटी और अस्पृश्य जाति जो संयुक्त प्रांत और बिहार में पाई जाती है। आजकल इस जाति के कुछ लोग अपने आप को भरद्वाज के वंशज बतलाते हैं।

भरई‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भरदूल'।

भरइत‡—वि० [हिं० भाड़ा+इत (प्रत्य०)] भाड़े या किराए पर रहनेवाला। भरैत।

भरक¹—संज्ञा पुं० [देश०] दलदलों में रहनेवाला एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—यह पंजाब और बंगाल में अधिकता से पाया जाता है। यह प्रायः अकेला रहता है, पर कभी कभी दो या तीन भी एक साथ दिखाई देते हैं। मांस के लिये इसका शिकार किया जाता है।

भरक²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'भड़क'।

भरकना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'भड़कना'।

भरकम—वि० [हिं० भारी] मोटा ताजा। स्थूल। उ०—तुम मेरे पथ के बीच लिए काया भारी भरकम क्यों जमकर बैठ गए कुछ बोलो तो।—मिलन०, पृ० १८६।

यौ०—भारी भरकम।

भरका—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह जमीन जिसकी मिट्टी काली और चिकनी हो, परंतु सूख जाने पर सफेद और भुरभुरी हो जाय। यह प्रायः जोती नहीं जाती। २. दे० 'भरक'। †३. वादा। करार। मुहूर।

भरकाना(पु)—क्रि० स० [हिं० भड़क, भटक] दे० 'भड़काना'।

भरकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भरका'।

भरकूट—संज्ञा पुं० [हिं०] मस्तक। माथा।

भरके—अव्य० [हिं० भरका (= वादा)] एक नरेंत जो पालकी ढोनेवाले कहार नाली आदि से बचकर चलने के लिये कहते हैं।

भरखमा†—वि० [सं० भर (= भार) + क्षमा] भार सहनेवाली। क्षमा से भरी हुई। सहनशील। उ०—धरती जेहा भरखमा, नमणा जेही केलि।—ढोला०, दू० ५६३।

भरचिटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिमार प्रांत में होनेवाली एक प्रकार की घास जो वर्षा ऋतु में अधिकता से होती है। पशुओं के लिये यह बहुत पुष्टिकारक होती है। यह छोटी और बड़ी दो प्रकार की होती है।

भरट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुम्हार। २. सेवक। नौकर।

भरटक—संज्ञा पुं० [सं०] सन्यासियों का एक संप्रदाय।

भरण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालन। पोषण। भरन। २. ज्योतिष में २७ नक्षत्रों में से दूसरा नक्षत्र। यमदैवत। यम भू। भरणी नक्षत्र। ३. वेतन। तनख्वाह। भृति। ४. किसी वस्तु के बदले में जो कुछ दिया जाय। भरती। ५. धारण। वहन करना (को०)। ६. पुष्टिदायक अन्न या आहार (को०)।

भरण²—वि० [सं०] १. भरण पोषण करनेवाला। २. वहन करनेवाला (को०)।

भरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोषक लता। कड़वी तरोई। घिया तरोई। २. सत्ताइस नक्षत्रों में दूसरा नक्षत्र। तीन तारों के कारण इसकी आकृति त्रिकोण सी है। इसके अधिष्ठाता देवता यम है। यमदैवत। यमभु। ३. एक लग्न जो भूमि खोदने के लिये अच्छा माना जाता है।

भरणी²—वि० भरण करनेवाली। पालन करनेवाली। उ०—सोही करनि हरणी। सोही विश्वभरणी।—विश्राम (शब्द०)।

भरणीभू—संज्ञा पुं० [सं०] राहु।

भरणीय—वि० [सं०] भरण करने योग्य। पोषण के योग्य। पालने पोसने के लायक।

भरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालन। पोषण। २. मूल्य। दाम। ३. एक नक्षत्र। भरणी (को०)। ४. वेतन। तनख्वाह।

यौ०—भरण्यभुज् = वेतन पर काम करनेवाला। नौकर। मजदूर।

भरण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भृति। वेतन। २. पोषण। [illegible] (को०)।

भरण्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। २. स्वामी। प्रभु (को०)। ३. चंद्रमा। ४. अग्नि। ५. सूर्य (को०)। ६. मित्र।

भरत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न राजा दशरथ के पुत्र और रामचंद्र के छोटे भाई जिनका विवाह मांडवी के साथ हुआ था।

विशेष—ये प्रायः अपने मामा के यहाँ रहते थे और दशरथ के देहांत के उपरांत अयोध्या आए थे। दशरथ का श्राद्ध आदि इन्हीं ने किया था। कैकेयी ने इन्हीं को अयोध्या का राज्य दिलाने के लिये रामचंद्र को वनवास दिलाया था; पर इसके लिये इन्होंने अपनी माता की बहुत कुछ निंदा की थी। रामचंद्र को ये सदा अपने बड़े भाई के तुल्य मानते थे और उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। पिता के देहांत के उपरांत रामचंद्र को अयोध्या लाने के लिये ये चित्रकूट गए थे। जब रामचंद्र किसी प्रकार आने के लिये तैयार नहीं हुए, तब ये अपने साथ उनकी पादुका लेते आए और उसी पादुका को सिंहासन पर रखकर रामचंद्र के आने के समय तक अयोध्या का शासन करते रहे। जब रामचंद्र लौट आए तब इन्होंने राज्य उन्हें सौंप दिया। इनको तक्ष और पुष्कर नामक दो पुत्र हुए थे। इन्हीं पुत्रों को साथ लेकर इन्होंने गंधर्व देश के राजा शैलूष के साथ युद्ध किया था और उसे परास्त करके उसका राज्य अपने दोनों पुत्रों में बाँट दिया था। पीछे ये रामचंद्र के साथ स्वर्ग चले गए थे।

२. भागवत के अनुसार ऋषभदेव के पुत्र का नाम। विशेष दे० 'जड़भरत'। ३. शकुंतला के गर्भ से उत्पन्न दुष्यंत के पुत्र का नाम जिनका जन्म कण्व ऋषि के आश्रम में हुआ था।

विशेष—जन्म के समय ऋषि ने इनका नाम सर्वदमन रखा था और इनको शकुंतला के साथ दुष्यंत के पास भेज दिया था। दे० 'दुष्यंत'। बड़े होने पर ये बड़े प्रतापी और सार्वभौम राजा हुए। विदर्भराज की तीन कन्याओं से इनका विवाह हुआ था। इन्होंने अनेक अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किए थे। इस देश का 'भारतवर्ष' नाम इन्हीं के नाम पर पड़ा है।

यौ०—भरतखंड। भरतभूमि।

४. एक प्रसिद्ध मुनि जो नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य माने जाते है।

विशेष—संभवतः ये पाणिनि के बाद हुए थे; क्योंकि पाणिनि के सूत्रों में नाट्यशास्त्र के शिलालिन् और कृशाश्व दो आचार्यों का तो उल्लेख है, पर इनका नाम नहीं आया है। इनका लिखा हुआ नाट्यशास्त्र नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध और प्रामाणिक माना जाता है। कहा जाता है, इन्होंने नाट्यकला ब्रह्मा से और नृत्यकला शिव से सीखी थी।

यौ०—भरतपुत्र। भरतपुत्रक। भरतवाक्य। भरतवीणा। भरतशास्त्र = नाट्यशास्त्र।

५. संगीत शास्त्र के एक आचार्य का नाम। ६. वह जो नाटकों मे अभिनय करता हो। नट। ७. शबर। ८. तंतुवाय। जुलाहा। ९. क्षेत्र। खेत। १०. वह जो शस्त्रादि आयुधों से जीविकार्जन करता हो। सैनिक। आयुधजीवी (को०)। ११. अग्नि (को०)। १२. प्राचीन काल का उत्तर भारत का एक देश जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। १३. जैनों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम।

भरत[२]—संज्ञा पु० [सं० भरद्वाज] लवा पक्षी का एक भेद जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है।

विशेष—यह पक्षी लंबा होता है और झुंड मे रहता है। जाड़े के दिनों में खेतों और खुले मैदानों में इसके झुंड बहुत पाए जाते हैं। इसका शब्द बहुत मधुर होता है और यह बहुत ऊँचाई तक उड़ सकता है। यह प्रायः अंडे देने के समय जमीन पर घास से घोसला बनाता है और एक बार में ४-५ अंडे देता है। यह अनाज के दाने या कीड़े मकोड़े खाकर अपना निर्वाह करता है।

भरत[३]—संज्ञा पुं० [देश०] १. काँसा नामक धातु। कसकुट। वि० दे० 'काँसा'। † २. काँसे के बरतन बनानेवाला। ठठेरा।

भरत[४]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] मालगुजारी। (दिल्ली)।

भरतखंड—संज्ञा पुं० [सं० भरतखण्ड] १. राजा भरत के किए हुए पृथ्वी के नौ खंडों मे से एक खड। भारतवर्ष। हिंदुस्तान। २. भारतवर्ष के अंतर्गत कुमारिका खड।

भरतज्ञ—वि० [सं०] नाट्यशास्त्र का जानकार। भरत की नाट्यकला का ज्ञाता।

भरतपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में नाट्य करनेवाला पुरुष। नट।

भरतप्रसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] भरत की माता। कैकेयी [को०]।

भरतभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष [को०]।

भरतरी†—संज्ञा स्त्री० [डिं०] पृथ्वी।

भरतर्षभ—वि० [सं०] भरत के वंश मे श्रेष्ठ।

भरतवर्ष—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'भारतवर्ष'।

भरतवाक्य—संज्ञा पु० [सं०] नाटकों के अंत में भरत मुनि के सम्मान में गेय आशीर्वाद पद्य [को०]।

भरतवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा जो कच्छपी वीणा से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है। यह बजाई भी कच्छपी वीणा की तरह ही जाती है।

भरतशास्त्र—संज्ञा पु० [सं०] नाट्यशास्त्र [को०]।

भरता[१]—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का सालन जो बैगन, आलू या अरुई आदि को भूनकर, उसमे नमक मिर्च आदि मिलाकर और कभी कभी उसे घी या तेल आदि मे छौंककर तैयार किया जाता है। चोखा।

भरता[२]—संज्ञा पु० [सं० भर्तृ] दे० 'भर्त्ता'।

भरताग्रज—संज्ञा पु० [सं०] भरत के अग्रज। राम।

भरतार—संज्ञा पु० [सं० भर्त्ता] १. पति। खसम। खाविंद। २. स्वामी। मालिक। उ०—मेरे तौ सदाई करतार भरतार हौ।—घनानंद० पृ० १५७।

भरतिया[१]—वि० [हिं० भरत + इया (प्रत्य०)] भरत धातु अर्थात् कसकुट धातु का बना हुआ।

भरतिया[२]—संज्ञा पु० कसकुट के बर्तन या घंटे आदि ढालनेवाला। भरत धातु से चीजें बनानेवाला।

भरती[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] १. किसी चीज में भरे जाने का भाव। भरा जाना।

मुहा०—भरती करना = किसी के बीच में रखना, लगाना या बैठाना। जैसे,—(क) इसमे ५) की और भरती करो। (ख) टाँका भरती करना। भरती का = जो केवल स्थान पूरा करने के लिये रखा जाय। बहुत ही साधारण या रद्दी।

२. नक्काशी, चित्रकारी या कशीदे आदि मे बीच का खाली स्थान इस प्रकार भरना जिसमें उसका सौंदर्य बढ़ जाय। जैसे, कशीदे के बूटों में की भरती, नैचे में की भरती। ३. दाखिल या प्रविष्ट होने का भाव। प्रवेश होना। जैसे, लड़कों का स्कूल में भरती होना, फौज में भरती होना। ४. वह नाव जिसमे माल लादा जाता हो। (लश०)। ५. वह माल जो ऐसी नाव में भरा या लादा जाय। (लश०)। ६. जहाज पर माल लादने की क्रिया। (लश०)। ७. समुद्र में पानी का चढ़ाव। ज्वार। (लश०)। ८. नदी के पानी की बाढ़। (लश०)।

भरती[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. साँवाँ नामक कदन्न। २. एक प्रकार की घास जो पशुओं के चारे के काम मे आती है।

भरतोद्धता—संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार एक प्रकार के छंद का नाम।

भरत्थ (पु)†—संज्ञा पु० [सं० भरत, प्रा० भरत्थ] दे० 'भरत'।

भरथ† (पु)—संज्ञा पु० [सं० भरत] १. दे० 'भरत'। २. भारत। अर्जुन। उ०—करि पडी की पैज भरथ को दिया जिताई।—पलटू० बानी, पृ० ११२।

भरथर‡, भरथरी—संज्ञा पु० [सं० भर्तृहरि] दे० 'भर्तृहरि'। उ०—(क) सुणि भरथर नानक एह बाणि। जिव पावहि

सो निरवाणि।—प्राण०, पृ० ७८। (ख) मिले भरथरी अरु पिंगला।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २२६।

भरथरी सतक—संज्ञा पुं० [सं० भर्तृहरि शतक] एक ग्रंथ। दे० 'भर्तृहरि शतक'। उ०—करी भरथरी सतक पर, भाषा भलो प्रताप. नीति सहल रस गोरा में, बीतराग प्रभु भाप।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १२८।

भरदूल—संज्ञा पुं० [सं० भरद्वाज] भरद्वाज पक्षी। दे० 'भरत²'।

भरद्वाज—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगिरस गोत्र के उतथ्य ऋषि की स्त्री ममता के गर्भ से से उतथ्य के भाई बृहस्पति के वीर्य से उत्पन्न एक वैदिक ऋषि जो गोत्रप्रवर्तक और मंत्रकार थे।

विशेष—कहते हैं, एक बार उतथ्य की अनुपस्थिति में उनके भाई बृहस्पति ने ममता के साथ संसर्ग किया था जिससे भरद्वाज का जन्म हुआ। अपना व्यभिचार छिपाने के लिये ममता ने भरद्वाज का त्याग करना चाहा था, पर बृहस्पति ने उसको ऐसा करने से मना किया। दोनों में कुछ विवाद भी हुआ, पर अंत में दोनों ही नवजात बालक को छोड़कर चले गए। उनके चले जाने पर मरुद्गण इनको उठा ले गए और उन्हीं ने इनका पालन किया। जब भरत ने पुत्रकामना से मरुत्स्तोम यज्ञ किया, तब मरुद्गण ने प्रसन्न होकर भरद्वाज को उनके सुपुर्द कर दिया। महाभारत में लिखा है, एक बार ये हिमालय में गंगा स्नान कर रहे थे। उधर से आती हुई घृताची अप्सरा को देखकर इनका वीर्यपात हो गया, जिससे द्रोणाचार्य का जन्म हुआ। एक बार इन्होंने भ्रम में पड़कर अपने मित्र रैभ्य को शाप दे दिया था; और पीछे से पछताकर जल मरे थे। पर रैभ्य के पुत्र अर्वावसु ने अपनी तपस्या के प्रभाव से इनको फिर जिला लिया था। वनवास के समय एक बार रामचंद्र इनके आश्रम में भी गए थे। भावप्रकाश अनुसार अनेक ऋषियों के प्रार्थना करने पर ये स्वर्ग जाकर इंद्र से आयुर्वेद सीख आए थे। ये राजा दिवोदास के पुरोहित और सप्तर्षियों में से भी एक माने जाते हैं।

२. बौद्धों के अनुसार एक अर्हत का नाम। ४. एक प्राचीन देश का नाम। ५. भरद्वाज ऋषि के वंशज या गोत्रापत्य। ६. भरत पक्षी।

भरनⓤ¹—वि० [सं० भरण] भरण करनेवाला। उ०—पुष्टि प्रभाव भजन, रस, सेवा, निज पोषन भरन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२६।

भरन²—संज्ञा पुं० पालन। पोषण। भरण। उ०—विश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।—तुलसी (शब्द०)।

भरना¹—क्रि० स० [सं० भरण] १. किसी रिक्त पात्र आदि में कोई पदार्थ इस प्रकार डालना जिसमें वह पूर्ण हो जाय। खाली जगह को पूरा करने के लिये कोई चीज डालना। पूर्ण करना। जैसे, लोटे में पानी भरना; गड्ढे में मिट्टी भरना, गाड़ी में माल भरना, तकिए में रुई भरना। २. उँडेलना। उलटना। डालना। ३. रिक्त स्थान को पूर्ण अथवा उसकी अंशतः पूर्ति करना। स्थान को खाली न रहने देना। जैसे,—(क) सेनापति ने अपनी सेना से सारा शहर भर दिया। (ख) जुलाहे नली में सूत भरते हैं। (ग) तस्वीर में रंग भर दो। ४. दो पदार्थों के बीच के अवकाश या छिद्र आदि में कुछ डालकर उसे बंद करना। जैसे, दरज भरना। ५. तोप या बंदूक आदि में गोली बारूद आदि डालना। जैसे, बंदूक भरना। ६. पद पर नियुक्त करना। रिक्त पद की पूर्ति करना। जैसे,—उन्होंने प्रधान मंत्रालयों के उच्च पद सारे पद भर दिए। ७. ऋण का परिशोध या घाटे की पूर्ति करना। चुकाना। देना। जैसे—(क) यदि आपको कोई हानि होगी तो मैं भर दूँगा। (ख) अभी तक वे अपने भाई का देना ही भर रहे हैं।

मुहा०—(किसी का) घर भरना=(किसी को) खूब धन देना। जैसे,—बहुत सारा धन अपने संबंधियों के ही घर भर गए।

८. खेत में पानी देना। ९. दुष्ट भाव से किसी को किसी के विरुद्ध करना अथवा कोई बुरी बात मन में बैठाना। जैसे,—किसी ने उनको भर दिया है, इसी लिये वे आप से सीधे मुँह से नहीं बोलते। १०. धातु के छड़ आदि को पीटकर लंबा और किसी प्रकार छोटा और मोटा करना। ११. किसी प्रकार कर्तव्य पालन करना। कठिनता से बिताना। उ०—सुंदर जनम भरन पद आई। बिगति न करब चरित चेतनाई।—मानस, २। १२. निबाह करना। निबाहना। उ०—ठरे ही किए भाव अवार हुँ। वन के हो कैसे के भरौ।—हरिदास (शब्द०)। १३. लादना। दबना। उ०—जहाँ की आगम भर गई ...। —जायसी (शब्द०)। १४. सहना। झेलना। जैसे, (क) दुख भरना। (ख) करे कोई, भरे कोई। १५. पशुओं पर बोझ आदि लादना। १६. भार शरीर पर लगाना। पोतना। उ०—भूषण ... भरे ... गोविंद तन भरे।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

भरना²—क्रि० अ० १. किसी रिक्त पात्र आदि का किसी और पदार्थ पड़ने के कारण पूर्ण होना। जैसे,—(क) गागर भर गया। (ख) तालाब भर गया। (ग) बटुआ भर गया।

यौ०—भरा पूरा=(१) जो सब प्रकार से पूर्ण और संपन्न हो। (२) सब प्रकार से पूर्ण। जिसमें किसी प्रकार की त्रुटि न हो। भरा महीना। भरा मास। भरा पेट=अघाया हुआ। भरी जवानी=युवावस्था से पूर्ण। जवान।

२. उँडेला या डाला जाना। ३. रिक्त स्थान की पूर्ति होना। स्थान का खाली न रहना। जैसे,—थिएटर की सब कुरसियाँ भर गईं। ४. पदार्थों के बीच के छिद्र या अवकाश का बंद होना। ५. तोप या बंदूक आदि में गोली, बारूद आदि का होना। जैसे, भरा हुआ तमंचा। ६. ऋण आदि का परिशोध होना। जैसे,—सारा देना भर गया। ७. मन में क्रोध होना। असंतुष्ट या अप्रसन्न रहना। जैसे,—जरा उन्हें जाकर देखो तो सही, कैसे भरे बैठे हैं। ८. धातु के छड़ आदि का पीटकर मोटा और छोटा किया जाना। ९. पशुओं पर बोझ आदि लदना। १०. चेचक के दानों का सारे शरीर में निकल आना। ११. किसी अंग का बहुत काम करने के कारण दर्द करने लगना।

जैसे,—लोटा उठाए उठाए हाथ भर गया। १३. शरीर का हृष्ट पुष्ट होना। १४. पशुओं का गर्भ धारण करना। गाभिन होना। १५. जितना चाहिए, उतना हो जाना। कुछ कमी या कसर न रह जाना। जैसे,—मेला भर गया। उ०—जो कुछ किया भजे भर पाया सोच सोच सकुचाऊँ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १९३। १६. भेंटना। मिलना। उ०—भरी सखी सब भेंटत फेरा। अंत कंत सो भएउ गुरेरा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—भिन्न भिन्न शब्दों के साथ अकर्मक और सकर्मक दोनों रूपों में आकर यह शब्द भिन्न भिन्न अर्थ देता है। जैसे, अंक भरना, दम भरना। ऐसे अर्थों के लिये उन शब्दों को देखना चाहिए।

भरना[2]—संज्ञा पुं० १. भरने की क्रिया या भाव। जैसे,—अपना भरना भरते हैं। २. रिश्वत। घूस।

भरनि†ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० भरण] पहनावा। पोशाक। कपड़े लत्ते। उ०—मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. भरने का कार्य या स्थिति। उ०—बाढ़्यो है परसपर रंग, उमगि उमगि रस भरनि मे।—नंद०, ग्रं०, पृ० ३९५।

भरनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] १. करघे की ढरकी। नार। उ०—सुरति ताना करै पवन भरनी भरै, माँडी प्रेम अंग अंग भीनै।—पलटू० बानी, पृ० २५। २. खेतों में बीज आदि बोने की क्रिया। ३. खेतों में पानी देने की क्रिया। सिंचाई।

भरनी[2]—संज्ञा स्त्री० [?] १. छछूँदर। २. मोरनी। ३. गारुडी मंत्र। ४. एक प्रकार की जंगली बूटी।

भरनीⓤ[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० भरणी] भरणी नक्षत्र। दे० 'भरणी'।

भरपाई[1]—क्रि० वि० [हिं० भरना + पाना (भर पाना)] पूर्ण रूप से। भली भाँति। उ०—आपुन वज्र समान भए हरि माला दुखित भई भरपाई।—सूर (शब्द०)।

भरपाई[2]—संज्ञा स्त्री० १. भर पाने का भाव। जो कुछ बाकी हो, वह पूरा पूरा पा जाना। २. वह रसीद जो पूरी पूरी वसूली हो जाने पर दी जाय। कुल बाकी चुक जाने पर दी जानेवाली रसीद।

भरपूर[1]—[हिं० भरना + पूरना] १. जो पूरा तरह से भरा हुआ हो। पूरा पूरा। २. जिसमे कोई कमी न हो। परिपूर्ण।

भरपूर[2]—क्रि० वि० १. पूर्ण रूप से। अच्छी तरह पूरा करके। २. भली भाँति। अच्छी तरह।

भरपूर[3]—संज्ञा पुं० समुद्र की तरंगों का चढ़ाव। ज्वार। भाटा का उलटा। (लश०)।

भरपेट—क्रि० वि० [हिं० भरना + पेट] खूब अच्छी प्रकार। भली भाँति। उ०—इद्रिन को परितोष करन हित अघ भर पेट कमाया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५५२।

भरभंड†—वि० [हिं० भर + भंड सं० <भ्रष्ट] पूर्णतः भ्रष्ट या नष्ट। अपवित्र।

भरभंडा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीला पौधा। भड़भाँड़। उ०—भरभंडा भटकैया फूले फूल।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ७५

भरभराना—क्रि० अ० [अनु०] १. (रोआँ) खड़ा होना। रोमांच होना। (इस अर्थ मे इसका प्रयोग केवल 'रोआँ' शब्द के साथ होता है।) २. व्याकुल होना। घबराना। उ०—भरभराय देखे बिना देखे पल न अघायँ। रसनिधि नेही नैन ये क्यों समुझाए जायँ।—रसनिधि (शब्द०)।

भरभराहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सूजन। वरम।

भरभष्ट†—वि० [हिं० भर + सं० भ्रष्ट] भ्रष्ट। अपवित्र। नष्ट। उ०—बोले, तो क्या भीतर चली आएगी। हो तो चुकी पूजा यहाँ आकर भरभष्ट करेगी।—मान० भा०, पृ० ४।

भरभूजा—संज्ञा पुं० [हिं० भड़भूजा] दे० 'भड़भूँजा'।

भरभेंटⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं० भर + भेंटना] सामना। मुकाबला। मुठभेड़। उ०—तारे ताड़का को जाको देवहू डेराते हुते गयो पंथ ही में परि तासु भरभेंटा।—रघुराज (शब्द०)।

भरमⓤ—संज्ञा पुं० [सं० भ्रम] १. भ्रांति। संशय। संदेह। धोखा। २. भेद। रहस्य। उ०—उघरि परैगी बात भरम की लखि लैहैंगी सब री।—घनानंद०, पृ० ५३३।

मुहा०—भरम गँवाना = अपना भेद खोलना। अपनी थाह देना। भरम बिगाड़ना = भंडा फोड़ना। रहस्य खोलना।

भरमनाⓤ†[1]—क्रि० अ० [सं० भ्रमण] १. घूमना। चलना। फिरना। २. मारा मारा फिरना। भटकना। ३. धोखे मे पड़ना।

भरमना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रम] १. भूल। गलती। २. धोखा। भ्रांति। भ्रम।

भरमाना[1]—क्रि० स० [हिं० भरमना का सक० रूप] १. भ्रम में डालना। चक्कर मे डालना। बहकाना। उ०—कोऊ निरखि रही चारु लोचन निमिष भरमाई। सूर प्रभु की निरखि सोभा कहत नहिं आई।—सूर (शब्द०)। २. भटकाना। व्यर्थ इधर उधर घुमाना। उ०—माधो जू मोहिं काहे की लाज। जन्म जन्म यों ही भरमान्यो अभिमानी बेकाज।—सूर (शब्द०)।

भरमाना[2]—क्रि० अ० १. चकित होना। हैरान होना। अचंभे में आना। उ०—सूर श्याम छवि निरखि कै युवती भरमाही।—सूर (शब्द०)। २. भटकना।

भरमार—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना + मार (= अधिकता)] बहुत ज्यादती। अत्यंत अधिकता।

भरमिक—वि० [हिं० भरम] भ्रमात्मक। भ्रमपूर्ण। उ०—भरमिक बोलो (द्वादस प्रकार के वचन दुष्ट के)।—सहजो०, पृ० १९।

भरमी—वि० [सं० भ्रमिन्] भ्रमित। भ्रम मे पड़ा हुआ।

भरराना[1]—क्रि० अ० [अनु०] १. भरर शब्द के साथ गिरना। अरराना। २. पिल पड़ना। टूट पड़ना। उ०—भररान भीर भारी। ढहरान ग्रीव सारी।—सूदन (शब्द०)।

भरराना[2]—क्रि० स० १. भरर शब्द के साथ गिराना। २. दूसरों का पिल पड़ने अथवा टूट पड़ने में प्रवृत्त करना।

भरल—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीले रंग की एक प्रकार की जंगली भेड़ जो हिमालय मे भूटान से लद्दाख तक होती है।

भरवाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भारवाही] बोझ उठाने की दौरी। वह डलिया या टोकरी जिसमें बोझ रखा जाता है।

भरवाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरवाना] १. भरवाने की क्रिया या भाव। २. भरवाने की मजदूरी।

भरवाना—क्रि० स० [हिं० भरना का प्रे० रूप] भरने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को भरने मे प्रवृत्त करना।

भरसक—क्रि० वि० [हिं० भर (=पूरा)+सक (शक्ति)] यथाशक्ति। जहाँ तक हो सके।

भरसन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भर्त्सन, भर्त्सना] डाँट फटकार। उ०—मित्र चितहि हँसि हेरि सत्रु तेजहि करि भरसन। —(शब्द०)।

भरसाई—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'भाड़'।

भरहरना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'भरभराना'। उ०—(क) जाको सुयश सुनत अरु गावत पाप वृद जैहैं भजि भरहरि।—सूर (शब्द०)। (ख) दानी दल छल प्रबल सुपेमि करि भर्जे मूर सकल अमित भर भरहरि।—अकबरी० पृ० ३२७। २. दे० 'भहराना'।—फूटचो पहार सत रंक ह्वै अरध खंड गढ़ भरहरचो।—हम्मीर०, पृ० ४३।

भरहराना—क्रि० अ० [अनु०] १. दे० 'भरभराना'। २. भहराना।

भराँति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रान्ति] दे० 'भ्राति'। उ०—अपनी अपनी जाति सो सब कोइ बैसइ पाँति। दादू सेवक राम का ताको नही भराँति।—दादू० (शब्द०)।

भरा—वि० [हिं० भरना] १. भरा हुआ। पूर्ण। २. पुष्ट। ३. आबाद। ४. सपन्न।

भराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] १. एक प्रकार का कर जो पहले बनारस मे लगता था और जिसमें से आधा कर उगाहनेवाले कर्मचारी को मिलता था और आधा सरकार मे जमा होता था। २. भरने की क्रिया या भाव। ३. भरने की मजदूरी।

भरापूरा—वि० [हिं० भरना+पूरा] १. जिसे किसी बात की कमी न हो। संपन्न। २. जिसमें किसी बात की कमी या न्यूनता न हो। बाल बच्चो से सुखी।

मुहा०—भरा महीना=भरा मास। भरी जवानी=पूर्ण युवावस्था। भरी थाली में लात मारना=लगी नौकरी छोड़ना।

भरामहीना—संज्ञा पु० [हिं० भरना+महीना] बरसात के दिन जिसमे खेतो में बीज बोए जाते हैं।

भरामास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० भरना+सं० मास] दे० 'भरामहीना'। उ०—लेइ किछु स्वाद जानि नहि पावा। भरामास तेइ सोइ गँवावा।—जायसी (शब्द०)।

भराव—संज्ञा पुं० [हिं० भरना+आव (प्रत्य०)] १. भरने का भाव। भरत। २. भरने का काम। ३. कसीदा काढ़ने में पत्तियों के बीच के स्थान को तागों से भरना।

भरित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भरिता] १. जो भरा गया हो। २. भरा हुआ। पूर्ण। उ०—(क) चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो।—मानस, १।३९। (ख) सुंदर हरित पत्रावलियों से भरित तरुगनो की।—प्रेमघन०, पृ० ११। ३. हरा। हरे रंग का (को०)। ४. जिसका भरण या पालन पोषण किया गया हो। पाला पोसा हुआ।

भरिपूर(पु)—वि० [हिं० भरा+पूरा] दे० 'भरपूर'। उ०—मनो नूर भरिपूर की लटकि रही कंडील।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८९।

भरित्र—संज्ञा पु० [सं०] बाहु। भुजा (को०)।

भरिमा—संज्ञा पु० [सं० भरिमन्] १. भरण करने का भाव। भरण पोषण। २. कुटुंब। परिवार। ३. विष्णु का नाम (को०)।

भरिया¹—वि० [हिं० भरना+इया (प्रत्य०)] १. भरनेवाला। पूर्ण करनेवाला। २. ऋण भरनेवाला। कर्ज चुकानेवाला।

भरिया²—संज्ञा पु० वह जो बरतन आदि ढालने का काम करता हो। ढलाई करनेवाला। ढालिया।

भरिया†³—संज्ञा पु० [हिं० भार] भारवाहक। भार ढोनेवाला। उ०—उनके साथ भार लेकर पंद्रह भरिया गए।—रति०, पृ० ११२।

भरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० भर] एक तौल जो दश माशे या एक रुपए के बराबर होती है।

भरी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० भड़काना] बहकावा। दे० 'भड़ी'। उ०—हुजूर भी इस भरी में आ जाते हैं। खैर जाने दीजिए इस झगड़े को।—सैर०, पृ० ३६।

भरीली(पु)—वि० [हिं०] भरनेवाली या भरी हुई। उ०—राधा हरि कैं गर्ब गहीली। मंद मंद गति मत मतंग ज्यों अंग अंग सुख पुंज भरीली।—सूर०, १०।१७७२।

भरु(पु)¹—संज्ञा पु० [सं० भार] बोझ। वजन। बोझा। उ०—(क) विविध सिंगार किए आगे ठाढ़ी ठाढ़ी प्रिये सखी भयो भरु आनि रतिपति दल दलके।—हरिदास (शब्द०)। (ख) भावक उभरौहौ भयो कछू परचो भरु आय। सीपहरा के मिस हियो निसि दिन हेरत जाय।—बिहारी (शब्द०)।

भरु²—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु। २. समुद्र। ३. स्वामी। पति। ४. मालिक। ५. सोना। स्वर्ण। ६. शकर।

भरुआ(पु)¹—संज्ञा पु० [देश०] टसर।

भरुआ²—संज्ञा पु० [हिं० भाँड+उवा (प्रत्य०)] दे० 'भड़ुआ'। उ०—चोर चतुर बटपार नट प्रभु प्रिय भरुआ भड। सब भक्षक परमारथी कलि कुपथ पाखड।—तुलसी (शब्द०)।

भरुआ†³—वि० [हिं० भरना] [वि० स्त्री० भरुई] भरा हुआ। जो भरा गया हो।

भरुआना—क्रि० अ० [हिं० भारी+आना (प्रत्य०)] १. भारी होना। वजनी होना। २. भार का अनुभव करना।

भरुकच्छ—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देश का नाम । भृगुकच्छ ।

भरुका—संज्ञा पुं० [सं० भरना] पुरवे के आकार का मिट्टी का बना हुआ कोई छोटा पात्र । मटकना । चुक्कड़ ।।

भरुच—संज्ञा पुं० [सं० भरुकच्छ या देश०] भृगुकच्छ । भरुकच्छ । उ०—वहाँ से एक तरफ नर्मदा घाटी के साथ साथ भरुच (भृगुकच्छ या भरुकच्छ) के प्राचीन बंदरगाह (पट्टन या तीर्थ) तक रास्ता है ।—भारत० नि०, पृ० ७५ ।

भरुज—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० भरुजा] १. शृगाल । २. यव जो भुना हुआ हो ।

भरुजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'भरुज' । २. शृगाली ।

भरुटक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भरुटा] भुना हुआ मांस ।

भरुहाना†[1]—क्रि० अ० [हिं० भार या भारी+आना या हरना (प्रत्य०)] घमंड करना । अभिमान करना । उ०—(क) अब वे भरुहाने फिरैं कहुँ डरत न माई । सूरज प्रभु मुँह पाइ कै भए ढीठ बजाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) नीच एहि बीच पति पाइ भरुहाइगो विहाइ प्रभु भजन वचन मन काय को ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) गे भरुहाय तनिक सुख पाए ।—जग० बानी, पृ० ६७ ।

भरुहाना[2]—क्रि० स० [हिं० भ्रम] १. बहकाना । धोखा देना । भ्रम में डालना । उ०—तुमको नंद महर भरुहाए । माता गर्भ नहीं उपजे तो कहो कहाँ ते आए ।—सूर (शब्द०) । २. उत्तेजित करना । बढ़ावा देना । उ०—भरुहाए नट भाट के चपरि चढ़े संग्राम । कै वे भाजे आइहैं कै बाँधे परिनाम ।—(शब्द०) ।

भरुही[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कलम बनाने की एक प्रकार की कच्ची किलक या किलिक ।

भरुही[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भ्रम] दे० 'भरत' (पक्षी) । उ०—हरिचंद ऐसे भए राजा, डोम घर पानी भरे । भारथ मे भरुही के अडा, घंटा टूटि परे ।—घट०, पृ० २६५ ।

भरेंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड] दे० 'रेंड' ।

भरेठा†—संज्ञा पुं० [हिं० भार+काठ] दरवाजे के ऊपर लगी हुई वह लकड़ी जिसके ऊपर दीवार उठाई जाती है । इसे 'पटाव' भी कहते हैं ।

भरैत—संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ा+ऐत (प्रत्य०)] किराए पर रहनेवाला ।

भरैया†[1]—वि० [सं० भरत, हिं० भरन+ऐया (प्रत्य०] पालन करनेवाला । पोषक । पालक । रक्षक ।

भरैया[2]—वि० [हिं० भरना+ऐया (प्रत्य०)] भरनेवाला । जो भरता हो ।

भरोंट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली घास । भुरत । भरौंट ।

भरोटा†—संज्ञा पुं० [हिं० भार+ओटा (प्रत्य०)] घास या लकड़ियों आदि का गट्ठा । बोझ ।

भरोस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भरोसा' । उ०—सोइ भरोस मोरे मन आवा । केहि न सुसंग बडत्तनु पावा ।—मानस, १।१० ।

भरोसा—संज्ञा पुं० [सं० वर+आशा] १. आश्रय । आसरा । २. सहारा । अवलंब । ३. आशा । उम्मेद । ४. दृढ़ विश्वास । यकीन ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

मुहा०—भरोसे का=विश्वस्त । जिसपर यकीन किया जाय । (किसी के) भरोसे भूलना=विश्वास पर रह जाना । उ०—यह बेजबान के भरोसे भूले हैं । आपसे अच्छा है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २३ । भरोसे होना=आशा या उम्मीद करना । उ०—आप जो इस भरोसे हों कि हमें तहजीब सिखाएँ तो यह खैर सलाह है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५ ।

भरोसी†—वि० [हिं० भरोसा+ई (प्रत्य०)] १. भरोसा या आसरा रखनेवाला । जो किसी बात की आशा रखता हो । २. जो आश्रय में रहता हो । आश्रित । ३. जिसका भरोसा किया जाय । विश्वास करने योग्य । विश्वसनीय ।

भरौंट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली घास । भुरत ।

विशेष—यह राजपूताने में अधिकता से होती है और पशुओं के खाने के काम में आती है । इसमें छोटे छोटे दाने या फल भी लगते हैं जिनके चारों ओर काँटे होते हैं ।

भरौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना+औती (प्रत्य०)] वह रसीद जिसमें भरपाई की गई हो । भरपाई का कागज ।

भरौना†—वि० [हिं० भार+औना (प्रत्य०)] बोझल । वजनी । भारी ।

भर्ग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । महादेव । शंकर । उ०—अमेय तेज भर्ग भक्त सर्गवंत देखिए ।—केशव (शब्द०) । २. ब्रह्मा (को०) । ३. भुनना (को०) । ४. वीतिहोत्र के पुत्र का नाम । ५. सूर्य । ६. सूर्य का तेज । ७. एक प्राचीन देश का नाम ।

भर्ग[2]—संज्ञा पुं० [सं० भर्गस्] ज्योति । दीप्ति । चमक ।

भर्गायन—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

भर्ग्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

भर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाड में भूना हुआ अन्न । २. उच्छेद । अवसादन । ३. कड़ाही । ४. भूनने की क्रिया । भूनना (को०) ।

भर्तव्य—वि० [सं० भर्तव्य, भर्त्तव्य] १. पोषणीय । भरणीय । भरण करने योग्य वाहनीय । वहन करने योग्य [को०] ।

भर्त्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं० भर्तृ [स्त्री० भर्त्री] १. अधिपति । स्वामी । मालिक । २. पति । खाविंद । ३. विष्णु । ४. वह जो भरण करता है । ५. नेता । नायक । अगुआ ।

भर्त्ता[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भरता' (चोखा) ।

भर्त्तार—संज्ञा पुं० [सं० भर्तृ] स्त्री का पति । स्वामी । मालिक । खाविंद । उ०—काम आति तन दहत दीजै सूरश्याम भर्त्तार । —सूर (शब्द०) ।

भर्त्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] दे० 'भरती' ।

भर्तृघ्न—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामी का हत्यारा ।

भर्तृघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो अपने पति की हत्या करे। पतिघ्नी। पतिघातिनी [को०]।

भर्तृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पति का भाव। स्वामित्व।

भर्तृदारक—संज्ञा पुं० [सं०] राजपुत्र। युवराज [को०]।

भर्तृदारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपुत्री। राजकुमारी।

भर्तृदेवता, भर्तृदैवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो पति को देवता रूप में माने [को०]।

भर्तृमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुहागिन। सधवा स्त्री।

भर्तृव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] पतिव्रत [को०]।

भर्तृव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतिव्रता [को०]।

भर्तृहरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसिद्ध कवि जो उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के छोटे भाई और गधर्वसेन के दासीपुत्र थे।

विशेष—कहते हैं, ये अपनी स्त्री के साथ बहुत अनुराग रखते थे। पर पीछे से उसकी दुश्चरित्रता के कारण संसार से विरक्त हो गए थे। यह भी कहा जाता है कि काशी में आकर योगी होने के उपरांत इन्होंने शृंगारशतक, नीतिशतक, वैराग्यशतक, वाक्यपदीय और भट्टिकाव्य आदि कई ग्रंथों की रचना की थी। कुछ लोगों का यह भी विश्वास है कि ये अपने भाई विक्रमादित्य के ही हाथ से मारे गए थे। आजकल कुछ योगी या साधु हाथ में सारंगी लेकर इनके संबंध के गीत गाते और भीख माँगते हैं। ये लोग अपने आपको इन्हीं के संप्रदाय का बतलाते हैं।

२. एक प्रसिद्ध वैयाकरण।

विशेष—संस्कृत व्याकरण की एक शाखा पाणिनीय व्याकरण के ये बहुत बड़े आचार्य थे। 'वाक्यपदीय' नामक व्याकरण दर्शन के अत्यंत प्रौढ़ ग्रंथ की उन्होंने रचना की है जो व्याकरण में ही नहीं अन्य संस्कृत दर्शन के ग्रंथों में प्रमाणरूप से आदरपूर्वक उद्धृत किया गया है। 'हरि' संभवतः इनका नामसंक्षेप था और इसी नाम से इनका उल्लेख किया गया है। महाभाष्यकार द्वारा निर्दिष्ट स्फोटवाद या शब्दब्रह्मवाद मत के प्रौढ़ प्रतिष्ठापक के रूप में 'हरि' का नाम प्रसिद्ध है। कहते हैं कि व्याकरण महाभाष्य की टीका भी इन्होंने लिखी थी जिसकी पूर्ण प्रति अब तक उपलब्ध नहीं है।

३. एक संकर राग जो ललित और पुरज के मेल से बनता है इसमें सा वादी और म संवादी होता है।

भर्त्सक—संज्ञा पुं० [सं०] भर्त्सना करनेवाला।

भर्त्सन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भर्त्सना'।

भर्त्सना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निंदा। शिकायत। २. डाँट डपट।

भर्त्सित¹—वि० [सं०] निंदित। तिरस्कृत।

भर्त्सित²—संज्ञा पुं० दे० 'भर्त्सना'।

भर्थरी—संज्ञा पुं० [सं० भर्तृहरि] दे० 'भर्तृहरि'।

भर्म¹—संज्ञा पुं० [सं० भ्रम] दे० 'भ्रम'।

भर्म²—संज्ञा स० पुं० [सं०] १. सोना। स्वर्ण। २. नाभि। ३. वेतन। भृति। मजदूरी (को०)। ४. एक सिक्का।

भर्म³—संज्ञा पुं० [सं० भर्मन्] १. पोषण भरण। २. मजदूरी। वेतन। ३. सोना। ४. स्वर्णमुद्रा। सोने का सिक्का। ५. धतूरा। ५. नाभि। ६. बोझा। वजन। ७. गृह। भवन। मकान [को०]।

भर्मन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमण] दे० 'भ्रमण'।

भर्मना†—क्रि० अ० [सं० भ्रमण, हिं० भ्रमना] चक्कर खाना। डाँवाडोल होना। उ०—काम बान सों भर्मि चित कैसे मिटिहै खेद।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ९९।

भर्य—संज्ञा पुं० [सं०] भरण पोषण का व्यय। खर्चा। गुजारा।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि विशेष अवस्थाओं में राज्य की ओर से पत्नी को पति से 'भर्य' दिलाया जाता था।

भर्रा—संज्ञा पुं० [भर् शब्द से अनु०] १. पक्षियों की उड़ान। २. एक प्रकार की चिड़िया। ३. झाँसा। पट्टी। दम। चकमा। जैसे,—एक ही भर्रे में तो वह सारा रुपया चुका देंगे।

क्रि० प्र०—पाना।

भर्राना—क्रि० अ० [भर्र से अनु०] भर्र भर्र शब्द होना। जैसे, —आवाज भर्राना। उ०—उसका गला भर्राने लगा।—कंकाल, पृ० १५०।

भर्सन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० भर्त्सन] १. निंदा। अपवाद। शिकायत। २. फटकार। डाँट डपट।

भलंदन—संज्ञा पुं० [सं० भलन्दन] पुराणानुसार कन्नौज के एक राजा का नाम जिसको यज्ञकुंड से कलावती नाम की एक कन्या मिली थी।

भल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार डालने की क्रिया। वध। २. दान। ३. निरूपण।

भल²—क्रि वि० [हिं० भला] दे० 'भला'। उ०—तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार। कबहूँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार।—कबीर सा० सं०, पृ० २।

भल³—अव्य [सं० भल] अवश्य। निश्चय। तत्वतः। (वैदिक)।

भलका†¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक विशेष आकार का बना हुआ सोने या चाँदी का कड़ा जो शोभा के लिये नथ में जड़ा जाता है। २. एक प्रकार का बाँस।

भलका(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० भल्ल (=वाणाग्र)] तीर का फल। गाँसी। उ०—दादू भलका मोरे भेद सौं, सालै मंझि पराण।—दादू० बानी, पृ० १७।

भलटी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] हँसिया नाम का लोहे का औजार।

भलपति—संज्ञा पुं० [हिं० भला+सं० पति] भाला रखनेवाला। नेजेबरदार। उ०—ऊवर कनक मजूसा, लाग चँवर ओढार। भलपति बैठ भाल लै और बैठ धनकार।—जायसी (शब्द०)।

भलमनसत—संज्ञा स्त्री० [हिं० भला+मनुष्य+त (प्रत्य०)] भलेमानस होने का भाव। सज्जनता। शराफत।

भलमनसाहत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भलमनसहत'।

भलमनसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भला+मानस+ई (प्रत्य०)] दे० 'भलमनसत'।

भलहला—वि० [देश०] दीप्त। प्रकाशित। ज्योतित। उ०—जेहल तो दिस विदिस जस, भलहल छायो भाल।—बाँकी०, ग्रं० भा० ३, पृ० १०।

भलहलना—क्रि० अ० [देश०] दीप्त होना। झलमलाना। प्रकाशित होना। उ०—काने कुंडल भलहलइ कंठ टँकावल हार।—ढोला०, दू०, ४८०।

भला[1]—वि० [सं० भद्र प्रा० भल्ल, भल्ला] १. जो अच्छा हो। उत्तम। श्रेष्ठ। जैसे, भला काम। भला आदमी। उ०—भलो भलाइहि पै लहै लहै निचाइहि नीचु।—मानस, १.५।

यौ०—भला चंगा=शरीर से स्वस्थ।

२. बढ़िया। अच्छा।

यौ०—भला बुरा=(१) उलटी सीधी बात। अनुचित बात। (२) डाँट फटकार। जैसे,—जब तुम भला बुरा सुनोगे, तब सीधे होगे।

भला[2]—संज्ञा पुं० १. कल्याण। कुशल। भलाई। जैसे,—तुम्हारा भला हो। २. लाभ। नफा। प्राप्ति। जैसे,—इस काम में उनका भी कुछ भला हो जायगा।

यौ०—भला बुरा=हानि और लाभ। नफा नुकसान। जैसे,—तुम अपना भला बुरा समझ लो।

भला[3]—अव्य० १. अच्छा। खैर। अस्तु। जैसे—भला मैं उनसे समझ लूँगा। उ०—भलेहि नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनिवृंद समेता।—तुलसी (शब्द०)। २. नहीं का सूचक अव्यय जो प्रायः वाक्यों के प्रारंभ अथवा मध्य में रखा जाता है। जैसे,—(क) भला कहीं ठंढा लोहा भी पीटने से दुरुस्त होता है। (अर्थात् नहीं होता)। (ख) वहाँ भला चित्रकारी को कौन पूछता है। (अर्थात् कोई नहीं पूछता)।

मुहा०—भले ही=ऐसा हुआ करे। इससे कोई हानि नहीं। अच्छा ही है। जैसे,—भले ही वे चले जायँ। उ०—हृदय हेरि हारेउ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा।—तुलसी (शब्द०)। (इस प्रयोग से कुछ उपेक्षा या संतोष का भाव प्रकट होता है।)

भलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० भला+ई (प्रत्य०)] १. भले होने का भाव। भलापन। अच्छापन। २. उपकार। नेकी। ३. सौभाग्य।

भलापन—संज्ञा पुं० [हिं० भला+पन] दे० 'भलाई'।

भलामानुप—संज्ञा पुं० [हिं० भला+सं० मानुप] अच्छा व्यक्ति। भला आदमी। सभ्य पुरुष। उ०—कोई भलामानुप उनसे बात नहीं करता।—सेवा०, पृ० २२।

भलीभाँत—क्रि० वि० [हिं०] अच्छी तरह। भली भाँति। उ०—गीले कपड़े उसने देह से उतारे, उनको भलीभाँत गारा, देह को पोंछा, पीछे उन्हीं कपड़ों को पहन लिया।—ठेठ०, पृ० ३४।

भलीभाँति—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'भलीभाँत'।

भले[1]—क्रि० वि० [हिं० भला] १. भली भाँति। रूप से। जैसे,—आप भी भले रुपया देने आए। (व्यंग में)। (कविता में इसका प्रायः 'भलि कै' हो जाता है)। उ०—हाथ हरि नाथ के बिकाने रघुनाथ जनु सील सिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै।—तुलसी (शब्द०)।

भले[2]—अव्य० खूब। वाह। जैसे,—(क) तुम कल शाम को आनेवाले थे, भले आए। (ख) भले रे भले।

भलेमानस—संज्ञा पुं० [हिं०] भला आदमी। अच्छा मनुष्य। उ०—लकड़ी बेचकर धन नहीं कमाया जाता। यह नीचों का काम है, भलेमानसों का नहीं।—कायाo, पृ० २५४।

भलेराⓊ†—संज्ञा पुं० [हिं० भला+एरा (प्रत्य०)] दे० 'भला'। उ०—ह्वैहै जब तब तुम्हहि ते तुलसी को भलेरो।—तुलसी (शब्द०)।

भल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वध। हत्या। २. घाव। ३. दान। ४. भालू।

यौ०—भल्लनाथ=जाम्बवान्। भल्लपति=भल्लनाथ। भल्लपुच्छी। भल्लबाण=

५. वृहत्संहिता के अनुसार एक प्राचीन देश। ५. पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ। ६. प्राचीन काल की एक जाति। ७. प्राचीन काल का एक शस्त्र जिससे शरीर में धँसा हुआ तीर निकाला जाता था। ८. शिव (को०)। ९. भिलावाँ। भल्लातक (को०)। १०. एक प्रकार का बाण। ११. दे० 'भाला'।

भल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भालू। २. इंगुदी का वृक्ष। ३. भिलावाँ। ४. एक प्रकार की चिड़िया। ५. एक प्रकार का सन्निपात। दे० 'भल्लु'।

भल्लपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

भल्लय—संज्ञा पुं० [सं०] ईशान दिशा का एक प्राचीन प्रदेश।

भल्लाक्ष—वि० [सं०] जिसे कम दिखाई देता हो। मंददृष्टि।

भल्लाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. भालू। २. एक पहाड़।

भल्लात, भल्लातक—संज्ञा सं० [सं०] भिलावाँ।

भल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] भल्लातक। भिलावाँ।

भल्लु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर।

विशेष—इस सन्निपात ज्वर में शरीर के अंदर जलन और बाहर जाड़ा मालूम होता है, प्यास बहुत लगती है, सिर, गले और छाती में बहुत दर्द रहता है, बड़े कष्ट से कफ और पित्त निकलता है, साँस और हिचकी बहुत आती है और आँखें प्रायः बंद रहती हैं।

भल्लुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भालू। २. बंदर (को०)।

भल्लूक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भालू। २. सुश्रुत के अनुसार शंख की तरह कोश में रहनेवाला एक प्रकार का जीव। ३. एक प्रकार का श्योनाक। ४. कुत्ता।

भवंगⓊ—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्ग] साँप। सर्प।

भवंगमⓊ—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गम] दे० 'भवंग'।

भवंगाⓊ—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गम, प्रा० भुअंगम] सर्प। उ०—विष सागर लहर तरंगा। यह ऐसा कूप भवंगा।—दादू (शब्द०)।

भवंत—वि० [सं० भवत्] भवत् का बहुवचन। आप लोगों का। आपका। उ०—अवलंब भवंत कथा जिन्हके। प्रिय संत अनंत सदा तिन्हके।—तुलसी (शब्द०)।

भवंता(पु)†—वि० [सं० भ्रमण, हिं० भँवना, भँवाना] घूमता हुआ। इधर उधर आता जाता हुआ। उ०—भउर भवंता भलिए भरम भुला उद्यान।—प्राण०, पृ० १०५।

भवँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० भौं] दे० 'भौंह'।

भवँर—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] दे० 'भँवर'।

भवँरकली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भँवरकली'।

भवँरी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमरी] दे० 'भँवरी'।

भवँलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० भँवर+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार की नाव जो बजरे की तरह की, पर उससे कुछ छोटी होती है। इसमें भी बजरे की तरह ऊपर छत पटी होती है। भौलिया।

भव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति। जन्म। २. शिव। उ०—भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी।—मानस, १।१०। ३. मेघ। बादल। ४. कुशल। ५. संसार। जगत्। ६. सत्ता। ७. प्राप्ति। ८. कारण। हेतु। ९. कामदेव। १०. संसार का दुःख। जन्म मरण का दुःख। उ०—कमला कमल नयन मकराकृत कुंडल देखत ही भव भागे।—सूर (शब्द०)। ११. सत्ता। १२. अग्नि। १३. मांस। (डिं०)।

भव[2]—संज्ञा पुं० [सं० भय] डर। उ०—(क) राजा प्रजा भए गति भागी। भव संभवित भूरि भव भागी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) भव भंजन रंजन सुर जूथा। त्रातु सदा नो कृपा बरूथा।—तुलसी (शब्द०)।

भव[3]—वि० १. शुभ। कल्याणकारक। २. उत्पन्न। जन्मा हुआ।

भवक—वि० [सं०] १. उत्पन्न। जात। २. जीवित। ३. आशीर्वाद देनेवाला। दुआ देनेवाला (को०)।

भवकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक पुच्छल तारा जो कभी कभी पूर्व में दिखाई देता है और जिसकी पूँछ शेर की पूँछ की भाँति दक्षिणावर्त होती है। कहते हैं. जितने मुहूर्त तक यह दिखाई देता है, उतने महीने तक भीषण अकाल या महामारी आदि होती है।

भवक्षिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ जन्म हुआ हो। जन्मस्थान (को०)।

भवघस्मर—संज्ञा पुं० [सं०] दावानल।

भवचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार वह कल्पित चक्र जिससे यह जाना जाता है कि कौन कौन कर्म करने से जीवात्मा को किन किन योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। (भिन्न भिन्न बौद्ध संप्रदायों के अनुसार ये भवचक्र भी कुछ भिन्न भिन्न हैं)।

भवचाप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी के धनुष का नाम। पिनाक। उ०—भंजि भवचाप दलि दाप भूपावली सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७६।

भवच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म मरण या आवागमन से मुक्ति (को०)।

भवछित्त†—वि० [सं० भविष्यत्] भावी। होनेवाली। उ०—भवछित्त बत्त मिट्टै न को ऋत्त क्रम्म नह जानयौ।—पृ० रा०, ३।२।

भवजल—संज्ञा पुं० [सं०] संसाररूपी समुद्र। भवसमुद्र।

भवत्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमि। जमीन। २. विष्णु।

भवत्[2]—वि० मान्य। पूज्य।

भवतव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० भवितव्यता] दे० 'भवितव्यता'। उ०—भली बुरी निमित कछू मेटि न सकै कोइ। याही ते भवतव्यता कहत सयाने लोइ।—पृ० रा०, ६।२७।

भवतारन†—वि० [सं० भव+तारण] संसाररूपी समुद्र से तारनेवाला। उ०—यह भवतारन ग्रंथ है, सत गुरु को उपदेश।—कबीर सा०, पृ० ८५७।

भवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जहरीला वाण। २. श्रीमती। आदरणीय महिला। भवत् का स्त्री रूप (को०)। ३. चमक। दीप्ति (को०)।

भवदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

भवदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

भवदीय—सर्व० [सं०] आपका। तुम्हारा। उ०—नाहिनै नाथ अवलंब मोहि आनकी। करम मन वचन प्रन सत्य करुनानिधे एक गति राम भवदीय पदत्रान की।—तुलसी (शब्द०)।

भवधरण—संज्ञा पुं० [सं०] संसार को धारण करनेवाला—परमेश्वर।

भवधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वप्रवाह। संसारचक्र। उ०—भवधारा के भीतर भीतर चलनेवाली जो भावधारा है मनुष्य के हृदय को द्रवीभूत करके उसमें मिलानेवाली भावना माधुर्य की है।—रस०, पृ० ८७।

भवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। मकान। उ०—भवन एक पुनि दीख सुहावा।—मानस, ५।५। २. प्रासाद। महल। ३. तर्कशास्त्र में भाव। ४. जन्म। उत्पत्ति। ५. सत्ता। ६. छप्पय का एक भेद। ७. क्षेत्र (को०)। ८. स्वभाव। प्रकृति (को०)। ९. जन्मपत्रिका। जन्माग (को०)। १०. श्वान। कुत्ता (को०)। ११. स्थान। अधिष्ठान (को०)।

यौ०—भवनकर=नगरपालिका की ओर से मकानों पर लगाया हुआ कर (अं० हाउसटैक्स)। भवनदीर्घिका=भवन के भीतर की वापी। भवनद्वार=प्रवेशद्वार। फाटक। दरवाजा। भवनपति। भवन-भूमि-कर=प्रदेश शासन द्वारा लगाया हुआ एक कर।

भवन[2]—संज्ञा पुं० [सं० भुवन] जगत्। संसार। उ०—हरि के जे वल्लभ हैं दुर्लभ भवन माँझ तिनही की पदरेणु आशा जियकारी है।—प्रियादास (शब्द०)।

भवन[3]—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमण] कोल्हू के चारों ओर का वह चक्कर जिसमें बैल घूमते हैं।

भवनपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनियों के दस देवताओं का एक वर्ग जिनके नाम इस प्रकार हैं—असुरकुमार, नागकुमार,

तड़ित्कुमार, सुपर्णकुमार, वह्निकुमार, अनिलकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार। २. गृहस्वामी। घर का मालिक। ३. राशिचक्र के किसी घर का स्वामी (ज्यो०)।

भवनवासी—संज्ञा पुं० [सं० भवनवासिन्] जैनों के अनुसार आत्मा के चार भेदों में से एक।

भवना—क्रि० अ० [सं० भ्रमण] घूमना। फिरना। चक्कर खाना, उ०—भौंर ज्यों भवत भूत वासुकी गणेश युत मानों मकरंद वृंद माल गंगाजल की।—केशव (शब्द०)।

भवनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार सरयू नदी का एक नाम।

भवनीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० भवन+ई (प्रत्य०)] गृहिणी। भार्या। स्त्री। उ०—देखि बड़ो आचरज पुलकि तनु कहति मुदित मुनि भवनी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६८।

भवनीय—वि० [सं०] होनेवाला। भावी (को०)।

भवन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

भवपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार भुवनेश्वरी देवी जो संसार की रक्षा करनेवाली शक्ति मानी जाती है।

भवप्रत्यय—संज्ञा स्त्री० [सं०] समाधि की अवस्था जो प्रकृति लयों को प्राप्त होती है।

भवबंधन—संज्ञा पुं० [सं० भवबन्धन] संसार का झंझट। सांसारिक दुःख और कष्ट।

भवबन्धेश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भवभंग—संज्ञा पुं० [सं० भवभङ्ग] १. संसार का नाश वा ध्वंस। २. संसारचक्र से मुक्ति। जन्म मरण की परंपरा से छुटकारा। उ०—बिनहि प्रयास होइ भवभंगा।—तुलसी (शब्द०)।

भवभंजन—संज्ञा पुं० [सं० भवभञ्जन] १. परमेश्वर। २. संसार का नाश करनेवाला। काल।

भवभय—संज्ञा पुं० [सं०] संसार में बार बार जन्म लेने और मरने का भय। कष्ट। उ०—त्रिपुरारि त्रिलोचन दिगवसन विषभोजन भवभय हरन।—तुलसी (शब्द०)।

भवभामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती। भवभामिनी। उ०—जगदंबिका जानि भवभामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा।—मानस, १।१००।

भवभामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती। भवानी। उ०—अंतजामिनी भवभामिनी स्वामिनि सो हौ कही चहौ बातु मातु अंत तौ हौ लरिकै।—तुलसी (शब्द०)।

भवभीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म मरण का भय। सांसारिक भय।

भवभीरⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० भव+हिं० भीर] आवागमन का दुःख। संसार का संकट। उ०—मो सम दीन न दीनहित तुम समान रघुबीर। अस बिचारि रघुवंसमनि, हरहु विषम भवभीर।—मानस, ७।१३०।

भवभूत—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर (को०)।

भवभूति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐश्वर्य।

भवभूति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक प्रसिद्ध नाटककार जिनके अन्य नाम श्रीकंठ और कभी कभी उम्बेक भी कहा गया है। इनके लिखे उत्तररामचरित, महावीरचरित और मालतीमाधव नाटक हैं।

भवभूषⓊ—संज्ञा पुं० [सं०] संसार के भूषण। उ०—भवभूष दुरंतरनंत हते दुःख मोह मनोज महा जुर को।—केशव (शब्द०)।

भवभूषण—संज्ञा पुं० [सं० भव+भूषण] १. दे० 'भवभूष'। २. शिव जी का भूषण। भस्म। क्षार। राख। उ०—भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।—रामचं०, पृ० २०।

भवभोग—संज्ञा पुं० [सं०] सांसारिक सुखोपभोग।

भवमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] सांसारिक सुख से विराग (को०)।

भवमोचन—वि० [सं०] संसार के बंधनों से छुड़ानेवाले, भगवान्। उ०—होइहहिं सुफल आज मम लोचन। देखि बदनपंकज भवमोचन।—तुलसी (शब्द०)।

भवरुत्—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मृतक की अंत्येष्टि क्रिया के समय बजाया जाता था। प्रेतपटह।

भववामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव जी की स्त्री, पार्वती। भवानी।

भववारिधि—संज्ञा पुं० [सं०] संसाररूपी समुद्र। संसारसागर। उ०—मारकर हाथ भववारिधि तरो, प्राण।—आराधना, पृ० २४।

भवविलास—संज्ञा पुं० [सं०] १. माया। २. संसार के सुख जो ज्ञान के अंधकार से उदित होते हैं। उ०—मनहु ज्ञानघन प्रकास बीते सब भवविलास आस वास तिमिर तोष तरनि तेज जारे।—तुलसी (शब्द०)।

भवव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति एवं नाश। जन्म और लय (को०)।

भवशूल—संज्ञा पुं० [सं०] सांसारिक दुःख और क्लेश।

भवशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (को०)।

भवसंगी—वि० [सं० भवसङ्गिन्] संसार से अनुरक्त। लौकिक सत्ता में लिप्त (को०)।

भवसंभव—वि० [सं० भवसम्भव] संसार में होनेवाला। सांसारिक। उ०—तजि माया सेइय परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका।—तुलसी (शब्द०)।

भवसमुद्र, भवसागर—संज्ञा पुं० [सं०] भवसिंधु।

भवसिंधु—संज्ञा पुं० [सं० भव+सिन्धु] संसार रूपी समुद्र। भववारिधि। उ०—नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मन माहीं। मानस, १।२५।

भवसिवत्तⓊ—संज्ञा पुं० [सं० भविष्यत्] भावी। भविष्य। होनहार। उ०—अनगपाल पृथ्वी नरेस अचिज्ज सु मानो। भवसिवत्त जो होय, सोय अज्ञान न जानो।—पृ० रा०, ३।२४।

भवाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भवना] भौरी । फेरी । चक्कर । उ०—जनु यमकात करहिं सब भवाँ । जिय पै चीन्ह स्वर्ग अपसवाँ ।—जायसी (शब्द०) ।

भवाँना†—क्रि० स० [सं० भ्रमण] घुमाना । फिराना । चक्कर देना उ०—(क) या विधि के मुनि बेन सुरारी । मुष्टिक एक भवाँइ के मारी ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) तेहि अंगद कहँ लात उठाई । गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई ।—तुलसी (शब्द०) ।

भवांगण—संज्ञा पुं० [सं० भवाङ्गण] शिवमंदिर का आँगन ।

भवांतर—संज्ञा पुं० [सं० भवान्तर] वर्तमान शरीर से पूर्व या परवर्ती जन्म [को०] ।

भवांबुनाथ—संज्ञा पुं० [सं० भवाम्बुनाथ] संसाररूपी समुद्र । उ०—भवांबुनाथ मंदरम् ।—मानस, ३।४ ।

भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती । भवानी । दुर्गा ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२४ ।

भवाचल—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत जो पुराणानुसार मंदर पर्वत के पूर्व में है ।

भवातिग—वि० [सं०] वीतराग [को०] ।

भवात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय । २. गणेश [को०] ।

भवानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भव की भार्या, दुर्गा ।

यौ०—भवानीकांत = शिव । भवानीगुरु, भवानीतात = हिमवान् । भवानीनंदन = (१) कार्तिकेय । (२) गणेश । भवानीपति, भवानीवल्लभ, भवानीसख = शिव ।

भवाब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] संसार रूपी समुद्र ।

भवाभीष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल ।

भवायन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का उपासक या भक्त । शैव ।

भवायना, भवायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव के सिर पर रहनेवाली, गंगा ।

भवि(पु)—वि० [सं० भव्य] दे० 'भव्य' । उ०—केशव की भवि भूषण की भवि भूषण भू-तन में तनया उपजाई ।—केशव (शब्द०) ।

भविक—वि० [सं०] मंगलकारी । धार्मिक । मंगलकर । कल्याणकर [को०] ।

भवित—संज्ञा पुं० [सं०] जो हो चुका हो । बीता हुआ । भूत ।

भवितव्य—संज्ञा पुं० [सं०] अवश्य होनेवाली बात । भवनीय । होनहार ।

भवितव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. होनी । भावी । होनहार । २. भाग्य । किस्मत ।

भविता—वि० [सं० भवितृ] होनेवाला । होनहार [को०] ।

भविन—संज्ञा पुं० [सं०] कवि [को०] ।

भविल¹—वि० [सं०] १. होनेवाला । भावी । २. उत्पन्न । जात । जीवित । ३. सुंदर । भला । भव्य [को०] ।

भविल²—संज्ञा पुं० १. मकान । घर । २. उपपति । जार । ३. विषयासक्त । भोगासक्त । विलासी [को०] ।

भविष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भविष्य] दे० 'भविष्य' । उ०—भूत भविष को जाननिहारा । कहतु है बन सुम भवन की बारा ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६ ।

भविष्य¹—वि० [सं० भविष्यत्] वर्तमान काल के उपरांत आनेवाला (काल) । वह (काल) जो प्रस्तुत काल के समाप्त हो जाने पर आनेवाला हो । आनेवाला (काल) ।

भविष्य²—संज्ञा पुं० दे० 'भविष्यत्' ।

यौ०—भविष्यकाल = व्याकरण में वह काल जो अभी न आया हो । आनेवाला काल । भविष्यज्ञान = भविष्य की जानकारी । भविष्य या होनहार का ज्ञान । भविष्यपुराण = १८ पुराणों में से एक का नाम । वि० दे० 'पुराण' ।

भविष्यगुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काल के अनुसार गुप्ता नायिका का एक भेद । वह नायिका जो रति में प्रवृत्त होनेवाली हो और पहले से उसे छिपाने का उपयोग करे । भविष्यसुरतिगुप्ता ।

भविष्यत्—संज्ञा पुं० [सं०] वर्तमान काल के उपरांत आनेवाला काल । आनेवाला समय । आगामी काल । भविष्य ।

भविष्यद्वक्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो होनेवाली बात पहले से ही कह दे । भविष्यद्वाणी करनेवाला । २. ज्योतिषी ।

भविष्यद्वाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्य में होनेवाली वह बात जो पहले से ही कह दी गई हो ।

भविष्यद्वादी—संज्ञा पुं० [सं० भविष्यद्वादिन्] दे० 'भविष्यद्वक्ता' ।

भविष्यसुरतिगोपना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भविष्यगुप्ता' ।

भवी¹—वि० [सं० भविन्] जीवित । सत्तायुक्त ।

भवी²—संज्ञा पुं० १. मनुष्य । मानव । २. प्राणधारी । जीवधारी [को०] ।

भवीला(पु)†—वि० [हिं० भाव+ईला (प्रत्य०)] १. जिसमें कोई भाव हो । भावयुक्त । भावपूर्ण । २. बाँका । तिरछा ।

भवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. संसार का स्वामी । २. महादेव । शिव ।

भवेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भवेश] १. दे० 'भवेश' । २. शिव । उ०—पावनि करौ सो गाइ भवेस भवानिहिं ।—तुलसी (शब्द०) ।

भवैया†—वि० [सं० भ्रमण] घूमनेवाला । उ०—सो वेश्या भवैयान के साथ रह्यो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२८ ।

भव्य¹—वि० [सं०] १. जो देखने में भारी और सुंदर जान पड़े । शानदार । २. मंगलसूचक । ३. सत्य । सच्चा । ४. योग्य । लायक । ५. भविष्य में होनेवाला । ६. श्रेष्ठ । बड़ा । ७. प्रसन्न । ८. वर्तमान । विद्यमान (को०) ।

भव्य²—संज्ञा पुं० १. भलता नामक वृक्ष । २. कमरख । ३. नीम । ४. करेला । ५. वह जिसे लिंगपद की प्राप्ति हो । भवसिद्धक । (जैन) । ६. वह जो जन्म ग्रहण करता हो । शरीर धारण करनेवाला । ७. नवें मन्वंतर के एक ऋषि का नाम । ८. पुराणानुसार ध्रुव के एक पुत्र का नाम । ९. मनु चाक्षुष के अंतर्गत देवताओं के एक वर्ग का नाम ।

भव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भव्य होने का भाव।।

भव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उमा। पार्वती। २. गजपीपल।

भष(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० भक्ष्य] आहार। भोजन। उ०—अति आतुर भष कारण धाई धरत फनन समाई।—सूर (शब्द०)।

भष²—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

भषक—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। श्वान [को०]।

भषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुत्ता। २. कुत्ते का भूँकना। भूँकना [को०]।

भषना—क्रि० स०[सं० भक्षण>हिं० भखना] खाना। भोजन करना।

भषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णक्षीरी [को०]।

भषित—संज्ञा पुं० [सं०] भूँकने की क्रिया। भूँकना।

भषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुनी। कुतिया [को०]।

भसंत—संज्ञा पुं० [सं० भसन्त] काल। समय।

भसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० भ+सन्धि] अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रों के चौथे चरण की बाद के नक्षत्रों से संधि।

भसकना†—क्रि० स० [सं० भक्षण <भवषण] दे० 'भषना'। उ०—चली है कुलबोरनी गंगा नहाय। सेतुआ कराइन बहुरी भुँजाइन, घूँघट ओटे भसकत जाय।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ५५।

भसन—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौरा।

भसना†—क्रि० अ० [बँग०] १. पानी के ऊपर तैरना। २. पानी में डूबना। ३. बैठ जाना। नीचे की ओर धँस जाना।

भसमंत(पु)—वि० [सं० भस्म+अन्त] जिसका भस्म ही शेष रह जाय। भस्मावशेष। उ०—आइ जो प्रीतम फिरि गएउ मिला न आइ बसत। अब तन होरी घालि कै जारि करौं भसमंत।—पदमावत, पृ०, १६५।

भसम—संज्ञा पुं० [सं० भस्म] दे० 'भस्म'।

भसमा¹—संज्ञा पुं० [सं० भस्म] १. पीसा हुआ आटा। (साधुओं की परिभाषा)। २. नील की पत्ती की बुकनी।

भसमा²—संज्ञा पुं० [फ़ा० वस्मह्, वस्मा का अनु०] एक प्रकार का खिजाब जिससे बाल काले किए जाते हैं।

भसमी(पु)संज्ञा स्त्री० [सं० भस्म] भस्मक नाम की व्याधि। दे० 'भस्मक'। उ०—देखिए दसा असाध अँखिया निपेटनि की, भसमी बिथा पै नित लंघन करति है।—घनानंद, पृ० ५८।

भसल—संज्ञा पुं० [सं०] काला भ्रमर। बड़ा भौरा [को०]।

भसाकू—संज्ञा पुं० [हिं० तमाकू का अनु०] पीने का वह तमाकू जो बहुत कड़ुवा या कड़ा न हो। हलका और मीठा तमाकू।

भसान†—संज्ञा पुं० [बँग० भासान, हिं० भसाना] पूजा के उपरांत काली या सरस्वती आदि की मूर्ति को किसी नदी मे प्रवाहित करना।

भसाना—क्रि० स० [बँग०] १. किसी चीज को पानी मे तैरने के लिये छोड़ना। जैसे, जहाज भसाना। (लश०)। मूर्ति भसाना। २. किसी चीज को पानी में डालना।

भसिंड, भसींड—संज्ञा स्त्री० [सं० बिसदण्ड] कमलनाल। मुरार। कमल की जड़।

भसित—संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। राख [को०]।

भसुंड—संज्ञा पुं० [सं० भुशुण्ड] हाथी। गज। उ०—(क) लाखन चले भुसुंड सुंड सो नभतल परसत।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कटै खड खंड भसुंडन्न भारे।—पृ० रासो, पृ० ४४।

भसुर—संज्ञा पुं० [हिं० ससुर का अनु०] पति का बड़ा भाई। जेठ। उ०—सासु ससुर और भसुर ननद देवर सों डरती।—पलटू०, पृ० ३३।

भसूँड़—संज्ञा पुं० [सं० भुशुण्ड] हाथी की सूँड़। (महावत)।

भस्त्रका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भस्त्रा'।

भस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आग सुलगाने की भाथी। २. मशक जिसमें जल रखा जाय (को०)।

पर्या०—भस्त्रका। भस्त्राका। भस्त्रि। भस्त्रिका।

भस्म¹—संज्ञा पुं० [सं० भस्मन्] १. लकड़ी आदि के जलने पर बची हुई राख। २. चिता की राख जिसे पुराणानुसार शिव जी अपने सारे शरीर में लगाते थे। ३. विशेष प्रकार से तैयार की हुई अथवा अग्निहोत्र में की राख जो पवित्र मानी जाती है और जिसे शिव के भक्त मस्तक तथा शरीर मे लगाते अथवा साधु लोग सारे शरीर मे लगाते हैं।

क्रि० प्र०—रमाना।—लगाना।

४. एक प्रकार का पथरी रोग। ५. (आयुर्वेद) फूँकी हुई धातु जो ओषधि रूप मे प्रयुक्त की जाती है। कुश्ता।

भस्म²—वि० जो जलकर राख हो गया हो। जला हुआ।

भस्मक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भावप्रकाश के अनुसार एक रोग जिसमें भोजन तुरंत पच जाता है। भस्माग्नि।

विशेष—कहते हैं, बहुत अधिक और रूखा भोजन करने से मनुष्य का कफ क्षीण हो जाता है और वायु तथा पित्त बढ़कर जठराग्नि को बहुत तीव्र कर देता है; और तब जो कुछ खाया जाता है, वह तुरत भस्म हो जाता है, परंतु शौच बिलकुल नहीं होता। इसमे रोगी को प्यास, पसीना, दाह और मूर्छा होती है और वह शीघ्र मर जाता है। इस रोग को भस्मकीट भी कहते हैं।

२. बहुत अधिक भूख। ३. सोना। ४. रजत। चाँदी। ५. बिडंग। ५. एक नेत्ररोग। आँखों की एक व्याधि (को०)।

भस्मकार—संज्ञा पुं० [सं०] धोबी। रजक [को०]।

भस्मकारि—वि० [सं० भस्मकारिन्] भस्म करनेवाला। जलानेवाला।

भस्मकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. राख का ढेर। २. एक पर्वत का नाम [को०]।

भस्मगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० भस्मगन्धा] रेणुका नामक गंधद्रव्य।

पर्या०—भस्मगंधिका। भस्मगंधिनी।

भस्मगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश नामक वृक्ष।

भस्मगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रेणुका नामक गंधद्रव्य। २. शीशम।

भस्मगात्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिसका शरीर भस्म हो गया हो। कामदेव [को०]।

भस्मचय—संज्ञा पुं० [सं०] भस्मराशि।

भस्मजाबाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

भस्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भस्म होने का कर्म।

भस्मतूल—संज्ञा पुं० [सं०] तुषार। हिम।

भस्मप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

भस्मबाण—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर [को०]।

भस्मभूत—वि० [सं०] मृत। जो भस्म हो चुका हो [को०]।

भस्ममेह—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का अश्मरी रोग जो मेह के कारण होता है।

भस्मवेधक—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

भस्मशयन, भस्मशय्या—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भस्मशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोटास [को०]।

भस्मशायी—संज्ञा पुं० [सं० भस्मशायिन्] शिव।

भस्मसात्—वि० [सं०] जो भस्मरूप हो गया हो। भस्मीभूत।

भस्मस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] राख से नहाना। सारे शरीर में राख मलना।

भस्मांग—संज्ञा पुं० [सं० भस्माङ्ग] १. एक प्रकार का कपोत। २. एक रत्न। भस्म के रंग का फिरोजा [को०]।

भस्माकार—संज्ञा पुं० [सं०] धोबी।

भस्मकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कामरूप का एक पर्वत जिसपर शिव जी का वास माना जाता है।

भस्माग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भस्मक रोग।

भस्माचल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कामरूप के एक पर्वत का नाम।

भस्मावशेष—वि० [सं० भस्म+अवशेष] जो जलकर राख मात्र रह गया हो। राख के रूप में बचा हुआ [को०]।

भस्मासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध दैत्य।

विशेष—शिव से वर प्राप्त करने से पहले इसका नाम 'वृकासुर' था। इसने तप करके शिव जी से यह वर पाया था कि तुम जिसके सिर पर हाथ रखोगे, वह भस्म हो जायगा। पीछे से यह असुर पार्वती पर मोहित होकर शिव को ही जलाने पर उद्यत हुआ। तब शिव जी भागे। यह देखकर श्रीकृष्ण ने वटु का रूप धरकर छल से इसी के सिर पर इसका हाथ रखवा दिया जिससे यह स्वयं भस्म हो गया।

भस्माह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

भस्मित—वि० [सं०] १. जलाया हुआ। २. जला हुआ।

भस्मीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु को राख के रूप में परिणत करना। पूर्ण रूप से जलाना।

भस्मीभूत—वि० [सं०] जो जलकर राख हो गया हो। बिलकुल जला हुआ।

भस्सड़—वि० [अनु० भस्स] बहुत मोटा और भद्दा। (विशेषतः आदमी)।

भस्सी—संज्ञा स्त्री० [?] कोयले आदि का चूरा।

भहरा—संज्ञा पुं० [देश०] गुफा। खोह। उ०—ये महात्मा उन नौ संतों में से थे जो सुंदरदास जी के साथ फतहपुर के भहरे (गुफा) में १२ वर्ष तक तप (योगसाधन) में रहे थे।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ८४।

भहराना—क्रि० अ० [अनु०] १. टूट पड़ना। २. झोंक से गिर पड़ना। एकाएक गिरना। उ०—(क) मलूक कोटा झाँझरा भीत परी भहरान। ऐसा कोई ना मिला जो फेरि उठावै आन।—मलूक० बानी, पृ० ४०। (ख) आगि लगे वहि घाटे बाटे जहवाँ किहेउ पयान। छींकत बरदी लादेहु नायक माँग सेंदुर भहरान।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ८५।

भहूँ—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू:] दे० 'भौंह'।

भांग[१]—वि० [सं० भाङ्ग] भांग का बना हुआ। भांग का।

भांग[२]—संज्ञा पुं० दे० 'भांगीन' [को०]।

भांगक—संज्ञा पुं० [सं० भाङ्गक] फटा हुआ कपड़ा। चिथड़ा [को०]।

भांगीन[१]—संज्ञा पुं० [सं० भाङ्गीन] भांग का खेत।

भांगीन[२]—वि० भांगनिर्मित। भांग का [को०]।

भांजा—संज्ञा पुं० [हिं०] भानजा। बहिन का पुत्र।

भांड—संज्ञा पुं० [सं० भाण्ड] १. पात्र। बर्तन। २. पेटी। बक्स। ३. मूलधन। ४. आभूषण। ५. अश्व का आभूषण। घोड़े का एक साज। ६. एक वाद्य। ७. दूकान का सामान। दूकान की समग्र वस्तुएँ। ८. नदी का मध्यभाग। नदी का पेटा। ९. भाँड़पन। भँड़ैती। भाँड का काम। १०. औजार। यंत्र। ११. सामान या माल रखने का पात्र। १२. गर्दभांड नाम का वृक्ष [को०]।

यौ०—भांडगोपक=बरतनों का रखरखाव करनेवाला व्यक्ति (बौद्ध)। भांडपति=व्यापारी। भांडपुट=नापित। नाऊ। भांडपुष्प=एक प्रकार का साँप भांडप्रतिभांडक=वस्तु परिवर्तन। विनिमय। भांडभरक=पात्र मे रखी हुई वस्तुएँ। भांडमूल्य=पूँजी जो वस्तु या सामान के रूप मे हो। भांडशाला=भंडार। भांडागार।

भांडक—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डक] १. छोटा बरतन। छोटा पात्र। २. माल। व्यापार की वस्तुएँ [को०]।

भांडन—संज्ञा सं० [सं०] लड़ाई। झगड़ा। संघर्ष।

भांडागार—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डागार] १. भंडार। २. कोश। खजाना।

भांडागारिक—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डागारिक] १. भंडार का निरीक्षक या प्रधान। भंडारी। २. खजांची। उ०—भांडागारिक जो खजाने का प्रबंध करता था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २९२।

भांडायन—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डायन] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

भांडार—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डार] १. वह स्थान जहाँ काम में आनेवाली बहुत सी चीजें रखी जाती हों। गोदाम। भंडार। २. वह जिसमें एक ही तरह की बहुत सी चीजें या बातें हों। ३. वह कोठरी जिसमें अनाज आदि रखा जाता हो। ४. खजाना। कोश।

भांडारिक—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डारिक] भंडार का प्रधान। भंडारी।

भांडारी—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डारिन्] भंडारी। भांडारिक [को०]।

भांडि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाऊ की पेटी। किसबत [को०]।

यौ०—भांडिवाह = हज्जाम। नाई। भांडिशाला।

भांडिक—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डिक] १. तुरहीं आदि बजाकर राजाओं को जगानेवाला मनुष्य। २. नापित (को०)।

भांडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० भाण्डिका] औजार। एक पौधा।

भांडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० भाण्डिनी] टोकरी या पेटी आदि [को०]।

भांडिल—संज्ञा स्त्री० [सं० भाण्डिल] नापित। हज्जाम।

भांडिशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० भाण्डिशाला] नाई की दुकान या वह स्थान जहाँ बैठकर हजामत बनाई या बनवाई जाय।

भांडीर—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डीर] १. वट वृक्ष। बड़ का पेड़। २. एक प्रकार का क्षुप।

यौ०—भांडीरवन=वृंदावन का एक हिस्सा।

भांत—वि० [सं० भान्त (सविभक्तिक अङ्गरूप)] १. दीप्त। ज्योतित। प्रकाशयुक्त। २. वज्रसदृश। वज्रतुल्य [को०]।

भांद—संज्ञा पुं० [सं० भान्द] एक उपपुराण का नाम।

भाँई—संज्ञा पुं० [हिं० भाना (=घुमाना)] खरादनेवाला। खरादी। कूनी।

भाँउ—संज्ञा पुं० [सं० भाव] अभिप्राय। उ०—जहाँ ठाँव होवै कर हँसा सो कह केहि भाँउ।—जायसी (शब्द०)।

भाँउर—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भाँवर'।

भाँउरि†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भाँवर'।

भाँकडी—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली झाड जिसे हुसद बिघाड़ा भी कहते हैं। यह गोखरू से मिलता जुलता है।

भाँखना†—क्रि० अ० [हिं० भाखना] दे० 'भाखना'। उ०—बार बार यों भाँखहीं, कोउ जलदी करो उपाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६६।

भाँग¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गा या भृङ्गी] गाँजे की जाति का एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी पत्तियाँ मादक होती हैं और जिन्हें पीसकर लोग नशे के लिये पीते हैं। भंग। विजया। बूटी। पत्ती। उ०—अति गह सुमर खोदाए खाए ले भाँग के गुंडा।—कीर्ति०, पृ० ४०।

विशेष—यह पौधा भारत के प्रायः सभी स्थानों में विशेषतः उत्तर भारत में इन्हीं पत्तियों के लिये बोया है। नेपाल की तराई में कहीं कहीं यह आपसे आप और जंगली भी होता है। पर जंगली पौधे की पत्तियाँ विशेष मादक नहीं होतीं; और इसीलिये उस पौधे का कोई उपयोग भी नहीं होता। पौधा प्रायः तीन हाथ ऊँचा होता है और पत्तियाँ किनारों पर कटावदार होती हैं। इस पौधे के स्त्री, पुरुष और उभयलिंग तीन भेद हैं। स्त्री पौधों की पत्तियाँ ही बहुधा पीसकर पीने के काम में आती हैं। पर कभी कभी पुरुष पौधे की पत्तियाँ भी इस काम में आती हैं। इसकी पत्तियाँ उपयुक्त समय पर उतार ली जाती हैं; क्योंकि यदि यह पत्तियाँ उतारी न जायँ और पौधे पर ही रहकर सूखकर पीली पड जायँ, तो फिर उनकी मादकता और साथ साथ उपयोगिता भी जाती रहती है। भारत के प्रायः सभी स्थानों में लोग इसकी पत्तियों को पीस और छानकर नशे के लिये पीते है। प्रायः इसके साथ बादाम आदि कई मसाले भी मिला दिए जाते हैं। वैद्यक में इसे कफनाशक, ग्राहक, पाचक, तीक्ष्ण, गरम, पित्तजनक, बलवर्धक, मेधाजनक, रसायन, रुचिकारक, मलावरोधक और निद्राजनक माना गया है।

मुहा०—भाँग छानना = भाँग की पत्तियों को पीस और छानकर नशे के लिये पीना। भाँग खा जाना या पी जाना = नशे की सी बातें करना। नासमझी की या पागलपन की बातें करना। घर में भूजी भाँग न होना = अत्यंत दरिद्र होना। पास में कुछ न होना। उ०—जुरि आए फाकेमस्त होली होय रही। घर में भूजी भाँग नहीं है, तो भी न हिम्मत पस्त। होली होय रही।—भारतेंदु (शब्द०)।

भाँग²—संज्ञा पुं० [?] वैश्यों की जाति।

भाँगना†—क्रि० स० [सं० भञ्जन] तोड़ना। भंग कर देना। उ०—अंतर यो बहु जन्म को, सतगुर भाँग्यो आय।—दरिया० बानी०, पृ० १।

भाँगर†—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी धातु आदि की गर्द या छोटे छोटे कण।

भाँज—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँजना] १. किसी पदार्थ को मोड़ने या तह करने का भाव अथवा क्रिया। २. भाँजने या घुमाने की क्रिया या भाव। ३. वह धन जो रुपया, नोट आदि भुनाने के बदले में दिया जाय। भुनाई। ४. ताने का सूत। (जुलाहा)।

भाँजना—क्रि० स० [सं० भञ्जन] १. तह करना। मोड़ना। जैसे फर्मा भाँजना। २. गदा, जोड़ी, मुगदर आदि घुमाना (व्यायाम)। ३. दो या कई लड़ों को एक में मिलाकर बटना। ४. तोड़ना। भंजन करना। उ०—अतृपत सुत जु छुभित तब भयो। भाजन भाँजि भवन दुरि गयो।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६। ५. दूर करना। निरसन। उ०—आपा भाँजिबा सतगुर बोजिबा जोग पंथ न करिबा ...।—गोरख०, पृ० ६७।

...ज्ञा पुं० [हिं० भानजा] दे० 'भानजा'।

भाँजी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँजना (=मोड़ना)] वह बात जो किसी की ओर से किसी को अप्रसन्न या रुष्ट करने के लिये कही जाय । वह बात जो किसी के होते हुए काम में बाधा डालने के लिये कही जाय । शिकायत । चुगली ।

क्रि० प्र०—मारना ।

भाँट¹—संज्ञा पुं० [सं० भट्ट] दे० 'भाट' ।

भाँट²—संज्ञा पुं० [देश०] देशी छीटों की छपाई में कई रंगों में से केवल काले रंग की छपाई जो प्रायः पहले होती है ।

भाँटा†—संज्ञा पुं० [सं० भरटाक? वृन्ताक] दे० 'बैंगन' ।

भाँड़¹—संज्ञा पुं० [सं० भण्ड] १. विदूषक । मसखरा । बहुत अधिक हँसी मजाक करनेवाला । २. एक प्रकार के पेशेवर जो प्रायः अपना समाज बनाकर रहते हैं और महफिलों आदि में जाकर नाचते गाते, हास्यपूर्ण स्वाँग भरते और नकलें उतारते हैं । ३. हँसी दिल्लगी । भाँड़पन । ४. वह जिसे किसी की लज्जा न हो । नंगा । बेहया । ५. सत्यानाश । बरबादी । उ०—तुलसी राम नाम जपु आलस छाँड़ । राम विमुख कलिकाल को भयो न भाँड़ ।—तुलसी (शब्द०) ।

भाँड़²—संज्ञा पुं० [सं० भाण्ड, हिं० भाँड़ा] १. बरतन । भाँड़ा । २. भंडाफोड़ । रहस्योद्‌घाटन । उ०—वह गुरु बादि छोभ छल छाँड़ू । इहाँ कपट कर होइहि भाँड़ू ।—तुलसी(शब्द०) । ३. उपद्रव । उत्पात । गड़बड़ी । उ०—कबिरा माया मोहनी जैसे मीठी खाँड़ । सतगुर की किरपा भई नातर करती भाँड़ ।—कबीर (शब्द०) ।

भाँड़³—संज्ञा पुं० [सं० भ्राष्ट्र] दे० 'भाड़' ।

भाँड़ना(पु)†¹—क्रि० अ० [सं० भण्ड] व्यर्थ इधर उधर घूमना । मारे मारे फिरना । उ०—सकल भुवन भाँड़े घने चतुर चलावन हार । दादू सो सूझइ नहीं जिसका वार न पार ।—दादू (शब्द०) ।

भाँड़ना²—क्रि० स० १. किसी की चारों ओर निंदा करते फिरना । किसी को बहुत बदनाम करते फिरना । २. नष्ट भ्रष्ट करना । बिगाड़ना । खराब करना । उ०—कहे की न लाज अजहूँ न आयो बाज पिय सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़िगो ।—तुलसी (शब्द०) । ३. भँड़ैती करना । मजाक करना । प्रेम से अपमानित करना । उ०—जीत्यों लड़ैती को संग गुपाल सो गारी दई भँड़वा कहि भाँड़्यो ।—व्रज० ग्रं०, पृ० २९ ।

भाँड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० भाण्ड] १. बरतन । बासन । पात्र । २. बड़ा बरतन । जैसे, हंडा, कुंडा इत्यादि ।

मुहा०—भाँड़े में जी देना=किसी पर दिल लगा होना । उ०—को तुम उतर देय हो पाँड़े । सो बोलै जाको जिव भाँड़े ।—जायसी (शब्द०) । भाँड़े भरना=पश्चात्ताप करना । पछताना । उ०—तब तू मारिबोई करति । रिसनि आगे कहि जो आवनि अब लै भाँड़े भरति ।—सूर (शब्द०) ।

भाँड़ा²—संज्ञा पुं० [हिं० भाँड़] १. भाँड़पन । २. भाँड़ का काम । उ०—कहूँ भाँड़ भाँड़्यो करै मान पावै ।—केशव (शब्द०) ।

भाँत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भाँति' । उ०—गोकुल में कुल की कहौं क्यों निबहै कुसलात । बलिहारी तुम सों लला हौं हारी हर भाँत ।—स० सप्तक, पृ० ३५५ ।

भाँति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भेद] तरह । किस्म । प्रकार । रीति । जैसे,—(क) अनेक भाँति के वृक्ष लगे हैं । (ख) यह कार्य इस भाँति न होगा ।

मुहा०—भाँति भाँति के=तरह तरह के । अनेक प्रकार के । उ०—जोबन के रंग सों रँगि जात सो भाँति हि भाँति सरस्वति सेनी ।—पद्माकर ।

भाँति²—संज्ञा स्त्री० [सं० भेद] मर्यादा । चाल । उ०—रटत रटत लट्यो जाति पाँति भाँति घट्यो जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं ।—तुलसी (शब्द०) ।

भाँपना†—क्रि० स० [देश०] १. ताड़ना । पहचानना । २. देखना । (बाजारू) ।

भाँपू—संज्ञा पुं० [हिं० भाँपना] भाँपने या ताड़नेवाला । दूर से ही ताड़नेवाला । दूर से ही देखकर अनुमान कर लेनेवाला ।

भाँभी¹—संज्ञा पुं० [डिं०] जूता सीनेवाला । चमड़े का काम करनेवाला । मोची । चमार ।

भाँभी†¹—वि० स्त्री० [सं० भ्रमण] भ्रमणशील । घूमनेवाली । उ०—साँवली सूरत भाँभी अँखियाँ । अँख्याँ डाढा चेटक दीता ।—घनानंद, पृ० ४१६ ।

भाँम(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भमा, भामा] भामा । सुंदरी । उ०—भीतर अटान पै छटा सी जगमगे भाँम करो काम केलि पाय जोवन नवीने तूँ ।—दीन० ग्रं०, पृ० १५७ ।

भाँयँभाँयँ—संज्ञा पुं० [अनु०] नितांत एकांत स्थान वा सन्नाटे में होनेवाला शब्द । जैसे,—उनके चले जाने से घर भाँयँ भाँयँ करता है ।

भाँरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँवरी] दे० 'भाँवर' ।

भाँवता—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भावता' ।

भाँवना†—क्रि० स० [सं० भ्रमण] १. किसी चीज को खराद या चक्कर आदि पर घुमाना । खरादना । कुनना । २. बहुत अच्छी तरह गढ़कर और सुंदरतापूर्वक बनाना । उ०—(क) साँचे की सी ढारी अति सूछम सुधारि काढ़ी केशोदास अंग अंग भाँइ के उतारी है ।—केशव (शब्द०) । (ख) गढ़ि गुढ़ि ग्रीवा छोलि छालि कूँद की सी भाँई बातें जैसी मुख कहो तैसी उर जब आनिहौ । —तुलसी (शब्द०) । (ग) भाँई ऐसी ग्रीवा भुज पान सो उदर अरु पंकज सो पाँइ गति हंस ऐसी जासु है ।—केशव (शब्द०) ।

भाँवर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] १. चारों ओर घूमना या चक्कर काटना । घुमरी लेना । परिक्रमा करना । उ०—जो तोहि पिये सो भाँवर लेई । सीस फिरै पंथ पैग न देई ।—जायसी

(शब्द०)। २. हल जोतने के समय एक बार खेत के चारों ओर घूम आना। ३. अग्नि की वह परिक्रमा जो विवाह के समय वर और वधू मिलकर करते हैं।

क्रि० प्र०—फिरना।—लेना।

भाँवर[२]—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] दे० 'भौंरा'। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी पै वारोंगी मालती भाँवरो।—हरिदास (शब्द०)।

भाँवरा—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] भौंरा।

भाँवरि, भाँवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँवर] दे० 'भाँवर'। उ०—विरह भँवर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीव हिलोरहि लेई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ११६।

भाँसा—संज्ञा स्त्री० [सं० भाष] बोल। आवाज। ध्वनि। चकार।

भा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति। चमक। प्रकाश। उ०—मनि कुंडल अति भा खुलनि डुलनि सु ललित कपोल।—घनानंद, पृ० २६६। २. शोभा। छटा। छवि। ३. किरण। रश्मि। ४. बिजली। विद्युत्।

भा†[२]—अव्य० चाहे। यदि इच्छा हो। वा। उ०—जो भावै सो कर लला इन्हें बाँध भा छोर। हैं तुव सुबरन रूप के ये दृग मेरे चोर।—रसनिधि (शब्द०)।

भाइ(पु)†[१]—संज्ञा पुं० [सं० भाव] १. प्रेम। प्रीति। मुहब्बत। उ०—आय आगे लेन आप दिए हैं पठाय जन देखी द्वारावती कृष्ण मिले बहु भाइ कै।—प्रियादास (शब्द०)। २. स्वभाव। भाव। उ०—भोरें भाई भोरही ह्वा खेलन गई ही खेल ही में खुल खेले कछु औरै कढ़ि रह्यो है।—देव (शब्द०)। ३. विचार। उ०—पिता घर आयो पति भूख लै सतायो अति माँगै तिया पास नहीं दियो यह भाइ कै।—प्रियादास (शब्द०)।

भाइ[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँति] १. भाँति। प्रकार। तरह। उ०—(क) तब ब्रह्मा सों कह्यो सिर नाइ। जैं ह्वै है हमरी किहि भाइ।—सूर (शब्द०)। (ख) आशु बरषि हियरे हरषि सीतल सुखद सुभाइ। निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि बरनति हैं बहु भाइ।—केशव (शब्द०)। २. ढंग। चाल-ढाल। रंग ढंग। उ०—बहु बिधि देखत पुर के भाइ। राज सभा महँ बैठे जाइ।—केशव (शब्द०)।

भाइप(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० भाई+प (पन) (प्रत्य०)] १. भाईचारा। भाईपन। २. मित्रता। बंधुत्व।

भाई—संज्ञा पुं० [सं० भ्रातृ] १. किसी व्यक्ति के माता पिता से उत्पन्न दूसरा पुरुष। किसी के माता पिता का दूसरा पुत्र। बहन का उलटा। बंधु। सहोदर। भ्राता। भैया। २. किसी वंश या परिवार की किसी एक पीढ़ी के किसी व्यक्ति के लिये उसी पीढ़ी का दूसरा पुरुष। जैसे, चाचा का लड़का= चचेरा भाई; फूफी का लड़का=फुफेरा भाई; मामा का लड़का=ममेरा भाई। ३. अपनी जाति या समाज का कोई व्यक्ति। बिरादरी।

यौ०—भाई बिरादरी।

४. बराबर वालों के लिये एक प्रकार का संबोधन। जैसे,—भाई पहले यहाँ बैठकर सब बातें सोच लो। उ०—बर अनुहार बरात न भाई। हँसी करइहउ पर पुर जाई।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—भाइयों की मूछें उखाड़ना=अपनों को अपमानित करना। उ०—जिनको वीर होने का दावा है, वे भाइयों की मूछें उखाड़कर मूँछे मरोड़ रहे हैं।—चुभते०, पृ० ३।

भाईचारा—संज्ञा पुं० [हिं० भाई+चारा (प्रत्य०)] १. भाई के समान होने का भाव। बंधुत्व। २. परम मित्र या बंधु होने का भाव।

भाईदूज—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाई+दूज] यमद्वितिया। कार्तिक शुक्ल द्वितीया। भैया दूज।

विशेष—इस दिन बहन अपने भाई को टीका लगाती है और भोजन कराती है।

भाईपन—संज्ञा पुं० [हिं० भाई+पन (प्रत्य०)] १. भ्रातृत्व। भाई होने का भाव। २. परम मित्र या बंधु होने का भाव।

भाईबंद—संज्ञा पुं० [हिं० भाई+बंधु] भाई और मित्र बंधु आदि। अपनी जाति और बिरादरी के लोग। नाते और बिरादरी के आदमी।

भाई बिरादरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाई+बिरादरी] जाति या समाज के लोग।

भाउ(पु)†[१]—संज्ञा पुं० [सं० भाव] १. चित्तवृत्ति। विचार। भाव। २. प्रेम। प्रीति। उ०—(क) ते नर यह सर तजइ न काऊ। जिनके राम चरन भल भाऊ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राग रोष दोष पोषे गोगन समेत मन इन्ह की भगति कीन्हों इन्हही को भाउ मैं।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सो पद पंकज सुंदर नाउ। इत ही राखि गए भरि भाउ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

भाउ[२]—संज्ञा पुं० [सं० भव] उत्पत्ति। जन्म। उ०—होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।—तुलसी (शब्द०)।

भाउ[३]—संज्ञा पुं० दे० 'भाव'।

भाउन (पु)—वि० [सं० भावन] सुंदर। अच्छा। उ०—अरुन बसन तन मैं पहिरि पीत सु दौना हाथ। साउन मैं भाउन लगत सखी सुहावन साथ।—स० सप्तक, पृ० ३३६।

भाउर†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] दे० 'भाँवर'। उ०—गात गुराई हेम का दुति सु दुराई केत। कंज वदन छबि जान अलि भूलि भाउरे लेत।—स० सप्तक, पृ० ३८४।

भाऊ[१]—संज्ञा पुं० [सं० भ्रातृ] भाई।

भाऊ(पु)[२]—संज्ञा पुं० [सं० भाव] १. प्रेम। स्नेह। मुहब्बत। उ०—पुनि सप्रेम बोलेउ खग राऊ। जो कृपाल मोहि ऊपर भाऊ।—तुलसी (शब्द०)। २. भावना। ३. स्वभाव।

उ०—[illegible] (सं०) । [illegible] ४. [illegible] । ६०—(क) [illegible] (ख) [illegible] (सं०) । ५. [illegible] ६०—[illegible] [illegible] (सं०) । [illegible] उ०—[illegible] (सं०) । [illegible] (ख) [illegible] (सं०) । [illegible] (सं०) ।

आए—[illegible] उ०—[illegible] —सूर (सं०) ।

आकर—[illegible] १. [illegible] २. [illegible] ६०—[illegible] आकर भाव [illegible] (सं०) ।

आकसी—[illegible] ६०—[illegible] (सं०) ।

आका—[illegible] [सं० आप] [illegible] ६०—[illegible] पोद्दार, अभि० ग्रं०, पृ० ८८ ।

आकुट—[illegible]

आकुर—[illegible] [सं० अंकुर] [illegible]

आकूट—[illegible]

आकोश, आकोप—[illegible]

आख—[illegible] [सं०] १. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] ४. [illegible]

आखिक—[illegible]

आखु—[illegible] [illegible] पक्षिक [illegible]

आखणु†—[illegible] [आख] [illegible]

आखना(ु)†—[illegible] [सं० √आख्] [illegible]

आखना(ु)†—क्रि० स० [सं० आख्य] कहना । बोलना । उ०—(क) रहु मुनि राम धरत दुई भाषा । भरत सनेहु विचार न राखा ।—मानस, २।२५७ । (ख) [illegible] —विद्यापति, पृ० ५४० ।

आखर—संज्ञा पुं० [हिं०] [illegible]

[illegible] [सं० आख्य] [illegible] पं०, पृ० ११ ।

[illegible] —[illegible]

[illegible] [illegible] पृ० ८८ ।

[illegible] [illegible] १. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] (सं०) । ४. [illegible]

[illegible] —[illegible]

८. [illegible] (सं०) । ९. [illegible] (सं०) । १०. [illegible] ११. [illegible] १२. [illegible] १३. [illegible] १४. [illegible] १५. [illegible] १६. [illegible] [illegible] किया ।

विशेष—[illegible] 'आखक' [illegible] आखक [illegible] कहते हैं । जैसे,—

[illegible]

आखक (x) १११ ([illegible]

११x

×

भागक—संज्ञा पुं० [सं०] भाग । भाजक ।

भागकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिस्से बाँटना । बँटवारा ।

भागजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विभाग के चार प्रकारों में से एक जिसमे एक हर और एक अंश होता है, चाहे वह सम भिन्न हो वा विषम भिन्न हो । जैसे, $\frac{३}{७}$, $\frac{१३}{१९}$ ।

भागड़—संज्ञा [स्त्री० हिं० भागना + ड़ (प्रत्य०)] भागने, विशेषतः बहुत से लोगो के एक साथ घबराकर भागने की क्रिया या भाव ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—मचना ।

भागत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जहद्दजहल्लक्षणा' ।

भागदौड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० भागना + दौड़ना] दे० 'भागड़' ।

भागधान—संज्ञा पु० [सं०] खजाना ।

भागधेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग्य । तकदीर । किस्मत । २. सौभाग्य । अच्छी किस्मत (को०) । ३. खुशकिस्मती । प्रसन्नता । प्रफुल्लता (को०) । ४. संपत्ति । चल और अचल संपत्ति (को०) । ५. भाग । हिस्सा (को०) । ६, वह कर जो राजा को दिया जाता है । ७. दायाद । सपिंड ।

भागना—क्रि० अ० [स० √भाज्] १. किसी स्थान से हटने के लिये दौड़कर निकल जाना । पीछा छुड़ाने के लिये जल्दी जल्दी चले जाना । चटपट दूर हो जाना । पलायन करना । जैसे,—महल्लेवालों की आवाज सुनते ही डाकू भाग गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।—निकलना ।—पड़ना ।

मुहा०—सिर पर पैर रखकर भागना = बहुत तेजी से भागना । जल्दी जल्दी चले जाना ।

२. टल जाना । हट जाना । जैसे,—अब भागते क्यों हो, जरा सामने बैठकर बातें करो ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. कोई काम करने से बचना । पीछा छुड़ाना । पिंड छुड़ाना । जैसे,—(क) आप उनके सामने जाने से सदा भागते हैं । (ख) मै ऐसे कामों से बहुत भागता हूँ । ४. युद्ध में हार जाना । पीठ दिखाना ।

भागनिधि—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भाग (= भाग्य) + निधि] भाग्य रूपी निधि । उ०—जसुद कूँख भागनिधि खानि । प्रगट्यो कृस्न रतन सुखदानि ।—घनानंद, पृ० ३१९ ।

भागनेय—संज्ञा पुं० [सं० भगिनेय] बहिन का बेटा । भानजा ।

भागफल—संज्ञा पुं० [सं०] वह संख्या जो भाज्य को भाजक से भाग देने पर प्राप्त हो । लब्धि । जैसे,—यदि १६ को ४ से भाग दें [४) १६ (४ / १६ / ×] तो यहाँ ४ भागफल होगा ।

भागबस—क्रि० वि० [हिं० भाग + बस] भाग्यवश । सौभाग्यतः । उ०—बागुर विषम तोराइ मनहु भाग मृग भागबस । —मानस, २।७५ ।

भागभरा(पु)—वि० [हिं० भाग + भरना] [वि० भागभरी] भाग्यवान् । खुशकिस्मत ।

भागभाज्—वि० [स०] हिस्सेदार (को०) ।

भागभुज्—संज्ञा पु० [स०] नरेश । राजा (को०) ।

भागभोगकर—संज्ञा पु० [सं० भाग + भुज् + कर] एक प्रकार का भूमिकर । उ०—चेदि, गहड़वाल, परमार तथा पालवंशी लेखों में इस कर (भूमिकर) के लिये भागभोग कर या राजभोग कर का नाम मिलता है । संभवतः यह भूमि की उपज पर टैक्स था जो साधारणतः छठा हिस्सा होता था । —पू० म० भा०, पृ० ११२ ।

भागरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक संकर राग जो किसी किसी के मत से श्रीराग का पुत्र माना जाता है ।

भागलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जहद्दजहल्लक्षणा ।

भागवत—वि० [स० भाग्यवान्] जिसका भाग्य बहुत अच्छा हो । खुशकिस्मत । भाग्यवान् ।

भागवत[१]—संज्ञा पु० [सं०] १. अठारह पुराणों मे से सर्वप्रसिद्ध एक पुराण जिसमे १२ स्कंध, ३१२ अध्याय और १८००० श्लोक हैं । श्रीमद्भागवत ।

विशेष—इसमे अधिकांश कृष्ण संबंधी प्रेम और भक्ति रस की कथाएँ हैं और यह वेदांत का तिलकस्वरूप माना जाता है । वेदांत शास्त्र मे ब्रह्म के संबंध में जिन गूढ़ बातों का उल्लेख है, उनमें से बहुतों की इसमे सरल व्याख्या मिलती है । साधारणतः हिंदुओं में इस ग्रंथ का अन्यान्य पुराणों की अपेक्षा विशेष आदर है और वैष्णवों के लिये तो यह प्रधान धर्मग्रंथ है । वे इसे महापुराण मानते हैं । पर शाक्त लोग देवीभागवत को ही भागवत कहते और महापुराण मानते हैं और इसे उपपुराण कहते हैं ।

२. देवीभागवत । ३. भगवद्भक्त । हरिभक्त । ईश्वर का भक्त । ४. १३ मात्राओं के एक छंद का नाम ।

भागवत[२]—वि० भागवत संबंधी ।

भागवती—संज्ञा स्त्री० [स०] वैष्णवों की गले मे पहनने की गोल दानों की एक प्रकार की कंठी ।

भागवान—वि० [हिं० भाग + वान] दे० 'भाग्यवान्' ।

भागसिद्ध—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का हेत्वाभास ।

भागहर—वि० [स०] भाग या अंश लेनेवाला । हिस्सेदार ।

भागहार—संज्ञा पु० [स०] गणित में किसी राशि को कुछ निश्चित अंशो मे विभक्त करने की क्रिया । भाग । तकसीम ।

भागहारी[१]—वि० [स० भागहारिन्] [वि० स्त्री० भागहारिणी] हिस्सेदार ।

भागहारी[२]—संज्ञा पुं० उत्तराधिकारी । २. विभाग । हिस्सा (को०) ।

भागानुप्रविष्टक—संज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार गायों की रक्षा करनेवाला वह कर्मचारी जो गाय के मालिकों से दूध की आमदनी का दसवाँ भाग लेता था ।

भागापहारी—वि० [सं० भागापहारिन्] हिस्सा पानेवाला । जिसने हिस्सा पाया हो [को०] ।

भागाभाग—संज्ञा स्त्री० [हिं० भागना की द्विरुक्ति] भागने की हलचल । भागदौड़ ।

भागार्थी—वि० [सं० भागार्थिन्] [वि० स्त्री० भागार्थिनी] अंश या हिस्सा चाहनेवाला ।

भागार्ह—वि० [सं०] १. जो भाग देने के योग्य हो । विभक्त करने के योग्य । २. हिस्सा पाने का अधिकारी । जो विभाग का हकदार हो ।

भागासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का नाम ।

भागि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भाग्य] दे० 'भाग्य' । उ०—निंदा अपने भागि को चला करति वह तीय ।—शकुंतला, पृ० ६६ ।

भागिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो व्याज पर दिया जाय ।

भागिक[2]—वि० अंश या भाग संबंधी [को०] ।

भागिनेय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भागिनेयी] बहिन का लड़का । भानजा ।

भागी[1]—संज्ञा पुं० [सं० भागिन्] [स्त्री० भागिनी] १. हिस्सेदार । शरीक । साझी । २. अधिकारी । हकदार । ३. शिव ।

भागी[2]—वि० भाग या हिस्सावाला । जिसमें भाग या अंश हो ।

भागीरथ[1]—संज्ञा पुं० [सं० भगीरथ] दे० 'भगीरथ' । उ०—भगीरथ जब बहु तप कियो । तब गंगा जू दर्शन दियो ।—सूर (शब्द०) ।

भागीरथ[2]—वि० भगीरथ संबंधी । भगीरथ तुल्य ।

भागीरथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । जाह्नवी ।

विशेष—कहते हैं कि राजा भगीरथ ही इस लोक में गंगा को लाए थे, इसीलिये उसका यह नाम पड़ा ।

२. गंगा की एक शाखा का नाम जो बंगाल में है ।

भागीरथी[2]—संज्ञा पुं० गढ़वाल के पास की हिमालय की एक चोटी का नाम ।

भागुरि—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के भाष्यकर्ता एक ऋषि का नाम ।

भागू—संज्ञा पुं० [हिं० भागना+ऊ (प्रत्य०)] वह जो भाग गया हो ।

भागौत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० भागवत] दे० 'भागवत' । उ०—श्रीधर श्री भागौत में, परत धरम निरनै कियो ।—भक्तमाल, पृ० ५३२ ।

भाग्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह अवश्यंभावी दैवी विधान जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ और विशेषतः मनुष्य के सब कार्य—उन्नति, अवनति नाश आदि पहले ही से निश्चित रहते हैं और जिससे अन्यथा और कुछ हो ही नहीं सकता । पदार्थों और मनुष्यों आदि के संबंध में पहले ही से निश्चित और अनिवार्य व्यवस्था या क्रम । तकदीर । किस्मत । नसीब ।

विशेष—भाग्य का सिद्धांत प्रायः सभी देशों और जातियों में किसी न किसी रूप में माना जाता है । हमारे शास्त्रकारों का मत है कि हम लोग संसार में आकर जितने अच्छे या बुरे कर्म करते हैं, उन सबका कुछ न कुछ संस्कार हमारी आत्मा पर पड़ता है और आगे चलकर हमें उन्हीं संस्कारों का फल मिलता है । यही संस्कार भाग्य या कर्म कहलाते हैं और हमें सुख या दुःख देते हैं । एक जन्म मे जो शुभ या अशुभ कृत्य किए जाते हैं, उनमें से कुछ का फल उसी जन्म मे और कुछ का जन्मांतर मे भोगना पड़ता है । इसी विचार से हमारे यहाँ भाग्य के चार विभाग किए गए हैं—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण और भावी । प्रायः लोगों का यही विश्वास रहता है कि संसार में जो कुछ होता है, वह सदा भाग्य से ही होता है और उसपर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं होता । साधारणतः शरीर मे भाग्य का स्थान ललाट माना जाता है ।

पर्या०—दैव । दिष्ट । भागधेय । नियति । विधि । प्राक्तन । कर्म्म । भवितव्यता । अदृष्ट ।

यौ०—भाग्यक्रम, भाग्यचक्र=भाग्य का क्रम या चक्र । भाग्य का फेर । भाग्यदोष । भाग्यपंच । भाग्यबल । भाग्यभाव । भाग्यलिपि । भाग्यवान् । भाग्यशाली । भाग्यहीन । भाग्योदय । आदि ।

मुहा०—दे० 'किस्मत' के मुहा० ।

२. उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र ।

भाग्य[2]—वि० जो भाग करने के योग्य हो । हिस्सा करने लायक । भागार्ह ।

भाग्यपंच—संज्ञा पुं० [सं० भाग्यपञ्च] एक प्रकार का खेमा [को०] ।

भाग्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मकुंडली में जन्मलग्न से नवाँ स्थान जहाँ से मनुष्य के भाग्य के शुभाशुभ का विचार किया जाता है ।

भाग्ययोग—वि० [सं०] भाग्यवान । भाग्यशाली ।

भाग्यलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तकदीर की लिखावट । अदृष्ट रेखा ।

भाग्यलेख्य पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्रनीति के अनुसार बँटवारे का कागज । वह कागज जिसमें किसी जायदाद के हिस्सेदारों के हिस्से लिखे हों ।

भाग्यवश, भाग्यवशात्—अव्य० [सं०] भाग्य से । किस्मत से ।

भाग्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य के अनुसार ही शुभाशुभ की प्राप्ति मानने का सिद्धांत ।

भाग्यविपर्यय, भाग्यविप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अभाग्य । दुर्भाग्य [को०] ।

भाग्यसंपद्—संज्ञा स्त्री० [सं० भाग्यसंपत् (—द्)] सौभाग्य [को०] ।

भाग्याधीन—वि० [सं०] जो भाग्य के अधीन हो ।

भाग्योदय—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य का खुलना ।

भाचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] क्रांतिवृत्त ।

भाजक[1]—वि० [सं०] विभाग करनेवाला । बाँटनेवाला ।

भाजक[2]—संज्ञा पुं० वह अंक जिससे किसी राशि को भाग दिया जाय । विभाजक अंक (गणित) ।

भाजकांश—संज्ञा पुं० [सं०] वह संख्या जिससे किसी राशि को भाग देने पर शेष कुछ भी न बचे । गुणनीयक ।

भाजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बरतन। उ०—मनों संख सुती घरी मरकत भाजन माहिं।—स० सप्तक, पृ० ३६५। २. आधार ३. आढ़क नाम की तौल जो ६४ पल के बराबर होती है। ४. योग्य। पात्र। जैसे, विश्वासभाजन। उ०—लखन कहा जसभाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई।—तुलसी (शब्द०)। ५. विभाग। अंश (गणित)। ६. विभाजन करना। अलग अलग करना।

भाजनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाजन होने का भाव। पात्रता। योग्यता।

भजना(पु)—क्रि० अ० [सं० भजन, प्रा० वजन पुं०हिं० भजना] दौड़कर किसी स्थान से दूसरे स्थान को निकल जाना। भागना। उ०—(क) शूरा के मैदान में कायर का क्या काम। कायर भाजै पीठि दै सूर करै संग्राम।—कबीर (शब्द०)। (ख) आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) और मल्ल मारे शल तोशल बहुत गए सब भाज। मल्ल युद्ध हरि करि गोपन सों लखि फूले व्रजराज।—सूर (शब्द०)। (घ) भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे बिराजि। इंदु कला कुज में बसी मनों राहु भय भाजि।—बिहारी (शब्द०)।

भाजित—वि० [सं०] १. जिसको दूसरी संख्या से भाग दिया गया हो। २. जो अलग किया गया हो। विभक्त।

भाजी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मांग। पीच। २. तरकारी, साग आदि। उ०—(क) तुम तो तीन लोक के ठाकुर तुमते कहा दुराइय। हम तो प्रेम प्रीति के गाहक भाजी शाक चखाइय।—सूर (शब्द०)। (ख) मीठे तेल चना की भाजी। एक मकुनी दै मोहिं साजी।—सूर (शब्द०)। ३. मेथी।

भाजी[2]—संज्ञा पुं० [सं० भाजिन्] सेवक। भृत्य। नौकर।

भाजी[3]—वि० [सं० भाजिन्] भाग लेनेवाला। शरीक होनेवाला। संबद्ध।

भाज्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिसे भाजक अंक से भाग दिया जाता है।

भाज्य[2]—वि० विभाग करने के योग्य।

भाट[1]—संज्ञा पुं० [सं० भट्ट] [स्त्री० भाटिन] १. राजाओं का यश वर्णन करनेवाला कवि। चारण। बंदी। उ०—सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा।—तुलसी (शब्द०)। २. एक जाति का नाम। उ०—चली लोहारिन बाँकी नैना। भाटिन चली मधुर अति बैना।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इस जाति के लोग राजाओं के यश का वर्णन और कविता करते हैं। यह लोग ब्राह्मण के अंतर्गत माने और दसौंधी आदि के नाम से पुकारे जाते हैं। इस जाति की अनेक शाखाएँ उत्तरीय भारत मे बंगाल से पंजाब तक फैली हुई हैं।

३. खुशामद करनेवाला पुरुष। खुशामदी। ४. राजदूत।

भाट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] भाड़ा। किराया।

भाट[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाठ] १. वह भूमि जो नदी के दो करारों के बीच में हो। पेटा। २. बहाव की वह मिट्टी जो नदी का चढ़ाव उतरने पर उसके किनारों पर की भूमि पर वा कछार में जमती है। ३. नदी का किनारा। ४. नदी का बहाव। वह रुख जिधर को नदी बहकर दूसरे बड़े जलाशय में गिरती है। उतार। चढ़ाव का उलटा।

भाटक—संज्ञा पुं० [सं०] भाड़ा।

भाटा—संज्ञा पुं० [हिं० भाट] १. पानी का चढ़ाव की ओर से उतार की ओर जाना। चढ़ाव का उतरना। २. समुद्र के चढ़ाव का उतरना। ज्वार का उल्टा। दे० 'ज्वार भाटा'। ३. पथरीली। भूमि।

भाटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किराया। भाड़ा। २. वेश्या की कमाई [को०]।

भाटिया—संज्ञा पुं० [सं० भट्ट] एक उपजाति जो गुजरात में रहती है। इस जाति के लोग अपने को क्षत्रियों के अंतर्गत मानते हैं। पंजाबियों में भी 'भाटिया' नाम की एक उपजाति है।

भाटी—संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रिय जाति की एक शाखा का नाम। उ०—फुरमान गए जैसलहमेर। भेम्या सब भाटी भए जेर।—पृ० रा० १।४२३।

विशेष—राजपूतों की एक जाति जो ईस्वी सन् १४ में गजनी से आई और पंजाब में बसी तथा वहाँ से हटकर राजपूताना में बसी।

भाटयौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० भट] भाट का काम। भटई। यशकीर्तन। उ०—कहूँ भाट भाटयो करै मान पावै। कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावै।—केशव (शब्द०)।

भाठ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाठना या भरना] १. वह मिट्टी जो नदी अपने साथ चढ़ाव में बहाकर लाती है और उतार के समय कछार में ले जाती है। यह मिट्टी तह के रूप में भूमि पर जम जाती है और खाद का काम देती है। २. दे० 'भाट—१ और ३'। ३. धारा। बहाव।

भाठा—संज्ञा पुं० [हिं० भाठ] १. दे० 'भाटा'। २. गर्त। गड्ढा। ३. पत्थर। प्रस्तर। उ०—मन दिन उण री आथ ज्यूँ डाठो भाटो देर।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३४।

भाठी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाठा] पानी का उतार। भाटा।

भाठी(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्राष्ट्री] १. भट्ठी। उ०—भवन मोहि भाठी सम लागत मरति सोच ही सोचन। ऐसी गति मेरी तुम आगे करत कहा जिय दोचन।—सूर (शब्द०)। २. वह स्थान जहाँ मद्य चुआया जाता है। भट्ठी। उ०—कबिरा भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय। सिर सौंपे सो पीवही और पै पिया न जाय।—कबीर (शब्द०)।

भाड़—संज्ञा पुं० [सं० भ्राष्ट्र, पा० भट्ठो] भड़भूजों की भट्ठी जिसमें वे अनाज भूनने के लिये बालू गरम करते हैं।

विशेष—यह एक छोटी कोठी के आकार का होता है जिसमें एक द्वार होता है और जिसकी छत पर बहुत से मिट्टी के बरतन ऊपर को मुँह करके जड़े होते हैं। इसकी दीवार हाथ सवा हाथ ऊँची होती है। इसके द्वार से ईंधन डाला जाता है जिससे आग जलती है। आग की गर्मी से बालू लाल होता है जिसे अलग निकालकर दूसरे बर्तन में दानों के साथ रखकर भूनते हैं। दो तीन बार इस प्रकार गरम बालू डालने और चलाने से दाने खिल जाते हैं।

मुहा०—भाड़ झोंकना=(१) भाड़ में ईंधन झोंकना। भाड़ में कूड़ा फेंकना। भाड़ गरम करना। (२) तुच्छ काम करना। नीच वृत्ति धारण करना। नीच काम करना। अयोग्य काम करना। ३. व्यर्थ समय गँवाना। जैसे,—बारह बरस दिल्ली में रहे, भाड़ झोंकते रहे। भाड़ में झोंकना या डालना=(१) आग में डालना। चूल्हे मे डालना। जलाना। (२) फेंकना। नष्ट करना। (३) जाने देना। त्यागना। भाड़ में पड़े वा जाय=आग लगे। नष्ट हो। (उपेक्षा)।

भाड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० भाट] किराया।

मुहा०—भाड़े का टट्टू=(१) थोड़े दिन तक रहनेवाला। जो स्थायी न हो। क्षणिक। (२) जिसकी सदा मरम्मत हुआ करे वा जिसपर लाभ से व्यय अधिक पड़ता हो।

भाड़ा[3]—संज्ञा पुं० एक घास जो प्रायः हाथ भर ऊँची होती और निर्बल भूमि में उपजती है। यह चारे के काम आती है।

भाड़ा[4]—संज्ञा पुं० [सं० भरण] वह दिशा जिस ओर को वायु बहती हो।

मुहा०—भाड़े पड़ना=जिधर वायु जाती हो, उधर नाव को चलाना। नाव को वायु के सहारे ले जाना। भाड़े फेरना=जिधर हवा का रुख हो, उधर नाव का मुँह फेरना।

भाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाट्यशास्त्रानुसार एक प्रकार का रूपक जो नाटकादि दस रूपकों के अंतर्गत है।

विशेष—यह एक अंक का होता है और इसमे हास्य रस की प्रधानता होती है। इसका नायक कोई निपुण पंडित वा अन्य चतुर व्यक्ति होता है। इसमे नट आकाश की ओर देखकर आप ही आप सारी कहानी उक्ति प्रत्युक्ति के रूप में कहता जाता है, मानो वह किसी से बात कर रहा हो। वह बीच बीच में हँसता जाता और क्रोधादि करता जाता है। इसमे धूर्त के चरित्र का अनेक अवस्थाओं सहित वर्णन होता है। बीच बीच में कहीं कहीं संगीत भी होता है। इसमें शौर्य और सौभाग्य द्वारा शृंगाररस भी सूचित होता है। संस्कृत भाणों मे कौशिकी वृत्ति द्वारा कथा का वर्णन किया जाता है। यह दृश्यकाव्य है।

२. व्याज। बहाना। मिस। ३. ज्ञान। बोध।

भाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अंक में समाप्त होनेवाला हास्यरसप्रधान दृश्य काव्य। भाण।

भात[1]—संज्ञा पुं० [सं० भक्त, पा० भक्त, प्रा० भत्त] १. पानी में उबाला हुआ चावल। पकाया हुआ चावल। उ०—(क) अवभू वो तनु रावल राता। नाचै बाजन बाज बराता। मौर के माथे दूलह दीन्हों अकथा जोरि कहाता। मडये क चारन समधी दीन्हों पुत्र बहावल माता। दुलहिन लीपि चौक बैठाए निरभय पद परभाता। भातहि उलटि बरातहि खायो भली बनी कुशलाता।—कबीर (शब्द०)। (ख) पहिले भात परोसे आना। जनहु सुबास कपूर बसाना।—सूर (शब्द०) (ग) नंद बुलावत है गोपाल। आवहु बेगि बलैया लेहौं सुंदर नैन बिसाल। परसेउ थार धरेउ मग चितवत वेगि चलो तुम लाल। भात सिरात तात दुख पावत क्यों न चलो तत्काल।—सूर (शब्द०)। २. विवाह की एक रसम।

विशेष—यह विवाह के दूसरे वा तीसरे दिन होती है। इसमें समधी को भात खाने के लिये कन्या के घर बुलाया जाता और उसे भात खिलाया जाता है। भात खाने के लिये उसे कुछ द्रव्य आदि भी भेंट किया जाता है। इसमें दोनों समधी माडव में चौक पर बैठकर भात खाते हैं।

भात[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभात। सवेरा। २. दीप्ति। प्रकाश।

भात[3]—वि० चमकीला। प्रकाशयुक्त। व्यक्त [को०]।

भाता—संज्ञा पुं० [सं० भक्त—भत्त] उपज का वह भाग जो हलवाहे को राशि में से खलिहान में मिलता है।

विशेष—पूर्व काल में जब मासिक वेतन या दैनिक मजदूरी देने की प्रथा नहीं थी, तब हल जोतनेवाले को अन्न की उपज का छठा भाग दिया जाता था, और इसके बदले में वह वर्ष भर सपरिवार खेती के सब काम काज करता था। यह प्रथा अब भी नेपाल की तराई में कहीं कहीं है।

भाति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शोभा। कांति। उ०—मनोहर है नैनन की भाति। मानहु दूरि करत बल अपने शरद कमल की भाति।—सूर (शब्द०)। २. प्रतीति या ज्ञान (को०)।

भाति[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भाँति'।

भानु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

भाथ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भस्त्रा, पा० भत्था] धौंकनी। उ०—(क) नृप चल्यो बान भरि भाथ में। लिए सरासन हाथ मे।—गोपाल (शब्द०)। (ख) इनके बिनु जे जीवत जग में ते सब श्वास लेत जिमि भाथ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५३।

भाथा—संज्ञा पुं० [सं० भस्त्रा प्रा० भत्था] १. चमड़े की बनी हुई लंबी थैली जिसमे तीर भरकर तीर चलानेवाले पीठ पर वा कटि में बाँधते थे। तरकश। तूणीर। उ०—पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा।—तुलसी (शब्द०)। २. बड़ी भाथी।

भाथी—संज्ञा स्त्री० [सं० भस्त्री, पा० भत्थी] १. चमड़े की धौंकनी जिसे लगाकर लोहार भट्ठी की आग सुलगाते हैं। धौंकनी। उ०—परम प्रभाती पर लोह दहै भाथी सम, एहो बने हाथी साथी उग्रसेन सेन के।—गोपाल (शब्द०)।

विशेष—यह चमड़े की होती है जो फैलती और सिकुड़ती है। जब इसमें वायु भरना होता है, तो इसे खींचकर फैलाते हैं और फिर दबाकर इसमें से वायु निकालते हैं। वायु एक छोटे छेद वा नली से होकर भट्ठी में पहुँचती है जिससे आग सुलगती है।

भादों—संज्ञा पुं० [सं० भाद्रपद, भादअअ, भादअउँ, भादों पा० भद्दो] एक महीने का नाम जो वर्षा ऋतु में पड़ता है। इस महीने की पूर्णमासी के दिन चंद्रमा भाद्रपदा नक्षत्र में रहता है। सावन के बाद और कुआर के पहले का महीना। उ०—बरषा ऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास। राम नाम वर बरन जुग सावन भादों मास।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—भाद्र। भाद्रपद। प्रौष्ठपद। नभस्य।

भादौं॒—संज्ञा पुं० [सं० भाद्र] दे० 'भादों'।

भाद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक महीने का नाम जो वर्षाऋतु में सावन और कुआर के बीच में पड़ता है। इस महीने की पूर्णमासी के दिन चंद्रमा भाद्रपदा नक्षत्र में रहता है। वैदिक काल में इस महीने का नाम नभस्य था। इसे प्रोष्ठपद भी कहते हैं। भाद्रपद। भादों।

भाद्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाद्र। भादों। २. बृहस्पति के एक वर्ष का नाम जब वह पूर्व भाद्रपदा वा उत्तर भाद्रपदा में उदय होता है।

भाद्रपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नक्षत्रपुंज का नाम।

विशेष—इसके दो भाग किए गए हैं—पूर्वा भाद्रपदा और उत्तरा भाद्रपदा। पूर्वा भाद्रपदा यमल आकृति की है। यह उत्तर ओर अक्षांश से २४° पर है और इसमें दो तारे हैं। उत्तरा भाद्रपदा की आकृति शय्या के आकार की है और यह अक्षांश से ३६° उत्तर ओर है। इसमें भी दो तारे हैं। पूर्वा भाद्रपदा का देवता अजएकपात् और उत्तरा भाद्रपदा का अहिर्बुध्न्य है। पहली कुंभ राशि में और दूसरी मीन में मानी जाती है।

भाद्रपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों महीने की पूर्णिमा। भाद्री [को०]।

भाद्रमातुर—संज्ञा पुं० [सं०] भद्रमाता अर्थात् सती का पुत्र। वह जिसकी माता सती हो।

भाद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भाद्रपदी'।

भान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। रोशनी। २. दीप्ति। चमक। ३. ज्ञान। ४. प्रतीति। आभास। उ०—बाटिका उजारि अक्ष धारि मारि जारि गढ़ भानुकुल भानु को प्रताप भानु भान सो—तुलसी (शब्द०)।

भान[2]—संज्ञा पुं० [सं० भानु] दे० 'भानु'।

भान[3]—संज्ञा पुं० [देश०] तुंग नामक वृक्ष। दे० 'तुंग'।

भानजा—संज्ञा पुं० [हिं० बहिन+जा] [स्त्री० भानजी] बहिन का लड़का। उ०—यह कन्या तेरी भानजी है। इसे मत मार।—लल्लू (शब्द०)।

भानना॒[1]—क्रि० स० [सं० भञ्जन, मि० पं० भन्नना] १. तोड़ना। भंग करना। उ०—(क) तीन लोक महँ जे भट मानी। सब कै सकति संभु धनु भानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आपुहि करता आपुहि धरता आपु बनावत आपुहि भानै। ऐसो सूरदास के स्वामी ते गोपिन के हाथ बिकाने।—सूर (शब्द०)। (ग) सहसु बाहु अति बली बखान्यो। परशुराम ताको बल भान्यो।—लल्लू (शब्द०)। २. नष्ट करना। नाश करना। मिटाना। ध्वंस करना। उ०—(क) आरत दीन अनाथन को हित मानत लौकिक कानि हौं। है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत भय भानिहौं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भाने मठ कूप बाय सरवर को पानी। गौरीकंत पूजत जहँ नवतन दल आनी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जै जै जै जगदीस तूं तूं समर्थ साँई। सकल भवन भानै घड़ै दूजा को नाहीं।—दादू०, पृ० ५५०। ३. हटाना। दूर करना। उ०—(क) छोटा एक भए कैसेहु करि कौन कौन करवर विधि भानी। कर्म कर्म करि मयजो उबरयो ताको मारि पितर दे पानी।—सूर (शब्द०)। (ख) नाक मे पिनाक मिसि बामता बिलोकि राम रोको परलोक लोक भारी भ्रम भानिकै।—तुलसी (शब्द०)। (ग) मों सों मिलवति चातुरी तू नहिं भानत भेद। कहे देत यह प्रगट ही प्रगटयो पूस प्रस्वेद।—बिहारी (शब्द०)। ४. काटना। उ०—(क) अति ही भई अवज्ञा जानी चक्र सुदर्शन मान्यो। करि निज भाव एक कुशा तनु में क्षणक दुष्ट शिर भान्यो।—सूर (शब्द)। (ख) अजहूँ सिय सौंपु नतरु बीस भुजा भानै। रघुपति यह पैज करी भूतल धरि प्रानै।—सूर (शब्द०)।

भानना[2]—क्रि० स० [सं० भान (=प्रतीति), हिं० भान+ना (प्रत्य०)] समझना। अनुमान करना। जानना। उ०—भूत प्रपंची कृत औ कारज, इतनी सूछम सृष्टि पछान। पंचीकृत भूतन ते उपजेउ थूल पसारो सारो मान। कारण सूछम थूल देह अरु, पंचकोश इनहीं में जान। करि विवेक लखि आतम न्यारो, मूँज इषीका तें ज्यों भान।—निश्चलदास (शब्द०)।

भानमती—संज्ञा स्त्री० [सं० भानुमती] वह स्त्री जो जादू का खेल करती हो। जादू का खेल करनेवाली स्त्री। जादूगरनी। उ०—जब वह भानमती का पेटारा खोल देता है तब सब कौतुक प्रगट होने लगते हैं।—कबीर मं०, पृ० ३३८।

मुहा०—भानमती का कुनबा = बेमेल उपादानों से बनी वस्तु। भानमती का पिटारा = जिसमें तरह तरह की चीजें हों।

भानव—वि० [सं०] भानु संबंधी। सूर्य संबंधी [को०]।

भानवी—संज्ञा स्त्री० [सं० भानवीया] जमुना। उ०—देवी कोउ दानवी न मान हान होइ ऐसी, भानवी नहाव भाव भारती पठाई है।—केशव। (शब्द०)।

भानवीय[1]—वि० [सं०] भानु संबंधी।

भानवीय[2]—संज्ञा पुं० दाहिनी आँख।

भाना॒†[1]—क्रि० अ० [सं० भान (= ज्ञान)] १. जान पड़ना।

मालुम होना। उ०—मैं घर को ठाढी हौ तिहारो को मौं सर कटे श्रान। मोई लेहौं जे मों मन भावै नंद महर की श्रान। —सूर (शब्द०)। २. अच्छा लगना। रुचना। पसंद आना। उ०—(क) महमद बाजी प्रेम की ज्यो भावै त्यों खेल। तेलहि फूलहि संग ज्यो होय फुलायल तेल।—जायसी (शब्द०)। (ख) गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई —तुलसी (शब्द०)। (ग) भावै सो करहु तो उदास भाव प्राणनाथ साथ लै चलहु कैसे लोक लाज बहनो। —केशव (शब्द०)। ३. शोभा देना। सोहना। फबना। उ०—तुम राजा चाहौ सुख पावा। जोगिहि भोग करत नहिं भावा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

भाना[2]—क्रि० स० [सं० भा (= प्रकाश)] चमकाना। उ०—कनकदंड दुई भुजा कलाई। जानहुँ फेरि कुंदेरे भाई।—जायसी (शब्द०)।

भानु[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य।

यौ०—भानुजा। भानुतनया। भानुदिन। भानुभू। भानवार। आदि।

२. विष्णु। ३. किरण। ४. मंदार। श्रर्क। ५. एक देवगंधर्व का नाम। ६. कृष्ण के एक पुत्र का नाम। ७. जैन ग्रंथों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के पंद्रहवें अर्हत् के पिता का नाम। ८. राजा। ९. उत्तम मन्वंतर के एक देवता का नाम। १० प्रभा। प्रकाश (को०)। ११. शिव (को०)।

भानु[2]—संज्ञा स्त्री० [स०] १. दक्ष की एक कन्या का नाम। पुराणानुसार यह धर्म वा मनु से व्याही थी और इससे भानु वा आदित्य का जन्म हुआ था। २. कृष्ण की एक कन्या का नाम। ३. सुंदर स्त्री।

भानुकंप—संज्ञा पुं० [स० भानुकम्प] ग्रहणादि के समय सूर्य के बिंब का काँपना। फलित ज्योतिष मे यह अमंगलसूचक माना गया है।

भानुकेशर, भानुकेसर—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य।

भानुज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भानुजा] १. सूर्यपुत्र यम। २. शनैश्चर। ३. कर्ण।

भानुजा—संज्ञा स्त्री० [स०] यमुना।

भानुतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

भानुतनूजा—संज्ञा स्त्री० [स०] यमुना।

भानुदिन—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार।

भानुदेव—संज्ञा पु० [सं०] १ सूर्य। २. पांचाल देश के एक राजकुमार का नाम जो महाभारत में पांडवों की ओर से लड़कर कर्ण के हाथ मारा गया था।

भानुपाक—संज्ञा पु० [सं०] औषध आदि को सूर्य की गर्मी या धूप की सहायता से पकाने की क्रिया।

भानुप्रताप—संज्ञा पु० [सं०] रामायण के अनुसार एक राजा का नाम। यह कैकय देश के राजा सत्यकेतु का पुत्र था।

विशेष—तुलसीकृत रामायण में इसकी कथा इस प्रकार दी है—अपने पिता द्वारा राज प्राप्त करने के बाद एक दिन प्रतापभानु शिकार खेलने गया। इसे जंगल में एक सुअर देख पड़ा, इसने घोड़े को उसके पीछे डाल दिया। घने जंगल में जाकर सुअर कही छिप गया और राजा जंगल मे भटक गया। उस जंगल में उसे एक तपस्वी का आश्रम मिला। वह तपस्वी राजा का एक शत्रु था जिसका राज्य इसने जीत लिया था। राजा प्यासा था और उसने तपस्वी को पहचाना न था। उससे उसने पानी माँगा। तपस्वी ने एक तालाब बतला दिया। राजा ने वहाँ जाकर जल पीकर अपना श्रम मिटाया। रात हो रही थी, इससे तपस्वी राजा को अपने आश्रम मे ले गया। रात के समय दोनों में बातचीत हुई। तपस्वी ने कपट से राजा को अपनी मीठी मीठी बातों से वशीभूत कर लिया। भानुप्रताप उसकी बातें सुनकर उसपर विश्वास करके रात को वहीं आश्रम में सो रहा। तपस्वी ने अपने मित्र कालकेतु राक्षस को बुलाया। इसी ने सूकर बनकर राजा को भुलाया था। वह राजा को क्षणभर में उठाकर उसकी राजधानी में पहुँचा आया और उसके घोड़े को घुड़शाला मे बाँध आया। साथ ही उस राजा के पुरोहित को भी उठाकर एक पर्वत की गुफा में बंद कर आया और पुरोहित का रूप धरकर उसके स्थान पर लेट रहा। सवेरे जब राजा जागा तो उसे मुनि पर विशेष श्रद्धा हुई। पुरोहित को बुलाकर राजा ने तीसरे दिन भोजन बनाने की आज्ञा दी और ब्राह्मणों को भोजन का निमंत्रण दिया। कपटी पुरोहित ने अनेक मांसो के साथ मनुष्य (ब्राह्मण) का मांस भी पकाया। जब ब्राह्मण लोग भोजन करने उठे राजा परोसने लगा तब इसी बीच में आकाशवाणी हुई कि तुम लोग यह अन्न मत खाओ, इसमें मनुष्य का मास है। ब्राह्मण लोग आकाशवाणी सुनकर उठ गए और राजा को शाप दिया कि तुम परिवार सहित राक्षस हो। कहते हैं, वही राजा भानुप्रताप मरने पर रावण हुआ। (देखिए तुलसीकृत रामायण, बालकांड, दोहा १५३ से १७६)।

भानुफला—संज्ञा स्त्री० [स०] केला।—उ०— रंभा मोचा गजबसा भानुफला सुकुमार।—अनेकार्थ०, पृ० ३७।

भानुभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री। यमुना।

भानुमत्[1]—वि० [सं०] १. दीप्तियुक्त। प्रकाशमान्। २. सुंदर।

भानुमत्[2]—संज्ञा पु० १. सूर्य। २. कलिंग के एक राजा का नाम। ३. कृष्ण के एक पुत्र का नाम। ४. पुराणानुसार केशिध्वज के एक पुत्र का नाम। ५. भर्ग का एक नाम।

भानुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विक्रमादित्य की रानी का नाम। यह राजा भोज की कन्या थी। यह अत्यंत रूपवती और इंद्रजाल विद्या की जानकार थी। २. अंगिरस की पहली कन्या का नाम। ३. दुर्योधन की स्त्री का नाम। ४. सगर की एक स्त्री का नाम। ५. कृतवीर्य की कन्या का नाम जो अहंयाति से व्याही थी। ६. गंगा। ७. जादूगरनी।

भानुमान्[1]—वि० [सं० भानुमत्] दे० 'भानुमत्'।

भानुमान्[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोशल देश के एक राजा का नाम। यह दशरथ के श्वसुर थे। २. दे० भानुमत्'।

भानुमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु पुराण के अनुसार चंद्रगिरि के राजा के एक पुत्र का नाम। २. एक प्राचीन राजा का नाम। यह पुष्यमित्र के बाद गद्दी पर बैठा था।

भानुमुखी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी।

भानुवार—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार। एतवार।

भानुसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम। २. मनु। ३. शनैश्चर। ४. कर्ण।

भानुसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

भानुसेन—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण के एक पुत्र का नाम।

भानेमि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

भाप—संज्ञा स्त्री० [सं० वाष्प या वप्प] १. पानी के बहुत छोटे छोटे कण जो उसके खौलने की दशा में ऊपर को उठते दिखाई पड़ते हैं और ठढक पाकर कुहरे आदि का रूप धारण करते हैं। वाष्प।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

मुहा०—भाप लेना = औषधोपचार के पानी में कोई औषध आदि उबालकर उसके वाष्प से किसी पीड़ित अंग को सेकना। बफारा लेना।

२. भौतिक शास्त्रानुसार घनीभूत वा द्रवीभूत पदार्थों की वह अवस्था जो उनके पर्याप्त ताप पाने पर प्राप्त होती है।

विशेष—ताप के कारण ही घनीभूत वा ठोस पदार्थ द्रव होता तथा द्रव पदार्थ भाप का रूप धारण करता है। यों तो भाप और वायुभूत वा अतिवाष्प (गैस) एक ही प्रकार के होते हैं। पर भाप सामान्य सर्दी और दबाव पाकर द्रव तथा ठोस हो जाती है और प्रायः वे पदार्थ जिनकी वह भाप है, द्रव वा ठोस रूप में उपलब्ध होते हैं। पर गैस साधारण सर्दी और दबाव पाने पर भी अपनी अवस्था नहीं बदलती। भाप दो प्रकार की होती है—एक आर्द्र, दूसरी अनार्द्र। आर्द्र भाप वह है जो अधिक ठढक पाकर गाढ़ी हो गई हो और अति सूक्ष्म बूँदों के रूप में, कहीं कुहरे, कहीं बादल आदि के रूप में दिखाई पड़े। अनार्द्र भाप अत्यंत सूक्ष्म और गैस के समान अगोचर पदार्थ है जो वायुमंडल में सब जगह अंशांशि रूप में न्यूनाधिक फैली हुई है। यही जब अधिक दबाव वा ठढक पाती है, तब आर्द्र भाप बन जाती है।

मुहा०—भाप भरना = चिड़ियों का अपने बच्चों के मुँह में मुँह डालकर फूँकना। (चिड़ियाँ अपने बच्चों को अंडे से निकलने पर दो तीन दिन तक उनके मुँह में दाना देने के पहले फूँकती हैं)।

भापना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भाँपना'।

भाफ—संज्ञा पुं० [सं० वाष्प] दे० 'भाप'।

भाबर—संज्ञा पुं० [सं० वप्र] एक घास का नाम जो हिमालय, राजपूताने, मध्य भारत, दक्षिण आदि में पहाड़ी प्रदेशों में होती है और रस्सी बनाने के काम आती है। अगिया। बनकस।

भाभर—संज्ञा पुं० [सं० वप्र] १. वह जंगल जो पहाड़ों के नीचे और तराई के बीच में होते हैं। यह प्रायः साखू आदि के होते हैं। २. एक प्रकार की घास जिसकी रस्सी बटी जाती है। यह पर्वतों पर होती है। इसे बनकस, बभनी, बबरी, बबई, आदि कहते हैं।

भाभरा(पु)†—वि० [हिं० भा + भरना] लाल। रक्ताभ। उ०—जाइस जवारे जूझा भभरे भरत भार, धाकरे धवल धाए मानत अमान को।—सूदन (शब्द०)।

भाभरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. गरम राख। पलका। २. कहारों की बोली में धूल जो राह में होती है।

विशेष—जब राह में इतनी धूल होती है कि उसमें पैर धँस जायँ तो कहार अपने साथियों को 'भाभरी' कहकर सचेत करते हैं।

भाभी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाई] बड़े भाई की स्त्री। भौजाई। उ०—(क) खइबे को कछु भाभी दीन्हों श्रीपति श्रीमुख बोले। फेंट ऊपर तें अंजुल तदुल बल करि हरिजू खोले।—सूर (शब्द०)। (ख) दैहौं सकों सिर तो कहूँ भाभी पै ऊख के खेत न देखन जैहौं।—(शब्द०)।

भाभी‡[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० भावी] दे० 'भावी'। उ०—रावन अस तेंतीस कोटि सब, एकछत राज करे। मिरतक बाँधि कूप में डारे भाभी सोच मरे।—घट०, पृ० ३६५।

भाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रोध। २. प्रकाश। दीप्ति। ३ सूर्य। ४. बहनोई। ५. मदार। अर्क (को०)। ६. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण और अंत में तीन सगण होवे हैं (भ म स स स)।

भाम[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० भामा] स्त्री। उ०—आनि पर भाम विधि बाम तेहि राम सो सकत संग्राम दसकंध काँधो।—तुलसी (शब्द०)। २. कृष्ण की पत्नी सत्यभामा का एक नाम (को०)।

भामक—संज्ञा पुं० [सं०] बहनोई।

भामता(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भावता] भावता। प्रियतम।

भामता[2]—संज्ञा स्त्री० भावती। प्रियतमा।

भामतीय—संज्ञा पुं० [हिं० भ्रमना] एक जाति का नाम।

विशेष—इस जाति के लोग दक्षिण भारत में घूमा करते हैं और चोरी और ठगी से जीविका का निर्वाह करते हैं।

भामनी[1]—वि० [सं०] १. प्रकाशक। २. मालिक।

भामनी[2]—संज्ञा पुं० परमेश्वर।

भामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। उ०—वह सुधि आवत तोहि सुदामा। जब हम तुम बन गए, लकरियन पठए गुरु की भामा।—सूर (शब्द०)। २. क्रुद्ध स्त्री।

भामिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भामिनी] दे० 'भामिनी'।

भामिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भामिनी] दे० 'भामिनी'।

भामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रोध करनेवाली स्त्री। २. स्त्री। औरत। उ०—सवँरई सो गुराई मिले छवि फबति सुनि समुझि भामिनी प्रीतिपन पागी।—घनानंद, पृ० ४००।

भामी[१]—वि० [सं० भामिन्] १. क्रुद्ध। नाराज। २. सुंदर (को०)। ३. दीप्त। प्रदीप्त (को०)।

भामी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज स्त्री।

भाय[१]—संज्ञा पुं० [हिं० भाई] भाई। उ०—सेमर केरा तूमरा सिहुले बैठा छाय। चोंच चहोरे सिर धुनै यह वाही को भाय।—कबीर (शब्द०)।

भाय[२]—संज्ञा पुं० [सं० भाव] १. अंतःकरण की वृत्ति। भाव। उ०—(क) भाय कुभाय अनख आलस हू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गोविंद प्रीति सबन की मानत। जेहि जेहि भाय करी जिन सेवा अंतरगत की जानत।—सूर (शब्द०)। (ग) चितवनि भोरे भाय की गोरे मुँह मुसकानि। लगनि लटकि आली गरे चित खटकति नित आनि।—बिहारी (शब्द०)। २. परिमाण। उ०—भक्ति द्वार है साँकरा राई दसवें भाय। मन तौ मयगल ह्वै रह्यो कैसे होय सहाय।—कबीर (शब्द०)। ३. दर। भाव। उ०—भले बुरे जहँ एक से तहाँ न बसिए जाय। ज्यों अन्यायपुर में बिके खर गुर एकै भाय।—लल्लू (शब्द०)। ४. भाँति। ढग।—उ०—(क) लखि पिय बिनती रिस भरी चितवै चंचल गाय। तब खंजन से दगन में लाली अति छवि छाय।—मतिराम (शब्द०)। (ख) सोहत अंग सुभाय के भूषण, भौर के भाय लसैं लट छूटी।—नाथ (शब्द०)। (ग) ससि लखि जात विदित कहो जाय कमल कुम्हिलाय। यह ससि कुम्हिलानो अहो कमलहि लखि केहि भाय।—श्रृंगार स० (शब्द०)।

भायप—संज्ञा पुं० [हिं० भाई+प=पन (प्रत्य०)] भाईपन। भ्रातृभाव। भाईचारा। उ०—भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू।—तुलसी (शब्द०)।

भाया—वि० [हिं० भाना (=रुचना)] जो अच्छा जान पड़े। प्रिय। प्यारा। उ०—(क) शुक्र ताहि पढ़ि मंत्र जियायो। भयो तासु तनया को भायो।—सूर (शब्द०)। (ख) हमतो इतने ही सचु पायो। रजक धेनु गज केस मारि कै कियो आपनो भायो। महाराज होइ मातु पिता मिलि तऊ न व्रज बिसरायो।—सूर (शब्द०)। (ग) हमरी महिमा देखन आयो। होउ सबै अब वाको भायो।—नंद० ग्रं०, पृ० २६५।

भारंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० भारङ्गी] एक प्रकार का पौधा। बम्हनेटी। भृंगजा। असवरग।

विशेष—यह पौधा मनुष्य के बराबर ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ महुए की पत्तियों से मिलती हुई, गुदार और नरम होती हैं और लोग उनका साग बनाकर खाते हैं। इसका फूल सफेद होता है। इसकी जड़, डंठल, पत्ती और फल सब ग्रोषध के काम आते हैं। इसके फूल को 'गुल असवर्ग' कहते हैं। इसकी पत्तियों का प्रयोग ज्वर, दाह, हिचकी और त्रिदोष में होता है। वैद्यक मे इसके मूल का गुण गरम, रुचिकर, दीपन लिखा है और स्वाद कड़वा और कसेला, चरपरा और रूखा बतलाया है जिसका प्रयोग ज्वर, श्वास, खाँसी और गुल्मादि मे होता है।

पर्या०—असबरग। ब्राह्मणी। पद्मा। भृंगजा। अंगारवल्लरी। ब्राह्मयष्टी। कंजी। दूर्वा।

भारंड—संज्ञा पुं० [सं० भारण्ड] एक पक्षी (को०)।

भार[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक परिमाण जो बीस पसेरी का होता है। २. विष्णु। ३. बोझ।

क्रि० प्र०—उठाना।—ढोना।—रखना।—लादना।

४. वह बोझ जिसे बहँगी के दोनों पल्लों पर रखकर कंधे पर उठाकर ले जाते हैं। उ०—मीन पीन पाठीन पुराना। भरि भरि भार कहाँरन आना।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठाना।—काँधना।—ढोना।—भरना।

५. सँभाल। रक्षा। उ०—पर घर गोपन ते कहेउ कर भार जुरावहु। सुर नृपति के द्वार पर उठि प्रात चलावहु।—सुर (शब्द०)। ६. किसी कर्तव्य के पालन का उत्तरदायित्व। जिम्मेदारी।

मुहा०—किसी का भार उठाना=किसी का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना। भार उतारना=(१) कर्तव्य पूरा करना। (२) ज्यों त्यों किसी काम को पूरा करना। बला टालना। बेगार टालना। भार देना व डालना=बोझ रखना। बोझ डालना। उ०—मंजुल मंजरी पै हो मलिंद विचारि के भार सम्हारि कै दीजिए।—प्रताप (शब्द०)।

७. ढोल या नगाड़ा बजाने की एक पद्धति (को०)। ८. बहँगी जिसपर बोझ उठाते है (को०)। ९. कठिन काम (को०)। १०. आश्रय। सहारा। बल। उ०—दोहूँ खंभ टेक सब मही। दुहुं के भार सृष्टि सभ रही—जायसी (शब्द०)।

भार[२]—संज्ञा स० [हिं० भाड़] दे० 'भाड़'।

भारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भार नाम की तौल। २. भार। बोझ (को०)।

भारकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाई। धाई।

भारक्षम—वि० [सं०] बोझ या जिम्मेदारी वहन करने में समर्थ (को०)।

भारग—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वतर। बेसर। खच्चर (को०)।

भारजाⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० भार्या] दे० 'भार्या'। उ०—जानै पर कि गुन सबै महत पुरुष को संग। विद्या अपनी भारजा तिनमें मन को रंग।—व्रज० ग्रं०, पृ० ७७।

भारजीवी—संज्ञा पुं० [सं० भारजीविन्] मोटिया। भारवाहक (को०)।

भारत—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत का पूर्वरूप वा मूल जो २४००० श्लोकों का था। वि० दे० 'महाभारत'। २. एक भूभाग (देश=वर्ष) का नाम। यह पुराणानुसार जंबु द्वीप के नौ वर्षों के अंतर्गत है। वि० दे० 'भारतवर्ष'।

यौ०—भारतखंड। भारतजात। भारतमंडल। भारतमाता। भारतरत्न। भारतवर्ष। भारतवासी। भारतसंतान। भारतसावित्री।

३. नट। ४. भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र (को०)। ५. अग्नि। ६. सूर्य का एक नाम जब वे मेरु के दक्षिण होते हैं। दक्षिणायन सूर्य (को०)। ७. भरत गोत्र में उत्पन्न पुरुष। ८. लंबा चौड़ा विवरण। कथा। उ०—गोकुल के कुल के गली के गोप गायन के जौ लगि कछू को कछू भारत भनै नहीं।—पद्माकर (शब्द०)। ९. घोर युद्ध। घमासान लड़ाई। उ०—घरी एक भारत भा भा असवारन्ह मेल। जूझि कुवँर सब निवटे गोरा रहा अकेल।—जायसी (शब्द०)।

भारतखंड—संज्ञा पुं० [सं० भारतखण्ड] दे० 'भारतवर्ष'।

भारतजात—वि० [सं०] भारतवर्ष में उत्पन्न।

भारतमंडल—संज्ञा पुं० [सं० भारतमण्डल] दे० 'भारतवर्ष' [को०]।

भारतरत्न—संज्ञा पुं० [सं० भारत+रत्न] स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा दिया जानेवाला एक सर्वोच्च सम्मान।

भारतवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जंबू द्वीप के अंतर्गत नौ वर्षों या खंडों में से एक जो हिमालय के दक्षिण और गंगोत्तरी से लेकर कन्याकुमारी तक और सिंधु नदी से ब्रह्मपुत्र तक फैला हुआ है। आर्यावर्त। हिंदुस्तान।

विशेष—ब्रह्मपुराण में इसे भरतद्वीप लिखा है और अंग, यव, मलय, शंख, कुश और वाराह आदि द्वीपों को इसका उपद्वीप लिखा है जिन्हें अब अनाम, जावा, मलाया, आस्ट्रेलिया आदि कहते हैं और जो भारतीय द्वीपपुंज के अंतर्गत माने जाते हैं। ब्रह्मांडपुराण में इसके इंद्रद्वीप, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व और वरुण ये नौ विभाग बतलाए गए हैं और लिखा है कि प्रजा का भरण पोषण करने के कारण मनु को भरत कहते हैं। उन्हीं भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। कुछ लोगों का मत है कि दुष्यंत के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुराणों मे इस संबंध में भिन्न-भिन्न बातें दी हैं।

भारतवर्षीय—वि० [सं०] भारत का। भारत संबंधी।

भारतसावित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक स्तोत्र या स्तुति [को०]।

भारतानंद—संज्ञा पुं० [सं० भारतानन्द] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद का नाम। (संगीत)।

भारतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० भारती] १ सरस्वती। २. वाणी। उ०—मति भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमान सबै।—तुलसी (शब्द०)।

भारती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वचन। वाणी। २. सरस्वती। ३. एक पक्षी का नाम। ४. एक वृत्ति का नाम। इसके द्वारा रौद्र और बीभत्स रस का वर्णन किया जाता है। यह साधु वा संस्कृत भाषा में होती है। ५. ब्राह्मी। ६. संन्यासियों के दस नामों से एक। ७. एक नदी का नाम। ८. नाट्य कला (को०)। ९. मंडन मिश्र की पत्नी का नाम जिसने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था।

भारतीकरण—संज्ञा पुं० [सं० भारतीय+करण] किसी वस्तु या संस्था को भारतीय बनाना अर्थात् उसमें भारतीय तत्वों या भारतवासियों का आधिक्य करना। जैसे, सेना का भारतीकरण।

भारती तीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम।

भारतीय—वि० [सं०] १. भारत संबंधी। भारत का। जैसे, भारतीय चित्रकला, भारतीय दर्शन आदि। २. भारत का रहनेवाला। भारत का निवासी।

यौ०—भारतीयकरण = दे० 'भारतीकरण'।

भारतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वास्तु विद्या के अनुसार स्तंभ के नौ भागों में से पाँचवाँ भाग जो बीच मे होता है।

भारतेंदु—संज्ञा पुं० [सं० भारतेन्दु] १. भारतवर्ष का चंद्रमा। २. हिंदी गद्य के प्रवर्तक हरिश्चंद्र जी (संवत् १९०७-१९४१) को उनकी विविध रचनाओं और हिंदीसेवा पर जनता द्वारा संमानार्थ प्रदत्त उपाधि जो कालांतर में उनके नाम का पर्याय हो गई।

भारथⓅ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भारत] १. दे० 'भारत'। २. युद्ध। संग्राम। उ०—भारथ होय जूझ जो ओधा। होहिं सहाय आय सब जोधा।—जायसी (शब्द०)। ३. अर्जुन का एक संबोधन।

भरथ[2]—संज्ञा [सं०] भारद्वाज नामक पक्षी। भरदूल [को०]।

भारथी—संज्ञा पुं० [सं० भारत] योद्धा। सिपाही। उ०—भयउ अपूर्व सीस कढ़ कोपी। महा भारथी नाउँ अलोपी।—जायसी (शब्द०)।

भारथ्थⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० भारत] लड़ाई। युद्ध। संघर्ष। उ०—प्रिय ए, ऊँमर सूमरउ, करिस्यइ थाँ भारथ्थ।—ढोला०, दू० ६३६।

भारदंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० भारदण्ड] १. एक प्रकार का साम। २. भारयष्टि। बहँगी।

भारदंड[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भार+दंड] एक प्रकार का दंड। एक प्रकार की कसरत।

विशेष—इसमें दंड करनेवाला साधारण दंड करते समय अपनी पीठ पर एक दूसरे आदमी को बैठा लेता है। वह पुरुष उसके पैरों की नली पर पाँव जमाकर हाथों से उसकी कमर की करधनी या बंधन पकड़कर झुका रहता है और दंड करनेवाला उसका बोझ सँभाले हुए साधारण रीति से दंड करता जाता है।

भारद्वाज—संज्ञा पुं० [सं०] १. भरद्वाज के कुल में उत्पन्न पुरुष। २. द्रोणाचार्य। ३. मंगल ग्रह। ४. भरदूल नामक पक्षी। उ०—भारद्वाज सुपर्णी उभयं मुख उदरं एक।—पृ० रा०, भा० २, पृ० ५१६। ५. बृहस्पति के एक पुत्र का नाम। ६. अगस्त्य ऋषि (को०)। ७. एक देश का नाम। ८. हड्डी। ९. एक ऋषि का नाम जिनका रचा हुआ श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र है। १०. कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट एक ग्रंथकार जिन्होंने अर्थशास्त्र पर ग्रंथ लिखा था (को०)।

भारद्वाजकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारद्वाज पक्षी । भरदूल [को०] ।

भारद्वाजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी का नाम । २. जंगली कपास की झाड़ [को०] ।

भारना(पु)—क्रि० स० [हिं० भार] १. बोझ लादना । भार डालना । बोझना । लादना । २. दबाना । भार देना । उ०—आपुन तरि तरि औरन तारत । असम अचेत प्रगट पखान प्रगट पानी मे वनचर डारत । इहि बिधि उपलै सुतरु पातु ज्यो तदपि सेन अति भारत । बूड़ि न सकत, सेतु, रचना रचि राम प्रताप बिचारत ।—सूर (शब्द०) ।

भारभारी—वि० [सं० भारभारिन्] बोझ उठानेवाला । बोझ ढोनेवाला ।

भारभूत—वि० [सं०] बोझ रूप । कष्टप्रद । उ०—यह पल्ला यह पट यह अचल भारभूत हो जाएँगे सब ।—श्वासि, पृ० ८ ।

भारभृत्—वि० [सं०] भार धारण करनेवाला । बोझ ढोवेवाला ।

भारय—संज्ञा पुं० [सं०] भारद्वाज नामक पक्षी । भरदूल ।

भारयष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] बहँगी ।

भारव—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की रस्सी । ज्या ।

भारवाह—वि० [सं०] १. भार ले जानेवाला । २. बहँगी ढोनेवाला ।

भारवाहक[१]—वि० [सं०] बोझ ढोनेवाला ।

भारवाहक[२]—संज्ञा पुं० मोटिया ।

भारवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोझ ढोने की क्रिया या भाव । २. गाड़ी जिसपर सामान लादा जाय (को०) । ३. लद्दू पशु (को०) ।

भारवाहिक[१]—वि० [सं०] भारवाहक । भार ढोनेवाला ।

भारवाहिक[२]—संज्ञा पुं० मोटिया । मजदूर ।

भारवाही[१]—वि० [सं० भारवाहिन्] [स्त्री० भारवाहिनी] भारवाह । बोझ ढोनेवाला । उ०—आकर्षण विहीन विद्युत्कण बने भारवाही थे भृत्य ।—कामायनी, पृ० २० ।

भारवाही[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली ।

भारवि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन कवि जो किरातार्जुनीय नामक महाकाव्य के रचयिता थे ।

विशेष—भारवि के जन्म और निवासस्थान आदि के संबंध में अभी तक कोई पता नही लगा । कहते हैं, ये अपने गुरु की गौएँ लेकर हिमालय की तराई मे चराने जाया करते थे वहीं प्राकृतिक शोभा देखकर इनमें कविता करने की स्फूर्ति हुई थी ।

भारवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी (को०) ।

भारशिव—संज्ञा पुं० [सं० भार + शिव] भारतवर्ष का एक प्राचीन राजवंश । उ०—भारशिव नाम इसलिये पडा कि ये शिव के परम भक्त थे और अपनी पीठ पर शिवलिंग का भार वहन करते थे ।—प्रा० भा०, पृ० ३४५ ।

विशेष—चतुर्थ शती के आरंभ मे, कुषाणो से कुछ पूर्व, प्रयाग से बनारस तक भारशिव राजवंश का उल्लेख मिलता है । संभवतः बुंदेलखंड अंचल से इस राजवंश का उदय हुआ । इस राजवंश में भवनाथ तथा वीरसेन आदि प्रमुख शासक हुए हैं । नागवंश के रूप के भी इसका उल्लेख मिलता है । नागपूजक होने के साथ ही ये शिवभक्त थे और शिवभक्ति का भार वहन करने के कारण इनका नाम भारशिव पड़ा । कुछ शिलालेखों मे भी इनका उल्लेख पाया जाता है । इन्होंने काशी में अश्वमेध यज्ञ भी किया था ।

भारसह, भारसाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो भारी बोझ उठाने मे समर्थ हो । २. वह जो अत्यंत मजबूत और शक्तिशाली हो । ३. गदभ । गदहा [को०] ।

भारहर, भारहार—संज्ञा पुं० [सं०] बोझा उठानेवाला । मोटिया । मजदूर ।

भारहारी—संज्ञा पुं० [सं० भारहारिन्] पृथ्वी का भार उतारनेवाले, विष्णु ।

भारा[१]†—वि० [सं० भार] दे० 'भारी' । उ०—(क) रहे तहाँ निसिचर भट भारे । ते सब सुरन्ह समेत सँहारे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जे पद पद्म सदाशिव के धन सिंधु सुता उतरे नहिं टारे । जे पद पद्म परसि अति पावन सुरसरि दरस कटत अघ भारे ।—सूर (शब्द०) ।

भारा[२]—संज्ञा पुं० १. दे० 'भाड़ा' । २. दे० 'भार' ।

भाराक्रांता—वि० [सं० भाराक्रान्त] बोझ से दबा हुआ [को०] ।

भाराक्रांता—संज्ञा स्त्री० [सं० भाराक्रान्ता] एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे न भ न र स और एक लघु और एक गुरु होते हैं और चौथे, छठे तथा सातवें वर्ण पर यति होती है ।

भारावतरण, भारावतारण—संज्ञा पुं० [सं०] बोझ उतरना या उतारना ।

भारावलंबकत्व—संज्ञा पुं० [सं० भारावलम्बकत्व] पदार्थों के परमाणुओं का पारस्परिक आकर्षण ।

विशेष—बहुतेरे पदार्थों के परमाणुओ का परस्पर आकर्षण ऐसा रहता है जो उन पदार्थों को दोनो ओर से खींचने में प्रतिबाधक होता है जिससे वह टूट नही सकते । इसी धर्म को भारावलंबकत्व कहते हैं ।

भारि—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह ।

भारिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] बोझ ढोनेवाला मजदूर ।

भारिक[२]—वि० १. बोझ ढोनेवाला । २. भारी [को०] ।

भारी—वि० [सं० भारिन्, भार + ई] १. जिसमें भार हो । जिसमें अधिक बोझ हो । गुरु । बोझिल । उ०—(क) लपटहिं कोप पटहिं तरवारी । औ गोला ओला जस भारी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भारी कहो तो नहिं डरूँ हलका कहूँ तो झीठ । मैं क्या जानूँ राम को नैना कछू न दीठ ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—पेट भारी होना = पेट मे अपच होना । खाए हुए पदार्थों का ठीक तरह से न पचना । पेर भारी होना = गर्भिणी होना । पेट से होना । सिर भारी होना = सिर मे पीड़ा होना । गला या आवाज भारी होना वा भारी पड़ना = गला पड़ना । गला बैठना । मुँह से ठीक आवाज न निकलना । भारी रहना = (१) नाव का रोकना (मल्लाह) । (२) धीरे चलना (कहार) ।

२. असह्य । कठिन । कराल । भीषण । उ०—(क) भरि भादों दुपहर अति भारी । कैसे भरो रैन अँधियारी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पुनि नर राव कहा करि भारी । बोल्यो सभा बीच व्रतधारी ।—गोपाल (शब्द०) । (ग) गगन निहारि किलकारी भारी. सुनि हनुमान पहिचानि भए सानंद सचेत हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

३. विशाल । बड़ा । बृहत् । महा । उ०—(क) दीरघ आयु भूमिपति भारी । इनमे नाहिं पदमिनी नारी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जपहिं नाम जन आरति भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) जैसे मिटइ मोर भ्रम भारी । कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—बड़ा भारी = बहुत बड़ा । भारी भरकम या भड़कम = बहुत बड़ा और भारी । जिसमे अधिक माल मसाला लगा हो और जो फलतः अधिक मूल्य का हो । बहुमूल्य । जैसे; भारी जोड़ा, भारी गठरी ।

४. अधिक । अत्यत । बहुत । उ०—(क) तू कामिनी क्यौं धीर धरत है यह अचरज मोहिं भारी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१२ । (ख) छोंकर के वृक्ष पर बटुवा झुलाइ दियो, कियो जाय दरशन, सुख भयो भारिये ।—भक्तमाल, पृ० ५१६ । (ग) यह सुनि गुरु बानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुख दानि । ताड़का सँहारी दारुण भारी नारी अतिबल जानि ।—केशव (शब्द०) ।

५. असह्य । दूभर । जैसे,—मेरा ही दम उन्हें भारी है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—लगना ।

६. सूजा हुआ । फूला हुआ । जैसे. मुँह भारी होना ।

७. प्रबल । जैसे,—वह अकेला दस पर भारी है । ८. गंभीर । शांत ।

मुहा०—भारी रहना = चुप रहना । (दलाल) ।

भारीट—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी ।

भारीपन—संज्ञा पुं० [हिं० भारी + पन (प्रत्य०)] १. भारी का भाव । गुरुत्व । २. गरिष्ठता । भारी होना ।

भारुंड—संज्ञा पुं० [सं० भारुण्ड] रामायण के अनुसार एक वन का नाम जो पंजाब में सरस्वती नदी के पास पूर्व मे था ।

भारुंडि—संज्ञा पुं० [सं० भारुण्डि] १. एक प्रकार का साम । (गान) । २. एक ऋषि का नाम जो भारुंडि साम के द्रष्टा थे । ३. एक पक्षी का नाम । पुराणानुसार यह उत्तर कुरु का रहनेवाला है ।

भारुप—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविवाहित वैश्या और वैश्य व्रात्य से उत्पन्न पुत्र । २. शक्ति का उपासक । शक्ति की उपासना करनेवाला [को०] ।

भारू—संज्ञा पुं० [हिं० भारी] धीरे चलने के लिये एक संकेत जिसका व्यवहार कहार करते हैं ।

भारूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म । २. आत्मा [को०] ।

भारोढि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोझ ढोना । भार वहन करना [को०] ।

भारोद्वह¹—वि० [सं०] भार ले जानेवाला ।

भारोद्वह²—संज्ञा पुं० मोटिया । मजदूर ।

भारौही—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारवाहिका [को०] ।

भार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] भर्ग देश का राजा [को०] ।

भार्गव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भृगु के वंश में उत्पन्न पुरुष । २. परशुराम । ३. शुक्राचार्य । ४. एक देश का नाम । यह मार्कंडेय पुराण के अनुसार भारतवर्ष के अंतर्गत पूर्व ओर है । ५. मार्कंडेय । ६ श्योनाक । ७. कुम्हार । ८. नीला भँगरा । ९. हीरा । १०. गज । हाथी । ११. एक उपपुराण का नाम । १२. जमदग्नि । १३. च्यवन । १४. भविष्यवक्ता । दैवज्ञ । ज्योतिषी (को०) । १५. शिव (को०) । १६. धनुर्धर (को०) । १७. एक जाति जो संयुक्त प्रदेश के पश्चिम में पाई जाती है ।

विशेष—इस जाति के लोग अपने आपको ब्राह्मण कहते हैं, पर इनकी वृत्ति बहुधा वैश्यों की सी होती है । कुछ लोग इन्हें दूसर बनिया भी कहते है ।

भार्गव²—वि० भृगु संबंधी । भृगु का । जैसे, भार्गव अस्त्र ।

भार्गवक—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा [को०] ।

भार्गवन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार द्वारका के एक वन का नाम ।

भार्गवप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा ।

भार्गवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती । २. लक्ष्मी । ३. दूर्वा । दूब । ४. नीली दूब । ५. सफेद दूब । ६. शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी (को०) । ७. उड़ीसा देश की एक नदी का नाम ।

भार्गवीय—वि० [सं०] भृगु संबंधी ।

भार्गवेश—संज्ञा पुं० [सं० भार्गव + ईश] परशुराम । उ०—अमेय तेज भर्ग भक्त भार्गवेश देखिए ।—केशव (शब्द०) ।

भार्गायन—संज्ञा पुं० [सं०] भर्ग के गोत्र के लोग ।

भार्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी ।

भार्ङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी ।

भार्द्वाजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारद्वाजी । वनकपास ।

भार्य¹—वि० [सं०] भरण पोषण करने के योग्य ।

भार्य²—संज्ञा पुं० १. सेवक । नौकर । २. सैनिक । आयुधजीवी [को०] ।

भार्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी । जाया । जोरू । स्त्री । उ०—उठा पिता के भी विरुद्ध मैं, किंतु आर्य भार्या हो तुम ।—साकेत, पृ० ३८४ ।

भार्याजित—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पति जो पत्नीभक्त हो । जोरू का गुलाम । २. एक प्रकार का हिरन ।

भार्याट—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी दूसरे पुरुष को भोग के लिये अपनी स्त्री दे । अपनी स्त्री को दूसरे पुरुष के पास भेजनेवाला मनुष्य ।

भार्याटिक¹—वि० [सं०] जो अपनी भार्या में बहुत अनुरक्त हो । स्त्रैण ।

भार्याटिक²—संज्ञा पुं० १. एक मुनि का नाम। २. एक प्रकार का हिरन।

भार्यात्व—संज्ञा पुं० [सं०] भार्या होने का भाव। पत्नीत्व।

भार्यारु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मृग। २. एक पर्वत का नाम। ३. जारज पुत्र का बाप। परस्त्री मे उत्पन्न पुत्र का पिता (को०)।

भार्यावृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग नामक वृक्ष।

भार्यासौश्रुत—वि० [सं०] स्त्री के वश में रहनेवाला।

भार्श्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधिक्य। प्रकर्षता। २. प्रबलता। तीव्रता [को०]।

भाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भवों के ऊपर का भाग। कपाल। ललाट। मस्तक। माथा। उ०—(क) भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर मोतिन की सुखदेनी।—केशव (शब्द०)। (ख) कानन कुंडल विशाल, गोरोचन तिलक भाल ग्रीवा छवि देखि देखि शोभा अधिकाई। (शब्द०)। २. तेज। ३. अंधकार। तम (को०)।

भाल²—संज्ञा पुं० [हिं० भाला] १. भाला। बरछा। उ०—(क) भाल बाँस खांड़े वह परही। जान पखाल बाज के चढ़ही।—जायसी (शब्द०)। (ख) भलरति बैठ भाल ले और बैठ धनकार।—जायसी (शब्द०)। २. तीर का फल। तीर की नोक। गाँसी। उ०—खौरि पनिच भृकुटी धनुष वधिक समरु तजि कानि। हनतु तरुन मृग तिलक सर सुरक भाल भरि तानि।—स० सप्तक, पृ० ६६।

भाल³—संज्ञा पुं० [सं० भल्लुक] रीछ। भालू। उ०—तहाँ सिंह बहु श्वान वृक सर्प गीध अरु भाल।—विश्राम (शब्द०)।

भालचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० भालचन्द्र] १. महादेव। २. गणेश।

भालचंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० भालचन्द्रा] दुर्गा।

भालदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंदूर। सेंदुर। २. शिव (को०)।

भालदर्शी—वि० [सं०] जो किसी की भौ देखता रहे। जैसे, मालिक के इशारे पर दौड़नेवाला नौकर [को०]।

भालना—क्रि० स० [?] १. ध्यानपूर्वक देखना। अच्छी तरह देखना। जैसे, देखना भालना। २. ढूँढना। तलाश करना।

भालनेत्र, भाललोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव जिनके मस्तक में एक तीसरा नेत्र है।

भालवी—संज्ञा पुं० [सं० भल्लुक] रीछ। भालू (डिं०)।

भालांक—संज्ञा पुं० [सं०] १. करपत्र नामक अस्त्र। २. एक प्रकार का साग। ३. रोहित मछली। ४. कछुवा। ५. शिव। ६. ऐसा मनुष्य जिसके भाल या शरीर में बहुत अच्छे अच्छे लक्षण हो। (सामुद्रिक)।

भाला—संज्ञा पुं० [सं० भल्ल] बरछा नाम का हथियार। साँग। नेजा।

भालाबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० भाला + फ़ा० बरदार] बरछा चलानेवाला। बरछैत।

भालि¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाला का स्त्री० अल्पा०] १. बरछी। साँग। २. शूल। काँटा। उ०—(क) बापुरी मंजुल अंब की डार सु भालि सी है उर में अरती क्यों।—देव (शब्द०)। (ख) प्यारे के मरने को मूर्ख लोग हृदय में गड़ी हुई भालि मानते है।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)।

भालि²—संज्ञा पुं० [हिं० भालु] दे० 'भालु'। उ०—भालि बीर बाराह हक्की बज्जी चावद्दिसि। मुक्कि यान पँचान मिले सुर संमूह बसि।—पृ० रा०, १७।१।

भालिया—संज्ञा पुं० [देश०] वह अन्न जो हलवाहे को वेतन में दिया जाता है। भाता।

भाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाला] १. भाले की गाँसी या नोक। उ०—जब वह सुरति होति उर अंतर लागति काम बाण की भाली।—सूर (शब्द०)। २. शूल। काँटा। उ०—कहा री कहौं कछु कहत न बनि आवै लगी मरम की भाली री।—सूर (शब्द०)।

भालु¹—संज्ञा पुं० [सं० भालुक] दे० 'भालू'।

भालु²—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

भालुक—संज्ञा पुं० [सं०] भालू। रीछ।

भालुनाथ—संज्ञा पुं० [हिं० भालू + सं० नाथ] जामवंत। जांववान। उ०—भालुनाथ नल नील साथ चले बली बालि को जायो —तुलसी (शब्द०)।

भालू—संज्ञा पुं० [सं० भल्लुक] एक प्रसिद्ध स्तनपायी भीषण चौपाया जो प्रायः सारे संसार के बड़े बड़े जंगलों और पहाड़ों में पाया जाता है। रीछ।

विशेष—आकार और रंग आदि के विचार से यह कई प्रकार का होता है। यह प्राय: ४ फुट से ७ फुट तक लंबा और २½ फुट से ४ फुट तक ऊँचा होता है। साधारणतः यह काले या भूरे रंग का होता है और इसके शरीर पर बहुत बड़े बड़े बाल होते हैं। उत्तरी ध्रुव के भालू का रंग प्रायः सफेद होता है। यह मांस भी खाता है और फल, मूल आदि भी। यह प्रायः दिन भर माँद में सोया रहता है और रात के समय शिकार की तलाश मे बाहर निकलता है। भारत में प्राय: मदारी इसे पकड़कर नाचना और तरह तरह के खेल करना सिखलाते हैं। इसकी मादा प्रायः जाड़े के दिनों में एक साथ दो बच्चे देती है। बहुत ठंढे देशों में यह जाड़े के दिनों मे प्राय: भूखा प्यासा और मुरदा सा होकर अपनी माँद में पड़ा रहता है; और वसंत ऋतु आने पर शिकार ढूँढ़ने निकलता है। उस समय यह और भी भीषण हो जाता है। यह शिकार के पीछे अथवा फल आदि खाने के लिये पेड़ो पर भी चढ़ जाता है। जंगल मे यह अकेले दुकेले मनुष्यो पर भी आक्रमण करने से नही चूकता।

भालूक—संज्ञा पुं० [सं०] भालू।

भाल्लुक, भाल्लूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भालू'।

भावंता(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भावना या भाना (=प्रिय लगना)] प्रेमपात्र । प्रिय । प्रीतम । उ०—(क) इहि बिधि भावंता बसौ हिलि मिलि नैनन माहिं । खैचे द्रग पर जात है मन कर प्रीतम बाँहि ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख) जाते ससि तुव मुख लखैं मेरो चित्त सिहाय । भावंता उनिहार कछु तो मे पैयत आय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

भावंता[2]—संज्ञा पुं० [सं० भावी] होनहार । भावी । उ०—आये जस हमीर मतमंता । जो तस करेसि तोर भावता ।—जायसी (शब्द०) ।

भावँर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिससे कागज बनता है ।

भावँर[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भाँवर' ।

भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. सत्ता । अस्तित्व । होना । अभाव का उलटा । २. मन मे उत्पन्न होनेवाला विकार या प्रवृत्ति । विचार । ख्याल । जैसे,—(क) इस समय मेरे मन में अनेक प्रकार के भाव उठ रहे हैं । (ख) उस समय आपके मन का भाव आपके चेहरे पर झलक रहा था । ३. अभिप्राय । तात्पर्य । मतलब । जैसे,—इस पद का भाव समझ में नहीं आता । ४. मुख की आकृति या चेष्टा । ५. आत्मा । ६. जन्म । ७. चित्त । ८. पदार्थ । चीज । ९. क्रिया । कृत्य । १०. विभूति । ११. विद्वान् । पडित । १२. जंतु । जानवर । १३. रति आदि क्रीड़ा । विषय । १४. अच्छी तरह देखना । पर्यालोचन । १५ प्रेम । मुहब्बत । उ०—रामहि चितव भाव जेहि सीया । सो सनेह सुख नहिं कथनीया ।—तुलसी (शब्द०) । १६. किसी धातु का अर्थ । १७. योनि । १८. उपदेश । १९. ससार । जगत् । दुनिया । २०. जन्मसमय का नक्षत्र । २१. कल्पना । उ०—जैसे भाव न संभवै तैसे करत प्रकास । होत असंभावित तहाँ उपमा केशवदास ।—केशव (शब्द०) । २२. प्रकृति । स्वभाव । मिजाज । २३. अंतः-करण में छिपी हुई कोई गूढ़ इच्छा । २०. ढग । तरीका । उ०—देखा चाँद सूर्य जस साजा । सहसहि भाव मदन तन गाजा ।—जायसी (शब्द०) । २५. प्रकार । तरह । उ०—गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव ।—कबीर (शब्द०) । २६. दशा । अवस्था । हालत । २७. भावना । २८. विश्वास । भरोसा । उ०—प्रभू लगि जावों घर कैसे कैसे आवे डर बोली हरि जानिए न भाव पै न आयो है ।—प्रियादास (शब्द०) । २९. आदर । प्रतिष्ठा । इज्जत । उ०—कहा भयो जो सिर धरचौ तुम्हैं कान्ह करि भाव । पंखा बिनु कछु और तुम यहाँ न पैहो नाव ।—रसनिधि (शब्द०) । ३०. किसी पदार्थ का धर्मगुण । ३१. उद्देश्य । ३२. किसी चीज की बिक्री आदि का हिसाब । दर । निर्ख ।

मुहा०—भाव उतरना या गिरना=किसी चीज का दाम घट जाना । भाव चढ़ना=दर तेज होना ।

३३. ईश्वर, देवता आदि के प्रति होनेवाली श्रद्धा या भक्ति । उ०—भाव सहित खोजइ जो प्रानी । पाव भक्त मम सब सुख खानी ।—तुलसी (शब्द०) । ३४. साठ संवत्सरों में से आठवाँ सवत्सर । ३५. फलित ज्योतिष में ग्रहों की शयन, उपवेशन, प्रकाशन, गमन आदि बारह चेष्टाओं में से कोई चेष्टा या ढग जिसका ध्यान जन्मकुंडली का विचार करने के समय रखा जाता है और जिसके आधार पर फलाफल निर्भर करता है ।

विशेष—किसी किसी के मत से दीप्त, दीन, सुस्थ, मुदित आदि नौ और किसी किसी के मत से दस भाव भी हैं ।

३५. युवती स्त्रियों के २८ प्रकार के स्वभावज अलंकारों के अंतर्गत तीन प्रकार के अंगज अलंकारों में से पहला । नायक आदि को देखने के कारण अथवा और किसी प्रकार नायिका के मन में उत्पन्न होनेवाला विकार ।

विशेष—साहित्यकारो ने इसके स्थायी, व्यभिचारी और सात्विक ये तीन भेद किए हैं और रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय को स्थायी भाव के अंतर्गत; निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य चिंता, मोह, धृति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, उत्सुकता, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विरोध, अमर्ष, उग्रता, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क को व्यभिचारी भाव के अंतर्गत; तथा स्वेद, स्तंभ, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय को सात्विक भाव के अंतर्गत रखा हैं ।

३६. संगीत का पाँचवाँ अंग जिसमें प्रेमी या प्रेमिका के संयोग अथवा वियोग से होनेवाला सुख अथवा दुःख या इसी प्रकार का और कोई अनुभव शारीरिक चेष्टा से प्रत्यक्ष करके दिखाया जाता है । गीत का अभिप्राय प्रत्यक्ष कराने के लिये उसके विषय के अनुसार शरीर या अंगों का संचालन ।

विशेष—स्वर, नेत्र, मुख तथा अंगों की आकृति में आवश्यकता-नुसार परिवर्तन करके यह अनुभव प्रत्यक्ष कराया जाता है । जैसे, प्रसन्नता, व्याकुलता, प्रतीक्षा, उद्वेग, आकांक्षा आदि का भाव बताना ।

क्रि० प्र०—बताना ।

मुहा०—भाव बताना=कोई काम न करके केवल हाथ पैर मटकाना । व्यर्थ पर नखरे के साथ साथ हाथ पैर हिलाना । भाव देना=आकृति आदि से अथवा कोई अंग संचालित करके मन का भाव प्रकट करना । उ०—श्याम को भाव दै गई राधा । नारि नागरि न काहु लख्यो कोऊ नहीं कान्ह कछु करत है बहुत अनुराधा ।—सुर (शब्द०) ।

३७. नाज । नखरा । चोंचला । ३८. वह पदार्थ जो जन्म लेता हो, रहता हो, बढ़ता हो, क्षीण होता हो, परिणामशील हो और नष्ट होता हो । छह भावों से युक्त पदार्थ । (सांख्य) । ३९. बुद्धि का वह गुण जिससे धर्म और अधर्म, ज्ञान और अज्ञान आदि का पता चलता है । ४०. वैशेषिक के अनुसार

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छह पदार्थ जिनका अस्तित्व होता है। अभाव का उल्टा। ४१. कोख। कुक्षि (को०)।

भावअर्हत—संज्ञा पुं० [सं० भावअर्हन्त] एक प्रकार के तीर्थंकर (जैन)।

भावइ(पु)—अव्य० [हिं० भावना या भाना (=अच्छा लगना), मि० पं० भाँवें] जी चाहे। इच्छा हो तो। उ०—भावइ पानी सिर परइ, भावइ परै अँगार।—(शब्द०)।

भावई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भाविन् > भावी] होनहार। भावी। उ०—पसु आखेटक करन को, संग नृपति बरदाइ। अैसे में इह भावई, अकसमात हुअ आइ।—पृ० रा०, ६।२८।

भावक[१]—क्रि० वि० [सं० भाव+क (प्रत्य०)] किंचित्। थोड़ा सा। जरा सा। कुछ एक। उ०—भावक उभरौहौ भयो कछुक परयो भरु आय। सीपहरा के मिस हियो निसि दिन हेरत जाय।—बिहारी (शब्द०)।

भावक[२]—वि० [सं०] भाव से भरा। भावपूर्ण। उ०—भेद त्यों अभेद हाव भाव हूँ कुभाव केते, भावक सुबुद्धि यथामति निरधार हीं।—रघुराज (शब्द०)।

भावक[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भावना करनेवाला। २. भावसंयुक्त। ३. भक्त। प्रेमी। अनुरागी। उ०—ताहू पर जे भावक पूरे ते दुख सुख सुनि गाथा।—रघुराज (शब्द०)। ४. भाव।

भावक[४]—वि० [सं०] उत्पादक। उत्पन्न करनेवाला।

भावकोश—संज्ञा पुं० [सं० भाव+कोश] भावों का क्षेत्र। भावचक्र। मन की गति का वह अंश जहाँ तक भाव जा सकते हैं। उ०—प्रीति वैर गर्व अभिमान तृष्णा इंद्रियलोलुपता इत्यादि भावकोश ही माने गए हैं।—रस०, पृ० १७०।

भावगति—संज्ञा स्त्री० [सं० भाव+गति] इरादा। इच्छा। विचार। उ०—जरा छिपे रहो, जिससे, मैं महाराज की भावगति जान सकूँ।—रत्नावली (शब्द०)।

भावगम्य—वि० [सं०] भक्तिभाव से जानने योग्य। जो भाव की सहायता से जाना जा सके। उ०—अयः शूल निर्मूलन शूलपाणिम्। भजेऽहं भवानीपति भावगम्यम्।—तुलसी (शब्द०)।

भावग्राहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० भाव+ग्राहिता] भाव ग्रहण करने की शक्ति या प्रकृति। भावप्रवणता। भावुकता। उ०—उसी के अनुसार उसकी भावग्राहिता होगी।—रस क०, पृ० १६।

भावग्राही—वि० [सं० भावग्राहिन्] भावों को या तात्पर्य को समझनेवाला। रसज्ञ।

भावग्राह्य—वि० [सं०] १. भक्ति से ग्रहण करने योग्य। जिसे ग्रहण करने में मन में भक्तिभाव लाने की आवश्यकता हो। २. भाव द्वारा ग्राह्य।

भावचेष्टित—क्रि० वि० [सं०] शृंगारी या प्रेमसंबंधी चेष्टा।

भावज[१]—वि० [सं०] भाव से उत्पन्न।

भावज[२]—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

भावज[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृजाया हिं० भौजाई] भाई की स्त्री। भाभी। भौजाई।

भावज्ञ—वि० [सं०] भाव या मनोभावों को समझनेवाला। उ०—चिर काल रसाल ही रहा, जिस भावज्ञ कवींद्र का कहा, जय हो उस कालिदास की।—साकेत, पृ० ३२०।

भावठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कच्ची खाल। बिना पकाई हुई खाल। उ०—भरी अधोड़ी भावठी, बैठा पेट फुलाय। दादू सूकर स्वान ज्यो, ज्यों आवै त्यों खाइ।—दादू०, पृ० २६०।

भावत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भावती] आपका। श्रीमान् का (आदरार्थक प्रयोग)।

भावता[१]—वि० [हिं० भावना (=अच्छा लगना)+ता (प्रत्य०)] [स्त्री० भावती] जो भला लगे। उ०—(क) सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुनियत भव भावते राम हैं सिय भावती भवानि हैं।—तुलसी (शब्द०)।

भावता[२]—संज्ञा पुं० प्रेमपात्र। प्रियतम। उ०—पथिक आपने पथ लगो इहाँ रहो न पुपाइ। रसनिधि नैन सराय में एक भावतो आइ।—रसनिधि (शब्द०)।

भावताव—संज्ञा पुं० [हिं भाव+ताव] किसी चीज का मूल्य या भाव आदि। निर्ख। दर।

क्रि० प्र०—करना।—जाँचना।—देखना।

भावती—वि० स्त्री० [हिं० भावता] जो भला लगे। भला लगनेवाली। उ०—बाल विनोद भावती लीला अति पुनीत पुनि भाषी हो।—सूर (शब्द०)।

भावत्क—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भावत्की] दे० 'भावत' [को०]।

भावदत्त दान—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तव मे चोरी न करके, चोरी की केवल भावना करना। यह जैनियो के अनुसार एक प्रकार का पाप है।

भावदया—वि० [सं०] किसी जीव की दुर्गति देखकर उसकी रक्षा के अर्थ अंतःकरण में दया लाना। (जैन)।

भावदर्शी—वि० [सं० भावदर्शिन्] दे० 'भालदर्शी'।

भावन(पु)[१]—वि० [हिं० भावना (=अच्छा लगना)] अच्छा लगनेवाला। प्रिय लगनेवाला। जो भला लगे। भानेवाला। उ०—इमि कहि कै ब्याकुल भई, सो लखि कृपानिधान। धीर धरहु भाषत भए, भव भावन भगवान।—गिरिधर (शब्द०)।

यौ०—मनभावन।

भावन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भावना। २. ध्यान। ३. विष्णु। ४. शिव (को०)। ५. निमित्त कारण (को०)। ६. अन्वेषण। अनुसंधान (को०)। ७. चिंतन। कल्पना करना (को०)। ८. प्रमाण (को०)। ९. सुगंधित करना (को०)। १०. द्रव पदार्थ से तर करके खरल करना (को०)।

भावन[३]—वि० दे० भावक' [को०]।

भावना[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मन में किसी प्रकार की चिंता करना। ध्यान। विचार। ख्याल। उ०—जाकी रही भावना जैसी। हरिमूरति देखी तिन्ह तैसी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पुराणों में तीन प्रकार की भावनाएँ मानी गई हैं—ब्रह्मभावना, कर्मभावना और उभयात्मिका भावना; और कहा गया है कि मनुष्य का चित्त जैसा होता है, वैसी ही उसकी भावना भी होती है। जिसका चित्त निर्मल होता है उसकी भावना ब्रह्म संबंधी होती है; और जिसका चित्त समल होता है, उसकी भावना विषयवासना की ओर होती है। जैनियों में परिकर्म भावना, उपचार भावना और आत्म भावना ये तीन भावनाएँ मानी गई हैं; और बौद्धों में माध्यमिक योगाचार, सौत्रांतिक और वैभाषिक ये चार भावनाएँ मानी गई हैं और कहा गया है कि मनुष्य इन्ही के द्वारा परम पुरुषार्थ करता है। योगशास्त्र के अनुसार अन्य विषयों को छोड़कर बार बार केवल ध्येय वस्तु का ध्यान करना भावना कहलाता है। वैशेषिक के अनुसार यह आत्मा का एक गुण या संस्कार है जो देखे, सुने या जाने हुए पदार्थ के संबंध में स्मृत या पहचान का हेतु होता है; और ज्ञान, मद, दुःख आदि इसके नाशक हैं।

२. चित्त का एक संस्कार जो अनुभव और स्मृति से उत्पन्न होता है। ३. कामना। वासना। इच्छा। चाह। उ०—(क) पाप के प्रताप ताके भोग रोग सोग जाके साध्यो चाहै आधि व्याधि भावना अशेष दाहि।—केशव (शब्द०)। (ख) तहँ भावना करत मन माँही। पूजत हरि पद पंकज काँहीं।—रघुराज (शब्द०)। ४. साधारण विचार या कल्पना। ५. काक। कौआ (को०)। ६. सलिल। जल (को०)। ७. वैद्यक के अनुसार किसी चूर्ण आदि को किसी प्रकार के रस या तरल पदार्थ में बार बार मिलाकर घोटना और सुखाना जिसमें उस औषध में रस या तरल पदार्थ के कुछ गुण आ जायँ। पुट।

क्रि० प्र०—देना।

भावना(पु)[2]—क्रि० अ० अच्छा लगना। पसंद आना। रुचना। उ०—(क) मन भावै तिहारै तुम सोई करो, हमे नेह को नातो निबाहनो है (शब्द०)। —(ख) गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जग भल कहहिं भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहु उर दाहू।—तुलसी (शब्द०)।

भावना[3]—वि० [हिं० भावना (=अच्छा लगना)] जो अच्छा लगे। प्रिय। प्यारा।

भावनामय—वि० [सं०] भावनायुक्त। काल्पनिक (को०)।

भावनामय शरीर—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार एक प्रकार का शरीर जो मनुष्य मृत्यु से कुछ ही पहले धारण करता है और जो उसके जन्म भर के किए हुए पापों और पुण्यों के अनुरूप होता है। जब आत्मा उस शरीर में पहुँच जाती है, तभी मृत्यु होती है।

भावनामार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] आध्यात्मिक सरणि। आध्यात्मिक अवस्था भाव (को०)।

भावनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

भावनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाना या भावना (=अच्छा लगना)] जो कुछ जी में आवे। इच्छानुसार बात या काम। उ०—जब जमदूत आइ घेरत हैं करत आपनी भावनि।—काष्ठजिह्वा (शब्द०)।

भावनिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार किसी पदार्थ का वह नाम जो उसके केवल वर्तमान स्वरूप को देखकर रखा गया हो।

भावनीय—वि० [सं०] १. भावना करने योग्य। चिंता या विचार करने योग्य। २. जो सह्य हो। सहने योग्य।

भावनेरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य का एक भेद। एक प्रकार का नाच (को०)।

भावपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तव में धन का संग्रह न करना, पर धन के संग्रह की मन में अभिलाषा रखना। (जैन)।

भावप्रकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक का प्रसिद्ध ग्रंथ। २. भाव या भावों का प्रकट होना।

भावप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भाववाच्य'।

भावप्रवण—वि० [सं०] रसज्ञ। भावुक (को०)।

भावप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार आत्मा की चेतना शक्ति।

भावबंध—संज्ञा पुं० [सं० भावबन्ध] जैनशास्त्र के अनुसार भावना या विचार जिनके द्वारा कर्म तत्व से आत्मा बंधन में पड़ता है।

भावबंधन—वि० [सं० भावबन्धन] जो हृदय को मोहित करे। मन को बाँधने या मुग्ध करनेवाला (को०)।

भावबोधक—वि० [सं०] १. भाव व्यक्त करने या बतानेवाला। भाव प्रकट करनेवाला। २. अनुभाव।

भावभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० भाव+भक्ति] १. भक्तिभाव। २. आदर। सत्कार। उ०—नैन मूँदि कर जोरि बोलायो। भाव भक्ति सों भोग लगायो।—सूर (शब्द०)।

भावभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भावों की भूमि या क्षेत्र। उ०—उनके काव्य की भावभूमि और उसकी मूलगत प्रेरणा तक पहुँच जाना सहज हो जाएगा।—अपरा, पृ० २।

भावमन—संज्ञा पुं० [सं० भावमनस्] जैनों के अनुसार पुद्गलों के संयोग से उत्पन्न ज्ञान।

भावमिश्र—संज्ञा पुं० [सं०] योग्य पुरुष। आदरणीय सज्जन। विद्वज्जन। (नाट्य०)।

भावमृषावाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊपर से झूठ न बोलना, पर मन में झूठी बातों की कल्पना करना। २. शास्त्र के वास्तविक अर्थ को दबाकर अपना हेतु सिद्ध करने के लिये झूठ मूठ नया अर्थ करना। (जैन०)।

भावमैथुन—संज्ञा पुं० [सं०] मन में मैथुन का विचार या कल्पना करना (जैन०)।

भावय—संज्ञा पुं० [देश०] वह व्यक्ति जो धातु की चद्दर पीटने के समय पासे को सँडसे से पकड़े रहता है और उलटता रहता है।

भावयति—संज्ञा पुं० [सं०] यति के समान चाल व्यवहार करनेवाला व्यक्ति। वह व्यक्ति जो यति जैसा आचरण करे।

भावयिता—वि० [सं० भावयितृ] पालन पोषण करनेवाला।

भावयोग—संज्ञा पुं० [सं० भाव+योग] वह जिसमें भावों का योग हो। उ०—कविता क्या है नामक प्रबंध में काव्य को हमने भावयोग कहा है।—रस०, पृ० ८७।

भावरी संज्ञा स्त्री० [सं०] भृकुटी। उ०—वलि तेरी छबि भावरी चलि विभावरी जाइ। जानति स्याम सुभावरी भ्रव न भावरी ल्याइ।—राम धर्म० पृ० २४६।

भावरूप—वि० [सं० सत्रूक] वास्तविक। यथार्थ [को०]।

भावलिंग—संज्ञा पुं० [सं० भावलिङ्ग] जैनों के अनुसार काम वासना के संबंध में होनेवाली मानसिक क्रिया। संभोग संबंधी भाव या विचार।

भावली—संज्ञा स्त्री० [देश०] जमीदार और असामी के बीच उपज की बँटाई।

भावलेश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आत्मा पर रहनेवाला भावों का आवरण। विचारों की रंगत जो आत्मा पर चढी रहती है।

भाववचन—वि० [सं०] व्याकरण में किसी अस्पष्ट विचारों या भावों को सूचित करनेवाली क्रिया।

भाववाचक—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में वह संज्ञा जिससे किसी पदार्थ का भाव, धर्म या गुण आदि सूचित हो। जैसे, सज्जनता, लालिमा, ऊँचाई।

भाववाच्य—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में क्रिया का वह रूप जिससे यह जाना जाय कि वाक्य का उद्देश्य उस क्रिया का कर्ता या कर्म कोई नहीं है, केवल कोई भाव है। इसमें कर्ता के साथ तृतीया की विभक्ति रहती है; क्रिया को कर्म की अपेक्षा नहीं होती और वह सदा एकवचन पुल्लिंग होती है। भावप्रधान क्रिया। जैसे,—मुझसे बोला नहीं जाता। उससे खाया नहीं जाता।

भावविकार—संज्ञा पुं० [सं०] यास्क के अनुसार जन्म, अस्तित्व, परिणाम, वर्धन, क्षय और नाश ये छह विकार जिनके अधीन जीव तब तक रहता है, जब तक उसे ज्ञान नहीं होता।

भाववृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

भावव्यंजक—वि० [सं० भावव्यञ्जक] जिससे अच्छा वा अच्छी तरह भाव प्रकट होता हो। भाव प्रकट करनेवाला।

भावशबलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें कई भावों को संधि होती है।

भावशांति—संज्ञा स्त्री० [सं० भावशान्ति] एक प्रकार का अलंकार जिसमें किसी भाव की शांति दिखाई जाती है।

भावशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नेकनीयती। भावों की शुद्धता वा निष्कपटता [को०]।

भावशून्य—वि० [सं०] भावरहित। जिसमें कोई भाव न हो। अनासक्त [को०]।

भावसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० भावसन्धि] एक प्रकार का अलंकार जिसमे दो विरुद्ध भावों की संधि का वर्णन होता है। जैसे, दुहुँ समाज हिय हर्ष विषादू। यहाँ हर्ष और विषाद की संधि है।

विशेष—साधारणतः यह अलंकार नहीं माना जाता; क्योंकि इसका विषय रस से संबंध रखता है; और अलंकार से रस पृथक् है।

भावसंवर—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह शक्ति या क्रिया जिससे मन मे नए भावों का ग्रहण रुक जाता है।

भावसती (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भास्वती] भास्वती नामक ज्योतिष का ग्रंथ। उ०—भावसती व्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान। वेद भेद सैं बात कह तस जनु लागहिं बान।—जायसी० ग्रं० (गुप्त), पृ० १९२।

भावसत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाव की स्वतंत्र स्थिति। भाव का स्वतंत्र अस्तित्व। उ०—भावयोग की सबसे उच्च कक्षा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जग के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी अलग भावसत्ता नहीं रह जाती, उसका हृदय विश्वहृदय हो जाता है।—रस०, पृ० २५।

भावसत्य—वि० [सं०] जैनों के अनुसार ऐसा सत्य जो ध्रुव न होने पर भी भाव की दृष्टि से सत्य हो। जैसे,—यद्यपि तोते कई रंग के होते हैं, तथापि साधारणतः वे हरे कहे जाते हैं। अतः तोतों को हरा कहना 'भावसत्य' है।

भावसमाहित—वि० [सं०] जिसके भाव व्यवस्थित एवं शांत हों। जिसके भाव केंद्रित हों।

भावसबलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें कई एक भावों का एक साथ वर्णन किया जाता है। भावशबलता।

भावसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. सांख्य के अनुसार तन्मात्राओं की उत्पत्ति। भौतिक सर्ग का उलटा या विलोम। २. बौद्धिक वा कल्पनाजन्य सर्जन, विचार वा रचना।

भावस्थ—वि० [सं०] भाव में लीन। उ०—बोले भावस्थ चंद्रमुखनिंदित रामचंद्र।—अपरा, पृ० ४६।

भावस्निग्ध—वि० [सं०] भाव के कारण अनुरक्त [को०]।

भावहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार ऐसी हिंसा जो केवल भाव में हो, पर द्रव्य में न हो। कार्यतः हिंसा न करना, पर मन मे यह इच्छा रखना कि अमुक व्यक्ति का घर जल जाय, अमुक व्यक्ति मर जाय।

भावांतर—संज्ञा पुं० [सं० भावान्तर] १. अन्य अर्थ। दूसरा अर्थ या भाव। २. मन की भाव से भिन्न अवस्था [को०]।

भावानुग—वि० [सं०] भाव का अनुगामी। भाव का अनुगमन करनेवाला [को०]।

भावानुगा—संज्ञा स्त्री० [सं० भावानुगा] छाया। परछाहीं [को०]।

भावाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाव। भावना। २. प्रेम भावना की बाह्य अभिव्यक्ति। ३. पवित्रात्मा या सज्जन पुरुष। ४. रसिक। ५. अभिनेता। ६. वेशभूषा। साजसज्जा [को०]।

भावात्मक—वि० [सं०] भावमय। भाव के रूप में बदला हुआ। उ०—वासनात्मक अवस्था से भावात्मक अवस्था में, आया हुआ राग ही अनुराग या प्रेम है।—रस०, पृ० ७६।

भावाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाव और अभाव। होना और न

होना । २. उत्पत्ति और लय वा नाश । ३ जैनों के अनुसार भाव का अभाव अथवा वर्तमान का भूत में होनेवाला परिवर्तन ।

भावाभास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार। अनुचित स्थान पर भाव की अभिव्यक्ति। भाव का आभास होना। कृत्रिम या बनावटी भाव।

भावार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अर्थ वा टीका जिसमें मूल का केवल भाव आ जाय, अक्षरशः अनुवाद न हो। २. अभिप्राय। तात्पर्य। मतलब।

भावालंकार—संज्ञा पुं० [सं० भावालङ्कार] एक प्रकार का अलंकार।

भावाव—वि० [सं०] कोमल। नाजुक। दयालु।

भावाश्रित—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत मे वह नृत्य जिसमें अंगों से भाव बताया जाय। २. संगीत में हस्तक का एक भेद। गाने के भाव के अनुसार हाथ उठाना, घुमाना और चलाना।

भाविक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अनुमान जो अभी हुआ न हो पर होनेवाला हो। भावी अनुमान। २. वह अलकार जिसमे भूत और भावी बातें प्रत्यक्ष वर्तमान की भाँति वर्णन की गई हों।

भाविक[2]—वि० १. भावी। होनेवाला। २. स्वाभाविक। वास्तविक। ३. भावुक। ⓟ४. जाननेवाला। मर्मज्ञ। उ०—बरनौ तास सुवन पद पंकज। जो विराग भाविक मनरंजक।—रघुराज (शब्द०)।

भावित—वि० [सं०] १. जिसकी भावना की गई हो। सोचा हुआ। विचारा हुआ। २. मिलाया हुआ। ३. शुद्ध किया हुआ। ४. जिसमे किसी रस आदि की भावना दी गई हो। जिसमें पुट दिया गया हो। ५. सुगंधित किया हुआ। बासा हुआ। ६. मिला हुआ। प्राप्त। ७. भेंट किया हुआ। समर्पित। ८. वशीकृत (को०)।

भाविता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भावी का भाव। होनहार। होनी।

भावितात्मा[1]—वि० [भावित्+आत्मन्] १. वह जिसने अपनी आत्मा पवित्र कर ली हो। २. तल्लीन। ३. शुद्ध। पवित्र।

भावितात्मा[2]—संज्ञा पुं० संत। महात्मा (को०)।

भावित्र—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों का समूह। त्रैलोक्य।

भावित्व—संज्ञा पुं० [सं०] होनहार।

भाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सौंदर्यशील महिला। सुंदरी स्त्री। २. साध्वी स्त्री। सच्चरित्र महिला। ३. क्रीड़ाप्रिय या कुलटा स्त्री। ४. एक प्रकार की संगीतरचना (को०)।

भाविन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीता की एक सखी का नाम। उ०—पुण्या परबोकला नीत्ति, प्रहलादिनी कांता। भाविन्या शोभना लंबिनी विद्या शांता।—विश्राम (शब्द०)। २. होनहार। होनी। भावी।

भावी—संज्ञा स्त्री० [सं० भाविन्] १. भविष्यत् काल। आनेवाला समय। २. भविष्य मे होनेवाली वह बात या व्यापार जिसका घटना निश्चित हो। अवश्य होनेवाली बात। भवितव्यता। उ०—भावी काहू सों न टरै। कहँ वह राहु कहाँ वह रवि शशि आनि संजोग परै।—सूर (शब्द०)।

विशेष—साधारणतः भाग्यवादियों का विश्वास होता है कि कुछ घटना या बातें ऐसी होती हैं जिनका होना पहले से ही किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा निश्चित होता है। ऐसी ही बातों को 'भावी' कहते हैं।

३. भाग्य। प्रारब्ध। तकदीर। ४. सुंदर। भव्य। शोभन (को०)। ५. अनुरक्त। आसक्त (को०)।

भावुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। आनंद। २. बहनोई। (नाटयोक्ति में)। ३ सज्जन। भला आदमी। ४. भावना-प्रधान भाषा। अनुराग या रसयुक्त भाषा (को०)।

भावुक[2]—वि० १. भावना करनेवाला। सोचनेवाला। २. जिसके मन में भावों का विशेषतः कोमल भावों का संचार होता हो। जिसपर कोमल भावों का जल्दी प्रभाव पड़ता हो। ३. रसज्ञ। सहृदय (को०)। ४. भावी। होनेवाला (को०)। ५. उत्तम भावना करनेवाला। अच्छी बातें सोचनेवाला। उ०—भावुक जन से ही महत्कार्य होते हैं, ज्ञानी संसार असार मान रोते हैं।—साकेत, पृ० २४१।

भावैⓟ†—अव्य० [हिं० भाना] चाहे। दे० 'भावइ'। उ०—भावै चारिहु जुग महि पूरी। भावै आगि बाउ जल धूरी।—जायसी (शब्द०)।

भावोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार क्रोध आदि बुरे भावों का त्याग।

भावोदय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें किसी भाव के उदय होने की अवस्था का वर्णन होता है।

भावोद्दीपक—वि० [सं०] भावों को उद्दीपन करनेवाला। भाव को उत्तेजित करनेवाला।

भावोद्रेक—संज्ञा पुं० [सं० भाव+उद्रेक] भावावेश। भावों का उत्थान। भावातिरेक। उ०—जिस भावोद्रेक और जिस ब्योरे के साथ नायक या नायिका के रूप का वर्णन किया जाता है उस भावोद्रेक और उस ब्योरे के साथ उनका नही।—रस०, पृ० ७।

भावोन्मत्त—वि० [सं०] भावों के कारण उन्मत्त। भावविह्वल।

भावोन्मेष—संज्ञा पुं० [सं०] भाव का उद्रेक। भाव का उदय।

भाव्य[1]—वि० [सं०] १. अवश्य होनेवाला। जिसका होना बिलकुल निश्चित हो। भावी। २. भावना करने योग्य। ३. सिद्ध या साबित करने योग्य।

भाव्य[2]—संज्ञा पुं० होनी। भावी (को०)।

भाव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] होनी। भावी (को०)।

भाषⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० √भाष्] भाषा। शब्द। वाणी। उ०—अब आयो बैसाख भाष नहिं कंत की।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३६३।

भाषक—संज्ञा पुं० [सं०] बोलनेवाला। कहनेवाला। भाषण करनेवाला।

भाषज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा जाननेवाला। भाषा का ज्ञाता।

भाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कथन। बातचीत। कहना। २. कृपापूर्ण वाक्य। दया भरे शब्द (को०)। ३. व्याख्यान। वक्तृता।

उ०—भाषण करने में भी तुमसे न लग जाय हा, मुझको पाप। सुरस करूँगी मैं इस तन को प्रगति आप में अपने आप।—साकेत, पृ० ३८६।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—सुनना।—सुनाना।

भाषना⁰¹—क्रि० अ० [सं० भाषण] बोलना। कहना। बात करना।

भाषना²—क्रि० स० [सं० भक्षण] भोजन करना। खाना।

भाषांतर—संज्ञा पुं० [सं० भाषान्तर] एक भाषा में लिखे हुए लेख आदि के आधार पर दूसरी भाषा में लिखा हुआ लेख। अनुवाद। उल्था। तरजुमा।

भाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्यक्त नाद की वह समष्टि जिसकी सहायता से किसी एक समाज या देश के लोग अपने मनोगत भाव तथा विचार एक दूसरे पर प्रकट करते हैं। मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह जिनके द्वारा मन की बात बतलाई जाती है। बोली। जबान। वाणी।

विशेष—इस समय सारे संसार में प्रायः हजारों प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं जो साधारणतः अपने भाषियों को छोड़ और लोगों की समझ में नहीं आतीं। अपने समाज या देश की भाषा तो लोग बचपन से ही अभ्यस्त होने के कारण अच्छी तरह जानते हैं, पर दूसरे देशों या समाजों की भाषा बिना अच्छी तरह सीखे नहीं आती। भाषाविज्ञान के ज्ञाताओं ने भाषाओं के आर्य, सेमेटिक, हेमेटिक आदि कई वर्ग स्थापित करके उनमें से प्रत्येक की अलग अलग शाखाएँ स्थापित की हैं, और उन शाखाओं के भी अनेक वर्ग उपवर्ग बनाकर उनमें बड़ी बड़ी भाषाओं और उनके प्रांतीय भेदों, उपभाषाओं अथवा बोलियों को रखा है। जैसे हमारी हिंदी भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के आर्य वर्ग की भारतीय आर्य शाखा की एक भाषा है; और ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि इसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं। पास पास बोली जानेवाली अनेक उपभाषाओं या बोलियों में बहुत कुछ साम्य होता है; और उसी साम्य के आधार पर उनके वर्ग या कुल स्थापित किए जाते हैं। यही बात बड़ी बड़ी भाषाओं में भी है जिनका पारस्परिक साम्य उतना अधिक तो नहीं, पर फिर भी बहुत कुछ होता है। संसार की सभी बातों की भाँति भाषा का भी मनुष्य की आदिम अवस्था के अव्यक्त नाद से अब तक बराबर विकास होता आया है; और इसी विकास के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है। भारतीय आर्यों की वैदिक भाषा से संस्कृत और प्राकृतों का, प्राकृतों से अपभ्रंशों का और अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है।

क्रि० प्र०—जानना।—बोलना।—सीखना।—समझना।

२. किसी विशेष जनसमुदाय में प्रचलित बातचीत करने का ढंग। बोली। जैसे, ठगों की भाषा, दलालों की भाषा। ३. वह अव्यक्त नाद जिससे पशु, पक्षी आदि अपने मनोविकार या भाव प्रकट करते हैं। जैसे, बंदरों की भाषा। ३. आधुनिक हिंदी। ४. वह बोली जो वर्तमान समय में किसी देश में प्रचलित हो। उ०—जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।—मानस, १।१४। ६. एक प्रकार की रागिनी। ७. गान का एक भेद। (संगीत)। ८. शब्द। ९. वाणी। सरस्वती। १०. निर्वचन। [illegible] (डिं०)। ११. अभिलाषा। [illegible]।

भाषाचित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों का खेल। [illegible]। पहेली (को०)।

भाषाज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण का ज्ञान। शब्दविद्या का ज्ञान (को०)।

भाषापद्य—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] के अनुसार वह पद जिसमें [illegible] का निरूपण किया गया हो।

भाषावाद—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।

भाषाबद्ध—वि० [सं०] भाषा में रचा हुआ। उ०—भाषाबद्ध करब मैं सोई।—तुलसी (शब्द०)।

भाषाविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा वैज्ञानिक और शास्त्रीय अध्ययन का शास्त्र। वह शास्त्र जिसमें भाषा की उत्पत्ति, विकास, रूपपरिवर्तन, स्वरयोग, [illegible], [illegible], ध्वनिपरिवर्तन, ध्वनिविकास, पदविज्ञान, अर्थविज्ञान, वाक्यविज्ञान, भाषाभाषियों का [illegible] अध्ययन, [illegible], प्रयोगात्मक तथा वर्णनात्मक अध्ययन आदि एवं भाषाओं का तुलनात्मक, [illegible] तथा ऐतिहासिक अध्ययन, अनुशीलन, विश्लेषण एवं विवेचन किया जाता हो।

भाषासम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शब्दालंकार। इसमें केवल ऐसे शब्दों की योजना की जाती है जो कई भाषाओं में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। उ०—[illegible]। यह श्लोक संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागध, अपभ्रंश, पैशाची आदि अनेक भाषाओं के रूपों में होता।

भाषासमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का आचार जिसके अनुसार ऐसी बातचीत करते हैं जिससे सब लोग प्रसन्न और संतुष्ट हों।

भाषिक—वि० [सं०] भाषा या बोली संबंधी।

भाषिका¹—वि० [सं०] बोलनेवाली। कहनेवाली।

भाषिका²—संज्ञा स्त्री० वाणी।

भाषित¹—वि० [सं०] कथित। कहा हुआ।

भाषित²—संज्ञा पुं० कथन। बातचीत।

यौ०—आकाशभाषित। भाषितपुंस्क।

भाषिता—वि० [सं० भाषितृ] वक्ता। बोलनेवाला (को०)।

भाषितेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती (को०)।

भाषी—संज्ञा पुं० [सं० भाषिन्] १. बोलनेवाला । जैसे; हिंदीभाषी । २. जल्पक । बहुभाषी । मुखर । वावदूक (को०) ।

भाष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूत्रग्रंथों का विस्तृत विवरण या व्याख्या । सूत्रों की की हुई व्याख्या या टीका । जैसे, वेदों का भाष्य । २. किसी गूढ़ बात या वाक्य की विस्तृत व्याख्या । जैसे,—आपके इस पद्य के साथ तो एक भाष्य की आवश्यकता है । ३. भाषानिबद्ध कोई भी ग्रंथ । ग्रंथ (को०) । ४. पाणिनि के सूत्रों पर पतंजलि द्वारा की हुई व्याख्या । महाभाष्य ।

भाष्यकर, भाष्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूत्रों की व्याख्या करनेवाला । भाष्य बनानेवाला । २. पतंजलि का नाम ।

भाष्यकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भाष्यकर, भाष्यकार' ।

भासंत[1]—वि० [सं० भासन्त] [वि० स्त्री० भासंती] दीप्त । प्रकाशमान । २. सुंदर । रूपवान् ।

भासंत[2]—संज्ञा पुं० १. भास नाम का पक्षी । शकुंत पक्षी । २. सूर्य । ३. चंद्रमा । ४. नक्षत्र [को०] ।

भासंती—संज्ञा स्त्री० [सं० भासन्ती] तारा । नक्षत्र [को०] ।

भास—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीप्ति । प्रकाश । प्रभा । चमक । २. मयूख । किरण । ३. इच्छा । ४. गोशाला । ५. कुक्कुट (मुर्गा) । ६. गृध्र । गीध । ७. शकुंत पक्षी । ८. स्वाद । लज्जत । ९ मिथ्या ज्ञान । १०. महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम । ११. संस्कृत के प्रथम नाटककार जो कालिदास से पूर्ववर्ती थे । प्रसिद्ध नाटक स्वप्नवासवदत्ता के रचयिता ।

भासक[1]—वि० [सं०] १. चमकनेवाला । द्योतित । २. चमकाने या प्रकाश में लानेवाला ।

भासक[2]—संज्ञा पुं० संस्कृत के एक कवि [को०] ।

भासकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] रावण की सेना का मुख्य नायक जिसको हनुमान ने प्रमदावन उजाड़ने के समय मारा था ।

भासता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गृध्र की तरह वृत्ति । अपहरणशीलता । २. लुब्धता । ३. चमकीलापन [को०] ।

भासना[1]—क्रि० अ० [सं० भासन] १. प्रकाशित होना । चमकना । २. मालुम होना । प्रतीत होना । ३. देख पड़ना । ४. फँसना । लिप्त होना । उ०—अपने भुजदंडन कर गहिए विरह सलिल में भासी ।—सुर (शब्द०) । ५. भसना । डूबना । धँसना । उ०—यह मत दै गोपिन कौं आवहु विरह नदी में भासत ।—सुर०, १०।३४२६ ।

भासना[2]—क्रि० स० [स० भाषण] कहना । बोलना । उ०—सुमिल सुगीतनि गावै निपट रसीलो भासनि । —घनानंद, पृ० ४५३ ।

भासमंत—वि० [स० भासमन्त] चमकदार । ज्योतिपूर्ण ।

भासमान[1]—वि० [सं०] १. जान पड़ता हुआ । भासता हुआ । दिखाई देता हुआ । २. व्यक्त । ज्ञात । प्रकट । उ०—ऐसे वा समय वीरां कौ भासमान भयौ ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १३४ ।

भासमान[2]—संज्ञा पुं० सूर्य । (डिं०) ।

भासा—संज्ञा स्त्री० [स० भाषा] दे० 'भाषा' ।

भासिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिखाई पड़नेवाला । २. मालूम होनेवाला । लक्षित होनेवाला ।

भासित—वि० [सं०] तेजोमय । चमकीला । प्रकाशित । प्रकाशमान ।

भासी—वि० [सं० भासिन्] [वि० स्त्री० भासिनी] चमकनेवाला ।

भासु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

भासुर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुष्ठ रोग का औषध । कोढ़ की दवा । २. स्फटिक । बिल्लौर । ३. वीर । बहादुर ।

भासुर[2]—वि० चमकदार । चमकीला ।

भास—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमक । दीप्ति । २. आकांक्षा । मनोरथ । ३. प्रकाश की किरण । ४. प्रतिच्छाया । प्रतिबिंब । ५. तेज । प्रताप । महत्ता [को०] ।

भास्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुवर्ण । सोना । २. सूर्य । ३. अग्नि । आग । ४. वीर । ५. मदार का पेड़ । ६. महादेव । शिव । ७. ज्योतिष शास्त्र के आचार्य । इन्होंने सिद्धांतशिरोमणि आदि ज्योतिष के ग्रंथ रचे हैं । ८ महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक प्रकार की पदवी । ९. पत्थर पर चित्र और बेल बूटे आदि बनाने की कला ।

यौ०—भास्करकर्म = दे० 'भास्कर्य' । भास्करद्युति = विष्णु । भास्करप्रिय=लाल । एक रत्न । भास्करलवण = एक प्रकार का नमक या उसका मिश्रण जो एक औषध है । भास्करसप्तमी = माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी ।

भास्करि—संज्ञा पुं० [सं०] १. शनि ग्रह । २. वैवस्वत मनु का नाम । ३. कर्ण । ४. सुग्रीव । ५. एक मुनि । शैव दर्शन में प्रसिद्ध एक टीका ।

भास्कर्य—संज्ञा पुं० [स०] धातु पत्थर आदि की मूर्ति बनाने की कला ।

भास्मन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भास्मनी] भस्म से निर्मित या भस्म संबंधी [को०] ।

भास्य—वि० [सं०] व्यक्त या प्रकाश करने योग्य [को०] ।

भास्वत्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. उषा (को०) । ३. मदार का पेड़ । ४. चमक । दीप्ति । ५. वीर । बहादुर ।

भास्वत्[2]—वि० [वि० स्त्री० भास्वती] १. चमकीला । चमकदार । २. प्रकाश करनेवाला । चमकनेवाला ।

भास्वती—संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्राचीन नदी का नाम । (महाभारत) ।

भास्वर[1]—संज्ञा पुं० [स०] १. कुष्ठ का औषध । कोढ़ की दवा । २. दिन । ३. सूर्य । ४. अग्नि । कृशानु (को०) । ५. सूर्य का एक अनुचर जिसे भगवान् सूर्य ने तारकासुर के वध के समय स्कंद को दिया था ।

भास्वर[2]—वि० दीप्तियुक्त । चमकदार । प्रकाशमय । चमकीला ।

भास्वान्—संज्ञा पुं०, वि० [स० भास्वत्] दे० 'भास्वत्' ।

भाहि—संज्ञा पुं० [देश०] १. दे० 'भाव' । उ०—जपे सुवैन के कहे साहि । कढ्ढी व वच गभीर भाहि ।—पृ० रा० ६।४४ ।

२. भय । डर । उ०—नारी चली उतावली नख सिख लागै भाहि । सुंदर पटकै पीव सिर, दुख सुनावै काहि ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७०८ ।

भिंग†¹—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्ग, प्रा० भिंग] १. भृंगी नाम का कीड़ा जिसे बिलनी भी कहते हैं । २. भौंरा । उ०—भृंगी पुच्छइ भिंग सुन की ससारहि सार ।—कीर्ति०, पृ० ६ ।

भिंग²—संज्ञा स्त्री० [सं० भग्न या भङ्ग] बाधा ।

भिंगराज—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराज] दे० 'भृंगराज' ।

भिंगार—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गार, प्रा० भिंगार] एक प्रकार का पात्र । भृंगार । झारी या कमंडलु के वर्ग का एक पात्र ।

भिंगिसी—संज्ञा स्त्री० [सं० भिङ्गिसी] कंवल की एक किस्म [को०] ।

भिंड†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीटा] भीटा । तालाब के चारो ओर किनारे की ऊँची जमीन । ऊँची जमीन । उ०—इस पोखर के तीन भिंडों पर अब उपाध्याय घराने की बढ़ती आबादी छा गई थी ।—रति०, पृ० २१ ।

भिंड²—संज्ञा पुं० [सं० भिण्ड] दे० 'भिंडी' ।

भिंडक—संज्ञा पुं० [सं० भिण्डक] दे० 'भिंडी' ।

भिंडा¹—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ी सटक ।

भिंडा²—संज्ञा स्त्री० [सं० भिण्डा] भिंडी ।

भिंडि—संज्ञा पुं० [सं० भिन्दि] गोफना । ढेलवाँस ।

भिंडिपाल—संज्ञा पुं० [सं० भिन्दिपाल] छोटा डंडा जो प्राचीन काल में फेंककर मारा जाता था ।

भिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० भिण्डा] एक प्रकार के पौधे की फली जिसकी तरकारी बनती है ।

विशेष—यह फली चार अंगुल से लेकर बालिश्त भर तक लंबी होती है । इसके पौधे चैत से जेठ तक बोए जाते हैं; और जब ६–७ अंगुल के हो जाते हैं; तब दूसरे स्थान मे रोपे जाते हैं । इसकी फसल को खाद और निराई की आवश्यकता होती है । इसके रेशों से रस्से आदि बनाए जाते हैं; और कागज भी बनाया जा सकता है । वैद्यक में इसे उष्ण, ग्राही और रुचिकारक माना है । इसे कहीं कहीं रामतरोई भी कहते हैं ।

भिंदिपाल—संज्ञा पुं० [सं० भिन्दिपाल] १. दे० 'भिंडिपाल' । २. दे० 'भिंडि' ।

भिंदु¹—वि० [सं० भिन्दु] ध्वस्त या नष्ट करनेवाला ।

भिंदु²—संज्ञा पुं० १. बिंदु । बूँद । २. विध्वंसक या नाशक व्यक्ति ।

भिंदु³—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसे मरा हुआ बच्चा पैदा हो । मृत शिशु का प्रसव करनेवाली स्त्री [को०] ।

भिंभर(प)—वि० [सं० विह्वल, प्रा० भिंभल] चंचल । चपल । विह्वल ।

भिंभरनैनी(प)—वि० [हिं० भिंभर+नैन+ई] विह्वल या चंचल नेत्रवाली । उ०—ढलकंतिय वैनी भिंभरनैनी जुग फल देनी रस मैन ।—पृ० रा०, १२।२५५ ।

भिंसार‡—संज्ञा पुं० [सं० भानु + सरण] सबेरा । सुबह । प्रातःकाल ।

भिगाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भिगोना' ।

भिँगोरा—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गार] १. भँगरा । भृंगराज । घमरा । २. भृंगराज पक्षी ।

भिँगोरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गराज] भृंगराज नामक पक्षी ।

भिँजवना(प)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भिगोना' । उ०—व्रज वनिता बोरी भई होरी खेलत आज । रस ढोरी डोरी फिरत भिजवति है व्रजराज ।—व्रज ग्रं०, पृ० ३१ ।

भिँजाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भिगोना' ।

भिँजोना, भिँजोवना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भिगोना' ।

भिआई‡—संज्ञा पुं० [हिं० भैया] भाई । भइया ।

भिउँ†—संज्ञा पुं० [सं० भीम] दे० 'भीम' । उ०—ओ छोड़ भिउँ अँगवै परदाहा ।—जायसी० ग्रं०, पृ० १५८ ।

भिकारी, भिक्खारी(प)†—संज्ञा पुं० [सं० भिक्षाचारी] दे० 'भिखारी' । उ०—आखर रस बुज्झनिहार नहिं कइकुल भमि भिक्खारि भउँ ।—कीर्ति०, पृ० १२ ।

भिक्खु—संज्ञा पुं० [सं० भिक्षु, प्रा० भिक्खु] बौद्ध साधु । दे० 'भिक्षु' । उ०—उनका उपदेश मानकर संसार छोड़कर बहुत से लोग उनके अनुयायी हो गए और भिक्खु कहलाए ।—हिंदु० सभ्यता०, पृ० २५३ ।

भिक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षा माँगने की क्रिया । भीख माँगना । भिखमंगी ।

भिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. याचना । माँगना । जैसे,—मैं आपसे यह भिक्षा माँगता हूँ कि आप इसे छोड़ दें । २. दीनता दिखलाते हुए अपने उदरनिर्वाह के लिये घूम घूमकर अन्न, धन आदि माँगने का काम । भीख ।

क्रि० प्र०—माँगना ।

३. इस प्रकार माँगने से मिली हुई वस्तु । भीख । ४. सेवा । नौकरी । ५. मजदूरी । वेतन । भृति (को०) ।

यौ०—भिक्षाकरण = भीख माँगना । भिक्षाचर = भिक्षुक । फकीर । भिक्षाचरण, भिक्षाचर्य, भिक्षाचर्या = दे० 'भिक्षाकरण' । भिक्षाजीवी । भिक्षापात्र । भिक्षाभाण्ड । भिक्षाभाजन = दे० 'भिक्षापात्र' । भिक्षाभुज = दे० 'भिक्षाजीवी' । भिक्षावास । भिक्षावृत्ति = भिक्षा द्वारा जीविका करना । भिक्षुक का जीवन ।

भिक्षाक—संज्ञा पुं० [सं०] भीख माँगनेवाला । भिक्षुक ।

भिक्षाजीवी—वि० [सं०] भिक्षा द्वारा निर्वाह करनेवाला [को०] ।

भिक्षाटन—संज्ञा पुं० [सं०] भीख माँगने की फेरी । भीख माँगने के लिये इधर उधर घूमना ।

भिक्षान्न—संज्ञा पुं० [सं०] भीख में प्राप्त अन्न ।

भिक्षार्थी—वि० [सं० भिक्षार्थिन्] [स्त्री० भिक्षार्थिनी] भीख माँगनेवाला ।

भिक्षापात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें भिखमंगे भीख माँगते हैं । कपाल । २. वह व्यक्ति जिसे भिक्षा देना उचित हो । भिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी ।

भिक्षार्ह—वि० [सं०] भिक्षा देने के योग्य ।

भिक्षाशन—स्त्री० पु० [सं०] भिक्षा में प्राप्त भोजन ।

भिक्षाशी—वि० [सं०] दे० 'भिक्षाजीवी' ।

भिक्षावास—संज्ञा पु० [सं० भिक्षावासस्] भिखारी का पहनावा ।

भिक्षित—वि० [सं०] भिक्षा में मिला हुआ । याचना द्वारा प्राप्त (को०) ।

भिक्षी—वि० [सं० भिक्षिन्] भीख माँगनेवाला ।

भिक्षु—संज्ञा पु० [सं०] १. भीख माँगनेवाला । भिखारी । २. गोरखमुंडी । मुंडी । ३. संन्यासी । [स्त्री० भिक्षुणी] । ४. बौद्ध संन्यासी ।

भिक्षुक¹—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० भिक्षुकी] भिखमंगा । भिखारी । याचक ।

भिक्षुक²—वि० [सं०] भीख माँगनेवाला ।

भिक्षुचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] भिक्षावृत्ति (को०) ।

भिक्षुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध संन्यासिनी ।

भिक्षुरूप—संज्ञा पु० [सं०] महादेव ।

भिक्षुसंघ—संज्ञा पु० [सं० भिक्षुसङ्घ] बौद्ध भिक्षुओं का संघ ।

भिक्षुसंघाती—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षुसङ्घात] चीवर ।

भिक्षुसूत्र—संज्ञा पु० [सं०] भिक्षुओं के लिये नियमों का संग्रह ।

भिखमंगा—संज्ञा पु० [हिं० भीख+माँगना] [स्त्री० भिखमंगन, भिखमंगिन] जो भीख माँगे । भिखारी । भिक्षुक । उ०—हौं पदमावति कर भिखमगा । दिस्टि न आव समुद औ गंगा ।—जायसी ग्रं०, पृ० २१७ ।

भिखार—संज्ञा पु० [हिं० भीख+आर (प्रत्य०)] भीख माँगनेवाला । जो भीख माँगे । भिक्षुक ।

भिखारीⓊ—संज्ञा पुं० [हिं०] भिक्षुक । भिखारी ।

भिखारिणी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिखारी] वह स्त्री जो भिक्षा माँगे । भीख माँगनेवाली स्त्री ।

भिखारिन, भिखारिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भिखारिणी' ।

भिखारी¹—संज्ञा पु० [हिं० भीख+आरी (प्रत्य०)] [स्त्री० भिखारिणी, भिखारिन, भिखारिनी] भीख माँगनेवाला व्यक्ति । भिक्षुक । भिखमंगा ।

भिखारी²—वि० जिसके पास कुछ न हो । कंगाल ।

भिखिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] दे० 'भिक्षा' ।

भिखियारी†—संज्ञा पुं० [हिं० भीख] दे० 'भिखारी' ।

भिख्या‡—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] दे० 'भिक्षा' । उ०—तुम्ह जोगी बैरागी कहत न मानहु कोहु । माँगि लेहु कछु भिख्या खेलि अनत कहुँ होहु ।—जायसी० ग्रं० (गुप्त), पृ० २६७ ।

भिगाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भिगोना' ।

भिगोना—क्रि० स० [सं० अभ्यञ्ज] किसी चीज को पानी से तर करना । पानी में इस प्रकार डुबाना जिसमें तर हो जाय । गीला करना । भिगाना । जैसे,—यह दवा पानी में भिगो दो ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

भिच्छाⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] दे० 'भिक्षा' । उ०—जोगी बार आव सो जेहि भिच्छा कै आस ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६५ ।

भिच्छुⓊ—संज्ञा पु० [सं० भिक्षु] दे० 'भिक्षु' । उ०—भिच्छु जानि जानकी सु भीख को बुलाइयो ।—केशव (शब्द०) ।

भिच्छुकⓊ—संज्ञा पुं० [सं० भिक्षुक] दे० 'भिक्षुक' । उ०—भूषन भिच्छुक भूप भए ।—भूषण ग्रं०, पृ० २६७ ।

भिजवनाⓊ—क्रि० स० [हिं० भिगोना] भिगोने में दूसरे को प्रवृत्त करना । पानी से तर कराना । उ०—(क) सर सरोज प्रफुलित निरखि हिय लखि अधिक अधीर । भिजवति से मजुल करनि भरि भरि अंजुलि नीर ।—प्रताप कवि (शब्द०) । (ख) बिनती सुनि सानद हेरि हँसि करुना बारि भूमि भिजई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

भिजवाना—क्रि० स० [हिं० भेजना का प्रे०रूप] किसी को भेजने में प्रवृत्त करना । भेजने का काम दूसरे से कराना । जैसे,—(क) जरा अपने नौकर से यह पत्र भिजवा दीजिए । (ख) उन्होंने सब रुपया भिजवा दिया है ।

भिजवावर†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भजियाउर' ।

भिजाना¹—क्रि स० [सं० अभ्यञ्ज] भिगोना । तर करना । गीला करना । उ०—मुख पखारि मुँड़हर भिजै सीस सजल कर छुवाइ । मौरि उचै घुटेनि नैं नारि सरोवर न्हाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

भिजाना²—क्रि० स० [हिं० भेजना] दे० 'भिजवाना' ।

भिजोना, भिजोवना—क्रि० स० [हिं० भिगोना] दे० 'भिगोना' ।

भिज्ञ—वि० [सं० अभिज्ञ या विज्ञ] जानकार । वाकिफ ।

भिटका†—संज्ञा पु० [हिं० भीटा] वमीठा । बामी ।

भिटना†—संज्ञा पुं० [देश०] छोटा गोल फल । जैसे, कपास का भिटना ।

भिटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिटना] स्तन के आगे का भाग । कुचाग्र । चूँची । चूचुक ।

भिटाना‡—क्रि० स० [देशी भिट्ट (=भेटना)] दे० 'भेंटाना' ।

भिट्टि—संज्ञा स्त्री० [देशी] दे० 'भेंट' । उ०—करिय भिट्टि मन मोद बढ़ाइय ।—प० रासो, पृ० १५५ ।

भिड़ंत†—संज्ञा स्त्री० [देशी भिड, भिड़त] भिड़ने की स्थिति, क्रिया या भाव ।

भिड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० बरें] बरें । ततैया ।

भिड़ना—क्रि० अ० [हिं० भट अनु० ?] १. एक चीज का बढ़कर दूसरी चीज से टक्कर खाना । टकराना । २. लड़ना । झगड़ना । लड़ाई करना । ३. समीप पहुँचना । पास पहुँचना ।

नजदीक होना। सटना। ४ प्रसंग करना। मैथुन करना। (बाजारू)।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

भिड़ज—संज्ञा पुं० [हिं० भिड़ना ?] १. शूर। वीर पुरुष। २ घोड़ा। अश्व। (डिं०)। उ०—भिल चहुर मुछाँ भुहर भर वज पखर गूघर भिडज वर।—रघु० रू०, पृ० २१६। (ख) भिड़ज वारण रथां भारी, तठी सारी हुई त्यारी, सजे सावंत सूर।—रघु० रू०, पृ० ११७।

भिड़ज्जाँ—संज्ञा पुं० [?] घोड़ा (डिं०)।

भिड़हाँ—संज्ञा पुं० [सं० वृक हिं० भेड़िया] दे० 'भेड़िया'। उ०—वृक पावक कों कहत कवि, वृक भिड़िहा को नाम। वृक दानव दलि देव शिव, राखे सुंदर स्याम।—नंद० ग्रं०, पृ० ६०।

भितⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्त, हिं० भीत] दीवार। भीत। उ०—देखि भवन भित लिखल भुजगपति जसु मने परम तरासे।—विद्यापति, पृ० ३३७।

भितरिया—वि० [हिं०] १. अंतरंग। भीतर आने जानेवाला। २. (पुजारी) वल्लभकुल के मंदिरों के भीतर रहनेवाला।

भितल्ला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भीतरी+तल] दोहरे कपड़े में भीतरी ओर का पल्ला। कपड़े के भीतर का परत। अस्तर।

भितल्ला[2]—वि० भीतर का। अंदर का।

भितल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीतरी+तल] चक्की के नीचे का पाट।

भितानाⓅ—क्रि० स० [सं० भीति] डरना। भयभीत होना। खौफ खाना। उ०—(क) जानि कै जोर करो परिनाम तुम्है पछितैहौ पै मैं न भितैहौं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ही सनाथ ह्वैहौ सही तुमहु अनाथ पति जो लघुतहि न भितैहौ।—तुलसी (शब्द०)।

भित्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. टुकड़ा। शकल। खंड। २. अंश। भाग। ३. दीवाल। भित्ति (को०)।

भित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीवार। भीत। २. अंश। विभाग। हिस्सा (को०)। ३. कोई टूटी वस्तु (को०)। ४. चटाई। नरकुल के सींक की चटाई (को०)। ५. दोष। त्रुटि (को०)। ६. मौका। अवसर (को०)। ७. डर। भय। भीति। ८. खंड। टुकड़ा। (डिं०)। ९. चित्र खींचने का आधार। वह पदार्थ जिसपर चित्र बनाया जाय। १०. भेदन। तोड़ना (को०)।

भित्तिक[1]—वि० [सं०] भेदन करने या तोड़नेवाला।

भित्तिक[2]—संज्ञा पुं० दीवाल। भीत (को०)।

भित्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छिपकली जो भीत पर रहती है। २. दीवाल। भीत (को०)।

भित्तिखातन—संज्ञा पुं० [सं०] चूहा। मूस (को०)।

भित्तिचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] भीत पर बनी तसवीर। दीवार पर बना चित्र (को०)।

भित्तिचौर—संज्ञा पुं० [सं०] चोर जो दीवार में सेंध लगाकर चोरी करे।

भित्तिपातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूहा। मूषक। २. एक प्रकार का बड़ा चूहा (को०)।

भिद—संज्ञा पुं० [सं० भिद्] भेद। अंतर। उ०—(क) सम सरूप के माहिं जहाँ समरूप जु निकरै। सो सारूप्य निबंध नाहिं भिद पहिलो उफरै।—मतिराम (शब्द०)। (ख) मोक्ष काम गुरु शिष्य लखि ताको साधन ज्ञान। वेद उक्त भाषण लगे जीव ब्रह्म भिद भान।—निश्चल (शब्द०)।

भिदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. असि। तलवार। २. वज्र। ३. हीरा (को०)।

भिदना—क्रि० अ० [सं० भिद्] १. पैवस्त होना। धँस जाना। घुँस जाना। २. छेदा जाना। ३. घायल होना। उ०—वज्र सरिस वर बान, हन्यो तवहि रिपुदमन पुनि। भिदि तासो बलवान, कियो क्रोध सिय पुत्र अति।—श्यामविहारी (शब्द०)।

भिदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टूटना। फटना। २. पार्थक्य। अलगाव। ३ किस्म। भेद। प्रकार। ४ धान्यक या जीरा (को०)।

भिदि, भिदिर, भिदु—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का वज्र (को०)।

भिदुर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। उ०—अशनि कुलिश पवि भिदुर पुनि वज्र ह्लादिनी आहि।—नंददास (शब्द०)। २. भिदना। फटना। ३. नष्ट होना। ४. पाकर का पेड़। ५. हाथी के पैर का सिक्कड़।

भिदुर[2]—वि० १. भेदने या छेदनेवाला। २. जो आसानी से टूट जाय। तनुक। ३. मिश्रित। मिला जुला (को०)।

भिदेलिम—वि० [सं०] आसानी से टूट जानेवाला (को०)।

भिद्य[1]—वि० [सं०] भेदनीय।

भिद्य[2]—संज्ञा पुं० तीव्र प्रवाह द्वारा कगारों को काटते हुए बहनेवाला नद।

भिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

भिनकना—क्रि० अ० [अनु०] १. भिन भिन शब्द करना। (मक्खियों का)।

मुहा०—किसी पर मक्खियाँ भिनकना = (१) किसी का इतना अशक्त हो जाना कि उसपर मक्खियाँ भिनभिनाया करें और वह उन्हें उड़ा न सके। नितांत असमर्थ हो जाना। (२) बहुत गंदा होना। अत्यंत मलिन रहना।

२. किसी काम का अपूर्ण रह जाना। ३. घृणा उत्पन्न होना। जैसे,—अब तो उनकी सूरत देखकर जी भिनकता है।

भिनभिन—संज्ञा पुं० [अनु०] भिन भिन की ध्वनि।

भिनभिनाना—क्रि० अ० [अनु०] भिन भिन शब्द करना।

भिनभिनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु० भिनभिनाना+आहट (प्रत्य०)] भिनभिनाने की क्रिया या भाव।

भिनसार†—संज्ञा पुं० [सं० विनिशा अथवा देश०] प्रभात । सवेरा । प्रातःकाल ।

भिनुसरवा‡—संज्ञा पुं० [हिं० भिनुसार+वा] दे० 'भिनसार'। उ०—राति जखनि भिनुसरवा रे पिया आएल हमार।—विद्यापति, पृ० ५५२।

भिनुसार—संज्ञा पुं० [हिं० भिनसार, विहान] सवेरा । प्रभात । प्रातःकाल । उ०—गा अँधियार रैनि मसि छूटी। भा भिनुसार किरन रवि फूटी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२७।

भिनहीं—क्रि० वि० [सं० विनिशा] सवेरे । तड़के । प्रातःकाल ।

भिन्न[1]—वि० [सं०] १. अलग । पृथक् । जुदा । जैसे,—ये दोनों बातें एक दूसरी से भिन्न हैं। २. कटा हुआ । छिन्न (को०)। ३. प्रस्फुटित । विकसित (को०)। ४. अस्तव्यस्त । इतस्ततः (को०)। ५. परिवर्तित । ६ शिथिलीकृत । ढीला किया हुआ (को०)। ७. मिश्रित । एक में मिला जुला (को०)। ७. खड़ा या उठा हुआ । जैसे, रोआँ (को०)। ८. इतर । दूसरा । अन्य । जैसे,—इस से भिन्न और कोई कारण हो ही नहीं सकता।

भिन्न[2]—संज्ञा पुं० १. नीलम का एक दोष जिसके कारण पहननेवाले को पति, पुत्रादि का शोक प्राप्त होना माना जाता है। २. वह संख्या जो इकाई से कुछ कम हो। (गणित)। ३. पुष्प । कुसुम (को०)। ४. किसी तेज धारवाले शस्त्र आदि से शरीर के किसी भाग का कट जाना। (वैद्यक)।

भिन्नक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध।

भिन्नकट—वि० [सं०] मत्त । मस्त (हाथी)।

भिन्नकरट—संज्ञा पुं० [सं०] मस्त हाथी ।

भिन्नकर्ण—वि० [सं०] (पशु) जिसके कान कटे हों।

भिन्नकूट—वि० [सं०] बिना सेनापति की (सेना)।

विशेष—कौटिल्य ने भिन्नकूट और अंध (अशिक्षित) सेनाओं में से भिन्नकूट को अच्छा कहा है, क्योंकि उसमें जनता शासन को नष्ट करने के लिये एक नहीं हो सकती। वह सेनापति का प्रबंध हो जाने पर लड़ सकती है।

भिन्नक्रम—वि० [सं०] जिसका क्रम भंग हो । बे सिलसिले । दोषयुक्त (को०)।

भिन्नगति—वि० [सं०] तीव्रगति से जानेवाला (को०)।

भिन्नगर्भ—वि० [सं०] जिसका व्यूह बिखर गया हो । अव्यवस्थित या अस्तव्यस्त (सेना)।

भिन्नगर्भिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कटी । ककरी (को०)।

भिन्नगुणन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी भाग या अंश का गुण (को०)।

भिन्नघन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी संख्या का घन निकालना। घनमूल मालूम करना (को०)।

भिन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भिन्न होने का भाव । अलग होने का भाव । अलगाव । भेद । अंतर ।

भिन्नत्व—संज्ञा पुं० [सं०] भिन्न होने का भाव । जुदाई।

भिन्नदर्शी—वि० [सं० भिन्नदर्शिन्] पक्षपाती । किसी तरफ का। किसी ओर वाला (को०)।

भिन्नदेश, भिन्नदेशीय—वि० [सं०] अन्य देश संबंधी । अन्यदेशीय। दूसरे देश का (को०)।

भिन्नदेह—वि० [सं०] आघातयुक्त । आहत । क्षत विक्षत (को०)।

भिन्नभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी बर्तन का या घड़े का टुकड़ा (को०)।

भिन्नभिन्नात्मा—वि० [सं० भिन्नभिन्नात्मन्] चना (को०)।

भिन्नमंत्र—वि० [सं० भिन्नमन्त्र] भेद खोलनेवाला ।

भिन्नमनुष्या—वि० स्त्री० [सं०] वह (भूमि) जिसमें भिन्न भिन्न जातियों, स्वभावों और पशों के लोग बसते हों।

विशेष—कौटिल्य ने प्रचलित राजशासन की रक्षा के विचार से ऐसे देश को अच्छा कहा है, क्योंकि उसमें जनता शासन को नष्ट करने के लिये एक नहीं हो सकती।

भिन्नमर्याद—वि० [सं०] १. जिसने मर्यादा भंग कर दी है। २. जो निर्बंध हो। अनियंत्रित (को०)।

भिन्नमर्यादी—वि० [सं० भिन्नमर्यादिन्] दे० 'भिन्नमर्याद'।

भिन्नमुद्र—वि० [सं०] जिसकी मुद्रा या मोहर टूट गई हो।

भिन्नयोजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार पाषाणभेदक नाम का पौधा (को०)।

भिन्नरुचि—वि० [सं० [अलग अलग रुचिवाला (को०)।

भिन्नवर्ण—वि० [सं०] १. दूसरे वर्ण का। २. विवर्ण। विवरन (को०)।

भिन्नवृत्त—वि० [सं०] १. बुरा जीवन व्यतीत करनेवाला। जिसमें छंददोष हो। २. छंद संबंधी दोष से युक्त।

भिन्नवृत्ति—वि० [सं०] १. बुरा जीवन व्यतीत करनेवाला। भ्रष्ट। २. भिन्न रुचि या भाववाला। ३. दूसरे पेशे का।

भिन्नव्यवकलित—संज्ञा पुं० [सं०] अंकों का व्यवकलन या वियाजन (को०)।

भिन्नसंहति—वि० [सं०] संबंधविच्छिन्न । वियुक्त (को०)।

भिन्नहृदय—वि० [सं०] १. जिसका हृदय छिद गया हो। २. दुखी मन का। निराश (को०)।

भिन्नाना—क्रि० अ० [अनु०] चकराना।

भिन्नार्थ—वि० [सं०] १. भिन्न प्रयोजन या उद्देश्यवाला। २. जिसका अर्थ स्पष्ट हो। स्पष्टार्थक (को०)।

भिन्नोदर—संज्ञा पुं० [सं०] सौतेला भाई।

भियना⑨†—क्रि० अ० [सं० भीत] भयभीत होना। डरना। उ०—(क) कलि मल खल दल भारी भीति भियो है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ढीली करि दाँवरी दावरी साँवरेहि देखि सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है।—तुलसी

[हिं० भैया] भाई। भ्राता।

भियानी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्याही। रोशनाई। उ०—कागद सात अकास बनावैं। सात समुंद्र भियानी लावैं।—हिंदी प्रेमगाथा० पृ० २७७।

भिरंगी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्ग] एक प्रकार का कीड़ा। वि० दे० 'भृंग'। उ०—मोरे लगि गए बान सुरंगी हो। धन सतगुर उपदेश दियो है होइ गयो चित्त भिरंगी हो।—संतबानी०, भा० २, पृ० १३।

भिरना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भिड़ना'। उ०—आवत देखन लेत सिवा सरजं मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहौ।—भूषण ग्रं०, पृ० ३१३।

भिरिंग—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्ग] दे० 'भृंग'।

भिरिंटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० भिरिण्टिका] श्वेत गुंजा। सुफेद घुंघची [को०]।

भिलनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भील] भील जाति की स्त्री।

भिलनी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा या चारखाना।

भिलना†—क्रि० अ० [देश०] मिलना। संयुक्त होना। उ०—गहरं, दुरदान मद्दान मद्दी। भिली साइर जानि निव्वान नद्दी।—पृ० रा०, २।२३७।

भिलावाँ—संज्ञा पुं० [सं० भल्लातक] १. एक प्रसिद्ध जंगली वृक्ष जो सारे उत्तरी भारत में आसाम से पंजाब तक और हिमालय की तराई में ३५०० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

विशेष—इसके पत्ते गूमा के पत्तों के समान होते हैं। इसके तने को पाछने से एक प्रकार का रस निकलता है जिससे वार्निश बनता है। इसमें जामुन के आकार का एक प्रकार का लाल फल लगता है जो सूखने पर काला और चिपटा हो जाता है और जो बहुधा औषध के काम में आता है। कच्चे फलों की तरकारी भी बनती है। पक्के फल को जलाने से एक प्रकार का तेल निकलता है जिसके शरीर में लग जाने से बहुत जलन और सूजन होती है। इस तेल से बहुधा भारत के धोबी कपड़े पर निशान लगाते हैं जो कभी छूटता नहीं। इसमें फिटकरी आदि मिलाकर रंग भी बनाया जाता है। कच्चे फल का ऊपरी गूदा या भीतरी गिरी कहीं कहीं खाने के काम में भी आती है। वैद्यक में इसे कसैला, गरम, शुक्रजनक, मधुर, हलका तथा वात, कफ, उदररोग, कुष्ठ, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, ज्वर आदि का नाशक माना है।

पर्या०—अरुष्कर। शोथहृत। वह्निनामा। वीरतरु। अग्निवृंत भूतनाशन। अग्निमुखी। भल्ली। शैलबीज। वातारि। धनुर्वृक्ष। बीजपादप। वह्नि। महातीक्ष्ण। अग्निक। स्फोटहेतु। रक्तहर।

भिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भील'।

भिल्लगवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलगाय।

भिल्लतरु—संज्ञा पुं० [सं०] लोध।

भिल्लभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] घुंघची। गुंजा [को०]।

भिल्लरी—संज्ञा स्त्री० [देश० या सं० भल्ल (=तीर का फल)] भल्लिका। तीर का अग्र भाग। उ०—सनन सोर भिल्लरिय धनन घर धार धलक्किय।—पृ० रा० २।२८३।

भिल्लोट, भिल्लोटक—संज्ञा पुं० [सं०] लोध का पेड़। लोध्र। वृक्ष [को०]।

भिश्त(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० बिहिश्त] वैकुंठ। स्वर्ग। उ०—प्रलख अकल जानै नहीं जीव जहन्नम लोय। हरदम हरि जान्या नहीं भिश्त कहाँ ते होय।—कबीर (शब्द०)।

भिश्ती—संज्ञा पुं० [?] मशक द्वारा पानी ढोनेवाला व्यक्ति। सक्का।

भिषक्—संज्ञा पुं० [सं० भिषज्] १. वैद्य। चिकित्सक। २. औषधि। दवा (को०)। ३. विष्णु का नाम (को०)। ४. देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार (को०)।

विशेष—इस अर्थ का प्रयोग द्विवचन में होता है।

भिषक्पाश—संज्ञा पुं० [सं०] कुवैद्य। छद्मवैद्य [को०]।

भिषक्प्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़ूच।

भिषग्—संज्ञा पुं० [सं० भिषज्] भिषज् शब्द का कर्ता कारक एक-वचन। दे० 'भिषक्'।

भिषग्जित—संज्ञा पुं० [सं०] दवा। औषध।

भिषग्भद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदंतिका।

भिषग्माता—संज्ञा स्त्री० [सं० भिषग्मातृ] वासक। अड़ूसा। अरूसा [को०]।

भिषग्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्कृष्ट वैद्य। श्रेष्ठ चिकित्सक। २. अश्विनीकुमार। दे० 'भिषक्'—३. का विशेष [को०]।

भिषज्—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्य। दे० 'भिषक्'।

भिषजावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण [को०]।

भिषज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोग का निवारण। २. औषध। दवा [को०]।

भिष्ख—संज्ञा पुं० [सं० भिक्षा] दे० 'भीख'। उ०—नहु मान धनिष्ख भिष्ख मावइय राम घरहि उप्पत्ति।—कीर्ति०, पृ० ७०।

भिष्टल†—वि० [सं० भ्रष्ट] भ्रष्ट। पतित। खराब। उ०—कामी मति भिष्टल सदा, चलै चाल विपरीत।—सहजो०, पृ० १८५।

भिष्टा†—संज्ञा पुं० [सं० विष्ठा] मल। गू। गलीज।

भिष्मा, भिष्मिका, भिष्मिटा भिष्मिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुजा हुआ अन्न। दग्धान्न [को०]।

भिष्षना†(पु)—क्रि० स० [सं० भिक्षण] भीख माँगना। याचना करना। उ०—पनाह जोति दिष्षयं। मरीच भानं भिष्षयं। सुभट्ट छंद बद्दयं।—पृ० रा०, ७।४६।

भिसटा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० विष्टा] मल। गू। गलीज। उ०—अणभजिया भजिया तणी दीसे प्रतख दुसाल। भिसटा तो वायस भखै, मोती भखै मराल।—रघु० रू०, पृ० ४१।

भिसत(पु)—संज्ञा पुं० [फा० बिहिश्त] स्वर्ग। उ०—पग्यो न दिल प्रभुरें पदपंकज भिसत न त्यागि तिक भेटै।—रघु० रू० पृ० १८।

भिसर—संज्ञा पुं० [सं० भूसुर] ब्राह्मण। (डिं०)।

भिसिणी[1]—संज्ञा पुं० [सं० व्यसनी] व्यसनी (डिं०)।

भिसिणी†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० बिसिनी] पद्मिनी। कमलिनी (को०)।

भिस्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बिहिश्त] दे० 'बिश्त'।

भिस्स—संज्ञा स्त्री० [सं० विस] कमल की जड़। भसींड़।

भिस्सटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भिष्मा' (को०)।

भिस्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उबाला चावल। भात (को०)।

भिस्सिटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भिष्मा'।

भिहराना†—क्रि० अ० [सं० विहरण] भहराना। टूट पड़ना। उ०—इत यह बली व्याल भिहरानो। मधु-रिपु-प्रावन प्रति सतुहानो।—नंद० ग्रं०, पृ० २८३।

भिहिलाना‡—क्रि० अ० [हिं० बिहराना] बिखर जाना। नष्ट होना। उ०—कागज के पुतरी तन जानो बुंद परे भिहिलायो।—दरिया०, पृ० १००।

भींगना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'भीगना'।

भींगी—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गी] १. भँवरा। भ्रमि। २. एक प्रकार का फतिंगा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह किसी भी कृमि को अपने रूप में ले आता है।

भींचना†—क्रि० स० [हिं० खींचना] १. खींचना। कसना। दबाना। उ०—त्यों तिय भींचि भुजनि मैं पी कूँ।—(शब्द०)। २. मूँदना। ढाँपना। बंद करना (आँख के लिये)। ३. काटना। दाँतों से काटना।

भींजना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० भीगना] १. आर्द्र होना। गीला होना। तर होना। भीगना। २. पुलकित वा गद्गद होना। प्रेममग्न हो जाना। ३ लोगों के साथ हेल मेल बढ़ाना। मेल मिलाप पैदा करना। ४. स्नान करना। नहाना। ५. समा जाना। घुस जाना।

भींट—संज्ञा पुं० [हिं० भीट] दे० 'भीट'।

भींटना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'भेंटना'। उ०—सुंदर तृष्णा कोढनी कंढी लोभ भ्रतार। इनकौ कबहुँ न भीटिये कोढ लगै तन ख्वार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१४।

भींत—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्ति] दे० 'भीत'।

भी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] भय। डर। खौफ। उ०—सुनत आइ ऋषि कुसहरे नरसिंह मंत्र पढ़ि भय भी के।—तुलसी (शब्द०)।

भी[2]—अव्य० [हिं० ही] १. अवश्य। निश्चय करके। जरूर।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग किसी एक पदार्थ या मनुष्य के साथ दूसरे पदार्थ या मनुष्य का निश्चयपूर्वक होना सूचित करता है। जैसे,—(क) तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगा। (ख) वेतन के साथ भोजन भी मिलेगा। (ग) सजा के जुरमाना भी होगा।

२. अधिक। ज्यादा। विशेष। जैसे—इसपर सन्नाटा और भी आश्चर्यजनक है। ३ तक। लौं। उ०—मनुष्य की कौन कहे, जहाँ तक दृष्टि जाती थी, पशु भी दिखलाई न देता था।—अयोध्यासिंह (शब्द०)।

भीउँ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भीम] युधिष्ठिर के छोटे भाई। भीमसेन। उ०—जैसे जरत लच्छ घर साहस कीन्हा भीउँ। जरत खंभ तस काढ़यो कै पुरुषारथ जीउँ।—जायसी (शब्द०)।

भीक[1]—वि० [सं०] डरा हुआ। भीत।

भीक†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीख] दे० 'भीख'।

भीकर—वि० [सं०] भयंकर। भयावना (को०)।

भीख—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] १. किसी दरिद्र का दीनता दिखाते हुए उदरपूर्ति के लिये कुछ माँगना। भिक्षा।

क्रि० प्र०—माँगना।

यौ०—भिखमंगा। भिखारी।

२. वह धन या पदार्थ जो इस प्रकार माँगने पर दिया जाय। भिक्षा में दी हुई चीज। खैरात।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

भीखन(पु)—वि० [सं० भीषण] भयानक। भयंकर। डरावना। उ०—एरो खनहुँ न सुख लखो दुख है दुखद दिखाइ। भीखन भीखन लगत है तीखन तीख बनाइ।—रामसहाय (शब्द०)।

भीखम(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० भीष्म] राजा शांतनु के पुत्र भीष्म पितामह।

भीखम[2]—वि० भयानक। डरावना।

भीगना—क्रि० अ० [सं० अभ्यञ्ज] पानी या और किसी तरल पदार्थ के संयोग के कारण तर होना। आर्द्र होना। जैसे,—वर्षा से कपड़े भीगना, पानी में दवा भीगना। उ०—गगरी भरत मोरी सारी भीगी, सुरख चुनरिया।—गीत (शब्द०)।

मुहा०—भीगी बिल्ली होना=भय आदि के कारण दब जाना। बिलकुल चुप रहना। उ०—भीगी बिल्ली हैं और काठ के उल्लू है।—चुभते०, पृ० ५।

भीच—संज्ञा पुं० [डिं०] दे० 'भीचर'। उ०—जीता भीच अजीत रा, ईंदे पाई हार।—रा० रू०, पृ० ६१।

भीचर—संज्ञा पुं० [डिं०] सुभट। वीर।

भीछ(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] सुभट। भीच। भीचर। उ०—तब बहुरयो पारस फिरिय फिरयो भीछ चहुआन।—पृ० रा०, २५।५६२।

भीजना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'भीगना'। २. भारी होना। बढ़ना। उ०—बूडि बूडि तरै औधि थाह घनआनंद यौं जीव सूक्यो जाय ज्यों ज्यों भीजत सरवरी।—घनानंद, ३०।

पुं० [देश०] १. ढूहेवाली जमीन। टीलेदार भूमि। हुई पृथ्वी। २. वह ऊँची भूमि [illegible]ती

होती है। भीटा। ३. एक प्रकार की तौल जो प्रायः मन भर के बराबर होती है।

भीटन—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भीटा'।

भीटना†—क्रि० स० [हिं०] भेटना। मिलना। उ०—सुंदर तृष्णा चूहरी लोभ चूहरो जानि। इनके भीटे होत है ऊँचे कुल की हानि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७४१।

भीटा—संज्ञा पुं० [देश०] १. आसपास की भूमि से कुछ उभरी हुई भूमि। ऊँची वा टीलेदार जमीन। २. वह बनाई हुई ऊँची और ढालुआँ जमीन जिसपर पान की खेती होती है और जो चारो ओर से छाजन या लताओं आदि से ढकी हुई होती है। वि० दे० 'पान'।

भीड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिड़ना] १. एक ही स्थान पर बहुत से आदमियों का जमाव। जनसमूह। आदमियों का झुंड। ठठ। जैसे,—(क) इस मेले में बहुत भीड़ होती है। (ख) रेल में बहुत भीड़ थी।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।—होना।

मुहा०—भीड़ चीरना=जनसमूह को हटाकर जाने के लिये मार्ग बनाना। भीड़ छँटना=भीड़ के लोगों का इधर उधर हो जाना। भीड़ न रह जाना।

२. संकट। आपत्ति। मुसीबत। जैसे,—जब तुम पर कोई भीड़ पड़े, तब मुझसे कहना।

क्रि० प्र०—कटना।—काटना।—पड़ना।

भीड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिड़ना] मलने, लगाने या भरने की क्रिया।

भीड़ना(पु)†—क्रि० स० [हिं० भिड़ाना] १. मिलाना। लगाना। २. मलना। उ०—करि गुलाल सो धुंधरित सकल ग्वालिनी ग्वाल। रोरी भीड़न के सुमिस गोरी गहे गोपाल।—पद्माकर (शब्द०)।

भीड़ भड़क्का—संज्ञा पुं० [हिं० भीड़+भड़क्का अनु०] बहुत से आदमियों का समूह। भीड़।

भीड़भाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीड़+भाड़ अनु०] मनुष्यों का जमाव। जनसमूह। भीड़।

भीड़ा¹—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भिड़] दे० 'भीड़'।

भीड़ा²—वि० [हिं० भिड़ना] संकुचित। तंग। जैसे, भीड़ी गली। उ०—महंत जी ने कहा कि स्वामी, गली बहुत भीड़ी है। लोगों का आना जाना रुक गया।—श्रद्धाराम (शब्द०)।

भीड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वृन्तिका हिं० भिंड़ी] भिंडी। रामतरोई। उ०—बनकोरा पिड़ि साची चीड़ी। खोप पिंडारू कोमल भीड़ी।—सूर (शब्द०)।

भीड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीड़] जनसमूह। भीड़।

भीत¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्ति] १. भित्तिका। दीवार।

मुहा०—भीत में दौड़ना या दौरना=अपने सामर्थ्य से बाहर अथवा असंभव कार्य करना। उ०—बालि बला खर दूषन और अनेक गिरे जे जे भीत में दौरे।—तुलसी (शब्द०)। भीत के बिना चित्र बनाना=बे सिर पैर की बात करना। बिना प्रमाण की बात करना। उ०—तात रिस करत भ्राता कहै मारिहौं भीति बिन चित्र तुम करत रेखा।—सूर (शब्द०)।

२. विभाग करनेवाला परदा। ३. चटाई। ४. छत। गच। ५. खंड। टुकड़ा। ६. स्थान। ७. दरार। ८. कोर। कसर। त्रुटि। ९. अवसर। अवकाश। मौका।

भीत²—वि० [सं०] [स्त्री० भीता] डरा हुआ। जिसे भय लगा हो। उ०—कनक गिरि शृंग चढ़ि देखि मर्कट कटक वदत मंदोदरी परम भीता।—तुलसी (शब्द०)।

भीत³—संज्ञा पुं० भय। डर।

भीतगायन—संज्ञा पुं० [सं०] डरता हुआ या मुँहचोर गवैया।

भीतचारी—वि० [सं०] डरता हुआ काम करनेवाला।

भीतड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० भीतर] मकान। गृह। उ०—गजरीजे जस गीतड़ा गया भीतड़ा भाग।—बाँकी० ग्रं० भा० १, पृ० ४६।

भीतर¹—क्रि० वि० [सं० अभ्यन्तर देशी भिन्तर, भीतर] अंदर। में। जैसे,—घर के भीतर, महीने भर के भीतर, सौ रुपए के भीतर। उ०—भरत मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहँ आए।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—भीतर का कूआँ=वह उपयोगी पदार्थ जिससे कोई लाभ न उठा सके। अच्छी, पर किसी के काम न आ सकने योग्य चीज। उ०—सूरदास प्रभु तुम बिन जोबन घर भीतर को कूप।—सूर (शब्द०)। भीतर पैठकर देखना=तत्व जानना। असलियत जाँचना।

भीतर²—संज्ञा पुं० १. अंतःकरण। हृदय। जैसे,—जो बात भीतर से न उठे, वह न करनी चाहिए।

मुहा०—भीतर ही भीतर=मन ही मन। हृदय में।

२. रनिवास। जनानखाना। उ०—अवधनाथ चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। भए प्रेम बस सचिव सुनि विप्र सभासद राउ।—तुलसी (शब्द०)।

भीतरा—वि० [देशी भीतर] भीतर या जनानखाने में जानेवाला। स्त्रियों में आने जानेवाला।

भीतरि(पु)—अव्य० [हिं० भीतर] दे० 'भीतर'। उ०—करि गहि लई उठाइ पकरि गृह भीतरि लाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १९६।

भीतरिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० भीतर+इया (प्रत्य०)] १. वह जो भीतर रहता हो। २. वल्लभीय ठाकुरों के वे प्रधान पुजारी आदि जो मंदिर के भीतर मूर्ति के पास रहते हैं। (सब लोगों को मंदिर के भीतर जाने का अधिकार नहीं होता)।

भीतरिया²—वि० भीतरवाला। अंदर का। भीतरी।

भीतरी—वि० [हिं० भीतर+ई (प्रत्य०)] १. भीतरवाला। अंदर का। जैसे, भीतरी कमरा; भीतरी दरवाजा।

मुहा०—भीतरी आँखें अंधी होना=विवेक न होना। ज्ञान न होना। उ०—देख करके ही किसी ने क्या किया, साँसतें सह

जातियाँ कितनी मुई । तब हुआ क्या बाहरी आँखें बचे, जब कि आँखें भीतरी अधी हुई ।—चुभते०, पृ० ४६ ।
२. छिपा हुआ । गुप्त । जैसे,—भीतरी बात, भीतरी वैमनस्य । ३. दे० 'भीतरी टाँग' ।

भीतरी टाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीतरी + टाँग] कुश्ती का एक पेंच ।
विशेष—जब शत्रु पीठ पर रहता है, तब मौका पाकर खिलाड़ी भीतर से ही टाँग मारकर विपक्षी को गिराता है। इसी को भीतरी टाँग कहते हैं ।

भीति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डर । भय । खौफ । उ०— वानरेंद्र तब यों हँसि बोल्यो । भीति भेद जिय को सब खोल्यो ।—केशव (शब्द०) । २. कंप ।

भीति²—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्ति हिं० भीत] दीवार । उ०—रही मिलि भीति पै सभीति लोक लाज भीजी ।—घनानंद, पृ० २०७ ।

भीतिकर—वि० [सं०] भयंकर । भयावना । डरावना ।

भीतिकारी—वि० [सं० भीतिकारिन्] भयानक । डरावना । भयावना । खौफनाक ।

भीतिच्छिद्—वि० [सं०] भय को दूर करनेवाला [को०] ।

भीती⁰†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्ति] दीवार । उ०—परम प्रेम मय मृदु मसि कीनी । चारु चित्त भीती लिखि दीनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

भीती²—संज्ञा स्त्री० [सं० भीति] डर । भय । उ०—चंद्र की दुति गई पहँ पीरी भई सकुच नाही दई प्रति ही भीती ।—सूर (शब्द०) ।

भीती³—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक अनुचरी या मातृका का नाम ।

भीन⁰†—संज्ञा पुं० [हिं० बिहान] सवेरा । प्रातःकाल । उ०— काहू सो न कहो यह गहो मन माँझ एरी तेरी सौ सुनैगी जो पै प्रात रहें भीन है ।—प्रियादास (शब्द०) ।

भीनना—क्रि० अ० [हिं० भींगना] भर जाना । समा जाना । पैवस्त हो जाना । जैसे,—जहर रग रग मे भीन गया है । उ०—(क) कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाइ है बाँसुरिया रंगभीनी ।—रसखान (शब्द०) । (ख) रुकमिनि अँसुवन भीनी पुनि हरि अँसुवन भीनी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०५ ।

भीना†—संज्ञा स्त्री० [सं० भिन्न] भिन्नता । अलगाव । उ०—मैं हूँ जीव करम बहु कीना । कैसे, यम सो करि हो भीना। —कबीर सा०, पृ० ५४६ ।

भीनी—वि० [हिं० भींगना] १. आर्द्र । सिक्त । २. हलकी और मीठी (खुशबू) । जैसे,—कैसी भीनी भीनी खुशबू आ रही है ।

भीमंग⁰—वि० [सं० भीमाङ्ग] भयंकर अंगवाला । भयस्वरूप । उ०—जनु कि भीम भीमंग दंत दंतीय उछारन । जनु कि गलगज्जि बज्जि पनग गरुड़ बहु पारन ।—पृ० रा०, ८।३१ ।

भीम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भयानक रस । २. शिव । ३. विष्णु । ४. अम्लवेत । ५. महादेव की आठ मूर्तियों के अंतर्गत एक मूर्ति । ६. एक गंधर्व का नाम । ७. पाँचो पांडवों में से एक जो वायु के संयोग से कुंती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । (जन्मकथा के लिये दे० 'पांडु') ।
विशेष—ये युधिष्ठिर से छोटे और अर्जुन से बड़े थे। ये बहुत बड़े वीर और बलवान् थे। कहते हैं, जन्म के समय जब ये माता की गोद से गिरे थे, तब पत्थर टूटकर टुकड़े टुकड़े हो गया था । इनका और दुर्योधन का जन्म एक ही दिन हुआ था । इन्हे बहुत बलवान् देखकर दुर्योधन ने ईर्ष्या के कारण एक बार इन्हे विष खिला दिया था और इनके बेहोश हो जाने पर लताओं आदि से बाँधकर इन्हे जल में फेंक दिया था । जल में नागों के डसने के कारण इनका पहला विष उतर गया और नागराज ने इन्हे अमृत पिलाकर और इनमें दस हजार हाथियो का बल उत्पन्न कराके घर भेज दिया था। घर पहुँचकर इन्होंने दुर्योधन की दुष्टता का हाल सबसे कहा । पर युधिष्ठिर ने इन्हे मना कर दिया कि यह बात किसी से मत कहना; और अपने प्राणों की रक्षा के लिये सदा बहुत सचेत रहना । इसके उपरांत फिर कई बार कर्ण और शकुनि की सहायता से दुर्योधन ने इनकी हत्या करने का विचार किया पर उसे सफलता न हुई। गदायुद्ध में भीम पारगत थे । जब दुर्योधन ने जतुगृह में पाडवों को जलाना चाहा था, तब भीम ही पहले से समाचार पाकर माता और भाइयो को साथ लेकर वहाँ से हट गए थे। जगल में जाने पर हिडिंब की बहन हिडिंबा इनपर आसक्त हो गई थी । उस समय इन्होंने हिडिंब को युद्ध मे मार डाला था और भाई तथा माता की आज्ञा से हिडिंबा से विवाह कर लिया था । इसके गर्भ से इन्हें घटोत्कच नाम का एक पुत्र भी हुआ था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय ये पूर्व और वंग देश तक दिग्विजय के लिये गए थे और अनेक देशों तथा राजाओं पर विजयी हुए थे । जिस समय दुर्योधन ने जूए में द्रौपदी को जीतकर भरी सभा में उसका अपमान किया था, और उसे अपनी जाँघ पर बैठाना चाहा था; उस समय इन्होने प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुर्योधन की यह जाँघ तोड डालूँगा और दुःशासन से लड़कर उसका रक्तपान करूँगा । वनवास में इन्होने अनेक जगली राक्षसों और असुरों को मारा था । अज्ञातवास के समय ये वल्लभ नाम से सूपकार बनकर विराट के घर मे रहे थे । जब कीचक ने द्रौपदी से छेड़छाड़ की थी, तब उसे भी इन्होने मारा था । महाभारत युद्ध के समय कुरुक्षेत्र मे इन्होने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया था । दुर्योधन के सब भाइयों को मारकर दुर्योधन की जाँघ तोड़ी थी और दुःशासन की भुजा तोडकर उसका रक्त पीया था । महाप्रस्थान के समय भी ये युधिष्ठिर के साथ थे और सहदेव, नकुल तथा अर्जुन तीनो के मर जाने के उपरांत इनकी मृत्यु हुई थी । भीमसेन, वृकोदर आदि इनके नाम हैं ।
मुहा०—भीम के हाथी = भीमसेन के फेंके हुए हाथी ।
विशेष—कहा जाता है, एक बार भीमसेन ने सात हाथी आकाश मे फेंक दिए थे जो आज तक वायुमंडल में ही घूमते

हैं, लौटकर पृथ्वी पर नहीं आए। इसका व्यवहार ऐसे पदार्थ या व्यक्ति के लिये होता है जो एक बार जाकर फिर न लौटे। उ०—अब निज नैन अनाथ भए। मधुबन हू ते माधव सजनी कहियत दूरि गए। मथुरा बसत हुती जिय आशा यह लागत व्यवहार। अब मन भयो भीम के हाथी सुपने अगम अपार।—सूर (शब्द०)।

८. विदर्भ के एक राजा जिन्हें दमन नामक ऋषि के वर से दम, दांत और दमन नामक तीन पुत्र तथा दमयंती नाम की कन्या हुई थी। ९. महर्षि विश्वामित्र के पूर्वपुरुष जो पुरुरवा के पौत्र थे। १०. कुंभकर्ण के पुत्र का नाम जो रावण की सेना का एक सेनापति था।

भीम[२]—वि० १. भीषण। भयानक। भयंकर। २. बहुत बड़ा।

भीमक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार के गण जो पार्वती के क्रोध से उत्पन्न हुए थे।

भीमकर्मा—वि० [सं० भीमकर्मन्] १. भयंकर काम करनेवाला। २. महापराक्रमी। अत्यंत शक्तिशाली (को०)।

भीमकार्मुक—वि० [सं०] जिसका धनुष विशाल हो। बहुत बड़े धनुषवाला (को०)।

भीमकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] भीमसेन के पुत्र घटोत्कच।

भीमचंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० भीमचण्डी] एक देवी का नाम।

भीमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीम या भयानक होने का भाव। भयंकरता। डरावनापन। उ०—कौन के तेज बलसीम भट भीम से भीमता निरखि करि नैन ढाँके।—तुलसी (शब्द०)।

भीमतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भीमसेनी एकादशी'।

भीमदर्शन—वि० [सं०] भीम रूपवाला। जिसे देखने से डर लगे (को०)।

भीमद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ल द्वादशी तिथि (को०)।

भीमनाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंह। शेर। २. भयंकर आवाज। ३. प्रलयकाल में प्रगट होनेवाला एक जलद (को०)।

भीमपराक्रम[१]—वि० [सं०] जिसका पराक्रम भय पैदा करे। महाबली।

भीमपराक्रम[२]—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम (को०)।

भीमपलाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जिसके गाने का समय २१ दंड से २४ दंड तक है। यह धनाश्री और पूर्वी को मिलाकर बनाई गई है। इसमें गांधार, धैवत और निषाद तीनों स्वर कोमल और बाकी शुद्ध लगते हैं। इसमें पंचम वादी और मध्यम संवादी होता है। कुछ लोग इसे श्रीराग की पुत्रवधू भी मानते हैं।

भीमपुर—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंडिनपुर।

भीमबल[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की अग्नि। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

भीमबल[२]—वि० दे० 'भीमपराक्रम'।

भीममुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाण। (रामायण)। २. एक वानर का नाम।

भीमयु—वि० [सं०] भयानक। खतरनाक (को०)।

भीमर—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध। समर। २. गुप्तचर। जासूस। भेदिया (को०)।

भीमरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक असुर जिसे विष्णु ने अपने कूर्म अवतार में मारा था। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ३. विकृति के एक पुत्र का नाम। ४. कृष्ण के एक पुत्र का नाम (को०)।

भीमरथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार सह्य पर्वत से निकली हुई एक नदी जिसमें स्नान करने का बहुत माहात्म्य है। २. वैद्यक के अनुसार मनुष्य की वह अवस्था जो ७७वें वर्ष के सातवें मास की सातवीं रात समाप्त होने पर होती है। कहते हैं, मनुष्य के लिये यह रात बहुत कठिन होती है; और जो इसे पार कर जाता है, वह बहुत पुण्यात्मा होता है।

भीमरा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भीमा' (नदी)।

भीमरा[२]—वि० भीषण। भयंकर।

भीमराज—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराज] एक प्रसिद्ध चिड़िया जो काले रंग की होती है।

विशेष—इसकी टाँगें छोटी और पंजे बहुत बड़े होते हैं और इसकी दुम में केवल १० पर होते हैं। यह प्रायः कीड़े मकोड़े खाती है और कभी कभी बड़ी चिड़ियों पर भी आक्रमण करती है। यह बहुत लड़ाकी होती है और छोटी छोटी चिड़ियों को, जिन्हें पकड़ सकती है, निगल जाती है। यह बोली की नकल करना बहुत अच्छा जानती है और अनेक पशुओं तथा मनुष्य की बोली बोल सकती है। इसकी स्वाभाविक बोली भी बहुत सुंदर होती है। यह अपना घोंसला खुले हुए स्थानों में बनाती है। इसके अंडों पर लाल या गुलाबी धब्बे होते हैं।

भीमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण की एक कन्या।

भीमल—वि० [सं०] भयानक। डरावना (को०)।

भीमविक्रम—वि० [सं०] डरावनी या भयानक शक्तिवाला।

भीमविक्रांत[१]—संज्ञा पुं० [सं० भीमविक्रान्त] सिंह।

भीमविक्रांत[२]—वि० महा बलशाली (को०)।

भीमविग्रह—वि० [सं०] भयानक आकृति या शरीरवाला (को०)।

भीमवेग—वि० [सं०] अत्यंत तीव्र गति या वेगवाला (को०)।

भीमशंकर—संज्ञा पुं० [सं० भीमशङ्कर] भगवान् शंकर के द्वादश पवित्र लिंगों में से एक। यह ज्योतिर्लिंग पूना जिले के डाकिनी नामक स्थान में है।

भीमशासन—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज का एक नाम (को०)।

भीमसेन—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर के छोटे भाई भीम। वि० दे० 'भीम'।

भीमसेनी[१]—संज्ञा पुं० [हिं० भीमसेन+ई (प्रत्य०)] भीमसेनी कपूर। बरास। वि० दे० 'कपूर'।

भीमसेनी[2]—वि० भीमसेन संबंधी। भीमसेन का। जैसे, भीमसेनी एकादशी।

भीमसेनी एकादशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीमसेनी+एकादशी] १. ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी। निर्जला एकादशी। २. माघ शुक्ला एकादशी।

भीमसेनी कपूर—संज्ञा पुं० [सं० भीमसेनी+कपूर] दे० 'कपूर'।

भीमा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रोचना नाम का गंधद्रव्य। २. कोड़ा। चाबुक। ३. दक्षिण भारत की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकलकर कृष्णा नदी में मिलती है। ४. दुर्गा। ५. एक प्रकार की नाव। ४० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी तथा १० हाथ ऊँची नाव। (युक्तिकल्पतरु)।

भीमा[2]—वि० स्त्री० भयंकर। भीषण।

भीमान्—वि० [सं० भीमत्] भयंकर। भयावह।

भीमू—संज्ञा पुं० [डिं०] भीमसेन।

भीमोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हड़ा। कूष्मांड।

भीमोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

भीम्राथली—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ०—तापानी पर्वती चीनिया भोटी ब्रह्मा देशी। धन्नी भीम्राथली काठिया मारवाड़ मधि देशी।—रघुराज (शब्द०)।

भीया[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० भैया] भाई। उ०—गोरख माँगि भषी नहिं कबहू सुरापान नहिं पीया। भूर्ठहिं नाव लेत सिद्धन को नरक जाहिगो भीया।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७१।

भीर[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भीड़] १. दे० 'भीड़'। २. कष्ट। दुख। तकलीफ। ३. संकट। विपत्ति। आफत। उ०—(क) जब जब भीर परत संतन पर तब तब होत सहाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भीर बाँह पीर की निपट राखी महावीर कान के सकोच तुलसी कै सोच भारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) अपर नरेश करै कोउ भीरा। वेगि जनाउब धर्मज तीरा।—सबल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

भीर[2]—वि० [सं० भीरु] १. डरा हुआ। भयभीत। उ०—वामदेव राम को सुभाव सील जानि जिय नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं।—तुलसी (शब्द०)। २. डरपोक। डरनेवाला। कायर। साहसहीन। उ०—नृपहिं प्रान प्रिय तुम रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा।—तुलसी (शब्द०)।

भीरना—क्रि० अ० [सं० भी या हिं० भीरु] डरना। भयभीत होना। उ०—सुनो एक बात सुत तिया लै करी तगात चीरें घोरें भीरें नाहिं पीछे उन भाषिए।—प्रियादास (शब्द०)।

भीरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में होता है। इसकी लकड़ियों से शहतीर बनते हैं और इनमें से गोंद, रंग और तेल निकलता है।

भीरा[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'भीर' या 'भीड़'।

भीरा[3]—वि० [सं० भीरु] डरपोक। कायर।

भीरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. अरहर की दाल। २. अरहर का बोझ। ३. भीड़। गुट। समूह। उ०—कहत कि सुनहु भिया ही हीरी। अवर खेल खेलहु वटि भीरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५।

भीरु[1]—वि० [सं०] डरपोक। कायर। बुजदिल। कादर।

भीरु[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शतावरी। कंटकारी। भटकटैया। ३. बकरी। ४. छाया। ५. भीत या डरपोक स्त्री। ६. रजत। चाँदी (को०)।

भीरु[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शृगाल। सियार। गीदड़। २. व्याघ्र। बाघ। ३. ऊख की एक जाति। ४. खजूर (को०)।

भीरुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन। जंगल। २. उल्लू। ३. एक प्रकार की ईख। ४. चाँदी ५. व्याघ्र (को०)। ६. भालू। भल्लूक (को०)। ७. सियार। शृंगाल (को०)।

भीरुक[2]—वि० डरपोक। कायर।

भीरुचेता[1]—संज्ञा पुं० [सं० भीरुचेतस्] हिरण।

भीरुचेता[2]—वि० डरपोक।

भीरुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डरपोकपन। कायरता। बुजदिली। २. डर। भय।

भीरुताई—संज्ञा स्त्री० [सं० भीरुता+ई] दे० 'भीरुता'।

भीरुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भीरुता'।

भीरुपत्री, भीरुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'शतमूली'।

भीरुयोध—वि० [सं०] (राज्य या राजा) जिसके योद्धा अर्थात् सैनिक डरनेवाले हों [को०]।

भीरुरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० भीरुरन्ध्र] भट्ठी। चूल्हा।

भीरुसत्व—वि० [सं०] स्वभावतः डरनेवाला [को०]।

भीरुहृदय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हिरन।

भीरुहृदय[2]—वि० दे० 'भीरुचेता[2]'।

भीरू[1]—वि० [सं० भीरु] 'भीरु'।

भीरू[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। (डिं०) भीरु स्वभाववाली स्त्री।

भीरे†—क्रि० वि० [हिं० भिड़ना] समीप। नजदीक। पास।

भील[1]—संज्ञा पुं० [सं० भिल्ल] [स्त्री० भीलनी] एक प्रसिद्ध जंगली जाति। भिल्ल। उ०—चौदह वरष पाछे आए रघुनाथ नाथ साथ के जे भील कहैं आए प्रभु देखिए।—प्रियादास (शब्द०)।

विशेष—बहुत ही प्राचीन काल से यह जाति राजपूताने, सिंध और मध्य भारत के जंगलों और पहाड़ों में पाई जाती है। इस जाति के लोग बहुत वीर और तीर चलाने में सिद्धहस्त होते हैं। ये क्रूर, भीषण और अत्याचारी होने पर भी सीधे सच्चे और स्वामिभक्त होते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि ये भारत के आदि निवासी हैं। पुराणों में इन्हें ब्राह्मणी कन्या और तीवर पुरुष से उत्पन्न संकर माना गया है।

भील[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताल की वह सूखी मिट्टी जो प्रायः पपड़ी के रूप में हो जाती है।

भीलभूषण—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघची।

भीलु—वि० [सं०] भीरु। डरपोक।

भीलुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भालू।

भीलुक[2]—वि० भीरु। डरपोक।

भीव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भीम] भीमसेन। उ०—कुंभकरन की खोपड़ी बूडत बाँचा भीव।—जायसी (शब्द०)।

भीष—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] भीख। खैरात।

भीषक—वि० [सं०] भीषण। भयंकर। डरावना।

भीषग†—संज्ञा पुं० [सं०] भिखारी। उ०—रति अनुकूल विलास घणाँ रलियामणाँ। भीषण दीसै इंद्र लिखूँ हूँ भीमणाँ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४१।

भीषज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० भेषज या भिषज्] वैद्य। चिकित्सक।

भीषण[1]—वि० [सं०] १. जो देखने में बहुत भयानक हो। डरावना। २. जो बहुत दुष्ट या उग्र हो।

भीषण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भयानक रस (साहित्य)। २. कुँदरू। ३. कबूतर। ४. एक प्रकार का तालवृक्ष। ५. शिव। महादेव। ६. सलई। ७. ब्रह्मा।

भीषणक—वि० [सं०] भीषण। भयानक।

भीषणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीषण होने का भाव। डरावनापन। भयंकरता।

भीषणाकार—वि० [सं०] भयानक आकृति का। डरावनी शक्ल-सूरत वाला।

भीषणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता की एक सखी का नाम।

भीषन(पु)—वि० [सं० भीषण] दे० 'भीषण'।

भीषनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भीषणी] सीता की एक सखी। उ०—श्री भूलीला कांति कृपा योगी ईशाना। उत्कृष्णा भीषनी चंद्रिका कूरा जाना।—प्रियादास (शब्द०)।

भीषम(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० भीष्म] दे० 'भीष्म'।

भीषम†[2]—वि० भयावना। भयंकर।

भीषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डराना। भय दिखाना। २. डर। भय। भीति [को०]।

भीषित—वि० [सं०] डराया हुआ।

भीष्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भयानक रस। (साहित्य)। २. शिव। महादेव। ३. राक्षस। ४. राजा शांतनु के पुत्र जो गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। देवव्रत। गांगेय।

विशेष—कहते हैं, कुरु देश के राजा शांतनु से गंगा ने इस शर्त पर विवाह किया था कि मैं जो चाहूँगी वही करूँगी। शांतनु से गंगा को सात पुत्र हुए थे। उन सबको गंगा ने जनमते ही जल में फेंक दिया था। जब आठवाँ पुत्र यही देवव्रत उत्पन्न हुआ था, तब शांतनु ने गंगा को उसे जल में फेंकने से मना किया। गंगा ने कहा 'महाराज' आपने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी, अत. मैं जाती हूँ। मैंने देवकार्य की सिद्धि के लिये आप० से सहवास किया था। आप इस पुत्र को अपने पास रखें। यह बहुत वीर, धर्मात्मा और दृढ़प्रतिज्ञ होगा और आजन्म ब्रह्मचारी रहेगा। गंगा के चले जाने के कुछ दिनों बाद राजा शांतनु सत्यवती या योजनगंधा नाम की एक धीवरकन्या पर आसक्त हुए। पर धीवर ने कहा कि मेरी कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का अधिकारी होना चाहिए, भीष्म या उसकी संतान नहीं। इसपर देवव्रत ने यह भीष्म प्रतिज्ञा की कि मैं स्वयं राज्य नहीं लूँगा और न आजन्म विवाह ही करूँगा। इसी भीषण प्रतिज्ञा के कारण उनका नाम भीष्म पड़ा। शांतनु को उस धीवर कन्या से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। शांतनु के उपरांत चित्रांगद को राज्य मिला; और चित्रांगद के एक गंधर्व (इसका नाम भी चित्रांगद ही था) द्वारा मारे जाने पर विचित्रवीर्य राजा हुए। एक बार काशिराज की स्वयंवर सभा में से देवव्रत अंबा, अंबिका और अंबालिका नाम की तीन कन्याओं को उठा लाए थे और उनमें से अंबा तथा अंबालिका का विचित्रवीर्य से विवाह कर दिया था। विचित्रवीर्य के निःसंतान मर जाने पर सत्यवती ने देवव्रत से कहा कि तुम विचित्रवीर्य की स्त्रियों से नियोग करके संतान उत्पन्न करो। पर देवव्रत ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का जो व्रत किया था, उसे उन्होंने नहीं तोड़ा। अंत में वेदव्यास से नियोग कराके अंबिका और अंबालिका से धृतराष्ट्र और पांडु नामक दो पुत्र उत्पन्न कराए गए। महाभारत युद्ध के समय देवव्रत ने कौरवों का पक्ष लेकर दस दिन तक बहुत ही वीरतापूर्वक भीषण युद्ध किया था; और अंत में अर्जुन के हाथों घायल होकर शरशय्या पर पड़ गए थे। युद्ध समाप्त होने पर इन्होंने युधिष्ठिर को बहुत अच्छे अच्छे उपदेश दिए थे जिनका उल्लेख महाभारत के 'शांतिपर्व' में है। माघ शुक्ला अष्टमी को सूर्य के उत्तरायण होने पर ये अपनी इच्छा से मरे थे।

५. दे० 'भीष्मक'।

भीष्म[2]—वि० भीषण। भयंकर।

भीष्मक—संज्ञा पुं० [सं०] विदर्भ देश के एक राजा जो रुक्मिणी के पिता थे।

भीष्मकसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की स्त्री रुक्मिणी।

भीष्मजननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा [को०]।

भीष्मपंचक—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक के पाँच दिन। इन पाँच दिनों में लोग प्रायः व्रत रखते हैं।

भीष्मपर्व—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का एक अंश।

भीष्मपितामह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भीष्म'।

भीष्ममणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय के उत्तर में होनेवाला एक प्रकार का सफेद रंग का पत्थर या मणि जिसका धारण करना बहुत शुभ समझा जाता है।

भीष्मसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

भीष्मस्वरराज—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम ।

भीष्माष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ल अष्टमी, जिस दिन भीष्म ने प्राण त्यागे थे। इस दिन भीष्म के नाम का तर्पण और दान आदि करने का विधान है।

भीसम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भीष्म] दे० 'भीष्म'।

भीसुर—वि० [सं० भास्वर, प्रा० भासुर, भीसुर] दे० 'भासुर'। उ०—चद वदण मृगलोचणी भासुर ससदल भाल। नासिका दीपसिखा जिसी कल गरभ सुकमाल।—ढोला, दू० ४७६।

भुंचना†—क्रि० स० [सं० भुज्, भुञ्ज] खाना। भोजन करना। उ०—भुगत लडू भडारा भुचो सुख ते नाद बजाओ।—प्राण०, पृ० १२५।

भुंजन—संज्ञा पुं० [हिं०] भोजन करना।

भुंजना—क्रि० स० [हिं०] १. दे० 'भूजना'। २. खाना। भक्षण करना।

भुंजित—वि० [हिं०] भुना हुआ। भूना हुआ। उ०—भुंजित धान जगत म जैसे। बीज क काम न आवहि तैसे।—नद० ग्रं०, पृ० २६६।

भुंटा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भुट्टा'।

भुंड—संज्ञा पुं० [देश०] १. सुकर। वाराह। २. बाहु। भुजा। उ०—रुड्डंत भुंड मुंडि सुडं, हार रुड रष्षए।—पृ० रा०, २।१२२।

भुंडली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूरा वा भुंडा] एक कीड़ा जिसे पिल्ला भी कहते हैं। इसके शरीर पर बाल होते हैं जो स्पर्श होने की दशा में शरीर मे चुभ जाते हैं और खुजलाहट उत्पन्न करते हैं। कमला। सुंडी।

भुंडा—वि० [सं० रुण्ड का अनु०] [स्त्री० भुंडी] बिना सींग का। जिसके सीग न हो (पशु)। २. दुष्ट। उद्दड। उच्छृंखल। निर्बंध।

भुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुंडा] एक छोटी मछली जिसके मूँछें नहीं होती।

विशेष—यह गिरई की जाति की होती है। गँवारों की धारणा है कि इसके खाने से खानेवालों को मूँछे नहीं निकलतीं।

भुँइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] पृथिवी। भूमि। उ०—अति अनीति कुरीति भइ भुइँ तरनि हूँ ते ताति। जाउँ कहँ बलि जाउँ कहूँ न ठाउँ मति अकुलाति।—तुलसी (शब्द०)।

भुँइचाल†—संज्ञा [हिं० भुइँ (=भूमि) + चाल (=चलना, हिलना)] भूकप। भूचाल। भूडोल। उ०—जनु भुंइचाल चलत महि परा। टूटी कमल पीठि हिय डरा।—जायसी (शब्द०)।

भुंइधरा—संज्ञा पुं० [हिं० भुंइ + हरा] दे० 'भुंइहरा'।

भुंइफोर—संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ + फोड़ना] एक प्रकार की खुभी जो बरसात के दिनो मे बाँबी के आस पास निकलती है। यह तरकारी के काम आती है। गरजुआ।

भुंइहरा—संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ + घर] वह स्थान जो भूमि के नीचे खोदकर बनाया गया हो। उ०—अस कहि बैठि भुंइहरा माही। कियो समाधि तीन दिन काही।—रघुराज (शब्द०)। २. पृथ्वी के नीचे बना हुआ कमरा। तहखाना।

भुंई†—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] भूमि। पृथ्वी।

भुकाना—क्रि० स० [सं० बुक्क] किसी को भूँकने अर्थात् बहुत बोलने मे प्रवृत्त या परेशान करना।

भुगाल—संज्ञा पुं० [अनु०] तुरही वा भोंपा जिसके द्वारा सैनिक नावों पर अध्यक्ष अपनी आज्ञा की घोषणा करता है। (लश०)।

भुंजना—क्रि० अ० [हिं० भुनना] १. भुनने का अकर्मक रूप। भूना जाना। २. झुलसना।

भुंजरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] जरई। भुजरिया।

भुंजवा‡—संज्ञा पुं० [हिं० भूँजना] भड़भूजा।

भुअंग†—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्ग] [स्त्री० भुअंगनि] साँप। सर्प। उ०—(क) बिरह भुअगनि तन डसा मत्र न लागै कोय। बिरह बियोगी क्यो जिए जिए तो बोरा होय।—कबीर (शब्द०)। (ख) कहा कृपण की माया कितनी करत फिरत अपनी अपनी। खाइ न सकै खरच नहि जानै ज्यो भुअग सिर रहत मनी।—सूर (शब्द०)।

भुअंगम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गम] साँप। उ०—माई री मोहि डस्यो भुअगम कारो।—सूर (शब्द०)।

भुअंगिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गिनी] साँपिन। सर्पिणी। उ०—(क) सोइ बसुधातल सुधा तरगिनी। भय भजिनि भ्रम भेक भुअगिनि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) स्याम भुअंगिनि रामावली। नाभी निकसि कँवल पहँ चली।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६६।

भुअ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भू] धरती। पृथ्वी। उ०—चहुआँन सूर सोमेस सुअ धुव जनु भुअ अवतार लिय।—पृ० रा०, ६।२।

भुअन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भुवन] दे० 'भुवन'।

भुअना‡—क्रि० अ० [देश०] भूलना। बहकना।

भुआ†—संज्ञा पुं० [सं० बहु या भूय अथवा घूक, प्रा० घूअ] सेमर आदि की रुई जो फल के भीतर भरी रहती है और डोडे के सूखने पर बाहर निकलती है। उ०—मारत टोंट भुआ उधराना फिरि पाछे पछताना हो।—जग० बानी, पृ० ८२।

भुआर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूपाल] दे० 'भुआल'।

भुआल—संज्ञा पुं० [सं० भूपाल, प्रा० भुआल] राजा। उ०—बदउ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीन दयाल तनु तृन इव जिन परिहरेउ।—तुलसी (शब्द०)।

भुइँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] भूमि। पृथ्वी। उ०—बिपति बीज वर्षा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकई केरी।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—भुइँ लाना = झुकाना। उ०—कुडल गहे सीस भुइँ लावा। पावँर सुअन जहाँ वै पावा।—जायसी (शब्द०)।

भुइँ आँवला—संज्ञा पुं० [सं० भूम्यामलक] एक घास का नाम जो बरसात में ठढे स्थान, प्रायः घरो के आसपास होती है। भुइ आँवला।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी एक सींके मे दोनो ओर होती हैं और इसी सीके मे पत्तियो की जड़ो मे सरसो के बराबर छोटे फूलो की कोठियाँ लगती हैं जिनके फूल फूलने पर इतने छोटे होते हैं कि उनकी पंखड़ियाँ स्पष्ट नही दिखाई देती। इसके फूलो के झड़ जाने पर राई के बराबर छोटा फल लगता है—यह घास ओषधि के काम मे आती है। वैद्यक में इसका स्वाद कडवा, कसैला और मधुर तथा प्रकृति शीतल और गुण खाँसी, रक्तपित्त, कफ और पांडु रोग का नाशक लिखा है। यह वातकारक और दाहनाशक है।

पर्या०—भूम्यामलकी। भूम्यामली। शिवा। ताली। क्षेत्रमली। झारिका। भद्रामलकी।

भुइँकंप—संज्ञा पुं० [सं० भूमिकम्प] दे० 'भूकंप'।

भुइँकाँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ + कंद] एक घास। सफेद खस।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लहसुन की पत्तियो से चौड़ी होती हैं और इसकी जड़ मे प्याज की तरह की गोल गाँठे पड़ती हैं। यह समुद्र के किनारे या जलाशयो के पास होता है। इसकी अनेक जातियाँ हैं। इसके फूल लबे होते हैं और बीज की एक डडी के ऊपर सिरे पर गुच्छे मे लगते हैं। इसे सफेद खस भी कहते हैं।

भुइँचाल—संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ + चलना] भूचाल। भुंइचाल। भूकंप। उ०—मुनिगण त्यागयों ध्यान तब महिमंडल भुइँचाल। —कबीर सा०, पृ० ३७।

भुइँडोल—संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ + डोलना] भूकंप। भूचाल।

भुइँतरवर—संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ + तरुवर] सनाय की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ सनाय के नाम से बाजारों मे बिकती हैं। इसका प्रयोग सनाय के स्थान मे होता है। इसका पेड़ चकवँड़ से मिलता जुलता होता है।

भुइँदग्धा—संज्ञा पुं० [हिं० भुइँ + दग्ध] १. वह कर जो भूमि पर चिता जलाने के लिये मृतक के संबंधियों से लिया जाता है। मसान का कर। २. वह कर जो भूमि का मालिक किसी व्यवसायी से व्यवसाय करने के लिये ले।

भुइँधरा—संज्ञा पुं० [भुंइ + धरना] १. आवाँ लगाने की वह रीति या ढंग जिसके अनुसार बिना गड्ढा खोदे ही भूमि पर बरतनों वा अन्य पकाने की चीजों को रखकर आग सुलगाते हैं। २. तहखाना।

भुइँनास—संज्ञा पुं० [सं० भून्यास] १ किसी वस्तु के एक छोर को भूमि मे इस प्रकार दबाकर जमाना कि उसका कुछ अंश पृथ्वी के भीतर पड़ जाय।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

२. किवाड़ों की वह सिटकिनी जो नीचे की ओर पत्थर के गड्ढे मे बैठती है। ३. अनार। ४. एक छोटा पौधा जो बिना जड़ का होता है और खेतो में प्राय. उगता है।

भुइँफोर†—संज्ञा पुं० [हिं०] खुमी। कुकुरमुत्ता।

भुइँया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भुइँ'। उ०—एक पड़ा भुइँया मे लोटै दूसर कहै चोखी दे माई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८२।

भुइँहार—संज्ञा पुं० [सं० भूमि + हार] १. मिरजापुर जिले के दक्षिण भाग मे रहनेवाली एक अनार्य जाति। २. दे० 'भूमिहार'।

भुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूआ] एक कीड़ा जिसे पिल्ला भी कहते हैं। इसके शरीर पर लबे बाल होते हैं जो छू जाने पर शरीर मे गड़ जाते और खुजलाहट उत्पन्न करते हैं। कमला। भुइली।

भुक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भुज्] १. भोजन। खाद्य। आहार। उ०—ए गुसाइँ तूँ ऐस बिधाता। जावँत जीव सबन भुक दाता।—जायसी (शब्द०)। २. अग्नि। आग। उ०—अस कहि भे भुक अंतर्धाना। मुनि समाज सकलो मुख माना।—विश्राम (शब्द०)।

भुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [? या देश०] सफेद रंग की एक प्रकार की वनस्पति जो प्राय बरसात के दिनो मे अनाज, फल या अचार आदि पर उसके सड़ जाने के कारण उत्पन्न होती है। फफूँदी।

क्रि० प्र०—लगना।

भुकतान‡—संज्ञा पुं० [हिं० भुगताना] दे० 'भुगतान'। उ०—अग्नि, धरन, आकाश, पवन, पानी का कर भुकतान चले।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८९२।

भुकराँद, भुकरायँधा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] किसी पदार्थ में फफूँदी पड़ जाने से उत्पन्न दुर्गंध।

भुकाना‡—वि० [हिं० भूख] जिसे भूख लगी हो। बुभुक्षित।

भुकाना[1]—क्रि० स० [हिं० भूकना] किसी को भूकने अर्थात् विशेष बोलने में प्रवृत्त करना। बकवाना।

भुकाना‡[2]—क्रि० अ० [हिं० भूख] दे० 'भुखाना'।

भुक्कड़†—वि० [हिं० भूख] दे० 'भुक्खड़'।

भुक्करना(पु)†—क्रि० अ०[हिं०] दे० 'भूँकना'। उ० - ढुँढत डढाल डढ्ढाल भ्रिय भुक्कारन बहु भुक्करहि।—पृ० रा०, ६।१०२।

भुक्कार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] भूँकने की क्रिया। पुकार। उ०—भुक्कारन बहु भुक्करहिं।—पृ० रा०, ६।१०२।

भुक्खड़—वि० [हिं० भूख + अड़ (प्रत्य०)] १. जिसे भूख लगी हो। भूखा। २. वह जो बहुत खाता हो। पेटू। ३. दरिद्र। कगाल।

भुक्त—वि० [सं०] १. जो खाया गया हो। भक्षित। २. भोगा हुआ। उपभुक्त।

भुक्तकांस्य—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्रानुसार फूल या काँसे का बरतन जिसमे खाद्य पदार्थ रखकर खाया जाता हो।

भुक्तपीत—वि० [सं०] जो खा, पी चुका हो। जिसका खाना पीना हो चुका हो।

भुक्तपूर्व—वि० [सं०] १. जो पहले खाया या भोगा जा चुका हो। २. जो भोग कर चुका हो [को०]।

भुक्तभोगी—वि० [सं० भुक्तभोगिन्] [वि० स्त्री० भुक्तभोगिनी] जो किसी चीज का सुख दुःख उठा चुका हो।

भुक्तवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुक्त वस्तु की वृद्धि अर्थात् पेट में अन्न का फूलना।

भुक्तशेष—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न आदि जो खाने से बचा हुआ हो। २. उच्छिष्ट। जूठ।

भुक्तसुप्त—वि० [सं०] भोजन करके सोनेवाला [को०]।

भुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भोजन। आहार। २. विषयोपभोग। लौकिक सुख। ३. धर्मशास्त्रानुसार चार प्रकार के प्रमाणों में से एक। कब्जा। दखल। ४. ग्रहों का किसी राशि में एक एक अंश करके गमन या भोग। ४. सीमा [को०]।

भुक्तिपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का पात्र। खाने का बरतन।

भुक्तिप्रद[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भुक्तिप्रदा] भोग देनेवाला। भोगदाता।

भुक्तिप्रद[2]—संज्ञा पुं० मूँग।

भुक्तिवर्जित—वि० [सं०] जिसका भोग उपभोग वर्जित हो [को०]।

भुक्तोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जूठन। जूठ [को०]।

भुखमरा—वि० [हिं० भूख + मरना] १. जो भूखों मरता हो। मरभुक्खा। भुक्खड़। २. जो खाने के पीछे मरा जाता हो। पेटू।

भुखमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अन्न आदि खाद्य पदार्थों के अभाव में भूखों मरने की स्थिति। अकाल।

भुखमुहा—वि० [हिं०] दे० 'भुखमरा'।

भुखान‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूख] बुभुक्षित होने की स्थिति या भाव।

भुखाना‡—क्रि० अ० [हिं० भूख] भूख से पीड़ित होना। भूखा होना। क्षुधित होना। उ०—सुनहु एक दिन एक ठिकाने। गए चरावन सखा भुखाने।—विश्राम (शब्द०)।

भुखालू—वि० [हिं० भूख + आलू (प्रत्य०)] जिसे भूख लगी हो। भूखा। उ०—तो भी भुखालू और गुरसेल है।—जतुप्रबंध (शब्द०)।

भुगत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० भुक्ति] दे० 'भुक्ति'।

भुगतना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० भुक्ति] भोग करना। विषय करना। उ०—बालक ह्वै भग द्वारे आवा। भग भुगतन कूँ पुरिष कहावा।—कबीर ग्रं०, पृ० २४४।

भुगतना[2]—क्रि० स० [सं० भुक्ति] सहना। झेलना। भोगना। उ०—(क) देह धरे का दंड है सब काहू को होय। ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि अज्ञानी भुगते रोय।—कबीर (शब्द०)। (ख) हम तो पाप कियो भुगते को पुण्य प्रगट क्यों निठुर दियो री। सूरदास प्रभु रूप सुधानिधि पुट थोरी विधि नहीं दियो री।—सूर (शब्द)। (ग) पहले हौं भुगतौं जो पाप। तनु धरि कै सहिहौं संताप।—लल्लू (शब्द०)। (घ) और तो लोग दुखी अपने दुख में भुगतैं जग क्लेश अपारा।—निश्चल (शब्द०)।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग 'अनिष्ट भोग' के सहने में होता है। जैसे, सजा भुगतना। दुःख भुगतना।

सं० क्रि०—लेना।

मुहा०—भुगत लेना = समझ लेना। निपट लेना। जैसे,—आप चिंता न करें, मैं उनसे भुगत लूँगा।

भुगतना[3]—क्रि० अ० १. पूरा होना। निबटना। जैसे, देन का भुगतना; काम का भुगतना। २. बीतना। चुकना। जैसे, दिन भुगतना।

भुगतान—संज्ञा पुं० [हिं० भुगतना] १. निपटारा। फैसला। २. मूल्य या देन चुकाना। बेबाकी। जैसे, हुंडी का भुगतान; कपड़े का भुगतान। ३. देना। देन।

भुगतान घर—संज्ञा पुं० [हिं० भुगतान + घर] [अं० क्लियरिंग हाउस] बैंक व्यवस्था का एक आवश्यक अंग जहाँ पर बैंकों के पारस्परिक भुगतान की रकम का निबटारा किया जाता है।

भुगताना—क्रि० स० [हिं० भुगतना का सक० रूप] १. भुगतने का सकर्मक रूप। पूरा करना। संपादन करना। उ०—घाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह, ऐसो घन कैसे दूत काज भुगतावैगो।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)। २. बिताना। लगाना। जैसे,—जरा से काम में सारा दिन भुगता दिया। ३. चुकाना। देना। बेबाक करना। जैसे, हुंडी भुगताना। ४. भुगतना का प्रेरणार्थक रूप। दूसरे को भुगतने में प्रवृत्त करना। झेलाना। भोग कराना। ५. दुःख देना। दुःख सहने के लिये बाध्य करना।

भुगति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भुक्ति] दे० 'भुक्ति'। उ०—भुगति भूमि किय ब्यार वेद सिविय जल पूरन।—पृ० रा०, १।४।

भुगाना—क्रि० स० [हिं० भोगना का प्रे० रूप] भोगना का प्रेरणार्थक रूप। भोग कराना।

भुगुत†—संज्ञा स्त्री० [सं० भुक्ति] औकात। बिसात।

भुगुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भुक्ति] दे० 'भुक्ति'। उ०—चला भुगुति माँगै कहँ साजि कथा तप जोग।—पदमावत, पृ० १२२।

भुगुभुगु—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि के प्रज्वलन की ध्वनि। आग जलने की आवाज [को०]।

भुग्गना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'भोगना'। उ०—जीवै सो घर भुग्गवै जुज्झे सुरपुर वास।—ह० रासो, पृ० १२१।

भुग्गा[1]—वि० [देश०] बुद्धू। मूर्ख। उ०—यह है भुग्गा, वह बहत्तर घाट का पानी पिए हुए।—गोदान, पृ० ७५।

भुग्गा[2]—संज्ञा पुं० तिल आदि का एक प्रकार का तैयार किया हुआ मीठा चूरा।

क्रि० प्र०—कूटना।

भुग्न—वि० [सं०] १. टेढ़ा। वक्र। २. रोगी। रुग्ण।

भुग्नेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का असाध्य सन्निपात।

विशेष—इस सन्निपात में रोगी की आँखें टेढ़ी हो जाती हैं। इस रोग में रोगी का ज्वर अधिक बढ़ जाता है, उन्माद के कारण वह बक झक करता है और उसके अवयवों मे सूजन आ जाती है। यह असाध्य रोग है और इसकी अवधि शास्त्रों में आठ दिन कही गई है।

भुच्च—वि० [हिं० भुच्चड़] दे० 'भुच्चड़'।

भुच्चड़—वि० [हिं० भूत+चढ़ना] जो समझाने पर भी न समझता हो। मूर्ख। वेवकूफ।

भुजंग—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्ग] १. साँप। २. स्त्री का यार। जार। ३. राजा का एक पार्श्ववर्ती अनुचर। विदूषक। ४. सीसा नामक धातु। ५. पति। खाविंद (को०)। ६. आश्लेषा नक्षत्र (को०)। ७. आठ की संख्या (को०)।

भुजंगघातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गघातिनी] काकोली।

भुजंगजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गजिह्वा] महासमंगा। कंगहिया।

भुजंगदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गदमनी] नाकुली कंद।

भुजंगपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गपर्णी] नागदमनी।

भुजंगपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गपुष्प] १. एक फूल के पेड़ का नाम। २. सुश्रुत के अनुसार एक क्षुप का नाम।

भुजंगप्रयात—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गप्रयात] एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होते है, जिनमें पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ वर्ण लघु और शेष गुरु होते हैं; अथवा प्रत्येक चरण चार यगण का होता है। उ०—कहूँ शोभना दुंदभी दीह बाजै। कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजै। कहूँ सुंदरी वेनु बीना बजावै। कहूँ किन्नरी किन्नरी लय सुनावै।

भुजंगभुज्—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गभुज्] १. गरुड़। २. मयूर।

भुजंगभोगी—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गभोगिन्] दे० 'भुजंगभोजी'।

भुजंगभोजी—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गभोजिन्] [स्त्री० भुजंगभोजिनी] १. गरुड़। २. मयूर। मोर।

भुजंगम—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गम] [स्त्री० भुजंगमी (=सर्पिणी)] १. साँप। २. सीसा। ३. राहु (को०)। ४. अश्लेषा नक्षत्र (को०)। ५. आठ की संख्या (को०)।

भुजंगलता—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गलता] पान की बेल। तांबूली [को०]।

भुजंगविजृंभित—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २६ वर्ण इस क्रम से होते हैं—आदि मे दो मगण, फिर एक तगण, तीन नगण, फिर रगण, सगण और अंत में एक लघु और एक गुरु।

भुजंगशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गशत्रु] साँपों का शत्रु—गरुड़।

भुजंगशिशु—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गशिशु] बृहती छंद का एक भेद [को०]।

भुजंगसंगता—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गसङ्गता] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नौ नौ वर्ण होते हैं, जिनमे पहले सगण, मध्य मे जगण और अंत मे रगण होता है।

भुजंगा—संज्ञा पुं० [हिं० भुजंग] १. काले रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी। भुजंटा। कोतवाल।

विशेष—इसकी लंबाई प्रायः डेढ़ बालिश्त होती है। यह कीड़े मकोड़े खाता है और बड़ा ढीठ होता है। यह भारत, चीन और श्याम देश मे पाया जाता है। यह प्रातःकाल बोलता है और इसकी बोली सुहावनी लगती है। यह एक बार में चार अंडे देता है। इसकी अनेक अवांतर उपजातियाँ होती है; जैसे, केशराज, कृष्णराज इत्यादि।

२. दे० 'भुजग'।

भुजंगाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गाक्षी] रास्ना।

भुजंगाख्य—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गाख्य] नागकेशर।

भुजंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्गिनी] १. गोपाल नामक छंद का दूसरा नाम। २. साँपिन। नागिन।

भुजंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सापिन। नागिन। २. एक वर्णिक वृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे ग्यारह वर्ण होते हैं जिनमे पहले तीन यगण आते है और अंत मे एक लघु और एक गुरु रहता है।

भुजंगेरित—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गेरित] एक छंद का नाम।

भुजंगेश—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गेश] १. वासुकि। २. शेष। ३. पिंगल मुनि का नाम। ४. पतंजलि का एक नाम।

भुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहु। बाँह।

मुहा०—भुज में भरना = आलिंगन करना। अंक भरना। गले लगाना। उ०—कहा बात कहि पियहि जगाऊँ। कैसे भुज भरि कंठ लगाऊँ। —(शब्द०)।

२. हाथ। ३. हाथी का सूँड़। ४. शाखा। डाली। ५. प्रांत। किनारा। मेड़। ६. लपेट। फेंटा। ७. ज्यामिति या रेखागणित के अनुसार किसी क्षेत्र का किनारा वा किनारे की रेखा।

यौ०—द्विभुज। त्रिभुज। चतुर्भुज, इत्यादि।

८. त्रिभुज का आधार। ९. छाया का मूल वा आधार। १०. समकोण का पूरक कोण। ११. दो की संख्या का बोधक शब्दसंकेत। १२. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार तीन राशियों के अंतर्गत ग्रहों की स्थिति वा खगोल का वह अंश जो तीन राशि से कम हो।

भुजइल—संज्ञा पुं० [हिं० भुजंगा] भुजंगा नामक पक्षी।

भुजकोटर—संज्ञा पुं० [सं०] बगल। काँख।

भुजग—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप। २. अश्लेषा नक्षत्र। ३. सीसा।

यौ०—भुजगदारण, भुजगभोजी = (१) गरुड़। (२) मयूर। मोर। (३) नेवला। भुजगपति। भुजगराज। भुजगवलय = सर्प का कंकण।

भुजगनिसृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नौ अक्षर होते हैं। जिनमें छठा, आठवाँ और नवाँ अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं।

भुजगपति—संज्ञा पुं० [सं०] वासुकि। अनंत।

भुजगपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फूल। २. इस फूल का पौधा।

भुजगराज—संज्ञा पुं० [सं०] शेष नाग का नाम।

यौ०—भुजगराजभूषण = शिव।

भुजगशिशुभृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नौ अक्षर होते हैं जिनमें पहले दो नगण और अंत में एक मगण होता है। इसे भुजगशिशुसुता भी कहते हैं।

भुजगांतक—संज्ञा पुं० [सं० भुजगान्तक] १. नेवला। २. मयूर। ३. गरुड़ [को०]।

भुजगाभोजी—संज्ञा पुं० [सं० भुजगाभोजिन्] दे० 'भुजगांतक' [को०]।

भुजगाशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भुजगांतक'।

भुजगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अश्लेषा नक्षत्र। २. सर्पिणी [को०]।

भुजगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० भुजगेन्द्र] १. शेष। २. वासुकी।

भुजगेश, भुजगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भुजगेंद्र। २. वासुकी।

भुजच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुजाओं की छाँह अर्थात् निरापद आश्रय।

भुजज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिकोणमिति के अनुसार भुज की ज्या।

भुजदंड—संज्ञा पुं० [सं० भुजदण्ड] १. बाहुदंड। २. लंबा हाथ। ३. बाहँ में पहनने का फेरवा नाम का एक गहना।

भुजदल—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ। बाहु।

भुजपाश—संज्ञा पुं० [सं०] भुजाओं का पाश या बंधन। गलबाहीं। गले मे हाथ डालना। बाहों में भर लेना।

भुजप्रतिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] सरल क्षेत्र की समानांतर या आमने सामने की भुजाएँ।

भुजबंद—संज्ञा पुं० [सं० भुजबन्ध] १. दे० 'भुजबंध'। २. एक गहना। बाजूबंद। उ०—टाँड भुजबंद चूड़ा वलयादि भूषित, ज्यों देखि देखि दुरहुर इंद्र निदरत है।—हनुमान (शब्द०)।

भुजबंध—संज्ञा पुं० [सं० भुजबन्ध] १. अंगद। २. भुजवेष्ठन।

भुजबंधन—संज्ञा पुं० [सं० भुजबन्धन] दे० 'भुजपाश'।

भुजबल—संज्ञा पुं० [हिं० भुज + बल] १. शालिहोत्र के अनुसार एक भौंरी जो घोड़े के अगले पैर में ऊपर की ओर होती है। लोगों का विश्वास है कि जिस घोड़े को यह भौंरी होती है, वह अधिक बलवान होता है। २. भुजाओं की शक्ति। बाहुबल।

भुजबाथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० भुज + बाँधन] अँकवार। उ०—दग मीचत मृगलोचनी भरेउ उलटि भुजबाथ। जान गई तिय नाथ को हाथ परस ही हाथ।—बिहारी (शब्द०)।

भुजमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोड। वक्षस्थल [को०]।

भुजमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. खवा। पखा। मोढ़ा। कंधा। २. काँख। कुक्षि।

भुजयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुजारूपी य

भुजरिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरई।

भुजलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लता जैसी लंबी कोमल और पतली बाँह।

भुजवा†—संज्ञा पुं० [हिं० भूनना] भड़भूँजा। उ०—भुजवा पढ़े कवित्त जीव दस बीस जरावै।—बैताल (शब्द०)।

भुजवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भुजबल'।

भुजशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंध। कंधा।

भुजशिर—संज्ञा पुं० [सं०] कंधा।

भुजसंभोग—संज्ञा पुं० [सं० भुजसम्भोग] आलिंगन।

भुजस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० भुजस्तम्भ] बाहु का अकड़ना। भुजाओं का अकड़ जाना [को०]।

भुजांतर—संज्ञा पुं० [सं० भुजान्तर] १. क्रोड़। गोद। २. वक्ष। छाती। ३. दो भुजाओं का अंतर।

भुजांतराल—संज्ञा पुं० [सं० भुजान्तराल] दे० 'भुजांतर'।

भुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँह। हाथ।

मुहा०—भुजा उठाना = प्रतिज्ञा करना। प्रण करना। उ०—चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई।—तुलसी (शब्द०)। भुजा टेकना = प्रतिज्ञा करना। प्रण करना। उ०—भुजा टेकि कै पंडित बोला। छाड़हि देस बचन जो डोला।—जायसी (शब्द०)।

भुजाकंट—संज्ञा पुं० [सं० भुजाकण्ट] हाथ की उँगली का नाखून।

भुजाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ [को०]।

भुजादल—संज्ञा पुं० [सं०] करपल्लव।

भुजाना‡—क्रि० स० [हिं० भँजाना] दे० 'भुनाना'।

भुजामध्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुहनी। २. वक्ष [को०]।

भुजामूल—संज्ञा पुं० [सं०] कंधे का वह अगला भाग जहाँ हाथ और कंधे का जोड़ होता है। बाहुमूल।

भुजाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुज + आली (प्रत्य०)] एक प्रकार की बड़ी टेढ़ी छुरी जिसका व्यवहार प्रायः नेपाली आदि करते हैं। इसे कुकरी या खुखरी भी कहते हैं। २. छोटी बरछी।

भुजिया†—संज्ञा पुं० [हिं० भूजना (= भूनना)] १. उबाला हुआ धान।

क्रि० प्र०—करना।—बैठाना।

२. उबाले हुए धान का चावल। वि० दे० 'धान' और 'चावल'। ३. वह तरकारी जो सूखी ही भूनकर बनाई जाती है और जिसमें रसा या शोरवा नहीं होता। सूखी तरकारी। जैसे, आलू का भुजिया, परवल का भुजिया।

भुजिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भुजिष्या] १. दास। सेवक। २. रोग। व्याधि (को०)। ३. साथी। मित्र (को०)। ४. हस्तसूत्र। कलाई पर बँधा हुआ सूत्र (को०)।

भुजिष्या—संज्ञा पुं० [सं०] १. दासी। सेविका। २. गणिका। वेश्या।

भुजैना‡—संज्ञा पुं० [हिं० भूजना] भूना हुआ दाना। चबैना। भूना।

भुजैल—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्ग; हिं० भुजइल] भुजंगा नामक पक्षी। उ०—भँवर पतग जरे औ नागा। कोकिल भुजैल औ सब कागा।—जायसी (शब्द०)।

भुजौना†—संज्ञा पुं० [हिं० भूजना] १. भुना हुआ अन्न। भूना। भूजा। भुजैना। उ०—फेर फेर तन कीन भुजौना। औटि रक्त रँग हिरदै औना।—जायसी (शब्द०)। २. वह धन या अन्न जो भूनने के बदले मे दिया जाय। भूनने की मजदूरी। ३. वह धन जो रुपया या नोट आदि भुनाने के बदले मे दिया जाय।

भुज्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। २. पात्र। ३. अग्नि। ४. यज्ञ (को०)। ५. वैदिक काल के एक राजा का नाम। यह तुग्र का एक पुत्र था और अश्विनी ने इसे समुद्र में डूबने से बचाया था।

भुटिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की धारी जो डोरिए और चारखाने के बुनने मे डाली जाती है। (जुलाहे)।

भुट्टा—संज्ञा पुं० [सं० भृष्ट, प्रा० भुट्टो] १. मक्के की हरी बाल। वि० दे० 'मक्का'। २. ज्वार वा बाजरे की बाल। उ०—श्रीकृष्णचंद्र ने तिरछी कर एक हाथ ऐसा मारा कि उसका सिर भुट्टा सा उड गया।—लल्लू (शब्द०)। ३. गुच्छा। घौद। उ०—कही पुखराजो की डडियो से पन्ने के पत्ते निकाल मोतियो के भुट्टे लगाए हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

भुठार—संज्ञा पुं० [हिं० भूड़] वह घोड़ा जो ऐसे प्रदेश में उत्पन्न हुआ हो जहाँ की भूमि बलुई वा रेतीली हो।

भुठौर—संज्ञा पुं० [हिं० भूड+ठौर] घोडो की एक जाति जो गुजरात आदि मरुस्थल देशो मे होती है। उ०—मुसकी औ हिरमिजी इराकी। तुरकी कसी भुठौर बुलाकी।—जायसी (शब्द०)।

भुडली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फूल।

भुड़ारी†—संज्ञा पुं० [हिं० भू+डालना] वह अन्न जो राशि के दाने पर बाल मे उठल के साथ लगा रहता है। लिड़ूरी। दोबरी। पकुटी। चित्ती।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः रबी की फसल के लिये होता है।

भुतनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूत] भूतिन। भूतिनी।

भुतहा†—वि० [हिं० भूत+हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० भुतही] भूत प्रेत संबंधी। भूत प्रेत आदि का। जैसे, भुतहा मकान, भुतही इमली। उ०—लोग उसे भुतहा जगल कहते है।—मैला०, पृ० ८।

भुथरा—वि० [हिं०] दे० 'भोथरा'।

भुथराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुथरा] भोथरापन। भोथरा होना। कुंद होना। उ०—पैने कटाछनि ओज मनोज के वानन बीच बिची भुथराई।—घनानंद, पृ० ११०।

भुन—संज्ञा पुं० [अनु०] मक्खी आदि का शब्द। अव्यक्त गुंजार का शब्द।

मुहा०—भुन भुन करना=कुढ़कर अस्पष्ट स्वर में कुछ कहना।

भुनगा—संज्ञा पुं० [अनु०] [स्त्री० भुनगी] १. एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा जो प्रायः फूलो और फलो मे रहता है और शिशिर ऋतु मे प्राय. उड़ता रहता है। २. कोई उड़नेवाला छोटा कीड़ा। पतिंगा। ३. बहुत ही तुच्छ या निर्बल मनुष्य उ०—बड़ा जरार आदमी है। एक भुनगे के लिये इतने सवारो को लाना पड़ा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०५।

भुनगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुनगा] एक छोटा कीड़ा जो ईख के पौधों को हानि पहुँचाता है।

भुनना¹—क्रि० अ० [हिं० भूनना] १. भूनने का अकर्मक रूप। भूना जाना। २. आग की गर्मी से पककर लाल होना। पकना। भुनना।

भुनना²—क्रि० अ० [सं० भञ्जन] भुनाने का अकर्मक रूप। रुपए आदि के बदले में अठन्नी, चवन्नी, पैसे आदि का मिलना। अवयवी का अवयव में विभाजित वा परिणत होना। बड़े सिक्के आदि का छोटे छोटे सिक्कों में बदला जाना।

भुनभुनाना—क्रि० अ० [अनु०] १. भुन भुन शब्द करना। २. किसी विरोधी वा प्रतिकूल दबाव मे पड़कर मुँह से अव्यक्त शब्द निकालना। मन ही मन कुढ़कर अस्पष्ट स्वर में कुछ कहना। बड़बड़ाना।

भुनवाई, भुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुनवाना] १. भुनवाने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो भुनवाने के बदले में दिया जाय। भुनाई। भाँज।

भुनाना¹—क्रि० स० [हिं० भूनना] भूनने का प्रेरणार्थक रूप। दूसरे को भूनने के लिये प्रेरणा करना।

भुनाना²—क्रि० स० [सं० भञ्जन] रुपए आदि को अठन्नी, चवन्नी आदि में परिणत करना। बड़े सिक्के आदि को छोटे सिक्कों आदि से बदलना। उ०—जो इक रतन भुनावै कोई। करे सोई जो मन महँ होई।—जायसी (शब्द०)।

भुनुगा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'भुनगा'।

भुन्नास—संज्ञा पुं० [देश०] पुरुष की इंद्रिय। (बाजारू)।

भुन्नासी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा देशी ताला जो प्रायः दूकानो आदि में बंद किया जाता है।

भुवि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० 'भू' शब्द का सप्तमी एकवचन रूप 'भुवि'] पृथ्वी। भूमि। उ०—जो जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई।—तुलसी (शब्द०)।

भुमिया†—संज्ञा पुं० [सं० भूमि] दे० 'भूमिया'।

भुमुहँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू, प्रा० भमुह] दे० 'भौंह'। उ०—भुमुहाँ ऊपरि सोहलो, परिठिउ जाणि क चग।—ढोला०, दू० ४६५।

भुम्मि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] दे० 'भूमि'। उ०—राजा कर भल मानहिं भाई। जे हम कहँ यह भुम्मि देखाई।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० ३४५।

भुयगिं(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० भुजङ्ग, प्रा० भुअग्ग, भुयग्ग] भुजगिनी। सर्पिणी। उ०—मोहण वेली मारई पीधी नाग भुयगिं।—ढोला०, दू० ६०१।

भुरकना—क्रि० अ० [सं० भुरण (= गति) या हिं० भुरका] १. सूखकर भुरभुरा हो जाना। २. भूलना। उ०—थोरिए वैस बिथोरी भट्ट ब्रजभोरी सी बानन में भुरकी है।—देव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

३. चूर्ण के रूप के किसी पदार्थ को छिड़कना। भुरभुराना। बुरकना। उ०—जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। वर बानर बारन दल दत्त। अग अग चरचे अति चदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन।—केशव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

भुरकस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भुरकुस'।

भुरका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भुरकना या सं० धूरि] बुकनी। अबीर।

भुरका[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भरना] १. मिट्टी का बड़ा कसोरा। कुज्जा। कुल्हड़। २. मिट्टी आदि का वह पात्र जिसमें लड़के लिखने के लिये खड़िया मिट्टी घोलकर रखते हैं। बुदका। बुदकना।

भुरकाना—क्रि० स० [हिं० भुरकना] १. भुरभुरा करना। २. छिड़कना। भुरभुराना। ३. भुलवाना। बहकाना। उ०—कही हँसि देव शठ कूर ऐबी बड़े आइ कोई बाल भुरकाय दीन्हा।—विश्वास (शब्द०)।

भुरकी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुरका] १. अन्न रखने के लिये छोटा कोठिला। घुनकी। २. पानी का छोटा गड्ढा। हौज। ३. छोटा कुल्हड़।

भुरकी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुरका] धूल। रज। उ०—दादू भुरकी राम है, सबद कहै गुरु ज्ञान। तिन सबदौं मन मोहिया उन मन लागा ध्यान।—दादू० बानी, पृ० ३६४।

भुरकुटा—संज्ञा पुं० [हिं० भुरकुस] छोटा कीड़ा वा मच्छड़। छोटा मकोड़ा।

भुरकुन—संज्ञा पुं० [हिं० भुरकना] चूर्ण। चूरा।

भुरकुस—संज्ञा पुं० [स० अनु० या हिं० भुरकना] चूर्ण। वह वस्तु जो चूर चूर हो गई हो।

मुहा०—भुरकुस निकलना = (१) चूर चूर होना। (२) इतना मार खाना कि हड्डी पसली चूर चूर हो जाय। बेदम होना। (३) नष्ट होना। बरबाद होना। भुरकुस निकालना = (१) इतना मारना कि हड्डी पसली चूर चूर हो जाय। मारते मारते बेदम करना। (२) बेकाम करना। किसी काम का न रहने देना। (३) नष्ट करना। बरबाद करना।

भुरजा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुर्ज] दे० 'बुर्ज'।

भुरजाल‡—संज्ञा पुं० [हिं० बुर्ज + आल] गढ़। उ०—अन भुरजालाँ भुरजसा, गढ़ चीतोड़ कँगूर।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ६।

भुरजी†—संज्ञा पुं० [हिं० भूजना] भड़भूँजा।

भुरत—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास। भरौट।

विशेष—यह बरसात में होती है। यह स्वच्छंद उगती है और जब तक नरम रहती है, तब तक पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं। यह सुखाने के काम की नहीं होती।

भुरता—संज्ञा पुं० [हिं० भुरकना या भुरभुरा] १. दबकर वा कुचलकर विकृतावस्था को प्राप्त पदार्थ। वह पदार्थ जो बाहरी दबाव से दबकर या कुचलकर ऐसा बिगड़ गया हो कि उसके अवयव और आकृति पूर्व के समान न रह गए हों।

मुहा०—भुरता करना वा कर देना = कुचलकर पीस डालना। दबाकर चूर चूर कर देना।

२. चोखा या भरता नाम का सालन। वि० दे० 'चोखा'।

भुरभुर[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास का नाम जो ऊसर या रेतीली भूमि में होती है। इसे भुरभुरोई या फुलनी भी कहते हैं। दे० 'भुरभुरा[2]'।

भुरभुर[2]—संज्ञा पुं० [अनु० वा स० धूरि] बबका।

भुरभुरⓅ**†[3]**—वि० दे० 'भुरभुरा[1]'।

भुरभुरा[1]—वि० [अनु०] [स्त्री० भुरभुरी] जिसके कण थोड़ा आघात लगने पर भी बालू के समान अलग अलग हो जायँ। बलुआ। जैसे,—यह लकड़ी बिलकुल भुरभुरी हो गई है।

भुरभुरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की बरसाती घास जिसे गौएँ, बैल और घोड़े बहुत पसंद करते हैं। इसका मेल देने से कड़े चारे नरम हो जाते हैं। पलजी। भूसा। गलगला।

भुरभुराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुरभुरा + आहट (प्रत्य०)] भुरभुरा। होने की क्रिया या भाव। भुरभुरापन।

भुरभुरोई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो ऊसर और रेतीली भूमि में उपजती है। इसे फुलनी या भुरभुर भी कहते हैं।

भुरली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुड़ली] १. भुड़ली। सुँडी। कमला। २. एक कीड़ा जो खेती की फसल को हानि पहुँचाता है।

भुरवनाⓅ—क्रि० स० [सं० भ्रमण, हिं० भरमना का प्रे०रूप] भुलवाना। भ्रम में डालना। फुसलाना। उ०—(क) सूरदास प्रभु रसिक सिरोमणि बातन भुरई राधिका भोरी।—सूर (शब्द०)। (ख) ऊधो अब यह समझि भई। नंदनंदन के अंग अंग प्रति उपमा न्याइ दई। कुंतल कुटिल भँवर भामिनि वर मालति भुरे लई। तजत न गहरु कियो विन कपटी जानि निराश भई।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।—रखना।

भुरसनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० भुलसना] दे० 'भुलसना'; 'भुलसना'।

भुरहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० भोर] भोर। सुबह। तड़का।

भुराईⓅ**[1]**—संज्ञा स्त्री० [हिं० भोला] भोलापन। सीधापन। उ०—(क) लखहु ताड़ुकहिं लछिमन भाई। भुजनि भयंकर भेष भुराई।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) मोचन लागी भुराई की बातन सौतिनी सोच भुरावन लागी।—मतिराम (शब्द०)।

(ग) राई नोंन वारति भुराई देखि आँगनि में दुरै न दुराई पै भुराई सो भगति है।—देव (शब्द०)।

भुराई[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भूरा] भूरापन। भूरा होने का भाव।

भुराना(ए)†—क्रि० स० [हिं० भुलाना या भूलना] १. भूलना। उ०—मैं अपनी सब गाय चरैहों। प्रात होत बल के संग जैहों तेरे कहे न भुरैहों।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'भुरवना'। उ०—तुम भुरए हो नंद कहत हैं तुमसो ढोटा। दधि ओदन के काज देह धरि आए छोटा।—सूर (शब्द०)।

भुरावना(ए)†—क्रि० स० [हिं० भुलाना] १. दे० 'भुराना'। उ०—मोचन लागी भुराई को पातन सौतिन सोच भुरावन लागी।—मतिराम (शब्द०)। २. दे० 'भुरवना'।

भुरुंड—संज्ञा पुं० [सं० भुरुण्ड] १. एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम २. भारुड पक्षी।

भुरुकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भुरका'।

भुर्भुरिका भुर्भुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मिठाई।

भुर्रा[1]—वि० [हिं० भूरा या भवँरा ?] बहुत अधिक काला। घोर कृष्ण। जैसे,—बिलकुल काला भुर्रा सा आदमी तुम्हें ढूँढने आया था।

भुर्रा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० बूरा, भूरा] चीनी को पकाकर बनाई हुई चीनी। भूरा।

भुलक्कड—वि० [हिं० भूलना+अक्कड (प्रत्य०)] भूलने के स्वभाववाला। विस्मरणशील। बहुत भूलनेवाला।

भुलना†—संज्ञा पुं० [हिं० भूलना] १. एक घास का नाम।

विशेष—इसके विषय में लोगों में यह प्रवाद है कि इसके खाने से लोग सब बातें भूल जाते हैं।

मुहा०—भुलना खर खाना = विस्मरणशील होना।

२. वह जो भूल जाता हो। भूलनेवाला व्यक्ति।

भुलभुला†—संज्ञा पुं० [अनु०] आग का पलका। गरम राख।

भुलवाना—क्रि० स० [सं० भूलना का प्रे० रूप] १. भूलना का प्रेरणार्थक रूप। भूलने के लिये प्रेरणा करना। भ्रम मे डालना। २. विस्मृत करना। बिसारना। दे० 'भुलाना'।

भुलसना—क्रि० अ० [हिं० भुलभुला] पलके में झुलसना। गरम राख में झुलसना। उ०—लाल गुलाब अँगारन हूँ पुनि कछु न झुरसी। सुकवि नेह की बेल बिरह झर नेकु न झुरसी।—व्यास (शब्द०)।

भुलाना[1]—क्रि० स० [हिं० भूलना] १. भूलने का प्रेरणार्थक रूप। भ्रम में डालना। धोखा देना। उ०—बंधु कहत घर बैठे आवै। अपनी माया माहिं भुलावै।—लल्लू (शब्द०)। २. भूलना। विस्मृत करना। उ०—(क) हँसि हँसि बोली टेके काँधा। प्रीति भुलाइ चहै जल बाँधा।—जायसी (शब्द०)। (ख) ये हैं जिन सुख वे दिए, करति क्यों न हित होस। ते सब अबहिं भुलाइयतु तनक दगन के दोस।—पद्माकर (शब्द०)।

भुलाना(ए)†[2]—क्रि० अ० १. भ्रम में पड़ना। उ०—(क) हाथ बीन सुनि मिरग भुलाही। नर मोहहिं सुनि पैग न जाही।—जायसी (शब्द०)। (ख) पंडित भुलान न जानहिं चालु। जीव लेत दिन पूछ न कालु।—जायसी (शब्द०)। (ग) यसुदा भरम भुलानी भूलें पालना रे।—गीत (शब्द०)। २. भटकना। भरमना। राह भूलना। उ०—सो सयान मारग रहि जाय। करै खोज कबहूँ न भुलाय।—कबीर (शब्द०)। ३. भूल जाना। विस्मरण होना। बिसरना। उ०—(क) मात महातम मात भुलाना। मानत मानत गवना ठाना।—कबीर (शब्द०)। (ख) घड़ी अचेन होय जो आई। चेतन की सब चेत भुलाई।—जायसी (शब्द०)। (ग) एवमस्तु, कहि कपट मुनि बोला कुटिल कठोर। मिलब हमार भुलाव जनि कहहु त हमहिं न खोरि।—तुलसी (शब्द०)।

भुलावा—संज्ञा पुं० [हिं० √भूल+आवा (प्रत्य०)] छल। धोखा। चक्कर। जैसे,—इस तरह भुलावा देने से काम नही चलेगा।

क्रि० प्र०—देना।—में डालना।

भुवंग—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्ग, प्रा० भुअंग] [स्त्री० भुअंगिनि भुवंगिन] साँप। उ०—साकट का मुख बिंब है निकसत बचन भुवंग। ताकी औषधि मौन है विष नहिं व्यापै अंग।—कबीर (शब्द०)।

भुवंगम—संज्ञा पुं० [सं० भुजङ्गम, प्रा० भुअंगम] साँप। उ०—(क) कपट करि ब्रजहि पूतना आई। गई मूरछा परो धरनि तें मनो भुवंगम खाई। सुरदास प्रभु तुम्हरी लीला भगतन गाइ सुनाई—सूर (शब्द०)। (ख) माइ री मोहिं डस्यो भुवगम कारो।—सूर (शब्द०)।

भुवः—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह आकाश या अवकाश जो भूमि और सूर्य के अंतगत है। अंतरिक्ष लोक। यह सात लोकों के अंतर्गत दूसरा लोक है। २. सात महा व्याहृतियों के अंतर्गत दूसरी महाव्याहृति। मनुस्मृति के अनुसार यह महाव्याहृति ओकार की उकार मात्रा के संग यजुर्वेद से निकाली गई है।

भुव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

भुव(ए)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० भू का सप्तम्यंत रूप भुवि या भुमि] पृथ्वी। उ०—(क) रोवैं वृषभ तुरंग अरु नाग। स्यार दिवस निसि बोलैं काग। कंपै भुव वर्षा नहिं होई। भए शोच चित यह नृप जोई।—सूर (शब्द०)। (ख) भार उतारन भुव पर गए। साधु संत को बहु सुख दए।—लल्लू (शब्द०)।

भुव(ए)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] भौंह। भ्रू। उ०—(क) गहन दहन निर्दहन लंक निसंक बंक भुव।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भुव तेग सुनैन के बान लिए मति बेसरि की संग पासिका हैं।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

भुवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जगत् २. जल। ३. जन। लोग। ४. लोक।

विशेष—पुराणानुसार लोक चौदह हैं—सात सर्ग और सात पाताल। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य ये सात सर्ग लोक हैं और अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमत्, महातल, रसातल और पाताल ये सात पाताल हैं।

५. चौदह की संख्या का द्योतक शब्दसंकेत। ६. सृष्टि।

भूतजात । ७. एक मुनि का नाम । ८. आकाश । (को०) । ६. समृद्धि (को०) ।

भुवनकोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमंडल । पृथिवी । २. चौदहों भुवन की समष्टि । ब्रह्मांड । उ०—मो सो दोस कोस को भुवनकोस दूसरो न आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं ।—तुलसी (शब्द०) ।

भुवनत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीनों भुवन—स्वर्ग मर्त्य और पाताल ।

भुवनपति—संज्ञा पुं० [सं०] एक देवता का नाम जो महीधर के अनुसार अग्नि का भाई है ।

भुवनपावनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

भुवनभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० भुवनभर्तृ] जगत का भरण पोषण करनेवाला ।

भुवनभावन—संज्ञा पुं० [सं०] लोकनिर्माता । लोकस्रष्टा ।

भुवनमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० भुवनमातृ] दुर्गा का नाम ।

भुवनमोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगत् को मोहित करनेवाली ।

भुवनशासी—संज्ञा पुं० [सं० भुवनशासिन्] राजा । शासक ।

भुवनाथ—संज्ञा पुं० [हिं० भुव+नाथ] दे० 'भुवनेश' । उ०—हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूड़त आनि बचाओ ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०१ ।

भुवनाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] एक रुद्र का नाम ।

भुवनेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव की एक मूर्ति का नाम । २. ईश्वर ।

भुवनेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति की एक मूर्ति का नाम ।

भुवनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान का नाम ।

विशेष—यह तीर्थस्थान उड़ीसा में पुरी के पास है। यहाँ अनेक शिवमंदिर हैं जिनमें प्रधान और प्राचीन मंदिर भुवनेश्वर शिव का है ।

२. शिव की वह प्रधान मूर्ति जो भुवनेश्वर में है। ३. शिव (को०) । ४. राजा । भूपति (को०) ।

भुवनेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रानुसार एक देवी का नाम जो दस महाविद्याओं में एक मानी जाती है ।

भुवनौका—संज्ञा पुं० [सं० भुवनौकस्] देवता ।

भुवन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. अग्नि । ३. चंद्र । ४. प्रभु ।

भुवपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देवता का नाम । महीधर के अनुसार यह अग्नि का भाई है । २. राजा ।

भुवपत्ति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भु>भुव+पति] दे० 'भूपति'। उ०—चारु वक्कि चालुक्क राइ भोरा भुवपत्तिय ।—पृ० रा०, १२।५४ ।

भुवपाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० भुव+पाल] दे० 'भूपाल' ।

भुवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] सात लोकों में से दूसरे लोक का नाम । पृथ्वी और सूर्य का मध्यवर्ती पोला भाग । अंतरिक्ष लोक ।

भुवा—संज्ञा पुं० [हिं० घूआ] घूआ । रुई । उ०—रानी धाइ आइ के पासा । सुआ भुवा सेमर की आसा ।—जायसी (शब्द०) ।

भुवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूपाल] दे० 'भुवाल' । उ०—राम लखन सम दैत्य सँहारा । तुम हलधर बलभद्र भुवारा ।—जायसी (शब्द०) ।

भुवाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूपाल, प्रा० भुआल] राजा । उ०—(क) कालिंदी के तीर एक मधुपुरी नगर रसाला हो । कालनेमि उग्रसेन वश कुल उपजे कंस भुवाला हो ।—सूर (शब्द०) । (ख) यों दल काढ़ें बलख तें तें जयसाह भुवाल । उदर अघासुर के पड़े ज्यों हरि गाय गुवाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

भुवि—संज्ञा स्त्री० [सं० भू का सप्तमी रूप अथवा भूमि] भूमि । पृथिवी । उ०—एक काल एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार । सुर रंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन भुवि भार ।—तुलसी (शब्द०) ।

भुविसू—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

भुविस्थ—वि० [सं०] जो पृथ्वी पर स्थित हो । पृथ्वी पर रहनेवाला (को०) ।

भुशुंडि[1]—संज्ञा पुं० [सं० भुशुण्डि] काक भुशुंडी ।

विशेष—इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि ये अमर और त्रिकालज्ञ हैं और कलियुग में होनेवाली सब बातें देखा करते हैं ।

भुशुंडि[2]—संज्ञा स्त्री० एक अस्त्र का नाम जिसका प्रयोग महाभारत के काल मे होता था ।

विशेष—यह अस्त्र चमड़े का बनाया जाता था । इसके बीच में एक गोल चँदवा होता था जिसे चमड़े के कड़े तसमों में बाँधकर दो लंबी डोरियों में लगा देते थे । यह अस्त्र डोरी समेत एक छोर से दूसरे छोर तक तीन हाथ लंबा होता था । इसके चँदवे में पत्थर भरकर और डोरियों को दाहने हाथ से घुमाकर लोग शत्रु पर फेंकते थे । कुछ लोग भ्रमवश इस शब्द से बंदूक का अर्थ लेते हैं ।

भुसना(पु)‡—क्रि० अ० [देश०] दे० 'भूँकना' । उ०—सरस काव्य रचना रचौ खल जन सुनि न हसंत । जैसे सिंधुर देखि मग स्वान सुभाव भुसंत ।—पृ० रा०, १।५१ ।

भुस—संज्ञा पुं० [सं० बुस] भूसा । उ०—बनजारे के बैल ज्यों भरमि फिरेउ चहुँ देस । खाँड़ लादि भुस खात हैं बिनु सतगुरु उपदेश ।—कबीर (शब्द०) ।

भुसिल(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भोंसला' । उ०—जा दिन जनम लीन्हों भू पर भुसिल भूप ताही दिन जीत्यो अरि उर के उछाह को ।—भूषण ग्रं०, पृ० १० ।

भुसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूसा] भूसी । उ०—कबिरा संगति साधु की जौ की भुसी जो खाय । खीर खाँड़ भोजन मिलै साकट संग न जाय ।—कबीर (शब्द०) ।

भुसुंड—संज्ञा स्त्री० [सं० शुण्ड] सूँड़ ।

भुसुंडी—संज्ञा पुं० [सं० भुशुण्डि] दे० 'भुशुंडि'[1] ।

भुसेहरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० भूसा+घर] दे० 'भुसौरा' ।

भुसौरा—संज्ञा पुं० [हिं० भुसा+घर] [स्त्री० भुसौरी] वह घर जिसमे भूसा रखा जाता हो। भूसा रखने का स्थान।

भूँकना—क्रि० अ० [अनु०] १. भूँ भूँ या भों भों शब्द करना (कुत्तों का)। [इस शब्द का प्रयोग कुत्तों की बोली के लिये होता है]। २. व्यर्थ बकना।

भूँखा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूख] दे० 'भूख'।

भूँखा—वि० [हिं० भूख ?] दे० 'भूखा'।

भूँच†—वि० [देश० या हिं० भुच्च] ऊजड़। उजड्ड। भूड़ रेते से भरा। उ०—भूँच देश मे रमि रहे श्रीनारायण दास।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ७४।

भूँचनहार—संज्ञा पुं० [सं० भुञ्जन] भोग करनेवाला। उ०—सकामी सेवा करें, मांगे मुगध गँवार। दादू ऐसे बहुत हैं, फल के भूँचनहार।—दादू०, पृ० ६७०।

भूँचना॥†—क्रि स० [सं० भुञ्जन] भुगतना। भोग करना। उ०—सगुरा सति संजम रहै, सनमुख सिरजनहार। निगुरा लोभी लालची, भूँचै विषै विकार।—दादू०, पृ० ४१४।

भूँचाल—संज्ञा पुं० दे० [सं० भू+हिं० चाल] दे० 'भूकप'।

भूँछ—वि० [देश०] दे० 'मुच्चड़'। उ०—खातहिं खात भए इतने दिन। जानत नाहिं न भूँछ कही को।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ४३२।

भूँजना†¹—क्रि० स० [हिं० भूनना] १. किसी वस्तु को आग में डालकर या और किसी प्रकार गर्मी पहुँचाकर पकाना। २. तलना। पकाना। उ०—ऐं परि जो मो इच्छा होई। भूँज्यो बीज तियजि परै सोई।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६। ३. दुःख देना। सताना।

भूँजना—क्रि० स० [सं० भोग] भोगना। भोग करना। उ०—(क) राज कि भूँजब भरतपुर नृप कि जियहिं बिन राम।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कीन्हेसि राजा भूँजहिं राजु। कीन्हेसि हस्ति घोर तिन्ह साजू।—जायसी (शब्द०)।

भूँजा†—संज्ञा पुं० [हिं० भूनना] १. भूना हुआ अन्न। चबेना। २. भड़भूँजा।

भूँड़—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भूड़'।

भूँडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० भू+हिं० ड+री (प्रत्य०)] वह भूमि जो जमीदार नाऊ, बारी, फकीर वा किसी संबंधी को माफी के तौर पर देता है।

भूँड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० भूँडरी (=माफी की जमीन] वह व्यक्ति जो मँगनी के हल बैलों से खेती करता हो।

भूँडोल—संज्ञा पुं० [सं० भू+हिं० डोलना] दे० 'भूकप'।

भूँभरा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'भुभुरि'। उ०—पंथिहि कहा धूप औ छाहाँ। चलै जरत पग भूँभर माहाँ।—चित्रा०, पृ० ८६।

भूँभाई†—संज्ञा पुं० [सं० भू+भाई ?] वह मनुष्य जिसे गाँव का स्वामी किसी दूसरे स्थान से बुलाकर अपने यहाँ बसावे और उसे निर्वाह के लिये कुछ माफी जमीन दे।

भूँरो—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] भ्रमर। भौरा। (डिं०)।

भूँसना॥†—क्रि अ० [देश०] दे० 'भूँकना'।

भूँह॥—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] भौंह। उ०—जल में भिजि भूँह कला दुसरी। सु लरै मनु बाल अनीन खरी।—पृ० रा०, १४।४३।

भू¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी।

यौ०—भूपति। भूपुर।

२. स्थान। जगह। जमीन। ३. सीता जी की एक सखी का नाम। ४. सत्ता। ५. प्राप्ति। ६. एक की संख्या (को०)। ७. यज्ञ की अग्नि।

भू²—वि० उत्पन्न या पैदा होनेवाला। जैसे, अंगभू, मनोभू, स्वयंभू।

भू³—संज्ञा पुं० रसातल।

भू⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] भौंह। उ०—नौर नासा इंद्र धनु भू भवर सी अलकावली। अधर बिद्रुम बज्रकन दाड़िम किधौं दशनावली।—सूर (शब्द०)।

भूआ¹—संज्ञा पुं० [हिं० बूआ] रुई के समान हलकी और मुलायम वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। जैसे, सेमर का भूआ।

भूआ²—वि० भूआ के समान। श्वेत।

भूआ॥†³—संज्ञा स्त्री० [देश०] पिता की बहिन। फूआ। बूआ। उ०—अरी भूआ बीहन करति आरती, उन री भागरत अपने नेग, रंग मैहेल मे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३२।

भूई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०बूआ या भूआ] २. रुई के समान मुलायम वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। २. किसी जली हुई वस्तु (रस्सी, लकड़ी आदि) की भूही। उ०—तुईं पै मरहि होई जरि भूई। अबहूँ उघेल कान कै रुई।—जायसी (शब्द०)।

भूकंद—संज्ञा पुं० [सं० भूकन्द] जमीकंद। सूरन। ओल।

भूकप—संज्ञा पुं० [सं० भूकम्प] पृथ्वी के ऊपरी भाग का सहसा कुछ प्राकृतिक कारणों से हिल उठाना। भूचाल। भूडोल। जलजला।

विशेष—यद्यपि पृथ्वी का ऊपरी भाग बिलकुल ठंढा हो गया है, तथापि इसके गर्भ मे अभी बहुत अधिक आग तथा गरमी है। यह आग या गरमी कई रूपों मे प्रकट होती है, जिसमे से एक रूप ज्वालामुखी पर्वत भी है। जब कुछ विशेष कारणों से भूगर्भ की यह अग्नि विशेष प्रज्वलित अथवा शीतल होती है, तब भूगर्भ मे अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं जिनके कारण पृथ्वी का ऊपरी भाग भी हिलने या काँपने लगता है। इसी को भूकंप कहते है। कभी तो इस कंप का मान इतना सूक्ष्म होता है कि साधारणतः हम लोगों को बिना यंत्रों की सहायता के उसका ज्ञान भी नहीं होता, और कभी इतना भीषण होता है कि उसके कारण पृथ्वी मे बड़ी बड़ी दरारें पड़ जाती हैं, बड़ी बड़ी इमारतें गिर जाती हैं और यहाँ तक कि कभी कभी जल के स्थान में स्थल और स्थल के स्थान में जल हो जाता है। कुछ भूकपों का विस्तार तो दस बीस मील तक ही होता है और कुछ का सैकड़ों हजारों

मीलों तक। कभी तो एक ही दो सेकेंड में दो चार बार पृथ्वी हिलने के बाद भूकंप रुक जाता है और कभी लगातार मिनटों तक रहता है। कभी कभी तो रह रहकर लगातार सप्ताहों और महीनों तक पृथ्वी हिलती रहती है। भूकंप से कभी कभी सैकड़ों हजारों मनुष्यों के प्राण तक चले जाते हैं, और लाखों करोड़ों की संपत्ति का नाश हो जाता है। जिन देशों में ज्वालामुखी पर्वत अधिक होते हैं उन्हीं में भूकंप भी अधिक होते हैं। भूमध्यसागर, प्रशांत महासागर के तट, ईस्ट-इंडीज टापुओं में प्राय: भूकंप हुआ करते हैं; और उत्तरी अमेरिका के उत्तरपश्चिमी भाग, दक्षिण अमेरिका के पूर्वी भाग, एशिया के उत्तरी भाग और अफ्रीका के बहुत बड़े भाग में बहुत कम भूकंप होता है। स्थल के अतिरिक्त जल में भी भूकंप होता है जिसका रूप कभी कभी बहुत भीषण होता है। हिंदुओं में से बहुतों का विश्वास है कि पृथ्वी को उठानेवाले दिग्गजों अथवा शेषनाग के सिर के हिलने से भूकंप होता है।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

भूक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २. वसंत। वसंत ऋतु। ३. छिद्र। छेद। दरार। ४. अंधकार। तम [कौ०]।

भूका†[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भूख'।

भूकदंब—संज्ञा पुं० [सं० भूकदम्ब] दे० 'भूनीप' [कौ०]।

भूकना†—क्रि० अ० [देश०] दे० 'भूँकना'। उ०—कन्न फड़ाय न मुंड मुडाया। घरि घरि फिरत न भूकण वाया।—प्राण०, पृ० १११।

भूकपित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कैथ।

भूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी का व्यास।

भूकर्वुदारक—संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा।

भूकल—संज्ञा पुं० [सं०] बिगड़ैल घोड़ा [कौ०]।

भूकश्यप—संज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव।

भूका†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] भूख। उ०—पंच परजारि भसम करि भूका।—कबीर ग्रं०, पृ० १५८।

भूकाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का छोटा कंक या बाज। २. नीला कबूतर। ३. क्रौंच पक्षी।

भूकुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० भूकुम्भी] भूपाटली।

भूकुष्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० भूकुष्माण्डी] भुइँ कुम्हड़ा। बिदारी।

भूकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवार। २. वट वृक्ष, जिसकी जटाएँ जमीन पर लटकती रहती हैं।

भूकेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राक्षसी।

भूकेशी—संज्ञा पुं० [सं०] सोमराज नामक वृक्ष।

भूक्षित्—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

भूख—संज्ञा स्त्री० [सं० बुभुक्षा] १. वह शारीरिक वेग जिसमें भोजन की इच्छा होती है। खाने की इच्छा। क्षुधा।

यौ०—भूख प्यास।

मुहा०—भूख मरना = भूख लगने पर अधिक समय तक भोजन न मिलने के कारण उसका नष्ट हो जाना। पेट में अन्न न होने पर भोजन की इच्छा न रह जाना। भूख लगना = भोजन की इच्छा होना। खाने को जी चाहना। भूखों मरना = भूख लगने पर भोजन न मिलने के कारण कष्ट उठाना या मरना। भूख पियास बिसरना = सुध बुध खो बैठना। मस्त हो जाना। उ०—तन की सुधि रहि जात जाय मन श्रंतै अटका। बिसरी भूख पियास किया सुतगुरु ने टोटका।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

२. आवश्यकता। जरूरत (व्यापारी)। जैसे,—अब तो इसे सौदे की भूख नहीं है। ३. समाई। गुंजाइश। (क्व०)। ४. कामना। अभिलाषा। उ०—मुख रूखी बातैं कहै जिय में पिय की भूख।—केशव (शब्द०)।

भूखण—संज्ञा पुं० [सं० भूषण] आभूषण।

भूखनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० भूषण] दे० 'भूषण'। उ०—पहिरि फूल की माल रतन के भूखन साजत। ये नहिं सोभा देत नैक बोलत जे लाजत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १००।

भूखनाⓅ†—क्रि० स० [सं० भूषण] भूषित करना। सुसज्जित करना। सजाना। उ०—(क) लाखन की बकसीस करिबे को उदित है भूखिबे को अंग भूषि भूखन न गनते।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) लै तेहि काल अभूषन अंग मे हीरा बिलास के भूषन भूखे।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) भूखन भूखे जरायन के पहिरे फरिया रँगि सौरभ मीलों।—गोकुल (शब्द०)।

भूखरा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूख] १. भूख। क्षुधा। २. इच्छा। ख्वाहिश।

भूखजूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा खजूर।

भूख हड़ताल—संज्ञा पुं० [हिं०] अनशन।

भूखा[१]—वि० पुं० [हिं० भूख + आ (प्रत्य०)] [स्त्री० भूखी] १. जिसे भोजन की प्रबल इच्छा हो। जिसे भूख लगी हो। क्षुधित।

मुहा०—भूखा रहना = निराहार रहना। भोजन न करना। भूखे प्यासे = बिना खाए पिए। बिना अन्न जल ग्रहण किए।

२. जिसे किसी बात की इच्छा या चाह हो। चाहनेवाला। इच्छुक। जैसे,—हम तो प्रेम के भूखे हैं। उ०—दानि जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर टीको। भोरो भलो भले भाय को भूखो भलोई कियो सुमिरे तुलसी को।—तुलसी (शब्द०)। ३. जिसके पास खाने तक को न हो। दरिद्र।

यौ०—भूखा नंगा।

४. रिक्त। अभावपूर्ण। उ०—क्या तुम अपने अकेलेपन में अपने को कभी कभी भूखा नहीं पाते।—सुनीता, पृ० २७।

भूखाⓅ[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूख] दे० 'भूख'। उ०—कैसें सहब खिनहि खिन भूखा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२९।

भूगंधपति—संज्ञा पुं० [सं० भूगन्धपति] शिव।

भूगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूगन्धा] मुरा नामक गंधद्रव्य ।

भूगर—संज्ञा पुं० [सं०] विष । जहर ।

भूगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी का भीतरी भाग । २. विष्णु ।

भूगर्भगृह—संज्ञा पुं० [सं०] तहखाना । तलघर ।

भूगर्भशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसके द्वारा इस बात का ज्ञान होता है कि पृथ्वी का संघटन किस प्रकार हुआ है, उसके ऊपरी और भीतरी भाग किन किन तत्वों के बने हैं, उसका आरंभिक रूप क्या था और उसका वर्त्तमान विकसित रूप किस प्रकार और किन कारणों से हुआ है ।

विशेष—इसमें पृथ्वी की आदिम अवस्था से लेकर अब तक का एक प्रकार का इतिहास होता है जो कई युगों में विभक्त होता है और जिनमें से प्रत्येक युग की कुछ विशेषताओं का विवेचन होता है। बड़ी बड़ी चट्टानों, पहाड़ों तथा मैदानों के भिन्न भिन्न स्तरों की परीक्षा इसके अंतर्गत होती है; और इसी परीक्षा के द्वारा यह निश्चित होता है कि कौन सा स्तर या भूभाग किस युग का बना है। इस शास्त्र में इस बात का भी विवेचन होता है कि पृथ्वी पर जलवायु और वातावरण आदि का क्या प्रभाव पड़ता है ।

भूगृह—संज्ञा पुं० [सं०] भूगर्भगृह । तहखाना [को०] ।

भूगेह—संज्ञा पुं० [सं०] तहखाना ।

भूगोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी । २. वह शास्त्र जिसके द्वारा पृथ्वी के ऊपरी स्वरूप और उसके प्राकृतिक विभागों आदि (जैसे, पहाड़, महादेश, देश, नगर, नदी, समुद्र, झील, डमरूमध्य, उपत्यका, अधित्यका, वन आदि) का ज्ञान होता है ।

विशेष—विद्वानों ने भूगोल के तीन मुख्य विभाग किए हैं। पहले विभाग में पृथ्वी का सौर जगत् के अन्यान्य ग्रहों और उपग्रहों आदि से संबंध बतलाया जाता और उन सबके साथ उसके सापेक्षिक संबंध का वर्णन होता है। इस विभाग का बहुत कुछ संबंध गणित ज्योतिष से भी है। दूसरे विभाग में पृथ्वी के भौतिक रूप का वर्णन होता है और उससे यह जाना जाता है कि नदी, पहाड़, देश, नगर आदि किसे कहते हैं और अमुक देश, नगर, नदी या पहाड़ आदि कहाँ हैं। साधारणतः भूगोल से उसके इसी विभाग का अर्थ लिया जाता है। भूगोल का तीसरा विभाग राजनीतिक होता है और उसमें इस बात का विवेचन होता है कि राजनीति, शासन, भाषा, जाति और सभ्यता आदि के विचार से पृथ्वी के कौन कौन विभाग हैं और उन विभागों का विस्तार और सीमा आदि क्या है ।

३. वह ग्रंथ जिसमें पृथ्वी के ऊपरी स्वरूप और प्राकृतिक विभागों आदि का वर्णन होता है ।

भूगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीमंडल ।

भूघन—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर ।

भूघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फटिक मिट्टी की स्लेट या पट्टिका ।

भूचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी की परिधि । २. विषुवत् रेखा । ३. अयनवृत्त । ४. क्रांतिवृत्त ।

भूचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । महादेव । २. दीमक । ३. वह जो पृथ्वी पर रहता हो। भूमि पर रहनेवाला प्राणी । ४. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि ।

विशेष—कहते हैं, यह सिद्धि प्राप्त हो जाने पर मनुष्य के लिये न तो कोई स्थान अगम्य रह जाता है, न कोई पदार्थ अप्राप्य रह जाता है और न कोई बात अप्रत्यक्ष रह जाती है ।

भूचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगशास्त्रानुसार समाधि अंग की एक मुद्रा जिसका निवास नाक में है और जिसके द्वारा प्राण और अपान वायु दोनों एकत्र हो जाती हैं। उ०—दूसरी मुद्रा भूचरी नासा वायु निवास। प्राण अपान जुदी जुदी करि देवै एक पास ।—विश्राम (शब्द०) ।

भूचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी की छाया जिसे लोग राहु कहते हैं । २. अंधकार ।

भूचाल—संज्ञा पुं० [सं० भू + हिं० चाल (= चलना)] भूकंप । भूडोल ।

भूची—संज्ञा पुं० [सं० भूचर] पृथ्वी पर निवास करनेवाला । दे० 'भूचर' । उ०—निसा एक रच्चा असो जंग धायौ । पलं औन पोचीन भूची अघायौ ।—पृ० रा०, १२।२०६ ।

भूच्छाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'भूचर्या' । २. तम ।

भूच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथिवी की छाया । भूचर्या । २. अंधकार [को०] ।

भूछित(५)†—वि० [सं० भूषित] दे० 'भूषित' । उ०—नृपति दैन जन विभव भूर भूछित तन सोभित। त्रिपुर दहन कवि चंद कैन कारन क्रत लोकित ।—पृ० रा०, ७।८ ।

भूजंतु—संज्ञा पुं० [सं० भूजन्तु] १. सीसा। २. हाथी । ३. एक प्रकार का घोंघा ।

भूजंबु—संज्ञा पुं० [सं० भूजम्बु] १. गेहूँ । २. बनजामुन ।

भूजना—क्रि० स० [सं० भोग] भोगना । भोग करना । उपभोग करना । उ०—मों उर निकट बैठि अब साईं । भूजहु राज इंद्र की नाईं ।—चित्रा०, पृ० २०७ ।

भूजात—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी से उत्पन्न, वृक्ष ।

भूजी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भुजिया' ।

भूटा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भुट्टा' । उ०—होइ निबीन निंदा तें साधु, अघ क्रम जरि भे भूटा ।—जग० बानी०, पृ० १६ ।

भूटान—संज्ञा पुं० [सं० भोटस्थान या भोटायन] हिमालय का एक प्रदेश जो नेपाल के पूर्व और आसाम के उत्तर में है। इस देश के निवासी बहुत बलवान और साहसी होते हैं और घोड़े बहुत प्रसिद्ध हैं ।

भूटानी¹—वि० [हिं० भूटान + ई (प्रत्य०)] भूटान देश का। भूटान संबंधी ।

भूटानी²—संज्ञा पुं० १ भूटान देश का निवासी। २. भूटान देश का घोड़ा।

भूटानी³—संज्ञा स्त्री० भूटान देश की भाषा।

भूटिया बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० भूटान+फ़ा० बादाम] एक पहाड़ी वृक्ष जिसे कपासी भी कहते हैं।

विशेष—यह वृक्ष पाँच हजार से लेकर दस हजार फुट तक की ऊँचाई तक पहाड़ों पर होता है। यह मझोले आकार का होता है। इसकी लकड़ी मजबूत और रंग मे गुलाबी होती है, जिससे मेज, कुरसी आदि चीजें बनाई जाती हैं। इस वृक्ष का फल खाया जाता है।

भूड़—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भूमि जिसमें बालू मिला हुआ होता है। बलुई भूमि। २. कूएँ का सोत। झिर।

भूडोल—संज्ञा पुं० [सं० भू+हिं० डोलना] भूकंप।

भूण—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमण] १. जलयात्रा। समुद्री सफर। २. जलभ्रमण। जलविहार (डिं०)।

भूत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे मूल द्रव्य जो सृष्टि के मुख्य उपकरण हैं और जिनकी सहायता से सारी सृष्टि की रचना हुई है। द्रव्य। महाभूत।

विशेष—प्राचीन भारतीयो ने सावयव सृष्टि के पाँच मूलभूत या महाभूत माने हैं जो इस प्रकार हैं—पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि और आकाश। पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि वायु और जल मूल भूत या द्रव्य नहीं हैं, बल्कि कई मूल भूतों या द्रव्यो के संयोग से बने हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने प्रायः ७५ मूल भूत माने हैं जिनमें से पाँच वाष्प, दो तरल तथा शेष ठोस हैं। पर इन समस्त मूल भूतों में भी एक तत्व ऐसा है जो सब में समान रूप से पाया जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि ये मूल भूत भी वास्तव मे किसी एक ही भूत के रूपातर हैं। अभी कुछ ऐसे भूतों का भी पता लगा है जो मूल भूत हो सकते हैं, पर जिनके विषय में अभी तक पूर्ण रूप से कुछ निश्चय नहीं हुआ है। वि० दे० 'द्रव्य'।

२. सृष्टि का कोई जड़ वा चेतन, अचर वा चर पदार्थ वा प्राणी।

यौ०—भूतदया=जड़ और चेतन सबके साथ की जानेवाली दया।

३. प्राण। जीव। ४. सत्य। ५. वृत्त। ६. कार्तिकेय। ७. योगींद्र। ८. वह औषध जिसके सेवन से प्रेतो और पिशाचो का उपद्रव शात होता हो। ९. लोध। १०. कृष्ण पक्ष। ११. पुराणानुसार पौरवी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के बारह पुत्रों मे से सबसे बड़े पुत्र का नाम। १२. बीता हुआ समय। गुजरा हुआ जमाना। १३. व्याकरण के अनुसार क्रिया के तीन प्रकार के मुख्य कालों में से एक। क्रिया का वह रूप जिससे यह सूचित होता हो कि क्रिया का व्यापार समाप्त हो चुका। जैसे,—मै गया था; पानी बरसता था। १४. पुराणानुसार एक प्रकार के पिशाच या देव जो रुद्र के अनुचर हैं और जिनका मुँह नीचे की ओर लटका हुआ या ऊपर की ओर उठा हुआ माना जाता है। ये बालकों को पीड़ा देनेवाले ग्रह भी कहे जाते हैं। १५. मृत शरीर। शव। १६. मृत प्राणी की आत्मा। १७. वे कल्पित आत्माएँ जिनके विषय मे यह माना जाता है कि वे अनेक प्रकार के उपद्रव करती और लोगों को बहुत कष्ट पहुँचाती है। प्रेत। जिन। शैतान।

विशेष—भूतों और प्रेतों आदि की कल्पना किसी न किसी रूप में प्रायः सभी जातियो और देशो मे पाई जाती है। साधारणतः लोग इनके रूपो और व्यापारो आदि के संबध मे अनेक प्रकार की विलक्षण कल्पनाएँ कर लेते हैं और इनके उपद्रव आदि से बहुत डरते हैं। अनेक अवसरों पर इनके उपद्रवों से बचने तथा इन्हें प्रसन्न रखने के लिये अनेक प्रकार के उपाय भी किए जाते हैं। साधारणतः यह माना जाता है कि मृत प्राणियो की जिन आत्माओं को मुक्ति नहीं मिलती, वही आत्माएँ चारों ओर घूमा करती है और समय समय पर उपद्रव आदि करके लोगो को कष्ट पहुँचाती हैं। इनका विचरणकाल रात और निवासस्थान एकात या भीषण वन आदि माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि ये भूत कभी कभी किसी के सिर पर, विशेषतः स्त्रियों के सिर पर, आ चढ़ते हैं और उनसे उपद्रव तथा बकवाद कराते हैं।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—चढ़ना।—झाड़ना—लगना।

मुहा०—(किसी बात का) भूत चढ़ना या सवार होना=(किसी बात के लिये) बहुत अधिक आग्रह या हठ होना। जैसे,—तुम्हें तो हर एक बात का इसी तरह भूत चढ जाता है। भूत चढ़ना या सवार होना=बहुत अधिक क्रोध होना। कुपित होना। जैसे,—उनसे मत बोलो, इस समय उनपर भूत चढ़ा है।

विशेष—इन दोनों मुहावरों में 'चढ़ना' के स्थान पर 'उतरना' होने से अर्थ बिलकुल उलट जाता है।

मुहा०-भूत बनना=(१) नशे मे चूर होना। (२) बहुत अधिक क्रोध मे होना। (३) किसी काम मे तन्मय होना। भूत बनकर लगना=बुरी तरह पीछे लगना। किसी तरह पीछा न छोडना। भूत की मिठाई या पकवान=(१) वह पदार्थ जो भ्रम से दिखाई दे, पर वास्तव मे जिसका अस्तित्व न हो।

विशेष—लोग कहते हैं कि भूत प्रेत आकर मिठाई रख जाते है, जो देखने में तो मिठाई ही होती है, पर खाने या छूने पर मिठाई नही रह जाती, राख, मिट्टी, विष्ठा, आदि हो जाती है।

(२) सहज में मिला हुआ धन जो शीघ्र ही नष्ट हो जाय। उ०—भूत की मिठाई जैसी साधु की भुठाई तैसी स्यार की ढिठाई ऐसी क्षीण छहूँ ऋतु है।—केशव (शब्द०)।

भूत²—वि० १. गत। बीता हुआ। जैसे, भूतपूर्व। भूतकाल। २. युक्त। मिला हुआ। ३. समान। सदृश। ४. जो हो चुका हो। हो चुका हुआ।

विशेष—इन अर्थों मे इसका व्यवहार प्रायः यौगिक शब्दों के अंत मे होता है।

भूतक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सुमेरु पर के २१ लोकों मे से एक लोक।

भूतकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० भूतकर्तृ] प्रजापति। ब्रह्मा। स्रष्टा [को०]।

भूतकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शक्ति जो पंचभूतों को उत्पन्न करनेवाली मानी जाती है।

भूतकाल—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण मे क्रिया का एक काल। दे० 'भूत²'—१३।

भूतकालिक—वि० [सं०] भूतकाल संबंधी।

भूतकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. विष्णु।

भूतकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दक्ष सावर्णि के एक पुत्र का नाम।

भूतकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ सफेद दूब। २. इंद्रावारुणी। ३. सफेद तुलसी। ४. जटामासी।

भूतकोटि—संज्ञा पुं० [सं०] जो पूर्णतया सत्त्वयुक्त या सत्तायुक्त न हो [को०]।

भूतक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० भूतक्रान्ति] भूतावेश।

भूतखाना—संज्ञा पुं० [हिं० भूत+फ़ा० खाना (=घर)] बहुत मैला कुचैला या अंधेरा घर।

भूतगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूतगन्धा] मुरा नामक गंधद्रव्य।

भूतगण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव के गण। २. भूतों का समूह।

भूतगत्या—वि० [सं०] विश्वासपूर्वक। सत्यतापूर्वक [को०]।

भूतग्रस्त—वि० [सं०] जिसे भूत लगा हो।

भूतग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर। देह। २. संसार। जगत्। प्राणिसमूह।

भूतघ्न¹ संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊँट। २. लहसुन। ३. भोजपत्र का पेड़।

भूतघ्न²—वि० भूतों का नाश करनेवाला।

भूतघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

भूतचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी। नरक चौदस। (इस दिन यम की पूजा और तर्पण होता है।)

भूतचारी—संज्ञा पुं० [सं० भूतचारिन्] महादेव। शिव।

भूतचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० भूतचिन्तक] मूल भूतों की चिंता या अन्वेषण करनेवाला। स्वभाववादी।

भूतचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० भूतचिन्ता] तत्वों का अन्वेषण और उनकी छानबीन [को०]।

भूतज—वि० [सं०] भूतों से उत्पन्न। भूत का। भूत संबंधी।

यौ०—भूतज उन्माद = दे० 'भूतोन्माद'।

भूतजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

भूतजननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगज्जननी। समस्त विश्व की माता [को०]।

भूतजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभूतों या तत्वों पर प्राप्त विजय [को०]।

भूततंत्र—संज्ञा पुं० [सं० भूततन्त्र] जिन या प्रेतों की विद्या [को०]।

भूततृण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का विष। २. एक प्रकार का गंधद्रव्य।

भूतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूत होने का भाव। २. भूत धर्म। ३. भूमि संबंधी तत्व।

भूतत्वविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमि के तत्वों को बतानेवाली विद्या। दे० 'भूगर्भशास्त्र'।

भूतदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव की एक शक्ति का नाम [को०]।

भूतदया—संज्ञा स्त्री० [सं०] चराचर के प्रति दयालुता। प्राणियों के प्रति दया [को०]।

भूतद्रावी—संज्ञा पुं० [सं० भूतद्राविन्] लाल कनेर।

भूतद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मांतक वृक्ष।

भूतधरा—संज्ञा पुं० [सं०] १. धरती। पृथ्वी।

भूतधात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. निद्रा जो सबको सुला देती है (को०)।

भूतधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भूतधरा'।

भूतधाम—संज्ञा पुं० [सं० भूतधामन्] पुराणानुसार इंद्र के एक पुत्र का नाम।

भूतनगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० भूत+नगरी] कावेरी नदी के किनारे का एक गाँव। उ०—पृथ्वी मे द्राविड देश मे कांचीपुरी के पास श्री कावेरी गंगा के तट 'भूतनगरी' ग्राम में।—भक्तमाल०, पृ० २८८।

भूतनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

भूतनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुद्राक्ष। २. सरसों। ३. भिलावाँ। ४. हींग।

भूतनिचय—संज्ञा पुं० [सं०] मूल भूतों का समूह, शरीर [को०]।

भूतनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूत] चुड़ैल। स्त्री भूत। भूतिनी।

भूतपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मास का कृष्ण पक्ष। अँधेरा पक्ष। अँधेरा पाख। बदी।

भूतपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। २. काली तुलसी। ३. अग्नि (को०)। ४. आकाश (को०)।

भूतपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

भूतपाल—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

भूतपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] श्योनाक वृक्ष।

भूतपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन की पूर्णिमा। शरदपूर्णिमा।

भूतपूर्व—वि० [सं०] वर्तमान से पहले का। इससे पहले का। जैसे,—भूतपूर्व मंत्री, भूतपूर्व संपादक।

भूतप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] संसार की मूल प्रकृति [को०]।

भूतप्रतिषेध—संज्ञा पुं० [सं०] भूत प्रेतादि दूर करना [को०]।

भूतप्रेत—संज्ञा पुं० [सं०] भूत और प्रेत आदि।

भूतबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूतयज्ञ [को०]।

भूतब्रह्मा—संज्ञा पुं० [सं० भूतब्रह्मन्] देवल। एक प्रकार का दान लेनेवाला ब्राह्मण।

भूतभर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० भूतभर्तृ] शिव।

भूतभव्य—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

भूतभावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शंकर। २. ब्रह्मा (को०)। ३. विष्णु।

भूतभावी—वि० [सं० भूतभाविन्] १. जीवों की सृष्टि करनेवाला। २. भूत या अतीत और भावी।

भूतभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैशाची भाषा। वि० दे० 'पैशाची'।

भूतभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

भूतभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] १. भैरव की एक मूर्ति का नाम। २. वैद्यक में एक प्रकार का रस।

विशेष—यह हरताल और गंधक आदि से बनाया जाता है। इसके सेवन से ज्वर, दाह, वात प्रकोप और कुष्ट आदि का दूर होना माना जाता है।

भूतमहेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० भूतमातृ] गौरी।

भूतमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

भूतमात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँचों तन्मात्राएँ। वि० दे० 'तन्मात्र'।

भूतयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] गृहस्थ के लिये कर्तव्य पंचयज्ञ में से एक यज्ञ। भूतबलि। बलिवैश्व।

भूतयोनि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

भूतयोनि[2]—संज्ञा स्त्री० प्रेतयोनि।

भूतराज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी का ऊपरी तल। धरातल। २. संसार। दुनिया। जगत्। ३. पाताल।

भूतलशायी—वि० [सं० भूतलशायिन्] दे० 'धराशायी'।

भूतलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] असवर्ग।

भूतवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणियों का समुदाय या परिवार।

भूतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] भूत संबंधी मान्यता। भौतिकवाद।

भूतवादी—वि० [सं० भूतवादिन्] पूर्णतया सत्य या तथ्य कहनेवाला [को०]।

भूतवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। २. विष्णु। ३. विभीतक वृक्ष। बहेड़े का पेड़ (को०)।

भूतवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

भूतविक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपस्मार रोग। २. भूतग्रस्तता। भूतबाधा। प्रेतबाधा (को०)।

भूतविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद का वह विभाग जिसमें देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, पिशाच, नाग, ग्रह, उपग्रह आदि के प्रभाव से उत्पन्न होनेवाले मानसिक रोगों का निदान और उपाय होता है। यह उपाय बहुधा ग्रहशांति, पूजा, जप, होमदान, रत्न पहनने और औषध आदि के सेवन के रूप में होता है।

भूतविनायक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतविभु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा [को०]।

भूतवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] श्योनाक।

भूतवेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी।

भूतशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार शरीर की वह शुद्धि जो पूजन आदि से पहले की जाती है और जिसे बिना किए पूजा का अधिकार नहीं होता। भिन्न भिन्न तंत्रों में इस शुद्धि के भिन्न विधान दिए गए हैं। इसमें कई प्रकार के जप और प्राणायाम आदि करने पड़ते हैं।

भूतसंचार—संज्ञा पुं० [सं० भूतसञ्चार] भूतोन्माद नामक रोग।

भूतसंचारी—संज्ञा पुं० [सं० भूतसञ्चारिन्] वनाग्नि। दावानल।

भूतसंताप—संज्ञा पुं० [सं० भूतसन्ताप] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

भूतसंप्लव—संज्ञा पुं० [सं० भूतसम्प्लव] प्रलय।

भूतसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि। जगत् [को०]।

भूतसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० भूतसाक्षिन्] सब कुछ अपनी आँखों देखनेवाला। समस्त प्राणियों को जिसने अपनी आँखों से देखा हो।

भूतसिद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार वह जिसने भूत प्रेत आदि को सिद्ध और वश में कर लिया हो।

भूतसूक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तन्मात्र'।

भूतसृज्—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिकर्ता ब्रह्मा [को०]।

भूतसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाभूतों की सृष्टि। समग्र महाभूत। २. भूतावेशजन्य भ्रांति [को०]।

भूतस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणियों के रहने का स्थान। मनुष्यों के रहने का स्थान। २. प्रेतों का निवासस्थान [को०]।

भूतहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० भूतहन्त्री] १. नीली दूब। २. बाँझ ककोड़ी।

भूतहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राणिवध। जीववध [को०]।

भूतहन्—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का वृक्ष।

भूतहर—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल।

भूतहा—संज्ञा पुं० [सं० भूतहन्] भोजपत्र का वृक्ष।

भूतहारी—संज्ञा पुं० [सं० भूतहारिन्] १. देवदारु। २. लाल कनेर।

भूतहास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें इंद्रियाँ

अपना काम नहीं करतीं, रोगी व्यर्थ बहुत बकता है, उसे बहुत हँसी आती है।

भूतांकुश—संज्ञा पुं० [सं० भूताङ्कुश] १. कश्यप ऋषि। २. गावजुबान। गावजुबाँ।

भूतांकुश रस—संज्ञा पुं० [सं० भूताङ्कुशरस] वैद्यक मे एक प्रकार का रस जिसमे पारा, लोहा, ताँबा, मोती, हरताल, गंधक मैनसिल, रसांजन आदि पदार्थ पड़ते हैं। इससे भूतोन्माद आदि अनेक रोग दूर होते हैं।

भूतांतक—संज्ञा पुं० [सं० भूतान्तक] १. यम। २. रुद्र।

भूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि।

भूताक्ष—[संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

भूतात्मा—संज्ञा पुं० [सं० भूतात्मन्] १. शरीर। २. परमेश्वर। ३. शिव। ४. विष्णु। ५. ब्रह्म (को०)। ६. जीवात्मा। ७. युद्ध।

भूतादि—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. अहंकार। (सांख्य)।

भूताधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतानुकंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूत+अनुकम्पा] जीवदया। प्राणियों पर दया।

भूतापि—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. सांख्य के अनुसार अहंकार तत्व जिससे पचभूतों की उत्पत्ति होती है।

भूतायन—संज्ञा पुं० [सं०] नारायण। परमेश्वर।

भूतारि—संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

भूतार्त—वि० [सं०] भूताविष्ट। भूत से पीड़ित (को०)।

भूतार्थ—वि० [सं०] जो हुआ हो। वस्तुतः घटित।

भूतावास—संज्ञा पुं० [सं०] १. संसार। दुनिया। २. शरीर। देह। ३. बहेड़े का वृक्ष। ४. विष्णु।

भूताविष्ट—वि० [सं०] १. जिसे भूत या पिशाच लगा हो। २. जो भूतो आदि के प्रभाव से रोगी हुआ हो।

भूतावेश—संज्ञा पुं० [सं०] भूत का आवेश। भूत लगना। प्रेतबाधा।

भूतावेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूतावेश] भूत का आवेश। भूत लगना। उ०—भूतावेस अवसि है भाई। दीरहु कछु इक करहु उपाई।—नद० ग्र०, पृ० १३८।

भूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैभव। धनसंपत्ति। राज्यश्री। उ०—धरमनीति उपदेशिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।—तुलसी (शब्द०)। २. भस्म। राख। उ०—भव अंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी—तुलसी (शब्द०)। ३. उत्पत्ति। ४. वृद्धि। अधिकता। ५. अणिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धियाँ। ६. हाथी का मस्तक रँगकर उसका शृगार करना। ७. पुराणानुसार एक प्रकार के पितृ। ७. लक्ष्मी। ९. वृद्धि नाम की ओषधि। १०. भूतृण। ११. सत्ता। १२. पकाया हुआ मांस। १३. विष्णु। १४. रूसा घास।

भूतिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटहल। २. अजवायन। ३. चंदन। ४. कर्पूर (को०)। ५. भूनिंब। चिरायता। ५. रूसा घास।

भूतिकाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का मंत्री। २. बृहस्पति।

भूतिकाम[2]—वि० जिसे ऐश्वर्य की कामना हो। विभूति की अभिलाषा रखनेवाला।

भूतिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] समृद्धि का समय। शुभकाल।

भूतिकील—संज्ञा पुं० [सं०] खाई। परिखा। २. तहखाना (को०)।

भूतिकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतिगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] भवभूति।

भूतितीर्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

भूतिद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतिदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

भूतिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूत] दे० 'भूतिनी'।

भूतिनिधान—संज्ञा पुं० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

भूतिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूत] १. भूत योनि में प्राप्त स्त्री। भूत की स्त्री। २. शाकिनी, डाकिनी इत्यादि।

भूतिभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतियवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार कूर्मचक्र के एक देश का नाम। २. इस देश का निवासी।

भूतिलय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

भूतिवर्धन—वि० [सं०] ऐश्वर्य बढ़ानेवाला।

भूतिवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भूतिसित—वि० [सं०] भस्म लगाने के कारण श्वेत वर्णवाले। (शिव)। जो भस्म लगने से श्वेत हो (को०)।

भूती—संज्ञा पुं० [हिं० भूत+ई (प्रत्य०)। भूतपूजक।

भूतीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिरायता। २. अजवायन। ३. भूतृण। ४. कपूर।

भूतीबानी—संज्ञा स्त्री० [सं० विभूति] भस्म। राख। (डिं०)

भूतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० भूतुम्बी] ककंटी। एक प्रकार की ककरी।

भूतृण—संज्ञा पुं० [सं०] रूसा घास जिसका तेल बनता है। वैद्यक में इसे कटु और तिक्त तथा विषदोषनाशक माना है।

पर्या०—रोहिष। भूति। कुटुंबक। मालातृण। छत्र। अहिछत्रक। सुगंध। अतिगंध। बधिर। करेंदुक।

भूतेज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेतपूजा। प्रेतों की पूजा अर्चना। २. वह जो प्रेतो का पुजक हो। प्रेतपूजा करनेवाला व्यक्ति (को०)।

भूतेज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेतपूजा।

भूतेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. शिव। ३. कार्तिकेय।

भूतेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। २. एक तीर्थ का नाम।

भूतेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी। २. आश्विन कृष्ण चतुर्दशी।

भूतोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार वह उन्माद रोग जो

भूतों या पिशाचों के आक्रमण के कारण हो। वि० दे० 'माधव निदान,' पृ० १२४।

भूतोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी बीती हुई या उपस्थित बात का निर्देश। अतीत या वर्तमान बात का संकेत (को०)।

भूतोपसृष्ट, भूतोपहत—वि० [सं०] भूतादि से ग्रस्त। जिसे भूत लगा हो (को०)।

भूत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] सोना। स्वर्ण।

भूदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी का दान। २. एक आंदोलन जिसके प्रवर्तक विनोबा जी हैं। अधिक भूमिवालों से भूमि दान में लेकर भूमिहीनों में इसका वितरण किया जाता है। दे० 'भूमिदान'।

भूदार—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर। शूकर।

भूदारक—संज्ञा पुं० [सं०] शूर। वीर।

भूदेव, भूदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

भूधन—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

भूधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहाड़। २. शेष नाग। ३. विष्णु। ४. राजा। ५. वाराह अवतार। ६. वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का यंत्र जिसमें किसी पात्र में पारा रखकर, मिट्टी से उस पात्र का मुँह बंद करके उसे आग में पकाते हैं। ७. सात की संख्या या वाचक शब्द। ८. शिव। महादेव। उ०—भूधर पर्वत, वाह मेघ, अथवा भूधर राजा। वाह तुरंग। अथवा भूधर महादेव वाह वृषभ।—दीन० ग्रं०, पृ० १७८।

भूधरराज—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय।

भूधरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का राजा, हिमालय।

भूधात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूइँ आँवला।

भूध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

भून(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० भ्रूण] गर्भ का बच्चा।

भूनना—क्रि० स० [सं० भर्जन] १. अग्नि में डालकर पकाना। आग पर रखकर पकाना। जैसे, पापड़ भूनना। २. गरम बालू में डालकर पकाना। जैसे, चना भूनना। ३. गरम घी या तेल आदि में डालकर कुछ देर तक चलाना जिससे उसमें सोंधापन आ जाय। तलना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

४. बहुत अधिक कष्ट देना। तकलीफ पहुँचाना। ५. गोली, गोले और मशीन गनों से बहुत से लोगों का वध करना।

भूनाग—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ। भूमिनाग (को०)।

भूनिंब—संज्ञा पुं० [सं० भूनिम्ब] चिरायता।

भूनीप—संज्ञा पुं० [सं०] भूमिकदंब।

भूनेता—संज्ञा पुं० [सं० भूनेतृ] राजा।

भूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। उ०—भूप भवन भीर भई सब को जीउ जियो।—घनानंद, पृ० ५५२। २. सोलह की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

भूपग—संज्ञा पुं० [सं० भूप] राजा (डिं०)।

भूपटल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी का पटल या ऊपरी स्तर।

भूपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। भूप। २. हनुमत के मत से एक राग जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है। ३. शिव (को०)। ४. इंद्र (को०)। ५. बटुक भैरव।

भूपतित—वि० [सं०] पृथ्वी पर गिरा हुआ। उ०—दीन नमस्कार दिया भूपतित हो जिसने, क्या वह भी कवि ?।—अनामिका पृ० १४०।

भूपद—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष। पेड़।

भूपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका। चमेली।

भूपरा—संज्ञा पुं० [सं० भूप] सूर्य। (डिं०)।

भूपरिधि—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी का घेराव। पृथ्वी की परिधि (को०)।

भूपल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चूहा। घूस (को०)।

भूपलाश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

भूपवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर। गोमय।

भूपाटली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा (को०)।

भूपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. राजा भोज का एक नाम (को०)।

भूपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रसिद्ध रागिनी जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है—सा, ग, म, ध, नि, सा। अथवा—रि, ध, सा, रि, ग, म, प।

विशेष—इस रागिनी के विषय में आचार्यों में बहुत मतभेद है। कुछ लोग इसे हिंडोल राग की रागिनी और कुछ मालकोश की पुत्रवधू मानते हैं। कुछ का यह भी मत है कि यह संकर रागिनी है और कल्याण, गौड़ तथा विलावल के मेल से बनी है। कुछ लोग इसे संपूर्ण जाति की और कुछ ओड़व जाति की मानते हैं। यह हास्य रस की रागिनी मानी जाती है; पर कुछ लोग इसे धार्मिक उत्सवों पर गाने के लिये उपयुक्त बतलाते है। इसके गाने का समय रात को ६ दंड से १० दंड तक कहा गया है।

भूपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल ग्रह। २. नरकासुर नामक राक्षस।

भूपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकी। सीता।

भूपेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० भूपेन्द्र] राजाओं का इंद्र। सम्राट्।

भूपेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] खिरनी का वृक्ष। राजादनी वृक्ष (को०)।

भूप्रकंप—संज्ञा पुं० [सं० भूप्रकम्प] भूकंप।

भूफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरा मूंग। २. एक प्रकार का चूहा। दे० 'भूपल' (को०)।

भूबदरी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा बेर।

भूभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० भू+भर्तृ] १. पृथ्वी का स्वामी। राजा। २. पर्वत। भूधर (को०)।

भूभर—संज्ञा पुं० [सं० भू+भर (=भार)] भूमि का भार। उ०—तिनहिं निदरिहौ भूभर हरिहौ। संतन की रखवारी करिहौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२८।

भूभल—संज्ञा स्त्री० [सं० भू+भुर्ज या अनु० ?] गर्म राख या धूल। गर्म रेत। ततूरी। उ०—तेरे गूढ़ वचन न दुख मुख

जान गिन्यौ, सीतल बनाउ ताहि सुरत सवादिनी। मखमल भूमन भा लुह सीरी पास भई दूरी भई तेरे यह धूर भई चाँदनी।—भारतेंदु ग्रं०, भाग० २, पृ० १६६।

भूभाग—संज्ञा पुं० [सं०] भूखंड। प्रदेश।

भूभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

भूभुरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भू+भुर्ज] भूभल। ततूरी। गर्म रेत। उ०—(क) पोछि पसेऊ बयारि करौ अरु पायँ पखारिहौ भूभुरि डाढ़े।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जायहु बितै दुपहरी मैं बलि जाऊँ। भुइँ भूभुरि कस धरिहौ कोमल पाउँ।—प्रतापनारायण (शब्द०)।

भूभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. पहाड़। विष्णु (को०)। ४. सात की संख्या (को०)।

भूभ्रत्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूभृत्] भूभृत्। पर्वत। उ०—भय भूभ्रत्त असत्त चढ़िय जुग्गिन तिन उप्पर।—पृ० रा०, ७।११२।

भूमंडल—संज्ञा पुं० [सं० भूमण्डल] १. पृथ्वी। २. पृथ्वी की परिधि (को०)।

भूम—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी।

भूमणि—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०)।

भूमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भूमयी] धरती का। धरती संबंधी धरती की मिट्टी का बना हुआ (को०)।

भूमयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पत्नी, छाया।

भूमा—संज्ञा पुं० [सं० भूमन्] १. अधिकता। बहुत्व। विशालता। प्रचुरता। २. ऐश्वर्य। संपत्ति। ३. विराट् पुरुष। ब्रह्म। ४. धरती। पृथ्वी। उ०—यही दुख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान।—कामायनी, पृ० ५४। ५. जीव। प्राणी। ६. बहुवाचकता (को०)।

भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। जमीन। वि० दे० 'पृथ्वी'।

मुहा०—भूमि होना = पृथ्वी पर गिर पड़ना। उ०—वीर मूछि तब भूमि भयो जू।—केशव (शब्द०)।

२. स्थान। जगह।

यौ०—जन्म भूमि।

३. आधार। जड़। बुनियाद। ४. देश। प्रदेश। प्रांत। जैसे, आर्य भूमि। ५. योगशास्त्र के अनुसार वे अवस्थाएँ जो क्रम क्रम से योगी को प्राप्त होती हैं और जिनको पार करके वह पूर्ण योगी होता है। ६. जीभ। ७. क्षेत्र। ८. भूमि। भूसंपत्ति (को०)। ९. एक का संख्याबोधक शब्द (को०)। १०. खंड। मंजिल। तल्ला (को०)। ११. नाटक में पात्र का अभिनय। भूमिका (को०)।

भूमिकंदक—संज्ञा पुं० [सं० भूमिकन्दक] कुकुरमुत्ता।

भूमिकंदर—संज्ञा पुं० [सं० भूमिकन्दर] छत्रक। कुकुरमुत्ता (को०)।

भूमिकंदली—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिकन्दली] एक प्रकार की लता।

भूमिकंप—संज्ञा पुं० [सं० भूमिकम्प] भूकंप। भूडोल।

भूमिकदंब—संज्ञा पुं० [सं० भूमिकदम्ब] एक प्रकार का कदम जो वैद्यक में कटु, उष्ण, वृष्य और पित्त तथा वीर्यवर्धक माना जाता है।

भूमिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रचना। २. अभिनय करना। भेस बदलना। ३. वक्तव्य के संबंध में पहले की हुई सूचना। ४. किसी ग्रंथ के आरंभ की वह सूचना जिससे उस ग्रंथ के संबंध की आवश्यक और ज्ञातव्य बातों का पता चले। मुखबंध। दीबाचा। ५. स्थान। प्रदेश (को०)। ६. मरातिब। मंजिल। तल्ला। खंड (को०)। ७. लिखने की तख्ती या पाटी (को०)। ८. नाटक में प्रयुक्त वेशभूषा (को०)। ९. वेदांत के अनुसार चित्त की पाँच अवस्थाएँ जिनके नाम ये हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध।

विशेष—जिस समय मन चंचल रहता है, उस समय उसकी अवस्था क्षिप्त; जिस समय वह काम, क्रोध आदि के वशीभूत रहता है और उसपर तम या अज्ञान छाया रहता है, उस समय मूढ़; जिस समय मन चंचल होने पर भी बीच में कुछ समय के लिये स्थिर होता है, उस समय विक्षिप्त; जिस समय मन बिलकुल निश्चल होकर किसी एक वस्तु पर जम जाता है, उस समय एकाग्र; और जिस समय मन किसी आधार की अपेक्षा न रखकर स्वतः बिलकुल शांत रहता है, उस समय निरुद्ध अवस्था कहलाती है।

१०. पृथ्वी। जमीन। भूमि। धरती। उ०—रसा अनंता भूमिका बिलाइला कह जाहि।—नंददास (शब्द०)।

मुहा०—भूमिका बाँधना = किसी बात को कहने के लिये पृष्ठभूमि तैयार करना। किसी बात को थोड़े में न कहकर उसमें इधर उधर की बहुत सी बातें लाकर जोड़ तोड़ भिड़ाना।

यौ०—भूमिकागत = अभिनय में निर्दिष्ट नाटकीय वस्त्र पहननेवाला। भूमिकाभाग = कुट्टिम। (१) फर्श। (२) किसी ग्रंथादि का वह अंश जिसमें प्रस्तावना लिखी हो।

भूमिकुष्मांड—संज्ञा पुं० [सं० भूमिकूष्माण्ड] गरमी के दिनों में होनेवाला कुम्हड़ा जो जमीन पर होता है। भुइँ कुम्हड़ा।

भूमिखर्जूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमिखर्जूरी। छोटी खजूर (को०)।

भूमिखर्जूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी खजूर।

भूमिगत—वि० [सं०] १. जमीन पर गिरा हुआ। भूपतित। २. छिपा हुआ। लुका हुआ।

भूमिगम—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

भूमिगर्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी के अंदर का गर्त। गुहा। गुफा।

भूमिगृह—संज्ञा पुं० [सं०] तहखाना। भुँवरा।

भूमिगोचर—संज्ञा पुं० [सं०] मानव। मनुष्य (को०)।

भूमिचंपक—संज्ञा पुं० [सं० भूमिचम्पक] एक प्रकार का फूलवाला पौधा। भुइँचंपा।

विशेष—यह पौधा भारत, बरमा, लंका, जावा आदि में प्रायः होता है। इसके लंबे लंबे पत्ते बहुत ही सुंदर और फूल बहुत सुगंधित होते हैं; और इसी लिये यह प्रायः बगीचों में

लगाया जाता है। इसकी छाल, पत्ते और जड़ आदि का अनेक रोगों में ओषधि के रूप मे प्रयोग होता है। इसको पीसकर फोड़े पर लगाने से फोड़ा बहुत जल्दी पक जाता है। छाल का चूर्ण प्राय. घाव भरने में उपयोगी होता है।

भूमिचल, भूमिचलन—संज्ञा पुं० [सं०] भूकंप।

भूमिछत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता। छत्रक [को०]।

भूमिजंबु—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिजम्बु] छोटा जामुन।

भूमिज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। २. मंगल ग्रह। ३. भूमिकदंब। ४. सीसा। ५ चिरायता। भूनिंब (को०)। ६. मनुष्य (को०)। ७. नरकासुर का एक नाम।

भूमिज[2]—वि० भूमि से उत्पन्न। जो जमीन से पैदा हुआ हो।

भूमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता जी।

भूमिजात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष। पेड़।

भूमिजात[2]—वि० भूमि से उत्पन्न। जो जमीन से पैदा हुआ हो।

भूमिजीवी—संज्ञा पुं० [सं० भूमिजीविन्] १. वह जो भूमि जोत बोकर अपना निर्वाह करता हो। कृषक। खेतिहर। २. वैश्य।

भूमितल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी की सतह।

भूमित्व—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि का भाव या धर्म।

भूमिदंड—संज्ञा पुं० [सं० भूमि+दण्ड] साधारण दंड या डंड नाम की कसरत जो दोनों हाथ जमीन पर टेककर और बार बार उन्हीं हाथों के बल झुक और उठकर की जाती है। वि० दे० 'डंड'।

भूमिदंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिदण्डा] चमेली।

भूमिदाग‡—संज्ञा पुं० [सं० भूमि + हिं० दाग] शव को भूमि में दबा देने की क्रिया। उ०—संतदास जी आदि के शवों का दाह कर्म न देखकर उनका 'हवादाग' या 'भूमिदाग' देखकर भी अपने शव को 'हवादाग' के लिये आज्ञा क्यों नहीं दे गए।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १२५।

भूमिदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमीन का दान। २. पुन. वितरण के लिये भूस्वामियों द्वारा स्वेच्छया किसी को भूमि देना। ३. भूमिदान संबंधी वह आंदोलन जिसके प्रवर्तक विनोबा भावे जी हैं। इसे 'भूदान' भी कहते हैं।

भूमिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण। २. राजा।

भूमिधर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। २. शेषनाग।

भूमिधर[2]—संज्ञा पुं० [सं० भूमि+हिं० धरना (=रखना) १. वह काश्तकार वा खेतिहर जिसे भूमि पर स्वामित्व प्राप्त हो। सीरदार। २. वह काश्तकार जिसने दसगुना लगान जमाकर भूमि पर स्वामित्व प्राप्त किया हो।

भूमिनाग—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ। उ०—सो मैं कहउ कवन विधि बरनी। भूमिनाग सिर धरै कि धरनी।—मानस, १।३५५।

भूमिप—संज्ञा पुं० [सं०] भूप। राजा।

भूमिपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तीव्र गति का अश्व। तेज घोड़ा [को०]।

भूमिपति—संज्ञा पुं० [सं०] भूपति।

भूमिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। भूपाल।

भूमिपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] तालवृक्ष। ताड़ का पेड़ [को०]।

भूमिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल ग्रह। २. नरकासुर का एक नाम। ३. श्योनाक वृक्ष।

भूमिपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।

भूमिपुरंदर—संज्ञा पुं० [सं० भूमिपुरन्दर] १. राजा। २ दिलीप का एक नाम [को०]।

भूमिप्रचल—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि का प्रचलन या कंपन। भूकंप [को०]।

भूमिबुध्न—वि० [सं०] जिसकी पेंदी या तल धरती हो [को०]।

भूमिभाग—संज्ञा पुं० [सं०] भूभाग। पृथ्वी का कोई भाग या अंश। प्रदेश [को०]।

भूमिभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा [को०]।

भूमिभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. भूपति। राजा [को०]।

भूमिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राजा जिसके पास भूमि बहुत हो।

विशेष—पुराने आचार्य भूमिभोग की अपेक्षा हिरण्यभोग (जिसके पास सोना या धन बहुत हो) को अच्छा मानते थे, क्योंकि उसे प्रबंध का व्यय भी कम उठाना पड़ता है और काम के लिये धन भी उसके पास पर्याप्त रहता है। पर कौटिल्य ने भूमि को ही सब प्रकार के धन का आधार मानकर भूमिभोग को ही अच्छा बताया है।

भूमिमंडपभूषणा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिमण्डपभूषणा] माधवी नाम की लता।

भूमिमंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिमण्डा] एक प्रकार की चमेली।

भूमिया—संज्ञा पुं० [सं० भूमि+इया (प्रत्य०)] १. भूमि का अधिकारी। भूमि का असल मालिक। २. जमींदार। ३. ग्रामदेवता। उ०—गाँव भूमिया हित करि धायँ, जा बटोही दौरे।—चरण० बानी०, पृ० ७२। ४. किसी देश के मुख्य और प्राचीन निवासी।

भूमिरक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश की रक्षा करनेवाला। देश का रक्षक। २. तीव्रगामी अश्व [को०]।

भूमिरुंही—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिरुण्डी] हरितनी नामक वृक्ष।

भूमिरुजⓟ—संज्ञा पुं० [सं० भूमिरुह] वृक्ष।

भूमिरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष।

भूमिरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब। दूर्वा [को०]।

भूमिलग्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल की अपराजिता।

भूमिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शखपुष्पी।

भूमिलवण—संज्ञा पुं० [सं०] शोरा।

भूमिलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. धरती में पुनः मिलना अर्थात् मृत्यु । २. भूमि की प्राप्ति ।

भूमिलेप—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर ।

भूमिलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धरती लीपना । २. गोमय । गोबर [को०] ।

भूमिवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] मृत शरीर । शव । लाश ।

भूमिवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला ।

भूमिशय¹—वि० [सं०] १. भूमि पर सोनेवाला ।

भूमिशय²—संज्ञा पुं० १. बालक । शिशु । २. जंगली कबूतर । ३. जमीन में रहनेवाला कोई पशु [को०] ।

भूमिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] जमीन पर सोना ।

भूमिशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भूमिशयन' ।

भूमिसंध—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिसन्धि] १. वह संधि जो परस्पर मिलकर कोई भूमि प्राप्त करने के लिये की जाय । २. शत्रु के साथ वह संधि जो कुछ भूमि देकर की जाय ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि इस संधि में शत्रु को ऐसी ही भूमि देनी चाहिए जो प्रत्यादेया हो या जिसपर शत्रु या असमर्थ और अशक्त बसे हों अथवा जिसके सँभालने में धन जन का व्यय अधिक हो ।

भूमिसंभव—संज्ञा पुं० [सं० भूमिसम्भव] १. मंगल ग्रह । २. नरकासुर ।

भूमिसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमिसम्भवा] सीता । भूमिपुत्री ।

भूमिसमीकृत—वि० [सं०] जमीन पर गिराया हुआ [को०] ।

भूमिसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रात्य स्तोम या यज्ञ ।

भूमिसात्—वि० [सं० भूमिसात्] जमींदोज । चौपट । जो गिरकर जमीन के साथ मिल गया हो । उ०—केदार ने वह सारा निर्माण भूमिसात् कर दिया था ।—यामिनी, पृ० २० ।

भूमिसिज्या†—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि शय्या>हिं० सिज्या] पृथ्वी की सेज । भूमिशय्या । उ०—सो दिन तीन लों नारायनदास भूमिसिज्या रहे ।—दो सौ बावन०, पृ० १३४ ।

भूमिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल ग्रह । २. नरकासुर का एक नाम । ३. वृक्ष । पेड़ । ४. केंवाँच । कौंच ।

भूमिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकी जी ।

भूमिसुर—संज्ञा पुं० [सं०] भूसुर । ब्राह्मण ।

भूमिसेन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दसवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

भूमिस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में संपन्न होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

भूमिस्थ—वि० [सं०] पृथ्वी पर रहनेवाला । पृथ्वी पर अवस्थित या खड़ा हुआ [को०] ।

भूमिस्नु—संज्ञा पुं० [सं०] भूमिनाग । केंचुआ [को०] ।

भूमिस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] उपासना के लिये बौद्धों का एक आसन । वज्रासन ।

भूमिस्पृश्¹—वि० [सं०] १. नेत्रहीन । अंधा । २. लंगड़ा । पंगु । खज [को०] ।

भूमिस्पृश्²—पुं० [सं०] १. मनुष्य । मानव । २. वैश्य । ३. तस्कर । चोर [को०] ।

भूमिस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता । छत्रक [को०] ।

भूमिहार—संज्ञा पुं० [सं० भूमिहार] एक जाति जो प्रायः बिहार में और कहीं कहीं संयुक्त प्रांत में भी पाई जाती है ।

विशेष—इस जाति के लोग अपने आपको 'बाभन' कहते हैं । इस जाति की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की बातें सुनने में आती हैं । कुछ लोग कहते हैं कि जब परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया था, तब जिन ब्राह्मणों को उन्होंने राज्य का भार सौंपा था उन्हीं के वंशधर ये भूमिहार या बाभन हैं । कुछ लोगों का कहना है कि मगध के राजा जरासंध ने अपने यज्ञ में एक लाख ब्राह्मण बुलाए थे । पर जब इतनी संख्या में ब्राह्मण न मिले, तब उनके एक मंत्री ने छोटी जाति के बहुत से लोगों को यज्ञोपवीत पहनाकर ला खड़ा किया था, और उन्हीं की संतान ये लोग हैं । जो हो, पर इसमें संदेह नहीं कि इस जाति में ब्राह्मणों के यजन याजन आदि कर्मों का नितांत अभाव देखने में आता है और प्रायः क्षत्रियों की अनेक बातें इनमें पाई जाती हैं । ये लोग दान नहीं लेते और प्रायः खेती बारी या नौकरी करके अपना निर्वाह करते हैं ।

भूमींद्र—संज्ञा पुं० [सं० भूमीन्द्र] राजा ।

भूमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भूमि' ।

यौ०—भूमीकदंब=दे० 'भूमिकदंब' । भूमीपति, भूमीभुज्=दे० 'भूमिपति' । भूमीरुह=दे० 'भूमिरुह' । भूमीसह=औषध कार्य में प्रयुक्त वृक्षविशेष । खरच्छद ।

भूमींद्र—संज्ञा पुं० [सं० भूमीन्द्र] १. राजा । २. पर्वत ।

भूमीच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीन पर सोने की इच्छा [को०] ।

भूमीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] महीध्र । पर्वत [को०] ।

भूमीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष । पेड़ ।

भूमीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भूमींद्र' ।

भूम्न—वि० [सं०] विराट् । विस्तृत । व्यापक । उ०—श्री वृंदावन की लीला एक ही साथ नित्य भी है और क्रमिक भी है, भूम्न या व्यापक भी है और परिच्छिन्न भी है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३७ ।

भूम्यनृत—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि संबंधी झूठा साक्ष्य । असत्य गवाही [को०] ।

भूम्याफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता लता ।

भूम्यामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला ।

भूम्याली—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी । भुइँ आँवला [को०] ।

भूम्यालीक—संज्ञा पुं० [सं०] धरती संबंधी मिथ्या भाषण । किसी की जमीन को अपना बताना (जैन) ।

भूयः—अव्य० [सं० भूयस्] १. पुनः। फिर। २. बहुत। अधिक। (डिं०)।

भूयण—संज्ञा स्त्री० [सं० भू] पृथ्वी। (डिं०)।

भूयक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमिखजुंरी। भुइँखजूर।

भूयशः—अव्य० [सं० भूयशस्] अधिकतर। बहुत करके। अतिशय।

भूयसी—वि० स्त्री० [सं०] बहुत अधिक।

भूयसी दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मकृत्य के अंत में उपस्थित बहुत से ब्राह्मणों को दी जानेवाली दक्षिणा। भूरसी दक्षिणा।

भूयस्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिकता। प्रचुरता। २. प्राधान्य। प्रधानता [को०]।

भूयिष्ठ—वि० [सं०] अत्यधिक। बहुत अधिक [को०]।

भूयोभूय—अव्य० [सं० भूयस्+भूयस्] बारंबार। फिर फिर। पुनः पुन.।

भूर[1]—वि० [सं० भूरि] बहुत अधिक। उ०—श्रीफल दाख अँगूर अति तूत तूत फल भूर। तजि कै सुक सेमर गयो भई आस चकचूर।—स० सप्तक, पृ० ३६६।

भूर[2]—संज्ञा पुं० [हिं० भुरभुरा] रेत। बालू। उ०—भूरहु भूरि नदीनि के पुरनि नावनि मैं बहुतै बनि बैसे।—केशव (शब्द०)।

भूर[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] गाय की एक जाति।

भूरज(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० भूर्ज] भोजपत्र का पेड़। उ०—भूरज तरु सम संत कृपाला। पर हित नित सह बिपति बिसाला।—तुलसी (शब्द०)।

भूरज[2]—संज्ञा पुं० [सं० भू+रज] पृथ्वी की धूलि। गर्द। मिट्टी। उ०—भूरज तो जाके सोधि परे बहुतेरे हमैं देखि द्वार भूरज तें नित्त चित्त चाह है।—(शब्द०)।

भूरजपत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूर्जपत्र] भोजपत्र। उ०—ललित लता दल भूरजपत्रा। विविध बिछाइत बटतरु छत्रा।—पद्माकर (शब्द०)।

भूरति—संज्ञा पुं० [सं०] कृशाश्व के एक पुत्र का नाम।

भूरपूर(पु)†[1]—वि० [सं० भूरि+पूर्ण] भरपूर। परिपूर्ण।

भूरपूर[2]—क्रि वि० पूरी तरह से। पूर्ण रूप से।

भूरमण—संज्ञा पुं० [सं०] नरेश। राजा [को०]।

भूरला—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

भूरलोखरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूर (=बालू)+लोखरी (=लोमड़ी)] वह बलुई मिट्टी जिसमें लोमड़ी माँद बनाती है।

भूरसी दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं० भूयसी+दक्षिणा] १. वह थोडी थोडी दक्षिणा जो किसी बड़े दान, यज्ञ या दूसरे धर्मकृत्य के अंत में उपस्थित ब्राह्मणों को दी जाती है। २. वे छोटे छोटे खर्च जो किसी बड़े खर्च के बाद होते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—बाँटना।

भूरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० बभ्रु] १. मिट्टी का सा रंग। खाकी रंग। मटमैला रंग। धूमिल रंग। २. यूरोप देश का निवासी। यूरोपियन। गोरा। (डिं०)। ३. एक प्रकार का कबूतर जिसकी पीठ काली और पेट पर सफेद छींटे होते हैं। ४. कच्ची चीनी को पकाकर और साफ करके बनाई हुई चीनी। ५. कच्ची चीनी। खाँड़। ६. चीनी।

भूरा[2]—वि० मिट्टी के रंग का। मटमैले रंग का। खाकी।

भूरा कुम्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० भूरा+कुम्हड़ा] सफेद रंग का कुम्हड़ा। पेठा।

भूराजस्व—संज्ञा पुं० [सं०] कृषि भूमि पर लगनेवाला सरकारी कर। लगान।

भूरि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। ४. इंद्र। ५. सोमदत्त के एक पुत्र का नाम। ६. स्वर्ण। सोना।

भूरि[2]—वि० [सं०] १. प्रचुर। अधिक। बहुत। २. बड़ा। भारी।

भूरि[3]—अव्य० [सं०] १. बहुत अधिक। अत्यधिक। २. अकसर। प्रायः [को०]।

भूरिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गायत्री छंद का एक भेद।

भूरिक[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० भूरिक् या भूरिज्] पृथ्वी।

भूरिकाल—क्रि० वि० [सं०] बहुत समय के लिये [को०]।

भूरिकृत्व—क्रि० अ० [सं० भूरिकृत्वस्] बहुत बार। प्रायः। बार बार [को०]।

भूरिगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुरा नामक गंधद्रव्य।

भूरिगम—संज्ञा पुं० [सं०] गधा।

भूरिज्—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

भूरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूरि अथवा अधिक होने का भाव। अधिकता। ज्यादती।

भूरितेजस[1]—संज्ञा पुं० [सं० भूरितेजस्] १. अग्नि। उ०—विगेश विश्वा नर प्लवर्ग सु भूरितेजस सर्व जू। सुकुमार सु भगवान् रुद्र हिरण्यगर्भ शर्व जू।—विश्राम (शब्द०)। २. सोना। स्वर्ण।

भूरितेजस[2]—वि० अत्यधिक तेजोयुक्त।

भूरितेजा—संज्ञा पुं०, वि० [सं० भूरितेजस्] दे० 'भूरितेजस'।

भूरिद—वि० [सं०] बहुत उदार वा दानी [को०]।

भूरिदक्षिण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

भूरिदक्षिण[2]—वि० [सं०] १. जिसमे बहुत दक्षिणा दी गई हो। २. दानशील। उदार। वदान्य [को०]।

भूरिदा(पु)—वि० [सं० भूरिद] बहुत बड़ा दानी। बहुत देनेवाला। उ०—प्रबुध प्रेम की राशि भूरिदा आविरहोता।—नाभा (शब्द०)।

भूरिदान—वि० [सं०] उदारता। बहुत दानी होना [को०]।

भूरिदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली।

भूरिद्युम्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक चक्रवर्ती राजा जिसका नाम मैत्र्युपनिषद् में आया है। २. नवें मनु के एक पुत्र का नाम।

भूरिधन—वि० [सं०] धनवान। धनी [को०]।

भूरिधाम[1]—संज्ञा पुं० [सं० भूरिधामन्] नवें मनु के एक पुत्र का नाम।

भूरिधाम[2]—वि० [सं०] ओजस्वी। कांतिवाला। अधिक शक्तिवाला।

भूरिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] उखर्वल तृण।

भूरिपलितदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाडुर फली ।

भूरिपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [स०] शतपुष्पा ।

भूरिप्रयोग—वि० [स०] बहुप्रचलित ।

भूरिप्रेमा—संज्ञा पु० [स० भूरिप्रेमन्] चक्रवाक ।

भूरिफेना—संज्ञा स्त्री० [स०] सप्तला । शिकाकाई [को०] ।

भूरिबल—संज्ञा पु० [स०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

भूरिबला—संज्ञा स्त्री० [स०] अतिबला । कँगही । ककही ।

भूरिभाग—वि० [स०] धनवान । समृद्ध ।

भूरिभाग्य—वि० [स०] भाग्यशाली । बडभागी ।

भूरिभिन्नता—संज्ञा स्त्री० [स०] अत्यधिक भिन्न होना । पूर्णतः असमानता । उ०— भूरिभिन्नता में अभिन्नता छिपा स्वार्थ में सुखमय त्याग ।—वीणा, पृ० ३४ ।

भूरिमंजरी—संज्ञा स्त्री० [स० भूरिमञ्जरी] सफेद तुलसी ।

भूरिमल्ली—संज्ञा स्त्री० [स०] ब्राह्मणी या पाढ़ा नाम की लता ।

भूरिमाय¹—वि० [स०] बड़ा मायावी । भारी मायावी ।

भूरिमाय²—संज्ञा पु० [सं०] शृगाल । सियार । २. लोमड़ी ।

भूरिमूलिका—संज्ञा स्त्री० [स०] ब्राह्मणी लता । पाढ़ा ।

भूरिरस—संज्ञा पु० [सं०] ईख । ऊँख ।

भूरिलग्ना—संज्ञा स्त्री० [स०] सफेद अपराजिता ।

भूरिलाभ—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जो बहुत लाभदायक हो । बहुत बड़ा लाभ । अधिकतम लाभ ।

भूरिविक्रम—वि० [सं०] बहुत बड़ा वीर ।

भूरिवीर्य—संज्ञा पु० [स०] पुराणानुसार एक राजा का नाम ।

भूरिशः—वि० [स० भूरिशस्] अत्यंत । बहुत । उ०—विपत्ति से संकुल उक्त पथ भी । उन्हें बनाता भय भीत भूरिशः ।—प्रिय०, पृ० १५१ ।

भूरिश्रवा—संज्ञा पु० [स० भूरिश्रवस्] वाह्लीक के चंद्रवंशी राजा सोमदत्त का पुत्र जो कौरवों की ओर से महाभारत मे लड़ा था ।

विशेष—महाभारत द्रोणपर्व के अनुसार भयंकर युद्ध मे इसने अर्जुन के प्रिय शिष्य सात्यकि को पराजित किया और उसको अशक्त करके मारना चाहता था । इसी बीच अर्जुन ने कृष्ण का संकेत पाकर बाण मे इसकी भुजा काट दी तदनंतर उठकर सात्यकि ने इसे मार डाला ।

भूरिषेण—संज्ञा पु० [स०] भागवत के अनुसार एक मनु का नाम ।

भूरिसख—वि० [स०] जिसके बहुत से मित्र हो ।

भूरिसेन—संज्ञा पु० [स०] राजा शर्याति के तीन पुत्रो मे एक पुत्र का नाम ।

भूरुंडी—संज्ञा स्त्री० [स० भूरुण्डी] हस्तिनी नामक वृक्ष । हाथी सुँड़ ।

भूरुह—संज्ञा पु० [स०] १. वृक्ष । पेड़ । २. अर्जुन वृक्ष । ३. शाल का वृक्ष ।

भूरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब ।

भूर्ज—संज्ञा पु० [स०] भोजपत्र का वृक्ष ।

भूर्जकंटक—संज्ञा पु० [सं० भूर्जकण्टक] मनु के अनुसार एक वर्णसंकर जाति ।

भूर्जपत्र—संज्ञा पु० [स०] भोजपत्र ।

भूर्णि—संज्ञा स्त्री० [स०] १. पृथ्वी । २. मरुभूमि । रेगिस्तान ।

भूर्भुव—संज्ञा पु० [स०] ब्रह्मा के एक मानसपुत्र का नाम ।

भूर्लोक—संज्ञा पु० [स०] मर्त्यलोक । ससार । जगत् ।

भूल—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूलना] १. भूलने का भाव । २. गलती । चूक । जैसे,—इस मामले मे आपने बड़ी भूल की । उ०—कियो सयानी सखिन सों नहिं सयान यह भूल । दुरै दुराई फूल लौं क्यों पिय आगम फूल ।—जायसी (शब्द०) ।

यौ०—भूल चूक ।

मुहा०—भूल के कोई काम करना=कोई ऐसा काम करना जो पहले न करते रहे हो । भ्रम में पड़कर कोई काम कर बैठना । जैसे,—आज हम भूल के तुम्हारे साथ चल पड़े । भूल के कोई काम न करना=कदापि कोई काम न करना । हरगिज कोई काम न करना । जैसे,—हम तो कभी भूल के भी उनके घर नही जाते । भूलकर=भूल से । गलती से । भूलकर नाम न लेना=कभी याद न करना । भूले भटके=कभी कभी ।

३. कसूर । दोष । अपराध । ४. अशुद्धि । गलती । जैसे,—हिसाब में २) की भूल है ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—पड़ना ।

भूलक—संज्ञा पु० [हिं० भूल+क (प्रत्य०)] भूल करनेवाला । जिससे भूल होती हो ।

भूलग्ना—संज्ञा स्त्री० [स०] शंखपुष्पी ।

भूलचूक—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूल+चूक] भूल । भ्रम । गलती ।

मुहा०—भूलचूक लेनी देनी=हिसाब मे भूल चूक हो तो लेन देन की कमी बेशी ठीक कर ली जाय । (यह पुरजे, बिल, बीजक आदि पर लिखा जाता है ।)

भूलड़—संज्ञा पु० [हिं०] भूल जानेवाला । भुलक्कड़ ।

भूलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] केंचुआ नाम का कीड़ा ।

भूलना¹—क्रि० स० [सं० विह्वल ? या स० भ्रंश, प्रा० धात्वा० √भुल्ल] विस्मरण करना । याद न रखना । ध्यान न रखना । जैसे,—(क) आप तो बहुत सी बातें यों ही भूल जाते हैं । (ख) कल रात को लौटते समय मैं रास्ता भूल गया था । २. गलती करना । ३. खो देना । गुम कर देना ।

भूलना²—क्रि० अ० १. विस्मृत होना । याद न रहना । जैसे,—अब वह बात भूल गई । २. चूकना । गलती होना । ३. धोखे में आना । जैसे—आप उनकी बातों में मत भूलिए । ४. अनुरक्त होना । आसक्त होना । लुभाना । ५. घमंड में होना । इतराना । जैसे,—आप १००) की नौकरी पर ही भूले हुए हैं । ६. गुम होना । खो जाना । उ०—जैसे चाँद गोहन सब तारा । परयो भुलाय देखि उँजियारा ।—जायसी (शब्द०) ।

भूलना²—वि० जिसे स्मरण न रहता हो। भूलनेवाला। जैसे, भूलना स्वभाव; भूलना आदमी।

भूलभुलैयाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूल+भूलाना+ऐयाँ (प्रत्य०)] १. वह घुमावदार और चक्कर मे डालनेवाली इमारत जिसमें एक ही तरह के बहुत से रास्ते और बहुत से दरवाजे आदि होते हैं और जितमें जाकर आदमी इस प्रकार भूल जाता है कि फिर बाहर नहीं निकल सकता। २. चकाबू। ३. बहुत घुमाव फिराव की बात या घटना। बहुत चक्करदार और पेचीली बात।

भूलोक—संज्ञा पुं० [सं०] मर्त्यलोक। भूतल। संसार। जगत्।

भूलोटन—वि० [हिं० भू+लोटना] पृथ्वी पर लोटनेवाला।

भूव(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] दे० 'भ्रू'। भौंह। उ०—हलंत नैंन भूव ले धरंत चंद जूव ले।—पृ० रा०, २५।१४२।

भूव(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० भूप, प्रा० भूव] भूप। राजा।

भूवलय—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि की परिधि।

भूवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

भूवल्लूर—संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता।

भूवा¹—संज्ञा पुं० [हिं० घूआ] १. रुई। उ०—सेंवर सेव न चेत कर सूवा। पुनि पछतास अंत हो भूवा।—जायसी (शब्द०)।

भूवा²—वि० रुई के समान उजला। सफेद। उ०—भँवर गए केशहि दै भूवा। जोबन गयो जीत लै जूवा।—जायसी (शब्द०)।

भूवा³—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूआ] दे० 'बूआ'। उ०—अंगद बहनि लागै वाकी भूवा पागै तासौं देवो विष मारो फेरि तुही पग छिए हैं।—प्रिया० (शब्द०)।

भूवायु—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी पर की हवा। वायु। पवन।

भूवारि†—संज्ञा पुं० [हिं०] वह स्थान जहाँ हाथी पकड़कर रखे या बाँधे जाते हैं।

भूवाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूपाल, प्रा० भूवाल] दे० 'भूपाल'। उ०—तब भैरव भूवाल वीर वर। कीन हुकुम कालीय ऊँच कर।—पृ० रा०, ६।१६३।

भूविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भूगर्भ शास्त्र'।

भूशक्र—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

भूशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. नेवला, गोध आदि बिल मे रहनेवाले जानवर।

विशेष—वैद्यक में इस वर्ग के जंतुओं का मास गुरु, ऊष्ण, मधुर, स्निग्ध, वायुनाशक और शुक्रवर्धक माना जाता है।

भूशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शयन करने की भूमि। २. भूमि पर सोना।

भूशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कंद।

भूशायी—वि० [सं० भूशायिन्] १. पृथ्वी पर सोनेवाला। २. पृथ्वी पर गिरा हुआ। ३. मृतक। मरा हुआ।

भूशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लीपने पोतने, और मंत्र द्वारा मार्जन आदि से पृथिवी की शुद्धि [को०]।

भूशेलु—संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़े का वृक्ष [को०]।

भूश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० भूश्रवस्] वल्मीक। बाँबी। बमौट [को०]।

भूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अलंकार। गहना। जेवर। २. वह जिससे किसी चीज की शोभा बढती हो। जैसे,—आप अपने कुल के भूषण है। ३. विष्णु।

भूषणपेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आभूषण आदि रखने की मंजूषा।

भूषणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूषण का भाव या धर्म।

भूषन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भूषण] १ दे० 'भूषण'। हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि जो शिवाजी के दरबार में थे।

भूषना(पु)—क्रि० स० [सं० भूषण] भूषित करना। अलंकृत करना। सजाना। उ०—अरुण पराग जलज भरि नीके। शशि भूषत अहि लोभ अमी के।—तुलसी (शब्द०)।

भूषा—संज्ञा पुं० [सं०] १. गहना। जेवर। भूषण। २. अलंकृत करने की क्रिया। सजाने की क्रिया।

यौ०—वेश भूषा।

भूषित—वि० [सं०] १. गहना पहने हुए। अलंकृत। २. सजाया हुआ। सँवारा हुआ। सज्जित। उ०—राम भक्ति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।—तुलसी (शब्द०)।

भूष्णु—वि० [सं०] १. ऐश्वर्य का इच्छुक। ऐश्वर्य चाहनेवाला। २. भविष्णु। आगे उन्नत होने वाला।

भूष्य—वि० [सं०] भूषित करने के योग्य। अलंकार पहनाने या सजाने के योग्य।

भूसंपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० भूसम्पत्ति] संपत्ति जो जमीन के रूप में हो। जैसे, खेत, जमीन, जमींदारी आदि।

भूसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ करने से पहले भूमि को परिष्कृत करने, नापने, रेखाएँ खींचने आदि की क्रियाएँ। भूमि का वह संस्कार जो यज्ञ से पहले किया जाता है।

भूस‡—संज्ञा पुं० [हिं० भूसा] दे० 'भूसा'।

भूसठ†—संज्ञा पुं० [देश०] कुत्ता। श्वान।

भूसन(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० भूषण] दे० 'भूषण'। उ०—चानन भेल बिसम सर रे, भूसन भेल भारी।—विद्यापति, पृ० ५४६।

भूसन‡²—संज्ञा पुं० [हिं० भूँकना] कुत्तों का शब्द करना। भूँकना।

भूसना†—क्रि० अ० [हिं० भूँकना] भूँकना। कुत्तों का बोलना। उ०—कूकर ज्यों भूसत फिरै, तामस मिलवाँ बोल। घर बाहर दुख रूप है बुधि रहै डाँवाडोल।—सहजो०, पृ० ३९।

भूसा—संज्ञा पुं० [सं० तुष] १. गेहूँ, जौ आदि का महीन और टुकड़े टुकड़े किया हुआ डंठल, जो पशुओं और विशेषत: गौओं, भैंसों को खिलाया जाता है। भुस। भूसी।

भूसो—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूसा] १. भूसा । २. किसी प्रकार के अन्न या दाने के ऊपर का छिलका जैसे, कँगनी की भूसी । उ०—आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहार ।—सतबानी, पृ० ३ ।

भूसीकर—संज्ञा पुं० [हिं० भूसी + कर ?] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल सालों रह सकता है ।

भूसुत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृक्ष । पेड़ । पौधा । २. मंगल ग्रह । ३. नरकासुर ।

भूसुत²—वि० जो पृथ्वी से उत्पन्न हो ।

भूसुता—संज्ञा स्त्री० [स०] सीता ।

भूसुर—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के देवता । ब्राह्मण । उ०—भूसुर भीर देखि सब रानी ।—मानस ।

भूस्तृण—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार की घास । खवी । घटियारी ।

भूस्पृक्—संज्ञा पुं० [सं० भूस्पृश्] मनुष्य । मानव ।

भूस्थ—संज्ञा पुं० [स०] मनुष्य ।

भूस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] छत्रक । कुकुरमुत्ता ।

भूस्वर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुमेरु पर्वत । २. धरती का वह कोई स्थान जो स्वर्ग के समान सुखद हो ।

भूस्वामी—संज्ञा पुं० [स०] भूमिया । भूमिपति । जमींदार ।

भूहरा⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भुइँहरा' ।

भृंग—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्ग] १. भौंरा । भ्रमर । २. भृंगराज । भँगरा [को०] । ३. कलिंग या भृंगराज नाम का पक्षी [को०] । ४. छिछोरा । लंपट । भ्रमर [को०] । ५. एक स्वर्णपात्र । भृंगार । झारी [को०] । ६. गुडत्वच । दारचीनी [को०] । ७. अभ्रक [को०] । ८. एक प्रकार का कीडा, जिसे बिलनी भी कहते हैं । उ०—(क) भइ मति कीट भृंग की नाईं । जहँ तहँ मैं देखे रघुराई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कीट भृंग ऐसे उर अंतर । मन स्वरूप करि देत निरंतर ।—लल्लू (शब्द०) ।

विशेष—इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह किसी कीड़े के ढोले को पकड़कर ले आता है और उसे मिट्टी से ढक देता है; और उसपर बैठकर और डंक मार मारकर इतनी देर तक और इतने जोर से 'भिन्न भिन्न' शब्द करता है कि वह कीड़ा इसी की तरह हो जाता है ।

भृंगक—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गक] भृंगराज पक्षी ।

भृंगज—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गज] १. अगरु । २. अभ्रक [को०] ।

भृंगजा—संज्ञा स्त्री० [स० भृङ्गजा] भारंगी ।

भृंगपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [स० भृङ्गपर्णिका] एला । छोटी इलायची या उसका पौधा ।

भृंगप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गप्रिया] माधवी लता ।

भृंगबंधु—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गबन्धु] १. कुंद का पेड़ । २. कदम का पेड़ ।

भृंगमोही—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गमोहिन्] १. चंपा । २. कनकचंपा ।

भृंगरज—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गरज] दे० 'भृंगराज' ।

भृंगराज—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गराज] १. भँगरा नामक वनस्पति । भँगरैया । घमरा । २. काले रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी जो प्रायः सारे भारत, बरमा, चीन आदि देशों में पाया जाता है । भीमराज । वि० दे० 'भीमराज' ।

भृंगराज घृत—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराजघृत] वैद्यक मे एक प्रकार का घृत जो साधारण घी में भँगरैया का रस मिलाकर बनाया जाता है । कहते हैं, इसकी नास लेने से सफेद बाल काले हो जाते हैं ।

भृंगरीट—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गरीट] १. लोहा । २. शिव के द्वारपाल । ये अत्यंत विरूप एवं विकृतांग थे ।

विशेष—भृंगरिटि, भृंगरीटि, भृंगिरिटि, भृंगिरीटि, भृंगेरिटि आदि इनके नाम हैं ।

भृंगरोल—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गरोल] एक प्रकार की भिड़ [को०] ।

भृंगवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गवल्लभ] भूमि कदंब ।

भृंगवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [स० भृङ्गवल्लभा] भूमि जंबू [को०] ।

भृंगसार्थ—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गसार्थ] भौंरों का समूह या झुंड । भृंगावली [को०] ।

भृंगसोदर—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गसोदर] भँगरैया । केशराज [को०] ।

भृंगाण—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गाण] काले वर्ण का बडा भौंरा [को०] ।

भृंगानंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गानन्दा] यूथिका [को०] ।

भृंगाभीष्ट—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गाभीष्ट] आम का वृक्ष ।

भृंगार—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गार] १. लौंग । २. सोना । स्वर्ण । ३. सोने का बना हुआ जल पीने का पात्र । ४. जल भरकर अभिषेक करने की झारी ।

भृंगारि—संज्ञा स्त्री० [स० भृङ्गारि] केवडा ।

भृंगारिका, भृंगारी—संज्ञा स्त्री० [स० भृङ्गारिका, भृङ्गारी] झिल्ली नामक कीड़ा ।

भृंगारु—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गारु] घडा या पात्र [को०] ।

भृंगार्क—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गार्क] भँगरैया ।

भृंगालिका—संज्ञा स्त्री० [स० भृङ्गालिका] झिल्ली [को०] ।

भृंगावली—संज्ञा स्त्री० [स० भृङ्गावली] भौंरों की पंक्ति [को०] ।

भृंगाह्व—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गाह्व] भँगरैया । जीवक ।

भृंगी¹—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गिन्] १. शिव जी का एक पारिषद वा गण । उ०—अति प्रिय वचन सुनत प्रिय केरे । भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ।—मानस, १।९३ । २. बड़ या उदुंबर का पेड़ ।

भृंगी²—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गी] १. भौंरी । २. बिलनी नामक कीड़ा जो और कीडों को भी अपने समान रूपवाला बना लेता है । उ०—उरियतु भृंगी कीट लौं मत वहई हूँ जाहि ।—बिहारी (शब्द) । ३. अतिविषा । अतीस । ४. भाँग ।

भृंगीफल—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गीफल] अमड़ा ।

भृंगीश—संज्ञा पुं० [स० भृङ्गीश] शिव । महादेव ।

भृंगेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गेष्टा] १. घीकुआर । २. भारंगी । ३. युवती. स्त्री ।

भृंटिका —संज्ञा स्त्री० [सं० भृण्टिका] एक प्रकार का पौधा [को०] ।

भृंडि —संज्ञा स्त्री० [सं० भृण्डि] तरंग । ऊर्मि । लहर [को०] ।

भृकुंश—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का वेश धारण करनेवाला नट ।

पर्या०—भ्रुकुंश । भ्रुकुंसक । भ्रूकुश ।

भृकुटि, भृकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भौंह । २. भ्रूभंग ।

भृगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध मुनि जो शिव के पुत्र माने जाते हैं ।

विशेष—प्रसिद्ध है कि इन्होंने विष्णु की छाती में लात मारी थी । इन्ही के वंश में परशुराम जी हुए थे । कहते हैं, इन्ही 'भृगु' और 'अंगिरा' तथा 'कवि' से सारे संसार के मनुष्यों की सृष्टि हुई है । ये सप्तर्षियों में से एक माने जाते हैं । इनकी उत्पत्ति के विषय में महाभारत मे लिखा है कि एक बार रुद्र ने एक बड़ा यज्ञ किया था, जिसे देखने के लिये बहुत से देवता, उनकी कन्याएँ तथा स्त्रियाँ आदि आई थी । जब ब्रह्मा उस यज्ञ मे आहुति देने लगे, तब देवकन्याओं आदि को देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया । सूर्य ने अपनी किरणों से वह वीर्य खीचकर अग्नि में डाल दिया । उसी वीर्य से अग्निशिखा में से भृगु की उत्पत्ति हुई थी ।

२. परशुराम । ३. शुक्राचार्य । ४. शुक्रवार का दिन । ५. शिव । ६. कृष्ण (को०) । ७. जमदग्नि । ८. दे० 'सानु' । ९. पहाड़ का ऐसा किनारा जहाँ से गिरने पर मनुष्य बिलकुल नीचे आ जाय, बीच में कही रुक न सके ।

भृगुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कूर्मचक्र के एक देश का नाम ।

भृगुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. भृगु के वंशज । भार्गव । २. शुक्राचार्य । ३. शुक्रग्रह ।

भृगुतनय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भृगुज' ।

भृगुकच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक भड़ौच जो प्राचीन काल में पवित्र तीर्थस्थान था ।

भृगुतुंग—संज्ञा सं० [सं० भृगुतुङ्ग] हिमालय की एक चोटी का नाम यह पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है ।

भृगुनंद, भृगुनंदन—संज्ञा पुं० [सं० भृगुनन्द, भृगुनन्दन] १. परशुराम । २. शुक्राचार्य (को०) । ३. शौनक ऋषि (को०) ।

भृगुनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम । उ०—घोर धार भृगुनाथ रिसानी । घाट सुबंध राम वर बानी ।—मानस, १।४१ ।

भृगुनायक—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम ।

भृगुपति—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम । उ०—देखत भृगुपति वेष कराला ।—मानस, १।२६९ ।

भृगुपात—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के कगार से गिरकर शरीर त्याग करना [को०] ।

भृगुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र । भृगुनंदन ।

भृगुमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम । उ० भृगुमुख्य भट मलुर सुर सर्व सरि समर समरत्थ सूरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

भृगुराम—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम ।

भृगुरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की छाती पर का वह चिह्न जो भृगु मुनि के लात मारने से हुआ था । उ०—(क) माथे मुकुट सुभग पीतांबर उर सोभित भृगुरेखा हो ।—सूर (शब्द०) । (ख) तट भुजदंड भौंर भृगुरेखा चंदन चित्रित रंगन सुंदर ।—सूर (शब्द०) ।

भृगुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भृगु मुनि के चरण का चिह्न जो विष्णु की छाती पर है ।

भृगुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैत्तिरीय उपनिषद् की तीसरी वल्ली जिसका अध्ययन भृगु ने किया था ।

भृगुवार, भृगुवासर—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्रवार ।

भृगुशार्दूल, भृगुश्रेष्ठ, भृगुसत्तम —संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम ।

भृगुसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुक्राचार्य । २. शुक्र ग्रह । ३. परशुराम । उ०—भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी । जो कछु कहेहु सहेहुँ रिस रोका ।—राम०, पृ० १५८ ।

भृत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भृता] १. भृत्य । दास । सेवक । २. मिताक्षरा के अनुसार वह दास जो बोझ ढोता हो । ऐसा दास अधम कहा गया है ।

भृत[2]—वि० [सं०] १. भरा हुआ । पूरित । उ०—छाए आस पास दीसैं भोर भौंर भृत भनकार ।—भुवनेश (शब्द०) । २. पाला हुआ । पोषण किया हुआ । ३. वहन किया हुआ । ४. भृति या किराया आदि पर लिया हुआ ।

भृतक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेतन लेकर काम करता हो । नौकर ।

भृतकबल—संज्ञा पुं० [सं०] तनखाह लेकर लड़नेवाली सेना । नौकर । फौज ।

भृतकाध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] भृति या वेतन देकर शिक्षक से पढ़ना ।

भृतकाध्यापक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो भृति लेकर अध्यापन करता हो । वेतन लेकर पढ़ानेवाला अध्यापक ।

भृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नौकरी । मजदूरी । ३. वेतन । तनखाह । ४. मूल्य । दाम । ५. भरने की क्रिया । ६. पालन करना । उ०—वै पथ विकल चकित अति आतुर भमत हेतु दियो । भृति विलंबि पुष्टि दै श्यामा श्यामै श्याम पिया ।—सूर (शब्द०) ।

भृतिभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] वैतनिक कर्मचारी [को०] ।

भृतिरूप—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरस्कार जो किसी विशेष कार्य करने के कारण पारिश्रमिक के बदले मे दिया जाय ।

भृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भृत्या] सेवक । नौकर । उ०—तो कुछ नही, किंतु भृत्यों को प्रिये, कष्ट ही होगा घोर ।—साकेत, पृ० ३७२ ।

भृत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भृत्य का धर्म, भाव या पद।

भृत्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] भृत्य होने का भाव।

भृत्यभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० भृत्यभर्तृ] परिवार का मालिक। गृहस्वामी।

भृत्यशाली—वि० [सं० भृत्यशालिन्] जिसके अनेक सेवक हों।

भृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दासी। २. वेतन। तनखाह। उ०—नित गावत सेस महेस सुरेश से, पावत वांछित भृत्य औ भृत्या।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८८।

भृम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भ्रम'। उ०—कप कही रचना सकल अगफल, चित्त भृम मिट जाय निसचल।—रघु० रू०, पृ० १५१।

भृमि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घूमनेवाली वायु। ववंडर। २. पानी में का भँवर या चक्कर। ३. वैदिक काल की एक प्रकार की वीणा।

भृमि[2]—वि० घूमनेवाला। चक्कर काटनेवाला।

भृम्यश्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

भृश[1]—क्रि० वि० [सं०] अत्यधिक। बहुत अधिक। उ०—तेहि के आगे मिलत है जोजन सहस अठार। तपत भानु भृश सीश पर तहँ अति तुदन अपार।—विश्वास (शब्द०)।

भृश[2]—वि० १. शक्तिशाली। ताकतवर। प्रचंड। २. अतिशय [को०]।

भृशकोपन—वि० [सं०] बहुत क्रोधी [को०]।

भृशदारुण—वि० [सं०] बहुत निष्ठुर। बहुत कठोर। कठोर [को०]।

भृशदुःखित—वि० [सं०] अत्यंत दुःखी [को०]।

भृशपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] महा नीली।

भृशपीडित—वि० [सं०] अत्यंत दुःखी। बहुत पीड़ित।

भृशसंहृष्ट—वि० [सं०] अत्यंत खुश। बहुत प्रसन्न [को०]।

भृष्ट—वि० [सं०] भूना हुआ। पकाया हुआ।

भृष्टकार—संज्ञा पुं०] सं०] भड़भूँजा।

भृष्टतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० भृष्टतण्डुल] पकाया या भुना हुआ चावल।

भृष्टान्न—संज्ञा पुं० [सं०] भूँजा या उबाला पकाया चावल [को०]।

भृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शून्य वाटिका। २. भूनना या तलना [को०]।

भँउती†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भौती'।

भेँगा—वि० [देश०] जिसकी आँखों की दोनो पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों, टेढी तिरछी रहती हों। ढेरा। अंबरक तक्कू।

भेँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० भेँटना] १. मिलना। मुलाकात। जैसे,—यदि समय मिले तो उनसे भेँट कर लीजिएगा। २. उपहार। नजराना। उपासना। जैसे,—ये ५०) आपकी भेँट हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

भेँटनाⓅ†—क्रि० स० [सं० भिद् (=आमने सामने से आकर भिड़ना), हिं० भिड़ना] १. मुलाकात करना। मिलना। २. गले लगना। छाती से लगना। आलिंगन करना।

भेँटाना†—क्रि० स० [हिं० भेँट] १. मुलाकात होना। मिलना। २. किसी पदार्थ तक हाथ पहुँचाना। हाथ से छुआ जाना।

भेँड़—संज्ञा स्त्री० [सं० भेड] दे० 'भेड़'।

भेँना—क्रि० स० [हिं० भिगोना] भिगोना। तर करना। उ०—लुचई पोइ पोइ घी भेँई। पाछे चहनि खाँड़ सों जेँई।—जायसी (शब्द०)।

भेँवना†—क्रि० स० [हिं० भिगोना] तर करना। आर्द्र करना। भिगोना। उ०—हम खरमिटाव कइली है रहिला चबाय के। भेँवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।—तेग अली (शब्द०)।

भेआवन†—वि० [हिं० भयावन] भयानक। भयावना। उ०—उ०—भवजल नदिया भेआवन हो रे। कवने रे विधि उतरब पार हो रे।—दरिया० बानी, पृ० १७६।

भेउ, भेउⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० भेद, प्रा० भेव, भेउ] भेद। मर्म। रहस्य। उ०—रहे तहाँ दुइ रुद्रगन ते जानहिं सब भेउ।—मानस, १७१।

भेक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। २. भयालु, डरपोक या चकपकाया हुआ आदमी (को०)। ३. मेघ। बादल (को०)।

भेक[2]—वि० १. भीरु। कातर। २. चकित। चकपकाया हुआ [को०]।

भेकट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

भेकनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भेकट'।

भेकपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंडूकी। मंडूकपर्णी [को०]।

भेकभुक्—संज्ञा पुं० [सं० भेकभुज्] सर्प। साँप [को०]।

भेकरव—संज्ञा पुं० [सं०] मेढकों का टर्र टर्र करना। मेढकों की आवाज। दादुर धुनि [को०]।

भेकराज—संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरैया।

भेकासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रोक्त एक आसन [को०]।

भेकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेढकी। २. छोटा मेढक। ३. मंडूकपर्णी [को०]।

भेख[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेष] दे० 'वेष'। उ०—भेख अलेख बहुत है दुनियाँ, करि के स्वाँग दिखावै।—जग० बानी०, पृ० १२३।

भेखा[2]—संज्ञा पुं० [सं० भेक] मेढक। उ०—सरवर जल पूरिऐ, भेख हरखै सुख लक्खै।—रा० रू०, पृ० २६८।

भेखजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० भेषज] दे० 'भेषज'।

भेज—संज्ञा स्त्री० [हिं० भेजना] १. वह जो कुछ भेजा जाय। २. लगान। ३. विविध प्रकार के कर जो भूमि पर लगाए जाते हैं।

भेजना—क्रि० स० [सं० व्रजन्] किसी वस्तु या व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये रवाना करना। किसी वस्तु या पदार्थ के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने का आयोजन करना।

संयो० क्रि०—देना।

भेजवाना—क्रि० स० [हिं० भेजना का प्रे० रूप] भेजने के लिये प्रेरणा करना। दूसरे को भेजने में प्रवृत्त करना। भेजने का काम दूसरे से करना।

संयो० क्रि०—देना।

भेजा¹—संज्ञा पुं० [सं० मज्जा] खोपड़ी के भीतर का गूदा। सिर के अंदर का मग्ज।

मुहा०—भेजा खाना = बक बक कर सिर खाना। बहुत बक बककर तंग करना।

भेजा²—संज्ञा पुं० [हिं० भेजना] चंदा। बेहरी।

भेजाबरार—संज्ञा पुं० [हिं० भेजा (= चंदा) + फ़ा० बरार] एक प्रथा जिसके अनुसार देहातों मे किसी दरिद्र या दिवालिए का देना चुकाने के लिये आस पास के लोगों से चंदा लिया जाता है।

भेट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भेंट'।

भेटना¹—क्रि० स० [हिं० भेंटना] दे० 'भेटना'।

भेटना²—संज्ञा पुं० [देश०] कपास के पौधे का फल। कपास का डोंडा।

भेटिया—वि० [हिं०] भेंट लानेवाला। उपहार या नजर लानेवाला।

भेड¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेड़। २. तरणि। भेरा [को०]।

भेड़²—संज्ञा स्त्री० [स० मेष या भेड] [संज्ञा पुं० भेंड़ा] १. बकरी की जाति का, पर आकार में उससे कुछ छोटा एक प्रसिद्ध चौपाया जो बहुत ही सीधा होता है और किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाता। गाडर।

विशेष—भेड़ प्रायः सारे संसार मे पाई जाती है। यह दूध, ऊन और मांस के लिये पाली जाती है। इसका दूध गौ के दूध की अपेक्षा गाढ़ा होता है और उसमे से मक्खन अधिक निकलता है इसका मांस बकरी के मांस की अपेक्षा कुछ कम स्वादिष्ट होता है; पर पाश्चात्य देशों में अधिकता से खाया जाता है। इसके शरीर पर ऊन बहुत निकलता है और प्रायः उसी के लिये इस देश के गड़ेरिए इसे पालते है। कहीं कहीं की भेड़ें आकार में बड़ी भी होती हैं और उनका मांस भी स्वादिष्ट होता है। इसके नर को भेड़ा और बच्चे को मेमना कहते हैं। इसकी एक जाति की दुम बहुत चौड़ी और भारी होती है जिसे दुंबा कहते हैं। दे० 'दुंबा'।

मुहा०—भेड़ियाधसान = बिना परिणाम सोचे समझे दूसरों का अनुसरण करना।

विशेष—भेड़ों का यह नियम होता है कि यदि एक भेड़ किसी ओर को चल पड़ती है, तो बाकी सब भेड़ें भी चुपचाप उसके पीछे हो लेती हैं। संस्कृत में भेड़ियाधसान को गड्डलिका-प्रवाह कहते हैं।

२. बहुत सीधा या मूर्ख मनुष्य।

भेड़³—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिड़ाना या भेड़ना (= थप्पड़ मारना)] चाँटा। थप्पड़। (बाजारू)।

भेड़ना—संज्ञा पुं० [हिं० भिड़ाना] भिडाना। जकड़ना। दो चीजों को मिलाना। जैसे, दरवाजा भेड़ना। उ०- इस उम्र में इश्क जिव मे जाग, यो भेड़ लिया ज्यों भेड कूं वाग।—दक्खिनी०, पृ० १६८।

भेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० भेड़] भेड़ जाति का नर। मेढ़ा। मेष। उ०—फले फल दाख के पेड़ा। रहत जेहि भूमि पर भेड़ा।—घट०, पृ० २४७।

भेड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० भेड़] १. एक प्रसिद्ध जंगली मांसाहारी जंतु जो प्राय: सारे एशिया, यूरोप और उत्तर अमेरिका मे पाया जाता है। २. सियार। शृगाल।

विशेष—यह प्रायः ३-३॥ हाथ लंबा होता है और जंगली कुत्तों से बहुत मिलता जुलता होता है। यह प्राय: बस्तियों के आस पास झुंड बाँधकर रहता है और गाँवों मे से भेड़, बकरियों, मुरगों अथवा छोटे छोटे बच्चों आदि को उठा ले जाता है। यह अपने शिकार को दौड़ाकर उसका पीछा भी करता है और बहुत तेज दौड़ने के कारण शीघ्र ही उसको पकड़ लेता है। यह प्रायः रात के समय बहुत शोर मचाता है। यह जमीन में गड्ढा या माँद बनाकर रहता है और उसी में बच्चे देता है। इसके बच्चों की आँखे जन्म के समय बिलकुल बंद रहती हैं और कान लटके हुए होते हैं। इसके काटने से एक प्रकार का बहुत तीव्र विष चढ़ता है जिससे बचना बहुत कठिन होता है।

भेड़िहर—संज्ञा पुं० [हिं०] भेड़ पालनेवाला। गड़ेरिया।

भेड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़। भेड़ी। मेषी [को०]।

भेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'भेड़'। उ०—भेष जगत की ऐसी रीति। ज्यों भेड़ी जग वहै अनीति।—घट०, पृ० २२५।

भेडू—संज्ञा पुं० [सं०] भेड़ा। मेष।

भेतव्य—वि० [स०] भय करने योग्य। जिससे डरा जाय।

भेत्ता—वि० [सं० भिद् + तृच् (प्रत्य०)] १. भेदन करनेवाला। २. विघ्न डालनेवाला। ३. भेद खोलनेवाला। ४. षड्यंत्र रचनेवाला।

भेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेदने की क्रिया। छेदने या अलग करने की क्रिया। २. प्राचीन राजनीति के अनुसार शत्रु को वश में करने के चार उपायों मे से तीसरा उपाय जिसके अनुसार शत्रुपक्ष के लोगों को बहकाकर अपनी ओर मिला लिया जाता है अथवा उनमें परस्पर द्वेष उत्पन्न कर दिया जाता है। ३. भीतरी छिपा हुआ हाल। रहस्य।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

४. मर्म। तात्पर्य। ५. अंतर। फर्क। जैसे,—इन दोनों कपड़ों में बहुत भेद है। ६. प्रकार। किस्म। जाति। जैसे,—इस वृक्ष के कई भेद होते हैं।

मुहा०—भेद डाल देना = अविश्वास वा संदेह पैदा करना। अंतर वा फर्क डाल देना। उ०—बात जो भेद डाल दे उसको जो सकें डाल, पेट मे डाले।—चुभते०, पृ० ५३।

७. द्रोह। विद्वेष (को०)। ८. हार। पराजय (को०)। ९. रेचन। कोष्ठशुद्धि (को०)।

भेदक[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भेदिका] १. भेदन करनेवाला छेदनेवाला। २. रेचक। दस्तावर (वैद्यक)। (पु)

भेदक (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० भेदज्ञ] वह जो किसी वस्तु के भेद उपभेद का जानकार हो। भेद जाननेवाला। उ०—जे भेदक गीतां तणा बात करइ सुविचार।—ढोला०, दू० १०४।

भेदकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भेदकारी' (को०)।

भेदकातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमे 'औरै' 'औरै' शब्द द्वारा किसी वस्तु की 'अति' वर्णन की जाती है। जैसे,—औरै कछु चितवनि चलनि औरै मृदु मुसकानि। औरै कछु सुख देति है सकै न बैन बखानि।

भेदकारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भेदकारी'।

भेदकारी—संज्ञा पुं० [सं० भेदकारिन्] वह जो भेदन करता हो। भेदनेवाला।

भेदकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० भेदकारी' (को०)।

भेदज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] द्वैत ज्ञान। द्वैत की प्रतीति का बोध। अभेद ज्ञान का अभाव (को०)।

भेदड़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] रबड़ी। उ०—पतली पेज (भेदड़ी, रावड़ी) में दुध या छाछ या दही मिलाकर भर पेट खिला दो।—प्रतापसिंह (शब्द०)।

भेददर्शी—वि० [सं० भेददर्शिन्] जगत् को ब्रह्म से भिन्न समझनेवाला। द्वैत वादी।

भेदन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० भेदनीय, भेद्य] १. भेदने की क्रिया। छेदना। वेधना। विदीर्ण करना। २. अमलबेत। ३. हींग। ४. सुअर। ५. चीरना।

भेदन[२]—वि० १. भेदनेवाला। छेदनेवाला। २. दस्त लानेवाला। रेचक। दस्तावर।

भेदना—क्रि० स० [सं० भेदन] चीरना। आर पार करना। छेदना। वेधना। उ०—आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हो घनश्याम। अरुण रवि मंडल उनको भेद, दिखाई देता हो छविधाम —कामायनी, पृ० ४६।

भेदनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूट डालने या बिलगाव करने की नीति। उ०—भेदनीति से काम तो लिया, परंतु राम ने महान् कार्य किया।—प्रा० भा० प०, पृ० २०४।

भेदप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] भेद अर्थात् द्वैतवाद में विश्वास।

भेदबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एकता का नाश या अभाव। फूट। बिलगाव।

भेदभाव—संज्ञा पुं० [सं०] अंतर। फरक।

भेदवाद—संज्ञा पुं० [सं०] द्वैतवाद।

भेदविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो वस्तुओं में अंतर करने की विधि या शक्ति (को०)।

भेदसह—वि० [सं०] जिसपर भेदनीति काम कर सके। भेद डालकर अलग करने योग्य।

भेदानिभेद†—संज्ञा पुं० [सं० भेद + अभेद] अभेद अर्थात् अद्वैत का भेद। अद्वैत का मम वा गूढ़ रहस्य। उ०—बिरला जाणति भेदानिभेद बिरला जाणति दोइ पष छेद।—गोरख०, पृ० २४।

भेदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विध्वंस। नाश (को०)।

भेदित[१]—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का मंत्र जो निंदित समझा जाता है।

भेदित[२]—वि० [सं०] बिलगाया या विदीर्ण किया हुआ (को०)।

भेदिनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार की शक्ति जिसकी सहायता से योगी लोग षटचक्र को भेद सकते हैं। इस शक्ति के साधन से योगी बहुत श्रेष्ठ हो जाता है।

भेदिनी[२]—वि० स्त्री० [सं०] भेदनेवाली। उ०—वह सुंदर आलोक किरन सी हृदयभेदिनी दृष्टि लिए। जिधर देखती, खुल जाते हैं तम ने जो पथ बंद किए।—कामायनी, पृ० १८१।

भेदिया—संज्ञा पुं० [हिं० सं० भेद + इया (प्रत्य०)] १. भेद लेनेवाला। जासूस। गुप्तचर। २. गुप्त रहस्य जाननेवाला।

भेदिर—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र। भिदुर (को०)।

भेदी[१]—संज्ञा पुं० [भेद + ई (प्रत्य०)] १. गुप्त हाल बतानेवाला। जासूस। गुप्तचर। २. गुप्त हाल जाननेवाला।

भेदी[२]—वि० [सं० भेदिन्] [वि० स्त्री० भेदिनी] १. भेदन करनेवाला। फोड़नेवाला। २. बिलगाव या अंतर करनेवाला। उ०—जे जन निपुन जथारथ वेदी। स्वारथ अरु परमारथ भेदी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०८।

भेदी[३]—संज्ञा पुं० अमलबेत।

भेदीसार—संज्ञा पुं० [देश० ?] बढ़इयों का एक औजार जिससे वे काठ में छेद करते हैं। बरमा। उ०—भेदि दुसार कियो हियो तन दुति भेदीसार।—बिहारी (शब्द०)।

भेदुर—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

भेदू (पु)†—संज्ञा पुं० [सं०] मर्म या भेद जाननेवाला।

भेद्य[१]—वि० [सं०] भेदन करने योग्य। जो भेदा या छेदा जा सके।

भेद्य[२]—संज्ञा पुं० १. शस्त्रों आदि की सहायता से किसी पीड़ित अंग या फोड़े आदि को भेदन करने की क्रिया। चीरफाड़। २. व्याकरण में विशेषणयुक्त संज्ञा। विशेष्य (को०)।

भेन†[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहिन] बहिन। उ०—मुँह पीठ के हमसाये से करती है कि भेना। नाहक की खराबी है न लेना है न देना।—नजीर (शब्द०)।

विशेष—इसका शुद्ध रूप प्रायः 'भैन' है।

भेन[२]—संज्ञा पुं० पुं० [सं०] १. ग्रहों वा नक्षत्रों के स्वामी—सूर्य। २. चंद्रमा (को०)।

भेना†—क्रि० स० [हिं० भिगोना] भिगोना। तर करना। उ०—

सिरका भेइ बादि जनु श्राने। कमल जो भए रहहिं बिकसाने।—जायसी (शब्द०)।

भेभम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा और पतला बाँस जो हिमालय में होता है। इसे 'गिगाल' वा 'निगाल' भी कहते हैं। बंगाल में 'निगाली' इसी बाँस की बनती है।

भेम्या—संज्ञा पुं० [सं० भूमिय ?] दे० 'भूमिया'। उ०—फुरमान गए जैसलमेर। भेम्या भाटी भए जेर।—पृ० रा०, १। ४२३।

भेय[1]—संज्ञा पुं० [सं० भेद, प्रा० भेश्र] दे० 'भेद'। उ०—पायो परै न जाको भेय।—नंद ग्रं०, पृ० २६८।

भेय[2]—वि० [सं०] जिससे डरा जाय। भेतव्य [को०]।

भेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भेरी'। उ०—रिणतूर नफेरिय भेर रुहै। गहरै स्वर ताम दमाम गुहै।—रा० रू०, पृ० ३३।

भेरवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का खजूर जिसके पत्तों के रेशों से रस्सियाँ बनती हैं।

विशेष—यह भारत के प्रायः सभी गरम प्रदेशों में पाया जाता है। इसे पाछने से एक प्रकार की ताड़ी भी निकलती है जिसका व्यवहार बंबई और लंका में बहुत होता है।

भेरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] मध्य तथा दक्षिणी भारत का मझोले आकार का एक पेड़ जिसे भीरा भी कहते हैं।

विशेष—इस पेड़ से लकड़ी, गोंद, रंग और तेल इत्यादि पदार्थ निकलते हैं। इसकी लकड़ी मेज, कुर्सी, खेती के औजार और तस्वीरों के चौखटे आदि बनाने के काम में आती है, पर जलाने के काम की नहीं होती, क्योंकि इससे धूँआ बहुत अधिक निकलता है।

भेरा† —संज्ञा पुं० [सं० भेलक] दे० 'बेड़ा'। उ०—भेरे चढ़िया झाँझरे भवसागर के माहिं।—कबीर (शब्द०)।

भेरि, भेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा ढोल या नगाड़ा। ढक्का। दुंदुभी। उ०—ताल भेरि मृदग बाजत सिंधु गरजत जान। चरण० बानी, पृ० १२२।

भरीकार—संज्ञा पुं० [सं० भेरी + कार (प्रत्य०)] [स्त्री० भेरिकारी] भेरी बजानेवाला। उ०—नटिनि डोमिनी ढोलिनी सहनाइनि भेरिकारि।—जायसी (शब्द०)।

भेरुंड[1]—वि० [सं० भेरुण्ड] भयानक। खौफनाक।

भेरुंड[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का पक्षी। २. गर्भ धारण करना। ३. भेड़िया आदि हिंस्र जंतु।

भेरुंडक—संज्ञा पुं० [सं० भेरुण्डक] भेड़िया। सियार [को०]।

भेरुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० भेरुण्डा] १. एक यक्षिणी का नाम। २. भगवती काली का एक रूप [को०]।

भेल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. नाव। नौका। भेरा (को०)।

भेल[2]—वि० १. कादर। डरपोक। भीरु। २. चंचल ३. मूर्ख। बेवकूफ। ४. लंबा। उच्च। तुंग (को०)। ५. द्रुत। क्षिप्र। तूर्ण। सत्वर (को०)।

भेलक—संज्ञा पुं० [सं०] नाव [को०]।

भेलन—संज्ञा पुं० [सं०] तैरना। पैरना [को०]।

भेलप†—संज्ञा पुं० [सं० समिल] मेल। संग। उ०—भणियाँ सूँ भेलप नहीं, हुरकणियाँ सूँ हेत।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १।

भेलना†—क्रि० स० [सं० भेदय्, प्रा० भेल] भंग करना। विनाश करना। तोड़ना। उ०—कलिकाया गढ़ भेलसी छीजें, दसौ दुवारो रे।—दादू०, पृ० ६८६।

भेला†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भेंट या देशी] १. भिड़ंत। २. भेंट। मुलाकात। उ०—(क) कृष्ण सग खेलत बहु खेला। बहुत दिवस मँह परिगो भेला।—रघुराज (शब्द०)। (ख) देउरा को दल जीत बघेला। तासो परयो एक दिन भेला।—रघुराज (शब्द०)।

भेला[2]—संज्ञा पुं० [सं० भल्लातक] दे० 'भिलावाँ'।

भेला[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] बड़ा गोला या पिंड। जैसे, गुड़ का भेला।

भेली†—संज्ञा स्त्री० [?] १. गुड़ या और किसी चीज की गोल बट्टी या पिंडी। जैसे, चार भेली गुड़। २. गुड़। (क्व०)।

भेलुक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक गण।

भेलो†—संज्ञा पुं० [गुज० भेलवुं] दे० 'भेला[2]'। उ०—ता पाछे वह बहू दूसर दिन तें थोरो थोरो माखन भेलो करति जाती।—दो सौ बावन०, पृ० ४।

भेव†—संज्ञा पुं० [सं० भेद, प्रा० भेअ] १. मर्म की बात। भेद। रहस्य। उ०—बास्तवीक नृप चल्यो देव वर वामदेव बल। जरासंध नरदेव भेव गुनि मति अभेव भल।—गोपाल (शब्द०)। २. बारी। पारी। उ०—चौकी दै जनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव।—केशव (शब्द०)।

भेवना†—क्रि० स० [हिं० भिगोना] भिगोना। तर करना। उ०—प्रति आदर अनुराग भगति मन भेवहिं।—तुलसी (शब्द०)।

भेश—संज्ञा पुं० [सं० वेष] दे० 'वेष'।

भेष[1]—संज्ञा पुं० [सं० वेष] दे० 'वेष'।

भेष[2]—संज्ञा पुं० [सं० वेष] १. किसी विशिष्ट संप्रदाय का साधु संत। (साधुओं की परि०)। २ दे० भेस'।

भेषा[2]—संज्ञा पुं० [सं० भैक्ष, प्रा० भिक्ख] भिक्षा। भीख। उ०—कुकुम सुनीर छुटि लग्यो चारु। नग रतन धरे मनु हेम थारु। उर बीच रोमराजीव रेख। गुर राहु मेर मधि चल्यो भेष।—पृ० रा०, २ ३७६।

भेषज—संज्ञा पुं० [सं०] १. औषध। दवा। २. चिकित्सा। उपचार (को०)। ३. जल। पानी। ४. सुख। ५. विष्णु।

भेषजकरण—संज्ञा पुं० [सं०] औषधनिर्माण। दवा तैयार करना [को०]।

भेपजकृत—वि० [सं०] चिकित्सित। उपशमित। नीरोग किया हुआ [को०]।

भेषजवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] औषध की आरोग्यदायक शक्ति [को०]।

भेषजांग—संज्ञा पुं० [सं० भेषजाङ्ग] अनुपान। दवा के साथ या अनंतर खानेवाली वस्तु [को०]।

भेषजागार—संज्ञा पुं० [सं०] औषध मिलने का स्थान दवा की दूकान [को०]।

भेषज्य—वि० [सं०] आरोग्य करनेवाला। नीरुज करनेवाला [को०]।

भेषना(पु)—क्रि० स० [हिं० भेष+ना (प्रत्य०)] १. भेष बनाना स्वाँग बनाना। उ०—जा दिन ते उनके परी डीठि ता दिन ते कैयो भेष भेषि तुम्है देखि देखि जात हैं।—रघुनाथ (शब्द०) २. पहनना। उ०—रति रण जानि अनग नृपति सा आप नृपति राजति बल जोरति। अति सुगध मर्द अँग अँग ठनि वनि वनि भूषन भेषति।—सूर (शब्द०)।

भेषी(पु)—वि० [हिं०] किसी विशिष्ट संप्रदाय का भेष धारण करनेवाला। उ०—भेषी पथ संत जे नाईं। आदि अंत सो सत कहाईं।—घट०, पृ० २४५।

भेस—संज्ञा पुं० [सं० वेष] १. बाहरी रूप रग और पहनावा आदि। वेष। उ०—धर जोगिनियाक भेस रे, करब मे पहुक उदेस रे। विद्यापति, पृ० ३१६।

यौ०—भेस भूषा।

२. वह बनावटी रूप रंग और नकली पहनावा आदि जो अपना वास्तविक रूप या परिचय छिपाने के लिये धारण किया जाय। कृत्रिम रूप और वस्त्र आदि।

क्रि० प्र०—धरना।—बदलना।—बनाना।

भेसज(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भेषज] दवा। औषध।

भेसना(पु)—क्रि० स० [सं० वेश हिं० भेष] वेश धारण करना। वस्त्रादि पहनना।

भैंचक(पु)— [हिं० भय+चक (=चकित)] दे० 'भैचक'। उ०—ज्यों कोउ रूप की रासि अगित कुरूप कहै भ्रम भैचक आन्यों।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

भैंस—संज्ञा स्त्री० [सं० महिषी, हिं० भैंसि] १. गाय की जाति और आकार प्रकार का पर उससे बड़ा चौपाया (मादा) जिसे लोग दूध के लिये पालते हैं।

विशेष—भैंस सारे भारत मे पाई जाती है और यहीं से विदेश म गई है। इसके शरीर का रग बिलकुल काला होता है और इसके रोएँ कुछ बडे होते हैं। यह प्रायः जल या कीचड़ आदि मे रहना बहुत पसद करती है। इसका दूध गौ के दूध की अपेक्षा अधिक गाढ़ा होता है और उसमे से मक्खन या घी भी अधिक निकलता है। मान में भी यह गौ से बहुत अधिक दूध देती है। इसके नर को भैंसा कहते हैं।

मुहा०—भैंस काटना=गरमी का रोग होना। उपदश होना (बाजारू)। भैंस के आगे बीन बजाए भैंस खड़ी पगुराय= किसी से कोई अर्थयुक्त और काम की बात कही जाय, परतु जिससे कही जाय वह सुने या समझे ही नहीं। उ०—मैंने इसी से मसविदा लिख लिया था कि उन लोगों को सुनाऊँगा। मगर भैंस के आगे बीन बजाए भैंस खड़ी पगुराय।—किसाना०, भा० ३, पृ० ४१६।

२. एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह पंजाब, बगाल तथा दक्षिणी भारत की नदियों में पाई जाती है। इसकी लंबाई, तीन फुट होती है। इसका मास खाने मे स्वादिष्ट होता है, परतु उसमे हड्डियाँ अधिक होती हैं।

३. एक प्रकार की घास।

भैंसवाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ पाँच से आठ इच तक लबी होती हैं। यह उत्तरी और दक्षिणी भारत में पाई जाती है। यह वर्षा ऋतु मे फूलती और जाड़े मे फलती है।

भैंसि†—संज्ञा स्त्री० [सं० महिषी] दे० 'भैंस'। उ०—(क) अब श्री गुसाईं जी के सेवक एक गुजर के बेटा की बहू, आन्यारे में रहती जाकी भैंसि श्री गोवर्धननाथ जी आप मिलाइ दिए तिनकी वार्ता को भाव कहत हैं।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १। (ख) और जब तें वह बहू घर में आई ताके थोरेइ दिन पाछे वा ब्रजवासी की एक भैंसि खोइ गई।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० २।

भैंसिया गूगल—संज्ञा पुं० [हिं० भैंसिया+गूगल] एक प्रकार का गूगल जिसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है।

भैंसिया लहसुन—संज्ञा पुं० [हिं० भैंसिया+लहसुन] एक प्रकार का लाल दाग या निशान जो प्रायः गाल या गरदन आदि पर होता है। लच्छन।

भैंसा—संज्ञा पुं० [सं० महिष वा हिं० भैंस] भैंस नामक पशु का नर जो प्रायः बोझ ढोने और गाडियाँ आदि खींचने के काम में आता है। पुराणानुसार यह यमराज का वाहन माना जाता है।

भैंसाना†—क्रि० स० [हिं० भैंसा] भैंसे से भैंस को गर्भ धारण कराना।

भैंसाव—संज्ञा पुं० [हिं० भैंस + आव (प्रत्य०)] भैंस और भैंसे का जोड़ा खाना। भैंसे से भैंस का गर्भ धारण करना।

भैंसासुर—संज्ञा पुं० [सं० महिषासुर] दे० 'महिषासुर'।

भैंसौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भैंस+औरी (प्रत्य०)] भैंस का चमड़ा।

भै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भय] दे० 'भय'। उ०—भै भरे सुतहिं निरखि नंदनारि। दीनी लकुट हाथ तें डारि।—नंद० ग्रं० पृ० २५०।

यौ०—भै अभै(पु)=भय और अभय। उ०—कुसल छेम, सुख दुख भै अभै। होत हैं ये कर्मनि करि सबै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६।

भैआ†—संज्ञा पुं० [हिं० भाई] १. भाई। भ्राता। २. बराबर या छोटों के लिये संबोधन शब्द। उ०—भैआ कहहु कुसल दोउ बारे।—मानस, २।२९१।

भैक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिक्षा माँगने की क्रिया। २. भिक्षा माँगने का भाव। ३. वह जो कुछ भिक्षा मे मिले। भीख।

भैक्ष[2]—वि० [वि० स्त्री० भैक्षी] भिक्षा पर गुजर करनेवाला। भिक्षाजीवी [को०]।

भैक्षकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षा माँगने का समय। भिक्षाटन का समय [को०]।

भैक्षचरण—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षा माँगना। भैक्षचर्या।

भैक्षचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] भिक्षा माँगने की क्रिया। भिक्षा माँगना।

भैक्षजीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भैक्षचर्या'।

भैक्षभुज—वि० [सं० भैक्षभुज्] भिक्षाजीवी।

भैक्षव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षुओं का झुंड। भिक्षुसमूह।

भैक्षव[2]—वि० [सं०] किसी संप्रदाय के साधु से संबंधित। भिक्षु संबंधी [को०]।

भैक्षवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भैक्षचर्या'।

भैक्ष्यशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भिक्षा संबंधी शुद्धि। भिक्षा माँगने और ग्रहण करने के संबंध की शुद्धि। (जैन)।

भैक्षाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से बहुत से लोगों को भिक्षा मिलती हो।

भैक्षान्न—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षा में प्राप्त अन्न आदि [को०]।

भैक्षाशी[1]—संज्ञा पुं० [सं० भैक्षाशिन्] भिक्षुक। भिखमंगा।

भैक्षाशी[2]—वि० भिक्षा में प्राप्त अन्नादि खानेवाला [को०]।

भैक्षाहार—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षुक।

भैक्षुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिक्षुओं का समूह। भिक्षुओं का दल। २. सन्यास [को०]।

भैक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षा। भीख।

भैक्ष्याश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. सन्यास। २. ब्रह्मचर्य।

भैचक(पु)—वि० [हिं० भै (= भय) + चक (= चकित)] चकपकाया हुआ। घबराया हुआ। चकित। विस्मित।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

भैचक्क(पु)—वि० [हिं० भय + चक (= चकित)] दे० 'भैचक'।

भैजन(पु)—वि० भै (= भय) + जनक] भय उत्पन्न करनेवाला। भयप्रद। उ०—धुनि शत्रु भैजनी करत पाय पैजनी है पैजनी लगाम बनी चरम मृदुल की। पाँति सिंधु मुलकी तुरगन के के कुल की विसाल ऐसी पुलकी सुचाल तैसी दुलकी।—गोपाल (शब्द०)।

भैडक—वि० [सं०] भेड़ संबंधी [को०]।

भैदा(पु)—वि० [भय + दा (प्रत्य०)] भयप्रद। डरावना।

भैन†—संज्ञा स्त्री० [सं० भगिनी हिं० बहिन] बहिन। भगिनी। उ०—अभै सिंघ जी की भैन व्याहीजै साही।—शिखर०, पृ० ५२।

भैनवार†—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रिय जातिविशेष। उ०—उर हारि डागुर धाइयौ। बहु भैनवार सु आइयौ।—सुजान०, पृ० २७।

भैना[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहिन] बहिन। भगिनी। उ०—नाचे कूदे क्या होय भैना। सतगुरु शब्द समझ ले सैना।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३८।

भैना[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] मंगई नामक पक्षी।

भैनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहिन] बहिन। भगिनी। उ०—वसुदेव अनी। वरी कंस भैनी।—पृ० रा०, २।३१।

भैने†—संज्ञा पुं० [सं० भागिनेय] बहिन का पुत्र। भांजा। उ०—बकसु भैने कहै लगै मामी।—पलटू०, पृ० ३।

भैभान(पु)†—वि०[सं० भय-मान्] भयानक। भयंकर। उ०—तरवर संतज्जे, आयध बज्जे, घायँ गज्जे भयभानं।—पृ० रा०, २।५३३।

भैम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा उग्रसेन। २. भीम के वंशज (को०)।

भैम[2]—वि० [सं०] १. भीम संबंधी। भीम का। २. भयंकर काम करनेवाला (को०)।

भैमगव—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र का नाम।

भैमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माघ शुक्ल एकादशी। २. भीम राजा की कन्या। दमयंती।

भैयंस‡—संज्ञा पुं० [हिं० भाई + अंश(= भाग)] संपत्ति में भाइयों का हिस्सा। भाइयों का अंश।

भैया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भाई] १. भाई। भ्राता। २. बराबरवालों या छोटों के लिये संबोधन शब्द। उ०— (क) पितु समीप तब जाएहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहै मोहि मैया मैं न मैया भरत की बलैया लैहौ भैया तेरी मैया कैकेई है।—तुलसी (शब्द०)।

भैया[2]—संज्ञा पुं० [सं०] नाव की पट्टी या तख्ती।

भैयाचार, भैयाचारा—संज्ञा पुं० [हिं० भाई + चार] दे० 'भाईचारा'।

भैयाचारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाई + चारी] दे० 'भाईचारा'।

भैयादूज†—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृद्वितीया] दे० 'भैयादोज'।

भैयादोज—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृद्वितीया] कार्तिक शुक्ल द्वितीया। भाई दूज।

विशेष—इस दिन बहिनें अपने भाइयों को टीका लगाती और भोजन कराती हैं। इसे यमद्वितीया भी कहते हैं।

भैयान†—संज्ञा पुं० [सं० भयानक] दे० 'भयानक'। उ०—अदभुत्त बीर भैयान, मचिय कंक विषम कृपान।—पृ० रा०, ६। १६१।

भैरत्त(पु)†—वि० [सं० भय + रक्त] भययुक्त। उ०—भैरत्त चमक्कत पत्त रव धिनक चित्त जिम उप्परै। पिल्लंत सिकार पिथ कुँअर डर पसु पीपर दल थरहरै।—पृ० रा०, ६। १००।

भैरव[1]—वि० [सं०] १. जो देखने में भयंकर हो। भीषण। भयानक ...डया जुड़ पतसाह सु भैरव डूंगरसीह।—रा० रू०, २. दुःखपूर्ण (को०)। ३. भैरव संबंधी (को०)। ४. ...ब्द बहुत भीषण हो।

भैरव²—संज्ञा पु० [सं०] १. शंकर। महादेव। २. शिव के एक प्रकार के गण जो उन्हीं के अवतार माने जाते है।

विशेष—पुराणानुसार जिस समय अंधक राक्षस के साथ शिव का युद्ध हुआ था, उस समय अंधक की गदा से शिव का सिर चार टुकड़े हो गया था और उसमें से लहू की धारा बहने लगी थी। उसी धारा से पाँच भैरवों की उत्पत्ति हुई थी। तांत्रिकों के अनुसार, और कुछ पुराणों के अनुसार भी, भैरवों की संख्या साधारणत आठ मानी जाती है जिनके नामों के संबंध मे कुछ मतभेद है। कुछ के मत से महाभैरव, संहार भैरव, असितांग भैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड और चंद्रचूड तथा कुछ के मत से असितांग, रुरु, चंड, क्रोध, उन्मत्त, कपाल, भीषण और संहार ये आठ भैरव हैं। तांत्रिक लोग भैरवों की विशेष रूप से उपासना करते हैं।

३. साहित्य मे भयानक रस। ४ एक नाग का नाम। ५ एक नद का नाम। ६. एक राग का नाम।

विशेष—हनुमत के मत से यह राग छह रागों में से मुख्य और पहला है, और ओडव जाति का है; क्योंकि इसमे ऋषभ और पचम नही होता। पर कुछ लोग इसे षाडव जाति का भी और कुछ संपूर्ण जाति का भी मानते हैं। इसके गाने की ऋतु शरद, वार रवि और समय प्रात काल है। हनुमत के मत से भैरवी, वैरारी, मधुमाधवी, सिंधवी और बंगाली ये पाँच इसकी रागिनियाँ और हर्ष तथा सोमेश्वर के मत से भैरवी, गुर्जरी, रेवा, गुणकली, बंगाली और बहुली ये छह इसकी रागिनियाँ हैं। इसकी रागिनियों और पुत्रों की संख्या तथा नामों के संबंध में आचार्यों मे बहुत मतभेद है। यह हास्यरस का राग माना जाता हैं और इसका सहचर मधुमाधव तथा सहचरी मधुमाधवी है। एक मत से इसका स्वरग्राम ध, नि, सा, रि, ग, म, प, और दूसरे मत से ध नि सा, रि ग, म है।

७. ताल के साठ मुख्य भेदों मे से एक। ८. कपाली। ९. भयानक शब्द। १० वह जो मदिरा पीते पीते वमन करने लगे (तांत्रिक)। ११. एक पर्वत का नाम (को०)। १२. भय। खौफ।

यौ०—भैरवकारक = भयकारक। भयावना। डरावना भैरवतर्जक = विष्णु।

भैरवझोली—संज्ञा स्त्री० [सं० भैरव + झोली] एक प्रकार की लंबी झोली जो प्रायः साधुओं आदि के पास रहती है।

भैरवमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। उ०—न चतुष्क विना शब्दं ताञ्चि भैरवमस्तके।—सं० दा० (शब्द०)।

भैरवांजन—संज्ञा पुं० [सं० भैरवाञ्जन] आँखों में लगाने का एक प्रकार का अंजन। (वैद्यक)।

भैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की देवी जो महाविद्या की एक मूर्ति मानी जाती है। चामुंडा।

विशेष—भैरवी की कई मूर्तियाँ मानी जाती हैं। जैसे, त्रिपुरभैरवी, कौलेशभैरवी, रुद्रभैरवी, नित्याभैरवी, चैतन्यभैरवी आदि। इन सबके ध्यान और पूजन आदि भिन्न भिन्न हैं।

२. एक रागिनी जो भैरव राग की पत्नी और किसी किसी के मत से मालव राग की पत्नी मानी जाती है।

विशेष—हनुमत के मत से यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और शरद् ऋतु प्रात.काल के समय गाई जाती है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—म प ध, नि, सा, ऋ ग। संगीत रत्नाकर के मत से इसमें मध्यम वादी और धैवत संवादी होता है।

३. पुराणानुसार एक नदी का नाम। ४. पार्वती। (हिं०)। ५. वीर सन्यासिनी। ६. युवती या द्वादशवर्षीया कन्या जो दुर्गा के रूप मे पूजित कही गई है (को०)।

भैरवीचक्र—संज्ञा पु० [सं०] १. तांत्रिकों या वाममार्गियों का वह समूह जो विशिष्ट तिथियों नक्षत्रों और समयों मे देवी का पूजन करने के लिये एकत्र होता है।

विशेष—इसमे सब लोग चक्र में बैठकर पूजन और मद्यपान आदि करते हैं। इसमें दीक्षित लोग ही सम्मिलित होते हैं और वर्णाश्रम आदि का कोई विचार नहीं रखा जाता है। यथा—संप्राप्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमा। निवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्। (उत्पत्ति तंत्र)।

२. मद्यपों और अनाचारियों आदि का समूह।

भैरवीयातना—संज्ञा स्त्री० [सं० भैरवी + यातना] पुराणानुसार वह यातना जो प्राणियों को मरते समय उनकी शुद्धि के लिये भैरव जी देते हैं।

विशेष—कहते हैं, जब इस प्रकार की यातना से प्राणी सब पातको से शुद्ध हो जाता है, तब महादेव जी उसे मोक्ष प्रदान करते हैं।

भैरवीय—वि० [सं०] भैरव संबंधी।

भैरवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. विष्णु (को०)।

भैरा†—संज्ञा पुं० [हिं० बहेड़ा] दे० 'बहेड़ा'।

भैरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बहरी] एक पक्षी। दे० 'बहरी'।

भैरू—संज्ञा पुं० [सं० भैरव] दे० भैरव'। उ०—हिंसा बहुत करे, अपस्वारथ स्वाद लग्यो मद माँसै। महामाइ भैरू को सिर दे आपुहि बैठो ग्रासै। - सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८२१।

भैरो—संज्ञा पुं० [सं० भैरव] दे० १. 'भैरव'। २. भैरव राग। उ०—जिन हठ करि री नट नागर सो भैरों ही है देवगन। —नंद० ग्रं०, पृ० ३६७।

भैवदी†—संज्ञा पु० [हिं०] भाईचारा।

भैवा†—संज्ञा पु० [सं० भ्रातृ] दे० 'भैया'।

भैवाद†—संज्ञा पु० [हिं० भाई + आद (प्रत्य०)] १. भाईचारा। भाईपन। २. बिरादरी।

भैषज—संज्ञा पुं० [सं०] १. औषध। दवा। २. वैद्य के शिष्य आदि। ३. लवा पक्षी।

भैषज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दवा। औषध। २. आरोग्यदायक शक्ति। ३. औषध व्यवस्था। चिकित्सा (को०)।

यौ०—भैषज्य रत्नावली = आयुर्वेद का एक चिकित्सा ग्रंथ।

भैष्मकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीष्मक की कन्या, रुक्मिणी।

भैहा(पु)†—संज्ञा पु० [हिं० भय+हा (प्रत्य०)] १. भयभीत। डरा हुआ। २. जिसपर भूत वा किसी देव का आवेश आता हो। उ०—घूमन लग समर मैं भैहा। मनु अभुआत भाउ भर भैहा।—लाल (शब्द०)।

भोँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भों भों का शब्द।

भोँकना१—क्रि० स० [भक् से अनु०] बरछी, तलवार या इसी प्रकार की और कोई नुकीली चीज जोर से धँसाना। घुसेड़ना।

भोँकना२—क्रि० अ० [हिं० भूँकना] दे० 'भूँकना'।

भोँगरा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की बेल या लता।

भोँगली—संज्ञा स्त्री० [देश० या अनु० ?] बाँस की नली। बाँस का वह टुकड़ा जिसमे पोल हो। पुपली। बाँस का चोगा। उ०—पाछें वा चीर कों वाँस की भोंगली मे धरि कै आपु वैरागी रूप धरि चाकर को डेरा में राखिकै वासो कहे। —दो० सौ० बावन०, भा० १, पृ० १४।

भोँगाल—संज्ञा पुं० [अं० ब्यूगल] वह बड़ा भोंपा जिसका एक ओर का मुँह बहुत छोटा और दूसरी ओर का मुँह बहुत अधिक चौड़ा तथा फैला हुआ होता है।

विशेष—इसका छोटे मुँहवाला सिरा जब मुँह के पास रखकर कुछ बोला जाता है, तब उसका शब्द चौड़े मुँह से निकलकर बहुत दूर तक सुनाई देता है इसका व्यवहार प्रायः भीड़ भाड़ के समय बहुत से लोगो को कोई बात सुनाने के लिय होता है।

भोँचाल—संज्ञा पु० [स० भू + चाल] दे० 'भूकंप'।

भोँडर,भोँडल†—संज्ञा पुं० [देश०] द० 'भोडर', 'भोडल'।

भोँड़१—वि० [हिं० भद्दा या भों से अनु०] [वि० स्त्री भोंड़ी] १. भद्दा। बदसूरत। कुरूप। २. मूर्ख। बेवकूफ।

भोँडा२—संज्ञा पु० [देश०] जुआर की जाति की एक प्रकार की घास जो पशुओ के चारे के काम में आती है। इसमे एक प्रकार के दाने लगते हैं जो गरीब लोग खाते हैं।

भोँड़ापन—संज्ञा पु० [हिं० भोंडा + पन (प्रत्य०)] १. भद्दापन। २.बेहूदगी।

भोँड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भोंड़ा] वह भेड़ जिसकी छाती पर के रोएँ सफेद और बाकी सारे शरीर के रोएँ काले हो। (गड़ेरिया)।

भोँतरा—वि० [हिं० भुथरा] (शस्त्र) जिसकी धार तेज न हो। कुंद धारवाला।

भोँतला†—वि० [हिं० भुथरा] जिसकी धार तेज न हो। कुंद। भुथरा।

भोँदू—वि० [हिं० बुद्धू या अनु० भद] १. बेवकूफ। मूर्ख। २. सीधा। भोला।

भोँपा, भोँपू—संज्ञा पुं० [भों अनु० + पू (प्रत्य०)] तुरही की तरह का पर बिलकुल सीधा, एक प्रकार का बाजा जो फूँककर बजाया जाता है। इसका व्यवहार प्रायः वैरागी साधु आदि करते हैं।

भोँरा—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] दे० 'भौरा'। उ०—दई, दई पानी की बूँदो से डरा हुआ यह ढीठ भोंरा नई चमेली को छोड़ बार बार मेरे ही मुख मे आता है।—शकुंतला, पृ० १७।

भोँसना† पु—क्रि० स० [हिं०] भूनना। भूलना। दे० 'भूनना'। उ०—धन सो जन धन मन तेहिक, जाके मन दोहाग। परै दोह की आग सो, मानस भोसै दाग।—इंद्रा०, पृ० १४८।

भोँसला, भोँसले—संज्ञा पुं० [देश०] महाराष्ट्रो के एक राजकुल की उपाधि।

विशेष—महाराज शिवाजी और रघुनाथ राव आदि इसी राजकुल के थे।

भोँह—संज्ञा स्त्री० [स० भ्रू] द० 'भौंह'। उ०—भोंह रूप सरस सरोवर मे कमल दलन डर डार डठ गए हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५७३।

भो(पु)†१—क्रि० अ० [हिं० भया] भया। हुआ।

भो†२— [स० भव] शिव। उ०—संस्कृत में भो नाम शिव जी का है।—कबीर मं०, पृ० ५६।

भो३—संबोधन [सं०] हे। हो। (हिंदी में क्व०)।

भोअन†—संज्ञा पु० [स० भुजङ्ग] सर्प। भुजग। उ०—राधा बल्लभ वंशी वर नर्पत सु भाअन जातं।—पृ० रा०, २। ३५२।

भोइ—वि० [देश०] आद्र। आसक्त। भीजा हुआ। उ०—मन लग्गिय बधत सु पय मन कद्रप रस भोइ।—पृ० रा०, २५। २४०।

भोइन्न(पु)—संज्ञा पु० [स० भाज्यान्न] द० 'भोजन'। उ०—तवै आनि तुट्टी मम्भै थान थायं। जिहन जु जो भाव भोइन्न भाय। —पृ० रा०, २। २४६।

भोकस(पु)†१—वि० [हिं० भूख + स (प्रत्य०)] भुक्खड़। भूखा।

भोकस(पु)२—संज्ञा पु० [स० भोक्तृ (= एक प्रकार का प्रेत) ?] एक प्रकार का राक्षस। दानव उ०—कीन्हेसि राकस भूत परेता। किन्हेसि भोकस देव दएता।—जायसी ग्रं०, पृ० २।

भोकार—संज्ञा स्त्री० [भों से अनु० + कार (प्रत्य०)] जोर जोर से रोना।

क्रि० प्र०—फाड़ना।

भोक्ता१—वि० [सं० भोक्तृ] १. भोजन करनेवाला। २. भोग करनेवाला। भोगनेवाला। ३. ऐश करनेवाला। ऐयाश। ४. शासन करनेवाला। शासक (को०)। ५. अनुभूत या सहन करनेवाला (को०)।

भोक्ता[२]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. भर्ता। पति। ३. एक प्रकार का प्रेत। ४. राजा। नरेश। ५. प्यार करनेवाला। वह जो प्यार करता हो। (को०)।

भोक्तृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] भोक्ता का धर्म या भाव।

भोक्तृशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि।

भोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुख या दुःख आदि का अनुभव करना या अपने शरीर पर सहना। २. सुख। विलास। ३. दुःख। कष्ट। ४. स्त्रीसंभोग। विषय। ५ साँप का फन। ६. साँप। ७. धन। संपत्ति। ८. गृह। घर। ९. पालन। १०. भक्षण। आहार करना। ११. देह। १२. मान। परिमाण। १३. पाप या पुण्य का वह फल जो सहन किया या भोगा जाता है। प्रारब्ध। १४. पुर। १५. एक प्रकार का सैनिक व्यूह। १६. फल। अर्थ। उ०—क्योंकि गुण वे कहाते हैं जिनसे कर्मकांडादि मे उपकार लेना होता है। परंतु सर्वत्र कर्मकांड में भी इष्ट भोग की प्राप्ति के लिये परमेश्वर का त्याग नही होता।—दयानंद (शब्द०)। १७. मानुष प्रमाण के तीन भेदो मे से एक। भुक्ति। (क्व०)। १८. देवता आदि के आगे रखे जानेवाले खाद्य पदार्थ। नैवेद्य। उ०—गयो लै महल माँफ टहल लगाए लोग लागे होन भोग जिय शंका वनु छीजिए। —नाभा (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना—लगाना।

१९. भाड़ा। किराया। २० सूर्य आदि ग्रहों के राशियों मे रहने का समय। २१. आय। आमदनी (को०)। २२. वेश्या को भोग के निमित्त प्रदत्त शुल्क। वेश्या का शुल्क (को०)। २३. भूमि या संपत्ति का व्यवहार।

भोगकर—वि० [सं०] आराम देनेवाला। आनंददायक [को०]।

भोगगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्या का शुल्क [को०]।

भोगगृह—संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। जनानखाना [को०]।

भोगजात—वि० [सं०] भोग से उत्पन्न।

भोगतृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भोग की तीव्र या बलवती इच्छा। २. किसी स्वार्थ के वश किया गया भोग।

भोगदेह—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार वह सूक्ष्म शरीर जो मनुष्य को मरने के उपरांत स्वर्ग या नरक आदि में जाने के लिये धारण करना पड़ता है।

भोगधर—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

भोगना—क्रि० अ० [सं० भोग+हिं० ना० (प्रत्य०)] १. सुख दुःख शुभाशुभ या कर्मफलों का अनुभव करना। आनंद या कष्ट आदि को अपने ऊपर सहन करना। भुगतना। २. सहन करना। सहना। ३. स्त्रीप्रसंग करना।

भोगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] पालन पोषण करनेवाला।

भोगपति—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर या प्रांत आदि का प्रधान शासक या अधिकारी।

भोगपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्रनीति के अनुसार वह पत्र जो राजा को डाली या उपहार भेजने के संबंध में लिखा जाय।

भोगपाल—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वरक्षक। सारथि। साईस [को०]।

भोगपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुभुक्षा। भूख [को०]।

भोगप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो उत्तर दिशा मे माना गया है।

भोगबंधक—संज्ञा पुं० [सं० भोग+हिं० बंधक (=रेहन)] बंधक या रेहन रखने का वह प्रकार जिसमें उधार लिए हुए रुपए का व्याज नही दिया जाता और उस व्याज के बदले मे रुपया उधार देनेवाले को रेहन रखी हुई भूमि या मकान आदि भोग करने अथवा किराए आदि पर चलाने का अधिकार प्राप्त होता है। दृष्टबंधक का उलटा।

भोगभुज्—वि० [सं० भोगभुक्] १. भोक्ता। भोग करनेवाला। २. धनी। संपत्तिवाला [को०]।

भोगभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भोग का स्थान। उपभोग का क्षेत्र। स्वर्ग। आनंद करने की जगह। उ०—आनंद की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष का प्रदर्शन करनेवाली काव्यभूमि दीप्ति, माधुर्य और कोमलता की भूमि है जिसमे प्रवर्तक या बीज भाव प्रेम है। काव्य की इस भोगभूमि में दुःखात्मक भावों को बेधड़क चले आने की इजाजत नहीं।—रस०, पृ० ८१। २. विष्णुपुराण के अनुसार भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य वर्ष क्योंकि भारतवर्ष को कर्मभूमि कहा गया है। ३. जैनों के अनुसार वह लोक जिसमे किसी प्रकार का कर्म नहीं करना पड़ता और सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति केवल कल्पवृक्ष के द्वारा हो जाती है।

भोगभृतक—संज्ञा पुं० [सं०] केवल भोजन वस्त्र लेकर काम करनेवाला नौकर [को०]।

भोगलदाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भोग+लदाई ?] खेत में कपास का सबसे बड़ा पौधा जिसके आसपास बैठकर देहाती लोग उसकी पूजा करते हैं।

भोगलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आनंद या लाभ की प्राप्ति या अर्जन (को०)। २. वृद्धि। सौभाग्य (को०)। ३. दिए हुए अन्न के बदले में व्याज के रूप मे कुछ अधिक अन्न जो फसल तैयार होने पर लिया जाता है।

भोगलिप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यसन। लत।

भोगलियाल—संज्ञा स्त्री० [डिं०] कटारी नाम का शस्त्र।

भोगली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. छोटी नली। पुपली। २. नाक में पहनने का लौंग। ३. टेटका या तरकी नाम का कान में पहनने का गहना। ४. वह छोटी पतली पोली कील जो लौंग या कान के फूल आदि को अटकाने के लिये उसमें लगाई जाती है। ५. चपटे तार या बादले का बना हुआ सलमा जिससे दोनों किनारों के बीच की जंजीर बनाई जाती है। कँगनी।

भोगवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पातालगंगा। २. गंगा। ३. पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। ४. महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम। ५. नागों के रहने का स्थान। नागपुरी। ६. एक नागिन (को०)। ७. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

भोगवना ⓤ—क्रि० अ० [सं० भोग] भोगना । उ०—(क) कला सपूरण भोगवइ चोवा चदन तिलक सोहाई ।—बी० रासो, पृ० ४७ । (ख) सनि कज्जल चख झख लगनि उपज्यो सुदिन सनेहु । क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सब देहु ।—बिहारी (शब्द०) ।

भोगवस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोग की वस्तु या सामग्री ।

भोगवान्¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप । २ नाट्य । ३. गान । गीत । ४. एक पर्वत का नाम (को०) ।

भोगवान्²—वि० भोगयुक्त । भोगवाला । आनंददायक (को०) ।

भोगवाना—क्रि० स० [हिं० भोगना का प्रे० रूप] भोगने में दूसरे को प्रवृत्त करना । भोग कराना ।

भोगविलास—संज्ञा पुं० [सं०] आमोद प्रमोद । सुख चैन ।

भोगवेतन—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो किसी धरोहर रखी हुई वस्तु के व्यवहार के बदले में स्वामी को दिया जाय ।

भोगव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिलीय अर्थशास्त्रानुसार वह व्यूह जिसमें सैनिक एक दूसरे के पीछे खड़े किए गए हों ।

भोगशील—वि० [सं०] भोगी । विलासी (को०) ।

भोगसद्म—संज्ञा पुं० [सं० भोगसद्मन्] अंत:पुर । जनानखाना ।

भोगस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर, जिससे भोग किया जाता है । २. अंत:पुर ।

भोगांतराय—संज्ञा पुं० [सं०] वह अंतराय जिसका उदय होने से मनुष्य के भोगों की प्राप्ति में विघ्न पड़ता है । वह पाप कर्म जिनके उदित होने पर मनुष्य भोगने योग्य पदार्थ पाकर भी उनका भोग नहीं कर सकता (जैन) ।

भोगाना—क्रि० स० [हिं० भोगना का प्रे० रूप] भोगने में दूसरे को प्रवृत्त करना । भोग कराना ।

भोगार्ह¹—वि० [सं०] भोग के योग्य ।

भोगार्ह²—संज्ञा पुं० धन संपत्ति (को०) ।

भोगार्ह्य—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न । धान्य (को०) ।

भोगावति ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० भोगवती] नागपुरी । उ०—भोगावति जसि अहिकुल बासा ।—मानस, १।१७८ ।

भोगावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तुतिपाठकों द्वारा की जानेवाली स्तुति । २. नागों की नगरी (को०) ।

भोगावास—संज्ञा पुं० [सं०] अंत:पुर ।

भोगिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वरक्षक । सारथी । साईस । २. गाँव या प्रांत का शासक । उ०—प्रांतीय शासकों को भोगिक, भोगपति, गोप्ता, उपरिक, महाराज, राजस्थानीय आदि की उपाधियाँ मिलती थीं ।—आदि०, पृ० ४०१ ।

भोगिकांत—संज्ञा पुं० [सं० भोगिकान्त] भोगियों अर्थात् सर्पों के लिये प्रिय अर्थात् वायु (को०) ।

भोगिगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० भोगिगन्धिका] लघुमंगुष्ठा (को०) ।

भोगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० भोगिन्] दे० 'भोगिनी' ।

भोगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा की वह पत्नी जिसका पट्टाभिषेक न हुआ हो । राजा की उपपत्नी । राजा की रखेली स्त्री । २. नागिन ।

भोगिभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] मोर । मयूर (को०) ।

भोगिराज—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग का नाम (को०) ।

भोगिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन (को०) ।

भोगींद्र—संज्ञा पुं० [सं० भोगीन्द्र] १. शेषनाग । २. वासुकी । ३. पतंजलि का एक नाम ।

भोगी¹—संज्ञा पुं० [सं० भोगिन्] १. भोगनेवाला । वह जो भोगता हो । २. साँप । सर्प । ३. जमींदार । ४. नृप । राजा । ५. नापित । नाऊ । नाई । ६. शेषनाग । (डिं०) । उ०—बीजा दीरघ वरण ऊपै गुर आदि सँजोगी । विसरग अगसिर बिंदु भणै तारख सो भोगी ।—रघु० रू०, पृ० ५ ।

भोगी²—वि० १. सुखी । २. इंद्रियों का सुख चाहनेवाला । ३. भुगतनेवाला । ४. विषयासक्त । ५. आनंद करनेवाला । ६. विषयी । भोगासक्त । व्यसनी । ऐयाश । ७. खानेवाला । ८. फनवाला । कुंडली या फणयुक्त (को०) ।

भोगीश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भोगींद्र' ।

भोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम ।

भोग्य¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भोग्या] १. भोगने योग्य । काम में लाने योग्य । २. जिसका भोग किया जाय । ३. खाद्य (पदार्थ) ।

भोग्य²—संज्ञा पुं० १. धन संपत्ति । २. धान्य । ३. भोगबंधक ।

भोग्यभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विलास की भूमि । आनंद का स्थान । २. वह भूमि जिसमें किए हुए पाप पुण्यों से सुख दु:ख प्राप्त हो । मर्त्यलोक ।

भोग्यमान—वि० [सं०] जो भोगा जाने को हो, अभी भोगा न गया हो । जैसे, भोग्यमान नक्षत्र ।

भोग्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।

भोग्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरोहर की वह रकम या वस्तु जो कागज पर लिख दी गई हो ।

भोज¹—संज्ञा पुं० [सं० भोजन या भोज्य] १. बहुत से लोगों का एक साथ बैठकर खाना पीना । जेवनार । दावत ।

यौ०—भोजभात = कच्ची पक्की रसोई का ज्योनार ।

२. भोज्यपदार्थ । खाने की चीज । ३. ज्वार और भाँग के योग से बनी हुई एक प्रकार की शराब जो पूने की ओर मिलती है ।

भोज²—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजकट नामक देश जिसे आजकल भोजपुर कहते हैं । २. चंद्रवंशियों के एक वंश का नाम । ३. पुराणानुसार शांति देवी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम । ४. महाभारत के अनुसार राजा द्रुह्यु के एक पुत्र का नाम । ५. श्रीकृष्ण के सखा एक ग्वाल का नाम । उ०—अर्जुन भोज अरु सुबल श्रीदामा मधुमंगल इक ताक ।—सूर (शब्द०) । ६. कान्यकुब्ज के एक प्रसिद्ध राजा जो महाराज रामभद्र देव के पुत्र थे । इन्होंने काश्मीर तक अधिकार किया था । ये नवीं शताब्दी में हुए थे । ७. मालवे के परमारवंशी एक प्रसिद्ध राजा जो संस्कृत के बहुत बड़े

विद्वान्, कवि और विद्याप्रेमी थे। इनका काल १०वीं शती का अंत और ११ वीं शती का प्रारंभ माना जाता है।

विशेष—ये धारा नगरी के सिंधुल नामक राजा के लड़के थे और इनकी माता का नाम सावित्री था। जब ये पाँच वर्ष के थे, तभी इनके पिता अपना राज्य और इनके पालनपोषण का भार अपने भाई मुंज पर छोड़कर स्वर्गवासी हुए थे। मुंज इनकी हत्या करना चाहता था, इसलिये उसने बंगाल के वत्सराज को बुलाकर उसको इनकी हत्या का भार सौंपा। वत्सराज इन्हें बहाने से देवी के सामने बलि देने के लिये ले गया। वहाँ पहुँचने पर जब भोज को मालूम हुआ कि यहाँ मैं बलि चढ़ाया जाऊँगा, तब उन्होंने अपनी जाँघ चीरकर उसके रक्त से बड़ के एक पत्ते पर दो श्लोक लिखकर वत्सराज को दिए और कहा कि ये मुंज को दे देना। उस समय वत्सराज को इनकी हत्या करने का साहस न हुआ और उसने इन्हें अपने यहाँ ले जाकर छिपा रखा। जब वत्सराज भोज का कृत्रिम कटा हुआ सिर लेकर मुंज के पास गया, और भोज के श्लोक उसने उन्हें दिए, तब मुंज को बहुत पश्चात्ताप हुआ। मुंज को बहुत विलाप करते देखकर वत्सराज ने उन्हें असल हाल बतला दिया और भोज को लाकर उनके सामने खड़ा कर दिया। मुंज ने सारा राज्य भोज को दे दिया और आप सस्त्रीक वन को चले गए। कहते हैं, भोज बहुत बड़े वीर, प्रतापी, पंडित और गुणग्राही थे। इन्होंने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की थी और कई विषयों के अनेक ग्रंथों का निर्माण किया था। इनका समय १० वीं ११ वीं शताब्दी माना गया है। ये बहुत अच्छे कवि, दार्शनिक और ज्योतिषी थे। सरस्वतीकंठाभरण, शृंगारमंजरी, चंपूरामायण, चारुचर्या, तत्वप्रकाश, व्यवहारसमुच्चय आदि अनेक ग्रंथ इनके लिखे हुए बतलाए जाते हैं। इनकी सभा सदा बड़े बड़े पंडितों से सुशोभित रहती थी। इनकी स्त्री का नाम लीलावती था जो बहुत बड़ी विदुषी थी।

भोजक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन करानेवाला। २. भोजन करनेवाला। ३. भोग करनेवाला। भोगी। ४. ऐयाश। विलासी। उ०—तुम बारी पिय भोजक राजा। गर्व करोध वही पै छाजा।—जायसी (शब्द०)।

भोजकर—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपुर। यह भीम के पुत्र रुक्मि द्वारा बसाया गया था।

भोजदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कान्यकुब्ज के महाराज भोज। २. दे० 'भोज'—७।

भोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आहार को मुँह में रखकर चबाना। भक्षण करना। खाना। २. वह जो कुछ भक्षण किया जाता हो। खाने की सामग्री। खाने का पदार्थ। भोज्य पदार्थ (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।

मुहा०—भोजन पेट में पड़ना = भोजन होना। खाया जाना।

३. विष्णु (को०)। ४. शिव (को०)। ५. भोजन कराने की क्रिया (को०)। ६. धन। संपत्ति (को०)। ७. भोग या उपभोग करना। भोगना (को०)।

भोजनक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा।

भोजनकाल—संज्ञा पुं० [सं०] खाने का समय।

भोजनखानी—संज्ञा स्त्री० [सं० भोजन + हिं० खान] पाकशाला। रसोईघर। उ०—चकित विप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजनखानी।—तुलसी (शब्द०)।

भोजनगृह—संज्ञा पुं० [सं०] पाकशाला। भोजन करने का स्थान।

भोजनत्याग—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपवास। अनशन (को०)।

भोजनभट्ट—संज्ञा पुं० [हिं० भोजन + सं० भट्ट] वह जो बहुत अधिक खाता हो। पेटू।

भोजनभांड—संज्ञा पुं० [सं० भोजनभाण्ड] मांसाहार। आमिष पदार्थ (को०)।

भोजनभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन करने की जगह (को०)।

भोजनविशेष—संज्ञा पुं० [सं०] विशिष्ट भोजन (को०)।

भोजनवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाद्य वस्तु। खाना। भोजन (को०)।

भोजनवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन का समय। भोजनकाल (को०)।

भोजनव्यग्र—वि० [सं०] १. खाने में संलग्न। २. जिसे खाद्य पदार्थ का अभाव हो। भोजन के लिये व्यग्र (को०)।

भोजनव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का व्यय। खानपीने का खर्च (को०)।

भोजनशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसोईघर। पाकशाला।

भोजनसमय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भोजनकाल'।

भोजनाच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] खाना कपड़ा। अन्न वस्त्र। भोजन और वस्त्र। खाने और पहनने की सामग्री।

भोजनाधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] रसोई का प्रधान भंडारी। पाकशाला का अध्यक्ष।

भोजनार्थी—वि० [सं० भोजनार्थिन्] [वि० स्त्री० भोजनार्थिनी] भूखा। बुभुक्षित। भोजन चाहनेवाला।

भोजनालय—संज्ञा पुं० [सं०] पाकशाला। रसोईघर।

भोजनीय[1]—वि० [सं०] १. भोजन करने योग्य। खाने योग्य। जो खाया जा सके। २. खिलाए जाने योग्य। पोषणीय।

भोजनीय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] खाना। भोजन। आहार (को०)।

यौ०—भोजनीयमृत = अधिक भोजन करने से मृत। जो अजीर्ण रोग से मरा हो।

भोजनोत्तर—वि० [सं०] १. जिसे भोजन के बाद खाया जाय। (औषधि आदि)। २. भोजन करने के बाद। जैसे, भोजनोत्तर काल।

भोजपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंसराज। २. कान्यकुब्ज के राजा भोज। ३ दे० 'भोज'।

भोजपत्र—संज्ञा पुं० [सं० भूर्जपत्र] एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जो हिमालय पर १४००० फुट की उँचाई तक होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत लचीली होती है और जल्दी खराब नहीं होती, इसलिये पहाड़ों में यह मकान आदि बनाने के काम मे आती है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं। इसकी छाल कागज के समान पतली होती है और कई परतों में होती है। यह छाल प्राचीन काल मे ग्रंथ और लेख आदि लिखने में बहुत काम आती थी; और अब भी तांत्रिक लोग इसे बहुत पवित्र मानते और इसपर प्रायः यंत्र मंत्र आदि लिखा करते हैं। इसके अतिरिक्त छाल का उपयोग छाते बनाने और छते छाने में भी होता है; और कभी कभी यह पहनने के भी काम आती है। छाल का रंग प्रायः लाली लिए खाकी होता है। इसके पत्तों का क्वाथ वातनाशक माना जाता है। वैद्यक में इसे बलकारक, कफनाशक, कटु कषाय और उष्ण माना गया है।

पर्या०—चर्मी। बहुवल्कल। छत्रपत्र। शिव। स्थिरच्छद। मृदुत्वक्। पत्रपुष्पक। भुज। बहुपट। बहुत्वक्।

भोजपरीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] रसोई की परीक्षा करनेवाला। वह जो इस बात की परीक्षा करता हो कि भोजन में विष आदि तो नहीं मिला है।

भोजपुरिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भोजपुर + इया (प्रत्य०)] भोजपुर का निवासी। भोजपुर का रहनेवाला।

भोजपुरिया[2]—वि० भोजपुर संबंधी। भोजपुर का।

भोजपुरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भोजपुर + ई (प्रत्य०)] भोजपुर प्रदेश की भाषा।

भोजपुरी[2]—संज्ञा पुं० भोजपुर का निवासी। भोजपुरिया।

भोजपुरी[3]—वि० भोजपुर का। भोजपुर संबंधी।

भोजराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भोज'।

भोजल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भव + जाल] संसार सागर। भवजाल।

भोजविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० भोज + विद्या] इंद्रजाल। बाजीगरी।

भोजी[1]—संज्ञा पुं० [सं० भोजन] खानेवाला। भोजन करनेवाला।—६

भोजी[2]—वि० [सं० भोजिन्] १. खानेवाला। २. उपयोग करनेवाला। ३. खिलाने या पोषण करनेवाला [को०]।

भोजू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भोजन] भोजन। आहार।

भोजेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजराज। २. कंस। ३. दे० 'भोज'।

भोज्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन के पदार्थ। खाद्य पदार्थ। २ भोज (को०)। ३ पितरों के निमित्त प्रदत्त भोजन (को०)। ४. सुस्वादु भोजन (को०)। ५. आस्वादन। उपभोग (को०)। ६. लाभ। आय (को०)। ७. मर्मभेद। मर्मपीडन (को०)।

भोज्य[2]—वि० खाने योग्य। जो खाया जा सके।

भोज्यकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का समय। भोजन करने का काल [को०]।

भोज्यसंभव—संज्ञा पुं० [सं० भोज्यसम्भव] शरीरस्थ रस धातु। शरीरगत रस आदि [को०]।

भोज्यान्न—वि० [सं०] १. जिसका अन्न खाया जा सके। २. जो खाने के योग्य हो (अन्न आदि)।

भोट—संज्ञा पुं० [सं० भोटाङ्ग] १. भूटान देश। २. तिब्बत। उ०—जो तिब्बत (भोट) की सीमा पर सतलज की उपत्यका में ७० मील लंबा और प्रायः उतना ही चौड़ा बसा हुआ है।—किन्नर०, पृ० १। ३. एक प्रकार का बड़ा पत्थर जो प्रायः २॥ इंच मोटा, ५ फुट लंबा और १॥ फुट चौड़ा होता है।

यौ०—भोटभाषा = भूटान निवासियों या भोटियों की भाषा। उ०—हमारी बातचीत भोट भाषा में हो रही थी।—किन्नर०, पृ० ४२।

भोटांग—संज्ञा पुं० [सं० भोटाङ्ग] भूटान।

भोटिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० भोट + इया (प्रत्य०)] भोट या भूटान देश का निवासी।

भोटिया[2]—संज्ञा स्त्री० भूटान देश की भाषा।

भोटिया[3]—वि० भूटान देश संबंधी। भूटान देश का। जैसे,—भोटिया टट्टू।

भोटिया बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० भोटिया + फ़ा० बादाम] १. आलू बुखारा। २. मूँगफली।

भोटी—वि० [हिं० भोट + ई (प्रत्य०)] भूटान देश का।

भोटीय—वि० [सं०] भोट देश या भूटान का [को०]।

भोडर†—संज्ञा पुं० [देश०] १. अभ्रक। अबरक। उ०—पायल पाय लगी रहै लगे अमोलक लाल। भोडर हू की भासि है बेंदी भामिनि भाल।—बिहारी (शब्द०)। २. अभ्रक का चूर जो होली आदि मे गुलाल के साथ उड़ाया जाता है। बुक्का। ३. एक प्रकार का मुश्कबिलाव।

भोडल†—संज्ञा पुं० [देश०] १. दे० 'अबरक'। २. तारा या जुगनू। उ०—ज्ञान प्रकाश भयो जिनके डर वे घर क्यूँ हि छिपे न रहैंगे। भोडल माँहि दुरै नाहिं दीपक यद्यपि वे मुख मौन गहैंगे।—सुंदर० ग्रं०, भा २, पृ० ६३०।

भोडागार†—संज्ञा पुं० [सं० भाण्डागार] भंडार। (डिं०)।

भोण—संज्ञा पुं० [सं० भवन] गृह। घर। मकान। (डिं०)।

भोथार—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—मुश्की औ हिरमिजी एराकी। तुरकी कहे भोथार बलाकी।—जायसी (शब्द०)।

भोना(पु)—क्रि० अ० [हिं० भीनना] १ भीनना। संचरित होना। उ०—रेख कछू कछू अंजन की कछु खंजन की अरुनाई रही भ्वै।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) तब लागी गावन बिभास बीच ख्याल एक ताल तान सुर को बँधान बीच भ्वै रही—रघुनाथ (शब्द०)। २. लिप्त होना। ३. आसक्त होना। अनुरक्त होना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

भोप†—संज्ञा पुं० [सं० भूप] भूप। राजा। उ०—जयं जय्य जोयं। किय दक्ष भोयं।—पृ० रा०, २।५७०।

भोपा—संज्ञा पुं० [भों से अनु०] १. एक प्रकार की तुरही या फूँककर बजाया जानेवाला बाजा। भोपू। २. मूर्ख। बेवकूफ। †३. दे० भूरति। उ०—भोपा भीमका ने फेरि कागद सूँ बुलायो। सगतो खाडखानी जैनगर सुँ साथि आयो।—शिखर०, पृ० ११२।

भोवरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे फेरन भी कहते हैं।

भोभर†—संज्ञा स्त्री० [स०] भ भल। चूल्हे की गरम मिट्टी। गरम राख या मिट्टी। उ०—मुँह डोले उण मनखरो, भोभर भीतर भार।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ८६।

भोम, भोमिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] पृथ्वी। (डिं०)। उ०—(क) भोम उलटकर चढी अकासा, गगन भोम में पैठा।—दरिया० बानी, पृ० ५६। (ख) सोमेस सूर गुज्जर नरेश मालवी राज सब धग्ग पेस। मारू बजाइ भट्टीन थान घल भोमि लई वल चाहुवान।—पृ० रा०, १।६१४।

भोमिया—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] १. पृथ्वी। (डिं०)। २. भूमिपति। छोटे जमींदार। उ०—देवा ने उन सवारों की सहायता से वहाँ के भोमियों (छोटे जमींदारों) में से बहुतों को मार डाला और शेष भाग गए।—राज०, पृ० ५५१।

भोमी—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] पृथ्वी। (डिं०)।

भोमीरा—संज्ञा पुं० [देश०] मूँगा। प्रवाल।

भोयन्नⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० भोजन या भोज्यान्न] दे० 'भोजन'। उ०—तबै षोडनी अट्ठ भोयन्न भष्षी। कहाँ पाकसासंन आतंक दिष्षी।—पृ० रा०, २।२४७।

भोर[1]—संज्ञा पुं० [सं० विभावरी] प्रातःकाल। तड़का। सवेरा। उ०—जागे भोर दौड़ि जननी ने अपने कंठ लगायो।—सूर (शब्द०)।

भोर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का बड़ा पक्षी जिसके पर बहुत सुंदर होते हैं।

विशेष—यह जल तथा हरियाली को बहुत पसंद करता है। यह फल फूल तथा कीड़े मकोड़े खाता और खेतों को बहुत अधिक हानि पहुँचाता है। यह रात के समय ऊँचे वृक्षों पर विश्राम करता है।

२. खमो नामक सदाबहार वृक्ष। इसे भार और रोई भी कहते हैं। विशेष दे० खमो'।

भोरⓅ†[3]—संज्ञा पुं० [सं० भ्रम] धोखा। भूल। भ्रम। उ०—(क) को दुहुँ रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हँसत परस्पर आपु मे चली जाहिं जिय भोर।—सूर (शब्द०)।

भोर[4]—वि० चकित। स्तंभित। उ०—सूर प्रभु की निरखि सोभा भई तरुनी भोर।—सूर (शब्द०)।

भोरⓅ†[5]—वि० [हिं० भोला] भोला। सीधा। सरल। उ०—पाती राखि न माँगेउ काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

भोरहरी†—वि० [हिं० भोर + हरी (प्रत्य०)] प्रातःकाल। रात्रि के बीतने और सूर्योदय होने के पहले का समय। उ०—वह इस तरह नाचती है; जैसे भोरहरी की हवा मे अलसी का फूल।—शराबी, पृ० ५।

भोरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] प्रायः एक फुट लंबी एक प्रकार की मछली जो युक्तप्रांत (उत्तर प्रदेश), मद्रास और ब्रह्म देश की नदियों में पाई जाती है।

भोराⓅ†[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भोर'।

भोराⓅ†[3]—वि० [हिं० भोला] [वि० स्त्री० भोरी] भोलाभाला। सीधा। सरल।

भोराⓅ[4]—वि० [सं० भ्रम] [वि० स्त्री० भोरी] भ्रमयुक्त। चकित। बावरी। उ०—भोरी भई है मयंकमुखी भुज भेटति है गहि अंक तमालहि।—मति० ग्रं०, पृ० ३५७।

भोराईⓅ†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० भोरा + ई (प्रत्य०)] भोलापन। सिधाई। सरलता।

भोराई†[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] भुकड़ी। फफूँदी।

भोरानाⓅ†[1]—क्रि० स० [हिं० भोरा + आना (प्रत्य०)] भ्रम में डालना। बहकाना। धोखा देना। उ०—सूरदास लोगन के भोरए काहे कान्ह अब होत पराए।—सूर (शब्द०)।

भोराना[2]—क्रि० अ० भ्रम मे पड़ना। धोखे में आना।

भोरानाथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० भोलानाथ] शिव। उ०—गौरीनाथ भोरानाथ भवत भवानीनाथ विश्वनाथपुर फिरि आन कलि काल की।—तुलसी (शब्द०)।

भोरापनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० भोला + पन (प्रत्य०) भोला होने का भाव। सिधाई। भोराई। सरलता।

भोरि—अव्य० [हिं० बहुरि] पुनः। बहुरि। फिर। उ०—दास राम जी ब्रह्म समाए। जहाँ गए तें भोरि न आए।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १२३।

भोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] अफीम का एक रोग।

भोरुⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भोर'।

भोरें—क्रि० वि० [हिं० भोर (= भूल)] भूल से भी। उ०—कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें।—मानस, १।१३८।

भोल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य पिता और नट स्त्री से उत्पन्न संतान [को०]।

भोल‡[2]—संज्ञा पुं० [सं० भ्रम, हिं० भोर] दे० 'भोर'। मोह। भ्रम। विमोह। उ०—पहिलहि न बुझल एत सब भोल। रूप निहारि पड़ि गेल भोल।—विद्यापति, पृ० ४२७।

भोलनाⓅ—क्रि० स० [हिं० भोल (= भूल) + ना (प्रत्य०)] भुलाना। बहकाना।

भोलप†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूल] दे० 'भूल'। उ०—कहै सगा भोलप करी दीधी डावडियाँह। राव सरीखे रंग हूँ मोहड़े मावड़ियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १५।

भोला—वि० [हिं० भूलना] १. जिसे छल कपट आदि न आता हो। सीधा सादा। सरल।
यौ०—भोलानाथ। भोला भाला।
२. मूर्ख। बेवकूफ।

भोलानाथ—संज्ञा पुं० [सं० या हिं० भोला+सं० नाथ] महादेव। शिव।

भोलापन—संज्ञा पुं० [हिं० भोला+पन (प्रत्य०)] १. सिधाई। सरलता। सादगी। २. नादानी। मूर्खता।

भोलाभाला—वि० [हिं० भोला+अनु० भाला] सीधा सादा। सरल चित्त का। निश्छल।

भोलि—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट [को०]।

भोसरा†—वि० [देश०] बेवकूफ। मूर्ख।

भोहरा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० भुइँहरा'।

भौं—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] आँख के ऊपर के बालों की श्रेणी। भृकुटी। भौंह।
मुहा०—दे० 'भौंह'।

भौंकना—क्रि० अ० [भौं भौं से अनु०] १. भौं भौं शब्द करना। कुत्तों का बोलना। भूँकना। २. बहुत बकवाद करना। निरर्थक बोलना। बक बक करना।

भौंगर¹—संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों की एक जाति।

भौंगरा²—वि० मोटा ताजा। हृष्ट पुष्ट।

भौंचाल†—संज्ञा पुं० [हिं० भूचाल] दे० 'भूकंप'।

भौंड़ा†—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० भौंड़ी] दे० 'भोंड़ा'। उ०—षसम परचो जोरू कै पीछे कह्यो न मानै भौंड़ो राँड।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५६३।

भौंड़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटा पहाड़। पहाड़ी। टीला।

भौंतुवा—संज्ञा पुं० [हिं० भ्रमना (=घूमना)] १. खटमल के आकार का एक प्रकार का काले रंग का कीड़ा जो प्रायः वर्षा ऋतु में जलाशयों आदि में जलतल के ऊपर चक्कर काटता हुआ चलता है। २. एक प्रकार का रोग जिसमें बाहुदंड के नीचे एक गिलटी निकल आती है। उ०—कहा भयो जो मन मिलि कलि कालहि कियो भौंतुवा भोर को है।—तुलसी (शब्द०)। ३. तेली का बैल जो सबेरे से ही कोल्हू में जोता जाता है और दिन भर घूमा करता है।

भौंर¹—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] १. भौंरा। चंचरीक। २. तेज बहते हुए पानी में पड़नेवाला चक्कर। आवर्त। नाँद। उ०—नाउ जाजरी भार मैं अदफर भौंर भुलान। यदुपति पार लगाइए मोहि अपना जन जान।—सं० सप्तक, पृ० ३४४।
क्रि० प्र०—पड़ना।

भौंर²—संज्ञा पुं० [?] मुश्की घोड़ा। उ०—लील समंद चाल जग जाने। हासल भौंर गियाह बखाने।—जायसी (शब्द०)।

भौंरकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भँवरकली] दे० 'भँवरकली'।

भौंरहाई(पु)—क्रि० अ० [हिं० भौंरा+हाई] भौंरों का चक्कर काटना। भौंरों का मँडराना। भौंराना। उ०—पददल संपुट मैं मुँदै मन मोद मानै, आरस विभावरी ह्वै होत भौंरहाई।—घनानंद, पृ० २२।

भौंरा¹—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर, पा० भमर, प्रा० भँवर] [स्त्री० भँवरी] १. काले रंग का उड़नेवाला एक पतंगा जो गोवरैले के बराबर होता है और देखने मे बहुत ढ़ंग प्रतीत होता है। भ्रमर। चचरीक। उ०—आपुहि भौंरा आपुहि फूल। आतमज्ञान विना जग भूल।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इसके छह पैर, दो पर और दो मूछें होती हैं। इसके सारे शरीर पर भूरे रंग के छोटे छोटे चमकदार रोएँ होते हैं। इसका रंग प्रायः नीलापन लिए चमकीला काला होता है और इसकी पीठ पर दोनों परों की जड़ के पास का प्रदेश पीले रंग का होता है। स्त्री के डंक होता है और वह डंक मारती है। यह गुंजारता हुआ उड़ा करता है और फूलों का रस पीता है। अन्य पतंगों के समान इस जाति के अंडे से भी ढोले निकलते हैं जो कालांतर में परिवर्तित होकर पतिंगे हो जाते हैं। यह डालियों और टूठी टहनियों पर अंडे देता है। कवि इसकी उपमा और रूपक नायक के लिये लाते हैं। उनका यह भी कथन है कि यह सब फूलों पर बैठता है, पर चंपा के फूल पर नहीं बैठता।

२. बड़ी मधुमक्खी। सारंग। भंमर। डंगर। ३. काला वा लाल भड़। ४. एक खिलौना जो लट्टू के आकार का होता है और जिसमें कील वा छोटी डंडी लगी रहती है। इसी कील में रस्सी लपेटकर लड़के इसे भूमि पर नचाते हैं। उ०—लोचन मानत नाहिन बोल। ऐसे रहत श्याम के आगे मनु है लीन्हों मोल। इत आवत है जात देखाई ज्यों भौंरा चकडोर। उतते सूत्र न टारत कबहूँ मोसों मानत कोर।—सूर (शब्द०)। ५. हिंडोले की वह लकड़ी जो मयारी में लगी रहती है और जिसमें डोरी और डंडी बँधी रहती है। उ०—हिंडोरना माई झूलत गोपाल। संग राधा परम सुंदरि चहूँधा व्रज बाल। सुभग यमुना पुलिन मोहन रच्यो रुचिर हिंडोर। लाल डाँड़ी स्फटिक पटुलि मणिन मरुवा घोर। भौंरा मयारिनि नील मरकत खँचे पाँति अपार। सरल कंचन खंभ सुंदर रच्यो काम श्रुविहार।—सूर (शब्द०)। ६. गाड़ी के पहिए का वह भाग, जिसके बीच के छेद में धुरे का गज रहता है और जिसमे आरा लगाकर पहिए की पुट्ठियाँ जड़ी जाती हैं। नाभि। लट्ठा। मुँड़ी। ७. रहट की खड़ी चरखी जो भँवरी को फिराती है। चकरी (बुंदेल०)। ८. पशुओं का एक रोग जिसे चेचक कहते हैं (बुंदेल०)। मिरगी (बुंदेल०)। १०. वह कुत्ता जो ड़ों की रखवाली करता है। ११. एक प्रकार ज्वार आदि की फसल को बहुत हानि

भौंरा³—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमण] १. मकान के नीचे का घर। २. वह गड्ढा जिसमें अन्न रखा जाता है। खात। खत्ता।

भौंरा⁴†—संज्ञा पुं० दे० 'भाँवर'।

भौंराना¹—क्रि० स० [सं० भ्रमण] १. घुमाना। परिक्रमा कराना। २. विवाह कराना। २. विवाह की भाँवर दिलाना। उ०—वर खोजाय टीका करो बहुरि देहु भौ चाय'—विश्राम (शब्द०)।

भौंराना²—क्रि० अ० घूमना। चक्कर काटना। फेरी लगाना।

भौंरारा, भौंराला—वि० [हिं० भौंरा] घुँघराला।

भौंरी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] १. पशुओं आदि के शरीर में रोओं या बालों आदि के घुमाव से बना हुआ वह चक्र जिसके स्थान आदि के विचार से उनके गुण दोष का निर्णय होता है। जैसे —इस घोड़े के अगले दाहिने पैर की भौंरी अच्छी पड़ी है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. विवाह के समय वर वधू का अग्नि की परिक्रमा करना। भाँवर।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लेना।

३. तेज बहते हुए जल में पड़नेवाला चक्कर। आवर्त।

क्रि० प्र०—पड़ना।

४. अंगाकड़ी। बाटी। (पकवान)।

भौंसिला—संज्ञा पुं० [देश०] एक मराठा उपजाति जिसमें शिवाजी का जन्म हुआ था। उ०—ताते सरजा बिरद भो, सोभित सिंह प्रमान। रन, भूसिला सुभोसिला आयुष्मान खुमान।—भूषण० ग्रं०, पृ० ७।

भौंह—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] आँख के ऊपर की हड्डी पर जमे हुए रोएँ या बाल। भृकुटी। भौं। भँव। उ०—भौंह लता बड़ देखिअ कठोर, अंजने आँजि हासि गुन जोर।—विद्यापति, पृ० २४३।

मुहा०—भौंह चढ़ाना या तानना=(१) नाराज होना। क्रुद्ध होना। उ०—बदत काहू नहीं निधरक निदरि मोहिं न गनत। बार बार बुझाइ हारी भौंह मो पर तनत।—सूर (शब्द०)। (२) त्योरी चढ़ाना। बिगड़ना। भौंह जोहना=प्रसन्न रखने के लिये संकेत पर चलना। खुशामद करना। उ०—अकारन को हितू और को है। बिरद गरीबनेवाज कौन को भौंह जासु जन जोहै।—तुलसी (शब्द०)। भौंह ताकना=किसी की प्रवृत्ति या विचार का ध्यान रखना। रुख देखना।

भौंहरा—संज्ञा पुं० [सं० भूमिगृह, प्रा० भूहर>भुइँहर या हिं० भुँइ+घर] दे० 'भुँइहरा'। उ०—हीरा लाल जवाहिर घर मैं मानिक मोती भौंहरा। कौन बात की कमी हमारे भरि भरि राखै भौंहरा।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१४।

भौ(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० भव] संसार। जगत्। दुनियाँ। उ०—अली भौ भील ने पकरा, जबर जंजीर में जकरा।—घट०, पृ० ३०६।

भौ²—संज्ञा पुं० [सं० भय] डर। खौफ। भय। उ०—मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई।......लोक कहैं राम को गुलाम हौ कहावौ। ए तो बड़ो अपराध मन भौ न पावौ।—तुलसी (शब्द०)।

भौका†—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० भौकी] बड़ी दौरी। टोकरा।

भौगिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० भोग+इया (प्रत्य०)] संसार के सुखों का भोग करनेवाला। वह जो सांसारिक सुख भोगता है।

भौगोलिक—वि० [सं०] भूगोल संबंधी। भूगोल का।

भौचक¹—वि० [हिं० भय + चकित] जो कोई विलक्षण बात या आकस्मिक घटना देखकर घबरा गया हो। हक्का बक्का। चकपकाया हुआ। स्तंभित।

क्रि० प्र०—रह जाना।—होना।

भौचक²†—संज्ञा पुं० [सं० भव+चक्र] संसारचक्र। आवागमन। उ०—फिरि फिरि परी है भौचक माहीं।—कबीर सा०, पृ० १५६।

भौचाल—संज्ञा पुं० [सं० भू+चाल] दे० 'भूकंप'।

भौजंग¹—वि० [सं० भौजङ्ग] [वि० स्त्री० भौजंगी] सर्प संबंधी। सर्प जैसा।

भौजंग²—संज्ञा पुं० आश्लेषा नक्षत्र [को०]।

भौज(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० भावज] भाई की पत्नी। भौजाई। भावज। उ०—ननँद भौज परपच रच्यो है मोर नाम कहि लीन्हा।—कबीर (शब्द०)।

भौजल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भव+जल] संसारसमुद्र। भवसागर। उ०—भौजल पार जबै होइ जैहो सुरति शब्द समैहो।—घट०, पृ० २०६।

भौजाई—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृजाया] भाई की भार्या। भ्रातृवधू। भावज। भाभी।

भौजाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भव+जाल] संसार के प्रपंच। सांसारिक माया। उ०—साईं जब तुम मोहिं बिसरावत, भूलि जात भौजाल जगत माँ।—जग० बानी, पृ० ६।

भौजिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] दासता।

भौजी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृजाया] दे० 'भौजाई'।

भौज्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्यप्रबंध जिसमें प्रजा से राजा लाभ तो उठाता हो, पर प्रजा के स्वत्वों का कुछ विचार न करता हो। वह राज्य जो केवल सुखभोग के विचार से होता हो, प्रजापालन के विचार से नहीं। इसमें प्रजा सदा दुःखी रहती है।

भौट, भौट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिब्बत का निवासी।

भौटा—संज्ञा पुं० [देश०] छोटा पहाड़। टीला। पहाड़ी।

भौत¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भौती] १. भूत संबंधी। प्राणि-संबंधी। २. भौतिक। ३. भूतप्रेत संबंधी। ४. भूतग्रस्त। भूताविष्ट।

भौत²—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूतयज्ञ। बलिकर्म। २. भूतपूजक। ३. भूतों का समूह। ४. देवल। ५. मंदिर का पुजारी [को०]।

भौत¹†—वि० [प्रा० बहुत्त] दे० 'बहुत' । उ०—भौत सतियापन यह सत अजब माने सखी ।—दक्खिनी०, पृ० ५१ ।

भौतरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० भव + तरणी] वह नाव या साधन जिससे संसारसागर का पार किया जा सके । उ०—धर्मनि सुनु आपनि करनी । जेहि मिलेउ शब्द भौतरनी ।—कबीर सा०, पृ० ४२१ ।

भौतिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । २. मुक्ता । मोती । ३. उपद्रव । ४. आधि व्याधि । ५. तत्व । भौतिक तत्व (को०) । ६. आँख नाक आदि इंद्रियाँ ।

भौतिक²—वि० १. पंचभूत संबंधी । २. पाँचो भूतों से बना हुआ । पार्थिव । उ०—भौतिक देह जीव अभिमानी देखत ही दुख लायो ।—सूर (शब्द०) । ३. शरीर संबंधी । शरीर का ।

यौ०—भौतिक सृष्टि ।

४. भूत योनि से संबंध रखनेवाला ।

यौ०—भौतिक विद्या ।

भौतिकमठ—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रम । मठ ।

भौतिकवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह मत या सिद्धांत जो पंचभूतों को मुख्य मानता हो । ।

भौतिकविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] तत्वों के गुण आदि के विवेचन की विद्या या विज्ञान ।

भौतिकविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिनके अनुसार भूत प्रेत आदि से बातें की जाती हैं और उनके अदभुत व्यापार जाने अथवा रोके जाते हैं । भूतों प्रेतों को बुलाने और दूर करने की विद्या ।

भौतिकसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ प्रकार की देवयोनि, पाँच प्रकार की तिर्यग् योनि और मनुष्य योनि, इन सबकी समष्टि ।

भौती¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात । रात्रि । रजनी ।

भौती²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बालिश्त लंबी और पतली लकड़ी जिसकी सहायता से ताने का चरखा घुमाते हैं । भेडती । (जुलाहा) ।

भौत्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भूति मुनि के पुत्र और चौदहवें मनु का नाम ।

भौन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भवन] घर । मकान । उ०—उर भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि बैठि विराजति बात बनी ।—घनानंद, पृ० ६२ ।

भौना(पु)†—क्रि० अ० [सं० भ्रमण] चक्कर लगाना । घुमना ।

भौपाल—संज्ञा पुं० [सं०] भूपाल का पुत्र । राजकुमार । [को०] ।

भौम¹—वि० [सं०] १. भूमि संबंधी । भूमि का । २. भूमि से उत्पन्न । पृथ्वी से उत्पन्न । जैसे, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि ।

भौम²—संज्ञा पुं० १. मंगल ग्रह । उ०—भूपर से ऊपर गया हो वानरेंद्र मानो एक नया भद्र भौम जाता था लगन में—साकेत पृ० ३१७ । २. अंबर । ३. लाल पुनर्नवा । ४. योग में एक प्रकार का आसन । ५. नरकासुर जो भूमि का पुत्र था (को०) । ६. जल (को०) । ७. प्रकाश । ज्योति (को०) । ८. अत्रि ऋषि का नाम (को०) । ९. अन्न (को०) । १०. कुट्टिम । पक्की जमीन (को०) । ११. मंजिल । खंड । मरातिब (को०) । १२. वह केतु या पुच्छल तारा जो दिव्य और अंतरिक्ष के परे हो ।

भौमक—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि पर रहनेवाला जीव । प्राणी ।

भौमदिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भौमवार' ।

भौमदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि ।

भौमन—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा [को०] ।

भौमप्रदोप—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदोष व्रत जो मंगलवार को पड़े । वह त्रयोदशी जो मंगलवार के सायंकाल में पड़े । इस प्रदोष का माहात्म्य साधारण प्रदोष की अपेक्षा कुछ विशेष माना जाता है ।

भौमब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं० भौमब्रह्मन्] वेद, ब्राह्मण और यज्ञ [को०] ।

भौमरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा । प्रवाल ।

भौमराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेष और वृष राशियाँ जिनका स्वामी मंगल है ।

भौमवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] भौमासुर (नरकासुर) की स्त्री का नाम ।

भौमवार, भौमवासर—संज्ञा पुं० [सं०] मंगलवार ।

भौमासुर—संज्ञा पुं० [सं०] नरकासुर नाम का असुर । वि० दे० 'नरकासुर' ।

भौमिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमि का अधिकारी या स्वामी । जमींदार । २. बंगालियों में एक जातिविशेष ।

भौमिक²—वि० भूमि संबंधी ।

भौमिकीय—वि० [सं० भौतिक] भूमि संबंधी । भूमि का ।

भौमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी की कन्या । सीता ।

भौमूती‡—वि०, स्त्री० [सं० भयवती या देश०] भयभीत । भययुक्त । उ०—धन भौमूती भुइ पड़ी ।—बी० रासो०, पृ० ६१ ।

भौम्य—वि० [सं०] भूमि संबंधी । पृथ्वी पर का । भौमिक [को०] ।

भौर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] १. दे० 'भौंरा' । २. घोड़ों का एक भेद । दे० 'भौंर' । ३. दे० 'भँवर' ।

भौरिक—संज्ञा पुं० [सं०] कोषाध्यक्ष [को०] ।

भौरिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] टकसाल जहाँ सिक्के ढाले जाते हैं [को०] ।

भौरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] उपलों पर सेंकी गई छोटी छोटी गोल लिट्टी । टिक्कड़ । उ०—भूखे देवौ भौरियाँ सबै गुरू गोबिंद । —संतवाणी०, पृ० १३६ ।

भौलिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] बजरे की तरह की पर उससे कुछ छोटी एक प्रकार की नाव जो ऊपर से ढकी रहती है ।

भौली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राग [को०] ।

भौवन—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा का एक नाम। दे० 'भौमन' [को०]।

भौसा—संज्ञा पुं० [देश०] १. भीड़भाड़। जनसमूह। २. हो हुल्लड़। गड़बड़।

भौहरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू: ?] दे० 'भौंह'। उ०—आखड़ियाँ रतनालियाँ, भोहरा जाणे भ्रमर भमाय।—बी० रासो, पृ० ६६।

भ्यन्न‡(पु)—वि० [सं० भिन्न] अलग अलग। भिन्न भिन्न। उ०—कहि सनकादिक इद्र सम किम लिय पाथर तन्न। कहै इंद्र सनकादि सो सुनौ कहौ करि भ्यन्न।—पृ० रा०, २।११०।

भ्यान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० विभान या हिं० बिहान] दे० 'बिहान'। उ०—ज्यौं पपी की प्यास पीव रात भर रटी। भरी स्वाति विना बुंद भोर भ्यान पौ फटी।—तुरसी० श०, पृ० ५।

भ्रंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्ग] भृंग। भ्रमर। उ०—मृगमद जवाद सब चरचि अंग। कसमीर अगर सुर रहिय भ्रंग। सुभ कुसुम हार सब कंठ मेलि। इम चलिय वलिय चहुआन खेलि।—पृ० रा०, ६।११२।

भ्रंगारी—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गार] झींगुर। (डिं०)।

भ्रंगी—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गी] एक प्रकार का गुंजार करनेवाला पतिंगा।

भ्रंश, भ्रंस[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधःपतन। नीचे गिरना। २. नाश। ध्वंस। ३. भागना। ४. त्याग। छोड़ना।

भ्रंश, भ्रंस[२]—वि० भ्रष्ट। खराब।

भ्रंशन, भ्रंसन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे गिरना। पतन। २. भ्रष्ट होना।

भ्रंशन, भ्रंसन[२]—वि० [सं०] नीचे गिरनेवाला।

भ्रंशित—वि० [सं०] १. नीचे गिराया या फेंका हुआ। २. च्युत। वंचित।

भ्रंशी—वि० [सं० भ्रंशिन्] १. गिरने, पतित होने या भ्रष्ट होनेवाला। २. कम होने या छीजनेवाला। ३. भटकनेवाला। ४. बरबाद करनेवाला।

भ्रकुंश, भ्रकुंस—संज्ञा पुं० [सं०] वह नाचनेवाला पुरुष जो स्त्री का वेष धरकर नाचता हो।

भ्रकुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भृकुटी। भौंह।

भ्रज्जन—संज्ञा पुं० [सं० भ्रज्ज] तलना, पकाना या भूनना [को०]।

भ्रत(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० भृत्य] दास। सेवक (डिं०)। उ०—आगल नृपती वात उचारी, समै पाय निज भ्रत सु विचारी।—रा० रू०, पृ० ३२५।

भ्रत(पु)[२]—संज्ञा पुं० [सं० भ्राता] भ्राता। भाई।

भ्रत्तार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भर्तार] पति। खाविंद। स्वामी।

भ्रद्र—संज्ञा पुं० [सं० भद्र; डिं०] हाथी। दे० 'भद्र'।

भ्रभग—संज्ञा पुं० [सं० भ्रभङ्ग] 'भ्रूभंग' [को०]।

भ्रमंत—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमन्त] गृह। मकान। छोटा घर [को०]।

भ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ को और का और समझना। किसी चीज या बात को कुछ का कुछ समझना। मिथ्या ज्ञान। भ्रांति। धोखा। २. संशय। संदेह। शक।

क्रि० प्र०—में डालना।—में पड़ना।—होना।

३. एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी का शरीर चलने के समय चक्कर खाता है और वह प्रायः जमीन पर पड़ा रहता है। यह रोग मूर्छा के अंतर्गत माना जाता है। ४. मूर्छा। बेहोशी। उ०—भ्रम होइ ताहि जा क्रूर चीत।—पृ० रा०, ६।८८। ५. नल। पनाला। ६. कुम्हार का चाक। ७. भ्रमण। घूमना। फिरना। ८. वह पदार्थ जो चक्राकार घूमता हो। चारों ओर घूमनेवाली चीज। ९. अंबुनिर्गम। स्रोत (को०)। १०. कुंद नाम का एक यंत्र। शाण। खराद (को०)। ११. मार्कंडेय पुराण के अनुसार योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी सब प्रकार के आचार आदि का परित्याग कर देता है और उसका मन निरवलंब की भाँति इधर उधर भटकता रहता है। १२. चक्की (को०)। १३. छाता (को०)। १४. घेरा। परिधि (को०)।

भ्रम[२]—वि० १. घूमनेवाला। चक्कर काटनेवाला। २. भ्रमण-करनेवाला। चलनेवाला।

भ्रम[३]—संज्ञा पुं० [सं० सम्भ्रम] मान प्रतिष्ठा। इज्जत। उ०—जस अति संकट पंडवन्ह भएउ भीव बँदि छोर। तस परबस पिउ काढ़हु राखि लेहु भ्रम मोर।—जायसी (शब्द०)।

भ्रमकारी—वि० [सं० भ्रमकारिन्] भ्रम उत्पन्न करनेवाला। शक में डालनेवाला।

भ्रमजार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमजाल] भ्रम का फंदा।

भ्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. घूमना फिरना। विचरण। २. आना जाना। ३. यात्रा। सफर। ४. मंडल। चक्कर। फेरी।

भ्रमणकारी—वि० [सं० भ्रमणकारिन्] घूमनेवाला। घुमक्कड़।

भ्रमणविलसित—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त।

भ्रमणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सैर या मनोविनोद के लिये चलना। घूमना फिरना। २. जोंक। ३. एक प्रकार की क्रीड़ा (को०)। ४. पाँच धारणाओं में से एक का नाम (को०)।

भ्रमणीय—वि० [सं०] १. घूमनेवाला। २. चलने फिरनेवाला। ३. भ्रमण के योग्य।

भ्रमत्—वि० [सं०] घूमनेवाला। घुमंतू [को०]।

भ्रमत्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिनकों और बाँस आदि की खपाचियों से बना हुआ छाता।

भ्रमना(पु)[१]—क्रि० अ० [सं० भ्रमण] घूमना फिरना।

भ्रमना[२]—क्रि० अ० [सं० भ्रम] १. धोखा खाना। भूल करना। उ०—कहा देखि कै तुम भ्रुरि गए।—सूर (शब्द०)। २. भटकना। भूलना।

भ्रमना(पु)†²—संज्ञा स्त्री० [देश०] भावना। आवागमन की स्थिति का बोध। झूठी ममता। उ०—दरस परस के करत जगत की भ्रमना भागी।—पलटू० बानी, पृ० २८।

भ्रमनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भ्रमण'।

भ्रममूलक—वि० [सं०] जो भ्रम के कारण उत्पन्न हुआ हो। जिसका आविर्भाव भ्रम के कारण हुआ हो। जैसे,—आपका यह विचार भ्रममूलक है।

भ्रमर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भौंरा। वि० दे० 'भौंरा'।

यौ०—भ्रमरगुफा = योगशास्त्र के अनुसार हृदय के अंदर का एक स्थान। उ०—केवल सकल देह का साखी भ्रमरगुफा अटकाना।—कबीर (शब्द०)।

२. उद्धव का एक नाम।

यौ०—भ्रमरगीत = वह गीत या काव्य जिसमें भ्रमर को संबोधित करते हुए उद्धव के प्रति व्रज की गोपियों का उपालंभ हो।

३. दोहे का पहला भेद जिसमें २२ गुरु और ४ लघु वर्ण होते हैं। उ०—सीता सीतानाथ को गावों आठो जाम। इच्छा पूरी जो करै औ देवै विश्राम।—(शब्द०) ४. कुलाल चक्र। चाक (को०)। ५. छप्पय का तिरसठवाँ भेद जिसमें ८ गुरु, १३६ लघु, १४४ वर्ण या कुल १५२ मात्राएँ होती हैं। ६. सिरा (को०)।

भ्रमर²—वि० कामुक। विषयी।

भ्रमरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. माथे पर लटकनेवाले बाल। २. चाक। कुलाल चक्र (को०)। ३. क्रीड़ा का कंदुक (को०)। ४. घूमनेवाला लट्टू या फिरकी (को०)।

भ्रमरकरंडक—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमरकरण्डक] मधुमक्खियों का डब्बा।

विशेष—चोरी करने के लिये घर मे घुसा हुआ चोर जलते हुए दीप को बुझाने के लिये इसे खोल देता था। दशकुमारचरित, मृच्छकटिक आदि मे इसका वर्णन है।

भ्रमरकीट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की भिड़।

भ्रमरच्छली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली वृक्ष।

विशेष—इस वृक्ष के पत्ते बादाम के पत्तों के समान होते हैं जिसमें बहुत पतली पतली फलियाँ लगती हैं। इसकी लकड़ी सफेद रंग की और बहुत बढ़िया होती है और प्रायः तलवार के म्यान बनाने के काम मे आती है। वैद्यक में यह चरपरी, गरम, कड़वी, रुचिकारक, अग्निदीपक और सर्वदोष-नाशक मानी जाती है।

पर्या०—भृंगाह्वा। भ्रमराह्वा। चीरद्र। भृंगमूलिका। उग्रगंधा। छल्ली।

भ्रमरनिकर—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमरों का समूह [को०]।

भ्रमरपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त।

भ्रमरप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कदंब। धारा कदंब [को०]।

भ्रमरबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमरों द्वारा बाधा या छेड़छाड़। मधुमक्खियों द्वारा उत्पीड़न

भ्रमरमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा जो मालवा में अधिकता से होता है।

विशेष—इसमे सुंदर और सुगंधित फूल लगते हैं। वैद्यक मे यह तिक्त और पित्त, श्लेष्म, ज्वर, कुष्ठ, व्रण, तथा त्रिदोष का नाश करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—भ्रमरादि। भृंगादि। मासपुष्पिका। कुष्टारि। भ्रमरी। यष्टिलता।

भ्रमरविलसित—संज्ञा पुं० [सं०] १. भौंरों या मधुमक्खियों की क्रीड़ा। २. एक वृत्त। दे० 'भ्रमरविलसिता।'

भ्रमरविलसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में म भ न ल ग ऽऽऽ, ऽ।।, ।।।, ।, ऽ होता है उ०—मैं भोने लोगन नहिं डरिहौं। माधो को दै मन नहिं फिरिहौं। फूले वल्ली भ्रमर विलसिता। पावै शोभा अलि सह मुदिता।

भ्रमरहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के चौदह प्रकार के हस्तविन्यासों में से एक प्रकार का हस्तविन्यास।

भ्रमरा—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमरच्छली नामक पौधा।

भ्रमरातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] चंपा का वृक्ष।

भ्रमरानंद—वि० [सं० भ्रमरानन्द] १. बकुल वृक्ष। २. एक लता जिसको अतिमुक्ता कहते हैं (को०)।

भ्रमरारि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भ्रमरमारी' (को०)।

भ्रमरालक—संज्ञा पुं० [सं०] ललाट पर लटकते हुए घुँघराले बाल। भ्रमरक (को०)।

भ्रमरावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भँवरों की श्रेणी। २. एक वृत्त का नाम जिसे नलिनी या मनहरण भी कहते हैं। इसके प्रत्येक पाद मे पाँच सगण होते हैं। जैसे,—ससि सों सु सखी रघुनंदन को बदना। लखिकै पुरकी मिथिलापुर की ललना। तिनके सुख मे दिन फूल रहीं दस हूँ। पुर में नलिनी बिकसी जनु ओर चहूँ।—जगन्नाथ (शब्द०)।

भ्रमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों तरफ चक्कर काटना या घूमना।

यौ०—भ्रमरिकादृष्टि = चंचल दृष्टि।

भ्रमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जतुका नामक लता। पुत्रदात्री। षट्पदी। २. मिरगी रोग। ३. पार्वती। ४. भौंरे की मादा। भौंरी।

भ्रमरेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्योनाक।

भ्रमरेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भुँइ जामुन। २. भारंगी।

भ्रमवात—संज्ञा पुं० [सं० भ्रमवात्] आकाश का वह वायुमंडल जो सर्वदा घूमा करता है। उ०—सुखिगे गात चले नभ जात परे भ्रमवात न भूतल आए।—तुलसी (शब्द०)।

भ्रमशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमसंशोधन।

भ्रमसंशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] भूल सुधार।

भ्रमात्मक—वि० [सं०] जिससे अथवा जिसके संबंध मे भ्रम उत्पन्न होता हो । संदिग्ध ।

भ्रमाना †—क्रि० स० [हिं० भ्रमना का सक०] १. घुमाना । फिराना । २. धोखे मे डालना । भटकाना ।

भ्रमासक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अस्त्र शस्त्र आदि साफ करता हो ।

भ्रमि¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमिन्] दे० 'भ्रमी'' ।

भ्रमित—वि० [सं०] १. जिसे भ्रम हुआ हो । शंकित । २ घूमता हुआ । ३. चक्कर खाया या घुमाया हुआ ।

भ्रमितनेत्र—वि० [सं०] ऐंचाताना ।

भ्रमी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमि.] १. घूमना फिरना । भ्रमण । २. चक्कर लगाना । फेरी देना । ३. सेना की वह रचना जिसमे सैनिक मंडल बाँधकर खड़े होते है । ४. तेज बहते हुए पानी में का भौंर । नाँद । ५. कुम्हार का चाक । ६ मूर्छा (को०) । ७. बवंडर (को०) । ८. खराद की मशीन (को०) । ९. भ्रम । त्रुटि (को०) ।

भ्रमी²—वि० [सं० भ्रमिन्] १. जिसे भ्रम हुआ हो । २. चकित । भौचक । उ०—किधौ वेदविद्या भ्रमाई भ्रमी सी ।—केशव (शब्द०) । ३. चक्कर खाता या घूमता हुआ (को०) ।

भ्रशिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रशिमन्] चंडता । उग्रता । तीव्रता । [को०] ।

भ्रष्ट—वि० [सं०] १. नीचे गिरा हुआ । पतित । २ जो खराब हो गया हो । जो अच्छी दशा में या काम का न रह गया हो । बहुत बिगड़ा हुआ । ३. जिसमें कोई दोष आ गया हो । दूषित । ४. जिसका आचरण खराब हो गया हो । बुरी चाल चलनेवाला । बदचलन । दुराचारी । ५. च्युत । जैसे, जातिभ्रष्ट ।

यौ०—भ्रष्टक्रिय । भ्रष्टगुद = गुदा का एक रोग । भ्रष्टनिद्र=निद्रा से वंचित । भ्रष्टमार्ग = मार्गच्युत । राह भूला हुआ । भ्रष्टयोग = स्वधर्म से च्युत । उपासना आदि से च्युत । भ्रष्टश्री ।

भ्रष्टक्रिय—वि० [सं०] जिसने विहित कर्म छोड़ दिया हो [को०] ।

भ्रष्टश्री—वि० [सं०] भाग्यहीन ।

भ्रष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुंश्चली । कुलटा । छिनाल ।

भ्रष्टाचार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह आचरण जो उचित न हो । २. नोच खसोट, छीना झपटी, बलप्रयोग । उत्कोच आदि दुर्गुणों से भरा हुआ आचरण । उ०—हमें पुनः सहकारी कर्मचारियो एवं जनता के मन मे भय पैदा करना होगा क्योंकि भय न होने से ही भ्रष्टाचार बढ़ रहा है ।

भ्रष्टाचार²—वि० दूषित आचरणवाला । बेईमान ।

भ्रष्टाधिकार—वि० [सं०] अधिकार या पद से च्युत [को०] ।

भ्रांत¹—संज्ञा पुं० [सं० भ्रान्त] १. तलवार के ३२ हाथो में से एक । तलवार को गोलाकार घुमाना जिसके द्वारा दूसरे के चलाए हुए शस्त्र को व्यर्थ किया जाता है । २. राजधतूरा । ३. मस्त हाथी । ४. घूमना फिरना । भ्रमण । ५. भूल । त्रुटि (को०) ।

भ्रांत²—वि० १. जिसे भ्रांति या भ्रम हुआ हो । धोखे मे आया हुआ । भूला हुआ । २. व्याकुल । घबराया हुआ । हक्का बक्का । ३. उन्मत्त । ४. घुमाया हुआ । चक्कर खाता हुआ । ५. त्रुटियुक्त ।

भ्रांतापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रान्तापह्नुति] एक काव्यालंकार जिसमे किसी भ्रांति को दूर करने के लिये सत्य वस्तु का वर्णन होता है ।

भ्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रान्ति] १. भ्रम । धोखा । २. संदेह । संशय । शक । ३. भ्रमण । ४. पागलपन । ५. भँवरी । घुमेर । ६. भूलचूक । ७. मोह । प्रमाद । ८. एक प्रकार का काव्यालंकार । इसमे किसी वस्तु को, दूसरी वस्तु के साथ उसकी समानता देखकर, भ्रम से वह दूसरी वस्तु ही समझ लेना वर्णित होता है । जैसे,—अटारी पर नायिका को देखकर कहना—हैं ! यह चद्रमा कहाँ से निकल आया !

भ्रांतिमान्¹—वि० [सं० भ्रान्तिमत्] भ्रमयुक्त । चक्कर खाता हुआ ।

भ्रांतिमान्²—संज्ञा पुं० भ्रांतिमान् नामक अलंकार ।

भ्राज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम जो गवामयन सत्र में विषुव नामक प्रधान दिन गाया जाता था । २. सात सूर्यों मे से एक का नाम (को०) ।

भ्राजक¹—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार त्वचा में रहनेवाला पित्त । शरीर मे जो कुछ तेल आदि मला जाता है उसका परिपाक इसी पित्त के द्वारा होना माना जाता है ।

भ्राजक²—वि० [वि०स्त्री० भ्राजिका] दीप्त करनेवाला । चमकानेवाला । शोभादायक [को०] ।

भ्राजथु—संज्ञा पुं० [सं०] दीप्ति । प्रभा । चमक । सौंदर्य [को०] ।

भ्राजन—संज्ञा पुं० [सं०] दीपन । चमकाना । दीप्त करना [को०] ।

भ्राजना—क्रि० अ० [सं० भ्राजन (=दीपन)] १. शोभा पाना । शोभायमान होना । उ०—(क) उर आयत भ्राजत विविध बाल विभूषन चीर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) केकी पच्छ मुकुट सिर भ्राजत । गौरी राग मिले सुर गावत ।—सूर (शब्द०) । २. चमकना ।

भ्राजमान—वि० [हिं० भ्राजना+मान (प्रत्य०)] शोभायमान ।

भ्राजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीप्ति । द्युति । ज्योति । चमक [को०] ।

भ्राजिर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भौत्य मन्वंतर के एक प्रकार के देवता ।

भ्राजिष्णु¹—वि० [सं०] दीप्त होने या चमकनेवाला ।

भ्राजिष्णु²—संज्ञा पुं० १. शिव । २. विष्णु [को०] ।

भ्राजी—वि० [सं० भ्राजिन्] प्रकाशित । द्योतित । चमकनेवाला । दीप्तियुक्त ।

भ्रात—संज्ञा पुं० [सं० भ्राता] दे० 'भ्राता' । उ०—प्रेमपूर्वक भेटते थे भ्रात ।—साकेत, पृ० १७० ।

भ्राता—संज्ञा पुं० [सं० भ्रातृ] १. सगा भाई । सहोदर । २. सन्निकट संबंधी (को०) । ३. घनिष्ठ मित्र (को०) ।

भ्रातुष्पुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] भतीजा । भ्रातृपुत्र [को०] ।

भ्रातुष्पुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] भतीजी । भ्रातृपुत्री [को०] ।

भ्रातृक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह धन आदि जो भाई से मिला हो । २. वह वस्तु जो भाई की हो ।

भ्रातृगंधि, भ्रातृगंधिक—वि० [सं० भ्रातृगन्धि, भ्रातृगन्धिक] भाई का नाम मात्र रखनेवाला । नाम का भाई [को०] ।

भ्रातृज—संज्ञा स्त्री० [सं०] [स्त्री० भ्रातृजा] भाई का लड़का । भतीजा ।

भ्रातृजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाई की पुत्री । भतीजी ।

भ्रातृजाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाई की स्त्री । भौजाई । भाभी ।

भ्रातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] भाई होने का भाव या धर्म । भाईपन ।

भ्रातृदत्त[1]—वि० [सं०] भ्राता द्वारा प्राप्त या मिला हुआ ।

भ्रातृदत्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि के अवसर पर भाई से बहन को मिली हुई कोई वस्तु ।

भ्रातृद्वितीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल द्वितीया । यम द्वितीया । भाई दूज ।

विशेष—इस दिन यम और चित्रगुप्त का पूजन किया जाता है, बहनों से तिलक लगवाया जाता है, इन्हीं के दिए हुए पदार्थ खाए जाते हैं और उन्हें कुछ द्रव्य दिया जाता है ।

भ्रातृपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] भाई का लड़का । भतीजा ।

भ्रातृपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाई की पुत्री । भतीजी ।

भ्रातृभाव—संज्ञा पुं० [सं०] भाई का सा प्रेम या संबंध । भाईचारा । भाईपन । उ०—भ्रातृभाव का उल्लास प्रखर ।—अपरा पृ० २१५ ।

भ्रातृवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] भौजाई । भ्रातृजाया । भाभी । भावज ।

भ्रातृव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाई का लड़का । भतीजा । २. शत्रु । विरोधी । दुश्मन (को०) ।

भ्रातृश्वसुर—संज्ञा पुं० [सं०] पति का बड़ा भाई । जेठ । भसुर ।

भ्रात्र—संज्ञा पुं० [सं०] भाई ।

भ्रात्रीय[1]—वि० [सं०] भ्राता संबंधी । भ्राता का ।

भ्रात्रीय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] भतीजा [को०] ।

भ्रात्रेय—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भ्रात्रीय' ।

भ्रात्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] भाईपन । भायप । भ्रातृस्नेह ।

भ्रादिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक श्रुति का नाम [को०] ।

भ्राम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो भ्रमयुक्त हो । २. भूल । धोखा । ३. वह जो चारो ओर घूमता हो [को०] ।

भ्रामक[1]—वि० [सं०] १. भ्रम में डालनेवाला । बहकानेवाला । धोखे में डालनेवाला । २. संदेह उत्पन्न करनेवाला । ३. घुमानेवाला । चक्कर दिलानेवाला । ४ धूर्त । चालबाज ।

भ्रामक[2]—संज्ञा पुं० १. गीदड़ । सियार । २. चुंबक पत्थर । ३. कांति लोहा । ४. सूर्यमुखी का फूल (को०) । ५. धोखा । छल । चालबाजी (को०) ।

भ्रामण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चारों ओर घूमता, हिलता या झूलता हो । दोलायमान [को०] ।

भ्रामर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भ्रमर से उत्पन्न, मधु । शहद । २. दोहे का दूसरा भेद । इसमें २१ गुरु और ६ लघु मात्राएँ होती हैं । जैसे,—माधो मेरे ही बसो राखो मेरी लाज । कामी क्रोधी लंपटी जानि न छाँड़ो काज । ३. वह नृत्य जिसमें बहुत से लोग मंडल बनाकर नाचते हैं । रास । ४. चुंबक पत्थर । ५. अपस्मार रोग । ६. ग्राम । गाँव (को०) । ७. एक रतिबंध । रति का एक प्रकार (को०) ।

भ्रामर[2]—वि० भ्रमर संबंधी । भ्रमर का ।

भ्रामरी[1]—संज्ञा पुं० [भ्रामरीन्] १. जिसे भ्रामर या अपस्मार रोग हुआ हो । २. मधु से निर्मित (को०) ।

भ्रामरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती । २. पुत्रदात्री नाम की लता । ३. प्रदक्षिणा (को०) ।

भ्रामिक—वि० [सं०] दे० 'भ्रामक' । उ०—स्वार्थ के भ्रामिक पथ पर ।—चंद०, पृ० ८२ ।

भ्रामित—वि० [सं०] घुमाया या नचाया हुआ । (नेत्रादि) ।

भ्रामी—वि० [सं० भ्रामिन्] व्यग्र । उद्विग्न । व्याकुल [को०] ।

भ्राष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. प्रकाश । दीप्ति (को०) । ३. वह बरतन जिसमें भड़भूजे अनाज रखकर भूनते हैं ।

भ्राष्ट्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भ्राष्ट्र'—३ ।

भ्राष्ट्रकि—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

भ्राष्ट्रमिंध—वि० [सं० भ्राष्ट्रमिन्ध] भूननेवाला । जो भूनता हो ।

भ्रास्त्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की एक नाड़ी का नाम ।

भ्रित, भ्रित्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भृत्य] दे० 'भृत्य' । उ०—बोलि भ्रित्त अप्पान, कहिय सुबान मत्त गुन ।—पृ० रा०, १।६१८ ।

भ्रित्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० भृत्य] दे० 'भृत्य' । उ०—तहाँ सदा सनमुख रहै आगै हाथ जोडें भ्रित्य ही ।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० २७ ।

भ्रुकुंश, भ्रुकुंस—संज्ञा पुं० [सं०] वह नट जो स्त्री का वेष धारण करके नाचता हो ।

भ्रुकुटि, भ्रुकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भृकुटी' ।

भ्रुकुटिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

भ्रुव—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] भौंह । भृकुटी । भ्रू । उ०—ललित हास मुख सुख प्रकास कुंडल, उजास दृग भ्रुव विलास ।—घनानंद, पृ० ४२५ ।

भ्रू—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों के ऊपर के बाल । भौं । भौंह ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—मटकाना ।—हिलाना ।

यौ०—भ्रूकुटि=भ्रूभंग । भ्रूकुटिमुख=एक साँप । भ्रूक्षेप, भ्रूविक्षेप=भ्रूभंग । भौं टेढ़ी करना । भ्रूजाह=भौं का मूल ।

भ्रूण—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्री का गर्भ । २. बालक की उस समय की अवस्था जब वह गर्भ में रहता है । बालक की जन्म लेने से पहले की अवस्था ।

भ्रूणघ्न—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] गर्भस्थ शिशु की वा भ्रूण की हत्या करनेवाला ।

भ्रूणहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भ गिराकर या और किसी प्रकार गर्भ मे आए हुए बालक की हत्या । गर्भ के बालक की हत्या ।

भ्रूणहा—संज्ञा पुं० [सं० भ्रूणहन्] वह जिसने भ्रूणहत्या की हो ।

भ्रूनिक्षेप—वि० [सं०] कटाक्ष । भौंहों का चलाना । उ०—किसके भ्रूनिक्षेप पर मतवाले बनें ।—सुनीता, पृ० २४६ ।

भ्रूप्रकाश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का काला रंग जिससे शृंगार आदि के लिये भौंह बनाते हैं ।

भ्रूपात—संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष । भौंहों का गिराना । उ०—वे दिन बीते जब मैं भी था अभिमानी, भ्रूपातों मे उठता था आँधी पानी ।—प्रेम०, पृ०७३ ।

भ्रूभंग—संज्ञा पुं० [सं० भ्रूभङ्ग] क्रोध आदि प्रकट करने के लिये भौंह चढ़ाना । उ०—ब्रह्म रुद्र उर डरत काल के काल डरत भ्रूभंग की आँची ।—सूर (शब्द०) ।

भ्रूभेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भ्रूभंग' ।

भ्रूभेदी—वि० [सं० भ्रूभेदिन्] भौंह चढ़ानेवाला । त्योरी चढ़ानेवाला ।

भ्रूमंडल—संज्ञा पुं० [सं० भ्रूमण्डल] १. भौंहों का घेरा । मेहराबदार भौंह । भौंहों का झुकाव या टेढ़ापन ।

भ्रूमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] दोनों भौंहों के बीच का स्थान ।

भ्रूलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भौंहरूपी लता । भौंह जो लता के समान घुमावदार हो ।

भ्रूविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] त्योरी बदलना । नाराजगी दिखाना । भ्रूभंग ।

भ्रूविकार—संज्ञा स्त्री० [सं०] भौंहों का टेढ़ा होना । भ्रूभंग [को०] ।

भ्रूविक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्योरी बदलना । भ्रूभंग ।

भ्रूविजृंभ, विजृंभण—संज्ञा पुं० [सं० भ्रूविजृम्भ, भ्रूविजृम्भण] भौंहों का झुकाव । भौंहों का नीचा होना ।

भ्रूविलास—संज्ञा पुं० [सं०] भौंहों का मोहक संचालन । कटाक्ष । उ०—इस लिये खिंचे फिर नहीं कभी, पाया निजपुर, जन जन के जीवन मे सहास, हैं नहीं जहाँ वैशिष्टय धर्म का भ्रूविलास ।—अनामिका, पृ० २० ।

भ्रेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश । २. चलना । गमन । ३. भय । डर ।

भ्रौणहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भ्रूणहत्या' ।

भ्वहरना(पु)‡—क्रि० अ० [हिं० भय+हरना (प्रत्य०)] भयभीत होना । डरना ।

भ्वासर‡—वि० [देश०] बेवकूफ । मूर्ख ।

म

म—हिंदी वर्णमाला का पचीसवाँ व्यंजन और प वर्ग का अंतिम वर्ण । इसका उच्चारण स्थान होठ और नासिका है । जिह्वा के अगले भाग का दोनों होठों से स्पर्श होने पर इसका उच्चारण होता है । यह स्पर्श और अनुनासिक वर्ण है । इसके उच्चारण में संवार, नादघोष और अल्पप्राण प्रयत्न लगते हैं । प, फ, ब और भ इसके सवर्ण हैं ।

मंकणक—संज्ञा पुं० [सं० मङ्कणक] १. एक ऋषि का नाम । २. महाभारत के अनुसार एक यक्ष का नाम ।

मंकिल—संज्ञा पुं० [सं० मङ्किल] दावाग्नि । जंगल की आग । वनाग्नि [को०] ।

मंकु—संज्ञा पुं० [सं० मङ्कु] व्रण । घाव [को०] ।

मंकुक—संज्ञा पुं० [सं० मङ्कुक] एक वाद्य यंत्र [को०] ।

मंकुर—संज्ञा पुं० [सं० मङ्कुर] दर्पण । शीशा । आईना ।

मंकुश—संज्ञा पुं० [सं० मङ्कुश] संगीत और नृत्य दोनों का ज्ञाता । नृत्य और गीत का जानकार । [को०] ।

मंक्ता—वि० [सं० मङ्क्तृ] गोताखोर [को०] ।

मंक्षण—संज्ञा पुं० [मङ्क्षण] जंघत्राण । जाँघ पर बाँधने का कवच [को०] ।

मंक्षु—क्रि० वि० [सं० मङ्क्षु] तुरंत । जल्दी से । सत्वर । २. अत्यधिक । ३. वास्तव में । वस्तुतः । यथार्थतः (को०) ।

मंख—संज्ञा पुं० [सं० मङ्ख] १. भाट । बंदीजन । २. दवादारू । ३. एक विशेष औषध । ३. एक कोशकार का नाम [को०] ।

मंखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बच्चों के कंठ में पहनाने का एक गहना ।

मंग[१]—संज्ञा पुं० [सं० मङ्ग] १. नाव का अगला भाग । गलही । २. नाव या जहाज का पार्श्व (को०) ।

मंग[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० माँग] दे० 'माँग' । उ०—कुसुम फूल जस मरदै निरँग देख सब अंग । चंपावति भइ बारी चूम केस औ मंग ।—जायसी (शब्द०) ।

मंग[३]—संज्ञा पुं० [देश०] आठ की संख्या । (दलाल) ।

मंगत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० माँगना] दे० 'मँगता' । उ०—मंगत जन परिपुरन भए । दारिदहू के दारिद गए ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३५ ।

मगता—संज्ञा पुं० [हिं० माँगना+ता (प्रत्य०)] भिखमंगा । भिक्षुक ।

मंगन—संज्ञा पुं० [हिं० माँगना] भिखमंगा । भिक्षुक । उ०—मँगन बहु प्रकार पहिराए । द्विजन दान नाना विधि पाए ।—मानस, ७ । १५ ।

मंगनहार ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० मंगन + हार (प्रत्य०)] भिखमंगा। भिक्षुक। उ०—कवि गंग के अंगन मंगनहार दिना दस ते नित नृत्य करैं।—अकबरी०, पृ० १२३।

मंगर¹—संज्ञा पुं० [सं० मकर] दे० 'मगर'। उ०—जल बिच आस लगाइ कै, मगर तन पाई।—धरनी० श०, पृ० १०।

मंगल—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गल] १. अभीष्ट की सिद्धि। मनोकामना का पूर्ण होना। २. कल्याण। कुशल। भलाई। जैसे,—आपका मंगल हो। ३. सौर जगत् का एक प्रसिद्ध ग्रह जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता है। भौम।

विशेष—यह ग्रह पृथ्वी के उपरांत पहले पहल पड़ता है और सूर्य से १४, १५, ००, ००० मील दूर है। यह हमारी पृथ्वी से बहुत ही छोटा और चंद्रमा से प्रायः दूना है। इसका वर्ष अथवा सूर्य की एक बार परिक्रमा करने का काल हमारे ६८७ दिनों का होता है और इसका दिन हमारे दिन की अपेक्षा प्रायः आध घंटा बड़ा होता है। इसके साथ दो उपग्रह या चंद्रमा हैं जिनमें से एक प्रायः आठ घंटे में और दूसरा प्रायः ३० घंटे में इसकी परिक्रमा करता है। इसका रंग गहरा लाल है। अनुमान किया जाता है कि इस ग्रह में स्थल और नहरें आदि की बहुत अधिकता है और यहाँ की जलवायु हमारी पृथ्वी के जलवायु के बहुत कुछ समान है। पुराणानुसार यह ग्रह पुरुष, क्षत्रिय, सामवेदी, भरद्वाज मुनि का पुत्र, चतुर्भुज, चारों भुजाओं में शक्ति, वर, अभय तथा गदा का धारण करनेवाला, पित्तप्रकृति, युवा, क्रूर, वनचारी, गेरू आदि धातुओं तथा लाल रंग के समस्त पदार्थों का स्वामी और कुछ अंगहीन माना जाता है। इसके अधिष्ठाता देवता कार्तिकेय कहे गए हैं और यह अवंति देश का अधिपति बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि एक बार पृथ्वी विष्णु भगवान् पर आसक्त होकर युवती का रूप धारण करके उनके पास गई थी। जब विष्णु उसका शृंगार करने लगे, तब वह मूर्छित हो गई। उसी दशा में विष्णु ने उससे संभोग किया, जिससे मंगल की उत्पत्ति हुई। पद्मपुराण में लिखा है कि एक बार विष्णु का पसीना पृथ्वी पर गिरा था जिससे मंगल की उत्पत्ति हुई। मत्स्यपुराण में लिखा है कि दक्ष का नाश करने के लिये महादेव ने जिस वीरभद्र को उत्पन्न किया था, वही वीरभद्र पीछे से मंगल हुआ। इसी प्रकार भिन्न भिन्न पुराणों में इसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ दी हुई हैं।

पर्या०—अंगारक। धरासुत। भौम। कुज। कुमार। वक्र। महीसुत। लोहितांग। ऋणांतक। आवनेय।

४. एक वार जो इस ग्रह के नाम से प्रसिद्ध है। मंगलवार। ५. विष्णु। ६. सौभाग्य। ७. अग्नि का नाम (को०)।

मंगल²—वि० १. शुभद। कल्याणकारी। २. संपन्न। धनधान्यादि से युक्त। ३. शुभ लक्षणों से युक्त। अच्छे लक्षणवाला। ४. बहादुर। वीर (को०)।

मंगलकरण—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलकरण] दे० 'मंगलकर्म'।

मंगलकरन ⓤ—वि० [सं० मङ्गल + हिं० करन] [वि० स्त्री० मंगलकरनि, मंगलकरनी] शुभद। कल्याण देनेवाला। उ०—मंगलकरनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।—मानस, १।१०।

मंगलकर्म—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलकर्मन्] पूजन एवं प्रार्थना आदि जो किसी कार्य की सफलता के लिये शुरू में की जाय (को०)।

मंगलकलश—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलकलश] जल से भरा हुआ वह घड़ा या कलश जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर पूजा के लिये रखा जाता है।

मंगलकाम—वि० [सं० मङ्गलकाम] शुभेच्छु। कल्याणकांक्षी। शुभ की कामना करनेवाला (को०)।

मंगलकामना—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलकामना] शुभाकांक्षा। कल्याण की अभिलाषा (को०)।

मंगलकारक—वि० [सं० मङ्गल + कारक] शुभप्रद। कल्याणकर (को०)।

मंगलकारी—वि० [सं० मङ्गलकारिन्] दे० 'मंगलकारक'।

मंगलकार्य—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलकार्य] ब्याह, यज्ञोपवीत, जन्म आदि जैसे शुभकार्य या उत्सव (को०)।

मंगलकाल—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलकाल] शुभ वेला या शुभ घड़ी (को०)।

मंगलक्षौम—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलक्षौम] रेशमी वस्त्र जो शुभ अवसरों पर पहना जाता है (को०)।

मंगलगान—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलगायनम्] शुभ अवसरों पर होनेवाला गान। उ०—मंगलगान करहिं बर भामिनि। भइ सुखमूल मनोहर जामिनि।—मानस १।३५५।

मंगलगीत—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलगीत] दे० 'मंगलगान'।

मंगलगृह—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलगृह] पवित्र स्थान। देवस्थान। मंदिर (को०)।

मंगलग्रह—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलग्रह] १. शुभ ग्रह। २. दे० 'मंगल'—३।

मंगलघट—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलघट] दे० 'मंगलकलश'। उ०—परिपूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगलघट।—केशव (शब्द०)।

मंगलचंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलचण्डिका] दुर्गा का नाम।

मंगलचंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलचण्डी] दे० 'मंगलचंडिका'।

मंगलचार ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मंगलाचार'। उ०—हथलेवा करि हरि राधा सों मंगलचार गवाए।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४६।

मंगलच्छाय—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलच्छाय] १. प्लक्ष का वृक्ष (को०)। २. बड़ का पेड़। वट वृक्ष।

मंगलतूर्य—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलतूर्य] शुभ अवसरों पर बजाए जानेवाले तुरही, मृदंग आदि वाद्य (को०)।

मंगलदशा—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलदशा] कल्याण की अवस्था या

मानसिक स्थिति। उ०—तुलसी और सूर ऐसे सगुणोपासक भक्त राम और कृष्ण की सौंदर्यभावना में मग्न होकर ऐसी मंगलदशा का अनुभव कर गए हैं जिसके सामने कैवल्य या मुक्ति की कामना का कहीं पता नहीं लगता।—रस०, पृ० ३१।

मंगलदाय—वि० [सं० मङ्गलदायक] आनंद मंगल देनेवाला। शुभद। उ०—प्रथम दरस तेरो भयो, मोंहि आज ही आय। बिनवति हो तू दूजियो, ऋतु को मंगलदाय।—शकुंतला, पृ० १०५।

मंगलदेवता—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलदेव] इष्ट देवता। शुभकर देवता [को०]।

मंगलद्वार—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलद्वार] मुख्य दरवाजा। प्रधान द्वार [को०]।

मंगलध्वनि—संज्ञा पुं० [मङ्गलध्वनि] मांगलिक अवसर के वाद्य, गीत आदि [को०]।

मंगलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलपत्र] कल्याण के निमित्त पहनने का तावीज [को०]।

मंगलपाठक—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलपाठक] वह जो राजाओं की स्तुति आदि करता हो। वंदीजन।

मंगलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलपुष्प] पूजनादि मंगलकार्यों मे ग्राह्य पुष्प [को०]।

मंगलप्रतिसर—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलप्रतिसर] दे० 'मंगलसूत्र' [को०]।

मंगलप्रद—वि० [सं० मङ्गलप्रद] जिससे मंगल होता हो। मंगल करनेवाला।

मंगलप्रदा—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलप्रदा] १. हरिद्रा। हलदी। २. शमी का वृक्ष।

मंगलप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलप्रस्थ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम

मंगलभेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलभेरी] मांगलिक अवसर पर बजाने की भेरी या वाद्य [को०]।

मंगलमय—वि० [सं० मङ्गलमय] शुभस्वरूप। कल्याणरूप। उ०—मंगलमय कल्यानमय अभिमत फलदातार।—मानस, १।

मंगलमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलमालिका] विवाह के समय गाए जानेवाले गीत [को०]।

मंगलवाद—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलवाद] [वि० मंगलवादी] आशीर्वाद। आशीष।

मंगलवार, मंगलवासर—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलवार, मङ्गलवासर] सात वारों में तीसरा वार जो सोमवार के उपरांत और बुधवार के पहले पड़ता है। भौमवार।

मंगलविधायिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गल+विधायिनी] मंगल का विधान करनेवाली। उ०—यदि बीज भाव की प्रकृति मंगलविधायिनी होती है तो उसकी व्यापकता और निर्विशेषता के अनुसार सारे प्रेरित भाव तीक्ष्ण और कठोर होने पर भी सुंदर होते हैं।—रस०, पृ० ६५।

मंगलविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलविधि] शुभसाधन विषयक कल्याण के लिये किया जानेवाला कृत्य [को०]।

मंगलशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलशक्ति] मंगल या कल्याण करनेवाली शक्ति। उ०—कवि जहाँ मंगलशक्ति की सफलता दिखाता है, वहाँ कला की दृष्टि से सौंदर्य का प्रभाव डालने के लिये।—रस०, पृ० ६१।

मंगलशब्द—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलशब्द] कल्याणकारक शब्द। मंगलकारक शब्द [को०]।

मंगलसूचक—वि० [सं० मङ्गलसूचक] कल्याण या शुभ की सूचना देनेवाला। भाग्योदय का द्योतक [को०]।

मंगलसूत्र—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलसूत्र] १. वह तागा जो किसी देवता के प्रसाद रूप में किसी शुभ अवसर पर कलाई में बाँधा जाता है। २. वह सूत्र या सिकड़ी जो सधवा स्त्रियाँ गले में पहनती हैं। अब इसका अधिकतर महाराष्ट्र में प्रचार है।

मंगलस्नान—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलस्नान] वह स्नान जो मंगल की कामना से अथवा किसी शुभ अवसर पर किया जाता है।

मंगला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गला] १. पार्वती। २. सफेद दूब। ३. पतिव्रता स्त्री। ४. एक प्रकार का करंज। ५. हलदी। ६. नीली दूब।

यौ०—मंगला गौरी = पार्वती की एक मूर्ति। मंगला आरती।

मंगला[2]—वि० [हिं० मंगल (ग्रह)] १. दे० 'मंगली'। २. मंगलवार को उत्पन्न।

मंगलाआरती—संज्ञा स्त्री० [हिं० मंगल+आरती] प्रातःकाल की प्रथम आरती। उ०—ता पाछे सब भए भोग सराय मंगलाआरती किए।—दो सौ बावन०, पृ० ५८।

मंगलागुरु—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गलागुरु] अगर नामक सुगंधिद्रव्य के चार भेदों मे से एक [को०]।

मंगलाचरण—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलाचरण] वह श्लोक या पद आदि जो किसी शुभ कार्य के आरंभ में मंगल की कामना से पढ़ा, लिखा या कहा जाय। मंगलदायक देवस्तुति।

मंगलाचार—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलाचार] मंगलगान। शुभ कार्यों के पहले होनेवाला मांगलिक गायन।

मंगलाभोग—संज्ञा पुं० [हिं०] प्रातःकाल की प्रथम आरती (मंगलाआरती) से पूर्व अर्पण किया जानेवाला भोग। उ०—पाछे मंगलाभोग धरि कै श्री गुसाईं जी सिंघद्वार पर पधारे।—दो सौ बावन०, पृ० २२३।

मंगलामुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गल+मुखी] वेश्या। रंडी।

मंगलायतन—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलायतन] कल्याण का स्थान। शुभदायक स्थान।

मंगलायन—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलायन] १. शुभकर मार्ग। सुख समृद्धि का मार्ग। २. वह जो शुभ मार्ग पर चलता हो।

मंगलारंभ—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलारम्भ] गणेश।

मंगलालय—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलालय] परमेश्वर।

मंगलावह—वि० [सं० मङ्गलावह] शुभद । मंगलदायक [को०] ।

मंगलावास—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलावास] देवमंदिर । देवस्थान ।

मंगलाव्रत—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलाव्रत] १. शिव । २. एक व्रत जो स्त्रियाँ पार्वती के उद्देश्य से करती हैं ।

मंगलाष्टक—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलाष्टक] वर वधू के कल्याणार्थ विवाह के समय पाठ किए जानेवाले मंत्रविशेष [को०] ।

मंगलाह्निक—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलाह्निक] कल्याण के लिये की जानेवाली दैनिक अर्चना या साधना । दैनिक मंगल कृत्य [को०] ।

मंगली—वि० [सं० मङ्गल (ग्रह)] जिसकी जन्मकुंडली के चौथे, आठवें या बारहवें स्थान में मंगलग्रह पड़ा हो । उ०—सबको जो अड़े प्रार्थना भर, नयनों में, पाने का उत्तर अनुकूल, उन्हें कहा निडर मैं हूँ मंगली, मुड़े सुनकर ।—अनामिका पृ० १२४ ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसी स्त्री या पुरुष कई बातों में बुरा और अनुपयुक्त समझा जाता है; और वर या कन्या में से जो मंगली होता है, वह दूसरे पर भारी माना जाता है ।

मंगलीक(पु)—वि० [सं० माङ्गलिक] दे० 'मांगलिक' । उ०—काहू वरवर दीन्ह उतारी । मंगलीक ससि सम सित सारी ।—शकुंतला, पृ० ६९ ।

मंगलीय—वि० [सं० मङ्गलीय] मंगलयुक्त । भाग्यशील । भाग्यप्रद । शुभावह [को०] ।

मंगलेच्छु—वि० [सं० मङ्गलेच्छु] कल्याण या शुभ की कामना करनेवाला । शुभेच्छु ।

मंगलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गलोत्सव] शुभ उत्सव [को०] ।

मंगल्य¹—वि० [सं० मङ्गल्य] १. मंगलकारक । मंगल या कल्याण करनेवाला । २. सुंदर । ३. पवित्र । पूत । शुद्ध । ४. साधु ।

मंगल्य²—संज्ञा पुं० १. त्रायमाण लता । २. अश्वत्थ । ३. बेल । ४. मयूर । ५. जीवक वृक्ष । ६. नारियल । ७. कैथ । ८. रीठा करंज । ९. दही । १०. चंदन । ११. सोना । १२. सिंदूर । १३. अभिषेकार्थ विभिन्न तीर्थों से एकत्रित किया हुआ जल (को०) ।

मंगल्यक—संज्ञा पुं० [सं० मङ्गल्यक] मसूर [को०] ।

मंगल्यकुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गल्यकुसुमा] शंखपुष्पी ।

मंगल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० मङ्गल्या] १. एक प्रकार का अगुरु जिसमें चमेली की सी गंध होती है । २. शमी । ३. सफेद वच । ४. रोचना । ५. शंखपुष्पी । ६. जीवंती । ७. ऋद्धि लता । ८. हल्दी । ९. दूब । १० दुर्गा का एक नाम ।

मंगिता(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० माँगना] मँगता । याचक । उ०—मैं भिखारी मंगिता दरसन देहु दयाल ।—दादू० बानी, पृ० ५९ ।

मंगिन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० माँगना] मँगता । याचक । उ०—बैरम सुवन नित बकसि बकसि हथ देत मगिनन ।—अकबरी०, पृ० १४४ ।

मंगुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मद्गुर] मछली की एक जाति । मांगुर । उ०—धीमर जाल भीन एह डारा बाझे मंगुर मीना ।—संत० दरिया, पृ० १४६ ।

मंगोल—संज्ञा पुं० [मंगोलिया प्रदेश से] मध्य एशिया और उसके पूरब की ओर (तातार चीन और जापान में) बसनेवाली एक जाति जिसका रंग पीला, नाक चिपटी और चेहरा चौड़ा होता है ।

विशेष—पृथ्वी के मनुष्यों के जो प्रधान चार वर्ग किए गए हैं उनमें एक मंगोल भी है जिसके अंतर्गत नेपाल, तिब्बत चीन, जापान आदि के निवासी माने जाते हैं । आज से छह सात सौ वर्ष पहले इस जाति के लोगों ने एशिया के बहुत बड़े और यूरोप के कुछ भाग पर भी अधिकार कर लिया था ।

मंच—संज्ञा पुं० [सं० मञ्च] १. खाट । खटिया । २. खाट की तरह बुनी हुई बैठने की छोटी पीढ़ी । मचिया । ३. सिंहासन (को०) । ४. मैदान या खेतों आदि में बना हुआ ऊँचा स्थान । मचान (को०) । ५. ऊँचा बना हुआ मंडल जिसपर बैठकर सर्वसाधारण के सामने किसी प्रकार का कार्य किया जाय । जैसे, रंगमंच ।

यौ०—मंचनृत्य=एक प्रकार का नाच । मंचपत्री । मंचपीठ = मंच पर बैठने का आसन । मंचमंडप । मंचयूप = वह स्तंभ जिसके आधार पर मंच का ढाँचा टिका रहता है ।

मंचक—संज्ञा पुं० [सं० मञ्चक] दे० 'मंच' ।

मंचकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं० मञ्चकाश्रय] खटमल ।

मंचकासुर—संज्ञा पुं० [मञ्चकासुर] पुराणानुसार एक असुर का नाम ।

मंचपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्चपत्री] सुरपत्री नाम की लता ।

मंचमंडप—संज्ञा पुं० [सं० मञ्चमण्डप] १. खेतों में बना हुई वह मचान जिसपर खेतिहर लोग बैठकर पशुओं आदि से खेतों की रक्षा करते हैं । २. विवाहादि के समय बना हुआ मंच (को०) ।

मंचातोड़—वि० [हिं० माँचा + तोड़] भारी भरकम । विशालकाय । बड़े डीलडौलवाला । उ०—बीस मंचातोड़ रक्षक राजपूत उसके लिये वहीं मरने का निश्चय कर ठहरे हुए थे ।—राज० इति०, पृ० ८९६ ।

मंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्चिका] १. मचिया । २. कठवत । द्रोणी [को०] ।

मंछ¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्य, ० मच्छ] दे० 'मत्स्य' । उ०—कीन्हेसि नदी नार औ झरना । कीन्हेसि मगर मंछ बहु बरना ।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० १ ।

मंछा²—संज्ञा पुं० [देश०] डिंगल रीति-ग्रंथ-रचयिता कवि मनसा राम का उपनाम जिन्होंने विभिन्न गीतों में रघुनाथ रूपक गीतारों नाम से रामचरित लिखा है ।

मंछर—(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मत्सर] दे० 'मत्सर' । उ०—आदि अंतलौं आइ करि सुकिरत कछू न कीन्ह । माया मोह मद मंछरा स्वाद सबै चित दीन्ह ।—संतवाणी०, पृ० ८५ ।

मंछला†—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्य] मत्स्य । मछली । उ०—परनारी के राँचणे औगुण है गुण नाँहि । षार समँद में मछला केता बहि बहि जाहि ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३९ ।

मंजन—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जन] १. वह चूर्ण जिसकी सहायता से

मलकर दांत साफ किए जाते हैं। २. स्नान। नहाना। उ०—अंजन दे निखरे नित नैनन, मंजन कै प्रति अंग सँवारे।—मतिराम (शब्द०)। ३. दे० 'मांजना'। उ०—गुरु घाम कंजा मनी मैल मंजा'—घट०, पृ० ३८५।

मंजनीक—संज्ञा पुं० [?] युद्ध में पत्थरों की मार करने का एक मंत्र। उ०— किला बहुत ऊँचा होने से उसपर मंजनीक (मकरी यंत्र) काम नहीं दे सकते थे।—राज० इति०, पृ०७३०।

मंजर¹—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जर] १. मोती। २. मंजरी। ३. तिलक का पौधा।

मंजर²—संज्ञा पुं० [अ० मंजर] १. नज्जारा। दृश्य। दर्शनीय वस्तु। २. मुखाकृति। ३. क्रीड़ास्थान। ४. दृष्टिसीमा [को०]।

मंजरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जरि] दे० 'मंजरी'। उ०—(क) मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। —मानस, १।११०। (ख) जै श्री राधा रसिक रस मंजरि प्रिय सिर मौर।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८१।

मंजरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जरिका] दे० 'मंजरी'।

मंजरित—वि० [सं० मञ्जरित] मंजरियों से भरा हुआ। मंजरी से पूर्ण। उ०—एक भी तरु मंजरित यदि व्यर्थ कोयल का नहीं स्वर।—मधु०, पृ० ७२।

मंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जरी] १. छोटे पौधे या लता आदि का निकला हुआ कल्ला। कोंपल। २. कुछ विशिष्ट वृक्षों या पौधों मे फूलों या फलों के स्थान में एक सींके मे लगे हुए बहुत से दानों का समूह। जैसे, आम की मंजरी, तुलसी की मंजरी। ३. मोती। ४. तिल का पौधा। ५. लता। बेल ६. तुलसी।

यौ०—मंजरीचामर=मंजरी के आकार की चँवर। मंजरीजाल=खूब घना मंजरी का समूह। मंजरीनम्र=वेत। वेतस।

मंजरीक—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जरीक] १.तुलसी। २. मोती। ३. तिल का पौधा। ४. वेत (लता)। ५. अशोक का वृक्ष।

मंजा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जा] १. लता। वल्ली। २. बकरी। ३. मंजरी [को०]।

मंजा²—संज्ञा स्त्री० [सं० मज्जा] दे० 'मज्जा'। उ०—मंजा मुत्र अग्नि मल क्रम जहँ, सहजे तहँ प्रतिपारो।—धरनी० बा०, पृ० २३।

मंजार—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जार] बिल्ली। बिडाल। उ०—कहति न देवर की कुबत, कुलतिय कलह डराति। पंजर गत मंजार ढिग, सुक ज्यों सूकति जाति।—बिहारी (शब्द०)।

मंजारड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जार, हिं० मंजार+डी (प्रत्य०)] दे० 'मार्जार'। उ०—बाट काटे मंजारड़ी सामही छींक हुणई कपाल।—बी० रासो, पृ० ५६।

मंजारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जारी] दे० 'मार्जार'। उ०—जारी नाहीं जम अहै तू मत राचे जाय। मंजारी ज्यों बोलि कै, काढ़ि करेजा खाय।—संतवाणी०, पृ० ५६।

मंजि—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जि] दे० 'मंजरी'।

मंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जिका] वेश्या। रंडी।

मंजिफला—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जिफला] केला का पेड़।

मंजिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जिमा] सौंदर्य। मोहकता। सुंदरता [को०]।

मंजिल—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. यात्रा के मार्ग में ठहरने का स्थान। मुकाम। पड़ाव। २. वह स्थान जहाँ तक पहुँचना हो। गंतव्य स्थान। उ०—ये सराइ दिन चारि मुकामा। रहना नहिं मंजिल को जाना।—धरनी०, पृ० ३००। ३. मकान का खंड। मरातिब। ४. एक दिन की यात्रा। एक दिन का सफर। ५. लंबी यात्रा। दूर का सफर (को०)। ६. यात्रा। सफर। उ०—खर्चे की तदबीर करो तुम मंजिल लंबी जाना।—कबीर सा०, पृ० २।

मुहा०—मंजिल उठाना=मकान बनाना। मंजिल भारी होना=यात्राकार्य कठिन होना। मंजिल मारना=यात्रा पूर्ण कर लेना। कठिनाई समाप्त होना। मंजिलों भागना=बहुत दूर रहना। उ०—बस इस जूती पैजार से हम मंजिलों भागते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३।

यौ०—मंजिलगाह=पड़ाव। यात्रा में उतरने की जगह। उ०—यहाँ का सांप्रदायिक उत्पात मंजिल नामी दो भवनों के कारण आरंभ हुआ।—भारत० नि०, पृ० ६७। मंजिले अव्वल=कब्र या श्मशान। मंजिले कमर=नक्षत्र। मंजिले मकसूद=आशय। उद्देश्य। लक्ष्य स्थान। मंजिले हस्ती=आयु। जीवनयात्रा।

मंजिष्ठ, मंजिष्ठक—वि० [सं० मञ्जिष्ठ, मञ्जिष्ठक] दीप्ति से युक्त लाल (वर्ण)।

मंजिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जिष्ठा] मजीठ।

मंजिष्ठामेह—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जिष्ठामेह] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मजीठ के पानी के समान मूत्र होता है।

मंजिष्ठाराग—संज्ञा पुं० [सं० मजिष्ठाराग] १. मजीठ का रंग। २. (लाक्ष०) मजीठे के रंग सा सुंदर और टिकाऊ अनुराग। पक्का प्रेम [को०]।

मंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जी] दे० 'मंजरी'।

मंजीर—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जीर] १. नूपुर। घुँघरू। २. वह खंभा या लकड़ी जिसमें मथानी का डंडा बंधा रहता है। ३. एक पहाड़ी जाति जो पश्चिमी बंगाल मे रहती है।

मंजील—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जील] धोबियों का गाँव। रजक ग्राम। गाँव जिसमे मुख्यतः धोबी रहते हों [को०]।

मंजु—वि० [सं० मञ्जु] सुंदर। मनोहर।

मंजुकेशी—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुकेशिन्] श्रीकृष्ण।

मंजुगति—वि० [सं० मञ्जुगति] सुंदर चालवाला [को०]।

मंजुगमना—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जुगमना] हंसिनी [को०]।

मंजुगर्त—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुगर्त] नेपाल देश का प्राचीन नाम।

मंजुगुंज—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुगुञ्ज] मनोहर गुंजन [को०]।

मंजुघोष¹—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुघोष] १. तांत्रिकों के एक देवता का नाम।

विशेष—कहते हैं, इनका पूजन करने से मूर्खता दूर होती है।
२. एक प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य जो बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये चीन गए थे।

विशेष—कहा जाता है कि जिस स्थान पर आजकल नेपाल देश है उस स्थान पर पहले जल था। इन्होंने मार्ग बनाकर वह जल निकाला था और उस देश को मनुष्यों के रहने योग्य बनाया था। इन्हें मंजुदेव और मंजुश्री भी कहते हैं।

मंजुघोष[2]—वि० मनोहर बोलवाला [को०]।

मंजुघोषा—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जुघोषा] एक अप्सरा का नाम। उ०—चलि देखौ दुति दामिनी दिपति मनो दुतिरूप। मंजु मंजुघोषा भई जोवा जगत अनूप।—स० सप्तक, पृ० ३६१।

मंजुदेव—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुदेव] दे० 'मंजुघोष—२'।

मंजुनाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जुनाशी] १. दुर्गा का एक नाम। २. इंद्राणी का एक नाम। ३. सुंदर महिला (को०)।

मंजुपाठक—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुपाठक] तोता।

मंजुप्राण—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुप्राण] ब्रह्मा।

मंजुभद्र—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुभद्र] दे० 'मंजुघोष'।

मंजुभाषिणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जुभाषिणी] एक गणात्मक छंद जिसमें सगण, जगण, सगण, जगण और दो गुरु होते हैं।

मंजुभाषिणी[2]—वि० [सं० मञ्जुभाषिणी] मधुर बोलवाली [को०]।

मंजुभाषी—वि० [सं० मञ्जुभाषिन्] [वि० स्त्री० मञ्जुभाषिणी] मधुर बोलने या भाषण करनेवाला [को०]।

मंजुल[1]—वि० [सं० मञ्जुल] [स्त्री० मञ्जुला] सुंदर। मनोहर। खूबसूरत। उ०—सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला। ज्ञान विराग विचार मराला।—मानस, १।३७।

मंजुल[2]—संज्ञा पुं० १. नदी या जलाशय का किनारा। २. कुंज। ३. सोता। कूप (को०)। ४. एक पक्षी। दात्यूह। कालकंठ (को०)।

मंजुला—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जुला] एक नदी का नाम।

मंजुवक्त्र—वि० [सं० मञ्जुवक्त्र] सुंदर मुखवाला। सुंदर [को०]।

मंजुवज्र—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुवज्र] बौद्धों के एक देवता का नाम।

मंजुश्री—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जुश्री] दे० 'मंजुघोष—२'।

मंजुषा—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जुषा] दे० 'मंजूषा' [को०]।

मंजुस्वन—वि० [सं० मञ्जुस्वन] मधुर आवाजवाला। मधुर कंठवाला [को०]।

मंजुस्वर—वि० [सं० मञ्जुस्वर] दे० 'मंजुस्वन' [को०]।

मंजूर—वि० [अ०] १. जो मान लिया गया हो। स्वीकृत। पसंद। २. जो देखा गया हो। अवलोकित (को०)।

मंजूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० मन्ज़ूर + ई (प्रत्य०)] मंजूर होने का भाव। स्वीकृति।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—माँगना।—मिलना।—लेना।

मंजूषा—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जूषा] १. छोटा पिटारा या डिब्बा। पिटारी। उ०—सुंदर काले काठ की मंजूषा में एक सुरीला बाजा रखा हुआ था।—श्यामा०, पृ० ६४। २. पत्थर। ३. मजीठ। ४. बड़ा संदूक (को०)। ५.(पु) पिंजड़ा।

मंझ(पु)[1]—वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ, मझ] दे० 'मंझा'। उ०—मझ महल की को कहै बाँका पस्वा सोया।—कबीर सा० सं०, पृ० १६।

मंझ(पु)[2]—वि० [सं० मन्द] दे० 'मंद'। उ०—कबीर लहरि समद की मोती बिखरे आइ। बगुला मझ न जाणई हंस चुणो चुणि खाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७८।

मंझा(पु)[1]—वि० [सं० मध्य,प्रा० मज्झ] मध्य का। बीच का। जो दो के बीच में हो। मंझला। उ०—मंझा जोति राम प्रकासै गुर गमि बाणी।—कबीर ग्रं०, पृ० १४३।

मंझा[2]—संज्ञा पुं० १. सूत कातने के चरखे में वह मध्य का अवयव जिसके ऊपर माल रहती है। मुँडला। २. अटेरन के बीच की लकड़ी। मँझेरू।

मंझा[3]—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो गोयंड और पालों के बीच में हो।

मंझा[4]—संज्ञा पुं० [सं० मञ्चक] १. चौकी। २. पलंग। खाट। (पंजाब)।

मंझा[5]—संज्ञा पुं० [हिं० माँजना] वह पदार्थ जिससे रस्सी वा पतंग की डोर को माँजते हैं। माँझा।

मुहा०—मंझा देना=माँजना। लेस चढ़ाना।

मंटि—संज्ञा पुं० [सं० मण्टि] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि [को०]।

मंठ—संज्ञा पुं० [सं० मण्ठ] प्राचीन काल का एक प्रकार का मैदे का बना हुआ पकवान जो शीरे में डुबोया हुआ होता है। माठ।

मंड—संज्ञा पुं० [सं० मण्ड] १. उबले हुए चावलों आदि का गाढ़ा पानी। भात का पानी। माँड़। २. पिच्छ। सार। ३. एरंड वृक्ष। अंडी। ४. भूषा। सजावट। उ०—मनो मनिमंदिर तापर मंड। उदै रबि आप भयो परचंड।—हम्मीर०, पृ० ५१। ५. मेंढक। ६. एक प्रकार का साग। ७. सुरा (को०)। ८. मट्ठा (को०)। ९. दूध का सार भाग, मलाई, मक्खन आदि (को०)। १०. शिर। शीर्ष (को०)।

मंडक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डक] १. एक प्रकार का पिष्टक। मैदे की एक प्रकार की रोटी। माँड़ा। २. माधवी लता। ३. गीत का एक अंग।

मंडन[1]—वि० [सं० मण्डन] शृंगारक। अलंकृत करनेवाला। उ०—गाढ़े भुजदंडन के बीच उर मंडन को धारि घनआनंद यों सुखनि समेटिहौं।—घनानंद, पृ० ६६।

मंडन[2]—संज्ञा पुं० १. शृंगार करना। अलंकरण। सजाना। सँवारना। २. आभूषण। अलंकार (को०) ३. युक्ति आदि देकर किसी सिद्धांत या कथन का पुष्टिकरण। प्रमाण आदि द्वारा कोई

बात सिद्ध करना। 'खंडन' का उलटा। जैसे, पक्ष का मंडन। ४. ख्यात दार्शनिक मंडन मिश्र। कहा जाता है आद्य शंकराचार्य ने इन्हें शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

यौ०—मडनकाल=सजने सँवरने का अवसर या मौका। मडनप्रिय=जिसे आभूषण प्रिय हो।

मंडना(पु)¹—क्रि० स० [सं० मण्डन] १. मंडित करना। सुसज्जित करना। सँवारना। भूषित करना। श्रृंगार करना। २. युक्ति आदि देकर सिद्ध या प्रतिपादित करना। समर्थन या पुष्टिकरण करना। ३. परिपूरित करना। भरना। छाना। उ०—चड कोदंड रह्यो मंडि नवखड को।—केशव (शब्द०)।

मंडना²—क्रि० स० [सं० मर्दन] मर्दित करना। दलित करना। माँड़ना। उ०—(क) प्रबल प्रचड बरिबंड बाहुदड खडि मडि मेदिनी को मडलीक लीक लोपिहैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कुंभ विदारन गज दलन अब रन मडै जाइ।—हिं० क० का०, पृ० २२३।

मंडप¹—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] ऐसा स्थान जहाँ बहुत से लोग धूप, वर्षा आदि से बचते हुए बैठ सकें। विश्रामस्थान। घर। जैसे, देवमडप। २. बहुत से आदमियों के बैठने योग्य चारो ओर से खुला, पर ऊपर से छाया हुआ स्थान। बारहदरी।

विशेष—ऐसा स्थान प्राय: पटे हुए चबूतरे के रूप में होता है जिसके ऊपर खभों पर टिकी छत या छाजन होती है। देवमदिरों के सामने नृत्य, गीत आदि के लिये भी ऐसा स्थान प्राय: होता है।

३. किसी उत्सव या समारोह के लिये बाँस फूस आदि से छाकर बनाया हुआ स्थान। जैसे, यज्ञमंडप, विवाहमंडप।

मुहा०—मंडप भरना=मंडप की शोभावृद्धि करना। उ०—मिलि विधान मंडप भरिय।—पृ० रा०, २१।६३।

४. देवमंदिर के ऊपर का गोल या गावदुम हिस्सा। ५. चँदोवा। शामियाना। ६. लतादि से घिरा हुआ स्थान। कुंज।

मंडप²—वि० १. माँड़ पीनेवाला। २. मक्खन, तक्र आदि पीनेवाला [को०]।

मंडपक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डपक] लघु मंडप। छोटा मंडप [को०]।

मंडपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डपिका] १. छोटा मंडप। २. नगर या ग्राम में वस्तु विक्रय का कर। उ०—व्यापारियों को नगर या ग्राम में वस्तु बेचने पर टैक्स देना पड़ता था। उसके लिये मंडपिका शब्द का प्रयोग मिलता है।—पू० म० भा०, पृ० ११३।

मंडपी—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डप] १. छोटा मंडप। २. मढ़ी।

मंडर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] दे० 'मंडल'। उ०—(क) होइ मंडर ससि कै चहुँ पासा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१६। (ख) सब रनिवास बैठ चहुँ पासा। ससि मंडर जनु बैठ अकासा।—पदमावत, पृ० ३२६।

मंडरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पयाल की बनी हुई गोदरी या चटाई।

मंडल—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] १. चक्र के आकार का घेरा। किसी एक बिंदु से समान अंतर पर चारों ओर घूमी हुई परिधि। चक्कर। गोलाई। वृत्त।

मुहा०—मडल बाँधना—(१) चारों ओर वृत्त की रेखा के रूप में फिरना। चक्कर काटना। जैसे, मंडल बाँधकर नाचना। (२) चारो ओर घेरना। चारो ओर से छा जाना। जैसे, बादलों का मंडल बाँधकर बरसना। (३) अँधेरे का चारो ओर छा जाना।

२ गोल फैलाव। वृत्ताकार या अंडाकार विस्तार। गोला। जैसे, भूमडल। ३. चंद्रमा वा सूर्य के चारो ओर पड़नेवाला घेरा जो कभी कभी आकाश में बादलों की बहुत हलकी तह या कुहरा रहने पर दिखाई पड़ता है। परिवेश। ४. किसी वस्तु का वह गोल भाग जो अपनी दृष्टि के सम्मुख हो। जैसे, चद्रमडल, सूर्यमडल, मुखमडल। ५. चारों दिशाओं का घेरा जो गोल दिखाई पड़ता है। क्षितिज। ६. बारह राज्यों का समूह।

यौ०—मंडलेश्वर।

७. चालिस योजन लंबा और बीस योजन चौड़ा भूमिखंड वा प्रदेश। ८. समाज। समूह। समुदाय। जैसे, मित्रमडल। उ०—गोपिन मडल मध्य विराजत निसि दिन करत बिहार।—सूर (शब्द०)। ९. एक प्रकार का व्यूह। सेना की वृत्ताकार स्थिति। १०. कूकुर। कुत्ता। ११. एक प्रकार का सर्प। १२. एक प्रकार का गंधद्रव्य। व्याघ्रनखा। बघनहीं। १३. एक प्रकार का कुष्ठ रोग जिसमें शरीर में चकत्ते से पड़ जाते हैं। १४. शरीर की आठ संधियों में एक (सुश्रुत)। १५. ग्रह के घूमने की कक्षा। १६. खेलने का गेंद। १७. कोई गोल दाग वा चिह्न। १८. ऋग्वेद का एक खंड। १९. चक्र। चाक। पहिया। २०. राजा के प्रधान कर्मचारियों का समूह। वि० दे० 'अष्टप्रकृति'।

मंडलक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलक] १. दे० 'मंडल'। २. दर्पण। ३. घेरादार वस्तु। उ०—ऊपरवाले किनारे पर एक घुंडी या मंडलक होता है—भौतिक०, पृ० ३६५।

मंडलकवि—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलकवि] कुकवि। बुरा कवि [को०]।

मंडलकार्मुक—वि० [सं० मण्डलकार्मुक] जिसका धनुष झुका हुआ वा मंडलाकार हो [को०]।

मंडलनृत्य—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलनृत्य] गतिभेदानुसार नृत्य का एक भेद। वृत्त की परिधि के रूप में घूमते हुए नाचना।

मंडलपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डलपत्रिका] रक्त पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

मंडलपुच्छक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलपुच्छक] एक कीड़ा जिसको सुश्रुत में प्राणनाशक लिखा है। इसके काटने से सर्प का सा विष चढ़ता है।

मंडलवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलवर्तिन्] मंडल का शासक [को०]।

मंडलवर्ष—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलवर्ष] १. किसी शासक के पूरे मंडल में हुई वर्षा। प्रदेशव्यापी वर्षा [को०]।

मंडलव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलव्यूह] कौटिल्य वर्णित वह

व्यूह जिसमें सैनिक चारों ओर एक घेरा सा बनाकर खड़े किए जाँय।

मंडलाकार—वि० [सं० मण्डलाकार] गोल। मंडल के आकार का।

मंडलाकृत—वि० [सं० मण्डलाकृत] दे० 'मडलाकार' (को०)।

मंडलाग्र—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलाग्र] १. चीर फाड़ मे काम आनेवाला एक प्रकार का शस्त्र या ओजार (सुश्रुत)। २. खंजर। घुमावदार तलवार (को०)।

मंडलाधिप—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलाधिप] दे० 'मंडलेश्वर'।

मंडलाना—क्रि० अ० [हिं० मंडल] दे० 'मँडराना'।

मंडलायित—वि० [सं० मण्डलायित] वर्तुल। गोल।

मंडलाधीश—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलाधीश] दे० 'मडलेश्वर'।

मंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डलिका] गोष्ठी। समुदाय। समूह। श्रेणी (को०)।

मंडलित—वि० [सं० मण्डलित] मंडलयुक्त। वर्तुलाकार बनाया हुआ (को०)।

मंडली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डली] १. समूह। गोष्ठी। समाज। जमायत। समुदाय। उ०—मराल मडली और सारस समूह।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११। २. दूब। ३. गुड़च।

मंडली²—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलिन्] १. एक प्रकार का साँप। सुश्रुत के गिनाए हुए साँप के आठ भेदों में से एक।

विशेष—इनके शरीर में गोल गोल चित्तियाँ सी होती हैं और यह भारी होने के कारण चलने में उतने तेज नहीं होते।

२. वटवृक्ष। ३. बिल्ली। बिड़ाल। ४. सर्प। साँप (को०)। ५. श्वान। कुत्ता (को०)। ६. प्रांत का शासक। मडलाधिप (को०)। ७. नेवले की जाति का बिल्ली की तरह का एक जंतु जिसे बंगाल में खटाश और उत्तरप्रदेश में कहीं कहीं सँधुवार कहते हैं। ८. सूर्य। उ०—मुख तेज सहस दस मडली बुधि दस सहस कमडली।—गोपाल (शब्द०)।

मंडली³—वि० १. मडल बनानेवाला। घेरा बनानेवाला। २. मडल का शासन करनेवाला (को०)।

मंडलीक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलीक] एक मंडल वा १२ राजाओं का अधिपति। उ०—बालक नृपाल जू के ख्याल ही पिनाक तोर्‍यो मंडलीक मंडली प्रताप दाप दाली री।—तुलसी (शब्द०)।

मंडलीकरण—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलीकरण] १. सर्प का कुंडली बाँधना या मारना। २. वर्ग, श्रेणी वा समूह बनाना (को०)।

मंडलीश—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलीश] एक मडल का अधिपति। नरेश (को०)।

मंडलेश—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलेश] दे० 'मडलेश्वर'।

मंडलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० मण्डलेश्वर] एक मंडल का अधिपति। १२ राजाओं का अधिपति।

मंडहारक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डहारक] मद्य का व्यवसायी। कलवार।

मंड।¹—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] भूमि का एक मान जो दो बिस्वे के बराबर होता है।

मंडा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

मंडा³—संज्ञा स्त्री० [हिं० माँडना (=गूँधना)] रोटी। दे० 'माँड़ा³'। उ०—तुम्हारे भी दो मडे सेक दूँगी।—वो दुनियाँ, पृ० ११६।

मंडा⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डा] १. सुरा। २. आमलकी।

मंडान—संज्ञा पुं० [हिं० मंडन] मंडन या मंडल करने का भाव। दे० 'मंडल' और मडन'। उ०—(क) गगन कहु मंडान। जहँ आहि ससि गन भान।—जग० बानी, पृ० १२६। (ख) कबीर थोड़ा जीवणां, माड़े बहु मंडाण।—कबीर ग्रं०, पृ० २१।

मंडित—वि० [सं० मण्डित] १. विभूषित। सजाया हुआ। सँवारा हुआ। २. आच्छादित। छाया हुआ। ३. पूरित। भरा हुआ।

मंडी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डपी] थोक बिक्री की जगह। बहुत भारी बाजार जहाँ व्यापार की चीजें बहुत आती हों। बड़ा हाट। जैसे अनाज की मंडी।

मुहा०—मंडी लगना = बाजार खुलना।

मंडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डल] भूमि मापने का एक मान जो दो बिस्वे के बराबर होता है।

मंडुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मँड़ुआ'। उ०—कोदों भी है किंतु यह हमारे देश का कोदो नहीं मडुआ (रागी) है।—किन्नर०, पृ० ७०।

मंडुक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डूक] दे० 'मडूक'। उ०—खात पियत अरु स्वसत स्वान मडुक अरु भाथी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६७।

मंडूक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डूक] १. मेंढक। उ०—मंडूकों का टर टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २९८। २. एक ऋषि। ३. दोहा छद का पाँचवाँ भेद जिसमें १८ गुरु और १२ लघु अक्षर होते हैं। ४. रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक। ५. प्राचीन काल का एक बाजा। ६. एक प्रकार का नृत्य। ७. एक प्रकार का रतिबंध (को०)। ८. घोड़े की एक जाति।

यौ०—मंडूककुल=मेढकों का समूह। मंडूकगति=(१) मेढक की सी चालवाला। (२) दे० 'मडूकप्लुति'। मंडूकपर्ण। मडूकपर्णी, मंडूकपर्णिका=दे० 'मडूकपर्णी'। मंडूकप्लुति। मडूकमाता। मंडूकसर=मेढकों से भरा तालाब। मंडूकसूक्त।

मंडूकपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० मण्डूकपर्ण] श्योनाक वृक्ष (को०)।

मंडूकपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डूकपर्णी] १. ब्राह्मी बूटी। २. मजिष्ठा।

मंडूकप्लुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेढक की उछाल। २. बीच बीच में की छूट (को०)।

मंडूकमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डूकमातृ] ब्राह्मी लता (को०)।

मंडूकसूक्त—संज्ञा पुं० [सं० मण्डूकसूक्त] ऋग्वेद का एक सूक्त जिसके

ऋषि वशिष्ठ और देवता मंडूक हैं। वर्षा के लिये इसका विनियोग है।

मंडूका—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डूका] मंजिष्ठा। मजीठ।

मंडूकी—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डूकी] १. ब्राह्मी। २. आदित्यभक्ता। ३. स्वेच्छाचारिणी स्त्री। ४. मेढकी (को०)।

मंडूर—संज्ञा पु० [सं० मण्डूर] लोहकीट। गलाए हुए लोहे की मैल। सिंघान।

विशेष—वैद्य लोग औषध में इसका व्यवहार शोधकर करते हैं। इसमें लोहे का ही गुण माना जाता है। मंडूर जितना ही पुराना हो उतना ही व्यवहार के योग्य और गुणकारी माना जाता है। सौ वर्ष का मंडूर सबसे उत्तम कहा गया है। बहेड़े की लकड़ी में जलाकर सात बार गोमूत्र में डालने से मंडूर शुद्ध हो जाता है। इसके सेवन से ज्वर, प्लीहा, कँवल आदि रोग आराम होते हैं।

मंडौ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] दे० 'मंडप'। उ०—मंडौ प्रेम मगन भई कामिनी, उमँगि उमँगि रति भावन।—गुलाल०, पृ० ३२।

मंढा—संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ना] कमख्वाब बुननेवालों का एक औजार जो नकशा उठाने में काम आता है। यह लकड़ी का होता है जिसमें दो शाखें सी निकली होती हैं। सिरे पर एक छेद होता है जिसमें एक डंडा लगा रहता है।

मंत(पु)†—संज्ञा पु० [सं० मन्त्र] १. सलाह। उ०—(क) कंत सुन मंत कुल अंत किय अंत, हानि हातो किजै हिय ते भरोसो भुज बीस को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मैं जो कह्यौ कत सुनु मंत भगवंत सो विमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्हो।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—तंत मंत = (१) उद्योग। प्रयत्न। उ०—के जिय तंत मंत सौं हेरा। गयो हेराय जो वह भा मेरा।—जायसी (शब्द०)। २. तंत्र मंत्र। उ०—तंत मंत उच्चार देवि दरसिय मम्कि हुन्त्रिय।—पृ० रा०, १।१२।

२. मंत्र। सिद्धिदायक शब्दों का समूह। दे० 'मंत्र—४'। उ०—(क) सुनि आनंद्यो चंद चित कीन मंत आरंभ। जप जाप हवि होम सब लाग्यो कज्ज असंभ।—पृ० रा०, ६।१४९। (ख) छुगली कानाँ सुगुण सुँ, मैलो व्हे गुर मंत।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४९।

मंतर†—संज्ञा पु० [सं० मन्त्र] दे० मंत्र'। उ०—गुप्त प्रगट सत मंतर आहे समझहु आपिहु माहिं।—जग० श०, पृ० ८९।

मुहा०—मंतर न होना = कोई उपचार न होना। उ०—खाना खाना मक्खियों की भिन्न भिन्न के सबब से मुश्किल हो जाता है और खटमल के काटे का तो मंतर ही नहीं।—सैर कु०, पृ० ३९।

मंतव्य[1]—वि० [सं० मन्तव्य] मानने योग्य। माननीय।

मंतव्य[2]—संज्ञा पु० विचार। मत।

मंता—संज्ञा पुं० [सं० मन्तृ] मननकर्ता। विद्वान् [को०]।

मंतु[1]—संज्ञा पुं० [सं० मन्तु] १. अपराध। गलती। २. मनुष्य जाति। ३. प्रजापति। ४. मंत्र। राय। सलाह। ५. राय देनेवाला। मंत्रणा देनेवाला। ६. अधिकारी। निर्देशक।

मंतु[2]—संज्ञा स्त्री० बुद्धि। समझ। अक्ल [को०]।

मंत्र—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्र] १. गोप्य या रहस्यपूर्ण बात। सलाह। परामर्श। उ०—मंत्र कहौं निज मति अनुसारा। दूत पठाइय बालिकुमारा।—मानस, ६।१७। २. देवाधिसाधन गायत्री आदि वैदिक वाक्य जिनके द्वारा यज्ञ आदि क्रिया करने का विधान हो।

विशेष—निरुक्त के अनुसार वैदिक मंत्रों के तीन भेद हैं—परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक। जिन मंत्रों द्वारा देवता को परोक्ष मानकर प्रथम पुरुष की क्रिया का प्रयोग करके स्तुति आदि की जाती है, उन्हें परोक्षकृत मंत्र कहते हैं। जिन मंत्रों में देवता को प्रत्यक्ष मानकर मध्यम पुरुष के सर्वनाम और क्रिया का प्रयोग करके उनकी स्तुति आदि होती है, उसे प्रत्यक्षकृत कहते हैं। जिन मंत्रों में देवता का आरोप अपने में करके उत्तम पुरुष के सर्वनाम और क्रियाओं द्वारा उसकी स्तुति आदि की जाती है, वे आध्यात्मिक कहलाते हैं। मंत्रों के विषय प्रायः स्तुति, आशीर्वाद, शपथ, अभिशाप, परिदेवना, निंदा आदि होते हैं। मीमांसा के अनुसार वेदों का वह वाक्य जिसके द्वारा किसी कर्म के करने की प्रेरणा पाई जाय, मंत्रपद वाच्य है। मीमांसक मंत्र को ही देवता मानते हैं और उसके अतिरिक्त देवता नहीं मानते। वैदिक मंत्र गद्य और पद्य दोनों रूपों में पाए जाते हैं। गद्य को यजु और पद्य को ऋचा कहते हैं। जो पद्य गाए जाते हैं, उन्हें साम कहते हैं। इन्हीं तीन प्रकार के मंत्रों द्वारा यज्ञ के सब कर्म संपादित होते हैं।

३. वेदों का वह भाग जिसमें मंत्रों का संग्रह है। संहिता। ४. तंत्र के अनुसार वे शब्द या वाक्य जिनका जप भिन्न भिन्न देवताओं की प्रसन्नता या भिन्न भिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिये करने का विधान है। ऐसा शब्द या वाक्य जिसके उच्चारण में कोई दैवी प्रभाव या शक्ति मानी जाती हो।

विशेष—इन मंत्रों में एकाक्षर मंत्र जो अभिलाष्टार्थ हों, बीजमंत्र कहलाते हैं।

क्रि० प्र०—पढ़ना।

यौ०—मंत्र यंत्र या यंत्र मंत्र = जादू टोना। उ०—डाकिनी साकिनी खेचर भूचर यंत्र मंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी।—तुलसी (शब्द०)। मंत्र तंत्र या तंत्र मंत्र = दे० 'तंत मंत'।

मंत्रकार—संज्ञा पु० [सं० मन्त्रकार] वेदमंत्र रचनेवाला ऋषि। मंत्रद्रष्टा ऋषि।

मंत्रकुशल—वि० [सं० मन्त्रकुशल] सलाह देने में निपुण [को०]।

मंत्रकृत[1]—वि० [सं० मन्त्रकृत्] १. परामर्शकारी। सलाह देनेवाला। २. दौत्यकारी। दौत्यकर्म करनेवाला।

मंत्रकृत्[2]—संज्ञा पु० वेदमंत्र रचनेवाला ऋषि। मंत्रकार।

मंत्रगूढ़—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रगूढ] गुप्तचर ।

मंत्रगृह—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रगृह] वह स्थान जहाँ मंत्र या सलाह की जाती हो। परामर्श करने के लिये नियत स्थान ।

मंत्रजल—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रजल] मंत्र से प्रभावित या पवित्र किया हुआ जल ।

मंत्रजिह्व—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रजिह्व] अग्नि ।

मंत्रज्ञ¹—वि० [सं० मन्त्रज्ञ] १. मंत्र जाननेवाला । २. जिसमें परामर्श देने की योग्यता हो । जो अच्छा परामर्श देना जानता हो । ३. भेद जाननेवाला ।

मंत्रज्ञ²—संज्ञा पुं० १. गुप्तचर । २. चर । दूत ।

मंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रण] परामर्श । मंत्रणा । सलाह । राय । मशवरा ।

मंत्रणक—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रणक] आह्वान । आवाहन । अभ्यर्थना निमंत्रण (को०) ।

मंत्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रणा] १. परामर्श । सलाह । मशवरा ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लेना ।

२. कई आदमियों की सलाह से स्थिर किया हुआ मत । मंतव्य ।

मंत्रद¹—वि० [सं० मन्त्रद] परामर्श देनेवाला ।

मंत्रद²—संज्ञा पुं० मंत्र देनेवाला, गुरु ।

मंत्रदर्शी—वि० [सं० मन्त्रदर्शिन्] वेदवित् । वेदज्ञ ।

मंत्रदाता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रदातृ] दे० 'मंत्रद' ।

मंत्रदीधिति—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रदीधिति] अग्नि ।

मंत्रदेवता—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रदेवता] मंत्रों द्वारा आवाहित देवता (को०) ।

मंत्रद्रष्टा—वि० [सं० मन्त्रद्रष्ट] वेदज्ञ । वेद मंत्रों का साक्षात्कार करनेवाला (को०) ।

मंत्रद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रद्रुम] चाक्षुष मन्वंतर के इंद्र का नाम ।

मंत्रधर—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रधर] मंत्री ।

मंत्रधारी—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रधारिन्] दे० 'मंत्रधर' (को०) ।

मंत्रपति—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रपति] मंत्र का देवता । मंत्र का अधिष्ठाता देवता ।

मंत्रपाठ—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रपाठ] मंत्रों का पाठ या आवृत्ति (को०) ।

मंत्रपूत—वि० [सं० मन्त्रपूत] जो मंत्र द्वारा पवित्र किया गया हो । उ०—वे आए याद दिव्य शर अगणित मंत्रपूत ।—अपरा, पृ० ४० ।

यौ०—मंत्रपूतात्मा = गरुड़ का एक नाम ।

मंत्रप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रप्रयोग] मंत्र द्वारा काम लेना (को०) ।

मंत्रप्रयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रप्रयुक्ति] दे० 'मंत्रप्रयोग' (को०) ।

मंत्रफल—संज्ञा पुं० [सं० सं० मन्त्रफल] १. मंत्रणा या परामर्श का परिणाम । २. मंत्रविद्या का प्रभाव या फल ।

मंत्रवज्र—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रवज्र] मंत्र की शक्ति या प्रभाव (डिं०) ।

मंत्रबीज—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रबीज] मूल मंत्र ।

मंत्रभेद—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रभेद] गुप्त वार्ता या रहस्य का प्रगट किया जाना (को०) ।

मंत्रभेदक—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रभेदक] सरकारी गुप्त सलाह को प्रकाशित करनेवाला ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इस अपराध में अपराधियों की जीभ उखाड़ लेना दंड था ।

मंत्रमुग्ध—वि० [सं० मन्त्रमुग्ध] मंत्र द्वारा विमोहित । मंत्र से वश में किया हुआ । अवसन्न (को०) ।

मंत्रमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रमूर्ति] शिव का एक नाम (को०) ।

मंत्रमूल—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रमूल] १. राज्य । २. [illegible] । ३. जादू ।

मंत्रयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रयन्त्र] मंत्रात्मक यंत्र या ताबीज (को०) ।

मंत्रयान—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध धर्म की एक शाखा जिसका प्रचार तिब्बत, नेपाल, भूटान आदि में है ।

विशेष—इस संप्रदाय के ग्रंथों में अनेक तंत्र ग्रंथ हैं जिनके अनुसार तांत्रिक उपासना होती है । इस मत के प्रधान आचार्य सिद्ध नागार्जुन माने जाते हैं । इसे वज्रयान भी कहते हैं ।

मंत्रयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रयुद्ध] केवल बातचीत या तर्क के द्वारा शत्रु को वश में करने का प्रयत्न ।

विशेष—कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस विषय का एक अलग प्रकरण (१६३ वाँ) ही दिया है ।

मंत्रयोग—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रयोग] मंत्र का प्रयोग । मंत्र पढ़ना ।

मंत्रवादी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रवादिन्] १. मांत्रिक । २. जो मंत्रोच्चारण करे । (?) ३. तंत्र एवं मंत्र आदि का जानकार । उ०—बिछी सर्प विषंग मंत्रवादी गिलि जुट्टं ।—पृ० रा०, ६।१०५ ।

मंत्रविद्—वि० [सं० मन्त्रविद्] १. मंत्रज्ञ । २. वेदज्ञ । ३. जो राज्य के रहस्यों को जानता हो ।

मंत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रविद्या] तंत्रविद्या । ओझविद्या । मंत्रशास्त्र । तंत्र ।

मंत्रबीज—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रबीज] मूल मंत्र । मंत्र का प्रथमाक्षर या शब्द (को०) ।

मंत्रशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रशक्ति] १. युद्ध में चतुराई या चालाकी । २. ज्ञानबल । ३. [illegible] ।

मंत्रश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रश्रुति] वह मंत्रणा या गुप्त परामर्श जिसे पक्ष ने सुन लिया हो (को०) ।

मंत्रसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रसंस्कार] १. विवाह संस्कार ।

यौ०—मंत्रसंस्कारकृत्=विवाह करनेवाला । विवाहित ।

२. तंत्रानुसार मंत्रों का वह संस्कार जिसके करने का विधान मंत्रग्रहण के पूर्व है और जिसके बिना मंत्र फलप्रद नहीं होते।

विशेष—ऐसे संस्कार दस हैं जिनके नाम ये हैं—

(१) जनन—मंत्र का मातृका यंत्र से उद्धार करना। इसे मंत्रोद्धार भी कहते हैं।

(२) जीवन—मंत्र के प्रत्येक वर्ण को प्रणव से संपुट करके सौ सौ बार जपना।

(३) ताडन—मंत्र के प्रत्येक वर्ण को पृथक् पृथक् लिखकर लाल कनेर के फूल से वायुबीज पढ पढ़कर प्रत्येक वर्ण को सौ सौ बार मारना।

(४) बोधन—मंत्र के लिखे हुए प्रत्येक वर्ण पर 'रं' बीज से सौ सौ बार लाल कनेर के फूल से मारना।

(५) अभिषेक—मंत्र के प्रत्येक वर्ण को लाल कनेर के फूल से 'र' बीज द्वारा अभिमंत्रित कर यथाविधि अभिषेक करना।

(६) विमलीकरण—सुषुम्ना नाड़ी में मनोयोगपूर्वक मंत्र की चिंता करके मंत्रों के प्रत्येक वर्ण के ऊपर अश्वत्थ के पल्लव से ज्योति मंत्र द्वारा जल सींचना।

(७) आप्यायन—ज्योतिर्मंत्र द्वारा सोने के जल, कुशोदक वा पुष्पोदक से मंत्र के वर्णों को सींचना।

(८) तर्पण—ज्योतिर्मंत्र द्वारा जल से मंत्र के प्रत्येक वर्ण का तर्पण करना।

(९) दीपन—ज्योतिर्मंत्र से दीप्ति साधन करना।

(१०) गोपन—मंत्र को प्रकट न करके सदा गुप्त रखना और ओठों के बाहर न निकालना।

मंत्रसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रसंहिता] वैदिक संहिताओं के मंत्रों का ऐसा संकलन जिसमें केवल 'मंत्रभाग' का संग्रह किया गया है।

मंत्रसाधन—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रसाधन] मंत्रसिद्धि का यत्न करना। मंत्र को सिद्ध करना [को०]।

मंत्रसिद्ध—वि० [सं० मन्त्रसिद्ध] [वि० स्त्री० मंत्रसिद्धा] जिसका प्रयोग किया हुआ कोई मंत्र निष्फल न जाता हो।

मंत्रसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रसिद्धि] मंत्र का सिद्ध होना। मंत्र की सफलता। मंत्र में प्रभाव आना।

मंत्रसूत्र—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रसूत्र] वह रेशम या सून का तागा जो मंत्र पढ़कर बनाया गया हो। गंडा।

मंत्रस्नान—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रस्नान] वह स्नान या मार्जन जो केवल मंत्रों द्वारा किया जाय [को०]।

मंत्रहीन—वि० [सं० मन्त्रहीन] १. मंत्र से रहित। बिना मंत्र का २. मंत्र या दीक्षा से रहित। संस्कारविहीन [को०]।

मंत्रालय—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्र+आलय] शासन के किसी मंत्री वा उसके विभाग का कार्यालय। जैसे,—उद्योग मंत्रालय का अनुदान स्वीकृत।

मंत्रि—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रिः] दे० 'मंत्री' [को०]।

मंत्रिक—वि० [सं० मन्त्रिक] मंत्रियोंवाला। जैसे, बहुमंत्रिक।

मंत्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रिणी] १. मंत्री का काम करनेवाली स्त्री। २. मंत्री की पत्नी।

मंत्रित—वि० [सं० मन्त्रित] १. मंत्र द्वारा संस्कृत। अभिमंत्रित। निर्णीत। अवधारित (को०)। २. जिसपर मंत्रणा हो चुकी हो (को०)। ३. कथित। कहा हुआ (को०)। ४. निश्चित।

मंत्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्त्रिता] १. मंत्री का भाव वा पद। मंत्रित्व। २. मंत्री की क्रिया। मंत्री का काम। मंत्रित्व।

मंत्रित्व—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रित्व] मंत्री का कार्य वा पद। मंत्रिता। मंत्रीपन।

मंत्रिधुर—वि० [सं० मन्त्रिधुर] १. मंत्रियों में श्रेष्ठ। २. मंत्री का कार्य करने में समर्थ। जो मंत्री का कार्य कर सकता हो [को०]।

मंत्रिपति—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रिपति] प्रधान अमात्य।

पर्या०—मंत्रिपद। मंत्रिप्रधान। मंत्रिप्रमुख। मंत्रिमंडल। मंत्रिमुख्य। मंत्रिवर। मंत्रिश्रेष्ठ।

मंत्रिपद—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रि+पद] दे० 'मंत्रित्व'। उ०—निर्वाचन के पश्चात् कांग्रेस ने मंत्रिपद ग्रहण करने का निश्चय किया।—भारतीय०, पृ० १२४।

मंत्रिमंडल—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रिमण्डल] मंत्रियों की परिषद्। उ०—प्रत्येक प्रांत में एक मंत्रिमंडल की व्यवस्था थी।—भारतीय०, पृ० १३।

मंत्री—संज्ञा पुं० [सं० मन्त्रिन्] १. परामर्श देनेवाला। सलाह देनेवाला। २. वह पुरुष जिसके परामर्श से राज्य के कामकाज होते हों। सचिव।

पर्या०—अमात्य। सचिव। धीसख। समवायिक।

३. शतरंज की एक गोटी का नाम।

विशेष—यह गोटी राजा से छोटी मानी जाती है और पक्ष की शेष सब गोटियों से श्रेष्ठ होती है। यह टेढ़ी सीधी सब प्रकार की चालें चलती है। इसे वजीर या रानी भी कहते हैं।

मंत्रेला†—वि० [सं० मन्त्र+एला (प्रत्य०)] मंत्र का प्रयोग करनेवाला। उ०—आपै मंत्र आपै मंत्रेला। आपै पूजै आप पूजेला।—कबीर ग्रं०, पृ० २४४।

मंथ—संज्ञा पुं० [सं० मन्थ] १. मथना। बिलोना।

यौ०—मंथगिरि=दे० 'मंथपर्वत'। मंथगुण=मथनी की रस्सी। मंथदंड, मंथदंडक=मथानी का डंडा जिसमें रस्सी लगाकर मथते हैं। मंथविष्कंभ=वह खंभा या डंडा जिसमें मथानी की रस्सी बाँधी जाती है। मंथशैल=दे० 'मंथपर्वत'।

२. हिलाना। क्षुब्ध करना। ३. मर्दन। मलना। ४. मारना। ध्वस्त करना। ५. कंपन। ६. एक प्रकार की पीने की वस्तु जो कई द्रव्यों को एक साथ मथकर बनाते हैं। ७. दूध वा जल में मिलाकर मथा हुआ सत्तू। ८. मथानी। वह औजार

जिससे कोई पदार्थ मथा जाता है। ९. मृग की एक जाति का नाम। १०. सूर्य (को०)। ११. सूर्यरश्मि। सूर्य की किरण। १२. घर्षण से अग्नि उत्पन्न करने का यंत्र। मंथा (को०)। १३. आँख का एक रोग जिसमें आँखों से पानी या कीचड़ बहता है। १४. एक प्रकार का ज्वर जो बालरोग के अंतर्गत माना जाता है। मथर।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह रोग ज्वर में घी खाने और पसीना रोकने से होता है। इसमें रोगी को दाह, भ्रम, मोह और मतली होती है, प्यास अधिक लगती है, नींद नहीं आती, मुँह लाल हो जाता है और गले के नीचे छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। कभी कभी अतीसार भी होता है।

मंथक[1]—संज्ञा पुं० [सं० मन्थक] १. एक गोत्रकार मुनि का नाम। २. मंथक मुनि के वंश में उत्पन्न पुरुष।

मंथक[2]—वि० मथनेवाला। मंथन करनेवाला [को०]।

मंथज—संज्ञा पुं० [सं० मन्थज] नवनीत। नैनूँ। मक्खन।

मंथन—संज्ञा पुं० [सं० मन्थन] १. मथना। बिलोना। २. अवगाहन। खूब डूब डूबकर तत्वों का पता लगाना। ३. मथानी। ४. रगड़ से आग पैदा करना (को०)।

मंथनघट—संज्ञा पुं० [सं० मन्थनघट] [स्त्री० मंथनघटी] दही मथने का घड़ा या मटका [को०]।

मंथनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्थनी] दही मथने का पात्र। मटकी या मटका [को०]।

मंथपर्वत—संज्ञा पुं० [सं० मन्थपर्वत] मंदराचल। मंदर पर्वत।

मंथर[1]—संज्ञा पुं० [सं० मन्थर] १. बाल का गुच्छा। २. कोष। खजाना। ३. फल। ४. बाधा। अवरोध। रोक। ५. मथानी। ६. कोप। गुस्सा। ७. दूत। गुप्तचर। ८. वैशाख का महीना। ९. दुर्ग। १०. भँवर। ११. हरिण। १२. एक प्रकार का ज्वर। मंथ ज्वर। विशेष दे० 'मथ'-१४। १३. कुसुंभ। वह्निशिख (को०)। १४. मक्खन।

मंथर[2]—वि० १. मट्ठर। मंद। सुस्त। २. जड़। मंदबुद्धि। ३ भारी। स्थूल। ४. झुका हुआ। टेढ़ा। ५. नीच। अधम। ६. बड़ा। लंबा चौड़ा (को०)। ७. व्यक्त करनेवाला। सूचक (को०)।

मंथरगति—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्थर+गति] धीमी चाल। मंद मंद संचरण [को०]।

मंथरविवेक—वि० [सं० मन्थरविवेक] जो शीघ्र निर्णय न कर पाए। शीघ्र निर्णय करने में धीमा [को०]।

मंथरा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्थरा] १. रामायण के अनुसार कैकेयी की एक दासी। उ०—नाम मंथरा मंदमति चेरि कैकयी केरि।—मानस।

विशेष—यह दासी कैकेयी के साथ उसके मायके से आई थी। इसी के बहकाने पर कैकेयी ने रामचंद्र को वनवास और भरत को राज्य देने के लिये महाराज दशरथ से अनुरोध किया था।

२. युक्तिकल्पतरु के अनुसार १२० हाथ लंबी, ६० हाथ चौड़ी और ३० हाथ ऊँची नाव।

मंथरित—वि० [सं० मन्थरित] मंथर किया हुआ। मंद किया हुआ [को०]।

मंथरु—संज्ञा पुं० [सं० मन्थरु] चँवर की वायु।

मंथा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्था] १. मेथी। २. यज्ञ में घर्षण द्वारा अग्नि उत्पन्न करने का एक यंत्र। मंथायंत्र।

मंथाचल, मंथाद्रि—संज्ञा पुं० [सं० मन्थाचल, मन्थाद्रि] मंदर पर्वत। मंदराचल [को०]।

मंथान—संज्ञा पुं० [सं० मन्थान] १. मथानी। २. मंदर नामक पर्वत। ३. महादेव। ४. अमलतास। ५. एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो तगण होते हैं। उ०—बाणी कही बान। कीन्ही न सो कान। अद्यापि आनीन। रे वंदिकानीन।—केशव (शब्द०)। ६. भैरव का एक भेद।

मंथानक—संज्ञा पुं० [सं० मन्थानक] एक तरह की घास।

मंथिता—वि० [सं० मन्थितृ] [स्त्री० मन्थित्री] मथनेवाला।

मंथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्थिनी] माठ। मटका।

मंथिप—वि० [सं० मन्थिप] मथा हुआ सोमरस पीनेवाला।

मंथी[1]—वि० [सं० मन्थिन्] १. मथनेवाला। २. पीड़ाकारक। ३. मथनयुक्त।

मंथी[2]—संज्ञा पुं० १. मथा हुआ सोमरस। २. चंद्रमा। ३. मदन। ४. ग्राह। ५. राहु। उ०—मंथी ससि मंथी मदन मंथी ग्राह प्रचंड। मंथी बहुरो राहु है जो हरि कियो विखंड।—अनेकार्थ०, पृ० १५०।

मंथोदक, मंथोदधि—संज्ञा पुं० [सं० मन्थोदक, मन्थोदधि] क्षीरसमुद्र। क्षारसागर [को०]।

मंद—वि० [सं० मन्द] १. धीमा। सुस्त।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

२. ढीला। शिथिल। ३. आलसी। ४. मूर्ख। कुबुद्धि। ५. खल। दुष्ट। उ०—है प्रचंड अति पीन तैं, रुकत नहीं मन मंद। जो लौं नाहीं कृपाकर, बरजत है व्रज चंद।—स० सप्तक, पृ० ३४३। ६. क्षाम। कृश। क्षीण। जैसे, मंदोदरी। ७. कमजोर। दुर्बल। जैसे, मंदाग्नि। ८. मृदु। धीमा। जैसे, मंदभाषी। ९. अल्प।—अनेकार्थ०, पृ० १५१।

मंद[2]—संज्ञा पुं० १. वह हाथी जिसकी छाती और मध्य भाग की वलि ढीली हो, पेट लंबा, चमड़ा मोटा, गला, कोख और पूँछ की चँवरी मोटी हो तथा जिसकी दृष्टि सिंह के समान हो। २. शनि।

यौ०—मंदजननी=शनैश्चर की माता जो सूर्य की स्त्री थी।

३. यम। ४. अभाग्य। ५. प्रलय। ६. पाप।—अनेकार्थ०, पृ० १५१।

मंद[3]—संज्ञा पुं० [सं० मद्य, हिं० मद] दे० 'मद्य'। उ०—का वासंदर सेवियइ कइ तरुनी कइ मंद।—ढोला०, दू० २९४।

मंदऊ—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े का एक रोग जिसमें उसके गले के पास की हड्डी में सूजन आ जाती है।

मंदक—वि० [सं० मन्दक] १. मूर्ख। निर्बोध। २. जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि विकारों से शून्य हो (को०)।

मंदकर्णि—संज्ञा पुं० [सं० मन्दकर्णि] एक ऋषि का नाम।

मंदकर्मा—वि० [सं० मन्दकर्मन्] धीरे धीरे काम करनेवाला। आलसी (को०)।

मंदकांति—संज्ञा पुं० [सं० मन्दकान्ति] चंद्रमा (को०)।

मंदकारी—वि० [सं० मन्दकारिन्] १. मूर्खतापूर्ण कार्य करनेवाला। २. धीरे धीरे काम करनेवाला। आलसी (को०)।

मंदग[1]—वि० [सं० मन्दग] [स्त्री० मंदगा] धीमा चलनेवाला।

मंदग[2]—संज्ञा पुं० १. महाभारत के अनुसार शक द्वीप के अंतर्गत चार जनपदों में से एक। २. मदग्रह। शनि जिनकी गति धीमी है (को०)।

मंदगति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दगति] ग्रहों की गति की वह अवस्था जब वे अपनी कक्षा में घूमते हुए सूर्य से दूर निकल जाते हैं।

मंदगति[2]—वि० धीमी चालवाला (को०)।

मंदगमन, मंदगामी—वि० [मन्दगमन, मन्दगामिन्] दे० 'मंदगति'।

मंदचेता—वि० [सं० मन्दचेतस्] बेवकूफ। मदबुद्धि (को०)।

मंदच्छाय—वि० [सं० मन्दच्छाय] धुँधला। हततेज (को०)।

मंदट—संज्ञा पुं० [सं० मन्दट] देवदारु।

मंदता—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दता] १. आलस्य। २. धीमापन। ३. क्षीणता।

मंदत्व—संज्ञा पुं० [सं० मन्दत्व] दे० 'मंदता'।

मंदधी—वि० [सं० मन्दधी] कमअक्ल। मोटी बुद्धिवाला (को०)।

मंदधूप—संज्ञा पुं० [हिं० मंद+धूप] काला धूप। काला डामर। दे० 'डामर'।

मंदन—संज्ञा पुं० [हिं० मंद+न (प्रत्य०)] धीमापन। उ०—ऊपर जाते समय वेग का मदन होता है।—भौतिक०, पृ० ४६।

मंदपरिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दपरिधि] मंदोच्च वृत्त।

मंदफल—संज्ञा पुं० [सं० मन्दफल] १. गणित ज्योतिष में ग्रहगति का एक भेद। २. वह जिसका फल या परिणाम विलंब से मिले (को०)।

मंदबुद्धि—वि० [सं० मन्दबुद्धि] दे० 'मंदधी'।

मंदभागी—वि० [सं० मन्दभागिन्] [वि० स्त्री० मंदभागिनी] अभागा। हतभाग्य। उ०—नातरु हम मंदभागी आपके स्वरूप कों कहा जानतें?—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २६६।

मंदभाग्य—वि० [सं० मन्दभाग्य] दुर्भाग्य। अभाग्य।

मंदमंद—क्रि० वि० [सं० मन्दम्मन्दम्] धीमी गति से। धीरे धीरे।

मंदमति—वि० [सं० मन्दमति] कम अकल। हतबुद्धि। मोटी अकलवाला। उ०—सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा।—मानस, १।१००।

मंदयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दयन्ती] दुर्गा।

मंदर[1]—संज्ञा पुं० [सं० मन्दर] १. पुराणानुसार एक पर्वत जिससे देवताओं ने समुद्र को मथा था। मथ पर्वत। मंदराचल। उ०—धारन मंदर सुंदर साँवरे, आय बसो मन मंदिर मेरे।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २८६। २. मंदार। ३. स्वर्ग। ४. मोती का बड़ा हार जिसमें आठ या सोलह लड़ियाँ हों।—बृहत्संहिता, पृ० ३८५। ५. मुकुर। दर्पण। आईना। ६. कुशद्वीप के एक पर्वत का नाम। ७. बृहत्संहिता के अनुसार प्रासादों के बीस भेदों में दूसरा। वह प्रासाद जो छकोना हो और जिसका विस्तार तीस हाथ हो। इसमें दस भूमिकाएँ और अनेक कँगूरे होते हैं। ८. एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण (ऽ।।) होता है।

मंदर[2]—वि० १. मंद। धीमा। २. मठा।

मंदरⓅ†[3]—संज्ञा पुं० [सं० मन्दिर] दे० 'मंदिर'। उ०—सुरति गही जब मंदर चीना।—प्राण०, पृ० ३१।

मंदरगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंदराचल पर्वत। २. एक छोटे पहाड़ का नाम जो मुंगेर के पास है।

विशेष—इस पर्वत पर हिंदुओं, जैनों और बौद्धों के अनेक मंदिर हैं और सीताकुंड नामक प्रसिद्ध गरम जल का कुंड है।

मंदरवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दरवासिनी] दुर्गा (को०)।

मंदरा—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] एक वाद्य। उ०—मंदरा तबल सुमरू खंजरी ढोलक धामक।—सूदन (शब्द०)।

मंदल[1]—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] दे० 'मंदरा'।

मंदल[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घेरा। अहाता। मंडल (को०)।

मंदलाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० मंदरा] दे० 'मदरा'। उ०—सुनि मंडल में मंदला बाजै। तहाँ मेरा मन नाचै।—कबीर ग्रं०, पृ० ११०।

मंदविभव—वि० [सं० मन्दविभव] गरीब। दरिद्र। अकिंचन (को०)।

मंदवीर्य—वि० [सं० मन्दवीर्य] दुर्बल। कमजोर (को०)।

मंदसमीर, मंदसमीरण—संज्ञा पुं० [सं० मन्दसमीर, मन्दसमीरण] हलकी हलकी एवं सुखदायिनी वायु (को०)।

मंदसान—संज्ञा पुं० [सं० मन्दसान] १. अग्नि। आग। २. प्राण। ३. निद्रा। नींद।

मंदसानु—संज्ञा पुं० [सं० मन्दसानु] १. स्वप्न। २. जीव। ३. दे० 'मंदसान' (को०)।

मंदस्मित—संज्ञा पुं० [सं० मन्दस्मित] हलकी मुसकान। उ०—प्रतिमा का मंदस्मित परिचय संस्मारक।—तुलसी०, पृ० ६।

मंदहास, मंदहास्य—संज्ञा पुं० [सं० मन्दहास, मन्दहास्य] दे० 'मंदस्मित' (को०)।

मंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दा] १. सूर्य की वह संक्रांति जो उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी नक्षत्र

में पड़े। ऐसी संक्रांति मे संक्रमणानंतर तीन दंड तक पुण्यकाल होता है। २. वल्लीकरंज। लताकरंज।

मंदा²—वि० [सं० मन्द] [स्त्री० मंदी] १. धीमा। मंद।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

२. ढीला। शिथिल। ३. सामान्य मूल्य से कम मूल्य पर बिकनेवाला। जो महँगा न हो। जिसका दाम थोड़ा हो। सस्ता। उ०—मधुकर ह्याँ नाहिन मन मेरो......। जो सीखै ता बिनु सुनुसूरज योगज काहे केरो। मंदो परेउ सिधाउ अनत लै यहि निर्गुण मत मेरो।—सूर (शब्द०)। ४. खराब। निकृष्ट। उ०—योग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रमफंदा।—तुलसी (शब्द०)। ५. बिगड़ा हुआ। नष्ट। भ्रष्ट।

मंदाइण(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दाकिनी] दे० 'मंदाकिनी'। उ०—काटल आवध मूझ कर मन मदाइण अन्न।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पु० २८।

मंदाक—संज्ञा पुं० [सं० मन्दाक] १. प्रवाह। धारा। २. प्रार्थना। स्तवन [को०]।

मंदाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दाकिनी] १. पुराणानुसार गंगा की वह धारा जो स्वर्ग मे है। ब्रह्मवैवर्त के अनुसार इसकी धार एक अयुत योजन लंबी है। २. आकाशगंगा। ३. एक छोटी नदी का नाम जो हिमालय पर्वत मे उत्तर काशी में बहती है और भागीरथी में मिलती है। ४. महाभारत, रामायण आदि के अनुसार एक नदी का नाम जो चित्रकूट के पास बहती है। इसे अब पयस्विनी कहते हैं। उ०—राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु। तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु।—तुलसी (शब्द०)। ५. हरिवंश के अनुसार द्वारका के पास की एक नदी का नाम। ६. संक्रांति के सात भेदों मे से एक। ७. बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण मे दो नगण और दो रगण होते हैं (।।।, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)।

मंदाक्रांता—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दाक्रान्ता] सत्रह अक्षरों के एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में मगण, भगण, नगण और तगण तथा अंत में दो गुरु (ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ) होते हैं। अर्थात् ५, ६, ७, ८ और ९ तथा १२ और १३ अक्षर लघु और शेष गुरु होते हैं। जैसे,—मेरी भक्ती सुलभ तिहिं, को शुद्ध, है बुद्धि, जाकी।

मंदाक्ष¹—वि० [सं० मन्दाक्ष] १. कमजोर दृष्टिवाला। २. संकुचित दृष्टिवाला। शर्मीला। लजीला [को०]।

मंदाक्ष²—संज्ञा पुं० लज्जा। शर्म।

मंदाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दाग्नि] एक रोग जिसमें रोगी की पाचनशक्ति मंद पड़ जाती है और अन्न नहीं पचा सकती। बदहजमी। अपच।

विशेष—हारीत का मत है कि मंदाग्नि वात और श्लेष्मा से होती है। माधवनिदान के मत से कफ की अधिकता से मंदाग्नि होती है। इस रोग मे अन्न न पचने के अतिरिक्त रोगी का सिर और उदर भारी रहता है, उसे मतली आती है, शरीर शिथिल रहता है और पसीना आता है। यह रोग दुःसाध्य माना जाता है।

मंदात्मा—वि० [सं० मन्दात्मन्] १. मंद विचारवाला। मूर्ख। निम्नोच [को०]।

मंदादर—वि० [सं० मन्दादर] उपेक्षा करनेवाला। आदर न करनेवाला [को०]।

मंदान—संज्ञा पुं० [?] जहाज का अगला भाग। (लश०)।

मंदानल—संज्ञा पुं० [सं० मन्दानल] मंदाग्नि।

मंदानिल—संज्ञा पुं० [सं० मन्दानिल] धीमी हवा। मंद वायु।

मंदाना†—क्रि० अ० [हिं० मंदा + ना (प्रत्य०)] मद पड़ना। धीमा होना। मंदा होना।

मंदामणि—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दामणि] मिट्टी का बड़ा पात्र या झारी [को०]।

मंदार—संज्ञा पुं० [सं० मन्दार] १. स्वर्ग के पाँच वृक्षो मे से एक देववृक्ष। २. फरहद का पेड़। नहसुत। ३. आक। मदार। ४. स्वर्ग। ५. हाथी। ६. धतूरा। ७. हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम। ८. मंदराचल पर्वत। १०. विंध्य पर्वत के किनारे के एक तीर्थ का नाम।

मंदारक—संज्ञा पुं० [सं० मन्दारक] दे० 'मंदार' [को०]।

मंदारमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दारमाला] १. बाईस अक्षरो के एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात तगण और अंत में एक गुरु होता है। जैसे,—मेरी कही मान ले मीत तू, जन्म जावै वृथा आपको तार ले। २. मंदार के पुष्पो की माला (को०)।

मंदारव—संज्ञा पुं० [सं० मन्दारव] मंदार का वृक्ष। मंदार [को०]।

मंदारषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दारषष्ठी] एक व्रत जो माघ शुक्ल षष्ठी के दिन पड़ता है।

मंदारसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दारसप्तमी] माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि [को०]।

मंदारु—संज्ञा पुं० [सं० मन्दारु] मंदार। मदार [को०]।

मंदालसा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मदालसा'।

मंदिकुक्कुर—संज्ञा पुं० [सं० मन्दिकुक्कुर] एक प्रकार की मछली।

मंदिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दिमन्] शिथिलता। सुस्ती। मंदता। ढीलापन [को०]।

मंदिर—संज्ञा पुं० [सं० मन्दिर] १. वासस्थान। २. घर। उ०—जंसवे मंदिर देहली धनि पैक्खिअ सानंद।—कीर्ति०, पृ० ३२। ३. देवालय। ४. नगर। ५. शिविर। ६. शालिहोत्र के अनुसार घोड़े की जाँघ का पिछला भाग। ७. समुद्र। ८. शरीर (को०)। ९. एक गंधर्व का नाम।

मंदिरपशु—संज्ञा पुं० [सं० मन्दिरपशु] बिल्ली।

मंदिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दिरा] १. घोड़साल । मंदुरा । अश्वशाला । २. मजीरा नामक बाजा ।

मंदिल‡(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मन्दिर] १. घर । उ०—धर्मराय की गति नहीं जानी । हर मदिल उपजाग्रो ग्रानी ।—कबीर सा०, पृ० १३ । २. देवालय । ३. प्रत्येक रुपए या थान आदि के पीछे दाम मे से काटा जानेवाला वह अल्प धन जो किसी मंदिर या धार्मिक कृत्य के लिये दूकानदार दाम देते समय काटते हैं ।

क्रि० प्र०—कटना ।—काटना ।

मंदिलरा†—संज्ञा पुं० [सं० मर्दल] दे० मर्दल' । उ०—(क) मंदिलरा री बाजे अति ही गहगहे प्रगट भए या अवध नगर मैं रामचद्र वर आजै ।—घनानद, पृ० ५५१ । (ख) आजु मदिलरा दसरथ राय के बाजै रंग बधाई है ।—घनानद, पृ० ५५१ ।

मंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मंद] भाव का उतरना । महँगी का उलटा । सस्ती ।

मंदीर—संज्ञा पुं० [सं० मन्दीर] १. एक ऋषि का नाम । २. मजीर ।

मंदील—संज्ञा पुं० [हिं० मुंड] १. एक प्रकार का सिरबंद जिसपर काम बना रहता है । २. एक प्रकार का कामदार साफा ।

मंदुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दुरा] १. अश्वशाला । घोड़साल । २. बिछाने की चटाई ।

यौ०—मंदुरापति, मंदुरापाल=अश्वशाला का प्रधान साईस । मंदुराभूषण=एक प्रकार का बंदर ।

मंदुरिक—संज्ञा पुं० [सं० मन्दुरिक] साईस ।

मंदोच्च—संज्ञा पुं० [सं० मन्दोच्च] ग्रहों की एक गति जिससे राशि आदि का संशोधन करते हैं ।

मंदोदरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दोदरी] रावण की पटरानी का नाम । यह मय की कन्या थी । उ०—मदोदरी स्रवन ताटंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ।—मानस, ६।१३ ।

मंदोदरी[2]—वि० सूक्ष्म पेटवाली । कृशोदरी ।

मंदोष्ण—वि० [सं० मन्दोष्ण] आधा गरम । कुछ गरम । गुनगुना । कुनकुना [को०] ।

मंद्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० मन्द्र] १. गंभीर ध्वनि । २. संगीत में स्वरों के तीन भेदों में से एक । इस जाति के स्वर मध्य से अवरोहित होते हैं । इसे उदारा वा उतार भी कहते हैं । ३. हाथी की एक जाति का नाम । ४. मृदंग ।

मंद्र[2]—वि० १. मनोहर । सुंदर । २. प्रसन्न । हृष्ठ । ३. गंभीर । उ०—गरजो हे मंद्र वज्र स्वर । थर्राए भूधर भूधर । —अपरा, पृ० ३० । ४. धीमा (शब्द आदि) । उ०—मंद्र चरण मरण ताल ।—अर्चना, पृ० ४० ।

यौ०—मंद्रध्वनि=गंभीर या धीमी आवाज । मंद्रस्वन=दे० 'मंद्रध्वनि' ।

मंद्राज—संज्ञा पुं० [सं० मन्द्र] [स्त्री० मंद्राजिन] दक्षिण का एक प्रधान नगर जो पूर्वी घाट के किनारे पर है । मद्रास । इस नाम से दक्षिण का पूर्वी प्रदेश भी ख्यात है । उ०—अभी मंद्राज प्रदेश मे ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० २०६ ।

मंद्राजी—वि० [हिं० मद्राज] १. मंद्राज में उत्पन्न वा रहनेवाला । २. मद्राज सबधी । ३. मद्राज का बना हुआ । जैसे, मद्राजी दुपट्टा ।

मंनना(पु)‡—क्रि० अ० [हिं० मानना] स्वीकार करना । दे० 'मानना' । उ०—(क) किहि मंनी अमनी मुकिहि त्रिविधि जानि संसार ।—पृ० रा०, ६।१४६ । (ख) कही चित्त मकवान नै नह मनी सुरतान ।—पृ० रा०, १२।१४४ ।

मंशा—संज्ञा स्त्री० [अ०] कामना । इच्छा । इरादा । जैसे,—मेरी मंशा तो यही थी कि सब लोग वहाँ चलते ।

मंपन†—संज्ञा पुं० [सं० म्रक्षण] दे० 'मक्खन' । उ०—लगे गुर्ज सीसं भजी भंति छुट्टं । मनो मंपन दद्धि मथान उट्टं । —पृ० रा०, १३।६० ।

मंस†—संज्ञा पुं० [सं० मांस] दे० 'मास' । उ०—अप मस अप्प कर कट्टि कै चील्हाँ हंकि उड़ाइयाँ ।—पृ० रा०, १।६६८ ।

मंसना†—क्रि० स० [सं० मनस्] १. इच्छा करना । मन में संकल्प करना । २. दे० 'मनसना' ।

मंसब—संज्ञा पुं० [अ०] १. पद । स्थान । पदवी । २. काम । कर्तव्य । ३. अधिकार ।

मंसा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मनस्] १. इच्छा । चाहना । अभिरुचि । उ०—कह गिरधर कविराय केलि की रही न मंसा ।—गि० दा० (शब्द०) । २. संकल्प । ३. आशय । अभिप्राय ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत 'मनस्' से निकला है पर कुछ लोग भ्रमवश इसे अरबी 'मंशा' से निकला हुआ समझते हैं ।

मंसा[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है । मकड़ा । विशेष दे० 'मकड़ा' ।

मंसूख—वि० [अ०] खारिज किया हुआ । रद । काटा हुआ ।

मंसूब—वि० [अ०] जिसकी किसी के साथ मँगनी हुई हो । संबधित । उ०—भाई की दुख्तरे नेक अख्तर मेरे साले के भतीजे से मसूब हुई है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६ ।

मंसूबा—संज्ञा पुं० [अ० मन्सूबा] दे० मनसूबा' ।

मंसूर[1]—वि० [अ०] १. विजेता । विजयी । २. अनविधा मोती । ३. विकीर्ण । बिखरा हुआ [को०] ।

मंसूर[2]—संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध मुसलमान साधु । विशेष दे० 'मनसूर' । उ०—या कि फिर मंसूर सा दुल्हा मिले । मधुर यौवन फूल शूली पर खिले ।—हिम कि०, पृ० १४६ ।

मँगता†—संज्ञा पुं० [हिं० मांगना] भिक्षुक । याचक । भिखमंगा ।

मँगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० माँगन+ई (प्रत्य०)] १. माँगने की क्रिया या भाव । २. वह पदार्थ जो किसी से इस शर्त पर माँगकर लिया जाय कि कुछ समय तक काम लेने के उपरांत

फिर लौटा दिया जायगा। जैसे, मँगनी की गाड़ी, मँगनी की किताब। ३. इस प्रकार माँगने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—लेना।

४. विवाह के पहले की वह रस्म जिसके अनुसार वर और कन्या का संबंध निश्चित होता है। जैसे, चट मँगनी, पट ब्याह। उ०—धत्, मेरी मँगनी हो गई है, देखते नहीं यह रेशमी बूटे का सालू।—गुलेरी।

विशेष—साधारणतः वर पक्ष के लोग कन्या पक्षवालों से विवाह के लिये कन्या माँगा करते हैं, और जब वर तथा कन्या के विवाह की बात चीत पक्की होती है, तब उसे मँगनी कहते हैं। इसके कुछ दिनों के उपरांत विवाह होता है। मँगनी केवल सामाजिक रीति है, कोई धार्मिक कृत्य नहीं है। अतः एक स्थान पर मँगनी हो जाने पर संबंध छूट सकता है और दूसरी जगह विवाह हो सकता है।

मँगलाय—संज्ञा पुं० [दलाली मंग (=आठ) + आय (प्रत्य०)] अठारह की संख्या। (दलाल)।

मँगवाना—क्रि० स० [हिं० माँगना का प्रे० रूप] १. माँगने का काम दूसरे से कराना। किसी को माँगने में प्रवृत्त करना। जैसे,—तुम्हारे ये लक्षण तुमसे भीख मँगवाकर छोड़ेंगे। २. किसी को कोई चीज मोल खरीदकर या किसी से माँगकर लाने में प्रवृत्त करना। जैसे,—(क) अगर मैं किताब मँगवाऊँ तो भेज दीजिएगा। (ख) एक रुपए की मिठाई मँगवा लो।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।—लेना।

मँगाना—क्रि० स० [हिं० माँगना का प्रे० रूप] १. दे० 'मँगवाना'। २. मँगनी का संबंध कराना। विवाह की बातचीत पक्की कराना।

मँगेतर—वि० [हिं० मँगनी+एतर (प्रत्य०)] जिसकी किसी के साथ मँगनी हुई हो। किसी के साथ जिसके विवाह की बातचीत पक्की हो गई हो।

मँगोल—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति। विशेष दे० 'मंगोल'।

मँजना—क्रि० अ० [सं० मज्जन] १. रगड़कर साफ किया जाना। माँजा जाना। २. किसी कार्य को ठीक तरह से करने की योग्यता या शक्ति आना। अभ्यास होना। मश्क होना। जैसे, लिखने में हाथ मँजना।

मँजल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० मंजिल] दे० 'मंजिल'। उ०—ये सराइ छिन चारि मुकामा। रहना नाहिं मँजल जो जाना।—घट०, पृ० ३००।

मँजाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० माँजना] १. माँजने की क्रिया या भाव। २. माँजने की मजदूरी।

मँजाना¹—क्रि० स० [हिं० माँजना का प्रे० रूप] माँजने का काम दूसरे से कराना। किसी को माँजने में प्रवृत्त करना।

मँजाना²(पु)—क्रि० स० माँजना। मलकर साफ करना। उ०—सूत मी कया मँजाई। सीझा काय विनत विधि पाई।—जायसी (शब्द०)।

मँजारि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जार] दे० 'मार्जार'। उ०—पिंजर महँ जो परेवा घेरा। आइ मँजारि कीन्ह तहँ फेरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३६।

मँजावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० मँजना] माँजने या मँजने का भाव। २. माँजने या मँजने की क्रिया। ३. किसी काम में हाथ का मँजना। हाथ की सफाई।

मँजीठ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मंजिष्ठा] 'मजीठ'। उ०—भए मजीठ पानन्ह रँग लागे। कुसुम रंग थिर रहा न आगे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६०।

मँजीरा—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जीर] १. दे० 'मजीरा'। २. नुपुर। उ०—बाइन बाजत, मधु मँजीरा।—नंद० ग्रं०, पृ० १३६।

मँजूषा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जूषा] दे० 'मंजूषा'। उ०—कीरति हंस मँजूष प्रगट भई सुख सोभा निधि है हो।—घनानंद, पृ० ४८७।

मँजूसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जूषा] दे० 'मंजूषा'। उ०—चोर पुकारि भेद गढ़ मूँसा। खोलै राजभँडार मँजूसा।—पदमावत, पृ० २८०।

मँझा†—अव्य० [सं० मध्य] बीच में। उ०—मंझ पदमावति कर जो बेवानु। जनु परभात परे लखि भानु।—जायसी ग्रं०, पृ० १४७।

मँझदार†—संज्ञा स्त्री० [सं० मध्यधारा] दे० 'मझधार'। उ०—हमें मँझदार में छोड़कर सुरपुरी को सिधार गए।—मान०, पृ० २८४।

मँझधार—संज्ञा स्त्री० [हिं० मझ+धार] दे० 'मझधार'।

मँझला—वि० [सं० मध्य हिं० मझ+ला (प्रत्य०)] मध्य का। बीच का। जो दो के बीच में हो।

मँझार†—क्रि० वि० [सं० मध्य] मध्य में। बीच में। उ०—अहंकार कौन तें है जाको महत्तत्व कहै महत्तत्व कौन तें है प्रकृति मँझार तें।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ५९४।

मँझियाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मझियाना'।

मँझियार—वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य का। बीच का। उ०—नव द्वारा राखे मँझियारा। दसवें मूँदि कै दिएउ किवारा।—जायसी (शब्द०)।

छूटि हो सुनु रे जीव अबूझ। कबिरा मँड मैदान में, करि इंद्रिन सो जूझ।—कबीर सं०, पृ० २६।

मँडप (पु)—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] दे० 'मंडप'। उ०—भीतर मँडप चारि खँभ लागे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३१।

मँडर—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] दे० 'मंडल'। उ०—तारा मँडर पहिर भल चोला। पहिरे ससि जस नखत अमोला।—जायसी ग्रं०, पृ० २४५।

मँडरना—क्रि० अ० [सं० मण्डल] मंडल बाँधकर छा जाना। चारों ओर से घेर लेना। उ०—भाँभ ताल सुर मडरे रंग हो हो होरी।—सूर (शब्द०)।

मँडराना—क्रि० अ० [सं० मण्डल] १. मंडल बाँधकर उड़ना। किसी वस्तु के चारो ओर घूमते हुए उड़ना। चक्कर देते हुए उड़ना। जैसे चील का मँडराना। उ०—हंस को मैं अश रास्यो काग कित मँडराय?—सूर (शब्द०)। २. किसी के चारो ओर घूमना। परिक्रमण करना। उ०—मडप ही में फिरै मँडरात है न जात कहूँ तजि को ओनो।—पद्माकर (शब्द०)। ३. किसी के आस पास ही घूम फिरकर रहना। उ०—देखहु जाय और काहू को हरि पै सबै रहति मँडरानी।—सूर (शब्द०)।

मँडरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पयाल की चटाई। दे० 'मंडरी'।

मँडवा—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप, प्रा० मंडव] मँडप।

मँडाण—संज्ञा पुं० [हिं० मण्डल] दे० 'मंडन'। उ०—माँडचा सो दह जायगा, माटी तणा मँडाण।—राम० धर्म०, पृ० ६५।

मँडान (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मंडल] दे० 'मंडन'। उ०—कबीर थोड़ा जीवना माँडै बहुत मँडान।—कबीर सा०, पृ० ६।

मँडाना‡—क्रि० स० [देश०] लिखाना। उ०—उन वैष्णवन पास तें खत तो मँडाइ लेते।—दो सौ बावन०, भा०, पृ० २३५।

मँडार†—संज्ञा पुं० [हिं० मंडल] १. गड्ढा। २. भाबा। डलिया। उ०—सुग्रहिं को पूछ पतग मँडारे। चल न देख आछे मन मारे।—जायसी (शब्द०)।

मँड़ियार—संज्ञा पुं० [देश०] झरबेरी नामक कँटीली झाड़ी।

मँडुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कदन्न।

मँडुका—संज्ञा स्त्री० [सं० मृद्वीका] दाख। अंगूर। उ०—माठी, मँडुका, मधुरसा, कालपेलका होइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४।

मँडैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डपी] दे० 'मड़ैया'। उ०—धर्ती त्याग अकास को त्यागे अधर मँड़ैया छावे।—कबीर० श०, भा०, पृ० ४६।

मँढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ना] दे० 'मंढा'।

मँदचाला†—वि० [सं० मंद+चाल] मदचालवाला। खोटी चाल का। उ०—देखु यह सुग्रटा है मँदचाला।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७६।

मँदरा—वि० [सं० मन्दर, मि० पं० मदरा (=नाटा)] [वि० स्त्री० मँदरी] नाटा। ठिगना। उ०—स्त्रियाँ नाटी मँदरी और मर्दों से भी जियादा मजबूत होती हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मँदरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] खाजे की जाति का एक पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के सामान तथा गाड़ियाँ बनाने के काम आती है। छाल से चमड़ा सिझाया जाता है, फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ पशुओं के चारे के काम आती हैं। इसी की जाति का एक और पेड़ होता है जिसे गेंडली कहते हैं। इसकी छाल पर, जब वे छोटे रहते हैं, काँटे होते हैं; पर ज्यों ज्यों यह बड़ा होता है, छाल साफ होती जाती है। इसकी लकड़ी की तौल प्रति घनफुट २० से ३० सेर तक होती है। इसके बीज बरसात में बोए जाते हैं।

मँदरी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] अहीरों का एक खेल जिसमें वे लाठी के पैतरों के साथ, नगाड़े की ध्वनि पर, विशेषतः कार्तिक मास की रात्रियों में खेलते हैं और अन्नकूट महोत्सव के दिन खेलते हुए झुंड के साथ दुर्गा देवी का दर्शन करते हैं। (प्रचलित)।

मँदला†—संज्ञा पुं० [हिं० मदल] दे० मंदल'।

मँदलिया†—संज्ञा पुं० [हिं० मंदल+इया (प्रत्य०)] मंदरा नामक वाद्य बजानेवाला। उ०—धोल मँदलिया बैल रबाबी कउवा ताल बजावै।—कबीर ग्रं०, पृ० ६२।

मँदिर (पु)—संज्ञा पुं० [सं० मन्दिर] दे० 'मंदिर'। उ०—मँदिर मँदिर फुलवारी चोवा चदन बास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १४६।

मँदिराचल (पु)—संज्ञा पुं० [सं० मन्दराचल] दे० 'मंदर'। उ०—मँदिराचल वल विपुल पुल थल थरहर हल पाल।—पृ० रा०, ३।१०५।

मँदिल (पु)—संज्ञा पुं० [सं० मन्दिर] दे० 'मंदिर'। उ०—दिया मँदिल निसि करै अजोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० २१८।

मँनिरा‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मनिहार'। उ०—कोंन दिसा तें मँनिरा आइ ए और कोंन दिसा कूँ जाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९४३।

मँसुखवा (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मांस+खाना] मांसाहारी।

मँहगा†—वि० [सं० महार्घ] अधिक मूल्य पर बिकनेवाला। उचित से अधिक मूल्य का।

मँहगाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मँहगा+ई (प्रत्य०)] १. दे० 'महँगी'। उ०—मँहगाई के जमाने में भूखों मरने की नौबत—फूलो०, पृ० ९८। २. वस्तुओं के बढ़े हुए भाव का ध्यान रखकर नौकरी पेशा के लोगों को अतिरिक्त मिलनेवाली रकम।

मँहदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मेंहँदी'। उ०—बिरी अधर अंजन नयन, मँहदी पग अरु पानि।—मति० ग्रं०, पृ० ४२९।

मँहैं(पु)—अव्य० [सं० मध्य] मध्य । में । उ०—पलटू ऐसे घर महँ, बड़े मरद जे जाहिं । यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं ।—पलटू० भा० १, पृ० ३३ ।

म¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. चंद्रमा । ३. ब्रह्मा । ४. यम । ५. समय । ६. विष । जहर । ७. मधुसूदन । ८. छंदःशास्त्र में एक गण । मगण । ९. संगीत में एक स्वर । मध्यम । १०. जल । पानी (को०) । सौभाग्य । प्रसन्नता (को०) ।

म(पु)²—अव्य० [हिं० महँ] दे० 'में' । उ०—ठाढ़ि जो हौं वाट म, साहेब चलि आवो ।—धरम० श०, पृ० २३ ।

म³—अव्य० [सं० मा] न । नहीं । उ०—कवि भ्रम भमर म सोचकर, सिमरि नाम अभिराम ।—रा० रू०, पृ० १ ।

मअनो—संज्ञा पुं० [सं० मदन प्रा० मयण, मअण] दे० 'मदन' । उ०—आज मोयँ देखलि बारा लुबुध मानस चालक मअन कर की परकारा । —विद्यापति, पृ० ३० ।

मआज—संज्ञा स्त्री० [अ० मआज़] शरण । आश्रय । उ०—बँदा हूँ उसी का वही ठार मआज ।—दक्खिनी०, पृ० ७२ ।

मइँ‡—सर्व० [अप०] दे० 'मैं' ।

मइका‡—संज्ञा पुं० [सं० मातृक] दे० 'मायका' या 'मैका' ।

मइमंत(पु)—वि० [सं० मदमत्त, प्रा० मअमत्त] मदोन्मत्त । मतवाला । दे० 'मैमंत' । उ०—जोवन अस मइमंत न कोई । नवँइ हसति जउ आँकुस होई ।—जायसी (शब्द०) ।

मइया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० माता] दे० 'मैया' । उ०—भूखे आहि बलि गई मइया । घर चलिहै मेरो भलो कन्हइया ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५५ ।

मई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० मयी] १. मय जाति की स्त्री । २. ऊँटनी ।

मई²—संज्ञा स्त्री० [अं० मे] अँगरेजी का पाँचवाँ महीना जो अप्रैल के उपरांत और जून से पहले आता है । यह सदा ३१ दिन का होता है और प्रायः वैशाख में पड़ता है ।

मई(पु)³—प्रत्य० [सं० मय का स्त्री० रूप] तद्रूप, विकार और प्राचुर्य अर्थों में प्रयुक्त एक तद्धित प्रत्यय । दे० 'मय²' । उ०—करम को गेह पंचभुत मई देह, नासमान एह, नेह काहे को बढ़ाइए ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४२३ ।

मउनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० मौना] काँस, मूज की बनी छोटा पिटारी । दे० 'मौनी२' ।

मउनी‡²—वि० [सं० मौनी] दे० 'मौनी' ।

मउर—संज्ञा पुं० [सं० मुकुट] फूलों का बना हुआ वह मुकुट या सेहरा जो विवाह के समय दूल्हे के सिर पर पहनाया जाता है । मौर ।

मउरछोराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मउर+छोड़ाई] १. विवाह के उपरात मौर खोलने की रस्म ।

विशेष—जब वर कोहबर में पहुँच जाता है, तब ससुराल की स्त्रियाँ उसको कुछ देकर मौर उतार लेती हैं और उसे दही गुड़ खिलाकर कुछ नगद देकर विदा करती हैं ।

२. वह धन जो वर को मौर खोलने के समय दिया जाता है ।

मउरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मौर] एक प्रकार का बना हुआ तिकोना छोटा मौर जो विवाह के समय कन्या के सिर पर रखा जाता है ।

मउलसिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मौलसिरी' ।

मउसी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० मासी] माता की बहिन । मासी । मौसी ।

मकई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्का] ज्वार नामक अन्न ।

मकड़ा¹—संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ी] बड़ी मकड़ी ।

मकड़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास । मधाना । खमकरा । मनसा ।

विशेष—यह बहुत शीघ्रता से बढ़ती है । यह पशुओं और विशेषतः घोड़ों के लिये बहुत पुष्टिकारक होती है । यह दस बरस तक सुखाकर रखी जा सकती है । कहीं कहीं गरीब लोग इसके बीज अनाज की भाँति खाते हैं ।

मकड़ाना—क्रि० अ० [हिं० मकड़ा या मक्कर] अकड़कर चलना । मकड़े की तरह चलना । इतराना ।

मकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्कटक या मर्कटी] १. एक प्रकार का प्रसिद्ध कीड़ा जिसकी सैकड़ों हजारों जातियाँ होती हैं और जो प्रायः सारे संसार में पाया जाता है ।

विशेष—इसका शरीर दो भागों में विभक्त हो सकता है । एक भाग में सिर और छाती तथा दूसरे भाग में पेट होता है । साधारणतः इसके आठ पैर और आठ आँखें होती हैं । पर कुछ मकड़ियों को केवल छह, कुछ को चार और किसी किसी को केवल दो ही आँखें होती हैं । इनकी प्रत्येक टाँग में प्रायः सात जोड़ होते हैं । प्राणिशास्त्र के ज्ञाता इसे कीट वर्ग में नहीं मानते; क्योंकि कीटों को केवल चार पैर और दो पंख होते हैं । कुछ जाति की मकड़ियाँ विषैली होती हैं और यदि उनके शरीर से निकलनेवाला तरल पदार्थ मनुष्य के शरीर से स्पर्श कर जाय, तो उस स्थान पर छोटे छोटे दाने निकल आते हैं जिनमें जलन होती है और जिनमें से पानी निकलता है । कुछ मकड़ियाँ तो इतनी जहरीली होती है कि कभी कभी उनके काटने से मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है । मकड़ी प्रायः घरों में रहती है और अपने उदर से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकालकर उसके तार से घर के कोनों आदि में जाल बनाती है जिसे जाल या झाला कहते हैं । उसी जाल में यह मक्खियाँ तथा दूसरे छोटे छोटे कीड़े फँसाकर खाती है । दीवारों की संधियों आदि में यह अपने शरीर से निकाले हुए चमकीले पतले और पारदर्शी पदार्थ का घर बनाती है और उसी में असंख्य अंडे देती है । साधारणतः नर से मादा बहुत बड़ी होती है और संभोग के समय मादा कभी कभी नर को खा जाती है । कुछ

मकड़ियाँ इतनी बड़ी होती हैं कि छोटे मोटे पक्षियों तक का शिकार कर लेती हैं। मकड़ियाँ प्रायः उछलकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती हैं। इनकी कुछ प्रसिद्ध जातियों के नाम इस प्रकार हैं—जगली मकडी, जल मकड़ी, राज-मकड़ी, कोष्टी मकड़ी, जहरी मकड़ी आदि।

२. मकड़ी के विष के स्पर्श से शरीर में होनेवाले दाने, जिनमें जलन होती है और जिनमें से पानी निकलता है।

मकतब—संज्ञा पुं० [अ०] छोटे बालकों के पढ़ने का स्थान। पाठशाला। चटसाल। मदरसा।

मुहा०—मकतब का यार=बचपन का साथी।

मकतबखाना—संज्ञा पुं० [अ० मकतबखानह्] दे० 'मकतब'। उ०—यही ठौर हुतो हाय वह मकतबखाना।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६।

विशेष—इसमें 'खाना' शब्द अधिक है क्योंकि मकतब का अर्थ ही पढाई की जगह है, पर कुछ लोग लिख देते हैं। इसी तरह 'मकतबगाह' भी है।

मकतबा—संज्ञा पुं० [अ०] १. किताबों की दूकान। २. पुस्तकालय। लायब्रेरी।

मकतल—संज्ञा पुं० [अ० मक्तल] कत्ल करने की जगह। वधस्थान। वधभूमि [को०]।

मकता¹—संज्ञा पुं० [स० मगध] मगध देश।

विशेष—आईने अकबरी में मगध का यही नाम दिया गया है।

मकता²—संज्ञा पुं० [अ० मक़्तअ] गजल या किसी कविता का अंतिम शेर या छद।

मकतूब¹—वि० [अ० मक्तूब] लिखित। लिखा हुआ।

मकतूब²—संज्ञा पुं० पत्र। चिट्ठी। उ०—य अश्क आँखों में कासिद किस तरह यकदम नहीं थमता। दिले बेताब का शायद लिए मकतूब जाता है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २१।

मकदूनिया—संज्ञा पुं० [अ० मक्दूनियह्] एक प्रदेश जो पहले तुर्कों के पास था। सिकंदर यहीं राज करता था।

मकदूर—संज्ञा पुं० [अ० मकदूर] १. सामर्थ्य। ताकत। शक्ति। २. धन दौलत। संपत्ति (को०)।

मकना¹—संज्ञा पुं० [अ० मक़्ना] एक महीन कपड़ा जो निकाह के समय दूल्हे को पहनाया जाता है [को०]।

मकना²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मकुना'।

मकनातीस—संज्ञा पुं० [अ० मक़नातीस] चुंबक पत्थर।

मकफूल—वि० [अ० मकफूल] रेहन किया हुआ। गिरों रखा हुआ।

मकबरा—संज्ञा पुं० [अ० मकबरह्] वह मकान या इमारत जिसके अंदर कोई कबर हो। कबर के ऊपर बनी हुई इमारत। समाधिमंदिर। रोजा। मजार।

मकबूजा—वि० [अ० मकबूज़ह्] कब्जा किया हुआ। अधिकृत (माल, मिल्कियत आदि)।

मकबूल—वि० [अ० मकबूल] १. सर्वप्रिय। उ०—क्यों वह काबिल है बनता जिसमें वह मकबूल न हो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५७०। २. माना हुआ। स्वीकृत। मजूर (को०)। ३. रुचिकर (को०)।

यौ०—मकबूले खुदा=ईश्वर का प्यारा। मकबूले बारगाह=(१) ईश्वर का प्यारा। (२) किसी बड़े के यहाँ बहुत सम्मानित।

मकबूलियत—संज्ञा स्त्री० [अ० मकबूलियत] १. सर्वप्रियता। लोकप्रियता। २. रुचि। पसंद [को०]।

मकरद—संज्ञा पुं० [सं० मकरन्द] १. फूलों का रस जिसे मधुमक्खियाँ और भौरे आदि चूसते हैं। २. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे सात जगण और एक यगण होता है। इसको 'राम', 'माधवी' और 'मजरी' भी कहते हैं। जैसे,—जुलोक यथामति वेद पढ़ैं सह आगम औ दश आठ सयाने। ३. ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। ४. कुंद का पौधा। ५. किंजल्क। फूल का केसर। ६. भ्रमर। भौरा (को०)। ७. कोकिल। कोयल (को०)। ८. एक प्रकार का सुगधित आम (को०)।

मकरंदवत्—वि० [सं० मकरन्दवत्] [वि० स्त्री० मकरंदवती] पुष्प-रस या मधु से पूर्ण [को०]।

मकरंदवती—संज्ञा स्त्री० [सं० मकरन्दवती] पाटला नाम की लता या उसका फूल [को०]।

मकर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर या घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जलजतु। यह कामदेव की ध्वजा का चिह्न और गंगा जी तथा वरुण का वाहन माना जाता है। २. बारह राशियों में से दसवीं राशि जिसमें उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अंतिम तीन पाद, पूरा श्रवण नक्षत्र और धनिष्ठा के आरभ के दो पाद हैं।

विशेष—इसे पृष्ठोदय, दक्षिण दिशा का स्वामी, रूक्ष, भूमि-चारी, शीतल स्वभाव और पिंगल वर्ण का, वैश्य, वातप्रकृति और शिथिल अगोंवाला मानते हैं। ज्योतिष के अनुसार इस जाति में जन्म लेनेवाला पुरुष परस्त्री का अभिलाषी, धन बढ़ानेवाला, प्रतापशाली, बातचीत में बहुत होशियार, बुद्धिमान और वीर होता है।

३. फलित ज्योतिष के अनुसार एक लग्न। ४. सुश्रुत के अनुसार कीड़ों और छोटे जीवों का एक वर्ग। ५. कुबेर की नव निधियों में से एक। ६. अस्त्र शस्त्र को निष्फल बनाने के लिये उनपर पढ़ा जानेवाला एक प्रकार का मंत्र। ७. एक पर्वत का नाम। ८. एक प्रकार का व्यूह जिसमें सैनिक लोग इस प्रकार खड़े किए जाते हैं कि उनकी समष्टि मकर के आकार की जान पड़ती है। ९. माघ मास। मकर संक्राति का महीना। उ०—अहो हरि नीको मकर मनाए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४१। १. मछली। उ०—श्रुति मंडल कुंडल विधि मकर सुविलसत सदन सदाई।—सुर (शब्द०)। ११. छप्पय के उनतीसवें भेद का नाम जिसमे ३२ गुरु,

८८ लघु, १२० वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ३२ गुरु, ८४ लघु, १६६ वर्ण, कुल १४८ मात्राएँ होती हैं।

मकर²—संज्ञा सं० [फ़ा० मकर, मक्र] १. छल। कपट। फरेब। धोखा। उ०—हरहु बदगी असल करारा। सो तजि का तुम्ह मकर पसारा।—सत० दरिया, पृ० २१। २. नखरा। उ०—काम करते हैं मकर का किसलिये। इस मकर से प्यार प्यारा है कहो।—चोखे०, पृ० २४।

क्रि० प्र०—रचना।—फैलाना।

मकरकर्कट—संज्ञा सं० [सं०] क्रांति वृत्त की वह सीमा जहाँ से सूर्य उत्तरायण या दक्षिणायन होकर लौट जाता है।

मकरकुंडल—संज्ञा पुं० [सं० मकर कुण्डल] मकर या मछली की आकृति का कर्णभूषण। उ०—श्रवण मकरकुंडल लसत मुख सुषमा एकत्र।—केशव (शब्द०)।

मकरकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। उ०—प्रेम का चिह्न मकर है। काम तभी मकरकेतन कहा गया है।—प्रा० भा० प०, पृ० ७४।

मकरकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मकरक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० मकरक्रान्ति] वह अक्षरेखा जो निरक्ष रेखा से २३ अंश दक्षिण में स्थित है [को०]।

मकरचाँदनी—संज्ञा स्त्री० [अ० मक्र या मकर + हिं० चाँदनी] १. वह चाँदनी जो सबेरा का भ्रम पैदा करे। उ०—पहर एक रजनी जब गई। तब तहाँ मकर चाँदनी भई।—अर्ध०, पृ० ३८। २. भ्रामक वस्तु। धोखे की चीज।

मकरतेंदुआ—संज्ञा पुं० [सं० मकर + तिन्दुक] आबनूस। काकतिंदुक।

मकरतार—संज्ञा पुं० [हिं० मुक्कश] बादले का तार। उ०—चलु सखि चलु सखि प्रेम बिलास। झूमर खेलौ सतगुरु के पास। श्वेत सिंहासन छत्र अँजोर। मकरतार पर लागी डोर।—कबीर (शब्द०)।

मकरध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। कंदर्प। उ०—विद्या सोइ बृहस्पति जानौ। रुपु सोई मकरध्वज मानौ।—माधवानल०, पृ० १८८। २. रससिंदूर। चंद्रोदय नामक रस। ३. इंद्रपुष्प। लौंग। ४. पुराणानुसार अहिरावण का एक द्वारपाल। मत्स्योदर।

विशेष—यह हनुमान का पुत्र माना जाता है। कहते हैं, लंका को जलाने के उपरांत जब हनुमान ने समुद्र में स्नान किया था, तब एक मछली ने उनके पसीने से मिला हुआ जल पीकर गर्भ धारण किया था जिससे इसका जन्म हुआ।

मकरपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. ग्राह।

मकरलांछन—संज्ञा पुं० [सं० मकरलाञ्छन] कामदेव। मकरकेतु [को०]।

मकरवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण। प्रचेता। [को०]।

मकरव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्यूह या सेनारचना जिसमें सैनिक मकर के आकार में खड़े किए जाते हैं। दे० 'मकर'–८।

मकरसंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० मकर सङ्क्रान्ति] वह समय जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। यह एक पर्व माना जाता है।

मकरसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी [को०]।

मकरांक—संज्ञा पुं० [सं० मकराङ्क] १. कामदेव। २. समुद्र। ३. एक मनु का नाम।

मकरा¹—संज्ञा पुं० [सं० वरक] मड़ुवा नामक अन्न।

मकरा²—संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ा] १. भूरे रंग का एक कीड़ा जो दीवारों और पेड़ों पर जाला बनाकर रहता है। इसकी टाँगें बड़ी बड़ी होती हैं। २. हलवाइयों की एक प्रकार की घोड़िया या चौघड़िया जिससे सेव बनाया जाता है।

विशेष—यह एक चौकी होती है जिसमें छाननी की तरह छेदवाला लोहे का एक पात्र जड़ा होता है। इसी पात्र में घोला हुआ बेसन भरकर ऊपर में एक दस्ते से दबाते हैं जिससे नीचे सेव बनकर गिरता जाता है।

मकराकर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। (डिं०)।

मकराकार—वि० [सं०] मकर या मछली के आकार का।

मकराकृत—वि० [सं०] मकर या मछली के आकारवाला।

यौ०—मकराकृत कुंडल = मछली के आकार का कुंडल।

मकराक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] खर का पुत्र और रावण का भतीजा।

विशेष—रामायण के अनुसार यह कुंभ और निकुंभ के मारे जाने पर युद्ध में गया था और राम के द्वारा मारा गया था।

मकराज—संज्ञा स्त्री० [अ० मिक़राज] कैंची।

मकरानन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

मकराना—संज्ञा पुं० [देश०] राजपूताने का एक प्रदेश जहाँ का संगमरमर बहुत प्रसिद्ध होता है। उ०—मारवाड़ के लोग इन्हें मकराने का ब्राह्मण मानते हैं।—अकबरी०, पृ० ७८।

मकराराई—संज्ञा स्त्री० [मकरा ? + राई] काली राई।

मकरालय—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—पार किया मकरालय मैंने, उसे एक गोष्पद सा मान।—साकेत, पृ० ३८८।

मकराश्व—संज्ञा पुं० [सं०] मकर पर सवार होनेवाले, वरुण।

मकरासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन जिसमें हाथ और पैर पीठ की ओर कर लिए जाते हैं।

मकरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मकरिकापत्र' [को०]।

मकरिकापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मछली के आकार का बना हुआ चंदन का चिह्न जो प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपनी कनपटियों पर बनाती थीं।

मकरी¹—संज्ञा पुं० [सं० मकरिन्] समुद्र [को०]।

मकरी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मगर की मादा। मगरी। उ०—पोखरी बिसाल बाहुबल बारिचर पीर मकरी ज्यों पकरि कै बदन बिदारिए।—तुलसी (शब्द०)। २. एक प्रकार का वैदिक गीत। ३. चक्की में लगी हुई एक लकड़ी।

विशेष—अनुमानतः यह आठ अंगुल की होती है और किल्ले की नोक पर रखकर और उसके दोनों सिरों पर जोती लगाकर जुए से बाँधी रहती है। इस जोती में दोनों ओर छोटी छोटी लकड़ियाँ लगी होती हैं जिनके घुमाने से ऊपर का पाट आवश्यकतानुसार ऊपर उठाया या नीचे गिराया जा सकता है। जब यह ऊपर कर दी जाती है, तब चक्की के ऊपर का पाट भी कुछ ऊपर उठ जाता है जिससे आटा कुछ मोटा और दरदरा होने लगता है। और जब इसे घुमाकर कुछ नीचे करते हैं, तब पाट के नीचे आ जाने के कारण आटा महीन होने लगता है।

४. जहाज में फर्श या खंभों आदि में लगा हुआ लकड़ी या लोहे का वह चौकोर टुकड़ा जिसके अगले दोनों भाग अँकुसे के आकार के होते हैं और जिनमें रस्सा आदि बाँधकर फँसा देते हैं। (लश०)। ५. मछली। उ०—हस स्वेत बक स्वेत देखिए समान दोऊ हंस मोती चुगै बक मकरी को खात है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५६५।

यौ०—मकरीपत्र, मकरीलेखा=दे० 'मकरिकापत्र'।

मकरूज—वि० [अ० मक़रूज़] ऋणी। कर्जदार। उ०—बल्कि मकरूज होकर बदनाम और।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

मकरूह—वि० [अ०] १. नापाक। अपवित्र। २. जिसे देखकर घृणा उत्पन्न हो। घृणित।

मकरेड़ा†—संज्ञा पु० [हिं० मक्का+एड़ा (प्रत्य०)] ज्वार या मक्के का डंठल।

मकरोरा, मकरौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ी] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो प्रायः आम के पेड़ों पर चिपका रहता है।

मकलई—संज्ञा स्त्री० [मकालिया बंदरगाह से] एक प्रकार का गोंद।

विशेष—यह अदन से बंबई में आता है। यह सफेद या लाली लिए पीले रंग का होता है और इसके गोल गोल दाने होते हैं। यह मकालिया नामक बंदरगाह से आता है, इसलिये मकलई कहलाता है।

मकलूब—वि० [अ० मक्लूब] औंधा। उलटा हुआ।

मकसद—संज्ञा पुं० [अ० मक़सद] १. मनोरथ। मनोकामना। २. अभिप्राय। तात्पर्य। मतलब।

यौ०—मकसदवर=जिसकी कामना या मनोरथ पूर्ण हो चुका हो।

मकसूद[1]—वि० [अ० मकसूद] उद्दिष्ट। अभिप्रेत।

मकसूद[2]—संज्ञा पु० १. अभिप्राय। मतलब। २. मनोरथ। उ०—हासिल हो मकसूद तब, हाफिज अमन अमान।—कबीर० श०, पृ० ३१।

मकसूदन‡—संज्ञा पु० [सं० मधुसूदन] दे० 'मधुसूदन'।

मकसूम[1]—वि० [अ० मक्सूम] विभाजित। तकसीम किया हुआ। बाँटा हुआ।

मकसूम[2]—संज्ञा पु० [अ०] १. भाग। हिस्सा। २. किस्मत। ३. वह संख्या जो बाँटी जाय। भाज्य [को०]।

यौ०—मकसूम अलैह=वह संख्या जिससे किसी संख्या में भाग दें। भाजक। मकसूम अलैह आजम=वह बड़ी संख्या जो कई संख्याओं को पूर्णतः बाँट दे। महत्तम समापवर्तक।

मकाँ—संज्ञा पु० [फ़ा०] गृह। घर। मकान। उ०—मेरे सनम का किसी को मकाँ नहीं म.लूम। खुदा का नाम सुना है निशाँ नहीं मालूम।—कविता कौ०, भा० ४, पृ०३८०।

मकाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्का] बड़ी जोन्हरी। ज्वार।

मकाद—संज्ञा स्त्री० [अ० मक्अद] १. बैठने का स्थान। २. गुदा। मलद्वार [को०]।

मकान—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु० व० मकानात] १. गृह। घर। २. निवासस्थान। रहने की जगह।

यौ०—मकानदार=घर का मालिक। गृहस्वामी।

मुहा०—मकान हिला देना=ऊधम करना। हल्ला गुल्ला मचाना।

मकाम—संज्ञा पुं० [अ० मक़ाम] दे० 'मुकाम'।

मकीं—वि० [अ० मकीन] घर में रहनेवाला। मकानदार। गृही। उ०—वजूद से हम अदम में आकर मकीं हुए ला मकां के जाकर।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५७।

मकुंद—संज्ञा पुं० [सं० मुकुंद] दे० 'मुकुंद'।

मकु—अव्य० [सं० म] १. चाहे। उ०—(क) तिमिर तरुन तरनिहिं मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहिं मिलई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहि भाई।—तुलसी (शब्द०)। २. बल्कि। वरन्। उ०—पाउँ छुवइ मकु पावउँ एहि मिस लहरइ देहु।—जायसी (शब्द०)। ३. कदाचित्। क्या जाने। शायद। उ०—मकु यह खोज होइ निसि आई। तुरइ रोग हरि माँथइ जाई।—जायसी (शब्द०)।

मकुआ—संज्ञा पुं० [हिं० मक्का] बाजरे के पत्तों का एक रोग।

मकुट—संज्ञा पु० [स०] दे० 'मुकुट'।

मकुति—संज्ञा स्त्री० [स०] शूद्रों के संबंध में सरकारी नियम, आदेश आदि। शूद्रशासन [को०]।

मकुना—संज्ञा पु० [सं० मनाक (=हाथी)] १. वह नर हाथी जिसके दाँत न हों अथवा छोटे छोटे दाँत हों। २. बिना मूँछों का पुरुष।

मकुनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. आटे के भीतर बेसन या चने की पीठी भरकर बनाई हुई कचौरी। बेसनी रोटी। २. चने का बेसन और गेहूँ का आटा एक में मिलाकर उसमें नमक, मेथी, मँगरैला आदि मिलाकर बाटी की भाँति भूभल में सकी हुई बाटी या लिट्टी। ३. मटर के आटे की रोटी। ४. ‡छोटी। उ०—कुछ चीजों को यह अपनी बताता है। यहाँ मकुनी अदालत में हाकिम को इसके रवइये का अंदाजा हो जायगा।—काले०, पृ० ७२।

मकुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुम्हार का डंडा जिससे वह चाक घुमाता है। २. बकुल। मौलसिरी। ३. शीशा। दर्पण। ४. कोरक। कली।

मकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कली। कोरक। २. बकुल। मौलसिरी [को०]।

मकुष्ट, मकुष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मकुष्ठ' [को०]।

मकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का धान। २. मोठ नामक अन्न।

मकुष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] मोठ नामक अन्न।

मकूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मकुनी'। उ०—मीठे तेल चना की भाजी। एक मकूनी दै मोहि साजी'—सूर (शब्द०)।

मकूलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कली। कुड्मल। २. दंती नाम का वृक्ष [को०]।

मकूला—संज्ञा पुं० [अ०] १. कहावत। कहनूत। २. वचन। कथन।

मकेरा—संज्ञा पुं० [हिं० मक्का+ऐरा (प्रत्य०)] वह खेत जिसमें ज्वार या बाजरा बोया जाता है।

मकेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें मल के साथ कीड़े निकलते हैं। २. मल में उत्पन्न कीट। उ०—इन (कृमियों) के पाँच नाम हैं—ककेरुक; मकेरुक, सौसुराद, मलून, लेलिह।—माधव०, पृ० ७६।

मको—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० मकोय] दे० 'मकोय'।

मकोइचा—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० मकोय] दे० 'मकोई'।

मकोइया—वि० [हिं० मकोय+इया (प्रत्य०)] मकोय के पके हुए फल के रंग का।

मकोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मकोय] जंगली मकोय जिसमें काँटे होते हैं। मकोचा। उ०—झाँखर जहाँ सो छाड़हु पंथा। हिलगि मकोइ न फारहु कंथा।—जायसी (शब्द०)।

मकोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कीड़ा का अनु०] कोई छोटा कीड़ा। जैसे,—बरसात में बहुत से कीड़े मकोड़े पैदा हो जाते हैं।

मकोय—संज्ञा स्त्री० [सं० काकमाता या काकमाची से विपर्यय] १. एक प्रकार का क्षुप जिसके पत्ते गोलाई लिए लंबोतरे होते हैं और जिसमें सफेद रंग के छोटे फूल लगते हैं। कवैया।

विशेष—फल के विचार से यह क्षुप दो प्रकार का होता है। एक में लाल रंग के और दूसरे में काले रंग के बहुत छोटे छोटे, प्रायः काली मिर्च के आकार और प्रकार के, फल लगते हैं। इसकी पत्तियों और फलों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। इसके पत्ते उबालकर रोगियों को दिए जाते हैं। इसके क्वाथ को मकोय की भुजिया कहते हैं। वैद्यक में इसे गरम, चरपरी, रसायन, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, स्वर को उत्तम करनेवाली, हृदय और नेत्रों को [illegible] रुचिकारक, दस्तावर और कफ, शूल, बवासीर, सूजन, त्रिदोष, कुष्ठ, अतिसार, हिचकी, वमन, श्वास, खाँसी और ज्वर आदि को दूर करनेवाली माना जाता है।

२. इस क्षुप का फल। ३. एक प्रकार का कँटीला पौधा जिसके फल खटमिट्ठे होते हैं।

विशेष—यह पौधा प्रायः सीधा ऊपर की ओर उठता है। इसमें प्रायः सुपारी के आकार के फल लगते हैं जो पकने पर कुछ ललाई लिए पीले रंग के होते है। ये फल एक प्रकार के पतले पत्तों के आवरण में बंद रहते हैं। फल खटमिट्ठा होता है और उसमें एक प्रकार का अम्ल होता है जिसके कारण वह पाचक होता है।

४. इस पौधे का फल। रसभरी।

मकोरना†—क्रि० स० [देश०] दे० 'मरोड़ना'। उ०—पुनि धन धनक भौंह कर फेरी। काम कटाछ मकोरत हेरी।—जायसी (शब्द०)।

मकोसल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ऊँचा वृक्ष जो सर्वदा हरा भरा रहता है।

विशेष—इसकी लकड़ी अंदर से लाल और बहुत कड़ी तथा दृढ़ होती है। यह इमारत के काम में आती है। आसाम में इससे नावें भी बनाई जाती हैं।

मकोह—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लताविशेष। दे० 'बमोलन'।

मकोहा†—संज्ञा पुं० [सं० मत्कुण या हिं० मकोय ?] लाल रंग का एक प्रकार का कीड़ा जो अनुमानतः एक इंच लंबा होता है और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

मक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ी] बड़ा मकड़ा। नर मकड़ी।

यौ०—मक्कड़ जाल = मकड़ी का जाला।

मक्कर†—संज्ञा पुं० [अ० मक्र] १. छल। कपट। धोखा। उ०—मक्कर मति करि मानि मन, मेरी मति गति भोरि।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६।

२. नखरा।

क्रि० प्र०—दिखाना।—फैलाना।—बिछाना।—साधना = मक्कारी करना। बहानेबाजी करना। नकल बनाकर पड़े रहना। उ०—कासिम ने कहा हुजूर, यह औरत बदमाश है, मक्कर साध रही है।—पिंजरे०, पृ० ५६।

मक्कल्ल—संज्ञा पुं० [सं० मक्कल, मक्कल्ल] प्रसव के अनंतर होनेवाला एक प्रकार का स्त्रीरोग।

विशेष—इस रोग में प्रसव के अनंतर प्रसूता की नाभि के नीचे, पसली में, मूत्राशय में वा उसके ऊपर वायु की एक गाँठ सी पड़ जाती है और पीड़ा होती है। इस रोग में पक्वाशय फूल जाता है और मूत्र रुक जाता है।

मक्का¹—संज्ञा पुं० [अ० मक्कह्] अरब का एक प्रसिद्ध नगर [illegible] मुहम्मद साहब का जन्म हुआ था। यह मुसलमानों का

सबसे बड़ा तीर्थ स्थान है। हज करने के लिये मुसलमान यहीं जाते हैं। उ०—मक्का महजीत कोऊ हज्ज को जाते।—संत तुरसी०, पृ० ८६।

मक्का[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ज्वार। बड़ी जोन्हरी। मकई। वि० दे० 'ज्वार'।

मक्कार—वि० [अ०] मकर करनेवाला। फरेबी। कपटी।

मक्कारा—संज्ञा स्त्री० [अ० मक्कारह्] चालबाज औरत। धूर्त स्त्री।

मक्कारी—संज्ञा स्त्री० [अ०] छल। धोखेबाजी। दगाबाजी। फरेब।

मक्की[1]—वि० [अ०] १. मक्के का निवासी। २. मक्के का। मक्का संबंधी। उ०—अहमद्द कानो मूल सु मक्की।—ह० रासो, पृ० ८५।

मक्की[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मक्का[2]'।

मक्कुल, मक्कूल—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु (को०)।

मक्कोल—संज्ञा पुं० [सं०] सुधा। खड़िया (को०)।

मक्खन—संज्ञा पुं० [सं० मन्थज या भ्रक्षण ?] दूध में की, विशेषतः गौ या भैंस के दूध में की, वह चरबी या सार भाग जो दही या मठे को महने पर अथवा और कुछ विशेष क्रियाओं से निकाला जाता है और जिसको तपाने से घी बनता है। नवनीत। नैनूँ।

विशेष—वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, बलकारक, संग्राहक, कांतिवर्धक, आँखों के लिये हितकर और सब दोषों का नाश करनेवाला माना है।

मुहा०—कलेजे पर मक्खन मला जाना = शत्रु की हानि देखकर शांति या प्रसन्नता होना। कलेजा ठंढा होना।

मक्खा—संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी] १. बड़ी जाति की मक्खी। २. नर मक्खी।

मक्खी—संज्ञा स्त्री० [सं० मक्षिका, प्रा० मक्खिआ] १. एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा जो प्रायः सारे संसार में पाया जाता है और जो साधारणतः घरों और मैदानों में सब जगह उड़ता फिरता है। मक्षिका। माखी।

विशेष—मक्खी के छह पैर और दो पर होते हैं। प्रायः यह कूड़े कतवार और सड़े गले पदार्थों पर बैठती है, उन्हीं को खाती और उन्हीं पर बहुत से अंडे देती है। इन अंडों में से बहुधा एक ही दिन में एक प्रकार का ढोला निकलता है, जो बिना सिर पैर का होता है। यह ढोला प्रायः दो सप्ताह में पूरा बढ़ जाता है और तब किसी सूखे स्थान में पहुँचकर अपना रूप परिवर्तित करने लगता है। प्रायः १०—१२ दिन में वह साधारण मक्खी का रूप धारण कर लेता है और इधर उधर उड़ने लगता है। मक्खी के पैरों में से एक प्रकार का तरल और लसदार पदार्थ निकलता है, जिसके कारण वह चिकनी से चिकनी चीज पर पेट ऊपर और पीठ नीचे करके भी चल सकती है।

यौ०—मक्खीचूस। मक्खीमार।

मुहा०—जीती मक्खी निगलना = (१) जान बूझकर कोई ऐसा अनुचित कृत्य या पाप करना जिसके कारण पीछे हानि हो। (२) अनौचित्य या दोष की ओर ध्यान न देना। दोष या पाप की उपेक्षा करके वह दोष या पाप कर डालना। नाक पर मक्खी न बैठने देना = किसी को अपने ऊपर एहसान करने का तनिक भी अवसर न देना। अभिमान के कारण किसी के सामने न दबना। मक्खी की तरह निकाल या फेंक देना = किसी को किसी काम से बिलकुल अलग कर देना। किसी को किसी काम से कोई संबंध न रखने देना। मक्खी छोड़ना और हाथी निगलना = छोटे छोटे पापों या अपराधों से बचना और बड़े बड़े पाप या अपराध करना। मक्खी मारना या उड़ाना = बिलकुल निकम्मा रहना। कुछ भी काम धंधा न करना।

२. मधुमक्खी। मुमाखी। ३. बंदूक के अगले भाग में वह उभरा हुआ अंश जिसकी सहायता से निशाना साधा जाता है।

मक्खीचूस—संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी + चूसना] घी आदि में पड़ी हुई मक्खी तक को चूस लेनेवाला व्यक्ति। बहुत अधिक कृपण। भारी कंजूस।

मक्खीमार—संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी + मारना] १. एक प्रकार का बहुत छोटा जानवर जो प्रायः मक्खियाँ उड़ाता है और मार मारकर खाया करता है। २. एक प्रकार की छड़ी जिसके सिरेपर चमड़ा लगा होता है और जिसकी सहायता से मक्खियाँ मारते हैं। ३. बहुत ही घृणित व्यक्ति।

मक्खीलेट—संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्खी + लेट ?] एक प्रकार की जाली जिसमें बहुत छोटी छोटी बूटियाँ होती हैं।

मक्तब—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'मकतब'। उ०—दो दिन पीछे लड़की का मक्तब करना, भाजी की भात देना।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३११।

मक्दूर—संज्ञा पुं० [अ०] सामर्थ्य। ताकत। शक्ति। बल। जोर। जैसे,—यह अपने अपने मक्दूर की बात है।

मुहा०—मक्दूर से बाहर पाँव रखना = सामर्थ्य या योग्यता से बढ़कर काम करना।

२. वश। काबू।

मुहा०—मक्दूर चलना = वश चलना। काबू चलना।

३. समाई। गुंजाइश। ४. दौलत। धन। पूँजी।

यौ०—मक्दूरवाला = धनवान। संपन्न। अमीर।

मक्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० मकर] दे० 'मकर'। उ०—महा मक्र से सूर सावंत पीनं।—हम्मीर०, पृ० ५६।

मक्र[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १. छल। कपट। धोखा। उ०—ऐसा मालूम हो रहा था कि मक्र किए पड़ी है, और देख रही है कि राजा साहब क्या करते है।—काया०, पृ० ४८६। २. नखरा।

यौ०—मक्रचाँदनी = दे० 'मकर चाँदनी'।

मक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपने दोष को छिपाना। अपना ऐब जाहिर न होने देना। २. क्रोध। गुस्सा। ३. समूह।

मखदग—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यदग] एक प्रकार का मोती जिसके विषय में लोगों की यह धारणा है कि इसके पहनने से पुत्र मर जाता है।

मक्षवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] पियार नाम का वृक्ष।

मक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साधारण मक्खी। २. शहद की मक्खी।

मुहा०—मक्षिका स्थाने मक्षिका=बिना बुद्धि से काम लिए अंधानुकरण। जैसे का तैसा। उ०—ग्रंथकर्ता को मानकर मक्षिका स्थाने मक्षिका लिखना अनुवादकर्ता अपना धर्म मानते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४४१।

मक्षिकामल—संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मक्षिकासन—संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता।

मक्सी—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह सब्जा घोड़ा जिसपर काले फूल या दाग हों। २. बिल्कुल काले रंग का घोड़ा।

मख—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ। उ०—सोधत मख महि जनकपुर, सीय सुमंगल खानि।—तुलसी० ग्रं०, पृ० ८३।

मखजन—संज्ञा पुं० [अ० मख़ज़न] १. खजाना। भंडार। कोष। उ०—मखजन रहमो करम फजल के।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६। २. गोला बारूद आदि रखने का स्थान (को०)।

मखतूल—संज्ञा पुं० [सं० महर्घ तूल] काला रेशम। उ०—नव मखतूल तूल तें कोमल दल बल फल अनुकूल महाई।—घनानंद, पृ० ४४०।

मखतूली—वि० [हिं० मखतूल+ई (प्रत्य०)] काले रेशम से बना हुआ। काले रेशम का।

मखत्राता—संज्ञा पुं० [सं० मखत्रातृ] १ वह जो यज्ञ की रक्षा करता हो। २. रामचंद्र जिन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी।

मखदूम[1]—संज्ञा पुं० [अ० मख़दूम] १. वह जिसकी खिदमत की जाय। २. स्वामी। मालिक।

मखदूम[2] वि० सेवा के योग्य। पूज्य।

मखदूमी—संज्ञा पुं० [अ० मखदूम का संबोधन कारक] हे पूज्य। हे सेव्य।

मखदूश—वि० [अ० मखदूश] खतरनाक। डरावना। भयानक (को०)।

मखद्विष्—संज्ञा पुं० [सं० मखद्विष्] राक्षस (को०)।

मखद्वेषी—संज्ञा पुं० [सं० मखद्वेषिन्] १. राक्षस। २. शिव (को०)।

मखधारी—संज्ञा पुं० [सं० मखधारिन्] यज्ञ करनेवाला। वह जो यज्ञ करता हो।

मखन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मक्खन] दे० 'मक्खन'।

मखना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मकुना'।

मखनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के स्वामी, विष्णु।

मखनिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० [illegible] (प्रत्य० [illegible]] मक्खन बनाने या बेचनेवाला।

मखनिया[2]—वि० जिसमें से मक्खन निकाल लिया गया हो। जैसे, मखनिया दूध, मखनिया दही।

मखनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्खन] प्रायः एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की मछली जो मध्य भारत की नदियों मे पाई जाती है।

मखप्रभु—संज्ञा पुं० [सं०] सोम लता (को०)।

मखफी—वि० [अ० मख़फ़ी] छिपा हुआ। पोशीदा। गुप्त। उ०—बाद अज जिक्र कलबी लेने दिल मे मखफी बूझ।—दक्खिनी०, पृ० ५६।

मखमय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मखमल—संज्ञा स्त्री० [अ० मख़मल] १. एक प्रकार का बहुत बढ़िया रेशमी कपड़ा जो एक ओर से रूखा और दूसरी ओर से बहुत चिकना और अत्यंत कोमल होता है। इस ओर छोटे छोटे रेशमी रोएँ भी उभरे रहते हैं। २. एक प्रकार की रंगीन दरी जिसके बीचोबीच एक गोल चँदोवा बना रहता है।

मखमली—वि० [अ० मखमल+ई (प्रत्य०)] १. मखमल का बना हुआ। जैसे, मखमली टोपी। २. मखमल का सा। मखमल की तरह का। जैसे, मखमली किनारे की धोती।

मखमसा—संज्ञा पुं० [अ० मखमसह्] १. बखेड़ा। झंझट। झमेला। २. चिंता। ३. भय (को०)।

मखमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मखमूर—वि० [अ० मख़मूर] मदोन्मत्त। नशे में चूर। उ०—नशीली आँखें वहाँ नही जहाँ मेरा मखमूर नहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १९४।

मखमृगव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम (को०)।

मखरज—संज्ञा पुं० [अ० मख़्रज] १. उद्गमस्थान। स्रोत। २. शब्द उच्चारण का मूल स्थान (को०)।

मखराज—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ।

मखलूक—संज्ञा पुं० [अ० मख़लूक] ईश्वर की सृष्टि। परमेश्वर के बनाए हुए प्राणी। उ०—भला मखलूक खालिक की सिफत समझे कहाँ कुदरत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५१।

मखलूकात—संज्ञा स्त्री० [अ०] सृष्टि। वह सब चीजें जो संसार मे हैं।

मखलूत—वि० [अ० मख़लूत] मिश्रित। गड्डबड्ड। मिलाजुला।

यौ०—मखलूतुन्नस्ल=वर्णसंकर।

मखवल्क्य—संज्ञा पुं० [सं० मख+वल्क्य] दे० 'याज्ञवल्क्य'।

मखवह्नि—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की वह्नि। यज्ञाग्नि (को०)।

मखशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ करने का स्थान। यज्ञशाला।

मखसूस—वि० [अ० मख़सूस] जो किसी विशिष्ट कार्य के लिये अलग कर दिया गया हो। खास तौर पर अलग किया या बनाया हुआ।

मखस्वामी—संज्ञा पुं० [सं०

मखहा—संज्ञा पुं० [सं० मखहन्] १. इंद्र । २. शिव [को०] ।

मखाना¹—संज्ञा पुं० [सं० मखान्न] दे० 'तालमखाना' ।

मखाना²—क्रि० स० [सं० म्रक्षण] चिकनाना । लेपना । लगाना । उ०—हाथ में जरा सी चिकनई (तेल) मखाकर वह आपके पैरों से शुरू करेगा ।—रति०, पृ० १४३ ।

मखाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञकुंड की अग्नि । यज्ञ द्वारा संस्कृत अग्नि [को०] ।

मखान्न—संज्ञा पुं० [सं०] तालमखाना ।

मखालय—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञशाला ।

मखी(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं०?] दे० 'मक्खी' ।

मखी²—संज्ञा पुं० [सं० म्रक्षण, प्रा० मक्ख] अंजन ।—अनेकार्थ०, पृ० ८० ।

मखीरा†—संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी + र (प्रत्य०)] शहद । मधु ।

मखेश—संज्ञा पुं० [सं० मख + ईश] राजसूय यज्ञ ।

मखोना†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा । उ०—चकवा चीर मखोना लोने । मोति लाग औ छापे सोने ।—जायसी (शब्द०) ।

मखौल—संज्ञा पुं० [देश०] हँसी ठट्ठा । मजाक । परिहास ।

मुहा०—मखौल उड़ाना = किसी की हँसी उड़ाना । परिहास करना । उ०—इनकी वृद्धावस्था और विवाह की लालसा को देखकर कौन नहीं मखौल उड़ाएगा ।—वी० श० महा०, पृ० २२८ ।

मखौलिया—संज्ञा पुं० [हिं० मखौल + इया (प्रत्य०)] वह जो सदा मखौल करता हो । हँसी ठट्ठा करनेवाला । मसखरा । दिल्लगीबाज ।

मगद—संज्ञा पुं० [सं० मगान्द] सूदखोर [को०] ।

मग¹—संज्ञा पुं० [सं० मार्ग, प्रा० मग्ग] १. रास्ता । राह ।

मुहा०—के लिये दे० 'बाट' और 'रास्ता' ।

मग²—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के शाकद्वीपी ब्राह्मण जो सूर्योपासक थे । २. मगह देश । मगध । उ०—कासी मग सुरसरि क्रवि नासा । मरु मारव महिदेव गवासा ।—तुलसी । (शब्द०) । ३. मगध का निवासी । ४. पिप्पलीमूल ।

मगज—संज्ञा पुं० [अ० मग्ज़] १. दिमाग । मस्तिष्क ।

यौ०—मगजपच्ची ।

मुहा०—मगज के कीड़े उड़ाना = बकवाद से सिर चाटना । मगज खौलना = (१) कार्य की अधिकता के कारण दिमाग का कुछ काम न करना । (२) क्रोध के मारे दिमाग खराब होना । (३) दिमाग मे गरमी आ जाना । पागल हो जाना । मगज खाना = बककर तंग करना । मगज उड़ाना या भिन्नाना = दुर्गंध या शोर के कारण दिमाग खराब होना । मगज उड़ाना = बहुत बक बककर दिक करना । मगज खाली करना = दे० 'मगज पचाना' । मगज चाटना = बक बककर तंग करना । मगज चलना = (१) बहुत अभिमान होना । (२) पागल होना । मगज पचाना = (१) बहुत अधिक दिमाग लड़ाना । सिर खपाना । (२) समझाने के लिये बहुत बकना । मगज पिलपिल करना = बकवाद से या मार से सिर का कचूमर करना ।

२. गिरी । मींगी । गूदा । कद्दू, खरबूजा आदि के बीज का गूदा ।

मगजचट—संज्ञा पुं० [हिं० मगज + चाटना] वह जो बहुत बकता हो । बकवादी ।

मगजचट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मगज + चाटना] बकवाद । बकबक ।

मगजदार—संज्ञा पुं० [अ० मग्ज़ + फ़ा० दार] बुद्धिमान । उ०—मगजदार महबूब करंदा खूब भले दे यारी है ।—घनानंद, पृ० १८० ।

मगजपच्ची—संज्ञा स्त्री० [हिं० मगज + पचाना] किसी काम के लिये बहुत दिमाग लगाना । सिर खपाना ।

मगजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े के किनारे पर लगी हुई पतली गोट । उ०—मगजी ज्यौं मो मन सियो तुव दामन सो लाल ।—स० सप्तक, पृ० १९२ ।

मगण—संज्ञा पुं० [सं०] कविता के आठ गणों में से एक जिसमें ३ गुरु वर्ण होते हैं । लिखने में इसका स्वरूप यह है—SSS । जैसे, आमोदी, काकोली, दीवाना । इसका छंद के आदि में आना शुभ माना जाता है । कहते हैं, इसका देवता पृथ्वी है और यह लक्ष्मीदाता है ।

मगत(पु)—वि० [हिं०] माँगनेवाला । प्रार्थना करनेवाला । प्रार्थी । उ०—फाड़ि कचोटा हर इसर बोलाए । मगत जना सब कोटि कोटि पाए ।—विद्यापति, पृ० ५१५ ।

मगद—संज्ञा पुं० [सं० मुद्ग] एक प्रकार की मिठाई जो मूँग के आटे और घी से बनती है ।

मगदर†—संज्ञा पुं० [हिं० मगद + र] दे० 'मगदल' ।

मगदल—संज्ञा पुं० [सं० मुद्ग] एक प्रकार का लड्डू जो मूँग या उड़द के सत्तू मे चीनी मिलाकर घी में फेंटकर बनाया जाता है ।

मगदा—वि० [सं० मग + दा (प्रत्य०)] मार्गप्रदर्शक । रास्ता दिखलानेवाला । उ०—वे मगदा पग श्रवन को तुम चालिबो आछेनहूँ को निवारेउ ।—विश्राम (शब्द०) ।

मगदूर(पु)—संज्ञा पुं० [अ० मक़दूर] दे० 'मकदूर' ।

मगद्विज—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीपी ब्राह्मण [को०] ।

मगध—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण बिहार का प्राचीन नाम । वैदिक काल में इस देश का नाम कीकट था । २. इस देश के निवासी । ३. राजाओं की कीर्ति का वर्णन करनेवाले, बंदीजन । मागध ।

मगधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली [को०] ।

मगधीय—वि० [सं०] मगध देश का । मगध संबंधी [को०] ।

मगधेश—संज्ञा पुं० [सं०] मगध देश का राजा, जरासंध ।

मगधेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मगधेश'।

मगन—वि० [सं० मग्न] १. डूबा हुआ। समाया हुआ। २. प्रसन्न। हर्षित। खुश। ३. बेहोश। मूर्छित। ४. लीन। उ०—मृदुल कलकंठ गावत महा मगन मन मधुर सुर तान लै दून की।—घनानंद, पृ० २५५। वि० दे० 'मग्न'।

मगना(पु)†—क्रि० अ० [सं० मग्न] १. लीन होना। तन्मय होना। २. डूबना। उ०—तुलसी लगन लै दीन मुनिन्ह महेश आनंद रँग मगे।—तुलसी (शब्द०)।

मगनाना(पु)†—क्रि० अ० [सं० मग्न, हिं० मगन] मग्न होना। लीन होना। उ०—शब्दु अनाहद सुनि मगनाना।—प्राण०, पृ० १०६।

मगफर†—संज्ञा पुं० [अ० मग्फ़र] कवचधारी। शिरस्त्राणधारी। उ०—आप मेरा मगफर व मामूर है।—दक्खिनी०, पृ० २००।

मगफरत—संज्ञा स्त्री० [अ० मग्फिरत] क्षमा। उ०—अगर तू करम ते करे मगफरत, तो कीते हमारी भी मासिअत।—दक्खिनी०, पृ० ३५२।

मगमा—संज्ञा पुं० [देश०] कागज बनाने में उसके लिये तैयार किए हुए गूदे को धोने की क्रिया।

मगमूम—वि० [अ० मग्मूम] अनुतप्त। क्लेशित। रंजीदा। गम में भरा। दुःखी। उ०—और कभी मगमूम बैठे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२।

मगर१—संज्ञा पुं० [सं० मकर] १. घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जलजंतु। २. मीन। मछली। ३. मछली के आकार का कान में पहनने का एक गहना। ४. नैपालियों की एक जाति।

मगर२—अव्य० [फ़ा०] लेकिन। परंतु। पर। जैसे,—आप कहते हैं मगर यहाँ सुनता कौन है ?

मुहा०—अगर मगर करना = आनाकानी करना। हीला हवाला करना।

मगर३—संज्ञा पुं० [सं० मग] अराकान प्रदेश जहाँ मग नाम की जाति बसती है। उ०—चला परबती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ।—जायसी (शब्द०)।

मगरधर—संज्ञा पुं० [सं० मकर + धर] समुद्र। (डिं०)।

मगरब—संज्ञा पुं० [अ० मग्रिब] पश्चिम।

यौ०—मगरब जदा = पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित या ग्रस्त। मगरब की नमाज = वह नमाज जो सूर्य अस्त होने के समय पढ़ी जाती है।

मगरबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० मगर ? + बाँस] एक प्रकार का काँटेदार बाँस जो कोंकण और पश्चिमी घाट में अधिकता से होता है।

मगरबी१—वि० [अ० मग्रिबी] मगरिब का। पाश्चात्य। पश्चिमी। जैसे, मगरबी तहजीब, मगरबी सभ्यता।

यौ०—मगरबी तहजीब = पाश्चात्य सभ्यता।

मगरबी(पु)२—संज्ञा स्त्री० एक तरह की तलवार उ०—तहँ कढ़ी मगरबी अगिनत चरबी चापट करबी ही कार्टें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७।

मगरमच्छ—संज्ञा पुं० [हिं० मगर + मछली <मत्स्य सं०] १. मगर या घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जल जंतु। २. बड़ी मछली।

मगरा†१—वि० [अ० मग़रूर] १. अभिमानी। घमंडी। २. सुस्त। अकर्मण्य। काहिल। ३. धृष्ट। ढीठ। ४. हठी। जिद्दी। ५. उद्दंड।

मगरा†२—संज्ञा पुं० [हिं० मग + रा (प्रत्य०)] बाट। मार्ग। पंथ। राह। उ०—नामों कहो सुनें को मेरी, जोहत बैठी पिय को मगरा।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३५६।

मगरी†१—संज्ञा स्त्री० [देश०] ढालुएँ छप्पर का बीच का या सबसे ऊँचा भाग। जैसे,—ओलती का पानी मगरी चढ़ा है। (कहावत)।

मगरी†२—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्कटी, हिं० मकड़ी] दे० 'मकड़ी'। उ०—मगरी कहत यह हमारो है मगसखानो।—राम० धर्म०, पृ० ६६।

मगरूर—वि० [अ० मग़रूर] घमंडी। अभिमानी। उ०—गाफिल बेहोस गरूर है रे, मगरूर मनी दिल भावता है।—संत तुलसी०, पृ० ११६।

मगरूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० मग़रूर + ई (प्रत्य०)] घमंड। अभिमान। उ०—(क) कौने मगरूरी बिसारे हरिनमवाँ।—(गीत)। (ख) सहज सनेही यार नंद दे एती क्या मगरूरी है।—घनानंद, पृ० १७६।

मगरो†—संज्ञा पुं० [देश०] नदी का ऐसा किनारा जिसमें बालू के साथ कुछ मिट्टी मिली हो और जो जोतने बोने के योग्य हो गया हो।

मगरोसन†—संज्ञा स्त्री० [अ० मग्ज + रौशन] नुँघनी। नसवार।

मगरौठी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जलपक्षी। उ०—तिरते जल में सुरखाब, पुलिन पर मगरौठी सोई।—ग्राम्या, पृ० ३७।

मगली एरंड—संज्ञा पुं० [देश० मगली + हिं० एरंड] रतनजोत। बागबेरेंडा।

मगलूब१—संज्ञा पुं० [फ़ा० मग्लूब] चौबीस शोभाओं में से एक। (संगीत)।

मगलूब२—वि० जो जीत लिया गया हो। पराजित। परास्त। हारा हुआ। अधीन। जेर।

मगस१—संज्ञा पुं० [देश०] पेरे हुए ऊखों की सीठी। खोई।

मगस२—संज्ञा पुं० [देश०] शाकद्वीप की एक प्राचीन योद्धा जाति का नाम।

मगस३—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मक्खी। मक्षिका। उ०—गुजर है तुम्ह तरफ हर बुल हवस का। हुआ धावा मिठाई पर मगस का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४।

यौ०—मगसखाना। मगसगीर=मक्खी पकड़नेवाला। मगसरानी=मक्खियाँ उड़ाना। मोरछल आदि झलना।

मगसखाना—संज्ञा पुं० [फा० मगसखानः] मक्खियों का आवास या अड्डा। उ०—मगरी कहत यह हमारो है मगसखानो, भमर कहत काठ महल मैं उपायो है।—राम० धर्म०, पृ० ६६।

मगसी†—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की जाति विशेष। उ०—कुम्मैत कुमद कल्यान। मोती सु मगसी आन।—ह० रासो, पृ० १२५।

मगसिर†—संज्ञा पुं० [सं० मार्गशीर्ष] अगहन मास।

मगह†—संज्ञा पुं० [सं० मगध] मगध देश।

मगहपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मगधपति] मगध देश का राजा, जरासंध।

मगहय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मगध] मगध देश। उ०—युद्धामन्यु प्रलंबु उलूका। मगहय बंधु चतुर अहि मूका।—सबल (शब्द०)।

मगहर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मगध, हिं० मगहर] मगध देश। उ०—सो मगहर महँ कीन्हों थाना। तहाँ बसत बहु काल बिताना।—रघुराज (शब्द०)।

मगही—वि० [सं० मगह+ई (प्रत्य०)] मगध संबंधी। मगध देश का। २. मगह में उत्पन्न।

यौ०—मगही पान=मगध देश का पान जो सबसे उत्तम समझा जाता है। वि० दे० 'पान'। मगही बोली=मगध देश की बोली।

मगारना†—क्रि० स० [देश०] भूनना। कल्हारना। तपाना। उ०—तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा, बिरह अँगारनि मगारि हिय होरी सी।—घनानंद, पृ० ४४।

मगु(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मार्ग] मग। मार्ग। पथ। राह। रास्ता। उ०—तस मगु भएउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात।—मानस, २।२१५।

मगोर—संज्ञा स्त्री० [देश०] सींगी की तरह की एक प्रकार की मछली जो बिना छिलके की और कुछ लाली लिए काले रंग की होती है। यह डंक मारती है। मंगुर। मँगुरी।

मगोल†—संज्ञा पुं० [हिं० मंगोल] दे० 'मंगोल'। उ०—मत्त मगोल बोल गहि वुज्झइ।—कीर्ति०, पृ० ६०।

मग्ग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मार्ग, प्रा० मग्ग] राह। रास्ता। मग। मार्ग।

मग्ज(पु)—संज्ञा पुं० [अ० मग्ज़] १. मस्तिष्क। दिमाग। भेजा। २. किसी फल के बीज की गिरी। मींगी। गूदा। जैसे, मग्जकद्दू।

मुहा०—के लिये दे० 'मगज'।

मग्जरोशन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मग्ज़रोशन] सुँघनी। नास। वि० दे० 'सुँघनी'।

मग्जसखुन—संज्ञा पुं० [अ० मग्ज़+सुखन] बात की तह।

मग्न¹—वि० [सं०] डूबा हुआ। निमज्जित। २. तन्मय। लीन। लिप्त। ३. प्रसन्न। हर्षित। खुश। ४. नशे आदि में चूर। मदमस्त। ५. नीचे की ओर गिरा या ढलका हुआ। जो उन्नत न हो। जैसे, मग्न नासिका, मग्न स्तन।

मग्न²—संज्ञा पुं० एक पर्वत का नाम।

मघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरस्कार। इनाम। २. धन। संपत्ति। ३. एक प्रकार का फूल। ४. आनंद। प्रसन्नता (को०)। ५. एक प्रकार की ओषधि (को०)। ६. मघा नक्षत्र (को०)। ७. पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जिसमें म्लेच्छ रहते हैं।

मघई†—वि० [सं० मगध हिं० मगह+ई (प्रत्य०)] दे० 'मगही'।

यौ०—मघईपान=मगही पान। वि० दे० 'पान'।

मघगंध—संज्ञा पुं० [सं० मघगन्ध] वकुल पुष्प। मौलसिरी (को०)।

मघवा—संज्ञा पुं० [सं० मघवन्] १. इंद्र। २. जैनों के बारह चक्रवर्तियों मे से एक। ३. पुराणानुसार सातवें द्वापर के व्यास का नाम। ४. पुराणानुसार एक दानव का नाम।

मघवाजित्—संज्ञा पुं० [सं०] रावण का बड़ा पुत्र इंद्रजित् जिसने इंद्र को जीत लिया था। मेघनाद।

मघवान—संज्ञा पुं० [सं० मघवन्] इंद्र। (डिं०) उ०—ज्यों व्रज पर सजि धाइया मेघन स्यों मघवान।—प० रासो, पृ० ७४।

मघवाप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रप्रस्थ नामक प्राचीन नगर। उ०—फिरि आए हस्तिनपुर पारथ मघवाप्रस्थ बसायो।—सूर (शब्द०)।

मघवारिपु—संज्ञा पुं० [हिं० मघवा + रिपु (= शत्रु)] इंद्र का शत्रु, मेघनाद।

मघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में से दसवाँ नक्षत्र। उ०—(क) मनहुँ मघा जल उमगि उदधि रुख चले नदी नद नारे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) मघा मकरी, पूर्वा डाँस। उत्तरा मे सबका नास। (कहावत)।

२. एक प्रकार की ओषधि।

विशेष—इस नक्षत्र में पाँच तारे हैं। यह चूहे की जाति का माना जाता है और इसके अधिपति पितृगण कहे गए हैं। जिस समय सूर्य इस नक्षत्र में रहता है, उस समय खूब वर्षा होती है और उस वर्षा का जल बहुत अच्छा माना जाता है।

मघात्रयोदशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (को०)।

मघाना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास। वि० दे० 'मकड़ा'।

मघाभव—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र ग्रह।

मघाभू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मघाभव' (को०)।

मघारना†—क्रि० स० [हिं० माघ + आरना (प्रत्य०)] आगामी वर्षा ऋतु में धान बोने के लिये माघ के महीने में हल चलाना ।

मघोनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० मघवन्] इंद्राणी । इंद्रपत्नी । शची ।

मघौना¹—संज्ञा पुं० [सं० मेघ + वर्ण] नीले रंग का कपड़ा । उ०—बिकवा चीर मघौना लोने । मोति लाग औ छापे सोने ।—जायसी (शब्द०) ।

मघौना²†—संज्ञा पुं० [सं० मघवन्] दे० 'मघवा' ।

मचक—संज्ञा स्त्री० [हिं० मचकना] दबाव । बोझ । दाब । उ०—बरजे दूनी ह्वै चढ़ै ना सकुचै न सँकाय । टूटति कटि दुमची मचक लचकि लचकि बचि जाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

मचकना¹—क्रि० स० [मच् मच् से अनु०] किसी पदार्थ को, विशेषतः लकड़ी आदि के बने पदार्थ को, इस प्रकार जोर से दबाना कि उसमें से मच् मच् शब्द निकले । उ०—यों मिचकी मचकौ न हहा लचकै करिहाँ मचकै मिचकी के । —पद्माकर (शब्द०) ।

मचकना²—क्रि० अ० इस प्रकार दबना जिसमे मच मच शब्द हो । झटके से हिलना । उ०—उचकि चलत हरि दचकनि दचकत मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल ।—केशव (शब्द०) ।

मचका—संज्ञा पुं० [हिं० मचकना] [स्त्री० अल्पा० मचकी] १. झोंका । धक्का । झटका । दुमचन । २. झूले की पेंग ।

मचकाना—क्रि० स० [अनु०] मचकने में प्रवृत्त करना । झुकाना । दबाना । लचाना ।

मचक्रुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक यक्ष का नाम । २. कुरुक्षेत्र के पास का एक पवित्र स्थान जिसकी रक्षा उक्त यक्ष करता है ।

मचना¹—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी ऐसे कार्य का आरंभ या प्रचलित होना जिसमें कुछ शोरगुल हो । जैसे,—क्या दिल्लगी मचा रखी है ? २. छा जाना । फैलना । जैसे,—होली मच गई । उ०—नाचैगी निकसि ससिबदनी बिहँसि वहाँ को हमैं गनत मही माह मैं मचति सो ।—देव (शब्द०) ।

मचना²—क्रि० अ० दे० 'मचकना' । उ०—यह सुनि हँसत मचत अति गिरधर डरत देखि अति नारि ।—सूर (शब्द०) ।

मचमचाना—क्रि० अ० [अनु०] १. काम के बहुत अधिक आवेश में होना । बहुत अधिक कामातुर होना । २. हलचल या गति द्वारा ध्वनि उत्पन्न करना ।

मचमचाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० मचमचाना + आहट (प्रत्य०)] १. मचमचाने की क्रिया या भाव । २. बहुत अधिक काम का आवेश ।

मचरंग—संज्ञा पुं० [देश०] किलकिला पक्षी ।

मचर्चिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तमता । श्रेष्ठता ।

मचर्चिका²—वि० जो सबसे उत्तम हो । सर्वश्रेष्ठ ।

मचल—संज्ञा स्त्री० [हिं० मचलना] मचलने की क्रिया या भाव ।

मचलना—क्रि० अ० [अनु०] किसी चीज को लेने अथवा न देने के लिये जिद बाँधना । हठ करना । अड़ना । (विशेषतः बालकों अथवा स्त्रियों के विषय में बोलते हैं ।)

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

मचला¹—वि० [हिं० मचलना, अ० पं० मचला] १. जो बोलने के अवसर पर जान बूझकर चुप रहे । अनजान बननेवाला । २. मचलनेवाला । हठ करनेवाला । हठी । उ०—हो मचला ले छाँड़िहौं जेहि लगि अरचो हौं ।—तुलसी (शब्द०) ।

मचला†²—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की तीलियों से बुनी हुई डलरी ।

मचलाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] मचलने का भाव । उ०—माखन मिसरी हौं देहों चाखो मेरे प्यारे । छोड़ो मचलाई लाल नंद के दुलारे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६७ ।

मचलाना¹—क्रि० अ० [अनु०] कै मालूम होना । जी मतलाना । ओकाई आना ।

मचलाना²—क्रि० स० किसी को मचलने में प्रवृत्त करना ।

मचलाना(पु)³—क्रि० अ० अड़ना । हठ करना । दे० 'मचलना' ।

मचलापन—संज्ञा पुं० [हिं० मचला + पन (प्रत्य०)] मचला होने का भाव । कुछ जानते हुए भी चुप रहने का भाव ।

मचली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिचली' ।

मचवा—संज्ञा पुं० [सं० मञ्च] १. खाट । पलंग । मंझा । २. खटिया या चौकी का पाया । ३. नाव । किश्ती । (लश०) ।

मचाँग†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मचान' ।

मचान—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्च + आन (प्रत्य०)] १. चार खंभों पर बाँस का टट्टर बाँधकर बनाया हुआ स्थान जिसपर बैठकर शिकार खेलते या खेत की रखवाली आदि करते हैं । मंच । २. कोई ऊँची बैठक । ३. दीया रखने का टिकठी । दीयट ।

मचाना¹—क्रि० स० [हिं० मचना का सक०] मचना का सकर्मक रूप । कोई ऐसा काय आरंभ करना जिसमें हुल्लड़ हो । जैसे, दिल्लगी मचाना, होली मचाना । उ०—कबीर घोड़ा प्रेम का (कोइ) चेतन चढ़ि असवार । ज्ञान खड्ग लै काल सिर, भली मचाई मार ।—संतवाणी०, पृ० ३८ ।

मचाना†²—क्रि० स० [?] मैला करना । गंदा करना ।

मचामच—संज्ञा स्त्री० [सं० अनु०] किसी पदार्थ को दबाने से होनेवाला मचमच शब्द । दुमचने का शब्द ।

मचिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्च + इया (प्रत्य०)] ऊँचे पायों की एक आदमी के बैठने योग्य छोटी चारपाई । पलँगड़ी । पीढ़ी ।

मचिलई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० मचलना] १. मचलने का भाव । २. इतराहट । ३. मचलापन ।

मचुला—संज्ञा पुं० [देश०] गिरगिट्टी नामक वृक्ष जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है । विशेष दे० 'गिरगिट्टी' ।

मचेरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] बैलों के जुए के नीचे की लकड़ी।

मचैया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मचिया] दे० 'मचिया'। उ०—दब गई पराजय के बोझ से लद, किसान की झुकी मचैया। —इत्यलम्, पृ० २१०।

मचोला—संज्ञा पुं० [देश०] बंगाल की खारी दलदलों में होनेवाला एक पौधा जिससे सुहागा बनता है।

मच्छ—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्य, प्रा० मच्छ] १. बड़ी मछली। २. मत्स्यावतार। उ०—(क) मच्छ कच्छ वाराह प्रनमिया।—पृ० रा०, २।२। (ख) नहिं तब मच्छ कच्छ बाराहा।—कबीर० श०, पृ० १४६। ३. दोहे के सोलहवें भेद का नाम। इसमें ७ गुरु और ३४ लघु मात्राएँ होती हैं। ४. दे० 'मत्स्य'।

मच्छअसवारी—संज्ञा पुं० [हिं० मच्छ + सवारी] कामदेव। मदन। (डिं०)।

मच्छघातिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मच्छ + सं० घातिनी] मछली फँसाने की लग्घी। बंसी।

मच्छड़—संज्ञा पुं० [सं० मशक] एक प्रसिद्ध छोटा पतिंगा। मशक।

विशेष—यह वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु में, गरम देशों में और केवल ग्रीष्म ऋतु में कुछ ठंढे देशों में पाया जाता है। इसकी मादा पशुओं और मनुष्यों को काटती और डंक से उनका रक्त चूसती है। इसके काटने से शरीर मे खुजली होती है और दाने से पड़ जाते हैं। यह पानी पर अडे देता है; और इसी लिये जलाशयो तथा दलदलो के पास बहुत अधिक संख्या मे पाया जाता है। प्राय: उड़ने के समय यह भुन् भुन् शब्द किया करता है। मलेरिया ज्वर इसी के द्वारा फैलता है।

मुहा०—मच्छड़ पर तोप लगाना = क्षुद्र कार्य के लिये महद् प्रयास या प्रयोग।

मच्छड़[2]—वि० कृपण। कंजूस। (लाक्ष०)।

मच्छनी⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्यनी] मीनगंध। मत्स्यगंध। उ०—अंतरिच्छ गच्छनीनी मच्छनी सुलच्छनीनि अच्छी अच्छी अच्छनीनि छवि छमनीय है।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० २०।

मच्छर[1]—संज्ञा पुं० [सं० मशक] दे० 'मच्छड़'।

यौ०—मच्छरदानी = मच्छड़ों से बचाव के लिये खाट वा पलग के चारो ओर लगाने का जालीदार कपड़े का घेरा।

मच्छर[2]—संज्ञा पुं० [सं० मत्सर, प्रा० मच्छर] १. क्रोध। कोप। (डिं०)। २. दे० 'मत्सर'। उ०—मच्छर और न संग्रहै आ मछरी का स्वाद।—रा० रू०, पृ० ७२।

मच्छरता⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्सर+ता (प्रत्य०)] मत्सर। ईर्ष्या। द्वेष।

मच्छसीमा—संज्ञा स्त्री० [हिं० मच्छ + सीमा] भूमि संबंधी झगड़ों का वह निपटारा जो किसी नदी आदि को सीमा मानकर किया जाता है। महाजी।

मच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य, हिं० मच्छ + ई (प्रत्य०)] दे० 'मछली'।

यौ०—मच्छीगिर = मैनाक पर्वत। उ०—जब सु राम चढि लंक तब सु मच्छी गिर तारिय।—पृ० रा०, २।२७३। मच्छीभवन = मछली पालने का हौज वा नाँद। मच्छीमार।

मच्छीकाँटा—संज्ञा पुं० [हिं० मच्छी + काँटा] एक प्रकार की सिलाई जिसमें सीए जानेवाले टुकड़ों के बीच मे एक प्रकार की पतली जाली सी बन जाती है। २. कालीन में एक प्रकार की जालीदार बेल।

मच्छीमार—संज्ञा पुं० [हिं० मच्छी + मार (प्रत्य०)] धीवर। मल्लाह।

मच्छोदरी⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्योदरी] व्यास जी की माता और शांतनु की भार्या, सत्यवती। उ०—सत्यवती मच्छोदरि नारी। गंगा तट ठाढ़ी सुकुमारी।—सूर (शब्द०)।

मछखवा—संज्ञा पुं० [हिं० मच्छ + खाना] मछली खानेवाला। उ०—सकठा बाम्हन मछखवा ताहि न दीजे दान।—पलटू० भा० ३, पृ० ११४।

मछगंधा—संज्ञा स्त्री० [हिं० मछ (= मत्स्य) + गंधा] दे० 'मत्स्यगंधा'। उ०—इहि काम पराशर अंधा। उन धाइ गही मछगंधा।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १२४।

मछमरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० मच्छ+मारी] मछली का शिकार। उ०—कल पड़मान नदी मे मछमारी होगी।—मैला०, पृ० १८८।

मछरंगा†—संज्ञा पुं० [हिं० मच्छ (= मछली)] एक प्रकार का जलपक्षी जो मछलियाँ पकड़कर खाता है। किलकिला। राम चिड़िया। उ०—लो, मछरंगा उतर तीर सा नीचे क्षण मे पकड़ तड़पती मछली को, उड़ गया गगन में।—ग्राम्या, पृ० ७४।

मछरंभ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मचरंग'।

मछर‡—संज्ञा पुं० [सं० मत्सर, प्रा० मच्छर] मत्सर। द्वेष। ईर्ष्या।

मछरता†—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्सरता] दे० 'मत्सरता'। उ०—राग दोष तज मछरता कलह कलपना त्याग। संकलप विकलप मेटकर साचे मारग लाग।—राम० धर्म०, पृ० ३१४।

मछरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य] १. दे० 'मछली'। २. एक प्रकार की बुलबुल।

मछरी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मछली'। उ०—बिनु पानी मछरी से बिरहिया, मिले बिना अकुलाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६३।

मछली—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य, प्रा० मच्छ] सदा जल मे रहनेवाला एक प्रसिद्ध जीव। मीन। मत्स्य। उ०—मछली को तैरना कोई नही सिखाता। वैसे ही, चढ़ती उम्र की कामिनी को प्रणय के पैंतरे सिखाने नही पड़ते।—नो दुनिया, पृ० ५६।

विशेष—इस जीव की छोटी बड़ी असंख्य जातियाँ होती हैं। इसे फेफड़े के स्थान मे गलफड़े होते हैं जिनकी सहायता से यह जल में रहकर ही उसके अंदर की हवा खीचकर साँस लेती है; और यदि जल से बाहर निकाली जाय, तो तुरंत

मर जाती है। पैरों या हाथों के स्थान में इसके दोनों ओर दो पर होते हैं जिनकी सहायता से यह पानी में तैर सकती है। कुछ विशिष्ट मछलियों के शरीर पर एक प्रकार का चिकना चिमड़ा छिलका होता है जो छीलने पर टुकड़े टुकड़े होकर निकलता है और जिससे सजावट के लिये अथवा कुछ उपयोगी सामान बनाए जाते हैं। अधिकांश मछलियों का मांस खाने के काम मे आता है। कुछ मछलियों की चर्बी भी उपयोगी होती है। इसकी उत्पत्ति अंडों से होती है।

यौ०—मछली का तेल=रोग में उपयोगी मछली का तेल। मछली का दाँत=गैंडे के आकार के एक पशु का दाँत जो प्रायः हाथीदाँत के समान होता है और इसी नाम से बिकता है। मछली का मोती=एक प्रकार का कल्पित मोती जिसके विषय मे लोगों की यह धारणा है कि यह मछली के पेट से निकलता है, गुलाबी रंग और घुँघची के समान होता है और बड़े भाग्य से किसी को मिलता है। मछली की स्याही=एक प्रकार का काला रोगन जो भूमध्यसागर मे पाई जानेवाली एक प्रकार की मछली के अंदर से निकलता है और जो नक्शे आदि खींचने के काम में आता है।

२. मछली के आकार का बना हुआ सोने, चाँदी आदि का लटकन जो प्रायः कुछ गहनों में लगाया जाता है। ३. मछली के आकार का कोई पदार्थ।

मछलीगोता—संज्ञा पुं० [हिं० मछली+गोता] कुश्ती का एक पेंच।

मछलीडंड—संज्ञा पुं० [हिं० मछली+डंड] एक प्रकार का डंड जिसमें दोनों हाथ जमीन पर पास पास रखकर छाती और कोहनी को जमीन से ऊपर करते हुए मछली के समान उछलते हैं। इसमें पंजों को नीचे जमीन पर पटकने से आवाज होती है।

मछलीदार—संज्ञा पुं० [हिं० मछली+दार (प्रत्य०)] दरी की एक प्रकार की बुनावट।

मछलीमार—संज्ञा पुं० [हिं० मछली+मार (प्रत्य०)] मछली मारनेवाला। मछुआ। धीवर। मल्लाह।

मछवा—संज्ञा पुं० [हिं० मछली] १. वह नाव जिसपर बैठकर मछली का शिकार करते हैं (लश०)। २. मल्लाह।

मछहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मसहरी'।

मछिंदरनाथ—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्येन्द्रनाथ] गोरखनाथ जी के गुरु। उ०—गोरख सिद्धि दीन्हि तोहि हाथू। तारे गुरु मछिंदर नाथू।—जायसी० ग्रं० (गुप्त), पृ० २२८।

मछुआ, मछुवा—संज्ञा पुं० [हिं० मछली+मार (प्रत्य०)] मछली मारनेवाला। धीवर। मल्लाह।

मछेहा†—संज्ञा पुं० [देश०] शहद का छत्ता।

मछोतरा†—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्य+हिं० ओतरा] मछली के आकार का लकड़ी का टुकड़ा जिसकी सहायता से हरिस में हल जुड़ा रहता है।

मछोदरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मत्स्योदरी'। उ०—मछोदरी जाकहूँ जग कहई। व्यासदेव की जननी अहई।—कबीर सा०, पृ० ३४।

मजकुण†—संज्ञा पुं० [सं० मत्कुण] खटमल। उ०—विर्षे बिलंबी आत्मां, (ताका), मजकण खाया सोधि।—कबीर ग्रं०, पृ० ४०।

मजकूर—वि० [अ० मज़कूर] जिसका उल्लेख या चर्चा पहले हो चुकी हो। जिक्र किया हुआ। कथित। उक्त। उ०—हुआ यों नूर जब मशहूर आलम। घेर घर तब किए मजकूर आलम।—दक्खिनी०, पृ० १६४।

मजकूर ए बाला—वि० [अ० मज़कूर ए बालह्] ऊपर कहा हुआ। पूर्वोक्त। उपर्युक्त।

मजकूरात—संज्ञा पुं० [अ० मज़कूरात] शामिलात देहात अराजी का लगान जो गाँव के खर्च में आता है।

मजकूरी—संज्ञा पुं० [अ० मज़कूरी] १. ताल्लुकेदार। २. चपरासी। ३. वह मनुष्य जिसको चपरासी अपनी ओर से अपने समन वगैरह की तामील के लिये रख लेते हैं। ४. बिना वेतन का चपरासी। ५. वह जमीन जिसका बँटवारा न हो सके और जो सर्वसाधारण के लिये छोड़ दी गई हो।

मजगूत—वि० [अ० मज़बूत] दे० 'मजबूत'। उ०—यह समधिन जग ठगे मजगूत।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ४४।

मजजूब—वि० [अ० मज़जूब] तल्लीन। परमहंस। देखने में बावला पर ब्रह्मरत। उ०—मुबारक लब का पस खोर वो जो खावे, ओ बी मसकूर हो मजजूब जावे।—दक्खिनी०, पृ० १६५।

यौ०—मजजूब की बहक=प्रलाप। बहक।

मजद—संज्ञा पुं० [अ० मज्द] पुनीतता। पवित्रता। श्रेष्ठता। उ०—सब आशिकों मे हम कूँ मजद है आबरू का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३।

मजदूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० मज़दूर] [स्त्री० मजदूरनी, मजदूरिन] बोझ ढोनेवाला। मजूरा। कुली। मोटिया। २. इमारत या कल कारखानों में छोटा मोटा काम करनेवाला आदमी। जैसे, राज मजदूर, मिलों के मजदूर।

मजदूरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मज़दूरी] १. मजदूर का काम। बोझ ढोने का या इसी प्रकार का और कोई छोटा मोटा काम। २. बोझ ढोने या और कोई छोटा मोटा काम करने का पुरस्कार। ३. वह धन जो किसी को कोई नियत कार्य करने पर मिले। परिश्रम के बदले में मिला हुआ धन। उजरत। पारिश्रमिक। ४. जीविकानिर्वाह के लिये किया जानेवाला कोई छोटा मोटा और परिश्रम का काम।

यौ०—मजदूरी पेशा=मजदूरी करनेवाला। मजदूर का काम करनेवाला।

मजनाⓟ†—क्रि० अ० [सं० मज्जन] १. डूबना। निमज्जित

होना। २. अनुरक्त होना। उ०—मानत नहीं लोक मर्यादा हरि के रंग मजी। सूर स्याम को मिलि चूने हरदी ज्यों रंगरजी।—सूर (शब्द०)।

मजनूँ—संज्ञा पुं० [अ०] १. पागल। सिड़ी। बावला। दीवाना। सौदाई। २. अरब के एक प्रसिद्ध सरदार का लड़का जिसका वास्तविक नाम कैस था और जो लैला नाम की एक कन्या पर आसक्त होकर उसके लिये पागल हो गया था; और इसी कारण जो 'मजनूँ' प्रसिद्ध हुआ था। लैला के साथ मजनूँ के प्रेम के बहुत से कथानक प्रसिद्ध हैं। उ०—लैला में मजनूँ की ही आँख ने माधुर्य देखा था।—रस०, पृ० ८७। ३. आशिक। प्रेमी। आसक्त। ४. बहुत दुबला पतला आदमी। सूखा हुआ मनुष्य। अति दुर्बल मनुष्य। ५. एक प्रकार का वृक्ष जिसकी शाखाएँ झुकी होती हैं। इसे 'बेद मजनूँ' भी कहते हैं। विशेष दे० बेद मजनूँ'।

मजबह—संज्ञा पुं० [अ० मज़बह] वधस्थान। वधभूमि। काटने का स्थल [को०]।

मजबूत—वि० [अ० मज़बूत] १. दृढ़। पुष्ट। पक्का। २. अटल। अचल। स्थिर। ३. बलवान्। सबल। तगड़ा। हृष्टपुष्ट।

यौ०—मजबूत दिल का=दिलेर। साहसी। दृढ़चित्त।

मजबूती—संज्ञा स्त्री० [अ० मज़बूत+ई (प्रत्य०)] १. मजबूत का भाव। दृढ़ता। पुष्टता। पक्कापन। २. ताकत। बल। ३. हिम्मत। साहस।

मजबूर—वि० [अ०] जिसपर जब्र किया गया हो। विवश। लाचार। जैसे,—आपको यह काम करने के लिये कोई मजबूर नहीं कर सकता।

मजबूरन्—क्रि० वि० [अ०] विवश होकर। लाचारी से।

मजबूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० मजबूर+ई (प्रत्य०)] असमर्थता। लाचारी। बेबसी।

मजमा—संज्ञा पुं० [अ० मज्मअ] बहुत से लोगों का एक स्थान में जमाव। भीड़भाड़। जमघट।

मजमुआ¹—वि० [अ० मज्मूअह्] इकट्ठा किया हुआ। जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। संगृहीत।

मजमुआ²—संज्ञा पुं० [अ०] १. एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों का समूह। जखीरा। खजाना। २. एक प्रकार का इत्र जो कई इत्रों को एक में मिलाकर बनता है। यह प्रायः जमा हुआ होता है।

यौ०—मजमुआ जाबता दीवानी=दीवानी कानूनों का संग्रह। मजमुआ जाबता फौजदारी=फौजदारी कानूनों का संग्रह। मजमुआदार=माल विभाग का कर्मचारी।

मजमून—संज्ञा पुं० [अ० मज़्मून] १. विषय, जिसपर कुछ कहा या लिखा जाय। उ०—उसकाने और भड़कानेवाले मजमून की भी कजलियाँ बना रखते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४५।

मुहा०—मजमून बाँधना=किसी विषय अथवा नवीन विचार को गद्य या पद्य में लिखना। मजमून मिलना या लड़ना=दो अलग अलग लेखकों या कवियों के वर्णित विषयों या भावों का मिल जाना।

२. लेख। निबंध।

यौ०—मजमून नवीस=लेखक। निबंधकार। मजमूननवीसी=लेख या निबंध लिखने का काम। मजमूननिगारी=दे० 'मजमूननवीसी'।

मजमूम—वि० [अ० मजमूम] निंदित। दूषित। अश्लील। खराब [को०]।

मजम्मत—संज्ञा स्त्री० [अ०] तिरस्कार। बुराई। बेइज्जती। निंदा। उ०—आप तो इनकी मजम्मत करना ही चाहें।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५७।

मजरिया—वि० [फ़ा०] जो जारी हो। प्रवर्तित। (कचहरी)।

मजरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का झाड़ जिसके डंठलों से टोकरे बनाए जाते हैं। यह सिंध और पंजाब में अधिकता से होता है।

मजरूआ—वि० [अ० मज़रूअह्] जोता और बोया हुआ। (खेत)।

मजरूब—संज्ञा पुं० [अ०] सिक्का। पण [को०]।

मजरूह—वि० [अ०] चोट खाया हुआ। घायल। जखमी।

मजर्रत—संज्ञा स्त्री० [अ० मजर्रत] हानि। नुकसान। चोट। उ०—उनके एजाज में मजर्रत पहुँचाने में इस दर्जे तक शौक रखते हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १००।

मजल†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मंज़िल] मंजिल। पड़ाव। टिकान। उ०—चले मजल दर मजल आया बेदर के मिसल। वहाँ हुई सो नक्कल वो सकल तुम सुनो।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

मुहा०—मजल मारना=(१) बहुत दूर से पैदल चलकर आना। (२) कोई बड़ा काम करना।

मजलिस—संज्ञा स्त्री० [अ०] बहुत से लोगों के बैठने की जगह। वह स्थान जहाँ बहुत से मनुष्य एकत्र हों। २. सभा। समाज। जलसा। उ०—मजलिस बैठि गँवार कहे पहुँचे हैं हमही।—पलटू०, भा० २, पृ० ७४।

क्रि० प्र०—जमना।—जुड़ना।—लगना।

३. महफिल। नाच रंग का स्थान।

यौ०—मजलिसघर=महफिल या नाच रंग का स्थान या महल। उ०—उस मजलिसघर का विवरण जो नदी के तट पर बनाया गया था और जिसका नाम तिलस्मी घर रखा गया था।—हुमायूँ०, पृ० ४३।

मजलिसी¹—संज्ञा पुं० [अ०] नेवता देकर मजलिस में बुलाया हुआ मनुष्य। निमंत्रित व्यक्ति।

मजलिसी²—वि० १. मजलिस संबंधी। मजलिस का। २. जो मजलिस में रहने योग्य हो। सबको प्रसन्न करनेवाला।

मजलूम—वि० [अ० मज़लूम] जिसपर जुल्म हुआ हो। सताया हुआ। अत्याचारपीड़ित।

मजहब—संज्ञा पुं० [अ० मज़हब] धार्मिक संप्रदाय। पंथ। मत।

मजहबी¹—वि० [अ० मज़हबी] किसी धार्मिक मत या संप्रदाय से संबंध रखनेवाला।

यौ०—मजहबी आजादी—स्वधर्माचरण की स्वतंत्रता। मजहबी लड़ाई=धर्म के नाम पर की जानेवाली लड़ाई या प्रचार।

मजहबी²—संज्ञा पुं० मेहतर सिक्ख। भंगी सिक्ख।

मजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मज़ह्] १. स्वाद। लज्जत। जैसे,—अब आमों मे कुछ मजा नहीं रह गया।

मुहा०—मजा चखाना=किसी को उसके किए हुए अपराध का दंड देना। बदला लेना। किसी चीज का मजा पड़ना= चसका लगना। आदत पड़ना। मजे पर आना=अपनी सबसे अच्छी दशा में आना। जोबन पर आना।

२. आनंद। सुख। जैसे,—आपको तो लड़ाई झगड़े में ही मजा मिलता है।

मुहा०—मजा उड़ाना या लूटना=आनंद लेना। सुख भोगना। उ०—सर को पटका है कभू, सीना कभू कूटा है। रात हम हिज्र की दौलत से मजा लूटा है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३८। मजा किरकिरा करना या होना=आनंद में विघ्न पड़ना। रंग में भंग होना। उ०—मजा किरकिरा न कीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११०। मजे का= अच्छा। बढ़िया। उत्तम। मजे में या मजे से=आनंदपूर्वक। बहुत अच्छी तरह। सुख से।

३. दिल्लगी। हँसी। मजाक। जैसे,—मजा तो तब हो, जब वह आज भी न आवे।

मुहा०—मजा आ जाना=परिहास का साधन प्रस्तुत होना। दिल्लगी का सामान होना। जैसे,—अगर आप यहाँ गिरें तो मजा आ जाय। मजा चखना=परिणाम भुगतना। करनी का फल भुगतना। मजा देखना या लेना=दिल्लगी या तमाशा देखना। जैसे,—आप चुपचाप बैठे बैठे मजा देखा कीजिए।

मजाक—संज्ञा पुं० [अ० मज़ाक] १. हँसी। ठट्ठा। दिल्लगी। ठठोली।

क्रि० प्र०—करना।—सूझना।

मुहा०—मजाक उड़ाना=परिहास करना। दिल्लगी करना।

यौ०—मजाक़ का आदमी=हँसमुख। दिल्लगीबाज। ठठोल।

२. प्रवृत्ति। रुचि। ३. जायका। स्वाद (को०)।

यौ०—मजाकपसंद=दिल्लगीबाज। परिहासप्रिय। विनोदी। उ०—यद्यपि वे हँसमुख, खुशमिजाज, मजाकपसंद थे।—अकबरी०, पृ० ९७।

मजाकन्—क्रि० वि० [अ० मजाकन्] मजाक से। हँसी दिल्लगी के तौर पर। जैसे,—मैंने तो यह बात मजाकन् कही थी।

मजाकिया—वि० [अ० मज़ाकिया] परिहासपूर्ण। दे० 'मजाकन्'।

मजाज†¹—संज्ञा पुं० [फ़ा मजाज] १. गर्व। अभिमान। (डिं०)। २. दे० 'मिजाज'।

मजाज²—संज्ञा पुं० [अ० मजाज़] अधिकार। हक। इख्तियार। २. लक्ष्यार्थ। लाक्षणिक प्रयोग।

मजाज³—वि० दे० 'मजाजी'।

मजाजी—वि० [अ० मजाजी] १. कृत्रिम। बनावटी बनौवा। २. माना हुआ। कल्पित। उ०—अगल बेहतर है इश्कबाजी का। क्या हकीकी व क्या मजाजी का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४। ३. भौतिक। लौकिक। सांसारिक। उ०— कोई मजाजी कहता हकीकी नाम किसी ने है रक्खा।—भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० ५६३।

मजार¹—संज्ञा पुं० [अ० मज़ार] १. समाधि। मकबरा। २. कब्र।

मजार(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० मार्जार] बिलाव। उ०—बिरह मयूर, नाग वह नारी। तू मजार करु बेगि गोहारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १६३।

मजार(पु)†³—क्रि० वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+हिं० आर (प्रत्य०)] दे० 'मझार'। उ०—कठियल दिय सिर धरिय प्रणाम कर फिल गय वल निज नगर मजार।—रधु० रू०, पृ० १२०।

मजारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जारी] बिल्ली। बिडाल। उ०— सत्रु सुआ कै नाऊ बारी। सुनि धाए जस धाव मजारी।— जायसी (शब्द०)।

मजाल—संज्ञा स्त्री० [अ०] सामर्थ्य। शक्ति। ताकत। जैसे,— किसी की मजाल नहीं जो आपसे बातें कर सके।

मजाहमत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुजाहिमत] हस्तक्षेप। दखल- अंदाजी। बाधा। रुकावट। उ०—किसकी मजाल है कि हमारे दीनी उमूर मे मजाहमत करे?—काया०, पृ० ४७।

मजिल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मंजिल] दे० 'मंजिल'।

मजिस्टर—संज्ञा पुं० [अ० मजिस्ट्रेट] दे० 'मजिस्ट्रेट'।

मजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] फौजदारी अदालत का अफसर, जो प्रायः जिले का माल विभाग का अधिकारी भी होता है।

यौ०—आनरेरी मजिस्ट्रेट। ज्वाइंट मजिस्ट्रेट। डिप्टी मजिस्ट्रेट।

मजिस्ट्रेटी—संज्ञा स्त्री० [अं० मजिस्ट्रेट+हिं० ई (प्रत्य०)] १. मजिस्ट्रेट का कार्य या पद। २. मजिस्ट्रेट की अदालत।

मजीठ—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जिष्ठा] एक प्रकार की लता जो लाल रंग बनाने और औषध के काम में प्रयुक्त होती है।

विशेष—यह समस्त भारत के पहाड़ी प्रदेशों में पाई जाती है। इसकी सूखी जड़ और डंठलों को पानी में उबालकर एक प्रकार का बढ़िया लाल या गुलनार रंग तैयार किया जाता है

जो सूती और रेशमी कपड़े रँगने के काम में आता है। पर आज कल विलायती बुकनी के कारण इसका व्यवहार बहुत कम होता जाता है। वैद्यक में भी अनेक रोगों में इसका व्यवहार होता है। यह मधुर, कषाय, उष्ण, गुरु और व्रण, प्रमेह, ज्वर, श्लेष्मा तथा विष का प्रभाव दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—विकसा। समंगा। कालमेषिका। मंडूकपर्णी। भंडी। हरिणी। रक्ता। गौरी। योजनवल्लिका। वम्रा। रोहिणी। चित्रा। चित्रलता। जननी। विजया। मंजूषा। रक्तयष्टिका। क्षत्रिणी। छत्रा। अरुणी। नागकुमारिका। वस्त्रभूषणी।

मजीठी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+ठी] १. वह रस्सी जो जुआठे में बँधी रहती है। जोत। २. रूई ओटने की चर्खी में लगी हुई बीच की लकड़ी जो घूमती है और जिसके घूमने से रूई में से बिनौले अलग होते हैं।

मजीठी[2]—वि० [हिं० मजीठ] मजीठ के रंग का। लाल। सुर्ख। उ०—ओहि के रँग भा हाथ मजीठी। मुकुता लेउँ तो घुँघची दीठी।—जायसी (शब्द०)।

मजीद[1]—वि० [अ० मजीद] अतिरिक्त। अधिक। विशेष। उ०—हुजूर, मुआमला साफ है, अब मजीद सबूत की जरूरत नहीं रही।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ५६०।

मजीद[2]—वि० [अ०] पूज्य। मान्य। प्रतिष्ठित।

मजीर(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जरी] मंजरी। घौद। उ०—करिकुंभ कुंजर विटप भारी चमर चारु मजीर। चमु चंचल चलत नाहिन रही है पुर तीर।—सूर (शब्द०)।

मजीरा—संज्ञा पुं० [सं० मञ्जीर] काँसे की बनी हुई छोटी छोटी कटोरियों की जोड़ी जिनके मध्य में छेद होता है। इन्हीं छेदों में डोरा पहनाकर उसकी सहायता से एक कटोरी से दूसरी पर चोट देकर संगीत के साथ ताल देते हैं। जोड़ी। ताल। टुनकी। इसके बोल इस प्रकार हैं—ताँयँ ताँयँ, किट् ताँयँ, किट् किट्, ताँयँ ताँयँ।

मजुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्जरी] दे० 'मंजरी'। उ०—भुज चंपे की मजुरी, मिलति एक के रूप। मानहु कंचन खंभ तें द्वादश लता अनूप।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६१।

मजूत(पु)‡—वि० [अ० मजबूत] दे० 'मजबूत'। उ०—गनिका कनिका अगनि की, रूपसमाधि मजूत। होम करत कामी पुरुष जोबन धन आहूत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६६।

मजूर(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० मयूर] मोर।

मजूर[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० मजदूर] दे० 'मजदूर'।

मजूरा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० मजदूर] दे० 'मजदूर'।

मजूरी†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मजदूरी] दे० 'मजदूरी'।

मजेज(पु)—वि० [फ़ा० मिज़ाज] दर्प। अहंकार। अभिमान। उ०—(क) लाडिली कुँवरि राधा रानी के सदन तजी मदन मजेज रति सेजहि सजति है।—देव (शब्द०)। (ख) खेस को बहानो कै सहेलिन के संग चलि आई केलि मंदिर लौं सुंदर मजेज पर।—पद्माकर (शब्द०)।

मजेठी†—संज्ञा स्त्री० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] सूत कातने के चर्खे में वह लकड़ी जो नीचे से उन दोनों डंडों को जोड़े रहती है जिनमें पहिया या चक्कर लगा होता है।

मजेदार—वि० [फा० मजहदार>मजेदार] १. स्वादिष्ट। जायकेदार। २. अच्छा। बढ़िया। ३. जिसमें आनंद आता हो। जैसे,—आपकी बातें बहुत मजेदार होती हैं।

मजेदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० मजह्दार + ई (प्रत्य०)] १. स्वाद। २. आनंद। लुत्फ। मजा। उ०—वे महबूब मजेदारी गर हुई तबीअत में तो क्या—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

मज्ज(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मज्जा] हड्डी के भीतर का भेजा। नली के अंदर का गूदा। उ०—आवत गलानि जो बखान करो ज्यादा यह मादा मल मूत और मज्ज की सलीती है।—पद्माकर (शब्द०)।

मज्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्नान। नहाना। उ०—दरस परस मज्जन अरु पाना।—तुलसी (शब्द०)। २. गोता या डुबकी लगाना (को०)। ३. दे० 'मज्जा' (को०)।

मज्जना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मज्जन] १. स्नान करना। गोता लगाना। नहाना। उ०—सरोवर मज्जि समीरन बिथरओ कैवल कमल परागे।—विद्यापति, पृ० १५६। २. डूबना। निमग्न होना।

मज्जरस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मज्जारस' (को०)।

मज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नली की हड्डी के भीतर का गूदा जो बहुत कोमल और चिकना होता है। २. वृक्ष पौधे आदि का सार भाग (को०)।

मज्जारज—संज्ञा पुं० [सं० मज्जारजस्] १. एक खनिज पदार्थ। सुरमा। २. नरक का एक भेद। एक नरक (को०)।

मज्जारस—संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य। शुक्र (को०)।

मज्जासार—संज्ञा पुं० [सं०] जातीफल (को०)।

मज्झ(पु)—क्रि० वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य। बीच।

मझ(पु)—वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य। उ०—लागी केलि करै मझ नीरा। हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा।—जायसी (शब्द०)।

मझक्का†—संज्ञा पुं० [हिं० माथा + झाँकना] विवाह के दूसरे दिन या तीसरे दिन होनेवाली एक प्रकार की रस्म जिसमें वर पक्ष के लोग कन्या के घर जाकर उसका मुँह देखते और उसे कुछ नगद तथा आभूषण आदि देते हैं। मुँहदेखनी। (पूरब)।

मझधार—संज्ञा स्त्री० [हिं० मझ (= मध्य) + धार] १. नदी के मध्य की धारा। बीच धारा। २. किसी काम का मध्य।

मुहा०—मझधार में छोड़ना = (१) किसी काम को बीच में ही छोड़ना। पूरा न करना (२) किसी को ऐसी अवस्था में छोड़ना कि वह न इधर का रहे न उधर का।

मझबा†—संज्ञा पुं० [अ० मजहब] दे० 'मजहब'। उ०—हिंदू तुरुक मझब में लागो सुद्धि बिसरि गइ हाल।—गुलाल०, पृ० ४६।

मझरा सिंगही†—संज्ञा स्त्री० [देश०] बैलों की एक जाति।

मझला—वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + हिं० ला (प्रत्य०)] मध्य का। बीच का। जैसे, मझला भाई।

मझाना①†¹—क्रि० स० [सं० मध्य] प्रविष्ट करना। बीच में धँसाना। घुसाना।

मझाना①†²—क्रि० अ० प्रविष्ट होना। पैठना। उ०—जहाँ जहाँ नागरि नवल गई निकुंज मझाइ। तहाँ तहाँ लखियत अजौ रही वही छवि छाइ।—स० सप्तक, पृ० ३५१।

मझार①†—क्रि० वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+हिं० आर (प्रत्य०)] बीच में। मध्य में। भीतर। उ०—(क) सोवत जगत डगत मनमोहन लोचन चित्र मझार।—श्यामा०, पृ० ८५। (ख) हेरत दोउन को दोऊ औचकहीं, मिले आनि के कुंज मझारी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६७।

मझावना①†—क्रि० अ०, क्रि० स० [हिं० मझाना] दे० 'मझाना'।

मझिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+हिं० इया (प्रत्य०)] लकड़ी की वे पट्टियाँ जो गाड़ी के पेंदे में लगी रहती हैं।

मझियाना①†¹—क्रि० अ० [हिं० माँझी+इयाना (प्रत्य०)] नाव खेना। मल्लाही करना। उ०—प्रथमहि नैन मलाह जे लेत सुनेह लगाइ। तब मझियावत जाय कै गहिर रूप दरियाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

मझियाना²—क्रि० अ० [सं० मध्य+इयाना (प्रत्य०)] मध्य में होकर आना। बीच में होकर निकलना। उ०—सपने हू आए न जे हित गलियन मझिआइ। तिन सों दिल को दरद कहि मत दे भरम गमाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

मझियाना³—क्रि० स० मध्य में से निकलना। बीच में से ले जाना।

मझियारा①†—वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+हिं० इयारा (प्रत्य०)] बीच का। मध्यम।

मझु①—सर्व० [सं० मह्यम्] मेरा। हमारा। २. मैं। अहम्।

मझुआ†—संज्ञा पुं० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+हिं० उआ (प्रत्य०)] हाथ में पहनने की मठिया नामक चूड़ियों में कोहनी की ओर पड़नेवाली दूसरी चूड़ी जो पछेला के बाद होती है।

मझेरू†—संज्ञा पुं० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+हिं० एरू (प्रत्य०)] जुलाहों के आड़ी नामक औजार की बीच की लकड़ी।

मझेला¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. चमारों का लोहे का एक औजार जो एक बालिश्त का होता है। इससे जूते का तला सिया जाता है। २. लोहे का एक औजार जिसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है और जिससे चमड़े पर का खुरखुरापन दूर किया जाता है। ३. दे० 'मझुआ'।

मझेला†²—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मझेला'।

मझोला—वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ+हिं० ओला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० मझोली] १. मझला। बीच का। मध्य का। २. जो आकार के विचार से न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा। मध्यम आकार का।

मझोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० मझोला] १. एक प्रकार की बैलगाड़ी। २. टेकुरी की तरह का एक औजार जिससे जूते की नोक सी जाती है।

मट①†—संज्ञा पुं० [हिं० मटका या माट] मिट्टी का बड़ा पात्र जिसमें दूध दही रहता है। मटका। मटकी। उ०—तौ लगि गाय बँधाय उठी कवि देव बधू न मथ्यो दधि को मट।—देव (शब्द०)।

मटक—संज्ञा स्त्री० [सं० मट (=चलना)+हिं० क (प्रत्य०)] १. गति। चाल। उ०—कुंडल लटक सोहै भृकुटी मटक मोहै अटकी चटक पट पीत फहरान की।—दीनदयाल (शब्द०)। २. मटकने की क्रिया या भाव। उ०—वह मटक के साथ सबकी ओर पीठ करके बड़ी तेजी से दूसरे कमरे में चली गई।—जिप्सी, पृ० २७०।

यौ०—चटक मटक।

मटकना—क्रि० अ० [सं० मट (=चलना)] १. अंग हिलाते हुए चलना। लचककर नखरे से चलना। (विशेषत: स्त्रियों का)। २. अंगों अर्थात् नेत्र, भृकुटी, उँगली आदि का इस प्रकार संचालन होना जिसमें कुछ लचक या नखरा जान पड़े। ३. हटना। लौटना। फिरना। उ०—श्याम सलोने रूप में अरी मन अरच्यो। ऐसे ह्वै लटक्यो तहाँ ते फिरि नहिं मटक्यो बहुत जतन मैं करचो।—सूर (शब्द०)। ४. विचलित होना। हिलना। उ०—उतर न देत मोहनी मौन ह्वै रही री सुनि सब बात नेकहू न मटकी।—सूर (शब्द०)।

मटकनि①—संज्ञा स्त्री० [हिं० मटकना] १. गति। चाल। २. मटकने का भाव। उ०—भृकुटी मटकनि पीत पट चटक लटकती चाल।—बिहारी (शब्द०)। ३. नाचना। नृत्य। ४. नखरा। मटक।

मटका—संज्ञा पुं० [हिं० मिट्टी+क (प्रत्य०)] मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का बड़ा घड़ा जिसमे अन्न, पानी इत्यादि रखा जाता है। मट। माट। उ०—ले जाती है मठका बड़का, मैं देख देख धीरज धरता हूँ। कुकुर०, पृ० ३२।

मटकाना¹—क्रि० स० [हिं० मटकना का सक०] नखरे के साथ अंगों का संचालन करना। आँख, हाथ आदि हिलाकर कुछ चेष्टा करना। चमकाना। जैसे, हाथ मटकाना, आँखें मटकाना। उ०—भृकुटी मटकाय गुपाल के गाल में आँगुरी ग्वालि गड़ाय गई।—मुबारक (शब्द०)।

मटकाना²—क्रि० स० दूसरे को मटकने में प्रवृत्त करना।

मटकी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मटका] छोटा मटका। कमोरी।

मटकी²—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मटकाना] मटकाने का भाव। मटक।

मुहा॰—मटकी देना = मटकाना। चमकाना। जैसे,—ग्राँख की एक मटकी देकर चला गया।

मटकीला—वि॰ [हिं॰ मटकना + ईला (प्रत्य॰)] मटकनेवाला। नखरे से हिलने डोलनेवाला। उ॰—चटकीली खोरि सजे मटकीली भौंहन पै दीनदयाल दग मोहे लटकीली चाल पै।—दीनदयाल (शब्द॰)।

मटकौग्रल, मटकौवल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मटकाना + ग्रौवल (प्रत्य॰)] मटकाने की क्रिया या भाव। मटक।

मटखौरा—संज्ञा पु॰ [हिं॰ मिट्टी + खौरा ?] एक प्रकार का हाथी जो दूषित माना जाता है।

मटना—संज्ञा पु॰ [देश॰] एक प्रकार की ऊख जो कानपुर ग्रौर बरेली जिलों में पैदा होती है।

मटमँगरा—संज्ञा पु॰ [हिं॰ माटी + मंगल] विवाह के पहले की एक रीति जिसमें किसी शुभ दिन वर या वधू के घर की स्त्रियाँ गाती बजाती हुई गाँव में बाहर मिट्टी लेने जाती हैं ग्रौर उस मिट्टी से कुछ विशिष्ट ग्रवसरों के लिये गोलियाँ ग्रादि बनाती हैं।

मटमैला—वि॰ [हिं॰ मिट्टी + मैला] मिट्टी के रंग का। खाकी। धूलिया। उ॰—किंतु मटमैले पानी का रंग देखते प्यास भाग गई।—किन्नर॰, पु॰ ४८।

मटर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ मधुर] एक प्रकार का मोटा द्विदल ग्रन्न।

विशेष—यह वर्षा या शरद् ऋतु में भारत के प्राय: सभी भागों मे बोया जाता है। इसके लिये ग्रच्छी तरह ग्रौर गहरी जोती हुई भूमि ग्रौर खाद की ग्रावश्यकता होती है। इसमें एक प्रकार की लंबी फलियाँ लगती हैं जिन्हे छीमी या छीवी कहते हैं ग्रौर जिनके ग्रंदर गोल दाने रहते हैं। ग्रारंभ में ये दाने बहुत ही मीठे ग्रौर स्वादिष्ट होते हैं ग्रौर प्राय: तरकारी ग्रादि के काम में ग्राते हैं। जब फलियाँ पक जाती हैं, तब उनके दानों से दाल बनाई जाती है ग्रथवा रोटी के लिये उसका ग्राटा पीसा जाता है। कहीं कहीं इसका सत्तू भी बनता है। इसकी पत्तियाँ ग्रौर डंठल पशुग्रों के चारे के लिये बहुत उपयोगी होते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक को दुबिया ग्रौर दूसरे को काबुली मटर या केराव कहते हैं। वैद्यक में इसे मधुर, स्वादिष्ट, शीतल, पित्तनाशक, रुचिकारक, वातकारक, पुष्टिजनक, मल को निकालनेवाला ग्रौर रक्तविकार को दूर करनेवाला माना है।

पर्या॰—कलाय। मुंडचणक। हरेणु। रेणुक। संदिक। त्रिपुट। ग्रतिवर्तुल। शमन। नीलक। कंटो। सतील। सतीनक।

यौ॰—मटर चूड़ा या चूड़ा मटर = हरे मटर की फलियों के मुलायम दाने ग्रौर चिउड़े के साथ बनी खिचड़ी जिसमें पानी नहीं डालते भाप ग्रौर घी से पकाते हैं। मटरबोर।

मटरगश्त—संज्ञा स्त्री॰, पु॰ [हिं॰ मट्ठर (= मंद) + फ़ा॰ गश्त] १. धीरे धीरे घूमना। टहलना। २. सैर सपाटा। ३. निरुद्देश्य भ्रमण।

मटरगश्ती—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'मटरगश्त'।

मटरबोर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ मटर + बोर (= घुँघरू)] मटर के दाने के बराबर घुँघरू जो पाजेब ग्रादि मे लगते हैं।

मटराला—संज्ञा पु॰ [हिं॰ मटर + ग्राला (प्रत्य॰)] जौ के साथ मिला हुग्रा मटर।

मटलनी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मिट्टी (= मट) + ग्रलनी] मिट्टी का कच्चा बर्तन।

मटल्ला (पु)†—संज्ञा पु॰ [हिं॰ मट + (ग्रल्ला)] दे॰ 'मटका'। उ॰—मथाणे मटल्ले मही जांण हल्ले।—रा॰ रू॰, पु॰ १६१।

मटा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ माटा] एक प्रकार का लाल च्यूँटा जिसके झुंड ग्राम के पेड़ो पर रहा करते हैं। इसे माटा भी कहते हैं।

मटिग्राना†¹—क्रि॰ स॰ [हिं॰ मिट्टी + ग्राना (प्रत्य॰)] १. मिट्टी से माँजना। ग्रशुद्ध बरतन ग्रादि में मिट्टी मलकर उसे साफ करना। २. मिट्टी से ढाँकना।

मटिग्राना†²—क्रि॰ स॰ [सं॰ मृष्ट + हिं॰ करना + ग्राना] टालने के हेतु किसी बात को सुनकर भी उसका कुछ जवाब न देना। महटियाना। सुनी ग्रनसुनी करना।

मटिया†¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मिट्टी (= मट) + इया (प्रत्यय॰)] १. मिट्टी। २. मृत शरीर। लाश। शव।

मटिया²—वि॰ मिट्टी का सा। मटमैला। खाकी।

मटिया³—संज्ञा पु॰ एक प्रकार का लटोरा पक्षी जिसे कजला भी कहते हैं।

मटियाना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'मटिग्राना'।

मटियाफूस—वि॰ [हिं॰ मिट्टी + फूस] बहुत ग्रधिक दुर्बल ग्रौर वृद्ध। जर्जर।

मटियामसान—वि॰ [हिं॰ मटिया + मसान] गया बीता। नष्टप्राय। उ॰—स्त्रीप्रसंग, चाहे जो ऋतु हो, प्रतिदिन करना हाथी सरीखे बलवान को भी मटियामसान कर बुड्ढों की कोटि में कर देता है।—जगन्नाथ (शब्द॰)।

मटियामेट—वि॰ [हि॰] दे॰ 'मलियामेट'।

मटियार†—संज्ञा पु॰ [हिं॰ मिट्टी + यार (प्रत्य॰)] वह भूमि या क्षेत्र जिसमें चिकनी मिट्टी ग्रधिक हो।

मटियाला†—वि॰ [हिं॰ मिट्टी + वाला] दे॰ 'मटमैला'।

मटियासाँप—संज्ञा पु॰ [हिं॰ मटिया + साँप] मटमैले रंग का सर्प।

मटीला—वि॰ [हिं॰ माटी + ईला (प्रत्य॰)] दे॰ 'मटमैला'।

मटुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ मुकुट] दे॰ 'मुकुट'। उ॰—छोरहु जटा फुलाएल लेहू। झारहु केस मटुक सिर देहू।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पु॰ ३०८।

मटुका—संज्ञा पु॰ [हिं॰ माटी] दे॰ 'मटका'।

मटुकिया†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मटुका + ईया (प्रत्य॰)] दे॰ 'मटकी'।

मटुकी (पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मटका] मिट्टी का बना हुग्रा चौड़े

मुँह का बरतन जिसमें अन्न या दूध आदि रखते हैं। मटकी। उ०—ऐसो को है जो छुवै मेरी मटुकी, अछूती दहेड़ी जमी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६१।

मट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्तिका] दे० 'मिट्टी'।

मट्ठर—संज्ञा पुं० [देश०] सुस्त। काहिल।

मट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० मन्थन] मथा हुआ वही जिसमें से नैनू निकाल लिया गया हो। मही। छाछ। तक्र।

मट्ठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे का बना हुआ एक प्रकार का बहुत खस्ता नमकीन पकवान।

मठ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. निवासस्थान। रहने की जगह। २. वह मकान जिसमें एक महंत की अधीनता में बहुत से साधु आदि रहते हों।

यौ०—मठधारी। मठाधीश। मठपति।

३. वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ने के लिये छात्र आदि रहते हों। ४. मंदिर। देवालय।

यौ०—मठपति=पुजारी।

मठ†²—वि० [हिं० मट्टा] मौन। चुप। उ०—सुंदर काची बिरहनी मुख तें करै पुकार। थरि माहैं मठ ह्वै रहै बोलै नहीं लगार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८३।

मठधारी—संज्ञा पुं० [सं० मठधारिन्] वह साधु या महंत जिसके अधिकार में कोई मठ हो।

मठपति—संज्ञा पुं० [सं० मठपति] दे० 'मठधारी'।

मठर¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मुनि का नाम।

मठर²—वि० [सं०] १. मदमत्त। २. कर्कश (आवाज)। कठोर (ध्वनि) [को०]।

मठरना—संज्ञा पुं० [देश०] सोनारों तथा कसगरों का एक औजार जो छोटे हथौड़े की तरह का होता है। इसका व्यवहार उस समय होता है जिस समय हलकी चोट देने का काम पड़ता है।

मठरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. मैदे, सूजी आदि की एक प्रकार की मिठाई जिसे टिकिया भी कहते हैं। २. दे० 'मट्ठी'।

मठली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मठरी'।

मठा—संज्ञा पुं० [सं० मन्थन, या मथित] दे० 'मट्ठा'।

मठाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. मठ का प्रधान कार्यकर्ता या मालिक। २. मठ में रहनेवाला प्रधान साधु या महंत।

मठान†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मठरना'।

मठारना—स० क्रि० [हिं० मठारना] १. बरतन में गोलाई या सुडौलपन लाने के लिये उसे 'मठरना' नामक हथौड़े से धीरे धीरे पीटना। २. गूँधे हुए आटे में लस उत्पन्न करने के लिये उसे मुक्कियों से बार बार दबाना। मुक्की देना। ३. किसी बात को बहुत धीरे धीरे या बना बनाकर कहना। बात को बहुत विस्तार देना।

मठिका(५)—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा मठ या आश्रम। २. पर्ण-कुटी। मठिया। उ०—तहाँ जाइकै मठिका करई। अल्प द्वार अठ छिद्र सु भरई।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १०२।

मठिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० मठिका, हिं० मठ+इया (प्रत्य०)] छोटी कुटी या मठ।

मठिया²—संज्ञा स्त्री० [देश०] फूल (धातु) की बनी हुई चूड़ियाँ जो नीच जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं।

विशेष—ये एक बाँह में २०—२५ तक होती हैं और कोहनी से कलाई तक पहनी जाती हैं। इनमें कोहनी के पास की चूड़ी सबसे बड़ी होती है; और उसके उपरांत की चूड़ियाँ क्रमशः छोटी होती जाती हैं।

मठी¹—संज्ञा पुं० [सं० मठिन्] छोटा मठ वा आश्रम [को०]।

मठी²—संज्ञा स्त्री० [सं० मठ+ई (प्रत्य०)] १. छोटा मठ। २. मठ का अधिकारी। मठ का महंत। मठधारी। उ०—सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सों न बोलिए।—केशव (शब्द०)।

मठुलिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मठरी] १. टिकिया या मठरी नाम की मिठाई। २. दे० 'मट्ठी'।

मठुली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मठरी'।

मठोठा†—संज्ञा पु० [देश०] कुएँ की जगत।

मठोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० मट्ठा] १. दही मथने वा मट्ठा रखने की मटकी जो साधारण मटकियों से कुछ बड़ी होती है। २. नील बनाने की नाँद। नील का माठ।

मठोरना†—क्रि० स० [देश०] १. किसी लकड़ी को खरादने के लिये रंदा लगाकर ठीक करना। २. मठरना नामक हथौड़े से धीरे धीरे चोट लगाकर गहने आदि ठीक करना। (सुनार)। ३. किसी बात को बहुत धीरे धीरे या बना बनाकर कहना। मठारना।

मठोल, मठोला—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० मठोली] गठीला। भरापूरा। न बहुत बड़ा न छोटा। मझोले कद का। उ०—(क) खासा छोटा मोटा, गोल मठोल, काजल दिलवाए, सेहरा लगाए, खिलौना सा दुलहा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८६। (ख) वो सुरत उनकी भोली सी वो सिर पगिया मठोली सी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६१।

मठौरा—संज्ञा पुं० [हिं० मठोरना] एक प्रकार का रंदा जिससे लकड़ी रँदकर खरादने आदि के योग्य करते हैं।

मड़ई†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डपी] १. छोटा मंडप। २. कुटिया। पर्णशाला।

मड़ई²—संज्ञा स्त्री० दे० 'मंडी'।

मडक—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का अन्न (संभवतः मड़ुआ) [को०]।

मड़[illegible] [अनु०] किसी बात के अंदर छिपा हुआ हेतु। [illegible]य। जैसे,—तुम उसकी बात की मड़क नहीं [illegible]

[illegible] [सं० मण्डन] अनाज अलग करने [illegible] से रोंदवाना। दवँनी। दवँरी [illegible]। उ०—शतपथ ब्रा[illegible]

प्रक्रियाओं का क्रमश. उल्लेख है—जुनाई, बुवाई, लवनी और मडनी।—हिंदु सभ्यता, पृ० ३७।

मड़मड़ाना—क्रि० अ०, स० [अनुध्व०] दे० 'मरमराना'।

मड़लाना(पु)—क्रि० अ० [सं० अनुध्व] दे० 'मँडराना'। उ०—(क) सुषमा मे सुख रूप घना है, नभ में नयन मुक्ति मडलाई।—आराधना, पृ० ४०। (ख) ये मेरे अपने सपने आँखो से निकले मडलाए।—अपरा, पृ० ३६।

मड़राना—क्रि० अ० [सं० मण्डल] दे० 'मँडराना'। उ०—सरस कुसुम मडरात अलि, न झुकि झपटि लपटात।—बिहारी (शब्द०)।

मड़ला†—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] अनाज रखने की छोटी कोठरी।

मड़वा—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] दे० 'मंडप'।

मड़वारी†—संज्ञा पुं० [हि० मारवाड़ी] दे० 'मारवाड़ी'।

मड़हट(पु)†—संज्ञा पुं० [हि० मरघट] दे० 'मरघट'। उ०—देहली लग तेरी मेहरी सगी रे, फलसा लग संगि माई। मडहट लूँ सब लोग कुटंबी, हंस अकेलो जाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १६४।

मड़हा[1]—वि० [हि० माँड़+हा (प्रत्य०)] मांड़ खानेवाला।

मड़हा[2]—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] १. मिट्टी या घास फूस आदि का बना हुआ छोटा घर। झोपड़ी। मड़ई। उ०—भीर बहुत सु भई जात की मड़हन पै ब्रजनारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६। २. मंडप। कुंजमंडप। उ०—अबीर गुलाल घुमड़ी मड़हा पर घुमड़ि रहे मडंराए।—छीत०, पृ० २२।

मड़हा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] भुना हुआ चना।

मड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हि० मढ़ी] १. बड़ी कोठरी। कमरा।

मड़ा[2]—संज्ञा पुं० [हि० माड़ा] एक प्रकार का नेत्ररोग जिसमें दृष्टि मंद पड़ जाती है।

मड़ाड़†—संज्ञा पुं० [देश०] छोटा कच्चा तालाव या गड्ढा। उ०—मड़ाड़, बावली और कुएँ का झाँकना।—जगन्नाथ (शब्द०)।

मड़ियार—संज्ञा पुं० [हि० मारवाड़ ?] क्षत्रियों की एक जाति जो मारवाड़ में रहती है।

मड़ुआ—संज्ञा पुं० [देश०] १. बाजरे की जाति का एक प्रकार का कदन्न।

विशेष—यह अन्न बहुत प्राचीन काल से भारत मे बोया जाता है; और अबतक अनेक स्थानों में जंगली दशा में भी मिलता है। यह वर्षा ऋतु में खाद दी हुई भूमि मे कभी कभी ज्वार के साथ और कभी कभी अकेला बोया जाता है; मैदानों मे इसकी देखरेख की विशेष आवश्यकता होती है; पर हिमालय की तराई में यह अधिकांश मे आपसे आप ही तैयार हो जाता है। अधिक वर्षा से इसकी फसल को हानि पहुँचती है। यदि इसकी फसल तैयार होने पर भी खेतों में रहने दी जाय, तो विशेष हानि नहीं होती। फसल काटने के उपरांत इसके दाने वर्षों तक रखे जा सकते हैं; और इसी कारण अकाल के समय गरीबों के लिये इसका बहुत अधिक उपयोग होता है। इसे पीसकर आटा भी बनाया जाता है और यह चावलों आदि के साथ भी उबालकर खाया जाता है। इससे एक प्रकार की शराब भी बनती है। वैद्यक में इसे कसैला, कड़ुआ, हलका, तृप्तिकारक, बलवर्धक, त्रिदोषनिवारक और रक्तदोष को दूर करनेवाला माना है।

पर्या०—वटक। स्थूलकंगु। रूक्ष। स्थूलप्रियंगु।

२. एक प्रकार का पक्षी।

मड़ैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डपी] १. छोटा मंडप। २. कुटी। पर्णशाला। झोपड़ी। ३. मिट्टी का बना हुआ छोटा घर।

मड़ोड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मरोड़'।

मड़ोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० मरोड़ना+ई (प्रत्य०)] लोहे की छोटी पेंचदार कँटिया।

मड्डु, मड्डुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नगाड़ा या ढोल [को०]।

मढ़[1]—संज्ञा पुं० [सं० मठ] दे० 'मठ'। उ०—कांकर घर कांकर मढ़ माया।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० २११।

मढ़[2]—वि० [हि० मढ़ना] जो जल्दी हटाने से भी न हटे। अड़कर बैठनेवाला।

मढ़क(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भीतरी रहस्य। दे० 'मड़क'। उ०—फरक कोई मढ़क समझावै। —संत तुरसी०, पृ० ३७।

मढ़ना[1]—क्रि० स० [सं० मण्डन] १. आवेष्टित करना। चारों ओर से घेर देना। लपेट लेना। जैसे, तसवीर पर चौखटा मढ़ना, देहुन पर कपड़ा मढ़ना। २. बाजे के मुँह पर बजाने के लिये चमड़ा लगाना। उ०—(क) कमठ खपर मढि खाल निसान बजावहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मढ़चो दमामा जात क्यों सौ चूहे के चाम।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—मढ़ आना=घिर आना (जैसे बादलों का)। उ०—राति ह्वै आई चले घर को दसहू दिस मेघ महा मढ़ि आए।—केशव (शब्द०)।

३. बलपूर्वक किसी पर आरोपित करना। किसी के गले लगाना। थोपना। जैसे—अब तो आप सारा दोष मुझपर ही मढ़ेंगे।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मढ़ना[2]†—क्रि० अ० आरंभ होना। मचना। मँड़ना। व्याप्त होना। (क्व०)। उ०—मढ़चौ सोर यह घोर परत नहिं और बात सुनि।—हम्मीर०, पृ० ५८।

मढ़वाना—क्रि० स० [हि० मढ़ना का प्रे० रूप] मढ़ने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को मढ़ने में प्रवृत्त करना।

मढ़ा†—संज्ञा पुं० [हि० मढ़ी] मिट्टी का बना हुआ छोटा घर।

मढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० मढ़ना] १. मढ़ने का भाव। २. मढ़ने का काम। ३. मढ़ने की मजदूरी।

मढ़ाना—क्रि० स० [हिं० मढ़ना] १ दे० 'मढ़वाना'। २. मंडित करना। उ०—निश्चर बानर युद्ध लखत मन मोद मढाए।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३३८।

मढ़ी—संज्ञा स्त्री० [स० मठ] १. छोटा मठ। २. छोटा देवालय। ३. कुटी। झोपड़ी। पर्णशाला। उ०—खपर न झोली डंड अधारी, मढ़ी न माया लेहु बिचारी।—दादू०, पृ० ५७४। ४. छोटा घर। ५. छोटा मंडप। ६. नाथ संप्रदाय के संन्यासी की समाधि जहाँ प्रायः कुछ साधु लोग रहते हैं।

मढ़ैया†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मढ़ (= मठ)] दे० 'मढ़ी'।

मढ़ैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ना + ऐया (प्रत्य०)] मढनेवाला।

मणगयण—संज्ञा पुं० [डिं०] सूर्य। (संभवतः यह संस्कृत गगनमणि का वर्णव्यत्ययजन्य रूप है।)

मणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहुमूल्य रत्न। जवाहिर। जैसे, हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि। २. सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति। जैसे, रघुकुलमणि। ३. बकरी के गले की थैली। ४. पुरुषेंद्रिय का अगला भाग। ५. योनि का अगला भाग। ६. घड़ा। ७. एक प्राचीन मुनि का नाम। ८. एक नाग का नाम।

मुहा०—मणिकांचन योग = शोभा और सौंदर्य बढ़ानेवाला विचार, भावना, वस्तुओं या व्यक्तियों का मिलाप। उ०—पश्चिमी आर्यों की रूढ़िप्रियता, कर्मनिष्ठा के साथ ही साथ पूर्वी आर्यों की भावप्रवणता, विद्रोही वृत्ति और प्रेमनिष्ठा का मणिकांचन योग हुआ है।—आचार्य०, पृ० ३३।

मणिकंकण—संज्ञा पुं० [सं० मणि + कङ्कण] रत्नों से विजटित कड़ा या कंगन [को०]।

मणिक—संज्ञा पुं० [स०] १. मिट्टी का घड़ा। २. अजागलस्तन। बकरी के गले में लटकनेवाली मांस की थैली (को०)। ३. योनि का अग्र भाग। ४. स्फटिकाश्मनिर्मित प्रासाद। स्फटिक का महल (को०)। ५. रत्न। मणि (को०)।

मणिकर्णिका, मणिकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मणिजटित कर्णफूल। २. वाराणसी का प्रसिद्ध तीर्थस्थल।

विशेष—काशीखंड में कहा है कि विष्णु के कठोर तप को देख आश्चर्यचकित शिव का सिर हिल उठा जिससे उनके कान का मणिकुंडल यहाँ गिर पड़ा था।

मणिकर्णिकेश्वर—संज्ञा पुं० [स०] कामरूप देश स्थित एक शिवलिंग का नाम [को०]।

मणिकाच—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण या तीर का वह भाग जहाँ पंख जैसी आकृति होती है। २. स्फटिक (को०)।

मणिकार—संज्ञा पुं० [सं०] जौहरी [को०]।

मणिकानन—संज्ञा पुं० [सं०] गला। कंठ।

मणिकुंडल—संज्ञा पुं० [सं० मणि + कुण्डल] मणिविजटित कर्णभूषण [को०]।

मणिकुट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

मणिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कामरूप के पास एक पर्वत का नाम।

मणिकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक बहुत छोटा पुच्छल तारा जिसकी पूँछ दूध सी सफेद मानी गई है। यह केतु पश्चिम में उगता है और केवल एक पहर दिखाई देता है।

मणिगुण—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है। इसको 'शशिकला' और 'शरभ' भी कहते हैं। उ०—नचहु सुखद जसुमति सुत सहिता। लहहु जनम इह सुख सखि अमिता। बढ़त चरण रति सु हरि प्रनु पला। जिमि सित पख नित बढ़त शशिकला।—भानु (शब्द०)।

मणिगुणनिकर—संज्ञा पुं० [सं०] मणिगुण नामक छंद का एक रूप जो उसके ८वें वर्ण पर विराम करने से होता है। इसका दूसरा नाम चंद्रावती भी है।

मणिग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर के एक पुत्र का नाम।

मणिच्छिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेधा नाम की ओषधि। २. ऋषभा नाम की ओषधि।

मणिजला—संज्ञा स्त्री० [स०] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

मणित—संज्ञा पुं० [सं०] रतिकालीन सीत्कार। रतिकालीन पूजन [को०]।

मणितारक—संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

मणितुंडक—संज्ञा पुं० [सं० मणितुण्डक] एक जलपक्षी [को०]।

मणिदीप—संज्ञा पुं० [स०] १. वह दीपक जो मणि द्वारा प्रकाश देता है। २. रत्नविजटित दीपक [को०]।

मणिदोष—संज्ञा पुं० [स०] रत्न के दोष [को०]।

मणिद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार रत्नों का बना हुआ एक द्वीप जो क्षीरसागर में है। यह त्रिपुरसुंदरी देवी का निवासस्थान माना जाता है।

मणिधनु मणिधनुस्—संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्रधनुष [को०]।

मणिधर—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

मणिपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

मणिपुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मणिपूर'।

मणिपूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तंत्र के अनुसार छह चक्रों में से तीसरा चक्र जो नाभि के पास माना जाता है।

विशेष—यह तेजोमय और विद्युत् के समान आभायुक्त, नीले रंग का, दस दलों वाला और शिव का निवासस्थान माना जाता है। कहते हैं, यदि इसपर ध्यान लगाया जा सके तो फिर सब विषयों का ज्ञान हो जाता है। यह भी कहते हैं कि इसपर 'ड' से 'फ' तक अक्षर लिखे हैं।

२. कलिंग (आसाम बर्मा की सीमा) का एक राज्य। ३. मणिपुर। नाभि (को०)। ४. रत्नविजटित चोली (को०)।

यौ०—मणिपूरपति = अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन।

मणिपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] सहदेव के शंख का नाम।

मणिबंध—संज्ञा पुं० [सं० मणिबन्ध] १. नवाक्षरी वृत्त जिसके प्रति चरण में भगण, मगण और सगण होते हैं। उ०—कंठमणी मध्ये सुजला। टूट परी खोजै अबला।—भानु (शब्द०)। २. कलाई। उ०—जिन युवकों के मणिबंधों में अबंध बल इतना भरा था, जो उलटता शतघ्नियों को।—लहर, पृ० ६०। ३. कलाई में बाँधने या पहनने का आभूषण जिसे तोड़ा कहते हैं।

मणिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० मणिबन्धन] १. मणियों का बाँधना या बाँधा जाना। २. कलाई। ३. कलाई पर पहनने का आभूषण या मोतियों की लरी [को०]।

मणिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अनार का पेड़।

मणिभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक प्रधान गण का नाम।

मणिभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। २. एक नाग का नाम।

मणिभारव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मणितारक'।

मणिभित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] शेषनाग का महल।

मणिभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खान जिसमे से रत्न आदि निकलते हो।

मणिभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह खान जिसमें से रत्न आदि निकलते हों। २. रत्नजटित भूमि या स्थान (को०)। ३. पुराणानुसार हिमालय के एक तीर्थ का नाम।

मणिमंडप—संज्ञा पुं० [सं० मणिमण्डप] १. रत्नमय महल या मंडप। २. शेषनाग का प्रासाद।

मणिमंतक—संज्ञा पुं० [सं० मणिमन्तक] एक प्रकार का हीरा [को०]।

मणिमंथ—संज्ञा पुं० [सं० मणिमन्थ] सेंधा नमक।

मणिमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] मणिवध नामक छंद।

मणिमान्[1]—वि० [सं० मणिमत्] रत्नभूषित। मणियुक्त [को०]।

मणिमान्[2]—संज्ञा पुं० १. सूर्य। २. एक पर्वत। ३. एक तीर्थ [को०]।

मणिमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण, तगण, यगण होते हैं। उ०—छाँड़ो सब जेते हैं रे जगमाला, फेरो हरि के नामों की मणिमाला। २. रतिकालीन दतक्षत का एक प्रकार (को०)। ३. मणियों की माला। ४. लक्ष्मी। ५. चमक। दीप्ति। आभा।

मणिमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दक्षिण भारत के एक पर्वत का नाम।

मणियष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रत्नजटित छड़ी या लरी [को०]।

मणिरत—संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध आचार्य का नाम।

मणिरथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

मणिराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंगुल। शिंगरफ। २. मणि का रंग। मणि की आभा (को०)।

मणिराज—संज्ञा स्त्री० [सं०] हीरा [को०]।

मणिराजी—संज्ञा स्त्री० [सं० मणिराजि] मणियों की राशि या ढेरी। मणियों की माला। उ०—देख बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चंचल।—कामायनी, पृ० ४०।

मणिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषेंद्रिय का एक रोग जिसमे लिंग के अगले भाग का चमड़ा उसके मस्तक पर चिपक जाता है और मूत्र मार्ग कुछ चौड़ा होकर उसमें से मूत्र की महीन धारा गिरती है।

मणिवर—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा। मणिराज [को०]।

मणिशैल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो मंदराचल के पूर्व में है।

मणिश्याम—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रनील नामक मणि। नीलम।

मणिसर—संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों की माला।

मणिसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों का हार।

मणिसोपान—संज्ञा पुं० [सं०] १. रत्नजटित सीढ़ी। २. दे० 'मणिसोपानक'। उ०—मुक्ता के बीच बीच मणि लगे हों तो उसका नाम मणिसोपान है।—बृहत्०, पृ० ३८५।

मणिसोपानक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्यवर्णित सोने के तार में पिरोए हुए मोतियों की माला जिसके बीच में कोई रत्न हो (कौटि०)।

मणिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

मणिस्रक्—संज्ञा स्त्री० [सं० मणिस्रज्] मोतियों का हार या माला [को०]।

मणिहर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नों या स्फटिकों से जटित महल।

मणींद्र—संज्ञा पुं० [सं० मणीन्द्र] हीरा [को०]।

मणी[1]—संज्ञा पुं० [सं० मणिन्] सर्प।

मणी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मणि] दे० 'मणि'।

मणीआ(ँ)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मणिक] दे० 'मनिया'। उ०—सरवरि खोजि पाय नाम मणीआ।—प्राण०, पृ० १०४।

मणीचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रकांत नामक मणि। २. मत्स्य पुराणानुसार शकद्वीप के एक वर्ष का नाम। ३. एक प्रकार का पक्षी।

मणीच—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल। पुष्प। २. मुक्ता। मोती। ३. शकद्वीपगत एक वर्ष का नाम। मणीचक्र [को०]।

मणीवक—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्प। फूल।

मतंग—संज्ञा पुं० [सं० मतङ्ग] १. हाथी। उ०—मग डोलत मतंग मतवारे।—हम्मीर०, पु० २६। २. बादल। ३. एक दानव का नाम। ४. एक प्राचीन तीर्थ का नाम। ५. कामरूप के अग्निकोण के एक देश का प्राचीन नाम। ६. त्रिशंकु राजा का नाम (को०)। ७. एक ऋषि का नाम जो शबरी के गुरु थे।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि ये एक नापित के वीर्य से एक ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उस ब्राह्मणी के पति ने इन्हें अपना ही पुत्र और ब्राह्मण समझकर पाला

था। एक बार ये गधे के रथ पर सवार होकर पिता के लिये यज्ञ की सामग्री लाने जा रहे थे। उस समय इन्होंने गधे को बहुत निर्दयता से मारा था। इसपर उस गधे की माता गधी से इन्हें मालूम हुआ कि मैं ब्राह्मण की संतान नहीं हूँ, चांडाल के वीर्य से उत्पन्न हूँ। इन्होंने घर आकर पिता से सब समाचार कहे और ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिये घोर तपस्या करने लगे। तब इंद्र ने आकर समझाया कि ब्राह्मणत्व प्राप्त करना सहज नहीं है। उसके लिये लाखों वर्षों तक अनेक जन्म धारण करके तपस्या करनी पड़ती है। तब इन्होंने वर माँगा कि मुझे ऐसा पक्षी बना दीजिए जिसकी सभी वर्णवाले पूजा करें; मैं जहाँ चाहूँ, वहाँ जा सकूँ और मेरी कीर्ति अक्षय हो। इंद्र ने इन्हें यही वर दिया और ये छंदोदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ दिनों के उपरात इन्होंने शरीर त्यागकर उत्तम गति प्राप्त की।

मतंगज—संज्ञा पुं० [सं० मतङ्गज] हाथी (को०)।

मतंगजा—संज्ञा स्त्री० [सं० मतङ्गजा] संगीत शास्त्र में एक विशिष्ट मूर्छना (को०)।

मतंगा—संज्ञा पुं० [सं० मतङ्ग] एक प्रकार का बाँस जिसे मून भी कहते हैं। यह बंगाल और बरमा में बहुत होता है। इसके पोर लंबे और सुदृढ़ होते हैं। इसको दीमक नहीं खाती।

मतंगी—संज्ञा पुं० [सं० मतङ्गिन्] हाथी का सवार। उ०—तिमि स्वच्छ मतंगी स्वच्छ भट सरी निखंगी अति भले।—गोपाल (शब्द०)।

मत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. निश्चित सिद्धांत। संमति। राय।

मुहा०—मत उपाना=सम्मति स्थिर करना। उ०—करुना लखि करुनानिधान ने मन यह मतो उपायो।—(शब्द०)।

२. निर्वाचन में किसी के चुनाव या किसी प्रस्ताव आदि के पक्ष या विपक्ष में निर्धारित विधि से प्रकट किया हुआ विचार या संमति।

यौ०—मतगणना=मत या वोटों की गिनती। मतदान=मत या वोट देना। मतभेद=राय या विचार की भिन्नता। उ०—हिंदुस्तान में इतनी सहनशीलता थी कि मतभेद होने पर भी लोग सबको उच्च स्थान देते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १९१। मतवाद=किसी विचार को लेकर उसका पक्षस्थापन। उ०—साहित्य केवल मतवाद के प्रचार का साधन भी नहीं बना करता।—न० सा० न० प्र०, ११। मतसंग्रह=किसी प्रश्न पर मतदान के अधिकारियों का विचार संकलन। मतस्वातंत्र्य=राय या विचार की आजादी।

३. धर्म। पंथ। मजहब। संप्रदाय। ३. भाव। आशय। मतलब। ४. ज्ञान। ५. पूजा। अर्चा।

मत[2]—वि० १. जिसकी पूजा की गई हो। पूजित। अर्चित। २. माना हुआ। संमत (को०)। ३. विचारित (को०)। ४. संभावित। आदृत (को०)। ५. कुत्सित। खराब। बुरा।

मत[3]—क्रि० वि० [सं० मा] निषेधवाचक शब्द। न। नहीं। जैसे,—(क) वहाँ मत जाया करो। (ख) इनसे मत बोलो।

मत(पु)[4]—वि० [सं० मत्त] मतवाला। मत्त। उ०—(क) जस कोउ मदिरा मद बस आही।—नंद० ग्रं०, पृ० १३८। (ख) दुखित भयो घुमत जिमि मत्तो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२२।

मत[5]—संज्ञा स्त्री० [सं० मति] दे० 'मति'।

यौ०—मतहीन=बुद्धिरहित। अज्ञानी। उ०—साधु जीव करै उपकारा। जिव मतहीन उन्ही को मारा।—घट०, पृ० २४०।

मतना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० मति+ना (प्रत्य०)] संमति निश्चित करना। राय कायम करना। उ—विनय करहिं जेते गढ़पती। का जिउ कीन्ह कौन मति मती।—जायसी (शब्द०)।

मतना[2]—क्रि० अ० [सं० मत्त] नशे आदि में चूर होना। मत्त होना। मतवाला होना।

मतरिया‡[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ, मातर+इया (प्रत्यय०) या सं० मातृका] दे० 'माता' या 'माँ'।

मुहा०—मतरिया बहिनिया करना=माँ बहन की गाली देना।

मतरिया(पु)[2]—वि० [सं० मंत्र, हिं० मंतर] १. मंत्र देनेवाला। मंत्री। सलाहकार। २. मंत्र से प्रभावित। मंत्रित। ३. मंत्रतंत्र करनेवाला। मांत्रिक।

मतलब—संज्ञा पुं० [अ०] १. तात्पर्य। अभिप्राय। आशय। २. अर्थ। मानी। ३. अपना हित। निज का लाभ। स्वार्थ। उ०—हरदम कृष्ण कहे श्री कृष्ण कहे तू जवाँ मेरी। यही मतलब खातर करता हूँ खुशामद मैं तेरी।—राम० धर्म०, पृ० ८७।

मुहा०—मतलब का आशना=मतलबी मित्र। स्वार्थसाधक। मतलब का यार=अपना भला देखनेवाला। स्वार्थी। मतलब गाँठना या निकालना=स्वार्थसाधन करना। उ०—तब सके गाँठ हम वहाँ मतलब।—चोखे०, पृ० ३६।

४. उद्देश्य। विचार। जैसे,—आप भी किसी मतलब से आए हैं।

मुहा०—मतलब हो जाना=(१) सफल मनोरथ होना। (२) बुरा हाल हो जाना। (३.) मर जाना।

५. संबंध। सरोकार। वास्ता। जैसे,—अब तुम उनसे कोई मतलब न रखना।

मतलबिया‡—वि० [अ० मतलब+हिं० इया (प्रत्य०)] खुदगरज। मतलबी।

मतलबी—वि० [अ० मतलब+ई (प्रत्य०)] जो केवल अपने हित का ध्यान रखता हो। स्वार्थी। खुदगरज।

मतला—संज्ञा पुं० [अ० मत्ला] गजल का सबसे पहला शेर जिसकी दोनों पंक्तियाँ तुकांत होती हैं। गजल का आरंभिक तुकांत शेर।

मतलाना—क्रि० अ० [हिं० मतली] मतली आना। जी मिचलाना।

मतली—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिचली] जी मिचलाने की क्रिया या भाव । कै होने की इच्छा ।

मतलूब—वि० [अ० मत्लूब] अभीप्सित । अभिप्रेत । कांक्षित । उ०—तालिब मतलूब को पहुँचै तोफ करै दिल अंदर । —कबीर सा०, पृ० ८८८ ।

मतलूबा—वि० [अ० मत्लूबह्] प्रेमिका । माशूका । कांक्षिता ।

मतवार, मतवारा(पु)—वि० [सं० मत्त+हिं० वाला] दे० 'मतवाला' । उ०—(क) तोरे पर भए मतवार रे नयनवाँ । —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५०१ । (ख) ह्वै गयो हुतो निपट मतवारो ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१३ ।

मतवाला[1]—वि० पुं० [सं० मत्त हिं०+वाला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० मतवाली] १. नशे आदि के कारण मस्त । मदमस्त । नशे में चूर । २. उन्मत्त । पागल । ३. जिसे अभिमान हो । व्यर्थ अहंकार करनेवाला ।

मतवाला[2]—संज्ञा पुं० १. वह भारी पत्थर जो किले या पहाड़ पर से नीचे के शत्रुओं को मारने के लिये लुढ़काया जाता है । २. कागज का बना हुआ एक प्रकार का गावदुमा खिलौना जिसके नीचे का भाग मिट्टी आदि भरी होने के कारण भारी होता है और जो फेंकने पर सदा खड़ा ही रहता है, जमीन पर लोटता नहीं ।

मतवाला[3]—वि० पुं० [सं० मत+हिं० वाला (प्रत्य०)] किसी मत, संप्रदाय या सिद्धांत को माननेवाला । उ०—उसे काव्य क्षेत्र से निकलकर मतवालों (सांप्रदायिकों) के बीच अपना हाव भाव दिखाना चाहिए ।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ६३ ।

मतांतर—संज्ञा पुं० [सं० मतान्तर] १. अन्य मत । भिन्न मत । मत या विचार का विभेद [को०] ।

मता[1]—संज्ञा पुं० [सं० मत] दे० 'मत' । उ०—(क) पलटू चाहै हरि भगति ऐसा मता हमार ।—पलटू० भा० १, पृ० २७ । (ख) केचित मता अघोरी लिया । अगीकृत दोऊ का किया ।—सुंदर० ग्रं०, भा १, पृ० ६६ ।

मता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मति] दे० 'मति' । उ०—यही मता हम तुम वहँ दीन्हा । दूसर कोई न पावै चीन्हा ।—कबीर० सा०, पृ० १०१७ ।

मता[3]—वि० [सं० मत्तक] दे० 'मत्त' । उ०—कंठगी रंमता । वारुनी पी मता—पृ० रा०, १।६५० ।

मताना—क्रि० अ० [सं० मत्त] १. मदमस्त होना । २. आत्मविभोर होना । बेसुध होना । उ०—पाइ बहे कंज मैं सुगंध राधिका को मंजु, ध्याए कदलीबन मतंग लौं मताए हैं ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १२० ।

मताधिकार—संज्ञा पुं० [सं० मत+अधिकार] वोट या मत देने का अधिकार जो राजा या सरकार से प्राप्त हो । व्यवस्थापिका परिषद्, व्यवस्थापिका सभा आदि प्रातिनिधिक कहलानेवाली संस्थाओं के सदस्य या प्रतिनिधि निर्वाचित करने में वोट या मत देने का अधिकार ।

मताधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० मताधिकारिन्] मतदान करने का हकदार । मतदाता ।

मतानुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय दर्शन के अनुसार २१ प्रकार के निग्रह स्थानों में से एक जिसमें अपने पक्ष के दोष पर विचार न करके बार बार विपक्षी के पक्ष के दोष का ही उल्लेख किया जाता है ।

मतानुयायी—संज्ञा पुं० [सं० मतानुयायिन्] किसी के मत के अनुसार आचरण करनेवाला । किसी के मत को माननेवाला । मतावलंबी ।

मतारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ+मातर् हिं० माता] दे० 'महतारी' । उ०—अटल कस्द की, हम मतारी किया ।—दक्खिनी०, पृ० १४० ।

मतावलंबी—संज्ञा पुं० [सं० मतावलम्बिन्] किसी एक मत, सिद्धांत या संप्रदाय आदि का अवलंबन करनेवाला । जैसे, जैनमतावलंबी । उ०—परंतु वह विदेशी और अन्य मतावलंबी है । प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०४ ।

मतावना‡—क्रि० स० [हिं० मताना] मत्त बनाना । उन्मत्त कर देना । मतवाला कर देना । उ०—कुबुद्धि कलवारिनी बसेले नगरिया हो रे । उन्हि रे मोर मनुआँ मतावल हो रे । —संत० दरिया, पृ० १७६ ।

मति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि । समझ । अक्ल । २. राय । सलाह । संमति । ३. इच्छा । ईहा । ख्वाहिश । ४. स्मृति ।

मुहा०—मति मारी जाना=निर्बुद्धि की तरह काम करना । बुद्धिनाश होना ।

मति[2]—वि० बुद्धिमान् । चतुर ।

मति(पु)†[3]—क्रि० वि० [सं० मा] नहीं । दे० 'मत' । उ०—तातें तुम और भाव मन में मति लाओ ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०६ ।

मति(पु)[4]—अव्य० [सं० मत् या वत्] सदृश । समान । उ०—धूत समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की । —तुलसी (शब्द०) ।

मतिगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धिमान् । चतुर । होशियार ।

मतिगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि की गति । विचारसरणि [को०] ।

मतिचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वघोष का एक नाम ।

मतिदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] वह शक्ति जिसके द्वारा दूसरे की योग्यता या भावों का पता लगता है ।

मतिदा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्योतिष्मती नाम की लता । २. सेमल ।

मतिदा[2]—वि० स्त्री० बुद्धि देनेवाली । बुद्धिप्रदा [को०] ।

मतिद्वैध—संज्ञा पुं० [सं० मतिद्वैध] विचारों की भिन्नता [को०] ।

मतिनां—अव्य० [सं० मत् या वत्] सदृश । समान । (पूरब०) ।

मतिपूर्वक—अव्य० [सं०] उद्देश्यतः । सोच समझकर । जानबूझकर ।

मतिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद रोग । पागलपन ।

मतिभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] समझ की उलट पलट । बुद्धिभ्रम [को०] ।

मतिमंड—वि० दे० 'मतिमंत' । उ०—एकाकिय जिन जाय नृप, गौड काल मतिमंड ।—प० रासो, पृ० १०६ ।

मतिमंत—वि० [सं० मतिमत्] बुद्धिमान् । विचारवान् । चतुर ।

मतिमंद—वि० [सं० मतिमन्द] मंदबुद्धि । कम अक्ल । उ०—सुनु मतिमंद देहि अब पूरा । काटे सीस कि होइअ सूरा ।—मानस, ६।२६ ।

मतिमान्—वि० [सं० मतिमत्] बुद्धिमान् । विचारवान् ।

मतिमाहⓅ—वि० [सं० मतिमत्] मतिमान् । बुद्धिमान् । समझदार । उ०—पुनि सवार कादिम मतिमाहाँ । खाँड़े दान उभै निति बाँहा ।—जायसी (शब्द०) ।

मतिवंत—वि० [सं० मति + वत्] दे० 'मतिमंत' ।

मतिविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] मतिभ्रम । भ्रम [को०] ।

मतिशाली—वि० [सं० मतिशालिन्] [वि० स्त्री० मतिशालिनी] बुद्धियुक्त । मतिमान् [को०] ।

मतिहीन—वि० [सं०] मुर्ख । बेवकूफ । निर्बुद्धि ।

मती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मति] दे० 'मति' ।

मती[2]—क्रि० वि० [सं० मा] दे० 'मत' ।

मती[3]—अव्य० [सं० वत् या मत्] दे० 'मति[4]' ।

मतीर, मतीरा—संज्ञा पुं० [सं० मेट] तरबूज । कलींदा । उ०—(क) गंगा तीर मतीरा अवधू, फिरि फिरि बणिजा कीजै । —गोरख०, पृ० ९६ । (ख) प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि । मरु धर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि । —बिहारी (शब्द०) ।

मतीस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा । उ०—मदनभेरि अरु घूँघरा घंटा घनै मतीस । मुहचंगी को आड़ दै आवज लुटै छतीस ।—सुदन (शब्द०) ।

मतेईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० विमातृ, मि० पं० मतरई (= विमाता)] माता की सपत्नी । विमाता । उ०—तुलसी सरल भाव रघुराय माय मानी काय मन बानी हू न जानिए मतेई है । बाम विधि मेरो सुख सिरस सुमन सम ताको छल छुरी को कुलिस लै टेई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

मतैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] मतों या विचारों की एकता । दो या अनेक व्यक्तियों की एक राय होना ।

मत्क[1]—संज्ञा पुं० [सं०] खटमल [को०] ।

मत्क[2]—वि० मेरा । हमारा [को०] ।

मत्कुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. खटमल । २. हाथी जिसे दाँत न हो । बिना दाँत का हाथी (को०) । ३. मकुना हाथी (को०) । ४. महिष भैंसा (को०) । ५. पैर या जाँघ पर बाँधने का बक्तर (को०) । ६. नारियल का वृक्ष (को०) । ७. श्मश्रु या दाढ़ीमूछ-विहीन मर्द । अजातश्मश्रु व्यक्ति (को०) ।

मत्कुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री की योनि जिसपर रोएँ न उगे हों [को०] ।

मत्कुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजातलोमा युवती [को०] ।

मत्त—वि० [सं०] १. मस्त । २. मतवाला । ३. उन्मत्त । पागल । ४. प्रसन्न । खुश । ५. अभिमानी । घमंडी ।

मत्त[2]—संज्ञा पुं० १. वह हाथी जिसके मस्तक से मद बहता हो । मतवाला हाथी । २. धतूरा । ३. कोयल । ४. महिष । भैंसा ।

मत्तⓅ[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० मात्रा] मात्रा ।

मत्तक—वि० [सं०] जो थोड़ा थोड़ा नशे में हो [को०] ।

मत्तकाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम स्त्री । सुंदर स्त्री । अच्छी औरत । उ०—श्यामा महिला भामिनी मत्तकाशिनी जान ।—नंददास (शब्द०) ।

मत्तकासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर स्त्री ।

मत्ताकीश—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।

मत्तगयंद—संज्ञा पुं० [सं० मत्तगयन्द] सवैया छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु होते हैं । इसे 'मालती' और 'इंदव' भी कहते हैं ।

मत्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मत्त होने का भाव । मतवालापन । मस्ती । उ०—सौभाग्य मद की मत्तता धीरे धीरे उनकी नस नस में सन सन करती हुई चढने लगी ।—सरस्वती (शब्द०) ।

मत्तताईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मत्तता + ई] मतवालापन । मस्ती । उ०—आप बलदेव सदा वरुणी सों मत्त रहे, चाहे मन मान्यो प्रेम मत्तताई चाखिए ।—प्रियादास (शब्द०) ।

मत्तदंती—संज्ञा पुं० [सं० मत्तदन्तिन्] मतवाला हाथी [को०] ।

मत्तनाग—संज्ञा पुं० [सं०] मतवाला हाथी । मस्त हाथी । उ०—मत्तनाग तम कुंभ बिदारी । ससि केसरी गगन बन चारी ।—मानस, ६।१२ ।

मत्तमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पंद्रह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, यगण, सगण और मगण (SSS, SSI, ISS, IIS, SSS) होते हैं । इसका दूसरा नाम माया भी है । जैसे,—कोऊ बोली वा कहुँ लै आव सयानी । माया या पै डार, दई री, हम बाबी । २. मेघ को देखकर उन्मत्त होनेवाला मोर । ३. मोर को उन्मत्त करनेवाला—मेघ ।

मत्तमयूरक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक योद्धा जाति का नाम ।

मत्तमातंगलीलाकर—संज्ञा पुं० [सं० मत्तमातङ्गलीलाकर] एक दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नौ रगण होते हैं । जैसे,—सच्चिदानंद अनंद के कंद को छाड़ि कै रे मतीमंद भूलो फिरे ना कहूँ ।

विशेष—नौ से अधिक 'रगण' वाले दंडक भी इसी नाम से पुकारे जाते हैं । केशवदास ने आठ ही रगण के छंद का नाम

'मत्तमातंगलीलाकर' लिखा है। जैसे,—मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप रूरे लसैं देह धारी मनो।

मत्तवारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान के आगे का दालान या बरामदा। २. आँगन के ऊपर की छत। ३. मतवाला हाथी। ४. पर्यंक। मच (को०)। ५. खूँटी। नागदंत (को०)। ६. सुपारी का चूर (को०)।

मत्तसमक—संज्ञा पुं० [सं०] चौपाई छंद का एक भेद जिसमें नवीं मात्रा अवश्य लघु होती है।

मत्ता¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, भगण, सगण और एक गुरु होता है और ४, ६ पर यति होती है। जैसे,—मत्ता ह्वै कै हरि रस सानी। धावै वंशी सुनत सयानी। २. मदिरा। शराब।

मत्ता²—प्रत्य० भाववाचक प्रत्यय। पन।

विशेष—इसका प्रयोग शब्दों को भाववाचक बनाने में उसके अंत में होता है। जैसे, बुद्धिमत्ता। नीतिमत्ता।

मत्ता⁽ᵖ⁾†³—संज्ञा स्त्री० [सं० मात्रा, प्रा० मत्ता] दे० 'मात्रा'। उ०—दस मत्ता के छंद में वृत्ति नवासी होइ। संमोहादिक गतिन सँग बरनत हैं सब कोइ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १८७।

मत्ताक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्त + आक्रीडा] तेईस अक्षरों का एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण, एक तगण, चार नगण और अंत में एक लघु और एक गुरु अक्षर होता है। जैसे,—यों रानी माधो की बानी सुनि कहि कस तिय असत कहत री।

मत्तालंब—संज्ञा पुं० [सं० मत्त + आलम्ब] भवन के चतुर्दिक् की चहारदीवारी या प्राचीर (को०)।

मत्थ—संज्ञा पुं० [सं० मस्तक] दे० 'मत्था'। उ०—हत्थि मत्थ पर सिंह बिनु आन न घाले घाव।—भूषण ग्रं०, पृ० १००।

मत्थना⁽ᵖ⁾—क्रि० स० [सं० मन्थन] दे० 'मथना'। उ०—दूध को मत्थ कर घिर्त न्यारा किया। बहुर फिर तत्त में ना समावै।—कबीर० सा० सं०, पृ० ६०।

मत्था†—संज्ञा पुं० [सं० मस्तक] १. ललाट। भाल। माथा। २. सिर। मूँड़।

मुहा०—मत्था टेकना = प्रणाम करना। सिर झुकाकर अभिवादन करना। मत्थापच्ची करना = खोपड़ी खपाना। मगज मारना। उ०—इतनी मत्थापच्ची कौन करे?—किन्नर०, पृ० २५। मत्था मारना = सिरपच्ची करना। सिर खपाना। मत्थे पड़ना = सिर पड़ना। अपने ऊपर भार आना। उ०—कृषिकारों के मत्थे पड़ा है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६७।

३. किसी पदार्थ का अगला या ऊपरी भाग।

मत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. हेंगा। सिरावन २. दाँती या हँसिया की फी मूठ। ३. ज्ञान अर्जन का साधन। ४. हेंगाने की क्रिया। खेत आदि को हेंगा से समतल करना (को०)।

मत्यनुसार—क्रि० वि० [सं० मति + अनुसार] बुद्धि के अनुसार उ०—मत्यनुसार समस्त सृष्टि को उपदेश दिया।—कबीर मं०, पृ० १६६।

मत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'मत्स्य'। उ०—मत्स मानिवे चवत नदी तल अति गति चंचल।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४८।

मत्सर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी का सुख या विभव न देख सकना। डाह। हसद। जलन। २. क्रोध। गुस्सा। ३. गर्व। अभिमान (को०)। ४. सोम लता (को०)। ५. मशक। दंश। डाँस (को०)।

मत्सर²—वि० १. जो दूसरे की सुख संपत्ति देखकर जलता हो। डाह करनेवाला। २. कृपण। कंजूस। ३. जो सत्कर्म अपनी निंदा करते देखकर अपने आपको धिक्कारता हो।

मत्सरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मत्सरयुक्त होने का भाव। डाह। हसद।

मत्सरी—संज्ञा पुं० [सं० मत्सरिन्] वह जो दूसरों से मत्सर रखता हो। मत्सरपूर्ण। डाही वा द्वेषी व्यक्ति।

मत्सरीकृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्छना का नाम। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—म, प, ध, नि, स, रे, ग। ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि।

मत्स्यंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्यण्डिका] खाँड़। राब। शक्कर का मोटा और बिना साफ हुआ रूप (को०)।

मत्स्यंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्यण्डी] राब। खाँड़ (को०)।

मत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली। २. प्राचीन विराट देश का नाम।

विशेष—कुछ लोगों का मत है कि वर्तमान दीनाजपुर और रंगपुर ही प्राचीन काल का मत्स्य देश है; और कुछ लोग इसे प्राचीन पांचाल के अंतर्गत मानते हैं।

३. छप्पय छंद के २३वें भेद का नाम। ४. नारायण। ५. बारहवीं राशि। मीन राशि। ६. अठारह पुराणों में से एक जो महापुराण माना जाता है। कहते हैं, जब विष्णु भगवान् ने मत्स्य अवतार धारण किया था, तब यह पुराण कहा था। ७. विष्णु के दस अवतारों में से पहला अवतार। कहते हैं, यह अवतार सतयुग में हुआ था। इसका नीचे का अंग रोहू मछली के समान, और रंग श्याम था। इसके सिर पर सींग थे, चार हाथ थे, छाती पर लक्ष्मी थी और सारे शरीर में कमल के चिह्न थे।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि प्राचीन काल में विवस्वान् के पुत्र वैवस्वत मनु बहुत ही प्रसिद्ध और बड़े तपस्वी थे। एक बार एक छोटी मछली ने आकर उनसे कहा कि मुझे बड़ी बड़ी मछलियाँ बहुत सताती हैं, आप उनसे मेरी रक्षा कीजिए। मनु ने उसे एक घड़े में रख दिया और वह दिन दिन बढ़ने लगी। जब वह बहुत बढ़ गई, तब मनु ने उसे एक कुएँ में छोड़ दिया। जब वह और बड़ी हुई, तब उन्होंने उसे गंगा में छोड़ा, और अंत में उसे वहाँ से भी

निकालकर समुद्र में छोड़ दिया। समुद्र में पहुँचते ही उस मछली ने हँसते हुए कहा कि शीघ्र ही प्रलयकाल आनेवाला है। इसलिये आप एक अच्छी और दृढ़ नाव बनवा लीजिए और सप्तर्षियों सहित उसीपर सवार हो जाइए। सब चीजों के बीज भी अपने पास रख लीजिएगा; और उसी नाव पर मेरी प्रतीक्षा कीजिएगा। वैवस्वत मनु ने ऐसा ही किया। जब प्रलयकाल आया और सारा संसार जलमग्न हो गया, तब वह विशाल मछली उन्हें दिखाई दी। उन्होंने अपनी नाव उस मछली के सींग से बाँध दी। कुछ दिनों बाद वह मछली उस नाव को खींचकर हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर पर ले गई। वहाँ वैवस्वत मनु और सप्तर्षियों ने उस मछली के कहने से अपनी नाव उस शिखर में बाँध दी। इसी लिये वह शिखर अब तक 'नौबंधन' कहलाता है। उस समय उस मछली ने कहा कि मैं स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हूँ। मैंने तुम लोगों की रक्षा करने और संसार की फिर से सृष्टि करने के लिये मत्स्य का अवतार धारण किया है। अब यही मनु फिर से सारे संसार की सृष्टि करेंगे। यह कहकर वह मछली वहीं अंतर्धान हो गई। मत्स्य पुराण में लिखा है कि प्राचीन काल में मनु नामक एक राजा ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा से वर पाया था कि जब महाप्रलय हो, तब मैं ही फिर से सारी सृष्टि की रचना करूँ। और तब प्रलय काल आने से कुछ पहले विष्णु उक्त प्रकार से मछली का रूप धरकर उनके पास आए थे। इसी प्रकार भागवत आदि पुराणों में भी इससे मिलती जुलती अथवा भिन्न कई कथाएँ पाई जाती हैं।

८. पुराणानुसार सुनहले रंग की एक प्रकार की शिला जिसका पूजन करने से मुक्ति होती है। ९. मत्स्य देश का राजा।

मत्स्यकरंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्यकरण्डिका] मछली रखने या पकड़ने का भावा [को०]।

मत्स्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलपीपल। २. व्यास की माता सत्यवती का एक नाम। वि० दे० 'व्यास'।

मत्स्यघात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मत्स्यघाती'।

मत्स्यघाती—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यघातिन्] मछुआ [को०]।

मत्स्यजाल—संज्ञा पुं० [सं०] मछली फँसाने का जाल [को०]।

मत्स्यजीवी—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यजीविन्] निषाद जाति का एक नाम।

मत्स्यदेश—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन विराट देश का नाम। दे० 'मत्स्य'–२।

मत्स्यद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहन सुदी द्वादशी।

मत्स्यद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

मत्स्यधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली रखने की झाँपी [को०]।

मत्स्यनाथ—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्य + नाथ] दे० 'मत्स्येंद्रनाथ'।

मत्स्यनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्यवती। २. जीव की आकृति जिसका ऊपरी आधा भाग नारी का और निचला भाग मछली जैसा हो [को०]।

मत्स्यनाशक, मत्स्यनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] कुरर पक्षी।

मत्स्यनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से वह सीमा जो नदी या जलाशय आदि के द्वारा निर्धारित होती है।

मत्स्यपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मत्स्य'–६।

मत्स्यबंध—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यबन्ध] धीवर। मल्लाह।

मत्स्यबंधन—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यबन्धन] मछली पकड़ने की वंशी।

मत्स्यबंधी—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यबन्धिन्] दे० 'मत्स्यबंध'।

मत्स्यमुद्रा—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक मुद्रा जो सभी पूजाओं में आवश्यक होती है।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ के पिछले भाग पर बाएं हाथ की हथेली रखकर अँगूठा हिलाते हैं। यह मुद्रा अभीष्ट सिद्ध करनेवाली मानी जाती है। इसे कूर्म मुद्रा भी कहते हैं।

मत्स्यरंक—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यरङ्क] दे० 'मत्स्यरंग'।

मत्स्यरंग—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यरङ्ग] मछरंग नामक पक्षी [को०]।

मत्स्यराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहू मछली। २. विराटनरेश (को०)।

मत्स्यवेधन—संज्ञा पुं० [सं०] वंसी। दे० 'मत्स्यवेधनी'।

मत्स्यवेधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसी। मछली मारने की कँटिया [को०]।

मत्स्यसंतानिक—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यसन्तानिक] व्यंजन के साथ विशिष्ट प्रकार से पकाई हुई मछली [को०]।

मत्स्याक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] सोमलता।

मत्स्याक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोमलता। २. ब्राह्मी बूटी। ३. गाडर दूब।

मत्स्याधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मछली रखने की झाँपी। २. बडिश। वंसी।—अनेकार्थ० पृ० ६२।

मत्स्यायिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलपीपल। २. दे० 'मत्स्याक्षी'।

मत्स्यावतार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मत्स्य'–७।

मत्स्याशन—संज्ञा पुं० [सं०] मछली खानेवाला पक्षी। मछरंग [को०]।

मत्स्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार योग का एक आसन।

मत्स्यासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का नाम।

मत्स्यिनी सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्मृति के अनुसार दो गाँवों के बीच में पड़नेवाली नदी जो सीमा के रूप में हो।

मत्स्येंद्रनाथ—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्येन्द्रनाथ] एक प्रसिद्ध साधु और हठयोगी जो गोरखनाथ के गुरु थे। नेपाल में ये पद्मपाणि नामक बोधिसत्व के अवतार माने जाते हैं।

मत्स्योदरी¹—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्योदरिन्] विराटनरेश का एक नाम [को०]।

मत्स्योदरी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] व्यास जी की माता सत्यवती का एक नाम। मत्स्यगंधा।

मत्स्योदरीय—संज्ञा पुं० [सं०] व्यास [को०]।

मत्स्योपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० मत्स्योपजीविन्] धीवर। मल्लाह।

मथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'माथ' [को०]।

मथन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथने का भाव या क्रिया। विलोना। २. एक अस्त्र का नाम। ३. गनियारी नामक वृक्ष।

मथन[2]—वि० मारनेवाला। नाशक। उ०—मधुकैटभ मथन मुर भौम केशी भिदन कंस कुल काल अनुसाल हारी। जानि जुग जुग भूप मे भूर तद्रुपता मे बहुरि करिहै कलुष भूमिभारी।—सूर (शब्द०)।

मथना[1]—क्रि० स० [सं० मथन वा मन्थन] १. किसी तरल पदार्थ को लकड़ी आदि से वेगपूर्वक हिलाना या चलाना। विलोना। रिड़कना। जैसे, दही मथना, समुद्र मथना इत्यादि। उ०—(क) का भा जोग कहानी कथें। निकसै घीव न बिनु दधि मथें।—जायसी (शब्द०)। (ख) दत्तात्रेय मर्म नहिं जाना मिथ्या स्वाद भुलाना। सलिला मथि कै घृत को काढेउ ताहि समाधि समाना।—कबीर (शब्द०)। (ग) मुदिता मथइ बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० स०—डालना।—देना।—लेना।

२. चलाकर मिलाना। गति देकर एक मे मिलाना। उ०—मथि मृग मलय कपूर सबन के तिलक किए। कर मणि माला पहिराए सबन विचित्र ठए।—सूर (शब्द०)। ३. ध्यस्त व्यस्त करना। नष्ट करना। ध्वंस करना। उ०—(क) सेन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि। कस रे सठ हनुमान कपि, गएउ जो तव सुत मारि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अघ बक शकट प्रलंब हनि, मारेउ गज चाणूर। धनुष भंजि दृढ़ दौरि पुनि, कंस मथे मदमूर।—केशव (शब्द०)। ४. घूम घूमकर पता लगाना। बार बार श्रमपूर्वक ढूँढ़ना। पता लगाना: जैसे—तुम्हारे लिये सारा शहर मथ डाला गया, पर कहीं तुम्हारा पता न लगा। ५. पके हुए फोड़े आदि का फूटने के लिये भीतर ही भीतर टीसना। दर्द करना। ६. किसी बात को बारंबार विचारना, सोचना। उ०—ज्ञान कथा को मथि मन देखो ऊधो वहु धोपी। टरति घरी छिन एक न अँखिया श्याम रूप रोपी।—सूर (शब्द०)। ७. बार बार किसी क्रिया का करना। किसी कार्य को बहुत अधिक बार करना।

मथना[2]—संज्ञा पुं० मथानी। रई। उ०—घूमि रहे जित तित दधि मथना सुनत मेघ ध्वनि लाजै री। बरनौ कहा सदन की सोभा वैकुंठहु ते राजै री।—सूर (शब्द०)।

मथनाचल—संज्ञा पुं० [सं०] मंदराचल पर्वत जिससे समुद्र मथा गया था [को०]।

मथनियाँ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मथानी + इया (प्रत्यय०)] वह मटका जिसमें दही मथा जाता है। उ०—दही बहेंड़ो ढिग धरी भरी मथनियाँ बारि। कर फेरति उलटी रई नई बिलोव-निहारि।—बिहारी (शब्द०)।

मथनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मथना] १. वह मटका जिसमे दही मथा जाता है। मथनियाँ। उ०—(क) दूध दही के भोजन चाटे नेकहु लाज न आई। माखन चोरि फोरि मथनी को पीवत छाछ पराई।—सूर (शब्द०)। (ख) डारे कहूँ मथनी बिसारे कहूँ घी को घड़ा बिकल बगारे कहूँ माखन मठा मही। २. दे० 'मथानी'। ३. मथने की क्रिया।

मथवा‡—संज्ञा पुं० [सं० मस्तक + वा (प्रत्यय०)] दे० 'माथा'। उ०—गुहि दे मोरे मथवा के चोटिया रे बालम।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४०।

मथवाह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० माथा + वाह (प्रत्य०)] हाथी के सिर पर बैठकर उसे हाँकनेवाला पुरुष। महावत। उ०—दिष्टि तराहि हीयरे आगे। जनु मथवाह रहै सिर लागे।—जायसी (शब्द०)।

मथान—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्थन] १. मंथन। विलोडन। उ०—मड़ि मथान मन रई को फेरना, होत घमसान तहँ गगन गाजै।—कबीर० सा० सं०, पृ० ६१। २. चखचख। खलबली। मथने की घरघराहट। उ०—लोग कहैं बौरान काहि की पकरौ बानी। घर घर घोर मथान फिरौ मैं नाम दिवानी।—पलटू०, भा० १, पृ० ३१।

मथानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मथना] काठ का बना हुआ एक प्रकार का दंड जिससे दही से मथकर मक्खन निकाला जाता है। रई। विलोनी। महनी। खैलर। उ०—को अस साज देइ मोहि आनी। बासुकि दाम सुमेरु मथानी।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इसके दो भाग होते हैं—एक खोरिया या सिरा और दूसरा डंडी। खोरिया प्रायः गोल, चिपटी और एक ओर सम तथा दूसरी ओर उन्नतोदर होती है। इसके किनारे पर कटाव होता है और जिस ओर समतल रहता है, उधर बीच मे डेढ़ दो हाथ लंबी डंडी जड़ी रहती है। मथते समय खुरिया दही के भीतर डालकर डंडी को खभे की चूल में लपेटकर रस्सी से या केवल हाथों से बट बटकर घुमाते हैं जिससे दही क्षुब्ध हो जाता है और थोड़ा सा पानी डालने पर और मथने से नैनू वा मक्खन मट्ठे के ऊपर उतरा आता है, जिसे मथानी से समेटकर अलग इकट्ठा करते हैं।

पर्या०—मंथान। मंथ। वैशाख। मथा। मंथन। चक्राट। भक्राट।

मुहा०—मथानी पड़ना या बहना = खलबली मचना। उ०—गढ़ ग्वालियर महँ बही मथानी। और कँधार मथा भै पानी।—जायसी (शब्द०)।

मथित[1]—वि०[सं०] १. मथा हुआ। २. घोलकर भली भाँति मिलाया

हुआ। आलोड़ित। ३. ध्वस्त। नष्ट (को०)। ४. पीड़ित। दलित (को०)।

मथित²—संज्ञा पुं० [सं०] बिना जल मिलाया हुआ मट्ठा। तक्र जिसमें पानी न मिला हो [को०]।

मथिता—वि० संज्ञा पुं० [सं० मथितृ] नाशक। नाश करनेवाला। मथनेवाला [को०]।

मथी¹—वि० [सं० मथिन्] [स्त्री० मथिनी] मथनेवाला।

मथी²—संज्ञा पुं० १. मथानी। २. वायु (को०)। ३. वज्र। बिजली (को०)। ४. लिंग। शिश्न (को०)।

मथुरही⁽ᵘ⁾—वि० [हिं० मथुरा] मथुरा संबंधी। दे० 'मथुरिया'। उ०—जो पै अलि अंत इहै करिवैहो। तो अतुलित अहीर अवलन को हठिन हिये हरिवैहो। जो प्रपंच परिणाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिवैहो। तौ मथुरही महा महिमा लहि सकल ढरनि ढरिवैहो।—तुलसी (शब्द०)।

मथुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुपुर (= मथुरा)] पुराणानुसार सात पुरियों में से एक पुरी का नाम। यह व्रज में यमुना के किनारे पर है।

विशेष—रामायण (उत्तरकांड) के अनुसार इसे मधु नामक दैत्य ने बसाया था जिसके पुत्र लवणासुर को पराजित कर शत्रुघ्न ने इसको विजय किया था। पाली भाषा के ग्रंथों में इसे मधुरा लिखा है। महाभारत काल में यहाँ शूरसेन-वंशियों का राज्य था और इसी वंश की एक शाखा में भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का यहाँ जन्म हुआ था। शूरसेन-वंशियों के राज्य के अनंतर अशोक के समय में उनके आचार्य उपगुप्त ने इसे बौद्ध धर्म का केंद्र बनाया था। यह जैनों का भी तीर्थस्थान है। उनके उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ का यह जन्मस्थान है। मौर्य साम्राज्य के अनंतर यह स्थान अनेक यूनानी, पारसी और शक क्षत्रपों के अधिकार में रहा। महमूद गजनवी ने सन् १०१७ में आक्रमण कर इस नगर को ध्वस्त व्यस्त कर डाला था। अन्य मुसलमान बादशाहों ने भी इसपर समय समय पर आक्रमण कर इसे तहस नहस किया था। यहाँ हिंदुओं के अनेक मंदिर हैं और अनेक कृष्णोपासक वैष्णव संप्रदाय के आचार्यों का यह केंद्र है। पुराणानुसार यह मोक्षदायिनी पुरी है।

मथुरानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

मथुरापति—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

मथुरिया—वि० [हिं० मथुरा + इया (प्रत्य०)] मथुरा से संबंध रखनेवाला। मथुरा का। जैसे, मथुरिया पंडे। उ०—तब मथुरिया (चौबे) कोस दस बीस पर साम्हे आइकै उनकों लै आए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६५।

मथुरेश—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

मथौरा—संज्ञा पुं० [हिं० मथना] एक प्रकार का भद्दा रंदा जिससे बढ़ई लकड़ी को खरादने के पहले छीलकर सीधा करते हैं। उ०—झाड़ दुसाखे झाम बसुल बरमा रु हथौरा। टाँकी नहनी घनी अरा आरी सु मथौरा।—सूदन (शब्द०)।

मथौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० माथा + औरी (प्रत्य०)] एक आभूषण का नाम। चंद्रिका। चदक।

विशेष—इस आभूषण को स्त्रियाँ सिर में पहनती हैं। यह अर्धचंद्राकार होता है जिसमें कई लटकन लगे रहते हैं। यह जंजीर या धागे से बाँधा जाता है।

मथ्थ†—संज्ञा पुं० [सं० मस्तक] दे० 'माथा'। उ०—भटक्कै पटक्कै कटक्कै सुमथ्थं। सटक्कै चलावै अटक्कै न हथ्थं।—सूदन (शब्द०)।

मदंग—संज्ञा पुं० [सं० मृदङ्ग] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बरमा, आसाम, छोटा नागपुर आदि में होता है। यह खोखला और मोटा होता है। इससे चटाई, घड़नई आदि बनाई जाती हैं और फलटे चीरकर मकान छाए जाते हैं। इसके पोर में लोग चावल पकाते और चीजें भरकर रखते हैं।

मदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मदन्तिका] दे० 'मदंती' [को०]।

मदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० मदन्ती] विकृत धैवत की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति का नाम।

मदंध—वि० [सं० मदान्ध] मदमत्त (हाथी)। दे० 'मदांध'। उ०—समर के सिंह सत्रुसाल के सपूत, सहजहि बकसैया सदसिंधुर मदंध के।—मति० ग्रं०, ३६६।

मद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. हर्ष। आनंद। २. वह गंधयुक्त द्राव जो मतवाले हाथियों की कनपटियों से बहता है। दान। ३. वीर्य। ४. कस्तूरी। ५. मद्य। ६. चित्त का वह उद्वेग या उमंग जो मादक पदार्थ के सेवन से होती है। मतवालापन। नशा। ७. उन्मत्तता। पागलपन। विक्षिप्तता। उ०—सत्यवती मछोदरी नारी। गंगातट ठाढ़ी सुकुमारी। पाराशर ऋषि तहँ चलि आए। विवश होइ तिनके मद धाए।—सूर (शब्द०)। ८. गर्व। अहंकार। घमंड। ९. अज्ञान। मतिविभ्रम। प्रमाद। १०. एक रोग का नाम। उन्माद नामक रोग। ११. एक दानव का नाम। १२. कामदेव। मदन।

मुहा०—मद पर आना = (१) उमंग पर आना। (२) कामोन्मत्त होना। गरमाना। (३) युवा होना।

मद²—वि० मत्त। उ०—मद गजराज द्वार पर ठाढ़ो हरि कह्यौ नेक बचाय। उन नहिं मान्यो संमुख आयो पकरेउ पूँछ फिराय।—सूर (शब्द)।

मद³—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लंबी लकीर जिसके नीचे लेखा लिखा जाता है। खाता। २. कार्य या कार्यालय का विभाग। सीगा। सरिश्ता। ३. खाता। जैसे,—इस मद में सौ रुपए खर्च हुए हैं। ४. शीर्षक। अधिकार। ५. ऊँची लहर। ज्वार।

मदअंतिका⁽ᵘ⁾—संज्ञा स्त्री० [सं० मदयन्तिका] मल्लिका। मदयंती।

मदक—संज्ञा स्त्री० [हिं० मद + क (प्रत्य०)] एक प्रकार का मादक पदार्थ जो अफीम के सत में बारीक कतरा हुआ पान पकाकर

से बनता है। पीनेवाले इसकी छोटी छोटी गोलियों को चीलम पर रखकर तमाखू की भाँति पीते है।

यौ०—मदकची या मदकबाज = मदक पीनेवाला।

मदकची—वि० [हिं मदक+ची (प्रत्य०)] जो मदक पीता हो। मदक पीनेवाला।

मदकट—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँड़। २. नपुंसक। पंड। हिजड़ा (को०)।

मदकमद्रम—वि० [सं०] ताड़ का पेड़।

मदकर[1]—वि० [सं०] मदवर्धक। मदकारक। जिससे मद उत्पन्न हो।

मदकर[2]—संज्ञा पु० धतूरा।

मदकरी—संज्ञा पुं० [सं० मदकरिन्] मस्त हाथी। मदांध गज (को०)।

मदकल—वि० [सं०] १. मत्त। मतवाला। उ०—मदकल मलय पवन ले ले फूलों से। मधुर मरद बिंदु उसमें मिलाया था। —लहर, पृ० ६८। २. बावला। पागल। ३. मद के कारण अस्पष्ट या धीरे धीरे बोलनेवाला (को०)।

मदकी—वि० [हिं० मदक+ई (प्रत्य०)] मदक पीनेवाला। मदकची।

मदकूक—वि० [अ० मदकूक] १. तपेदिक का रोगी। क्षयरोगी। २. कुटा हुआ (को०)।

मदकृत्—वि० [सं०] उन्मादजनक। मादक।

मदकोहल—संज्ञा पु० [सं०] साँड़।

मदखूल—वि० [अ० मद्खूल] प्रविष्ट। दाखिल किया हुआ (को०)।

मदखूला—संज्ञा स्त्री० [अ० मद्खूलह्] वह स्त्री जिसे कोई बिना विवाह किए ही रख ले या घर में डाल ले। गृहीता। रखनी। सुरैतिन।

मदगंध—संज्ञा स्त्री० [सं० मदगन्ध] १. छितवन। २. मद्य।

मदगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० मदगन्धा] १. मदिरा। शराब। २. अतसी। अलसी।

मदगमन—संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

मदगल(पु)—वि० [सं० मदकल] मत्त। मस्त। उ०—साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा मदगल अफजलै पंजा बल पटक्यो।—भूषण (शब्द०)।

मदघूर्ण—वि० [सं० मद+घूर्ण] मद में घूरती या हिलती डोलती। उ०—देखतीं प्यासी आँखें थी रस भरी आँखों को मदघूर्ण। —झरना, पृ० २७।

मदघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोय। पूतिका।

मदच्युत[1]—वि० [सं० मदच्युत्] १. गर्वनाशक। २. जिससे मद च्युत हो रहा हो। जैसे, हाथी (को०)। ३. मत्त। नशे में चूर (को०)।

मदच्युत—संज्ञा पुं० इंद्र (को०)।

मदजल—संज्ञा पु० [सं०] मत्त हाथी के मस्तक का स्राव। हाथी का मद। दान।

मदज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामज्वर। २. बल या घमंड का नशा (को०)।

मदत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० मदद] सहायता। सहारा। दे० 'मदद'। उ०—जबही मीरा सवद साह की मदत पठाए। सिर उतारि कर लिए राव परि संमुख धाए।—ह० रासो, पृ० ८४।

मदद—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. सहायता। सहारा। उ०—पहलवान सो बखाने बली। मदद मीर हमजा औ अली।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—मदद खर्च। मददगार।

क्रि० प्र०—करना। देना।

मुहा०—मदद पहुँचाना = कुमक पहुँचना। सहायता मिलना।

२. मजदूर और राज आदि जो किसी काम के ऊपर लगाए जाते हैं। साथ काम करनेवालों का समूह।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—मदद बाँटना = काम पर लगे मजदूरों को मजदूरी बाँटना या देना। दैनिक मजदूरी चुकाना।

मददखर्च—संज्ञा स्त्री० [अ० मदद+फ़ा० खर्च] १. वह धन जो किसी को सहायतार्थ दिया जाय। २. वह धन जो कोई काम करने के लिये काम करनेवालों को अगाऊ दिया जाय। पेशगी।

मददगार[1]—वि० [फ़ा०] सहायता देनेवाला। मदद करनेवाला। सहायक।

मददगार[2]—संज्ञा पु० [अ० मदद+फ़ा० गार (प्रत्य०)] मदद करनेवाला व्यक्ति। सहायता करनेवाला आदमी। सहायक व्यक्ति।

मदद्रु—संज्ञा पु० [सं०] नारियल का वृक्ष (को०)।

मदद्विप—संज्ञा पु० [सं०] मद से मस्त हाथी। मदकरी (को०)।

मदधार—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

मदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. कामक्रीड़ा। उ०—वह कभी मदन तथा शारीरिक आनंदों के लोभादि प्रपंचों में नहीं फँसता।—कबीर ग्रं०, पृ० २। ३. कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का आलिंगन जिसमें नायक अपना एक हाथ नायिका के गले में डालकर और दूसरा हाथ मध्यदेश में लगाकर उसका आलिंगन करता है। ४. मैनफल नामक वृक्ष और उसका फल। ५. धतूरा। ६. खेर। ७. मौलसिरी। ८. भ्रमर। ९. मोम। १०. अखरोट का वृक्ष। ११. महादेव के चार प्रधान अवतारों में से तीसरे अवतार का नाम। १२. मैना पक्षी। सारिका। १३. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जन्म से सप्तम गृह का नाम। १४. एक प्रकार का गीत। १५. प्रेम। १६. रूपमाल छंद का दूसरा नाम। १७ छप्पय के एक भेद का नाम। १८. खंजन पक्षी।

मदनकंटक—संज्ञा पुं० [सं० मदनकण्टक] सात्विक रोमांच।

मदनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मदन वृक्ष। मैनफल। २. दौना। ३. मोम। ४. खैर। ५. मौलसिरी। ६. धतूरा।

मदनकदन—संज्ञा पुं० [सं० मदन+कदन] शिव। महादेव। उ०—अब ही यह कहि देख्यो मदनकदन को दउ।—केशव (शब्द०)।

मदनकलह—संज्ञा पुं० [सं०] कामकलह। प्रेमकलह [को०]।

मदनगुपाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मदनगोपाल'। उ०—तिहि काल बनि व्रजबाल मदनगुपाल वर छबि अनगनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७५।

मदनगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. योनि। भग। २. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में सप्तम स्थान। ३. मदनहर छंद का दूसरा नाम।

मदनगोपाल—संज्ञा पुं० [सं० हिं० मदन+गोपाल] श्रीकृष्णचंद्र का एक नाम। उ०—जसुदा मदन गोपाल सुवावै। देखि स्वप्न गत त्रिभुवन कप्यो ईश विरंचि भ्रमावै।—सूर (शब्द०)।

मदनचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत मास की शुक्ल चतुर्दशी का नाम। यह मदनमहोत्सव के अंतर्गत है।

मदनतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० मदनतन्त्र] काम संबंधी शास्त्र। कामशास्त्र [को०]।

मदनत—वि० [सं० मद+नत] मद या मस्ती से झुकी। शिथिल। उ०—काली काली अलकों में। आलस मदनत पलकों में।—लहर, पृ० ५४।

मदनताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत शास्त्र में एक प्रकार का ताल जिसमें पहले दो द्रुत और अंत में दीर्घ मात्रा होती है।

मदनत्रयोदशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र की शुक्ल त्रयोदशी का नाम। यह मदनमहोत्सव के अंतर्गत है।

मदनदमन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

मदनदहन—संज्ञा पुं० [सं० मदन+दहन] शिव जो कामदाहक हैं। कामदेव को दग्ध करनेवाले शंकर [को०]।

मदनदिवस—संज्ञा पुं० [सं०] मदनोत्सव का दिन।

मदनदोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीतशास्त्र के अनुसार इंद्रताल के छह भेदों में से एक का नाम।

मदनद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ल द्वादशी का नाम। प्राचीन काल में इस दिन मदनोत्सव प्रारंभ होता था। पुराणों में इस दिन व्रत का विधान है।

मदनद्विट्—संज्ञा पुं० [सं० मदनद्विष्] शिव [को०]।

मदनध्वजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ल पूर्णिमा। चैत मास की पूर्णिमा तिथि [को०]।

मदननालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका विश्वास न हो। भ्रष्टा स्त्री। दुश्चरित्रा स्त्री।

मदनपक्षी—संज्ञा पुं० [मदनपक्षिन्] खंजन पक्षी [को०]।

मदनपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. विष्णु।

मदनपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिला। कोयल।

मदनफल—संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल। मयनी।

मदनबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेम की पीर। कामव्यथा [को०]।

मदनपीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेम की पीड़ा। कामजन्य व्यथा।

मदनबान—संज्ञा पुं० [हिं० मदन+बान] एक प्रकार का बेला।

विशेष—इसकी कलियाँ लंबी तथा दल एकहरे और नुकीले होते हैं। यह वर्षा में फूलता है और इसकी गंध बहुत अच्छी पर तीव्र होती है।

मदनभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. योनि। भग। २. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में जन्म से सप्तम स्थान।

मदनमनोरमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशवदास के मतानुसार सवैया के एक भेद का नाम जिसे दुर्मिल भी कहते हैं।

मदनमनोहर—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक के एक भेद का नाम जिसे मनहर भी कहते हैं।

मदनमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मल्लिका वृत्ति का एक नाम। २. मल्लिका छंद का एक नाम। उ०—अष्ट वरण शुभ सहित क्रम गुरु लघु केशवदास। मदन मल्लिका नाम यह कीजै छंद प्रकास।—केशव (शब्द०)।

मदनमस्त—संज्ञा पुं० [हिं० मदन+मस्त] १. जंगली सूरन का सुखाया हुआ टुकड़ा जिसका प्रयोग औषध में होता है। २. चंपे की जाति का एक प्रकार का फूल जिसकी गंध कटहल से मिलती जुलती पर बहुत उग्र तथा प्रिय होती है।

मदनमह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मदनमहोत्सव' [को०]।

मदनमहोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक उत्सव जो चैत्र शुक्ल द्वादशी से चतुर्दशी पर्यंत होता था।

विशेष—इस उत्सव में व्रत, कामदेव की पूजा, गीत, वाद्य और रात्रिजागरण आदि होते थे। इस उत्सव में स्त्री पुरुष दोनों संमिलित होते थे और उद्यान आदि में आमोद प्रमोद करते थे।

मदनमोदक—संज्ञा पुं० [सं०] केशव के मतानुसार सवैया छंद के एक भेद का नाम जिसे सुंदरी भी कहते हैं।

मदनमोहन—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचंद्र का एक नाम। उ०—जो मोहिं कृपा करी सोई जो हौं तो आयो माँगन। जसुमति सुत अपने पाइन जब खेलत आवै आँगन। जब तुम मदनमोहन करि टेरो इहि सुनि के घर जाऊँ। हौं तो तेरे घर को ढाढ़ी सूरदास मट नाऊँ।—सूर (शब्द०)।

मदनरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामजन्य आनंद। रतिजन्य सुख। २ विष। जहर (कोटि०)।

मदनरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शंकर [को०]।

मदनललित—संज्ञा पुं० [सं०] कामक्रीड़ा। रतिक्रीड़ा [को०]।

मदनललिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वार्णिक वृत्ति का नाम। इस वृत्ति के प्रति चरण में सोलह वर्ण होते हैं। पहले मगण, फिर भगण, नगण, मगण, नगण और अंत में गुरु होता है। जैसे—माँग्यो जी दान निज पति ह्वै दासी चरण की।

मदनलेख—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेमी और प्रेमिका के पारस्परिक प्रेमपत्र।

मदनशलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मैना। २. कोकिला। कोयल।

मदनसदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भग। योनि। २. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली के सप्तम स्थान का नाम।

मदनसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।।

मदनहर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मदनहरा'।

मदनहरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चालीस मात्राओं के एक छंद का नाम।

विशेष—छंदप्रभाकर में इसे मनहर लिखा है और दस, आठ, चौदह और आठ पर यति तथा आदि की दो मात्राओं का लघु और अंत की मात्रा का ह्रस्व होना लिखा है। उ०—संग सीय लक्ष्मण, श्री रघुनंदन, मातन के शुभ पाइय रे सब दुःख हरे। इसे मदनगृह भी कहते हैं। इसके यति और आदि की लघु मात्रा के नियम को कोई कोई कवि नहीं मानते।—जैसे,—सादल नजीव, महमूद आकूबत, जैता गूजर सहित देख जुद्ध पढ़े।—सूदन (शब्द०)।

मदनांकुश—संज्ञा पुं० [सं० मदनाङ्कुश] १. पुरुष की इंद्रिय। लिंग। २. नखक्षत।

मदनांतक—संज्ञा पुं० [सं० मदनान्तक] शिव।

मदनांध—वि० [सं० मदनान्ध] कामांध।

मदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मैना। सारिका। २. मद्य। मदिरा (को०)। ३. कस्तूरी (को०)। ४. अतिमुक्त नाम की लता (को०)।

मदनाग्रक—संज्ञा पुं० [सं०] कोदव। कोदों।

मदनातपत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि। भग (को०)।

मदनातुर—वि० [सं०] कामातुर। काम से पीड़ित या आर्त (को०)।

मदनायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव का अस्त्र। अत्यंत सुंदरी स्त्री। २. भग। ३. एक शस्त्र का नाम।

मदनारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मदनालय—संज्ञा पुं० [सं०] १. भग। योनि। २. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में के सप्तम स्थान का नाम। ३. कमल (को०)। ४. राजा (को०)।

मदनावस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामुकों की विरहावस्था। २. कामक्रीड़ा की दशा।

मदनाशय—संज्ञा पुं० [सं०] विषय की इच्छा। भोगेच्छा (को०)।

मदनास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव का अस्त्र। मदनायुध। २. एक अस्त्र का नाम।

मदनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुरा। वारुणी। २. कस्तूरी। ३. मेथी। ४. अतिपुष्प नाम का फूल। ५. धाय का पेड़। धौ।

मदनी[2]—वि० [अ०] १. मदीना का रहनेवाला। २. नगर में रहनेवाला। शहरी (को०)।

मदनीय—वि० [सं०] उन्मादक। मस्त करनेवाला। राग उत्पन्न करनेवाला (को०)।

मदनीयहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] धातकी। धाय का पेड़। धौ।

मदनेच्छाफल—संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम का पेड़। बद्दरसाल।

मदनोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] मदनमहोत्सव।

मदनोत्सवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की वेश्या। अप्सरा।

मदनोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] आनंददायक एक प्रकार का उपवन। प्रमोद वन (को०)।

मदपानी—वि० [सं० मद+पान+हिं० ई (प्रत्य०)] मद्य पीनेवाला। मद्यप। शराबी। उ०—मदपानी कि करै कि न जपै मतिहीना। कि वायस ना भवै कि न कवि करै सुहीना।—पृ० रा०, १२।१३३।

मदप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का मद बहना।

मदप्रसेक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के गंडस्थल से स्रवित होनेवाला मदजल (को०)।

मदप्रस्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मदप्रसेक'।

मदफन—संज्ञा पुं० [अ० मदफ़न] वह स्थान जहाँ मुरदे गाड़े जाते हैं। कब्रिस्तान।

मदफून—वि० [अ० मद्फ़ून] १. दफन किया हुआ या गाड़ा हुआ। २. गुप्त। गुह्य। पोशीदा (को०)।

मदभंग—संज्ञा पुं० [सं० मदभङ्ग] नशा उतरना। गर्व टूटना (को०)।

मदभंजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मदभञ्जिनी] शतमूली।

मदभरा—वि० [सं० मद+हिं० भरा] मदयुक्त। मतवाला।

मदमत—वि० [सं० मदमत्त] दे० 'मदमत्त'। उ०—तरकि तरकि अति वज्र से डारैं। मदमत इंद्र ठाढ़ौ फलकारैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १९२।

मदमत्त—वि० [सं०] १. (हाथी) जो मद बहने के कारण मस्त हो। उ०—जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिणीरिपु नंदन। तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदन।—केशव (शब्द०)। २. मस्त। मतवाला।

मदमत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धतूरा (को०)।

मदमत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्ति या छंद (को०)।

मदमाता—वि० [सं० मद+ हिं० माता <सं० मत्त] [वि० स्त्री० मदमाती] दे० 'मदमत्त'।

मदमुकुलित—वि० [सं० मद+मुकुलित] जो मद या मस्ती में अधखुले हों (नेत्र)।

मदमुकुलिताक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० मद+मुकुलित+अक्ष+ई (प्रत्य०)] मद के कारण अधखुले नेत्रोंवाली स्त्री।

मदमोचन—वि० [सं० मद+मोचन] गर्व दूर करनेवाला। मद हरण करनेवाला। उ०—लोहितलोचन रावण मदमोचन महीयान।—अपरा, पृ० ५७।

मदयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मदयन्तिका] मल्लिका।

मदयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० मदयन्ती] मल्लिका।

मदयित्नु[1]—वि० [सं० मदयित्नुः] मादक। उल्लासक (को०)।

मदयित्नु[2]—संज्ञा पुं० १. कामदेव। २. मेघ। ३. कलवार। ४. मद्य। ५. मद्यपी (को०)।

मदयून—वि० [अ० मद्‌यून] ऋणी। कर्जदार। देनदार (को०)।

मदर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] मँडराना। घेरना। आक्रमण। उ०—व्रज पर मदर करत है काम। कहियो पथिक जाइ श्याम सों राखहिं आइ आपनो धाम।—सूर (शब्द०)।

मदरसा—संज्ञा पुं० [अ०] पाठशाला। विद्यालय।

मदराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. मुर्गा। ३ शराब पीनेवाला व्यक्ति (को०)।

मदरास—संज्ञा पुं० [हिं०] भारतवर्ष के अंतर्गत एक प्रांत का नाम जो अपने प्रधान नगर के नाम से प्रख्यात है। तमिलनाडु।

विशेष—यह प्रदेश दक्षिण प्रांत में पूर्व समुद्र के किनारे आंध्र से कुमारी अंतरीप तक फैला हुआ है। यहाँ द्रविड़ और तैलंग लोग रहते हैं। इस प्रांत की राजधानी समुद्र के किनारे है और उसका भी यही नाम है।

मदरासी—वि० [हिं० मदरास+ई (प्रत्य०)] मदरास निवासी। मदरास का।

मदरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मंदरा] एक प्रकार का बाजा। उ०—झाल मदरिया झाफे बाजे।—सत० दरिया, पृ० १०६।

मदर्थ—अव्य० [सं०] मेरे लिये। उ०—व्यथा जानता हूँ मैं तेरी, जी मदर्थ ही जाया।—कुणाल, पृ० ४६।

मदलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णिक वृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात सात वर्ण होते हैं, जिनमें पहले मगण फिर सगण और अंत में गुरु होता है। जैसे,—मोसी गोप किशोरी। पैहो ना हरि जोरी। २. हाथी के गंडस्थल से निकले हुए मद की रेखा या चिह्न (को०)।

मदवा†—संज्ञा पुं० [सं० मद्य] शराब। उ०—सुरत कवारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।—कबीर० श०, पृ० ७३।

मदवारण—संज्ञा स्त्री० [सं०] मतवाला हाथी (को०)।

मदवारि—संज्ञा पुं० [सं०] मदजल (को०)।

मदविक्षिप्त[1]—वि० [सं०] मद से पागल। मदमत्त।

मदविक्षिप्त[2]—संज्ञा पुं० मतवाला हाथी।

मदविह्वल—वि० [सं०] १. नशे में मस्त। २. विषयातुर। कामातुर।

मदवृंद—संज्ञा पुं० [सं० मदवृन्द] हाथी। मस्त हाथी (को०)।

मदव्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदात्यय रोग (को०)।

मदशाक—संज्ञा पुं० [सं०] पोई। पोय।

मदशालिता—संज्ञा स्त्री० [सं० मद+शालिता] मदयुक्त या गर्वयुक्त होने का भाव। उ०—पर कृपा करके, कर दूर तू, कुटिलता, कटुता, मदशालिता।—प्रिय०, पृ० २२९।

मदशौंड, मदशौंडक—संज्ञा पुं० [सं० मदशौण्ड, मदशौण्डक] जाती फल। जायफल (को०)।

मदसार—संज्ञा पुं० [सं०] शहतूत का पेड़।

मदस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] मदिरालय। शराबखाना (को०)।

मदस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मदस्थल'।

मदहस्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करंज का एक भेद (को०)।

मदहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] धातकी। धाय का पेड़।

मदहोश—वि० [फ़ा० मदहोश] नशे में चूर। बेसुध। उन्मत्त। उ०—तुम्हीं बता दो यौवन मद में कौन हुआ मदहोश नहीं है, मेरा इसमें दोष नहीं है।—हिल्लोल, पृ० ६२।

मदांध—वि० [सं० मदान्ध] जिसे मस्ती, गर्व आदि के कारण भले बुरे का कुछ ज्ञान न हो। मदमत्त। मदोन्मत्त। मद से अंधा।

मदांबर—संज्ञा पुं० [सं० मदाम्बर] १. मदमत्त हाथी। २. इंद्र का हाथी। ऐरावत (को०)।

मदांबु, मदांभस—संज्ञा पुं० [सं० मदाम्बु, मदाम्भस्] हाथी का मदजल।

मदाकुल—वि० [सं०] मस्त। मतवाला (को०)।

मदाखिलत—संज्ञा स्त्री० [अ० मदाखिलत] १. बाँध। रोक। रुकावट। २. प्रवेश। अधिकार।

यौ०—मदाखिलत बेजा।

मदाखिलत बेजा—संज्ञा स्त्री० [अ० मदाखिलत+फ़ा० बेजा] १. किसी ऐसे स्थान में प्रवेश करना जहाँ वैसा करने का अधिकार प्राप्त न हो। अनधिकार प्रवेश। २. किसी ऐसे कार्य में हस्तक्षेप करना जिसमें वैसा करने का अधिकार न हो। अनुचित हस्तक्षेप।

मदाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] ताल का वृक्ष। ताड़।

मदातंक—संज्ञा पुं० [सं० मदातङ्क] मदात्यय नामक रोग।

मदात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग का नाम जो लगातार अत्यंत मद्यपान करने से होता है। उ०—विधि से विरुद्ध मद्यपान करने से मदात्यय रोग होता है।—माधव०, पृ० ११५।

विशेष—इस रोग में रोगी को चक्कर आता है, नींद नहीं आती, अरुचि होती है, प्यास लगती है, हाथ पैर में जलन होती है और वे ढीले पड़ जाते हैं, तंद्रा आती है और अपच हो जाता है। कभी कभी ज्वर भी आता है और रोगी बहुत प्रलाप करता है।

पर्या०—मदातंक। मदव्याधि। मद।

मदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

मदानि(पु)†—वि० [?] कल्याण करनेवाला। मंगलकारक। उ०—तुलसी संगति पोच की सुजनहिं होति मदानि। ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीन जुहारी आनि।—तुलसी (शब्द०)।

मदापनय—संज्ञा पुं० [सं०] मद उतरना। नशा उतरना [को०]।

मदार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हस्ती। हाथी। २. धूर्त। चालबाज। ३. शूकर। सूअर। ४. एक गंधद्रव्य का नाम। ५. कामुक। कामी।

मदार[2]—संज्ञा पुं० [सं० मन्दार] आक। उ०—पुत्र से भला मदार फरै ना दोष में।—पलटू०, पृ० १०४।

यौ०—मदारगदा।

मदार[3]—संज्ञा पुं० [अ० मदार] शाह मदार के अनुयायी। दे० 'मदारी'।

मदार[4]—संज्ञा पुं० [अ०] १. धूरी। कीली। आधार। २. ग्रह नक्षत्रादि के भ्रमण का मार्ग। ३. दायरा। घेरा [को०]।

मदारगदा—संज्ञा पुं० [हिं० मदार + गदा ?] धूप में सुखाया हुआ मदार का दूध जो प्रायः औषध आदि में डाला जाता है।

मदारिया—संज्ञा पुं० [हिं० मदारी] दे० 'मदारी'।

मदारी—संज्ञा पुं० [अ० मदार] १. एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो बंदर, भालू आदि नचाते और लोग के तमाशे दिखाते हैं। ये लोग शाह मदार के अनुयायी होते हैं। मदारिया। कलंदर।

विशेष—इस संबंध में बताया जाता है कि शाह मदार का जन्म १०५० ईसवी में एक यहूदी के घर हुआ था और यह स्वयं इस्लाम धर्म में दीक्षित हुए थे। यह फर्रुखाबाद में रहते थे और सुलतान शरकी के समय में कानपुर आए थे। उस समय कानपुर में 'मकनदेव' नामक जिन्न रहता था। शाह मदार उस जिन्न को वहाँ से निकालकर वहाँ रहने लगे। इसी से उस स्थान का नाम मकनपुर पड़ा। शाह मदार के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह चार सौ वर्ष जीते रहे और सन् १४३३ में मरे थे। शाह मदार की समाधि मकनपुर में सुलतान इब्राहीम ने बनवाई थी। मुसलमान इन्हें जिंदाशाह कहते हैं और अबतक जीवित मानते हैं। शाह मदार का पूरा नाम बदीउद्दीन था।

२. बाजीगर। तमाशा करनेवाला। ३. बंदर आदि नचानेवाला।

मदालस—वि० [सं०] उत्तेजना, मस्ती अथवा नशे के कारण सुस्त। उ०—पहाड़ की पहली शरद का यह मदालस भाव अकेले अनुभव करने का नहीं है।—नदी०, पृ० २५६।

मदालसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार विश्वावसु गंधर्व की कन्या का नाम जिसे वज्रकेतु के पुत्र पातालकेतु दानव ने उठा ले जाकर पाताल में रखा था।

विशेष—मार्कंडेय पुराण में कथा है कि राजा शत्रुजित् के पुत्र ऋतुध्वज यज्ञरक्षार्थ गालव जी के आश्रम में रहते थे। एक दिन शूकर रूपधारी पातालकेतु के अधिक उपद्रव करने पर इन्होंने उसका पीछा किया और उसे मारकर पाताल में गए। वहाँ उन्हें मदालसा मिली जिससे उन्होंने विवाह किया। थोड़े दिनों बाद जब ऋतुध्वज अपने पिता की आज्ञा से पृथिवीपर्यटन करने निकले, तब उन्हें पातालकेतु का भाई तालकेतु मिला जो मुनि का रूप धारण कर तप कर रहा था। तालकेतु ने ऋतुध्वज से कहा कि मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, पर दक्षिणा देने के लिये मेरे पास द्रव्य नहीं है। यदि आप अपना हार मुझे दें, तो मैं जल में प्रवेश कर वरुण से धन प्राप्त कर यज्ञ करूँ। राजकुमार ने उसके माँगने पर अपना हार उसे दे दिया और उसके आश्रम में बैठकर उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। तालकेतु हार पहनकर जलाशय में घुसा और दूसरे मार्ग से निकलकर उनके पिता के पास पहुँचकर उनसे कहा कि राजकुमार यज्ञ की रक्षा कर रहे थे। राक्षसों से घोर युद्ध हुआ, जिसमें राक्षसों ने राजकुमार को मार डाला। मैं यह समाचार देने के लिये आया हूँ। जब ऋतुध्वज के मारे जाने का समाचार मदालसा को पहुँचा, तब उसने प्राण त्याग दिए। तालध्वज वहाँ से लौटा और उसी जलाशय से निकलकर ऋतुध्वज से बोला कि आपकी कृपा से मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब आप अपने घर जाइए। ऋतुध्वज जब अपने घर आया, तो मदालसा के शरीरपात का समाचार सुनकर अत्यंत दुःखित हुआ। निदान वह सदा चिंतातुर रहा करता था। उसे शोकातुर देख उसके सखा नागराज अश्वतर के दो पुत्रों ने अपने पिता से प्रार्थना की कि आप तप करके मदालसा को फिर राजा को दें और उनको दुःख से छुड़ावें। अश्वतर ने शिव की तपस्या कर उनके वरदान से 'मदालसा' तुल्य पुत्री प्राप्त की और राजकुमार ऋतुध्वज को अपने यहाँ निमंत्रित कर उसे प्रदान किया। यह मदालसा परम विदुषी और ब्रह्मवादिनी थी। यह अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करती हुई खेलाया करती थी। इसके तीन पुत्र विक्रांत, सुबाहु और शत्रुमर्दन आबाल ब्रह्मचारी और विरक्त थे; और चौथा पुत्र अलर्क गद्दी पर बैठा, जिसे राजा ऋतुध्वज ने अपना उत्तराधिकारी बनाया और अंत को उसी पर राज्यभार छोड़ सस्त्रीक वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया। मार्कंडेय पुराण में इसकी कथा विस्तार से आई है।

मदालापी—संज्ञा पुं० [सं० मदालापिन्] [स्त्री० मदालापिनी] कोकिल।

मदालु—वि० [सं० मद + आलु] जिससे मद स्रवता हो। मतवाला। मस्त [को०]।

मदाह्—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी।

मदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटेला। हेंगा।

मदिप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मद्यप] दे० 'मद्यप'। उ०—जो ते चहसि मदिप सँग बासा। आय पियो मद मय बिनु कासा।—संत दरिया, पृ० १६।

मदिया—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मादा] पशुओं में स्त्री जाति । स्त्री जाति का जानवर । जैसे, मदिया कबूतर । मदिया कौवा ।

मदिर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल खैर ।

मदिर[2]—वि० [सं०] नशीला । मदभरा । मदकारक । मस्त करनेवाला । उ०—पलकें मदिर भार से थीं झुकी पड़ती ।—लहर, पृ० ६६ ।

मदिरता—संज्ञा स्त्री० [सं० मदिर+ता (प्रत्य०)] मादकता । मदोन्मत्तता । उ०—रात की इस चाँदनी की रौप्यता कुछ खो गई है । और, कोकिल की मदिरता भो तिरोहित हो गई है ।—अपलक, पृ० ८६ ।

मदिरनयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकर्षक मस्त आँखोंवाली स्त्री [को०] ।

मदिरलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरनयना ।

मदिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भवके से खीच या सड़ाकर बनाया हुआ प्रसिद्ध मादक रस । वह अर्क जिसके पीने से नशा हो । शराब । दारू । मद्य ।

विशेष—मदिरा के प्रधान दो भेद हैं । एक वह जिसे आग पर चढ़ाकर भवके से खीचते हैं, जिसे अभिस्रवित कहते हैं । दूसरा वह जिसमे सड़ाकर मादकता उत्पन्न की जाती है और जिसे पर्युषित कहते हैं । दोनों प्रकार की मदिराएं उत्तेजक, दाहक, कषाय और मधुर होती हैं । वैदिक काल से ही मादक रसों के प्रयोग की प्रथा पाई जाती है । सोम का रस भी, जिसकी स्तुति प्रायः सभी संहिताओं मे है, निचोड़कर कई दिन तक ग्राहों में रखा जाता था जिससे खमीर उठकर उसमें मादकता उत्पन्न हो जाती थी । यजुर्वेद मे यवसुरा शब्द आया है, जिससे यह पता चलता है कि यजुर्वेद के काल में यव की मदिरा खीचकर बनाई जाती थी । स्मृतियों में सुरा के तीन भेदों गौड़ी, पैष्टी और माध्वी—का निषेध पाया जाता है । वैद्यक में सुरा, वारुणी, शीधु, आसव, माध्वीक, गौड़ी, पैष्टी, माध्वी, हाला, कादंबरी आदि के नाम मिलते हैं । जटाधर ने मध्वीक, पानास, द्राक्ष, खर्जूर, ताल, ऐक्षव, मैरेय, माक्षिक, टांक, मधूक, नारिकेलज, अन्नविकारोत्थ, इन बारह प्रकार की मदिराओं का उल्लेख किया है । इनमे खर्जूर और ताल आदि पर्युषित और शेष अभिस्रवित हैं । इन दोनों के अतिरिक्त एक प्रकार की और मदिरा होती है, जिसे अरिष्ट कहते हैं । यह क्वाथ से बनाई जाती है । धान या चावल की मदिरा को सुरा, यव की मदिरा को कोहल, गेहूँ की मदिरा को मधुलिका, मीठे रस की मदिरा को शीधु, गुड़ की मदिरा को गौड़ी, और दाख की मदिरा को मध्वीक कहते हैं । धर्मशास्त्रों में गौड़ी, पैष्टी और माध्वी को सुरा कहा गया है । वैद्यक ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार की मदिराओं के गुण लिखे हैं और उनका प्रयोग भिन्न भिन्न अवस्थाओं के लिये लाभकारी बतलाया गया है ।

क्रि० प्र०—खींचना ।—पीना ।—पिलाना ।

२. मस्त खंजन (को०) । ३. दुर्गा का एक नाम (को०) । ४. वसुदेव की एक स्त्री का नाम । ५. बाइस अक्षरों के वर्णिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और अंत में एक गुरु होता है । इसे मालिनी, उमा और दिवा भी कहते हैं । जैसे,—तोरि शरासन संकर के शुभ सीय स्वयंवर माँझ वरी ।—केशव (शब्द०) ।

मदिराक्ष—वि० [सं०] [स्त्री० मदिराक्षी] जिसकी आँखें मदभरी हों । मस्त आँखोंवाला । मत्तालोचन ।

मदिराक्षी—वि० [सं०] मदभरी या मस्त आँखोंवाली ।

मदिरागृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मदिरालय' [को०] ।

मदिराभ—वि० [सं०] १. मादकता से युक्त । मादक । २. खंजन के समान विस्तृत वा आयत । उ०—खोलता लोचन दल मदिराभ, प्रिये, चल अलिदल से वाचाल ।—गुंजन, पृ० ४७ ।

मदिरायतनयन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मदिरायतनयना] खंजन के समान बड़े और मदभरे नेत्रोंवाला [को०] ।

मदिरालय—संज्ञा पुं० [सं०] मधुशाला । शराबखाना । मद्यगृह [को०] ।

मदिरावल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मदिरा] मद्य । मदिरा । उ०—नीझर झरै अमीरस निकसै तिहि मदिरावल छाका ।—कबीर ग्रं०, पृ० १३९ ।

मदिरासख—संज्ञा पुं० [सं०] आम का वृक्ष [को०] ।

मदिरोत्कट—वि० [सं०] दे० 'मदिरोन्मत्त' [को०] ।

मदिरोन्मत्त—वि० [सं०] शराब के नशे में चूर [को०] ।

मदिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीखी शराब । नशीली मदिरा [को०] ।

मदी—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्दि] दे० 'मदि' ।

मदीद—वि० [अ०] लंबा । दीर्घ ।

यौ०—शदीदो मदीद = कठिन और लंबा । उ०—बाद इन्तजार शदीदो मदीद इनायतनामे के दर्शन हुए ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ६२ ।

मदीना—संज्ञा पुं० [अ०] अरब के एक नगर का नाम । यहाँ मुसलमानी मत के प्रवर्तक मुहम्मद साहब की समाधि है ।

मदीय—वि० [सं०] [स्त्री० मदीया] मेरा । उ०—जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे, वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे ।—साकेत, पृ० २१६ ।

मदीयून—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो देनदार हो । कर्जदार । ऋणी ।

मदीला—वि० [हिं० मद+ईला (प्रत्य०)] नशे से भरा हुआ । नशीला । उ०—गजन मदीले चढ़ि चले चटकीले हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

मदुकल—संज्ञा पुं० [देश०] दोहे के एक भेद का नाम जिसमें तेरह गुरु और बाईस लघु मात्राएं होती हैं । इसे गयंद भी कहते हैं । उ०—राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहिरै, जो चाहसि उजियार ।—तुलसी (शब्द०) ।

मदूर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० मजदूर] दे० 'मजदूर' । उ०—रहे धमला

चीरा बाँधे मदूर, करे सानी शरीग्रत काम अक्सर।—दक्खिनी०, पृ० २४६।

मदोच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं० मद+उच्छ्वास] मद भरे उच्छ्वास। ग्राह या दीर्घ साँस। उ०—मेरी निभृत समाधि से अतुल, निकले मदोच्छ्वास मदिराउत।—मधुज्वाल, पृ० ३८।

मदोत्कट¹—वि० [सं०] मदगर्वित। मदोद्धत।

मदोत्कट²—संज्ञा पुं० मत्त हाथी।

मदोदग्र—वि० [सं०] मत्त। मतवाला।

मदोद्धत—वि० [सं०] १. मदोन्मत्त। मत्त। उ०—जिसमे मदोद्धत कटाक्ष की अरुणिमा, व्यग्र करती थी विश्व भर के अनुराग पर।—लहर, पृ० ८३। २. घमंडी। अभिमानी।

मदोन्मत्त—वि० [सं०] मद से भरा हुआ। मदांध।

मदोमत्तⓅ†—वि० [सं० मद+मत्त] दे० 'मदोन्मत्त'। उ०—किसोरं किसावर्त गात सु क्रीसं। बप एस बल्ल मदोमत्त दीसं।—पृ० रा०, २।५०१।

मदोर्जित—वि० [सं०] मद से ओजयुक्त। गर्व से फूला हुआ।

मदोल्लापी—संज्ञा पुं० [सं० मदोल्लापिन्] कोकिल।

मदोवैⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्दोदरी] मंदोदरी। उ०—तुलसी मदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ, कहै काहू कान कियो न मैं केतो कह्यो कालि है।—तुलसी (शब्द०)।

मद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का जलपक्षी जिसे जलपाद और लमपुछार भी कहते है।

विशेष—इसकी लंबाई पूँछ से चोंच तक ३२ से ३४ इंच तक होती है। इसके डैने कुछ पीलापन लिए होते हैं। पूँछ काली, चोंच पीली और मुँह, कनपटी और गले के नीचे का भाग सफेद तथा पैर काले होते है। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों मे, विशेषकर पहाड़ी और जंगली प्रदेशों मे, होता है। वैद्यक में इसका मांस शीतल, वायुनाशक स्निग्ध और भेदक माना गया है। यह रक्तपित्त के विकारो को दूर करता है।

२. पेड़ पर रहनेवाला एक प्रकार का जंतु। ३. मद्गुरी मछली। मंगुर। ४. एक प्रकार का साँप। ५. एक प्रकार का युद्धपोत। ६. एक वर्णसंकर जाति का नाम।

विशेष—मनुस्मृति मे इसकी उत्पत्ति ब्राह्मण पिता और वंदी जाति की माता से लिखी है और इसका काम वन्य पशुओं को मारना बताया गया है।

मद्गुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मँगुरी या मंगुर नामक मछली। २. प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जिसका काम समुद्र में डूबकर मोती आदि निकालना था।

यौ०—मद्गुरप्रिया = सिंघी मछली।

मद्गुरक—संज्ञा पुं० [सं०] मंगुर नामक मछली। मद्गुर।

मद्गुरसी, मद्गुरी—संज्ञा पुं० [सं०] मंगुर या मद्गुर नामक मछली।

मद्Ⓟ¹—संज्ञा पुं० [सं० मद्य, प्रा० मद्द] दे० 'मद्य'। उ०—मद्द मांस मिथ्या तज डारौ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५६।

मद्द²—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'मद³'।

मद्दगलⓅ—संज्ञा पुं० [देश०] हाथी। मत्त गज। उ०—ग्ररि ग्रग्ग मद्दगल सहस इष्ष।—पृ० रा०, १।४३७।

मद्दत, मद्दतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० मदद] सहायता। मदद। उ०—ठारे सै अरु चार मैं पावस साँवन मास। मद्दति करिय सुरेस की किय दखिनी दल नास।—सुजान०, पृ० २५।

मद्दराई—वि० [सं० मत्त+राज] मद से युक्त। मदोन्मत्त। उ०—करि अप्पइसं दुईसं दुहाई। मनो वंन भुम्भके गजं मद्दराई।—पृ० रा०, ६।१४६।

मद्दा¹—वि० [अ० मद्दाह] प्रशंसक। उ०—शहादत मद्दा कहे तो क्या, याने इस खाकी तन सुं मरना है।—दक्खिनी०, पृ० ३६७।

मद्दा²—संज्ञा पुं० [सं० मन्द] [संज्ञा स्त्री० मद्दी] सस्ता। महँगी होने की विपरीत स्थिति। उ०—चोखेलाल की खत्तियों की बात फैल गई तो बाजार तीन चार आने की मद्दी से खुलेगा।—अभिशप्त, पृ० ५२।

मद्दाह—वि० [अ०] १. प्रशंसक। तारीफ करनेवाला। २. सहायक। मददगार (को०)।

मद्दसाही—संज्ञा पुं० [हिं० मधुसाह] एक प्रकार का पुराना पैसा जो ताँबे का चौकोर टुकड़ा होता है।

मद्देनजर—क्रि० वि० [अ० मद्दे नज़र] दृष्टि के समक्ष रखकर। दृष्टिगत करके। उ०—वह धर्म को व्यापार का शृंगार समझता है और सब काम अपने स्वार्थ को मद्देनजर रखकर करता है।—प्रेम और गोर्की, पृ० ३३६।

मद्दे फाजिल—संज्ञा स्त्री० [अ० मद्दे फ़ाज़िल] व्यर्थ का खर्च (को०)।

मद्दे मुकाबिल—वि० [अ० मद्दे मुकाबिल] विपक्षी। शत्रु। प्रतिद्वंद्वी। रकीब (को०)।

मद्दोजजर—संज्ञा स्त्री० [अ० मद्दोजज़्र] ज्वार भाटा। समुद्र के पानी का उतार चढ़ाव।

मद्ध—संज्ञा पुं० [सं० मध्य] दे० 'मध्य'।

मद्धिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मदिरा जो द्राक्षा से बनाई जाती है। द्राक्ष।

मद्धिमⓅ†—वि० [सं० मध्यम] १. मध्यम। अपेक्षाकृत कम अच्छा। २. मंदा।

मद्धे—अव्य० [सं० मध्य] १. बीच में। में। उ०—(क) गुरु संत समाज मद्धे भक्ति मुक्ति दृढ़ाइए।—कबीर (शब्द०)। (ख) सतगु आप पुरुष हैं स्वामी। गगन कंज मद्धे अस्थानी।—घट०, पृ० २५४। २. विषय में। बाबत। संबंध में। उ०—परंतु अँगूठी मिलने के मद्धे इससे कुछ और पूछ ताँछ होनी चाहिए।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। ३. लेखे में। बाबत। जैसे,—आपको सौ रुपए इस मद्धे दिए जा चुके हैं।

मद्य—संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा। शराब।

मद्यकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० मद्यकुम्भ] शराब का बरतन (को०)।

मद्यगंध—संज्ञा पुं० [सं० मद्यगन्ध] बकुलवृक्ष (को०)।

मद्यत(पु)—वि० [सं० मद] मद से भरा। मतवाला। उ०—निस गयति अद्ध ससि उदित बीर। बज्जे सु बज्जि मद्यत सुमीर। —पृ० रा०, ६१।१५४२।

मद्यदोहद—संज्ञा पुं० [सं०] बकुल वृक्ष (को०)।

मद्यद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] माड़ नामक वृक्ष।

मद्यपंक—संज्ञा पुं० [सं० मद्यपङ्क] खमीर जो मद्य खींचने के लिये उठाया जाय।

मद्यप—वि० [सं०] मद पीनेवाला। सुरापी। शराबी। उ०—निर्लज्ज। मद्यप !! क्लीव !!! श्रोह तो मेरा कोई रक्षक नहीं।—ध्रुव०, पृ० २६।

मद्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] मद्य पीने की क्रिया। शराब पीना।

मद्यपायी—वि० [सं० मद्यपायिन्] शराब पीनेवाला। शराबी (को०)।

मद्यपाशन—संज्ञा पुं० [सं०] मद्य के साथ खाई जानेवाली चटपटी चीज। गजक। चाट।

मद्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धौ।

मद्यबीज—संज्ञा पुं० [सं०] शराब के लिये उठाया हुआ खमीर।

मद्यभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] शराब का पात्र। मद्यभांड (को०)।

मद्यभांड—संज्ञा पुं० [सं० मद्यभाण्ड] मद्यभाजन (को०)।

मद्यमंड—संज्ञा पुं० [सं० मद्यमण्ड] वह फेन जो मद्य का खमीर उठने पर ऊपर आता है। मद्यफेन।

मद्यमोद—संज्ञा पुं० [सं०] बकुल। मालसिरी।

मद्यवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धौ।

मद्यसंधान—संज्ञा पुं० [सं० मद्यसन्धान] मद्य निकालने का व्यापार।

मद्याक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] शराब पीने का व्यसन। शराब की लत (को०)।

मद्याजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं० मद्य + अजीर्ण] एक प्रकार का अजीर्ण जिसमें डकार आना, पेट फूलना आदि उपद्रव होते हैं। उ०—वमन अथवा डकार का आना, जलन होना, ये लक्षण जब मद्याजीर्ण होय है तब होते हैं।—माधव०, पृ० ११८।

मद्यामोद—संज्ञा पुं० [सं०] बकुल वृक्ष (को०)।

मद्रंकर—वि० [सं० मद्रङ्कर] मंगलकारक। शुभकारक।

मद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का वैदिक नाम। यह देश कश्यप सागर के दक्षिणी किनारे पर पश्चिम की ओर था। ऐतरेय ब्राह्मण में इसे उत्तर कुरु लिखा है। २. पुराणानुसार रावी और झेलम नदियों के बीच के देश का नाम। ३. हर्ष। ४. मद्र देश के राजा (को०)। ५. मंगल : शुभ (को०)।

मद्रक—वि० [सं०] १. मद्र देश का। मद्र देश संबंधी। २. मद्र देश में उत्पन्न।

मद्रकार—वि० [सं०] मंगलकारक। शुभ।

मद्रसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नकुल और सहदेव की माता, माद्री जो मद्रनरेश की कन्या थी।

मद्रास—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मदरास'।

मद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मद्र देश की स्त्री (को०)।

मद्रकस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाणिनि के अनुसार एक देश का नाम।

मद्वा—संज्ञा पुं० [सं० मद्वन्] शिव का एक नाम (को०)।

मध(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० मध्य] दे० 'मध्य'। उ०—या शरीर जीव मध वासा।—घट०, पृ० ३६५।

मध(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० मद] दे० 'मद'। उ०—मध के माते समझत नाहीं, मैंगल की मति आई।—दादू० पृ० ५७५।

मधगंध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मद + गन्ध] मदजल के गंधवाले मत्त हाथी। उ०—अनुव सुर सगन ढल ढुलाँ मुक्तालिय। ढाम ढाम मदगन सज्जि चल्ले अगवानिय।—पृ० रा०, २४।१२१।

मधन—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो भैरव राग की पुत्रवधू मानी जाती है।

मधरा(पु)—वि० [सं० मधुर] दे० 'मधुर'। उ०—हाय सितारो सुर करवो, मुख में मधरा बोल।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६७।

मधव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वैशाख का महीना। माधव (को०)।

मधानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मथानी] दही मथने का पात्र। मथानी। मटका। उ०—एक कमरे में, जो कि निस्संदेह मठ का रसोईघर था हमें कड़ाई, तवा, चमचे, करछी, मधानी और एक छोटा सा सरौता उपलब्ध हुआ है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १३०।

मधाना(पु)†¹—क्रि० अ० [हिं० मथना] मथा जाना। विलोड़ित होना। उ०—ज्ञान मधाना अहि निसि कथै।—प्राण०, पृ० ४४।

मधाना²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। मकड़ा। मधाना। विशेष दे० 'मकड़ा'।

मधि¹—संज्ञा पुं० [सं० मध्य] दे० 'मध्य'। उ०—सुखा वचन मुनि दोउ दल के मधि रथ लै ठाढ़ो कीनो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८२।

मधि²—अव्य० दे० 'में'।

मधिक(पु)—क्रि० वि० [सं० मध्य] बीच में। उ०—मधिक पेड़ उर विस्तारे।—दरिया० बानी, पृ० १८।

मधिनायक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मध्य + नायक] माला में बीचों बीच का बड़ा मनका या भूषण। पदिक। उ०—मनहु मधिनायक विराजत प्रति प्रभुत जराय।—घनानंद, पृ० २६७।

मधिम(पु)—वि० [सं० मध्यम] दे० 'मध्यम', 'मद्धिम'।

मधु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी। जल। २. शहद। ३. मदिरा। शराब। ४. फूल का रस। मकरंद। ५. वसंत ऋतु। उ०—कोउ कहु विहरत वन मधु मनसिज दोउ।—तुलसी ग्रं०,

पृ० २१। ६. चैत्र मास। ७. एक दैत्य जिसे विष्णु ने मारा था और जिसके कारण उनका 'मधुसूदन' नाम पड़ा। ८. दूध। ९. मिसरी। १०. नवनीत। मक्खन। ११. घी। १२. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो लघु अक्षर होते हैं। १३. शिव। महादेव। १४. महुए का पेड़। उ०—पट मंडप चारों ओर तने मन भाए, जिनपर रसाल, मधु, निंब, जंबु, षट् छाए।—साकेत, पृ० २२५। १५. अशोक का पेड़। १६. मुलेठी। १७. अमृत। सुधा। १८. सोमरस (को०)। १९. मधुमक्खी का छत्ता (को०)। २०. मोम (को०)। २१. एक राग जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है।

मधु²—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती का पेड़।

मधु³—वि० [सं०] १. मीठा। २. स्वादिष्ठ। उ०—चारो भ्रात मिलि करत कलेऊ मधु मेवा पकवाना।—सूर (शब्द०)।

मधुअरि—संज्ञा पुं० [सं० मधु + अरि] मधुसूदन। कृष्ण। उ०—मोहन मधु अरि मुष्टि अरि दामोदर जदुईस।—अनेकार्थ०, पृ० ६१।

मधुकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल।

मधुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] महुए का पेड़। २. महुए का फूल। ३. अशोक वृक्ष (को०)। ४. एक पक्षी (को०)। ५. मुलेठी। जेठी मधु। ६. सीसा। राँगा (को०)। ७. खजूर रस (को०)।

यौ०—मधुकाश्रय।

मधुक²—वि० १. मीठा। २. मीठा बोलनेवाला। सुस्वर। ३. शहद के समान रंग का [को०]।

मधुकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भौंरा। उ०—फूटि सुगंध कंज की जैसे, मधुकर के मन भावै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १६। २. कामी पुरुष। ३ भँगरा। भंवरा।

मधुकरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुकर] १. गकरिया। भौरिया। बाटी। २. पके अन्न की भिक्षा। वह भिक्षा जिसमें केवल पका हुआ दाल, चावल, रोटी, तरकारी आदि ली जाती हो। ३. भ्रमरी। भौंरी।

मधुकरी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमर। भौंरा [को०]।

मधुकर्कटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतरा। मीठा नीबू।

मधुकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'मधुकर्कटिका'। २. एक प्रकार का खजूर [को०]।

मधुकलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मधुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मधुयष्टिका। मुलेठी। २. मधुपर्णी वृक्ष। ३. काले रंग की ककुनी [को०]।

मधुकार—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुमक्खी। शहद की मक्खी।

मधुकारी—संज्ञा पुं० [सं० मधुकारिन्] मधुमक्खी। शहद की मक्खी। उ०—कोउ कहे अहो मधुप कौन कहे तुमें मधुकारी।—नंद० ग्रं०, पृ० १८३।

मधुकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधुकुंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुकुम्भा] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

मधुकुक्कुटिका, मधुकुक्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नीबू का पेड़ [को०]।

मधुकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मधु या शहद की धारा (को०)। पुराणानुसार कुशद्वीप की एक नदी का नाम।

मधुकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी [को०]।

मधुकेरार—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी [को०]।

मधुकैटभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य जो दोनों भाई थे और जिन्हें विष्णु ने मारा था।

मधुकोश, मधुकोष—संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता। मधुचक्र।

मधुक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी का छत्ता [को०]।

मधुक्षीर, मधुक्षीरक—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर का पेड़।

मधुखर्जूरिका, मधुखर्जुरी—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर का एक प्रकार।

मधुगंध—संज्ञा पुं० [सं० मधुगन्ध] १. अर्जुन का वृक्ष। २. बकुल। मौलसिरी।

मधुगंधिक—वि० [सं० मधुगन्धिक] मधुर सुगंधवाला [को०]।

मधुगायन—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०]।

मधुगुंजन—संज्ञा पुं० [सं० मधुगुञ्जन] सहजन का वृक्ष।

मधुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] वाजपेय यज्ञ में का एक होम जो मधु से किया जाता है।

मधुघोष—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल।

मधुचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता। उ०—पुलक उठी मधुचक्र देख प्रभु की प्रिया।—साकेत, पृ० १३८।

मधुचौर(पु)—[सं० मधु + चौर] मधु का चोर। भ्रमर। उ०—मधुप मधुव्रत मधुरसिक इंदीवर मधु चौर।—अनेकार्थ०, पृ० ७१।

मधुच्छंदा—संज्ञा पुं० [सं० मधुच्छन्दस्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के द्रष्टा थे।

मधुच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोरशिखा नाम की बूटी।

मधुज—संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी।

विशेष—पुराणानुसार पृथ्वी की उत्पत्ति मधु नामक राक्षस के मेद से हुई थी, इसी से उसका यह नाम पड़ा।

२. मिस्री (को०)।

मधुजालक—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी का छत्ता [को०]।

मधुजित्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

मधुजीरक—संज्ञा पुं० [सं०] सौंफ।

मधुजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़े का वृक्ष।

मधुतम, मधुतर—वि० [सं०] अत्यंत मीठा [को०]।

मधुतरु, मधुतृण—संज्ञा पुं० [सं०] ईख। ऊख।

मधुत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] शहद, घी और चीनी इन तीनों का समूह ।

मधुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मधु या मधुर होने का भाव । मिठास । मीठापन ।

मधुदीप—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

मधुदूत—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ ।

मधुदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष ।

मधुद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. भौंरा । २. लंपट । कामासक्त (को०) ।

मधुद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहजन का वृक्ष ।

मधुद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. महुए का पेड़ । २. आम का पेड़ (को०) ।

मधुधातु—संज्ञा पुं० [सं०] माक्षिक । एक धातु [को०] ।

मधुधारी—संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी ।

मधुधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाँड़ । शक्कर ।

मधुधेनु—संज्ञा पुं० [सं०] मधु आदि द्वारा निर्मित सवत्सा गौ । शहद जो गाय की आकृति के रूप में ब्राह्मणों को दान किया जाय ।

विशेष—वाराह पुराण के श्वेतोपाख्यान में इसकी विधि और माहात्म्य वर्णित है ।

मधुनापित—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णसंकर जाति जो स्मृति के अनुसार शूद्रा स्त्री और क्षत्रिय पुरुष से उत्पन्न है । मोदक [को०] ।

मधुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसे घृतमंडा और सुमंगला भी कहते हैं ।

मधुनेता—संज्ञा पुं० [सं० मधुनेतृ] १. मधुमक्खी । २. भ्रमर । भौंरा ।

मधुप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भौंरा । २. शहद की मक्खी । ३. उद्धव । उ०—पगी प्रेम नंदलाल के, हमैं न भावत जोग । मधुप राजपद पाय कै, भीख न माँगत लोग ।—मतिराम (शब्द०) । ४. देवता, जो मधु पीते हैं (को०) ।

मधुप²—वि० १. मधु पीनेवाला । २. शराबी (को०) ।

मधुपटल—संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता ।

मधुपति—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

मधुपनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुप+नी (प्रत्य०)] भ्रमरी । उ०—सरस वसंत सुहावनो रितु धाई सुख देनु । माते मधुप मधुपनी कोकिल कुल कल बेनु ।—छीत०, पृ० २३ ।

मधुपर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. दही, घी, जल, शहद और चीनी का समूह जो देवताओं को चढ़ाया जाता है ।

विशेष—इससे देवता बहुत संतुष्ट होते हैं । यह भी कहा गया है कि इसका दान करने से सुख और सौभाग्य की वृद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है । पूजा के सोलह उपचारों में से देवता या पूज्य के सामने मधुपर्क भी रखना एक उपचार है । विवाह में भी इसके दान और प्राशन का विधान है ।

२. तंत्र के अनुसार घी, दही और मधु का समूह जिसका उपयोग तांत्रिक पूजन में होता है ।

मधुपर्क्य—वि० [सं०] मधुपर्क देने के योग्य । जिसके सामने मधुपर्क रखा जा सके ।

मधुपर्णिका, मधुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुरुच । २. गंभारी नामक वृक्ष । ३. नीली नामक पौधा ।

मधुपाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा [को०] ।

मधुपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा रखने का बरतन । मद्यपात्र [को०] ।

मधुपायी—संज्ञा पुं० [सं० मधुपायिन्] भौंरा ।

मधुपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी नामक वृक्ष ।

मधुपिंग—संज्ञा पुं० [सं० मधुपिङ्ग] पुराणानुसार एक मुनि का नाम ।

मधुपीलु—संज्ञा पुं० [सं०] महापीलु । अखरोट ।

मधुपुर¹—संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा नगर का प्राचीन नाम ।

मधुपुर²—संज्ञा पुं० [सं० मधु+पुर] मयखाना । शराबघर । उ०—अर्घ्य चढ़ा उनको जो जब तब आते हैं तेरे मधुपुर में । —गीतिका, पृ० ३७ ।

मधुपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मथुरा का प्राचीन नाम ।

मधुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. महुआ । २. सिरिस का पेड़ । ३. अशोक वृक्ष । ४. मौलसिरी ।

मधुपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागदंती । २. धौ ।

मधुप्रणय—संज्ञा पुं० [सं०] शराब पीने का व्यसन [को०] ।

मधुप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग जिसमें पेशाब में शक्कर आती है । विशेष दे० 'मधुमेह' ।

मधुप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] सोलह संस्कारों में से एक संस्कार जिसमें नवजात शिशु (पुत्र) को शहद चटाया जाता है [को०] ।

मधुप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बलराम । २. भुइँ जामुन । ३. अक्रूर (को०) ।

मधुफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाख । २. कँटाय या विकंकत नामक वृक्ष । ३. एक प्रकार का नारियल (को०) ।

मधुफलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीठी खजूर ।

मधुबन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्रजभूमि के एक वन का नाम । उ०—मधुबन तुम कत रहत हरे ।—सूर०, १०।३३१० । २. सुग्रीव का बगीचा जिसमें अंगूर के फल बहुत होते थे । उ०—जौ न होत सीता सुधि पाई । मधुबन के फल सकहिं कि खाई ।—मानस, ५।२६ ।

मधुबहुल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मधुबहुला] १. वासंती लता । २. सफेद जूही ।

मधुबारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा । मधु । शराब । उ०—मधु, माध्वी, मदिरा, इरा, सुरा, वारुणी होय । आसव, मय, कादंबरी, मधुबारा मैरेय ।—नंद० ग्रं०, पृ० ९८ ।

मधुबाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शराब पिलानेवाली स्त्री । साकी । उ०—सो जाती है मधुबाला । सूखा लुढ़का है प्याला । —लहर, पृ० ५४ । २. मकरंद का संग्रह करनेवाली, भौंरी । भ्रमरी ।

मधुबिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुबिम्बी] कुंदरू।

मधुबोज—संज्ञा पुं० [सं०] अनार।

मधुबैनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मधु+हिं० बैन+ई (प्रत्य०)] मधुरभाषिणी। उ०—मधुबैनी बाग्जि वर बैनी। हास बिलास रास रसरैनी।—नंद० ग्रं०, पृ० १५८।

मधुब्रत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मधुव्रत] भौंरा। दे० 'मधुव्रत'। उ०—बनी रससानी ता मधुव्रत को, लह्यौ जिन कृपा मकरंद स्याम हृदय सरोज को।—घनानंद, पृ० १५०।

मधुभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में आठ मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण होता है। जैसे—प्रभु हो सुदीन। तुम हो प्रवीन। जग मँह महेश। हरिए कलेश।

मधुभूमिक—संज्ञा पुं० [सं०] योगी जो साधना की द्वितीय अवस्था में हो [को०]।

मधमंगल(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक सखा। उ०—मधुमंगल लै लै फिरि नाँटत।—घनानंद, पृ० २४८।

मधुमंथ—संज्ञा पुं० [सं० मधुमन्थ] शहद के मिश्रण से बनाया हुआ एक प्रकार का पेय [को०]।

मधुमक्खी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुमक्षिका] एक प्रकार की प्रसिद्ध मक्खी जो फूलों का रस चूसकर शहद एकत्र करती है। मुमाखी।

विशेष—दस हजार से पचास हजार तक मधुमक्खियाँ एक साथ एक घर बनाकर रहती हैं जिसे छत्ता कहते हैं। इस छत्ते में मक्खियों के लिये अलग अलग बहुत से छोटे छोटे घर बने होते हैं। प्रत्येक छत्ते में तीन प्रकार की मधुमक्खियाँ होती हैं। एक तो मादा मक्खी होती है जो 'रानी' कहलाती है। इसका काम केवल गर्भ धारण करके अंडे देना होता है। यह दिन में प्रायः दो हजार अंडे देती है। प्रत्येक छत्ते में ऐसी एक ही मक्खी होती है। साधारण मक्खियों की अपेक्षा यह कुछ बड़ी भी होती है। दूसरी जाति-नर मक्खियों की होती है, जिनका काम रानी को गर्भ धारण कराना होता है। और तीसरे वर्ग में व साधारण मक्खियाँ होती हैं जो फलों का रस पी पीकर आती हैं और उन्हें शहद या मधु के रूप में छत्ते में जमा करती हैं। जब नर मक्खियाँ गर्भधारण का कार्य करा चुकती हैं, तब उन्हें तीसरे वर्ग की साधारण मक्खियाँ मार डालती हैं। इसके अतिरिक्त छत्ता बनाने और नवजात मक्खियों के पालन पोषण का काम भी इसी तीसरे वर्ग की साधारण मक्खियाँ करती हैं। इस प्रकार अंडे देने के सिवा और समग्र काम इसी वर्ग की मक्खियों द्वारा किया जाता है। मादा और काम करनेवाली मक्खियों का डंक जहरीला होता है जिससे वे अपने शत्रु को मारती हैं। जब एक छत्ता बहुत भर जाता है, तब रानी मक्खी की आज्ञा से काम करनेवाली मक्खियाँ किसी दूसरी जगह जाकर नया छत्ता बनाती हैं। शहद में से जो मैल निकलती है, उसी को मोम कहते हैं। बहुत प्राचीन काल से प्रायः सभी देशों में लोग शहद और मोम के लिये इनका पालन करते आए हैं। इस संबंध में अंग्रेजी और हिंदी में अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हैं।

मधुमक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मधुमक्षा] मधुमाखी [को०]।

मधुमक्षिका, मधुमक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद की मक्खी। मधुमक्खी।

मधुमज्जन—संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का पेड़ [को०]।

मधुमत—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम जो काश्मीर के पास था।

मधुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और एक गुरु होता है। २. एक प्राचीन नदी का नाम। ३. तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की नायिका जिसकी उपासना और सिद्धि से मनुष्य जहाँ चाहे, वहाँ आ जा सकता है। ४. पतंजलि के अनुसार समाधि की वह अवस्था जो अभ्यास और वैराग्य के कारण रजः और तम के बिलकुल दूर हो जाने और सत्गुण का पूरा प्रकाश होने पर प्राप्त होती है। ५. गंगा का एक नाम। ६. मधु दैत्य की कन्या का नाम जो इक्ष्वाकु के पुत्र हर्यश्व को व्याही थी। ७. पुराणानुसार नर्मदा की एक शाखा का नाम।

मधुमत्त—वि० [सं०] १. शराब पिए हुए। शराब के नशे में डूबा हुआ। २. वसंत ऋतु के प्रभाव से मस्त या आनंदित [को०]।

मधुमथन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मधुमल्लि, मधुमल्लिका, मधुमल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालती।

मधुमय—वि० [सं० मधु+मय (प्रत्य०)] मधुयुक्त। आनंदप्रद। सुंदर। उ०—मद तेरे मधुमय देशन में।—हिं० का० प्र०, पृ० २४८।

मधुमयता—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुमय+ता (प्रत्य०)] आनंद। माधुर्य। मादकता। उ०—श्री लाई तुम शोभा लाई, लाई मधुमयता।—ग्रमि०, पृ० २३।

मधुमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान।

विशेष—यह मैदे को घी में भूनकर और ऊपर से शहद में लपेटकर बनाया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह बलकारक और भारी होता है।

मधुमाखी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुमक्षी, हिं० मधुमक्खी] दे० 'मधुमक्खी'। उ०—मधुमाखी लौं डीठि दुहुं दिसि अति छवि पावति।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०।

मधुमात—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो भैरव राग का सहचर माना जाता है।

मधुमात सारंग—संज्ञा पुं० [सं० मधुमातसारङ्ग] सारंग राग का एक भेद जिसके गाने का समय दिन में १७ दंड से २० दंड तक माना जाता है। यह संकर राग है और सारंग तथा मधुमात के योग से बनता है।

मधुमाधव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मालश्री, कल्याण और मल्लार के योग से बना हुआ एक संकर राग। २. चैत और वैशाख जो वसंत ऋतु के मास माने गए हैं।

मधुमाधवसारंग—संज्ञा पुं० [सं० मधुमाधवसारङ्ग] ओड़व जाति का एक संकर राग जिसमें धैवत और गांधार वर्जित हैं।

मधुमाधवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक रागिनी जो भैरव राग की सहचरी मानी जाती है। हनुमत के मत से इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—म प ध नि सा रे ग म अथवा म प नि सा ग म। २. वासंती लता। ३. एक प्रकार की शराब।

मधुमाध्वीक—संज्ञा पुं० [सं०] मद्य। शराब।

मधुमान्—वि० [सं० मधुमत्] १. मीठा। २. सुखकर। प्रिय। ३. जिसमें शहद मिला हो। ४. मधु से परिपूर्ण जैसे पुष्प (को०)।

मधुमारक—संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधुमालती—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालती नाम की लता जिसके फूल पीले होते हैं। विशेष दे० 'मालती'।

मधुमास—संज्ञा पुं० [सं०] १. चैत महीना। २. वसंत (को०)।

मधुमूल—संज्ञा पुं० [सं०] रतालू।

मधुमेह—संज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रकार के प्रमेह का बढ़ा हुआ रूप जिसमें पेशाब बहुत अधिक और मधु का सा मीठा और गाढ़ा आता है। यह रोग प्रायः असाध्य माना जाता है और इससे प्रायः रोगी की मृत्यु हो जाती है। विशेष दे० 'प्रमेह'।—माधव०, पृ० १८६।

मधुमेही—संज्ञा पुं० [सं० मधुमेहिन्] जिसे मधुमेह रोग हो।

मधुयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुलेठी। जेठी मद। २. ऊख। ईख।

मधुयष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

मधुयष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

मधुयामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधु + यामिनी] वर वधू के मिलन की प्रथम रात्रि। सुहागरात। आनंदयुक्त रात।

मधुर¹—[सं०] १. जिसका स्वाद मधु के समान हो। मीठा। २. जो सुनने में भला जान पड़े। प्रिय। मधुर वचन। ३. सुंदर। मनोरंजक। उ०—सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।—तुलसी (शब्द०)। ४. सुस्त। मट्ठर (पशु)। ५. मंदगामी। धीरे चलनेवाला। ६. जो किसी प्रकार क्लेशप्रद न हो। हलका। उ०—मधुर मधुर गरजत घन घोरा।—तुलसी (शब्द०)। ७. शांत। सौम्य।

मधुर²—संज्ञा पुं० १. मीठा रस। २. जीवक वृक्ष। ३. लाल ऊख। ४. गुड़। ५. धान। ६. स्कंद के एक सैनिक का नाम। ७. लोहा। ८. विष। जहर। ९. काकोली। १०. जंगली बेर। ११. बादाम का पेड़। १२. महुआ। १३. मटर

मधुरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मधुर + ई (प्रत्य०)] १. मधुर होने का भाव। मधुरता। २. मिठास। मीठापन। ३. सुकुमारता। कोमलता।

मधुरकंटक—संज्ञा पुं० [सं० मधुरकण्टक] एक प्रकार की मछली जिसे कजली कहते हैं।

मधुरक¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक वृक्ष।

मधुरक²—वि० दे० 'मधुर'।

मधुरकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीठा नीबू।

मधुरजंबीर—संज्ञा पुं० [सं० मधुरजम्बीर] मीठा जमीरी नीबू।

मधुरज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] धीमा और सदा बना रहनेवाला ज्वर।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह ज्वर अधिक घी आदि खाने अथवा पसीना रुकने के कारण होता है। इसमें मुँह लाल हो जाता है, तालु और जीभ सूख जाती है, नींद बहुत आती, प्यास बहुत लगती और कै मालूम होती है।

मधुरता—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधुर होने का भाव। २. मिठास। ३. सौंदर्य। सुंदरता। मनोहरता। ४. सुकुमारता। कोमलता।

मधुरत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] शहद, घी और चीनी इन तीनों का समूह।

मधुरत्रिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख या किसमिश, गंभारी और खजूर इन तीनों का समूह।

मधुरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधुर होने का भाव। मधुरता। २. मीठापन। मिठास। ३. सुंदरता। मनोहरता।

मधुरत्वच्—संज्ञा पुं० [सं०] धौ का पेड़।

मधुरप्रियदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

मधुरफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेर का वृक्ष। २. तरबूज।

मधुरफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीठा नीबू।

मधुरबिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँदरू। मधुबिंबी।

मधुरभाषी—वि० [सं० मधुरभाषिन्] मीठा बोलनेवाला।

मधुरवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नीबू (को०)।

मधुरस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईख। २. ताड़ वा खजूर।

मधुरस²—वि० मीठा। मिठास से भरा हुआ (को०)।

मधुरसरण—वि० [सं० मधुर + सरण] धीरे धीरे चलनेवाला।—उ०—आओ मधुरसरण माननि मन।—गीतिका, पृ० ५५।

मधुरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्वा। २. दाख। उ०—स्वादी मृदुका मधुरसा काल मेखला होइ।—अनेकार्थ० पृ० ३०। ३. गंभारी। ४. दुधिया। ५. शतपुष्पी। ६. प्रसारिणी लता।

मधुरसिक—संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधुरस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।

मधुरस्वन¹—वि० [सं०] दे० 'मधुरस्वर'।

मधुरस्वन²—संज्ञा पुं० शंख (को०)।

मधुरस्वर¹—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

मधुरस्वर²—मीठे स्वरवाला। मीठे स्वर का (को०)।

मधुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदरास प्रांत का एक प्राचीन नगर जो

अब मडुरा या मदूरा कहलाता है। २. मथुरा नगर। ३. शतपुष्पी। ४. मीठा नीबू। ५. मेदा। ६. मुलेठी। ७. काकोली। ८. सतावर। ९. महामेदा। १०. पालक का साग। ११. सेम। १२. केले का वृक्ष। १३. मसूर। १४. मीठी खजूर। १५. सौंफ।

मधुराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० मधुर + आई (प्रत्य०)] १. मधुरता। उ०—दुति लावन्य रूप मधुराई। कांति रमनता सुंदरताई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२४। २. मिठास। मीठापन। ३. कोमलता। उ०—मधुराई बैन बसी लगी पगन गति मंद। चपलाई चमकी चखनि चखन लखो नँदनंद।—स० सप्तक, पृ० ३७०। ४. सुंदरता।

मधुराकर—संज्ञा पुं० [सं०] ईख। ऊख।

मधुराका—संज्ञा स्त्री० [सं० मधु + राका] १. वसंत ऋतु की चाँदनी रात। उ०—और पड़ती हो उसपर शुभ्र नवल मधुराका मन की साध।—कामायनी, पृ० ४८। २. दे० 'मधुयामिनी'।

मधुराज—संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा। उ०—छूटि रही अलक झलक मधुराज राजी तापै द्विति तैसीये बिराजै पर मोर की।—रघुनाथ (शब्द०)।

मधुराना(पु)—क्रि० अ० [हिं० मधुर + आना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु में मीठा रस आ जाना। मीठा होना। उ०—व्यंग ढंग तजि बानी हू कछु कछु मधुरानी।—व्यास (शब्द०)। २. सुंदरता से भर जाना। सुंदर हो जाना। उ०—आगे कौन हवाल जबै अँग अँग मधुरैहै।—व्यास (शब्द०)।

मधुरान्न—संज्ञा पुं० [सं०] मिठाई। मिष्ठान्न। उ०—खाय मधुरान्न नहिं पाय पनहीं धरै।—केशव (शब्द०)।

मधुराम्लक—संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा।

मधुराम्लरस—संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी का पेड़।

मधुरालापा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैना पक्षी।

मधुरालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी मछली।

मधुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

मधुरित—वि० [सं०] मधुर किया हुआ। मधुर बनाया हुआ। अति मधुर। उ०—चढ़ि कदम्म बुल्ले सु प्रभु मधुरित मिप्टत बानि।—पृ० रा०, २।३७६।

मधुरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मधुरिमा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुरिमन्] १. मिठास। मीठापन। २. सुंदरता। सौंदर्य।

मधुरिमा[2]—वि० जो बहुत अधिक मीठा हो।

मधुरी(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० माधुर्य] १. सौंदर्य। सुंदरता। उ०—ता दिन देख परी सब की छवि कौन मिली इनकी मधुरी।—रघुराज (शब्द०)। २. बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

मधुरी(पु)[2]—वि० [सं० मधुर] दे० 'मधुर'। उ०—मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१।

मधुरीछ—संज्ञा पुं० [हिं० मधु + रीछ] दक्षिणी अमेरिका का एक जंगली जंतु।

विशेष—ऊँचाई में यह जंतु बिल्ली या कुत्ते के बराबर और रूप में रीछ के समान होता है। यह जंतु शहद के छत्तों से शहद चूसने का बड़ा प्रेमी होता है। इसी से इसे लोग मधुरीछ कहते हैं।

मधुरीला—वि० [हिं० मधुरी + ला (प्रत्य०)] मधुरतायुक्त। माधुर्यपूर्ण। जैसे,—पुरानी परिपाटी के वृत्तों में आपने वह मधुरीला चमत्कार कर दिखाया जो शायद कोई और कभी न दिखा सकता।

मधुरोदक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम समुद्र जो मीठे जल का और पुष्कर द्वीप के चारों ओर है।

मधुल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा।

मधुल(पु)[2]—वि० दे० 'मधुर' [को०]।

मधुलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] लाल शोभांजन।

मधुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

मधुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की शराब जो मधुली नामक गेहूँ से बनाई जाती है। २. राई। ३. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। ४. फूलों का पराग।

मधुलिह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मधु + लिह्] भ्रमर। मधुकर। भौंरा। उ०—मान कमल के ढिग ही रहै। रूप रंग रस मधुलिह लहै।—नंद० ग्रं०, पृ० १४४।

पर्या०—मधुलेह। मधुलेही। मधुलोलुप। मधुव्रत।

मधुली—संज्ञा पुं० [सं० मधुलिका] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का गेहूँ।

मधुलोलुप—संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधुवटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन स्थान का नाम।

मधुवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथुरा के पास यमुना के किनारे का एक वन जहाँ शत्रुघ्न ने लवण नामक दैत्य को मारकर मधुपुरी स्थापित की थी। २. किष्किंधा के पास का सुग्रीव का वन जिसमें सीता का समाचार लेकर लौटने पर हनुमान ने मधुपान किया था। ३. वह वन या कुंज जिसमें प्रेमी और प्रेमिका आकर मिलते हों। ४. कोयल।

मधुवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

मधुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुलेठी। २. करेला।

मधुवा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मधु + वा (प्रत्य०)] मद्य। मदिरा। शराब। उ०—गुरु चरनामृत नेम न धारै मधुवा चाखन आया रे।—कबीर० श०, भा० १, पृ० २५।

मधुवाक्—संज्ञा पुं० [सं० मधुवाच्] कोयल [को०]।

मधुवात—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत की हवा। उ०—शीता रे, जो मधुवात सदृश।—मिट्टी०, पृ० ११।

मधुवासन—संज्ञा पु० [सं०] भौंरा। उ०—मधु। मधुव्रत मधुरसिक मधुवासन बग ओर।—नंददास (शब्द०)।

मधुवार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्य पीने का दिन। २. मद्य पीने की रीति। शनैः शनै बार बार पीना। ३. मद्य। मदिरा।

मधुवाही—संज्ञा पुं० [सं० मधुवाहिन्] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नद का नाम।

मधुविद्विट्—संज्ञा पु० [सं० मधुविद्विष्] विष्णु।

मधुवीज—संज्ञा पु० [सं०] अनार।

मधुव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधुशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शहद से बनाई हुई चीनी जो वैद्यक के अनुसार बलकारक और वृष्य होती है।

पर्या०—माध्वी। सिता। मधुजा। क्षौद्रजा। क्षौद्रशर्करा।

२. सेम। लोबिया।

मधुशाख—संज्ञा पुं० [सं०] महुए का वृक्ष।

मधुशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरालय। मयखाना। उ०—वैभव की है यह मधुशाला।—लहर, पृ० ५४।

मधुशिग्रु—संज्ञा पु० [सं०] शोभांजन। सहिजन।

मधुशिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम। लोबिया।

मधुशिष्ट—संज्ञा पु० [सं०] मोम।

मधुशेष—संज्ञा पु० [सं०] मोम।

मधुश्रम—संज्ञा पुं० [सं० मधुस्रवा] संजीवन मूरि। संजीवनी बूटी। (नंददास)।

मधुश्रवा—संज्ञा पु० [सं० मधुश्रवस्] महुआ। मधूक। उ०—माधव, मधुद्रुम, मधुश्रवा; मधुष्टीव, गुड़फूल।—नंद ग्रं०, पृ० १०२।

मधुश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वसंत की शोभा। वसंत का सौंदर्य (को०)।

मधुश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा।

मधुश्वासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती नामक वृक्ष।

मधुष्ठील—संज्ञा पु० [सं०] महुए का वृक्ष।

मधुसंभव—संज्ञा पु० [सं० मधुसम्भव] १. मोम। २. दाख।

मधुसख—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधुसहाय—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधुसारथि—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

मधुसिक्थक—संज्ञा पु० [सं०] १. मोम। २. एक प्रकार का स्थावर विष।

मधुसुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रस जो पिप्पलीमूल को एक बर्तन में बंद करके तीन दिन तक धूप में रखने से तैयार होता है।

मधुसुहृद्—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधुसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक दैत्य को मारनेवाले, श्रीकृष्ण। २. भौंरा।

मधुसूदनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालक का साग।

मधुस्कंद—संज्ञा पु० [सं० मधुस्कन्द] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

मधुस्थान—संज्ञा पु० [सं०] मधुमक्खी का छत्ता।

मधुस्ठील(पु)—संज्ञा पु० [सं० मधुष्ठील] दे० 'मधुष्ठील'। उ०—माधव मधुद्रुम मधुश्रवा मधुष्ठील गुड़ फूल।—अनेकार्थ०, पृ० ७१।

मधुस्यंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुस्यन्दिन्] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें तार लगा रहता था।

मधुस्यंद—संज्ञा पुं० [सं० मधुस्यन्द] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

मधुस्रव—संज्ञा पु० [सं०] जिससे मधु का स्राव होता हो—१. महुए का वृक्ष। २. पिंड खजूर का वृक्ष।

मधुस्रवा[1]—संज्ञा पु० [सं० मधुस्रवस्] महुए का वृक्ष।

मधुस्रवा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संजीवन बूटी। २. मुलेठी। ३. मूर्वा। ४. हंसपदी नाम की लता।

मधुस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] महुए का वृक्ष।

मधुस्वर—संज्ञा पु० [सं०] कोयल।

मधुहंता—संज्ञा पु० [सं० मधुहन्तृ] मधु दैत्य को मारनेवाले, विष्णु।

मधुहा—संज्ञा पु० [सं० मधुहन्] १. शहद को नष्ट करनेवाला। २. शहद का संग्रह करनेवाला। शहद निकालनेवाला। उ०—माँखिन आँखिन धूरि पूरि मधुहा मधु जैसे।—नंद ग्रं०, पृ० २१०। ३. एक शिकारी पक्षी। ४. विष्णु (को०)।

मधुहेतु—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

मधूक—संज्ञा पु० [सं०] १. महुए का पेड़। उ०—जो प्राप्ति हो फूल तथा फलों की, मधूक चिंता न करो दलों की।—साकेत, पृ० २८६। २. महुए का फूल। उ०—पहिराई नल के गले नव मधूक की माल।—गुमान (शब्द०)। ३. मुलेठी। भौंरा (को०)।

मधूकपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमड़ा।

मधूकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मधुकरी'।

मधूकशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महुए के फल या फूल से निकाली हुई चीनी।

मधूख—संज्ञा पुं० [सं० मधूक] दे० 'मधूक'।

मधूच्छिष्ट—संज्ञा पु० [सं०] मोम।

मधूछेदन(पु)—संज्ञा पु० [सं० मधु + छेदन] विष्णु। उ०—मधूछेदनं पाप पावेस कारी।—पृ० रा०, १।२५६।

मधूत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधूत्थित—संज्ञा पु० [सं०] मोम।

मधूत्पन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद से बनाई हुई चीनी।

मधूत्सव—संज्ञा पु० [सं०] १. वसंतोत्सव। २. चैत्र की पूर्णिमा।

मधूद्यान—संज्ञा पु० [सं०] वसंती बाग। वसंतोद्यान (को०)।

मधूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल महुआ । २. मधु । शहद (को०) ।

मधूलक—संज्ञा पुं० [पुं०] १. जल महुआ । २. मद्य । शराब ।

मधूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्वा । २. मुलेठी ३. एक प्रकार का मोटा अन्न । ४. छोटे दाने का गेहूँ । ५. छोटे दाने के गेहूँ से बनी हुई शराब । ६. एक प्रकार की घास । ७. एक प्रकार की मक्खी जिसके काटने से सूजन और जलन होती है । (वैद्यक) ।

मधूली—संज्ञा पुं० [सं०] १. आम का पेड़ । २. जल में उत्पन्न होनेवाली मुलेठी । ३. मध्य देश का गेहूँ ।

मधूवक—संज्ञा पुं० [सं०] मोम ।

मध्यंदिन¹—वि० [सं० मध्यन्दिन] १ मध्यवर्ती । बीच का । केंद्रीय । २. दोपहर से संबंधित [को०] ।

मध्यंदिन²—संज्ञा पुं० दिन का मध्य भाग । दोपहर [को०] ।

मध्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ के बीच का भाग । दरमियानी हिस्सा । २. कमर । कटि । उ०—मध्य छीन औ भुखन सोहै ।—हिं० क० का०, पृ० २११ । ३. संगीत में एक सप्तक जिसके स्वरों का उच्चारण वक्षस्थल से कंठ के अंदर के स्थानों से किया जाता है । यह साधारणतः बीच का सप्तक माना जाता है । ४. नृत्य में वह गति जो न बहुत तेज हो न बहुत मंद । ५. दस खरब की संख्या । ६. विश्राम । ७. सुश्रुत के अनुसार १६ वर्ष से ७० वर्ष की अवस्था । ८. अंतर । भेद । फरक । ९. पश्चिम दिशा ।

मध्य²—वि० १. उपयुक्त । ठीक । न्याय्य । २. अधम । नीच । ३. मध्यम । बीच का । ४. मध्यस्थ (को०) । ५. अंतर्वर्ती । [को०] ।

मध्य³—१. बीच में । मध्य में । २. बीच से । मध्य से [को०] ।

मध्यक—वि० [सं०] साधारण । सार्वजनीन [को०] ।

मध्यकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धव्यास [को०] ।

मध्यकाल—संज्ञा पुं० [सं० मध्य + काल] इतिहास में वह समय जो प्राचीन और आधुनिक समय के मध्य में पड़ता है । ईसवी सन् की सातवीं सदी से अठारहवीं सदी तक का समय ।

मध्यकालीन—वि० [सं०] मध्यकाल से संबधित । मध्यकाल का । उ०—कबीर तुलसी जायसी और सूर की सामान्य विशेषताओं को समझे बिना मध्यकालीन हिंदी साहित्य की सामान्य प्रगतिशील विशेषताओं को समझना असंभव है ।—आचार्य० पृ० ६४ ।

मध्यकुरु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश जो उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु के मध्य में था । विशेष दे० 'कुरु' ।

मध्यखंड—संज्ञा पुं० [सं० मध्यखण्ड] ज्योतिष के अनुसार पृथ्वी का वह भाग जो उत्तर क्रांतिवृत्त और दक्षिण क्रांतिवृत्त के मध्य में पड़ता है ।

मध्यगंध—संज्ञा पुं० [सं० मध्यगन्ध] आम का वृक्ष ।

मध्यगत—वि० [सं०] मध्यम । बीच का ।

मध्यज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यदिन रेखा ।

मध्यतः—अव्य० [सं० मध्यतस्] बीच से या बीच में [को०] ।

मध्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्य का भाव या धर्म ।

मध्यतापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

मध्यदंत—संज्ञा पुं० [सं० मध्यदन्त] सामने या बीच का दाँत [को०] ।

मध्यदिन—संज्ञा पुं० [सं०] दोपहर [को०] ।

मध्यदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में दीपक अलंकार का एक भेद । विशेष—दे० 'दीपक' ।

मध्यदेश—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन भौगोलिक विभाग के अनुसार भारतवर्ष का वह प्रदेश जो हिमालय के दक्षिण, विंध्य पर्वत के उत्तर, कुरुक्षेत्र के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में है । यह प्रदेश किसी समय आर्यों का प्रधान निवासस्थान था और बहुत पवित्र माना जाता था । मध्यम ।

मध्यदेह—संज्ञा पुं० [सं०] उदर । पेट ।

मध्यपद—संज्ञा पुं० [सं०] बीच का पद या शब्द [को०] ।

यौ०—मध्यपदलोपी = समास का भेद । दे० 'मध्यमपदलोपी' ।

मध्यपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में एक प्रकार का पात । २. जान पहचान । परिचय ।

मध्यपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] जल बेत ।

मध्यपूर्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. मध्यकाल का पूर्वार्ध भाग । २. एशिया महाद्वीप का दक्षिण पश्चिमी और अफ्रीका का उत्तर पूर्वी भाग । (अं०) मिडिल ईस्ट ।

मध्यप्रसूता—वि० स्त्री० [सं०] (वह गाय) जिसको बच्चा दिए अधिक दिन न हुए हों [को०] ।

मध्यभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीच का हिस्सा । २. कमर [को०] ।

मध्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] मध्य की स्थिति । मध्य का भाव [को०] ।

मध्यम¹—वि० [सं०] जो दो विपरीत सीमाओं के बीच में हो । जो गुण, विस्तार, मान आदि के विचार से न बहुत बड़ा हो, न बहुत छोटा । मध्य का । बीच का ।

मध्यम²—संज्ञा पुं० १. संगीत के सात स्वरों में से चौथा स्वर ।

विशेष—इसका मूलस्थान नासिका, अंतःस्थान कंठ और शरीर में उत्पत्तिस्थान वक्षस्थल माना जाता है । कहते हैं, यह मयूर का स्वर है, इसके अधिकारी देवता महादेव, आकृति विष्णु की, संतान दीपक राग, वर्ण नील, जाति शूद्र, ऋतु ग्रीष्म, वार बुध और छंद बृहती है और इसका अधिकार कुश द्वीप में है । संक्षेप में इसे 'म' कहते या लिखते हैं । यह साधारण और तीव्र दो प्रकार का होता है । इसको स्वर (षड्ज) बनाने से सप्तक इस प्रकार होता है—मध्यम स्वर, पंचम ऋषभ, धैवत गांधार, कोमल निषाद । मध्यम, स्वर (षड्ज) पंचम, ऋषभ, धैवत, गांधार निषाद तीव्र मध्यम को स्वर (षड्ज) बनाने से सप्तक इस प्रकार होता है—तीव्र मध्यम स्वर, कोमल धैवत ऋषभ, कोमल

निषाद गांधार, निषाद मध्यम, कोमल ऋषभ पंचम, कोमल गांधार धैवत, मध्यम, निषाद ।

२. वह उपपति जो नायिका के क्रोध दिखलाने पर अपना अनुराग न प्रकट करे और उसकी चेष्टाओं से उसके मन का भाव जाने । ३. साहित्य में तीन प्रकार के नायकों में से एक । ४. एक प्रकार का मृग । ५. एक राग का नाम । ६. मध्य देश ।

मध्यमक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मध्यमिका] १. मध्य का । बीच का । २. सामान्य । सार्वजनीन ।

मध्यमक²—संज्ञा पुं० किसी वस्तु का भीतरी भाग [को०] ।

मध्यमणि—संज्ञा पुं० [सं०] हार का मध्यवर्ती मणि । पदिक [को०] ।

मध्यमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यम होने का भाव ।

मध्यममध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्छना [को०] ।

मध्यमपद—संज्ञा पुं० [सं०] समास का मध्यवर्ती पद ।

मध्यमपदलोपी—संज्ञा पुं० [सं० मध्यमपदलोपिन्] व्याकरण में वह समास जिसमें पहले पद से दूसरे पद का संबंध बतलानेवाला शब्द लुप्त या समास से अध्याहृत रहता है । लुप्तपदसमास ।

विशेष—कुछ कर्मधारय और कुछ बहुव्रीहि समास मध्यमपदलोपी हुआ करते हैं । जैसे, पर्णशाला (पर्णनिर्मितशाला), जेब घड़ी (जेब में रहनेवाली घड़ी), मृगनयनी (मृग के समान नयनोंवाली) ।

मध्यमपांडव—संज्ञा पुं० [सं० मध्यम पाण्डव] अर्जुन [को०] ।

मध्यमपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार तीन पुरुषों में से वह पुरुष जिससे बात की जाय । वह व्यक्ति जिसके प्रति कुछ कहा जाय ।

मध्यमराजा—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो कई परस्पर विरुद्ध राजाओं के मध्य में हो ।

विशेष—इसमें इतनी शक्ति का होना आवश्यक है कि शांति तथा युद्धकाल में दोनों पक्षों के निग्रह तथा अनुग्रह में समर्थ हो ।

मध्यमरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] आधी रात [को०] ।

मध्यमरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आधी रात । उ०—माघ की मध्यरात्रि में यहाँ अभिसार के लिये निरापदता होती है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १४३ ।

मध्यमलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी ।

मध्यमवय—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० मध्यमवयस्] अधेड़ उम्र । [को०] ।

मध्यमवयस्क—वि० [सं०] अधेड़ उम्र का । प्रौढ ।

मध्यमसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० मध्यमसङ्ग्रह] मिताक्षरा के अनुसार स्त्री को अपने अधिकार में लाने का वह प्रकार जिसमें पुरुष उसे वस्त्र आभूषण आदि भेजकर अपने पर अनुरक्त करता है ।

मध्यमसाहस—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार पाँच सौ पण तक का अर्थदंड या जुरमाना ।

मध्यमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाँच उँगलियों में से बीच की उँगली । २. वह नायिका जो अपने प्रियतम के प्रेम या दोष के अनुसार उसका आदरमान या अपमान करे । ३. रजस्वला स्त्री । ४. कनियारी । ५. छोटा जामुन । ६. काकोली । ७. युक्तिकल्पतरु के अनुसार २४ हाथ लंबी, १२ हाथ चौड़ी और ८ हाथ ऊँची नाव ।

मध्यमागम—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के चार प्रकार के आगमों में से एक प्रकार का आगम ।

मध्यमात्रेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

मध्यमान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें ८ ह्रस्व अथवा ४ दीर्घ मात्राएँ होती हैं तथा ३ आघात और १ खाली होता है । इसके तबले के बोल ये हैं—धा धिन ताक् धिन, धा धिन ताक् धिन, धा तिन ताक् तिन, ता धिन ताक् धिन । धा ।

मध्यमाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] बीजगणित की वह क्रिया जिसके अनुसार कोई अायत्त मान निकाला जाता है ।

मध्यमिक—वि० [सं०] बीच का । मध्यम ।

मध्यमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसे रजोदर्शन हो चुका हो । रजस्वला स्त्री । २. देश विशेष जो भारत के मध्य में कहा गया है । माध्यमिका (को०) ।

मध्यमीय—वि० [सं०] दे० 'मध्यम' ।

मध्यमेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] काशीस्थ एक शिवलिंग ।

मध्ययव—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक परिमाण जो ६ पीली सरसों के बराबर होता है ।

मध्ययुग—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन और अर्वाचीन के मध्य का समय । २. इतिहास में राजपूत से मुगलकाल तक समय । ३. यूरोप में सन् ६०० से १५०० ई० तक का समय ।

मध्यरात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मध्यरात्रि' [को०] ।

मध्यरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्धरात्रि । आधी रात [को०] ।

मध्यरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष और भूगोलशास्त्र में वह रेखा जिसकी कल्पना देशांतर निकालने के लिये की जाती है ।

विशेष—यह रेखा उत्तर दक्षिण मानी जाती है और उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों को काटती हुई एक वृत्त बनाती है ।

मध्यलोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी । २. जैनों के अनुसार वह मध्यवर्ती लोक जो मेरु पर्वत पर १०००४० योजन की ऊँचाई पर है ।

मध्यवय—वि० [सं० मध्यवयस्] प्रौढ । अधेड़ [को०] ।

मध्यवर्ती—वि० [सं० मध्यवर्तिन्] जो मध्य में हो । बीच का ।

मध्यवित्त—वि० [सं०] जिसकी आय मध्यम हो । बीच की श्रेणी का । जो न अमीर हो, न गरीब ।

मध्यविवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार सूर्य या चंद्रग्रहण के मोक्ष का एक प्रकार जिसमें चंद्रमा का मध्यभाग पहले प्रकाशित होता है । कहते हैं, इस प्रकार के मोक्ष से अन्न तो यथेष्ट होता है, पर वृष्टि अधिक नहीं होती ।

मध्यवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि [को०] ।

मध्यसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मध्यरेखा'।

मध्यस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो वादियों के झगड़े को निपटानेवाला। बीच में पड़कर विवाद को मिटानेवाला। २. जो दोनों पक्षों में से किसी पक्ष में न हो। उदासीन। तटस्थ। उ०—शत्रु 'मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हे बरियाई।—तुलसी (शब्द०)। ३. वह जो अपनी हानि न करता हुआ दूसरों का उपकार करता हो। ४. शिव का एक नाम (को०)।

मध्यस्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यस्थ होने का भाव या धर्म।

मध्यस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमर। २. बीच का भाग [को०]।

मध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काव्यशास्त्रानुसार वह नायिका जिसमें लज्जा और काम समान हों। २. एक वर्णवृत्त जिसके चरण में तीन अक्षर होते हैं। इसके आठ भेद हैं। ३. बीच की उँगली। ४. वह लड़की जो रजस्वला हो चुकी हो (को०)।

मध्यान—संज्ञा पुं० [सं० मध्याह्न] दे० 'मध्याह्न'। उ०—चित्रंग वीर पंनो परत, चढ्यो भान मध्यान नभ।—पृ० रा०, २४।१४६।

यौ०—मध्यानोपरांत = दोपहर के बाद। उ०—दिन के मध्याह्नोपरांत से पुनः मेले का आरंभ हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८।

मध्यान्ह—संज्ञा पुं० [सं० मध्याह्न] दे० मध्याह्न'।

मध्यारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

मध्याहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार ६४ प्रकार की लिपियों में से एक प्रकार की लिपि।

मध्याह्न—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का मध्य भाग। ठीक दोपहर का समय।

यौ०—मध्याह्नकाल = दोपहर। मध्याह्नकृत्य, मध्याह्नक्रिया = दोपहर को किए जानेवाले विहित कर्म। मध्याह्नभोजन = दोपहर का खाना। प्रधान या मुख्य भोजन। मध्याह्नवेला, मध्याह्नसमय = मध्याह्नकाल। मध्याह्नसंध्या = संध्या जो दोपहर में की जाय। मध्याह्नस्नान = दोपहर का स्नान।

मध्याह्नोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा पहर (दिन का)। दोपहर के बाद का समय।

मध्ये—क्रि० वि० [सं० मध्य] बाबत। बारे में। संबंध में। मद्धे। विशेष दे० 'मद्धे'।

मध्येज्योतिः—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच पाद का एक वैदिक छंद जिसके पहले और दूसरे चरण में आठ आठ वर्ण तथा तीसरे में ग्यारह, और पुनः चौथे और पाँचवें में आठ वर्ण होते हैं।

मध्येपृष्ठं—क्रि० वि० [सं० मध्येपृष्ठम्] पीठ पीछे।

मध्व[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मधु'।

मध्व[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मध्वाचार्य'।

यौ०—मध्वमत = मध्वाचार्य का मत या सिद्धांत। मध्वसंप्रदाय = मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित वैष्णव संप्रदाय।

मध्वक—संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी।

मध्वरिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अरिष्ट जो संग्रहणी रोग में उपकारी माना जाता है।

मध्वल—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार और बहुत शराब पीना।

मध्वला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मद्य पीने का पात्र। चषक। प्याली। २. पान के समय का कलह [को०]।

मध्वाचारज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मध्वाचार्य] दे० 'मध्वाचार्य'। उ०—मध्वाचारज मेघ भक्ति सर ऊसर भरिया।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ३७६।

मध्वाचारी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मध्वाचार्य] वह वैष्णव जो मध्वाचार्य के मत को मानता हो। उ०—मध्वाचारी होइ तो तूँ मधुर मत को विचारि, मधुर मधुर धुनि ह्वै मध्व गाइए।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१२।

मध्वाचार्य—संज्ञा पुं० [सं० मध्वाचार्य] दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य और माध्व या 'माध्वाचारि' नामक संप्रदाय के प्रवर्तक जो बारहवीं शताब्दी में हुए थे।

विशेष—ये वायु के अवतार माने जाते थे। पहले इनका नाम वासुदेवाचार्य था। इन्होंने अच्युत प्रेक्षाचार्य या श्रद्धानंद नामक एक महात्मा से दीक्षा ली थी और दीक्षा लेते ही विरक्त हो गए थे। कहते हैं, ये अपना 'गीताभाष्य' तैयार करके बदरिकाश्रम गए और वहाँ इन्होंने उसे वासुदेव को अर्पण किया था। वासुदेव से इन्हें तीन शालिग्राम मिले थे जो इन्होंने तीन भिन्न भिन्न मठों में स्थापित किए थे। इन्होंने बहुत से ग्रंथ रचे और अनेक भाष्य लिखे थे। इनके सिद्धांत के अनुसार सबसे पहले केवल नारायण थे; और उन्हीं से समस्त जगत् और देवताओं की उत्पत्ति हुई। ये जीव और ईश्वर दोनों की पृथक् पृथक सत्ता मानते थे। इनके दर्शन का नाम 'पूर्णप्रज्ञ दर्शन' है और इनके अनुयायी मध्वाचारी या माध्व कहलाते हैं।

मध्वाधार—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी का छत्ता।

मध्वालु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के पौधे की जड़।

विशेष—यह स्वाद में मीठी होती है और खाई जाती है वैद्यक में इसे भारी, शीतल, रक्तपित्तनाशक और वीर्यवर्धक माना है।

मध्वालुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मध्वालु' [को०]।

मध्वावास—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

मध्वाशी—वि० [सं० मध्वाशिन्] मधु या मीठा खानेवाला [को०]।

मध्वासव—संज्ञा पुं० [पुं०] महुए की शराब या मधु की मदिरा। माध्वीक।

मध्वासवनिक—संज्ञा पुं० [सं०] शराब बनाकर बेचनेवाला। कलाल। कलवार।

मध्वास्वाद—वि० [सं०] मधु के स्वादवाला [को०]।

मध्विजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। मद्य। शराब।

मध्वृच—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद की ऋचा।